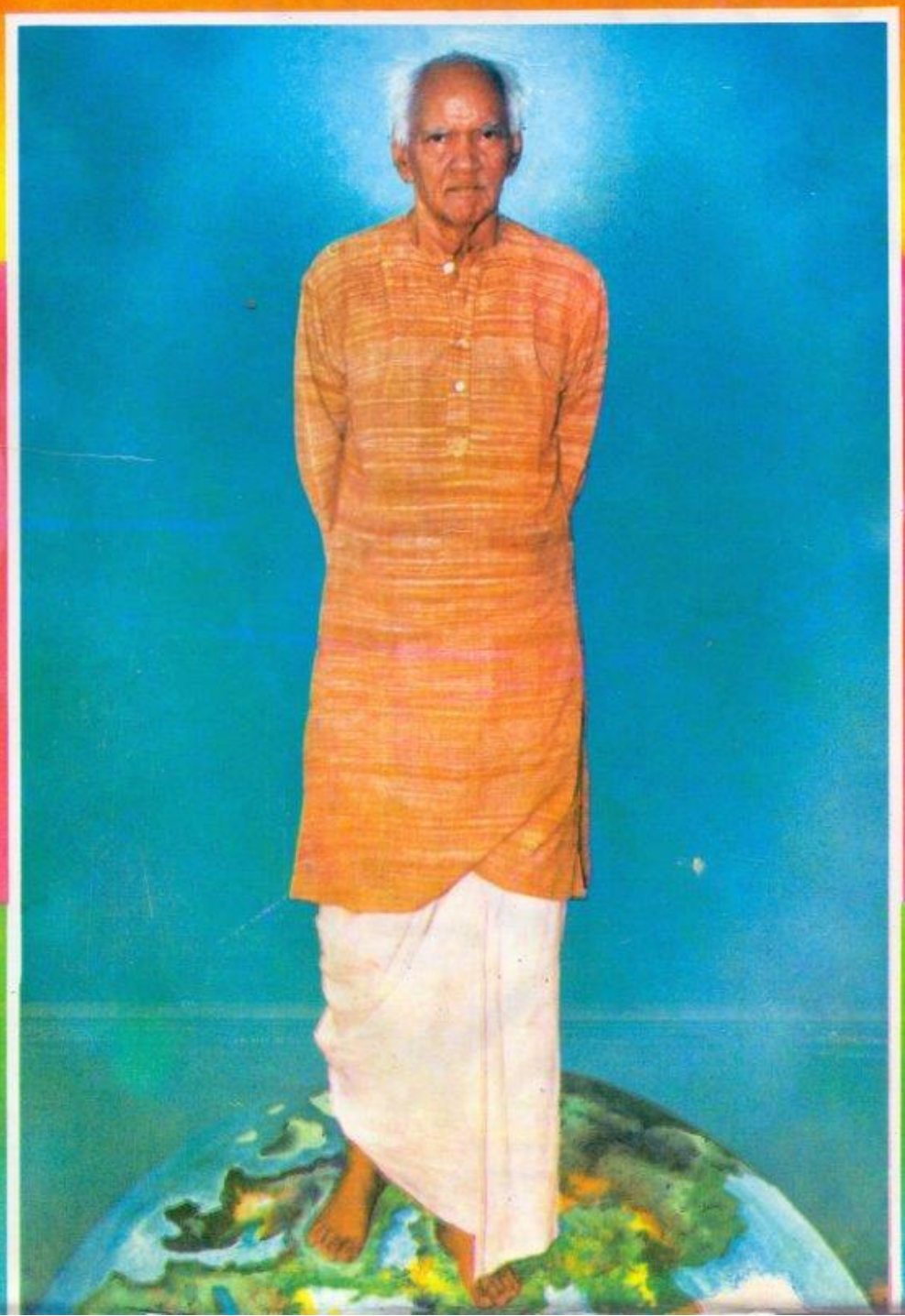
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तन्त्र



www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

सम्पादक

ब्रह्मवर्चस

प्रकाशक :

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

❐
प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान
मथुरा-२८१ ००३

❐
© सर्वाधिकार सुरक्षित

❐
द्वितीय संस्करण १९९८

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org



❐
मूल्य १२५)

❐
मुद्रक
जनजागरण प्रेस, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

समर्पणम्

ॐ वन्दे भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ।।

मातृवत् लालयित्री च पितृवत् मार्गदर्शिका ।
नमोऽस्तु गुरुसत्तायै श्रद्धा-प्रज्ञा युता च या ।।

भगवत्याः जगन्मातुः, श्रीरामस्य जगद्गुरोः ।
पादुकायुगले वन्दे, श्रद्धाप्रज्ञास्वरूपयोः ।।

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै गायत्रीरूपिणे सदा ।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम् ।।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

असम्भवं सम्भवकर्तुमुद्यतं प्रचण्डझञ्झावृतिरोधसक्षमम् ।
युगस्य निर्माणकृते समुद्यतं परं महाकालममुं नमाम्यहम् ।।

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये ।

विराट गायत्री परिवार एवं उसके संस्थापक-संरक्षक एक संक्षिप्त परिचय

इतिहास में कभी-कभी ऐसा होता है कि अवतारी सत्ता एक साथ बहुआयामी रूपों में प्रकट होती है एवं करोड़ों ही नहीं, पूरी वसुधा के उद्धार-चेतनात्मक धरातल पर सबके मनों का नये सिरे से निर्माण करने आती है। परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य को एक ऐसी ही सत्ता के रूप में देखा जा सकता है जो युगों-युगों में गुरु एवं अवतारी सत्ता दोनों ही रूपों में हम सबके बीच प्रकट हुई, अस्सी वर्ष का जीवन जीकर एक विराट् ज्योति प्रज्ज्वलित कर उस सूक्ष्म ऋषि चेतना के साथ एकाकार हो गयी जो आज युग परिवर्तन को सन्निकट लाने को प्रतिबद्ध है। परमवंदनीया माताजी शक्ति का रूप थीं जो कभी महाकाली, कभी माँ जानकी, कभी माँ शारदा एवं कभी माँ भगवती के रूप में शिव की कल्याणकारी सत्ता का साथ देने आती रही हैं। उनने भी सूक्ष्म में विलीन हो स्वयं को अपने आराध्य के साथ एकाकार कर ज्योतिपुरुष का एक अंग स्वयं को बना लिया। आज दोनों सशरीर हमारे बीच नहीं हैं किन्तु, नूतन सृष्टि कैसे ढाली गयी, कैसे मानव गढ़ने का साँचा बनाया गया, इसे शान्तिकुंज, ब्रह्मवर्चस, गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युगतीर्थ आँवलखेड़ा जैसी स्थापनाओं तथा संकल्पित सृजन सेनानीगणों के वीरभद्रों की करोड़ों से अधिक की संख्या के रूप में देखा जा सकता है।

परमपूज्य गुरुदेव का वास्तविक मूल्यांकन तो कुछ वर्षों बाद इतिहासविद, मिथक लिखने वाले करेंगे किन्तु, यदि उनको आज भी साक्षात कोई देखना या उनसे साक्षात्कार करना चाहता हो तो उन्हें उनके द्वारा अपने हाथ से लिखे गये उस विराट परिमाण में साहित्य के रूप में युग संजीवनी के रूप में देखा सकता है जो वे अपने वजन से अधिक भार के बराबर लिख गये। इस साहित्य में संवेदना का स्पर्श इस बारीकी से हुआ है कि लगता है लेखनी को उसी की स्याही में डुबोकर लिखा गया हो। हर शब्द ऐसा जो हृदय को छूता, मन को व विचारों को बदलता चला जाता है। लाखों-करोड़ों के मनों के अंत:स्थल को छूकर उसने उनका कायाकल्प कर दिया। रूसो के प्रजातंत्र की, कार्लमार्क्स के साम्यवाद की क्रान्ति भी इसके समक्ष बौनी पड़ जाती है। उनके मात्र इस युग वाले स्वरूप को लिखने तक में लगता है कि एक विश्वकोश तैयार हो सकता है, फिर उस बहुआयामी रूप को जिसमें वे संगठनकर्ता, साधक, करोड़ों के अभिभावक, गायत्री महाविद्या के उद्धारक, संस्कार परम्परा का पुनर्जीवन करने वाले, ममत्व लुटाने वाले एक पिता, नारी जाति के प्रति अनन्य करुणा बिखेरकर उनके ही उद्धार के लिए धरातल पर चलने वाला नारी जागरण अभियान चलाते देखे जाते हैं, अपनी वाणी के उद्बोधन से एक विराट् गायत्री परिवार एकाकी अपने बलबूते खड़े करते दिखाई देते हैं तो समझ में नहीं आता, क्या-क्या लिखा जाये, कैसे छन्दबद्ध किया जाय, उस महापुरुष के जीवनचरित को।

आश्विन कृष्ण त्रयोदशी विक्रमी संवत् १९६७ (२० सितम्बर, १९११) को स्थूल शरीर से आँवलखेड़ा ग्राम जनपद आगरा जो जलेसर मार्ग पर आगरा से पन्द्रह मील की दूरी पर स्थित है, में जन्मे श्रीराम शर्मा जी का बाल्यकाल-कैशोर्य काल ग्रामीण परिसर में ही बीता। वे जन्मे तो थे एक जमींदार घराने में, जहाँ उनके पिता श्री पं. रूपकिशोर जी शर्मा आप-पास के, दूर-दराज के राजघरानों के राजपुरोहित, उद्भट विद्वान, भागवत कथाकार थे किन्तु, उनका अंत:करण मानव मात्र की पीड़ा से सतत विचलित रहता था। साधना के प्रति उनका झुकाव बचपन में ही दिखाई देने लगा। जब वे अपने सहपाठियों को, छोटे बच्चों को अमराइयों में बिठाकर स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सुसंस्कारिता अपनाने वाली आत्मविद्या का शिक्षण दिया करते थे, छटपटाहट के कारण हिमालय की ओर भाग निकलने व पकड़े जाने पर उनने संबंधियों को बताया कि हिमालय ही उनका घर है एवं वहीं वे जा रहे थे। किसे मालूम था कि हिमालय की ऋषि चेतनाओं का समुच्चय बनकर आयी यह सत्ता वस्तुत: अगले दिनों अपना घर वहीं बनाएगी। जाति-पाँति का कोई भेद नहीं। जातिगत मूढ़ता भरी मान्यता से ग्रसित तत्कालीन भारत के ग्रामीण परिसर में एक अछूत वृद्ध महिला

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

की जिसे कुष्ठ रोग हो गया था, उसी के टोले में जाकर सेवा कर उनने घरवालों का विरोध तो मोल ले लिया पर अपना व्रत नहीं छोड़ा। उस महिला ने स्वस्थ होने पर उन्हें ढेरों आशीर्वाद दिये। एक अछूत कहलाने वाली जाति का व्यक्ति जो उनके आलीशान घर में घोड़ों की मालिश करने आता था, एक बार कह उठा कि मेरे घर कथा कौन कराने आएगा, मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ। नवनीत जैसे हृदय वाले पूज्यवर उसके घर जा पहुँचे एवं कथा पूरे विधान से कर पूजा की, उसको स्वच्छता का पाठ सिखाया, जबकि सारा गाँव उनके विरोध में बोल रहा था।

किशोरावस्था में ही समाज सुधार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ उनने चलाना आरम्भ कर दी थीं। औपचारिक शिक्षा स्वल्प ही पायी थी किंतु, उन्हें इसके बाद आवश्यकता भी नहीं थी क्योंकि जो जन्मजात प्रतिभासम्पन्न हो वह औपचारिक पाठ्यक्रम तक सीमित कैसे रह सकता है। हाट-बाजारों में जाकर स्वास्थ्य-शिक्षा प्रधान परिपत्र बाँटना, पशुधन को कैसे सुरक्षित रखें तथा स्वावलम्बी कैसे बनें, इसके छोटे-छोटे पैम्फलेट्स लिखने, हाथ की प्रेस से छपवाने के लिए उन्हें किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। वे चाहते थे, जनमानस आत्मावलम्बी बने, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान उसका जागे, इसलिए गाँव में जन्मे इस लाल ने नारी शक्ति व बेरोजगार युवाओं के लिए गाँव में ही एक बुनताघर स्थापित किया व उसके द्वारा हाथ से कैसे कपड़ा बुना जाय अपने पैरों पर कैसे खड़ा हुआ जाय यह सिखाया।

पंद्रह वर्ष की आयु में वसंत पंचमी की वेला में सन् १९२६ में उनके घर की पूजास्थली में, जो उनकी नियमित उपासना का तब से आगार थी, जबसे महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी ने उन्हें काशी में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी, उनकी गुरुसत्ता का आगमन हुआ अदृश्य छायाधारी सूक्ष्म रूप में। उनने प्रज्ज्वलित दीपक की लौ में से स्वयं को प्रकट कर उन्हें उनके द्वारा विगत कई जन्मों में सम्पन्न क्रिया-कलापों का दिग्दर्शन कराया तथा उन्हें बताया कि वे दुर्गम हिमालय से आये हैं एवं उनसे अनेकानेक ऐसे क्रियाकलाप कराना चाहते हैं, जो अवतारी स्तर की ऋषिसत्ताएँ उनसे अपेक्षा रखती हैं। चार बार कुछ दिन से लेकर एक साल तक की अवधि तक हिमालय आकर रहने, कठोर तप करने का भी उनने संदेश दिया एवं उन्हें तीन संदेश दिए- १. गायत्री महाशक्ति के चौबीस-चौबीस लक्ष्य के चौबीस महापुरश्चरण जिन्हें आहार के कठोर तप के साथ पूरा करना था। २. अखण्ड घृतदीप की स्थापना एवं जन-जन तक इसके प्रकाश को फैलाने के लिए समय आने पर ज्ञानयज्ञ अभियान चलाना, जो बाद में अखण्ड ज्योति पत्रिका के १९३८ में प्रथम प्रकाशन से लेकर विचार-क्रान्ति अभियान के विश्वव्यापी होने के रूप में प्रकटा तथा ३. चौबीस महापुरश्चरणों के दौरान युगधर्म का निर्बाह करते हुए राष्ट्र के निमित्त भी स्वयं को खपाना, हिमालय यात्रा भी करना तथा उनके संपर्क से आगे का मार्गदर्शन लेना।

यह कहा जा सकता है कि युग निर्माण मिशन, गायत्री परिवार, प्रज्ञा अभियान, पूज्य गुरुदेव जो सभी एक-दूसरे के पर्याय हैं, की जीवन यात्रा का यह एक महत्त्वपूर्ण मोड़ था, जिसमें भावी रीति-नीति का निर्धारण कर दिया। पूज्य गुरुदेव अपनी पुस्तक 'हमारी वसीयत और विरासत' में लिखते हैं कि- ''प्रथम मिलन के दिन समर्पण सम्पन्न हुआ। दो बातें गुरुसत्ता द्वारा विशेष रूप से कही गईं- संसारी लोग क्या करते हैं और क्या कहते हैं, उसकी ओर से मुँह मोड़कर निर्धारित लक्ष्य की ओर एकाकी साहस के बलबूते चलते रहना एवं दूसरा यह कि अपने को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने की तपश्चर्या में जुट जाना- जौ की रोटी व छाछ पर निर्वाह कर आत्मानुशासन सीखना। इसी से वह सामर्थ्य विकसित होगी जो विशुद्धतः परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित होगी। वसंत पर्व का यह दिन गुरु अनुशासन का अवधारण ही हमारे लिए नया जन्म बन गया। सद्गुरु की प्राप्ति हमारे जीवन का अनन्य एवं परम सौभाग्य रहा।''

राष्ट्र के परावलम्बी होने की पीड़ा भी उन्हें उतनी ही सताती थी जितनी कि गुरुसत्ता के आदेशानुसार तपकर सिद्धियों के उपार्जन की ललक उनके मन में थी। उनके इस असमंजस को गुरुसत्ता ने ताड़कर परावाणी से उनका मार्गदर्शन किया कि युगधर्म की महत्ता व समय की पुकार देख-सुनकर तुम्हें अन्य आवश्यक कार्यों को छोड़कर अग्निकाण्ड में पानी लेकर दौड़ पड़ने की तरह आवश्यक कार्य भी करने पड़ सकते हैं। इसमें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के नाते संघर्ष करने का भी संकेत था। १९२७ से १९३३ तक का समय उनका एक सक्रिय स्वयं सेवक-स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बीता, जिसमें घरवालों के विरोध के बावजूद

पैदल लम्बा रास्ता पार कर वे आगरा के उस शिविर में पहुँचे, जहाँ शिक्षण दिया जा रहा था, अनेकानेक मित्रों-सखाओं-मार्गदर्शकों के साथ भूमिगत हो कार्य करते रहे तथा समय आने पर जेल भी गये। छह-छह माह की उन्हें कई बार जेल हुई। जेल में भी वे जेल के निरक्षर साथियों को शिक्षण देकर व स्वयं अँग्रेजी सीखकर लौटे। आसनसोल जेल में वे श्री जवाहरलाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्री रफी अहमद किदवई, महामना मदनमोहन मालवीय जी, देवदास गाँधी जैसी हस्तियों के साथ रहे व वहाँ से एक मूलमंत्र सीखा जो मालवीय जी ने दिया था कि जन-जन की साझेदारी बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति के अंशदान से, मुट्ठी फण्ड से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाना। यही मंत्र आगे चलकर एक घण्टा समयदान, बीस पैसा नित्य या एक दिन की आय एक माह में तथा एक मुट्ठी अन्न रोज डालने के माध्यम से धर्मघट की स्थापना का स्वरूप लेकर लाखों-करोड़ों की भागीदारी वाला गायत्री परिवार बनाता चला गया, जिसका आधार था प्रत्येक व्यक्ति की यज्ञीय भावना का उसमें समावेश।

स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान कुछ उग्र दौर भी आये, जिनमें शहीद भगतसिंह को फाँसी दिये जाने पर फैले जनआक्रोश के समय श्री अरविन्द के किशोर काल की क्रान्तिकारी स्थिति की तरह उनने भी वे कार्य किये, जिनसे आक्रान्ता शासकों के प्रति असहयोग जाहिर होता था। नमक आन्दोलन के दौरान वे आततायी शासकों के समक्ष झुके नहीं, वे मारते रहे परन्तु, समाधि स्थिति को प्राप्त राष्ट्र देवता के पुजारी को बेहोश होना स्वीकृत था पर आन्दोलन से पीठ दिखाकर भागना नहीं। बाद में फिरंगी सिपाहियों के जाने पर लोग उठाकर घर लेकर आये। जरारा आन्दोलन के दौरान उनने झण्डा छोड़ा नहीं जबकि, फिरंगी उन्हें पीटते रहे, झण्डा झीनने का प्रयास करते रहे। उनने मुँह से झण्डा पकड़ लिया, गिर पड़े, बेहोश हो गये पर झण्डे का टुकड़ा चिकित्सकों द्वारा दाँतों में भींचे गये टुकड़े के रूप में जब निकाला गया तब सब उनकी सहनशक्ति देखकर आश्चर्यचकित रह गये। उन्हें तब से ही आजादी के मतवाले उन्मत्त श्रीराम मत्त नाम मिला। अभी भी आगरा में उनके साथ रहे या उनसे कुछ सीख लिए अगणित व्यक्ति उन्हें मत्तजी नाम से ही जानते हैं। लगानबन्दी के आँकड़े एकत्र करने के लिए उनने पूरे आगरा जिले का दौरा किया व उनके द्वारा प्रस्तुत वे आँकड़े तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के मुख्यमंत्री श्रीगोविन्द वल्लभ पंत द्वारा गाँधीजी के समक्ष पेश किये गये। बापू ने अपनी प्रशस्ति के साथ वे प्रामाणिक आँकड़े ब्रिटिश पार्लियामेण्ट भेजे, इसी आधार पर पूरे संयुक्त प्रान्त के लगान माफी के आदेश प्रसारित हुए। कभी जिनने अपनी इस लड़ाई के बदले कुछ न चाहा उन्हें सरकार ने अपना प्रतिनिधि भेजकर पचास वर्ष बाद ताम्रपत्र देकर शांतिकुंज में सम्मानित किया। उसी सम्मान व स्वाभिमान के साथ सारी सुविधाएँ व पेंशन उनने प्रधानमंत्री राहत फण्ड के नाम समर्पित कर दीं। वैरागी जीवन का सच्चे राष्ट्र संत होने का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है?

१९३५ के बाद उनके जीवन का नया दौर शुरू हुआ, जब गुरुसत्ता की प्रेरणा से वे श्री अरविन्द से मिलने पाण्डिचेरी, गुरुदेव ऋषिवर रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलने शांति निकेतन तथा बापू से मिलने साबरमती आश्रम, अहमदाबाद गये। सांस्कृतिक, आध्यात्मिक मोर्चे पर राष्ट्र को कैसे परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त किया जाय, यह निर्देश लेकर अपना अनुष्ठान यथावत् चलाते हुए उनने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया, जब आगरा में 'सैनिक' समाचार पत्र के कार्यवाहक संपादक के रूप में श्रीकृष्णदत्तपालीवाल जी ने उन्हें अपना सहायक बनाया। बाबू गुलाब राय व पालीवाल जी से सीख लेते हुए सतत स्वाध्यायरत रहकर उनने अखण्ड ज्योति नामक पत्रिका का पहला अंक १९३८ की वसंत पंचमी पर प्रकाशित किया। प्रयास पहला था, जानकारियाँ कम थीं अतः पुनः सारी तैयारी के साथ विधिवत् १९४० की जनवरी से उनने परिजनों के नाम पाती के साथ अपने हाथ से बने कागज से बने कागज पर पैर से चलने वाली मशीन से छापकर 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका का शुभारंभ किया जो पहले तो दो सौ पचास पत्रिका के रूप में निकली, किन्तु क्रमशः उनके अध्यवसाय घर- घर पहुँचाने, मित्रों तक पहुँचाने वाले उनके हृदयस्पर्शी पत्रों द्वारा बढ़ती-बढ़ती नवयुग के मत्स्यावतार की तरह आज दस लाख से भी अधिक संख्या में विभिन्न भाषाओं में छपती व एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती है।

पत्रिका के साथ-साथ 'मैं क्या हूँ' जैसी पुस्तकों का लेखन आरम्भ हुआ। स्थान बदला, आगरा से मथुरा आग गये, दो-तीन घर बदलकर घीयामण्डी में जहाँ आज अखण्ड ज्योति संस्थान है, आ बसे। पुस्तकों

का प्रकाशन व कठोर तपश्चर्या, ममत्व विस्तार तथा पत्रों द्वारा जन-जन के अंत:स्थल को छूने की प्रक्रिया चालू रही। साथ देने आ गयीं परमवंदनीया माताजी भगवती देवी शर्मा, जिन्हें भविष्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अपने आराध्य इष्ट गुरु के लिए निभानी थी। उनके मर्मस्पर्शी पत्रों ने, भाव भरे आतिथ्य, हर किसी को जो दु:खी था- पीड़ित था, दिये गये ममत्व भरे परामर्श ने गायत्री परिवार का आधार खड़ा किया, इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि विचारक्रांति में साहित्य ने मनोभूमि बनायी तो भावात्मक क्रान्ति में ऋषियुगल के असीम स्नेह ने ब्राह्मणत्व भरे जीवन ने शेष बची भूमिका निभायी।

'अखण्ड ज्योति' पत्रिका लोगों के मनों को प्रभावित करती रही, इसमें प्रकाशित 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ से लोगों को गायत्री व यज्ञमय जीवन जीने का संदेश मिलता रहा, साथ ही एक आना से लेकर छह आना सीरज की अनेकानेक लोकोपयोगी पुस्तकें छपती चली गयीं। इस बीच हिमालय के बुलावे भी आये, अनुष्ठान भी चलता रहा जो पूरे विधि-विधान के साथ १९५३ में गायत्री तपोभूमि की स्थापना, १०८ कुण्डी यज्ञ व उनके द्वारा दी गयी प्रथम दीक्षा के साथ समाप्त हुआ। गायत्री तपोभूमि की स्थापना के निमित्त धन की आवश्यकता पड़ी तो परमवंदनीया माताजी ने जिनने हर कदम पर अपने आराध्य का साथ निभाया, अपने सारे जेवर बेच दिये, पूज्यवर ने जमींदारी के बाण्ड बेच दिये एवं जमीन लेकर अस्थायी स्थापना कर दी गयी। धीरे-धीरे उदारचेताओं के माध्यम से गायत्री तपोभूमि एक साधना पीठ बन गयी। २४०० तीर्थों के जल व रज की स्थापना वहाँ की गयी, २४०० करोड़ गायत्री मंत्र लेखन वहाँ स्थापित हुआ, अखण्ड अग्नि हिमालय के एक अति पवित्र स्थान से लाकर स्थापित की गयी जो अभी तक वहाँ यज्ञशाला में जल रही है। १९४१ से १९७१ तक का समय परमपूज्य गुरुदेव का गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान में सक्रिय रहने का समय है। १९५६ में नरमेध यज्ञ, १९५७ में सहस्रकुण्डी यज्ञ करके लाखों गायत्री साधकों को एकत्र कर उनने गायत्री परिवार का बीजारोपण कर दिया। कार्त्तिक पूर्णिमा १९५८ में आयोजित इस कार्यक्रम में दस लाख व्यक्तियों ने भाग लिया, इन्हीं के माध्यम से देशभर में प्रगतिशील गायत्री परिवार की दस हजार से अधिक शाखाएँ स्थापित हो गयीं। संगठन का अधिकाधिक कार्यभार पूज्यवर परमवंदनीया माताजी पर सौंपते चले गये एवम् १९५९ में पत्रिका का संपादन उन्हें देकर पौने दो वर्ष के लिए हिमालय चले गये, जहाँ उन्हें गुरुसत्ता से मार्गदर्शन लेना था, तपोवन नंदनवन में ऋषियों से साक्षात्कार करना था तथा गंगोत्री में रहकर आर्ष ग्रन्थों का भाष्य करना था। तब तक वे गायत्री महाविद्या पर विश्वकोश स्तर की रचना गायत्री महाविज्ञान के तीन खण्ड लिख चुके थे, जिसके अब तक प्राय: पैंतीस संस्करण छप चुके हैं। हिमालय से लौटते ही उनने महत्वपूर्ण निधि के रूप में वेद, उपनिषद्, स्मृति, आरण्यक, ब्राह्मण, योगवाशिष्ठ, मंत्र महाविज्ञान, तंत्र महाविज्ञान जैसे ग्रन्थों को प्रकाशित कर देव संस्कृति की मूलथाती को पुनर्जीवन दिया। परमवंदनीया माताजी ने उन्हीं वेदों को पूज्यवर की इच्छानुसार १९९१-९२ में विज्ञानसम्मत आधार देकर पुनर्मुद्रित कराया एवं वे आज घर-घर में स्थापित हैं।

युग निर्माण योजना व 'युग निर्माण सत्संकल्प' के रूप में मिशन का घोषणा पत्र १९६३ में प्रकाशित हुआ। तपोभूमि एक विश्वविद्यालय का रूप लेती चली गयी तथा अखण्ड ज्योति संस्थान एक तप-पूत की निवास स्थली बन गया, जहाँ रहकर उनने अपनी शेष तप साधना पूरी की थी, जहाँ से गायत्री परिवार का बीज डाला गया था। तपोभूमि में विभिन्न शिविरों का आयोजन किया जाता रहा, पूज्यवर स्वयं छोटे-बड़े जन सम्मेलनों के द्वारा विचार क्रान्ति की पृष्ठभूमि बनाते रहे, पूरे देश में १९७०-७१ में पाँच १००८ कुण्डी यज्ञ आयोजित हुए। स्थायी रूप से विदाई लेते हुए एक विराट सम्मेलन (जून १९७१) में परिजनों को विशेष कार्य-भार सौंप परमवंदनीया माताजी को शांतिकुंज, हरिद्वार में अखण्ड दीप के समक्ष तप हेतु छोड़कर स्वयं हिमालय चले गये। एक वर्ष बाद वे गुरुसत्ता का संदेश लेकर लौटे एवं अपनी आगामी बीस वर्ष की क्रिया-पद्धति बतायी। ऋषि परम्परा का बीजारोपण, प्राण प्रत्यावर्तन, संजीवनी व कल्प साधना सत्रों का मार्गदर्शन जैसे कार्य उनने शांतिकुंज में सम्पन्न किये।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापना अपनी हिमालय की इस यात्रा से लौटने के बाद ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की थी, जहाँ विज्ञान और अध्यात्म के समन्वयात्मक प्रतिपादनों पर शोध कर एक नये धर्म वैज्ञानिक धर्म के मूलभूत आधार रखे जाने थे। इस सम्बन्ध में पूज्यवर ने विराट परिमाण में साहित्य लिखा, अदृश्य जगत के

अनुसंधान से लेकर मानव की प्रसुप्त क्षमता के जागरण तक, साधना से सिद्धि एवं दर्शन-विज्ञान के तर्क, तथ्य, प्रमाण के आधार पर प्रस्तुतीकरण तक। इसके लिए एक विराट ग्रन्थागार बना व एक सुसज्जित प्रयोगशाला। वनौषधि उद्यान भी लगाया गया तथा जड़ी-बूटी, यज्ञ विज्ञान तथा मंत्र शक्ति पर प्रयोग हेतु साधकों पर परीक्षण प्रचुर परिमाण में किये गये। निष्कर्षों ने प्रमाणित किया कि ध्यान साधना, मंत्र चिकित्सा व यज्ञोपैथी एक विज्ञानसम्मत विधा है। गायत्री नगर क्रमशः एक तीर्थ, संजीवनी विद्या के प्रशिक्षण का, एकेडमी का रूप लेता चला गया एवं जहाँ ९-९ दिन के साधना प्रधान, एक-एक माह के कार्यकर्त्ता निर्माण हेतु युगशिल्पी सत्र सम्पन्न होने लगे।

कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ। स्थान-स्थान पर शक्तिपीठें विनिर्मित हुईं, जिनके निर्धारित क्रियाकलाप थे- सुसंस्कारिता व आस्तिकता संवर्धन एवं जन-जाग्रति के केन्द्र बनना। ऐसे केन्द्र जो १९८० में बनना आरंभ हुए थे, प्रज्ञासंस्थान, शक्तिपीठ, प्रज्ञामण्डल, स्वाध्याय-मण्डल के रूप में पूरे देश व विश्व में फैलते चले गये। ७६ देशों में गायत्री परिवार की शाखाएँ फैल गयीं, ४६०० से अधिक भारत में निज के भवन वाले संस्थान विनिर्मित हो गये, वातावरण गायत्रीमय होता चला गया।

परमपूज्य गुरुदेव ने सूक्ष्मीकरण में प्रवेश कर १९८५ में ही पाँच वर्ष के अंदर अपने सारे क्रिया-कलापों को समेटने की घोषणा कर दी। इस बीच कठोर तपसाधना कर मिलना-जुलना कम कर दिया तथा क्रमशः क्रिया-कलाप परमवंदनीया माताजी को सौंप दिये। राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों, विराट दीप यज्ञों के रूप में नूतन विधा को जन-जन को सौंप कर राष्ट्र देवता की कुण्डलिनी जगाने हेतु उनने अपने स्थूल शरीर छोड़ने व सूक्ष्म में समाने की, विराट से विराटतम होने की घोषणा कर गायत्री जयन्ती २ जून, १९९० को महाप्रयाण किया। सारी शक्ति वे परमवंदनीया माताजी के दे गये व अपने व माताजी के बाद संघशक्ति की प्रतीक लाल मशाल को ही इष्ट-आराध्य मानने का आदेश देकर ब्रह्मबीज से विकसित ब्रह्मकमल की सुवास को देवसंस्कृति दिग्विजय अभियान के रूप में आरंभ करने का माताजी को निर्देश दे गये।

एक विराट श्रद्धांजलि समारोह व शपथ समारोह जो हरिद्वार में सम्पन्न हुए, में लाखों व्यक्तियों ने अपना समय समाज के नवनिर्माण, मनुष्य में देवत्व के उदय व धरती पर स्वर्ग लाने का गुरुसत्ता का नारा साकार करने के निमित्त देने की घोषणा की। परमवंदनीया माताजी द्वारा भारतीय-संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने, गायत्री रूपी संजीवनी घर-घर पहुँचाने के लिए पूज्यवर द्वारा आरम्भ किये गये युग संधि महापुरश्चरण की प्रथम व द्वितीय पूर्णाहुति तक विराट अश्वमेध महायज्ञों की घोषणा की गयी। वातावरण के परिशोधन, सूक्ष्मजगत् के नवनिर्माण एवं सांस्कृतिक व वैचारिक क्रान्ति ने सारी विश्ववसुधा को गायत्री व यज्ञमय, वासंती उल्लास से भर दिया। स्वयं परमवंदनीया माताजी ने अपनी पूर्व घोषणानुसार चार वर्ष तक परिजनों का मार्गदर्शन कर सोलह यज्ञों का संचालन स्थूल शरीर से किया व फिर भाद्रपद पूर्णिमा १९ सितम्बर, १९९४ महालय श्राद्धारंभ वाली पुण्य वेला में अपने आराध्य के साथ एकाकार हो गयीं। उनके महाप्रयाण के बाद, दोनों ही सत्ताओं के सूक्ष्म में एकाकार होने के बाद मिशन की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ती चली गयीं एवं जयपुर के प्रथम अश्वमेध यज्ञ (नवम्बर ९२) से छब्बीसवें अश्वमेध यज्ञ शिकागो (यू. एस ए. जुलाई ९५) तक प्रज्ञावतार का प्रत्यक्ष रूप सबको दीखने लगा है।

गुरुसत्ता के आदेशानुसार सतयुग के आगमन तक १०८ महायज्ञ देवसंस्कृति को विश्वव्यापी बनाने हेतु सम्पन्न होने हैं। युग संधि महापुरश्चरण की अंतिम पूर्णाहुति उसी के बाद होगी। प्रथम पूर्णाहुति नवम्बर १९९४ में कार्त्तिक पूर्णिमा के अवसर पर युगपुरुष पूज्यवर की जन्मभूमि आँवलखेड़ा में मनायी गई। उनके द्वारा लिखे गये समग्र साहित्य के वाङ्मय का जो एक सौ आठ खण्डों में फैला है, विमोचन भी यहीं सम्पन्न हुआ। विनम्रता एवं ब्राह्मणत्व की कसौटी पर खरे उतरने वाले वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र ही उनके उत्तराधिकारी कहे जाएँगे, यह गुरुसत्ता का उद्घोष था एवं इस क्षेत्र में बढ़-चढ़कर आदर्शवादी प्रतिस्पर्धा करने वाले अनेकानेक परिजन अब उनके स्वप्नों को साकार करने आगे आ रहे हैं। 'हम बदलेंगे-युग बदलेगा' का उद्घोष दिग-दिगन्त तक फैल रहा है एवं इक्कीसवीं सदी उज्ज्वल भविष्य, सतयुग की वापसी का स्वप्न साकार होता चला जा रहा है, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है। ❑❑❑

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भूमिका

प्रजातंत्र की एक सशक्त इकाई के रूप में परिवार संस्था को माना गया है। व्यक्ति और समाज की मध्यवर्ती महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में परिवार का नाम लिया जाता है। व्यक्ति को उठाने-गिराने में पारिवारिक वातावरण का जितना प्रभाव पड़ता है, उतना अन्य समस्त साथियों एवं माध्यमों के संयुक्त साधनों का कदाचित् ही पड़ता है। सुसंस्कृत परिजनों के बीच मनुष्य गरीबी में भी जीवनयापन कर सकता है; परन्तु गृह-कलह के बीच तो सम्पन्नता भी नीरस और असह्य हो जाती है। भारतीय संस्कृति की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है कि इसमें परिवार संस्था को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता रहा है। परिवार निर्माण की, समाज के नवनिर्माण एवं राष्ट्रोत्थान की सदा से आवश्यकता समझी जाती रही है। समाज के विकास के लिए उसके मेरुदण्ड परिवार के समग्र निर्माण को अपने कार्यक्रम में प्रधानता देने के कारण ही हमारे ऋषिगण परिवार संस्था को एक आदर्श इकाई बनाकर हमें धरोहर के रूप में दे गये। श्रेष्ठ व्यक्तित्वों के समाज रूपी उद्यान में सुगन्धित पुष्पों के समान खिलने के लिए परिवार ही नन्दन वन की भूमिका निभाता है। परमपूज्य गुरुदेव ने जीवनभर एक ही बात पर जोर दिया कि समाज में श्रेष्ठ सद्गृहस्थ अधिक से अधिक संख्या में विकसित हों, ताकि सुसंततियाँ जन्म लें और सतयुगी समाज की पृष्ठभूमि बन सके।

वर्तमान युग में विश्व अनेकानेक स्तर की समस्याओं, विपत्तियों एवं विभीषिकाओं से घिरा हुआ है। साधन सम्पन्न एवं बुद्धिमान कहे जाने वाले मानव को आज उद्विग्न एवं आशंकित बनाये रखने वाली विपन्नताओं की बाढ़-सी आ गई है। गहराई से विचार करते हैं, तो यही निष्कर्ष निकलता है कि चिन्तन व चरित्र की दृष्टि से सड़े-गले परिवार अपने कुसंस्कारों की कीचड़ से जिन जहरीले कृमि-कीटकों को जन्म देते हैं, वे ही जनमानस को विकृत करके रख देते हैं। परमपूज्य गुरुदेव युगऋषि के रूप में हम सबके कर्त्तव्यों को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि आज का एकमात्र युगधर्म यही है कि परिवार संस्था की पावनता एवं प्रगतिशीलता में आये अवरोधों को हम सब मिल-जुलकर दूर करें।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, उसका निर्वाह एकाकी नहीं हो सकता। सहकारिता की इस सत्प्रवृत्ति का सर्वप्रथम शिक्षण परिवार संस्था में ही मिलता है। जितना शरीर का ध्यान रखा जाता है उससे कहीं अधिक परिवार की सुरक्षा एवं प्रगति का ध्यान रखा जाना चाहिए। यदि परिवार संस्था को सद्गुणों की प्रयोगशाला, पाठशाला, फैक्ट्री अथवा नर्सरी मानकर चला जाय और इसके लिए 'एक आँख प्यार की-दूसरी सुधार की' वाली अपनाई जाय, तो यह समाज की सबसे सच्ची सेवा कही जाएगी। परिवार के प्रति यदि सच्ची आत्मीयता, शुभेच्छा, सद्भावना किसी के मन में है तो उसे क्रियान्वित करने का एकमात्र मार्ग यही है कि परिवार के सदस्यों को सद्गुणी, सज्जन, प्रतिभावान एवं सुसंस्कृत बनाया जाय।

परमपूज्य गुरुदेव व्यक्ति निर्माण के साथ-साथ परिवार निर्माण के पंचशीलों की भी चर्चा करते हैं और बताते हैं कि श्रमशीलता, सुव्यवस्था, मितव्ययता, शालीनता और सहकारी उदारता रूपी पंचशीलों की आदत यदि घर-परिवारों में डाली जा सके और इसका बीजारोपण परिवारों में किया जा सके, तो इस पुण्य प्रयास के सत्परिणाम हाथों-हाथ देखने को मिल सकते हैं। परिवार व्यक्ति की ही नहीं, समाज के नवनिर्माण की एक कार्यशैली है। यदि सुसंस्कारिता के विभिन्न प्रयोगों को अनवरत जारी रखा जाय तो कोई कारण नहीं कि हम धरती पर स्वर्ग जैसा वातावरण न बना सकें।

वाङ्मय के इस खण्ड में परमपूज्य गुरुदेव संयुक्त परिवार को सौभाग्य एवं समुन्नति का द्वार बताते हैं। उनके अनुसार सम्मिलित कुटुम्ब के, लार्जर फैमिली के, वृहत्तर परिवारों के प्रयोगों के द्वार ही व्यक्ति सामाजिकता का अभ्यास अपने जीवन में करता है। आज परिवार टूटते चले जा रहे हैं। परिवार का हर घटक अपना अलग बसेरा करने की योजना बनाकर संयुक्त कुटुम्ब को तोड़ता दिखाई पड़ता है। सहकारिता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

के साथ बुजुर्गों का मार्गदर्शन प्राप्त करते हुए रहने का एकमात्र उदाहरण संयुक्त परिवारों में ही देखने को मिल पाता है। इस तंत्र को तोड़कर आज हर व्यक्ति एकाकीपन की ओर, अपने स्वयं की सुख-सुविधा, साधनों की बढ़ोत्तरी की ओर उन्मुख होता दिखाई देता है। यह एकाकीपन अन्ततः तनाव एवं कलह का कारण बनता है। संयुक्त परिवारों को पुनः स्थापित करने के लिए एक विराट् व्यापक आन्दोलन चलाने की आवश्यकता बताते हुए परमपूज्य गुरुदेव लिखते हैं कि 'इन्हें थोपा न जाय, बल्कि हँसी-खुशी से मिल-जुलकर रहने जैसा वातावरण विनिर्मित कर एक प्रयोग के रूप में जीने का प्रयास किया जाय।'

आज सारे विश्व में पारिवारिक मूल्यों के विघटित होते चले जाने, नैतिक मूल्य गिरते चले जाने, कुसंस्कारी सन्तानों, जिनके पिता का नाम तक किसी को ज्ञात नहीं है, के बढ़ते चले जाने का एकमात्र कारण परिवार संस्था का विशृंखलन है। टूटता परिवार, बिखरता दाम्पत्य, अवरुद्ध बाल विकास अन्ततः सारी अशान्ति का और सामाजिक विग्रह का कारण बनता है। इस तंत्र को सुव्यवस्थित बनाये रखने हेतु इस खण्ड में जो मार्गदर्शन दिया गया है वह हर भारतीय ही नहीं, सभी राष्ट्रों के परिवारों के लिए पढ़ने एवं हृदयंगम करने योग्य है।

-ब्रह्मवर्चस

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
अध्याय-१	
पारिवारिकता की आवश्यकता क्यों?	१.१
समाज देवता का अनुपम उपहार-परिवार	१.१
परिवार की आवश्यकता और महत्ता	१.२
परिवार का दर्शन	१.५
परिवार संस्था और उसका महत्त्व	१.७
परिवार का आदर्श और विकास	१.८
परिवार भी एक शरीर ही है	१.१०
पारिवारिकता अपनाने में ही मनुष्य का कल्याण	१.१३
परिवार की महिमा और गरिमा बनाए रखें	१.१६
हमारा परिवार तथा भिन्न-भिन्न सम्बन्ध	१.१८
पारिवारिक सहकारिता की भावभूमि	१.२१
पारिवारिक पंचशील सिद्धान्त	१.२२
पारिवारिक पंचशीलों का परिपालन	१.२४
पाँच शील-पाँच कर्त्तव्य, श्रमशीलता एक सत्प्रवृत्ति	१.२७
सादगी, संयम और मितव्ययिता	१.३०
शिष्टता की उपयोगी रीति-नीति	१.३२
शिष्टाचार की पाठशाला-परिवार	१.३५
सुव्यवस्था-एक रचनात्मक प्रवृत्ति	१.३६
उदार सहकारिता	१.३८
पारिवारिक शालीनता के कुछ सुनिश्चित तथ्य	१.४०
शालीनता और सुसंस्कारिता का अभ्यास परिवार की पाठशाला में	१.४१
स्वच्छता एवं सुव्यवस्था परिवार भर को सिखाएँ	१.४३
पंचशीलों को व्यवहार में लाने का एक ही तरीका	१.४७
परिवार को सफल बनाने के लिए सच्ची पारिवारिक भावना जरूरी	१.४७
पारिवारिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह	१.४९
परिवार का सुनियोजन, गठन, उत्कर्ष	१.५१
परिवार एक साधना-तपोवन	१.५३
अपने परिवार को आदर्श बनाएँ	१.५४
हमारी पारिवारिक पाठशाला	१.५५
परिवार को प्रगतिशील बनाने के आधार	१.५८
सुधार विकास की पृष्ठभूमि बने	१.६०
पारिवारिक सुसंस्कारिता को प्रमुखता मिले	१.६२
परिवार को कुसंस्कारी न बनने दिया जाय	१.६५
परिवार को सुसंस्कृत बनाएँ	१.६७
परिवार में सत्प्रवृत्तियों की फसल उगाएँ	१.६९
परिवार योगाभ्यास का सुव्यवस्थित कार्यक्षेत्र	१.७२
आकर्षण और विनोद का माहौल बनाने की आवश्यकता	१.७३
स्वाध्याय परम्परा-पारिवारिक प्रगति का प्राण	१.७४
परिवारों में स्वाध्याय की प्रवृत्ति बढ़े	१.७६
वातावरण का मनुष्य पर प्रभाव	१.७७
परिवार में आस्तिकता का वातावरण	१.७७
परिवार का वातावरण धार्मिक हो	१.८०
परिवार में धार्मिक वातावरण इस प्रकार बनेगा	१.८८
अध्याय-२	
परिवार का पोषण ही नहीं, निर्माण भी	२.१
परिवार का पालन ही नहीं, निर्माण भी करें	२.१
परिवार निर्माण एक अनिवार्य उपयोगी प्रयास	२.२
परिवार निर्माण की उपयोगिता और चेष्टा	२.६
परिवार निर्माण से ही व्यक्ति और समाज का निर्माण सम्भव	२.७
परिवार निर्माण के स्वर्णिम सूत्र	२.११
परिजनों के सुधार की पूर्ण प्रक्रिया	२.१२
परिवार और हमारे कर्त्तव्य	२.१५
परिवारों को इस दुर्गति से उबारा जाय	२.१७
प्यार भी सुधार भी	२.१८
सुधार-परिवर्तन की सरल प्रक्रिया	२.१९
परिवार को सम्पन्न ही नहीं, सुसंस्कृत भी बनाएँ	२.२१

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

विषय	पृष्ठ
पारिवारिक वातावरण उत्कृष्ट और प्रगतिशील बने	२.२३
परिवार में स्वर्गीय वातावरण कैसे बने?	२.२४
उच्चतर संस्कारों का सृजन करें	२.३१
कथा माध्यम से परामर्श दें	२.३४
परिवार निर्माण में कथा-पुराणों का योगदान	२.३६
परिवार निर्माण की सुखद सम्भावनाएँ	२.३८
परिवार निर्माण के लिए मानसिक पोषण भी आवश्यक है	२.४०
परिवार निर्माण का एक महत्वपूर्ण उपकरण	२.४२
परिवार निर्माण की पुण्य प्रक्रिया	२.४४
परिवार निर्माण की सर्वतोमुखी सुखद सम्भावनाएँ	२.४५
हमारे परिवार स्वस्थ परम्पराओं के केन्द्र बनें	२.४७
दिशा बिगड़ने न दी जाय	२.४९
उत्कर्ष की दिशा में बढ़ चलें	२.५३
परिवार को सुसंस्कृत बनाया जाय	२.५७
परिवार को सुसंस्कारी कैसे बनाएँ	२.५९
परिवार निर्माण की धुरी-नारी	२.६१
परिवार संस्था का पुनर्गठन हो	२.६३
अपने परिवारों का पुनर्निमाण आरम्भ करें	२.६५
परिवार निर्माण में कथा-प्रसंगों का महत्व	२.६७
परिवार के साथ आत्म-निर्माण का दुहरा लाभ	२.६८
परिवार निर्माण की परोक्ष पृष्ठभूमि	२.७०
परिवार की दार्शनिक पृष्ठभूमि	२.७३
व्यक्ति और समाज का उत्कर्ष परिवार निर्माण से	२.७५
परिवार में सहयोग एवं सद्भावना की आवश्यकता	२.७८
भावनात्मक एकरूपता	२.७८
अभिभावक एवं संतान	२.८१
बड़ों के आदेश और उनका सम्मान	२.८५
भाई-भाई, भाई-बहिन	२.८८
आदर्श सहेली-ननद, भाभी	२.९३
देवरानी, जेठानी की आत्मीयता	२.९६
बेटी और बहू में अन्तर न रहे	२.९९

विषय	पृष्ठ
आतिथ्य धर्म के आधार	२.१०३
परिवार जागरण की प्रक्रिया और उसकी महान सम्भावनाएँ	२.१०५
व्यक्ति, परिवार और समाज निर्माण के लिए त्रिविध आयोजन	२.१०७
पथभ्रष्ट परिवार कैसे सुधरें?	२.१०९
बाल-निर्माण में परिवार की भूमिका	२.११२
पारिवारिक आचार-संहिता की आवश्यकता	२.११२
परिवारों में आचार-संहिता का पालन अनिवार्य हो	२.११४
सृजन की सत्प्रवृत्तियों का अगला चरण	२.११५
संगठन के प्रमुख उत्तरदायित्व और उनका निर्वाह	२.११८
अध्याय-३	
संयुक्त परिवार सौभाग्य और समुन्नति का द्वार	**३.१**
संयुक्त परिवार एक आदर्श प्रणाली	३.१
संयुक्त परिवार के आधार और व्यवहार	३.६
संयुक्त परिवार की आधारभूत प्रेरणाएँ	३.१०
पारिवारिकता का अभिनव स्वरूप	३.१२
पारिवारिकता क्यों?	३.१४
पारिवारिकता से जुड़ा असाधारण दायित्व	३.१७
संयुक्त परिवार हर तरह से उपयोगी	३.१९
परिवार अर्थात् सहकारी परिकर	३.२१
परिवारों में सहकारिता का समावेश	३.२३
पारिवारिक प्रजातन्त्र के सुख तथा आनन्द	३.२५
संयुक्त परिवार थोपें नहीं, बनाएँ	३.२६
वृहत्तर परिवारों की संरचना-सामयिक आवश्यकता	३.२८
सहजीवन बनाम संयुक्त परिवार	३.३०
संयुक्त परिवार प्रणाली ही हर दृष्टि से श्रेयस्कर	३.३२
संयुक्त परिवार व्यवस्था को जीवन्त बनाए रखें	३.३४
पारिवारिक अनुशासन व्यवस्था का संचालन यों हो	३.३५
सामंजस्य की रीति-नीति	३.३६

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय	पृष्ठ
व्यावहारिक जीवन की सफलता का मूलाधार	३.३७
पृथकता छोड़ें-सामूहिकता अपनाएँ	३.३९
सम्मिलित हों या अलग हो जाएँ?	३.४०
सम्मिलित रहें, अलग घर बसाने की न सोचें	३.४१
मिल-जुलकर रहें	३.४३
सहजीवन, प्रगति और प्रसन्नता का आधार	३.४५
पारिवारिक संगठन कैसे स्थिर रहें?	३.४७
सम्मिलित परिवार इस तरह चलता है	३.४८
परिवार की आन्तरिक व्यवस्था	३.५०
पारिवारिक जीवन सत्प्रवृत्तियों का साधना क्षेत्र	३.५२
संयुक्त परिवार व्यवस्था की समस्याएँ और समाधान	३.५४
कौटुम्बिक एकता से ही क्लेश-कलह मिटेंगे	३.५६
लार्जर फैमिली विश्व परिवार का एक आदर्श लघु संस्करण	३.५८
अध्याय-४	
परिवार संस्था को विशृंखलित न होने दें	**४.१**
भारतीय संस्कृति की अनमोल धरोहर परिवार संस्था	४.१
परिवार संस्था के विकास के मूलभूत आधार	४.१
परिवार संस्था की उपयोगिता नष्ट न करें	४.३
परिवार एक आदर्श प्रजातन्त्र है	४.४
पारिवारिक जीवन की समस्याएँ	४.६
उपेक्षा ही ने परिवारों का स्तर गिराया है	४.१०
कमाऊ व्यक्ति परिवार के प्रति उपेक्षा न बरतें	४.१२
गृहस्थ की दुर्दशा	४.१४
हमारा पारिवारिक जीवन और गृह-कलह	४.१५
परिवारों में इतने विग्रह और इतने कलह क्यों?	४.१७
पारिवारिक जीवन की अनीति-भेदभाव की नीति	४.१९
परिवार यों न तोड़ें	४.२०
परिवार संस्था को टूटने से रोका जाय	४.२२
इस गुलशन को उजाड़ें नहीं सँवारें	४.२३
पारिवारिक संगठन टूटने न पाएँ	४.२५
परिवार संस्था क्यों टूट रही है?	४.२६
टूटता परिवार-बिखरता दाम्पत्य	४.२७
पारिवारिक परम्पराएँ विघटित न हों	४.२८
हम पारिवारिक संवेदना खो ही देंगे क्या?	४.२९
बिखरते परिवार-बिलखते मासूम	४.३१
वे अनुकरणीय नहीं, दयनीय हैं	४.३३
पारिवारिक भावना की उपेक्षा न की जाये	४.३४
पारिवारिक विघटन से बाल-विकास में अवरोध	४.३६
गृह-कलह, कारण और निवारण	४.३७
परिवार संस्था का संचालन कैसे हो?	४.३९
अनिवार्य उत्तरदायित्व का दोहरा प्रतिफल	४.४०
पारिवारिक दंड-व्यवस्था असहयोग का दर्शन	४.४२
परिवार संस्था का आधार कामुकता नहीं, आत्मीयता	४.४३
उपेक्षा नहीं, सेवा कीजिए	४.४५
सुसंस्कृत परिवार का निर्माण कैसे हो?	४.४६
व्यक्तिगत और सामूहिक प्रयत्नों की विभाजन रेखा	४.४९
परिवार शान्ति और विश्रान्ति का आश्रय स्थल	४.५१
पारिवारिक विवाद-विग्रह से यों बचा जा सकता है	४.५४
परिवार में सुख-सृष्टि यों सम्भव है	४.५७
पारिवारिक सौमनस्य का आधार स्वार्थ-त्याग	४.६३
सर्वांगीण प्रगति का आधार सहकारिता	४.६७
परिवार संस्था का नवनिर्माण नारी जागरण से ही होगा	४.६९
शुभारम्भ इस प्रकार हो	४.७२

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय	पृष्ठ
अध्याय-५	
मितव्ययी बनिए, सुखी रहिए	५.१
अधिक व्यय करने की हानियाँ	५.१
फैशन का पागलपन	५.२
मिथ्या प्रदर्शन और झूठी नामवरी	५.३
हमारी अतृप्ति और असंतोष का कारण	५.५
हमारी आर्थिक कठिनाइयाँ कैसे दूर हों?	५.१०
कर्ज का चक्कर	५.१५
फिजूलखर्ची की मूर्खता	५.१६
यह कीजिए ताकि आपको तंगी न रहे	५.२०
रहन-सहन का स्तर कैसे ऊँचा करें	५.२२
हमारे तीन बड़े खर्चे	५.२३
गृहस्थी में स्वर्ग की सृष्टि	५.२५
परिवार को एक इकाई मानकर चला जाय	५.२८
पारिवारिक सुव्यवस्था	५.३०
घर-परिवार में आर्थिक अनुशासन लागू करें	५.३१
बचत की प्रवृत्ति घर-घर में बढ़े	५.३३
पारिवारिक आय-व्यय	५.३४
देखने में छोटी पर महान्	५.३७
आर्थिक सफलता के मानसिक संकेत	५.३७
परिवार की अर्थव्यवस्था का सन्तुलन	५.३८
पारिवारिक बजट बनाकर खर्च कीजिए	५.४०
अपव्यय रोकें, प्रगतिशील बनें	५.४२
अपव्यय को रोकें, उपार्जन को सम्मान दें	५.४३
मिथ्या आडम्बरों से कोसों दूर	५.४५
आडम्बर-अपव्यय की एक मूर्खतापूर्ण आदत	५.४६
अपव्यय से बचें, मितव्ययिता का आश्रय लें	५.४८
परिवार की अर्थव्यवस्था सन्तुलित रखें	५.४९
अर्थव्यवस्था सदा सन्तुलित रखें	५.५०
हमारे प्रमुख घरेलू उद्योग-धन्धे	५.५२



www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पारिवारिकता की आवश्यकता क्यों ?

समाज देवता का अनुपम उपहार-परिवार

समझा जाता है कि उत्तरदायित्वों से मुक्त रहते हुए यदि एकाकी जीवन व्यतीत किया जाय तो वह परिवार बसाकर, उसकी जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए व्यस्त, परेशान व चिन्तित रहने की अपेक्षा अधिक सुखप्रद होता है । परेशानियाँ और चिंताएँ निश्चित ही मनुष्य को दु:खी बनाती हैं, समस्याओं और कठिनाइयों में उलझा हुआ आदमी निश्चित ही क्षुब्ध व उदास रहता है । लेकिन परेशानी, चिंता, समस्याएँ और कठिनाइयाँ परिवार बसाने के कारण ही उत्पन्न होती हैं । यह सोचना भ्रमपूर्ण है ।

पारिवारिक समस्याओं से परेशान व्यक्ति एकाकी और अविवाहित व्यक्ति को इस तरह की चिन्ताओं से मुक्त देखकर यह सोच सकते हैं कि इससे तो परिवार ही न बसाया जाता तो अच्छा रहता । परिवार बसाने पर घर के अन्य सदस्यों की आवश्यकताएँ पूरी करना, उनकी निर्वाह व्यवस्था जुटाना, रोग-बीमारी में उपचार-चिकित्सा की व्यवस्था करना आदि ऐसी जिम्मेदारियाँ हैं, जिनसे अकेला व्यक्ति मुक्त रहता है । अकेले व्यक्ति को इन चिन्ताओं से मुक्त देखकर ही परिवार को सब चिन्ताओं की जड़ मानने की भूल हो जाती है और पारिवारिक जीवन मात्र निराशापूर्ण, दु:खद अनुभव भर रह जाता है ।

यह निराश दृष्टिकोण ही परिवार को समस्याओं का घर और चिन्ताओं की जड़ बना देता है अन्यथा परिवार कठिनाइयों, दु:खों और समस्याओं का आगार है, उनके कारण व्यक्ति दु:खी, चिन्तित व उदास रहे इसका कोई कारण नहीं है । कठिनाई, समस्या और कष्ट के कारणों की दृष्टि से देखा जाय तो एकाकी जीवन भी उन कारणों से सर्वथा रहित नहीं होता यह बात और है कि एकाकी जीवन की समस्याएँ अलग ढंग की होती हैं, उनका स्वरूप पारिवारिक समस्याओं के स्वरूप से भिन्न होता है परन्तु समस्याओं से मुक्त कोई नहीं है ।

जीवन निर्माणकारी साहित्य के एक लेखक ने एकाकी जीवन को एक अभिशाप बताते हुए लिखा है-''यह अभिशाप अपना भयंकर रूप तब धारण करता है जब व्यक्ति जीवन यात्रा के बिल्कुल मध्यवर्ती पड़ाव पर पहुँच जाता है । उन समय अनुभव होता है कि खाली घर का सूनापन किस कदर उबाऊ हो जाता है । घर में प्रवेश करते ही जब अन्दर से स्वागत करने वाली कोई आवाज नहीं होती तो व्यक्ति अपने को बाहरी दुनिया से निकलने पर, जहाँ अधिकांश सम्बन्ध स्वार्थों के सम्बन्ध होते हैं, अधिकांश रिश्ते केवल औपचारिक होते हैं और वातावरण में बनावटीपन भरा रहता है-ऐसी दुनिया से बाहर आने पर घर की खामोशी व्यक्ति को अपने अकेलेपन का अहसास कराती है । विशेषत: ऐसे व्यक्ति जिन्हें विवाह के बाद यह अकेलापन मिला है वे अनुभव करते हैं कि सूने घर में प्रवेश और पत्नी की मुस्कान के स्वागत का अनुभव करते हुए घर में प्रवेश करने में कितना भारी अन्तर होता है ?''

एकाकी जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप जीवन में सच्चे, आत्मीय और घनिष्ट मित्र का अभाव है । किस पर किस समय क्या बीत रही है, इसकी किसी को चिन्ता नहीं रहती । कोई ऐसा व्यक्ति नहीं दिखाई देता जिसके जीवन में एकाकी व्यक्ति का सर्वोच्च और सबसे महत्वपूर्ण स्थान हो । किसी को इस बात की चिन्ता नहीं रहती कि कोई व्यक्ति स्वस्थ है या बीमार, प्रसन्न है या खिन्न ।

उस स्थिति में आभास होता है कि सच्चे मित्र की आवश्यकता जीवन में कितनी महत्वपूर्ण होती है और वह मित्र भी ऐसा जिसके प्रति अपने अनिवार्य दायित्व, जो अपने प्रति स्वयं को भी उसी प्रकार अनिवार्य दायित्वपूर्ण अनुभव कर सके तथा दोनों परस्पर दायित्वों, कर्त्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन करते रहें ।

एकाकी रहने से जिस स्वतंत्रता की कल्पना की जाती है वह वस्तुत: स्वतंत्र नहीं स्वच्छन्दता होती है, जिसकी भड़क थोड़ी देर बाद ही शांत हो जाती है और फिर बाद में एक रिक्तता, पश्चाताप भर बच रहते हैं । स्वतंत्रता का अर्थ है विवेकपूर्वक जीवन को जीना और प्रगति की सम्भावनाओं को साकार करना जबकि स्वच्छंदता जीवन से विवेक को स्थानच्युत कर उत्तेजना, बहक और भटकाव ही पैदा करती है । माना कि व्यक्ति एकाकी रहते हुए भी प्रस्तुत सम्भावनाओं और परिस्थितियों का विवेकपूर्ण उपयोग कर सकता है । परन्तु एक व्यक्ति की बुद्धि और समझ सीमित तो रहती ही है । एकाकी भी होती है । उस स्थिति में प्रस्तुत सम्भावनाओं का पूरा लाभ नहीं उठाया जा सकता ।

पारिवारिक जीवन में, जीवन-साथी उस मित्र की आवश्यकता को पूरा करता है, जो पूर्णतया निष्पक्ष, निर्दोष और यथासम्भव सही परामर्श देता है । इसलिए कि परिवार में पति-पत्नी के लाभ व हित एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं, उन्हें दोनों का लाभ साथ-साथ दीखता है और वे परस्पर दूसरे पक्ष की भलाई में अपनी भलाई समझते हैं । केवल उत्तरदायित्वों के बोझ से खिन्न होकर पारिवारिक जीवन के प्रति निराश और उदास दृष्टिकोण लिया जाय तो दु:खी व परेशान रहने के अलावा और कोई परिणाम नहीं निकलता ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

आवश्यकता इस बात की है कि परिवार को परमात्मा का अनुग्रह, समाज व्यवस्था का महत्वपूर्ण अनुदान समझ कर उसके प्रति स्वयं को कृतकृत्य अनुभव किया जाय । परिवार के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को निराश मन से नहीं उत्साह के साथ पूरा किया जाय । अग्निदेवता की साक्षी में लिये गये इस व्रत का निष्ठापूर्वक पालन किया जाय कि हम आजीवन एक-दूसरे के अभिन्न मित्र बनकर, सघन सहयोगी बनकर रहेंगे तथा एक दूसरे के प्रसन्न व सुखी रखने की भरपूर चेष्टा करेंगे तो दुःख, बोझ और परेशानियों का छत्ता लगने वाला परिवार सुख, प्रफुल्लता और आनन्द से पूरित स्वर्ग बन सकता है ।

स्मरण रखा जाना चाहिए कि ''आनन्द पाने से अधिक बाँटने में मिलता है ।'' यदि पति-पत्नी यह दृष्टि-कोण अपनाएँ कि हमें अपने जीवन-साथी को सुखी व संतुष्ट रखना है तथा उसके लिए स्वयं असुविधाग्रस्त रहते हुए भी जीवन-साथी के लिए सुविधाएँ जुटाते रहना है तो पारिवारिक जीवन के प्रति आ गयी निराशा को भी दूर हटाया-भगाया जा सकता है । वस्तुतः तो पारिवारिक जीवन में कलह, असंतोष, खिन्नता और उदासी की परिस्थितियाँ उत्पन्न होती भी इसीलिए हैं कि पति-पत्नी अपने साथी के लिए स्वयं की आकांक्षाओं को कुर्बान करने के स्थान पर उन्हें पूरा करने की माँग को प्रधानता देते हैं ।

अपने साथी से की गयी अपेक्षाएँ जब पूरी नहीं होतीं तो स्वभावतः ही उदासी और निराशा उत्पन्न होती है । अपेक्षाएँ पूरी हो जायें तो यह नहीं कहा जा सकता कि सभी आकांक्षा अपेक्षायें पूरी हो जायेंगी । सभी आकांक्षाएँ पूरी होने की स्थिति में भी वह आनन्द नहीं मिलता जो पाने के स्थान पर देने से मिलता है । वह आनन्द अहं की तुष्टि का आनन्द है और देकर प्राप्त किया गया आनन्द प्रेम का, त्याग का आनन्द है । उस आनन्द की नींव कमजोर होती है-क्योंकि उसकी बागडोर दूसरे के हाथ में रहती है । की गयी अपेक्षाएँ, दूसरे पक्ष द्वारा ही तो पूरी होती हैं । जिस समय पूरी नहीं होंगी या पूर्ति में कमी आने लगेगी उसी क्षण असंतोष उपजने लगेगा । प्रेम के आनन्द की बागडोर अपने हाथ में रहती है । किसी से पाना तो अपने हाथ में नहीं है पर बाँट देना तो अपनी मनमर्जी की बात है । जीवन-साथी को अपनी मनमर्जी के अनुसार चलाने की अपेक्षा स्नेह, प्रेम व त्याग द्वारा उसे अपने अनुकूल ढाल लेना अधिक ही सुगम है ।

परिवार को सुख-शांति का आगार बनाने का एक-मात्र स्वर्णिम सूत्र यही है कि उसमें अपनी आकांक्षाओं को पूरा करने के स्थान पर जीवन-साथी के प्रति अपने दायित्वों को तत्परतापूर्वक निबाहने की नीति अपनायी जाय । यह नीति एक ही पक्ष द्वारा अपनायी जाती रहे तो भी परिवार बसाने का उद्देश्य पूरा नहीं होगा, उचित तो यही है कि दोनों पक्ष-पति व पत्नी इस नीति को उदारतापूर्वक अपनाएँ । तब परिवार एक दुःखद अनुभव नहीं रह जायगा । वह परमात्मा का अनुग्रह और समाज का उपहार लगने लगेगा ।

परिवार की आवश्यकता और महत्ता

मनुष्य की उन्नति और विकास के लिए परिवार को एक अनिवार्य, आवश्यकता माना जाता है । मोटी दृष्टि से देखें तो मनुष्य का जन्म ही परिवार के माध्यम से होता है । किन्तु यह तर्क बहुत प्रामाणिक नहीं । अनेक पशु, पक्षियों में परिवार नहीं बनाये जाते, फिर भी उनकी नयी पीढ़ी बनती, बढ़ती रहती है । नर मादा मिलकर अपनी ही जैसी हड्डी, माँस, चमड़ी युक्त एक और आकृति बना लें, यह क्रम तो मनुष्य नाम के प्राणी में भी परिवार बसाये बिना भी चल सकता है । किन्तु मनुष्य जिन गुणों, विशेषताओं के कारण सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी-भगवान का राजकुमार कहा जाता है, उनका विकास करने के लिए तो परिवार की आवश्यकता अनिवार्य रूप से पड़ती है ।

मनुष्य को सामाजिक प्राणी कहा जाता है । समाज में ही उसका समुचित विकास होना तथा सुख-शान्ति की उपलब्धि सम्भव है । मनुष्य के अद्‌भुत विकास के पीछे उसकी सामाजिकता-सहकारिता की प्रवृत्ति ही है । बौद्धिक एवं शारीरिक क्षमताएँ तो अन्य पशुओं में भी पर्याप्त मात्रा में हैं । किन्तु व्यक्तिगत स्तर से आगे बढ़कर सामूहिकता का लाभ उठाना, पीढ़ी दर पीढ़ी एक दूसरे के अनुभव द्वारा अपने ज्ञान को समृद्ध और व्यवस्थित करना मनुष्य के अतिरिक्त और कोई जीव नहीं जानता । सामाजिकता का लाभ मनुष्य ही उठा सका है इसीलिए उसे सामाजिक प्राणी कहा गया है, जबकि समूह में रहने वाले अनेक पशु-पक्षी सामाजिक प्राणी नहीं कहलाते ।

परिवार समाज की एक छोटी इकाई है । जिसके आधार पर मनुष्य स्वयं में सामाजिक गुणों का विकास करके दुर्लभ लाभ प्राप्त करता है ।

इस तथ्य के अनुसार एक महत्वपूर्ण सूत्र उभरकर सामने आता है, वह यह कि परिवार का अर्थ मात्र पति-पत्नी और एकाध बच्चा नहीं । सामाजिक जीवन का अभ्यास तदनुकूल गुणों का विकास उतने मात्र से सम्भव नहीं । उसके लिए तो भारतीय पद्धति के संयुक्त परिवार जिसमें पति-पत्नी एवं बच्चों के अतिरिक्त चाचा, ताऊ, बाबा, दादा, मौसी, बुआ, भतीजे, भतीजियाँ आदि अनेक तरह के अनेक स्तर के व्यक्तियों का समावेश रहता है ।

विदेशों में बड़े परिवारों को बेकार का झंझट समझकर उनकी उपेक्षा करके पति-पत्नी एवं बच्चों के छोटे परिवार बसाने के प्रयोग किए गये हैं । निश्चित रूप से ऐसे परिवारों की रचना व्यक्तिगत मौज-मजे को लक्ष्य करके की जाती है । उसमें भी वे कितनी सफलता पाते हैं यह बात भिन्न है, किन्तु ऐसा करके वे परिवार संस्था के

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मूल उद्देश्य से ही भटक जाते हैं । परिवार संस्था की संरचना का उद्देश्य पशुओं की तरह बच्चे पैदा करना और मौज-मजे में जीवन बिताना नहीं है । यह तो परिवार बनाये बिना भी हो सकता है । अस्तु, यह बात भली प्रकार ध्यान में रखनी चाहिए कि मूलतः परिवार के मूल आधार निकृष्ट स्वार्थपरता तथा इन्द्रिय लिप्सा जैसे ओछे दृष्टिकोण नहीं जीवन में उच्च मूल्यों की स्थापना के उच्च आदर्श ही हैं । सच्चे अर्थों में परिवार संस्था का लाभ उठाना है तो उन उच्च आदर्शों को सदैव ध्यान में रखना ही चाहिए ।

यदि परिवार को मात्र मौज-मजे का साधन मान लिया जाय, तब तो नये-नये अनुसंधानों के कारण पारिवारिकता की आवश्यकता नहीं के बराबर रह जाती है । नयी-नयी वैज्ञानिक उपलब्धियों के फलस्वरूप घर के काम का बोझ हल्का हो गया है । आमोद-प्रमोद के साधन भी अब घर से बाहर ही अधिक मिल पाते हैं । सिनेमाघर, खेल के मैदान, स्टेडियम, क्लब आदि आज मनोरंजन के साधन बन गये हैं । लेकिन इनके कारण परिवारों की आवश्यकता कभी नहीं बढ़ी है । साधन-सुविधाओं से घिरा मनुष्य भावनात्मक दृष्टि से स्वयं को असंतुष्ट अनुभव करता है । उसे सर्वत्र उस आत्मीयता का अभाव ही दिखाई पड़ता है । दिखावटी शिष्टाचारों से उसका मन ऊब गया है, आन्तरिक उल्लास मर गया है । भीतर की इस शुष्कता, ऊब, नीरसता और निरुत्साह का जीवन भर प्रभाव पड़ना अनिवार्य ही है ।

इस ऊब और तनाव से मुक्ति पाने के लिए लोग मित्र-मंडली (फ्रेन्ड-सर्किल) की तलाश में रहते हैं । मित्रों के बीच थोड़ी देर बैठने पर शांति का एहसास होता है । यह सही है कि सच्चे मित्र जीवन के अमूल्य उपहार सिद्ध हो सकते हैं, पर जब जन-जीवन में अपनत्व की क्षमता घटी तो सच्चे मित्र मिलेंगे कहाँ ? जीवन में हताशा, कुण्ठा, नैराश्य की वृद्धि होती जाएगी तो आन्तरिक शांति, उल्लास और प्रसन्नता से रहित मशीन जैसा जीवन जीने वाले लोग चाहने पर भी अपनी संगति से साथी को सन्तोष और प्रसन्नता कदापि नहीं दे सकेंगे ।

सुसंस्कृत परिवार सर्वोत्तम मित्र-मंडली की भूमिका भी खूबी से निबाहता है । दुःख-सुख, उतार-चढ़ाव, व्यथा-विनोद में गहरी सहभागिता की प्रवृत्ति सुसंस्कृत परिवार को एक श्रेष्ठ मित्र-मंडली ही बनाये रखती है । उनमें पारस्परिक हितों का टकराव भी नहीं होता । क्योंकि सभी के हित एक ही होते हैं । बच्चों की मीठी बोली, तोतली बोली माँ का प्राणशक्तिदायक वात्सल्य, भाई-बहिनों का सौन्दर्य-उल्लास, पत्नी का प्रेमपूर्ण समर्पण, पारस्परिक घनिष्ट सहयोग ये सब मित्रमंडली के सभी तत्वों का समुचित स्वरूप ही तो है । छोटे बच्चों का खेलना, बड़े बच्चों का पढ़ना, कहीं कढ़ाई-बुनाई, कहीं संगीत, कहीं अध्ययन, कहीं आगन्तुकों से शिष्ट, मधुर-कुशल वार्तालाप, अनुभवपूर्ण बातें, धर्मचर्चा और प्रेरक कहानियाँ, परिवार द्वारा मनोरंजन, उल्लास और प्रेरणा आदि के वे सभी कार्य अधिक उत्तम रीति से पूरे हो जाते हैं, जो एक श्रेष्ठ मित्र-मंडली में होते हैं । प्रगाढ़ आत्मीयता को भाव से युक्त सुसंस्कारवान परिजनों से हर विषय में जितना उत्तम एवं हितपरक परामर्श मिल सकता है, उतना अन्य मित्रों से कदाचित् ही मिल सके ।

परिवार से प्राप्त होने वाले इस प्रकार के साधन-सुविधा एवं समर्थन सहयोगपरक अनेक लाभ हैं, जिन्हें पाने के लिए मनुष्य परिवार बनाता है । कुटुम्ब को छोड़कर विरक्त जीवन जीने वाले एवं महात्मा भी इसी दृष्टि से जमात, आश्रम आदि बनाकर रहते हैं । यह भी परिवार परम्परा का ही एक रूप है । हर स्तर पर मनुष्य इसका सही उपयोग करके लाभ उठा सकता है ।

परिवार परम्परा को प्रोत्साहन करने में ऋषियों का मन्तव्य केवल इतना ही नहीं रहा कि व्यक्ति एक से बहुत होकर रहे । दुःख, तकलीफ पड़ने पर उसका हाथ बँटाने वाला उसके साथ हो । व्यक्ति व्यवस्थित रूप में स्थाई होकर रहे और परिजनों के साथ अधिक उल्लासपूर्ण जीवनयापन करे । इस साधारण मन्तव्य के साथ उनका एक इससे कहीं ऊँचा मन्तव्य भी रहा है, वह यह-कि परिवार के माध्यम से मनुष्य आत्म-कल्याण की ओर भी अग्रसर हो । उसमें सामाजिकता, नागरिकता और सबसे बड़ी बात-विश्व मानवता का कल्याणकारी भाव जागे । वह अपने जैसे अन्य मनुष्यों के लिये त्याग, सहानुभूति सौहार्द्र एवं आत्मीयता का अभ्यस्त हो सके ।

मनुष्य की संकीर्णता दूर होकर उसकी आत्मा का व्यापक विकास हो, यही आत्म-कल्याण का राजमार्ग है, मनुष्य दूसरे का दुःख, दर्द समझकर उसके साथ सहानुभूति रख सके, उसकी सेवा-सुश्रूषा तथा सहायता करने को तत्पर रहे, यही आत्म-उन्नति के लक्षण हैं । पारिवारिक जीवन में इन आध्यात्मिक गुणों के विकास का पूरा-पूरा अवसर रहता है ।

एक पिता जब वह बालक रहा होगा तब निश्चय ही आज की तुलना में अधिक संकीर्ण, अधिक स्वार्थी तथा अपने तक अधिक केन्द्रित रहा होगा । वह यही चाहता रहा होगा कि उसे सबसे अधिक और अच्छा खाने-पहनने को मिले, सबसे अधिक खर्च करने को मिले और सबसे अधिक सुख-सुविधा के साथ स्नेह-दुलार भी उसे ही मिले । अपनी इस स्वार्थ-भावना के वशीभूत वह दूसरों के हितों का ध्यान रखे बिना ही अपना हठ पूरा कराने का प्रयत्न करता रहा होगा । दूसरों के प्रति वह पूर्ण उदासीन रहा होगा । दूसरों के प्रति अनुदारता एवं कृपणता उसके स्वभाव के अंग रहे होंगे ।

किन्तु अनन्तर जब उसने विवाह किया होगा और उसकी एकान्तिक स्वार्थपरता एवं संकीर्णता में दरार पड़ गई होगी तो वह केवल अपने स्वार्थ के प्रति आग्रही न रहकर पत्नी की सुख-सुविधा, उसकी इच्छाओं एवं हँसी-खुशी के विषय में सोचने लगा होगा । एक चीज यदि अपने लिये लाता होगा तो एक पत्नी के लिये भी और इस प्रकार उसकी आत्मीयता की परिधि बढ़ गई होगी । उसका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रेम, स्नेह एवं सहानुभूति अपने से बढ़कर दूसरे तक जा पहुँची होगी और वह अपने अतिरिक्त अपनी पत्नी का भी आत्मीय बन गया होगा ।

आज जब यह अनेक बच्चों का पिता बन गया है तो उसका सारा जीवन ही, उसके परिवार का हो गया है । उसका अपना कुछ नहीं रहा है । कहने के लिये उसका जो कुछ है उसके बच्चों का है । न वह पूर्ववत स्वार्थी है, न संकीर्ण और न अनुदार । उसमें त्याग, सन्तोष, सहानुभूति, संवेदना तथा आत्मीयता के गुण आप से आप विकसित हो गये हैं । उसकी संकुचित आत्मा अनेक तक नि:स्वार्थ भाव से विस्तृत हो गई है । यह आत्मिक विकास कैसे हुआ–पारिवारिक जीवन अपनाने से । यदि उसने पारिवारिक जीवन न अपनाया होता और उत्तरदायित्व न समझा होता, तो न तो उसकी आत्मा का विस्तार पत्नी तक होता और न बच्चों तक फैलता । वह यथावत् स्वार्थी एवं संकीर्ण बना हुआ पशुओं की तरह जड़ एवं अविकासशील जीवन बिता रहा होता । त्याग, सहानुभूति, संवेदना, स्नेह तथा अन्यों से आत्मीयता का क्या सुख होता है इस अनुभव से सदा-सर्वथा अनभिज्ञ रहता । यह पवित्र पारिवारिक जीवन का ही प्रभाव है कि उसकी आत्मा के संकीर्ण बन्धन शिथिल हुए और विस्तार हो सका । इसी प्रकार पत्नी से परिवार, परिवार से परिजनों, परिजनों से पार्श्वजनों और पार्श्वजनों से गुरुजनों में फैलती हुई उसकी आत्मीयता विश्व तक जा पहुँचे तो सहज ही कड़ी-कड़ी करके उसकी आत्मा के बन्धन नि:शेष हो जायें और वह मानव-जीवन का अन्तिम लक्ष्य मुक्ति अथवा मोक्ष की उपलब्धि कर ले । पारिवारिक जीवन एवं गृहस्थ आश्रम की व्यवस्था देने में ऋषियों का मुख्य उद्देश्य यही था-सांसारिक सुख-सुविधा तो स्वाभाविक एवं गौण थी ।

अनेक लोग परिवार को आत्मोन्नति के मार्ग में बाधक मानते हैं । उनका कहना होता है कि परिवार-पालन के दायित्व के कारण मनुष्य को दिन-रात सांसारिक उलझनों में फँसा रहना पड़ता है । उसे बाल-बच्चों की चिन्ता से ही अवकाश नहीं मिलता, फिर भला वह आत्मोद्धार के लिये किस प्रकार प्रयत्न कर सकता है । इस प्रकार सोचने वाले गलत रूप में सोचते हैं । उलझनों का कारण परिवार नहीं बल्कि वह गलत व्यवस्था है, जिसकी ओर लोग प्रमादवश ध्यान नहीं देते और परिवार की गाड़ी उल्टी-सीधी खींचते चले जा रहे हैं । किसी भी वस्तु का गलत प्रयोग ही उसे हानिकारक बना देता है । भोजन मनुष्य-जीवन के लिए नितांत उपयोगी वस्तु है । इसके अभाव में जीवन असम्भव हो जायेगा । इसी से मनुष्य को स्वास्थ्य एवं शक्ति मिलती है । इसी उपयोगी एवं जीवनप्रद भोजन को जब अनुचित रूप से उपयोग किया जाता है तब यही अनेक रोगों का कारण बन जाता है और मनुष्य को अशक्त बना देता है । उसी स्थान पर विधिपूर्वक उपवास के रूप में भूखा रहना अनेक अवसरों पर आरोग्य एवं जीवनदाता बन जाता है । दूध, घी, मक्खन, मधु आदि सर्वविदित पौष्टिक पदार्थ हैं । इनका विधिपूर्वक उपयोग करने से मनुष्य-जीवन के लिए अमृत का काम करते हैं किन्तु यही अमृततुल्य पदार्थ अविधिपूर्वक सेवन करने से विष बन जाते हैं ।

परिवार जीवन की परिभाषा करते हुए एक विद्वान ने कहा है-"परिवार परमात्मा की ओर से स्थापित एक ऐसा साधन है, जिसके द्वारा हम अपना आत्म-विकास सहज ही में कर सकते हैं और आत्मा में सतोगुण को परिपुष्ट कर सुखी, समृद्ध जीवन प्राप्त कर सकते हैं । मानव जीवन की सर्वांगीण सुव्यवस्था के लिए पारिवारिक जीवन प्रथम सोपान है । मनुष्य केवल सेवा कर्म और साधना में ही पूर्ण शांति प्राप्त कर सकता है ।" पारिवारिक जीवन की यह परिभाषा निस्सन्देह बड़ी ही उचित एवं समीचीन है । गहराई से विचार करने से इसकी यथार्थता प्रकट हो जाती है ।

समाज रचना का कार्य स्वयं परमात्मा ने मनुष्य के विचारों और भावनाओं में उतरकर किया है । उसी ने समय-समय पर उसके विकास और विस्तार को मानवीय विवेक द्वारा आगे बढ़ाया है वही उसमें आ जाने वाले विकार और विकृतियों को दूरदर्शी व्यक्तियों द्वारा प्रकट करता है और उन्हें सुधारने की प्रेरणा देता है । इसलिये परिवार संस्था को परमात्मा की ही रचना-इच्छा अथवा निर्देश मानना चाहिए और उसी के अनुरूप उसका सेवन एवं संचालन करना चाहिए । जो लोग परिवार को अपने मनमाने ढंग से चलाते और सेवन करते हैं वे एक अहंभाव से प्रेरित होते हैं और परमात्मा की इच्छा का विरोध करते हैं ।

जो परिवार बसाता है, उसका पालन ठीक प्रकार से करता है, उसका जीवन सुखी होना स्वाभाविक ही है । एक दूसरे के प्रति त्याग, आत्मभाव सुख का बड़ा कारण है, वह सच्चे, उपयुक्त पारिवारिक जीवन में मिलता ही है । बिना परिश्रम और पुरुषार्थ के पारिवारिक जीवन चल ही नहीं सकता । अकेला आदमी तो चाहे जो खाकर और चाहे जहाँ रहकर जीवन काट सकता है किन्तु किसी गृहस्थ के लिये यह सम्भव नहीं । गृहस्थ अपने लिए न सही पत्नी और बच्चों के लिए परिश्रम-पुरुषार्थ करेगा । कमायेगा और घर लाकर पत्नी को देगा ही । पत्नी उसे बुद्धिमत्तापूर्वक खर्च कर, आगे के लिये, बच्चों की शिक्षा-दीक्षा और ब्याह-शादी के लिए बचायेगी । पुरुष परिवार को उन्नत और बच्चों को योग्य बनाने के लिए अधिक से अधिक कमायेगा और पत्नी उसमें से अधिक से अधिक बचाने का प्रयत्न करेगी ।

इस प्रकार घर की समृद्धि में वृद्धि होगी ही । कोई भी एकाकी आदमी उतना समृद्धिशील नहीं देखा जाता, जितना कि पारिवारिक गृहस्थ । वह रहने के लिए घर और बच्चों के लिये कारोबार की व्यवस्था करता ही है, फिर चाहे थोड़ी कर सके अथवा बहुत । अनन्तर बच्चे

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बड़े होकर कमाने लगते हैं, एक से दो और तीन की कमाई आने लगती है और परिश्रमी और बुद्धिमान गृहस्थों की सुख-समृद्धि उत्तरोतर बढ़ती जाती है । यह अवसर पारिवारिक व्यक्ति को ही रहता है, एकाकी को नहीं क्योंकि उसके लिए न तो उसे इच्छा होती है और न आवश्यकता । उसका तो अपना अकेला शरीर होता है । मुट्ठी भर का बचाया और खा-पीकर पड़े रहे । इस प्रकार देखा जा सकता है कि पारिवारिक अथवा गृहस्थ-जीवन में आत्मविकास, सतोगुण और सुख-समृद्धि की पूरी-पूरी सम्भावना रहती है । निःसन्देह, परिवार सर्वांगीण उन्नति का एक महत्वपूर्ण सोपान है, जिस पर योग्यतापूर्वक चढ़कर मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य पा सकता है ।

परिवार को प्रयोगशाला, व्यायामशाला मानकर उसका हर सदस्य अपने अन्दर दिव्य गुणों का विकास कर सकता है । प्रेम, सहानुभूति, संवेदना, अपनत्व, त्याग और उदारता आदि के भाव सतोगुण के द्योतक होते हैं । परिवार में पत्नी और बच्चों के माध्यम से ये सहज ही विकसित हो जाते हैं । मनुष्य में यदि प्रेम का भाव विकसित न हो तो वह एक अपरिचित नारी का भार क्यों उठाये ? क्यों उसे प्यार करे और क्यों उसके लिये, उसकी प्रसन्नता के लिये किसी प्रकार का त्याग अथवा बलिदान करे । यदि प्रेम-भाव विकसित न हो तो बच्चों का उत्तरदायित्व एक भयानक भार बन जाये, जो उससे उठाये न उठे । बच्चों का पालन और विकास करने में मनुष्य का सारा जीवन, सारी शक्ति, सारे साधन लग जाते हैं, उनके प्रति प्रेम का विकास न हो तो इतना त्याग कर सकना किसी के वश की बात न हो सके । यही बात सहानुभूति, संवेदना और त्याग, बलिदान आदि गुणों के सम्बन्ध में है । परिवार के माध्यम से मनुष्य में सात्विक गुणों का विकास हो ही जाता है ।

यदि ऐसा न हो और रजोगुण अथवा आसुरी प्रवृत्तियों की प्रधानता बनी रहे तो परिवार संस्था एक दिन भी न चले । सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट होकर बिखर जाये । सतोगुण के आधार पर ही इस संस्था का संचालन होता है । यदि इन्हीं विकसित हुए सात्विक गुणों को 'यह मेरा परिवार है, यह मेरे बच्चे हैं'-इस संकीर्ण अहंभाव से मुक्त रखे यदि यह समझा जाये कि यह सब उस परमात्मा के अंश हैं, इनकी सेवा करना, इनके लिए त्याग करना हमारा कर्तव्य है, मैं जो कुछ त्याग अथवा उत्सर्ग कर रहा हूँ, वह सब इनके माध्यम से इस एक विश्वात्मा के लिए ही कर रहा हूँ, इन्हीं के समान अन्य सब दूसरे भी मेरे हैं, उन्हें भी मेरी सेवाओं का अधिकार है, तो आत्मा का विश्व विराट तक परिसार होते देर न लगे ।

किन्तु यह सब सम्भव होगा तभी जब इस साधन को साधन मानकर सावधानीपूर्वक उपयोग में लाया जाये, इस साधन को अधिक दक्ष, प्रखर और सशक्त बनाने के लिये सतत् प्रयत्न किया जाता रहे । जो सदस्यों को सुयोग्य, बच्चों को सुशील, सुशिक्षित और अनुशासित बनाने के रूप में होगा । परिवार का गुण, कर्म, स्वभाव के रूप में उचित निर्माण करना ही इस साधन को उद्देश्य के योग्य, सक्षम बनाना है । इसका उपाय शिक्षा, प्रेम, त्याग, बलिदान, सेवा और सदाचरण की शिक्षा और व्यक्तिगत उदाहरण ही माना गया है ।

जहाँ इस साधन को साध्य मानकर, भोग-विलास का अवसर बनाया गया, कि वह नष्ट हो जायेगा । तब उस दशा में न तो प्रेम रह जायेगा, न त्याग और न कोई आत्मीयता । बच्चे अनिच्छित, रोगी, निकम्मे और अनुशासनहीन होंगे । स्वास्थ्य और सौहार्द्र समाप्त होकर स्वार्थ एवं स्पृहा बढ़ जायेगी, परिवार नरक का जीता जागता द्वार बन जायेगा । परिवार का पालन और समुचित निर्माण ही इस साधन को प्रखर, उज्ज्वल और सक्षम बना सकता है और तभी आत्म-विकास अथवा आत्म-वृद्धि का उद्देश्य पूर्ण हो सकता है, अन्यथा नहीं । इसीलिए शास्त्रों में कहा गया है -

''गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तप्यते तपः ।
चतुर्णामाश्रमाणान्तु गृहस्थस्तु विशिष्यते ।।''

''गृहस्थ ही वास्तव में यज्ञ करते हैं । गृहस्थ ही वास्तविक तपस्वी हैं । इसलिए चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम ही सबका सिरमौर है ।''

गृहस्थ जीवन एक तप है, एक साधन है । इसका समुचित प्रयोग करके वास्तविक लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है । गृहस्थ को तपस्वी का जीवन बिताते हुए जीवन को सुविधापूर्वक उन्नति एवं विकास की ओर धीरे-धीरे बढ़ाते चले जाना चाहिए ।

परिवार का दर्शन

यह सारी सृष्टि एक ही सत्ता का विस्तार है । कोई उसे ईश्वरीय परिवार कहता है, तो कोई अन्य उसे माया का परिवार कहता है । पर है यह विश्व ब्रह्माण्ड एक ही परिवार, यह बात सभी को स्वीकार है । सृष्टि के प्रारम्भ में ईश्वर ने चाहा-''**एकोऽहं बहुस्याम्**'' एक से अनेक बनूँ । आत्म विस्तार का यह संकल्प सृष्टि परिवार के रूप में सामने आया । यही है ब्रह्म का विराट रूप ।

इस प्रकार परिवार के सम्बन्ध में दो बातें आधारभूत महत्व की हैं-पहली यह कि यह सम्पूर्ण सृष्टि एक ही परिवार है-'वसुधैव कुटुम्बकम् ।' इस परिवार की लघुतम इकाई है माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-बहिन और बच्चों की एक न्यूनतम सम्पूर्ण यूनिट, प्रचलित शैली में इसे ही परिवार समझा जाता है ।

भारत में परिवार का ढाँचा मुख्यतः पितृ वंशानुक्रम पर ही आधारित है । मातृवंशीय समुदाय देश के दक्षिण पश्चिमी और उत्तरपूर्वी क्षेत्रों में ही हैं- केरल, कर्नाटक, तमिलनाडु, मेघालय, लक्षद्वीप और असम के कुछ हिस्सों में मातृवंशीय परिवार-व्यवस्था है । विशेषकर केरल के नायरों, तिय्यारों तथा गोपलाओं में, कर्नाटक, तमिलनाडु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

की वन्य जन-जातियों में लक्षद्वीप के मूल निवासियों में तथा असम व मेघालय की गारो, खासी और फारजातियों में मातृवंशीय परिवार व्यवस्था है । जहाँ बच्चे की सामाजिक पहचान माँ के माध्यम से ही होती है । नायर जाति की लड़कियाँ जहाँ सम्पत्ति में मात्र सहभागी होती हैं, वहीं असम की गारो जाति में परिवार की उत्तराधिकारी यानि वारिस सदा ही कोई एक लड़की बनायी जाती है । इस वारिस का चुनाव माँ करती है । वह उत्तराधिकारी बनी लड़की ही घर के सभी धार्मिक कार्य करती है । वृद्ध माता-पिता की परिचर्या, मृत्यु-संस्कार पितरों का श्राद्ध आदि सभी जिम्मेदारी वही निभाती है ।

ऊपर कही गई मातृवंशीय जातियों के अतिरिक्त शेष लगभग सम्पूर्ण भारत में पैतृक वंशानुक्रम ही प्रचलित है । जहाँ पुत्र को पिता का सहज और स्वाभाविक वारिस समझा जाता है । वही धार्मिक संस्कारों के लिए प्रधानत: उत्तरदायी माना जाता है । बहरहाल, परिवार मातृवंशीय हो या पितृवंशी सामान्यत: परिवार से आशय तीन पीढ़ियों के सहभाजी और सहआवासी समूह से होता है, जिसमें माता-पिता, बेटे और अविवाहित बेटियाँ तथा बेटों की बहुएँ और बच्चे शामिल होते हैं । बेटे बड़े होकर आपस में अलग-अलग व्यवस्था बना लेते हैं, तो भी अपने माता-पिता को वे प्राय: परिवार का ही अंग मानकर चलते हैं और बच्चे तो परिवार का अंग होते ही हैं । इस प्रकार परिवार का सामान्य अर्थ 'तिन पिढ़िया सहजीवन' ही कहा जा सकता है । यही तीन पीढ़ियों की सघन एकजुटता परिवार की आधारभूत इकाई कही जाती है । इसका और भी सिकुड़ा रूप है- पति-पत्नी और बच्चों को मिलाकर बनी पारिवारिक इकाई तथा इसका सर्वाधिक विकसित रूप है- ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की अवधारणा ।

पारिवारिकता मात्र सहभोज और सहनिवास नहीं है । वह एक सहकारी संस्था है, जहाँ सहकार के सूत्र जीवन के किसी एक क्षेत्र से सम्बन्धित नहीं हैं । अपितु सम्पूर्ण जीवनक्रम से ही जुड़े हैं । होटलों-धर्मशालाओं में भी लोग साथ रहते हैं । कई लोग तो वर्षों एक ही होटल या धर्मशाला में साथ-साथ रहते हैं । इस सहनिवास की अवधि में वे शिष्टता और सहकारिता के कुछ नियमों का भी निर्वाह करते हैं । पर यह सहकार और सहभाव अति सीमित होता है । परिवार में सहकारिता का क्षेत्र जीवन के सभी पहलुओं से जुड़ा रहता है । इसी दृष्टि से परिवार एक समग्र सहकारिता की संस्था कहा जा सकती है ।

प्रारम्भ में कहा जा चुका है कि आत्मविस्तार ही पारिवारिकता प्रक्रिया का प्रारम्भ है । इसका प्रथम चरण परिवार है । शरीर के अवयवों की तरह ही परिवार के परिजन भी एक ही परिवार शरीर के अंग हैं । यह भाव बोध प्रखर रहे, तो उस सम्पूर्ण परिवार को स्वस्थ, समुन्नत, परिष्कृत बनाने के प्रयास चलते ही रहते हैं । परमार्थ परायणता की यह प्रारम्भिक स्थिति है, जिसका चरम पर्यवसान ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की दृष्टि में होता है । इसीलिए परिवार निर्माण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से एक ओर व्यक्ति निर्माण की सुव्यवस्था बनती है, दूसरी ओर समाज निर्माण का उद्देश्य भी अनायास ही पूरा होता चलता है, लेकिन ये दोनों ही प्रयोजन पूरे तभी हो सकते हैं, जब परिवार को एक ऐसी श्रेष्ठ पाठशाला के रूप में विकसित किया जा सके जहाँ व्यक्ति को सुसंस्कारों की शिक्षा सम्पदा मिलती रह सके, परिवार संस्था और समाज के दोनों पहियों को सुसंचालित रखने वाली धुरी बनी रहती है ।

परिवार निर्माण मूलत: एक दर्शन है, एक दार्शनिक संकल्प एवं प्रक्रिया है, पद्धति है । जिसका लक्ष्य है आत्म-विकास, आत्मीयता की परिधि का सतत प्रसार । परिवार निर्माण की समस्त प्रक्रियाओं की यह आधारभूत कसौटी होनी चाहिए कि उसके परिवार के प्रत्येक सदस्य का आत्मविकास हो रहा है या नहीं । प्रत्येक सदस्य की आत्मीयता की परिधि विस्तृत हो रही है अथवा नहीं । जहाँ चिन्तन और आचरण में यह विकास परिलक्षित न हो पा रहा हो वहाँ परिवार की व्यवस्था और रीति-रिवाजों का स्वरूप कोई भी क्यों न हो, परिवार निर्माण की प्रक्रिया वहाँ नहीं चल रही है, यही मानना चाहिए । इसके विपरीत, जहाँ इस तरह का विकास गतिशील हो, वहाँ परिवार निर्माण का कार्य सम्पन्न हो रहा मानना चाहिए । फिर उस परिवार का ढाँचा कैसा भी हो संयुक्त हो या सीमित, पृथक । वृहत हो या छोटा । परिवार व्यवस्था पितृवंशीय हो या मातृवंशीय । वहाँ जौनसार-बाबर इलाके जैसी बहुपति-प्रथा है, या कि मुसलमानी जैसी बहुपत्नी प्रथा है, यह प्रश्न जितना महत्वपूर्ण है उससे अधिक महत्वपूर्ण है उस प्रथा के पीछे कार्यरत प्रवृत्तियाँ और उसके प्राप्त होने वाले परिणाम । अत: यह भली-भाँति समझा जाना चाहिए कि परिवार निर्माण में सर्वोपरि महत्व परिवार भावना के दर्शन का है और इस दर्शन की केन्द्रीय वृत्ति, इसकी आधारभूमि है आत्म-विकास, आत्मविस्तार ।

परिवार-निर्माण अभियान के बहुमुखी रूप हैं, बहुआयामी हलचलें हैं और हो सकती हैं । परन्तु उन सबके केन्द्र में आत्मविकास, आत्मविस्तार का लक्ष्य स्पष्ट रहना अनिवार्य है । परिवार व्यवस्था की आधारभित्ति यही है । इस पुरातन व्यवस्था में कालक्रम से जो विसंगतियाँ, विकृतियाँ और विशेषताएँ आ गई हैं उन्हें दूर करने के पीछे भी मूल दृष्टि यही है । परिजनों की सुविधाओं में संतुलन तथा अभिवृद्धि, जैसे फल तो उससे प्राप्त होंगे ही, पर इन सबसे भी बढ़ा-चढ़ा सत्परिणाम प्रत्येक परिजन के आत्मविकास के रूप में सामने आने वाला है । इसी संदर्भ में घर को तपोवन की संज्ञा दी जाती है । गृहस्थ-योग का प्रतिपादन किया गया है । पतिव्रत, पत्नीव्रत, पितृ-मातृ सेवा, शिशु वात्सल्य, समता, सहकारिता की सत्प्रवृत्तियाँ यदि सघन सद्भावना की समुन्नत मन:स्थिति से सम्पन्न की जा सकें, तो उनका महत्व योगाभ्यास और तपसाधन के ही

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समतुल्य है । कर्मयोग की सर्वोत्तम साधना है परिवार निर्माण । उससे आत्म-निर्माण की प्रक्रिया भी सम्पन्न होती है और समाज-निर्माण का क्रम भी अनायास चलता रहता है । जिन महामानवों ने विश्व इतिहास में महती भूमिकाएँ सम्पन्न की हैं, उनके व्यक्तित्व सुसंस्कृत वातावरण में ही ढले थे । इसलिए उनके द्वारा समाज का जो भी भला हुआ है, उसमें परिवार की सुसंस्कारिता की विशिष्ट भूमिका रही है । समाज-निर्माण में परिवार-निर्माण का यह प्रत्यक्ष योगदान है ।

परिवार संस्था और उसका महत्व

भारतीय समाज निर्माताओं ने मनुष्य के आन्तरिक बाह्य जीवन को अधिकाधिक परिष्कृत, उन्नत, विकसित करने के लिए भौतिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों में नाना प्रयोग किए । नाना आदर्शों-संस्थाओं की स्थापना की । धर्म, दर्शन, अर्थविज्ञान, वर्ण-व्यवस्था, आश्रम आदि इसी प्रकार के प्रयोग थे । लेकिन जीवन में विभिन्न पहलुओं का एकीकरण करते हुए उन्होंने परिवार संस्था का एक महत्वपूर्ण प्रयोग किया था, जो व्यावहारिक, सहज, सुलभ, सुखकर सिद्ध हुआ । परिवार संस्था ने मनुष्य के जीवन को आदिकाल से ऐसा मार्गदर्शन किया है जैसा अन्य किसी भी संस्था ने नहीं किया होगा । इतिहास बदल गये, दुनिया का नक्शा बदल गया, समाज संस्थाओं में बड़े-बड़े परिवर्तन हुए लेकिन भारतीय समाज में परिवार संस्था आज भी ध्रुव बिन्दु की तरह जीवित है । यद्यपि वर्तमान युग में कई आर्थिक, वैज्ञानिक, सामाजिक परिवर्तनों का प्रभाव अब परिवार पर भी पड़ने लगा है लेकिन भारतीय परिवार के मूल में जो विशाल भावना, जीवित प्रेरणा का काम कर रही है वह उसे मिटने नहीं देगी । वर्तमान संक्रमण काल के बाद नई परिस्थितियों में परिवार संस्था पुनर्गठित होकर मानव के उत्कर्ष में अपना योगदान जारी रखेगी ।

वस्तुतः मानवीय जीवन में जो कुछ भी आननदमय, रसपूर्ण साथ ही कर्तव्य और धर्म का सारतत्व है वह 'हिन्दू परिवार' में सरलता से मिल जाता है । हमारे समाज शिल्पियों ने 'परिवार संस्थान' की नींव में ऐसे अमृत-तत्वों के बीज वपन कर दिए हैं जिनके कारण काल के अनन्त प्रवाह में भी भारतीय परिवार अपना अस्तित्व सदा-सदा कायम रखेगा ।

भारतीय मनीषियों की एक विशेषता रही है, वह यह कि उनके प्रयोग केवल स्थूल पक्ष अथवा भौतिक मूल्यों तक ही सीमित नहीं रहते थे । वे सूक्ष्म क्षेत्रों में विश्व का संचालन करने वाले सार्वभौमिक तथ्यों की खोज करते थे और फिर उन्हें भौतिक विधानों में व्यवस्थित करते थे । परिवार संस्था के मूल में किसी ऋषि के इसी तरह के सूक्ष्म अन्वेषण का रहस्य छुपा हुआ है ।

नारी और पुरुष परिवार संस्था के दो मूल स्तम्भ हैं । दोनों मानो नदी के दो तट हों, जिसके मध्य से परिवार की जीवन की धारा बहती है । वैदिक साहित्य में स्त्री-पुरुष की उपमा पृथ्वी और द्युलोक से दी गई है । विवाह संस्कार के अवसर पर भी पुरुष, स्त्री से कहता है-'**द्यौरहं पृथ्वी त्वम** ।' मैं द्यौ हूँ, तू पृथ्वी । आकाश और धरती पुरुष और प्रकृति के संयोग से ही विश्व परिवार का उदय हुआ, ठीक इसी तरह स्त्री और पुरुष के संयोग से परिवार संस्था का निर्माण होता है । हिन्दू परिवार की मूल प्रेरणा बहुत विशाल है, जिसमें हिन्दू धर्म की वह मूल भावना सुरक्षित रहती है जिसके अनुसार हमारे यहाँ स्थूल और नश्वर का सम्बन्ध विश्वव्यापी चिरन्तन नित्य सूक्ष्म सत्ता के विधान से मिलाया गया है । परिवार संस्था केवल स्थूल व्यवस्था मात्र नहीं है अपितु उसमें भी एक सूक्ष्म सनातन सत्य की जीवन ज्योति समाई हुई है । विश्व जीवन में द्यौः और पृथ्वी से लेकर परिवार में स्त्री-पुरुष के गृहस्थ जीवन की मधुर कल्पना में ऋषि का एक ही दार्शनिक दृष्टिकोण रहा है । जैसे द्युलोक और पृथ्वी एक ही संस्थान के पूरक तत्व हैं उसी तरह स्त्री और पुरुष भी परिवार संस्था के पूरक अंग हैं ।

स्त्री-पुरुष की अभेदता को व्यक्त करते हुए पुरुष, स्त्री से कहता है- '**सामोऽहस्मि ऋकत्वम्**' मैं यह हूँ, तू वह है । तू वह है, मैं यह हूँ । मैं साम हूँ तू ऋक है । किसी वस्तु का व्यास अथवा परिधि परस्पर अभिन्न होते हैं । व्यास न हो तो परिधि का अस्तित्व नहीं, परिधि न हो तो व्यास कहाँ से आये ? सृष्टि के मूलभूत हेतु में जिस तरह द्युलोक और पृथ्वी का स्थान है, उसी तरह परिवार संस्था में स्त्री-पुरुष का । कैसी विशाल कल्पना थी हमारे समाज शिल्पी मनीषी की पारिवारिक जीवन के अन्तराल में ।

परिवार संस्था में जहाँ स्त्री-पुरुष की अभेदता का प्रतिपादन किया गया है वहाँ पूरे संस्थान को कर्तव्य धर्म की मर्यादाओं में बाँधकर उसे सभी भाँति अनुशासन, सेवा, त्याग, सहिष्णुताप्रिय बनाया जाता है और इन पारिवारिक मर्यादाओं पर ही समाज की सुव्यवस्था, शान्ति, विकास निर्भर करता है । परिवार में माता, पिता, पुत्र, बहिन, भाई, पति-पत्नी, नातेदार-रिश्तेदार परस्पर कर्तव्य धर्म से बँधे हुए होते हैं । कर्तव्य की भावना मनुष्य में एक दूसरे के प्रति सेवा, सद्भावना, उत्सर्ग की सत्प्रवृत्तियाँ पैदा करती हैं । हिन्दू परिवार में समस्त व्यवहार कर्तव्य की भावना पर टिका हुआ है । सभी सदस्य एक दूसरे के लिए सहर्ष कष्ट सहन करते हैं, त्याग करते हैं । दूसरों के लिए अपने सुख और स्वार्थ का प्रसन्नता के साथ त्याग करते हैं । शास्त्रकारों की भाषा में यही स्वर्गीय जीवन है । इसके विपरीत जहाँ अपने सुख और स्वार्थ के लिए दूसरों के हकों को छीनाझपटी, अपने अधिकार जताकर केवल पाने या लेने ही का व्यवहार सामूहिक जीवन में परस्पर तनाव और संघर्ष को जन्म देता है, वहाँ विरोध, द्वेष, ईर्ष्या पैदा हो जाती है । इसे ही नीतिकारों ने नरक कहा है । यदि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

धरती पर स्वर्गीय जीवन की प्रत्यक्ष रचना कहीं हुई है तो वह है भारतीय परिवार संस्था । रस, आनन्द, त्याग, उत्सर्ग, सेवा-सहिष्णुता का स्वर्गीय वातावरण यदि कहीं देखना हो तो वह हिन्दू परिवार में सफलता से देखा जा सकता है । रामायण का आदर्श हिन्दू परिवार का ज्वलन्त उदाहरण है । इसमें स्वार्थपरता, पदलोलुपता, बुराइयों के ऊपर त्याग, सेवा, सद्गुणों की विजय बताई गई है ।

परिवार ने जहाँ व्यक्ति के विकास में भारी योग दिया है वहाँ सामाजिक सांस्कृतिक उत्थान में भी बहुत बड़ा हाथ रहा है । परम्परा को आधार बनाकर उससे आगे नियमित विकास और सन्तुलित प्रगति के क्षेत्र में परिवार संस्था सदा-सदा कार्य करती रही है । समाज के लिए जो भी हितकर, आवश्यक है उसकी रक्षा परिवार संस्था ने पूरी की है । पर्व, त्यौहार, कला, सौजन्य, उत्साह, उमंग को परिवार संस्था ने ही सदा-सदा जीवित रखा है ।

समाज और संस्कृति के विकास में परम्परा का अपना एक महत्व रहा है । लोग अपनी परम्परा को शानदार बनाये रखने के लिए बड़े से बड़ा त्याग करते हैं और इस तरह के आदर्श कुलों का जहाँ बाहुल्य होता है वह समाज भी आदर्श और महान बन जाता है । महात्मा विदुर ने युधिष्ठिर को आदर्श कुलों के आधार बताते हुए कहा था "तप, दम, ब्रह्म-ज्ञान, यज्ञ, दान, शुद्ध-विवाह सम्यक् विचारों से कुल आदर्श बनते हैं ।" इन बातों में कहीं भी ऐसा नहीं है कि धन अथवा भौतिक ऐश्वर्य सम्पदाओं से कुल की मर्यादा बढ़ती है । धर्म के आचरण से ही परिवार उन्नत होते हैं । प्रत्येक सदस्य परिवार की शान के लिए, उसकी समृद्धि विकास के लिए अपने जीवन में बड़े से बड़ा काम करने की इच्छा रखता है और ऐसी उत्साहयुक्त भावना व्यक्ति और समाज दोनों के लिए बहुत ही हितकर सिद्ध होती है । व्यक्ति जहाँ परिवार के भवन में धर्मआदर्श की सीढ़ियों पर ऊँचे से ऊँचा चढ़ता है वहाँ ऐसे व्यक्तियों से समाज भी समुन्नत होता है और अनेक सदस्यों से युक्त परिवार का उत्थान सभी भाँति स्वच्छ, फूलता-फलता, समृद्ध और विकसित होता रहता है ।

परिवार संस्था तपस्थली है जहाँ व्यक्ति स्वेच्छा से तप-त्याग, धर्माचरण का अवलम्बन लेता है । परिवार में मनुष्य का आत्मिक, मानसिक विकास सरलता से हो जाता है । परस्पर एक दूसरे के प्रति अपने कर्तव्य निभाने का धर्म मनुष्यों का जीवन निखार देता है ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि हिन्दू परिवार व्यक्तिगत जीवन निर्माण के साथ-साथ सामाजिक जीवन की समृद्धि के लिए एक महान प्रयोग हुआ है-हमारे देश में । अनेक आक्रमणों, आघातों को सहकर भी आज जो हमारी सामाजिक, सांस्कृतिक धरोहर सुरक्षित रही है उसके मूल में परिवार संस्था का बहुत बड़ा योग रहा है । हिन्दू परिवार मानो भारतीय समाज का शक्ति स्रोत ही रहा है । आवश्यकता इस बात की है कि आज के परिवर्तनों, परिस्थितियों में परिवार संस्था को पुनर्गठित करके समाज की इस जीवनदायिनी धारा को अधिक शक्तिशाली और समृद्ध बनाया जाय ।

परिवार का आदर्श और विकास

एक ही रक्त और कुल के क्यों न हों अनेक लोगों का एक साथ रहना मात्र ही पारिवारिक जीवन नहीं है । एक साथ एक घर में अनेक भाई और उनके बच्चे रहते हों किन्तु वे आपस में लड़ते, संघर्ष करते और कलह मचाते रहें, तो इससे पारिवारिक जीवन का उद्देश्य पूरा नहीं होता । इस प्रकार तो वह एक घर परिवार न कहा जाकर संग्राम-स्थल ही कहा जायेगा ।

अनेक पशु-पक्षी, समूह बनाकर रहते हैं । साथ-साथ चरते, घूमते, उठते-बैठते सोते और जागते हैं किन्तु उनको एक परिवार नहीं कहा जा सकता । परिवार का प्रमुख लक्षण है, एक-दूसरे से प्रेम, सहानुभूति, आत्मीयता और स्वार्थरहित सेवा-भाव । एक-दूसरे के लिये त्याग तथा उत्सर्ग की तत्परता । जिस मानव समूह में एक दूसरे का सुख-दुःख अपना सुख-दुःख न बन सका, वहाँ पारिवारिक भावना नहीं मानी जायेगी । पशु-पक्षी एक साथ रहते हुए भी इसी आत्मभाव के अभाव में पारिवारिक नहीं माने जाते । पारिवारिक जीवन का लक्षण है-"प्रेम, आत्मीयता, सहयोग, सहायता, संवेदना, सद्भाव तथा सबके प्रति यथायोग्य व्यवहार । सबकी मंगलकामना, सबकी सुख-सुविधा का विचार आदि के सात्विक गुण ।" जहाँ बड़ों का छोटों के प्रति आशीर्वाद नहीं, छोटों में गुरुजनों के प्रति आदर और विनम्रता का भाव नहीं, जहाँ भाई-भाई और भाई-बहिन में एकात्मकता नहीं वहाँ पारिवारिक भावना का अभाव है, यही मानना ही पड़ेगा ।

परिवार का अर्थ है-एक-दूसरे की सांसारिक सुख में सहायता के साथ आत्मोन्नति में यथासाध्य सहयोग करना । जहाँ लोग एक-दूसरे का अधिकार छीनना चाहते हों, एक दूसरे से ईर्ष्या व डाह करते हों, पीछे खींचने का प्रयत्न करते और अपने स्वार्थ पर ही दृष्टि रखते हों, वहाँ परिवार कहाँ ? वहाँ तो पाशविक समूह जैसी भावना ही समझना चाहिए ।

घर में जब प्रत्येक सदस्य दूसरे के लिए त्याग करने को तत्पर रहे, उसका अपना स्वार्थ दूसरों के स्वार्थ के साथ जुड़ा हो, एक की पीड़ा सबकी पीड़ा और एक की उन्नति सबकी उन्नति बनकर प्रकट हो, तब समझना चाहिए कि हम पारिवारिक जीवनयापन कर रहे हैं । दूसरे हमसे अच्छा खायें ,पहनें, घर की सुख-सुविधा का उपभोग पहले दूसरे लोग करें, हमारी खुशी इसी में है । हमारा कर्तव्य तो अधिकाधिक त्याग और दूसरों की सुख-शांति और विकास में सहायक होना है । 'मेरे रहते किसी को दुःख, तकलीफ न हो' आदि की उदार भावना ही पारिवारिक भावना को प्रकट करती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिवार की प्रतिष्ठा हमारी प्रतिष्ठा, परिवार की उन्नति हमारी उन्नति, उसकी समृद्धि हमारी समृद्धि और उसका लाभ-हानि हमारी लाभ-हानि है, ऐसी आत्म-भावना पारिवारिकता का विशेष लक्षण है । हम कोई ऐसा काम न करें, जिससे परिवार की प्रतिष्ठा पर आँच आये । किसी सदस्य पर कोई अवांछनीय प्रभाव पड़े, परिवार की उन्नति में अवरोध उत्पन्न हो अथवा उसकी समृद्धि एवं वृद्धि में प्रतिकूलता आये, ऐसा सतर्क भाव ही तो पारिवारिकता कहा जायेगा । जहाँ यह सब बातें पाई जायें, वहाँ समझना चाहिए कि लोग वास्तविक रूप में परिवार बनकर रह रहे हैं । जहाँ स्वार्थ, वैषम्य, विचार-वैषम्य, भाव-वैषम्य, अथवा सुख-दुःख में विषमता की गन्ध पाई जाये वहाँ मानना होगा कि एक साथ अनेक के रहने पर भी वहाँ परिवार भावना नहीं है । लोग किसी कारणवश एक साथ रहे जा रहे हैं ।

परिवार एक पवित्र तथा उपयोगी संस्था है । इसमें मानव की सर्वांगीण उन्नति का आधार सहयोग, सहायता और पारस्परिकता का भाव रहता है । यह भाव वह शक्ति है जिसके आधार पर मनुष्य आदि-जंगली स्थिति से उन्नति करता-करता आज की सभ्य स्थिति में पहुँचा है । सहयोग की भावना ही मनुष्य जाति की उन्नति का मूल कारण रही है । एकता, सामाजिकता, मैत्री आदि की सहयोगमूलक शक्ति ने आज मानव सभ्यता को उच्चता पर पहुँचा दिया है । सभ्यता के प्रारम्भिक युग में जिस व्यक्ति ने सहयोग की शक्ति समझकर उसका प्रकटीकरण तथा प्रवर्तन किया होगा, वह निश्चय ही एक बड़ा दार्शनिक तथा समाज हितैषी महापुरुष रहा होगा । सहयोग की शक्ति जानकर लोगों ने अपनी स्थूल तथा सूक्ष्म विशेषताओं को मिलाकर संगठन की चेतना प्रबुद्ध की होगी और कन्धों-से-कन्धा, विचार से विचार, शक्ति से शक्ति तथा साधन से साधन मिलाकर एक तन-मन से काम किया होगा, जिसके फलस्वरूप सभ्यता तथा मानवीय समृद्धि के एक के बाद एक द्वार खुलते चले गये होंगे ।

आज भी तो पूरा समाज सहयोग और पारस्परिकता के बल पर ही चल रहा है । यदि समाज से सहयोग की भावना नष्ट हो जाये तो तुरन्त ही चलते हुए कारखाने, होती हुई खेती और बढ़ती हुई योजनाएँ व विकास पाती हुई कलाएँ, शिल्प साहित्य आदि की प्रगति रुक जाये और कुछ ही समय में समाज जड़ता से अभिभूत होकर नष्ट हो जाये । सहयोग मानव विशेषताओं में एक बड़ी विशेषता है, परिवार में जिसका होना नितान्त आवश्यक है । इसी पर परिवार बनता, ठहरता, चलता और उन्नति करता है ।

परिवार में जब तक सच्ची पारिवारिक भावना नहीं होती उसका उद्देश्य पूरा नहीं होता । आज सच्ची पारिवारिक भावना के अभाव में ही तो परिवार टूटते, बिखरते जा रहे हैं । उनकी शक्ति तथा दक्षता नष्ट होती जा रही है । उनकी वृद्धि, समृद्धि रुकती जा रही है और दिन-दिन उन्हें दीनता, दरिद्रता घेरती चली आ रही है । पारिवारिक भावना के अभाव में ही भाई-भाई लड़ते, बहिनें एक दूसरे से मन-मुटाव मानतीं, सास-बहू के बीच बनती नहीं और देवरानी-जिठानी एक दूसरे से डाह व ईर्ष्या करती हैं । जितने मुकदमे दूसरों से विवाद के नहीं चलते, उससे कई गुने मुकदमे पारिवारिक कलह के कारण दायर होते और चलते रहते हैं । चाचा-ताऊ, बाप-बेटों और बाबा-पोतों तक में संघर्ष होता रहता है ।

इस अनिष्ट का एकमात्र कारण यही है कि एक परिवार होते हुए भी वे सब पारिवारिक भावना से रहित होते हैं । अपना भिन्न तथा पृथक् अस्तित्व मानते और तदनुरूप ही आचरण करते हैं । सच्ची पारिवारिक भावना का विकास तो तब ही होता है, जब परिवार का प्रत्येक सदस्य अपना अस्तित्व पूरे परिवार में मिलाकर अभिन्न हो जाता है । इस आत्मविसर्जन के पुण्य से ही लोगों में सच्चे प्रेम और सच्ची आत्मीयता का विकास होता है ।

परिवारों से मिलकर समाज और समाज से राष्ट्र का निर्माण होता है । यदि परिवार संगठित, शक्ति-सम्पन्न और समृद्ध हो जायें तो समाज तो वैसा आप ही आप बन जायेगा । उसके लिये अलग से कोई प्रयत्न करने की आवश्यकता न रह जायेगी । परिवारों में सच्ची पारिवारिक भावना का अभाव किन कारणों से हुआ है या हो रहा है, यदि इस पर विचार करते हैं, तो यह विदित होता है कि आज का हमारा रहन-सहन और आचार-विचार इसके लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी है ।

हम परिवार तो बड़े शौक से बसा लेते हैं, किन्तु उसका उचित निर्माण नहीं करते । वह अपने आप स्वतंत्र रूप से कुशकंटकों की भाँति जिधर चाहता बढ़ता और विकसित होता चला जाता है । यदि किसी चतुर माली की तरह हम अपने परिवार को एक सुन्दर वाटिका मान कर उचित पालन और निर्माण करें तो निःसन्देह उसका एक-एक सदस्य खुशनुमा फूल की तरह गुणों की सुगन्ध से भर कर खिल उठे, जिससे न केवल परिवार को ही बल्कि अन्य लोगों को सुख की प्राप्ति हो ।

परिवार का निर्माण बच्चों के निर्माण से प्रारम्भ होता है । बच्चों का समुचित निर्माण तभी सम्भव है, जब हमारे उतने ही बच्चे हों जितनों का ठीक से पालन और देख-रेख की जा सके, जिनको शिक्षित और सुयोग्य बनाने के लिये हमारे पास साधन हों । परिस्थिति से परे अनावश्यक बच्चे पैदा करते जाने वाला गृहस्थ लाख प्रयत्न करने पर भी अपने परिवार का वांछित निर्माण नहीं कर सकता । जिस बोझ को उठाया ही नहीं जा सकता उसको लक्ष्य तक नहीं ले जाया जा सकता । इसलिए परिवार-निर्माण का मुख्य आधार छोटा तथा नियोजित परिवार ही मानकर चलना चाहिए ।

बच्चों को केवल भोजन-वस्त्र दे देना और उनकी शिक्षा के लिये प्रबन्ध कर देने मात्र से उनका निर्माण नहीं हो सकता । स्कूलों में बच्चों को केवल पुस्तकीय शिक्षा ही मिल पाती है । आचरण की शिक्षा, गुण, कर्म तथा स्वभाव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की शिक्षा जो उनके निर्माण के लिए अत्यावश्यक है, वह आज के शिक्षालयों में नहीं मिलती है ।

बच्चों के निर्माण में पिता का व्यक्तिगत आचरण बहुत महत्व रखता है । बच्चे सहज ही अनुकरणशील होते हैं, वे जैसा पिता को करते देखते हैं, वैसी ही सीख लेते हैं । अत: पिता को अपना रहन-सहन, आचार-विचार और स्वभाव उसके अनुकूल रखना चाहिए, जिस आदर्श में वह अपने बच्चों को ढालना चाहता है । यदि पिता अपने इस महान् दायित्व को समझे और अपने को त्याग, प्रेम, परिश्रम, पुरुषार्थ, सदाचार के आदर्श के रूप में प्रस्तुत करे तो कोई कारण नहीं कि उसके बच्चे वैसे न बन जायें । जो पिता स्वार्थी, क्रोधी, कर्कश, और व्यसनी, विलासी होता है, वह न तो आदर का पात्र होता है और न उसके बच्चे ही अच्छे बन पाते हैं ।

माता के व्यक्तिगत आचरण का प्रभाव कन्याओं पर विशेष रूप से पड़ता है । जो माताएँ अधिक साज-सज्जा, शृंगार, फैशन, पाउडर, लिपिस्टक और गहनों में रुचि रखती हैं और सास, ननद, देवरानी, जिठानी आदि से लड़ती-झगड़ती रहती हैं, उनकी कन्याएँ भी फैशनेबुल, छबीली और विलासप्रियता की शिकार बन जाती हैं और उनके स्वभाव में भी विवाद, असहयोग और कलह के अंकुर उग आते हैं । माता-पिता को चाहिए कि परिवार के सारे सदस्यों तथा व्यक्तियों से यथायोग्य प्रेम और आदर का व्यवहार करें, सबके लिये त्याग तथा उदार भावना को प्रश्रय दें, अधिक से अधिक सादगी और शालीनता से रहें, इससे उनके बच्चों पर पारिवारिकता के अनुकूल प्रतिक्रिया होगी । वे प्रेमभाव की मिठास और त्याग का महत्व समझेंगे ।

अभिभावकों के व्यक्तिगत आचरण के साथ परिवार का वातावरण भी बच्चों और सदस्यों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करते हैं । जिन घरों में दिन-रात लड़ाई-झगड़ा तथा आपा-धापी होती रहती है । उस परिवार के बच्चे और अन्य सदस्य परस्पर सहयोग का मूल्य नहीं समझ सकते । उनमें स्वार्थ और कलह की प्रमुखता हो जायेगी । चाचा-ताऊ आदि जो भी सदस्य एक परिवार में रहते हों, जो भी भाई-बहिन एक घर में रहते हों उन सबको अपना तथा अपने बच्चों से अधिक ख्याल भाई-बहन के बच्चों और उन खुद का रखना चाहिए । परिवारों में बच्चों के प्रति अपना-अपना भाव रखने से ही अधिकतर कलह के अंकुर उगते हैं । यदि सब बच्चों को अपना बच्चा और अपने को उनका सगा अभिभावक समझा जाये और वैसा ही प्रेमपूर्ण व्यवहार किया जाये तो कोई कारण नहीं कि सबमें समान रूप से प्रेम-भाव न बना रहे और सारे बच्चे समान रूप से सारे गुरुजनों का आदर न करें अथवा अनुशासन न मानें । सारे प्रौढ़ सभी बच्चों को अपने बच्चे और सारे बच्चे सभी गुरुजनों को अपना शुभचिन्तक और अभिभावक मानकर वैसा ही आचरण करने लगें, तो निश्चय ही परिवार में दृढ़ता और स्थिरता के साथ-साथ सुख-शांति की परिस्थितियाँ रहने लगें ।

इसके साथ परिवार का वातावरण अधिक से अधिक पवित्र तथा शालीन रहना चाहिए । घरों में ऐसा साहित्य, ऐसे चित्र तथा ऐसे मनोरंजन को नहीं धँसने देना चाहिए जिससे बच्चों के स्वभाव अथवा आचरण पर अवांछनीय प्रभाव पड़े । घरों में गन्दी मजाक, तानाकशी और हल्का विनोद अथवा गाली-गलौज का वातावरण नहीं होना चाहिए । रूढ़िवादिता, कुरीतियाँ और कुप्रथाओं के बहिष्कार से बच्चों के निर्माण में बहुत कुछ सहायता मिलेगी । पारिवारिक रूढ़ियों और अन्धविश्वास बच्चों पर इतना बुरा प्रभाव डालते हैं कि वे जीवन भर के लिये पढ़े-लिखे होने पर भी विचारों की स्वतन्त्रता तथा नवीनता से वंचित रह जाते हैं । यह विकृति उन्हें निश्चित रूप से पक्षपाती, दुराग्रही तथा स्वार्थी बना देती है ।

इस प्रकार व्यक्तिगत आचरण, घरेलू वातावरण तथा विचार विकृति दूर कर परिवार का निर्माण कीजिये, आपके घरों से कलह, क्लेश तथा फूट-टूट की दूषित विकृति दूर हो जायेगी और उसके स्थान पर सच्ची पारिवारिकता, सहयोग, प्रेम तथा पारस्परिकता की भावना बढ़ेगी, जिससे परिवार के साथ, समाज तथा देश का कल्याण होगा ।

परिवार भी एक शरीर ही है

परिवार भी एक प्रकार का सामाजिक शरीर ही है । मनुष्य अपनी देह तक ही सीमित नहीं रहता वरन् उसे अपनी स्त्री, बच्चे, भाई-बहिन, माता-पिता आदि को मिलाकर एक कुटुम्ब बनाना पड़ता है । एक घर में एक साथ रहने वाला कुटुम्ब भी एक प्रकार से एक शरीर ही होता है । जिस प्रकार अपनी देह के पालन-पोषण की, दु:ख-सुख की चिंता करनी पड़ती है, वैसे ही परिवार के प्रत्येक सदस्य के बारे में हमें सोचना, समझना और विचार करना पड़ता है । उनका उत्तरदायित्व सिर पर लेना पड़ता है । आर्थिक दृष्टि से भी अपनी देह की ही भाँति उन सबका भरण-पोषण करना, स्वस्थ एवं प्रसन्न रखना, प्रगतिशील बनाना आवश्यक होता है । घर के लोगों का सुखी या दु:खी होना, अच्छा या बुरा होना अपने को उतना ही बुरा या भला लगता है जितना अपने शरीर के अंश का पीड़ित या प्रसन्न रहना ।

परिवार की सुव्यवस्था

हर कोई चाहता है कि उसका परिवार उसकी इच्छानुकूल अच्छे स्वभाव का, अच्छे गुण और चरित्र का हो । पड़ोस का कोई परिवार दु:खी, अस्तव्यस्त या क्लेश-कलह में डूबा हुआ हो तो लोग उसका उपहास करते हुए मजा ले सकते हैं, पर अपने परिवार का एक भी सदस्य यदि बुरे स्वभाव का दिखाई देता है या न करने योग्य काम करता है तो उसका सीधा प्रभाव अपनी आर्थिक स्थिति पर, प्रतिष्ठा पर, संगठन एवं व्यवस्था पर पड़ता है इस गड़बड़ी से अपने को वैसा ही कष्ट होता है जैसा शरीर के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किसी अंग के ठीक तरह काम न करने पर होता है । इसलिए हर किसी की आकांक्षा यह रहती है कि परिवार की भीतरी व्यवस्था और क्रिया प्रेम, सच्चाई, सेवा, सद्गुण, पुरुषार्थ, मितव्यता के आधार पर चले । घर का कोई सदस्य बाहर वालों को धोखा देकर कमाई कर लाये, चोरी-चालाकी करे, झूठ बोले, ठगे इसे तो प्रसन्नतापूर्वक सहन कर लिया जाता है, पर घर के भीतर परिवार के सदस्य एक दूसरे के प्रति ऐसा ही व्यवहार करने लगें तो अव्यवस्था और क्लेश का वातावरण उत्पन्न हो जाता है । कोई यह नहीं चाहता कि मेरी स्त्री व्यभिचारिणी बने, मेरा पुत्र घर में से चोरी करके ले जाया करे, बच्चे आपस में लड़ा करें, एक भाई दूसरे से सहानुभूति न रखे । कारण स्पष्ट है कि मानव-स्वभाव के दुर्गुण निश्चित रूप से कष्टकारक प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं ।

दुर्गुणों का विशाल क्षेत्र

जो दुर्गुण घर के भीतर किसी सदस्य में प्रवेश पाकर घर की सारी व्यवस्था को अस्त-व्यस्त कर देते हैं, वे ही दुर्गुण समाज के व्यापक क्षेत्र में अशांति उत्पन्न करते हैं । यदि अपने घर का कोई सदस्य बाजार से सौदा मँगाने पर उसमें से पैसा बचा लेता है, गलत हिसाब बता देता है, तो उसका प्रभाव घर की आर्थिक स्थिति पर पड़ता है और वह व्यक्ति घर के अन्य लोगों का अविश्वासपात्र बन जाता है एवं बड़ा आर्थिक उत्तरदायित्व सौंपे जाने के अयोग्य माना जाता है । यही बात जब बढ़ती है तो वह पैसे चुराने वाला लड़का बड़े होने पर यदि व्यापारी है तो अपने साझेदार से चोरी करता है, ग्राहकों को कम नापता-तौलता है अथवा यदि नौकर है तो रिश्वतखोरी, समय की चोरी आदि बुराइयाँ पैदा करता है । ऐसे दुश्चरित्र लोगों की बात आखिर खुलती ही है । लोगों की आँखों में वह घृणा का पात्र बनता चला जाता है, अविश्वासी बनता है और फिर उसे सच्चे मन से प्यार करने वाला कोई नहीं रह जाता । शिष्टाचारवश उससे मीठी बातें लोग कर सकते हैं पर जब भी सच्ची सहायता का वक्त आता है तब सभी मुँह छिपा जाते हैं । भीतर दबी हुई घृणा ऐसे समय में आमतौर से असहयोग के रूप में प्रकट होती है । कभी तो उसके मित्र ही उसके प्रति दबी हुई घृणा का अप्रत्यक्ष प्रतिशोध लेते हैं और मुसीबत के समय सहायता करने की अपेक्षा अनुकूल अवसर आया जानकर चोट भी करते हैं ।

दूसरों के दुर्व्यवहार का कारण

जिस पर मित्रों ने कुसमय में चोट की है वह समझता है मेरे साथ दुर्व्यवहार किया गया, अनीति बरती गई, मित्र शत्रु बन गये । पर सच बात यह है कि उसके मित्र थे ही नहीं, केवल ऊपरी शिष्टाचार बरतने वाले चापलूस लोग थे जो परीक्षा के समय असली रूप में प्रकट हो गए । सच बात यह है कि किसी बेईमान का कोई सच्चा मित्र नहीं होता । स्वार्थ, लाभ या मजबूरी जब तक एक रस्सी में बाँधे रहती है तब तक लोग बेईमान के साथ बँधे रहते हैं और जब भी अवसर मिलता है तब रस्सी तोड़कर भागते हैं । चोर भी यह नहीं चाहते कि उसका साथी चोरी के माल में हिस्सा बाँटते समय चोरी, बेईमानी करे । डाकू भी यह नहीं चाहते कि उनके साथी उन्हीं के घर पर डाका मारें । व्यभिचारी व्यक्ति इस कुकर्म में दिन-रात साथ रहने वाले लोगों से भी यह आशा नहीं करते कि वे उसी की बहिन, बेटी या पत्नी को कुमार्गगामी बनावें । जब कभी इसमें व्यतिक्रम होता है तभी मित्रता शत्रुता में बदल जाती है । इसका अर्थ यह हुआ कि ईमानदारी ही एकमात्र ऐसा तत्व है जिसके ऊपर मित्रता टिकी रह सकती है, सहानुभूति उपलब्ध होती रहती है और समय पर दूसरे लोग उस श्रद्धा से प्रेरित होकर बड़ी से बड़ी सफलता प्राप्त कर सकते हैं । यह स्पष्ट है कि कोई व्यक्ति यदि इस संसार में बड़ी सफलता प्राप्त कर सका है, तो उसका सर्वोपरि कारण उसके मित्रों की सहायता ही रहा है । जिसे यह नहीं मिल सकी वह कितनी ही बड़ी योग्यता या क्षमता सम्पन्न क्यों न रहा हो कभी कोई बड़ी सफलता प्राप्त नहीं कर सका है । झूठे और चोर प्रकृति के मनुष्य कभी-कभी कुछ सफलता प्राप्त कर तो लेते हैं पर वह होती बहुत ही क्षणिक एवं स्वल्प है । जैसे-जैसे लोग उससे सावधान होते जाते हैं, बचने की कोशिश करते हैं, वैसे ही वैसे उसकी सफलता का क्षेत्र सिकुड़ता चला जाता है और अंततः असफलता एवं दुर्गति ही उसके हाथ रह जाती है ।

अपनी ही दुर्गति के निमित्त कारण

कोई यह न चाहेगा कि उसका लड़का इस प्रकार लोगों का घृणास्पद, मित्रहीन एवं अंततः दुर्गति का अधिकारी बने । पर अपने बच्चे का भविष्य अंधकारमय बनाने की प्रक्रिया हम उसी दिन से चालू कर देते हैं जिस दिन कि बाजार से साग-भाजी खरीदने में पैसे बचाने की भद्दी आदत को हम उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं और उसे एक हलकी-सी बात मानते हैं । बचपन में यह आदत दो-चार पैसों से शुरू होती है, पीछे स्कूल जाते समय वह कापी, किताब के नाम पर बैठती है और अंततः जेवर, रुपये चुराने या लड़-झगड़ कर आवश्यकता से अधिक पैसे ले लेने की बात तक जा पहुँचती है । अपव्यय करने की आदत आरम्भ में छोटी होती है । बच्चे दो-चार आना पाकर उसकी बेकार चीजें खरीदते हैं, पीछे उन्हें शौक-मौज की चीजें खरीदना अच्छा लगता है चाहे वह बेकार ही क्यों न हों । कई अच्छी आमदनी के लोग भी सदा कर्जदार और आर्थिक तंगी में बने रहते हैं, क्योंकि उन्हें अनावश्यक खर्च करने, फिजूलखर्ची की बुरी लत लगी होती है । यह लत उन्होंने बचपन में उस समय सीखी होती है, जब घर से उन्हें अनावश्यक खर्च करने के लिए किसी प्रकार पैसे मिल जाते थे और पैसे का मूल्य उनकी दृष्टि में तुच्छ प्रतीत होता था । यदि उन्हें आरम्भ में ही यह समझा दिया गया होता कि पैसा कितने कठोर श्रम से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

कमाया जाता है और उसके सदुपयोग-दुरुपयोग के परिणामों में क्या अंतर है ? तो सम्भवत: बच्चा अपव्यय की बुरी आदतों से बच जाता और उसे कर्जदारी, आर्थिक तंगी से ग्रसित एवं इसके लिए चोरी, बेईमानी करने के लिए विवश न होना पड़ता ।

उज्ज्वल भविष्य की योजना

हम अपने भविष्य के बारे में सोचते रहते हैं । अपने भविष्य को उज्जवल बनाने की योजना बनाते रहते हैं । पर वह योजना तब तक अधूरी ही है जब तक कि हम अपने सारे परिवार के भविष्य को उज्जवल बनाने की बात न सोचें, क्योंकि अकेले अपनी उन्नति होती रहने पर भी पिछड़े हुए कुटुम्बी त्रासदायक ही बने रहते हैं । कोई व्यक्ति कितनी ही आर्थिक, पद, सत्ता या विद्या-बुद्धि के क्षेत्र में उन्नति क्यों न कर ले, जब तक उसका परिवार भी उन्नति के क्षेत्र में कदम-कदम बढ़ाकर न चलेगा तब तक प्रगति सर्वथा अधूरी ही रहेगी । स्त्री, बच्चे चाहे कितने ही छोटे या कम महत्व के क्यों न दीखते हों, वे अपने जीवन के एक अंग होने के कारण निरन्तर हमारी मानसिक शांति या अशांति के कारण बने रहेंगे । इसलिए उनकी ओर भी उतना ही ध्यान देना चाहिए जितना कि हम अपने व्यक्तित्व के सम्बन्ध में रख सकते हैं ।

आमतौर से लोग अपने-स्त्री बच्चे को प्रसन्न रखने या उन्नतिशील बनाने के सम्बन्ध में इतना ही सोच पाते हैं कि समुचित आर्थिक प्रबन्ध हो जाय तो उनकी प्रगति एवं संतुष्टि के लिए पर्याप्त है । बच्चों की फीस, पढ़ाई, कपड़ा, जेबखर्च आदि का प्रबंध होता रहे तो बस बाकी सब कुछ अपने आप हो जायगा । इसी प्रकार धर्मपत्नी के बारे में सोचते हैं कि यदि उन्हें जेवर, कपड़ा, नौकर, आराम आदि का समुचित प्रबंध मिल जाय तो फिर उनके सुखी रहने का पर्याय साधन बन जायगा । इस प्रकार की मान्यता सब प्रकार अधूरी एवं निरर्थक है । किसी भी मनुष्य की प्रसन्नता एवं प्रगति उसे प्राप्त होने वाली भौतिक सुविधाओं एवं वस्तुओं पर निर्भर नहीं वरन् उसके गुण, कर्म और स्वभाव पर निर्भर है ।

गरीबी अभिशाप नहीं

गरीबी में भी कई परिवार स्वर्ग का आनन्द उठाते हैं और कई के यहाँ प्रचुर लक्ष्मी होते हुए भी नरक का वातावरण बना रहता है । कितने ही लोग गरीब घर में जन्म लेकर प्रगति के पथ पर अपने पुरुषार्थ से आगे बढ़े हैं और उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचे हैं । इसके विपरीत कितने ही व्यक्ति अमीरी में पले-पोसे और सब कुछ प्राप्त होने पर भी पूर्वजों से प्राप्त उत्तराधिकार की प्रचुर संपदा को गँवा बैठे हैं । उन्नति के सब साधन मिलने पर भी आगे बढ़ना तो दूर उल्टे अवनति के गर्त में गिरे हैं । इसलिए यह सोचना भूल है कि आर्थिक प्रबंध ठीक होने पर सारा प्रबंध सुखद एवं संतुष्टिदायी रह सकता है । तथ्य यह है कि शांति, प्रगति और समृद्धि मनुष्यों के स्वभाव पर निर्भर रहती है । दृष्टिकोण के गलत या सही होने के कारण ही द्वेष बढ़ता है या प्रेम पनपता है । अच्छी आदतें जहाँ होती हैं वहाँ पराये अपने बन जाते हैं । परायों को अपना बना लेने के सद्गुण जिनके पास हैं सचमुच इस संसार में वे ही अमीर हैं, वे जहाँ-कहीं भी रहेंगे वहाँ उनके मित्र और सहयोगी पर्याप्त मात्रा में पैदा होने और बढ़ने लगेंगे । गुलाब की खुशबू अपने चारों ओर भौंरे और मधुमक्खी जमाकर लेती है । अच्छी आदतें मनुष्य रूपी फूल में खुशबू का काम करती हैं, उनके कारण दूसरे असंख्य लोग मधुमक्खी और भौंरे के रूप में सहायक एवं प्रशंसक बनकर मँडराने लगते हैं । इसके विपरीत बुरी आदतें वह दुर्गन्ध है जिनसे हर किसी की नाक फटती है और हर कोई वहाँ से दूर भागता है ।

क्या अर्थव्यवस्था ही पर्याप्त है ?

हम यदि सचमुच ही अपने परिवार को सुखी बनाना चाहते हैं तो परिवार की आर्थिक व्यवस्था ठीक रखने तक की ही बात सोचकर संतोष न कर लें वरन् परिवार के सदस्यों के स्वभाव को अच्छाई की दिशा में ढालने का प्रयत्न भी उतनी ही तत्परता से करें जितना कि आर्थिक सुविधा जुटाने के लिए करते हैं । माना कि आर्थिक सुविधा के बिना प्रगति रुक जाती है और असुविधा एवं असंतोष का जन्म होता है, माना कि हममें से हर एक को अपना आर्थिक संतुलन ठीक बनाये रखने के लिये शक्ति भर प्रयत्न करना चाहिए पर यह भी मान लेने की ही बात है कि इतने मात्र से किसी का जीवन न तो प्रगतिशील बन सकता है और न शांति का वातावरण ही बन सकता है । आदतें यों देखने में बहुत ही छोटी वस्तुएँ दिखाई पड़ती हैं । कई बार तो उनका कुछ मूल्य और महत्व भी समझ में नहीं आता । पर सच बात यही है कि उन्हीं के ऊपर जीवन की सारी आधारशिला रखी होती है । छोटा-सा बीज ही अनुकूल परिस्थितियों में पाले-पोसे जाने पर विशाल वृक्ष के रूप में परिणित होता है । छोटी-सी आदतें ही मनुष्य के जीवन के विकास या विनाश का एकमात्र आधार होती हैं । विष वृक्ष और अमरफल के जैसे परस्पर विरोधी गुण हैं, वैसे ही प्रतिफल बुरी और अच्छी आदतों के होते हैं । यदि हमें अपने परिवार को सुखी और समुन्नत बनाना हो तो प्रत्येक परिजन में अच्छी आदतें उत्पन्न करने के लिए जी-जान से प्रयत्न करना चाहिए ।

आरम्भ छोटा, अन्त बड़ा

जिस प्रकार साग खरीदकर लाते समय बच्चे की पैसे बचा लेने की आदत आगे बढ़कर उसे चोर, बेईमान, मित्रहीन, बंदीगृहवासी एवं दुर्गतिग्रस्त बना सकती है, उसी प्रकार अन्य बुरी आदतें भी उसके पतन का कारण बन सकती हैं । आलस्य, आवेश, उद्दंडता, कटुभाषण,

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अशिष्टता, शौकीनी, मटरगस्ती, सिनेमाबाजी, बुरी संगति, फिजूलखर्ची, फैशनपरस्ती, चटोरपन, बहानेबाजी समय का दुरुपयोग आदि दुर्गुणों के विषवृक्ष धीरे-धीरे बढ़ते रहने पर एक दिन ऐसे भयानक प्रतिफल उत्पन्न कर सकते हैं जिनके कारण जीवन में असफलता, दुर्दशा, पीड़ा और पश्चाताप के अतिरिक्त और कुछ दिखाई ही न दे । यदि कोई पिता अपने स्त्री, बच्चे के लिए आर्थिक सुविधाएँ तो जुटाता है पर उनकी अच्छी आदतों को बढ़ाने एवं बुरी आदतों को हटाने के लिए प्रयत्न नहीं करता तो उसका परिवार कभी भी शांतिपूर्ण परिस्थितियों में नहीं रह सकता । जिसके घर में क्लेश रहेगा, अनुपयुक्त घटनाएँ और परिस्थितियाँ बनी रहेंगी वहाँ शांति कहाँ रहेगी और जहाँ शांति नहीं वहाँ समृद्धि का अर्थ ही क्या रह जाता है ?

देह के सभी अंग-प्रत्यंगों को जिस प्रकार हमें साथ ही रखना और संभालना होता है, उसी प्रकार परिवार के सदस्यों को भी साथ लेकर चलना होता है । साथियों का सज्जन होना ही स्वर्ग और दुर्जन होना ही नरक माना जाता है । यदि अपने परिजनों की दुर्जनता छुड़ाने और सज्जनता बढ़ाने में हम सफल न हो सके तो इसका दंड हमारी आत्मा हर घड़ी जलन, कुढ़न, खेद, पश्चाताप आदि के रूप में हमें देती रहेगी और एक प्रकार से नरक की आग में हम सदा जलते रहेंगे ।

एक राष्ट्रीय अपराध

परिवार के सदस्यों को दुर्गुणी बनने देना समाज एवं राष्ट्र के साथ अपराध करने के समान है । समाज में अगणित चोर, डाकू, बेईमान, व्यभिचारी भरे पड़े हैं । इन कलाओं को सीखने का कोई विधिवत् विद्यालय कहीं खुला नहीं है । हमारे घर ही इन बुराइयों को सिखाने की पाठशाला होते हैं । बच्चे चुपके-चुपके यहीं से सब कुछ सीखते हैं और यहीं से प्राप्त हुई आदतें उन भयंकर अपराधों का रूप धारण कर लेती हैं । शिक्षा का स्थान स्कूल हो सकते हैं पर दीक्षा का स्थान तो घर ही है । बेचारा अध्यापक गणित, भूगोल, इतिहास आदि को ही पढ़ा सकता है । गुण, कर्म, स्वभाव को उत्तम बनाने की दीक्षा देने का उत्तरदायित्व घर वालों पर है, माता-पिता पर है जिन माता-पिता ने जान या अनजान में बुरी आदतें सिखाकर अपने बालकों को एक दुष्ट नागरिक के रूप में राष्ट्र के सामने उपस्थित किया, उन्होंने सचमुच समाज की एक बड़ी कुसेवा की है । बच्चों का भविष्य बिगाड़ने एवं अपने लिए जीवन भर कुढ़ने का सरंजाम जमा कर लेने का उत्तरदायित्व भी उनका ही मानना पड़ेगा ।

हमारा पूर्ण शरीर परिवार के सभी सदस्यों से मिलकर बना है । इसे स्वस्थ रखना ही हमारा कर्तव्य है । जिस प्रकार अनुपयुक्त विचारों से हमारी देह रोगग्रस्त होती है उसी प्रकार अपने कर्तव्य को भुला देने से, परिवार के प्रति अपना दृष्टिकोण सही न रखने से ही हमारा यह कुटुम्ब-शरीर रोगग्रस्त होता है । पारिवारिक स्वास्थ्य का सुधार भी शारीरिक स्वास्थ्य को सुधारने की तरह पूर्णतया सम्भव है पर इसके लिए हमें अपने को ही सुधारना पड़ेगा, अपनी विचारधारा को ही ठीक करना पड़ेगा । अपने को सुधारने से दूसरे स्वतः ही सुधरने लगते हैं ।

पारिवारिकता अपनाने में ही मनुष्य का कल्याण

परिवार एक संस्था है, जिसमें विभिन्न स्तर के व्यक्तियों का समुदाय न केवल साथ-साथ रहता है, वरन् एक दूसरे के साथ आत्मीयता के सूत्र में बँधता है और कर्तव्य एवं अधिकार की आचार-संहिता का भी परिपालन करता है । इस प्रकार का जन-समुदाय जहाँ भी बनता हो, उसे निःसंकोच परिवार कहा जा सकता है । आवश्यक नहीं है कि यह परिधि थोड़े से अंश-वंश के लोगों तक सीमित रखी जाय । पारिवारिक दृष्टि जितनी छोटी होगी, उतनी ही सड़न पैदा होगी । जहाँ सड़न होती है, वहाँ मक्खी-मच्छरों, कृमि-कीटकों, दुर्गन्धित प्रवाहों एवं विषाणुओं की सेना उपज पड़ती है । परिवार दर्शन को अंश-वंश तक ही रखना और उतने को ही अनावश्यक दुलार एवं वैभव से लादते रहना-उन्हीं के लिए चिन्तित रहना मोह प्रसन्नता के लक्षण हैं । इससे न परिवार के सदस्यों का हित होगा और न संचालक का । संकीर्ण स्वार्थपरता पर आधारित मोह-ग्रस्तता यदि परिवार में पनपेगी तो उससे पक्षपात बढ़ेगा । पक्षपात में कुछ को विशिष्ट मानना पड़ता है और उनकी सुख-सुविधा एवं प्रसन्नता का अधिक ध्यान रखना पड़ता है । यह असन्तुलन आरम्भ होते ही प्रकारान्तर से दूसरों की उपेक्षा होने लगती है । यह उपेक्षा अनीतिमूलक है । परिवार के सदस्यों में उनकी आवश्यकतानुरूप साधनों का न्यूनाधिक अनुमान मिलने से किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती, क्योंकि यह तर्क-संगत और कारणों पर निर्भर है । उस प्रकार की न्यूनाधिक चलती रहती है और किसी को अखरती नहीं, किन्तु जन औचित्य न होने पर भी अमुक को अधिक सुविधा या सम्पदा इस आधार पर दी जाती है कि अमुक अपना है तो स्वभावतः अन्य लोग बिराने हो जाते हैं । इस स्तर का भेद-भाव अन्य सभी में ईर्ष्या, द्वेष, अविश्वास एवं आक्रोश उत्पन्न करता है । विभाजन की पृष्ठभूमि यहीं से बनती है । दरारें पड़ती हैं और वे चौड़ी होती जाती हैं । विघटन का बीजारोपण कुछ के साथ पक्षपात करने से आरम्भ होता है । यह वस्तुओं को कम-अधिक देने तक नहीं प्यार, सहकार और ध्यान देने से भी सम्बन्धित है । एक से घनिष्टता और उपेक्षा का परिचय वार्तालाप और व्यवहार में ही नहीं, रुझान तक में सम्मिलित रहता है । यह अन्तर छिपाये नहीं छिपता । वस्तुएँ छिपाई जा सकती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

हैं पर भावनाएँ नहीं । अस्तु, पारिवारिकता को जीवन्त और सक्षम रखने के लिए साम्ययोग का अभ्यास करना पड़ता है । साम्यवाद की चर्चा आये दिन होती रहती है और उसकी व्याख्या-विवेचना में अनेक अर्थशास्त्रियों और दार्शनिकों के खोजपूर्ण प्रतिपादन प्रस्तुत होते रहते हैं । किन्तु यदि सच्चे साम्यवाद का व्यावहारिक रूप देखना ही हो तो वह परिवार की उस परम्परा में देखा जा सकता है, जिसमें अपने पराये का अन्तर नहीं किया जाता । सभी सदस्यों को अपना माना जाता है । न किसी को विशिष्टता प्रदान की जाती है और न किसी की उपेक्षा होती है । मोह को विष कहा गया है । वह पनपता है तो एक को प्रसन्न करके अनेक को कष्ट करता है । आत्मीयता और संगठन की जड़ों पर मोह की कुल्हाड़ी ही कुठाराघात करती है । अस्तु, प्यार और मोह के अन्तर को समझकर चलना होता है । प्यार सृजनात्मक है । मोह ध्वंसात्मक । प्यार आत्मीयता है और मोह में दुरभिसंधि । परिवार को यदि सुसंस्कृत बनाना हो तो उसके संचालकों को कुछ के प्रति मोह की दृष्टि समाप्त करके सबके प्रति प्रेम की नीति अपनानी होगी ।

समाजवाद की चर्चा बहुत है । उसके स्वरूपों की विवेचना और प्रयोगों की सम्भावना पर मनोरंजक विवाद होता रहता है । पर यदि समाजवाद का व्यावहारिक स्वरूप देखना हो तो वह परिवार-संस्था की सुनियोजित आचार-संहिता के मध्य ही देखा जा सकता है । योग्यतानुसार श्रम, आवश्यकतानुसार ग्रहण की रीति-नीति अपनाने पर ही पारिवारिकता सुसन्तुलित रह सकती है । उपार्जन करने वाले अपनी कमाई घर में जमा करते हैं और उसमें से उतना ही अंश अपने लिए स्वीकार करते हैं, जो नितान्त आवश्यक है । जो सदस्य कमाऊ नहीं हैं, वे भी पारिवारिक सम्पदा का समान लाभ प्राप्त करते हैं । बच्चे, बूढ़े, बीमार कमाते कुछ नहीं, किन्तु खर्च अन्यों के बराबर ही नहीं कई बार अधिक चाहते हैं । उन्हें वह प्रसन्नतापूर्वक दिया जाता है । कमाने वाले का यह दावा नहीं होता कि हम अधिक योग्य हैं, अधिक कमाते हैं, इसलिए हमें सुख-साधन अधिक मात्रा में मिलने चाहिए । चूँकि असमर्थ कम कमाते हैं, अस्तु उन्हें या तो मिलना ही नहीं चाहिए, अन्यथा यत्किंचित देकर टरका देना चाहिए । योग्यता के अनुसार वेतन की नीति ही पूँजीवाद है । इसमें असमर्थों और अयोग्यों के विकास का रास्ता बन्द होता है । 'जिसकी लाठी तिसकी भैंस' के पीछे यही दर्शन काम करता है कि छीन-झपट में जिसका दाँव जितना चढ़ सके, नैतिक नियम की उपेक्षा करके, जो जितना प्राप्त कर सके, अपनी समर्थता के आधार पर उतना ही पाने की स्वेच्छाचारिता बरते । समाज में यही दृष्टिकोण अनीति बढ़ाता और असन्तोष भड़काता है । समाजवादी समाज की संरचना यदि सचमुच ही अभीष्ट हो तो उसे परिवारों की नर्सरी में उगाया और समाज के सुविस्तृत उद्यान में लगाया जाना चाहिए ।

परिवार एक समूचा शासन-तंत्र है । उसे लगाने में प्रशासक को पूरी कुशलता अपनानी पड़ती है । शासन के अनेक पक्ष हैं । उत्पादन, संरक्षण, अभिवर्द्धन, उन्मूलन की अनेक व्यवस्थाएँ सरकार को बनानी पड़ती हैं और उनके बीच सन्तुलन बिठाना पड़ता है । कुशल प्रशासन के लिए ऐसी दूरदर्शिता आवश्यक है, जिसमें सर्वतोमुखी विकास का सन्तुलित उपक्रम भी चलता रहे और ध्वंसात्मक प्रवृत्तियों को खूब-खेलने का अवसर भी न मिले । सरकारों के अनेक मन्त्रालय होते हैं, वे अपने-अपने कार्यक्षेत्र की योजनाएँ बनाते और कार्यान्वित करते हैं । साथ ही यह भी ध्यान रखते हैं कि उनके अत्युत्साह से अन्य विभागों में अवरोध उत्पन्न न होने पाये । शतरंज की चाल चलने में प्रतिपक्षी के आक्रमण से बचाव करते हुए अपनी गोट आगे बढ़ाने का प्रयत्न करना होता है । शासन-तन्त्र भी इसी नीति से चलते हैं । परिवार का आकार छोटा है और देश का बड़ा । फिर भी दोनों के बीच नीतिमत्ता, कुशलता एवं दूरदर्शिता का समान उपयोग करना होता है । अकुशल प्रशासक स्वयं बदनाम होते और देश को बर्बाद करते हैं । इसी प्रकार परिवार संचालन में जहाँ सर्वतोमुखी श्रेय है, वहाँ अपयश भी कम नहीं है । प्रशासन की, नियोजन एवं संचालन की योग्यता ही इस संसार की सबसे बड़ी योग्यता मानी जाती है । मैनेजर, गवर्नर आदि के पद अतिमहत्वपूर्ण माने जाते हैं । हर क्षेत्र में, हर काम में सफलता व्यवस्था बुद्धि पर ही निर्भर रहती है । परिवार के सदस्यों को यही सीखना और सिखाना पड़ता है, कुशल गृह-संचालक स्वयं प्रशासक की भूमिका निभाते हैं और परामर्श में साथ रखकर अन्य सभी सदस्यों को उस कौशल में प्रवीण करते हैं ।

पारिवारिकता एक दर्शन है, जो गृहस्थी के लिए ही नहीं, विरक्तों के लिए भी अपनाये जाने योग्य है । कुमार और कुमारी उसमें बँधे रहते हैं । स्त्री-बच्चों का परिवार, भी परिवार की परिधि में गिना जा सकता है, किन्तु इस महान संस्था को इतने ही लोगों तक सीमित कर दिया जाना सर्वथा आपत्तिजनक है । घर में स्वभावतः कई व्यक्ति रहते हैं और वे कई स्तर के होते हैं । वयोवृद्ध, कामकाजी, प्रौढ़, विद्यार्थी, किशोर, नन्हें-मुन्ने, वयस्क महिलाएँ, छोटे-बड़े बहिन-भाई, विधवाएँ, आश्रितसम्बन्धी आदि कई सम्बन्ध सूत्रों से जुड़े हुए कई व्यक्तियों को मिलाकर एक परिवार बनता है । इन सबकी मनःस्थिति एवं परिस्थिति एक दूसरे से भिन्न होती हैं । कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व भी भिन्न-भिन्न होते हैं । उनकी आवश्यकताएँ एवं अपेक्षाएँ भी एक दूसरे से भिन्न प्रकार की होती हैं । इस सबका तालमेल बिठाना हर एक को उचित सुविधा देना और हर किसी में पनपने वाली सहज विशृंखलता का नियमन करना-देखने में छोटा, किन्तु समझने में बहुत बड़ा काम है । इन ठीक तरह सम्पन्न करने के लिए कुशल प्रशासक की दूरदर्शिता, सन्त जैसी उदार निस्पृहता और माता जैसी ममता चाहिए । इन तीनों का जो समन्वय कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेगा, वही सफल परिवार-संचालक सिद्ध हो सकेगा । अन्यथा काजीहाउस में बन्द बहेलियों को जिस तरह एक ग्वाला भूसा-पानी देता और उछल-कूद करने वालों को डण्डे से पीटता रहता है, उसी प्रकार कोई भी अनाड़ी, अविचारी कुटुम्ब को बढ़ाता और उसकी दुर्गति का भौंड़ा खेल खेलता रह सकता है ।

परिवार एक संस्था है । पारिवारिकता एक दर्शन है । परिवार-व्यवस्था कुशल प्रशासन है और परिवार-निर्माण चेतनात्मक सृजन का उच्चस्तरीय गौरव । जो इसे ठीक तरह निभा सके, उसे अपनी प्रखरता का सर्वांगीण विकास करने में सफलता मिल सकती है, साथ ही उस परिधि में आने वाले जन-समुदाय का भविष्य निश्चित रूप से उज्ज्वल हो सकता है ।

यह तो उस परिवार की बात है, जिसे वस्तुतः घर गृहस्थी कह सकते हैं । इसमें प्रायः अंश-वंश के लोग ही रहते हैं । संकीर्णता के इस युग में तो संयुक्त परिवार एक प्रकार से टूटते ही जा रहे हैं । पाश्चात्य देशों में उनका सफाया हो गया । आगे देश की सांस्कृतिक परम्परा ने उस ढाँचे को अभी भी खड़ा तो रखा है, किन्तु आपाधापी और अव्यवस्था के कारण वे भी टूटते और बिखरते ही जाते हैं । मनुष्य जाति के भाग्य निर्माण में सर्वसमर्थ इस संस्था को पुनर्जीवन तथा प्रखर जीवन्त बनाने के लिए कुछ ऐसा कदम उठाना होगा, जिसमें व्यावहारिकता, सुगमता, सम्भावना एवं शालीनता के सभी तत्वों का समुचित समावेश है । रचनात्मक प्रयासों में यही सर्वोपरि है । चूँकि इनमें धूमधाम, उछल-कूद और विज्ञापन भी नहीं है, इसलिए उथली मनोभूमि के लिए इसमें कोई आकर्षण नहीं है । घर-परिवार की औरतों के माथे मढ़ दिया जाता है । इस छोटे काम को उन्हें ही करना चाहिए ऐसा सोच लिया जाता है । मर्द कमाते हैं, उन्हें उसी से फुरसत नहीं, फिर वे क्यों घर गृहस्थी की ओर ध्यान दें ? यही दलील आज जन-जन के मन में बसी हुई है । इस दृष्टिकोण को बदला जाना चाहिए । परिवार-संस्था के व्यक्तित्व को प्रखर एवं समाज को समर्थ बनाने की तरह ही परिवार को सुसंस्कृत बनाने की दिशा में अपने चिन्तन एवं प्रयास को गतिशील होना चाहिए ।

परिवार-दर्शन का व्यापक विस्तार ही आत्मिक और भौतिक प्रकृति का केन्द्र बिन्दु है । विश्व परिवार की, विश्व नागरिकता की मान्यता से जन-जन को अनुप्राणित करना आवश्यक है । व्यक्तिवादी संकीर्ण स्वार्थपरता से पिण्ड छुड़ाने के लिए उसके स्थान पर समष्टिवाद की सहकारिता प्रधान नीति को मान्यता देनी होगी । वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना ही आत्मीयता का विस्तार कर सकती है और उसी आधार पर सुख-दुःख को बाँटने की, जिओ और जीने देने की, मिल-बाँटकर खाने की सदाशयता पनप सकती है । जाति, धर्म, भाषा, देश आदि के नाम पर जिस संकीर्णता का इन दिनों उद्धत परिपोषाण हो रहा है, उसी की प्रतिक्रिया आक्रमण, शोषण, अपहरण के रूप में दृष्टिगोचर होती है । युद्धों की पृष्ठभूमि यही है । अपने वर्ग को अधिक श्रेय सुविधा दिलाने के लिए ही छोटे या बड़े युद्ध लड़े जाते हैं । देशभक्ति, सम्प्रदाय-भक्ति, भाषा-भक्ति आदि की कट्टरता जितनी प्रबल होती है, उतना ही पक्षपात पनपता और विद्वेष भड़कता है । व्यापक अशान्ति का यह बहुत बड़ा कारण है । इसका निवारण वसुधैव कुटुम्बकम् की, विश्व परिवार की धारणा से ही सम्भव हो सकता है । आर्थिक शोषण, धर्मोन्माद, भाषा विग्रह, जाति पक्ष, देशों का देशों पर आक्रमण जैसे कारण ही संसार में अशान्ति का कारण बने हुए हैं । उनके मूल में वर्ग-वर्ग के बीच जड़ जमाने वाले पक्षपात और पराया धन ही है । जब तक यह प्रवृत्ति बनी रहेगी, तब तक विग्रहों का अन्त किसी प्रकार सम्भव नहीं ।

समाज-संरचना के जितने तत्व एवं आधार हैं, उनमें सामूहिकता, सहकारिता को ही प्रधान मानकर चलना होगा । आदि मानव और सभ्य-मानव की मध्यवर्ती शृंखला सामूहिक सहकारिता अपनाये जाने की दूरदर्शिता भर है । संकीर्ण व्यक्तिवाद ही मनुष्य को स्वार्थी एवं निष्ठुर बनाता है । उसी का बढ़ा हुआ रूप अपहरण, आक्रमण है । अपराधों के मूल में लालच की दुष्प्रवृत्तियाँ ही काम करती हैं । संक्षेप में यह अनुदारता और कुछ नहीं, मनुष्य द्वारा अपनाये गये एकाकीपन की प्रतिक्रिया भर है । समाज में अनैतिकताएँ अवांछनीयताओं के अनेकानेक स्वरूप, विविध-विधि संकट, विग्रह एवं सन्ताप उत्पन्न करते देखे जाते हैं । यह अनीति और अनौचित्य भी मौलिक दुर्गुण नहीं है । दूसरों का दुःख-दर्द समझने, दूसरों के सुख में प्रसन्न न हो पाने की शालीनता का अभाव ही ऐसी मनोवृत्ति गढ़ देता है, जिसे पाशविक या पैशाचिक कहा जा सके । समाज में अनेक कुप्रथाएँ प्रचलित हैं । लोग इन कुरीतियों से होने वाले दुष्परिणामों को भी समझते हैं । फिर उन्हें सहन क्यों करते हैं, बदलते क्यों नहीं । इन प्रचलनों में सहयोग क्यों देते रहते हैं ? उन्हें अपनाते क्यों हैं ? इन सभी प्रश्नों का उत्तर एक है उनके कारण उत्पन्न होने वाले संकटों के प्रति सम्वेदनशील न होना ।

समाज में जितने ही परम्परागत, अनीतिजन्य, आक्रमण स्तर के अनौचित्य हैं, वे सभी निष्ठुरता की कीचड़ से उपजे हैं । निष्ठुरता और कुछ नहीं, उदारता के अभाव का ही दूसरा नाम है । समाज जिन कारणों से टूटता और गलता जा रहा है, उसे तत्वतः परिवार-दर्शन की अवमानना का ही प्रतिफल कहा जा सकता है ।

व्यक्तित्वों का पतित और समुन्नत होने का जहाँ तक प्रश्न है, वहाँ विश्लेषण-विवेचन करने पर इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि जिन आदर्शों पर परिवारों का गठन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

और सुसंचालन होता है, उन्हें भुला देने पर व्यक्ति उद्दण्ड, उच्छृंखल एवं दीन आलसी बनता है । जिन्हें सुसंस्कृत वातावरण में पलने का अवसर नहीं मिले, जो कुसंग में घिरे रहें, जिन्हें श्रेष्ठ सज्जनों का स्नेह, सहयोग नहीं मिल सका, उन्हें ही पतन के गर्त में गिरना पड़ता है । अभाव, अज्ञान, असम्मान और अवसाद की लानत ऐसे ही लोगों पर छाई रहती है । संक्षेप में व्यक्ति एक सामाजिक इकाई है । उसका उत्थान जिन सद्गुणों पर निर्भर रहता है, वे भी उसे सम्बद्ध वातावरण से ही उपलब्ध होते हैं । घुमा-फिराकर बात वहीं आ गई है कि व्यक्ति का उत्थान-पतन जिन परिस्थितियों का प्रतिफल है, वे उसके घर-गृहस्थी के अन्तर्गत अथवा व्यवहार-सम्पर्क के अन्तर्गत बने हुए उस वातावरण की देन हैं, जिसे छोटा या बड़ा परिवार ही कहा जा सकता है ।

परिवार स्वयं ही एक आनन्द-उल्लास, संतोष, समाधान, निर्वाह, सहयोग जैसी सुखद सम्वेदनाओं एवं परिस्थितियों का भरापूरा गुलदस्ता है । उस कल्पवृक्ष की छाया में सभी सदस्यों की अपने-अपने ढंग की विभूतियों से लाभान्वित होने का अवसर मिलता है । पति-पत्नी गृहस्थ के बन्धनों में बँधकर एक प्रकार का रसास्वादन करते हैं । भाई-भाई दूसरी तरह का, बहिन-बहिन तीसरी तरह का, भाई-बहिन चौथी तरह का, माता-सन्तान पाँचवीं तरह का, बालक और अभिभावक छठी तरह का, वृद्ध सातवीं तरह का, अतिथि-आगन्तुक आठवीं तरह का, पड़ोसी-सम्बन्धी नौवीं तरह का । इन रसास्वादनों को कल्पना सम्वेदना की अनुभूति से घर के सभी सदस्यों की आपबीती से भी बढ़कर अन्य बीती की गुदगुदी का आनन्द मिलता रहता है । पोषण, सुरक्षा, सुविधा, सहायता, शिक्षा की अनेकानेक उपलब्धियाँ हर किसी को मिलती हैं । साथ ही अनुशासन, उत्तरदायित्व और शिष्टाचार के निर्वाह का ऐसा अभ्यास बनता है, जिसके बिना मनुष्य का स्तर वनमानुष से बढ़कर नहीं हो सकता । सभ्यता और संस्कृति का आरम्भिक और अमिट प्रभाव छोड़ने वाला विद्यालय परिवार का वातावरण ही है ।

इन समस्त तथ्यों को एक सूत्र में पिरो देने से प्रतीत होता है कि परिवार-संस्थान ऐसा सुरम्य उद्यान है, जो अपनी अनुपम शोभा-सुषुमा से न केवल स्वयं गौरवान्वित रहता है, वरन् सम्बद्ध लोगों को भी ऐसे मधुर फल चखाता है, जिनकी तुलना अन्य क्षेत्रों में मिलने वाली उपलब्धियाँ से हो ही नहीं सकती । खेद एक ही बात का है कि इन दिनों परिवार-दर्शन को जितनी दुर्गति का शिकार होना पड़ा है, उतना इतिहास में इससे पूर्व कभी नहीं हुआ ।

समय आ गया है कि परिवार-निर्माण के लिए कुछ विशेष और बड़े कदम उठाये जायें । आवश्यक वातावरण बनाने के लिए पिछले दिनों भी महिला-जागरण अभियान के अन्तर्गत यथासम्भव कुछ किया जा रहा है । उससे पृष्ठभूमि बनी और आधारशिला रखी गई, नींव भरी जा चुकी, अब भव्य भवन का निर्माण-कार्य आरम्भ करने की बेला है । इस शुभ मुहुर्त में सभी परिजनों को विशेष प्रयत्नों के लिए कटिबद्ध, संकल्प अग्रसर होना चाहिए ।

परिवार की महिमा और गरिमा बनाए रखें

लौकिक-जीवन में मनुष्य को अनेक कठिनाइयों, समस्याओं और उलझनों का सामना करना पड़ता है । ये गलतियाँ मनुष्य को मानसिक रूप से थका डालती हैं और कभी जीवन को नीरस तथा बोझिल भी बना देती हैं यदि मनुष्य पर पारिवारिक उत्तरदायित्व न हों तो इन चुनौतियों का सामना भी न कर पाये और इन्हें उत्पन्न होने की नौबत भी न आने दे । जबकि प्रगति के लिए संघर्ष करना और प्रतिकूल परिस्थितियों की चुनौतियाँ स्वीकार करना, उनका मुकाबला करना अनिवार्य है । उदाहरण के लिए, कोई व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होना चाहता है । इस महत्वाकांक्षा का मूल अपने परिवार को सुखी रखने की भावना ही है अन्यथा एकाकी व्यक्ति थोड़े से समय और थोड़े से श्रम द्वारा अपनी आवश्यकताएँ पूरी कर सकता है । लेकिन जब परिवार का दायित्व साथ आकर जुड़ जाता है तो अधिक श्रम और अधिक समय लगाने की आवश्यकता होती है । यही नहीं, व्यक्ति आर्थिक उत्कर्ष के लिये नयी-नयी योजनाएँ भी बनाने लगता है, उन्हें क्रियान्वित करने के उपाय ढूँढ़ता रहता है तथा क्रियान्वयन में आने वाली कठिनाइयों को हँसकर झेलने के लिए तैयार रहता है ।

इस अर्थ में परिवार मनुष्य को प्रगति की प्रेरणा देता है । मनुष्य ने जब से परिवार बनाना सीखा, तभी से मानव-सभ्यता का विकास हुआ अन्यथा जब वह आदिम स्थिति में रहता था तो पेड़ों पर या गुफाओं में सो लेता, शिकार करके अपना पेट भर लेता तथा नितान्त आदिम पाशविक ढंग से अपनी गुजर-बसर कर लेता था । सर्वप्रथम जब किसी मनुष्य को घर बसाकर रहने की सूझी होगी, तब उसे अपना परम्परागत जीवन-क्रम बदलना पड़ा होगा और उसे जीविका-उपार्जन के लिए कोई नियमित व्यवसाय अपनाने के साथ-साथ पत्नी-बच्चों की सुरक्षा के प्रबन्ध की बात भी सोचनी पड़ी होगी । उसी बिन्दु से मानवीय सभ्यता की प्रगति आरम्भ हुई और आज हम उस बीज से अंकुरित हुए वृक्ष को उन्नत सभ्यता और संस्कृति के रूप में देख रहे हैं, इसीलिए डा० बरनार्ड हेल्डर ने कहा है, कदाचित् मनुष्य ने परिवार बसाने की न सोची होती तो हम आज इस स्थिति में न रह पाते, क्योंकि परिवार में पत्नी-पुरुष की समस्त प्रेरणाओं और बाहरी गतिविधियों को जाग्रत करती है । वह अपने साथ-साथ पति को भी परिवार सहित ऊँचा उठने तथा आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती है । यदि आदमी ने घर न बसाया होता

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तो इसमें जरा भी शक नहीं है कि वह आज भी पेड़ों पर उछलता फिरता और गुफाओं में निवास करता ।

लेकिन यह सब तभी सम्भव हुआ है, जबकि पति-पत्नी स्वार्थ और संकुचितता को छोड़कर एक दूसरे के लिए अधिक से अधिक त्याग करने और उदारता बरतने के लिए तैयार रहते हैं । पारिवारिक विषयों पर लिखने वाले एक लेखक का कहना है -''गृहस्थी एक साझे की दुकान है । इस दुकान के दो प्रधान साझेदार हैं-स्त्री और पुरुष । यह दुकान तभी फलती-फूलती और लाभ देती है, जबकि यह दोनों साझेदार एक दूसरे के स्वभाव, प्रकृति, गुण, दोष, आवश्यकता और विशेषता को समझते हों । एक-दूसरे के स्वभाव ज्ञात न होने से उनका साझा भली-भाँति नहीं चल सकता ।'' ऐसा इसीलिए है कि प्रकृति ने स्त्री और पुरुष को किसी स्वतन्त्र इकाई के रूप में नहीं रचा है । उन दोनों के संयोग-समन्वय से ही एक इकाई का निर्माण होता है । जिस प्रकार धन और ऋण विद्युत के तारों को मिलने पर ही कोई विद्युत यन्त्र चलता है उसी प्रकार मानवीय व्यक्तित्व या पारिवारिक सुव्यवस्था का निर्माण पति-पत्नी के परस्पर त्याग, उत्सर्ग और उदार व्यवहार से ही होता है ।

परिवार को एक तपोभूमि आश्रम-स्थली और पुण्यधाम की गरिमा देने का यही कारण है । स्वतन्त्र रूप से पुरुष और स्त्री अपूर्ण हैं । क्योंकि विधाता ने उनके व्यक्तित्व को अपने आप में पूर्ण नहीं रचा । उनके व्यक्तित्व में एक अभाव, एक कमी और एक त्रुटि रखी है । उस कमी की पूर्ति वे परिवार-संस्था का निर्माण करके ही कर सकते हैं और एक दूसरे के उत्कर्ष में सहायक हो सकते हैं । स्त्री के स्वभाव का विश्लेषण इस प्रकार किया गया है-''स्त्री में लज्जाशीलता, चारुता, सहज ज्ञान, कोमलता, सूक्ष्मता और भावुकता जैसे गुणों का बाहुल्य रहता है । वे मानसिक संवेगों को तीव्रता से अनुभव करती हैं । वे स्नेह-सरोवर की मीन हैं, उन्हें रूपलावण्य की अनुपम राशि प्रदान की गई है । शान्तिप्रियता, स्नेहशीलता और धैर्य की मात्रा भी उनमें काफी है ।

इसी प्रकार पुरुष-स्वभाव की विशेषताओं का विश्लेषण इस प्रकार किया गया है-''पुरुष की प्रकृति आक्रामक गुणों से भरी पड़ी है । उसमें शक्ति, क्रोध, कार्यदक्षता तथा अहं की प्रधानता है । क्रियाशीलता और प्रभुता का प्रदर्शन उसके प्रमुख गुण हैं । वह स्वभावतः मजबूत, निर्णायक, प्रामाणिक, स्वाभिमानी, प्रचण्ड, उग्रदाता, उदार और कठोर परिश्रमी होता है ।''

इन विश्लेषणों के बाद यह सिद्ध हो जाता है कि पुरुष क्रियाशक्ति प्रधान है तो स्त्री के स्वभाव में नियन्त्रण करने की सामर्थ्य है । अकेली क्रिया ही क्रिया हो तो कहीं भी, किसी भी दिशा में कोई प्रगति नहीं हो पाती, दिशाहीन और किनारों को तोड़कर उफनती नदी जिस प्रकार विनाश ही उत्पन्न करती है, उसी प्रकार अनियन्त्रित और अस्थिर क्रियाशक्ति से भी कोई सृजनात्मक परिणाम प्राप्त नहीं किये जा सकते । अतएव पौरुष के साथ उसे दिशा देने वाली व्यावहारिक बुद्धि भी चाहिए और उस व्यावहारिक बुद्धि का प्रतिनिधित्व करती है, स्त्री जो प्रेमपूर्वक अपने पति पर शासन करती है तथा उसे दिशा और दायित्व का बोध प्रदान करती है ।

त्याग और समर्पण की भावना से प्रेरित होकर आजीवन एक दूसरे के साथ निभाने वाले पति-पत्नी अपनी इन्हीं विशेषताओं द्वारा एक दूसरे को ऊँचा उठाते हैं । पर आजकल पारिवारिक जीवन विभिन्न समस्याओं और विसंगतियों से ग्रस्त हो गया है । लोग अभीष्ट सुख-शान्ति का अनुभव अपने परिवार में नहीं कर पाते । पति घर में आता है तो उसे पत्नी से शिकायत रहती है कि वह अच्छा खाना नहीं बनाती, उसका कोई काम तैयार नहीं रखती, बच्चों को ठीक से नहीं नहलाती-धुलाती आदि । पत्नी को अपने पति से शिकायत रहती है कि वह उसका समुचित ध्यान नहीं रखता । वक्त पर उसकी जरूरतों को पूरा नहीं करता, अच्छे कपड़े लाकर नहीं पहनाता । पुत्र को अपने पिता से शिकायत रहती है कि वह उसकी माँगों को पूरा नहीं करता । पिता को पुत्र से उपेक्षा मिलने की शिकायत रहती है । इस प्रकार परिवार का प्रत्येक सदस्य दूसरे सदस्य से कोई न कोई शिकायत करता ही रहता है ।

परिवार जहाँ सुख-शान्ति का केन्द्र रहना चाहिए, वहाँ सदस्यों को एक दूसरे से शिकायत क्यों रहती है ? इस पर विचार करना चाहिए, अन्यथा परिवार-संस्था की महत्ता एवं उपयोगिता ही समाप्त हुई जाती है और इसका प्रभाव प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से समूची मानवता पर पड़ता है । वस्तुतः परिवार का वह प्राकृत उद्देश्य ही भुला दिया जाता है, जिसके लिए कि इस संस्था का निर्माण हुआ । उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए, मनीषियों ने परिवार की तुलना एक तपस्थली के रूप में की है और कहा गया है कि गृहस्थ व्यक्ति ही वास्तविक रूप से यज्ञ करते हैं । क्योंकि उसमें सामान्य लौकिक जीवन का निर्वाह करते हुए भी पारमार्थिक दृष्टिकोण का विकास करने की प्रेरणा भरी गई है । विवाह के समय एक दूसरे से अपरिचित दो अजनबी आत्माएँ परस्पर निष्ठा और सहयोग का व्रत धारण करते हुए जीवनयुद्ध में प्रवेश करती हैं तथा कदम-कदम पर उत्तरदायित्वों, कठिनाइयों, संघर्षों तथा प्रतियोगिता के निभाने, उनका सामना करने के लिए कृतसंकल्प होती हैं । इसके साथ ही उस सान्निध्य सामंजस्य को घनिष्ट बनाने के लिए-प्रेम, त्याग और सहिष्णुता के आदर्शों को ग्रहण करती है ।

प्रेम, त्याग और उदारता परिवार के प्राण हैं, जीवन रस है, आत्मा हैं । ये तत्व वर्तमान समय के परिवार से लुप्त होते जा रहे हैं, इसी से विभिन्न विकृतियों को सिर उठाने का मौका मिलता है और सदस्यों को एक दूसरे से शिकायत बनी रहती है । स्वार्थ, त्याग और अन्य सदस्यों के प्रति उदारता-पारिवारिकता का पहला लक्षण है और खेद है कि आज परिवार में लोग दूसरे की इच्छाओं को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रधानता देने के स्थान पर अपने स्वार्थ को पूरा करने की हठधर्मियाँ ही अपनाए हुए हैं । वर-वधू के चुनाव तक में इन्हीं तत्वों को प्रमुखता दी जाती है । लड़के के लिए लड़की का चुनाव करते समय उसकी गोरी चमड़ी तथा सुन्दर नयन-नक्श देखे जाते हैं, तो लड़की के लिए वर का चुनाव करते समय उसकी आर्थिक-स्थिति तथा ऊँचा पद कसौटी का आधार बनाया जाता है ।

लड़की वाले अपनी बेटी के सुख का भविष्य सोचें, यह बात ठीक है । पर इसका मतलब यह नहीं है कि इसे ही कसौटी का मुख्य आधार बना लिया जाय तथा गुणों और संस्कारों की पूर्णतः अवहेलना कर दी जाय । लड़की में भी संस्कार, सद्गुण और अच्छी प्रकृति देखी जाय, अन्यथा गोरी चमड़ी और सुन्दर नयन-नक्श देखकर उसे ही उपयुक्तता का एकमात्र आधार बनाना सर्वथा अवांछनीय है । क्योंकि गृहस्थाश्रम कोई विषयभोग की तृप्ति का आधार तो नहीं है, उसकी गरिमा तो उस शान्ति-कुटीर की तरह है, जहाँ रहकर पति-पत्नी को पारस्परिक सहयोग द्वारा शुद्ध आत्म-सुख, प्रेम और पवित्रता का पुण्य प्रसाद प्राप्त करना है तथा प्रेम और कर्तव्यनिष्ठा का विकास करना है ।

विषयभोग तथा व्यक्तिगत सुख-सुविधा की बात विवाह के बाद तो और भी नहीं सोचनी चाहिए । उस समय तो अपने सम्बन्धों की पवित्रता को सामाजिकता की भावना से सम्बद्ध करना चाहिए । तब समाज के प्रति मनुष्य का कर्तव्य तथा दायित्व और भी बढ़ जाता है । क्योंकि दम्पत्ति समाज का एक पूर्ण अंग हैं, इसलिए दाम्पत्य जीवन को, पारिवारिक-व्यवस्था को प्रेम और त्याग से, उदारता तथा सहिष्णुता से और भी परिपूरित करना चाहिए । परिवार के भारतीय आदर्श को स्पष्ट करते हुए इसीलिए एक लेखक ने लिखा है-"इस तपोभूमि के पुण्य स्वरूप और पुण्य-साधना का मधुर रहस्य जानने के लिए हम हिमाचल की उस तुषार-मण्डित शिला पर चलें, जहाँ हिमालय की किशोरी पार्वती तपश्चर्या में निमग्न हैं । यही भारतीय गृहस्थाश्रम के मंगलमय स्वरूप का प्रथम दर्शन है । गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने के पूर्व रमणी को तपोमय साधना में प्रवृत्त होना पड़ता है, क्योंकि जिस मंगलमय उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह अपने पवित्र सुन्दर जीवन का उत्सर्ग करती है, उसके लिए तपस्या और त्याग की परम आवश्यकता है । कुमार की उत्पत्ति तपस्या की शुद्धि का मधुर फल है, क्योंकि विश्व के परित्राण के लिए, देश के मंगल के लिए, समाज के अभ्युदय के लिए और मनुष्यता की मर्यादा को अक्षुण्ण रखने के लिए ही कुमार के अवतार की आवश्यकता पड़ी ।"

पारिवारिक गरिमा को सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक है कि स्वार्थ की भावना को कम किया जाय और जीवन-साथी के सुख को प्रधानता दी जाय । अपनी माँग के स्थान पर साथी के सन्तोष की भावना जैसे ही विकसित की जायगी, वैसे ही परिवार का महत्व और उसके निर्माण का उद्देश्य सार्थक तथा साकार होता चला जायगा । यह कर्तव्य किसी साथी विशेष का नहीं है, वरन् पति-पत्नी दोनों ही एक दूसरे के निमित्त, त्याग और बलिदान की भावना विकसित करें, दोनों ही एक दूसरे को सुखी देखने का प्रयत्न करें, अपने जीवन-साथी के लिए अधिक से अधिक सचेष्ट रहने को प्रस्तुत हों, तब स्वार्थ और अपनी माँग के स्थान पर उदारता तथा सहिष्णुता का विकास होगा और जीवन-क्रम सुख-शान्ति तथा प्रगति की ओर अग्रसर हो सके ।

सही अर्थों में ऐसे परिवार को ही कर्तव्यनिष्ठ गृहस्थ की संज्ञा दी जा सकती है । इसी प्रकार गृहस्थाश्रम में पति-पत्नी के स्वभाव में एकरूपता आकर पूर्णता की प्राप्ति होती है और परिवार तथा समाज के सुख, समृद्धि तथा प्रगति की आधारशिला तैयार होती है । परिवार की गरिमा को बनाये रखने के लिए स्वार्थ का त्याग ही एकमात्र उपाय है, दूसरा और कोई नहीं ।

हमारा परिवार तथा भिन्न-भिन्न सम्बन्ध

परिवार एक प्रकार का प्रजातन्त्र है, जिसमें मुखिया, प्रेसीडेन्ट तथा परिवार के अन्य सज्जन प्रजा हैं । पिता-माता, पुत्र, बहिन, चाचा-चाची, भाभी, नौकर इत्यादि सभी का इसमें सहयोग है । यदि सभी अपने सम्बन्ध आदर्श बनाने का प्रयत्न करें, तो हमारे समस्त झगड़े क्षण मात्र में दूर हो सकते हैं ।

पिता और पुत्र

एक वृहत आत्मा तथा उसके आत्मांश का सम्बन्ध वही हो सकता है, जो आदि प्रभु तथा पृथ्वीतल की अन्य आत्माओं में परस्पर हो सकता है । आज हम देखते हैं कि पिता-पुत्र में कटुता है । इसका कारण पिता के पुत्र पर डाले गये दूषित संस्कार हैं । यदि पुत्र में दुर्गुण हैं, तो उसका उत्तरदायित्व पिता पर ही माना जायेगा । यदि वह कुछ भी दूरदर्शिता से कार्य लेता, तो पुत्र को किसी भी ढाँचे में परिवर्तित कर सकता था । बिगड़े हुए पुत्रों के पिताओं में दोष है । उसका परिष्कार भी वहीं से होना उचित है । पहिले पिता अपना सुधार करें । तत्पश्चात पुत्रों से उन्नति की आशा करें ।

पिता का उत्तरदायित्व सबसे अधिक है । वह परिवार का अधिष्ठाता है, आदेशकर्त्ता और संरक्षक है । उसके कर्तव्य सबसे अधिक हैं । वह परिवार की आर्थिक व्यवस्था करता है, बीमारी में दवा-दारू, कठिनाई में सहायता, कुटुम्ब की अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करता है । सम्पूर्ण कुटुम्ब उसी की बुद्धि, योजनाओं, योग्यताओं और पथप्रदर्शन पर निर्भर है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्या आप पिता हैं ? यदि हैं तो आप पर उत्तरदायित्व का सबसे अधिक भार है । घर का प्रत्येक व्यक्ति आपसे पथप्रदर्शन की आशा करता है । संकट के समय सहायता, मानसिक क्लेश के समय सान्त्वना और शैथिल्य में प्रेरणात्मक उत्साह चाहता है । पिता बनना सबसे कठिन है क्योंकि इसमें छोटे-बड़ों सभी को इस प्रकार संतुष्ट रखना पड़ता है कि किसी से कटुता भी न हो और कार्य भी होता रहे । घर के सब झगड़े भी दूर होते चलें और किसी के मन में गाँठ भी न पड़े । परिवार के सब सदस्यों की आर्थिक आवश्यकताएँ भी पूर्ण होती रहें और कर्ज भी न हो, विवाह, उत्सव, यात्राएँ, दान भी यथाशक्ति दिये जाते रहें ।

पुत्रों को पिता से कितनी प्रेरणा और पथप्रदर्शन हो सकता है, इस सम्बन्ध में कुछ विद्वानों के अनुभव देखिये । महान आस्ट्रियाई साहित्यकार स्टीफन ज्विग कहते हैं- ''मैं प्रायः औरों के साथ की लम्बी सैर छोड़, फुटबाल का खेल छोड़, मछली का शिकार छोड़, अपने पिता के साथ बाहर बगीचे की चहारदीवारी के किनारे धीरे-धीरे टहलने जाता । वे कभी तो चुप रहते, कभी बीती बातों को सोचते हुए आगे की बातों की चिन्ता करते पर जिस समय वे अपनी विद्या के भण्डार को खोलने लगते और मध्य में चुटकले छोड़ते जाते, उस समय एक अपूर्व आनन्द आ जाता था ।'' ज्विग थोड़ी-सी कठिनाई आ जाने पर पिता के पास जाते । पिता अपने हौसलों और आशाओं को पुत्र के सामने कहते । वह उसे नई प्रेरणा से भर देता था ।

मूर्धन्य मनीषी गेटे कहते हैं- ''मेरी माता की मृत्यु के उपरान्त मैं पिता के पास सोता था । उनका पलंग उनके पढ़ने के कमरे में रहता था, जिसमें एक बहुत छोटा-सा आतिशदान भी था । मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि किस प्रकार वे उन मोटी बेढंगी जर्मन भाषा की पुस्तकों को उठाते थे और उनसे चारों ओर से घिर कर उनमें गड़ जाते थे । पर कभी-कभी ऐसा होता कि बहुत रात गये या सबेरा होते-होते मेरी नींद टूटती और मैं देखता कि आग बुझ गई है, उजाला खिड़की के रास्ते से कुछ-कुछ आ रहा है, उनका सुन्दर गम्भीर मुख झुका हुआ है और उनकी दृष्टि उन्हीं पुस्तकों की ओर गड़ी हुई है । मेरी आहटसुनकर वे मुझे मेरी माँ का रखा हुआ नाम लेकर पुकारते और बिस्तर पर आकर मेरे गरम शरीर को छाती से लगाकर सो रहते । साहित्य के प्रति मेरा लगाव उन्हीं की देन है ।'' इस वृतान्त से हमें उस स्नेह और विश्वास का आदर्श मिलता है, जो पिता-पुत्र में होना चाहिए ।

आज के युग में पिता-पुत्र में जो कडुवाहट आ गयी है वह नितान्त संकुचित है । पुत्र अपने अधिकार माँगता है किन्तु कर्तव्यों के प्रति मुख मोड़ता है । जमीन, जायदाद में हिस्सा माँगता है, किन्तु वृद्ध पिता के आत्म-सम्मान, स्वास्थ्य, उत्तरदायित्व, इच्छाओं पर तुषारापात करता है । पुत्र ने परिवार के बन्धन शिथिल कर दिये हैं । घर-घर में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा अनुशासन विरोध का कुचक्र फैल रहा है । यह प्रत्येक दृष्टि से निन्दनीय एवं त्याज्य है ।

पुत्र पिता से क्या-क्या सीखता है ?

पिता-पुत्र का सम्बन्ध बड़ा पवित्र है । पिता को पुत्र के मनोविकारों की अच्छी जानकारी होती है । उसका पुत्र के साथ तीन प्रकार का सम्बन्ध होता है -(१) पथप्रदर्शक का, (२) तत्व चिन्तक का, (३) मित्र का ।

पिता का सान्निध्य कर पुत्र निरन्तर कुछ न कुछ सीखता है । पिता को चाहिए कि बड़ी सावधानी से जीवन में आने वाले प्रलोभन, कठिनाइयाँ तथा अन्य आवश्यक, जानकारी का परिचय वह पुत्र को करा दे । बड़ा होने पर पुत्र के साथ वही व्यवहार किया जाय, जो मित्र के साथ होता है । पिता-पुत्र के अच्छे सम्बन्धों का गुर यही है कि ज्यों-ज्यों पुत्र बड़ा होता जाय, त्यों-त्यों पिता उस पर अनुशासन कम करता जाय, मित्र बनाने का उपक्रम करे, महत्वपूर्ण बातों में उससे सलाह ले, उसकी राय लेकर रुपया व्यय करे और उस पर यह धाक जमा दे कि वह उसका पूर्ण विश्वास करता है । पिता-पुत्र के स्नेह में यद्यपि मृदुलता कम रहती है, पर विश्वास की मात्रा अधिक रहती है, यद्यपि आवेग कम रहता है, पर विवेक बुद्धि नियन्त्रण, तर्क और विचारशीलता अधिक रहती है, यद्यपि आलम्बन का मृदुल भाव कम रहता है, पर समता की बुद्धि विशेष रहती है ।

बुद्धिमान तथा सुशील पिता से जितना हम सीख सकते हैं उतना सैकड़ों शिक्षकों से नहीं । पिता सबसे बढ़कर हितैषी, शिक्षक है, जिसके पाठ हम न केवल मुख से, वरन् उसके कार्यकलाप, आचार-व्यवहार, चरित्र, नैतिकता सबसे ग्रहण करते हैं । उसके धैर्य, आत्मनिग्रह, कोमलस्वभाव, सम्भावनाओं की तीव्रता, शिष्टता, पवित्रता और धर्मपरायणता आदि गुण का स्थायी प्रभाव पुत्र पर प्रतिपल पड़ता है ।

मुझे स्वयं अपने पिता के पथप्रदर्शन का अनुभव है । मैं जब प्रारम्भिक दिनों का स्मरण करता हूँ, तो मुझे उन्हीं के गुण अपने व्यक्तित्व में विकसित मिलते हैं । अब (सन् १९५१) से तीस वर्ष पूर्व जब मैं एक अबोध बालक था, जमींदार पिता के साथ अपने गाँव में रहा । उन्हीं के साथ सोना, प्रातः जागरण, भजन, पूजा फिर दौड़ और अध्ययन, दूर-दूर की सैर, प्रकृति के अंचल में तैरता हुआ अनुभव मेरे दिल दिमाग में है । कभी मैं देखता देर रात्रि में पिताजी बैठे पुस्तक पढ़ रहे हैं, पेंसिल से निशान लगाते जाते हैं, झट-झट पुस्तकों का रसास्वादन करते जाते हैं । उनकी कापियाँ, लिखने का ढंग, सभी कुछ मेरे मस्तिष्क में एक सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया से घुस गया है । मैं आज बौद्धिक और नैतिक चिन्तन के क्षेत्र में जहाँ तक पहुँचा हूँ, उन्हीं के पदचिह्नों पर चलकर हो सका हूँ । उनकी आदतें और विश्वास हमारे प्रत्येक परिवार के सदस्य में प्रविष्ट हो गये हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पिता का जीवन एक खुली पुस्तक है, जिसका प्रत्येक पृष्ठ खुला रहना चाहिए, जिसकी एक-एक पंक्ति और अक्षर घर के छोटे-व्यक्ति पढ़ सकें और जीवन में उतार सकें । पिता के धार्मिक और आध्यात्मिक संस्कारों का सबसे अधिक प्रभाव पुत्र-पुत्री के आध्यात्मिक जीवन पर पड़ता है । हम उन संस्कारों, मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाओं द्वारा विनिर्मित हुए हैं, जिनका अलक्षित प्रभाव हमारे माता-पिता हमारे ऊपर छोड़ गये हैं ।

माता का प्रभाव

माता स्नेह की साक्षात प्रतिमूर्ति है । उसकी भावनाओं तथा दूध पिलाते समय की आकांक्षाओं से हमारे मनोजगत का निर्माण हुआ करता है । माता बचपन में बालक को जैसी कहानियाँ, आपबीती चुटकले या और बातें सुनाया करती हैं, वे बालक के अन्तर्प्रदेश में प्रवेश करके ग्रन्थियों का निर्माण करते हैं । माता की लोरियाँ विशेष प्रभावशाली होती हैं । बालक अर्द्धनिन्द्रा में निमग्न है । माता लोरी गा-गा कर उसे सुला रही है । यह एक प्रकार की आत्म-प्रेरणा है, जो धीरे-धीरे उसके बनते हुए गुप्त मन पर प्रभाव डाल रही है । इसी से उसका मानसिक संस्थान बनता है । माता की पूजा एक आध्यात्मिक साधन है, जिससे मन को शान्ति प्राप्त होती है । माता भी पुत्र को उन्हीं अंशों तक दबाती है, जहाँ तक उसके 'अहं' पर ठेस न पड़े । वह पुत्र के लिए महान त्याग को प्रस्तुत रहती है । फिर पुत्र के लिए जो कर दे, थोड़ा ही गिना जायेगा ।

पं० रामचन्द्र शुक्ल का मत श्रेष्ठ है । आप लिखते हैं- "पुत्र को माता-पिता के व्यय का, उससे अधिक अनुभव का, उसके उन दु:खों का जिन्हें उसने उनके लिए उठाया है, सर्वदा ध्यान रखना चाहिए । पुत्र को पिता के स्वाभाविक बड़प्पन को स्नेहपूर्वक खुले दिल से स्वीकार करना चाहिए । बहुत से पुत्र ऐसे होते हैं, जो बिल्कुल बुरे, बेकहे और स्नेहशून्य तो नहीं होते, पर वे अपने पिता के साथ मान-मर्यादा का भाव छोड़ इस प्रकार के हेल मेल का व्यवहार रखते हैं मानो उनका गहरा संगी हो । वे उससे चलती बाजारू बोली में बातचीत करते हैं और वे उसके प्रति इतना सम्मान भी नहीं दिखाते जितना एक बिना जाने सुने आदमी के प्रति दिखलाते हैं । यह बेअदबी तिरस्कार से भी बुरी है ।

भाई-भाई का व्यवहार सरस करने के अमूल्य उपाय

भाई-भाई के झगड़ों के कारण एक ही घर में दीवार खिंच जाती है और थोड़ी-सी बात में झगड़ा बढ़ सकता है । भाइयों में पारस्परिक कटुता के कारण प्राय: ये होते हैं-(१) जायदाद का बँटवारा, (२) पिता का एक पर अधिक स्नेह दूसरे का तिरस्कार, (३) एक भाई का अधिक पढ़-लिख सम्पन्न होना, दूसरे की हीनता, (४) मिथ्या गर्व और अपने बड़प्पन की मिथ्या भावना, (५) अशिष्ट व्यवहार, (६) एक भाई की कुसंगति, सिगरेट या व्यभिचार इत्यादि दुर्गुण, (७) उनकी पत्नियों का मन परस्पर न मिलना ।

उपरोक्त कारणों में कोई भी उपस्थिति होने पर बड़े भाई को पूर्ण शान्ति और विवेक से छोटे की मनोवृत्ति का देखभाल, सूक्ष्म अध्ययन करना चाहिए । कभी-कभी तनिक से विवेक बुद्धि और शांति से बड़े काम बनते हैं । गर्मा-गर्मी में आने से अपशब्द उठते हैं, बड़े भाई का आत्मसम्मान एवं प्रतिष्ठा की हानि होती है । यदि एक-दूसरे के लिए थोड़ा-सा त्याग कर दिया जाय, तो अनेक झगड़े तय हो सकते हैं ।

जायदाद के बँटवारे के मामले में किसी बाहरी सज्जन को डालकर उचित बँटवारा कराना और जितना मिले उसी में प्रत्येक को सन्तोष रखना चाहिए । यदि हम थोड़ा-सा त्याग करने को प्रस्तुत रहें, तो कोई कठिनाई आ ही नहीं सकती । यदि पिता एक पुत्र पर अधिक तथा दूसरे पर कम प्रेम प्रकट करते हैं, तो भी व्यग्र होने का कोई कारण नहीं है । पिता के हृदय में सबके प्रति समान प्रेम है । चाहे वे प्रकट एक पर ही करें, वह प्रत्येक पुत्र-पुत्री को समभाव से प्रेम करते हैं । इस प्रकार का दृष्टिकोण रखने से हम अनेक कलुषित और अनर्थकारी विचारों से बच सकते हैं ।

झगड़ा कराने में पत्नियों का विशेष हाथ रहता है । उनमें ईर्ष्या का दुर्गुण बहुत मात्रा में होता है । यदि पत्नियों को शिक्षा दी जावे और कुशलता से स्त्री स्वभाव की इस कमजोरी का ज्ञान करा दिया जावे तो अनेक झगड़े प्रारम्भ ही न हों । एक अच्छा नियम यह है कि पत्नी की बातों में न आया जाय और गलतफहमी से बचा जाय । यदि कोई गलतफहमी आ जाय तो शान्ति से उसे दूर करना उचित है । उसे हृदय में रखना पाप की मूल है । बाहर वालों के कहने में कदापि न आना चाहिए ।

भाई से आपकी आत्मा और रक्त का सम्बन्ध है । दोनों में उसी आत्मा का अंश है, उसी रक्त से उनके शरीर, मन तथा भावनाओं का निर्माण हुआ है । उसमें कटुता का तत्व किसी तीसरे के षड्यन्त्र से होता है । समाज में ऐसे व्यक्तियों की न्यूनता नहीं है, जो परस्पर युद्ध करा दें । अत: उनसे बड़े सावधान रहें ।

भाई आपका सबसे बड़ा मित्र और हितैषी है । बड़ा भाई पिता तुल्य गिना जाता है । छोटा भाई आड़े समय अवश्य काम आता है । सेवा करता है । एक और एक मिलकर ग्यारह बनते हैं । यदि दो भाई मिल-जुलकर अग्रसर हों तो संसार में निर्विघ्न चल सकते हैं । एक-दूसरे के आड़े समय पर काम आ सकते हैं, आर्थिक सहायता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर सकते हैं और एक के मरने पर दूसरे के कुटुम्ब का पालन-पोषण कर सकते हैं । वे भाई धन्य हैं जो मिल-जुलकर चलते हैं ।

छोटा भाई आप में पथप्रदर्शक, हितैषी एवं संरक्षक की प्रतिच्छाया देखता है । उसके लिए आपको वही त्याग और बलिदान करने चाहिए जो एक पिता अपने पुत्र के लिए करता है । पिता की मृत्यु के पश्चात् ज्येष्ठ पुत्र के ऊपर सम्पूर्ण उत्तरदायित्व आ जाता है ।

सन्तान के साथ हमारा व्यवहार

ईश्वर ने जो सन्तान तुम्हें दी है, वह अनेक जन्मों के वरदान और उपहारस्वरूप प्राप्त हुई है । उसे परमेश्वर का अनुग्रह समझकर ग्रहण करना चाहिए । सन्तान के प्रति सच्चा और निष्कपट प्रेम करना चाहिए । यह अनुचित लाड़ या झूठा स्नेह न हो जो तुम्हारी स्वार्थपरता और मूर्खता से उत्पन्न होता है और उनके जीवन को नष्ट करता है ।

तुम यह कभी न भूलो कि तुम्हारे गृह में पदार्पण करने वाले तुम्हारे आत्मस्वरूप ये बालक भावी नागरिक हैं, जो समाज और देश का निर्माण करने वाले हैं । ईश्वर की ओर से तुम्हारा यह कर्तव्य है कि उनकी सुशिक्षा, शिष्टता तथा परिष्कार की समस्या में हम पर्याप्त दिलचस्पी लें ।

तुम अपनी सन्तान को केवल जीवन के सुख और इच्छापूर्ति मात्र की ही शिक्षा न दो, वरन् उनको धार्मिक जीवन, सदाचार और कर्तव्यपालन, आध्यात्मिक जीवन की भी शिक्षा प्रदान करो । इस स्वार्थमय समय में ऐसे माता-पिता विशेषतः धनवानों में विरले ही मिलेंगे, जो संतान की शिक्षा के भार को, जो उनके ऊपर है, ठीक-ठीक परिमाण में तौल सकें ।

जैसा वातावरण तुम्हारे घर का है, उसी साँचे में ढल कर तुम्हारी सन्तानों का मानसिक संस्थान, आदतें, सांस्कृतिक स्तर का निर्माण होगा । जबकि तुम अपने भाइयों के प्रति दयालु, उदार और संयमी नहीं हो, तो अपनी सन्तान से क्या आशा करते हो कि वे तुम्हारे प्रति प्रेम दिखलाएँगे । जब तुम अपना मन विषय-वासना, आमोद-प्रमोद तथा कुत्सित इच्छाओं से नहीं रोक सकते, तो भला वे क्यों न कामुक और इन्द्रिय लोलुप होंगे । यदि तुम माँस, मद्य या अन्य अभक्ष्य पदार्थों का उपयोग करते हो, तो वे भला किस प्रकार अपनी प्राकृतिक पवित्रता और दूध जैसी निष्कलंकता को दूर रख सकेंगे । यदि तुम अपनी अश्लील और निर्लज्ज आदतों, गन्दी गालियाँ, अशिष्ट व्यवहारों को नहीं छोड़ते, तो भला तुम्हारे बालक किस प्रकार गन्दी आदतें छोड़ सकेंगे ।

तुम्हारे शब्द, व्यवहार, दैनिक कार्य, सोना उठना-बैठना ऐसे साँचे हैं, जिनमें उनकी मुलायम प्रकृति और आदतें ढाली जाती हैं । वे तुम्हारी प्रत्येक सूक्ष्म बात देखते और उनका अनुकरण करते हैं । तुम उनके सामने एक मॉडल, एक नमूने या आदर्श हो, जिसके समीप वे पहुँच रहे हैं । इसलिए यह तुम्हीं पर निर्भर है कि तुम्हारी सन्तान मनुष्य हो या मनुष्याकृति वाले पशु ।

पारिवारिक सहकारिता की भावभूमि

प्राणिमात्र में सहकारिता की भावना पायी जाती है । मानवीय प्रगति का सर्वोपरि श्रेय सहकारिता, सहयोग की भावना को है । इसलिए समाज में सहकारी भावना का अधिकाधिक विस्तार आवश्यक है । नागरिकों में सहकारिता के संस्कार परिवार की तद्नुरूप व्यवस्था द्वारा ही गहराई तक जमाये जा सकते हैं ।

जहाँ पारिवारिक सहकारिता की भावना गहरी नहीं होती, वहाँ घर का परिवेश कलहपूर्ण बना रहता है । सहकारिता मनुष्य की प्रवृत्तियों को सन्तुलित एवं नियमित बनाती है । क्योंकि वह अहं के अतिरेक को घटाती है ।

हर व्यक्ति का अपना निजी व्यक्तित्व होता है । उसकी अपनी प्रकृति एवं आदतें होती हैं । जहाँ अपने को ही सब कुछ मान लेने का अहं प्रबल होता है, वहाँ व्यक्तित्व अनगढ़ होने लगता है । क्योंकि व्यक्ति को प्रतिक्षण प्रतिक्रिया करनी है-अपने परिवेश से । परिवेश में अपने से भिन्न हजारों, लाखों व्यक्तित्व होते हैं । हर एक का अहं टकरायेगा, तो गतिरोध पैदा होगा । कार्य एवं प्रगति कुछ भी न हो सकेगी । मनोविज्ञान की भाषा में इसे ही अनुकूलन की असमर्थता कहते हैं । प्रत्येक व्यक्ति एवं प्राणी को अपने परिवेश से अनुकूलन का अभ्यास करना होता है, अन्यथा उसकी प्रगति क्या अस्तित्व तक असम्भव हो जाता है ।

यह अनुकूलन या परिवेश से सन्तुलन बिना सहकार की प्रवृत्ति के सम्भव नहीं । परिवार सबसे निकट का परिवेश होता है । वहाँ सहकारिता न होगी, तो प्रत्येक व्यक्तित्व में गतिरोध पैदा होगा ।

पारिवारिक सहकारिता का अर्थ है व्यक्ति अपनी इच्छाओं, रुचियों, स्वभाव एवं सन्तोष को ही सब कुछ न माने । दूसरे सदस्यों की आकांक्षाओं, रुचियों, हितों, सुख-सुविधाओं एवं आदतों का भी ध्यान रखे ।

परस्पर सहसंवेदन, सहानुभूति, स्नेह, प्रेम एवं सहयोग की प्रकृति घर के हर सदस्य में पैदा की जानी चाहिए । इसका प्रशिक्षण बड़ों द्वारा अपने आचरण से ही हो सकता है, अन्यथा नहीं । जिन घरों में छोटे बच्चे परस्पर मार-पीट, छीना-झपटी करते देखे जाते हैं, वहाँ पता लगाया जाय तो यही ज्ञात होता है कि उस घर में बड़ों में ही सहकारिता-सहयोग एवं स्नेह भाव का अभाव है ।

सहकारिता की प्रवृत्ति उसी परिवार में विकसित हो सकती है, जहाँ नीतियों एवं मर्यादाओं का निर्वाह होता हो । किन्हीं एक दो सदस्यों की मनमानी न चलती हो । जहाँ सभी को विश्वास में लेकर काम किया जाता हो ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सहकारिता का उपयुक्त वातावरण तभी बन सकता है, जब किसी परिवार के सभी वयस्क सदस्यों को आपस में विश्वास हो तथा घर-सम्बन्धी सभी निर्णय उनकी सम्मति प्राप्त कर किये जायें ।

गृह-प्रबन्ध में भी परिवार के हर सदस्य को भागीदार बनाया जाना चाहिए । समय-समय पर सभी लोग एकत्र हों । पारिवारिक गोष्ठी का क्रम बना लिया जाय । उसमें घर की स्थिति, आवश्यकता, कठिनाइयाँ, समस्याएँ आदि पर विचार हो । भविष्य की रूपरेखा से हर सदस्य को परिचित करा दिया जाय, ताकि वह उस योजना एवं कार्य दिशा के प्रति अपनत्व का अनुभव करें । आपस में सलाह हो । शंकाओं का प्रेमपूर्वक समाधान कर दिया जाय । ताकि पारिवारिक प्रगति में अपनी भूमिका हर एक के सामने स्पष्ट रहे । क्या हो सकता है, क्या नहीं हो सकता और क्यों नहीं हो सकता, यह हर एक को ज्ञात रहे, तो सहकारिता का उत्साह उमड़ेगा । जहाँ परिवार के सदस्यों को विश्वास में नहीं लिया जाता, वहाँ वे प्रस्तुत कार्यों का औचित्य नहीं समझते । उन्हें लग सकता है कि हमें तो इस कार्य के लिए हाँका जा रहा है । उनके आत्माभिमान को ठेस लग सकती है और प्रत्यक्ष इन्कार न करने पर भी वे हीला-हवाला, टालम-टोल या सुस्ती बरत सकते हैं । पूरे मनोयोग से नहीं किया गया काम उत्कृष्ट नहीं हो पाता । मनोयोग तभी होता है, जब उसके प्रति अपनत्व का अनुभव हो ।

सहकारिता की भावना वहीं सुदृढ़ होगी, जहाँ प्रत्येक को लगेगा कि परिवार में उसका भी महत्वपूर्ण स्थान है । उसे भी वही स्नेह-सम्मान मिलता है, जो औरों को । जहाँ ऐसा नहीं लगता, वहाँ सहकारिता का भाव धूमिल होने लगता है ।

प्रत्येक सदस्य को समानता की यह अनुभूति हो, इसकी जिम्मेदारी घर के बड़े लोगों-पिता, माँ, बड़े भाई बड़ी भाभी आदि की होती है । सामान्यत: हर माता-पिता अपनी सभी सन्तानों को समान रूप से प्यार करते हैं । किन्तु यह समानता व्यवहार में भी परिलक्षित होनी चाहिए, अन्यथा भ्रान्ति का निर्माण होने लगता है । पास-पड़ौस के लोग तो ऐसी गलतफहमी पैदा करने एवं बढ़ाने में रुचि रखते ही हैं । अत: प्रयास यह होना चाहिए कि ऐसा व्यवहार न होने पाये । अक्सर, असंस्कारी स्त्रियों का असमानतावर्द्धक, पक्षपातपूर्ण व्यवहार; सहकारिता-सहयोग, स्नेह-स्वभाव की भावना को धूमिल कर देता, सम्बन्धों में खटास पैदा कर देता है । यदि नियमित पारिवारिक विचार-विमर्श का क्रम चलता रहे और हर एक की आवश्यकताओं को यथोचित महत्व मिले, हर एक की बात सुनी जाय तथा सभी को विश्वास में लिया जाय, तो ये स्थितियाँ न आयें ।

बड़े आपस में मिलकर निर्णय करें, समान रूप से सभी की आवश्यकताओं का ध्यान रखें । बड़े भाई-बहिन छोटों के साथ स्नेहपूर्ण सहयोगी का भाव रखें । उन्हें काम काज के तरीके समझाएँ-रौब गाँठकर नहीं, स्वयं साथ देकर ही बड़े अपने से छोटों को पढ़ाएँ । उन्हें उचित परामर्श-निर्देश दें । उनसे छोटे अपने से छोटों को पढ़ाएँ ।

खाने-पीने और पहनने की सुविधाएँ सबको समान मिलें । इससे भी सहकारिता का सूत्र सुदृढ़ होता है, क्योंकि सभी को एकता की अनुभूति होती है ।

छोटे बच्चे खाने-पीने की वस्तुओं, खिलौनों आदि के लिये आपस में छीना-झपटी करते हैं । लाड़-दुलार में इसे हँसते रहकर प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए । अपितु उन्हें समझाना चाहिए कि सब मिल-जुलकर रहें । खाने की कोई चीज है, तो सब मिल-बाँटकर खायें । खिलौना है तो सब साथ खेलें । साथ ही कहानी, सीख आदि द्वारा बच्चों को मेलजोल एवं सहयोग का महत्व बताते रहना चाहिए ।

कुछ बच्चों में ईर्ष्या की प्रवृत्ति हो जाती है, तो वे भाई-बहिनों की वस्तुएँ, खिलौने आदि खराब करते या तोड़ते-फोड़ते रहते हैं । उन्हें ऐसे कामों को दोषपूर्ण बताकर समझाना चाहिए । कपड़े बनवाते समय, खिलौने लाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि किसी बच्चे के लिए अधिक, किसी के लिए कम तो नहीं रहे हैं । बच्चों को छोटी-छोटी बातें ही जीने-मरने जैसी महत्वपूर्ण प्रतीत होती हैं । छोटी-छोटी विषमताएँ उनमें ईर्ष्या-द्वेष जगातीं तथा सहकार-भाव को कमजोर करती हैं ।

घर का काम बच्चों से कराते समय भी सहकारिता और समानता का ध्यान रखा जाय । किसी एक ही बच्चे को बाजार से सामान लाने को कहते रहकर दूसरों को खेलने का मौका नहीं देना चाहिए । आज यह बाजार चला गया, तो कल दूसरा । इसका ध्यान रखा जाय । घरेलू कार्यों का विभाजन कर लिया जाय । अमुक पानी भरेगा, अमुक झाड़ू लगा देगा । अमुक सब्जी ले आयेगा, अमुक जूते आदि किनारे में करीने से लगा देगा । अमुक कुर्सी मेज, चित्र आदि पोंछ लेगा, अमुक साइकिल वगैरह को ठीक-ठाक कर लेगा । काम के इस बँटवारे में भी पारी-पारी से फेर बदल करते रहना चाहिए ।

साप्ताहिक सफाई में घर के सभी लोग साथ-साथ जुटें । बगीचा, शाक-वाटिका आदि का काम हो तो उसमें भी सभी भाग लें । किसी एक को काम करने देना, दूसरे को उस ओर से लापरवाह होने देना अनुचित है ।

पारिवारिक पंचशील सिद्धान्त

दुर्भावना के वातावरण में पंचशील के सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय जगत में भले ही सफल न हुए हों पर पारिवारिक जगत में वे सदा सफल होते हैं । पारिवारिक पंचशील पालन करने से घर में शक्ति बनी रहती है और प्रेम तथा सुव्यवस्था का वातावरण बना रहता है । पारिवारिक पंचशील यह हैं:-

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(१) परस्पर आदर-भाव से देखना

परस्पर के दोषों को देखकर आलोचना करना अनुचित है । सभी मनुष्यों में कमजोरियाँ हैं । भूल होना भी मनुष्य का स्वभाव है । प्रत्येक व्यक्ति आपके घर का सदस्य होने के कारण उसका भी उस घर पर पूरा अधिकार है ।

यदि रुचि में साम्य न हो अथवा मत वैभिन्नता हो तो वह निरादर का पात्र नहीं है । यह सम्भव नहीं है कि आपकी रुचि सब से मिल सके ।

छोटे बच्चे भी आदर के पात्र होते हैं । वे भी अपने आदर-निरादर को समझते हैं । यदि आप किसी बच्चे से स्नेह से बोलेंगे तो वह निश्चय ही आपके गले से लिपट जायगा । यदि आप उसे झिड़क देंगे तो वह कभी आपके पास आने का नाम भी नहीं लेगा ।

कडुवी बात जहर से भी बुरी होती है । यदि आपकी वाणी मधुर नहीं है तो जीवन में कटुता बढ़ती ही चली जायगी । घर के किसी सदस्य की तीखी आलोचना करना अवश्य ही बर्दाश्त से बाहर हो सकती है । आपकी भ्रान्त धारणा, चाहे वह भ्रान्ति न होकर सत्य ही हो तो भी, दूसरे पर तीखी चोट कर सकती है, और तब वाणी का वह घाव बड़ी कठिनाई से भर सकता है ।

विद्वानों का कहना है कि मनुष्य तलवार के घाव से नहीं घबराता, वह उसे हँसते-हँसते सह लेता है । परन्तु वाणी का घाव कलेजे में गहरा होता जाता है और वह जीवन भर भरने में नहीं आता ।

(२) अपनी भूल स्वीकार करना

चेष्टा यह करनी चाहिए कि मतभेद की नौबत ही न आने पावे । अपनी ओर से कोई ऐसी बात मत आने दो जिससे कोई विवाद हो जाय, बल्कि दूसरी ओर से होने वाले विवाद को भी शान्तिपूर्वक निपटा देना ही बुद्धिमानी है ।

अपने द्वारा हुई भूल को तुरन्त स्वीकार कर लीजिए । आपकी इस स्पष्टवादिता और आदर्श मनोवृत्ति का दूसरों पर अवश्य ही प्रभाव पड़ेगा । यदि आप भूल करके भी उसे स्वीकार नहीं करते तो दूसरों पर उसकी गलत प्रतिक्रिया होगी और क्षमाभाव के बजाय मन में भ्रान्त धारणा बनी रहेगी ।

परस्पर विरोध रहने के कारण अनबन चल रही हो तो उस अनबन को समझौते द्वारा तय कीजिए और आगे के लिए ऐसा ढंग अपनाइये कि समस्या जटिल न होने पावे । अनबन का अन्त यदि शीघ्र ही नहीं होता तो वह धीरे-धीरे भीषण रूप धारण कर लेती है और फिर उसका समाधान बहुत कठिन हो जाता है ।

(३) आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना

सभी के विचार पृथक्-पृथक् हो सकते हैं । यदि आपके परिवार के किसी सदस्य के विचार आप से नहीं मिलते और वह अपनी विचारधारा के अनुसार कार्य करता है तो उसके मार्ग में रुकावट न डालिए । उदाहरण के लिए मान लीजिए कि आप राम के उपासक हैं और आपका पुत्र शिव की उपासना करता है, वह राम को नहीं मानता तो उसे अपने मन के अनुसार करने दीजिए । अथवा आप किसी एक राजनैतिक दल से सम्बद्ध हैं और आपका पुत्र किसी अन्य राजनैतिक दल का सदस्य हो जाता है, तो उसके इच्छित कार्य से रुष्ट मत होइए । यदि आप उसके विचारों के प्रति अपना दृष्टिकोण उदार रखेंगे तो किसी प्रकार के गृह-कलह की सम्भावना न रहेगी ।

(४) भेदभाव न रखना

घर में भेद-भाव भी कलह का कारण बन जाता है । आपके दो पुत्र हैं-एक को अच्छा भोजन वस्त्र देते हैं और दूसरे को वैसा नहीं देते तो यह भेद अवश्य ही खटकने वाला होगा । हाँ, परिस्थितिवश एक को एक प्रकार की सुख-सुविधा और दूसरे को दूसरे प्रकार की सुख-सुविधा देते हैं, तो वह आपका दोष नहीं होगा । फिर भी यदि उनमें से किसी एक को वह बात खले तो उसे भी ठीक करने की चेष्टा करनी चाहिए ।

(५) विवादों का निष्पक्ष निपटारा

किसी मामले में आपको मध्यस्थ बनाया जाय तो एकदम सत्यता पर आ जाइये । कोई कितना भी प्रिय हो, यदि उसके द्वारा ज्यादती हुई है तो उसकी ज्यादती की घोषणा कीजिए और जिसकी हानि हुई है उसके मन का सन्तोष कीजिए । यदि आप निष्पक्ष न रहे तो आपको उसका भीषण परिणाम भुगतना पड़ेगा ।

आपका सम्मान इसी में है कि आप सबके विश्वास-भाजन बनें । यदि आप सबको एक समान समझेंगे तो परिवार के सभी सदस्य आपकी बात मानने में सन्तोष करेंगे । अनजाने में यदि आप से कभी कोई भूल हो भी जायगी, तो उसका कोई ख्याल नहीं करेगा और आपकी प्रतिष्ठा ज्यों-की-त्यों बनी रहेगी ।

एक कहावत है कि चार बर्तन होते हैं तो खटकते ही हैं । अतः घर में कभी कुछ कलह उपस्थित हो जाय तो उसे मनुष्य स्वभाव की कमजोरी मानकर अधिक तूल मत दीजिए । झगड़ों को शांत करने का एक बहुत बड़ा नुस्खा है-त्याग । यदि आपने किंचित भी त्याग प्रदर्शित किया तो, झगड़ा समाप्त होने में देर न लगेगी ।

झगड़ों को युद्ध की-सी चुनौती के रूप में मत मानिए । विपक्षी का दमन करने की बात मत सोचिए । बल्कि झगड़े के कारण पर विचार कीजिए और प्रयत्न कीजिए कि वह कारण दूर हो जाय । यदि ऐसा हो सका तो झगड़ा दूर करने में आपको शीघ्र ही सफलता मिल जायगी ।

गृह-कलह को समाप्त करने का यह प्रमुख सिद्धान्त है । इस पर चलकर देखिये और सफलता मिले तो दूसरों को भी इसका उपदेश कीजिए । यदि आप घर में ही अपने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पंचशील को सफल न बना सके तो बाहर उसकी सफलता की आशा कैसे कर सकते हैं ?

पारिवारिक पंचशीलों का परिपालन

बौद्ध धर्म में मनुष्य जाति के अनेक वर्गों के लिए उनके कार्यक्षेत्र के अनुरूप पाँच-पाँच प्रमुख 'शील' अनुशासन बनाये गये हैं । शासन, समाज, धर्म, शिक्षा, स्वास्थ्य, उपार्जन आदि क्षेत्रों में काम करने वाले इन मर्यादाओं का पालन करें, यही उनका शील है । यह मर्यादाएँ पाँच-पाँच की संख्या में निर्धारित होने के कारण पंचशील कहलाती हैं ।

यहाँ पारिवारिक पंचशील का प्रसंग है । इन्हें (१) सुव्यवस्था, (२) नियमितता, (३) सहकारिता, (४) प्रगतिशीलता, (५) शालीनता की पाँच सत्प्रवृत्तियों के रूप में समझा जा सकता है । इन्हें अपनाने से व्यक्ति, परिवार एवं समाज को उन विकृतियों से बचे रहने का लाभ मिलता है जो समस्त समस्याओं और विपत्तियों के लिए उत्तरदायी हैं । इन्हें अपनाने में सर्वतोमुखी प्रगति का द्वार खुलता है और उज्ज्वल भविष्य के राजमार्ग पर चल पड़ने का अवसर मिलता है ।

(१) सुव्यवस्था

पंचशीलों में प्रथम है 'सुव्यवस्था' । अपने आपको, अपनी मर्यादाओं को, साधनों को सुनियोजित, सुव्यवस्थित रखने का नाम 'सभ्यता' है । असभ्य और अव्यवस्थित लोग न तो उपलब्ध साधनों का ही सदुपयोग कर पाते हैं और न कोई महत्वपूर्ण उपलब्धि प्राप्त कर सकने योग्य मनोयोग जुटा पाते हैं । साधन और अवसर अनेक को प्राप्त होते हैं । क्षमता और कुशलता भी बहुतों में होती है पर वे उन्हें व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध रूप से क्रियान्वित नहीं कर पाते । फलस्वरूप उन सफलताओं से वंचित रह जाते हैं जिन्हें वे नियमन एवं नियन्त्रण की बुद्धि होने पर सहज ही प्राप्त कर सकते हैं । सद्गुणों में सबसे प्रमुख-व्यवस्था ही है । महान कार्यों को संपादित करने और बड़ी सफलताएँ पाने वालों में व्यवस्था बुद्धि की विशेषता ही उन्हें श्रेयाधिकारी बनाती है । इसी के अभाव में पिछड़ापन लदा रहता है और पग-पग पर ठोकरें खानी पड़ती हैं ।

वस्तुओं का सुन्दर-सुसज्जित ढंग से यथाक्रम रखना, साथियों को उपयुक्त कार्यों में क्रमबद्ध रूप से लगाये रहना, साधनों को संभालना और उन्हें उचित समय पर उचित कार्य में, उचित मात्रा में प्रयुक्त करना, उपार्जन और व्यय का सन्तुलन बिठाये रखना जैसे कौशल व्यवस्था बुद्धि के अन्तर्गत ही आते हैं । आज की स्थिति और भविष्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार की नीति अपनाना जिसमें कठिनाइयों से बचा जा सके और प्रगतिक्रम विधिवत् चलता रहे-दूरदर्शी सूझ-बूझ का काम है । शतरंज की चाल की तरह गोट उठाने से पहले बचाव और लाभ को पूरी तरह ध्यान में रखने की तरह ही जो भली प्रकार आगा-पीछा सोच लेते हैं, उन्हें असफलताओं और कठिनाइयों का सामना कम से कम ही करना पड़ता है । इस सद्गुण को हर व्यक्ति के जीवन क्रम में समाविष्ट करने के लिए परिवार में आरम्भिक प्रशिक्षण और उसके परिपोषण का प्रबन्ध रहना चाहिए । स्मरण रखा जाय कि संसार में सबसे बड़ा पद 'व्यवस्थापक' का है । मैनेजर, गवर्नर, सुपरिन्टेण्डेन्ट आदि शब्दों से जिन उच्च पदों को सम्मानित किया जाता है, वस्तुतः वे अपने-अपने कार्यक्षेत्र के व्यवस्थापक ही होते हैं । यह कार्य घर परिवार में वस्तुओं को स्वच्छ और सुव्यवस्थित रखने के माध्यम से आरम्भ किया जा सकता है ।

वस्तुओं की सुव्यवस्था का ही दूसरा नाम 'स्वच्छता' है, जो देखने में सुन्दरता एवं सुसज्जा बनाती और नयनाभिराम लगती है । देखने वालों की दृष्टि में यह कलाकारिता एवं सुरुचि का परिचायक है । इस प्रकार रखी हुई वस्तुएँ अपनी मौन भाषा में यह प्रकट करती हैं कि हम किन्हीं सभ्य, संस्कृत हाथों की छत्रछाया में रह रही हैं । यह प्रतिष्ठा और गौरव की स्थिति है । जहाँ वस्तुएँ अस्त-व्यस्त, मैली-कुचैली, टूटी-फूटी स्थिति में पड़ी हुई हों तो समझना चाहिए वहाँ आलस्य और प्रमाद का साम्राज्य है । कुरूपता और अस्वच्छता एक ही बात है । सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् की प्राप्ति में प्रथम सौन्दर्य, द्वितीय श्रेष्ठ और अन्त में सत्य की प्राप्ति का क्रम है । प्राकृतिक सौन्दर्य सृष्टा का विधान है । मनुष्य दूसरा सृष्टा है वह वस्तुओं को स्वच्छ और सुव्यवस्थित रखकर उन्हें सुन्दर बनाये रहता है । सुसज्जा प्रकारान्तर से स्वच्छता और व्यवस्था का ही सम्मिलित स्वरूप है ।

सम्भव हो तो आरम्भ में सफाई का एक घण्टा रखा जाय, जिसमें सब लोग मिल-जुलकर घर की प्रत्येक वस्तु को ध्यानपूर्वक देखें और उसे अधिक सुव्यवस्थित, स्वच्छ एवं सुसज्जित बनाने का प्रयत्न करें । इस काम के लिए बुहारी, टोकरी, झाड़न जैसे अस्त्र-शस्त्र हाथ में लेकर चला जा सकता है । सुई, साबुन, आरी, हथौड़ी, चूना, वार्निश जैसे उपकरणों को अपनाने और आगे रखने में उत्साह रहना चाहिए । मात्र झाड़ू लगाना ही काफी नहीं है । वस्तुओं का यथास्थान, यथाक्रम रखना भी सूझ-बूझ और बुद्धिमत्ता का चिह्न माना जा सकता है । जमीन, कोने, छत्ते, बुहारी के सहारे स्वच्छ रखी जा सकती है । नालियाँ, रसोईघर, स्नानघर, शौचालय आदि को पानी के सहारे धोया जाता है । गन्ध दूर करने के लिए चूना, फिनायल, किरासिन तेल आदि का प्रयोग करना होता है । मकान में टूट-फूट ठीक करने के लिए थोड़े से सीमेंट आदि और कन्नी वसूली जैसी राजमिस्त्रियों के हाथ में रहने वाले उपकरणों का प्रयोग सीखा जा सकता है । घर की लिपाई-पुताई मिल-जुलकर आसानी से हो सकती है । किवाड़ों और फर्नीचरों पर रंग-रोगन करने में थोड़ा-सा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खर्च और श्रम तो लगता है पर घर का स्वरूप ऐसा निखर आता है मानो आज ही दीवाली मनाई गई है । घर, बर्तन, कपड़े और जूते सर्वत्र फैले-पड़े दीखते हैं । उन्हें यथाक्रम, यथास्थान लगाने की तब तक बार-बार चेष्टा करनी चाहिए जब तक कि उनके उपयोग करने वाले स्वत: ही उन्हें साफ-सुथरी स्थिति में यथास्थान रखने के बाद ही आगे बढ़ने के सम्बन्ध में अभ्यस्त न हो जायें ।

चारपाइयों की चूलें तथा रस्सियाँ अक्सर टूटती रहती हैं, उन्हें सुधारने के लिए मिस्त्री की जरूरत नहीं पड़नी चाहिए । इसी प्रकार किवाड़ें, कुर्सी, मेजें, चौकियाँ आदि की समय-समय पर मरम्मत होती रहे तो उनकी मजबूती और शोभा बनी रहेगी । लालटेन, स्टोव, बर्तन आदि की टूट-फूट सँभाल देने में ताश खेलने जितनी बुद्धि लड़ाने में काम चल सकता है । पुस्तकों की जिल्दें घर पर बन सकती हैं, कपड़ों की मरम्मत, सिलाई, धुलाई, रंगाई का अधिकांश काम घर पर ही किया जा सकता है । आँगन में फूल और छत पर सब्जियाँ उगाने का काम पक्षी पालने से अधिक मनोरंजक है साथ ही लाभदायक भी । इस प्रकार के अनेक काम घर में हो सकते हैं । जिनसे अव्यवस्था हटाने और सुव्यवस्था बढ़ाने के, गन्दगी भगाने और सुन्दरता बढ़ाने के उभयपक्षीय प्रयोजन पूरे हो सकें ।

एक घण्टा नित्य सबको छोटे-बड़ों को साथ लेकर सफाई अभियान में लगाया जाय । सुसज्जा के लिए श्रम दान कराया जाय तो धीरे-धीरे उनका दृष्टिकोण सुव्यवस्था का बनने लगता है । व्यक्तिगत उपयोग की वस्तुओं को तो हर व्यक्ति स्वच्छ सुसज्जित रखे ही साथ ही दूसरों द्वारा बरती गई अव्यवस्था को भी देखते ही सँभाल देने का उत्साह दिखाये । साप्ताहिक छुट्टी का दिन तो विशेष रूप से इस काम में लगाया जाना चाहिए । हर सदस्य को इसके लिए प्रोत्साहित करना चाहिए कि अपने निजी साधनों को ही नहीं घर की हर वस्तु को स्वच्छ, सुसज्जित रखने में परामर्श एवं योगदान देते रहें । यह सत्प्रवृत्ति देखने में छोटी प्रतीत भले ही होती है पर अन्तत: स्वभाव का अंग बनकर बड़े उत्तरदायित्वों को निभाने और उच्चस्तरीय सफलताएँ प्राप्त करने की मूलभूत कारण सिद्ध होती है ।

(२) नियमितता

श्रम और समय के समन्वय को नियमितता कहा गया है । समय ही जीवन है । उसका एक-एक पल हीरे मोतियों में तोलने योग्य है । एक क्षण भी बेकार नहीं गँवाया जाना चाहिए । ईश्वर प्रदत्त दिव्य सम्पदा समय ही है । उसके मूल्य पर हर स्तर की विभूतियाँ एवं सफलताएँ प्राप्त हो सकती हैं । समय गँवाना अर्थात् जीवन के ऐश्वर्य एवं आनन्द को बर्बाद करना । परिवार की परम्परा में इस आदर्श का सावधानी के साथ समावेश होना चाहिए कि कोई भी व्यर्थ समय न गँवाये । उसे श्रम के साथ जोड़े रहे । श्रम से जी चुराना, व्यर्थ के कामों में समय गुजारना, परिश्रम में असम्मान अनुभव करना ऐसे दुर्गुण हैं जिनके रहते पिछड़ेपन से, दरिद्रता से छुटकारा नहीं पाया जा सकता है । शारीरिक आलस्य और मानसिक प्रमाद यही दो सबसे बड़े शत्रु हैं, जिन्हें प्रश्रय देने वाला दुर्भाग्यग्रस्त रहता और दुर्गति के गर्त में गिरता है ।

श्रमशीलता मनुष्य की उच्चस्तरीय सत्प्रवृत्ति है । काम को ईश्वर की पूजा माना जाय । श्रम से सम्मान अनुभव किया जाय । श्रम से शरीर घिसता नहीं वरन् परिपुष्ट होता है । अपने कार्यों का स्तर एवं स्वरूप प्रशंसनीय बनाये रहने में मनुष्य की प्रतिष्ठा है । स्फूर्तिवान दीर्घजीवी होते हैं । परिश्रमी के पास दरिद्रता नहीं फटकती और न दुर्गुणी को अपनाने, दुर्व्यसनों से ग्रसित होने का अवसर मिलता है । समृद्धि, प्रगति और सफलता की सिद्धियाँ साधना से ही उपलब्ध होती हैं । जो समय की बर्बादी को बचा सके और उसे अभीष्ट दिशा में क्रमबद्ध रूप से लगाये रहे सफलताओं ने उन्हीं का चरण चूमा है । आलसी और प्रमादी, कामचोर, हरामखोर और समय गँवाने वाले ऐसे अभागे हैं जो अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारते और आत्म-प्रताड़ना, लोकभर्त्सना का त्रास सहते हैं । भविष्य तो उनका अंधकारमय रहता ही है ।

परिवार की परम्परा यह रहनी चाहिए कि हर सदस्य अपनी दिनचर्या बनाये । परिश्रम में जुटा रहे । बीच-बीच में जितना विश्राम नितान्त आवश्यक है-उतना ही ले । मन्दगति से काम न करे । प्रमादवश कामों को अधूरा न छोड़े । समाप्त करने या बीच में रोकने के समय वस्तुओं को बिखरा न पड़ा रहने दे । जो भी काम हाथ में हो उसे पूरे मनोयोग एवं परिश्रम के साथ-प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर, सम्पन्न करे । श्रमशील रहने और समय का सदुपयोग करने का महत्व जिसने जान लिया और दिनचर्या बनाकर योजनाबद्ध रूप से काम करने का अभ्यास कर लिया समझना चाहिए कि उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करने की कुंजी उसके हाथ आ गई ।

गृह व्यवस्थापक का कर्तव्य है कि वह समस्त परिजनों को उनकी स्थिति एवं आवश्यकता के अनुरूप दिनचर्या बनाकर काम करने के लिए सहमत करे । आरम्भ में कुसंस्कारिता इसमें बहुत बाधक होती है । अनगढ़ पशु-प्रवृत्ति आवारागर्दी पसन्द करती है । उसे अनुशासन में बाँधना और आलस्य पर अंकुश लगाने में बड़ी अड़चन होती है और बहानेबाजी चलती है । इस स्थिति को बदलना ही होगा । व्यस्त रहने का स्वभाव बनाना ही चाहिए । हर काम समय और क्रमबद्ध रूप में होना चाहिए । इस आवश्यकता को परिवार के सभी लोग अनुभव करें । उसके लिए सफल मनुष्यों की दिनचर्या का समय-समय पर उल्लेख करते रहना चाहिए । हर काम का समय निर्धारित हो । सभी अपना काम नियत समय पर नियमित रूप से करें ? विशिष्ट परिस्थिति में अनिवार्य कारण होने पर ही व्यतिक्रम के अपवाद होने चाहिए । आत्मानुशासन का अभ्यास इसी प्रकार होता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

है कि शरीर को श्रम में और मन को उत्कृष्ट स्तर का बनाने में लगाये रखा जाय । जिसने समय का मूल्य समझा है उसी ने जीवन लाभ लिया है । जो परिश्रमी रहा है उसी को व्यक्तित्व निखारने और सफलताएँ पाने का श्रेय मिला है ।

महिलाओं के समय की बर्बादी इसलिए होती है कि उनसे सम्बन्धित काम दूसरों के समय पर न आने के कारण अस्त-व्यस्त पड़े रहते हैं । उनका तीन चौथाई समय इसी में नष्ट होता है अन्यथा वे गृह कार्यों को कुछ ही घण्टों में निपटाकर अन्य उपयोगी कामों में लग सकती हैं ।

(३) सहकारिता

सहकारिता प्रगति का मूलमन्त्र है । इसी विशिष्टता को अपनाकर मनुष्य ने इतनी प्रगति की है । जहाँ भी यह सत्प्रवृत्ति जितनी मात्रा में अपनाई जायेगी वहाँ उसी अनुपात में सद्भावना की वृद्धि होगी, घनिष्टता बढ़ेगी । मिल-जुलकर काम करने में आनन्द भी बढ़ता है और स्तर भी । अधिक सुयोग्यों से सीखने और कम योग्यों को सिखाने का अवसर तभी मिलता है जब साथ-साथ काम करने की आदत डाली जाय ।

स्वच्छता अभियान में मिल-जुलकर घर के काम करने की बात कही गई है । उस आधार पर सहकारिता भी पनपती है । भोजन खाने में ही नहीं, पकाने में भी यदि सहकार प्रयत्न चल सके तो उसमें अच्छा-खासा मनोरंजन भी रहेगा और अभ्यास भी बढ़ेगा । कपड़े धोने में, टूट-फूट की मरम्मत में, पुताई-रंगाई में सहकारी प्रयत्न घर को स्वच्छ और सुव्यवस्थित ही नहीं रखते, सहकारिता की सत्प्रवृत्ति को भी बढ़ाते हैं ।

अधिक योग्यों को कम योग्यों की ज्ञानवृद्धि एवं प्रगति में स्थिति के अनुरूप सहायता करने का ध्यान रखना चाहिए । अधिक पढ़े, कम पढ़ों को पढ़ाया करें । छोटी आयु के बड़ों के कामों में हाथ बटाया करें । एकाकीपन दूर किया जाय । रिजर्व नेचर के आने तक सीमित रहने वाले व्यक्ति या तो स्वार्थी बन जाते हैं या आत्महीनता की ग्रन्थि से ग्रसित होकर अनगढ़, असामाजिक रह जाते हैं । अस्तु, परिवार व्यवस्था के हर कार्य में सहकारी प्रयत्नों को यथासम्भव अधिकाधिक स्थान दिया जाना चाहिए ।

(४) प्रगतिशीलता

भौतिक दृष्टि से आगे बढ़ने और आत्मिक दृष्टि से ऊँचे उठने की प्रक्रिया को प्रगतिशीलता कहते हैं । मात्र महत्वाकांक्षाएँ बढ़ते रहने से कोई काम नहीं बनता परिस्थितियों को ध्यान में न रखकर ऊँची उड़ानें उड़ते रहने वाले, योग्यता एवं साधनों के अभाव में कुछ कर नहीं पाते । अतृप्त महत्वाकांक्षाएँ खीज और निराशा ही पैदा करती हैं । अस्तु, हवाई उड़ानें उड़ने से रोकना और प्रगति के लिए आवश्यक योग्यता बढ़ाने में ही हर परिजन को मन:स्थिति नियोजित करनी चाहिए । सफलताओं की लालसा तभी सार्थक है, जब उसके उपयुक्त परिस्थिति उत्पन्न करने के लिए प्रबल प्रयास किया जाय । इसके लिए योग्यता बढ़ाना भी आवश्यक है अन्यथा अक्षमता के रहते, मात्र परिश्रम से भी कुछ बड़ा प्रयोजन सिद्ध नहीं होता ।

इस सन्दर्भ में परिवार के सदस्यों को सुशिक्षित बनाने के लिए अध्ययन का-बलिष्ठ बनाने के लिए व्यायाम का-कुछ करने के लिए गृह उद्योगों का-शिल्प कौशलों का, गायन वादन का चस्का लगाया जाय और उसके लिए साधन जुटाये जायें । वर्तमान स्थिति में अगले दिनों अधिक सुयोग्य बनाने के लिए अवसर मिल सके, इसके लिए जहाँ भी सम्भव हो, किया जाना चाहिए । सम्पदा की ललक कभी-कभी इतनी आतुर हो जाती है कि वह योग्यता बढ़ाने और पुरुषार्थ करने की अपेक्षा अनीतिपूर्वक सम्पदा, सफलता पाने के लिए मचलने लगती है । अस्तु, महत्वाकांक्षाओं को योग्यता एवं सक्रियता बढ़ाने में नियोजित करने के लिए हर परिवार में कुछ न कुछ प्रयत्न चलना चाहिए । ऊँचे उठने और आगे बढ़ने के लिए कहाँ, किस प्रकार क्या हो सकता है, इसको खोजने से उपयुक्त मार्ग निश्चित रूप से मिल जाते हैं ।

(५) शालीनता

शिष्टता, सज्जनता, मधुरता, नम्रता आदि सद्गुणों के समुच्चय को शालीनता कहते हैं । ईमानदारी, प्रामाणिकता, नागरिकता, सामाजिकता की मर्यादाओं को निष्ठापूर्वक अपनाना शालीनता का चिह्न है । सामान्य शिष्टाचार की भी अपनी महत्ता है । दूसरों का सम्मान करने और अपने को विनम्र सिद्ध करने के लिए वाणी में मिठास और व्यवहार में शिष्टता का समावेश रहना चाहिए । उदारता, सेवा, सहायता की सत्प्रवृत्ति अपनाने से ही दूसरों का स्नेह, सम्मान एवं सहयोग मिलता है । परायों को अपना बनाने की जितनी शक्ति शालीनता में है, उतनी प्रलोभन देकर फुसलाने तथा दबाव देकर विवश करने में भी नहीं है । शालीनता जन-जन के मन पर आधिपत्य जमाने की असाधारण विशेषता है । इससे घर के हर सदस्य को परिचित एवं अभ्यस्त कराया जाना चाहिए ।

उपरोक्त पारिवारिक पंचशीलों का अभ्यास किस घर में किस प्रकार किया जाय, इसका एक नियम नहीं बन सकता । हर घर परिवार के सदस्यों की स्थिति अलग होती है । अस्तु, निर्धारण एवं क्रियान्वयन अवसर के अनुरूप ही किया जा सकता है । इन पाँचों विभूतियों से घर के हर सदस्य को अलंकृत करने का प्रयास चलता रहे तो समय-समय पर वह उपाय भी सामने आते रहेंगे कि किस में क्या कमी है और उसे किस प्रकार पूरा किया जा सकता है । पंचशीलों से परिवार को भरने का प्रयत्न ऐसा ही है जैसा पाँच रत्नों के भण्डार से घर को भरना और कुबेर से अधिक वैभववान बनना ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पाँच शील-पाँच कर्त्तव्य श्रमशीलता एक सत्प्रवृत्ति

पारिवारिक पंचशीलों में श्रमशीलता, मितव्ययिता, शिष्टता, सुव्यवस्था, सहकारिता-इन पाँच सिद्धान्तों का समावेश किया गया है । इन्हें यदि किसी परिवार में ठीक तरह समझा और अपनाया जा सके तो उसकी बहुमुखी प्रगति होते चलना सुनिश्चित है ।

उपरोक्त पंचशीलों को प्रसिद्ध पंचदेवों के सदृश्य समझा जा सकता है, उन्हें पंचरत्न-पंचामृत जैसी उपमा दी जा सकती है । इन्हें कहते-सुनते तो कई हैं, पर उन्हें जीवनचर्या में, पारिवारिक विधि-व्यवस्था में सम्मिलित करने का साहस कोई बिरले ही कर पाते हैं । जो इन्हें अपनाने के लिए कटिबद्ध होते हैं, वे उनके ऋद्धि-सिद्धियों जैसे चमत्कारी प्रतिफलों से भी लाभान्वित होते हैं । स्पष्ट है कि जानना आवश्यक तो है, पर लाभान्वित होने के लिए पर्याप्त नहीं । इस प्रयोजन के लिए तो उन्हें व्यवहार में उतारने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं ।

पंचशीलों में प्रथम निर्धारण श्रमशीलता का आता है । जिसने इसे अपना लिया समझना चाहिए कि उसके भाग्योदय का मार्ग खुल गया ।

आमतौर से लोगों में आलस्य-प्रमाद की भरमार पाई जाती है । वे बैठे-ठाले दिन गुजारना चाहते हैं । हलके कामों में हाथ डालते हैं और धीरे-धीरे मनमौजीपन से उन्हें पूरा करते हैं, उन्हें आधा-अधूरा छोड़ देते हैं । जितने समय में जो काम हो सकता है उसकी अपेक्षा वे कई गुना समय नष्ट करने के उपरान्त पूरा करते हैं । जो बन पड़ता है वह भी लँगड़ा, पंगा, काना, कुरूप होता है । उसमें ढेरों त्रुटियाँ रहती हैं । समय तो अधिक नष्ट होता ही है । फूहड़पन से किये गये काम का स्वरूप भी ऐसा देखा जाता है, जिसमें कर्ता को प्रशंसा, प्रसन्नता प्राप्त होना तो दूर, उल्टे तिरस्कार-फटकार का सामना करना पड़ता है । ऐसे कामों का बाजारू मूल्य भी अति स्वल्प होता है, जबकि यदि उसी को मन लगाकर किया गया होता तो कर्तृत्व सम्मानित होता और किये गये श्रम का संतोषजनक प्रतिफल भी मिलता, पर उस आलस्य-अनुत्साह को क्या कहा जाय, जो अपने स्पर्श में आने पर सोने को मिट्टी बना देने के लिए कुख्यात है ।

भगवान ने मनुष्य को समय रूपी सम्पदा दी है । उसका सदुपयोग मात्र श्रम-साधना से ही बन पड़ता है । तत्परता और तन्मयता से जिस कार्य को भी सजाया-सँजोया जाय, वह कमल पुष्प की तरह खिल पड़ता है ।

समय का सदुपयोग बड़ी महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है, जिसका विकास निरालस्य एवं श्रमशीलता के बिना नहीं हो सकता । समय हमारे जीवन की निधि है । भगवान ने हमें निश्चित आयु, गिनी हुई श्वास दी हैं । यदि इस समय का हमने सदुपयोग न किया तो पीछे पछतावा ही हाथ रहेगा । संसार में वही व्यक्ति समझदार और योग्य समझा जाता है जो समय का सर्वोत्तम उपयोग कर लेता है ।

समय की साधना ही मनुष्य को सफलता की सिद्धि दिलाती है, चाहे वह किसी भी क्षेत्र में हो । इसे काल की साधना कहें तो अत्युक्ति न होगी क्योंकि जिसने समय का मूल्य समझा है वह अपने जीवन-काल का पूरा उपयोग कर लेता है ।

अपने समय का सर्वोत्तम उपयोग हो और एक क्षण भी अनुपयोगी न जाय इसके लिए हर व्यक्ति को नित्य अपनी दिनचर्या का विभाजन करके, टाइम टेबिल बनाकर खर्च करना चाहिए । हमारी दिनचर्या पहले से निश्चित होने से हर काम समय पर करने का स्वभाव बन जाता है और आवश्यक तथा नित्य नैमित्तिक कार्यों से बचे हुए समय का उपयोग हम अपनी ज्ञानवृद्धि करने में, स्वास्थ्य रक्षा के कार्यों में, परिवार के आर्थिक सन्तुलन को ठीक करने में, समाज सेवा में, बच्चों के शिक्षण में, लोकमंगल के कार्यों में कर सकते हैं । यह शिकायत समाप्त हो जायगी कि समय नहीं मिलता । सोकर उठने से पहले रात्रि को शयन करने तक के पूरे समय का विधिवत विभाजन होना चाहिए समय का मूल्य हीरे मोतियों से अधिक है । ईश्वर की दी हुई यही एक चल सम्पदा मनुष्य के पास है, जिसका उचित विनिमय करके वह किसी भी उपलब्धि का अधिकारी बन सकता है, किसी भी क्षेत्र में प्रगति कर सकता है । शरीर, मन, बुद्धि आदि तो ईश्वर की दी हुई स्थिर सम्पत्ति हैं । पर जेब खर्च के लिए, दैनिक उपयोग के लिए जो अनुदान मिला है वह समय ही है उसे श्रम के साथ समन्वित करके रखा जा सके तो वह चमत्कार ही उत्पन्न करता चला जाता है । बिखरे हुए क्षणों का ठीक तरह उपयोग किया जा सके तो वह व्यवस्थित मनुष्य इतना काम कर सकता है जितना बेसिलसिले के दस व्यक्ति मिलकर भी नहीं कर सकते । नियमित-निरन्तर और क्रमबद्ध रूप से कोई कार्य हर दिन किया जाता रहे तो कुछ ही समय में उसकी प्रगति आश्चर्यजनक दीखती है । लोग आधा-अधूरा कभी किया, कभी बन्द जैसे अस्तव्यस्त क्रम को अपनाते हैं और मुद्दतें बीत जाने पर भी कुछ कहने लायक प्रगति न होने का रोना रोते हैं । कदाचित् उन्हें दिनचर्या बनाकर एक-एक क्षण का सदुपयोग करने की व्यवस्था का महत्व और आनन्द मालूम हो सकता होता तो उन्होंने आशाजनक ही नहीं आश्चर्यचकित कर सकने वाली प्रगति कर ली होती ।

हमें परिवार व्यवस्था में पूरा रस लेना चाहिए । घर से बाहर कार्यक्षेत्र में तो व्यस्तता रहती ही होगी पर जितने समय घर में रहना है उसमें स्वच्छता से लेकर मनोविनोद तक की एक सुव्यवस्थित कार्य-पद्धति होनी चाहिए, उसमें स्वयं तत्पर रहना चाहिए और हर सदस्य को अपनी-अपनी आवश्यकता, स्थिति और रुचि के अनुरूप दिनचर्या बनाने की प्रेरणा देनी चाहिए । जहाँ साथ-साथ रहकर कुछ काम करना आवश्यक हो, वहाँ वैसा करना चाहिए,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अन्यथा अपना आदर्श उपस्थित करते हुए परिवार के हर सदस्य को समय के सुव्यवस्थित सदुपयोग की आदत डालनी चाहिए । बात छोटी-सी है-बीज जितनी नन्हीं है । पर उसके फलितार्थ जीवन-क्रम की सफलता और असफलता के विशाल वृक्ष बनकर परिणित होते हैं, तब पता चलता है, आदत डालने के अवसर पर जो बात महत्वहीन लगती थी वह वस्तुतः कितनी अधिक सारगर्भित थी ।

अनुत्साह, आलस्य और प्रमाद के ढीलेपन से, बेगार भुगतने की तरह काम करते हैं तो समय अधिक लगता है और कार्य विशेष भी ठीक ढंग से नहीं होता । हमें ऐसा स्वभाव बनाना चाहिए कि तत्परतापूर्वक कम समय में अधिक काम निपटाने का प्रयत्न करें, हर कार्य में उत्साह और स्फूर्ति का परिचय दें । इससे हमारे अन्दर कार्य कुशलता का गुण विकसित होगा । मनोवैज्ञानिकों का ऐसा मत है कि प्रत्येक कार्य के पश्चात् कुछ मिनट यदि हम शिथिल होकर विश्राम करने की आदत डाल सकें तो नये काम करने के लिए वही नवीन स्फूर्ति आ जाती है जो काम शुरू करने से पूर्व हमारे भीतर होती है ।

परिवार का हर व्यक्ति नियत समय पर निर्धारित काम करे । बाहर भी अपने क्रिया-कलाप में समय के पालन का ध्यान रखे । किसी के यहाँ जाने पर कुछ देने का वायदा किया है तो उसे नियत समय पर पूरा करने का पूरी ईमानदारी के साथ प्रयत्न करना चाहिए ।

दिन-रात में सभी की घड़ियाँ चौबीस घंटे बजाती हैं । उसे हीरे-मोतियों से गुँथा हुआ हार समझा जा सकता है, बशर्ते कि उसका सदुपयोग बन पड़े । यदि उसे आवारागर्दी और अस्त-व्यस्तता में गुजार दिया जाय तो समझना चाहिए कि हाथ आया हुआ भाग्योदय का अवसर ठुकरा दिया गया । संसार में जितने भी सफल जीवन व्यक्ति हुए हैं, उन सब में संमय का मूल्य समझने और उसके एक-एक मिनट का सदुपयोग करने की प्रवृत्ति रही है । मिनटें और घंटे ही मणि-मुक्तकों की लड़ हैं । इनको तत्परता और तन्मयता के सार्थक कामों में लगाये रखने वाले ही सर्वतोमुखी प्रगति के पथ पर अग्रसर होते हैं । जिन्हें जो प्रयोजन पूरे करने हों उनके लिए मनोयोग मिश्रित श्रम साधना का मूल्य चुकाना पड़ता है । जो यह मूल्य चुकाने में आनाकानी करते हैं उन्हें खाली हाथ रहना और पग-पग पर निराशा-असफलता का मुँह देखना पड़ता है ।

आलस्य-प्रमाद में, दुर्व्यसनों और कुसंगों में जिनका समय लगा वे क्रमशः अधिक अधःपतन के गर्त में गिरते चले गये हैं । अवसर निकल जाने पर उन्हें अपनी दुर्गति पर पश्चात्ताप ही करते रहना पड़ा है ।

आमतौर से श्रम साधना का महत्व समझा नहीं जाता, उसे लोग ढर्रे की दिनचर्या पूरी करने में ही ज्यों-त्यों करके खपा देते हैं, कार्य को अन्यमनस्क भाव से करने और मनोयोग जोड़ते हुए करने में जमीन-आसमान जितना अन्तर होता है । बेमन से बेगार भुगतने की तरह किया गया काम सदा फूहड़ स्तर का ही बन पड़ता है । न उसमें सौन्दर्य होता है, न चमक देखने को मिलती है और न स्तर ही सराहना करने जैसा होता है । जब श्रम के साथ मनोयोग नहीं ही लगा है तो फिर उसमें न प्रखरता शामिल हो सकेगी और न प्रतिभा को ही काम करते समझा जा सकेगा । ऐसे काम गिनती में कितने ही और कई प्रकार के हो सकते हैं, पर उनमें वह प्राण नहीं होता है जो उत्कृष्टता के उच्च लक्ष्य को छू सके, दूसरों के लिए आदर्श और अनुकरणीय-अभिनंदनीय बन सके ।

ढर्रे का काम ज्यों-त्यों करके निपटाया जा सकता, पर उसे सुचारू रूप से सम्पन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें शारीरिक गतिविधियाँ ही सीमित होकर न रह जायें । उसके साथ मनोयोग भी पूरी तरह लगाया जाय । काम को दिलचस्पी का विषय समझकर किया जाय और उसे प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर खिलाड़ियों की तरह पूरी तत्परता से सम्पन्न किया जाय । ऐसे ही काम सफल, सुदृढ़ और सराहनीय स्तर के बन पड़ते हैं । कर्ता की कुशलता भी उन्हीं से बढ़ती है । प्रशंसा भी उन्हीं की होती है और सत्परिणामदायक भी वे ही बनते हैं ।

अपनी जेब के पैसे उपेक्षापूर्वक बिखेरते चलना मूर्खता ही समझी जायेगी । उससे भी बड़ी मूर्खता यह है कि समय और श्रम का तालमेल सुनियोजित रीति से बिठाये बिना ऐसे ही बहुमूल्य क्षणों को बर्बाद करते रहा जाय । समय बीतने को तो छुटपुट कामों में भी किसी प्रकार कटता रह सकता है । आरामतलब लोग, सेठ-सामन्त भी काम तो नौकरों से करा लेते हैं, पर अपना समय आलस्य-प्रमाद में मौज-मजा करते हुए मस्ती में गुजारते हैं । उठते समय से लेकर सोने तक का समय व्यसनों में, यार-दोस्तों की गपबाजी में, आवारागर्दी में बिता देते हैं । चिड़ीमारों को उसी खिलवाड़ में पूरा समय उसी जाल-जंजाल में उलझते-उलझाते व्यतीत हो जाता है । पल्ले तो पेट भरने जितना ही मिलता है । चोर-उचक्के भी ताना-बाना बुनने और घात लगाने में समय बिता देते हैं । अमीर घरों की महिलाएँ ऐसे ही शौक शृंगार में समय काटती रहती हैं । कहने को तो उन्हें मोटी दृष्टि से भाग्यवान भी कहा जा सकता है, पर वस्तुतः बात ऐसी है नहीं । क्षुद्र कामों में समय बीत जाय और पेट-प्रजनन के लिए सारा समय बीत जाय तो इसे दुर्भाग्य में ही गिना जाना चाहिए ।

काम हमारा मित्र है । उसका स्वागत तत्परता और तन्मयतापूर्वक किया जाना चाहिए । काम छोटा हो या बड़ा, उसे इस दृष्टि से किया जाना चाहिए, मानो उसे अपनी योग्यता परखने के लिए नियति ने अग्नि-परीक्षा के रूप में प्रस्तुत किया है । एक काम भली प्रकार सम्पन्न बन पड़ने के उपरान्त अनायास ही दूसरा बड़ा काम हाथ में लेने की इच्छा जगती है । दूसरे के बाद तीसरा । यह क्रम चलते-चलते उस स्थान तक पहुँचता है, जिसे चरमोत्कर्ष के नाम से जाना जाता है । वरिष्ठता इसी आधार पर हस्तगत होती है । स्वभाव और सद्गुण ही कार्य को

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधारण से असाधारण बना देते हैं । ऐसे ही सुसम्पन्न कार्यों का आकर्षण व्यक्ति की प्रतिभा निखारता है और उसे प्रगति के एक से एक बढ़कर अवसर प्रदान करता चलता है । ऐसे पुरुषार्थी का समर्थन और सहयोग करने की इच्छा हर किसी की होती है । उनके साथ आदान-प्रदान का व्यवहार करने में, विचार-विनिमय का क्रम चलाने में हर किसी को प्रसन्नता होती है ।

सबसे बड़ी बात यह है कि अपनी कार्य-व्यस्तता का प्रभाव घर के सब सदस्यों पर पड़ता है । पड़ोसी-सम्बन्धी तक उससे लाभ उठाते हैं । चर्चा का प्रसंग जहाँ भी चलता है, वहीं उत्साह उभरता है और अनुकरण के लिये साहस करने का मन करता है । देखा भी यही गया है कि एक कर्मवीर अपने प्रभाव क्षेत्र में जादू भरा वातावरण बनाता है और उसी राह पर अनेक को घसीट ले चलने में समर्थ होता है ।

श्रमशीलता का अभ्यास होने पर हाथ का काम निपट जाने भर से संतोष नहीं होता; वरन् दूसरों द्वारा छोड़े हुए अधूरे कामों को पूरा करने के लिए मन चलता है । आवश्यक नहीं कि जितना काम अपने जिम्मे आया हो, उतना ही करके निढाल हो रहा जाय वरन् नया काम ढूँढ़ना चाहिए । इसके लिए सबसे सरल उपाय यह है कि सम्पर्क क्षेत्र पर नजर डाली जाय कि किसका क्या काम अधूरा पड़ा है ? उसे आलस्यवश या बोझिल होने के कारण कर नहीं सका गया है । आज्ञा लेकर उस कार्य में जुट पड़ना चाहिए और पूरा करके हटना चाहिए । बड़ा काम सामने हो तो छोटे-छोटे कामों में हाथ बँटाया भी जा सकता है । इससे अपना समीपवर्ती क्षेत्र सुनियोजित और समग्र-सम्पन्न कार्यों की प्रदर्शनी बन जाता है । मात्र अपने हिस्से का काम निपटा लेने और दूसरों के इर्द-गिर्द गन्दगी पड़ी रहने से उसका दोष अपने ऊपर भी आता है । घर का एक कोना साफ-सुथरा हो और अन्य कोने कूड़े-करकट से भरे हों तो घर सुहावना नहीं लगेगा वरन् आक्षेप यह आयेगा कि किसी ने एक कोना साफ करके सारा घर गंदा छोड़ दिया है । वस्तुतः सारे परिकर को ही अपना स्वरूप मानकर चलना चाहिए और वहाँ के व्यक्तित्वों से लेकर क्रिया-कलापों तक को सुगढ़-सुन्दर बनाने का प्रयत्न करना चाहिए । पक्षी मनोयोग से घोंसला बनाते हैं और उनकी प्रशंसा हर किसी की जीभ पर छाई रहती है ।

घर के हर सदस्यों को भली प्रकार समझाया जाय, उसे हृदयंगम कराया जाय । उसका समय निर्धारण भी इस क्रम से बनाया जाय कि जिसमें उसकी व्यस्तता बनी रहे । बालकों, जवानों, बूढ़ों के कामों में अन्तर तो हो सकता है, पर उसमें से किसी को खाली बैठे रहने और दिमाग में खुराफातों की खेती करने का अवसर न देना चाहिए ।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति का माध्यम 'श्रम' है । विद्या प्राप्ति, धन-उपार्जन, योग साधन, आत्मोन्नति किसी भी उद्देश्य को लेकर बढ़ने का प्रयत्न करें बिना श्रम को अपनाये, बिना परिश्रम किए हम कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते ।

विद्यार्थी परीक्षा पास करने के लिए दिन-रात एक करता है । उसे सतत् निरन्तर प्रयत्न करना पड़ता है तब कहीं परीक्षा में अच्छे नम्बरों से पास होने का सुखद परिणाम प्राप्त होता है । स्नातक बनने के लिए एक विद्यार्थी को १४ वर्ष लगातार श्रम करना पड़ता है । श्रम की सतत् साधना और निरालस्य ही उसकी सफलता के माध्यम होते हैं ।

व्यवसायी जाड़ा, गर्मी और बरसात की चिन्ता किये बिना लगातार एकरस, निरालस्य होकर काम में जुटा रहता है तब अपनी आजीविका कमाता है, परिवार का भरण-पोषण करता है । बिना श्रम किये, आलस्य में पड़ कर वह चाहे कि मैं पैसा कमा लूँ, तो व्यवसाय में तो नहीं कमा सकता । इसी प्रकार कृषक, शिल्पी, श्रमिक, कलाकार आदि अपने शारीरिक और मानसिक श्रम का समन्वय करके प्रगति पथ पर अग्रसर होते हैं ।

निरालस्य श्रम ही जीवन विकास की कुंजी है । किसान भी वर्ष के किसी भी मौसम में विश्राम किए बिना आलस्य में पड़े बिना सतत् परिश्रमरत रहे ही अन्न उत्पन्न करता है । समय पर बीज न बोया जाय, पानी न लगाया जाय, रखवाली न की जाय तो भला किसान किस प्रकार फसल घर ला सकेगा । एक भी काम में जरा आलस्य किया तो उसका सर्वस्व नाश ही समझें । साल भर का सारा श्रम भी चला जायगा और आगे साल के लिए खाने के भी लाले पड़ जावेंगे ।

नौकरी करने के लिए भी श्रम को बिना अपनाये काम कैसे चल सकता है । अपना काम मुस्तैदी से न करने से, आलस्य में पड़ने से तो दूसरे दिन नौकरी में खतरा उत्पन्न हो सकता है ।

इस प्रकार देखा जा सकता है कि परिश्रम के बिना कोई रास्ता नहीं है । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता का मूलमन्त्र परिश्रम ही है ।

इसके विपरीत है आलस्य की विकृति जो हमारे मनों में घुसा हुआ बैठा रहता है । कोई काम तत्परता से नहीं, सब काम में आलस्य, कामचोरी, अनमनस्कता, ढीलापन ही दिखाई देता रहता है । यह आलस्य ही शैतान है जो विकास के हर कार्य में हमारे लिए बाधक बन जाता है । यह शैतान आलस्य जहाँ भी रहता है, वहीं अपने नाते-रिश्तेदारों-साथियों, मित्रों को-दुर्गुणों एवं दुष्प्रवृत्तियों को एकत्रित कर लेता है । आलस्य जहाँ रहता है वहाँ मनुष्य में सारे दुर्गुण आप आ जाते हैं । कामचोरी, झूठ बोलना, चोरी करना, धोखा देना, मिलावट करना, कम तोलना, बेईमानी करना, सट्टा खेलना, लाटरी लगाना, जुआ खेलना, रिश्वत लेना, शराब पीना, नशा करना, व्यभिचार करना, जमाखोरी करना, ईर्ष्या करना, द्वेष करना, कपट करना, दुर्व्यवहार करना, निन्दा-चुगली करना, बीसियों दुर्गुण और दुष्प्रवृत्तियाँ बिना प्रयास किये ही धीरे-धीरे उसी प्रकार आलसी मनुष्य में आ जाती हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

इसके ठीक विपरीत शीलवान, परिश्रमी व्यक्ति में अनचाहे ही सारे सद्गुण उसी प्रकार आते चले जाते हैं जैसे समुद्र में सारी नदियाँ बिना प्रयास ही अपने आप जाती हैं ।

महिलाएँ यह अच्छी तरह समझें कि परिश्रम जीवन की मूल पूँजी है अतः परिवार में क्रियाशीलता को बढ़ायें, परिवार के प्रत्येक सदस्य में कठोर परिश्रम का अभ्यास पैदा करें और अभिरुचि जगायें ।

यद्यपि महिलाओं के ऊपर काम का इतना भार रहता है कि उनके लिए परिश्रम के बिना दूसरा रास्ता नहीं है । किन्तु अकेले ही काम के भार से दबी जाती रहें और घर के अन्य सदस्य आलस्य में समय काटें यह भी अनुचित है । अतः सभी में सहकारिता के आधार पर मिल-जुलकर काम निपटाने की आदत डालनी चाहिए वह चाहे कोई भी काम हो । बच्चों से लेकर बड़ों तक सब में परिश्रम की अभिरुचि जागे । इस सन्दर्भ में व्यवस्थित दिनचर्या का निर्धारण होना आवश्यक है समय और श्रम का तालमेल बिठाकर मुस्तैदी से उस निर्धारण को पूरा करते रहने से ही श्रम सन्तुलन बनता है । नियमित और क्रमबद्ध श्रम करने की आदत समय और श्रम का पारस्परिक सम्बन्ध मिला देने पर ही पड़ती है । समय का एक क्षण भी बेकार न गँवाया जाय । हर समय व्यस्त रहा जाय । श्रम और विश्राम के औचित्य का समुचित ध्यान रखा जाय तो ही श्रमशीलता फलप्रद होती है ।

विश्राम आवश्यक है । काम के बीच-बीच में विश्राम की गुंजाइश रखी जाय, पर विश्राम को भी उथला नहीं वरन् गहन बनाया जाय, जिससे थोड़ी ही देर में पूर्ण शान्ति का अवसर मिलने पर थकान उतर सके ।

काम को अपमान की दृष्टि से देखना बहुत बुरा है । अपने देश की मानसिकता कुछ इसी प्रकार की बन गई है, जिसमें श्रमजीवी को अभागा माना जाता है । परिश्रम करने में हेटी समझी जाती है । इस मान्यता को हमें पूरी तरह हटाना चाहिए, अन्यथा बेकारी की दुष्प्रवृत्ति हमारे मनों पर हावी होगी और दरिद्रता, कुसंस्कारिता स्वभाव का अंग बनकर रहेगी । इसमें उज्ज्वल भविष्य बनने में भारी अवरोध उत्पन्न होता है ।

संसार में जितनी भी उपलब्धियाँ दिखाई पड़ती हैं वे कठोर श्रमशीलता का ही गुणगान करती हैं । जिसने जो पाया है मेहनत से ही पाया है । स्वास्थ्य संरक्षण से लेकर ज्ञानवृद्धि, समाज सम्मान और वैभव सम्पन्नता तक प्रत्येक उपलब्धि कठोर श्रम और गहरा मनोयोग चाहते हैं । अधूरे मन से उपेक्षा और आलस्य के साथ, रोते-झींकते बेगार की तरह जो भी काम किया जायगा वह एक प्रकार लँगड़ा-लूला ही रहेगा । अपने देश में आलस्य को मान्यता मिली है । काम न करना पड़े तो उसे सौभाग्य समझा जाता है और अमीरी का चिह्न समझा जाता है । नौकरों की गुलामी सबसे बुरे किस्म की पराधीनता है । अपने हाथ-पाँवों का, मस्तिष्क का, मनोयोग का जितना अधिक उपयोग किया जायगा उनमें उतनी ही प्रखरता आयेगी । घर पर आते ही अपने लिए काम तलाश करना चाहिए । टूट-फूट का सिलसिला हर जगह चलता रहता है । मरम्मत करने की विधियाँ सीखी जा सकती हैं और घर से हर वस्तु को इस मरम्मत की गति द्वारा जर्क-वर्क रखा जा सकता है । घर के अन्य सदस्यों को भी साथ में लगाकर उन्हें भी इस प्रवृत्ति का अभ्यास कराया जा सकता है । कपड़े धोना, लोहा करना, चारपाइयों की ढील-पोल ठीक करना, पुस्तकों की जिल्दें, बर्तन, फर्नीचर आदि की मरम्मत, फटे कपड़ों की सिलाई आदि मरम्मत जैसे कार्यों से लेकर बच्चों को पढ़ाने और गृह उद्योगों का सिलसिला जमाने तक में से अनेक तरीके हो सकते हैं, जिससे घर में श्रमशीलता की व्यस्तता का वातावरण बना रहे । यह भली प्रकार स्मरण रखना चाहिए कि कार्यव्यस्तता अनेक दोष दुर्गुणों से कुसंग और दुष्प्रवृत्तियों से बचाती है और ऐसी अभिरुचि उत्पन्न करती है जिसके सहारे अगणित उपलब्धियाँ प्राप्त करना सम्भव हो सके । आलसी, आरामतलब और हरामखोर मनुष्य को हर दृष्टि से असुर भी कहा जा सकता है, उसका भविष्य एक प्रकार से अवरुद्ध हो गया ही समझना चाहिए । हमें अपने स्वभाव में और परिवार के अभ्यास में श्रमशीलता का अधिकाधिक समावेश करना चाहिए ।

सादगी, संयम और मितव्ययिता

पारिवारिक पंचशीलों में द्वितीय स्थान है- मितव्ययता का । सीमित खर्च करने का अर्थ है, अपव्यय में नष्ट होने वाली राशि को बचा लेना अर्थात् उतनी नयी कमाई कर लेना । बचत ही वस्तुतः भविष्य को अधिक समुज्ज्वल बना सकने में समर्थ सम्पदा है ।

यह अधिक महत्वपूर्ण नहीं कि कौन कितना कमाता है ? उसकी आमदनी कितनी है ? यदि खर्च अनावश्यक रूप से बढ़ा लिया गया है, तो फिर पूरा किसी भी प्रकार न पड़ेगा, उल्टा कर्ज लेना पड़ेगा, अनैतिक उपार्जन पर उतारू होना पड़ेगा । यह स्थिति ऐसी है, जिसे अभावग्रस्तता से भी अधिक कष्टकर कहा जा सकता है ।

दुर्गुणों में अपव्यय को प्रमुखता दी गयी है । उसकी अनेकानेक हानियाँ हैं । अपव्यय प्रायः दुर्व्यसनों में, फैशन में, ठाठ-बाट में, बड़प्पन जताने के लिए किए गये कामों में ही होता है, नशेबाजी, जुआ, नाच, तमाशा, मौज-मजा जैसे कार्यों में होता है । शृंगार-सज्जा भी इसी में आती है । लोग कीमती कपड़ों की अनेक जोड़ियाँ बनवाते और उनसे सन्दूक भरते रहते हैं । स्त्रियों में जेवर का शौक उसी प्रकार का है । उन्हें पहनने से अस्वास्थ्यकर दबाव पड़ता है । नाक, कान आदि कोमल और प्राकृतिक सौन्दर्य से भरे-पूरे अंगों को छेदकर उनमें चित्र-विचित्र प्रकार के जेवर ठूँस लेना एक प्रकार से उन अंगों के प्रति अत्याचार

करना है । हाथों की अँगुलियों में, कलाइयों पर, गले में, पैरों में अनेकानेक प्रकार के जेवर लदे देखे जाते हैं । उनसे हर प्रकार की हानियाँ ही हैं । लाभ रत्ती भर भी नहीं । उनके दबाव से अंग विकृत होते हैं । लम्बी रकम उनमें फँसती है । बार-बार टूट-फूट होते रहने से मरम्मत में पैसा जाता है । चोर-उचक्के का डर हमेशा बना रहता है । देखने वालों को प्रसन्नता कम कुढ़न अधिक होती है । कोई बेईमानी की कमाई कहता है, तो किसी को अहंकार की गन्ध आती है । परिवार में न्यूनाधिकता के कारण ईर्ष्या उभरती है । इतने सब कारण जेवर बनवाने और पहनने के साथ जुड़े हुए हैं । कीमती कपड़ों की अनेकानेक जोड़ियाँ रखने के बारे में भी यही बात है । वे दिन बहुत पीछे छूट गये जब किसी की अमीरी देखकर लोग प्रभावित हुआ करते थे और उसे भाग्यवान, बड़ा आदमी माना करते थे । अब साम्यवाद की लहर ने हर किसी का मन और चिन्तन दूसरी दिशा में मोड़ दिया है । अमीरी जताने वाले प्रदर्शनों को सीधा चोरी का, बदमाशी का माल ठहरा दिया जाता है । ईर्ष्यालु और किसी प्रकार हड़पने का कुचक्र रचने की घात में रहने वालों की भी कमी नहीं रहती । इस प्रकार की जिस प्रतिष्ठा की प्राप्ति के लिए ठाठ-बाट बनाया गया है, वह मिलना तो दूर उल्टे अनेकानेक प्रकार की हैरानियाँ खड़ी करने वाला बन जाता है ।

घर के अन्य सदस्य भी वैसी ही शौक-मौज के लिए ललचाते हैं और अपना स्तर भी कम सजीला नहीं रहने देते । उन्हें भी अपने-अपने ढंग से उसी से मिलती-जुलती फरमाइश पूरी करने की जुनून चढ़ती है । इस प्रकार घर खर्च, हाथ खर्च आसमान छूने लगता है । इसकी पूर्ति उचित मार्ग से की गयी कमाई से नहीं हो पाती । तब ऋण लेते रहने से, अनीति मार्ग अपनाने से लेकर जो कुछ कर्म-कुकर्म बन पड़ता है, उसे पूरा करने से कम में उनका काम नहीं चलता । इस प्रकार ऊपरी तड़क-भड़क के लिए अपनी वास्तविकता गरिमा को खोखला कर लिया जाता है ।

जिनकी आजीविका सीमित है और ठाठ-बाट का खर्च बढ़ा लेते हैं, उनके लिए यह कठिन पड़ता है कि लोगों की आँखों में अपनी ईमानदारी की छवि बनी रहे । हर कोई अनुमान लगाता है कि जब आमदनी सीमित बताई जाती है तो फिर यह धनाध्यक्षों जैसा आडम्बर किस प्रकार बन पड़ता है । इस प्रश्न का उत्तर कितनी सफाई देने पर भी दूसरों के गले नहीं उतरता । सज-धज में एक ऐब और है कि उसे हर किसी की आँख में लाने के लिए अपना विज्ञापन आप करते हुए ऐसे लोगों के पास जाना या उन्हें बुलाना इसलिए आवश्यक हो जाता है कि सस्ती वाहवाही लूटी जा सके । इस मेल-जोल बढ़ाने के चक्कर में प्रायः अवांछनीय व्यक्तियों के साथ ही संगति जुड़ती है और उसमें हजार तरह के खतरे छिपे रहते हैं । रूप-सौन्दर्य को शृंगार के सहारे निखारने के बाद महिलाओं की उत्सुकता इस बात में बढ़ती है कि लोग उन्हें देखें और मन ही मन या प्रकट रूप से अपनी प्रसन्नतापरक अभिव्यक्ति जतायें । यही वह चारा है जिसमें मछुए और बहेलिए मछलियों और चिड़ियों को फँसाकर उनकी दुर्गति करते हैं ।

चतुर मालिक अपने नौकरों पर बारीकी से नजर रखते हैं कि वे अधिक खर्चीले, ठाठ-बाट बनाने वाले तो नहीं हैं । यदि हैं तो वे सोचते हैं कि इस अनावश्यक खर्च की पूर्ति अपने ही कारोबार में कहीं चोरी-चालाकी करके ही की जा रही होगी । उन्हें सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है । समय आते ही उन्हें निकाल दिया जाता है । अन्यत्र भी कहीं नौकरी ढूँढ़ने पर उनका ठाठ-बाट ही सफलता नहीं मिलने देता । इस कुचक्र में उन्हें भारी हानि उठानी पड़ती है । लड़कियों को गुण्डों की कुदृष्टि का शिकार बनने में बहुधा यही कारण प्रधान रहता है ।

साथ ही यह आदत एक और दुर्गुण न्यौत बुलाती है कि ऐसा कोई शारीरिक श्रम न किया जाय, जिससे कपड़े, हाथ गीले होते हों । तनिक-तनिक-सी बात के लिए नौकरों की दरकार होती है । बड़े आदमी मेहनत नहीं करते यह आम मान्यता है । इस बात को ध्यान में रखते हुए सज-धज वालों को कड़ा श्रम करने में अपनी बेइज्जती मालूम देती है । वे प्रायः उससे बचते ही रहते हैं । स्पष्ट है कि बिना कड़े परिश्रम किए न तो कोई स्वस्थ रह सकता है, न प्रगति पथ पर अग्रसर हो सकता है । इन दोनों महत्वपूर्ण उपलब्धियों से उसको वंचित किए रहना कोई समझदारी की बात नहीं है ।

सादगी सज्जनता की निशानी है । उसमें नम्रता और शालीनता झलकती है, जिससे किसी के सौजन्य का सहज पता चलता है । नैतिकता और सामाजिक क्षेत्रों में जिन्होंने बढ़-चढ़कर सफलता पाई और प्रतिष्ठा अर्जित की, उनमें से अधिकांश की वेशभूषा सादगी से भरी रही है । जन-साधारण के साथ एकता बनाने के लिए आवश्यक है कि उनके साथ एकरूपता का भी यथासम्भव प्रयत्न किया जाये । अपने देश में अधिकांश जन-साधारण को गरीबी की रेखा से नीचे का जीवनयापन करना पड़ता है । उनके साथ तादात्म्य स्थापित करने वालों को उन्हीं जैसा रहन-सहन रखना चाहिए । तड़क-भड़क से वे आश्चर्यचकित भर होते हैं । उन्हें कुछ अजीब होने जैसी दृष्टि से देखते हैं । पर यह अनुभव नहीं करते कि यह हमारी स्थिति को समझा होगा । हमारे दुःख-दर्द में सम्मिलित होने का मन रखता होगा । इस स्थिति के रहते उनका मन जीतना और सहयोग अर्जित करना कदाचित् ही कहीं दीख पड़ता होगा ।

प्रसिद्ध है कि गाँधी जी औसत भारतीय नागरिक की तरह अपना निर्वाह करते थे । वे सदा थर्ड क्लास के डिब्बे में सफर करते थे । आधी धोती पहनते और आधी ओढ़ते थे । चटाई पर बैठते और सोते थे । रसोईघर के कामों में

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हाथ बँटाते थे । इस पर भी वे देश की-सत्याग्रह का-अनेक रचनात्मक प्रवृत्तियों का संचालन करते थे । सस्ता रहन-सहन रखने से उन्हें किसी बात की-किसी काम में कहीं अड़चन नहीं पड़ती थी । घटिया रहन-सहन रखने पर भी उन्हें, उनके व्यक्तित्व को कहीं भी घटिया होने की कल्पना नहीं की गयी ।

सादगी के साथ स्वच्छता जुड़ी हुई है, तो वह अपने आप में एक फैशन बन जाती है । ऐसी फैशन जिसका विचारशील वर्ग पर असाधारण प्रभाव पड़ता है । खादी को गाँधीजी ने इसलिए भी राष्ट्रीय परिधान घोषित किया था कि उसे पहनने वाला अपने साथ सात्विकता, सादगी और शालीनता जुड़ी हुई अनुभव करता है । इसके अतिरिक्त बेरोजगारों को काम मिलने, गरीबों की सहायता बन पड़ने जैसे उसमें गौण लाभ भी अनेक जुड़े हुए थे ।

सादगी अपनाने से निर्धन भी कुछ बचत करते रह सकते हैं, जो आड़े समय में अपने या दूसरों के काम आ सकती है । बचत से ही पुण्य-परमार्थ जुटाया जा सकता है । अपने को अधिक स्वस्थ, सुविकसित एवं समन्वित बनाने का साधन जुटाया जा सकता है । बचत को नित्य निर्वाह व्यय का एक अविच्छिन्न अंग मानकर चलना चाहिए, इससे निश्चिन्तता रहती और पीठ भारी बनी रहती है । उस आधार पर कोई बड़ा काम किया जा सकता है । किसी बड़ी विपत्ति से निपटा जा सकता है । आश्रितों को समुन्नत एवं स्वावलम्बी बनाने में यह बचत ही काम देती है । इसे बैंक में जमा करते रहा जाय तो वह कुछ वर्षों में मूलधन को दूना-चौगुना कर देती है ।

सादगी की एक विशेषता यह है कि साज-सँवार में जो समय लगता है, उसकी पूरी तरह बचत हो जाती है । इस समय को अपनी ज्ञान वृद्धि में, स्वास्थ्य वृद्धि में, अनुभव प्राप्ति में, सेवा-साधना में लगाया जा सकता है और उसके बदले बहुत कुछ पाया जा सकता है । दर्शक उससे प्रभावित होते हैं और उसे सहज ही कोई आदर्शवादी मान लेते हैं । अपेक्षाकृत अधिक विश्वास करते हैं, अधिक प्रमाणित मानते हैं और अधिक सहयोग देते हैं । यह इतना बड़ा लाभ है, जिसे कितनी सज-धज करते रहने पर भी नहीं पाया जा सकता । खर्च में कटौती और प्रतिष्ठा में अभिवृद्धि का दोहरा लाभ होता है, जिसे हर किसी को उठाना ही चाहिए ।

मितव्ययता अलग बात है और कंजूसी, कृपणता दूसरी । आवश्यक कामों में भी कृपणता के वशीभूत होकर कटौती की जाती रहती है और संचय को बढ़ाया जाता रहता है । ऐसी बचत तो फिजूलखर्ची से भी बुरी है । धन का सदुपयोग इसी में है कि उसे उपयोगी कामों में लाते रहने के उपरान्त भी जो बच पड़े उसकी बचत की जाये । उपयोगी कामों को रोक कर की गयी बचत तो अपनी प्रगति रोकती है और दूसरों की दृष्टि में उपहासास्पद बनाती है ।

बचत एक प्रकार का संयम है, जिसमें इन्द्रिय संयम, समय संयम, अर्थ संयम, विचार संयम के चारों पक्ष आते हैं । घड़े के पैंदे में एक छोटा-सा छेद हो जाने पर भी उसका सारा पानी नीचे बहकर समाप्त हो जाता है । असंयम के छिद्र ऐसे हैं कि उसे जहाँ भी स्थान मिलेगा, वहीं अनर्थ खड़ा होगा । इन्द्रिय असंमय मनुष्य की शारीरिक और मानसिक स्थिति को खोखला बनाता है । आर्थिक असंयम से मनुष्य दरिद्र और बेईमान बनता है । समय में असंयम बरतने पर कोई आलसी, प्रमादी ही बन सकता है । अनगढ़ विचारों से शेखचिल्ली बनने या बेसिर-पैर की उड़ानें उड़ते रहने का अभ्यास बनता है । यह चारों ही संयम मनुष्य को हर दृष्टि से समृद्ध बनाते हैं, वहाँ उनका असंयम दीन-दुर्बल बनाकर रहता है । सादगी और संयम प्रकारान्तर से एक ही हैं । सादगी प्रत्यक्ष होती है और संयम परोक्ष, पर दोनों एक-दूसरे के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए हैं ।

शिष्टता की उपयोगी रीति-नीति

कौन कैसा है ? इस वास्तविकता का पता लगाना कठिन है । इसके लिये लम्बे समय का सान्निध्य और गतिविधियों का गम्भीरतापूर्वक पर्यवेक्षण चाहिए । उसमें कमी रहे तो संपर्क क्षेत्र के लोगों के सम्बन्ध में भी गलतफहमी रह जाती है । जिसे खरा समझा गया था वह खोटा निकलता है । कई बार उपेक्षितों में भी ऐसे निकल पड़ते हैं जिन्हें कीचड़ का कमल या कोयले की खदान का हीरा कहा जा सके । किन्तु यह सब गहरी जाँच-पड़ताल करने पर ही पता चलता है । सामान्य परिचय से उस बारीकी का पता नहीं चल पाता । ऐसी दशा में समीपवर्ती लोगों के सम्बन्ध में वास्तविकता की जानकारी नहीं हो पाती । इस अनभिज्ञता में कई बार धोखा और जोखिम भी उठाना पड़ता है ।

मोटी परख का एक सरल तरीका है शिष्टाचार का अवलोकन । सभ्य व्यक्ति की वाणी में शालीनता होती है जो मुँह खोलते ही प्रकट होती है । अपनी अभिव्यक्ति नम्र स्तर की होना और दूसरों के प्रति आदर का भाव प्रकट करना । यह दोनों ही परस्पर मिलकर वाणी की शालीनता प्रकट करते हैं । यह परिचय लेखनी से ही मिलता है । किन्हीं के पत्र किस स्तर के हैं, उनसे क्या अभिव्यक्तियाँ प्रकट होती हैं-इसे सहज ही जाना जाता है । वार्ता शुरू करने वाला और उसका उत्तर देने वाला अपने कथन में नम्रता, सद्भावना का पुट किस मात्रा में रच रहा है, इसे देखकर तीसरा समीपस्थ व्यक्ति यह अनुमान लगा सकता है कि दोनों पक्षों में से किसमें किस मात्रा में सज्जनता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वस्तुतः सज्जनता का व्यवहार ही किसी व्यक्तित्व के स्तर का परिचायक है । इस जानकारी के बाद ही यह प्रश्न उठता है कि किसके साथ किस प्रकार का व्यवहार किया जाय ? सम्पर्क जोड़ा जाय, सहयोग दिया जाय । वाणी को प्रवक्ता का पद दिया गया है । वह जब बोलना आरम्भ करती है तो मात्र कामकाजी प्रसंगों को ही नहीं निपटाती वरन् बोलने वाले की शालीनता के स्तर भी खोलकर रख देती है । उसमें शक मात्र ही नहीं होती है, साथ में ऐसी गंध भी घुली होती है, जिससे आदमी के मर्मस्थल को पहचाना जा सके । उसकी सज्जनता का, प्रामाणिकता का स्तर नापा जा सके । इसलिए न केवल बोलते समय हमारी शब्दावली शिक्षितों जैसी होनी चाहिए, वरन् साथ में सद्भावना की मिठास भी घुली रहनी चाहिए । उसमें से सज्जनता की फूलों जैसी मधुर गंध उठनी चाहिए ।

वाणी प्रथम प्रयोग है । वह इतनी सशक्त है कि शब्द कुछ भी हो, बोलने वाले की सुसंस्कारिता-कुसंस्कारिता का परिचय खुले पत्रों की तरह प्रस्तुत करती है । इसके बाद शिष्टता की परिधि में व्यवहार के अन्य शिष्टाचार आते हैं । जैसे बैठने के लिए स्वेच्छा से वह जगह चुनना जो सर्वसाधारण के लिए मानी जाती है । वहाँ बैठने के बाद यदि ऊँचे आसन पर निकट आकर बैठने के लिए कहा जाय तो ही बैठना चाहिए । देखते ही आगन्तुक का मुस्करा कर स्वागत करना, उसके आगमन को प्रसन्नता का विषय बताना, समुचित आसन देना, कुशल समाचार पूछना, यह प्रारम्भिक स्वागत ऐसा है जो काम छोड़कर भी किया जाना चाहिए । इसके बाद यदि जरूरी काम रुका पड़ा हो तो उसके लिए आज्ञा माँगकर अपना आवश्यक कार्य करने के लिए चला जाना चाहिए । अतिथि का कम से कम जल से तो स्वागत करना ही चाहिए । सौंफ-सुपाड़ी जैसा कुछ सस्ता उपहार हो तो उसे भी भेंट किया जा सकता है । कोई सर्वथा निरर्थक आदमी हो तो उससे पीछा छुड़ाना आवश्यक हो तो जल्दी निपटा देने की बात दूसरी है । फिर भी अपनी ओर से तो यथासम्भव शिष्टता का निर्वाह होना ही चाहिए, चाहे उसका निर्वाह ही सीमित क्यों न बन पड़े । वाणी का शिष्टाचार हर हालत में निबाहा जाय, किसी से कटु शब्द न बोले जायें, न किसी को धमकी, चुनौती आदि दी जाय । दूसरा असभ्यता पर उतरे तो उस समय उसे अपनी भड़ास निकाल लेने दी जाय । बाद में अवसर पाकर उसे वस्तुस्थिति समझा दी जाय । अक्सर झंझट गलतफहमियों के कारण ही होते हैं । कभी-कभी आवेशग्रस्त स्वभाव वाले भी अपनी आदत से लाचार होकर हर किसी से उलझ पड़ने की हरकतें करते रहते हैं । ऐसों की उपेक्षा करनी उचित है । गाली का जबाव गाली नहीं हो सकती । मैले कपड़े को कीचड़ से नहीं धोया जा सकता । उसके लिए तो साफ सुथरा पानी चाहिए । झंझट खड़ा कर लेना सुगम है, पर उसे निपटाना बड़ा कठिन । हिम्मत वाले दूरदर्शियों को कठिन काम ही हाथ में लेना चाहिए ।

शिष्टता एक उपयोगी, लाभदायक और समाधान कारक प्रवृत्ति है । इसके विपरीत उजड्डपन से दूसरों का जितना अपमान होता है उससे कहीं अधिक अपनी बेइज्जती होती है । इसलिए समझदारों में से किसी को भी यह घाटे का सौदा हाथ में नहीं लेना चाहिए ।

देखा गया है कि अशिष्टता बरतने का, आवेश में आकर उबल पड़ने का स्वभाव बचपन से ही आरम्भ होता है और वह धीरे-धीरे जड़ पकड़ता जाता है और फिर उससे पीछा छुड़ाना कठिन पड़ता है । इसलिए सतर्क अभिभावकों, अध्यापकों को जहाँ बच्चों के सम्बन्ध में कामकाजी बातों के अतिरिक्त यह भी ध्यान रखना चाहिए कि कहीं उनकी आदतों में अनौचित्य तो घर नहीं कर रहा है । कुटेबों में गंदा रहने की आदत की तरह अशिष्ट व्यवहार करने की बात भी अखरने वाली है । इसके लिए उन्हें आरम्भ से ही टोका और सिखाया जाय । बच्चों को उपदेश प्रायः कम याद रहते हैं । अच्छा तरीका यह है कि उनके साथ बरताव करके बदले में वैसा ही अनुकरण करने का अवसर मिला जाय ।

वार्तालाप में उन्हें आप कहकर बोला जाय । नाम के साथ 'जी' शब्द और जोड़ा जाय । उनसे वार्तालाप सज्जनता की भाषा में किया जाय और व्यवहार शिष्टता की मर्यादाओं के अनुरूप । इस विद्या का वे अनुकरण करना प्रारम्भ करते हैं और शालीनता के ढाँचे में ढलते जाते हैं । न कटु शब्द उन्हें बोला जाय और न उसकी प्रतिक्रिया उत्पन्न होने दी जाय ।

ऐसा करने से वे शिष्टता के व्यवहार की मानमर्यादा से अवगत हो जाते हैं और उसके निर्वाह में अभ्यस्त हो जाते हैं । कपड़ों को, बालों को, बैठने के ढंग को भी इसी ढाँचे में ढाला जाय, क्योंकि न केवल बोलचाल से वरन् रहन-सहन और रीति-नीति से भी यह पता चलता है कि क्या उचित है और क्या अनुचित ? यों चिन्तन और चरित्र की उत्कृष्टता और आदर्शवादिता से भरा हुआ होना चाहिए किन्तु वह सब तो देर से अपनी स्थिति का परिचय देता है । सबसे प्रथम साक्षात्कार से ही यह बात प्रकट हो जाती है कि कौन व्यक्ति किस स्तर का है ? उसके व्यक्तित्व का वजन कितना है ? यह जाँच-पड़ताल वार्तालाप में घुली रहने वाली वस्तुस्थिति और रहन-सहन की प्रक्रिया परिपाटी से ही प्रकट होती है । इसलिए जो प्रत्यक्ष है उसके बारे में और अधिक सतर्क रहने की जरूरत है ।

बच्चों को वैसा शिक्षण का अवसर न दिया जा सके तो भी बड़ी आयु के अनगढ़ों से भी वैसा व्यवहार करना चाहिए । बड़ी आयु हो जाने पर भी कितने ही लोग गुण-कर्म-स्वभाव की दृष्टि से बचकाने ही बने रहते हैं । उन्हें प्रौढ़शिक्षा स्तर पर पारस्परिक व्यवहार में सज्जनता बरतने का पाठ किसी भी आयु में पढ़ाया जा सकता है । इसका सीधा और सरल तरीका एक ही है कि अपनी ओर से हर

युग-निर्माण २, कम्प्यूटर डी, अन्जू, १४.४.९६

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

स्थिति में शालीनता बरती जाय । दूसरे ने क्या कहा और क्या किया ? उसके लिए ठीक वैसा ही व्यवहार करना तर्क की दृष्टि से तो ठीक हो सकता है, पर उसके दूरगामी परिणाम अनुपयुक्त ही देखे गये हैं । विचारशील भावी परिणति और सम्भावनाओं को ही महत्व देते हैं और आशाजनक परिस्थितियाँ उत्पन्न करने के लिए सज्जनोचित व्यवहार के रूप में बीजारोपण करते हैं ।

अतिथि सत्कार में, अलग विचार-विनिमय के अवसरों में प्राय: शिष्टाचार का प्रकटीकरण होता है । पत्राचार में भी, भाव सम्वेदनाओं की झलक रहती है । निजी रहन-सहन, चाल-ढाल, रुझान, हलचल में भी वह तथ्य भीतर से उभरकर बाहर आता है । विक्षिप्तों को उनकी चालढाल, भाव-भंगिमा से सहज पहचाना जा सकता है । इसी प्रकार अशिष्टों की अनगढ़ हरकतों से भी यह जाना जा सकता है कि उनका स्तर क्या है ? कपड़े मैले-कुचैले, बटन खुले, जूते फटे, बाल बिखरे देखकर भी किसी की असभ्यता को आँका जा सकता है । सभ्य सामाजिक बनने के लिए हर किसी को अपनी चेष्टाएँ ऐसी रखनी पड़ती हैं कि प्रथम साक्षात्कार में ही दूसरों पर छाप पड़े और उलटकर सम्मान-सत्कार मिले ।

शिष्टाचार का मूल मंत्र है-अपनी नम्रता और दूसरों का सम्मान । इस कसौटी पर जो जितना खरा उतरता है उसे उतना ही सभ्य-सुसंस्कृत समझा जायेगा । जो अपना अहंकार जताते हैं और दूसरों का अपमान करते हैं वे असभ्य गिने जाते हैं । आवश्यक नहीं कि ऐसा घटिया प्रदर्शन मारपीट से, गाली-गलौज से ही किया जाय- ऐसी दुर्गन्ध साधारण वार्तालाप में भी भरी हो सकती है । कई व्यक्ति अपनी शेखी बघारते रहने के आदी होते हैं । उनका यह करना तो अत्युत्साह की तरंग में करना होता है, पर प्रकारान्तर से यह भाव रहता है कि अपने बड़प्पन की इतनी बढ़ी-चढ़ी छाप छोड़ें, जिसकी तुलना में सुनने वाले अपने को पिछड़ा हुआ अनुभव करने लगें । यह अप्रत्यक्ष अहमन्यता है जो सुनने वालों को अखरती है जिससे उसकी धाक स्वीकार करने की अपेक्षा उसे मन ही मन शेखीखोर मानने लगते हैं और उसके कथन पर अविश्वास करने लगते हैं ।

परिवार में शिष्टता का वातावरण प्रचलित रहना चाहिए । सभी सदस्य एक दूसरे को सम्मान दें । उचित मर्यादा में प्रशंसा करें और प्रोत्साहन भी दें । दिल तोड़ने वाली, निराश करने वाली बातें न कहें । सम्मान से सद्भाव बढ़ता है । शिष्टता बरतने वाला सम्मानित होता है और अनायास ही दूसरों का सद्भाव-सहयोग अर्जित करता है । साथ ही अपने विश्वस्त व्यक्तित्व की दर्शकों पर भी छाप छोड़ता है । यह प्रत्यक्ष ही लाभ का सौदा है । इस व्यवसाय में भी प्रवीण-पारंगत होने का हर किसी को प्रयत्न करना चाहिए । साथ ही यह भी गिरह बाँध कर रखना चाहिए कि अशिष्टता हर दृष्टि से हानिकारक है । यह अपना स्तर गिराती है, मित्रों को शत्रु बनाती है । जो सहयोगी था, उन्हें असहयोग करने के लिए प्रेरित करती है । इसकी हानि भले ही तत्काल किसी की समझ में न आये, पर परिणाम सामने आने पर विदित होता है कि एक ऐसी कुटेब पाल ली गई जो पग-पग पर अनर्थ खड़े करती है ।

घर के विचारशील तथा प्रमुख व्यक्ति ही शिष्टता का विकास कर सकते हैं । सर्वप्रथम उनके द्वारा ही इसका पालन किया जाना चाहिए । अभिवादन करते समय, बात करते समय हम वाणी में शालीनता लायें, मधुर और नम्रतापूर्ण वाणी प्रयोग करें । हमारी बोली में कठोरता, तू-तड़ाक और तानेबाजी की आदत होती है, उसे धीरे-धीरे हटाने-बदलने का प्रयास करना चाहिए कहा है-

''ऐसी वानी बोलिए मन का आपा खोय ।
औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होय ।।''

बहुधा बोलने में 'तकिया-कलाम' के रूप में गाली के शब्द और निरर्थक शब्द बोलने का स्वभाव पड़ जाता है किन्तु वह सभ्य-समाज में बोलते ही शर्म से आँखें नीची करनी पड़ती हैं, अत: उनका उपयोग छोड़ने का अभ्यास करना चाहिए ।

हम कुछ भी आँय-शाँय जो मुँह पर आ जाय सो न बोलें, हम क्या बोल रहे हैं उसका पहले से विचार कर लेना चाहिए । इसीलिए कहा है कि ''जो कुछ बोलें, उसको तोलें'' अर्थात संतुलित बोलने का प्रयत्न किया जाय ।

'तू' शब्द से किसी को सम्बोधित न करना चाहिए । 'तू' शब्द से सम्बोधन किसी को भी सम्मानित जैसा नहीं लगता अत: बात करने में 'आप' का प्रयोग करना चाहिए ।

संभाषण बातचीत में भी शिष्टाचार का ध्यान रखा जाना भी उतना ही महत्वपूर्ण है । जितना अन्य बातों में । बातचीत में भी हम ध्यान रख सकें कि अनर्गल-व्यर्थ की बातें न करें, शेखी न बघारें, चीख-चीखकर न बोलें, तनिक-तनिक-सी बात पर आवेश में न आयें । रूठने की आदत न डालें । किसी की खिल्ली न उड़ायें, किसी की बातचीत में बीच में न बोलें, तो जीवन की आधी उलझनें समाप्त हो सकती हैं । अधिकांश झंझटें तो ऐसे व्यवहार से ही उत्पन्न होती हैं, जिन्हें थोड़ी-सी सतर्कता से बचाया जा सकता है ।

क्रोध, आवेश और उद्धत आचरण सबसे पहले अपने वाहन को ही एक प्रकार से विक्षिप्त बना देता है, वह होश-हवाश खोकर पागलों जैसी स्थिति में चला जाता है, और आदत पड़ जाने पर बात-बात में तैश दिखाता है । यह अपने शरीर और मन की बर्बादी का सबसे गन्दा तरीका है । उसके अतिरिक्त जिस पर क्रोध किया गया है वह उस कारण पर उलटा विचार नहीं करता जितना अधिक स्वाभिमान पर चोट पहुँचने से तिलमिलाता है । अपमान, गाली-गलौज या मारपीट करके बाहर से ही किसी को चुप या आतंकित कर सकते हैं । भीतर से तो

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वह विद्रोही हो उठता है और जब भी अवसर मिलता है उस अपमान का बदला चुकाता है । उसे एक नया संकट ही कहना चाहिए । किसी अवांछनीय कारण पर असहमति प्रकट करने के उद्देश्य में किया गया क्रोध वस्तुत: उस उद्देश्य की पूर्ति तनिक भी नहीं करता वरन् नई समस्या खड़ी कर देता है-द्वेष-दुर्भाग्य का एक नया वातावरण रच देता है जिससे भूल क्षति से दूनी हानि नये सिरे से और उपस्थित हो जाती है । यह दुर्गुण यदि घुस पड़ा हो तो उसे निवारण करने के लिए समझाने से लेकर रूठ बैठने तक के जो भी तरीके उचित हों काम में लाये जाने चाहिए और अशिष्टता का हर कीमत पर निराकरण करना चाहिए । वैसे वातावरण आरम्भ से ही ऐसा बनाया जाना चाहिए कि भविष्य में इस प्रकार की दुष्प्रवृत्ति के बीजारोपण और पोषण की कोई सम्भावना ही शेष न रह जाय ।

शिष्टाचार की पाठशाला—परिवार

शिष्टाचार सभ्यता का अनिवार्य अंग है । सांस्कृतिक चेतना जहाँ मुख्यत: आंतरिक परिष्कार से सम्बन्धित होती है, वहीं सभ्यता में बाह्य व्यवहार की ही प्रधानता होती है । संस्कृति का बाहरी पहलू ही सभ्यता है और इस व्यवहार प्रधान सभ्यता में शिष्टाचार का सर्वप्रमुख स्थान है । उर्दू में इसे ही 'तहजीब' कहा जाता है । 'मैनर्स' और 'एटीकेट' इसके अँग्रेजी नाम हैं । इनका महत्व सर्वविदित है । पब्लिक यानी कान्वेण्ट स्कूलों में अन्य स्कूलों के शिक्षण से एक ही वस्तु भिन्न होती है- 'मैनर्स' और 'एटीकेट' का प्रशिक्षण । इसी के लिए वे शुल्क के रूप में भारी रकम वसूल करते हैं और इसी प्रशिक्षण के लिए ही उनकी प्रसिद्धि भी रहती है । सभा-सम्मेलनों, सामूहिक आयोजनों, बैठकों आदि में शिष्टाचार का ध्यान रखना आवश्यक होता है । किसी भी बड़े शासकीय कार्यक्रम में 'प्रोटोकॉल' का बड़ा महत्व होता है, जो कि वस्तुत: शासकीय शिष्टाचार परम्परा का ही नाम है । 'प्रोटोकॉल' का उल्लंघन एक गम्भीर भूल मानी जाती है । क्लबों आदि में मैनर्स पर ही सारा जोर रहता है और शिक्षा, संस्कृति एवं विचार स्तर की भिन्नता के वावजूद वहाँ जिस एक आधार पर सब लोग परस्पर जुड़े रहते हैं, वह शिष्टाचार या 'मैनर्स' ही तो होता है ।

अत: शिष्टाचार के प्रशिक्षण की परिवार में अवहेलना कदापि नहीं की जानी चाहिए । ताकि परिवार का सदस्य सभ्य समाज में कोई कमी अनुभव न करे और दूसरों की दृष्टि में भी अशिष्ट, फूहड़, असभ्य न कहलाए ।

समाज, देश और समय के भेद से शिष्टाचार की अभिव्यक्ति के तरीकों में भेद होते हैं तो भी उनका सर्वमान्य आधार यह है कि दूसरों के प्रति सम्मान, स्वयं की नम्रता तथा माधुर्य का भाव व्यवहार में छलके । ताकि यह प्रकट हो कि आप में सामाजिकता का बोध जागरूक है ।

अपने समाज के शिष्टाचार का प्रत्येक सदस्य को ज्ञान भी होना चाहिए और उनका निर्वाह भी करना चाहिए । उसकी अवज्ञा करके बाहरी शिष्टाचार का अनुकरण अपने समाज के बीच करना एक प्रकार की अशिष्टता ही कही समझी जायेगी । उदाहरण के लिए, कई पाश्चात्य देशों में, परस्पर स्नेहाभिव्यक्ति के लिए सार्वजनिक तौर पर हाथ चूमने या माथा चूमने की प्रथा है । तो कुछ समाज ऐसे भी हैं-अफ्रीका में, जहाँ अँगूठा दिखाकर अभिवादन किया जाता है । जबकि भारत में आमतौर पर हाथ जोड़कर अभिवादन की परम्परा है । यहाँ कोई व्यक्ति दूसरे को अँगूठा दिखाए, तो उत्तरी भारत के ग्रामीण इलाकों में तो निश्चित ही उसे ठेंगा दिखाने का पर्याय समझकर झगड़े की स्थिति आ सकती है । इसी प्रकार यदि भारत में सामान्यत: कोई पुरुष किसी सभा में सम्मिलित किसी सम्भ्रान्त नारी का हाथ-हाथ में लेकर चूम ले, तो मारपीट की शत-प्रतिशत सम्भावना है । यद्यपि भारत में भी गोंडा, बैगा, मुण्डा जैसे कई समूहों में अभिवादन की भिन्न-भिन्न प्रथाएँ प्रचलित हैं, जिनमें माथ चूमना, हाथ मिलाना आदि भी शामिल हैं ।

भारत में हिन्दू समाज में शिष्टाचार में बड़ों के प्रति श्रद्धा-सम्मान की भावना, छोटों के प्रति स्नेह की भावना तथा व्यवहार में विनय एवं माधुर्य के समावेश पर विशेष बल दिया जाता रहा है । इस सन्दर्भ में अथर्ववेद में प्रदत्त वैदिक ऋषि का यह आदेश माननीय है-

"अनुव्रत: पितु: पुत्रो, मात्रा भवतु संमना: ।
जाया पत्ये मधुमती, वाचं वदतु शान्तिवान् ।।"

अर्थात- पुत्र पिता के व्रतों का यानि श्रेष्ठ कर्म और संकल्पों का अनुसरण करें और माँ जैसे (पवित्र कोमल) मन वाला बने । पति-पत्नी के लिए पत्नी-पति के लिए माधुर्ययुक्त तथा शांतिप्रद वाणी का व्यवहार करे । प्रात:काल उठने के बाद प्रात: कर्म या स्नानादि के बाद, छोटे बड़ों के चरण स्पर्श करें । बराबरी वालों में परस्पर नमस्कार-अभिवादन हो । बड़े छोटों के प्रणाम के स्नेहासिक्त स्वर में शुभाशीष देकर उत्तर दें या मौन आशीष भी दे सकते हैं, पर पीठ थपथपा दें या चेहरे के हाव-भाव से ही स्नेहाभिव्यक्ति करें । यदि किसी दिन छोटे भूल जाएँ तो उन्हें आगे से भी नमस्कार, प्रणाम की याद दिला सकते हैं ।

घर में बड़ों के प्रति सम्मान का भाव बनाये रखा जाना चाहिए । घर में कोई बुजुर्ग आगन्तुक आए तो उसके सम्मान में छोटे खड़े हो जाएँ, यथोचित अभिवादन करें । आगन्तुक छोटा हो या बड़ा, उसके आने पर मुस्कान या मधुर वचन से उसका स्वागत कर उसके प्रारम्भिक कुशल-क्षेम पूछने जैसी कुछ बातें अवश्य करें । यदि पहले से किसी अन्य व्यक्ति से बात कर रहे हैं, तो भी थोड़ी-सी बातें करके, फिर प्रेमपूर्वक बैठने, प्रतीक्षा करने के लिए कह दें । इसी प्रकार विदा होने के समय यदि आगन्तुक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

बड़ा अथवा समकक्ष हो तो जहाँ तक सम्भव हो, द्वार तक छोड़ने जाएँ ।

वार्त्तालाप के समय भी शिष्टता के नियमों का ध्यान रखना चाहिए । अपनी ही नहीं हाँकनी चाहिए । आगन्तुक की बात भी ध्यान से सुननी चाहिए । बात-चीत के दौरान उत्तेजनापूर्ण स्वर में नहीं बोलना चाहिए । अपने घर पर बाहर से जो आया है, अतः उसके कुतर्क पर भी उत्तेजित नहीं होना चाहिए, अपितु या तो विनम्रतापूर्ण ढंग से असहमति व्यक्त करनी चाहिए, या फिर विषयान्तर कर देना चाहिए । किसी बात पर स्पष्ट इन्कार भी अत्यावश्यक हो सकता है, वह करना ही चाहिए पर उत्तेजक ढंग से नहीं, शालीनतापूर्वक । यदि आगन्तुक उत्तेजित हो जाए, तो भी अपनी शालीनता नहीं खोनी चाहिए । क्षणिक आवेश आ जाय तो उसे अपनी भूल मानकर खेद व्यक्त करना चाहिए ।

आयोजन आदि में जाने, उठने-बैठने, वस्तुएँ करीने से रखने गतिविधियों से सम्बन्धित जो नियम होते हैं, उन्हें जानना और उनका पालन करना भी सामाजिकता का अंग है । शिष्टाचार की जो तकनीकें भिन्न-भिन्न समाज में भिन्न-भिन्न होती हैं, अवश्य ही जाननी चाहिए । किन्तु इनसे भी अधिक आवश्यक और महत्वपूर्ण है भावों की गहराई, व्यक्ति एवं समाज के सम्मान का पोषण एवं स्वयं की सद्भावना, नम्रता, गुणग्राहकता तथा शालीनता की संयमित अभिव्यक्ति । शिष्टाचार का यही प्राण है और इस भाव-संवेदना को प्रत्येक परिवार में उभारा ही जाना चाहिए ।

सुव्यवस्था—एक रचनात्मक प्रवृत्ति

व्यवस्था बुद्धि की गरिमा असाधारण है । उसी के आधार पर भौतिक और आत्मिक सफलता की दिशा में सुनियोजित ढंग से बढ़ा जाता है । जिसमें यह प्रतिभा नहीं उसके सभी कार्य अस्त-व्यस्त पड़े रहते हैं और उपेक्षा की ठोकरों से ठुकराये जाने पर नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं । पदार्थों का विनाश करने वाले अनेक कृमि कीटक देखे जाते हैं, पर उन सब में बढ़कर है-अव्यवस्था, जिसकी चपेट में आने पर कोई वस्तु सही सलामत नहीं बच सकती ।

सौन्दर्य सुव्यवस्था का ही दूसरा नाम है । अभ्युदय का आधारभूत कारण भी वही है । कुरूपता और कुछ नहीं, अव्यवस्था के प्रतिफल के रूप में उसे देखा-समझा जा सकता है । अस्वच्छता और कुछ नहीं, अव्यवस्था का प्रत्यक्ष रूप ही गंदगी के रूप में देखा जाता है । यदि वस्तुओं को यथोचित स्थान पर यथेष्ठ स्थिति में रखा जाय तो वही सुन्दरता-स्वच्छता बनकर प्रकट होती है ।

जिनका रहन-सहन, आहार-विहार अव्यवस्थित रहता है, वे अनगढ़ बने रहते हैं । दूसरों की आँखों में वे अयोग्य, लापरवाह, गैर जिम्मेदार ठहरते हैं । ऐसे लोग परिश्रम भी करते हैं, पर मनोयोग के अभाव में उन कामों को उस स्थिति तक नहीं पहुँचा पाते, जिसमें उन्हें सुन्दर और सुव्यवस्थित देखा जा सके ।

रसोईघर में अव्यवस्था रहे तो भोजन न तो स्वच्छ रह सकेगा और न गुणकारी । उसमें इधर-उधर की गंदगी आकर सम्मिलित हो जायेगी । ध्यान न रहने पर कोई पाक कच्चा रहेगा, कोई जल जायेगा । उसके रखने, ढकने आदि में बीसियों खामियाँ रहेंगी और बनाने वाले पर फूहड़ होने का लांछन लगेगा । खाद्य सामग्री बिना ढक्कन बन्द किये खुली छूटी पड़ी रहे तो उसमें कृमि-कीटक प्रवेश करेंगे, अपनी गंदगी छोड़ेंगे । उपयोग से पहले या बाद में वे आँगन में अस्त-व्यस्त फैले रहे तो बिखरे हुए कचरे की तरह लापरवाही का विज्ञापन करेंगे । पुस्तकें जहाँ-तहाँ पड़ी हुई फटने और नष्ट होने लगेंगी । कपड़े कोने में पड़े रहने पर झींगुरों और चूहों के शिकार बनेंगे । उपकरणों को जंग लग जायेगी और पैसे जहाँ-तहाँ रखकर भूल जाने का स्वभाव होगा तो उन्हें कोई भी चुरा सकता है । अव्यवस्था में उतनी हानि होती है कि चोर-उचक्के भी मिल-जुलकर नहीं कर सकते ।

भोजन भले ही सात्विक, संतुलित और पौष्टिक हो, पर यदि उसे नियत समय पर, नियत मात्रा में व्यवस्थित ढंग से खाया न जायेगा, तो वह पोषण के स्थान पर शोषण का शिकार बनेगा । अपच होगा, सड़न उत्पन्न होगी और बीमारियों का निमित्त कारण बनेगा । जो आहार शरीर को सुव्यवस्थित करने का हेतु बन सकता था, वही उल्टा आधि-व्याधियों को न्यौत बुलाने में जुट जाता है । यही बात कपड़ों के सम्बन्ध में भी है । वे भले ही बहुमूल्य हों, पर यदि वे सलीके से न पहने गये हों तो पहनने वाले को अव्यवस्थित सिद्ध करेंगे ।

सफल वे व्यक्ति होते हैं जो योजना बनाकर काम करते हैं और उसे क्रमबद्ध रूप से पूरा करने में समग्र तत्परता के साथ जुट जाते हैं । निरन्तर यह ध्यान रखते हैं कि कहाँ चूक हो रही है, किस साधन की कमी पड़ रही है । जो खामी दिखाई पड़ती है, उसे वे साथ ही पूरी करते चलते हैं । तब चैन लेते हैं जब अपनी जिम्मेदारी का काम भली प्रकार पूरा कर लेते हैं । यह आदत बन जाने पर मनुष्य एकपक्षीय बनकर नहीं रह जाता, वरन् अपने कार्यक्षेत्र के हर पक्ष का ध्यान रखता है और बिगड़ने की स्थिति उत्पन्न होने से पहले ही उसे सँभाल लेता है ।

यह बात मात्र काम-धाम के सम्बन्ध में ही नहीं है, व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध निर्वाह पर भी लागू होती है । यदि शालीनता भरा न्यायपूर्ण व्यवहार किया जाय तो सद्भावना मित्रता बनकर लम्बे समय तक निभती है । इसके विपरीत जिनका मूड आये दिन नरम-गरम बना रहता है । एक दिन तुष्ट तो दूसरे दिन रुष्ट, उनकी चंचलता पर हर कोई खिन्न रहता है । किसी के साथ उनका तालमेल नहीं बैठता । घरवालों तथा

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्बन्धियों तक से खिंचाव बना रहता है । पड़ोसी भी पस्चित बनकर रहते हैं और सोचते हैं कि ऐसे व्यक्ति के साथ घनिष्टता बढ़ने पर किसी न किसी प्रकार का झंझट ही मोल लेना पड़ेगा ।

सामान्यजन एक निर्धारित काम में ही किसी प्रकार जुटे रहते हैं । उसमें क्या कमी रहती है और किस प्रकार क्या सुधार हो सकता है, इसका उन्हें कभी ध्यान ही नहीं उठता । कोल्हू के बैल की तरह एक नियत ढर्रे पर घूमते हुए समय काट लेते हैं । उन्हें यथास्थिति में रहते देखा गया है । किन्तु जो चारों ओर नजर दौड़ाते हैं उन्हें प्रगति के लिए नये मार्ग मिल जाते हैं, अभ्युदय के नये मार्ग खुल जाते हैं ।

व्यवस्था बना सकने वाले को 'मैनेजर' कहते हैं । इसी योग्यता वालों को 'गवर्नर' भी कहा जाता है । यह दोनों पद बड़े सम्मान के हैं । उन्हें श्रेय-सम्मान और लाभ-सहयोग भी अधिक मिलता है, क्योंकि काम करने की अपेक्षा उसकी व्यवस्था बना सकना कहीं अधिक बुद्धिमत्ता का काम है । सौ मजदूर किसी काम में जुटे रहकर भी किसी महत्वपूर्ण काम को सफल नहीं बना सकते, पर एक बुद्धिमान संयोजक उसी काम को सुनियोजित प्रक्रिया के अन्तर्गत लेकर कम श्रम में कहीं अधिक और जल्दी सफलता प्राप्त कर लेता है । यह बात मात्र कारखानों-उद्योगों में ही लागू नहीं होती, वरन् परिवारों में सुख, शान्ति और प्रगति का वातावरण भी इसी आधार पर बनता है । निजी जीवन का सन्तोषजनक सदुपयोग भी इसी आधार पर बन पड़ता है । संसार में जितने सफल मनोरथ व्यक्ति हुए हैं, उनमें अन्य विशेषताओं के अतिरिक्त सूझ-बूझ की दूरदर्शिता और जिस मार्ग पर चलना है, उसका उपक्रम ठीक प्रकार बना लेने की प्रतिभा विशेष रूप से निखरी रही है । सुयोग्य मैनेजर स्वयं अधिक वेतन पाते और सम्बद्ध व्यवसाय को असाधारण लाभ पहुँचाते देखे गये हैं ।

व्यवस्था के लिए लालायित निजी जीवन के कितने ही क्षेत्र इस प्रतीक्षा में रहते हैं कि उनके साथ किसी प्रकार व्यवस्था-बुद्धि जुड़ जाय और उत्कर्ष की चरम सीमा छूने का अवसर मिल जाय । जहाँ ऐसा सुयोग बन जाता है, वहाँ स्वल्प साधनों और अनेकानेक अड़चनों के रहते हुए भी रास्ता मिलता रहता है और अग्रगमन के लिए उपयुक्त अवसर सहज ही सामने आ खड़ा होता है ।

व्यवस्थापक को एकपक्षीय चिन्तन का शिकार नहीं रहना पड़ता । वह समस्या के अनेक पक्षों पर ध्यान देता है । सम्भावनाओं में मात्र उपलब्धियों को ही ध्यान में नहीं रखता वरन् सम्भावित कठिनाइयों का भी ध्यान रखता है । दोनों की समीक्षा करता है और न्यायाधीश की तरह दोनों पक्षों की बात सुनकर बुद्धिमत्तापूर्ण फैसला करता है । ऐसे ही फैसले यथार्थता के निकट होते हैं और सुविधाओं का श्रेष्ठतम सदुपयोग और अड़चनों से बचने और उन्हें काटने भर की पूर्व तैयारी रहने से ऐसे अवसर प्रायः हल ही हो जाते हैं, जिनके कारण मुसीबत में फँसने और असफलता का मुँह देखना पड़ सकता था । समस्याएँ, योजनाएँ शतरंज की तरह होती हैं । उसमें गोट चलने के साथ-साथ आगे-पीछे की सभी बातें सोचकर तब चाल चलनी पड़ती है । जो अपनी अक्ल से या दूसरों के बताने पर बिना आगा-पीछा सोचे चलना आरम्भ कर देते हैं, उन्हें लाभ कम और हानि अधिक उठाने जैसी स्थिति का सामना करना पड़ता है ।

सफलता आरम्भिक कल्पना में अति सरल और अति निकट जान पड़ती है, जो अपनी बढ़त की राह पर चल सके और अड़चनों का सामना बिना अधिक शक्ति व्यय किये सरलतापूर्वक कर सके । बुद्धि सब में समान होती है, पर उसे व्यवस्था बुद्धि के रूप में परिणित करने के लिए न केवल चिन्तन-मनन की, वरन् व्यवहार बुद्धि के संचय और प्रयोग की भी आवश्यकता पड़ती है ।

परिवार के हर सदस्य को इस विशेषता से सुसज्जित करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए । इसके लिए गृहपति को या परिवार के वरिष्ठ सदस्यों को अग्रिम पंक्ति में खड़ा होना चाहिए और साथ में घर के हर सदस्य को लेना चाहिए । घर के छोटे दायरे में भी ऐसे कितने ही काम होते हैं, जो देखने में छोटे लगने पर भी आदतों में सुरुचिपूर्ण, कलात्मक एवं श्रमशीलता की अपेक्षा करते हैं । इस महती आवश्यकता की पूर्ति के लिए मिल-जुलकर घर के सभी काम निपटाने की नई योजना बननी और कार्यान्वित करनी चाहिए ।

घर का काम-काज प्रायः महिलाओं के जिम्मे रहता है । वे ही घर चहारदीवारी के अन्दर होती रहने वाली हलचलों को सँभालने की जिम्मेदारी सँभालती हैं । बड़े-बूढ़े, बच्चे तथा पुरुष उस क्रिया-कलाप के दर्शक अथवा उपभोक्ता मात्र बनकर रहते हैं । इससे बड़ी हानि यह होती है कि कार्यरत महिलाएँ एकाकी जुटी रहने के कारण 'बोर' होती रहती हैं । अत्यधिक व्यस्तता में एक ही प्रकार का काम करते-करते वे अपनी मानसिक कोमलता खो बैठती हैं और बंधुआ मजदूरनी की अपनी हैसियत पर घुटन भी अनुभव करती हैं । इससे उनके शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य पर असाधारण दबाव पड़ता है ।

व्यवस्था बुद्धि घर के हर सदस्य में जगे । छोटे कामों में भी तत्परता और रस लेना आरम्भ करें, इसलिए उपयुक्त तरीका यही है कि घर के सभी कार्यों में सभी सदस्य अपनी-अपनी स्थिति के अनुरूप हाथ बँटाये और नियत समय पर नियत कार्य के लिए उत्साहपूर्वक तैयार रहें ।

घर के अनेक काम होते हैं, जिसमें सफाई सजावट, मरम्मत के तीन काम ऐसे हैं, जिन पर कम से कम ध्यान दिया जाता है और उन्हें निरर्थक समझा जाता है । जब कि वस्तुतः वही है, जो घर को कलात्मक स्तर का बनाते हैं और आगन्तुकों के सामने एक अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करते हैं ।

यह व्यवस्था मनोरंजन का एक उत्तम साधन और अनुभव अभ्यास की अभिवृद्धि भी करती है । घर में अनेक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

काम होते हैं, जिनमें भोजन बनाना, कपड़े धोना, दैनिक उपयोग की वस्तुओं की सफाई करना और उन्हें यथास्थान सजाकर रखना, इन्हें नित्य कर्म की गणना में रखा जा सकता है । यह सब काम नौकरों या महिलाओं के जिम्मे न छोड़कर घर के सभी लोगों को इनमें हाथ बँटाना और सहयोग देना चाहिए । इसमें खेल जैसा आनन्द आता है । जिन पर वजन लदा रहता है उन्हें हल्कापन अनुभव होता है ।

साथ-साथ खाना, खेलना, संगीत, सहगान, सत्साहित्य का वाचन और श्रवण, सामूहिक उपासना जैसे आधार अपनाकर घर में अनुशासन की एक नई प्रक्रिया आरम्भ की जा सकती है । पक्षियों को दाना-पानी का प्रबन्ध करके उन्हें अपने आँगन में फुदकने और प्रसन्न होने का दृश्य देखा जा सकता है । घरेलू शाक-वाटिका, पुष्प वाटिका का आरोपण करने से भी रचनात्मक प्रवृत्ति के परिपोषण का एक आधार बन सकता है ।

उदार सहकारिता

परिवार का पाँचवाँ पंचशील है-सहकारिता । यह स्मरण रखने योग्य तथ्य है कि सर्वथा एकाकी व्यक्ति न प्रगति कर सकता है, न निर्वाह । इसके बिना पारस्परिक सहयोग का आदान-प्रदान भी सम्भव नहीं । बुहारी बँधी रहने पर वह अपना काम कर सकती है, पर यदि उसकी सींकें अलग-अलग बिखर जायें, तो वे अपना अस्तित्व तक सुरक्षित नहीं रख सकती । एक धागे का क्या मूल्य, उसकी सार्थकता तो तभी दीख पड़ती है, जब वह परस्पर गुँथकर कपड़े के रूप में विनिर्मित होता है, किसी के शरीर की शोभा बढ़ाता है, रक्षा करता है और लाज बचाता है । 'अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता' यह उक्ति अक्षरशः सत्य है ।

संसार में सभी छोटे-बड़े काम सहयोग के आधार पर चल रहे हैं । पति-पत्नी के सहयोग से गृहस्थी की नींव पड़ती है । बच्चों, वयस्कों और वृद्धों का परिकर उसे मिल-जुलकर ऐसे ढंग से चलाता है कि आसमान का सुख उस घर-घरौंदे में ही उतर आता है । समाज क्या है ? परिवार का समूह । परिवार क्या है-व्यक्तियों का सम्मिलत परिकर ।

फैक्टरियों, कारखाने, इंजीनियरिंग स्तर के निर्माण, कृषि, व्यवसाय, गृह उद्योग कई-कई व्यक्तियों के श्रम, सहयोग और कौशल के समन्वय से चल पाते हैं । एक आदमी चाहे कितना ही सम्पन्न या चतुर क्यों न हो, व्यक्तियों का सहयोग जुटाये बिना अपने क्रिया-कलापों को तनिक भी अग्रगामी नहीं बना सकता । रेल, जहाज, पुल, बाँध जैसे बड़े निर्माणों के पीछे अनेक क्रिया-कुशल लोगों का श्रम और बुद्धि कौशल झाँकते देखा जा सकता है । संगठित और सुरक्षित सेना का योगदान देश की सुरक्षा में कितना अधिक होता है, इसे सभी जानते हैं । धार्मिक प्रसार विस्तार का कार्य ईसाई मिशनों ने संगठित रूप से ही किया है । राज-क्रान्तियों और सामाजिक परिवर्तनों के पीछे समर्थ जनसहयोग ही काम करता रहा है । बुद्ध का धर्म-चक्र प्रवर्तन संसार भर को प्रभावित कर सकने में सफल रहा । इसके लिए तपस्वी भिक्षु प्रचारकों की भाव संवेदना ही काम करती रही । गाँधीजी के सत्याग्रह की सफलता के पीछे सत्याग्राहियों की सेना ही प्रमुख भूमिका निभाती रहीं । अन्यत्र भी जहाँ-कहीं सुधार परिवर्तन हुए हैं, वहाँ एकजुट लोकसमर्थन ही सफलता के स्तर तक पहुँचा सकने में समर्थ हुआ है ।

सामूहिकता की-सहकारिता की शक्ति से सभी परिचित हैं । गोवर्द्धन पर्वत उठाने में कृष्ण को ग्वाल-वालों का सहयोग मिला था । समुद्र का सेतु बाँधने में रीछ-वानरों का संयुक्त प्रयास ही चमत्कारी परिणाम उत्पन्न कर सका । पाठशालाओं से लेकर विश्वविद्यालयों तक का विशालकाय शिक्षा-तंत्र जनसंकुल के सहयोग से ही खड़ा हुआ है । राजतंत्र भी विशाल जनशक्ति को अपने अंचल में समेटकर ही शासकीय गतिविधियों का संचालन करता है । कभी तो धर्मतंत्र भी ऐसा ही सुरक्षित था, पर अब उसके ध्वंसावशेष ही जहाँ-तहाँ बिखरे दृष्टिगोचर होते हैं । जब वह अपनी सुगठित स्थिति में था, तो उसने समस्त विश्व को सभ्यता और सुसंस्कारिता का पाठ पढ़ाया था ।

मधुमक्खियों का छत्ता, चींटियों का किला, टिड्डियों का दल अपनी संगठित प्रगति का परिचय देता है । बन्दर इसलिए आजाद हैं कि वे झुण्ड बनाकर रहते हैं । कुत्तों को इसलिए मनुष्य का गुलाम बनना पड़ा कि वह अपनी बिरादरी के साथ तालमेल बिठाने में कतराता रहा । कहानी है कि एक बार बहेलिए के जाल में फँसी हुई चिड़ियों ने मिलकर एक साथ जोर लगाया था और वे जाल को आसमान में उड़ा ले गयी थीं । संयुक्त शक्ति का जितना गुणगान किया जाय, उतना ही कम है । हारते देवताओं को दैत्यों से हर बार हार जाने पर प्रजापति ने देवताओं की संयुक्त शक्ति एकत्रित करके उससे देवी दुर्गा का सृजन किया था और दैत्य समुदाय का हनन कराकर देवताओं को उनका छिना शासन वापस दिलाया था, तब से कलियुग में संघ शक्ति को ही मूर्द्धन्य माना जाता रहा है ।

भेड़ों के बाड़े की तरह या रेल के मुसाफिरखानों की तरह भीड़ एक स्थान पर जमा हो जाने भर से संघ नहीं बनता । भीड़ तो सोमवती अमावस्या और कुम्भ जैसे मेलों पर भी लग जाती है, पर उन आगन्तुकों में परस्पर परिचय तक नहीं हो पाता, फिर संगठन कैसा ? सरायें और धर्म-शालायें भी भीड़ से भरी रहती हैं, पर उनमें टिकने वालों का किसी से कोई परिचय सम्बन्ध नहीं होता । ऐसी ही स्थिति परिवारों की भी बनी रहे तो उसे सराय की उपमा ही दी जा सकती है, जिसमें लोग खाने, नहाने, सोने भर की सुविधा पाने के लिए ही जमा रहते हैं और मतलब निकल जाने पर अपनी मौज-मर्जी की गतिविधियों में लग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाते हैं, यह स्थिति न तो संतोषजनक कही जा सकती है और न उत्साहवर्द्धक ।

परिवार के सदस्यों के बीच इतनी अधिक आत्मीयता होनी चाहिए कि सभी को पूरा परिवार अपना ही बड़ा शरीर प्रतीत हो और उसके प्रत्येक अंग-अवयव को-सदस्य को समुन्नत-सुविकसित बनाने की उत्सुकता, तत्परता बनी रहे । यह दृष्टिकोण ही दूसरों की सेवा, सहायता का आधार बनता है और इसी की प्रतिक्रिया उलटकर प्रत्येक सहयोगी के पास सम्मान, सद्भाव एवं सहयोग के रूप में उलटकर आती है । यही आदान-प्रदान परिवार की संघशक्ति बनता है और उसके लाभ से हर सदस्य लाभान्वित होता है ।

घर के सभी कामों को मिल-जुलकर निपटाने का प्रचलन जिन घरों में भी बन पड़ा होगा, वहाँ सभी को यह अनुभव करने का अवसर मिलेगा कि घर की सारी व्यवस्था हम सब के मिले-जुले प्रयासों के आधार पर चलती है । इस अवसर पर काम करते हुए वार्तालाप भी चलता रहता है और यह सुझाव मिलता रहता है कि घर की व्यवस्था में कहाँ क्या सुधार परिवर्तन होना चाहिए । इनमें से कुछ अव्यावहारिक भी हो सकते हैं, पर कई ऐसे होते हैं जिनकी ओर पहले ध्यान ही नहीं गया था, पर थे बहुत महत्वपूर्ण । परिवार की प्रतिष्ठा, सम्पन्नता, शोभा एवं सहकारिता में किस प्रकार अभिवृद्धि हो, इस ओर सभी का ध्यान बना रहे तो निश्चय ही उस सहकारी योगदान का अच्छा प्रभाव होता है और वह कुटुम्ब, सत्प्रवृत्तियों का केन्द्र बनता है । उस परिकर में से कुरीतियाँ, मूढ़-मान्यतायें, अनैतिकताएँ, असभ्यताएँ क्रमशः कम होती जाती हैं और एक दिन ऐसी स्थिति आती है, जब उसे आदर्श गृहस्थ कहे जाने की मान्यता मिलने लगे । दूसरे उसका अनुकरण करने की प्रेरणा लेते रहें ।

पारिवारिक सहकारिता उथले स्तर की नहीं होनी चाहिए । उसमें आत्मीयता का गहरा पुट रहना चाहिए । आर्थिक दृष्टि से तो सरकारी समितियाँ भी कुछ न कुछ योजनाएँ बनाती और उन्हें कार्यान्वित करती रहती हैं, पर उनका लाभ उतने ही छोटे दायरे में सीमित होकर रह जाता है, जबकि पारिवारिक सहकार में एक-दूसरे के दुःख-दर्द में शामिल होना पड़ता है और अन्य साथियों की प्रगति में अपनी प्रगति मानकर चलना होता है । इसी भावना के अभिवर्द्धन से यह सूझ सूझती है कि अपनी सुविधाओं, सम्भावनाओं को किस प्रकार पूरा करने में सहयोग दिया जा सकता है । जहाँ इस प्रकार का चिन्तन चल रहा होगा, वहाँ उसी स्तर के क्रियाकलाप भी बने बिना नहीं रह सकते । एक-दूसरे का सम्मान करें, हितों का ध्यान रखें, सहयोग देने के लिए, सेवा सहायता के लिए उत्सुक रहें वहाँ यह हो ही नहीं सकता कि सेवा के बदले सद्भाव न मिले । सेवा के बदले सद्भाव खरीदा जाता है, यह तथ्य सर्वविदित है ।

अपना काम पूरे होने पर बचा हुआ समय आवारागर्दी में लगाने की अपेक्षा घर के लोगों को अधिक समुन्नत बनाने में लगाना चाहिए, घर की शोभा-सुव्यवस्था बनाने में जुट जाना चाहिए । इसके लिए कोई दूसरा कार्यक्रम बनाकर नहीं दे सकता है । यह कार्य तो अपनी ही सूझबूझ से तलाशने का है । बड़े क्लास के बच्चे अपने से छोटों को घर पर पढ़ाने में योगदान कर सकते हैं । घर में कोई अशिक्षित न रहने पाये, इसके लिए जो महिलाएँ कम पढ़ी हों उन्हें आगे की पढ़ाई पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते हुए उनके पीछे लगकर पढ़ने-पढ़ाने का ढर्रा चल पड़ने तक प्रयत्नरत रहा जा सकता है । जिन्हें किसी प्रकार की रुग्णता है, उनकी परिचर्या में सहयोगी बना जा सकता है । चिकित्सा के लिए भी दौड़-धूप की जा सकती है । घर-आँगन में छोटे-छोटे खेलों का माहौल बनाया जा सकता है और उसमें जिनकी भी रुचि हो उन्हें सम्मिलित किया जा सकता है । रात्रि को छुट्टी होने पर सत्साहित्य पढ़कर सुनाने का कार्य विचारशील सदस्य अपने कन्धों पर ले सकते हैं, किन्तु ऐसी समस्याओं पर वाद-विवाद प्रतियोगिताओं का घर में प्रचलन किया जा सकता है जो व्यक्ति, परिवार और समाज को समुन्नत बनाने, उसमें घुसी दुष्प्रवृत्तियों के उन्मूलन से सम्बन्धित हों ।

घर के सभी सदस्य इस बात के लिए प्रयत्नशील रहें कि अपना काम निपटाते हुए साथ ही अन्य परिजनों का हाथ भी बँटाते रहें । सूख जाने पर कपड़ों को समेटने, उन पर लोहा करके जिसको-तिसको सौंपने का कार्य ऐसा ही है जो अपने जिम्मे काम के साथ-साथ ही इतना सहयोग दूसरों का भी किया जा सकता है । जूतों की मरम्मत कर देना, पालिश लगा देना जैसे काम भी ऐसे हैं, जिनमें कोई अधिक समय नहीं लगता पर उस छोटे से सहयोग से ही साथियों का मन जीता जा सकता है और अपनी आत्मीयता का प्रत्यक्ष परिचय दिया जा सकता है ।

परस्पर सहयोग के आधार पर ही मनुष्य वनमानुष से ऊँचे उठते-उठते सृष्टि का मुकुटमणि बन सकते हैं । मानवी प्रगति में बुद्धिमत्ता से अधिक सहकारिता की वृत्ति का योगदान रहा है-मनुष्य को उदार और सहयोगी होना चाहिए । परिवार में ही नहीं, समाज में भी एक दूसरे से प्यार करना चाहिए । दूसरों के भी काम आना चाहिए, समय पड़ने पर परस्पर सहयोग करना चाहिए और एक दूसरे के हित के लिए त्याग करना चाहिए । माता-पिता, चाचा-ताऊ, चाची-ताई, भाई-भाभी, बहिन-बुआ, भाई-भाई के प्रति, परिवार के प्रति, आस-पड़ौस के प्रति हमारे जो कर्तव्य धर्म हैं उनका पालन यथासाध्य करें । अपना कर्तव्यपालन करते हुए, दूसरों के सुख-दुःख में सम्मिलित

युग-निर्माण २, कम्प्यूटर डी, अन्जू, १४.४.९६

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

होकर संवेदनशीलता बढ़ायें, सहानुभूति प्रदान करें, उन्हें सुझाव ही न दें बल्कि अपने सहयोग द्वारा सहायता भी करें । इससे मानव में देवत्व का उदय होता है ।

गृह कार्यों में एक दूसरे का सहयोग करें । मिल-जुलकर काम करने में वह जल्दी तो होता ही है साथ ही एक खेल या मनोरंजन भी बन जाता है । इससे समता एवं सहयोग की प्रवृत्ति सुदृढ़ होती है । खाते समय पर यदि सब लोग मिल-जुलकर साथ बैठकर खाया करें तो उससे आनन्द की अभिवृद्धि ही होगी । खाने-पीने की अच्छी चीजों में अपना हिस्सा कम और दूसरों का ज्यादा रखना चाहिए । छिप कर कुछ भी न खाया जाय । जो भी हो मिल-बाँटकर खायें । कोई अपने लिए अधिक सुविधा की माँग न करे, वरन् दूसरों को क्या अभाव है, उसका ध्यान रखे । प्रेम व्यवहार की वास्तविकता इन छोटी-छोटी उदार व्यवहार की बातों से ही परिपुष्ट होती है और परस्पर सुदृढ़ स्नेह-सद्भाव को पोषण मिलता है ।

एक दूसरे का काम में हाथ बटाने की सहजवृत्ति परिवार के हर सदस्य में होनी चाहिए । अधिकारों की माँग में, पीछे कर्तव्य पालन में आगे रहने की आदत अपने को सबका प्यार और सम्मान मिलता है । अपने लिए कम दूसरों के लिए अधिक का दृष्टिकोण हर प्रकार से सराहनीय है । हारी-बीमारी में सेवा-सुश्रूषा का पूरा ध्यान रखा जाय । बड़े क्लास वाले छात्र अपने छोटे भाई-बहिनों को पढ़ाने में सहायता करें । खेलने-घूमने में बड़े-छोटों को साथ लेकर चलें । अपने स्वार्थों की तरह परिवार का हर सदस्य दूसरे सदस्यों का ध्यान रखें । एक दूसरे की प्रगति और सुविधा में सहायता करें तो उस सहयोगी वातावरण में स्वर्गीय तत्वों का सृजन होगा । सभी प्रसन्न रहेंगे और समुन्नत बनेंगे ।

पारिवारिक शालीनता के कुछ सुनिश्चित तथ्य

परिवार के हर सदस्य को उन तथ्यों से अवगत भली प्रकार कराया जाना चाहिए, जिनमें उनके कर्तव्य और अधिकार की मर्यादा का निर्धारण है । संसार का गतिचक्र आदान-प्रदान के आधार पर चलता है । प्राप्त करना अधिकार है किन्तु उनका मूल्य चुकाना कर्तव्य । दोनों के मध्य सुनियोजित तालमेल बना रहता है तो गतिचक्र अपनी धुरी पर ठीक तरह से चलता रहता है । एक पहिया छोटा हो और दूसरा बड़ा तो गाड़ी चलेगी नहीं उलट जायेगी । सहयोगी की महत्ता से सभी परिचित हैं । पदार्थों का बिखराव नहीं समुच्चय ही शक्तिशाली बनता है । मनुष्यों का समुदाय ही महान प्रयोजन सम्पन्न कर सकता है । एकाकी परमाणु भी निरर्थक है और अकेला व्यक्ति भी असमर्थ है । हाँ मरना-मारना हो तो बात दूसरी है ।

एकाकीपन से अपना अथवा दूसरों का विनाश भर हो सकता है । सृजन और अभिवर्द्धन के लिए समन्वय की शक्ति ही कारगर सिद्ध हो सकती है । इतना जान लेने पर दूसरा तथ्य यही सामने आता है कि समन्वय, सहयोग के मूल में आदान-प्रदान का सिद्धान्त काम करता है । एक-पक्षीय अनुदान आदर्श एवं अपवाद भी हो सकता है, उसे प्रचलन के रूप में मान्यता नहीं मिल सकती । अधिकार की माँग करना और आशा रखना तभी सार्थक हो सकता है । जब कर्तव्यपालन के लिए उससे भी अधिक उत्साह दिखाया जाय । अधिक इसलिए कि कर्तव्यपालन अपने हाथ में है और अधिकार देना दूसरों के । जो अपने बस की बात है उसे निश्चित रूप से किया ही जा सकता है । प्रतिफल न मिले तो भी इसमें आत्मगौरव, आत्म-संतोष का असाधारण लाभ तो मिलता ही रहता है । भौतिक अधिकार न मिलने पर भी यह आत्मिक-उपार्जन इतना बड़ा है कि उसमें भी भावनाशीलों को लाभ ही दीखता है घाटा नहीं ।

परिवार भी एक प्रकार से सहकारी संस्था है इसमें हर व्यक्ति एक दूसरे को देता है, साथ ही कुछ पाने की अपेक्षा भी रखता है । अभिभावक बच्चों को पालते हैं उनके लिए कष्ट उठाते और खर्च करते हैं । साथ ही उनसे कुछ आशा-उपेक्षा भी रखते हैं । सम्मान और अनुशासन उनकी तात्कालिक माँग है और बड़े होने पर सेवा-सुश्रूषा के रूप में प्रतिदान की अपेक्षा रखना बाद की । दोनों एक दूसरे की सद्भावसम्पन्न सेवा-सहायता करें यह तो बहुत ही ऊँची और अच्छी बात है । पर इतना तो व्यवहार बुद्धि से भी सोचा जा सकता है कि पाने वाले को बदला चुकाने से ऋण भार से मुक्ति मिल सकती है । न चुकाने पर ऋण भार का दबाव इतना बोझिल रहता है कि उसकी आत्मा ही कुचल जाती है ।

पत्नीव्रत और पतिव्रत यों निभा तो एक पक्ष की आदर्शवादिता भी लेती है पर वह विशिष्टों का कीर्तिमान है । स्वाभाविक और व्यावहारिक यही है कि दोनों एक दूसरे के सर्मपण सहयोग का महत्व समझें । अनुग्रह के लिए कृतज्ञ रहें और हर घड़ी बदला चुकाने के अवसर खोजें । वह आदान-प्रदान जहाँ यथावत् रहेगा वहाँ मैत्री निभेगी भी और बढ़ेगी भी । किन्तु जहाँ एक पक्ष ने मात्र अधिकार की रट लगाई और कर्तव्य की उपेक्षा की, समझना चाहिए कि खाई बढ़ेगी और प्रीति के स्थान पर विवशता और कटुता ही शेष रह जायगी । स्वामी और सेवक, व्यापारी और ग्राहक-मित्र और मित्र, गुरु और शिष्य, देवता और भक्त प्राय: इसी आधार पर एक दूसरे के सेवक-सहयोगी बनकर रहते हैं । एक के हाथ खींच लेने पर दूसरे का बढ़ा हुआ हाथ भी निरर्थक ही सिद्ध होगा । समुद्र और बादलों के बीच देने और लौटाने की नीति ही अनादिकाल से उन्हें सहयोग सूत्र में बाँधे हुए है । धरती पौधों को एक हाथ में खुराक देती है, पर बदले में दूसरे हाथ में खाद और गोबर के रूप में उनसे प्रतिदान वापस माँगती है । जिस दिन इस आदान-प्रदान में व्यवधान उत्पन्न होगा उस दिन न पौधों की हरीतिमा जीवित रहेगी और न धरती की उर्वरता ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिवार का भावनात्मक महत्व जो भी है प्रत्यक्षत: वह एक सहकारी संस्था है । जिसके हर घटक को अधिकार मिलता है किन्तु साथ ही यह शर्त भी जुड़ी रहती है कि उसे समयानुसार उसका प्रतिदान भी लौटाना होगा । इस लौटाने में जो जितनी आना-कानी करता है वह उतना ही निकृष्ट बनता है और जिसे जितनी उतावली रहती है वह उतना ही उत्कृष्ट ठहरता है ।

अभिभावक न तो अपने आश्रितों पर उतना ऋण लादें जिसे वे चुका न सकें और बोझ से आत्मप्रताड़ना सहते दिखाई दें । अनावश्यक अनुदान कभी किसी को पचते नहीं । अति का भोजन कष्टकारक होता है और अति का अनुग्रह दुर्गुणों के दुर्व्यसनों के रूप में उभरता है । अकर्मण्यता और अहंकारिता तो इसमें बढ़ती ही है । अस्तु, बुद्धिमान अभिभावकों के लिए इतना ही पर्याप्त है कि आश्रितों को स्वावलम्बी और कुसंस्कारी भर बनाये । उन पर अनावश्यक सम्पदा का इतना बोझ न लादें जिसे पाकर वे उपार्जन की चिन्ता से मुक्त हो चलें और खाली समय और व्यर्थ की सम्पत्ति को दुर्व्यसनों में गँवाकर अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारें ।

परिजनों का भी कर्तव्य है कि सम्पन्न अभिभावकों से उत्तराधिकार में सम्पदा की माँग न करें । पारिवारिक निर्वाह का यदि कोई व्यवसाय तन्त्र चलता है तो उसे संयुक्त रूप से अक्षुण्ण रखा जा सकता है एवं असमर्थ आश्रितों को ही निर्वाह साधन संचित सम्पदा से पाने का अधिकार है । इसके अतिरिक्त यदि समर्थ व्यक्ति उत्तराधिकार में सम्पदा की माँग करें तो इसे अनुचित ही ठहराया जायगा । ऐसा वैभव विशुद्ध रूप से समाज की सम्पत्ति है । उसे भले ही श्राद्ध के रूप में लौटाया जाय अथवा मृत्युकर के रूप में । बिना परिश्रम की कमाई और चोरी के कानूनी स्वरूप जो भी हैं उनकी मूल प्रक्रिया में कोई अन्तर नहीं आता । परिवार के हर सदस्य को आरम्भ से ही यह अर्थशास्त्र पढ़ाया जाना चाहिए और उन्हें स्वावलम्बन के लिए उनकी मनोभूमि विकसित की जानी चाहिए ।

परिवार एक गाय है जिसका दूध पीने के लिए ही सब ललचाते रहें, यह अनुचित है । उसके लिए चारा, पानी, धूप-छाँव एवं सुविधा, सफाई की जिम्मेदारी भी इन दूध पीने वालों को उठानी चाहिए । परिवार समर्थ होगा तो उसकी छाया का, शोभा का, फल सम्पदा का लाभ भी मिलेगा अन्यथा सूखे ठूँठ से जगह भी घिरेगी और अड़चन भी पड़ेगी । तरह-तरह की अपेक्षाएँ रखना और फरमाइशें करना तो अनेक को आता है, पर इस तथ्य को भुला ही दिया जाता है कि इस संस्थान को परिपुष्टि और परिपक्व बनाने के लिए उससे भी बड़ा योगदान होना चाहिए जो अब तक पाया गया है एवं जो आगे के लिए माँगा जा रहा है । सम्पन्नता तो एक समर्थ व्यक्ति भी उपार्जित कर सकता है पर सुसंस्कारिता का वातावरण उत्पन्न करने में हर सदस्य का समुचित योगदान होना चाहिए ।

गृहपति कोई भी क्यों न हो, अनुशासन किसी का भी चलता हो । इस दृष्टि से हर सदस्य अपने आप में पूर्ण है कि उसे पारस्परिक स्नेह-सहयोग को बढ़ाने और सत्प्रवृत्तियों को व्यवहार में उतारने की दृष्टि से अग्रणी रहना है । भूल-उपेक्षा या अवज्ञा करने वाले की नकल करना ओछा विचार है । बड़प्पन इसमें है कि श्रेष्ठ परम्परा का निर्वाह किया जाय और भटकों को रास्ते पर लाने के लिए अपना प्रभावी उदाहरण प्रस्तुत किया जाय ।

बिगाड़ने के लिए एक माचिस पर्याप्त है, पर बनाने को दस अँगुलियों समेत दोनों हाथों को परिपूर्ण पराक्रम करना पड़ता है । किसी भी समझदार को विष की बूँद बनने के लिए कदम नहीं बढ़ाना चाहिए, वरन् अमृत घट के रूप में अपनी स्थिति, उपस्थिति और महत्ता का परिचय देना चाहिए ।

परिवार निर्माण में उस परिकर के हर सदस्य को भाव भरी भूमिका प्रस्तुत करनी चाहिए । प्रतिस्पर्द्धा और प्रतिद्वन्द्विता इसी की चलनी चाहिए कि परिजनों में से किसने उस संस्था को समृद्ध और शालीन बनाने में कितनी भूमिका निभाई । यह तथ्य ऐसे ही हैं जिन्हें परिवार के हर सदस्य को बार-बार समझने और समझाने का अवसर मिलता रहना चाहिए ।

शालीनता और सुसंस्कारिता का अभ्यास परिवार की पाठशाला में

परिवार निर्माण की दिशा में हर विचारशील व्यक्तित्व का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित होना चाहिए, इस प्रयास की उपयोगिता आवश्यकता के अनेक पक्ष हैं । परिजनों के प्रति रहने वाली सहज शुभेच्छा को चरितार्थ होने का अवसर तभी मिलेगा जब उसका व्यक्तित्व विकसित हो । यह विकास क्रम मात्र परिवार की पाठशाला में पढ़ा और उसी प्रयोगशाला में समझा जा सकता है । परिवार में सुसंस्कारिता का समावेश कुटुम्बियों के लिए कुबेर जितनी सम्पदा संग्रह करने से भी अधिक मूल्यवान है । निर्माण के अनेक स्वरूप हैं । निजी मकान बना लेना-कारखाना खड़ा करना-नगर बसा देना-धर्मशाला, पाठशाला बनाना जैसे कितने ही काम ऐसे हैं उन्हें समर्थ और समझदार लोग पूरा करते और प्रसन्न होते देखे गये हैं ।

साहित्यकार, वैज्ञानिक, कलाकार कई प्रकार की उपलब्धियाँ अपने पीछे छोड़ जाते हैं और मरने के बाद भी उनकी स्मृति जनमानस पर बनी रहती है । इस स्तर की सफलताएँ विलक्षण प्रतिभा और विशिष्ट परिस्थिति पर निर्भर है । इच्छा रहते हुए हर कोई इस स्तर की सफलता पा नहीं सकता । इन सब से अधिक महत्वपूर्ण और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अधिक सरल काम परिवार निर्माण का है । उसे कर गुजरने वाले जिस श्रेय के अधिकारी बनते हैं उसे अखबारों में भले ही न छापा जाय पर यथार्थता की कसौटी यही कहेगी कि यह प्रयास अप्रतिम रहा ।

सन्त विनोबा की माता ने अपने परिवार की जिस स्तर पर संरचना की उसके फलस्वरूप मानवता को कृतकृत्य होने का अवसर मिला, शिवाजी, नैपोलियन, आदि अगणित महामानव माताओं द्वारा बनाये गये हैं । कौशल्या, कुन्ती, मदालसा, शकुन्तला, सीता आदि ने प्रजनन ही नहीं किया, सृजन भी किया था । गुरु गोविन्दसिंह जैसे कितने ही युग-पुरुषों की कथा गाथा में उनके परिवार का स्तर भी चार चाँद लगाता है । भगतसिंह को परिवार की परिस्थितियों ने प्रेरणा दी । नेहरू परिवार की अपनी परम्परा है । विश्व इतिहास से लेकर आधुनिक पर्यवेक्षण तक में ऐसे अनेकानेक प्रसंग दृष्टिगोचर होते हैं जिनमें परिवार निर्माण के लिए प्रयत्नशील व्यक्तियों ने महान सृजनकर्ताओं की तरह ही संसार की महती सेवा साधना सम्पन्न की है ।

परिवार निर्माण एक विशिष्ट स्तर की साधना है । उसमें योगी जैसी प्रज्ञा और तपस्वी जैसी प्रतिभा का परिचय देना पड़ता है । कलाकार अपने आप को साधता है किन्तु परिवार निर्माता को एक समूचे समुदाय के विभिन्न प्रकृति और स्थिति के लोगों का निर्माण करना पड़ता है । यह कार्य सघन आत्मीयता, समग्र दूरदर्शिता एवं समर्थ तत्परता से ही सम्भव हो सकता है । इसके लिए धरती जैसी सहनशीलता, पर्वत जैसी धैर्य धारणा और सूर्य जैसी प्रखरता का समन्वय सँजोना पड़ता है । इन सद्गुणों के अभाव में ही विपुल सुविधा-साधन जुटाने पर भी परिजन कुसंस्कारी बनते और अभिभावकों को त्रास देते रहते हैं । परिवार निर्माण में निरस्त व्यक्ति कुटुम्बियों की जितनी सेवा करते हैं उससे कहीं अधिक लाभ आत्म-निर्माण के रूप में उठाते हैं । दो लाभ प्रत्यक्ष हैं-तीसरा परोक्ष । सुसंस्कृत परिवारों के अनुदान का संसार को, समाज को सुखी-समुन्नत बनाने में कितना योगदान देते हैं । इसका लेखा-जोखा यदि रखा जा सके तो प्रतीत होगा कि यह परमार्थ परोपकार का एक उच्चस्तरीय प्रयोजन है ।

यहाँ यह बात हजार बार ध्यान रखने की है कि परिवार निर्माण का अर्थ नये बच्चे पैदा करना और उनका सुधार निर्माण करने की कल्पना करना किसी भी प्रकार नहीं है । अपने और विराने में कोई अन्तर नहीं पड़ता । निर्माण छोटे बच्चों का होता है । ऐसी बात भी नहीं है । प्राचीनकाल में छोटों के लिए गुरुकुल और बड़ों के लिए आरण्यक बनाये और ऋषि-ऋषिकाओं द्वारा चलाये जाते थे । गाँधी, बुद्ध, टैगोर आदि आश्रम बनाकर रहते थे । यह विशुद्ध रूप से पारिवारिकता का प्रयोग है । सन्तों की जमातें, सैनिकों की छावनियाँ, वस्तुतः पारिवारिकता की ही प्रयोगशालाएँ हैं । भले ही अन्यान्य कार्यक्रमों की प्रधानता रहने से उनका मूल स्वरूप धूमिल क्यों न हो गया हो ? अगले दिनों 'लॉर्जर फैमिली' का बड़े पैमाने पर प्रयोग होगा । यह संयुक्त परिवार पद्धति का एक सुधरा हुआ रूप है । शान्तिकुंज गायत्री नगर में वस्तुतः पारिवारिकता का प्रयोग चलता है । मिशन के सामने नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक क्रान्ति के कितने ही कार्यक्रम ऐसे हैं जिनसे प्रतीत होता है कि विश्व की अनेकानेक ऐसी हलचलों का सूत्रपात होने जा रहा है जो समय के प्रभाव को उलटकर रख देगी । इन सबमें अधिक महत्व का और तथ्यपूर्ण प्रयत्न यह है कि जन-जन की प्रकृति और प्रवृत्ति पर पारिवारिकता छाई रहे । इस एक ही सत्प्रवृत्ति के अन्तर्गत उन सभी सद्गुणों और सत्-सम्भावनाओं का समावेश है । जो अन्तरंग और बहिरंग क्षेत्र में घुसी हुई संकीर्णताओं और दुष्प्रवृत्तियों से जूझने और पछाड़ने में पूरी तरह समर्थ हो सकती है ।

पारिवारिकता देखने-सुनने में बाल-बच्चों का भरण-पोषण जैसी कार्य-पद्धति प्रतीत होती है जिसमें यौनाचार और निवास निर्वाह की व्यवस्था सुविधा को कारणभूत समझा जा सकता है । यह उसका उथला स्वरूप है वस्तुतः उसे आत्मसंयम और उदार व्यवहार की ऐसी मिली-जुली पद्धति कहना चाहिए जिसमें भाव-सम्वेदनाओं का ही सर्वोपरि महत्व है । अभिभावकों द्वारा संतान का भरण-पोषण, माता का शिशुओं के प्रति वात्सल्य, भाई और बहिन के मध्यवर्ती पवित्रता, पितृजनों के प्रति श्रद्धा, पत्नी का पति को परमेश्वर मानना, पति का पत्नी को अर्द्धांगिनी की मान्यता देना, उपार्जनकर्ता की उपलब्धियों का सहवितरण जैसी गतिविधियों का स्वार्थपरता के साथ कोई तालमेल नहीं बैठता । यह सारी व्यवस्था पूरी तरह उच्चस्तरीय भाव सम्वेदनाओं पर आधारित है ।

यदि अधिकार को लाभ एवं स्वार्थ को प्रमुख मानकर सोचा जाय तो इस गठन में असमर्थों को छोड़कर कोई भी सम्मिलित होने को तत्पर न होगा । पत्नी के रोटी के टुकड़ों पर जीवन भर की शारीरिक और मानसिक गुलामी स्वीकार कर पति अपनी कमाई से स्वयं ही गुलछर्रे क्यों न उड़ाये, पत्नी को गले से क्यों बाँधे जबकि यौनाचार अधिक सस्ते में पूरा होता रह सकता है । माता को बच्चा पेट में रखने से लेकर अपना लाल रक्त सफेद दूध के रूप में मिलाने, यौवन निचोड़ने जैसे अनेक कष्टसाध्य उत्तरदायित्व ओढ़ने में क्यों प्रसन्नता हो ?

वयस्क लोग वयोवृद्धों की सेवा सुश्रूषा क्यों करें ? जब अर्थशास्त्र में वयोवृद्ध बैलों को कसाई के हाथ बेच देने के समर्थन में अनेक तर्क और लाभ सुझाये हैं तो उसी आधार पर क्यों न घर के वृद्धजनों को उसी घाट उतार दिया जाय, भौतिक लाभ हानि की दृष्टि से विचार करने पर असमर्थों को भले ही परिवार से कुछ लाभ दीखता हो, समर्थों को स्पष्टतः हानि है । ऐसी दशा में स्वार्थ बुद्धि समर्थों को यही परामर्श दे सकती है कि वे परिवार बसाने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और पालने के झंझट में न पड़कर स्वेच्छाचारी, मनमौजी जीवन जियें ? कल्पना की जा सकती है कि यदि भौतिकवादी तर्क, प्रतिपादनों और स्वार्थ-संकीर्णता की पद्धति अपना ली जाय तो फिर परिवार बसाना मात्र घाटे का सौदा ही रह जायगा और उसे अपनाने के लिए समर्थ समझदार कभी तैयार न होगा । ऐसी दशा में मनुष्य जाति का अस्तित्व कितने दिन तक इस धरती पर स्थिर रह सकेगा यह कहना कठिन है ।

पारिवारिकता के पीछे भाव सम्वेदनाओं का उभार ही प्रधान काम करता है । उसमें उदारता की उदात्त प्रेरणाएँ ही मचलती देखी जा सकती हैं । घाटा असुविधा समर्पण का प्रतिपादन उच्चस्तरीय अध्यात्म सिद्धान्तों के अतिरिक्त और किसी दर्शन के सहारे नहीं हो सकता । पुण्य परमार्थ का समर्थन अर्थशास्त्र और मनोविज्ञान के आधार पर सम्भव नहीं । यह विशुद्ध रूप से अध्यात्म दर्शन का ही अनुदान है । आत्मा की भूख, आत्मसंतोष की प्यास मनुष्य की उत्कृष्टता अपनाने और परामर्श प्रयोजन में रस लेने के लिए विवश करती है । यही हैं वे आधार जिन्होंने मानवी चेतना में पारिवारिकता का संचार किया है । उसके साथ ही उन अनेकानेक सत्प्रवृत्तियों के उपहार दिये जिनके कारण मनुष्य को देवता की सन्तान या ईश्वर का राजकुमार कहा जाता है ।

सद्भावनाओं का उत्पादन और सम्बर्द्धन करने के लिए जितना उपयोगी और उर्वर क्षेत्र परिवार है उतना दूसरा और कोई नहीं । सद्भावनाओं का उपयोग देशभक्ति, समाजसेवा, सहकारिता, शिक्षा, स्वास्थ्य, साहित्य, कला आदि किसी भी क्षेत्र में किया जा सकता है किन्तु उसका मौलिक उत्पादन वहाँ नहीं हो सकता । संस्कारों में समाविष्ट बहादुरी किसी को सेना में भर्ती होने के लिए प्रोत्साहित तो कर सकती है, पर ऐसा कठिन है कि किसी कायर प्रकृति के मनुष्य को छावनी में कैद करके वीर बहादुर बना दिया जाय ।

समाज सेवा के अनेक क्षेत्रों में अनेक व्यक्ति ऐसे कामों में संलग्न दिखाई पड़ते हैं जो निश्चित रूप से लोकोपयोगी होते हैं किन्तु गहराई ये देखने पर पता चलता है कि उनमें संलग्न व्यक्तियों में से कितने ही गुपचुप ऐसे अनाचार करते हैं जिससे लोक कल्याण के आचरण में विनाश और अपव्यय ही पल्ले पड़ता है । होना यह चाहिए था कि लोकसेवा के कार्यों में निरत व्यक्ति उस प्रक्रिया से प्रभावित होते और यदि मूलत: जनसेवी नहीं थे तो भी उस प्रवाह में बहकर समाज सेवा के रंग में रंग जाते । पर जब ऐसा होता नहीं दीखता तो इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि मनुष्य की मौलिक प्रकृति इतनी प्रबल है कि उसका बदलना सामान्य तौर से नहीं, किसी विवशता उत्पन्न करने वाले अत्याधिक दबाव से ही सम्भव है ।

यह तथ्य बताते हैं कि मनुष्य की मौलिक प्रकृति प्रधान है और वह शिक्षण एवं वातावरण से यत्किंचित ही प्रभावित होती है । उसका वह ढाँचा सबसे अधिक मजबूत होता है जो गर्भावस्था से लेकर दस वर्ष की आयु की अवधि में परिवार की परिधि में रहते हुए उपार्जित किया जाता है । अस्तु, इस तथ्य को ध्यान में रखना होगा कि मानवी व्यक्तित्व में सद्भावनाओं का-गतिविधियों में सत्प्रवृत्तियों का-समावेश करना है तो इसके लिए आदर्शवादी कार्यक्रमों में सम्मिलित रहने या रखने से ही काम नहीं चलेगा । यदि ऐसा रहा हो तो तथाकथित नेतागण जो जनसाधारण को आदर्शवादी चिन्तन और कर्तृत्व की प्रेरणाएँ देते रहते हैं, अपने निजी जीवन में भी उनका पालन करते । परामर्श एक प्रकार का आचरण दूसरे प्रकार का यह सिद्ध करता है कि बुद्धि से, वाणी से कुछ भी कहा जा रहा हो मूलनिष्ठा उससे भिन्न है । यह निष्ठा ही असली व्यक्तित्व है और उसके निर्माण में परिवारगत प्रभाव एवं वातावरण की उपेक्षा नहीं की जा सकती । वस्तुत: उसी का प्रभाव चिरस्थायी होता और दूरगामी परिणाम उत्पन्न करता है ।

युग परिवर्तन अपने समय की महती आवश्यकता है । चिन्तन और चरित्र को, व्यवस्था और प्रचलन को एक प्रकार से इतना अधिक सुधार-परिष्कार करना होगा कि उसे कायाकल्प जैसा कहा जा सके । यह बड़ा काम है । इसके लिए योजनाएँ कहीं से बनें, कुछ भी बनें उनका आधार तो खड़ा करना ही होगा । व्यक्ति के अन्तराल में उत्कृष्टता का, आध्यात्मिकता का समावेश हो वह आधार है जिसके आधार पर सृजन की अनेकानेक योजनाओं को फलने-फूलने का अवसर मिलेगा । कहना न होगा कि भाव सम्वेदनाओं को सुसंस्कृत बनाने के लिए घर-परिवारों का स्तर उठाना पड़ेगा । पारिवारिकता और शालीनता एक ही तथ्य के दो नाम हैं । इसे ध्यान में रखते हुए हमें इस छोटे किन्तु महान कार्य को सम्पादित ही करना होगा जिसे परिवार निर्माण के नाम से जनसाधारण के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है ।

स्वच्छता एवं सुव्यवस्था परिवार भर को सिखाएँ

स्वच्छता के बिना सुन्दरता नहीं रह सकती । कितनी भी भव्य इमारत हो, उसकी सफाई, देख-रेख न की जाये, तो न तो वह आकर्षक लगेगी, नहीं टिकेगी । कितना भी सुन्दर बच्चा हो, यदि गन्दगी लिपटी हो, तो लोग उसे हाथ लगाने में झिझकेंगे तथा माँ और अभिभावकों को कोसेंगे । इसलिये स्वच्छता एवं सुव्यवस्था की आदत घर के प्रत्येक सदस्य में डाली जानी चाहिए ।

व्यक्तित्व की अतिरिक्त स्वच्छता का सम्बन्ध मानसिक बौद्धिक एवं आत्मिक प्रगति से तो है ही स्वास्थ्य से भी है । बाहरी स्वच्छता का भी स्वास्थ्य एवं मानसिक प्रसन्नता से सीधा सम्बन्ध है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

घर के सभी सदस्यों को प्रातः उठकर शौचादि कर्म से निवृत्त हो मंजन एवं स्नान करने का नियमित अभ्यास होना चाहिए । बचपन से ही यदि शौच की या मंजन की नियमितता की आदत नहीं बनी तो बाद में शौच की अनियमितता पेट-सम्बन्धी गड़बड़ियों का कारण बनती है । मंजन न करने से दाँत-मसूड़े खराब हो जाते हैं । युवावस्था में ही दाँत-दर्द एवं दाँतों के गिरने के कष्ट का सामना करना पड़ता है । जिन्हें नित्य स्नान का अभ्यास नहीं रहा या स्नान के सम्बन्ध में जिनके स्वभाव में आलस्य-प्रमाद जड़ जमा बैठा उन्हें हाथ-मुँह धोकर चेहरे पर क्रीम-पाउडर लगा लेने की आदत बन जाती है । ऐसों के शरीर से पसीने की दुर्गन्ध निकलती है और अस्वच्छता से फुन्सियाँ, रक्तविकार आदि उत्पन्न होते हैं । ठीक से स्नान करने का भी हमारे यहाँ अधिकांश लोगों को अभ्यास नहीं कराया जाता । किसी प्रकार नदी तालाब में डुबकी लगा लेना या बाल्टी दो बाल्टी पानी लौटे से शरीर के ऊपर डाल लेना स्नान नहीं । ऐसे नहाने की आदत बन जाने पर रोज-रोज नहाने वालों के भी शरीर में मैल की परत जमती जाती है । घुटने, कोहनी, कनपटी, टखने, एड़ी जैसी जगहों में ऐसे लोगों के प्रायः मैल जमी देखी जाती है । अतः ठीक से स्नान कर मैल छुड़ाने तौलिये से शरीर रगड़कर पोंछने की आदत हर सदस्य को डाली जानी चाहिए ।

यही बात कपड़ों के बारे में है । नीचे मैली-कुचैली चड्डी बनियान या गन्दा पेटीकोट आदि पहनकर ऊपर से चमकती साड़ी या कुर्ता-धोती, पैंट, पतलून पहन लेना ही वस्त्रों की स्वच्छता नहीं । शरीर से लगने वाले कपड़े भी सदा स्वच्छ रखने चाहिए । उन्हें नित्य धोया जाना चाहिए । ऊपर पहनने वाले कपड़े भी अपनी शक्ति के अनुसार सादे, अच्छे एवं स्वच्छ रहें यह ध्यान रखा जाना चाहिए ।

प्रत्येक सदस्य शौचालय एवं स्नानघर स्वच्छ रखने में सहभागी बनें, यह प्रवृत्ति परिवार में विकसित की जानी चाहिए । 'फ्लैश सिस्टम' के पखाने हों तो उनमें पर्याप्त पानी डाला जाय तथा ब्रुश विम आदि द्वारा उनकी सफाई की जाय कच्चे पखानों में रेत या राख का टोकरा रखा रहे । हर सदस्य मलविर्सजन के बाद उसे मैले पर ऊपर से डाल दे और टोकरा फिर भरकर रख दे । मेहनत द्वारा नियमित सफाई की व्यवस्था की जाय । भली-भाँति पानी डालकर कड़ी बुहारी द्वारा धोया जाय और फिनाइल मिला जल छोड़ा जाय । पेशाब जाने के बाद भी हर व्यक्ति को पानी डालने की आदत होनी चाहिए । देहातों में भी गड्ढे वाले पाखाने और पेशाबघर बनाये जाने चाहिए ताकि जहाँ-तहाँ गन्दगी न फैले और न ही परेशानी उठानी पड़े या बेपर्दगी अपनानी पड़े । साथ ही उसका इस्तेमाल खाद के रूप में हो सके । गड्ढे न बन पायें तब तक लोटे के साथ खुरपी लेकर जाने की परम्परा डाली जाय और खुरपी से गड्ढा खोदने के बाद वहीं मल-त्याग किया जाय तथा उसे ढक दिया जाय ।

स्नान घरों में भी सफाई रखने में हर सदस्य सहयोग करे । कपड़े धोने या नहाने के बाद स्नानघर में साबुन का झाग और मैला पानी फैले रहने देने की लापरवाही को टोका-सुधारा जाय । स्नानघर सदा स्वच्छ रखा जाना चाहिए, ताकि वहाँ न तो गन्दगी रहे, न ही काई जमे ।

मलमूत्र विसर्जन के स्थानों पर नाकबन्द करके जाना और जैसे-तैसे भागने की सोचना स्वच्छताप्रियता नहीं है । उन स्थानों को स्वच्छ रखना ही स्वच्छता है, यह हर एक को बताया-सिखाया जाय । जिस प्रकार हमारे शरीर में पाचन प्रक्रिया का जितना महत्व है, उतना ही मल-विर्सजन प्रक्रिया का भी । उसी प्रकार घर में रसोई घर को जितना साफ रखा जावे, उतना ही टट्टी या पेशाब घर को ।

रसोई को भी भली-भाँति साफ रखा जाना चाहिए । अन्न के कणों-टुकड़ों को समेट कर पशु-पक्षियों को खिला देना चाहिए या कूड़ेदान में डाल देना चाहिए । थाली में डाले गए अन्न के सड़ने से असह्य दुर्गन्ध उत्पन्न होती है । वहाँ कीड़े पैदा हो जाते हैं । दुर्गन्ध और कीड़े दोनों स्वास्थ्य को हानि पहुँचाते हैं ।

भोजन के समय थाली-लोटे गिलास-कटोरी आदि में कहीं जरा भी मिट्टी-जूठन लगा हो तो खाने वाले का मन बिदक जाता है । इसलिये बर्तनों की धुलाई-सफाई के साथ ही उन्हें ठीक से रखने की भी चिन्ता करनी चाहिए और इस्तेमाल के पूर्व फिर से देख लेना चाहिए कि स्वच्छ तो है । धूल-मिट्टी लग गई हो तो साफ कर लिये जायें ।

रसोई का फर्श पक्का है तो गीले टाट से पोंछना जरूरी होता है । कच्चे रसोई में लिपाई करना आवश्यक होता है । चौका-रसोई की स्वच्छता और खाद्य पदार्थ रखने के स्थान की स्वच्छता का ध्यान रखने से ही भोजन व्यवस्थापिका की सुघड़ता का पता चलता है । खाद्य पदार्थ सीलन भरी जगह में न रखे जायें । उन्हें ढककर रखा जाय और समय-समय पर सुखाते रहा जाय, सफाई का तथा खाद्य पदार्थों को ढकने का ध्यान न रखने पर चूहे, मकड़ी, छिपकली, तिलचट्टे, झींगुर, घुन, पई आदि अनेक छोटे-बड़े कीड़ों के उपद्रव का डर रहता है । उनका थूक, मल-मूत्र आदि पेट में पहुँच सकता है और हानि पहुँचा सकता है । ये कीड़े-मकोड़े वहीं मर गये और उनके टुकड़े खाद्य-पदार्थ के साथ पेट में पहुँचे तो विषैली प्रतिक्रिया उत्पन्न करेंगे ।

पीने के पानी की स्वच्छता के लिये प्रयुक्त छानने वाले कपड़े को साबुन से धोना तथा सुखाना आवश्यक होता है । पानी को भी ढककर रखना होता है । पेय जल का

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पात्र रखने के लिये लकड़ी की तिपाई या पक्की चकती का प्रबन्ध कर लेना चाहिए । पानी भरने के घड़े भीतर से भली-भाँति धोए जायँ, लोटा-गिलास आदि धोकर ही पानी लिया दिया जाएँ ये सभी आदतें बच्चों में शुरू से ही डाली जानी चाहिए । सभी कमरों, मेज, कुर्सी, पलंग फर्नीचर समेत घर भर का एक कार्य नित्य झाड़-पोंछ, सफाई होनी चाहिए । इस काम की जिम्मेदारी फेर बदल कर दी जाती रहना चाहिए ।

साप्ताहिक सफाई छुट्टी के दिन की जानी चाहिए । उस दिन घर भर के लोग सोत्साह उसमें जुटें । उस दिन घर के कोनों में, दीवाल व छतों में जमा हो गये जाले, बर्र-ततैये के छत्ते वगैरह साफ करें । आस-पास की भी सफाई कर डालें । नालियों, कूड़ेदानों को साफ कर लें । कुँआ हो तो उसके आसपास की सफाई कर दें । पाखाना आदि सब स्थान भली-भाँति धो डालें जाय । काँच वगैरह सब साफ कर डालें । उसी दिन ओढ़ने-बिछाने के कपड़े आदि सुखा लें । जूते-चप्पलों की मरम्मत कर डालें । परिवार के सभी सदस्य उत्साहपूर्वक इसमें जुटें तो काम सरलता से निपट जाता है और मनोरंजन भी होता है ।

कभी-कभी विशेष सफाई का अभियान भी चलाना चाहिए । वर्षा की समाप्ति के बाद और ग्रीष्म ऋतु में पूरे घर की सफाई-मरम्मत का काम आवश्यक होता है । नियमित सफाई के बाद भी नमी बनी रहने तथा धूप कम होने के कारण मकान और सामान की हालत खराब हो जाती है । कपड़ों में नमी चढ़ जाने से उनमें गंध आने लगती है । मकान में सीलन आ जाती है । जहाँ हवन होता रहता है, वहाँ कीटाणु बहुत कुछ नष्ट होते रहते हैं । तो भी वर्षा की समाप्ति पर एक बार घर की पूरी तरह सफाई जरूरी होती है । दीपावली का त्यौहार इसी प्रयोजन की पूर्ति कर देता है । दैनिक एवं साप्ताहिक सफाई में परिवार भर के लोगों द्वारा सहयोग का अभ्यास हो गया तो इस वार्षिक सफाई में भी बहुत सारा काम घर के सदस्य सम्हाल लेते हैं और खर्च कम पड़ता है ।

वास्तविक बात यह है कि यदि स्वच्छता का सिद्धान्त मन में बैठ गया तो हरेक को गन्दगी खटकेगी, कुरूपता अस्त-व्यस्त को हटाने की इच्छा उठेगी उसमें आलस्य और प्रमाद की गुंजाइश नहीं रहेगी । कहीं थोड़ी भी अस्वच्छता दिखाई देगी, अव्यवस्था अनुभव होगी तो गृहणी या परिवार के सदस्य को खटकने लगेगी और तब कहीं अस्वच्छता, अस्त-व्यस्तता का रहना सम्भव न होगा ।

प्रायः अपने परिवारों में शौकीनी ठाठ-बाट और फैशन के नाम पर थोड़ी साज, सजावट दिखाई देती है । तीज-त्यौहार, विवाह-शादी अथवा किसी महत्वपूर्ण अतिथि आने के अवसर पर सफाई में उत्साह दिखाई देता है, अन्यथा चारों ओर अस्वच्छता का ही साम्राज्य छाया रहता है । स्वभाव न होने से वह खटकती भी नहीं है । कमरों में कपड़े अस्त-व्यस्त, कापी-किताबें इधर-उधर बिखरी हुई, सामान अव्यवस्थित, आलस्यवश सब ऐसा ही पड़ा बिखरा रहता है । रसोई में बरतन इधर-उधर फैले, धुयें की कालिख का साम्राज्य, धूल भरे जाले लटके रहते हैं । आँगन में बच्चों ने सब में कूड़ा-करकट फैलाया हुआ । कहीं साग की टोकरी पड़ी है तो कहीं अनाज का टीन । एक तरफ कुर्सी पड़ी है तो बीच रास्ते में चौकी । स्नान घर में पानी बह रहा है, काई जम गई है, सीलन और पेशाब की बदबू आ रही है, पखाने से दुर्गन्ध फैल रही है, पानी डालने की किसी को फुरसत नहीं है, मक्खियाँ भिनभिना रही हैं । ध्यान दीजिए, यह दृश्य कहीं अपने यहाँ का ही तो नहीं है ? यदि ऐसा ही है तो हमें मानना चाहिए कि हम घर में नहीं नरक में रह रहे हैं ।

हम घर की थोड़ी बहुत सफाई करते भी हैं तो घर तो साफ करते हैं और गन्दगी घर के सामने डाल देते हैं, सड़क पर गिरा देते हैं, अपनी नाली साफ करके कचरा, मैला पड़ोसी के दरवाजे की ओर बढ़ा देते हैं । यह बहुत ही गन्दी और अनैतिक आदत है । अपनी खुद की सफाई के साथ-साथ सार्वजनिक सफाई का भी ध्यान रखें ।

जिसके मन में स्वच्छता सिद्धान्त एवं अभ्यास रूप में आ जायगी वह घर और बाहर सब जगह स्वच्छता के नियमों का पालन करेगा । चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते कहीं भी वह उनका उल्लंघन नहीं करेगा । जहाँ-कहीं उसका विकृत रूप देखेगा उसे खटकेगा और वह उसे ठीक करने का प्रयत्न करेगा ।

स्वच्छता का अर्थ है सभ्यता । स्वच्छता से सभ्यता, नागरिकता और स्वस्थ व्यक्तित्व का बोध होता है । अस्वच्छता-अस्वस्थ वातावरण और असभ्यता की परिचायक होती है ।

व्यवस्था से सुन्दरता, सुरुचि, सुविधा और सम्मान प्राप्त होता है । अव्यवस्था-फूहड़पन निकम्मेपन की द्योतक है । इससे हर क्षेत्र में असुविधाओं का ही सामना करना पड़ता है ।

घर, बाहर, आँगन, कमरे, रसोई सब साफ-सुथरे हैं, कपड़े-लत्ते, बिस्तर-बैठक, शरीर और वस्त्र सभी स्वच्छ हों तो इस स्वच्छता के वातावरण से मन प्रसन्न रहता है, पवित्र-विचार आते हैं और अन्तःकरण प्रफुल्लित रहता है । पूजा और यज्ञ कार्य में भी हम बाह्य और आन्तरिक पवित्रता की भावना करते हैं । वह बाह्य और आन्तरिक स्वच्छता-पवित्रता हमारे घरों में रहे, यह गृहलक्ष्मी द्वारा ही हो सकता है ।

स्वच्छता से सौन्दर्य उपासना की प्रकृति निर्मित होती है । सजावट, चित्रों का चयन, फूल-पत्ती, गुलदस्ते, गमले, बेलें सजाने का नियम इसी का एक अंग है । मन्दिरों की सजावट, स्वच्छता और शृंगार सुसज्जा भी हमें प्रसन्नता, रोचकता प्रदान करती है । वैसी ही स्थिति हमारे घरों की होनी चाहिए ।

स्वच्छता को मनुष्य की शालीनता और सभ्यता की साक्षी ही समझा जाना चाहिए । व्यक्ति कितना सजग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

व्यवस्थित और सुरुचिसम्पन्न है इसकी परीक्षा उसके घर में प्रवेश करके ही की जा सकती है । वस्त्र, जूते, उपकरण, पात्र, पुस्तकें, आदि वस्तुएँ किस क्रम में, किस स्थिति में हैं इसे देखते ही वहाँ रहने वालों के स्वभाव का पता चल जाता है । मनुष्यात्मा का पहला प्रमाण जप-तप नहीं वरन् उसकी सजगता है । जिसे स्वच्छता और व्यवस्था के रूप में देखा-परखा जा सकता है । यह मूलभूत गुण ही वह आधार है जिसके सहारे हर काम सर्वांगपूर्ण और सुव्यवस्थित रीति से किया जा सकता है और वह सही तथा सफल बनकर सामने आता है । इस गुण के अभाव में आलसी, प्रमादी और अव्यवस्थित मनुष्य अपने हर काम को लँगड़ा-लूला, आधा-अधूरा छोड़ते हैं और उनमें इतने छिद्र रह जाते हैं कि जो उस प्रयत्न परिश्रम की उपलब्धियाँ सामने आती हैं वे बहुत ही भौंड़ी, कुरूप, फूहड़ और अस्त-व्यस्त होती हैं । उनसे काम भले ही चल जाय पर श्रेय नहीं मिल सकता,सराहना नहीं हो सकती । काम चाहे छोटा हो पर उसे ही उत्कृष्ट दृष्टिकोण, समग्र मनोयोग और उल्लास भरी तत्परता के साथ किया जाय तो उसकी समग्रता और सुन्दरता देखते ही बनती है ।

सुव्यवस्थित और समग्र प्राप्ति के लिए सजग मनोवृत्ति को पहला स्थान दिया जाना चाहिए । इसे ही निरालस्यता, तत्परता, मनोयोग, सुरुचि, कला, प्रेम आदि नाम दिये जा सकते हैं । परिवार में इसी प्रवृत्ति को अभ्यास में लाने के लिये पूरी अभिरुचि का समावेश किया जाना चाहिए । छोटी से लेकर बड़ी वस्तु को यथास्थान, स्वच्छ, सुसज्जित रूप से रखना चाहिए । स्वच्छता में सभी को पूरी तरह अभिरुचि उत्पन्न करनी चाहिए । यह कार्य गृह संचालक का है । दूसरों पर गन्दगी फैलाने और अस्त-व्यस्तता बरतने के लिए भुनभुनाना, कुड़कुड़ाना बेकार है । एक सुयोग्य अध्यापक की तरह यह कार्य गृहपति को स्वयं करते हुए-अन्य सदस्यों को उसमें सम्मिलित करना चाहिए और स्वच्छता का, सुरुचि का अभ्यासी बनाना चाहिए ।

नौकर है या नहीं प्रश्न यह नहीं । प्रश्न एक ऐसी महत्वपूर्ण आदत के निर्माण का है जो आगे चलकर हर बड़े छोटे कार्यों की सफलता-असफलता का निमित्त बनती है । हर कपड़ा सामान, हर वस्तुएँ हर समय स्वच्छ और व्यवस्थित रहनी चाहिए । उन्हें रखना ही इस ढंग से चाहिए कि गन्दगी उत्पन्न ही न होने पाये । फिर वह कारणवश होती भी हों तो उसकी सफाई को टालने की अपेक्षा तुरन्त ही सँभाला जाना चाहिए । टालने की आदत को जहाँ थोड़ा-सा भी सहारा मिला कि वह फिर धीरे-धीरे आलस्य प्रमाद में ही विकसित हो चलती है और फिर गन्दगी तथा अव्यवस्था का ही वातावरण बन जाता है । यदि सफाई का कोई समय नियत है तो उसमें नौकर ही सब कुछ करे यह ठीक नहीं घर के अन्य लोगों को भी लगना चाहिए और स्वच्छता एवं सुरुचि का अभ्यासी हर एक को बनना चाहिए । दीवारें धुली हुई, फर्श धुला या लिपा हुआ, फर्नीचर पर पालिश, कपड़े धुले हुए, बर्तन साफ, पुस्तकें सुसज्जित देखकर यह पहचाना जा सकता है कि इस घर में रहने वाले व्यक्ति सुसंस्कृत हैं और उनकी सुरुचि में सजगता की समुचित मात्रा ठीक अनुपात में है ।

स्वच्छता एवं सुव्यवस्था दोनों ही सौन्दर्यप्रियता के द्योतक हैं । बच्चों को सुरुचि-सम्पन्न एवं व्यवस्थाप्रिय बनने का पाठ घर में स्वच्छता तथा सुव्यवस्था के नियमों पर आग्रह रखकर ही सिखाया जा सकता है । वस्तुओं का घर में नियत स्थान हो और प्रत्येक सदस्य इस बात का ध्यान रखे कि उपयोग के उपरान्त वस्तु वहीं रखी जाय । सामान चाहे जहाँ फेंक देना अव्यवस्था का आरम्भ है । शुरू से ही इस प्रवृत्ति पर रोक लगानी चाहिए । प्रारम्भ में तो शीघ्रता के कारण यह आदत अपनायी जाती है किन्तु धीरे-धीरे यह स्वभाव का अंग बन जाती है । इससे कुल मिलाकर समय भी अधिक लगता है व्यवस्थाक्रम भी भंग होता है । दूसरों के लिये या फिर स्वयं अपने लिये एक झंझट खड़ी होती रहती है ।

अव्यवस्था का अभ्यास हो गया तो मौका पड़ने पर कोई काम समय पर शुरू ही नहीं हो पाता । पहले बिखरे सामान को सम्हालने में ही जुटना पड़ता है । व्यस्तता से मनःस्थिति भी प्रभावित होती है । जहाँ व्यवस्था है वहाँ चित्त में स्फूर्ति रहती है । कार्य में सुगमता रहती है । व्यवस्थित कमरे और घर की छाप देखने वालों पर अच्छी पड़ती है ।

स्कूल से लौट आने के बाद बच्चे अपना बस्ता कहीं फेंकते हैं, जूता कहीं और कपड़े जैसे-तैसे उतारकर पटक देते हैं । उस समय उन्हें हर वस्तु का यथास्थान रखने का मार्गदर्शन दिया जाना आवश्यक है । बड़ों को वैसा प्रत्यक्ष मार्गदर्शन न देकर कुशलता एवं नम्रता का आश्रय लेना होता है । वे जो सामान अस्त-व्यस्त कर दें, उसे उन्हीं के सामने सहेजा जाय । कभी-कभी मौका देखकर सुव्यवस्था की, आवश्यकता की चर्चा की जाये ।

जूते नियत स्थान पर पंक्तिबद्ध रखे जाएँ । कपड़े हेंगर या खूँटी पर ही टाँगे जायें । धुलने के योग्य कपड़े भी एक जगह बाँधकर या पेटी में भरकर रखे जायें । धुले कपड़े सुखाने के बाद ठीक से यथास्थान रखे जायें । किताब कागज, कलम, पुस्तक, पेन्सिल बच्चे चाहे जहाँ न बिखेर दें । बड़े लोग अखबार पढ़ने के बाद उसे यों ही न पटक दें । निश्चित स्थान पर रखें । रद्दी कागज रद्दी की टोकरी में ही डाले जायें । कलम रुक जाये तो निब को फर्श दीवाल पर न छिड़का जाय । रद्दी कागज से पोंछ लिया जाय । पान की पीक, थूक को चाहे जहाँ न फेंके-पटकें । बीड़ी-सिगरेट जो पीते हैं वे उसके बचे टुकड़े व राख निश्चित जगह ही रखें-गिरायें । माचिस की बुझी तीली चाहे जहाँ न फेंकी जाय । ये सब बातें हैं तो छोटी-छोटी पर घर के सब लोगों को इनका प्रशिक्षण दिया जाय, तो उनके व्यक्तित्व में व्यवस्थाप्रियता का समावेश होता चला जाता है ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वच्छता एवं सुव्यवस्था ही सौन्दर्य दृष्टि का निर्माण करते हैं । व्यक्ति की सुरुचि-सम्पन्नता तथा सुघड़ता व्यवस्थाप्रियता का पता उनकी इन्हीं प्रवृत्तियों के प्रत्यक्ष प्रतिफल को देखकर चलता है । छोटी-छोटी आदतों के तिनके मिलकर ही व्यक्तित्व का घोंसला बनाते हैं । अत: हर परिवार में इन प्रवृत्तियों के प्रशिक्षण पर ध्यान दिया जाना चाहिए ।

पंचशीलों को व्यवहार में लाने का एक ही तरीका

घरों में सामूहिक प्रयत्न यह है कि व्यवस्था सम्बन्धी अभ्यास कराने में, गृह संचालक अपने साथ छोटों को ले कर चले । स्वयं करे और करायें । सही तरीका यही है । दूसरों को निर्देश-परामर्श देना है तो अच्छा, पर आदतें बदलने और ढर्रे को मोड़ने में इतने भर से अभीष्ट उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता । आदतें बदलने का तरीका एक ही है जो उपयुक्त है, उसे क्रियात्मक रूप से अपनाने और व्यवहार में उतारने का प्रयत्न किया जाय । अभ्यास के लिए कुछ कार्यक्रम निर्धारित करने पड़ते हैं । बहुत समय तक उन्हें करते रहने से पुरानी आदतें छूट जाती हैं और नये निर्धारण, स्वभाव का अंग बनकर अपने आप सामान्य जीवनक्रम का अंग बन जाते हैं ।

घर को स्वच्छ, सुव्यवस्थित एवं सुसज्जित रखने के लिए क्या किया जाय ? यह प्रश्न कभी पूछा ही न गया हो तो बात दूसरी है, अन्यथा दृष्टि दौड़ाने पर चप्पे-चप्पे पर बिखरे हुए काम सामने आकर खड़े हो जाते हैं । यह शोध दृष्टि है, जिसे विकसित करने पर अवांछनीयताओं को छोड़ने और उपयोगिताओं को अपनाने के लिए सोचने और करने जैसा सूझने लगता है ।

गन्दगी को हटाने का ही एक काम हाथ में लिया जाय तो प्रतीत होगा कि वह इतना अधिक है कि पूरे परिवार को कई दिनों तक उसमें जुटाये रखा जा सकता है । टूट-फूट की मरम्मत के ढेरों कार्य ढूँढ़े जा सकते हैं । सुन्दर और सुसज्जित बनाने के लिए पुताई, रँगाई जैसे कामों की एक सूची बन सकती है । इन्हें मिल-जुलकर किया जा सके तो सब में सृजनात्मक प्रवृत्ति पनपेगी और अस्त-व्यस्तता, अस्वच्छता एवं कुरूपता को हटाने की आवश्यकता अनुभव करने का स्वभाव बनेगा । भोजन बनाने, कपड़े धोने जैसे कामों को भी कभी मिल-जुलकर किया जा सकता है । उसमें शिक्षा का उपक्रम भी साथ-साथ चलता रहेगा । सामूहिकता उत्साह बढ़ाती है, यह सर्वविदित है । बड़ों का अनुकरण छोटे करते हैं । अभ्यास न होने और संकोच लगने की दो कठिनाइयाँ आमतौर से प्रगति पथ पर नये चरण बढ़ाने में मुख्य अड़चन हैं । इन्हें घर सँभालने में सामूहिक प्रयासों का कार्यक्रम बनाकर सहज ही दूर किया जा सकता है । नित्य, तीसरे दिन, सप्ताह में एक बार जहाँ जिस प्रकार बन पड़े, ऐसा निर्धारण हर घर में रहना चाहिए । करते समय या आगे-पीछे उस सँभाल प्रक्रिया के हर पक्ष को बताने का क्रम समय-समय पर जारी रखा जाय और उस कथन के प्रमाण, उदाहरणों को बढ़ाया जाता रहे ।

पारिवारिक पंचशीलों में जिन पाँच सत्प्रवृत्तियों का उल्लेख है, उनको परिजनों के स्वभाव का अंग बनाने के लिए ऐसी गतिविधियों को जन्म देना पड़ेगा, जिनके सहारे उन्हें परिजनों के स्वभाव का अंग बनाया जा सके । गृह-संचालकों को समय की कमी का रोना नहीं रोना चाहिए । पैसा कमाना ही मात्र, एक काम नहीं है । उतने भर से परिवार के भरण-पोषण की आवश्यकता तो पूरी हो सकती है, पर संस्कारों का अभिवर्द्धन कहीं नहीं हो सकता यदि समझ काम दे तो यह तथ्य स्वीकार करने में किसी को कोई कठिनाई नहीं होगी कि गुण, कर्म, स्वभाव के समन्वय से बना हुआ व्यक्तित्व ही मनुष्य की वास्तविक पूँजी है । यह वैभव जिसके पास जितनी मात्रा में होगा वह उसी अनुपात में प्रभावशाली, सम्पत्तिशाली और सौभाग्यशाली बनेगा । अस्तु, सच्चे अर्थों में परिजनों का हित चाहने वालों को उनके लिए साधन, सुविधा जुटाने तक ही सीमित होकर न रह जाना चाहिए वरन् सुसंस्कारों के सम्बन्ध का वह कार्य भी हाथ में लेना चाहिए जो दूसरों से नहीं कराया जा सकता ।

परिवार निर्माण की कल्पना-कामना भर करनी हो तो बात दूसरी है, अन्यथा इस प्रयोजन के लिए समय निकालना और साथ रहकर, साथ रखकर व्यावहारिक अभ्यास करना आवश्यक है । इसके लिए उपार्जन के घण्टों में कटौती करने की जरूरत नहीं है । शेष समय भी ऐसा है जो आमतौर से आलस्य, प्रमाद, दुर्व्यसन और गप-सप में गुजरता है । उसे बचाया जा सके तो परिवार निर्माण के लिए परिजनों के साथ और मिलजुलकर काम करने के अभ्यास से उन्हें कुछ से कुछ बनाया जा सकता है, पंचशील की परम्पराओं को घर में क्रियान्वित होते देखने का एक ही तरीका है कि गृह संचालक इसके लिए समय निकालें और उन महान सत्प्रवृत्तियों को सबके स्वभाव का अंग बनाने के लिये सतर्कतापूर्वक संलग्न रहें ।

परिवार को सफल बनाने के लिये सच्ची पारिवारिक भावना जरूरी

घर को तपोवन बनाने के लिए गृहपति को स्वयं तपस्वी बनना पड़ता है, ताकि उसके अनुकरण से परिवार के सदस्यगण भी उसी दिशा में बढ़ते चले जायें । परिवार से श्रेष्ठ प्रेरणाएँ एवं आनन्द प्राप्त करने के लिये उसका स्वरूप और वातावरण उत्कृष्ट स्तर का बनाना होता है ।

आज यदि परिवार उल्लास, हर्ष, सुख-सौमनस्य, शान्ति-संतोष एवं प्रेरणा-प्रकाश नहीं दे पाते, तो इसका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कारण मात्र यही है कि परिवार के दर्शन एवं प्रयोजन को भुला दिया गया है । सड़ी कमजोर जड़ों वाले पेड़ों के गिरने में क्या आश्चर्य ? अत: यदि आज परिवार व्यवस्था विघटित होती चली जा रही है और उससे मनुष्य की सुख-सुविधा में कोई सहायता मिलने के स्थान पर कष्ट, क्लेश, असुविधा-असन्तोष एवं अवरोध ही प्राप्त होते हैं, तो इससे परिवार-संस्था ही दोषपूर्ण नहीं सिद्ध हो जाती । मध्ययुगीन धार्मिक ग्रन्थों में रक्तरंजित संघर्ष और निरर्थक कर्मकाण्डों तथा अन्धविश्वासों पर भी उनका आग्रह जिस प्रकार धर्म-तन्त्र को त्याज्य, दूषित नहीं सिद्ध करता, उसी प्रकार परिवार-जीवन में व्याप्त विशृंखलता, दुराग्रह और हताशा उसे त्याज्य नहीं सिद्ध करते ।

जब परिवार-व्यवस्था इतनी श्रेष्ठ है और उसमें व्यक्ति निर्माण के सभी आधार सन्निहित हैं, तब आज वह सुसंस्कृत व्यक्तियों का उपहार समाज को देने में क्यों नहीं सिद्ध हो रही है ? इसका एक ही कारण है, आज परिवार का जीर्ण-शीर्ण ढाँचा तो है, पर उसकी प्राणशक्ति उसमें से विदा हो चुकी है । जहाँ परिवारों में इस प्राणशक्ति के कुछ अंश शेष हैं, वहाँ उसी मात्रा में वैसे परिणाम भी प्राप्त होते स्पष्ट देखे जा सकते हैं । हमारा शरीर हमें प्रिय लगता है । उसकी हम समस्त देखभाल, साज-सम्हाल करते हैं । क्योंकि वह हमारे अन्त:करण और विवेक के अनुसार कार्य सम्पादित करने का समर्थ माध्यम बनता है । प्राणशक्ति से रहित होने पर यही शरीर दूषित मान लिया जाता है । उसे यथाशीघ्र घर से हटाने का प्रबन्ध किया जाता है । उसका स्पर्श भी अशुद्ध कर देने वाला माना जाता है । अत: प्राणशक्ति से रहित परिवार-व्यवस्था को यदि हेय, तुच्छ, दूषित करने वाली कहा गया तो ऐसा कहने वालों का अभिप्राय समझा जाना चाहिए । जब परिवार प्राण-शक्ति से रहित हों, उसमें व्यक्ति-निर्माण तथा आत्म-परिष्कार की क्षमता-प्रेरणा न रह जाये, अपितु वे मनुष्य के शोषण-स्खलन का आधार बन बैठे, तब उन्हें तिरस्कार और उपेक्षा के योग्य कहने में अधिक अनौचित्य नहीं । परिवार की क्षत-विक्षत लाश के प्रति ही यह भाव व्यक्त हुआ माना जाना चाहिए ।

परिवार की प्राण-शक्ति है सघन आत्मीयता, प्रखर प्रेम । जहाँ समानता और अपनत्व की भाव-सम्वेदनाएँ नहीं हैं, वहाँ परिवार का निष्प्राण ढाँचा ही समझा जाना चाहिए । भाव-सम्वेदना होगी, तो उसकी व्यवहार में स्वाभाविक अभिव्यक्ति भी होगी । यह अभिव्यक्ति ही पारिवारिकता है ।

परिवार-व्यवस्था के जो भी लाभ गिनाये जाते हैं, वे पारिवारिकता के आधार के विद्यमान होने पर ही प्राप्त हो सकते हैं । जहाँ यह बुनियाद ही नहीं, वहाँ और किसी विस्तार की गुंजाइश कहाँ ?

परिवार में जब आत्मीयता, प्रेम की भाव-सम्वेदनाएँ और उत्कृष्टता-श्रेष्ठता की विचारधाराएँ हर सदस्य में भरी रहेंगी, तभी उसको वास्तविक सुख मिल सकेगा । मात्र साथ-साथ रहना परिवार-भावना का द्योतक नहीं जिनके बीच सुख-दु:ख की समान अनुभूति है, सघन सम्वेदना है, सहयोग का उत्साह है, उन्हें ही एक पारिवारिक इकाई कहा जा सकता है । जो परिवार एक इकाई की तरह, एक शरीर की तरह नहीं है, उसे सचमुच परिवार माना जाना भी कठिन है ।

प्रगाढ़ आत्मीयता एक ऐसी सुखद सम्वेदना उत्पन्न करती है, जिसका आनन्द ही स्वयं में अमूल्य है । यह भावात्मक सघनता ही जीवन में सरसता उत्पन्न करती है । नीरस जीवन दूभर हो जाता है । परिवार यदि सरसता न उत्पन्न कर सके तो फिर उसकी क्या उपयोगिता ? वह सहयोग-सद्भाव बढ़ा सके तो उसकी क्या सार्थकता ? जहाँ सम्वेदनाओं का आदान-प्रदान न हो, वहाँ परिवार-भावना नहीं मानी जायेगी ।

आदान-प्रदान सदैव समानों में होता है । श्रद्धा-आदर, स्नेह-दुलार, बड़े-छोटे के बीच शील-सौजन्य से समता का भाव खण्डित नहीं होता । समता सच्चे अर्थों में आत्मीयता का ही दूसरा नाम है । दूसरे को भी ठीक अपने जैसा मानना ही समत्व-भावना है । इसकी बाह्य अभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार की हो सकती है, स्वयं अपने साथ भी तो सदा एक-सा ही व्यवहार आवश्यक नहीं होता । जो आहार-विहार हमें स्वस्थ रहते हुए आवश्यक लगता है, अस्वस्थता की स्थिति में उसका स्वरूप एवं क्रम बदलना पड़ता है । जितना स्वाध्याय सामान्यक्रम में हम अपने लिए नियमित रूप से आवश्यक मानते हैं, विशेष कार्य-व्यवस्थता में उस समय में कटौती करनी पड़ जाती है । क्रीड़ा-व्यायाम आदि के बारे में भी यही तथ्य लागू होते हैं । यही बात परिवार के भिन्न भिन्न सदस्यों पर लागू होती है ।

परिवार में समता का भाव तो रहना चाहिए, पर उसका तात्पर्य यह नहीं है कि जिसकी क्षमता जिसे करने की नहीं है वह भी उसे बराबरी के आधार पर सौंप दिया जाय । बच्चे को समान मानने का अर्थ उसे तिजोरी की चाबी या पुस्तकालय की अकेले देख-रेख सौंप देना नहीं । इससे तो वह अपना और परिवार का अनिष्ट ही करेगा । छोटे भाई को अपने समान मानकर यदि उस पर परिवार का भार उतना ही सौंप दिया गया, तो उसका निर्वाह सम्भव न हो सकेगा । वृद्ध पिता के व्यक्तित्व के प्रति समत्वभाव का अर्थ यदि उनसे अभी भी वैसे ही उपार्जन की अपेक्षा रखना हुआ, तो यह अन्याय ही सिद्ध होगा । इसलिये बाहरी व्यवहार में भिन्नता से समता-आत्मीयता की भावना का कोई अनिवार्य विरोध नहीं है ।

आत्मीयता का व्यावहारिक रूप यह है कि विषमता-वर्द्धक, क्रूरता पर आश्रित रूढ़ियों को समाप्त किया जाय । स्त्रियों को पददलित और वृद्धों को उपेक्षित तथा सन्तान को स्वेच्छाचारी बना रखने वाली व्यवस्थाएँ, मान्यताएँ त्याग दी जाएँ तथा प्रत्येक के प्रति उचित आदर-स्नेह का भाव रखा जाए । यह निरीक्षण करते रहा जाय कि परिवार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के प्रत्येक स्त्री-पुरुष, बालक की शारीरिक, मानसिक-बौद्धिक उन्नति का समुचित अवसर मिल रहा है या नहीं ? जीवन-विकास एवं भविष्य-निर्माण के स्वाभाविक अधिकार से कोई वंचित तो नहीं हो रहा है ? या उसे दूसरों की तुलना में बहुत कम साधन तथा अवसर तो नहीं मिल रहे हैं ? किसी को अनावश्यक सुविधा मिल रही हो और किसी पर अनुचित दबाव पड़ रहा हो, ऐसी स्थिति तो नहीं है । जहाँ यह ध्यान रखा जा रहा हो, वहीं पारिवारिक-भावना है । जहाँ लड़कियों की अपेक्षा लड़कों को-स्त्रियों की तुलना में पुरुषों को-सम्प्रति न कमा रहे लोगों से उपार्जनशील लोगों को अधिक सुविधाएँ, अधिक सम्मान, खान-पान, वस्त्र, विहार, मनोरंजन के अधिक साधन तथा अवसर दिये जा रहे हों, वहाँ पारिवारिक भावना नहीं है । वहाँ तो अन्यायपूर्ण समझौता मात्र है । 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली मान्यता को पारिवारिकता के आवरण में उचित नहीं ठहराया जा सकता । भले ही कमजोर-दबे लोग मुँह न खोलें, पर उनका मन ऐसे अन्याय, अनीति एवं विषमता के विरुद्ध सदा विद्रोह ही करता रहेगा । अपनत्व का उल्लास ऐसे परिवारों में कभी भी स्थायी नहीं देखा-पाया जा सकता ।

कई गरीब घरों में स्वर्गीय प्रेम एवं आनन्द का वातावरण पाया जाता है । जबकि अनेक अमीर घरों में कलह, दुराव, अलगाव, अकेलेपन से लोग पीड़ित देखे जाते हैं । यदि व्यवहार का सम्बन्ध आमदनी से होता तो यह स्थिति नहीं देखने को आती । आत्मीयता के लिये आर्थिक समृद्धि नहीं, आन्तरिक समृद्धि की आवश्यकता होती है । अपनत्व, प्रसन्नता तथा मधुरता का स्वभाव यदि विकसित हो जाय, तो आर्थिक संकट उसे समाप्त नहीं कर पाते । सादगी, सात्विकता और सम्वेदना भरी सघनता, आत्मीयता विद्यमान हो तो कम आमदनी में भी आनन्द-उल्लास में कमी नहीं आती । क्योंकि वहाँ सच्ची पारिवारिक भावना मनुष्य को शक्ति देती रहती है । यही पारिवारिकता की उपलब्धि है ।

पारिवारिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह

परिवार के पालने में आमतौर से यह दृष्टिकोण रहता है कि किसके लिए क्या सुविधा-साधन जुटाये गये ? स्त्री-बच्चों के लिए भोजन, वस्त्र एवं मनोविनोद के विविध पदार्थों एवं परिस्थितियों के लिए चेष्टा चलती रहती है । इसमें जितनी सफलता मिली, उतना ही सन्तोष कर लिया जाता है कि हमने परिवार पालन का आवश्यक कर्तव्य-पालन कर लिया है ।

विचार करने पर यह दृष्टिकोण अधूरा और ओछा ही सिद्ध होता है । सुविधा साधन उतनी ही मात्रा में जुटाये जाने चाहिए जितने कि निर्वाह की आवश्यक जरूरतें पूरी करने के लिए अभीष्ट हैं । विलासिता और अहंकारिता का प्रदर्शन करने के लिए जो भी साधन जुटाये जाते हैं वे तात्कालिक प्रसन्नता भले ही दे सकें, उनके परिणाम अन्ततः बुरे ही होते हैं ।

विलासिता के साधनों का उपभोग करने की आदत यदि छोटेपन से ही पड़ जाय तो अनावश्यक खर्च भी आवश्यक जैसे प्रतीत होने लगेंगे और उनकी पूर्ति न हो सकने पर निरन्तर दुःख बना रहेगा । जीवन की पगडण्डी बड़ी ऊबड़-खाबड़ है । कहा नहीं जा सकता है कि कब किसे किस स्थिति का सामना करना पड़े । आवश्यक नहीं कि जो सम्पन्नता आज है वह भविष्य में भी बनी ही रहेगी । जो आज की आमदनी है वह भविष्य में बच्चों को भी उपलब्ध होती ही रहेगी । यदि घटिया परिस्थितियाँ सामने आईं और कम खर्च में गुजारा करना पड़ा तो वे विलासी आदतें जो अभिभावकों ने लाड़-चाव में लगा दी थीं समस्त जीवनकाल में दुःखदायी रहेंगी । अभावग्रस्तता यदि सहन न हो सकी तो वे अपराधी रीति-नीति अपना लेंगे और अपना लोक-परलोक दोनों की बिगाड़ेंगे । इन दूरगामी परिणामों पर जो ध्यान नहीं दे सकते वे ही अपने परिवार को अनावश्यक विलासी साधनों का अभ्यस्त बनाते चले जाते हैं । वे नहीं जानते कि यह लाड़ चाव प्रकारान्तर से परिवार के सदस्यों के साथ शत्रुता बरतने जैसा व्यवहार ही है ।

परिवार के प्रत्येक सदस्य को सुसंस्कारी बनाना गृहपति का सबसे महत्वपूर्ण और सबसे आवश्यक कर्तव्य है । सद्गुणों को स्वभाव का अंग बनाया जा सके-कर्मनिष्ठा में उत्साह स्थिर रह सके ऐसे अभ्यास आरम्भ से ही कराये जाने चाहिए । परिस्थितियाँ ऐसी उत्पन्न करनी चाहिए जिनमें रहकर बालक मानवोचित सद्गुणों की शिक्षा प्राप्त कर सके और जीवन संग्राम में तैयारी के साथ उतर सके । परिजनों में ऐसी कर्मठता और साहसिकता उत्पन्न करने के लिए जिन अभिभावकों ने प्रबल प्रयत्न किये उन्हीं को सच्चे अर्थों में परिवार का पालनकर्ता कह सकते हैं । बुरी आदतों का अभ्यासी बनाकर जिन्दगी भर कँटीली झाड़ियों में भटकने के लिए जिन्होंने अपनी सन्तान को असहाय छोड़ दिया उन्होंने प्रकारान्तर से शत्रुता ही बरती । बालकों को विलासिता, अहंकारिता और उच्छृंखलता बरतने के खुले अवसर देना वस्तुतः गृह संचालक के पवित्र कर्तव्य से सर्वथा विपरीत स्तर की काम है ।

परिवार के सदस्यों की सच्ची सेवा उन्हें सद्गुणी और स्वावलम्बी बनाने में है । बाप-दादों की छोड़ी सम्पदा से ब्याज भाड़े पर गुजारा करने वाली सन्तान भले ही आराम के साथ दिन काट ले पर उसकी प्रतिभा का स्तर लुंज-पुंज ही रहेगा । जिसने कठोर कर्मक्षेत्र में उतरकर भुजबल और मनोबल को चरितार्थ करने का अवसर नहीं पाया उसे एक प्रकार से अपंग ही कहना चाहिए । पूर्वजों की कमाई पर गुजर करने वाली सन्तान को पराक्रम की कसौटी पर कसते हुए अपंग ही घोषित करना पड़ेगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

चिड़िया घोंसले में थोड़ा मजबूत होने वाले बच्चे को उड़ना सिखाने के लिए घोंसले से नीचे धकेलती है । बच्चा डरता है, हिचकता है, तो भी वह लाड़-प्यार की भावुकता भुलाकर उसे धकेल ही देती है । नीचे गिरते हुए बच्चा पंख खोलता है । अभ्यास न होने से वह लड़खड़ाता है तो चिड़िया सहारा देती है । लगातार साथ रहकर उसे उड़ने का अभ्यस्त बना देती है । वह जानती है कि जन्म देना या पाल देना ही नहीं बच्चे को स्वावलम्बी बनाना भी आवश्यक है । यह दृष्टिकोण प्रत्येक अभिभावक का रहना चाहिए । ब्याज-भाड़े की कमाई पर परिवार के अन्य सदस्यों की सहायता पर गुजर करने की बात घर के किसी सदस्य के मन पर नहीं बैठने देनी चाहिए । सबको यह सोचने देना चाहिए कि उन्हें अपनी जिन्दगी का भार स्वयं वहन करना है और अभिभावकों की सहायता से इतना भी अवसर प्राप्त करना है कि स्वावलम्बन की समस्या का हल अपने पराक्रम से ही पूरा किया जा सके ।

इस प्रकार की समर्थता प्राप्त करने का उत्साह न केवल बालकों, किशोरों और युवकों में उत्पन्न किया जाना चाहिए वरन् महिलाओं में भी वैसी ही उमंग पैदा की जानी चाहिए । उन्हें इस प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए ताकि वे आड़े समय स्वावलम्बी जीवन जी सकें । आवश्यक नहीं कि यह उपार्जन मुसीबत के समय ही किया जाय । सुविधासम्पन्न स्थिति में भी उत्पादक, पराक्रम करना बड़े सौभाग्य एवं गौरव की बात है इससे दबी हुई प्रतिभा के अनेक परत उभरते हैं और निठल्ले दिन काटने वालों की तुलना में वह पुरुषार्थी व्यक्ति हर दृष्टि से सुयोग्य एवं समर्थ बनता चला जाता है । इस प्रकार के अवसर देना वस्तुतः सुविधा-साधनों से लाद देने की अपेक्षा हजार गुना अधिक श्रेयस्कर है ।

कई व्यक्ति अपनी बहू-बेटियों को गुड़िया बनाकर रखते हैं और उन्हें कोमल परमुखापेक्षी बनाये रहते हैं । उनके लिये आरामतलबी के साधन जुटाते हैं और विलासिता के उपकरण इकट्ठे करते हैं । समझा जाता है कि उन्हें यह सुखद सौभाग्य मिल रहा है पर वस्तुतः यह सर्वदा उल्टी बात है । परावलम्बी अनुदान पाकर सम्भव है किसी को शारीरिक सुविधा या मानसिक प्रसन्नता मिलती भी रहे पर आत्मा का पतन ही होता रहेगा । जब तक किसी को यह अनुभव न हो कि वह आत्मनिर्भर है । समर्थ एवं सुविकसित है, तब तक उस गौरव की अनुभूति नहीं हो सकती जो मानवी अन्तःकरण को सन्तोष देने की दृष्टि से नितान्त आवश्यक है ।

न केवल आर्थिक क्षेत्र में वरन् ज्ञान, अनुभव के क्षेत्र में भी परिवार के हर सदस्य को इस योग्य बनाया जाना चाहिए कि वह सामने आने वाली प्रत्येक समस्या का सही स्वरूप समझने और उन्हें हल करने में अपनी बुद्धिमत्ता के सहारे ही समर्थ हो सके । विद्या, अध्ययन, विचार, विनिमय, अनुभव एवं विविध विषयों की विस्तृत जानकारी के अभाव में मनुष्य की समझ कूपमण्डूक जैसी बनी रहती है । स्वतन्त्र चिन्तन की नीर-क्षीर विवेकी उसमें क्षमता ही नहीं होती । जो पक्ष सुझा दिया जाता है उसी की तोता रटन्त चलती रहती है । गुण-अवगुण के औचित्य-अनौचित्य की उभयपक्षीय चेतना जिसके मस्तिष्क में रहती है वही यथार्थवादी निर्माण पर पहुँच सकता है और उलझनें सुलझा सकता है । अस्तु, यह आवश्यक है कि परिवार के हर सदस्य को इतना विचारशील बनाने के लिये अध्ययन, विचार-विनिमय एवं तर्क-वितर्क कर सकने योग्य मस्तिष्क का निर्णय करने में सहायता दी जाय । जीवन के विस्तृत क्षेत्र में आत्मरक्षा की प्रगति की दृष्टि से ऐसी विचारकता नितान्त आवश्यक है । परिवार के सदस्यों को यदि ऐसी विचारशीलता उत्पन्न करने के अवसर दिये गये हैं तो समझना चाहिए कि गृहपति ने अपने उत्तरदायित्वों में से एक अति महत्वपूर्ण पक्ष का ठीक तरह निर्वाह कर दिया ।

प्रतिभाशाली व्यक्तित्व ही मनुष्य की सबसे बड़ी सम्पदा है । धन-दौलत जैसे साधनों में स्थिरता तनिक भी नहीं । यदि हो भी तो उतने भर से पेट पालना ही सम्भव है । मनुष्य पेट तक सीमित नहीं । उससे आगे भी उसमें बहुत कुछ है । इस 'बहुत कुछ' को विकसित करने के लिए प्रतिभा को विकासोन्मुख किया जाना चाहिए । कहना न होगा कि प्रतिभा सद्गुणों के समन्वय का ही नाम है । आत्मविश्वास को ही प्रतिभा के रूप में प्रकाशवान देखा जा सकता है । आत्मनिरीक्षण, आत्मसुधार, आत्मनिर्माण और आत्मविकास के चार पायों पर आत्मविश्वास अथवा आत्मबल का मचान खड़ा होता है । ऐंठ, अकड़, धूर्तता या उच्छृंखल दुस्साहस के ओछे तरीके अपनाने वाले उद्दण्ड व्यक्ति भी कई बार अपने को प्रतिभाशाली मानने लगते हैं, पर बात वैसी ही नहीं । धैर्य, साहस, संयम, सदाचार, व्यवस्था, कर्तव्यनिष्ठा जैसे सद्गुणों की मिली-जुली धारा ही प्रतिभा बनती है और उसी से मनुष्य प्रभावशाली बनता है । यही प्रभाव दूसरों पर अपनी छाप छोड़ता है और उसी के आधार पर प्रगति के पथ पर बढ़ चलने का पराक्रम उत्पन्न होता है ।

उत्तराधिकारियों को सम्पत्तिवान छोड़ कर मरना वस्तुतः उनके लिए स्नेह नहीं वरन् द्वेष भरा आचरण है । उससे उनकी उपार्जन प्रतिभा घटती है और उस प्रयास से सूझबूझ में तीक्ष्णता आने का अवसर नष्ट होता है । स्पष्ट है कि बिना परिश्रम के उपलब्ध हराम की कमाई का उपभोग करने वालों के पीछे आलस्य, प्रमाद जैसी जड़ता से लेकर व्यसन और अपव्यय जैसी अनेक दुष्प्रवृत्तियाँ पीछे

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पड़ती है । व्यक्तित्व जंग लगे निकम्मे लोहे की तरह दिन-दिन गलता चला जाता है । आराम से दिन काटना यों सौभाग्य समझा जाता है पर है वह परले सिरे का दुर्भाग्य । जिसमें संघर्ष न हो, जिसमें पराक्रम और पुरुषार्थ को प्रखर बनाने वाले अवरोध नहीं, भला उस जीवन में भी कोई रस हो सकता है ?

हमें अपने परिवार के प्रत्येक सदस्य को जीवन संग्राम में बढ़चढ़ कर हाथ दिखा सकने योग्य पराक्रमी योद्धा बनाना चाहिए । इस प्रकार की क्षमता कठिनाइयों से जूझने और स्वावलम्बी रीति-नीति अपनाने से ही विकसित हो सकती है । वस्तुत: यह प्रतिभा ही सबसे बड़ी उपलब्धि है । इसी के सहारे गई-गुजरी परिस्थितियों में उत्पन्न हुए व्यक्ति क्रमश: ऊँचे उठे और आगे बढ़े हैं । महामानवों के, प्रगतिशील लोगों के जीवनक्रम में यह तथ्य सर्वत्र उभरा पाया जायगा कि उन्हें संघर्ष में भारी रुचि रही है और परिस्थितियों से जमकर जूझने में उन्होंने प्रबल पुरुषार्थ का परिचय दिया है । दुस्साहस का ही दूसरा नाम उत्कर्ष है । जमीन का पेट चीरकर जब बीज अपनी हस्ती से खिलवाड़ करता हुआ अंकुर बनकर ऊपर उभरता है । तभी उसके वृक्ष बन सकने की सम्भावना मूर्तिवान होती है । विकासोन्मुख जीवन प्रक्रिया भी इसी प्रकार अंकुरित एवं विकसित होती रही है ।

सदाचरण की ही तरह प्रबल पुरुषार्थ में और करीने की सुन्दर सुव्यवस्थित जिन्दगी में भी समुचित निष्ठा होनी चाहिए तभी कोई व्यक्तित्व समर्थ और सुविकसित हो सकेगा । परिवार के प्रत्येक सदस्य की मन:स्थिति में इन्हीं सद्गुणों के बीज बोये जाने चाहिए । इसका सर्वोत्तम उपाय यही है कि उन गुणों से अपने को अभ्यस्त करें और आये दिन ऐसे उदाहरण प्रस्तुत करते रहें, जिनका अनुकरण करके घर के सभी सदस्यों को उसी मार्ग का अनुगमन उसी क्रिया का अनुकरण करने की इच्छा उत्पन्न होती रहे । हर सदस्य को उसकी स्थिति के अनुरूप कर्तव्य सोचने चाहिए और उत्तरदायित्व । उनके निर्वाह में जहाँ वे चूकते हों, लड़खड़ाते हों वहीं आगे बढ़कर उन्हें सहायता देनी चाहिए । यह कार्य बिना झिड़के बिना खीजे शान्त-चित्त और स्नेहासिक्त मन:स्थिति के किया जाय तभी सफल हो सकता है ।

विलासिता, आरामतलबी और फिजूलखर्ची की आदत घर में किसी को भी नहीं पड़ने देनी चाहिए । चुस्ती और स्फूर्ति स्वभाव का अंग बनती चली जाय । कठिनाइयों से जूझने की हिम्मत बढ़ती जाय तो समझना चाहिए कि उत्तराधिकारी को ऐसी सम्पदा मिल गई जिसके आधार पर वे प्रगतिशील जीवन जी सकेंगे । हँसने-हँसाने को हलके-फुलके रहने की, स्नेह-सद्भाव की, कठोर परिश्रम करने और व्यस्त रहने की आदत अपने घर के लोगों को देकर जो अभिभावक विदा हुए समझना चाहिए उन्होंने अपने पारिवारिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह सही रीति से कर दिया ।

परिवार का सुनियोजन, गठन, उत्कर्ष

परिवार गठन का लाभ और श्रेय तभी है जब उस परिकर में व्यावहारिक सुव्यवस्था और भावनात्मक सुसंस्कारिता की निरन्तर अभिवृद्धि होती चले । इन दिनों सब कुछ धन के आधार पर नापा और आँका जाता है, जिसके पास जितनी अधिक समृद्धि है वह उतना ही लोगों की आँखों में चमत्कार बनकर दीखता है, साथ ही सराहा भी जाता है । इसी कारण लोग अपने को अमीर, दिखाने को सुविधा-साधनों से लदा हुआ दीखने का प्रयत्न करते हैं, इस हेतु अधिक धन की आवश्यकता होती है । लोग उसी को सही-गलत तरीके से कमाने में लगे रहते हैं और उससे निजी प्रयोजन तथा परिवार के सुविधा-साधन बढ़ाने में लगे रहते हैं । समर्थों को अपनी सफलता इसी में दीख पड़ती है, पर वस्तुस्थिति ऐसी है नहीं । किसी परिवार की वास्तविक प्रतिष्ठा उसकी शालीनता और सुसंस्कारिता पर ही निर्भर है । यदि उसमें कमी पड़े तो समझना चाहिए कि बढ़ा हुआ वैभव और ठाठ-बाट उसका उपभोग करने वालों के लिए पतन-पराभव का कारण बनेगा ।

अमीरी प्रदर्शित करने वाला ठाठ-बाट क्रमश: अधिक बड़ी शान-शौकत माँगने लगता है, अधिक धन की आवश्यकता पड़ती है । ईमानदारी और परिश्रम से तो उस सीमा तक ही कमाया जा सकता है, जिसमें औसत नागरिक स्तर का निर्वाह हो सके । निजी वैभव जमाने के लिए तो बढ़-चढ़कर हाथ-पैर मारने पड़ते हैं और उसके लिए उचित-अनुचित का, न्याय-अन्याय का विचार छोड़ना पड़ता है । वैभव के पीछे प्राय: उपार्जन में नीतिमत्ता नाम-मात्र को भी जुड़ी नहीं रह पाती । कोई अधिक कमाने भी लगे तो उस बचत को सत्प्रवृत्ति के सम्वर्द्धन में लगाने की उत्कण्ठा भी नहीं रहती । ऐसी मन:स्थिति में विलास-वैभव के प्रदर्शन के लिए गुंजाइश ही नहीं रहती, यदि परिवार को ठाठ-बाट के आधार पर बड़ा बनाने की सोच रही हो तो उसमें मानवी गरिमा के अनुरूप शालीनता का निर्वाह न बन पड़ेगा और दिशा प्रवाह नैतिक दृष्टि से पतन-पराभव की दिशा में ही बह रहा होगा । यह स्थिति जहाँ भी बन रही होगी वहाँ दु:खदायी परिणाम ही उत्पन्न होंगे, परिवार परिकर में भी इस दुष्प्रवृत्ति को प्रश्रय नहीं मिलना चाहिए ।

परिवार क्षेत्र में पनपने वाली दुष्प्रवृत्तियाँ आरम्भ में छोटे क्षेत्र की छोटी घटनाएँ प्रतीत हो सकती हैं, पर वे पोषण प्राप्त करती रहने पर क्रमश: बढ़ती और फलती-फूलती रहती हैं, परिपक्व होने पर वे घर के हर सदस्य के स्वभाव का एक अंग बन जाती हैं और वह असामाजिक स्तर का बन जाता है, भले ही वह पद या वैभव कितने ही ऊँचे स्तर का प्राप्त क्यों न कर ले । मनुष्य का सर्वतोमुखी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विकास उसके स्वभाव में सुनियोजित की हुई सत्प्रवृत्तियों के आधार पर ही सम्भव होता है । इस तथ्य को समझ लेने के उपरान्त यह एक मार्ग सूझ पड़ता है कि गृह संचालकों का प्रमुख प्रयास इस केन्द्र पर केन्द्रित हो कि उस छोटी-सी परिधि में सत्प्रवृत्तियों को अधिकाधिक प्रश्रय मिले । सभ्यता और शिष्टता, सज्जनता से परिवार के हर सदस्य को अभ्यस्त बनाया जाय । सत्प्रवृत्तियाँ अनेक हैं, पर व्यावहारिक जीवन में पंचशीलों को ही प्रतिष्ठा प्राप्त है । श्रमशीलता, मितव्यता, शिष्टता, सुव्यवस्था और सहकारिता घर के क्रिया-कलापों में परिवार के सदस्यों में इन पंचशीलों का समावेश प्रत्यक्ष दीख पड़ना चाहिए । हर सदस्य को हर क्रिया-कलाप में इन सद्गुणों की प्रत्यक्ष झलक मिलनी भी चाहिए ।

भावना क्षेत्र के भी चार धर्म कर्तव्य हैं-समझदारी, ईमानदारी, बहादुरी, जिम्मेदारी । इन चारों को आदर्शवादी के साथ समन्वित किया जाता है, पंचशील और चार सत्य मिलाकर नौ होते हैं, इनको नवरत्नों की उपमा दी जा सकती है । सौरमण्डल नौ ग्रहों का समुच्चय है । गायत्री मन्त्र के नौ शब्दों में, यज्ञोपवीत की नौ लड़ों में इन्हीं आदर्शवादी अवधारणाओं का समावेश है । सत्प्रवृत्तियों के मणि-मुक्तकों से विनिर्मित इस नौ लाख मूल्य वाले हार के समतुल्य वैभव को उपलब्ध कराने का प्रयत्न करना चाहिए, यह सब कहते-सुनते रहने से ही नहीं बन पड़ता । अन्य साथी उन सत्प्रवृत्तियों को अपनाने लगें, इसके लिए यह आवश्यक है कि परिवार के वरिष्ठ सूत्र-संचालक अपनी निजी जीवन में इन्हें इस प्रकार समाविष्ट करें कि वे दूसरों को भी प्रत्यक्ष चरितार्थ होती हुई दीख पड़े । इतना बन पड़े तो समझना चाहिए कि सुसंस्कारिता प्रशिक्षण का आधा पथ पूरा हुआ, जो आधा और शेष बच जाता है, उसे एक आँख दुलार की, एक आँख सुधार की रखकर करें । साथियों को औचित्य अपनाने के लिए सहमत किया जाना चाहिए, सभी कलाकार उपलब्ध उपकरणों और साधनों का सही प्रयोग करके सृजन की बहुमूल्य कलाकृति बनाते हैं । यह निर्माण और सृजन कार्य परिवार परिकर में चलते रहना चाहिए, इस सन्दर्भ में आवश्यक अनुशासन बरते जाने की प्रथा-परम्परा हर परिवार में चलनी चाहिए और उसमें सहयोग देने के लिए सभी सदस्यों को मानस बनाने और सहयोग देने के लिए तत्पर किया जाना चाहिए । सहकारी संस्था के रूप में किसी परिवार को इसी आधार पर समुन्नत बनाया जा सकता है और उसके सदस्यों में से प्रत्येक को इसी आधार पर नररत्न बनने का सुयोग्य-सौभाग्य प्राप्त हो सकता है ।

व्यक्ति और समाज की भलाई इसी में है कि व्यवहार में सत्प्रवृत्तियों का अधिकाधिक समावेश हो और अवांछनीयता के उन्मूलन का प्रयास निरन्तर चलता रहे । यह दोनों कार्य परिवार क्षेत्र से आरम्भ करते हुए सभी साथियों की सेवा-साधना की जा सकती है । परिवार निर्माण के साथ व्यक्ति को भी अपने व्यक्तित्व को अधिकाधिक सुसंस्कृत बनाने का अवसर मिलता है, समाज की सेवा भी इसी से आरम्भ की जाय तो ठीक है । अपने परिवार के सदस्य यदि सद्गुणी बन सके तो उनके माध्यम से चलने वाली अगली वंश बेल भी उसी ढाँचे में ढलेगी । विकसित व्यक्तित्व का अपना प्रभाव क्षेत्र होता है । दुष्टता इसी प्रकार आतंक का वातावरण बनाती है, उसी प्रकार सज्जनता से भी एक सम्पर्क क्षेत्र प्रभावित होता है और उसकी सराहनीय चर्चा जहाँ तक पहुँचती है वैसी ही अनुकरण भावना पनपती जाती है । सुगन्ध और दुर्गन्ध दोनों ही अपने-अपने स्तर पर वातावरण को प्रभावित करती हैं । रावण-दुर्योधन आदि का समूचा परिवार एवं सम्पर्क क्षेत्र उसी प्रकार के अनाचार का पक्षधर बन गया था । सज्जनता में हरिश्चन्द्र, जनक आदि सम्पन्नों और ऋषि परिकर के लोकसेवियों वाले परिवार इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णिम अक्षरों से अंकित होते रहे हैं ।

अवांछनीयताओं का उन्मूलन भी लोकसेवा का एक महत्वपूर्ण पक्ष है । समाज के प्रचलन से व्यक्ति और परिवार प्रभावित होते हैं, पर साथ ही यह भी सच है कि मनस्वी प्रतिभाएँ किसी सत्प्रयोजन को स्वयं अपनाकर अपने प्रभाव क्षेत्र में सुधारवादी हलचलें उत्पन्न कर सकती हैं । कुप्रचलनों का विरोध करने के लिए यदि कहीं अन्यत्र मोर्चा लगाने की परिस्थितियाँ न हों तो उस कार्य को अपने प्रभाव क्षेत्र परिवार से तो आरम्भ किया ही जा सकता है । सेनापति का अनुशासन बटालियन के सैनिक मानते ही हैं, वैसी ही परिस्थितियाँ अपने अधिकार क्षेत्र में क्यों नहीं बनाई जा सकतीं ? असहयोग, विरोध और संघर्ष की प्रक्रिया बड़े न सही छोटे रूप में तो छोटे स्तर पर अपने घर में भी चल सकती है ।

प्रयोग-प्रशिक्षण, बीजारोपण-अभिवर्द्धन एवं सुधार परिष्कार के लिए परिवार से बढ़कर और कोई प्रयोगशाला नहीं हो सकती । शर्त एक ही है कि उसकी व्यवस्था सुनियोजित ढंग से की जाय । घुणाक्षर न्याय से, घुनकीड़ा बिना किसी योजना के किधर भी बढ़ता चलता है । संयोगवश उस क्रिया में किसी भाषा के कोई अक्षर भी बन जाते हैं, यह आकस्मिक संयोग भर है । योजनाबद्ध रूप से किया गया प्रयत्न नहीं । इसी प्रकार अधिकांश लोग गृहस्थी बसा लेते हैं, किसी परिवार के अंग बन जाते हैं, पर उसके पीछे कोई सुनियोजित योजना न होने से उसका स्वरूप और भविष्य किसी भी प्रकार का कुछ बन जाता है । सदस्यों में से कुछ भले निकलते हैं कुछ बुरे, कुछ कर्तव्य पालते हैं, कुछ बने को बिगाड़ते हैं । यह बिना सोची, बिना तैयारी की, बिना लक्ष्य की क्रिया-प्रतिक्रिया है । विचारशीलों को परिवार संस्था के साथ ऐसी उपेक्षा, ऐसी दिल्लगी नहीं करनी चाहिए ।

उद्यान लगाने वाले माली को पौधों की सिंचाई, निराई, गुड़ाई, बराबर करनी होती है । खरपतवार उखाड़ने, रखवाली में चौकस रहने की जागरूकता अपनानी पड़ती है । ठीक यही बात परिवार के सम्बन्ध में भी है, उसके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हर सदस्य की आदतों, अभिरुचि, योग्यता को ध्यान में रखते हुए उसे आगे बढ़ाने का सरंजाम जुटाना होता है । जो अवांछनीय है उसे सुधारने, बदलने, उखाड़ने के लिए दूरदर्शिता भरे साहस का परिचय देना होता है, प्रगति का यही मार्ग है ।

अवांछनीयताओं को समाज से हटाने के लिए बड़े प्रयास और साहस की आवश्यकता होती है, पर उस प्रयोजन को परिवार क्षेत्र में आसानी से सम्पन्न किया जा सकता है । आलस्य-प्रमाद में समय गँवाना, दुर्व्यसनों का शिकार होना, कुरीतियों को अपनाये रहना जैसी अवांछनीयताएँ समाज से प्रचलित पाई जाती हैं, उन्हें घटाने और हटाने का मन होता है, पर वह अपनी इच्छा शक्ति के अभाव में बन नहीं पड़ता । दूसरों से कहा भर जा सकता है, मानना, न मानना उनकी मर्जी पर निर्भर रहता है किन्तु यह कठिनाई उतनी अधिक मात्रा में परिवार क्षेत्र में नहीं होती । घर के बड़े-वरिष्ठों का व्यक्तिगत प्रभाव और दबाव न्यूनाधिक मात्रा में सभी सदस्यों पर होता है, वे समझाने या धमकाने से मानने भी लगते हैं । बताये हुए मार्ग पर चलने में बहुत आनाकानी नहीं करते । नशेबाजी, फैशनबाजी, आवारागर्दी, गन्दगी, हरामखोरी जैसी बुरी आदतों से बचाने के लिए हर सदस्य को उसकी मन:स्थिति के अनुरूप समझाने-बुझाने का प्रयत्न करना चाहिए । समाज की प्रचलित दुष्प्रवृत्तियाँ अपने परिवार को प्रभावित न करें, इसके लिए सभी में दूरदर्शी विवेकशीलता जगाने का प्रयत्न करना चाहिए ताकि वे अन्धपरम्परा न अपनाकर जो उचित है उसी को स्वीकार करने का मन बनायें । बाल-विवाह, कन्या विक्रय, वर विक्रय, मृतकभोज, भिक्षा व्यवसाय, पर्दाप्रथा, जातिगत ऊँच-नीच जैसी प्रथाएँ प्रचलित पाई जाती हैं । इनका अन्धानुकरण करने के लिए अपनों में से किसी का मानस नहीं बनने देना चाहिए । परिवार की सदस्य संख्या बढ़ने पर भी बिखराव उत्पन्न होता है और दरिद्रता-विग्रह जैसे अनेक कारण घुसपैठ करते हैं । औसत नागरिक स्तर से अधिक ऊँचा रहन-सहन बनाने, फिजूलखर्ची के लिए हाथ खुला रखने पर भी अनेकानेक बुराइयाँ उपजती हैं और शालीनता को डगमगा देने की स्थिति उत्पन्न करती हैं ।

परिजनों को स्वावलम्बी, सुसंस्कारी बनाना कर्तव्य समझा जाय । किसी को भी असभ्य, अनगढ़ और परावलम्बी न रहने दिया जाय । कायरता, कृपणता भी अभिशाप है, किसी को भी अनावश्यक रूप से दब्बू-संकोची नहीं रहने देना चाहिए । शिष्टता और नम्रता को सुस्थिर रखते हुए इतना साहस हर किसी में होना चाहिए कि अनौचित्य को मुखर होकर कहा जा सके । नीति-निष्ठा बनाये रखने के लिए यह एक उपयुक्त आवश्यकता है ।

हाथ के लिए काम को प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर उसे समग्र तत्परता और तन्मयता के साथ करना, जिम्मेदारी निभाना आना चाहिए । कौन कितना कर्तव्यपरायण है ? यह उसके क्रिया-कलाप के साथ जुड़े हुए कौशल को देखकर ही समझा जा सकता है, सम्मान और सन्तोष प्राप्त करने का यही तरीका है । ऊँचे उठाना, आगे बढ़ाना भी इन्हीं आधारों को अपनाने से सम्भव होता है । इन तथ्यों को उन सभी को तो समझाना-हृदयंगम कराया ही जाना चाहिए जो अपनों की परिधि में आते हैं । आदर्शों की परम्परा भी चलती है और वह वातावरण में सद्भावना भरने का प्रयोजन पूरा करती है ।

परिवार एक साधना-तपोवन

कौशल को निखारने के लिए कार्यक्षेत्र चाहिए । वैज्ञानिकों को प्रयोगशाला की, पहलवानों को व्यायामशाला की, डॉक्टरों को अस्पतालों की, अध्यापकों को पाठशाला की, शिल्पी को कारखाने की आवश्यकता पड़ती है । कौशल का अभ्यास और निखार इन्हीं कार्यक्षेत्रों में होता है । यदि यह साधन न हों तो एकाकी प्रयत्न में ही अपने पुरुषार्थ को प्रकट एवं विकसित कर सकना किसी के लिए भी सम्भव न होगा ।

साधना का उद्देश्य है आत्म-परिष्कार । इसी प्रयोजन के लिए अध्यात्म विज्ञान द्वारा प्रतिपादित विभिन्न योग साधनों का प्रयोग होता है । इसी के लिए धर्म-धारणा का, संस्कृति और तत्वज्ञान का विशाल काय-कलेवर खड़ा किया गया है । ईश्वर अनुग्रह से लेकर सिद्धि-चमत्कारों तक की अनेकानेक विभूतियाँ जिस आधार पर उपलब्ध होती हैं वह पात्रता है । पात्रता उत्कृष्टता एवं प्रखरता के आधार पर विनिर्मित होती हैं । उसी के लिए किये गये विभिन्न प्रयास साधना कहलाते हैं । साधना अर्थात् जीवन साधना । जीवन साधना अर्थात उत्कृष्ट-चिन्तन और आदर्श कर्तृत्व का स्वभाव-अभ्यास । भौतिक एवं आत्मिक सफलताएँ उसी प्रगति पर आधारित हैं भौतिक समृद्धि की तुलना में आत्मिक प्रगति को कहीं अधिक श्रेयस्कर माना गया है क्योंकि उससे अंतरंग समर्थता-बहिरंग सफलता एवं दैवी अनुकम्पा के तीनों ही प्रमुख प्रयोजन पूरे होते हैं । जबकि सम्पन्नता मात्र सुविधा साधन जुटाती है । साधना को परम पुरुषार्थ माना गया है ।

साधना-अध्यात्म साधना-जीवन साधना का अभ्यास कहाँ किया जाय इसके लिए दो स्थानों की आवश्यकता है एक पूजा कक्ष, दूसरा प्रयोग क्षेत्र । प्रयोग क्षेत्र की दृष्टि से परिवार ही सर्वसुलभ है । व्यायामशाला में जो सीखा है उसे दंगल में प्रयुक्त करना पड़ता है । स्कूलों में जो पढ़ा है वह दफ्तर में व्यवहृत होता है । मेडीकल कॉलेज की पढाई अस्पताल के मरीजों पर क्रियान्वित होती है । इसी प्रकार पूजा-प्रार्थना से अन्तरंग और स्वाध्याय सत्संग में बहिरंग सत्प्रेरणाएँ प्राप्त होती हैं उन्हें कार्यक्रम में परिणत करने और अभ्यास में उतारने की भी आवश्यकता है । अन्यथा व्यावहारिक प्रयोग के अभाव में योगाभ्यास और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अध्ययन चिन्तन निष्क्रिय पड़ा रहेगा । उस स्थिति में उपासना के बीजारोपण को खाद-पानी न मिलने से उसके सूखने और मुरझाने की ही आशंका बनी रहेगी ।

परिवार की प्रयोगशाला में अपने निज के तथा समस्त प्रियजनों के गुण, कर्म, स्वभाव परिष्कृत करने का अभ्यास क्रम आरम्भ किया जाय तो उससे दुहरा लाभ है । भौतिक भी और आध्यात्मिक भी । भौतिक इस अर्थ में कि कुटुम्ब परिवार के समस्त परिजनों को अपने व्यक्तित्व को सुविकसित करने के रूप में एक महान उपलब्धि का लाभ मिलता है । यह उपलब्धि इतनी बड़ी है कि उसे कुबेर की सम्पदा से भी बढ़कर माना जा सकता है । स्तर बढ़ने का अनुदान ऐसा है जिससे समस्त परिजनों के उज्ज्वल भविष्य का आधार खड़ा होता है । उस परिष्कृत वातावरण में रहने वाले सभी लोग सामान्य परिस्थितियाँ रहने पर भी असामान्य प्रसन्नता अनुभव करते हैं और हँसते-हँसाते प्रगति के उच्च शिखर तक जा पहुँचते हैं ।

तपोवनों में घर बनाने की अपेक्षा घरों को तपोवन बनाया जाय । सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्द्धन की साधना जितना सरलतापूर्वक घर परिवार में हो सकती है उतनी अन्यत्र नहीं । पारिवारिकता का अधिकाधिक विस्तार किया जाय । समस्त मनुष्यों को उसके पवित्र सूत्र में बाँधा जाय तो उस प्रयत्न को उच्चस्तरीय परमार्थ ही कहा जायगा ।

अपने परिवार को आदर्श बनायें

बाड़े में बन्द भेड़ों की तरह एक घर में रहने वाले मनुष्यों के समूह को परिवार कह भले ही लिया जाये पर उनसे प्रयोजन की पूर्ति नहीं होती जो परिवार संस्था के साथ जुड़ा हुआ है । एक-दूसरे को स्नेह, सहकार प्रदान करते हुए, उदारता एवं कृतज्ञता का रसास्वादन करते हुए संयुक्त समाज की संरचना में अपनी-अपनी जिम्मेदारी निवाहें तभी परिवार-एक छोटे किन्तु सुव्यवस्थित राष्ट्र की भूमिका सम्पादित कर सकते हैं और उसका प्रत्येक सदस्य लाभान्वित हो सकता है ।

परिवार की प्रारम्भिक आवश्यकता तो रोटी, कपड़े और मकान की होती है । इसके बाद शिक्षा, चिकित्सा, आतिथ्य, रीति-रिवाजों के निर्वाह और आपत्तिकालीन स्थिति का सामना कर सकने वाली सामर्थ्य भी रखनी होती है । यह कार्य उपार्जन और खर्च का संतुलन बनाये रहने पर सम्भव हो सकता है । यदि जीवनयापन के लिए आवश्यक सामान्य ज्ञान और लोकव्यवहार का अनुभव हो तो मनुष्य पैसे की तंगी में न रहेगा और खर्च की सुविधा से सम्बन्धित घर परिवार की मोटी आवश्यकताएँ बिना बहुत बड़ी अड़चनों का सामना किये पूरी होती रहेंगी । कम आमदनी हो तो खर्च घटाया जा सकता है । एक उपार्जनकर्ता पर निर्भर न रहकर घर के दूसरे लोग भी थोड़ी-थोड़ी आमदनी के छोटे-मोटे गृह उद्योग अपनाकर अर्थ संतुलन में सहायक हो सकते हैं । मनुष्य को जितनी बुद्धि मिली है और कलाइयों मे जो क्षमता है वह इसके लिए पर्याप्त है कि किसी सामान्य परिवार का गुजारा किसी प्रकार हँसी-खुशी के साथ होता चला जाय ।

कठिनाई तब आती है जब परिवार के सदस्यों में स्नेह-सौजन्य का-सद्भाव सहयोग का अभाव रहता है । एक दूसरे में रुचि नहीं लेते अपने-अपने मतलब में चौकस रहते हैं, अनुशासन नहीं मानते और परस्पर मनोमालिन्य रखकर समय कुसमय लड़ते-झगड़ते रहते हैं । जहाँ यह स्थिति होगी वहाँ अर्थ साधन रहते हुए भी परिवार एक ऐसे कैदखाने की स्थिति में होगा जहाँ विवशतापूर्वक समय काटना पड़ता है । ऐसी स्थिति में परिवारों में न घनिष्टता रहती है न आत्मीयता । ऐसी निरानद स्थिति में दिन तो कटते रहते हैं, पर वह उपलब्धियाँ जो इस पवित्र संस्था के सदस्यों को मिल सकती थी, प्राय: नहीं ही मिल पातीं । आज के अधिकाँश परिवारों की स्थिति ऐसी ही दुर्भाग्यपूर्ण बनी हुई है ।

परिवार के हर सदस्य को समझना-समझाया जाना चाहिए कि कुटुम्ब एक पूरा शरीर है । जिसमें सभी को एक संस्था की तरह रहना होता है और अपनी स्थिति वही माननी होती है, जो शरीर में विभिन्न अंग अवयवों की है । हाथ-पाँव आदि का अस्तित्व देखने में तो अलग है पर वे पूरी तरह शरीर के साथ जुड़े हुए हैं और उनके परिश्रम का लाभ पूरे शरीर को मिलता है । यों प्रकारान्तर से अन्य अवयवों के उपार्जन का लाभ उन्हें भी मिलता है । इस प्रकार कोई घाटे में नहीं रहता वरन् दूसरे की विशेषताओं का लाभ पाकर वह उपलब्धि प्राप्त करता है, जो एकाकी रहने पर किसी भी प्रकार सम्भव नहीं हो सकती थीं ।

इस दृष्टि से छोटे-छोटे परिवारों की अपेक्षा बड़े परिवार बनाने की संयुक्त परिवार प्रथा लाभप्रद है । किन्तु उनकी उपयोगिता इसी शर्त पर है कि उसमें परस्पर सघन सद्भाव और परिपूर्ण सहयोग का वातावरण हो । यदि द्वेष-दुर्भाव की अवज्ञा और उपेक्षा की, आपाधापी की दुष्प्रवृत्तियाँ पनप रही हों तो घर को नरक बनाने की अपेक्षा यही अच्छा है कि लोग अपना-अपना परिवार लेकर अलग हो जायें । इससे दिन-रात का कलह, आक्षेप आरोप होने का सिलसिला तो बंद हो ही जायेगा । सद्भाव की स्थिति में संयुक्त परिवार का लाभ है और दुर्भाव पनपने की स्थिति में उसका बिखर जाना ही श्रेयस्कर है । बड़े-बूढ़ों को एक पक्ष का अनावश्यक आग्रह नहीं करना चाहिए और स्थिति के अनुरूप संयुक्त परिवार को बनाये रखने की तरह ही उसे शान्ति सद्भावपूर्वक अलग करने में भी सहायता करनी चाहिए ।

परिवार संस्था की सफलता उसकी भावनात्मक स्थिति और आदर्शवादी आचार संहिता पर टिकी हुई है । जब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तक ये आधार बने रहेंगे तब तक अभावग्रस्त घर परिवारों की भी स्थिति ऐसी सुखद बनी रहेगी जिन पर स्वर्ग न्यौछावर किया जा सके । शरीर की भूख रोटी, कपड़ा और मकान, अन्न, जल एवं हवा तक ही सीमित है, पर आत्मा की भूख स्नेह, सम्मान और सहयोग की परिस्थितियाँ मिलने पर ही बुझती है । हमारा प्रयत्न यह होना चाहिए कि यह तीनों ही अपने परिवार में समुचित मात्रा में विद्यमान बनी रहे । परिवार के छोटे, बड़े और बराबर वालों के बीच ऐसा सघन सम्बन्ध जुड़ा रहे जिससे प्रत्येक-प्रत्येक का सम्मान करें महत्व समझें, एक दूसरे के दुःख-सुख को सफलता-असफलता को अपना समझें ।

बड़े छोटों का अधिक ध्यान रखें तो वे बिगड़ने न पायेंगे । घर में स्वस्थ परम्पराएँ डाली जायें । हर कोई श्रमनिष्ठ बने । बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सभी परिश्रमरत रहे । समय कोई बर्बाद न करे । बड़ों का सम्मान छोटों को करना चाहिए, पर बड़ों को निठल्ले बैठे रहना और बात-बात पर हुक्म चलाकर छोटों का समय नष्ट करते रहना अपना अधिकार नहीं मान लेना चाहिए । छोटों का कर्तव्य है कि बड़ों का सम्मान करें पर बड़ों को भी इस दृष्टि से अपने पीछे नहीं आगे ही रखना चाहिए । समान आयु वाले एक दूसरे को घनिष्ठ मित्र समझें और उनके दुःख दर्द में पूरी सहानुभूति रखें तथा एक दूसरे को आगे बढ़ाने में समुचित सहयोग प्रदान करें ।

बड़ों को संतुष्ट रखने के लिए उनका सम्मान करना, शिष्टाचार बरतना, आदरणीय संबोधन करना, नित्य प्रणाम करना, उनके शारीरिक कामों में सहयोग देना, कोई नया काम करते समय उनका आशीर्वाद लेना, उनकी सुविधाओं का ध्यान रखना छोटों का कर्तव्य है । पर कई बार उनके विचार अनुपयुक्त, असामयिक एवं अवास्तविक होते हैं । ऐसे आदेश थोपते हैं जो मानने योग्य नहीं होते । कई बार वे घूँघट, छुआछूत, दहेज धूमधाम में अपव्यय जैसी विकृत परम्पराओं से चिपटें रहने का आग्रह करने लगते हैं । कई बार समाज-सेवा जैसे श्रेष्ठ कार्यों में अड़ंगा डालते हैं तथा स्वार्थवश केवल अपने काम से काम की सीख देने लगते हैं । इसलिए उचित-अनुचित की बात विवेक की कसौटी पर परखने के बाद ही किसी आज्ञा का पालन करना चाहिए । अनुचित आज्ञा की उपेक्षा की जा सकती है । हाँ उस अवज्ञा में भी नम्रता बनाये रखनी चाहिये । उत्तेजित होने से तो ऐसे प्रसंगों पर भी बचा जा सकता है ।

एक-दूसरे का सहयोग करना परिवार की स्वस्थ परम्परा होनी चाहिए । हारी बीमारी में सब सबकी पूछताछ करें और देखभाल चिकित्सा, परिचर्या, सहानुभूति व्यक्त करने के लिए तत्परता बरतें । बड़े बच्चे छोटों को पढ़ाया करें । बड़े-बूढ़े फालतू न बैठे वरन् छोटों को कहानियाँ सुनाने से लेकर उन्हें टहलाने, हँसाने, खेल-खिलाने, गृह-उद्योग सिखाने, प्रश्नोत्तर से ज्ञानवृद्धि करने तथा अपनी सामर्थ्य के अनुसार पारिवारिक कार्यों में हाथ बटाने के लिए तत्पर रहें । निरर्थक समय गँवाते रहने की सुविधा को प्रतिष्ठा का प्रश्न न बनायें । मिल-जुलकर काम करने की परम्परा पड़े । भोजन बनाने, सफाई रखने जैसे कार्यों का बोझ एक पर न डालकर उसमें अन्य लोग भी सहकार करें तो उनकी मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया बहुत ही अच्छी होगी ।

इन सिद्धान्तों के अनुरूप हमें अपने व्यक्तित्व ढालने चाहिए और परिवार में तदनुरूप परम्पराएँ प्रचलित करनी चाहिए । ऐसे ही वातावरण में पल कर बच्चे सुसंस्कारी बनते हैं । अगली पीढ़ी को यदि उच्च शिक्षा दिला सकने की, उनके लिए सम्पत्ति छोड़ मरने की अपनी स्थिति न हो तो हर्ज नहीं, यदि उसे सद्गुणी सुसंस्कारी बना दिया गया है तो निश्चित रहना चाहिए कि वे हर परिस्थिति में सुखी रह सकेंगे ।

परिवार निर्माण का महान प्रयोजन पूरा करने में जितनी सफलता प्राप्त की जा सके उसे समूची मानव जाति की सेवा मानना चाहिए । अपना परिवार भी तो राष्ट्र की ही एक महत्वपूर्ण इकाई है । मिशन के सभ्यों, सदस्यों और सदस्याओं को मिल जुलकर अपने को अपने परिवार को परिष्कृत करने के महान् प्रयोजन में संलग्न होना चाहिए । इस दिशा में किये गये प्रयत्न मिशन की उपयोगिता प्रमाणित करने के अति महत्वपूर्ण आधार सिद्ध होंगे ।

हमारी पारिवारिक पाठशाला

परिवार-शिक्षण की दृष्टि से घर के बड़े यह परम्परा आरम्भ कर सकते हैं कि दिन भर की काम-काजी, बात-चीत में समय-समय पर हलके-फुलके ढंग से यह परामर्श देते रहें कि इस कार्य को किस तरह अधिक अच्छी तरह किया जा सकता है इसमें सिद्धान्त और व्यवहार दोनों का जिक्र किया जाय । लड़की यदि आँगन में बुहारी लगा रही है और वह उस कार्य को ठीक तरह कर नहीं पा रही है तो उसे अच्छी तरह सफाई करके दिखानी चाहिए और बताया जाना चाहिए कि भूल कहाँ होती है और उसे दूर करके अच्छी सफाई करने का सिद्धान्त और तरीका क्या है ? इसी प्रकार बच्चों द्वारा किये जाने वाले कामों को किस प्रकार अधिक सुन्दर ढंग से किया जा सकता है, बड़ों को इसका मार्गदर्शन व्यावहारिक और सैद्धान्तिक दोनों ही रीति से करते रहना चाहिए, कार्यों की तरह ही विचार भी प्रकट होते रहते हैं । इस ओर भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि कौन किस सम्बन्ध में क्या सोचता है और उसके सोचने में कितना औचित्य तथा कितना अनौचित्य मिला हुआ है ? परामर्श इस सम्बन्ध में भी दिया जाना चाहिए ।

इस सन्दर्भ में एक विशेष बात ध्यान में रखनी चाहिए कि सुधार का परामर्श देना बहुत ही टेढ़ी खीर है । इसमें दूसरे को अपना अपमान अनुभव हो सकता है, उसके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वाभिमान को ठेस लग सकती है । आमतौर से यह सहन नहीं होता । गलती बताने वाले को निन्दक, विद्वेषी, सनकी आदि कहा जाता है और किसी भी उलटे-सीधे तर्क का सहारा लेकर उस परामर्श की काट की जाती है । अशिष्ट लोग मुँहजोरी करने लगते हैं और शिष्ट मुँह से तो कुछ नहीं कहते, पर व्यवहार में उपेक्षा एवं अवज्ञा बरतकर अपना विरोध प्रकट करते हैं । दोनों ही परिस्थितियों में बात एक ही सिद्ध होती है कि परामर्शदाता के मार्गदर्शन को अस्वीकार कर दिया गया ।

ऐसे प्रसंगों में खीजने और बुरा मानने की अपेक्षा यह देखना चाहिए कि सत्परामर्श और उपयोगी शिक्षण की भी अवज्ञा क्यों हो रही है ? होता यह है कि परामर्श के साथ-साथ भर्त्सना, कटुता, तिरस्कार एवं मूर्ख अनाड़ी सिद्ध करने वाली भावभंगिमा तथा शब्दावली का पुट लग जाता है और सुनने वाले को उतना अंश ही तिलमिला देता है । एक गिलास दूध में एक मक्खी पड़ जाने से सारा दूध अपेय बन जाता है । ठीक इसी प्रकार सत्परामर्श के साथ तिरस्कार, अपमान, कटु शब्दों का समावेश कर दिया जाय-अपना अहंकार और दूसरों को मूर्ख ठहराया जाय तो इतने भर से सारी बात बिगड़ जाती है और गुड़ को गोबर में बदलते देर नहीं लगती ।

परामर्शदाता की भूमिका निभाने से पूर्व वाणी की यह कलाकारिता सीखी जानी चाहिए कि किस तरह दूसरे के सम्मान-स्वाभिमान की रक्षा करते हुए उसे खिजाने नहीं, प्रोत्साहित करने के ढंग से अभीष्ट शिक्षा किस प्रकार दी जा सकती है । जो किया जा रहा है, उसमें जितना श्रम हुआ है, जितना उत्साह दिखाया गया है उतने अंश की पहले प्रशंसा की जानी चाहिए, इसके बाद जो कमी रही है उसकी भूल का उल्लेख न करते हुए यह बताया जाना चाहिए कि उस कार्य को और भी अधिक कुशलता, सुन्दरता एवं सफलता के साथ किंस प्रकार किया जा सकता है ? खण्डनपरक चर्चा हर प्रसंग में हानिकारक होती है । समीक्षा करना टेढ़ी खीर है । उसे कोई विरले ही गले उतार पाते हैं और कोई विरले ही सन्तुलित ढंग से उसे कर पाते हैं । आमतौर से समीक्षा, कटुता एवं मनोमालिन्य का रूप धारण कर लेती है । इससे दुःखी होकर यह सोचा जाने लगता है कि-"बुरा जमाना आ गया, लोग ढीठ हो गये, सत्परामर्श सुनने को कोई तैयार नहीं-ऐसी दशा में आँखों पर पट्टी और मुँह पर ताला लगाये रहना ही उचित है ।"

यहाँ समझने की बात इतनी ही है कि कड़वी कुनैन खाने के लिए प्रौढ़ और दूरदर्शी व्यक्ति ही तैयार हो सकते हैं, बच्चे उसे खाने को रजामन्द नहीं होंगे । खाने के लिए जोर दिया जाय तो वे उसे फेंक-फाँक देंगे और खाने का बहाना बना देंगे । उन्हें खिलाना हो तो चीनी का परत चढ़ाकर गले उतारने की व्यवस्था बना सकते हैं । हमें यही मानकर चलना चाहिए कि भर्त्सना भरा परामर्श किसी को भी स्वीकार नहीं हो सकता । ऐसी समीक्षा से किसी को सहमत करना कठिन है जिसमें उसकी मूर्खता सिद्ध की गई हो ।

समीक्षा किये बिना परामर्श दिये बिना, सुधार सम्भव नहीं । अपने आप अपनी गलती ढूँढ़ लेने और सुधार लेने वाले तो सन्त होते हैं, सामान्य मनुष्य नहीं उन्हें सँभालने, सुधारने और दिशा देने की आवश्यकता रहेगी ही । इसलिए मध्यवर्ती-सन्तुलित मार्ग निकालना चाहिए और प्रशंसायुक्त निन्दा करने की कला सीखनी चाहिए । जिसे परामर्श दिया जा रहा है उसे अपने और उसके बीच घनिष्ट आत्मीयता और गहरी सद्भावना का विश्वास भी दिलाते रहना चाहिए । समीक्षक के प्रति निन्दक और द्वेषी होने की आशंका जगती है अस्तु, उसे निरस्त करने के लिए परामर्श देने से पूर्व अपनी सद्भावसम्पन्न घनिष्टता का विश्वास किसी न किसी रूप में अवश्य ही स्मरण करा देना चाहिए । हर काम में कुछ न कुछ श्रम और मनोयोग लगा ही होता है, उतने ही प्रशंसा किये बिना समीक्षा की शुरूआत कभी नहीं करनी चाहिए । जो गलती रही है उससे होने वाली हानि को प्रधानता न देकर उस कल्पना चित्र से रंग भरना चाहिए जो सुधार होने पर सुखद सम्भावना सामने आने की आशा जगाता है । वर्तमान भूल से होने वाली हानि की चर्चा परामर्श के अन्त में और हलके ढंग से करनी चाहिए ताकि उसे अभीष्ट जानकारी मिलने और सँभलने की सतर्कता तो जग जाय, पर यह अनुभव न हो कि उसे तिरस्कृत किया जा रहा है । जिन परिस्थितियों में भूल होती रही है, उन दोषी परिस्थितियों को बता देने से भी काम बन जाता है । परामर्शदाता का उद्देश्य निन्दा करना या जी दुःखाना तो होता नहीं, वह सुधार ही तो चाहता है । इस प्रयोजन के लिए व्यक्ति की निन्दा करने की अपेक्षा परिस्थितियों का दोष कह देने से भी काम चल सकता है । इसमें मान-अपमान का झंझट भी नहीं रहता, साथ ही परोक्ष रूप से असावधानी की भर्त्सना भी हो जाती है । मन्तव्य इतने भर से हल हो सकता है ।

जिन्हें अपना घर-परिवार सँभालना हो उन्हें सभी सदस्यों को पग-पग पर तो नहीं, पर अवसर देखकर भूलों के लिये टोकने और अधिक अच्छा करने का उपाय बताने की प्रक्रिया अनवरत रूप से जारी रखनी चाहिए । व्यक्ति एवं परिवार की तरह यही रीति-नीति समाज सुधार के क्षेत्र में भी प्रयुक्त होनी चाहिए और प्रत्येक शुभाकांक्षी को सत्परामर्श देने का प्रयास निरन्तर जारी रखना चाहिए । यह प्रयत्न किस चट्टान से टकराकर टूटते हैं ? जो इसे जान लेगा वह सामने वाले के सम्मान, अपमान का सम्वेदनाओं का समुचित ध्यान रखे रहेगा । फलतः उसका तीर ठीक निशाने पर बैठता रहेगा और यह शिकायत करने का कोई कारण न रहेगा कि लोग सत्परामर्श भी सुनने-मानने को तैयार नहीं हैं ।

प्रत्येक विकासोन्मुख परिवार को अपने यहाँ परामर्श गोष्ठी का नियमित रूप से प्रचलन आरम्भ कर देना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चाहिए । इसे ज्ञान-चर्चा नाम दिया जाय । इसके लिये रात्रि को भोजन से निवृत्त होने के पश्चात् अवकाश वाला समय अधिक उपयुक्त रहता है । इस प्रचलन की जहाँ उपयोगिता समझी जाय वहाँ भोजन जल्दी बनने और जल्दी खाने की परम्परा डाली जानी चाहिए अन्यथा देर तक यही झंझट चलता रहा तो गोष्ठी में सम्मिलित होने का अवकाश ही न रह जायेगा, बच्चे तो तब तक सो ही जायेंगे ।

गोष्ठी में कथा, कहानियाँ सुनाने की प्रक्रिया चले बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सभी नर-नारी कथा-प्रसंगों को बड़े चाव के साथ सुनते हैं । बच्चों के लिए तो प्रायः कथा साहित्य ही छपता है । बड़ों के लिए पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं में कहानियों की ही भरमार रहती है । प्रेसों में प्रायः आधी छपाई कथा साहित्य की होती है । इस रुचि का उपयोग धर्म क्षेत्र में भी चिरकाल से होता आया है । संस्कृत में पुराण, उपपुराण, काव्य, नाटक, ग्रन्थों का विस्तार अन्य विषयों पर लिखे गये समस्त साहित्य की तुलना में भी अधिक है । रामायण, भागवत आदि कथा ग्रन्थ धर्म क्षेत्र में भक्ति-भावना के साथ पढ़े-सुने जाते हैं और इसका पुण्य-माहात्म्य बताया जाता है । यह सब कथा श्रवण के प्रति मनुष्य की सहज रुचि का परिचायक है ।

घरों में चुनी हुई-धार्मिक, सामाजिक, नैतिक एवं आदर्शवादी दिशा देने वाली प्रेरणाप्रद कथाएँ इस ज्ञान गोष्ठी में सुनाई जानी चाहिए । यदि पुराणों को महत्व देना हो तो एक सिरे से उनका वाचन अन्धाधुन्ध नहीं होना चाहिए । उनमें से उपयोगी अंश ढूँढ़े और उभारे जाने चाहिए । इन ग्रन्थों में ऐसी चर्चाएँ भी कम नहीं जो आज की स्थिति में न केवल निरर्थक हैं वरन् कई बार तो अनर्थ का भी समर्थन करती हैं । अस्तु, यह नितान्त आवश्यक है कि पुराण, ग्रन्थों को पहले स्वयं पढ़ लिया जाय और उसमें से केवल उपयुक्त शिक्षा देने वाले प्रसंगों को छाँटकर ही सुनाया जाय ।

इतिहास में ऐसे प्रेरक घटना-क्रम असंख्य हैं जो मानव जीवन के विविध पक्षों पर प्रकाश डालते हैं और अवांछनीयताओं की हानि तथा सन्मार्ग पर चलने के लाभ सिद्ध करते हैं । ऐसे कथा-प्रसंगों पर अनेक प्रेरणाप्रद पुस्तकें बाजार में, पुस्तकालयों में मिल सकती हैं । कल्पित कहानियों एवं उपन्यासों की भी कमी नहीं है । अपनी 'युग निर्माण' मासिक पत्रिका इसी प्रकार की पाठ्य सामग्री से भरी रहती है ।

ज्ञान-चर्चा गोष्ठी में इसी प्रकार का कथा साहित्य सुनाया जाया करे । इसमें सम्मिलित होने के लिए न आग्रह करना पड़ेगा और न समझाने, दबाव डालने की आवश्यकता पड़ेगी । बाल-वृद्ध, नर-नारी सभी उसमें उपस्थित होने के लिए स्वयं ही उत्सुक रहेंगे और कोई यह अनुभव न करेगा कि यह उपदेश प्रवचन का रूखा विषय है और उसे सुधारने, सँभालने के लिए ही सारा सरंजाम खड़ा किया गया है । परोक्ष शिक्षा जितनी सफल होती है उतनी प्रत्यक्ष निर्देश की शैली नहीं । कथा प्रसंगों का यह उपक्रम वस्तुतः परिवार के लोगों की मनोभूमि एवं चिन्तन दिशा परिष्कृत करने के लिए बहुत सरल, सरस और सफल माध्यम है । इसे हर परिवार में आरम्भ किया जाना चाहिए ।

'नानी की कहानी' वाली बात अभी भी मुहावरों में आती है । दादी या नानी के जिम्मे एक काम यह भी होता था कि वे बच्चों को कहानियाँ सुनायें । बच्चे उन्हें घेर कर बैठ जाते थे और वे बड़ी हँसी-खुशी के वातावरण में शिक्षा और मनोरंजन का समन्वय करते हुए कहानियाँ कहती थीं । न केवल बालक वरन् पूरा परिवार उन्हें चावपूर्वक सुनता था । चौपालों पर भी बड़े-बूढ़े सिंहासन बत्तीसी, वेताल पच्चीसी, वीरबल विनोद, आल्हाखंड एवं कथा-पुराणों के प्रसंग सुनाते थे और उन्हें सुनने के लिए बड़ी संख्या में छोटे-बड़े उपस्थित होते थे । अब मनोरंजन के दूसरे साधन बन गये-व्यस्तता बढ़ गई और आलस छा गया-ऐसी दशा में वह कहानियों वाला प्रचलन भी बन्द हो गया । रामायण की कथा रात्रि को मुहल्ले-मुहल्ले में होती थी और उसे सुनने के लिए उस क्षेत्र के बहुत लोग इकट्ठे होते थे । इस प्रचलन से ज्ञानवृद्धि और मनोरंजन का दुहरा लाभ है । यह दोनों ही ऐसे हैं जिन्हें निरर्थक नहीं कहा जा सकता । सामूहिकता की प्रवृत्ति घटने और वैयक्तिकता बढ़ने से इस दिशा में शिथिलता बढ़ती जाती है । वह चिन्ता की बात है ।

इसी प्रचलन को अब नये सिरे से हमारे घरों में आरम्भ किया जाना चाहिए । पुराने लोग पुस्तकों के तथा शिक्षा के अभाव में कहानियाँ जवानी याद रखते थे । अब वैसी आवश्यकता नहीं रहीं । इस उद्देश्य को पूरा कर सकने वाली ढेरों पुस्तकें बाजार में उपलब्ध हैं । मुहल्ले का पुस्तकालय इस आवश्यकता की पूर्ति कर सकता है । हर घर में नई-नई पुस्तकें खरीदते रहना तो कठिन पड़ेगा, पर एक मुहल्ले में एक छोटा पुस्तकालय इस प्रयोजन के लिए लाभदायक हो सकता है और उससे अदल-बदलकर प्रत्येक परिवार पुस्तकें प्राप्त करने, सुनाने, वापस करने का सिलसिला चला सकता है । एक ही जगह खरीदी हुई पुस्तकों से पूरे मुहल्ले का काम चल सकता है ।

घर का कोई उत्साही सदस्य इस कार्य को अपने कन्धे पर ले सकता है । बदल-बदल कर कई व्यक्ति भी इसे पूरा करते रह सकते हैं । कहने-वाले को वक्तृत्व कला का अभ्यास होगा और मनोरंजन की एक उत्साहर्द्धक परिपाटी चल पड़ेगी । अपने कहानी कहने वालों की एक विशेष पद्धति यह होनी चाहिए कि कहानी के हर मोड़ पर एक छोटी समीक्षात्मक विवेचनात्मक टिप्पणी अपनी ओर से लगाते चलें । जिससे उसी में से कितने ही प्रकार के निष्कर्ष निकलते रहें और नई-नई दिशाओं, प्रेरणाओं तथा भाव सम्वेदनाओं का लाभ मिलता रहे । यह शैली मासिक 'युग निर्माण योजना' द्वारा भली प्रकार सीखी जा सकती है । कितने ही छोटे-छोटे जीवन चरित्र तथा कुछ और भी पुस्तकें इस प्रयोजन के लिए छपी हैं । उनकी लेखन शैली

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यही है कि ऐतिहासिक प्रसंगों एवं जीवन वृतान्तों को टिप्पणी समेत प्रस्तुत किया जाय । हर व्यक्ति निष्कर्ष नहीं निकाल सकता । कथाओं में हर मोड़ पर कुछ समझने योग्य तथ्य दिये होते हैं इन्हें उभारा जा सके तो उससे सुनने वालों की अन्तःचेतना नई-नई अनुभूतियों से लाभान्वित होती रह सकती है । परिवार शिक्षण का यह बहुत ही अच्छा तरीका है । जिन सत्प्रवृत्तियों को घर के लोगों में उगाया, जगाया जाना आवश्यक है उनके लिये सीधा उपदेश देने की अपेक्षा कथा माध्यम से परोक्ष रूप में गले उतारना अधिक श्रेयस्कर है । सीधी शिक्षाएँ रोज-रोज नहीं दी जा सकतीं । इससे ऊबने और खीजने लगने का खतरा है, पर कथा माध्यम से, तो हर दिन उसी तथ्य को पुष्ट किया जाता रहे तो भी हर्ज नहीं । उन्हें हर दिन उत्साह और चाव के साथ सुना जा सकता है ।

अपने परिवार में जिन वृत्तियों की कमी दिखाई पड़ती है जिन्हें बढ़ाया जाना आवश्यक है । उसी स्तर की कहानियों का चुनाव करते रहने से कहने की शैली निखारते रहने से परिवार शिक्षण का काम भली प्रकार चलता रह सकता है ।

सप्ताह में एक बार या अवसर के अनुरूप घर की छोटी बड़ी समस्याओं पर परस्पर विचार-विनिमय करते रहने के लिये भी यही कथा अवसर बहुत उपयुक्त है । घर की व्यवस्था एवं प्रगति के सम्बन्ध में हर व्यक्ति को कुछ सोचने और कुछ करने का अवसर मिले तो इससे उपेक्षा और अन्यमनस्कता की स्थिति दूर होगी । परिवार के विकास में इस प्रकार दिलचस्पी जग सकती है और उसका वास्तविक लाभ कुछ ही दिनों में सामने खड़ा दिखाई दे सकता है ।

आवश्यक नहीं कि कोई बहुत बड़ी समस्याएँ सामने आने पर ही यह परामर्श विचार-विमर्श किया जाय । कल क्या साग-दाल बननी चाहिए-परसों का त्यौहार किस तरह मनाया जाना चाहिए ? जैसी छोटी-छोटी बातें भी परामर्श का विषय हो सकती हैं और अर्थ व्यवस्था, सुसज्जा, शिक्षा, सुधार जैसे समस्या प्रसंगों की जानकारी घर के सभी लोगों को देकर उन्हें पूछा, बताया तथा कुछ सोचने एवं करने के लिए उत्साहित किया जा सकता है । परिवार में हमारा भी कुछ उत्तरदायित्व एवं योगदान है, यह अनुभव घर के सभी सदस्य करने लगें तो उस रुझान एवं सहयोग से परिवार निर्माण का उत्साहवर्द्धक पथ-प्रशस्त हो सकता है ।

आवश्यक नहीं, कि हर दिन कहानियाँ ही सुनाई जायँ । समाचार पत्रों की महत्वपूर्ण घटनाएँ, भजन कीर्तन, रामायण कथा, पहेलियाँ, प्रश्नोत्तर जैसे कई आधार समय-समय पर बदले जाते रह सकते हैं । जिस घर में इन माध्यमों में से जो अधिक पसन्द किया जाय, वहाँ उसकी प्रधानता रखी जा सकती है ।

विचार परिष्कार की, दृष्टिकोण विकसित करने की, आदर्शवादी उमंगें उत्पन्न करने की दृष्टि से रात्रि को कहानियाँ कहने का प्रचलन देखने में छोटा किन्तु परिणाम में बहुत ही बड़ा सिद्ध हो सकता है । इस अति प्राचीन किन्तु अति नवीन परम्परा को पुनर्जीवित करने के लिए हमें नये सिरे से प्रयत्न आरम्भ करना चाहिए । परिवार निर्माण में जहाँ भी रुचि हो वहाँ यह नया प्रयोग-परीक्षण आरम्भ किया जाना चाहिए और निज के अनुभव से यह देखना चाहिए कि यह छोटा-सा शुभारम्भ कितना बड़ा-चढ़ा सत्परिणाम प्रस्तुत करता है ।

परिवारों को प्रगतिशील बनाने के आधार

वार्तालाप में बड़ी शक्ति है, यह तथ्य सही होने पर भी यह समझ रखने की आवश्यकता है कि वह गहराई तक प्रवेश नहीं कर पाता । ऊपर सतह तक ही सीमित होकर रह जाता है । मुख्य तथ्य है मनुष्य के जीवन का स्वरूप । उसी से सम्पर्क में आने वाले लोग प्रभावित होते हैं । यदि निज का चरित्र उन तथ्यों से तालमेल न खाता हो, जो कि दूसरों को परामर्श दिया जाता है, तो उसका प्रभाव नगण्य जितना होकर ही रह जाता है ।

कुमार्गगामिता की शिक्षा रास्ता चलतों से भी ली जा सकती है । कुसंग का प्रभाव जादू जैसा आकर्षक होता है । लुच्चे-लफंगों किसी भले आदमी को भी तनिक से प्रयत्न से कुमार्ग पर घसीट ले जाते हैं, पर आदर्शों की ओर अग्रसर कर सकना सहज-सुलभ नहीं है । उसके लिए तर्क, परामर्श ही काफी नहीं है, अपितु ऐसा व्यक्तित्व भी सामने रहना चाहिए, जो उपदेशों के व्यावहारिक होने का प्रमाण अपने व्यक्तित्व के आधार पर प्रकट कर सके । जुआरी, दुराचारी, व्यसनी अपने जैसे अनेक को सरलतापूर्वक बना लेते हैं । यह सफलता उन्हें इसी कारण मिल पाती है कि दुराचार में उनका पर्याप्त विश्वास होता है । उसे अपने चरित्र व्यवहार में उतारे हुए होते हैं । उनका परामर्श और चरित्र एक जैसा होता है, भले ही वह बुरे स्तर का ही क्यों न हो । ऊँचा उठाने की शिक्षा तो अनेक देते हैं, पर उसका प्रभाव-परिणाम नगण्य जितना ही रहता है । कारण स्पष्ट है । उनकी निज की वास्तविकता ऐसी नहीं होती, जो दूसरों के कानों से आगे बढ़कर अन्तराल तक पहुँच सके । ऐसी दशा में उसका प्रभाव स्वल्प होना स्वाभाविक है । यह तथ्य परिवार निर्माण के बारे में विशेष रूप से लागू होता है । यदि घर के प्रभावशाली लोग हेय स्तर का जीवन जी रहे होंगे, अपने क्रिया-कलाप में शालीनता सम्मिलित किए हुए न होंगे, तो स्पष्ट है कि उनके द्वारा किये गये सुधार-प्रयत्नों को सफलता नहीं ही मिलेगी । दूसरों से सज्जनता-सदाशयता की आशा करना और स्वयं की गतिविधियों को हेय बनाये रहना उपहासास्पद स्थिति ही उत्पन्न करता है । उस प्रभाव से कोई धूर्तता तो सीख सकता है, पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शालीनता की प्रेरणा ग्रहण नहीं कर सकता । पानी का स्वभाव ढलान की ओर बह चलने का है । पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति किसी को भी नीचे की ओर खींचती है, पर ऊँचा उठाने, ऊपर उछालने के लिए विशेष शक्ति लगाने की, विशेष साधन जुटाने की आवश्यकता पड़ती है । कुएँ से पानी निकालने में क्या प्रयत्न करना पड़ता है, यह सभी जानते हैं । जीना चढ़ने में भी थकान आती है, पर नीचे की ओर कुछ ही प्रयत्न से सहज रूप से गिराया जा सकता है । परिवार वालों को कुसस्कारी शिक्षा कहीं से भी मिल सकती है । सारा वातावरण ही अनौचित्य से भरा पड़ा है । जन-समुदाय भी दुष्प्रवृत्तियों का शिकार पाया जाता है । इससे निष्कृष्टता को ही व्यावहारिक मान बैठना और उसे ही अपना लेना अप्रत्याशित नहीं है । आग सूखी लकड़ी को सहज ही पकड़ लेती है । दुर्बल मनोभूमि वाले प्रभावशाली अनाचारियों को अपना मार्गदर्शक मान लेते हैं । पर जब देखा जाता है कि आदर्शवाद को व्यवहार में उतारने वालों की सर्वथा कमी है, तो उसे सामान्यजन अव्यावहारिक ही मान बैठते हैं और सदुपदेशों को इस कान से सुनकर उस कान से निकाल देते हैं ।

जिन्हें वस्तुतः अपने परिवार से, प्रियजनों से सच्चा प्यार हो, उन्हें सन्मार्ग की राह पर चलने की ही प्रेरणा लेनी चाहिए । इसी आधार पर भौतिक एवं आत्मिक जीवन में ऊँचा उठा जा सकता है, आगे बढ़ा जा सकता है । प्रगति की चिरस्थायी उपलब्धियाँ व्यक्तित्ववानों को ही हस्तगत होती हैं । दुर्बुद्धिग्रस्त लोग अपनी अप्रामाणिकता के कारण हर किसी की दृष्टि में गये-गुजरे स्तर के ही जँचते हैं । उनका न कोई सच्चा मित्र होता है और न प्रगति में सहायता कर सकने वाला सहयोगी । इसलिए जिनका भी भविष्य उज्ज्वल बनाना हो, उन सबको शालीनता के सद्गुणों से सम्पन्न करने का समग्र प्रयत्न करना चाहिए ।

दूसरों को सुधारने से पहले अपने को सुधारना पड़ता है । खिलौने या औजार ढालने के लिए पहले सही साँचा बनाना पड़ता है । यदि साँचे में खोट रहेगा तो फिर सम्पर्क में आने वाले को भी औंधे-तिरछे ढालता रहेगा । परिवार सुधार का प्रथम चरण यही है कि जैसा कुछ परिवार को बनाने-चलाने की इच्छा है, उसके अनुरूप अपने को बनाने की प्रक्रिया से किया जाय । नमूने का मॉडल सामने रहने पर ही तदनुरूप प्रतिमाएँ गढ़ी जाती हैं । इस प्रयास में छद्म नहीं चल सकता । वास्तविकता छिपती नहीं, वह सिर पर चढ़कर बोलती है । विशेषतया दुष्प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में तो यह बात शत-प्रतिशत लागू होती है । उन पर पर्दा नहीं डाला जा सकता है । वे अपनी वास्तविकता से दूसरों को अनायास ही अवगत कराती रहती हैं । भीतर कुछ बाहर कुछ वाली उक्ति अजनबी-अपरिचितों पर तो किसी सीमा तक चल भी जाती है, पर जो निरन्तर साथ रहते हैं, वे भले ही सद्गुणों की ओर ध्यान न दें, पर दुर्गुणों की गन्ध तो सहज ही सूँघ लेते हैं । उनके साथ दुराव की आँख-मिचौनी चल नहीं पाती ।

इस तथ्य को भली प्रकार हृदयंगम करना चाहिए और घर के विचारशील वरिष्ठों को अपना उदाहरण इस प्रकार प्रस्तुत करना चाहिए, जिससे सम्पर्क में आने वाले बाहर वालों और घर वालों को समान रूप से प्रभावित कर सकें ।

किसके मन में क्या है ? कौन क्या सोचता-मानता है ? इसका पता लगा सकना हर किसी के लिए कठिन है । जो कुछ जाना जाता है, उसमें प्रत्यक्ष क्रिया-कलाप ही प्रमुख होता है । सामान्यतया उसी से किसी का मूल्यांकन होता है । इसलिए मात्र चिन्तन को ही नहीं चरित्र को भी महत्व दिया जाता है । कौन क्या सोचता है ? क्या चाहता है ? उसकी मोटी जानकारी उसके कथन से नहीं, क्रिया-कलापों से लगती है । परिवार को किस दिशा में ले चलना है, उसके लिए परामर्श मात्र जो अपर्याप्त ही बने रहेंगे । उनके सामने ऐसा प्रत्यक्ष प्रमाण रहना चाहिए जो सदाशयता को व्यावहारिक सिद्ध कर सके । ये प्रमाण कहीं बाहर से नहीं ढूँढ़े जा सकते । उसे अपने आपको सुसंस्कारिता के ढाँचे में ढालकर ही किसी पर प्रभाव डाल सकने योग्य बनाया जा सकता है ।

पुरातन काल में बच्चों को गुरुकुल भेजने की व्यवस्था थी, वहाँ पढ़ाई तो साधारण ही होती थी, पर संचालक शिक्षकों का स्तर असाधारण रूप से ऊँचा रहता था । वहाँ का अनुशासन और वातावरण भी । वहाँ पढ़ाई नहीं, परिस्थिति ही विद्यार्थी को ढालती थी । अब वे परिस्थितियाँ नहीं रहीं । अध्यापकों के जिम्मे स्कूली पढ़ाई पूरी कराने का काम ही इतना होता है कि वे शिक्षार्थियों के व्यक्तिगत जीवन में चल रहे उतार-चढ़ावों को कैसे देख-समझ सकें । फिर स्वयं भी उन्हें व्यक्ति निर्माण में उतनी दिलचस्पी भी नहीं होती और योग्यता भी नहीं । स्कूल का वातावरण भी ऐसा नहीं होता कि उससे शिक्षार्थी प्रभावित होकर उत्कर्ष की दिशा अपना सके । छात्रवासों की भी ऐसी ही परिस्थिति है । ऐसी दशा में अपने घर को ही गुरुकुल बनाना और गृह संचालकों को ही अधिष्ठाता की भूमिका निभाने के लिए नये सिरे से प्रयत्न करना होगा । बच्चों के प्रति एक आँख दुलार की, दूसरी सुधार की रखकर ही चलना होगा ।

बात बच्चों तक ही सीमित नहीं है । व्यक्तित्व की दृष्टि से वयस्क और बूढ़े भी अविकसित की श्रेणी में आते हैं । भले ही उनकी आयु कितनी ही बड़ी क्यों न हो ? इस सन्दर्भ में पढ़े और बिना पढ़े एक ही श्रेणी में आते हैं । सभी को पूर्वाग्रह-दुराग्रह घेरे होते हैं । काम-काज की दैनिक गतिविधियों के सम्बन्ध में भले ही उनसे कुछ कहना-सुनना सम्भव न हो, पर जहाँ तक आदतें बदलने का सम्बन्ध है वहाँ तक वे अपनी ही आदतों और गतिविधियों को सही मानते-बताते रहने के मूड में होते हैं । उनमें आदर्शवादिता प्रगतिशीलता की मान्यताएँ गले उतारना और भी अधिक कठिन पड़ता है । बच्चों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपेक्षा बड़ों के साथ निपटना और भी अधिक कठिन पड़ता है । गीली लकड़ी आसानी से मोड़ी जा सकती है, पर सूख जाने पर तो अकड़ी ही रहती है और मोड़ने का प्रयत्न करने पर टूट जाने की धमकी देती है । ऐसी दशा में उन्हें बड़ी चतुरता-बुद्धिमत्ता और धैर्य के साथ ही धीरे-धीरे करके राह पर लाया जा सकता है । उन्हें अनगढ़पन की हानियाँ बताने की अपेक्षा यह अधिक उपयुक्त है कि सत्प्रवृत्तियों को अपनाने से होने वाले लाभों को अधिक विस्तार सहित प्रमाण-उदाहरणों के साथ बताया जाय और उस प्रस्तुतीकरण पर विचार करने भर के लिए अनुरोध किया जाय । कोई बात भर्त्सना-निन्दा के रूप में न कही जाय । यह बात छोटों एवं वयस्कों के सम्बन्ध में भी लागू होती है ।

परिवार को जिस राह पर चलना है, सबसे पहले उस पर स्वयं चल पड़ना चाहिए और दूसरों का प्रत्यक्ष मार्गदर्शन करना चाहिए । प्रभावी तरीका यही है । इसी उपाय से परिवार की स्थिति में अभीष्ट सुधार परिवर्तन किया जा सकता है ।

सिद्धान्तों की अवधारणा का अपना महत्व है । मान्यताओं की कद्र की जानी चाहिए और उनकी प्रशंसा होनी चाहिए पर बात इतने भर से ही समाप्त नहीं हो जाती । होना यह भी चाहिए कि प्रत्यक्ष गतिविधियाँ भी उसी स्तर की हों आदतें भी उसी प्रकार की हों, क्रियाकलापों में वैसा ही समन्वय हो । यों दूसरों को बहकाने के लिए छद्म आचरण भी किए जा सकते हैं । प्रपंच-पाखण्डों से भी किन्हीं को किसी सीमा तक बहकाया जा सकता है, पर काठ की हाँड़ी बार-बार नहीं चढ़ती । दूरवर्ती भले ही इस प्रकार के भ्रम में कुछ समय तक भ्रमग्रस्त रखे जा सकें, पर उनका टिकाऊ प्रभाव नहीं रहता । उसके लिए तो वास्तविकता का गहरा पुट होना ही कारगर सिद्ध होता है ।

निरीक्षण करना चाहिए कि अपने गुण-कर्म-स्वभाव में दोष-दुर्गुण कहाँ हैं । उन सभी को निरस्त करने की बात सोचनी चाहिए । यह उपाय करना चाहिए कि घर के सभी लोग किस प्रकार आत्मिक दृष्टि से सुसंस्कारी और भौतिक दृष्टि से स्वावलम्बी बन सकें । यही यह तथ्य परिवार के सदस्यों को हृदयंगम कराया जा सके तो वे प्रगतिपथ पर अग्रसर हो सकते हैं । स्वयं सुखी रहकर अपने सम्पर्क क्षेत्र को समुचित मात्रा में सुखशान्ति प्रदान कर सकते हैं ।

सुधार विकास की पृष्ठभूमि बने

धन के, शिक्षा के, पद के आधार पर मनुष्य सर्वतोमुखी प्रगति का लाभ प्राप्त नहीं कर सकता । समग्र उत्कर्ष के लिए सद्गुणों की पूँजी ही एकमात्र अवलम्बन है । अनगढ़ लोग दंद-फंद से कुछ प्राप्त कर लें, अन्धे के हाथ बटेर लग जाय, तो उस उपलब्धि से कोई कहने लायक चिरस्थायी प्रयोजन पूरा नहीं होता । सद्गुण ही है जो गई-गुजरी परिस्थिति से घिरे हुए होने पर भी अपने अभ्युदय का मार्ग स्वयं बनाता चला जाता है । साथ ही अपने सम्पर्क क्षेत्र में प्रगतिशीलता एवं प्रसन्नता का माहौल बना देता है ।

जिस प्रकार धन परिश्रमपूर्वक उपार्जित किया जाता है, जिस प्रकार विद्वान बनने के लिए अध्ययन में गम्भीरतापूर्वक तत्पर हुआ जाता है, ठीक उसी प्रकार सद्गुणों की सम्पदा प्राप्त करने के लिए सतर्कतापूर्वक सतत् प्रयास करने पड़ते हैं । वे अनायास ही आकाश से छप्पर फाड़कर किसी भूमि पर टपकते नहीं हैं । शिल्पकार, कलाकार, चित्रकार बनने की तरह उस प्रयास में सतत् संलग्न होने की आवश्यकता पड़ती है ।

यह अभ्यास कुछ मनस्वी अपने आप भी कर लेते हैं, पर सामान्यतया उन्हें किन्हीं प्रतिभाशालियों के सम्पर्क-सान्निध्य में रहकर सीखना पड़ता है । पेड़ पर बेल चढ़ने की तरह ही यह सुयोग्य संयोग बनता है । इस सुविधा से परिवार के सदस्यों को लाभान्वित करने का दायित्व घर के बड़े लोगों का है । किसी की उन्नति-अवनति के लिये प्रशंसा-निन्दा तो उसी व्यक्ति की होती है, पर यदि गहराई में उतरकर देखा जाय, तो उसका निमित्त कारण परिवार के मूर्धन्यों को जाता है । उन्हीं की सतर्कता से घर के छोटे दायरे में रहने वालों को समुन्नत व्यक्तित्व वाला बनाने का निमित्त कारण समझा जा सकता है । यदि उनने उपेक्षा बरती, तो समझना चाहिए कि वह परिकर व्यक्तित्व सम्पन्न होने से वंचित रह जायगा । इसका दुःखदायी दुष्परिणाम उन सदस्यों को ही नहीं, संचालक को भी भुगतना पड़ेगा । इसलिए जितना ध्यान उपार्जन कर, सामने प्रस्तुत समस्याओं पर दिया जाता है, उससे कम नहीं, वरन् अधिक ध्यान परिजनों के व्यक्तित्व परिष्कार पर दिया जाना चाहिए । इस कार्य में समुचित समय लगाया जाना चाहिए । भले ही अन्य लाभदायक दीखने वाले कार्यों में से समय की कटौती ही क्यों न करनी पड़े ?

इसके लिये यह आवश्यक है कि परिवार के साथ अधिक समय तक रहने, अधिक घुल-मिलकर बातें करने, मिल-जुलकर कुछ काम करते रहने का कार्यक्रम बनाया जाय । यह उच्चस्तरीय एवं उपयोगी मनोरंजन है । इसमें आन्तरिक प्रसन्नता होती है । साथ रहने में परिजनों को भी जी खोलने और आवश्यक मार्गदर्शन बातों-बातों में ही प्राप्त कर लेने का अवसर मिलता है ।

मनोविनोद के लिए हर किसी की इच्छा होती है । सिनेमा, टी. वी. आदि देखने, ताश-शतरंज, खेल-कूदों में भाग लेने, सैर-सपाटा, गप्पबाजी करने के लिए इसी निमित्त लोग आतुर रहते हैं । समय और पैसा खर्च करते हैं । यह प्रकृति स्वाभाविक भी है और मनोविज्ञान की दृष्टि से उचित भी । यदि सदा काम में जुटा रहा जाय तो एकान्त सेवन करने जैसे माहौल में पिंजड़े का पक्षी बनकर रहा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाय, तो उस स्थिति से मन ऊब जाता है और कुछ उठा-पटक करने लगता है, जिसमें विनोद में समय लगने की अपेक्षा दूसरी किस्म की हानियाँ अधिक मात्रा में उठानी पड़ती हैं ।

मनोरंजन के दर्शन में गहराई से उतरकर देखा जाय, तो प्रतीत होगा कि प्रचलित विनोदों में परिवार के सदस्यों के साथ अधिक जी खोल कर मिलना और उनके साथ-साथ कुछ-न कुछ करते रहना है । विनोबा बागवानी को अच्छे किस्म का उपयोगी व्यायाम बताते थे । वे कहते थे कि इसमें समय सृजन और उपार्जन में संलग्न रहने से पहलवानों की अपेक्षा बागवानी को तीन-गुना अधिक लाभ मिलता है । यही बात परिवार के साथ सामूहिक उपयोगी प्रेरणाप्रद मनोरंजन करने पर लागू होती है । चूँकि आमतौर से इसका प्रचलन नहीं देखा जाता, इसीलिए उसके लाभों से भी लोग परिचित नहीं हैं । बच्चों को सजाया तो खूब जाता है, पर उनके साथ खेलने का उच्चस्तरीय आनन्द लेने और देने की बात नहीं सोची जाती । सुविधा-साधन जुटा देना भर पर्याप्त मान लिया जाता है, पर वास्तविक आवश्यकता इस बात की है कि पूरा परिवार हँसती-हँसाती मनोदशा में रहे । अपनी कहे, दूसरों की सुने । सहकारिता और शिष्टता जैसे सद्गुणों को उन परिस्थितियों में सहज ही बढ़ाते चला जाय ।

इसके घर रहने में किसी को घुटन नहीं होती । उस छोटे से परिवार में ही अधिक से अधिक बने रहने की सबकी इच्छा होती है । घर का वातावरण नीरस एवं घिसा-पिटा रहने से ही उसमें लम्बे समय तक रहना भारी पड़ता है । बाहर भागने की इच्छा इसी कारण होती है । झीलों, पार्कों, सिनेमाघरों की सैर करने एवं दोस्तों और सहेलियों के साथ मिल बैठने के लिए जी इसी कारण करता है । यदि प्रयत्न किया जाय तो घर का वातावरण ही इतना मनोरंजनक, उत्साहवर्द्धक, आकर्षक एवं प्रेरणाप्रद बन सकता है कि उसे छोड़कर कहीं मन हलका करने के लिए जाने की किसी की भी इच्छा न हो ।

अनुभव के अभाव में यह कार्य कठिन होते हैं, पर वस्तुतः हैं अति सरल । जिन दिनों घर में कोई उत्सव त्यौहार होता है, विवाह-शादी होती है, उन दिनों घर आकर्षण का केन्द्र बन जाता है । उसी माहौल के बने रहने से बात बनती है । बाहर कोई जाता नहीं और जाता है तो तुरन्त वापस लौट आता है । लौट ही नहीं आता, वरन् बिखरे हुए कामों में से अपने योग्य चुनकर हाथ बँटाने लगता है । ठीक ऐसी ही स्थिति अपने घरों में भी सदा रहनी चाहिए । बच्चे भले ही इधर-उधर कूदते-फाँदते रहें, पर बड़ों को, जिम्मेदारों को तो इसी खेल में रुचि लेनी चाहिए कि वे परिवार के साथ अपने को आत्मसात कर लें । छोटे-बड़े सभी उन्हें साथी-सहचर समझेंगे, तो उनके साथ रहने में भरपूर मनोरंजन की पूर्ति हुई समझने लगेंगे । इसमें दुहरा लाभ है । बच्चे परिपक्व लोगों के साथ रहकर व्यावहारिक जानकारियों का इतना लाभ उठा सकेंगे, जितना छोटों के साथ रहकर नहीं उठाया जा सकता । बड़ों का लाभ यह है कि उनका बचपन लौट आता है । बच्चों के साथ रहना, हँसना, खेलना अपने आप में एक बढ़िया किस्म का मनोरंजन है ।

बालकों का विकास महत्वपूर्ण तो है, पर उतने तक ही सीमित होकर नहीं रह जाना चाहिए । आयु की दृष्टि से किशोर, तरुण, प्रौढ़ या वृद्ध होते हुए भी अधिकांश व्यक्ति इस स्तर के होते हैं, जिन्हें बहुत कुछ भूलना और बहुत कुछ सीखना चाहिए । इसे पढ़ाना, समझाना अपेक्षाकृत और भी अधिक कठिन होता है, क्योंकि उनमें अहमन्यता की मात्रा आवश्यकता से अधिक बढ़ जाती है । वे अपने दुर्गुणों तक की हिमायत करने लगते हैं । सद्गुण सिखाने जैसे परामर्श देने वाले को अपना अपमान करने वाला समझ बैठते हैं । अपने को पूर्ण मान बैठते हैं और किसी की नसीहत सुनने को तैयार नहीं होते । उन्हें समझाना, राह पर लाना बूढ़े तोते को वाक्य रटाने की तरह कठिन पड़ता है । फिर भी इस कठिनाई से जूझना ही चाहिए और उसे सरल बनाना ही चाहिए ।

अपने देश में शिक्षा का अभाव है । तीन-चौथाई लोग अनपढ़ हैं, साथ ही अनगढ़ भी । उन्हें पेट-प्रजनन भर की चिन्ता रहती है । इन्हीं दो प्रयोजनों के लिए मरते-खपते रहते हैं । व्यक्तित्व को परिष्कृत स्तर का बनाने में भी कुछ लाभ है क्या ? यह उन्हें कभी जानने, समझने का अवसर नहीं मिला । प्रगतिशीलों के सम्बन्ध में उनकी दो ही मान्यताएँ रहती हैं । एक या तो उनका भाग्य फलित हुआ है या फिर चोरी-चालाकी से उत्कर्ष का अवसर आया है । उन्हें इस बात का भान नहीं हो पाता कि मनुष्य का स्वभाव, व्यवहार, अनुशासन, विवेक जैसे गुणों का समुच्चय ही वह ऊर्जा है, जिसे पाकर जीवन का कमल खिलता है, उत्कर्ष का सरंजाम जुटता है । इस यथार्थता को प्रियजनों के गले तो उतारा ही जाना चाहिए । उन्हें इस बात के लिए सहमत करें कि वे आत्म-निरीक्षण का अभ्यास करें । त्रुटियों को खोजें, व्यवहार में जो अनगढ़पन रम गया है, उसे खोजें और बुहार फेंकने के कार्य का उच्चस्तरीय महत्व समझें । इस प्रयास में तत्परतापूर्वक लगें । साथ ही जिन सद्गुणों की कमी है, उनका विकास-अभ्यास दिनचर्या का प्रमुख अंग बनायें । इतना बन पड़ने पर समझना चाहिए कि व्यक्तित्व निखरा, प्रतिभा जगी, राह मिली, अभ्युदय का द्वार खुला । यह व्यवस्था बनाने में गृहपतियों की, परिवार के वरिष्ठ लोगों की अहम् भूमिका रहनी चाहिए । उन्हें परिजनों के साथ घुलने-मिलने में अपने आप को उन्हीं के स्तर का बनाकर वार्तालाप करना चाहिए । उन्हीं की वय का अपने आपको मानना चाहिए। तभी एकात्मकता जुड़ती है और जी खोलकर बात करने की, आदान-प्रदान की स्थिति बनती है । सुधार-परामर्श का क्रम चलाने से पूर्व पृष्ठभूमि बना लेनी चाहिए अन्यथा परिष्कार का द्वारा खुल न सकेगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रामाणिकता और प्रतिभा के विकास में घर के हर सदस्य की अभिरुचि, आकांक्षा जगानी चाहिए । वह जागरण ही जीवन-विकास का मूलभूत आधार है । यह उत्कण्ठा जग पड़ने से व्यक्ति इस स्थिति में पदार्पण करता है कि अपनी त्रुटियों को, बुरी आदतों को खोजें । जिन सद्गुणों का अभाव है, उन्हें अपने में धारण करने के लिए आतुरता व्यक्त करें । यह जिज्ञासा जग पड़ना ही उज्ज्वल भविष्य की सम्भावना का प्रमुख आधार है । इस वृत्ति के जगने के उपरान्त ही वह मनःस्थिति बनती है, जो आत्म-चिन्तन के अतिरिक्त दूसरों को भी अपना परामर्शदाता बनाये । उनके सारगर्भित उपदेशों पर कान धरें । औचित्य को आचरण में उतारें और अग्रगमन की दिशा में अपने कदम तेजी के साथ बढ़ायें ।

क्रिया-कलापों की दृष्टि से, प्रगतिशीलता की दृष्टि से क्या कुछ किया जाना चाहिए, इसकी योजना बनानी और कार्यान्वित होनी चाहिए । किन्तु उससे पूर्व आवश्यकता इस बात की है कि इस अभिनव अभ्यास की दिशाधारा को अपनाने के लिए मनःस्थिति को लचीला बनाया जाय । उसे सुधारने और सम्हालने की आवश्यकता को अपनाने के लिए उत्सुक बनाया जाय । इतना बन पड़े तो मार्गदर्शक का कार्य घर के अधिपति ही नहीं, सद्ग्रन्थ और वरिष्ठजन भी कर सकते हैं । स्वाध्याय और सत्संग से भी यह लाभ मिलता रह सकता है ।

पारिवारिक सुसंस्कारिता को प्रमुखता मिले

हमारे देश में नारी की स्थिति में सुधार युग का आरम्भ उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ से हुआ माना जा सकता है । उस समय राजा राममोहन राय ने सती प्रथा के उन्मूलन का आन्दोलन छेड़कर सर्वप्रथम नारी उत्थान का उद्घोष किया । उसके बाद तो स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द से लेकर महात्मा गाँधी आदि और भी अनेक महापुरुषों ने इस दिशा में प्रयास किये । नारी की अवनति के साथ ही भारतीय समाज की पतन गाथा शुरू हुई और उन्नीसवीं शताब्दी में उसकी स्थिति में सुधार लाने के प्रयासों के साथ ही भारतीय समाज ने भी उत्कर्ष की सीढ़ियाँ चढ़ना शुरू किया । यह अनायास ही नहीं है । जब तक परिवार या समाज का आधा भाग दूसरे आधे भाग पर बोझ बनकर रहेगा तब तक न तो परिवार का कल्याण हो सकता है न समाज का उत्थान । क्योंकि आधे भाग की वह शक्ति जो प्रगति में लग सकती है-उस बोझ को ढोने में ही खर्च होती रहेगी ।

इसे एक सौभाग्य ही समझना चाहिए कि पुनर्जागरण के युग में प्रवेश करते ही भारत में भी उस स्तर के प्रयासों की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी और उस दिशा में कुछ किया भी गया । इस आधुनिकता की लहर के और चाहे जो भी प्रभाव या कुप्रभाव हुए हों पर उसका एक अच्छा प्रभाव तो यह है कि स्त्रियों में भी अपनी स्थिति का बोध और योग्यता के प्रति आत्मविश्वास पैदा होने लगा है । यही कारण है कि साक्षरता के प्रसार की दृष्टि से शिक्षित महिलाओं की संख्या भी बढ़ी है । १९८१ की जन- गणना के अनुसार इनकी संख्या ७ करोड़ ९१ लाख है जो स्त्रियों की कुल जनसंख्या ३३ करोड़ ४ लाख का लगभग एक चौथाई है । यह वृद्धि अपने आप में महत्वपूर्ण है । अब तो लड़कियों की शिक्षा-दीक्षा भी संभ्रान्त परिवारों में आवश्यक अनुभव की जाने लगी है और वे अपनी बच्चियों को लड़कों के समान शिक्षित बनाने की व्यवस्था करते हैं । उन सामान्य या मध्यवर्गीय परिवारों में जहाँ कि लड़कों की शिक्षा पर ध्यान दिया जाता है, लड़कियों को भी थोड़ा-बहुत पढ़ाना-लिखाना जरूरी समझा जाने लगा है ।

निश्चित ही यह स्थिति सुखद है, पर शिक्षित स्त्रियाँ क्या करें ? वे अपनी विकसित योग्यता और बढ़ी हुई क्षमता का सदुपयोग कैसे करें-यह एक प्रश्न है । सामान्यतः महिलाओं का कार्यक्षेत्र घर परिवार तक सीमित रहता है । चूल्हा-चौका सँभालने और परिवार के सदस्यों की आवश्यकताओं का ध्यान रखने तक ही उनका उत्तरदायित्व सीमित है । यह काम तो अनपढ़ और अशिक्षित महिलाएँ भी कर सकती हैं । इसी मान्यता से प्रेरित होकर लड़कियों को स्कूल भले ही भेजा जाता हो, पर उनकी शिक्षा पर लड़कों के समान ध्यान देना सामान्यतः जरूरी नहीं समझा जाता है ।

लड़के चूँकि पढ़-लिख लेने के बाद नौकरी करते हैं या प्राप्त शिक्षा के सहारे अपनी आजीविका के साधन जुटाते हैं । उनको पढ़ाते समय सम्मानपूर्ण आजीविका का उद्देश्य सामने रहता है । इसलिए उनकी पढ़ाई-लिखाई पर बराबर ध्यान दिया जाता है पर लड़कियों के लिए ऐसा कोई उद्देश्य नहीं रहता । उन्हें आज की दुनिया के उपयुक्त चुस्त और समझदार भर बनाने के लिए थोड़ा बहुत पढ़ा देना आवश्यक समझा जाता है ।

सम्पन्न और सम्भ्रान्त परिवारों में जहाँ कि उच्च शिक्षा का ध्यान कन्याओं के लिए भी समान रूप से रखा जाता है-लक्ष्य स्पष्ट नहीं रहता । घर की नाक ऊँची बनाए रखने, प्रतिष्ठित और अपने स्तर के लोगों में उठने-बैठने लायक बनाने की भावना ही वहाँ रहती है । इसी भावना के कारण शिक्षा प्राप्ति के लिए की गई वर्षों की तप साधना पर धन्धे में ही उलझी फँसी रहती है ।

इधर पढ़ी-लिखी लड़कियों द्वारा समानाधिकार के नाम पर नौकरी-धन्धे में लगने की प्रतिद्वन्द्विता भी बरती जाने लगी है । देखा जाय तो समानाधिकार की उन्मादग्रस्त स्थिति में नौकरी करना या किसी पद पर नियुक्त होने की होड़ करना, दिग्भ्रामित अवस्था का ही प्रतीक है और यह भावना नारी के शोषण, अब तक की दुरावस्था तथा सामाजिक कुरीतियों की प्रतिक्रिया स्वरूप ही जन्मी है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नारी का शोषण बन्द होना चाहिए उसकी वर्तमान अवस्था में सुधार आना चाहिए तथा उसे हीन और अपंग बनाने वाली कुरीतियाँ मिटनी चाहिए, पर इसका मतलब यह नहीं कि यह सब कार्य अविवेकपूर्ण ढंग से करते हुए स्त्रियों द्वारा अपने महज दायित्वों को भी नकार दिया जाय । आधुनिकता के उन्माद और नारी मुक्ति के अंधे जोश से प्रेरित स्त्रियाँ घर का काम सँभालने, बच्चों की देख-रेख करने और पति तथा परिवार के सदस्यों की जरूरतों का ख्याल रखने को अपमानजनक समझती हैं । एक आधुनिक स्त्री अपने पति या सास की हलकी-सी बात को अनुचित दबाव मानती है तथा उसे सहन नहीं कर सकती । पर दफ्तर में अपने अधिकारी की डाँट-डपट तथा साथियों के व्यंग्य को सहज समझती और सहन भी करती है ।

कहने का अर्थ यह कदापि नहीं कि नारी को नौकरी- धंधा करना ही नहीं चाहिए । जिन परिवारों की आर्थिक स्थिति वस्तुतः शोचनीय है और उनकी आवश्यकताएँ अकेले पति की कमाई से पूरी नहीं होती, उनकी महिलाएँ कोई काम कर घर की अर्थ व्यवस्था सुधारने मे सहयोग दें-यह प्रशंसनीय है । लेकिन विशुद्ध समानाधिकार की भावना अथवा किसी के आश्रित न रहने के दृष्टिकोण से प्रेरित होकर घरेलू जिम्मेदारियों को निभाने से इन्कार कर देना मूर्खता है ।

घरेलू आवश्यकताओं के लिए नौकरी करने की स्थिति कुछ महिलाओं के सामने ही आती है । क्योंकि जो उच्च शिक्षित हैं, विवाह से पहले अच्छी डिग्री प्राप्त कर चुकीं, उनके माता-पिता अपनी पुत्री का विवाह आर्थिक दृष्टि से सुसम्पन्न परिवारों में ही करते हैं । वहाँ इस तरह की स्थितियाँ बहुत कम ही आती हैं जिनमें कि स्त्रियों को कमाने या धनोपार्जन के लिए घरेलू दायित्वों से थोड़ा हाथ खींचना पड़े । कदाचित् वैसी अवस्था आ भी जाय तो नौकरी करना कोई बुरी बात नहीं है । पर समानाधिकार को लेकर यह कदम उठाना गलत है ।

परिवार के सदस्य का कार्यक्षेत्र घर और बाहर इन दो नामों से विभाजित करना वैसे भी गलत है । परिवार के लिए घर और बाहर कोई अलग-अलग क्षेत्र नहीं है, वस्तुतः यह एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । घर का अर्थ है परिवार की आन्तरिक व्यवस्था, जिसमें छोटी-छोटी बातों को लेकर बच्चों के निर्माण और घरेलू वातावरण को ऊँचा बनाने तक के कार्य सम्मिलित हैं । यह काम स्त्रियाँ ही भली-भाँति कर सकती हैं । पुरुष का कार्यक्षेत्र बाहर समझा जाता है । परिवार के लिए आवश्यक साधनों को जुटाना उनकी व्यवस्था करने जैसे काम पुरुष के जिम्मे समझे जा सकते हैं और इसी आधार पर उसका कार्यक्षेत्र बाहर मान लिया जाता है । वस्तुत नारी और नर के घर और बाहर के कार्यक्षेत्र कोई अलग-अलग नहीं हैं । उनका स्वरूप भले ही भिन्न हो पर दोनों सम्बन्धित हैं, अन्योन्याश्रित हैं, एक ही परिवार के हाथ-पैर हैं । दोनों को दोनों की आवश्यकता समान रूप से पड़ती है । इनमें से किसी भी एक पक्ष में त्रुटि आने पर दूसरा लड़खड़ा जाता है और परिवार अस्त-व्यस्त होने लगता है । नर और नारी के सुपुर्द ये दोनों तरह के कार्य उनकी विशिष्ट क्षमताओं और योग्यताओं के कारण ही विभाजित किये गए हैं । आपत्तिकाल में तो वे परस्पर एक दूसरे का काम चला सकते हैं, पर स्थायी रूप से वैसी बात सोचना अस्वाभाविक ही है ।

नारी अपनी शारीरिक संरचना संवेदना युक्त स्वभाव और संतुलित मनःशक्ति के कारण घर की अन्दरूनी व्यवस्था अधिक कुशलता के सँभाल सकती है । लेकिन जब केवल प्रतिद्वन्द्विता के कारण पुरुष की बराबरी की दिग्भ्रमित धारणा के कारण जिस काम को पुरुष करता है उसी को करने में वह अपनी शान समझने लगे तो यह एक भयंकर भूल होगी और इसके कारण सहयोग, स्नेह-सद्भाव के धागे टूटने का डर पैदा हो जाएगा । अपनी शिक्षा, योग्यता और प्रतिभा को उपार्जन के क्षेत्र में लगाने के पीछे अक्सर यह भ्रान्त धारणा काम करती है कि इससे पति के आश्रय की विवशता खत्म होगी । इस प्रतिशोध भावना का उदय होने पर वे यह भूल जाती हैं कि पुरुष भी तो अन्तःकरण और अन्य आवश्यकताओं के लिए स्त्री पर निर्भर है । एक तरह से दोनों के लिए एक दूसरे का सहयोग जरूरी है । इस आधार पर न कोई छोटा है और न बड़ा । न कोई आश्रित है न आश्रयदाता जहाँ-कहीं भी ऐसे भाव आते हैं, उन्हें नष्ट करना चाहिए न कि प्रतिद्वन्द्विता अपनानी चाहिए ।

सम्पन्न परिवारों की स्त्रियों द्वारा नौकरी करने का एक कारण यह भी है कि वे अपने ऐश-मौज की सामग्री सुविधापूर्वक प्राप्त करने के लिए लालायित रहती हैं । जब कभी पुरुष का उपार्जन इसके लिए अपर्याप्त पड़ता है अथवा मनचाही सुविधाएँ नहीं मिलती हैं तो उन्हें नौकरी करने की सूझती है । शौक-मौज या विलासिता के साधन जुटाने के लिए नौकरी करने वाली महिलाएँ भी कोई लाभ में रहती हों-ऐसा दिखाई नहीं देता । अपना सारा समय नौकरी में लगा देने पर उन्हें अपने घर का काम निपटाने के लिए नौकर रखने की आवश्यकता होती है । कहना न होगा कि अलग-अलग कामों के लिए अलग-अलग नौकर रखने होंगे । जैसे रसोई बनाने के लिए रसोइया, कपड़े धोने के लिए धोबी और बच्चों की देखभाल के लिए नौकर-आया इत्यादि । इन सब में ही तीन चौथाई तनख्वाह बँट जाती है और शेष जो बच जाता है, उससे क्या तो सुविधाएँ मिलती होंगी और क्या साधन ?

सरकारी नौकरी एक तो मुश्किल से मिलती है और उसमें कभी तबादला हो गया तो दो अलग-अलग जगह के खर्चे, आने-जाने का भाड़ा, अलग-अलग व्यवस्थाएँ इनमें ही सारा वेतन चला जाता है । घर में कुछ मिलता भी है तो नाममात्र को और वह भी घर रखे गए नौकरों बच्चों की देख-रेख में खर्च में खर्च हो जाती है । बच्चों को कितना भावनात्मक दबाव सहन करना पड़ता होगा इसका तो अनुमान लगाना भी मुश्किल है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

महिलाओं द्वारा नौकरी करने में सबसे ज्यादा हानि बच्चों को होती है । बच्चों को माँ की छत्रछाया हर घड़ी आवश्यक महसूस होती है । पिता की अनुपस्थिति का उन पर इतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना कि माँ की अनुपस्थिति का दुष्प्रभाव । क्योंकि बच्चा माँ के साथ नौ माह तक एक प्राण होकर जिया है, उसकी साँस में साँस लेता रहा है और जब तक उसका पूरा विकास नहीं हो पाता-वह उसी के संरक्षण में स्वयं को सुरक्षित पाता है । अतएव बच्चों के निर्माण की दृष्टि से भी केवल प्रतिद्वन्द्विता, समानाधिकार अथवा विलास के साधन हेतु नौकरी करना अनुचित है ।

आर्थिक दृष्टि से बचत के लिए नौकरी की जाय तो वह भी मात्र दुराशा ही सिद्ध होगी । क्योंकि बाहर नौकरी करने के साथ जो खर्च बढ़ जाते हैं, वे होने वाली बचत को महत्वहीन कर देते हैं । इसके विपरीत घर में रहकर अपने काम अपने हाथ से करते हुए काफी पैसा बचाया जा सकता है । सम्पन्न परिवार की महिलाएँ जो और अधिक सम्पन्न बनने के लिए नौकरी करती हैं तथा घर की व्यवस्था के लिए खुद नौकरों पर निर्भर रहती हैं, वे यदि अपना काम अपने हाथ से करने लगें तो काफी बचत हो सकती है । दाल-मसाले, पापड़, बेसन बढ़िया, शरबत आदि खुद तैयार करने, स्वयं ही सफाई करने, झाड़ू लगाने, बरतन माँजने, कपड़े धोने का साबुन या सर्फ घर पर बनाने, सिलाई-बुनाई घर पर ही कर लेने एवं बच्चों को स्वयं पढ़ाने आदि बातों के खर्च का हिसाब लगाया जाय तो यही बचत करीब दो-सौ रुपये तक बैठती है । नौकरी करने वाली महिलाओं की बचत और घर पर अपने हाथ से ही सारा काम कर लेने पर हुई बचत की तुलना की जाय तो दूसरे पक्ष का वजन ही अधिक बैठेगा । इसके साथ जुड़ी कई स्थितियाँ और लाभ ऐसे हैं । जिनकी कीमत नहीं आँकी जा सकती । जैसे बच्चों के उज्ज्वल भविष्य का निर्माण, पारिवारिक सुखशान्ति और स्नेहिल घरेलू सम्बन्ध आदि ।

प्रश्न उठता है कि शिक्षित नारी की योग्यता या प्रतिभा का उपयोग क्या इतने तक ही सीमित है ? क्या उसे केवल उन्हीं कामों तक अपने को सीमित रखना चाहिए जिनको कि परम्परागत रूप से अनपढ़ और अशिक्षित स्त्रियाँ भी कर लिया करती हैं ? यह कहना तो सही है कि अनपढ़ और अशिक्षित महिलाएँ भी घरेलू काम-काज कर लेती हैं तथा परिवार चला लेती हैं । पर उनके परिवार चलाने और शिक्षित महिलाओं द्वारा गृह संचालन में बहुत बड़ा अन्तर है । वैसा ही अन्तर जैसा कि एक ने कोई काम फूहड़ और अनगढ़ तरीके से किया हो और दूसरों ने कलात्मक ढंग से । शिक्षित महिलाएँ परिवार का संचालन कलात्मक ढंग से कर सकती हैं । वे केवल परिवार की संचालिका ही नहीं होती हैं साथ ही शिक्षित महिलाएँ अपनी शिक्षा, योग्यता का उपयोग रचनात्मक कार्यों में भी कर सकती हैं और समाज को उसका अधिक लाभ मिल सकता है । नौकरी करने में जहाँ केवल योग्यता का विक्रय ही होता है और उसका भी ठीक-ठीक मूल्य नहीं मिलता वहीं रचनात्मक कार्यों में अपना समय, श्रम लगाकर वे समाज को अधिक लाभ दे सकती हैं, जो घूम फिर कर वापस उन्हीं तक पहुँचेगा । सेवा-साधना के बदले में मिलने वाला आत्मसन्तोष तो तात्कालिक दृष्टि से लाभदायक है ही ।

इस तरह के रचनात्मक कार्यों में पड़ौस की महिलाओं को पढ़ाने, निरक्षर और अनगढ़ स्त्रियों को साक्षर बनाने तथा शिक्षण प्रदान करने, उन्हें सुरुचिपूर्ण ढंग से रहने की प्रेरणा व दिशा देने का काम समय की माँग को पूरा करता है । सेवा-भावना से प्रेरित होकर किये गए इस तरह के कार्य शिक्षित महिलाओं को वास्तव में प्रतिष्ठित और श्रद्धेय बना सकते हैं । अध्ययन द्वारा अपनी योग्यता का विकास, लेखन, विभिन्न कलाओं का अभ्यास आदि ऐसे कार्य हैं जिनके द्वारा अपनी योग्यता का सही सही सदुपयोग किया जा सकता है और उसका आत्म-सन्तोष प्राप्त किया जा सकता है ।

पारिवारिक सुख के लिए अर्थ साधनों की आवश्यकता से कोई इन्कार नहीं करता । पर ध्यान में रखने योग्य बात यह है कि इन प्रयोजनों के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता सद्भावना एवं सुव्यवस्था की है । यह दोनों तत्व विद्यमान रहेंगे तो अभावग्रस्त परिस्थितियों में भी हँसते-हँसाते दिन गुजारे जा सकते हैं । स्नेह, सौजन्य, सहकार, सद्व्यवहार ही वह पूँजी है, जिसके सहारे एक साथ रहने वाले मनुष्य पारस्परिक आदान-प्रदान से छोटे से परिवार में स्वर्गीय वातावरण का सृजन कर सकते हैं । स्वर्ग में हर्षोल्लास की परिस्थितियाँ मिलने की कल्पना की जाती है । उसका व्यावहारिक और प्रत्यक्ष रूप देखना हो तो किसी सद्गृहस्थ के घर-परिवार में प्रवेश करके देखा जा सकता है । ऐसे स्नेहसिक्त वातावरण में रहने के लिए हर किसी का मन ललचायेगा, भले ही वहाँ साधनों की न्यूनता का भी सामना क्यों न करना पड़े । ऐसे ही परिवार में सुसंस्कारी बालक विकसित होते हैं और उन्हीं का परिष्कृत व्यक्तित्व बड़े होने पर उन्हें महामानवों की श्रेणी में ला बिठाता है । जिन्दगी को चैन से गुजारने के लिए भी ऐसी ही पारिवारिक परिस्थितियाँ होनी चाहिए ।

प्रश्न यहाँ भी यही उत्पन्न होता है कि ऐसा वातावरण किस प्रकार उत्पन्न हो ? उसका सृजन कौन करे ? निश्चय है, इस ताले की कुंजी सुगृहणी के हाथ में है । नर सुयोग्य और सुसम्पन्न होने पर इस संदर्भ में हाथ बँटा सकता है, साधन जुटा सकता है, पर आगे बढ़कर कोई

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बड़ी भूमिका निभा सकना उसके लिए सम्भव नहीं हो सकता । क्योंकि उसकी भूमिका परिवार व्यवस्था में बहुत स्वल्प होती है । नहाने, खाने, सोने जैसे ढर्रे के नित्यकर्मों को करने में ही उसका अधिकांश समय बीत जाता है । गृहकार्य से निपटने के बाद तुरन्त आजीविका उपार्जन तथा दूसरे आवश्यक कार्यों के लिए उसे बाहर भागने की जल्दी पड़ती है । ऐसी दशा में वह झल्लाने, समझाने के अतिरिक्त कोई महत्वपूर्ण भूमिका निभा ही नहीं पाता । इस दायित्व का समुचित निर्वाह तो कोई सुयोग्य, शिक्षित समझदार गृहिणी ही कर सकती है । गृहलक्ष्मी जो नाम दिया गया है वह अलंकार या भावुकता नहीं- उसके पीछे तथ्य है । लक्ष्मीजी ने अपने व्यक्तित्व और कर्तृत्व से अपने लोक को स्वर्ग बनाया इस पौराणिक प्रतिपादन का प्रत्यक्ष उदाहरण देखना हो तो किसी गृहलक्ष्मी के घर में जाकर वहाँ बरसने वाले स्नेह-सौजन्य और सज्जनोचित क्रिया-कलापों के माध्यम से सहज ही देखा जा सकता है ।

आन्दोलनों की चकाचौंध में हमें दो ही कार्य महत्वपूर्ण मालूम पड़ते हैं, जिनके लिए धुँआधार शोर मचता है और कर्णबेधी नगाड़े बजते हैं । लोग यह भूल जाते हैं कि महत्व उपद्रवों, धमाकों एवं बवण्डरों का नहीं वरन् उस सृजनात्मक प्रवृत्तियों का है जो मनुष्य की अन्तः चेतना को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभावित करके उत्कृष्टता की दिशा में अग्रसर कराती है । हमारे घरों में ऐसा वातावरण बने तो उस प्रयोजन की बहुत कुछ पूर्ति मात्र भावनात्मक आधार पर ही हो सकती है, जिसके लिए प्रचुर सम्पदा का संग्रह आवश्यक समझा जाता है । नारी के स्वातंत्र्य का तो समर्थन किया जाय, उन्हें सुशिक्षित बनाने हेतु बहुमुखी प्रयास भी किये जायें, पर ध्यान यह रखा जाय कि परिवार का निर्माण-भावी पीढ़ी को सुसंस्कारित करने का दायित्व-गृहस्वामी को सहारा-दिशा देने का काम भी उसी का है । भारतीय संस्कृति की यही विशेषता रही है । ऋषिकालीन परम्परा में ऋषि पत्नियाँ न केवल शिक्षा प्राप्त करती थीं अपितु आश्रम व्यवस्था में पूरा सहयोग देकर ऋषियों के दायित्वों में हाथ बँटाती थीं ।

आधुनिक प्रगति एवं शिक्षा विस्तार कार्यक्रम से संगति बिठाकर परिवार संस्था को सुव्यवस्थित, सुसंस्कारी बनाने का नारी का कर्तव्य उसे सतत् स्मरण कराया जाय, सामूहिक स्तर पर ऐसे प्रयास चलते रहें तो ही देव संस्कृति के अध्यायों में वर्णित 'धरती पर स्वर्ग' की कल्पना साकार हो सकती है ।

परिवार को कुसंस्कारी न बनने दिया जाय

अनेक लोगों का कहना है कि आज पारिवारिक जीवन में फैली फूट, बिखराव तथा गृहकलह का कारण आर्थिक प्रभाव है । घर-घर लोगों की आवश्यकताएँ बढ़ती चली जाती हैं किन्तु आमदनी बढ़ने का मार्ग दिखलाई नहीं देता । हर व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये परेशान हो रहा है, इच्छाओं की आपूर्ति लोगों में क्रोध, असहिष्णुता तथा चिड़चिड़ापन बढ़ा रही है । असंतोष से प्रेरित लोगों का पारस्परिक प्रेम कम हो गया है । इसीलिए घर-घर में फूट तथा लड़ाई-झगड़ा दिखाई देता है । यदि लोगों की आर्थिक कठिनाइयाँ दूर हो जायें उनकी आवश्यकताओं एवं इच्छाओं की प्रकामपूर्ति होती रहे तो मनों में माधुर्य तथा स्वभाव में सरसता बनी रहे । फिर उनमें न तो आपस में लड़ाई-झगड़ा हो, न टूट-फूट और न किसी प्रकार का गृह-कलह ही दिखाई दे । सब समान रूप से शान्त, सन्तुष्ट तथा सुखी जीवन बिताते हुए मिल-जुलकर रहें ।

लोगों की यह धारणा पूरी तरह सही नहीं है । आर्थिक कठिनाइयों में कुछ असन्तोष होता अवश्य है, किन्तु इस सीमा तक नहीं जिस सीमा तक घर-घर में दिखाई दे रहा है । यदि आर्थिक सम्पन्नता ही पारिवारिक सुख-शान्ति एवं सौहार्द्र का कारण रही होती तो सम्पन्न परिवारों में गृह-कलह एवं बिखराव दिखाई नहीं देता । संसार में जहाँ गरीब परिवार पड़े हैं वहाँ एक से एक बढ़कर सर्वसम्पन्न परिवार भी मौजूद हैं । गार्हस्थिक सुख-शान्ति यदि आर्थिक सम्पन्नता पर ही निर्भर होती तो हर धनवान परिवार को सुखी, सन्तुष्ट तथा संगठित रहना ही चाहिए । किन्तु वास्तविकता इसके विपरीत है ।

एक बार गरीब परिवार में तो शान्ति एवं संगठन देखा जा सकता है किन्तु अमीर परिवारों में आये दिन झगड़े और बँटवारे होते रहते हैं । लड़के सयाने होते ही अपना हिस्सा अलग माँगते हैं । भाई-भाई से बटवारा करने के लिये न्यायालय की ओर दौड़ रहा है । कारोजगारों के खण्ड होते, घरों में हिस्से होते और सयाने सदस्यों को अलग बसते आये दिन देखा जा सकता है । गृह-कलह का जितना बड़ा कारण निर्धनता नहीं है, उससे हजार लाख-गुना बड़ा कारण सम्पन्नता है । धन के कारण घरों में न केवल कहासुनी ही होती रहती है बल्कि खून-खराबी तक की नौबत आ जाती है । बड़े घरों की महिलायें गहने-कपड़ों की कमी ज्यादती को लेकर जूझा करती हैं और पुरुष आय व्यय को लेकर द्वन्द्व मचाये रहते हैं । ऊपर से लकदक और मुस्कान से मीठी दिखाई देने वाली अमीर लोगों की जिन्दगी अन्दर से प्रायः कटु एवं क्लेशपूर्ण ही होती है । कदाचित् ही कोई ऐसा भाग्यवान गृहपति हो जो धनवान हो और भाई-बन्धु, पुत्र-पुत्रियों के बीच सुख-शान्ति की जिन्दगी बिता रहा हो । गृह-कलह का कारण निर्धनता और सुख-शान्ति का आधार धन को मानने वाले भारी भ्रम में हैं उन्हें अपनी धारणा में सुधार कर ही लेना चाहिए ।

गृह-कलह का सारभूत कारण न तो निर्धनता है और न तो धनता । इसका आधारभूत कारण है परिवारों का असंस्कृत होना । जिस परिवार के सदस्य सुशील, सुसंस्कृत, सभ्य एवं उदात्त स्वभाव के होंगे उस परिवार में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गृह-कलह कदाचित् ही हो फिर चाहे वे निर्धन हों अथवा धनवान ! परिवारों से गृह-कलह को आमूल नष्ट करने और उनमें संगठन, सुदृढ़ता, सुख और शान्ति बनाये रखने के लिये उनको सुसंस्कृत बनाना होगा ।

संस्कार के अभाव में सुशिक्षित होने पर भी परिवारों के सयाने लड़के दुर्व्यसनी एवं दुर्गुणी बन जाते हैं । वे चारित्रिक महत्व और उसकी परिभाषा न जानने से उच्छृंखल, निरंकुश तथा अनुशासनहीन हो जाते हैं । घरों के बड़े-बूढ़े अधिकार एवं कर्तव्य में संतुलन न रख सकने के कारण क्लेश के कारण बन जाते हैं । स्त्रियाँ घर की सुख-समृद्धि में शान्ति, सन्तोष, स्नेह-सौहार्द्र एवं हँसी-खुशी के योगदान की महत्ता न जानने से गाल फुलाये, मुँह लटकाये, रूठी, ऐंठी और चख-चख करती हुई वातावरण को असहनीय बनाये रहती हैं । संस्कारों के अभाव में उनका स्वभाव असहनीय एवं व्यंग्यवादी बन जाता है । घर की बड़ी-बूढ़ियाँ अधिकार लिप्सा से पीड़ित परिजनों का उठना-बैठना तक दूभर कर देती हैं । इन सब विकारों, विकृतियों एवं त्रुटियों का कारण क्या है ? परिवारों का असंस्कृत होना ।

यदि परिवारों के सदस्य सुसंस्कृत हों तो वे अपने अधिकारों की सीमा और कर्तव्यों की प्रसार परिधि को पूरी तरह से समझ सकते हैं । फलस्वरूप उनमें संतुलन बनाए रखकर घर में गृह-कलह होने का अवसर ही न आने दें । स्वार्थों के टकराने, कर्तव्य एवं अधिकारों में असंतुलन आने और हृदयों से त्याग भावना का तिरोधान हो जाने पर ही गृह-कलह का जन्म होता है । यदि प्रयत्नपूर्वक इन न्यूनताओं को दूरकर दिया जाये तो आज के जलते नरक कुण्ड के समान कलह-कुपित घर सुख-शान्ति के स्वर्ग बन जायें और तब परिवारों के उस मंगलमय वातावरण में क्या लौकिक और क्या पारलौकिक ऐसी कौन-सी समृद्धि हो सकती है, जो उपलब्ध नहीं की जा सकती ।

परिवार को सुसंस्कृत बनाने का अर्थ है, उसके सदस्यों के गुण, कर्म, स्वभाव में सुन्दर विकास करना । दूसरों को दु:खदायी व कुमार्ग पर ले जाने वाले उनके दुर्गुणों और क्रोध, द्वेष, दुर्भावों, ईर्ष्या स्वार्थ, अनुदारता, असहिष्णुता आदि दोषों का परिमार्जन कर उनके स्थान पर सदाचार, सुशीलता, प्रेम, परस्पर उदारता, मधुरता और प्रसन्नता के बीजारोपण करना ही उनका संस्कार करना है । परिजनों में सुशील संस्कार विकसित करने का दायित्व गृहपति को ही अपने ऊपर लेना चाहिए । क्योंकि परिवार का मुख्य सदस्य एवं संचालक होने से उसका प्रभाव सबसे अधिक होता है । प्राय: गृहपति की बात कदाचित् ही कोई सदस्य नीचे डालेगा । हाँ ऐसी परिस्थिति तब आ सकती है जब गृहपति स्वयं ही सुसंस्कृत न हो, स्वयं ही गुणों का अनुसरण न करता हो अथवा सुधार में सीख के स्थान पर अधिकार का प्रयोग करे और दण्ड अथवा डर के आधार पर वांछित संस्कारों को आरोपित करने का प्रयत्न करे । ऐसी भूल से पहले से ही असंस्कृत परिवार में गृहकलह का एक और कारण बन जायेगा और पुण्य प्रयत्न अभिशाप के रूप में फलीभूत होने लगेगा ।

परिवार को गुणी, सदाचारी तथा सुशील बनाने के लिए सबसे पहले गृहपति को वैसा बनना होगा । यदि उसमें बीड़ी, सिगरेट, पान, तम्बाकू, शराब आदि का कोई दुर्व्यसन हो तो उसे तुरन्त त्याग देना चाहिए । अपनी आवश्यकताओं को यथासम्भव संक्षिप्त कर देना चाहिए । अपना जीवनक्रम एक निश्चित दिनचर्या में नियमित कर देना चाहिए । क्रोध, कटुता तथा उत्तेजना से स्वभाव को मुक्तकर प्रसन्नता, स्थिरता तथा मधुरता सिद्ध करनी चाहिए । अधिकारों की परिधि संकुचित कर कर्तव्यों का दायरा बढ़ा-चढ़ा देना चाहिए । गुरुता गौरव नहीं गर्व छोड़कर विनम्रता की विशेषता विकसित करनी चाहिए । आत्मसंयम एवं आत्म-अनुशासन से अपने को सजाकर एक आदर्श मुखिया के समान अपने जीवन को एक अनुकरणीय उदाहरण के रूप में सबके सामने रखना चाहिए । गृहपति का इस प्रकार से सुसंस्कृत किया हुआ जीवन साकार शिक्षा के रूप में परिवार के प्रत्येक सदस्य के अन्तराल प्रभावित करेगा और वे धीरे-धीरे स्वभावत: स्वयं ही सुसंस्कृत एवं सुशील बनने लगेंगे ।

इसके अतिरिक्त अनेक ऐसे उपयोगी उपाय हैं जिनको शिक्षा एवं प्रशिक्षण के रूप में काम में लाकर सदस्यों को संस्कार की दिशा में और अधिक अग्रसर किया जा सकता है ।

परिवार के प्रत्येक सदस्य को हर सम्भव उपाय से शिक्षित एवं साक्षर बनाना ही चाहिए । उनमें से विकासोन्मुख सदस्यों को शिक्षा और विकसित एवं प्रौढ़ निरक्षर सदस्यों के लिये साक्षरता की व्यवस्था करनी चाहिए । बिना शिक्षा एवं साक्षरता के संस्कार शोधन में कठिनाई होगी । शिक्षा जीवन-निर्माण की आधारशिला है ऐसा मानकर विद्यालय के योग्य सदस्यों को विद्यालय में जाना चाहिए और अन्यों को घर पर ही पढ़ने का प्रबन्ध करना चाहिए । घर-घर लगने वाली चटसार में छोटों को बड़ों से पढ़ने और बड़ों को छोटों से पढ़ने में किंचित मात्र भी संकोच न करना चाहिए । जिस परिवार के सारे सदस्य शिक्षा में रुचिवान बना लिये गये मानो उसके सुसंस्कृत होने की सम्भावनाएँ सुनिश्चित बना दी गईं ।

आस्तिकता शुभ संस्कारों की जननी है । घर के हर सदस्य को आस्तिक बनाने के लिये परिवार का वातावरण धार्मिक बनाये रखा जाये । इसके लिए नित्य ही प्रात: अथवा सायंकाल सामूहिक प्रार्थना का कार्यक्रम चलाया जाये । चटसार के समय ही नित्य प्रति, गीता, रामायण, भागवत अथवा किसी अन्य धर्मग्रन्थ का वाचन श्रवण होना चाहिए और पर्वोत्सवों के अतिरिक्त साप्ताहिक अथवा पाक्षिक भजन, कीर्तन की व्यवस्था की जानी चाहिए । इस प्रकार घर का वातावरण धार्मिक बनाये रहने से सदस्यों के चरित्र में दुर्गुणों के समावेश की सम्भावनाएँ बड़ी सीमा तक निकल ही जायेंगी ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस प्रकार मानसिक सुधार के साथ-साथ सुसंस्कार जाग्रत करने के लिये शारीरिक सुधार की भी आवश्यकता है । शारीरिक सुधार में स्वास्थ्य का प्रमुख स्थान है । स्वास्थ्य सुधार के लिये शारीरिक व्यायाम की बहुत आवश्यकता है । इसके लिये वृद्ध व्यक्ति प्रातःभ्रमण का कार्यक्रम बना सकते हैं । तरुण सदस्य परिश्रमपूर्ण व्यायाम कर सकते हैं, किशोर अपने साथियों के साथ हॉकी, फुटबॉल, वालीबॉल आदि खेल खेलने जा सकते हैं । स्त्रियाँ अपने स्वास्थ्य के लिए अनाज पीस-कूट सकती हैं । घरों में बागवानी, घर की सफाई, कपड़ों का धोना और पानी भरना भी उनके लिए व्यायाम का लाभ दे सकता है ।

भोजन के विषय में परिवार के सारे सदस्यों की रुचि एक जैसी बनाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए । यह प्रयत्न सात्विक भोजन का अभ्यास कराने से सहज ही में सफल हो सकता है । तामसी अथवा राजसी भोजन करने से ही मनुष्य की रुचि तथा जिह्वा बिगड़ जाती है । सात्विक आहार मनुष्य की रुचि को सरल, साधारण तथा स्थिर बना देता है । सात्विक वृत्ति वाले व्यक्ति को साधारण तथा सादे से सादे भोजन में स्वाद आता है । उसकी जिह्वा गहरे रसों की याचना नहीं करती । अस्तु, घर की रसोई को पराकाष्ठा तक सरल, सात्विक तथा साधारण रखना चाहिए । भोजन का स्तर इतना माध्यमिक होना चाहिए जो तीसों दिन समान रूप से चलता रहे । यह नहीं होना चाहिए कि दो दिन तो पूरी पकवान, मेवा-मिष्ठान्न अथवा खीर, हलवा बन गया और बाकी दिन शाक-दाल में भी कमी होती रहे । साधारण एवं समान भोजन जहाँ स्वाध्याय में असन्तुलन नहीं लाता वहाँ अल्पव्ययी भी होता है । शाक, सब्जी तथा ऋतु फलों की अधिकता दूध, दही, मक्खन, मलाई आदि पौष्टिक पदार्थों से किसी भी दशा में कम लाभकर नहीं होती ।

परिवार के सारे सदस्यों के वस्त्र एक ही स्तर के आवश्यकतानुसार मोटे एवं मजबूत होने चाहिए । वस्त्रों की विषमता सदस्यों में स्पर्द्धा जगा देती है । फैशन, प्रदर्शन तथा अलंकारिणी को तो पूरे परिवार से पूरी तरह बहिष्कृत कर देना चाहिए । वस्त्र अधिक से अधिक स्वच्छ तथा कम से कम विविधतापूर्ण रखे जायें । सादी वेशभूषा सदस्यों में सात्विक स्वभाव को विकसित करेगी ।

घर के आय-व्यय का ज्ञान हर समझदार सदस्य को रहना ही चाहिए । इसके लिये उनको सम्मिलित करके घर का बजट बनाना बहुत ही उपयोगी रहेगा । घर के आय-व्यय का ज्ञान रहने से कोई भी सदस्य अपनी आवश्यकताओं को आर्थिक परिधि से बाहर ले जाने से बचेगा । इस प्रकार उसमें सन्तोष तथा मितव्ययता का विकास होगा ।

इन उपायों को काम में लाने के अतिरिक्त गृहपति का कर्तव्य है कि वह घर की व्यवस्था पर पूरा ध्यान दे । सदस्यों का आपसी मनोमालिन्य दूर करने के लिये दैनिक गोष्ठी करे जिसमें वह सब के गुणों की महिमा तथा पारस्परिक प्रेम का महत्व समझाएँ । उन्हें ऐसी कहानियाँ तथा समाचार सुनायें जो चरित्र-निर्माण तथा सौहार्द्र की दिशा में प्रेरक हों ।

कहना न होगा कि इस प्रकार अपने उदाहरण के साथ यदि गृहपति संस्कार शोधन के इन कतिपय उपायों को अविकल रूप से काम में लाये तो कोई कारण नहीं कि उसका परिवार सुसंस्कृत न हो जाये और गृह कलह दूर होकर उसके स्थान पर सुख-शान्ति का वातावरण न रहने लगें ।

परिवार को सुसंस्कृत बनायें

जिस प्रकार वृक्ष की सफलता उसकी जड़ पर निर्भर है उसी प्रकार मनुष्य की सफलता एवं सुख-शान्ति परिवार पर निर्भर है । यदि वृक्ष की जड़ कमजोर, अव्यवस्थित शुष्क अथवा अनुपयुक्त हों तो वृक्ष किसी भी दशा में विकसित होकर फल-फूल नहीं सकता । परिवार के व्यवस्थित, सुसंस्कृत तथा उपयुक्त होने पर ही व्यक्ति जीवन में वांछित उन्नति की ओर बढ़ सकता है । मनुष्य के जीवन विकास में परिवार का महत्वपूर्ण योगदान भी एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है ।

गृहस्थ-जीवन को पृथ्वी पर स्वर्ग कहा गया है । मनुष्य का युग-युग का अनुभव बतलाता है कि जो सुख पारिवारिक जीवन जीने में है वह किसी अन्य प्रकार की जीवन-पद्धति में नहीं है । आश्रम व्यवस्था का प्रचलन करने वाले ऋषि-मुनियों ने गृहस्थ आश्रम को सबसे पुनीत एवं उपयोगी बताया है । जीवन की सारी व्यवस्था परिवार पर निर्भर रहती है । शेष तीन आश्रम भी गृहस्थ आश्रम पर निर्भर रहते आये हैं ।

पारिवारिक जीवन एक प्रकार की सुन्दर, स्वस्थ सहकारी जीवन पद्धति है । परिवार के प्रत्येक सदस्य का सुख-दुःख प्रत्येक से जुड़ा रहता है । सभी एक दूसरे की सुख-सुविधा में सहायक होते हैं । गृहपति यदि परिवार चलाने के लिये श्रम करता है तो गृहस्वामिनी उसके लिये समय पर भोजन तथा आराम की व्यवस्था किया करती है । पति जो कुछ कमा कर लाता है पत्नी उसे सँजोती तथा उसका इस प्रकार से अधिक से अधिक सदुपयोग करती है जिससे कि घर की व्यवस्था रोचक, मनोरम एवं सम्पन्नतापूर्ण बनी रहे । माता-पिता बच्चों का पालन पोषण करने में श्रम करते हैं तो बच्चे भी उन्हें अपनी किलकारियों तथा आज्ञानुवर्ती से आनन्दित करते रहते हैं । बूढ़े हो जाने पर अपने माता-पिता के हाथ-पाँव बन कर उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने देते । सम्मिलित परिवारों में अनेक की कमाई एक साथ घर आती और एक साथ भोजन व्यवस्था होने से घर-बार भरा-पूरा बना रहता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

है । एक सदस्य के बीमार हो जाने पर सारे सदस्य उसकी चिन्ता एवं सेवासुश्रूषा करते हैं जिससे रोगी बड़ा ही आश्वस्त अनुभव करता और शीघ्र अच्छा हो जाता है । सदस्यों के मिल-जुलकर रहने से परिवार की प्रतिष्ठा एवं शक्ति बढ़ती है, जिससे कोई दुष्ट अनायास उसे हानि पहुँचाने की हिम्मत नहीं कर पाता । इस प्रकार यदि परिवार संगठित, सुव्यवस्थित तथा सुमतिपूर्ण है तो उसकी तुलना में स्वर्ग का सुख भी तुच्छ आँका जायेगा ।

पारिवारिक जीवन में न केवल भौतिक सुख-सुविधा के लाभ हैं अपितु आध्यात्मिक लाभ भी कुछ कम नहीं हैं । पारिवारिक जीवन में हर मनुष्य अपनी व्यक्तिगत स्वार्थपरता त्याग कर दूसरों की सुख-सुविधा का ध्यान रखने का अभ्यास सिद्ध करता है । अतिथि सेवा, परोपकार, दान-पुण्य का जितना अवसर गृहस्थ जीवन में मिलता है उतना अन्य जीवन में नहीं । गृहस्थ लोग निहंगों की अपेक्षा कहीं अधिक सहिष्णु, सदाचारी तथा सौहार्द्र पूर्ण हो जाया करते हैं । प्रेम का प्रकाश जितना गृहस्थ के भाग्य में होता है । उतना गृहस्थहीन व्यक्ति के भाग्य में नहीं । गृहस्थी में माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-बहिन, चाचा-ताऊ आदि सारे सदस्य एक-दूसरे को स्नेह तथा प्रेम किया करते हैं । जितना बड़ा परिवार होता है सदस्यों के प्रेम का दायरा उतना ही बड़ा होता है । जिस गृहस्थ के बेटा-बेटी, नाती-पोते हैं तो वह उनको प्रेम करने के स्वभाव के कारण दूसरे के बच्चों को भी प्रेम करता है । माँ-बहिन, बेटी-बहू वाला सद्गृहस्थ उसी दृष्टि से दूसरे की बहू-बेटियों को देखता है । परिवार निःसन्देह मनुष्य के नैतिक प्रशिक्षण का एक सुन्दर केन्द्र है ।

बेटे-बेटियों तथा नाती-पोतों की ब्याह-शादी होने पर गृहस्थ के स्नेह-सम्बन्धों की परिधि और भी बढ़ जाती है । यदि वह बुद्धिमान इनमें स्वार्थ तथा संकीर्णता से दूषित अपनत्व न रखे और सारे सर्गों एवं सम्बन्धियों को विश्व विराट का घटक मानकर निश्छल प्रेम करे और उनके लिये सहायता, सहयोग के लिये निस्वार्थ भाव से तत्पर रहे तो उसकी यह आत्मीयता विश्व प्रेम में परिणत हो जाये और वह 'वसुधैव कुटुम्बकम्' वाला एक आध्यात्मिक व्यक्ति बन जाये । त्याग भावना पारिवारिक जीवन का विशेष गुण है । यों तो मूल-मानव पशुओं की तरह स्वार्थी होता था उसे किसी दूसरे की सुख-सुविधा का जरा भी ध्यान नहीं रहता । किन्तु जब वही स्वार्थ मानव गृहस्थ जीवन में स्त्री, बच्चों तथा भाई बहिनों के बीच बसता है तब अपेक्षाकृत अधिक निःस्वार्थी हो जाता है । अपने से पहले उसे अपने स्त्री-बच्चों तथा भाई-बहिनों एवं माता-पिता की सुख-सुविधा का ध्यान रहता है और वह सुखपूर्वक उनके लिये कुछ भी त्याग करने के लिये तैयार रहता है । प्रेम अथवा ममतावश ही सही त्याग भावना का विकास होना हर प्रकार से कल्याणकारी है ।

किन्तु यह सब सुख स्वर्गमय भौतिक तथा आध्यात्मिक लाभ होते तभी हैं जब परिवार सुसंगठित, व्यवस्थित तथा सुसंस्कृत होते हैं अन्यथा अव्यवस्थित एवं असभ्य परिवारों से बड़ा कोई नरक नहीं है । असफल गृहस्थी गले की फाँसी बन जाती है । अशिष्ट पत्नी, उच्छृंखल संतानें, स्वार्थी भाई और क्रूर माता-पिता किसी भी व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन स्वाहा कर देने के लिये विकट वैश्वानर के समान ही होते हैं । जब तक परिवारों में अपेक्षित अनुशासन, वांछित व्यवस्था और आवश्यक शिक्षा-दीक्षा के साथ शुभ संस्कारों की परम्परा बनी रही, पारिवारिक जीवन स्वर्ग सुख का सार बना रहा और सद्गृहस्थ देवताओं जैसा सुख पाते हुये बड़े-बड़े महात्मा एवं लोकसेवी बनते रहे । किन्तु जब से परिवारों को प्रयास पूर्वक सुसंस्कृत बनाने के कर्तव्य की उपेक्षा की जाने लगी गृहस्थ-जीवन जीता जागता नरक कुंड बन गया है ।

आज जिधर भी दृष्टि डालिए लोग पारिवारिक जीवन से ऊबे, शोक-सन्ताप में डूबे, अपने भाग्य को कोसते नजर आते हैं । बहुत ही कम परिवार ऐसे होंगे जिनमें स्नेह-सौभाग्य की सुधा बहती दिखाई पड़े अन्यथा घर-घर में कलह, क्लेश, कहा सुनी, झगड़े-टंटे, मार-पीट, रोया-धोई, टूट-फूट, बाँट-बटवारा और रार, जिद फैली देवर-भौजाई यहाँ तक कि पति-पत्नी तथा बच्चों एवं बूढ़ों में टूट-फूट लड़ाई-झगड़ा, द्वेष-वैमनस्य तथा मनोमालिन्य उठता और फैलता दिखाई देता है । आज का पारिवारिक जीवन जितना कलुषित, कुटिल और कलहपूर्ण हो गया है कदाचित् ऐसा निकृष्ट जीवन पहले कभी भी नहीं रहा होगा । स्वर्ग-सुख के प्रतिबिम्ब गृहस्थ जीवन की यह नारकीय दुर्दशा आश्चर्य, खेद तथा चिन्ता का विषय है । हम गृहस्थों को इस अवांछित गृहस्थ जीवन पर शर्म करनी चाहिए और आत्म-कल्याण से लेकर राष्ट्रीय कल्याण की दृष्टि तक इसे शीघ्र से शीघ्र सुधार कर आदर्श गृहस्थ का रूप दे देना चाहिए ।

अपने पैरों खड़े होते ही पुत्र असमर्थ माता-पिता को छोड़ कर अलग घर बसा लेता है । भाई-भाई की उन्नति एवं समृद्धि शत्रु की आँखों से देखता है । पत्नी-पति को चैन नहीं लेने देती । बहू-बेटियाँ, फैशन प्रदर्शन सन्निपात से ग्रस्त हो रही हैं । छोटी संतानें, जिद्दी, अनुशासनहीन तथा मूढ़ बनती जा रही हैं । परिवारों के सदस्यों के व्यय तथा व्यसन बढ़ते जा रहे हैं । कुटुम्ब कबीले वाले कौटुम्बिक प्रतिष्ठा को कोई महत्व देते दृष्टिगोचर नहीं होते । निःसन्देह यह वह भयावह स्थिति है । परिवार टूटते, बिखरते जा रहे हैं । चिन्ताशील सद्गृहस्थ इस विषपूर्ण विषम स्थिति में शरीर एवं मन से चूर होते जा रहे हैं । गृहस्थ धर्म एक पाप बनकर उनके सामने खड़ा हो गया है । अनेक समाज हितैषी, लोकसेवी, परोपकार की भावना रखने वाले सद्गृहस्थ इस असहनीय पारिवारिक परिस्थिति के कारण अपने जीवन

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लक्ष्य की ओर न बढ़ सकने के कारण अपने दुर्भाग्य को धिक्कार रहे हैं ।

इस अपुनीत पारिवारिक परिस्थिति में यदि कोई यह आशा करता है कि वह सुख-शांति एवं प्रसन्नतापूर्वक गृहस्थ का सुख लेकर अवस्थानुसार कुछ आध्यात्मिक लाभ का प्रयत्न करेगा तो उसकी आशा को दुराशा ही कहना होगा । ऐसे नारकीय पारिवारिक जीवन में सुख-शांति की परिस्थितियाँ पा सकना, संतोष सौहार्द्र एवं सौभाग्य की उपलब्धि कर सकना सम्भव नहीं दीखता । इसके लिये सड़े-गले पारिवारिक ढर्रे को बदलना होगा, साहसपूर्वक उसे शिक्षित, प्रशिक्षित तथा सुसंस्कृत बनाना होगा । तभी कुछ निस्तार की सम्भावना सम्भव हो सकती है । सड़े-गले पुराने ढर्रे पर अभ्यासपूर्वक चलते रहने से परिस्थिति का स्वयं सँभलना तो दूर दिन-दिन और बिगड़ती जायेगी ? यदि आज हम घर से बाहर निकल कर समाज, राष्ट्र तथा विश्व की कोई सेवा नहीं कर सकते, उसकी सुधार-सँभाल नहीं कर सकते, तो कम से कम अपने परिवार, जिस पर कि हमारी सुख-समृद्धि तथा उन्नति-विकास निर्भर है, की तो साज-सँभाल करे ही । परिवार को सुधार कर सुव्यवस्थित तथा सुसंस्कृत बना लेने पर भी परोक्ष ही नहीं प्रत्यक्ष रूप से समाज-सेवकों की सूची में आ जायेंगे । क्योंकि परिवार समाज का ही एक अभिन्न अंग है ।

पारिवारिक जीवन की इस पतनपूर्ण दयनीय दशा के कारण खोजने पर पता चलता है कि इसका दायित्व हम गृहस्थों पर ही है जिन्होंने परिवार परम्परा का मुख्य उद्देश्य विस्मरण कर दिया है और इसे एक टूटी-फूटी गाड़ी समझकर खींचते रहना ही अपना कर्तव्य समझ लिया है ।

परिवार बसा लेना आसान है, लोग आये दिन बसाते ही रहते हैं । उसका पालन भी कोई विशेष कठिन नहीं, सभी उसका पालन करते हैं । किन्तु परिवार को समुन्नत एवं सुसंस्कृत बनाने के लिये उसका निर्माण करना एक श्रमसाध्य कर्तव्य है । अधिकतर लोग परिजनों के लिये अधिकाधिक सुख-सुविधाएँ देने, उनके लिये अच्छा भोजन, अच्छे वस्त्र तथा आराम की चीजें जुटाना ही पारिवारिक जीवन का उद्देश्य मान बैठे हैं । उनका ध्यान परिवार की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए धनोपार्जन तक ही सीमित रहता है । वे यह कभी नहीं सोच पाते कि भोजन, वस्त्र तथा शिक्षा स्वास्थ्य के साथ परिवार की एक सर्वोपरि आवश्यकता भी है और वह है उसे सद्गुणी बनाना । असद्गुणी परिजन न तो परिवार की प्रतिष्ठा सुरक्षित रख पाते हैं और न उसमें सुख-शांति का ही आगमन होने देते हैं । खाने-पीने, पहनने ओढ़ने और मौज-मजा के आदी परिजन कभी भी अनुशासित तथा संगठित नहीं रह सकते । अवश्य ही उनमें स्वार्थपरता बढ़ जायेगी और वे जरा-जरा-सी बात पर एक दूसरे से कलह, क्लेश तथा ईर्ष्या, डाह करेंगे । शालीनता सोचने तथा मौज- मजा तक अपने दृष्टिकोण को केन्द्रित रखने वाला व्यक्ति कभी भी त्यागी, परोपकारी, स्नेही तथा उदार नहीं हो सकता । इन गुणों का अभाव किसी भी परिवार की सुख-शांति में आग लगा देने के लिए काफी है । अस्तु, आवश्यक है कि जहाँ स्थिति के अनुसार परिजनों को अधिक से अधिक सुख-सुविधा पहुँचाई जाये वहाँ इससे पहले यह अनिवार्य है कि उन्हें गुणी, व्यवस्थित, अनुशासित तथा मर्यादित बनाने का प्रयत्न किया जाये । परिवार का निर्माण परिवार पालन से शत सहस्र गुना महत्वपूर्ण है ।

सद्गृहस्थ को चाहिए कि वह अपने परिवार को एक वाटिका तथा अपने को उसका उत्तरदायी माली समझे । जिस प्रकार एक माली अपने बाग को सींचता, उसमें खाद देता और एक-एक फूल-पत्ती की देखभाल एवं साज-सँभाल करता हुआ इस बात का भी ध्यान रखता है कि उसके पौधों में कोई कीड़ा तो नहीं लग रहा है, उसके बाग में निरर्थक झाड़-झंखाड़ तो नहीं उगे आ रहे हैं और यदि वह इसके लक्षण देखता तो तुरन्त ही सावधान होकर उनको दूर करने के उपाय करता है । इसी प्रकार सद्गृहस्थ को चाहिए कि वह अपने परिवार का पालन करे, उसे भोजन, वस्त्र दे, शिक्षा-दीक्षा दिलवाये किन्तु इस पर भी पूरा ध्यान रखे कि उसके परिवार का कोई व्यक्ति व्यसनी, स्वार्थी अथवा संकीर्ण तो नहीं हो रहा है, उसके घर में कलह-क्लेश तथा टूट-फूट के कारण तो नहीं उभर रहे हैं । यदि उसे ऐसे कोई संकेत मिले तो तुरन्त सुधार में तत्पर हो जाये । स्नेह, सख्ती, शासन, अनुशासन जिस उपाय से बने समाहित होती हुई विकृतियों को दूर करे । परिवार में पनपती हुई विकृतियों की उपेक्षा करना अथवा उन्हें दूर करने में प्रमाद करना परिवार को नरक बनाने की असावधानी होगी । किन्तु कोई भी सद्गृहस्थ अपने परिवार को सुख-सौरभ पूर्ण हरी-भरी वाटिका का रूप देने में तभी सफल हो सकता है जब वह अपना जीवन आदर्श बनाकर परिजनों के सम्मुख उदाहरण के रूप में रखे । सदाचारी सद्गृहस्थ का परिवार सुख-शांति का घर बनाया जा सकता है । आज ही से सदाचारी सद्गृहस्थ बन जाइये कल ही आपका परिवार नरक कुंड से बदलकर स्वर्ग सुख का आवास बन जायेगा ।

परिवार में सत्प्रवृत्तियों की फसल उगायें

शरीर में जिस प्रकार अंग-अवयव गुँथे हुए हैं उसी प्रकार शरीर के साथ परिवार के सदस्य भी जुड़े हुए हैं । मनुष्य सामाजिक प्राणी है । उसका निर्वाह एकाकी नहीं हो सकता, आवश्यकता एवं समस्याएँ इतनी अधिक हैं कि उनका समाधान मिल-जुलकर अपनाई जाने वाली

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सहकारिता के आधार पर निकलता है । मनुष्य की मूल प्रवृत्ति सामाजिक सहकारिता है, उसी ने उसे बुद्धि-वैभव प्रदान किया है और साधन-सम्पदा बढ़ाने तथा खर्चने का वह उपाय सुझाया है जिसे आज की भाषा में पदार्थ विज्ञान, अर्थशास्त्र एवं क्रिया कौशल कहते हैं । बुद्धिमत्ता के यही क्षेत्र हैं । इनमें अतीत से लेकर अद्यावधि जो भी प्राप्ति हुई है उसके मूल में सहकारिता की, सत्प्रवृत्ति ही परोक्ष भूमिका निभाते हुए देखा जा सकता है । समाज का यह भाग जो निरन्तर साथ सम्बद्ध रहता है-परिवार कहा जाता है ।

परिवार की सुरक्षा एवं प्रगति का ध्यान भी उसी तरह रखना कर्तव्य है जितना कि शरीर का रखा जाता है । जिन लोगों के बीच निवास निर्वाह होता है वे सभी कुटुम्बी हैं । अपने स्त्री-बच्चों से ही परिवार का, सीमा बन्धन नहीं जोड़ना चाहिए वरन् वे भी परिजन कहलाते हैं, जो एक साथ रहते और परस्पर स्नेह, सहयोग का आदान-प्रदान करते हैं । इसमें विवाहित-अविवाहित होने से कोई अन्तर नहीं पड़ता । वंशधरों की तरह व्यवसाय और विचार भी मनुष्यों में घनिष्टता उत्पन्न करते हैं । एक नाव में बैठने वाले सभी कुटुम्बी बन जाते हैं क्योंकि उनका डूबना-उतरना साथ-साथ ही होता है ।

परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेदारी आमतौर से समझी और निभाई जाती है । इसमें एक कड़ी प्रज्ञा परिजनों की और भी जोड़नी चाहिए कि परिजनों के शरीरों को ही पोसने, सँजाने, सम्पन्न एवं प्रसन्न बनाने तक ही अपनी जिम्मेदारी सीमित न रखी जाय वरन् इस समूची व्यवस्था से भी कहीं अधिक भारी उत्तरदायित्व उनके व्यक्तित्व निखारने का समझा जाना चाहिए । यदि इस सम्बन्ध में उपेक्षा बरती गई तो समझना चाहिए कि व्यक्तित्व अनगढ़, कुसंस्कारी बने रहने पर सम्पन्नता, शिक्षा बलिष्ठता मात्र से उनका भला न हो सकेगा । दुर्गुणी व्यक्ति उपलब्धियों का दुरुपयोग करते हैं । फलतः अपनी तथा साथियों की दुर्गति ही बनाते रहते हैं । वैभव आवश्यक तो है, पर स्मरण रखने योग्य तथ्य यह भी है कि शालीनता के अभाव से उससे दुष्प्रवृत्तियों का ही परिपोषण होता है और साँप को दूध पिलाने की तरह उलटा दुष्परिणाम ही उत्पन्न होता है । लाड़-चाव में जो अपने परिवार को दुर्गुणी बना लेते हैं उनका अविवेक भरा प्यार भी अत्याचार से भी भारी पड़ता है ।

परिवार संस्था को सद्गुणों की प्रयोगशाला, पाठशाला, फैक्ट्री, नर्सरी मानकर चला जाय और इस लिए 'एक आँख प्यार की दूसरी सुधार की' रखने वाली नीति अपनाई जाय तो आत्मीयजनों के उस छोटे समुदाय को सच्ची सेवा कहा जायगा । इस दिशा में आरम्भ से ही ध्यान रखा जा सके, तो बहुत ही उत्तम अन्यथा गिनती भूल जाने पर उसे नये सिरे से गिनना चाहिए । देर से समझ आये तो भी उसे समझदारी ही कहा जायगा । प्रज्ञा परिजनों की दृष्टि अपने सम्बद्ध परिजनों को सुसंस्कारी बनाने की रहनी चाहिए । सम्पन्नता की कमी रह जाने पर भी सज्जनता के सहारे काम चल सकता है, किन्तु सज्जनता रहित सम्पन्नता अन्ततः दुःखद दुष्परिणाम ही प्रस्तुत करती है ।

उत्तराधिकारियों के लिए कुबेर जितना वैभव छोड़ मरने की ललक न उनके हित में है न अपने हित में । मुफ्त का माल पचता नहीं । भले ही वह अत्याचार, छल, छद्म से कमाया गया हो या उत्तराधिकार, लाटरी आदि के माध्यम से पाया गया हो । विष खाद्य छोड़ मरने की अपेक्षा यह अच्छा है कि अपना पुरुषार्थ उन्हें सद्गुणी बनाने के लिए नियोजित रखा गया है । किसी से सम्पन्नता की प्रतिस्पर्द्धा नहीं करनी चाहिए । होड़ करनी हो तो शालीनता का उन्मुक्त क्षेत्र उसके लिए खुला पड़ा है । उसी में अपने पराक्रम एवं कौशल का परिचय देना चाहिए ।

जानकारियाँ तो कहने-सुनने से भी मिल सकती हैं । भूगोल, गणित, शिल्प, संगीत तो उस्तादों से भी सीखा जा सकता है, पर चरित्र निर्माण की प्रेरणा प्रदान करने वाले को अपना उदाहरण प्रस्तुत करना पड़ता है । आगे चलने पर ही अनुयायी भी पीछे लगते हैं । बातूनी नसीहतें इस प्रयोग में तनिक भी काम नहीं आतीं । अपनी फजीहत दूसरों को नसीहत देने वाले व्यंग्य-उपहास का कारण ही बनते हैं । उनकी बात गले नहीं उतरती भले ही वह हित-कारक क्यों न हों । साँचे में खिलौने ढलते हैं, परिवार में जिन सत्प्रवृत्तियों का प्रचलन करना हो उनका अभ्यास प्रयोक्ता को सर्वप्रथम करना पड़ता है । परिवार को सुसंस्कृत बनाने की आकांक्षा तभी पूरी होती है जब अपने गुण, कर्म, स्वभाव में सदाशयता का समावेश उत्साहवर्द्धक, प्रेरणास्पद मात्रा में किया जा सके । दोनों प्रयोजन सम्बद्ध हैं । आत्मनिर्माण और परिवार-निर्माण की प्रक्रिया गाड़ी के दो पहियों की तरह साथ-साथ चलती है । दूसरों के लिए मेंहदी पीसने वाले के अपने हाथ अनायास ही रच जाते हैं । परिवार के प्रति यदि सच्ची आत्मीयता शुभेच्छा और सद्भावना हो तो उसे क्रियान्वित करने का उपयुक्त मार्ग एक ही है कि उन्हें सद्गुणी, सज्जन, प्रतिभावान एवं सुसंस्कृत बनाया जाय । इसका शुभारम्भ अपने को सुधारने और ढालने के साथ ही बन पड़ता है । आदर्श उपस्थित करने से ही उत्साह उत्पन्न होता है ।

पारिवारिक पंचशीलों की चर्चा, समय-समय पर की जाती रही है । श्रमशीलता, सुव्यवस्था, मितव्ययता, शालीनता और सहकारी उदारता की आदत घर-परिवार के लोगों में डाली जा सके तो आरम्भ में अनख लगने पर भी, आनाकानी, अवज्ञा होने पर भी-यदि उस बीजारोपण, परिपोषण को जारी रखा जा सके तो इस पुण्य प्रयास के सत्परिणाम हाथों-हाथ देखने को मिल सकते हैं । आत्मसन्तोष एवं दूसरों का सम्मान-सहयोग पाने पर कोई भी अपनी विशिष्टता पर गर्वगौरव अनुभव करता है । उस मार्ग पर उठते कदम उज्ज्वल भविष्य की सम्भावना को सुनिश्चित बनाते हैं । औलाद के लिए दौलत छोड़

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मरने उनकी बेतुकी फरमाइशें पूरी करते रहने की अपेक्षा समझदारी इसमें है कि उनके स्वभाव एवं व्यवहार में आदर्शवादिता का अनुपात बढ़ाया जाय । यह ऐसा उपकार है जिसके प्रति कुटुम्बियों की अन्तरात्मा चिरकाल तक कृतज्ञ कृत-कृत्य बनी रहेगी । यह ऐसा उपहार है । जिसकी तुलना में उन्हें हीरक हारों से लाद देना भी हलका पड़ता है ।

दूसरों के यहाँ क्या होता है इसकी नकल करने, ललचाने की आवश्यकता नहीं । हमें अग्रणी होना चाहिए और पड़ोसी परदेशियों के सामने यह आदर्श उपस्थित करना चाहिए कि उन्हें इस परिवार का अनुकरण करते हुए गौरवान्वित होना चाहिए । अनुयायी क्यों बनें ? अग्रणी क्यों नहीं । कुप्रचलनों को अस्वीकार करने में भी साहसिकता है । अन्धी भेड़ों की तरह उन हेय लोगों का अनुसरण नहीं करना चाहिए जो वैभव का उद्धत प्रदर्शन करने के लिए अन्तरात्मा वेध चुके । आदर्श छोड़ चुके और चरित्र गँवा चुके ।

प्रज्ञा परिजनों को अपने घर-परिवार में पंचशील के प्रति ऐसा सम्मानास्पद वातावरण बनाना चाहिए जैसा कि धार्मिक लोग पाँच देवताओं के प्रति अपनाते और संसारी लोग पाँच रत्नों के रूप में धन, लक्ष्मी को पूजते हैं । सभी बलिष्ठता, सुन्दरता, विद्वता, ख्याति, सम्पन्नता चाहते हैं । यदि आकांक्षाओं में शालीनता के पक्षधर पंचशीलों का भी समावेश किया जा सके तो समझना चाहिए कि सुरुचि ज़ागी और पाने योग्य उपलब्धियों की महत्ता समझाने वाली विवेक बुद्धि उभरी । यह जागरण ऐसा ही है जैसा कि रात्रि को मृतक, मूर्च्छितों जैसी घोर निद्रा का परित्याग कर लोग प्रभातकाल में जगते, निवृत्त होते और श्रेयस्कर क्रियाशीलता में संलग्न होते हैं ।

घर से आलस्य, प्रमाद को विदा करना चाहिए और वातावरण ऐसा बनाना चाहिए कि हर सदस्य को हर समय उपयोगी कार्यों में व्यस्त रहने का अवसर मिले । निठल्ले न स्वयं बैठें न आत्मीयजनों को बैठने दें । विश्राम की भी आवश्यकता है किन्तु आलस्य, प्रमाद को विश्राम या बड़प्पन का चिन्ह नहीं माना जाना चाहिए । जीवन का स्वरूप है-समय । समय का सदुपयोग श्रम पराक्रम के साथ ही किया जा सकता है । घर में ऐसे क्रियाकलापों का प्रचलन करना चाहिए जिसमें हर समर्थ सदस्य को अपने-अपने ढंग से व्यस्त रहना पड़े । उनसे उनका आरोग्य, बुद्धिबल, कौशल बढ़ेगा साथ ही व्यक्तित्व निखरेगा । घर को सुव्यवस्थित, सुसज्जित रखने तथा गृह उद्योग स्तर के शाक-वाटिका, टूट-फूट, मरम्मत कपड़े धोना, सीना जैसे हलके, भारी ऐसे अनेक छोटे-बड़े काम खड़े किये जा सकते हैं जो श्रम सामर्थ्य को अस्त-व्यस्त होने से बचाये रह सकें, जो सृजनात्मक प्रवृत्ति का परिपोषण करते रह सकें ।

स्वच्छता, सुन्दरता, सुव्यवस्था यह सारे उपक्रम सुरुचि के परिचायक हैं । सच्ची कलाकारिता इसी में है कि शरीर, वस्त्र, उपकरण, निवास का हर पक्ष सुन्दरता किन्तु सादगी से भरा-पूरा दृष्टिगोचर हो, गन्दगी सहन न करना ही सौन्दर्य की आराधना है । अस्तव्यस्तता और कुरूपता एक ही बात है । शरीर का गठन ईश्वर के हाथ है । खर्चीली सजधज में विलासिता और अहमन्यता के उद्धत प्रदर्शन की गन्ध आती है किन्तु हर वस्तु को, हर निर्धारण को, हर प्रयास को योजनाबद्ध, सुव्यवस्थित रखा जा सके तो समझना चाहिए कि दृष्टिकोण में गौरवास्पद कलाकारिता का समावेश हो रहा है । समझना चाहिए कि 'मैनेजर' का पद संसार में सबसे ऊँचा है । जो अपनी-अपने परिवार की सुव्यवस्था का अभ्यास कर रहा है वह किसी दिन महत्वपूर्ण उत्तरदायित्वों के निर्वाह में अपनी प्रतिभा का परिचय भी देगा ।

मितव्ययता से सादगी और सज्जनता की, दूरदर्शिता और आदर्शवादिता का परिचय मिलता है । फैशन आदि अपव्यय करने वाले अपने मन में जो भी समझते रहें, विचारशैली की दृष्टि में ओछे, बचकाने एवं अप्रामाणिक ही सिद्ध होते हैं । धन अपव्यय के लिए नहीं कमाया जाता, उसकी एक-एक पाई ऐसे सत्प्रयोजनों में खर्च करनी चाहिए जिससे भौतिक एवं आत्मिक प्रगति के साधन जुटते हों । समाज को भी सत्प्रवृत्तियाँ सम्बर्द्धन के लिए उदार अनुदानों की निरन्तर आवश्यकता रहती है और सब कुछ उन्हीं से बन पड़ता है, जो अपव्यय से पैसा बचा सकते हैं जो पैसे को कूड़ा समझते हैं और उसकी फुलझड़ी जलाते हैं उन्हें उपयोगी प्रसंग पर मन मसोसना पड़ता है, कर्जदार बनना पड़ता है । अनीति की कमाई पर उतारू होना पड़ता है । इस सारे जंजाल से वह सहज ही बच सकते हैं जो खर्च करने से पहले हजार बार विचार करते हैं और गाँठ तभी खोलते हैं जब खर्च को औचित्य की कसौटी पर हजार बार कस लें । ऐसी विवेकयुक्त कृपणता उस उद्धत अपव्यय से हजार गुनी अच्छी है जो अनेकानेक दुर्गुणों, दुर्व्यसनों को जन्म देती और भविष्य को अन्धकारमय बनाती है ।

शालीनता चौथा पारिवारिक पंचशील है । घर के लोग परस्पर मीठा बोलें, शिष्टाचार बरतें, एक दूसरे का आदर करें, हाथ बढ़ावें और मान-मर्यादा का ध्यान रखें । असमय, अनगढ़ लोग उच्छृंखलता बरतें और अनुशासनहीनता का परिचय देते देखे जाते हैं । बात-बात में आवेश लाने वाले और सन्तुलन गँवा बैठने वाले मानसिक रोगियों में गिने जाते हैं । उन्हें कोई दया का पात्र समझता है कोई घृणा का । सज्जनता के साथ धैर्य जुड़ा हुआ है उसमें सहिष्णुता और तालमेल बिठा कर चलने की दूरदर्शिता का समावेश रहता है । परस्पर स्नेह-सौजन्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बनाये रहने, सहयोग भरा आदान-प्रदान चलाने के लिए स्वभाव में शालीनता का समावेश करना अनिवार्य रूप से आवश्यक है । यह समझा ही नहीं, व्यवहार में भी लाया जाना चाहिए । निरन्तर पर्यवेक्षक और अभ्यास करते कराते रहने से यह आदत भी स्वभाव का अंग बन जाती है ।

उदार सहकारिता से एक-दूसरे का हाथ बँटाने की प्रवृत्ति को प्रधानता दी जाती है । कर्तृत्व को प्रधान, अधिकार को गौण रखना पड़ता है । उदारता बरतने पर उलटकर सद्भावना मिलती है जो पूँजी की अपेक्षा अनेक गुना लाभांश उत्पन्न करने वाली उच्चस्तरीय भाव प्रेरणा देती है ।

प्रज्ञा परिजनों को अपने परिवार में इन पंचशील की सत्प्रवृत्तियों का बीजरोपण, अभिवर्द्धन करना चाहिए । वे देखेंगे कि इस आधार पर कैसे हरीतिमा लहलहाती है । और कैसी बहुमूल्य फसल कटती है ?

परिवार योगाभ्यास का सुव्यवस्थित कार्यक्षेत्र

सिद्धान्त और अभ्यास के मिलने से शिक्षा का समग्र स्वरूप बनता है । शान्ति, सुव्यवस्था और प्रगति के लिए जिन सिद्धान्तों का महत्व है उनका वर्ण, धर्म, अध्यात्म दर्शन, नीति, मर्यादा, अनुशासन आदि की विधि-व्यवस्थाओं के अन्तर्गत विस्तारपूर्वक समझाया गया है । स्वाध्याय एवं सत्संग के प्रत्यक्ष तथा मनन-चिन्तन के परोक्ष माध्यमों में भी उत्कृष्टता की उपयोगिता, आवश्यकता समझने में सहायता मिलती रहती है । यों माहौल पतनोन्मुख दुष्प्रवृत्तियों का ही रहता है कि और प्रचलन निकृष्टता की ओर ही धकेलता है फिर भी उत्कृष्टता के बौद्धिक समर्थन का अभाव नहीं है । धर्मशास्त्रों से लेकर उपदेशकर्त्ताओं का प्रतिपादन ऊँच्छाई और ऊँचाई का ही महत्व बताता है । अन्तरात्मा के मर्मस्थल भी उसी का समर्थन करते हैं । सिद्धान्त की दृष्टि से प्रगतिशीलता का स्वरूप एवं महत्व, समझने समझाने में कोई बड़ी कठिनाई नहीं है ।

अब दूसरा पक्ष रह जाता है अभ्यास का । जीवन क्रम में मानवी आदर्शों का समावेश करने के लिए यह आवश्यक है कि सिद्धान्तों को व्यवहार में उतारा जाय । कठिनाई यह पड़ती है कि इसका अभ्यास कैसे हो ? कुसंस्कार चिरसंचित हैं, निकृष्ट योनियों में रहने के कारण जन्म-जन्मान्तरों से कृमि-कीटकों जैसी आदतें और पशुओं जैसी दुष्प्रवृत्तियाँ स्वभाव का अंग बनकर रह रही होती हैं । इन मान्यताओं, आकांक्षाओं और आदतों का समुच्चय इतना जटिल और गहरा होता है कि अन्तःकरण के मर्म स्थल से उनका उखाड़ना अति कठिन होता है । सद्विचारों और सद्भावों का प्रशिक्षण एक कोने पर रखा रह जाता है और वे हठीली दुष्प्रवृत्तियाँ अवसर पाते ही नंगा-नाच नाचने लगती हैं । यह अन्तर्द्वन्द्व ही प्रगति पथ की सबसे बड़ी बाधा है । उसी से निपटने के लिए योग और तप के अन्तर्गत आने वाले अनेकानेक अनुष्ठानों का अभ्यास करना पड़ता है । उपासना और साधना का अन्तःक्षेत्र में चलने वाला पुरुषार्थ इसी प्रयोजन के पूर्ति के लिए सृजा गया है ।

सत्प्रवृत्तियों को व्यवहार में कैसे उतारा जाय ? इसके लिए सुनियोजित और निरन्तर प्रयोग में आने वाले कार्यक्षेत्र की आवश्यकता है । वह क्षेत्र ऐसा होना चाहिए जिसमें एक नहीं-उन अनेकानेक सत्प्रवृत्तियों का अभ्यास चलता रहे तो सर्वतोमुखी प्रगति के लिए अनिवार्य रूप से अभीष्ट है । ऐसा कार्यक्षेत्र परिवार ही हो सकता है । परिवार अर्थात वह समुदाय जिसके साथ साधना-सूत्रों से जुड़ा रहना पड़ता है और जिनके साथ दैनिक आदान-प्रदान में कभी-कभी ही किसी-किसी से वास्ता पड़ता है । इसलिए समाजसेवी के लिए यह अवसर कम ही रहता है कि नियमित रूप से निरन्तर सत्प्रवृत्तियों के संवर्द्धन का अभ्यास चलता रहे । परिवार समाज का वह घटक है जिसके साथ व्यक्ति का सम्पर्क निरन्तर रहता है और उस सम्पर्क का स्वार्थ और परमार्थ का समन्वय स्थायित्व भी प्रदान करता है ।

परिवार वस्तुतः एक साधना तपोवन है जिसमें मनुष्य को अपनी तथा साथियों की दुष्प्रवृत्तियों से जूझना पड़ता है । इतना ही नहीं उस निराकरण के साथ-साथ सत्प्रवृत्तियों के संस्थापन और अभिवर्द्धन का भी प्रयत्न चलता है । जन्मजात रूप से मनुष्य भी एक पशु है । उसकी काया को मानवता की उच्च सिंहासन पर बिठाने के लिए सुसंस्कारी अभ्यासों का कष्टसाध्य प्रयत्न करना पड़ता है । इस प्रयत्न की सफल प्रयोगशाला के रूप में परिवार की भूमिका ही प्रधान होती है । स्वार्थ-परमार्थ का जैसा सुन्दर सामंजस्य इस क्षेत्र में सहज स्वाभाविक रीति से उपलब्ध होता है वैसा अन्यत्र मिल सकना कठिन है ।

भावना और कुशलता के दोनों ही पक्ष पारिवारिकता विधि-व्यवस्था के अन्तर्गत सरलतापूर्वक चलते रह सकते हैं और गृहस्थ के लिए योगी, तपस्वी, परमार्थी तथा सुधारक की अति महत्वपूर्ण भूमिकाएँ निभा सकना संभव नहीं हो सकता है । आवश्यकता इस बात की है कि पारिवारिकता को उच्च आदर्शों के अनुरूप ढाला और विकसित किया जाय । इसी प्रक्रिया को गृहस्थ योग कहते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आकर्षण और विनोद का माहौल बनाने की आवश्यकता

सद्गुणों की क्षमता बहुत ही विस्तृत है । दैवी सम्पदाएँ गीता में २६ गिनाई गयी हैं । संसार के अन्यान्य धर्म दर्शनों में भी उनका विशद् वर्णन-विवेचन हुआ है । बात जितनी बड़ी होती जाती है, उतनी ही जंजाल बनती जाती है । विशाल संख्या वाले तथ्यों को समझना और याद रखना भी कठिन हो जाता है । इसलिए उनकी संख्या जितनी कम हो, उतनी ही सुविधाजनक रहेगी ।

इस दृष्टि से मान्यतापरक सद्गुणों को चार की संख्या में भी सीमित किया जा सकता है । (१) समझदारी, (२) ईमानदारी, (३) जिम्मेदारी और बहादुरी । इन चारों को चार वेदों का सार-संक्षेप भी माना जा सकता है । दिशाएँ चार हैं । वर्ण भी चार और आश्रम भी चार, युग भी चार और ब्रह्माजी के मुख भी चार । ऐसी ही प्रतिष्ठा उपरोक्त चार गुणों की की जा सके, तो समझना चाहिए कि जीवन के गणेश चतुर्थी जैसा बन पड़ने का आधार मिल गया । विष्णु भगवान के चार हाथों का आशीर्वाद और चार आयुधों का समर्थन मिल गया ।

यों कहने को तो सभी अपने को समझदार कहते हैं, पर उनकी यह मान्यता कसौटी पर कसने से खोटे-सिक्के की तरह अवास्तविक सिद्ध होती है । चतुर, बालक, धूर्त, प्रपंची भी अपने आपको समझदार होने का दावा करते हैं । अधिक पढ़े-लिखे और पद अधिकार उपलब्ध कर लेने वाले भी ऐसे ही दावे करते हैं । जिनने सम्पदा जमा कर ली है, वे भी अपने को दूसरों की तुलना में अधिक समझदार होने का अभिमान सँजोये हुए होते हैं । सफलता पाने वाले, विपक्षी को गिरा देने वाले भी समझदारी की डींग हाँकते देखे गये हैं । पर वस्तुतः यह उन सबका भ्रम मात्र ही है ।

समझदारी की वास्तविकता उसकी दूरदर्शिता में सन्निहित है । दूरदर्शिता अर्थात् कृत्यों के परिणाम का सही प्रकार अनुमान लगा सकना । लोगों को तात्कालिक लाभ ही सब कुछ दीखता है, भले ही उसका परिणाम आगे चलकर कितना ही कष्टकारक, पतनोन्मुख एवं अपयश से भरा-पूरा वर्णित हो । जाल में फँसने वाली चिड़िया, मछुओं के छद्म में घुस पड़ने वाली मछलियाँ इसका उदाहरण हैं-वे आटा देखती हैं, काँटा नहीं । असंयमी इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है । लोलुपता उनसे कुछ भी करा लेती है । वासना, तृष्णा में आक्रान्त व्यक्ति क्षणिक चसक पर, चासनी में डूब मरने वाली मक्खी की तरह आचरण करते हैं । लिप्सा की ललक जब तक पूरी नहीं हो पाती उससे पहिले ही दुष्परिणाम के संकट गहराने लगते हैं । चटोरे अभ्यास से अधिक मात्रा में खा मरते हैं और पेट को, समस्त शरीर को अनेकानेक बीमारियों का घर बना लेते हैं । कामुक और नशेबाज भी अपने पैरों कुल्हाड़ी मारते हैं । सूखी हड्डी चबाने वाला कुत्ता अपने जबड़ों से निकलने वाले खून को सूखी हड्डी का स्वाद मानता और जबड़ों को लहूलुहान करता रहता है । बचपन में आवारागर्दी करने वाले लड़के आगे चलकर पग-पग पर ठोकरें खाते हैं और हेय स्तर का जीवन जीते हैं । इसके विपरीत जिन्हें दूर की सूझती है, वे किसान की-माली के-विद्यार्थी के तरह आरम्भ में कठोर श्रम-खुशी-खुशी करते हैं और समय आने पर सम्पन्नता, सफलता और प्रतिष्ठा का अयाचित प्रतिदान प्राप्त करते हैं । कुमार्ग छोड़कर और सन्मार्ग अपनाना और कुछ नहीं, मात्र दूरदर्शिता अपनाने की सहज प्रतिक्रिया है । सदाशयता का राजमार्ग भी इसे समझा जा सकता है । इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए गृहपति को भी लगना चाहिए । साथ ही परिवार के अन्य जनों को भी प्रेरित, प्रोत्साहित करते रहना चाहिए ।

मित्रों, साथियों की सभी को आवश्यकता पड़ती है । उनके साथ जी खोलकर बात करने का सुयोग मिलता है । इसीलिए हर किसी का मन उन्हें खोजने, साथ रहने का होता है । अच्छा है यह आवश्यकता परिवार के परिसर में ही पूरी की जाती रहे । सभी सदस्य एक-दूसरे को घनिष्ट मित्रता के धागे में बाँधते रहें । ऐसी परिस्थिति न बनने दें, जिससे कोई किसी के साथ जी खोलकर बात न कर सके । संकोच को ही शिष्टाचार मान बैठें । परस्पर लजाते और झेंपते रहें । अत्यन्त आवश्यक काम की बात कहने भर को मुँह खोलें और तत्काल बन्द कर लें । यह स्थिति सभी की प्रगति में बाधक बनकर अड़ती है । इसलिए जहाँ यह अड़चन अड़ रही हो, वहाँ उसे निरस्त करने का प्रयत्न चलना चाहिए ।

परिजनों की घनिष्टता के अनेक लाभ हैं । उन्हें सहचरत्व का लाभ घर में मिल जाता है, तो उसमें क्लब जैसा आकर्षण बना रहता है । बाहर भागने की आतुरता नहीं उभरती । इससे कुसंग में फँसने की आशंका न रहेगी । इन दिनों माहौल ही कुछ ऐसा है, जिसमें शालीनता, सज्जनता, सहृदयता, आदर्शवादिता के तत्व कहीं ढूँढ़े नहीं मिलते । जहाँ भी देखा जाय पतन-पराभव का वातावरण मिलेगा । इस जाल-जंजाल में फँसने से सब प्रकार की हानियाँ उठाते रहने के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगता । इसलिए समझदारी इसी में समझी जाती है कि घर के सदस्यों को कुसंग में फँसने और दुर्गुणों का पिटारा बनने से रोका जाय, पर इसमें भी आंशिक सफलता ही मिलती है, कारण कि घर के वातावरण में डाँट-डपट, झिझक-संकोच, नीरसता जैसा ही कुछ पाया जाता है । उसमें न कहीं आकर्षण होता है, न मनोरंजन । रोटी खाने, नित्य-कर्म करने और नींद लेने जैसी सुविधाएँ ही वहाँ मिलती हैं । सराय में ठहरने जैसी इतनी स्वल्प सुविधाओं से शरीरचर्या का काम तो चल जाता है, पर मन को तनिक भी सन्तोष नहीं होता-यार-दोस्तों से मिलने, क्लब में मनोरंजन करने निकल जाते हैं, ताश-चौपड़ खेलते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं । बच्चे जरा से पंख उगते ही बाहर भागते हैं, उन्हें आवारा किस्म के लोग ही फालतू मिलते हैं । उन्हीं के पास भरती के लिए समय होता है । बस खाँ बैठ जाता है और बताकर या बिना बताये किसी बहाने से उन्हीं के साथ मिला जाता है । महिलाएँ भी सहेलियों के घर पर डोलती रहने वाली बुढ़ियों के साथ गपबाजी करती हैं । यह सभी प्रसंग ऐसे हैं, जिनमें किसी का भला नहीं । मात्र हानि ही हानि है । समय की इस बर्बादी को रोकने के लिये एकमात्र उपाय यही है कि घर के वातावरण में इतने आकर्षण बढ़ा दिए जायें, जिनमें हर किसी का मन लगा रहे । आमतौर से सभी दिन का अधिकांश भाग अपने आवश्यक कार्यों में व्यतीत करते हैं । रात को सोते हैं । मनोरंजन ढूँढ़ने का समय थोड़ा ही हाथ लगता है । यही यदि कुसंग में बीत जाय, तो समझना चाहिए कि जो कमाया गया था, उससे कहीं अधिक हानि उठाये जाने का संकट खड़ा हो गया । उसमें फँसने वाले की जिन्दगी खराब होने के लक्षण प्रकट हो गये ।

यदि यह अखरता है, तो उपाय एक ही है कि घर में खोज-खोजकर परीक्षा प्रशिक्षण के आकर्षण, मनोरंजन के कार्यक्रम प्रचलित किए जायें । संगीत, खेल-स्वाध्याय, कथा-कहानी जैसी प्रतिष्ठापनाएँ अवकाश वाले क्षणों में चलनी चाहिए । घरेलू पुस्तकालय ऐसा होना चाहिए जिसमें विचारशीलता को प्रोत्साहन देने वाली सामग्री भरी पड़ी हो । अनभ्यस्त होने के कारण यह नया आरम्भ कुछ अटपटा और कठिन लग सकता है, पर वस्तुतः वह है अति सरल । कठिनाई मात्र आरम्भ करने के प्रथम चरण की ही है । एक बार उत्साह और साहसपूर्वक घर के ढाँचे में सुधार करने की बात सोच ली जाय, तो फिर उसे पूरा कर गुजरना किसी के लिए भी-कुछ भी कठिन नहीं पड़ना चाहिए ।

विचार-विनिमय प्रत्यक्ष चलने में झिझक आड़े आये, तो परिवार में उसकी जिससे घनिष्टता हो, उसके माध्यम से कठिनाई तथा इच्छा जानी जा सकती है और उसी माध्यम से अपने परामर्श उस तक पहुँचाये जा सकते हैं । यों ऐसे गम्भीर प्रश्न बहुत ही कम होते हैं, जिनके लिए गहराई तक कुरेद-बीन करने की आवश्यकता पड़े और उसके दार्शनिक स्तर के उत्तर-विस्तार देने पड़ें । हँसने-हँसाने के मूड में भी आवश्यकता समाधान तर्क-तथ्य और प्रमाण सहित संक्षेप में भी प्रस्तुत किये जा सकते हैं । न बन पड़ना सम्भव हो, उसके लिए स्पष्ट मना करके विद्वेष खड़ा करने की अपेक्षा यही उत्तम है कि बात उपेक्षा में टाल दी जाय । एक समय की उमंग समय बीतते जाने पर ढीली पड़ती जाती है । इस प्रकार बहुत-सी अड़चनें समय के दबाव से स्वयमेव हल हो जाती हैं । महत्वपूर्ण प्रश्न नवीन आकर्षणों के आरम्भ करने का है । इसके लिए अधिक आकर्षण विनोद खेलकूद का है । जहाँ उछल-कूद की गुंजाइश हो वहाँ बैडमिंटन, टेबिल टेनिस जैसे प्रयोग घर में ही आरम्भ किये जा सकते हैं । जहाँ जगह की कमी हो वहाँ ताश, शतरंज, चौपड़, कैरमबोर्ड जैसे उपकरणों का प्रयोग किया जा सकता है ।

संगीत, सहगान-कीर्तन, कथा-चर्चा जैसे प्रयोग भी ऐसे हैं, जो घर में ही मनोरंजन के साधन उपलब्ध कराते हैं । इनके प्रति पिछला आकर्षण अभ्यास न रहा हो तो नया चस्का लगाया जा सकता है ।

एक-दूसरे के कामों में सहायता देना भी एक ऐसा काम है, हर घड़ी हर किसी को नजर उठाते ही मिल सकता है । सहयोग और सहकारिता के क्रिया-कलापों में वह शक्ति सन्निहित है, जो एक-दूसरे को परस्पर जोड़ती है, सहयोगी और मित्र बनाती है । यही तो वह प्रमुख आवश्यकता है, जो परिवार के सभी सदस्यों को स्नेह-सद्भाव के सूत्र में लम्बे समय तक बाँधे रहती है । इन छोटी-छोटी घटनाओं को हर कोई बहुत समय बीत जाने पर भी याद करता रहता है और कृतज्ञता की गहराई तक सँजोये रहता है ।

कृतज्ञता की गरिमा बहुत कम लोग समझ पाते हैं । याद तो उसे कोई-कोई ही रखते हैं । इसका उपाय यही है कि घर के लोग अपनी सेवा-सहायता की चर्चा तो करें पर दूसरों के द्वारा जो जिसकी जितनी सहायता बन पड़ रही है, वह किस सद्भावना पर आश्रित है, इसका संकेत किया जाता रहे । अपने को छोड़कर घर के अन्य सदस्यों ने दूसरे साथियों के प्रति जो सद्भाव बना रखे हैं, उस मनोदशा की चर्चा का क्रम भी चलते रहना चाहिए । इस प्रकार कृतज्ञता की मुरझाती बेल को सींचने का सुयोग बन सकता है और एक-दूसरे के लिए अधिक सद्भाव उभरते रहने का अवसर मिल सकता है । यह सद्भावना ही किसी परिवार को समुन्नत बनाने की प्रमुख भूमिका अदा करती है ।

स्वाध्याय परम्परा—पारिवारिक प्रगति का प्राण

पारिवारिक जीवन की असफलता और निरन्तर बढ़ रहे असन्तोष से चिन्तित अमेरिकी सरकार के समाज कल्याण विभाग ने उन परिस्थितियों का व्यापक सर्वेक्षण कराया जो इन असफलताओं का कारण बन रही हैं । यह इस सर्वेक्षण का एक पहलू था जिसमें केवल निषेधात्मक तत्वों की खोज सम्भव हुई, पर बुराई का कारण जान लेना उसके निवारण के उपाय खोज लेना मात्र किसी समस्या का समाधान नहीं हो सकते । जब तक असफलता और असन्तोष के स्थान पर सफलता व सन्तोषजनक परिणामों का विकास करने वाले विधेयात्मक पक्ष पहलू न खोजे जायें ।

पौधों में लगी बीमारी ढूँढ़कर उसकी औषधि छिड़क देने से बीमारी का प्रकोप थम सकता है, पर उतने मात्र से अच्छी फसल अच्छी उपज की आशा नहीं की जा सकती जब तक उसके पोषण अभिसिंचन के भी उपाय व्यवहार में न लाये जायें । यह तथ्य जैसे ही विशेषज्ञों की समझ में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रिय पदार्थों के लोक-कल्याण के लिए वायुमण्डल में बिखरने की प्रक्रिया सम्पन्न की जाती है । परमार्थ प्रवृत्ति का प्रतीक मानकर समय, श्रम एवं सद्भाव समर्पण ही प्रकारान्तर से यज्ञीय कर्मकाण्ड का सार तत्व है । इस देव प्रवृत्ति को जन-जन में जगाया जाना चाहिए और उसका प्रतीक पूजन अपने परिवारों से आरम्भ करना चाहिए । ब 'बलि वैश्व परम्परा' को दैनिक धर्मकृत्य माना गया है । उसका प्रचलन इन दिनों लुप्त प्राय: हो गया है । हमारे परिवारों से उसका पुनर्जीवन आरम्भ होना चाहिए ।

चौके में जब भोजन तैयार हो जाय तो खाना आरम्भ करने से पूर्व चूल्हे में से अग्नि बाहर निकालकर प्रज्ज्वलित की जाय और रोटी के छोटे-छोटे टुकड़े घी और शक्कर मिलाकर गायत्री मन्त्र उच्चारण करते हुए पाँच बार में हवन कर दिये जाएँ । बाद में जल अंजलि की परिक्रमा उस अग्नि के चारों ओर परिक्रमा रूप में घुमा दिया जाय । इस अग्नि को पवित्र माना जाय । बुझने पर भस्म को सुरक्षित रख लिया जाय और सुविधानुसार किसी पवित्र जलाशय में विसर्जित कर दिया जाय । यही है बलिवैश्व, अग्निहोत्र की सरल प्रक्रिया जिसे महिलाएँ बड़ी आसानी से बिना किसी अड़चन के अपने घरों में नियमित रूप से करती रह सकती हैं । इसमें खर्च कुछ नहीं, किसी प्रकार का झंझट भी नहीं । इस पुनीत प्रक्रिया में भावभरा आदर्श यह सन्निहित है कि यज्ञीय परम्परा का परिपोषण करने में इस परिवार की सुनिश्चित आस्था है ।

भगवान को भोग लगाकर तब प्रसाद ग्रहण की परम्परा भारतीय संस्कृति का अंग है । कमाना अपना पुरुषार्थ है, पर खाने से पूर्व विराट् सत्ता को, विशाल विश्व की आवश्यकता को ध्यान में रखा जाना चाहिए । उपार्जन को समर्पण भगवान की सत्प्रवृत्तियों को, बचा हुआ निर्वाह अपने लिये । यही है ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग का सार निष्कर्ष । यज्ञ कृत्य में इसी बलिदर्शन की प्रतीक पूजा की जाती है और प्रेरणा ग्रहण की जाती है कि व्यक्तिगत रीति-नीति से जीवन को यज्ञमय बनाना लक्ष्य होगा तथा समाज में संसार से कुछ उठा न रखा जायगा । इन्हीं के आदर्शों की मूर्तिमान पूजा प्रक्रिया उन्हें जीवन्त रखने तथा परिपुष्ट बनाने की शपथ 'बलिवैश्व ' के रूप में हर दिन उठाई जाती है ।

गायत्री को भारतीय संस्कृति की माता और यज्ञ को भारतीय धर्म का पिता कहा गया है । दोनों की अभ्यर्थना अपने परिवारों में नियमित रूप से होनी चाहिए । 'नमन वन्दन' के माध्यम से गायत्री उपासना का न्यूनतम क्रियाकलाप सम्पन्न होता है और बलिवैश्व की पाँच आहुतियाँ द्वारा यज्ञ देव की अभ्यर्थना की जाती है । भगवान पहले पीछे का तात्पर्य है-आदर्श पहले, समाज पहले । उसके उपरान्त निर्वाह एवं उपयोग ।

बलिवैश्व का नन्हा-सा क्रिया-कृत्य भोजन बनाने वाली एक महिला एक मिनट समय में पाँच रत्ती सामग्री हवन करके पूरा कर देती है, पर उस भावना से परिचित हर किसी को होना चाहिए । समय-समय पर बलिवैश्व की यज्ञ दर्शन की व्याख्या-विवेचना होनी चाहिए और अपनी परम्परा में उस दर्शन की प्रमुखता रहने की स्मृति रहने की प्रेरणा मिलती रहनी चाहिए ।

बलिवैश्व की पाँच आहुतियाँ पारिवारिक पंचशीलों के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है । पंचशील में (१) सुव्यवस्था, (२) मितव्ययिता, (३) सहकारिता, (४) श्रमशीलता, (५) शालीनता है । इनकी विवेचना अन्यत्र की जा रही है । भोजन को पेट में अवस्थित वैश्वानर भगवान तक पहुँचाने से पूर्व हर सदस्य पाँच बार गायत्री मन्त्र का मौन रूप से या उच्चारणपूर्वक पाठ कर लिया करे । यह भी मानसिक अग्नि होत्र एवं बलिवैश्व का ही प्रतीक है ।

(३) सामूहिक प्रार्थना, आरती, सहगान

सामूहिक प्रार्थना का क्रम हर घर में चलना चाहिए । एकाकीपन का स्थान हर क्षेत्र में सामूहिकता को लेना चाहिए । मिल-जुलकर किये गये कार्य हर दृष्टि से अधिक प्रभावी और अधिक सफल होते हैं । यह दृष्टि उपासना के सन्दर्भ में भी रखी जाय । एकाकी उपासना के अतिरिक्त सामूहिक प्रार्थना में भाग लेना भी आवश्यक समझा जाय । यह सामूहिकता पूजा, आरती से एक धर्म परम्परा के रूप में आरम्भ होनी चाहिए और उसका विस्तार घर के हर काम में मिल-जुलकर काम करने का उत्साह निरन्तर बढ़ना चाहिए । मिल-जुलकर काम करना खेल की तरह आनन्ददायक हो जाता है । कुशलता बढ़ती है और प्रतिफल का उपयोग करने में गर्व एवं सन्तोष होता है ।

प्रात:काल जल्दी उठने की आदत पड़ सके तो सामूहिक प्रार्थना, आरती एवं सहगान में से तीनों का या एक-दो की जो व्यवस्था बन सके वह बनानी चाहिए । यह कार्य सूर्योदय से पूर्व ही हो जाने का है । यही बात सायंकाल के सम्बन्ध में भी है । तीनों में से एक दो या तीनों की करने में जहाँ जैसी सुविधा हो वहाँ वैसा करना चाहिए । सूर्य अस्त होने के उपरान्त सोने तक के समय में से जो जहाँ अनुकूल पड़े निर्धारित रखा जा सकता है । आरती की विधि सब को मालूम है, उसमें अधिक आवाज करने वाले शंख, घडियाल, झाँझ आदि या कम आवाज करने वाले घण्टी, मजीरा आदि का उपयोग हो सकता है ।

आरती को शास्त्रीय विधि से करना हो तो उसके लिए निर्धारित विधि-विधान अपनाया जा सकता है । इसकी पुस्तिका भी उपलब्ध है । इसके टेप बनाये गये हैं जो टेप रिकॉर्डर पर चढ़ा देने से परिपूर्ण आरती का आनन्द देते हैं । इनके साथ-साथ धीमे स्वर से घर के लोग उच्चारण करते रहें तो कण्ठ भी सधेगा और स्वर विभेद कारण उत्पन्न होने वाली अस्त-व्यस्तता एवं धर्म की दिशा में मनोभूमि को अग्रसर करने वाले एक दो गीत अदल-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रिय पदार्थों के लोक-कल्याण के लिए वायुमण्डल में बिखरने की प्रक्रिया सम्पन्न की जाती है । परमार्थ प्रवृत्ति का प्रतीक मानकर समय, श्रम एवं सद्भाव समर्पण ही प्रकारान्तर से यज्ञीय कर्मकाण्ड का सार तत्व है । इस देव प्रवृत्ति को जन-जन में जगाया जाना चाहिए और उसका प्रतीक पूजन अपने परिवारों से आरम्भ करना चाहिए । ब 'बलि वैश्व परम्परा' को दैनिक धर्मकृत्य माना गया है । उसका प्रचलन इन दिनों लुप्त प्राय: हो गया है । हमारे परिवारों से उसका पुनर्जीवन आरम्भ होना चाहिए ।

चौके में जब भोजन तैयार हो जाय तो खाना आरम्भ करने से पूर्व चूल्हे में से अग्नि बाहर निकालकर प्रज्ज्वलित की जाय और रोटी के छोटे-छोटे टुकड़े घी और शक्कर मिलाकर गायत्री मन्त्र उच्चारण करते हुए पाँच बार में हवन कर दिये जाएँ । बाद में जल अंजलि की परिक्रमा उस अग्नि के चारों ओर परिक्रमा रूप में घुमा दिया जाय । इस अग्नि को पवित्र माना जाय । बुझने पर भस्म को सुरक्षित रख लिया जाय और सुविधानुसार किसी पवित्र जलाशय में विसर्जित कर दिया जाय । यही है बलिवैश्व, अग्निहोत्र की सरल प्रक्रिया जिसे महिलाएँ बड़ी आसानी से बिना किसी अड़चन के अपने घरों में नियमित रूप से करती रह सकती हैं । इसमें खर्च कुछ नहीं, किसी प्रकार का झंझट भी नहीं । इस पुनीत प्रक्रिया में भावभरा आदर्श यह सन्निहित है कि यज्ञीय परम्परा का परिपोषण करने में इस परिवार की सुनिश्चित आस्था है ।

भगवान को भोग लगाकर तब प्रसाद ग्रहण की परम्परा भारतीय संस्कृति का अंग है । कमाना अपना पुरुषार्थ है, पर खाने से पूर्व विराट् सत्ता को, विशाल विश्व की आवश्यकता को ध्यान में रखा जाना चाहिए । उपार्जन को समर्पण भगवान की सत्प्रवृत्तियों को, बचा हुआ निर्वाह अपने लिये । यही है ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग का सार निष्कर्ष । यज्ञ कृत्य में इसी बलिदर्शन की प्रतीक पूजा की जाती है और प्रेरणा ग्रहण की जाती है कि व्यक्तिगत रीति-नीति से जीवन को यज्ञमय बनाना लक्ष्य होगा तथा समाज में संसार से कुछ उठा न रखा जायगा । इन्हीं के आदर्शों की मूर्तिमान पूजा प्रक्रिया उन्हें जीवन्त रखने तथा परिपुष्ट बनाने की शपथ 'बलिवैश्व ' के रूप में हर दिन उठाई जाती है ।

गायत्री को भारतीय संस्कृति की माता और यज्ञ को भारतीय धर्म का पिता कहा गया है । दोनों की अभ्यर्थना अपने परिवारों में नियमित रूप से होनी चाहिए । 'नमन वन्दन' के माध्यम से गायत्री उपासना का न्यूनतम क्रियाकलाप सम्पन्न होता है और बलिवैश्व की पाँच आहुतियाँ द्वारा यज्ञ देव की अभ्यर्थना की जाती है । भगवान पहले पीछे का तात्पर्य है-आदर्श पहले, समाज पहले । उसके उपरान्त निर्वाह एवं उपयोग ।

बलिवैश्व का नन्हा-सा क्रिया-कृत्य भोजन बनाने वाली एक महिला एक मिनट समय में पाँच रत्ती सामग्री हवन करके पूरा कर देती है, पर उस भावना से परिचित हर किसी को होना चाहिए । समय-समय पर बलिवैश्व की यज्ञ दर्शन की व्याख्या-विवेचना होनी चाहिए और अपनी परम्परा में उस दर्शन की प्रमुखता रहने की स्मृति रहने की प्रेरणा मिलती रहनी चाहिए ।

बलिवैश्व की पाँच आहुतियाँ पारिवारिक पंचशीलों के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है । पंचशील में (१) सुव्यवस्था, (२) मितव्ययिता, (३) सहकारिता, (४) श्रमशीलता, (५) शालीनता है । इनकी विवेचना अन्यत्र की जा रही है । भोजन को पेट में अवस्थित वैश्वानर भगवान तक पहुँचाने से पूर्व हर सदस्य पाँच बार गायत्री मन्त्र का मौन रूप से या उच्चारणपूर्वक पाठ कर लिया करे । यह भी मानसिक अग्नि होत्र एवं बलिवैश्व का ही प्रतीक है ।

(३) सामूहिक प्रार्थना, आरती, सहगान

सामूहिक प्रार्थना का क्रम हर घर में चलना चाहिए । एकाकीपन का स्थान हर क्षेत्र में सामूहिकता को लेना चाहिए । मिल-जुलकर किये गये कार्य हर दृष्टि से अधिक प्रभावी और अधिक सफल होते हैं । यह दृष्टि उपासना के सन्दर्भ में भी रखी जाय । एकाकी उपासना के अतिरिक्त सामूहिक प्रार्थना में भाग लेना भी आवश्यक समझा जाय । यह सामूहिकता पूजा, आरती से एक धर्म परम्परा के रूप में आरम्भ होनी चाहिए और उसका विस्तार घर के हर काम में मिल-जुलकर काम करने का उत्साह निरन्तर बढ़ना चाहिए । मिल-जुलकर काम करना खेल की तरह आनन्ददायक हो जाता है । कुशलता बढ़ती है और प्रतिफल का उपयोग करने में गर्व एवं सन्तोष होता है ।

प्रात:काल जल्दी उठने की आदत पड़ सके तो सामूहिक प्रार्थना, आरती एवं सहगान में से तीनों का या एक-दो की जो व्यवस्था बन सके वह बनानी चाहिए । यह कार्य सूर्योदय से पूर्व ही हो जाने का है । यही बात सायंकाल के सम्बन्ध में भी है । तीनों में से एक दो या तीनों की करने में जहाँ जैसी सुविधा हो वहाँ वैसा करना चाहिए । सूर्य अस्त होने के उपरान्त सोने तक के समय में से जो जहाँ अनुकूल पड़े निर्धारित रखा जा सकता है । आरती की विधि सब को मालूम है, उसमें अधिक आवाज करने वाले शंख, घडियाल, झाँझ आदि या कम आवाज करने वाले घण्टी, मजीरा आदि का उपयोग हो सकता है ।

आरती को शास्त्रीय विधि से करना हो तो उसके लिए निर्धारित विधि-विधान अपनाया जा सकता है । इसकी पुस्तिका भी उपलब्ध है । इसके टेप बनाये गये हैं जो टेप रिकॉर्डर पर चढ़ा देने से परिपूर्ण आरती का आनन्द देते हैं । इनके साथ-साथ धीमे स्वर से घर के लोग उच्चारण करते रहें तो कण्ठ भी सधेगा और स्वर विभेद कारण उत्पन्न होने वाली अस्त-व्यस्तता एवं धर्म की दिशा में मनोभूमि को अग्रसर करने वाले एक दो गीत अदल-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रिय पदार्थों के लोक-कल्याण के लिए वायुमण्डल में बिखरने की प्रक्रिया सम्पन्न की जाती है । परमार्थ प्रवृत्ति का प्रतीक मानकर समय, श्रम एवं सद्भाव समर्पण ही प्रकारान्तर से यज्ञीय कर्मकाण्ड का सार तत्व है । इस देव प्रवृत्ति को जन-जन में जगाया जाना चाहिए और उसका प्रतीक पूजन अपने परिवारों से आरम्भ करना चाहिए । ब 'बलि वैश्व परम्परा' को दैनिक धर्मकृत्य माना गया है । उसका प्रचलन इन दिनों लुप्त प्राय: हो गया है । हमारे परिवारों से उसका पुनर्जीवन आरम्भ होना चाहिए ।

चौके में जब भोजन तैयार हो जाय तो खाना आरम्भ करने से पूर्व चूल्हे में से अग्नि बाहर निकालकर प्रज्ज्वलित की जाय और रोटी के छोटे-छोटे टुकड़े घी और शक्कर मिलाकर गायत्री मन्त्र उच्चारण करते हुए पाँच बार में हवन कर दिये जाएँ । बाद में जल अंजलि की परिक्रमा उस अग्नि के चारों ओर परिक्रमा रूप में घुमा दिया जाय । इस अग्नि को पवित्र माना जाय । बुझने पर भस्म को सुरक्षित रख लिया जाय और सुविधानुसार किसी पवित्र जलाशय में विसर्जित कर दिया जाय । यही है बलिवैश्व, अग्निहोत्र की सरल प्रक्रिया जिसे महिलाएँ बड़ी आसानी से बिना किसी अड़चन के अपने घरों में नियमित रूप से करती रह सकती हैं । इसमें खर्च कुछ नहीं, किसी प्रकार का झंझट भी नहीं । इस पुनीत प्रक्रिया में भावभरा आदर्श यह सन्निहित है कि यज्ञीय परम्परा का परिपोषण करने में इस परिवार की सुनिश्चित आस्था है ।

भगवान को भोग लगाकर तब प्रसाद ग्रहण की परम्परा भारतीय संस्कृति का अंग है । कमाना अपना पुरुषार्थ है, पर खाने से पूर्व विराट् सत्ता को, विशाल विश्व की आवश्यकता को ध्यान में रखा जाना चाहिए । उपार्जन को समर्पण भगवान की सत्प्रवृत्तियों को, बचा हुआ निर्वाह अपने लिये । यही है ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग का सार निष्कर्ष । यज्ञ कृत्य में इसी बलिदर्शन की प्रतीक पूजा की जाती है और प्रेरणा ग्रहण की जाती है कि व्यक्तिगत रीति-नीति से जीवन को यज्ञमय बनाना लक्ष्य होगा तथा समाज में संसार से कुछ उठा न रखा जायगा । इन्हीं के आदर्शों की मूर्तिमान पूजा प्रक्रिया उन्हें जीवन्त रखने तथा परिपुष्ट बनाने की शपथ 'बलिवैश्व ' के रूप में हर दिन उठाई जाती है ।

गायत्री को भारतीय संस्कृति की माता और यज्ञ को भारतीय धर्म का पिता कहा गया है । दोनों की अभ्यर्थना अपने परिवारों में नियमित रूप से होनी चाहिए । 'नमन वन्दन' के माध्यम से गायत्री उपासना का न्यूनतम क्रियाकलाप सम्पन्न होता है और बलिवैश्व की पाँच आहुतियाँ द्वारा यज्ञ देव की अभ्यर्थना की जाती है । भगवान पहले पीछे का तात्पर्य है-आदर्श पहले, समाज पहले । उसके उपरान्त निर्वाह एवं उपयोग ।

बलिवैश्व का नन्हा-सा क्रिया-कृत्य भोजन बनाने वाली एक महिला एक मिनट समय में पाँच रत्ती सामग्री हवन करके पूरा कर देती है, पर उस भावना से परिचित हर किसी को होना चाहिए । समय-समय पर बलिवैश्व की यज्ञ दर्शन की व्याख्या-विवेचना होनी चाहिए और अपनी परम्परा में उस दर्शन की प्रमुखता रहने की स्मृति रहने की प्रेरणा मिलती रहनी चाहिए ।

बलिवैश्व की पाँच आहुतियाँ पारिवारिक पंचशीलों के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है । पंचशील में (१) सुव्यवस्था, (२) मितव्ययिता, (३) सहकारिता, (४) श्रमशीलता, (५) शालीनता है । इनकी विवेचना अन्यत्र की जा रही है । भोजन को पेट में अवस्थित वैश्वानर भगवान तक पहुँचाने से पूर्व हर सदस्य पाँच बार गायत्री मन्त्र का मौन रूप से या उच्चारणपूर्वक पाठ कर लिया करे । यह भी मानसिक अग्नि होत्र एवं बलिवैश्व का ही प्रतीक है ।

(३) सामूहिक प्रार्थना, आरती, सहगान

सामूहिक प्रार्थना का क्रम हर घर में चलना चाहिए । एकाकीपन का स्थान हर क्षेत्र में सामूहिकता को लेना चाहिए । मिल-जुलकर किये गये कार्य हर दृष्टि से अधिक प्रभावी और अधिक सफल होते हैं । यह दृष्टि उपासना के सन्दर्भ में भी रखी जाय । एकाकी उपासना के अतिरिक्त सामूहिक प्रार्थना में भाग लेना भी आवश्यक समझा जाय । यह सामूहिकता पूजा, आरती से एक धर्म परम्परा के रूप में आरम्भ होनी चाहिए और उसका विस्तार घर के हर काम में मिल-जुलकर काम करने का उत्साह निरन्तर बढ़ना चाहिए । मिल-जुलकर काम करना खेल की तरह आनन्ददायक हो जाता है । कुशलता बढ़ती है और प्रतिफल का उपयोग करने में गर्व एवं सन्तोष होता है ।

प्रात:काल जल्दी उठने की आदत पड़ सके तो सामूहिक प्रार्थना, आरती एवं सहगान में से तीनों का या एक-दो की जो व्यवस्था बन सके वह बनानी चाहिए । यह कार्य सूर्योदय से पूर्व ही हो जाने का है । यही बात सायंकाल के सम्बन्ध में भी है । तीनों में से एक दो या तीनों की करने में जहाँ जैसी सुविधा हो वहाँ वैसा करना चाहिए । सूर्य अस्त होने के उपरान्त सोने तक के समय में से जो जहाँ अनुकूल पड़े निर्धारित रखा जा सकता है । आरती की विधि सब को मालूम है, उसमें अधिक आवाज करने वाले शंख, घडियाल, झाँझ आदि या कम आवाज करने वाले घण्टी, मजीरा आदि का उपयोग हो सकता है ।

आरती को शास्त्रीय विधि से करना हो तो उसके लिए निर्धारित विधि-विधान अपनाया जा सकता है । इसकी पुस्तिका भी उपलब्ध है । इसके टेप बनाये गये हैं जो टेप रिकॉर्डर पर चढ़ा देने से परिपूर्ण आरती का आनन्द देते हैं । इनके साथ-साथ धीमे स्वर से घर के लोग उच्चारण करते रहें तो कण्ठ भी सधेगा और स्वर विभेद कारण उत्पन्न होने वाली अस्त-व्यस्तता एवं धर्म की दिशा में मनोभूमि को अग्रसर करने वाले एक दो गीत अदल-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रिय पदार्थों के लोक-कल्याण के लिए वायुमण्डल में बिखरने की प्रक्रिया सम्पन्न की जाती है । परमार्थ प्रवृत्ति का प्रतीक मानकर समय, श्रम एवं सद्भाव समर्पण ही प्रकारान्तर से यज्ञीय कर्मकाण्ड का सार तत्व है । इस देव प्रवृत्ति को जन-जन में जगाया जाना चाहिए और उसका प्रतीक पूजन अपने परिवारों से आरम्भ करना चाहिए । ब 'बलि वैश्व परम्परा' को दैनिक धर्मकृत्य माना गया है । उसका प्रचलन इन दिनों लुप्त प्राय: हो गया है । हमारे परिवारों से उसका पुनर्जीवन आरम्भ होना चाहिए ।

चौके में जब भोजन तैयार हो जाय तो खाना आरम्भ करने से पूर्व चूल्हे में से अग्नि बाहर निकालकर प्रज्ज्वलित की जाय और रोटी के छोटे-छोटे टुकड़े घी और शक्कर मिलाकर गायत्री मन्त्र उच्चारण करते हुए पाँच बार में हवन कर दिये जाएँ । बाद में जल अंजलि की परिक्रमा उस अग्नि के चारों ओर परिक्रमा रूप में घुमा दिया जाय । इस अग्नि को पवित्र माना जाय । बुझने पर भस्म को सुरक्षित रख लिया जाय और सुविधानुसार किसी पवित्र जलाशय में विसर्जित कर दिया जाय । यही है बलिवैश्व, अग्निहोत्र की सरल प्रक्रिया जिसे महिलाएँ बड़ी आसानी से बिना किसी अड़चन के अपने घरों में नियमित रूप से करती रह सकती हैं । इसमें खर्च कुछ नहीं, किसी प्रकार का झंझट भी नहीं । इस पुनीत प्रक्रिया में भावभरा आदर्श यह सन्निहित है कि यज्ञीय परम्परा का परिपोषण करने में इस परिवार की सुनिश्चित आस्था है ।

भगवान को भोग लगाकर तब प्रसाद ग्रहण की परम्परा भारतीय संस्कृति का अंग है । कमाना अपना पुरुषार्थ है, पर खाने से पूर्व विराट् सत्ता को, विशाल विश्व की आवश्यकता को ध्यान में रखा जाना चाहिए । उपार्जन को समर्पण भगवान की सत्प्रवृत्तियों को, बचा हुआ निर्वाह अपने लिये । यही है ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग का सार निष्कर्ष । यज्ञ कृत्य में इसी बलिदर्शन की प्रतीक पूजा की जाती है और प्रेरणा ग्रहण की जाती है कि व्यक्तिगत रीति-नीति से जीवन को यज्ञमय बनाना लक्ष्य होगा तथा समाज में संसार से कुछ उठा न रखा जायगा । इन्हीं के आदर्शों की मूर्तिमान पूजा प्रक्रिया उन्हें जीवन्त रखने तथा परिपुष्ट बनाने की शपथ 'बलिवैश्व ' के रूप में हर दिन उठाई जाती है ।

गायत्री को भारतीय संस्कृति की माता और यज्ञ को भारतीय धर्म का पिता कहा गया है । दोनों की अभ्यर्थना अपने परिवारों में नियमित रूप से होनी चाहिए । 'नमन वन्दन' के माध्यम से गायत्री उपासना का न्यूनतम क्रियाकलाप सम्पन्न होता है और बलिवैश्व की पाँच आहुतियाँ द्वारा यज्ञ देव की अभ्यर्थना की जाती है । भगवान पहले पीछे का तात्पर्य है-आदर्श पहले, समाज पहले । उसके उपरान्त निर्वाह एवं उपयोग ।

बलिवैश्व का नन्हा-सा क्रिया-कृत्य भोजन बनाने वाली एक महिला एक मिनट समय में पाँच रत्ती सामग्री हवन करके पूरा कर देती है, पर उस भावना से परिचित हर किसी को होना चाहिए । समय-समय पर बलिवैश्व की यज्ञ दर्शन की व्याख्या-विवेचना होनी चाहिए और अपनी परम्परा में उस दर्शन की प्रमुखता रहने की स्मृति रहने की प्रेरणा मिलती रहनी चाहिए ।

बलिवैश्व की पाँच आहुतियाँ पारिवारिक पंचशीलों के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है । पंचशील में (१) सुव्यवस्था, (२) मितव्ययिता, (३) सहकारिता, (४) श्रमशीलता, (५) शालीनता है । इनकी विवेचना अन्यत्र की जा रही है । भोजन को पेट में अवस्थित वैश्वानर भगवान तक पहुँचाने से पूर्व हर सदस्य पाँच बार गायत्री मन्त्र का मौन रूप से या उच्चारणपूर्वक पाठ कर लिया करे । यह भी मानसिक अग्नि होत्र एवं बलिवैश्व का ही प्रतीक है ।

(३) सामूहिक प्रार्थना, आरती, सहगान

सामूहिक प्रार्थना का क्रम हर घर में चलना चाहिए । एकाकीपन का स्थान हर क्षेत्र में सामूहिकता को लेना चाहिए । मिल-जुलकर किये गये कार्य हर दृष्टि से अधिक प्रभावी और अधिक सफल होते हैं । यह दृष्टि उपासना के सन्दर्भ में भी रखी जाय । एकाकी उपासना के अतिरिक्त सामूहिक प्रार्थना में भाग लेना भी आवश्यक समझा जाय । यह सामूहिकता पूजा, आरती से एक धर्म परम्परा के रूप में आरम्भ होनी चाहिए और उसका विस्तार घर के हर काम में मिल-जुलकर काम करने का उत्साह निरन्तर बढ़ना चाहिए । मिल-जुलकर काम करना खेल की तरह आनन्ददायक हो जाता है । कुशलता बढ़ती है और प्रतिफल का उपयोग करने में गर्व एवं सन्तोष होता है ।

प्रात:काल जल्दी उठने की आदत पड़ सके तो सामूहिक प्रार्थना, आरती एवं सहगान में से तीनों का या एक-दो की जो व्यवस्था बन सके वह बनानी चाहिए । यह कार्य सूर्योदय से पूर्व ही हो जाने का है । यही बात सायंकाल के सम्बन्ध में भी है । तीनों में से एक दो या तीनों की करने में जहाँ जैसी सुविधा हो वहाँ वैसा करना चाहिए । सूर्य अस्त होने के उपरान्त सोने तक के समय में से जो जहाँ अनुकूल पड़े निर्धारित रखा जा सकता है । आरती की विधि सब को मालूम है, उसमें अधिक आवाज करने वाले शंख, घडियाल, झाँझ आदि या कम आवाज करने वाले घण्टी, मजीरा आदि का उपयोग हो सकता है ।

आरती को शास्त्रीय विधि से करना हो तो उसके लिए निर्धारित विधि-विधान अपनाया जा सकता है । इसकी पुस्तिका भी उपलब्ध है । इसके टेप बनाये गये हैं जो टेप रिकॉर्डर पर चढ़ा देने से परिपूर्ण आरती का आनन्द देते हैं । इनके साथ-साथ धीमे स्वर से घर के लोग उच्चारण करते रहें तो कण्ठ भी सधेगा और स्वर विभेद कारण उत्पन्न होने वाली अस्त-व्यस्तता एवं धर्म की दिशा में मनोभूमि को अग्रसर करने वाले एक दो गीत अदल-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रिय पदार्थों के लोक-कल्याण के लिए वायुमण्डल में बिखरने की प्रक्रिया सम्पन्न की जाती है । परमार्थ प्रवृत्ति का प्रतीक मानकर समय, श्रम एवं सद्भाव समर्पण ही प्रकारान्तर से यज्ञीय कर्मकाण्ड का सार तत्व है । इस देव प्रवृत्ति को जन-जन में जगाया जाना चाहिए और उसका प्रतीक पूजन अपने परिवारों से आरम्भ करना चाहिए । ब 'बलि वैश्व परम्परा' को दैनिक धर्मकृत्य माना गया है । उसका प्रचलन इन दिनों लुप्त प्राय: हो गया है । हमारे परिवारों से उसका पुनर्जीवन आरम्भ होना चाहिए ।

चौके में जब भोजन तैयार हो जाय तो खाना आरम्भ करने से पूर्व चूल्हे में से अग्नि बाहर निकालकर प्रज्ज्वलित की जाय और रोटी के छोटे-छोटे टुकड़े घी और शक्कर मिलाकर गायत्री मन्त्र उच्चारण करते हुए पाँच बार में हवन कर दिये जाएँ । बाद में जल अंजलि की परिक्रमा उस अग्नि के चारों ओर परिक्रमा रूप में घुमा दिया जाय । इस अग्नि को पवित्र माना जाय । बुझने पर भस्म को सुरक्षित रख लिया जाय और सुविधानुसार किसी पवित्र जलाशय में विसर्जित कर दिया जाय । यही है बलिवैश्व, अग्निहोत्र की सरल प्रक्रिया जिसे महिलाएँ बड़ी आसानी से बिना किसी अड़चन के अपने घरों में नियमित रूप से करती रह सकती हैं । इसमें खर्च कुछ नहीं, किसी प्रकार का झंझट भी नहीं । इस पुनीत प्रक्रिया में भावभरा आदर्श यह सन्निहित है कि यज्ञीय परम्परा का परिपोषण करने में इस परिवार की सुनिश्चित आस्था है ।

भगवान को भोग लगाकर तब प्रसाद ग्रहण की परम्परा भारतीय संस्कृति का अंग है । कमाना अपना पुरुषार्थ है, पर खाने से पूर्व विराट् सत्ता को, विशाल विश्व की आवश्यकता को ध्यान में रखा जाना चाहिए । उपार्जन को समर्पण भगवान की सत्प्रवृत्तियों को, बचा हुआ निर्वाह अपने लिये । यही है ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग का सार निष्कर्ष । यज्ञ कृत्य में इसी बलिदर्शन की प्रतीक पूजा की जाती है और प्रेरणा ग्रहण की जाती है कि व्यक्तिगत रीति-नीति से जीवन को यज्ञमय बनाना लक्ष्य होगा तथा समाज में संसार से कुछ उठा न रखा जायगा । इन्हीं के आदर्शों की मूर्तिमान पूजा प्रक्रिया उन्हें जीवन्त रखने तथा परिपुष्ट बनाने की शपथ 'बलिवैश्व ' के रूप में हर दिन उठाई जाती है ।

गायत्री को भारतीय संस्कृति की माता और यज्ञ को भारतीय धर्म का पिता कहा गया है । दोनों की अभ्यर्थना अपने परिवारों में नियमित रूप से होनी चाहिए । 'नमन वन्दन' के माध्यम से गायत्री उपासना का न्यूनतम क्रियाकलाप सम्पन्न होता है और बलिवैश्व की पाँच आहुतियाँ द्वारा यज्ञ देव की अभ्यर्थना की जाती है । भगवान पहले पीछे का तात्पर्य है-आदर्श पहले, समाज पहले । उसके उपरान्त निर्वाह एवं उपयोग ।

बलिवैश्व का नन्हा-सा क्रिया-कृत्य भोजन बनाने वाली एक महिला एक मिनट समय में पाँच रत्ती सामग्री हवन करके पूरा कर देती है, पर उस भावना से परिचित हर किसी को होना चाहिए । समय-समय पर बलिवैश्व की यज्ञ दर्शन की व्याख्या-विवेचना होनी चाहिए और अपनी परम्परा में उस दर्शन की प्रमुखता रहने की स्मृति रहने की प्रेरणा मिलती रहनी चाहिए ।

बलिवैश्व की पाँच आहुतियाँ पारिवारिक पंचशीलों के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है । पंचशील में (१) सुव्यवस्था, (२) मितव्ययिता, (३) सहकारिता, (४) श्रमशीलता, (५) शालीनता है । इनकी विवेचना अन्यत्र की जा रही है । भोजन को पेट में अवस्थित वैश्वानर भगवान तक पहुँचाने से पूर्व हर सदस्य पाँच बार गायत्री मन्त्र का मौन रूप से या उच्चारणपूर्वक पाठ कर लिया करे । यह भी मानसिक अग्नि होत्र एवं बलिवैश्व का ही प्रतीक है ।

(३) सामूहिक प्रार्थना, आरती, सहगान

सामूहिक प्रार्थना का क्रम हर घर में चलना चाहिए । एकाकीपन का स्थान हर क्षेत्र में सामूहिकता को लेना चाहिए । मिल-जुलकर किये गये कार्य हर दृष्टि से अधिक प्रभावी और अधिक सफल होते हैं । यह दृष्टि उपासना के सन्दर्भ में भी रखी जाय । एकाकी उपासना के अतिरिक्त सामूहिक प्रार्थना में भाग लेना भी आवश्यक समझा जाय । यह सामूहिकता पूजा, आरती से एक धर्म परम्परा के रूप में आरम्भ होनी चाहिए और उसका विस्तार घर के हर काम में मिल-जुलकर काम करने का उत्साह निरन्तर बढ़ना चाहिए । मिल-जुलकर काम करना खेल की तरह आनन्ददायक हो जाता है । कुशलता बढ़ती है और प्रतिफल का उपयोग करने में गर्व एवं सन्तोष होता है ।

प्रात:काल जल्दी उठने की आदत पड़ सके तो सामूहिक प्रार्थना, आरती एवं सहगान में से तीनों का या एक-दो की जो व्यवस्था बन सके वह बनानी चाहिए । यह कार्य सूर्योदय से पूर्व ही हो जाने का है । यही बात सायंकाल के सम्बन्ध में भी है । तीनों में से एक दो या तीनों की करने में जहाँ जैसी सुविधा हो वहाँ वैसा करना चाहिए । सूर्य अस्त होने के उपरान्त सोने तक के समय में से जो जहाँ अनुकूल पड़े निर्धारित रखा जा सकता है । आरती की विधि सब को मालूम है, उसमें अधिक आवाज करने वाले शंख, घडियाल, झाँझ आदि या कम आवाज करने वाले घण्टी, मजीरा आदि का उपयोग हो सकता है ।

आरती को शास्त्रीय विधि से करना हो तो उसके लिए निर्धारित विधि-विधान अपनाया जा सकता है । इसकी पुस्तिका भी उपलब्ध है । इसके टेप बनाये गये हैं जो टेप रिकॉर्डर पर चढ़ा देने से परिपूर्ण आरती का आनन्द देते हैं । इनके साथ-साथ धीमे स्वर से घर के लोग उच्चारण करते रहें तो कण्ठ भी सधेगा और स्वर विभेद कारण उत्पन्न होने वाली अस्त-व्यस्तता एवं धर्म की दिशा में मनोभूमि को अग्रसर करने वाले एक दो गीत अदल-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रिय पदार्थों के लोक-कल्याण के लिए वायुमण्डल में बिखरने की प्रक्रिया सम्पन्न की जाती है । परमार्थ प्रवृत्ति का प्रतीक मानकर समय, श्रम एवं सद्भाव समर्पण ही प्रकारान्तर से यज्ञीय कर्मकाण्ड का सार तत्व है । इस देव प्रवृत्ति को जन-जन में जगाया जाना चाहिए और उसका प्रतीक पूजन अपने परिवारों से आरम्भ करना चाहिए । ब 'बलि वैश्व परम्परा' को दैनिक धर्मकृत्य माना गया है । उसका प्रचलन इन दिनों लुप्त प्राय: हो गया है । हमारे परिवारों से उसका पुनर्जीवन आरम्भ होना चाहिए ।

चौके में जब भोजन तैयार हो जाय तो खाना आरम्भ करने से पूर्व चूल्हे में से अग्नि बाहर निकालकर प्रज्ज्वलित की जाय और रोटी के छोटे-छोटे टुकड़े घी और शक्कर मिलाकर गायत्री मन्त्र उच्चारण करते हुए पाँच बार में हवन कर दिये जाएँ । बाद में जल अंजलि की परिक्रमा उस अग्नि के चारों ओर परिक्रमा रूप में घुमा दिया जाय । इस अग्नि को पवित्र माना जाय । बुझने पर भस्म को सुरक्षित रख लिया जाय और सुविधानुसार किसी पवित्र जलाशय में विसर्जित कर दिया जाय । यही है बलिवैश्व, अग्निहोत्र की सरल प्रक्रिया जिसे महिलाएँ बड़ी आसानी से बिना किसी अड़चन के अपने घरों में नियमित रूप से करती रह सकती हैं । इसमें खर्च कुछ नहीं, किसी प्रकार का झंझट भी नहीं । इस पुनीत प्रक्रिया में भावभरा आदर्श यह सन्निहित है कि यज्ञीय परम्परा का परिपोषण करने में इस परिवार की सुनिश्चित आस्था है ।

भगवान को भोग लगाकर तब प्रसाद ग्रहण की परम्परा भारतीय संस्कृति का अंग है । कमाना अपना पुरुषार्थ है, पर खाने से पूर्व विराट् सत्ता को, विशाल विश्व की आवश्यकता को ध्यान में रखा जाना चाहिए । उपार्जन को समर्पण भगवान की सत्प्रवृत्तियों को, बचा हुआ निर्वाह अपने लिये । यही है ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग का सार निष्कर्ष । यज्ञ कृत्य में इसी बलिदर्शन की प्रतीक पूजा की जाती है और प्रेरणा ग्रहण की जाती है कि व्यक्तिगत रीति-नीति से जीवन को यज्ञमय बनाना लक्ष्य होगा तथा समाज में संसार से कुछ उठा न रखा जायगा । इन्हीं के आदर्शों की मूर्तिमान पूजा प्रक्रिया उन्हें जीवन्त रखने तथा परिपुष्ट बनाने की शपथ 'बलिवैश्व ' के रूप में हर दिन उठाई जाती है ।

गायत्री को भारतीय संस्कृति की माता और यज्ञ को भारतीय धर्म का पिता कहा गया है । दोनों की अभ्यर्थना अपने परिवारों में नियमित रूप से होनी चाहिए । 'नमन वन्दन' के माध्यम से गायत्री उपासना का न्यूनतम क्रियाकलाप सम्पन्न होता है और बलिवैश्व की पाँच आहुतियाँ द्वारा यज्ञ देव की अभ्यर्थना की जाती है । भगवान पहले पीछे का तात्पर्य है-आदर्श पहले, समाज पहले । उसके उपरान्त निर्वाह एवं उपयोग ।

बलिवैश्व का नन्हा-सा क्रिया-कृत्य भोजन बनाने वाली एक महिला एक मिनट समय में पाँच रत्ती सामग्री हवन करके पूरा कर देती है, पर उस भावना से परिचित हर किसी को होना चाहिए । समय-समय पर बलिवैश्व की यज्ञ दर्शन की व्याख्या-विवेचना होनी चाहिए और अपनी परम्परा में उस दर्शन की प्रमुखता रहने की स्मृति रहने की प्रेरणा मिलती रहनी चाहिए ।

बलिवैश्व की पाँच आहुतियाँ पारिवारिक पंचशीलों के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है । पंचशील में (१) सुव्यवस्था, (२) मितव्ययिता, (३) सहकारिता, (४) श्रमशीलता, (५) शालीनता है । इनकी विवेचना अन्यत्र की जा रही है । भोजन को पेट में अवस्थित वैश्वानर भगवान तक पहुँचाने से पूर्व हर सदस्य पाँच बार गायत्री मन्त्र का मौन रूप से या उच्चारणपूर्वक पाठ कर लिया करे । यह भी मानसिक अग्नि होत्र एवं बलिवैश्व का ही प्रतीक है ।

(३) सामूहिक प्रार्थना, आरती, सहगान

सामूहिक प्रार्थना का क्रम हर घर में चलना चाहिए । एकाकीपन का स्थान हर क्षेत्र में सामूहिकता को लेना चाहिए । मिल-जुलकर किये गये कार्य हर दृष्टि से अधिक प्रभावी और अधिक सफल होते हैं । यह दृष्टि उपासना के सन्दर्भ में भी रखी जाय । एकाकी उपासना के अतिरिक्त सामूहिक प्रार्थना में भाग लेना भी आवश्यक समझा जाय । यह सामूहिकता पूजा, आरती से एक धर्म परम्परा के रूप में आरम्भ होनी चाहिए और उसका विस्तार घर के हर काम में मिल-जुलकर काम करने का उत्साह निरन्तर बढ़ना चाहिए । मिल-जुलकर काम करना खेल की तरह आनन्ददायक हो जाता है । कुशलता बढ़ती है और प्रतिफल का उपयोग करने में गर्व एवं सन्तोष होता है ।

प्रात:काल जल्दी उठने की आदत पड़ सके तो सामूहिक प्रार्थना, आरती एवं सहगान में से तीनों का या एक-दो की जो व्यवस्था बन सके वह बनानी चाहिए । यह कार्य सूर्योदय से पूर्व ही हो जाने का है । यही बात सायंकाल के सम्बन्ध में भी है । तीनों में से एक दो या तीनों की करने में जहाँ जैसी सुविधा हो वहाँ वैसा करना चाहिए । सूर्य अस्त होने के उपरान्त सोने तक के समय में से जो जहाँ अनुकूल पड़े निर्धारित रखा जा सकता है । आरती की विधि सब को मालूम है, उसमें अधिक आवाज करने वाले शंख, घडियाल, झाँझ आदि या कम आवाज करने वाले घण्टी, मजीरा आदि का उपयोग हो सकता है ।

आरती को शास्त्रीय विधि से करना हो तो उसके लिए निर्धारित विधि-विधान अपनाया जा सकता है । इसकी पुस्तिका भी उपलब्ध है । इसके टेप बनाये गये हैं जो टेप रिकॉर्डर पर चढ़ा देने से परिपूर्ण आरती का आनन्द देते हैं । इनके साथ-साथ धीमे स्वर से घर के लोग उच्चारण करते रहें तो कण्ठ भी सधेगा और स्वर विभेद कारण उत्पन्न होने वाली अस्त-व्यस्तता एवं धर्म की दिशा में मनोभूमि को अग्रसर करने वाले एक दो गीत अदल-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रिय पदार्थों के लोक-कल्याण के लिए वायुमण्डल में बिखरने की प्रक्रिया सम्पन्न की जाती है । परमार्थ प्रवृत्ति का प्रतीक मानकर समय, श्रम एवं सद्भाव समर्पण ही प्रकारान्तर से यज्ञीय कर्मकाण्ड का सार तत्व है । इस देव प्रवृत्ति को जन-जन में जगाया जाना चाहिए और उसका प्रतीक पूजन अपने परिवारों से आरम्भ करना चाहिए । ब 'बलि वैश्व परम्परा' को दैनिक धर्मकृत्य माना गया है । उसका प्रचलन इन दिनों लुप्त प्राय: हो गया है । हमारे परिवारों से उसका पुनर्जीवन आरम्भ होना चाहिए ।

चौके में जब भोजन तैयार हो जाय तो खाना आरम्भ करने से पूर्व चूल्हे में से अग्नि बाहर निकालकर प्रज्ज्वलित की जाय और रोटी के छोटे-छोटे टुकड़े घी और शक्कर मिलाकर गायत्री मन्त्र उच्चारण करते हुए पाँच बार में हवन कर दिये जाएँ । बाद में जल अंजलि की परिक्रमा उस अग्नि के चारों ओर परिक्रमा रूप में घुमा दिया जाय । इस अग्नि को पवित्र माना जाय । बुझने पर भस्म को सुरक्षित रख लिया जाय और सुविधानुसार किसी पवित्र जलाशय में विसर्जित कर दिया जाय । यही है बलिवैश्व, अग्निहोत्र की सरल प्रक्रिया जिसे महिलाएँ बड़ी आसानी से बिना किसी अड़चन के अपने घरों में नियमित रूप से करती रह सकती हैं । इसमें खर्च कुछ नहीं, किसी प्रकार का झंझट भी नहीं । इस पुनीत प्रक्रिया में भावभरा आदर्श यह सन्निहित है कि यज्ञीय परम्परा का परिपोषण करने में इस परिवार की सुनिश्चित आस्था है ।

भगवान को भोग लगाकर तब प्रसाद ग्रहण की परम्परा भारतीय संस्कृति का अंग है । कमाना अपना पुरुषार्थ है, पर खाने से पूर्व विराट् सत्ता को, विशाल विश्व की आवश्यकता को ध्यान में रखा जाना चाहिए । उपार्जन को समर्पण भगवान की सत्प्रवृत्तियों को, बचा हुआ निर्वाह अपने लिये । यही है ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग का सार निष्कर्ष । यज्ञ कृत्य में इसी बलिदर्शन की प्रतीक पूजा की जाती है और प्रेरणा ग्रहण की जाती है कि व्यक्तिगत रीति-नीति से जीवन को यज्ञमय बनाना लक्ष्य होगा तथा समाज में संसार से कुछ उठा न रखा जायगा । इन्हीं के आदर्शों की मूर्तिमान पूजा प्रक्रिया उन्हें जीवन्त रखने तथा परिपुष्ट बनाने की शपथ 'बलिवैश्व ' के रूप में हर दिन उठाई जाती है ।

गायत्री को भारतीय संस्कृति की माता और यज्ञ को भारतीय धर्म का पिता कहा गया है । दोनों की अभ्यर्थना अपने परिवारों में नियमित रूप से होनी चाहिए । 'नमन वन्दन' के माध्यम से गायत्री उपासना का न्यूनतम क्रियाकलाप सम्पन्न होता है और बलिवैश्व की पाँच आहुतियाँ द्वारा यज्ञ देव की अभ्यर्थना की जाती है । भगवान पहले पीछे का तात्पर्य है-आदर्श पहले, समाज पहले । उसके उपरान्त निर्वाह एवं उपयोग ।

बलिवैश्व का नन्हा-सा क्रिया-कृत्य भोजन बनाने वाली एक महिला एक मिनट समय में पाँच रत्ती सामग्री हवन करके पूरा कर देती है, पर उस भावना से परिचित हर किसी को होना चाहिए । समय-समय पर बलिवैश्व की यज्ञ दर्शन की व्याख्या-विवेचना होनी चाहिए और अपनी परम्परा में उस दर्शन की प्रमुखता रहने की स्मृति रहने की प्रेरणा मिलती रहनी चाहिए ।

बलिवैश्व की पाँच आहुतियाँ पारिवारिक पंचशीलों के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है । पंचशील में (१) सुव्यवस्था, (२) मितव्ययिता, (३) सहकारिता, (४) श्रमशीलता, (५) शालीनता है । इनकी विवेचना अन्यत्र की जा रही है । भोजन को पेट में अवस्थित वैश्वानर भगवान तक पहुँचाने से पूर्व हर सदस्य पाँच बार गायत्री मन्त्र का मौन रूप से या उच्चारणपूर्वक पाठ कर लिया करे । यह भी मानसिक अग्नि होत्र एवं बलिवैश्व का ही प्रतीक है ।

(३) सामूहिक प्रार्थना, आरती, सहगान

सामूहिक प्रार्थना का क्रम हर घर में चलना चाहिए । एकाकीपन का स्थान हर क्षेत्र में सामूहिकता को लेना चाहिए । मिल-जुलकर किये गये कार्य हर दृष्टि से अधिक प्रभावी और अधिक सफल होते हैं । यह दृष्टि उपासना के सन्दर्भ में भी रखी जाय । एकाकी उपासना के अतिरिक्त सामूहिक प्रार्थना में भाग लेना भी आवश्यक समझा जाय । यह सामूहिकता पूजा, आरती से एक धर्म परम्परा के रूप में आरम्भ होनी चाहिए और उसका विस्तार घर के हर काम में मिल-जुलकर काम करने का उत्साह निरन्तर बढ़ना चाहिए । मिल-जुलकर काम करना खेल की तरह आनन्ददायक हो जाता है । कुशलता बढ़ती है और प्रतिफल का उपयोग करने में गर्व एवं सन्तोष होता है ।

प्रात:काल जल्दी उठने की आदत पड़ सके तो सामूहिक प्रार्थना, आरती एवं सहगान में से तीनों का या एक-दो की जो व्यवस्था बन सके वह बनानी चाहिए । यह कार्य सूर्योदय से पूर्व ही हो जाने का है । यही बात सायंकाल के सम्बन्ध में भी है । तीनों में से एक दो या तीनों की करने में जहाँ जैसी सुविधा हो वहाँ वैसा करना चाहिए । सूर्य अस्त होने के उपरान्त सोने तक के समय में से जो जहाँ अनुकूल पड़े निर्धारित रखा जा सकता है । आरती की विधि सब को मालूम है, उसमें अधिक आवाज करने वाले शंख, घडियाल, झाँझ आदि या कम आवाज करने वाले घण्टी, मजीरा आदि का उपयोग हो सकता है ।

आरती को शास्त्रीय विधि से करना हो तो उसके लिए निर्धारित विधि-विधान अपनाया जा सकता है । इसकी पुस्तिका भी उपलब्ध है । इसके टेप बनाये गये हैं जो टेप रिकॉर्डर पर चढ़ा देने से परिपूर्ण आरती का आनन्द देते हैं । इनके साथ-साथ धीमे स्वर से घर के लोग उच्चारण करते रहें तो कण्ठ भी सधेगा और स्वर विभेद कारण उत्पन्न होने वाली अस्त-व्यस्तता एवं धर्म की दिशा में मनोभूमि को अग्रसर करने वाले एक दो गीत अदल-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रिय पदार्थों के लोक-कल्याण के लिए वायुमण्डल में बिखरने की प्रक्रिया सम्पन्न की जाती है । परमार्थ प्रवृत्ति का प्रतीक मानकर समय, श्रम एवं सद्भाव समर्पण ही प्रकारान्तर से यज्ञीय कर्मकाण्ड का सार तत्व है । इस देव प्रवृत्ति को जन-जन में जगाया जाना चाहिए और उसका प्रतीक पूजन अपने परिवारों से आरम्भ करना चाहिए । ब 'बलि वैश्व परम्परा' को दैनिक धर्मकृत्य माना गया है । उसका प्रचलन इन दिनों लुप्त प्राय: हो गया है । हमारे परिवारों से उसका पुनर्जीवन आरम्भ होना चाहिए ।

चौके में जब भोजन तैयार हो जाय तो खाना आरम्भ करने से पूर्व चूल्हे में से अग्नि बाहर निकालकर प्रज्ज्वलित की जाय और रोटी के छोटे-छोटे टुकड़े घी और शक्कर मिलाकर गायत्री मन्त्र उच्चारण करते हुए पाँच बार में हवन कर दिये जाएँ । बाद में जल अंजलि की परिक्रमा उस अग्नि के चारों ओर परिक्रमा रूप में घुमा दिया जाय । इस अग्नि को पवित्र माना जाय । बुझने पर भस्म को सुरक्षित रख लिया जाय और सुविधानुसार किसी पवित्र जलाशय में विसर्जित कर दिया जाय । यही है बलिवैश्व, अग्निहोत्र की सरल प्रक्रिया जिसे महिलाएँ बड़ी आसानी से बिना किसी अड़चन के अपने घरों में नियमित रूप से करती रह सकती हैं । इसमें खर्च कुछ नहीं, किसी प्रकार का झंझट भी नहीं । इस पुनीत प्रक्रिया में भावभरा आदर्श यह सन्निहित है कि यज्ञीय परम्परा का परिपोषण करने में इस परिवार की सुनिश्चित आस्था है ।

भगवान को भोग लगाकर तब प्रसाद ग्रहण की परम्परा भारतीय संस्कृति का अंग है । कमाना अपना पुरुषार्थ है, पर खाने से पूर्व विराट् सत्ता को, विशाल विश्व की आवश्यकता को ध्यान में रखा जाना चाहिए । उपार्जन को समर्पण भगवान की सत्प्रवृत्तियों को, बचा हुआ निर्वाह अपने लिये । यही है ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग का सार निष्कर्ष । यज्ञ कृत्य में इसी बलिदर्शन की प्रतीक पूजा की जाती है और प्रेरणा ग्रहण की जाती है कि व्यक्तिगत रीति-नीति से जीवन को यज्ञमय बनाना लक्ष्य होगा तथा समाज में संसार से कुछ उठा न रखा जायगा । इन्हीं के आदर्शों की मूर्तिमान पूजा प्रक्रिया उन्हें जीवन्त रखने तथा परिपुष्ट बनाने की शपथ 'बलिवैश्व ' के रूप में हर दिन उठाई जाती है ।

गायत्री को भारतीय संस्कृति की माता और यज्ञ को भारतीय धर्म का पिता कहा गया है । दोनों की अभ्यर्थना अपने परिवारों में नियमित रूप से होनी चाहिए । 'नमन वन्दन' के माध्यम से गायत्री उपासना का न्यूनतम क्रियाकलाप सम्पन्न होता है और बलिवैश्व की पाँच आहुतियाँ द्वारा यज्ञ देव की अभ्यर्थना की जाती है । भगवान पहले पीछे का तात्पर्य है-आदर्श पहले, समाज पहले । उसके उपरान्त निर्वाह एवं उपयोग ।

बलिवैश्व का नन्हा-सा क्रिया-कृत्य भोजन बनाने वाली एक महिला एक मिनट समय में पाँच रत्ती सामग्री हवन करके पूरा कर देती है, पर उस भावना से परिचित हर किसी को होना चाहिए । समय-समय पर बलिवैश्व की यज्ञ दर्शन की व्याख्या-विवेचना होनी चाहिए और अपनी परम्परा में उस दर्शन की प्रमुखता रहने की स्मृति रहने की प्रेरणा मिलती रहनी चाहिए ।

बलिवैश्व की पाँच आहुतियाँ पारिवारिक पंचशीलों के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है । पंचशील में (१) सुव्यवस्था, (२) मितव्ययिता, (३) सहकारिता, (४) श्रमशीलता, (५) शालीनता है । इनकी विवेचना अन्यत्र की जा रही है । भोजन को पेट में अवस्थित वैश्वानर भगवान तक पहुँचाने से पूर्व हर सदस्य पाँच बार गायत्री मन्त्र का मौन रूप से या उच्चारणपूर्वक पाठ कर लिया करे । यह भी मानसिक अग्नि होत्र एवं बलिवैश्व का ही प्रतीक है ।

(३) सामूहिक प्रार्थना, आरती, सहगान

सामूहिक प्रार्थना का क्रम हर घर में चलना चाहिए । एकाकीपन का स्थान हर क्षेत्र में सामूहिकता को लेना चाहिए । मिल-जुलकर किये गये कार्य हर दृष्टि से अधिक प्रभावी और अधिक सफल होते हैं । यह दृष्टि उपासना के सन्दर्भ में भी रखी जाय । एकाकी उपासना के अतिरिक्त सामूहिक प्रार्थना में भाग लेना भी आवश्यक समझा जाय । यह सामूहिकता पूजा, आरती से एक धर्म परम्परा के रूप में आरम्भ होनी चाहिए और उसका विस्तार घर के हर काम में मिल-जुलकर काम करने का उत्साह निरन्तर बढ़ना चाहिए । मिल-जुलकर काम करना खेल की तरह आनन्ददायक हो जाता है । कुशलता बढ़ती है और प्रतिफल का उपयोग करने में गर्व एवं सन्तोष होता है ।

प्रात:काल जल्दी उठने की आदत पड़ सके तो सामूहिक प्रार्थना, आरती एवं सहगान में से तीनों का या एक-दो की जो व्यवस्था बन सके वह बनानी चाहिए । यह कार्य सूर्योदय से पूर्व ही हो जाने का है । यही बात सायंकाल के सम्बन्ध में भी है । तीनों में से एक दो या तीनों की करने में जहाँ जैसी सुविधा हो वहाँ वैसा करना चाहिए । सूर्य अस्त होने के उपरान्त सोने तक के समय में से जो जहाँ अनुकूल पड़े निर्धारित रखा जा सकता है । आरती की विधि सब को मालूम है, उसमें अधिक आवाज करने वाले शंख, घडियाल, झाँझ आदि या कम आवाज करने वाले घण्टी, मजीरा आदि का उपयोग हो सकता है ।

आरती को शास्त्रीय विधि से करना हो तो उसके लिए निर्धारित विधि-विधान अपनाया जा सकता है । इसकी पुस्तिका भी उपलब्ध है । इसके टेप बनाये गये हैं जो टेप रिकॉर्डर पर चढ़ा देने से परिपूर्ण आरती का आनन्द देते हैं । इनके साथ-साथ धीमे स्वर से घर के लोग उच्चारण करते रहें तो कण्ठ भी सधेगा और स्वर विभेद कारण उत्पन्न होने वाली अस्त-व्यस्तता एवं धर्म की दिशा में मनोभूमि को अग्रसर करने वाले एक दो गीत अदल-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रिय पदार्थों के लोक-कल्याण के लिए वायुमण्डल में बिखरने की प्रक्रिया सम्पन्न की जाती है । परमार्थ प्रवृत्ति का प्रतीक मानकर समय, श्रम एवं सद्भाव समर्पण ही प्रकारान्तर से यज्ञीय कर्मकाण्ड का सार तत्व है । इस देव प्रवृत्ति को जन-जन में जगाया जाना चाहिए और उसका प्रतीक पूजन अपने परिवारों से आरम्भ करना चाहिए । ब 'बलि वैश्व परम्परा' को दैनिक धर्मकृत्य माना गया है । उसका प्रचलन इन दिनों लुप्त प्राय: हो गया है । हमारे परिवारों से उसका पुनर्जीवन आरम्भ होना चाहिए ।

चौके में जब भोजन तैयार हो जाय तो खाना आरम्भ करने से पूर्व चूल्हे में से अग्नि बाहर निकालकर प्रज्ज्वलित की जाय और रोटी के छोटे-छोटे टुकड़े घी और शक्कर मिलाकर गायत्री मन्त्र उच्चारण करते हुए पाँच बार में हवन कर दिये जाएँ । बाद में जल अंजलि की परिक्रमा उस अग्नि के चारों ओर परिक्रमा रूप में घुमा दिया जाय । इस अग्नि को पवित्र माना जाय । बुझने पर भस्म को सुरक्षित रख लिया जाय और सुविधानुसार किसी पवित्र जलाशय में विसर्जित कर दिया जाय । यही है बलिवैश्व, अग्निहोत्र की सरल प्रक्रिया जिसे महिलाएँ बड़ी आसानी से बिना किसी अड़चन के अपने घरों में नियमित रूप से करती रह सकती हैं । इसमें खर्च कुछ नहीं, किसी प्रकार का झंझट भी नहीं । इस पुनीत प्रक्रिया में भावभरा आदर्श यह सन्निहित है कि यज्ञीय परम्परा का परिपोषण करने में इस परिवार की सुनिश्चित आस्था है ।

भगवान को भोग लगाकर तब प्रसाद ग्रहण की परम्परा भारतीय संस्कृति का अंग है । कमाना अपना पुरुषार्थ है, पर खाने से पूर्व विराट् सत्ता को, विशाल विश्व की आवश्यकता को ध्यान में रखा जाना चाहिए । उपार्जन को समर्पण भगवान की सत्प्रवृत्तियों को, बचा हुआ निर्वाह अपने लिये । यही है ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग का सार निष्कर्ष । यज्ञ कृत्य में इसी बलिदर्शन की प्रतीक पूजा की जाती है और प्रेरणा ग्रहण की जाती है कि व्यक्तिगत रीति-नीति से जीवन को यज्ञमय बनाना लक्ष्य होगा तथा समाज में संसार से कुछ उठा न रखा जायगा । इन्हीं के आदर्शों की मूर्तिमान पूजा प्रक्रिया उन्हें जीवन्त रखने तथा परिपुष्ट बनाने की शपथ 'बलिवैश्व ' के रूप में हर दिन उठाई जाती है ।

गायत्री को भारतीय संस्कृति की माता और यज्ञ को भारतीय धर्म का पिता कहा गया है । दोनों की अभ्यर्थना अपने परिवारों में नियमित रूप से होनी चाहिए । 'नमन वन्दन' के माध्यम से गायत्री उपासना का न्यूनतम क्रियाकलाप सम्पन्न होता है और बलिवैश्व की पाँच आहुतियाँ द्वारा यज्ञ देव की अभ्यर्थना की जाती है । भगवान पहले पीछे का तात्पर्य है-आदर्श पहले, समाज पहले । उसके उपरान्त निर्वाह एवं उपयोग ।

बलिवैश्व का नन्हा-सा क्रिया-कृत्य भोजन बनाने वाली एक महिला एक मिनट समय में पाँच रत्ती सामग्री हवन करके पूरा कर देती है, पर उस भावना से परिचित हर किसी को होना चाहिए । समय-समय पर बलिवैश्व की यज्ञ दर्शन की व्याख्या-विवेचना होनी चाहिए और अपनी परम्परा में उस दर्शन की प्रमुखता रहने की स्मृति रहने की प्रेरणा मिलती रहनी चाहिए ।

बलिवैश्व की पाँच आहुतियाँ पारिवारिक पंचशीलों के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है । पंचशील में (१) सुव्यवस्था, (२) मितव्ययिता, (३) सहकारिता, (४) श्रमशीलता, (५) शालीनता है । इनकी विवेचना अन्यत्र की जा रही है । भोजन को पेट में अवस्थित वैश्वानर भगवान तक पहुँचाने से पूर्व हर सदस्य पाँच बार गायत्री मन्त्र का मौन रूप से या उच्चारणपूर्वक पाठ कर लिया करे । यह भी मानसिक अग्नि होत्र एवं बलिवैश्व का ही प्रतीक है ।

(३) सामूहिक प्रार्थना, आरती, सहगान

सामूहिक प्रार्थना का क्रम हर घर में चलना चाहिए । एकाकीपन का स्थान हर क्षेत्र में सामूहिकता को लेना चाहिए । मिल-जुलकर किये गये कार्य हर दृष्टि से अधिक प्रभावी और अधिक सफल होते हैं । यह दृष्टि उपासना के सन्दर्भ में भी रखी जाय । एकाकी उपासना के अतिरिक्त सामूहिक प्रार्थना में भाग लेना भी आवश्यक समझा जाय । यह सामूहिकता पूजा, आरती से एक धर्म परम्परा के रूप में आरम्भ होनी चाहिए और उसका विस्तार घर के हर काम में मिल-जुलकर काम करने का उत्साह निरन्तर बढ़ना चाहिए । मिल-जुलकर काम करना खेल की तरह आनन्ददायक हो जाता है । कुशलता बढ़ती है और प्रतिफल का उपयोग करने में गर्व एवं सन्तोष होता है ।

प्रात:काल जल्दी उठने की आदत पड़ सके तो सामूहिक प्रार्थना, आरती एवं सहगान में से तीनों का या एक-दो की जो व्यवस्था बन सके वह बनानी चाहिए । यह कार्य सूर्योदय से पूर्व ही हो जाने का है । यही बात सायंकाल के सम्बन्ध में भी है । तीनों में से एक दो या तीनों की करने में जहाँ जैसी सुविधा हो वहाँ वैसा करना चाहिए । सूर्य अस्त होने के उपरान्त सोने तक के समय में से जो जहाँ अनुकूल पड़े निर्धारित रखा जा सकता है । आरती की विधि सब को मालूम है, उसमें अधिक आवाज करने वाले शंख, घडियाल, झाँझ आदि या कम आवाज करने वाले घण्टी, मजीरा आदि का उपयोग हो सकता है ।

आरती को शास्त्रीय विधि से करना हो तो उसके लिए निर्धारित विधि-विधान अपनाया जा सकता है । इसकी पुस्तिका भी उपलब्ध है । इसके टेप बनाये गये हैं जो टेप रिकॉर्डर पर चढ़ा देने से परिपूर्ण आरती का आनन्द देते हैं । इनके साथ-साथ धीमे स्वर से घर के लोग उच्चारण करते रहें तो कण्ठ भी सधेगा और स्वर विभेद कारण उत्पन्न होने वाली अस्त-व्यस्तता एवं धर्म की दिशा में मनोभूमि को अग्रसर करने वाले एक दो गीत अदल-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रिय पदार्थों के लोक-कल्याण के लिए वायुमण्डल में बिखरने की प्रक्रिया सम्पन्न की जाती है । परमार्थ प्रवृत्ति का प्रतीक मानकर समय, श्रम एवं सद्भाव समर्पण ही प्रकारान्तर से यज्ञीय कर्मकाण्ड का सार तत्व है । इस देव प्रवृत्ति को जन-जन में जगाया जाना चाहिए और उसका प्रतीक पूजन अपने परिवारों से आरम्भ करना चाहिए । ब 'बलि वैश्व परम्परा' को दैनिक धर्मकृत्य माना गया है । उसका प्रचलन इन दिनों लुप्त प्राय: हो गया है । हमारे परिवारों से उसका पुनर्जीवन आरम्भ होना चाहिए ।

चौके में जब भोजन तैयार हो जाय तो खाना आरम्भ करने से पूर्व चूल्हे में से अग्नि बाहर निकालकर प्रज्ज्वलित की जाय और रोटी के छोटे-छोटे टुकड़े घी और शक्कर मिलाकर गायत्री मन्त्र उच्चारण करते हुए पाँच बार में हवन कर दिये जाएँ । बाद में जल अंजलि की परिक्रमा उस अग्नि के चारों ओर परिक्रमा रूप में घुमा दिया जाय । इस अग्नि को पवित्र माना जाय । बुझने पर भस्म को सुरक्षित रख लिया जाय और सुविधानुसार किसी पवित्र जलाशय में विसर्जित कर दिया जाय । यही है बलिवैश्व, अग्निहोत्र की सरल प्रक्रिया जिसे महिलाएँ बड़ी आसानी से बिना किसी अड़चन के अपने घरों में नियमित रूप से करती रह सकती हैं । इसमें खर्च कुछ नहीं, किसी प्रकार का झंझट भी नहीं । इस पुनीत प्रक्रिया में भावभरा आदर्श यह सन्निहित है कि यज्ञीय परम्परा का परिपोषण करने में इस परिवार की सुनिश्चित आस्था है ।

भगवान को भोग लगाकर तब प्रसाद ग्रहण की परम्परा भारतीय संस्कृति का अंग है । कमाना अपना पुरुषार्थ है, पर खाने से पूर्व विराट् सत्ता को, विशाल विश्व की आवश्यकता को ध्यान में रखा जाना चाहिए । उपार्जन को समर्पण भगवान की सत्प्रवृत्तियों को, बचा हुआ निर्वाह अपने लिये । यही है ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग का सार निष्कर्ष । यज्ञ कृत्य में इसी बलिदर्शन की प्रतीक पूजा की जाती है और प्रेरणा ग्रहण की जाती है कि व्यक्तिगत रीति-नीति से जीवन को यज्ञमय बनाना लक्ष्य होगा तथा समाज में संसार से कुछ उठा न रखा जायगा । इन्हीं के आदर्शों की मूर्तिमान पूजा प्रक्रिया उन्हें जीवन्त रखने तथा परिपुष्ट बनाने की शपथ 'बलिवैश्व ' के रूप में हर दिन उठाई जाती है ।

गायत्री को भारतीय संस्कृति की माता और यज्ञ को भारतीय धर्म का पिता कहा गया है । दोनों की अभ्यर्थना अपने परिवारों में नियमित रूप से होनी चाहिए । 'नमन वन्दन' के माध्यम से गायत्री उपासना का न्यूनतम क्रियाकलाप सम्पन्न होता है और बलिवैश्व की पाँच आहुतियाँ द्वारा यज्ञ देव की अभ्यर्थना की जाती है । भगवान पहले पीछे का तात्पर्य है-आदर्श पहले, समाज पहले । उसके उपरान्त निर्वाह एवं उपयोग ।

बलिवैश्व का नन्हा-सा क्रिया-कृत्य भोजन बनाने वाली एक महिला एक मिनट समय में पाँच रत्ती सामग्री हवन करके पूरा कर देती है, पर उस भावना से परिचित हर किसी को होना चाहिए । समय-समय पर बलिवैश्व की यज्ञ दर्शन की व्याख्या-विवेचना होनी चाहिए और अपनी परम्परा में उस दर्शन की प्रमुखता रहने की स्मृति रहने की प्रेरणा मिलती रहनी चाहिए ।

बलिवैश्व की पाँच आहुतियाँ पारिवारिक पंचशीलों के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है । पंचशील में (१) सुव्यवस्था, (२) मितव्ययिता, (३) सहकारिता, (४) श्रमशीलता, (५) शालीनता है । इनकी विवेचना अन्यत्र की जा रही है । भोजन को पेट में अवस्थित वैश्वानर भगवान तक पहुँचाने से पूर्व हर सदस्य पाँच बार गायत्री मन्त्र का मौन रूप से या उच्चारणपूर्वक पाठ कर लिया करे । यह भी मानसिक अग्नि होत्र एवं बलिवैश्व का ही प्रतीक है ।

(३) सामूहिक प्रार्थना, आरती, सहगान

सामूहिक प्रार्थना का क्रम हर घर में चलना चाहिए । एकाकीपन का स्थान हर क्षेत्र में सामूहिकता को लेना चाहिए । मिल-जुलकर किये गये कार्य हर दृष्टि से अधिक प्रभावी और अधिक सफल होते हैं । यह दृष्टि उपासना के सन्दर्भ में भी रखी जाय । एकाकी उपासना के अतिरिक्त सामूहिक प्रार्थना में भाग लेना भी आवश्यक समझा जाय । यह सामूहिकता पूजा, आरती से एक धर्म परम्परा के रूप में आरम्भ होनी चाहिए और उसका विस्तार घर के हर काम में मिल-जुलकर काम करने का उत्साह निरन्तर बढ़ना चाहिए । मिल-जुलकर काम करना खेल की तरह आनन्ददायक हो जाता है । कुशलता बढ़ती है और प्रतिफल का उपयोग करने में गर्व एवं सन्तोष होता है ।

प्रात:काल जल्दी उठने की आदत पड़ सके तो सामूहिक प्रार्थना, आरती एवं सहगान में से तीनों का या एक-दो की जो व्यवस्था बन सके वह बनानी चाहिए । यह कार्य सूर्योदय से पूर्व ही हो जाने का है । यही बात सायंकाल के सम्बन्ध में भी है । तीनों में से एक दो या तीनों की करने में जहाँ जैसी सुविधा हो वहाँ वैसा करना चाहिए । सूर्य अस्त होने के उपरान्त सोने तक के समय में से जो जहाँ अनुकूल पड़े निर्धारित रखा जा सकता है । आरती की विधि सब को मालूम है, उसमें अधिक आवाज करने वाले शंख, घडियाल, झाँझ आदि या कम आवाज करने वाले घण्टी, मजीरा आदि का उपयोग हो सकता है ।

आरती को शास्त्रीय विधि से करना हो तो उसके लिए निर्धारित विधि-विधान अपनाया जा सकता है । इसकी पुस्तिका भी उपलब्ध है । इसके टेप बनाये गये हैं जो टेप रिकॉर्डर पर चढ़ा देने से परिपूर्ण आरती का आनन्द देते हैं । इनके साथ-साथ धीमे स्वर से घर के लोग उच्चारण करते रहें तो कण्ठ भी सधेगा और स्वर विभेद कारण उत्पन्न होने वाली अस्त-व्यस्तता एवं धर्म की दिशा में मनोभूमि को अग्रसर करने वाले एक दो गीत अदल-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बदलकर गाये जाने चाहिए । यह भाव प्रशिक्षण, सम्मिलित होने वालों पर सुसंस्कारी छाप डालता है । इस गायन के साथ वाद्य यन्त्रों का जहाँ समावेश हो सके वहाँ उसके लिए भी प्रयत्न करना चाहिए । संगीत कला को इस आधार पर घर-घर में जीवन्त रखा जा सकता है । साथ ही धर्म शिक्षा का प्रयोजन भी नियमित रूप से पूरा होता रह सकता है ।

(४) स्वाध्याय का ज्ञानयज्ञ

काया को भोजन, मस्तिष्क को स्वाध्याय और अन्तः-करण को उपासना का अवसर देने से सूक्ष्म, स्थूल और कारण शरीरों को परिपोषण होता है । तीनों को ही खुराक मिलती रहे इनमें से एक भी भूखा न रहने पाये ऐसा प्रबन्ध हर घर में रहना चाहिए । स्वाध्याय को ज्ञान यज्ञ कहा गया है । प्राचीनकाल में उच्चस्तरीय सत्संग भी सर्व सुलभ था, पर अब न वैसे लोग रह गये हैं और न समय सम्बन्धी सुविधा है । फिर प्रेम विस्तार में साहित्य के माध्यम से वह प्रयोजन और भी सरल कर दिया है । अपने घरों में युग साहित्य को स्वाध्याय का आधार माना जाय और उसके लिए नियमित समय निकाला जाय । उसे नित्य कर्म में सम्मिलित रखा जाय । इसके लिए घर में एक छोटा पुस्तकालय चले और उसका लाभ हर सदस्य उठाये । पढ़े-लिखे परिजन अपनी सुविधा के समय न्यूनतम आधा घण्टा स्वाध्याय के लिए किसी न किसी प्रकार समय अनिवार्य रूप से निकालें । इसे भोजन की तरह ही आवश्यक समझें और भजन के समतुल्य मानते हुए उसे जीवनचर्या में प्रमुखता दें । जो बिना पढ़े हैं उन्हें युग साहित्य को पढ़े-लिखे सदस्य पढ़कर सुनाया करें । भाषा-की जटिलता एवं उच्च विचारों को न समझ पाने की कठिनाई को सरल भाषा में व्याख्या करके समझाया जा सकता है ।

युग निर्माण मिशन के हर कर्मठ कार्यकर्त्ता को परिवार निर्माण के लिए घरेलू ज्ञान मन्दिर स्थापित करने का, इसके लिए ज्ञानघट की स्थापना करने का अनुरोध आरम्भ से ही किया जाता रहा है । मिशन के प्रति आस्था परिपक्व होने का प्रमाण घर के ज्ञान मन्दिर की, घरेलू ज्ञान मन्दिर की स्थापना को माना गया है । पूजा कक्ष की जितनी उपयोगिता है उतनी इस ज्ञानमंच की भी है । सद्ज्ञान को अपनाने की प्रेरणा ही ज्ञानयज्ञ अभियान का प्रथम चरण है । यह घरेलू पुस्तकालयों से ही पूरा होता है । विचार क्रान्ति को इसी आधार पर व्यापक बनाया जा सकता है । जनमानस के परिष्कार में जितना योगदान परामर्श-प्रशिक्षण का है उतना ही युगान्तरीय चेतना को नियमित स्वाध्याय के माध्यम से लोकमानस में उतरने का है ।

ज्ञानघटों की स्थापना और उस राशि से घरेलू पुस्तकालयों की स्थापना को मिशन की सक्रिय सदस्यता का अनिवार्य शुल्क माना गया है । उपयोगिता न समझ पाने का कारण इस सन्दर्भ में जहाँ भी अब तक उपेक्षा बरती गई हो वहाँ अब इस प्रौढ़ता की अवधि आने पर अन्त होना ही चाहिए । हमारे हर घर में ज्ञानघट निश्चित रूप से रखे जायें । उस पैसे से हर महीने युग साहित्य खरीदा जाय । परिवार निर्माण के सन्दर्भ में पिछला साहित्य भी मौजूद है आगे और भी नियमित रूप से छपेगा । मिशन की चारों पत्रिकाएँ व्यक्ति, परिवार और समाज के नव-निर्माण की पृष्ठभूमि बनाती हैं यह किसी से छिपा नहीं है । हर घर में दो ज्ञानघट रखे जा सकें तो एक घट की राशि से चारों पत्रिकाएँ और दूसरे की राशि से पुस्तकें नियमित रूप से मँगाई जा सकती हैं । पिछले दिनों जो उपेक्षा बरती जाती रही है । उसका प्रायश्चित कुछ अधिक राशि एक बार ही निकालकर घरेलू ज्ञान मन्दिर की स्थापना के लिए इस संदर्भ की इकट्ठी पुस्तकें मँगाकर इस स्थापना का शुभारम्भ किया जा सकता है ।

परिवार में यदि युग साहित्य नियमित रूप से पढ़ा जाने लगे तो राम परिवार को वशिष्ठ के सान्निध्य का जो लाभ मिलता रहा था प्रायः वही लाभ परिवार निर्माण अभियान के हर सदस्य को मिलता रह सकता है । ज्ञानघट की स्थापना युग साहित्य की व्यवस्था और अनिवार्य स्वाध्याय की प्रथा-परम्परा जिन घरों में चल पड़े समझना चाहिए वहाँ त्रिवेणी संगम जैसा सुयोग बना । यह प्रयास किसी धूमधाम के साथ अपनी गरिमा का डंका भले ही पीटे किन्तु इतना निश्चित है कि जिन परिवारों में इस प्रचलन को अवसर स्थान मिलेगा उनमें सत्प्रवृत्तियों का सम्बर्द्धन होना उनका सत्परिणाम पूरे परिवार को मिलेगा ।

(५) सत्संग, कथा श्रवण

सत्संग की महिमा शास्त्रकारों ने विस्तारपूर्वक गाई है । कथा श्रवण का पुण्य सर्वविदित है । धर्मक्षेत्र में इनकी चर्चा भी होती रहती है, घर इनका उपयुक्त अवसर कभी-कभी ही आता है । सो भी उसमें ऐसी सड़ी-गली वस्तुएँ मिलती हैं जिन्हें गले उतारने वाला उलटा भ्रम में फँसता और अस्त-व्यस्त बनता है । इन परिस्थितियों में नियमित सत्संग और सुनियोजित कथा, श्रवण का समावेश इसी एक प्रक्रिया में सम्भव हो सकता है कि रात्रि की कथा कहने और कथा सुनने की परम्परा आरम्भ की जाय ।

बच्चों को कहानियाँ सुनने का शौक होता है । इसमें मनोरंजन और उच्चस्तरीय प्रशिक्षण के दोनों तत्व हैं । प्राचीनकाल में वृद्धाएँ घर के बालकों को कथा, कहानियाँ नियमित रूप से सुनाती थीं उसके माध्यम से कोमल मनों पर सुसंस्कारिता की स्थायी छाप डालती थीं । देखने में 'नानी की कहानी' बाल और वृद्धों का मनोरंजन भर प्रतीत होता है, पर वास्तविकता यह है कि यदि इस कथा, श्रवण को उद्देश्यपूर्ण बनाया और सुनियोजित किया जा सके तो उसका सत्परिणाम हर दृष्टि से श्रेयस्कर हो सकता है ।

पंचतन्त्र नामक कथा ग्रन्थों का निर्माण उद्दण्ड राजकुमारों को विनोद और शिक्षण का समन्वय करके सत्

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सत्त् शिक्षण गले उतारने के लिए किया गया था । वह पूर्णतया सफल हुआ । उसी प्रक्रिया को घरों में कथा प्रचलन के माध्यम से हर घर में पुनर्जीवित किया जा सकता है । व्यक्ति सम्पर्क से चलने वाले सत्संग की यह अति सरल किन्तु चमत्कारी परिणाम उत्पन्न करने वाली प्रक्रिया है ।

घर की कोई सुयोग्य महिला इस उच्चस्तरीय कार्य को उठाये । समय नियत रहे । एक-दो कथा-कहानियाँ नियमित रूप से कहने की शैली में मनोरंजन और विषय में प्रभावोत्पादक तत्व होंगे तो न केवल बालक वरन् बड़ी आयु के भी सब लोग उसे चावपूर्वक सुनेंगे । मासिक युग निर्माण योजना में दस वर्ष तक प्रेरक जीवन गाथाएँ छपती रहीं हैं. उन अंकों को इधर-उधर से संग्रह किया जा सकता है और उनमें छपे प्रसंगों को कथा रूप में कहा जा सकता है । युग साहित्य में सस्ते जीवन चरित्र भी इसी उद्देश्य के लिए छापे गये थे । प्रायः एक घण्टे में वह पुस्तिका भली प्रकार सुनाई जा सकती है । इस तरह कथा साहित्य की आरम्भिक आवश्यकता इस प्रकार पूरी हो सकती है । पौराणिक कथाओं में से जिनमें जितने अंश में प्रेरक तत्व हैं उन्हीं को कथा प्रयोजन के लिए प्रयुक्त किया जाना चाहिए । इस प्रकार बाल साहित्य में से भी आदर्शवादी शिक्षण दे सकने वाली कहानियाँ छाँटी जा सकती हैं । कहानी कहने वाला दिन में जहाँ-तहाँ से प्रेरक कहानियाँ ढूँढ़े और रात को सुनाये । इसमें कठिनाई पड़ती हो तो युग साहित्य में छपे कथा प्रसंगों को पढ़कर सुनाते रहने से भी यह कार्य मजे में चलता रह सकता है । कथा श्रवण का सत्संग क्रम परिवार निर्माण के महान कार्य में परोक्ष रूप से अपना महत्वपूर्ण प्रभाव छोड़ेगा ।

नमन-वन्दन, बलिवैश्व, आरती, कीर्तन, स्वाध्याय प्रचलन, कथा श्रवण के उपरोक्त पाँच कार्य ऐसे हैं जो हर घर में सरलतापूर्वक आरम्भ किये जा सकते हैं । कार्यों के छोटे स्वरूप को देखते हुए बड़े परिणाम की आशा सामान्य बुद्धि से नहीं की जा सकती किन्तु यदि इन्हें कार्यान्वित किया जा सके तो प्रतीत होगा कि इन प्रयत्नों का सम्मिलित परिणाम कितने सुखद प्रतिफल प्रस्तुत करते हैं ।



Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

परिवार का पोषण ही नहीं, निर्माण भी

परिवार का पालन ही नहीं, निर्माण भी करें

समाज सेवा का सबसे समीपवर्ती और सबसे सरल कार्यक्षेत्र हमारा परिवार ही हो सकता है । ईश्वर ने जिन प्राणियों के साथ रक्त-सम्बन्ध बनाकर तथा कर्तव्य और उत्तरदायित्व के बन्धनों में बाँधकर परिवार के रूप में प्रस्तुत किया है, उनकी सेवा करना प्रत्येक दृष्टि से आवश्यक है । यों जितने अधिक मनुष्यों और प्राणियों की सेवा जितनी जिससे बन पड़े, उतनी ही उत्तम है, पर कौटुम्बिक उत्तरदायित्व तो अनिवार्य रूप से उठाने ही होते हैं, इनमें उपेक्षा बरतने से जो दुष्परिणाम निकलते हैं वे धर्मकर्तव्य, समाज-हित और परिवार संगठन की दृष्टि से बहुत ही विपरीत एवं घातक सिद्ध होते हैं । इसलिए सेवाधर्म की ओर लक्ष्य रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को यह कार्य अपने घर से ही आरम्भ करना चाहिए ।

यों अपने परिवार के लिए भोजन, वस्त्र की व्यवस्था सभी करते हैं । बच्चों की शिक्षा और विवाह का प्रबन्ध भी सबको करना पड़ता है । दवा-दारू, मनोरंजन तथा अन्य आवश्यक व्यवस्थाएँ भी समय-समय पर होती रहती हैं । इन कार्यों को गरीब, अमीर अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार उपेक्षा या उत्साह से किसी न किसी तरह पूरा करते ही रहते हैं । पर एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात छूटी ही रह जाती है और वह है परिवार को संस्कारवान बनाना ।

सुसंस्कारों के अभाव में मनुष्य का व्यक्तित्व गिरा हुआ ही बना रहता है । जिसका व्यक्तित्व निम्न श्रेणी का है, वह भले ही धन, विद्या, स्वास्थ्य, सौन्दर्य, प्रतिभा आदि की दृष्टि से कितना ही बढ़ा-चढ़ा क्यों न हो, निकृष्ट प्रकार का जीवन ही व्यतीत करेगा । उसे न तो स्वयं ही आन्तरिक शान्ति मिलेगी और न उसके सम्पर्क में रहने वाले सुखपूर्वक निर्वाह कर सकेंगे । दुर्गुणी व्यक्ति समाज के लिए, अपने लिए और परिवार के लिए अभिशाप ही सिद्ध होते हैं । इसलिए परिवार में सद्गुणों की सुसंस्कारिता की अभिवृद्धि करना प्रत्येक विचारशील व्यक्ति का एक आवश्यक धर्मकर्तव्य माना गया है ।

स्कूलों में अध्यापक लोग निर्धारित पाठ्यक्रम पढ़ा सकते हैं, पर उनसे चरित्र शिक्षण की आशा नहीं करनी चाहिए । क्योंकि चरित्र कहने-सुनने से नहीं सीखा जाता, उसके लिये तो वातावरण एवं अनुकरणीय उदाहरण चाहिए । स्कूलों के अध्यापकों का सम्पर्क बच्चों से पढ़ाई के निर्धारित घंटों में ही होता है-उनके निजी चरित्र और व्यक्तिगत व्यवहार से सीधा सम्बन्ध न होने से छात्र कोई सीधा प्रभाव ग्रहण नहीं करते । बुराई तो कहीं से भी सीखी जा सकती है, पर अच्छाई के लिए अनुकरण की प्रेरणा देने वाले आदर्शों की आवश्यकता होती है । अभ्यास में अच्छाइयाँ तब आती हैं जब प्रभावित करने के लिए वैसा वातावरण भी प्रस्तुत हो । इस प्रकार की व्यवस्था घर में रहे तो ही यह सम्भव है कि बच्चों पर जीवन को श्रेष्ठता के ढाँचे में ढालने वाली छाप पड़े ।

परिवार की सबसे बड़ी सेवा एक ही हो सकती है कि घर के हर व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाने का प्रयत्न किया जाय । जिस प्रकार अपनी त्रुटियों और बुराइयों को घटाने और हटाने की उपयोगिता है उसी प्रकार 'परिवार-शरीर' के प्रत्येक अंग को प्रत्येक परिजन को सुधरा हुआ एवं सुसंस्कृत बनाना आवश्यक है । यह कार्य दूसरे लोग नहीं कर सकते, स्वयं किये बिना उद्देश्य पूरा नहीं होगा । क्योंकि घरवालों पर जितना अपना प्रभाव एवं अपनत्व है उतना दूसरों का नहीं हो सकता, घर के प्रभावशाली व्यक्तियों को ही यह कार्य अपने हाथ में लेना चाहिए ।

डाँटने-फटकारने व भला-बुरा कहने, दोषारोपण एवं झुँझलाहट से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता । जिस प्रकार अपने ऊपर झुँझलाकर या लम्बी-चौड़ी योजना बनाकर एक दिन में अपना सुधार नहीं हो सकता, उसी प्रकार परिवार की बहुत दिन की जमी हुई भली-बुरी स्थिति उतावली में नहीं बदली जा सकती । बन्दर को तमाशा करना सिखाने वाले कलन्दर जिस धैर्य, अध्यवसाय और सतत प्रयत्न से काम लेते हैं, वही रास्ता हमें भी अपनाना पड़ेगा । तोड़-फोड़ सरल होती है पर निर्माण कार्य कठिन है । मनुष्य की योग्यता और प्रतिभा उसकी रचना शक्ति को देखकर ही आँकी जाती है । परिवार के निर्माण में बड़ी चतुरता, कुशलता, धैर्य, प्रेम, सहिष्णुता एवं आत्मीयता से काम लेना होता है । समय-समय पर साम, दाम, दंड, भेद की नीति अपनानी पड़ती है, तब कहीं शनैः-शनैः अभीष्ट परिणाम सामने आता है ।

इसके लिए घरेलू पाठशाला एवं सत्संग गोष्ठी के रूप में दैनिक शिक्षणक्रम का एक कार्यक्रम निर्धारित करना चाहिए । सुविधा के समय परिवार के सब लोग मिल-जुलकर बैठा करें और प्रेरणाप्रद प्रसंगों को लेकर वार्तालाप किया करें । दैनिक समाचार-पत्रों में छपने वाली कुछ भली या बुरी खबरों को लेकर उनकी आलोचना इस ढंग से की जा सकती है कि सुनने वालों पर भलाई के प्रति निष्ठा और बुराई के प्रति घृणा भाव पैदा हो । नई खबरें सुनने की सबकी इच्छा रहती है । आकर्षक, मनोरंजक और विवेचनात्मक ढंग से खबरें सुनाने का कार्य घर के सभी लोग पसंद करेंगे । उनका मनोरंजन भी होगा शिक्षा भी मिलेगी । इसी प्रकार महापुरुषों के जीवन चरित्रों के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

कोई अंश, व्रत पर्वों के इतिहास, पौराणिक उपाख्यान, कथा-गाथाएँ कहने का कार्यक्रम चलाया जाता रहे तो घर में सबका मनोरंजन भी होगा और अप्रत्यक्ष रूप में वे सब शिक्षाएँ भी मिलने लगेंगी जो परिजनों को सुसंस्कृत बनाने के लिए आवश्यक हैं ।

कभी-कभी घर की समस्याओं पर विचार-विनिमय भी करते रहना चाहिए । किसे क्या कठिनाई और क्या शिकायत है इसकी जानकारी परस्पर सब लोग रखे रहें और उसका हल खोजते रहें तो निश्चय ही वे बढ़ेंगी नहीं, घटेंगी ही । कड़ा प्रतिबंध लगा कर व्यक्तित्व की स्वतंत्रता को एकदम अवरुद्ध कर देना तो ठीक नहीं, पर प्रयत्न यह करना चाहिए कि सब लोग अपनी भूलों के समझने और सुधारने की आवश्यकता अनुभव करने लगें ।

अशिक्षा के विरुद्ध व्यापक अभियान आरम्भ करने की जो अपनी योजना है, उसका आरम्भ अपनी घरेलू ज्ञान-गोष्ठी ही से हमें आरम्भ करना चाहिए । घर में जो बिना पढ़े-लिखे हैं उन्हें पढ़ाना चाहिए । प्रयत्न यह करना चाहिए कि कोई भी निरक्षर न रहे । निरक्षरता मानव-जीवन का एक कलंक है । इस कलंक से अपने घर के सभी सदस्यों को मुक्त कर लेना चाहिए । 'अखण्ड-ज्योति' का एक भी सदस्य ऐसा न हो जिसकी स्त्री बिना पढ़ी रह जाय । घूँघट और संकोच की मूर्खता को इस पुनीत कार्य में जरा भी आड़े नहीं आने देना चाहिए । घर के बड़े-बूढ़ों को इस कार्य में अपनी सहमति देने के लिए रजामंद करना चाहिए । एकान्त समय में तो उनकी बिना सहमति के भी शिक्षण चल सकता है । जो स्त्रियाँ बड़ी आयु की हो चुकीं या जिन घरों में पर्दा नहीं होता वहाँ तो यह कठिनाई भी नहीं आती । कई बार बड़ी आयु की स्त्रियाँ इसे व्यर्थ समझती हैं, कहती हैं "हमें कोई नौकरी थोड़े ही करनी है जो पढ़ें ।" उन्हें समझाना चाहिए कि पढ़ना, ज्ञान के नेत्र खोलने के लिए होता है, नौकरी के लिए नहीं । शिक्षा की उपयोगिता समझाकर तरुण, अधेड़ और बूढ़ों को भी इस कार्य के लिए तैयार किया जा सकता है । यदि अपना स्वभाव मधुर और उत्साह पक्का है तो आज नहीं तो कल, घर के निरक्षर लोग साक्षर बनने को उद्धत हो ही जावेंगे ।

परिवार को सभ्य, सुशिक्षित, सच्चरित्र एवं विवेकशील बनाने के लिए प्रयत्न करना प्रत्येक विचारवान मनुष्य का आवश्यक धर्मकर्तव्य है । उसे पूरा करने से हम अपना उत्तरदायित्व पूरा करते हैं, समाज को सुसंस्कृत बनाने में भारी योगदान देते हैं और अपने बगीचे के सुविकसित होने से स्वयं भी लाभान्वित होते हैं । युग-निर्माण के लिए परिवार-निर्माण आवश्यक है । इसके लिए हमें ध्यान भी देना चाहिए और समय भी ।

परिवार निर्माण एक अनिवार्य उपयोगी प्रयास

परिवार में सुसंस्कारिता का वातावरण बनाना प्रत्येक विचारशील, जागरूक और विवेकवान व्यक्ति का कर्तव्य है । इस संगठन में रहने और उसका लाभ उठाने का ही दृष्टिकोण यदि प्रत्येक व्यक्ति अपना ले तो परिवार संस्था का कोई महत्व नहीं रह जाता । यदि एक साथ रहने का का नाम ही परिवार है तो लोग धर्मशालाओं, होटलों और रेलगाड़ियों में भी एक साथ रहते हैं । उतने मात्र से ही इन स्थानों पर रहने वाले लोग परिवार के सदस्य नहीं बन जाते । परिवार एक साथ रहने वाले व्यक्तियों का नाम नहीं है । उसमें रहने वाले सदस्य एक दूसरे के प्रति घनिष्ट आत्मीयता के सूत्र में बँधे रहते हैं । साथ रहने, एक चौके में खाने और एक दूसरे से बोल-चाल, बात-चीत, प्रेम-व्यवहार से सम्बद्ध रहने के अतिरिक्त भी स्वजन आपस में एक दूसरे के प्रति कर्तव्यों में बँधे रहते हैं । उन कर्तव्यों की पूर्ति करते चलना परिवार में रहने की, परिवारीजन कहलाने की अनिवार्य शर्त है । नासमझ, अबोध और छोटे बच्चों की अपेक्षा कर्तव्य पालन की आवश्यकता, अनिवार्यता, परिवार के बड़े सदस्यों के लिए अधिक है । छोटे बच्चों को तो कर्तव्य और दायित्वों की भाषा ही नहीं समझ पड़ती फिर वे उन्हें पूरा कहाँ से कर सकेंगे ? उन्हें कर्तव्य और दायित्व समझाना आगे की बात है । पहले तो यह आवश्यक है कि बड़े लोग स्वयं कर्तव्यपरायण तथा परिवार के प्रति उत्तरदायी बनें ।

यह उत्तरदायित्व परिवार के लोगों को संस्कारवान बनाने, उन्हें आदर्श और उत्कृष्ट व्यक्तित्वसम्पन्न बनाने के लिए जागरूक प्रयासों के रूप में ही पूरा किया जा सकता है । इन प्रयासों की कुशलता और तत्परतापूर्वक सम्पन्न किया जाए तो न केवल परिवार उत्कृष्ट व्यक्तित्वों को उत्पन्न करने में समर्थ हो सके वरन् उन प्रयासों के द्वारा अगणित मानवीय समस्याओं का समाधान भी परिवार की परिधि में रहकर ही सम्भव हो सकता है, सामाजिक कुरीतियाँ और समस्याएँ कोई आसमान से नहीं टपकतीं, वे समाज की इकाई व्यक्तियों की प्रवृत्ति से ही जन्मती हैं । व्यक्ति यदि असंस्कृत, अदूरदर्शी और विवेकवान होंगे तो उनकी प्रवृत्तियाँ, गतिविधियाँ और क्रिया-कलाप भी उसी स्तर के होंगे । व्यक्तियों की गतिविधियाँ और उनके क्रियाकलाप ही कई तरह की सामाजिक समस्याएँ खड़ी करते हैं । यदि उनके दृष्टिकोण और रीति-नीति में कोई परिष्कार किया जाए तो उन समस्याओं का जड़-मूल से उच्छेदन किया जा सकता है ।

यही नहीं बहुत सी ऐसी समस्याएँ भी परिवार के माध्यम से हल की जा सकतीं हैं जिनका व्यक्ति की रीति-नीति से प्रत्यक्षतः कोई सम्बन्ध नहीं है । यद्यपि सभी समस्याएँ व्यक्तियों के अपने दृष्टिकोण और रीति-नीतियों,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्रियाकलापों से ही उत्पन्न होती है फिर भी कुछ का स्वरूप सीधे उससे सम्बन्धित नहीं होता । उदाहरण के लिए अशिक्षा को ही लें । प्रत्यक्षत: इसका कारण परिस्थितियाँ और साधनों का अभाव लगता है परन्तु वास्तव में इसका कारण रुचि का अभाव और शिक्षा का महत्व न समझना है । कारण जो भी हो अशिक्षा अपने देश की एक बहुत बड़ी समस्या है और लगभग तीन चौथाई जनता अशिक्षित है । इन सभी लोगों को शिक्षित बनाना बड़ा काम लग सकता है, बड़ा काम है भी सही किन्तु इतनी बड़ी समस्या का समाधान निरक्षरता का उन्मूलन घर-पड़ौस के शिक्षित लोग ही थोड़ा-थोड़ा समय देकर सहज ही कर सकते हैं, जबकि सरकारी तन्त्र देश की तीन चौथाई जनता को साक्षर बनाने के लिए तन्त्र खड़ा करने में प्राय: असफल ही रहेगा । गरीबी उन्मूलन में कुटीर उद्योगों को प्रथम उपाय माना जा सकता है । यह प्रचलन ऊपर से नहीं थोपा जा सकेगा । घर के लोग आवश्यकता अनुभव करेंगे तो उसके साधन उसी प्रकार जुटा लेंगे जैसे विवाह-शादियों में खर्च करने के लिए पैसा कहीं से भी किसी भी प्रकार जुटा लेते हैं । स्वास्थ्य को बनाने और बिगाड़ने में भोजन सम्बन्धी ढर्रे तथा स्वच्छता, दिनचर्या की प्रमुख भूमिका रहती है, उसे सुधारने में ही आरोग्य का संरक्षण हो सकेगा, गली-गली अस्पताल बनाने और घर-घर डॉक्टर पहुँचाने से भी जो कार्य नहीं हो सकता वह आहार-विहार सम्बन्धी पारिवारिक ढर्रा बदलने से हो सकता है ।

जनसंख्या नियन्त्रण परिवार नियोजन की समस्या अत्यधिक विकट है । यह राष्ट्र की आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति में सबसे बड़ी बाधा है । यह कार्य सीधा घर की मान्यताओं पर निर्भर है, परिवार के हर सदस्य की इस सन्दर्भ में जागरूकता रहे और प्रजनन को अशुभ माना जाने लगे तो यह कार्य सहज ही हो सकता है, जो सरकारी महकमे की दौड़-धूप नहीं कर पा रही है । चरित्र गठन और व्यक्तित्व-निर्माण का कार्य अत्यधिक महत्त्व का काम है, समर्थता, समृद्धि और प्रगति के सभी प्रयोजन इसी रथ चक्रों के आधार पर गतिशील हो सकते हैं, यह कठिन कार्य परिवार संस्था के अतिरिक्त और किसी के बलबूते का नहीं है । स्कूलों में कुछ भी क्यों न पढ़ाया जाता रहे, घर का वातावरण ही व्यक्ति के गुण, कर्म, स्वभाव को गढ़ने ढालने में सफल होगा । जो कार्य नीति, सदाचार और धर्म, अध्यात्म का विशालकाय तन्त्र चिरकाल से चल रही घूम-धाम और ऊहापोह के सहारे भी कर नहीं पाया उसे परिवारों का सुधारा हुआ वातावरण देखते-देखते सम्पन्न कर सकता है ।

नागरिकता और सामाजिकता की कारगर शिक्षा देना और शालीनता को स्वभाव का अंग बना देना, न प्रवचनों के हाथ में है और न साहित्य इस दिशा में बहुत आगे तक जा सकता है । इन प्रचार तन्त्रों से दिशा-दर्शन भर हो सकता है । सत्प्रवृत्तियों को स्वभाव का अंग बनाना उपचारों से नहीं अन्तरंग के मर्मस्थल को प्रभावित करने वाली एवं दैनिक जीवन में कार्यान्वित होने वाली परिपाटी से ही सम्भव हो सकता है । यह महान कार्य यदि कभी कोई कर सकता है तो वह एक ही तन्त्र होगा-परिवार का परिष्कृत वातावरण ।

सामाजिक कुरीतियाँ, अनुपयुक्त, प्रथा-परम्परायें, मूढ़ मान्यतायें और रूढ़ियाँ, कितनी कष्ट कर और कितनी खर्चीली विभीषिकायें रचती रहती हैं, उसे हम सब आये दिन अनुभव करते हैं । समाज सुधार के नारे लगाये जाते और आन्दोलन किये जाते हैं, पर देखा गया है कि स्थिति में कोई खास परिवर्तन नहीं होता । विवाह-शादियों के प्रचलन को ही लें तो उसमें बाल-विवाह से लेकर देन-दहेज, धूम-धाम और उपजातियों में ही ढूँढ़-खोज के कारण कितनी जटिल समस्याएँ उत्पन्न होती हैं और दूरगामी दुष्परिणाम प्रस्तुत करती हैं, इसे सभी जानते हैं, बदलते हटाने की बात भी सोचते हैं पर घर-परिवार का भीतरी वातावरण इतना जड़ दुराग्रह अपनाए बैठा होता है कि बुद्धिमानी एक कोने पर बैठी रहती है और रूढ़ियाँ क्रियान्वित होती रहती हैं । सुधार अभीष्ट हो तो पत्ते तोड़ने से नहीं जड़ काटने से ही काम चलेगा ।

नारी को पददलित बनाये रखने और उसकी प्रगति में पग-पग पर अवरोध खड़े करने में उसका पति ही कारण नहीं होता, सारा परिवार उस अनीति को प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाये रहता है । फलत: प्रगतिशीलता का समर्थक होते हुए भी पति कुछ कर नहीं पाता । लोकलाज से उसे घर वालों का दबाव सहना पड़ता है और आदर्शवादी मान्यताओं को मन ही मन में मसोसे रहना पड़ता है । भावी पीढ़ी का निर्माण परिवारों में सुसंस्कारिता उत्पन्न होने से ही सम्भव हो सकता है, इस तथ्य को बहुत दिनों से समझा-समझाया जाता रहा है । इस सन्दर्भ में एक कड़ी और भी जुड़नी चाहिए कि नारी उत्थान का कार्य भी पारिवारिक वातावरण में परिवर्तन करने से ही सम्भव हो सकता है । पुत्र और पुत्री में भेद, पर्दा-प्रथा, शिक्षा की उपेक्षा, विवाह की जल्दी, प्रगति प्रयासों का विरोध, असहयोग, अस्त-व्यस्त ढर्रे में पूरा समय नष्ट होते रहना और प्रगति प्रयासों के लिए समय न मिलना जैसे अवरोध ही नारी की प्रगति में बाधक और अवनति के निमित्त हैं । इन अनाचारों का परिपोषण एक व्यक्ति नहीं, प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से पूरा पारिवारिक वातावरण ही करता है । नारी उत्थान की समस्या का हल, यदि वस्तुत: करना हो तो उसके लिए प्रचलित ढर्रे को बदलना अनिवार्य रूप से आवश्यक है ।

खाद्य-संकट जैसी कितनी ही समस्याएँ देश को हैरान करती रहती हैं, घरों में शाक-वाटिका लगाने तथा अन्न का उपयोग कम करके शाकों को उसका स्थानापन्न बनाया जा सके, पकाने की विधि, अन्न की सुरक्षा में जूठन छोड़ने तथा अधिक बना डालने जैसी उपेक्षाओं में यदि सतर्कता बरती जाने लगे तो इतने भर से अन्न की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

इतनी मात्रा बच सकती है कि उतने से ही विदेशों से अन्न मँगाने जैसी कठिनाई का हल निकल सके । गौरक्षा के लिए कितने ही आन्दोलन चलते हैं, पर आत्यांतिक समाधान एक ही है कि मात्र गाय का दूध ही प्रयुक्त किया जाय । हर परिवार की यही माँग हो तो गौपालन का व्यवसाय देश का प्रमुख उद्योग बन जायेगा और उससे न केवल धर्मभावना एवं स्वास्थ्य रक्षा का सवाल हल होगा, वरन् उपयोगी बैल मिलने से लेकर असंख्यों की बेकारी दूर होने का एक नया मार्ग भी मिलेगा ।

प्राचीनकाल में हर घर के पीछे, एक व्यक्ति-लोक सेवा के लिए समर्पित होता था । घर के अन्य लोग उसके पारिवारिक उत्तरदायित्वों को अपने कन्धों पर वहन करते थे । लोकमंगल के रचनात्मक कार्यों में भावभरी जन-शक्ति चाहिए । इसे नौकरी देकर इन दिनों खरीदा जाता है । यह खरीद खर्चीली भी रहती है और निकम्मी भी, यदि हर परिवार अपने में से एक को लोक समर्पित कर सके तो बिना अतिरिक्त अर्थ व्यवस्था जुटाये बिना भर्ती किये इतने समाजसेवी मिल सकते हैं कि उलझी हुई असंख्यों समस्याओं का समाधान उनके द्वारा सहज सम्भव हो सके । वानप्रस्थ परम्परा ने पुरातन युग को सतयुग में बदला था । संन्यासी लोकजागरण का कार्य करते थे, कितने ही ब्रह्मचारी विवाह की उपेक्षा करके सीधे समाज सेवा के महान कार्य में जुट जाते थे यही थीं वे महान परम्पराएँ जिनने इस देश को देवभूमि बनाया और यहाँ के लोगों ने संसार के कोने-कोने में जाकर सभ्यता का पाठ पढ़ाया । पारिवारिक संकीर्णता का दबाव इन दिनों अधिक है कि कोई परमार्थ परायण होने की बात सोचे या कदम उठाये तो उसे परिवार से लेकर मित्र-सम्बन्धियों तक के भारी विरोध का सामना करना पड़ता है । परिस्थिति को उलटा जा सके, परमार्थ को प्रश्रय-प्रोत्साहन मिलने लगे तो प्राचीनकाल की तरह फिर असंख्यों लोक-सेवी मिल सकते हैं । वानप्रस्थ और संन्यास की आवश्यकता घर भर के लोग अनुभव करने लगें तो समझना चाहिए कि व्यक्ति और समाज का कायाकल्प प्रस्तुत करने वाला सतयुग स्वर्ग से उतरकर धरती पर आने के लिए तैयार हो गया ।

कितने ही दुर्व्यसन और दुर्गुण मनुष्य समाज को खोखला करते हैं । सिगरेट, शराब आदि का प्रचलन परिवार में विरोधी वातावरण न रहने से ही पनपता है । सिख परिवार में तम्बाकू और जैन परिवार में माँसाहार का प्रचलन प्रायः नहीं ही पाया जाता । इसमें व्यक्ति विशेष को श्रेय नहीं वरन् पूरे परिवार का दबाव काम करता है । नशेबाजी जैसी दुष्प्रवृत्तियों को दूर करने के लिए पारिवारिक वातावरण का सहयोग मिलना आवश्यक है ।

अनेक रचनात्मक कार्यों के लिए श्रमशक्ति और धन शक्ति की कमी पड़ती रहती है । इसके लिए सरकार भारी टैक्स लगाती है और संस्थायें चन्दा एकत्रित करती हैं । यदि समर्थ व्यक्ति एक घण्टा समय और दस पैसा नित्य देने लगे और यह प्रथा आवश्यक कृत्यों की शृंखला में जुड़ सके तो किसी असुविधा का सामना किये प्रचुर परिमाण में श्रम और धन अनायास ही उपलब्ध हो सकता है और उतने से ही नवसृजन के अनेकानेक प्रयोजनों की पूर्ति सरलतापूर्वक होती रह सकती है । साठ करोड़ भारतीयों में से बीस करोड़ समर्थ माने जा सकते हैं । इतने लोगों का एक घण्टा मिलने से बीस करोड़ घण्टों का श्रमदान उपलब्ध हो सकता है । इतने भर से नवसृजन का पर्वत जैसा भारी काम अँगुलियों पर उठ सकता है । बीस करोड़ समर्थ दस पैसा नित्य दें तो वह राशि दो करोड़ प्रतिदिन होती है । दो करोड़ प्रतिदिन अर्थात ७२० करोड़ वार्षिक । इतनी बड़ी राशि में इन रचनात्मक कार्यों के ढाँचे सहज ही खड़े किये जा सकते हैं, जिनके बिना आज आदर्शवादी प्रगति में भारी अड़चन खड़ी हो रही है । साहित्य और कला को नवसृजन में लगाने की आवश्यकता हर कोई अनुभव करता है, सत्साहित्य का सृजन एक आवश्यक कार्य है । इन दिनों का प्रधान मनोरंजन और प्रभावी माध्यम सिनेमा है । दोनों के लिए पूँजी मिल सके तो फैले हुए कूड़े-करकट को बुहार फेंकने और उसके स्थान पर अभिनव को स्थानापन्न बनाना सहज सुलभ हो सकता है । एक वर्ष के ७२० करोड़ सत्साहित्य के लिए, दूसरे वर्ष के फिल्म के लिए, तीसरे वर्ष के चल पुस्तकालयों के लिए, चौथे वर्ष के साक्षरता के लिए, पाँचवें वर्ष के अवांछनीयताओं के उन्मूलन के लिए लगाये जा सकें तो यह पंचवर्षीय योजना अपने देश का समग्र कायाकल्प करके रख सकती है । इतने भर से भौतिक परिस्थितियों और मनःस्थितियों में जमीन आसमान जैसा अन्तर प्रस्तुत किया जा सकता है । न सरकार पर बोझ पड़ेगा और न दानियों का द्वार खटखटाना पड़ेगा । परिवार में जिस प्रकार अनेक प्रथा-परम्परायें भी प्रचुर धन खर्च कराती और समय बर्बाद कराती रहती हैं, उसी प्रकार एक घण्टा और दस पैसा नित्य परमार्थ प्रयोजनों के लिए निकालने जैसे छोटे अनुदान को भी उसी में सम्मिलित किया जा सके तो इतने नगण्य से अंशदान को सम्मिलित योगदान इतना बड़ा हो सकता है कि प्रचुर धनशक्ति और जनशक्ति के सहारे नया संसार बनाकर खड़ा कर देने जैसा चमत्कार किया जा सके ।

अनैतिकतायें और अपराधी दुष्प्रवृत्तियाँ रोकने के लिए पुलिस, कचहरी, जेल, कानून आदि का खर्चीला ढाँचा चल रहा है, इतने पर भी पतनोन्मुख प्रवाह में कोई कमी आती नहीं दीखती । दण्ड से बच निकलने की प्रचुरता इतनी अधिक बढ़ गई है कि अपराधों की रोकथाम का प्रयोजन पूरा नहीं दीखता । यह अन्धकार भरे भविष्य का लक्षण है । रोकथाम की बात यदि कभी सफल हुई-तो उसमें पारिवारिक शालीनता ही प्रधान भूमिका सम्पन्न करेगी । छोटे रूप में अनीति की शिक्षा वहीं से मिलती है । अपराधों को सहन करने और समर्थन देने का प्रश्रय भी वहीं से मिलता है । छोटे रूप में पलने वाली आदतें बड़े

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होने पर कालरज्जु जैसे सर्पिणी बनती और शालीनता को डसकर समाप्त करती हैं । यदि परिवार में अनीति का प्रश्रय न देने का प्रचलन हो उसको समर्थन सहयोग न मिले तो, अधिकांश दुष्प्रवृत्तियाँ पनपने का अवसर ही नहीं पा सकतीं ।

व्यक्तिगत दोष-दुर्गुणों से लेकर सामाजिक कुरीतियाँ और अनैतिक, अवांछनीय, भ्रष्ट प्रवृत्तियों तक जितनी भी समस्याएँ वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में व्याप्त हैं, उनका हल परिवार में खोजा जा सकता है ।

विश्व में अनेकानेक स्तर की समस्याएँ, विपत्तियाँ एवं विभीषिकाएँ बिखरी पड़ी हैं, ऐसी विकट जो सुलझाये सुलझती नहीं । इतने बुद्धिमान और इतने सुसम्पन्न मानव समाज को निरन्तर व्यथित, उद्विग्न, आशंकित बनाये रहने वाली इन विपन्नताओं की उत्पत्ति आखिर होती कहाँ से है ? इसका पता लगाने पर प्रतीत होता है कि चिन्तन और चरित्र की दृष्टि से सड़े-गले परिवार अपनी कीचड़ में से विषैले कृमि-कीटक उत्पन्न करते हैं, इन विषाणुओं की सेना लोकमानस को जर्जर बनाकर रख देती है । समस्त विकृतियों का उद्गम केन्द्र यही है । यदि परिवारों में सुसंस्कारिता की परिस्थितियाँ बनी रहें, तो इस नन्दनवन में कल्पवृक्ष फलते और परिजात फूलते दिखाई देंगे । स्वर्गीय वातावरण बनाने की यह पृष्ठभूमि है ।

इस सन्दर्भ में परिवार के प्रति अपना दृष्टिकोण भी स्पष्ट कर लेना चाहिए । परिवार का अर्थ उन लोगों तक ही सीमित नहीं समझा जाना चाहिए जो एक चूल्हे पर पकाते-खाते और एक घरोंदे में रहते हैं । पारिवारिक परिधि में हर स्तर के व्यक्ति को सम्मिलित किया जा सकता है । विवाहित, अविवाहित की इसमें समान रूप से गणना हो सकती है । प्रचलित मान्यता के अनुसार अपनी स्त्री और उसके पेट से उत्पन्न हुए बाल-बच्चे परिवार गिने जाते हैं, बहुत हुआ तो माता के पेट से उत्पन्न हुए भाई-बहिन भी इस परिवार में समझे जा सकते हैं । पाश्चात्य देशों में स्त्री-पुरुष ही परिवार है, समर्थ होते ही बच्चे अपनी गृहस्थी आप बसाते हैं, अभिभावकों के साथ किसी कर्तव्य उत्तरदायित्व के बन्धन में बँधे नहीं रह जाते ।

भारतीय पारिवारिकता उससे भिन्न है । उसमें संयुक्त कुटुम्ब की परिपाटी है । कई पीढ़ियों के लोग एक ही घर-परिवार में संयुक्त रूप से ही रहते, एक ही चूल्हे पर पकाते-खाते और कृषि आदि एक ही व्यवसाय में संलग्न रहकर गुजारा करते हैं । अपने ही अंशजों का उत्तरदायित्व सँभालने जैसी संकीर्णता उनमें नहीं होती । विधवाएँ, निराश्रिताएँ और दूर रिश्ते की महिलाएँ इसी परिवार में आश्रय पातीं और शान्तिपूर्वक निर्वाह करती देखी जाती हैं । यही भारतीय आदर्श है । संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली के अन्तर्गत अधिक लोगों के एक साथ रहने और निर्वाह एवं विकास के लिए सामुदायिक रीति-नीति अपनाने की प्रयोगशाला ही परिवार है । उसका आधार छोटा भी हो सकता है और बड़ा भी ।

मिल-जुलकर रहने, योग्यतानुसार कमाने, आवश्यकतानुसार खर्च करने की आदर्शवादिता परिवार का मेरुदण्ड है । अध्यात्म की दृष्टि से अधिक लोगों का आत्मीयता के बन्धनों में बँधना सुख-दुःख को मिल-बाँटकर वहन करना, अधिकार को गौण और कर्तव्य को प्रमुख मानकर चलना पारिवारिकता है । इसे सहकारी जीवन पद्धति कह सकते हैं । इन दिनों आर्थिक क्षेत्र में सर्वत्र सहकारी प्रयत्नों की उपयोगिता समझी जा रही है और उसे प्रमुखता मिल रही है । देहातों में सहकारी समितियों का विस्तार हो रहा है, औद्योगिक कारखाने लिमिटेड कम्पनियों के रूप में चलते हैं ।

मानवी प्रकृति में बुद्धि की प्रधानता को कारण समझा जाता है पर वस्तुतः महिमा सहकारिता की है । कुटुम्ब बनाकर रहने और समाज व्यवस्था अपनाने से ही उसने इस स्तर तक पहुँचने में सफलता पाई है, जिससे वह सृष्टि का मुकुटमणि समझा जाता है । सहकारी स्वभाव ने उसे पारस्परिक आदान-प्रदान के आधार पर बुद्धिमान, सुयोग्य और समृद्ध बनाया है । भौतिक, आत्मिक प्रगति का सारा रहस्य मिल-जुलकर रहने की पद्धति में सन्निहित है, उसी को अधिक सुसंयत रूप से छोटी-छोटी इकाइयों में क्रियान्वित करना परिवार है । इसी सत्प्रवृत्ति को जीवनयापन के हर क्षेत्र में विकसित करना पारिवारिकता है । इसी का विकसित रूप समाजवाद एवं साम्यवाद है । अध्यात्म दर्शन भी इसी आस्था पर आधारित है । ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' का सिद्धान्त समस्त मानव समाज को, प्राणिमात्र को आत्मीयता के सूत्र में बाँधता है और संयुक्त रूप से प्रगति करने तथा मिल-बाँटकर खाने की प्रेरणा देता है ।

स्त्री के पेट से उत्पन्न हुए बच्चों का भरण-पोषण तो पशु-पक्षियों में भी चलता है। नर-नारी कामुकता के आधार पर घर बसाते व अण्डे बच्चों की साज-सँभाल करते हैं । यह प्रकृति प्रेरणा है । परिवार यहाँ से आरम्भ भले ही होता है, पर इतने दायरे में सीमित नहीं रहता । उसकी परिधि अधिकाधिक बड़ी होती जानी चाहिए । यहाँ तक कि विश्व परिवार के आदर्शों का परिपालन करते हुए विराट ब्रह्म के दर्शन करने चाहिए । विरक्त भी एकाकी नहीं रहते उनका आश्रय सम्प्रदाय परिवार है । कुमार-कुमारी, विधुर-विधवा भी विवाहितों की तरह ही किसी निर्वाह तन्त्र के अंग बनकर ही रहते हैं ।

विशाल परिवार की दृष्टि को विकसित करना, जीवनयापन की प्रक्रिया में अधिकाधिक लोगों को संयुक्त करना यही पारिवारिकता का तत्व दर्शन है, जिस पर लोक- कल्याण अवलम्बित है ।,यह तो परिवार संस्था के व्यापक और विस्तृत अर्थ की बात हुई । उदार दृष्टि से विचार करने पर तो यह पूरा विश्व ही अपना परिवार दिखाई देने लगेगा । लक्ष्य वही होना चाहिए । किन्तु परिवार के वर्तमान कलेवर को, प्रचलित स्वरूप को ही देखें, तो वही अपने आप में इतना अधिक महत्वपूर्ण है कि उसी के ऊपर व्यक्ति और समाज का भाग्य-भविष्य निर्भर है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

व्यक्ति और समाज का भाग्य भविष्य निर्धारित करने वाली यह संस्था इन दिनों अपने आप बुरी तरह अस्तव्यस्त स्थिति में पड़ी है । गंगोत्री का गोमुख अवरुद्ध हो जाय तो भागीरथी की पतित पावनी धारा की उपलब्धियों का आनन्द कैसे मिले ? गंगा का अवतरण भागीरथ के प्रयासों से हुआ परन्तु उसकी स्वच्छता और गतिशीलता में अवरोध उत्पन्न न होने पाये, यह उन सबका उत्तरदायित्व है, जो भागीरथी से लाभ उठाते हैं, तथा उसका महत्व मानते हैं । आदिम मनुष्य को परिवारी प्रकृति का बनाने और उसे इस महान संस्था की छत्रछाया में फलने-फूलने का अवसर जिन्होंने दिया, वे तत्वदर्शी निश्चित रूप से भगीरथ के समतुल्य थे । उन्होंने परिवार संस्था के रूप में विश्व मानव को भौतिक सिद्धियों से हर घड़ी लाभान्वित करने वाली दिव्यगंगा धरती पर बुलाई । अब आप सभी व्यक्तियों का जिन्होंने इस संस्था से लाभ उठाया, यह कर्तव्य है कि उसकी पवित्रता और प्रवाहशीलता में जो गतिरोध उत्पन्न हो रहा है, उसका निराकरण करे ।

इस दिशा में यदि प्रभावशाली कदम उठाए जाएँ तो उससे स्वार्थ भी सधता है और परमार्थ भी । इस दिशा में किये गए प्रयासों का परिणाम भी तत्काल देखने को मिल सकता है । परिवार निर्माण की दिशा में उपयोगी कदम उठाते ही उनका प्रभाव तुरन्त उत्पन्न होता है । अर्थ-सन्तुलन, स्नेह-सौहार्द्र, वातावरण में सुसंस्कारिता और सभी के लिए प्रगति के अवसर जैसे लाभ, परिवार निर्माण के कदम उठाते ही तुरन्त मिल जाते हैं । यदि यह कदम शृंखला-प्रतिक्रिया की तरह हर घर-परिवार में उठने लगे, तो इससे समाज पर भी प्रभाव पड़े बिना नहीं रहेगा और समाज का काया-कल्प देखते-देखते प्रस्तुत हो जायेगा । यह इसका परोक्ष लाभ हुआ । इस प्रकार परिवार निर्माण की दिशा में कदम उठाते ही समाज और युग निर्माण की सम्भावना भी साकार होने लगती है । इसीलिए व्यक्ति और परिवार निर्माण को समाज निर्माण का आधार स्तम्भ कहा गया है ।

परिवार निर्माण की उपयोगिता और चेष्टा

व्यक्ति निर्माण और समाज निर्माण के दोनों महान प्रयोजन परिवार निर्माण की उपेक्षित किन्तु अत्यधिक महत्वपूर्ण प्रक्रिया के साथ जुड़े हुए हैं । इस तथ्य को जितनी जल्दी समझ लिया जाय उतना ही उत्तम है । विश्व कल्याण एवं मानवी उत्कर्ष के लिये यों कितने ही छोटे-बड़े सेवा कार्य किये जा सकते हैं पर निकटतम क्षेत्र में अनवरत क्षेत्र में जो सेवा साधना की जा सकती है, वह परिवार निर्माण के रूप में ही सम्भव है । ऐसे लोग जो सेवा स्वीकार करने और अनुरोध पर ध्यान देने के लिए सरलतापूर्वक सहमत हो सकते हैं वे अपने घर परिवार के लोगों से बहतर कदाचित् ही कहीं मिल सकें । उन पर आत्मीयता का दबाव रहता है । असहयोग एवं प्रताड़ना का भय भी । निरन्तर साथ रहने के कारण उन्हें समय-समय पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से गलतियों को सुधारने एवं सत्प्रवृत्तियाँ अपनाने के लिए बिना विशेष कठिनाई के सहमत किया जा सकता है । अन्य लोगों के सुधारने का प्रयत्न करने में इतना अवसर नहीं मिल सकता, न उन पर कुछ दबाव ही रहता है । अस्तु, सुधार परिष्कार की सेवा साधना के लिए सरलतम क्षेत्र ढूँढ़ना हो तो वह परिवार के अतिरिक्त कदाचित् ही और कहीं मिल सके ।

अन्य लोगों के बिगाड़-सुधार का भला-बुरा परिणाम उन्हीं के सम्पर्क क्षेत्र में विशेष रूप से होता है । यों प्रकारान्तर से सारा मानवी समाज ही एक सूत्र में बँधा है और एक के कृत्य एवं स्तर अन्यान्यों को भी किसी न किसी रूप में प्रभावित करते हैं, फिर भी सीधा सम्बन्ध उन्हीं से रहता है, जो एक दूसरे के साथ अधिक घनिष्टतापूर्वक जुड़े हैं । परिवार के लोगों के साथ सहज घनिष्टता होती है । फलतः एक की हलचलों एवं परिस्थितियों से उस समुदाय के अन्य लोग भी प्रभावित होते हैं । घर का एक व्यक्ति असामान्य स्तर का बनने लगे तो उसकी प्रतिक्रिया अन्य साथियों पर भी होती है । स्वयं सज्जन रहते हुए भी परिवार के लोगों की दुर्जनता उद्विग्न करके रख देती है । घर का एक व्यक्ति बागी होता है तो अन्य लोगों की नींद हराम हो जाती है । एक उठता है तो अन्यों को भी उसके सहारे उठने का अवसर मिलता है । शरीर का एक अंग पीड़ित हो तो अन्य अंगों की सहज गतिविधियाँ लड़खड़ाने लगती हैं । यही बात परिवार के सम्बन्ध में भी है । समस्त कुटुम्बी एक दूसरे की स्थिति से प्रभावित होते हैं । ऐसी दशा में निजी स्वार्थ को देखना हो तो भी वह परिवार से कम की परिधि में नहीं सधता ।

ऐसी सेवा जो तत्काल और प्रत्यक्ष ही अपना सत्परिणाम प्रस्तुत करे, परिवार को सुसंस्कृत बनाने के रूप में ही हो सकती है । समृद्ध एवं समुन्नत बनाने के लिए साधनों की आवश्यकता है, साथ ही परिस्थितियों की अनुकूलता भी चाहिए । यह सर्वथा अपने ही हाथ में नहीं होता । सुविधा साधन जुटाने के लिए धन चाहिए । वह अभीष्ट मात्रा में मिल ही जायगा, इसका कोई भरोसा नहीं । फिर धन होने पर भी परिस्थितियाँ प्रतिकूल होती चली जायें तो सम्पन्नता भी काम नहीं आती । विग्रहों से उत्पन्न अस्त-व्यस्तता को सम्भालना ही इतना कठिन पड़ जाता है कि सम्पन्नता से लाभान्वित होने का अवसर भी हाथ नहीं लगता । कितने ही धनी मानी, स्वस्थ समर्थ-निर्धनों से भी गई बीती मनःस्थिति और परिस्थिति में समय काटते देखे जाते हैं । प्रतिकूलताओं का दौर चल पड़े तो धन, सम्पत्ति के आधार पर अपने को, अपने परिवार को सुखी बनाने की इच्छा एक कोने पर धरी ही रह जाती है । ऐसा न हो तो भी यह निश्चित है कि धन का-साधनों का लाभ तभी

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उठाया जा सकता है जब उसका उपयोग करने वाले सुसंस्कारी हों । अन्यथा उपलब्धियाँ नशे की तरह उन्माद उत्पन्न करती और विष की तरह विनाश रचती देखी गई हैं । ऐसे भाग्यशाली कम ही होते हैं जो सम्पदा की विपुलता और उसके सहारे सुखद परिणति का दुहरा लाभ प्राप्त कर सकें । सम्पन्नता के सहारे परिवार को सुखी-समुन्नत बनाने की कामना बहुत ही कम लोगों की पूरी होती है ।

सरलता इसमें है कि परिवार के वातावरण में सुसंस्कारिता उत्पन्न की जाय । इसका प्रतिफल हाथों-हाथ देखने को मिलेगा । निर्धनता इस प्रयास में कोई बाधा नहीं पहुँचाती । गरीबी के कारण सुविधा साधनों में कमी पड़ती है, अस्तु कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । इतने पर भी शालीनता के निर्वाह में उस कमी के कारण कोई व्यवधान उत्पन्न नहीं होता । इसी प्रकार परिस्थितियों की विपन्नता सामने आ खड़ी होने पर भी नीति-पथ से डगमगाने का कोई कारण नहीं होता । सच तो यह है कि संकटग्रस्त परिवार के लोग एक-दूसरे की सेवा सहायता में और भी अधिक सद्भावना और सहकारिता का परिचय देते हैं । मुसीबत के कारण सदाशयता और भी अधिक निखरती है । दूरदर्शिता, साहसिकता जैसे सद्गुणों के परिपक्व होने का अवसर प्रायः विपन्न परिस्थितियों में ही मिलता है ।

साधनों से सुविधा तो रहती है और दूसरों को चमत्कृत करने का अवसर भी मिलता है । इतने पर भी वे सुसंस्कारिता के सम्वर्द्धन में कोई विशेष भूमिका नहीं निभाते । सच तो यह है कि सम्पन्नता के कारण उसके उपभोक्ता आलस्य, प्रमाद, अहंकार एवं अनेकानेक दुर्व्यसनों से ग्रसित होते देखे जाते हैं जबकि निर्धनता की स्थिति में वैसे उद्धत आचरण के लिए गुंजाइश ही नहीं रहती ।

यहाँ सम्पन्नता-विपन्नता की तुलनात्मक समीक्षा नहीं की जा रही है । मात्र इतना कहा जा रहा है कि परिवार को सुसंस्कृत बनाने की सरलता समझी जाय और यह न सोचा जाय कि इस महान प्रयोजन में निर्धनता बाधक हो सकती है । इसी प्रकार व्यस्तता की बहानेबाजी गढ़ना भी बेकार है । परिवार में सत्प्रवृत्तियाँ बढ़ाने के लिए अलग से समय निकालने की आवश्यकता नहीं पड़ती । सामान्य क्रिया-कलापों के बीच ही वह प्रशिक्षण सहज स्वभाव चलता रहता है । महान माताओं ने अपनी सन्तानों को विश्व के ऐतिहासिक महामानवों की पंक्ति में बैठ सकने योग्य बनाया इसके लिए उन्होंने हर दिन कोई नियमित कक्षाएँ नहीं चलाईं और न किसी अतिरिक्त प्रयोगशाला में ढलने भेजा । सामान्य दिनचर्या के बीच ही ऐसे सुसंस्कार देती चली गईं कि समय आने पर इन सद्गुणों ने चमत्कार दिखाया और उन सुसंस्कृतों को उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचाया । वे माताएँ स्वयं श्रेयाधिकारी बनीं और उनकी संतति ने उत्तराधिकार में उच्चस्तरीय अनुदान पाया ।

परिवार निर्माण के लिए क्या साधन जुटाने होंगे यह पूछने की आवश्यकता नहीं । उसमें केवल महत्व समझने और ध्यान देने भर की आवश्यकता है । इतना बन पड़े तो प्रयास सहज ही चल पड़ेंगे । आरम्भ में ढर्रा बदलने भर की कठिनाई पड़ेगी । अभ्यस्त ढर्रा, स्वभाव का अंग बन जाता है । कितनी ही दुष्प्रवृत्तियाँ आदतों में सम्मिलित हो जाती हैं । उसकी हानियाँ समझते हुए भी भारी अड़चन यही रहती है कि आदत अपने आप छूटती नहीं । छुड़ाने के लिए जिस साहस की आवश्यकता है वह होता नहीं । फलतः अनुपयुक्त रीति-नीति के अभ्यस्त दुःख सहते और सिर धुनते रहते हैं । अपना बचाव करने की मनोवैज्ञानिक कमजोरी विपन्न परिस्थितियों का दोष किसी दूसरे के मत्थे मढ़ने की विडम्बना रचती रहती है । उससे भी कुछ बनता नहीं । आत्मप्रवंचना से उद्विग्नता को किसी सीमा तक हलकी भले ही कर लिया जाय प्रयोजन तनिक भी सिद्ध नहीं होता ।

परिवार निर्माण की महत्ता और उपयोगिता जिनकी समझ में आ जाय और जो सचमुच ही इस दिशा में कुछ करना चाहते हों, उन्हें एक ही साहस जुटाना पड़ेगा कि घर के प्रचलित चिन्तन और क्रियाकलाप में उपयोगी सुधार परिवर्तन करने के लिए कटिबद्ध हुआ जाय । इसके लिए अन्य सदस्यों से परामर्श किया जाय और उनका सहयोग सम्पादित किया जाय । आवश्यक नहीं कि सभी लोग सच्चे मन से इस प्रयास का समर्थन करें । जो सहयोग देने को तत्पर हों, उनके सहारे ही गाड़ी को आगे बढ़ाया जा सकता है ।

परिवार निर्माण से ही व्यक्ति और समाज का निर्माण सम्भव

परिवार निर्माण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से आत्मनिर्माण और समाज निर्माण के दोनों उद्देश्य अनायास ही पूरे होते चलते हैं । तालाब में तैरना यों एक सामयिक और सीमित अभ्यास है, पर उससे तैराकी के बहाने शिक्षार्थी अपने अंग-प्रत्यंगों को विशेषतया फेफड़ों को मजबूत बनाने का लाभ उठाता है साथ ही आवश्यकतानुसार किसी नदी तालाब को पार करने, डूबते को बचाने जैसी विशेषताओं से अपने को सुसम्पन्न बनाता है । व्यायामशाला में कसरत करना भी एक सामयिक अभ्यास है । उसे करते समय स्फूर्ति का, साहसिकता का परिचय भर मिलता है, किन्तु प्रवीणता आने पर शरीर सुडौल और बलिष्ठ होने के कारण साथियों पर छाप छोड़ने, शत्रुओं को आतंकित करने, दंगल में कुश्ती जीतने, व्यायाम शिक्षण पाने जैसे अनेक अन्यान्य लाभ उठाना भी सम्भव हो जाता है । परिवार निर्माण को इसी स्तर का कार्य समझा जाना चाहिए । जिसमें तत्काल तो अर्थ संतुलन, सद्व्यवहार, स्नेह-सौहार्द्र, सुसंस्कृत वातावरण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सभी के लिए प्रगति अवसर जैसे लाभ मिलते हैं और उस व्यवस्था को देखने वाले सराहना करते-करते नहीं थकते । यह प्रत्यक्ष लाभ हुआ । दूरवर्ती और परोक्ष लाभ इसके अतिरिक्त हैं ।

स्वभावत: परिजनों के प्रगतिशील, समुन्नत, यशस्वी, समृद्ध एवं सुसंस्कृत होने की आकांक्षा रहती है । यह शुभेच्छायें मात्र कल्पना करने या आशीर्वाद देने से सम्भव नहीं हो जातीं । इन्हें फलित करने के लिए उस वातावरण को समर्थ बनाना पड़ता है । जिसमें पलकर किसी अनगढ़ को सुगढ़, अविकसित को समुन्नत बनाने का अवसर मिलता है । जलवायु की अनुकूलता में वृक्ष-वनस्पतियाँ विकसित और फलित होती हैं । प्रतिकूलता रहने पर बहुमूल्य पौधे भी सूखते, दम तोड़ते देखे गये हैं । यही बात प्राणियों के सम्बन्ध में भी है । समर्थ वर्ग के जीव-जन्तु भी अनुपयुक्त परिस्थितियों से दुर्बल, रुग्ण रहने और अस्तित्व गँवाने लगते हैं । मनुष्य की आत्मसत्ता महान अवश्य है किन्तु उसको भी साँस लेनी पड़ती है । घुटन भरे घेरे में रहकर उसे अपनी स्वाभाविक चेतना से हाथ धोना पड़ता है । विष खाने से ही नहीं विषाक्त गैस से भी मृत्यु होती है । व्यक्ति के निजी दोष-दुर्गुण प्रगति पथ में जितना अवरोध उत्पन्न करते हैं, उससे कम नहीं कुछ अधिक ही बाधा उस वातावरण के कारण उत्पन्न होती है जो परिवार में कुसंस्कारी परिस्थितियों के कारण बना होता है ।

कल्पना एक बात है योजना दूसरी । योजना एक बात है और व्यवस्था दूसरी । व्यवस्था एक बात है और तत्परता दूसरी । कुटुम्बियों को सुखी-समृद्ध देखने की कल्पना शुभेच्छा उचित भी है और स्वाभाविक भी । पर उतने भर से काम कुछ नहीं बनता । कल्पना तो सिंहासनारूढ़ होने या आसमान के तारे तोड़ लाने की भी हो सकती है, पर उसका कोई आधार न बनता हो तो शेखचिल्ली जैसा उपहासास्पद ही बनना पड़ेगा ।

छोटे से लेकर बड़े कामों तक की व्यावहारिक योजना बनानी पड़ती है । उसे क्रियान्वित करने में तन्मयता एवं तत्परता नियोजित करनी पड़ती है, आवश्यक साधन जुटाने होते हैं । पानी के ढलान की तरह पतनक्रम सहज लुढ़कने लगता है, पर सदुद्देश्यों के लिए सृजनात्मक प्रयास खड़े करने और उन्हें गतिशील रखने में अनवरत प्रयास की आवश्यकता पड़ती है । पतन पथ पर पानी से लेकर ढेले तक को बहते लुढ़कते देखा जा सकता है । वे जब तक जीवित हैं तब तक बिना किसी प्रेरणा के अधिक गहरे गर्त में गिरने के लिए स्वयमेव बढ़ते रह सकते हैं ।

उत्कर्ष की बात दूसरी है उसके लिए निरन्तर शक्ति जुटानी पड़ती है । कुँए से पानी खींचने में हाथ रुकने से ही तत्काल सारा काम जहाँ का तहाँ रुक जाता है । छत पर चढ़ने के लिए जब तक पैर बढ़ेंगे तभी तक प्रगति होगी । रुकते ही सब कुछ ठप्प हो जायेगा । गिरने का क्रम अलग है और उठने का दूसरा । ढेला ऊपर फेंकना हो तो वह प्रयत्न उतनी ही दूर तक सफल होगा जब तक उसके पीछे फेंकने वाले की शक्ति काम करती रहेगी । परिवार निर्माण की प्रक्रिया पर भी यही तथ्य लागू होते हैं । सभी जानते हैं कि खर्च जुटाने के लिए आमदनी के स्रोत निरन्तर खुले रखने की आवश्यकता होती है । आमदनी बन्द होते ही खर्च के लाले पड़ जाते हैं । ठीक इसी प्रकार परिवार निर्माण के लिए प्रेरणाप्रद वातावरण बनाने की जागरूकता एवं तत्परता काम करती रहेगी । तभी तक वह प्रयास सफल होता रहेगा । इस संदर्भ में न तो उथले प्रयत्न सफल होते हैं और न हाथ खींच लेने पर भी स्वयमेव चलते रह सकते हैं । जब हर छोटा बड़ा काम सफलता के स्तर तक पहुँचने के लिए आवश्यक सूझ-बूझ श्रमशीलता और साधन-सामग्री की अपेक्षा करता है तो फिर परिवार निर्माण ही उसका अपवाद कैसे हो सकता है ?

निर्जीव निर्माण सरल-सजीवों का उत्कर्ष कठिन है । वस्तुएँ जहाँ की तहाँ रखी रहती हैं । अपने मन से उलट पलट नहीं करतीं, पर सजीव प्राणी तो हर घड़ी कुसंस्करिता का परिचय देते और नई-नई समस्याएँ उत्पन्न करने से नहीं चूकते । ऐसी दशा में प्राणियों का विशेषतया मनुष्यों का भावनात्मक निर्माण कितना कठिन हो सकता है । इसे कल्पना से नहीं अनुभव से ही जाना जा सकता है । सर्कस के जानवर सधाने का काम जिन्हें करना पड़ता है वे बता सकते हैं कि अनगढ़ पशुओं को कुशल कलाकार की तरह रंगमंच पर आने योग्य बनाने में कितने मनोयोग और परिश्रम की आवश्यकता पड़ती है । परिवार भी एक पूरा सर्कस है । जिसमें विभिन्न स्तर और प्रवृत्ति के प्राणी बसते हैं । उनका शरीर पोषण तो सरल है, पर बौद्धिक एवं भावनात्मक निर्माण करने के लिए असाधारण दूरदर्शिता और तत्परता अपनानी पड़ती है । इतना सब किये बिना मात्र शुभेच्छा का मूल्य कल्पना-जल्पना जितना उपहासास्पद बनकर ही रह जाता है ।

परिवार निर्माण का प्रत्यक्ष पक्ष इतना ही है कि उस परिधि में रहने वाले प्रत्येक परिजन का वर्तमान सुखद और भविष्य उज्ज्वल बनता है । निर्माताओं को इसके बदले में आत्मसंतोष, गर्व-गौरव, श्रद्धा-सम्मान एवं यश-श्रेय प्राप्त होता है । फले-फूले उद्यान को लगाने-सजाने वाला माली सामान्य श्रमिकों की तुलना में कुछ अधिक ही श्रेय और लाभ कमाता है । परिवार निर्माण में तत्पर मनुष्यों की उपलब्धियाँ किसी कुशल माली, भवन निर्माता, सफल उद्योगपति, सर्कस के रिंग मास्टर से अधिक ही आँकी जाती हैं ।'कम नहीं' ।

यह तो प्रत्यक्ष की चर्चा हुई । परोक्ष इससे अलग क्षेत्र है निर्माता अपने आप में उच्चस्तरीय प्रवीणता प्राप्त करता है । वाद्ययन्त्रों के ध्वनि प्रवाह से श्रोताओं को तरंगित होने का अवसर मिलता है । पर इसके लिए प्रयासरत वादक की कला भी निखरती है और उसके व्यक्तित्व की कीमत भी बढ़ती है । मूर्तियाँ मन्दिरों और भवनों की शोभा

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बढ़ाती हैं, पर उनके निर्माण में प्रवीणता अर्जित करने वाले धन्य और यश भी कमाते हैं । साहित्यकार, कलाकार, लोकरंजन की कुशलता अनेक को गुदगुदाती है, पर उस परमार्थ के बदले उन्हें जो व्यक्तिगत लाभ मिलता है वह पाठकों और दर्शकों की अपेक्षा कम नहीं । अधिक मूल्य का ही होता है ।

दूसरों के हाथों को रचाने के लिए मेंहदी पीसने वाले के हाथ अनायास ही रच जाते हैं । इत्र बनाने वाले श्रमिकों के हाथ और कपड़े बिना किसी अतिरिक्त प्रयास के ही महकते रहते हैं । सत्प्रयत्नों में संलग्न व्यक्तियों को उस प्रयोजन से सम्बन्धित अनेक विशेषताओं और प्रवीणताओं का लाभ सहज ही मिलता रहता है । रंगमंच सजाने का काम करने वाले कर्मचारी उस दृश्य का आनन्द मुफ्त में ही लेते रहते हैं । परिवार निर्माण में प्रधानतया सद्विचारों और सद्गुणों का प्रयोग करना पड़ता है । परिजनों को वही सिखाना पड़ता है । यह प्रशिक्षण मात्र वाणी से नहीं हो सकता । शिक्षक को अनिवार्यत: अपना उदाहरण प्रस्तुत करना होता है । गीली मिट्टी से सुन्दर खिलौने ढलते जिन्होंने देखे हैं वे जानते हैं कि यह चमत्कार वस्तुत: उस साँचे का है जिसमें खिलौने की छवि पहले से ही साफ सुथरे ढंग से उभरी हुई है । इसमें कमी रहेगी तो जो बनेगा वह भी काना-कुबड़ा ही होगा ।

व्यक्ति निर्माण में कभी भी मात्र बौद्धिक प्रशिक्षण कारगर सिद्ध नहीं हुआ है । प्रभावी प्रवचनों और प्रदर्शनों से यदि व्यक्तित्वों को ढालना सम्भव रहा हो तो यह काम कब का हो गया होता और इसे समर्थ लोगों ने कब का पूरा कर लिया होता । ज्योति से ज्योति जलती है और तेजस्वी व्यक्तित्वों के प्रभाव से नये व्यक्ति ढलते हैं । अस्तु परिवार के जिन मूर्धन्य लोगों को अपने क्षेत्र में नवसृजन करना है । उन्हें वह सब कुछ पहले अपने स्वभाव में उतारना होगा जो उन्हें परिजनों से कराना है । समझाने भर से काम चल जाता तो कितना अच्छा होता तब समझ की तूती बोलती और चरित्रनिष्ठा के द्वार खटखटाने की आवश्यकता न पड़ती । किन्तु विवशता का क्या किया जाय ? प्राचीनकाल से भी गुरुकुलों के कुलपति ही नर-रत्नों की टकसाल दिखाते थे और वही प्रक्रिया अनन्तकाल तक चलेगी ।

परिवार में उत्कृष्टता का वातावरण बनाना इस दृष्टि से थोड़ा कठिन भी है, पर उसकी तुलना में जो लाभ मिलता है, उसे देखते हुए कठिनाई अथवा परिश्रम रत्ती भर नहीं है । इस प्रयास में संलग्न होने वाले परिजनों का सर्वोपरि लाभ ऐसा है जिसकी तुलना अन्य भी किसी से नहीं की जा सकती है ।

परिवार निर्माण के लिए तत्पर होने में प्रिय परिजनों का सर्वोपरि लाभ ऐसा लाभ है जिसकी तुलना किसी सौभाग्य से नहीं हो सकती । उत्तराधिकारियों के लिए धन वैभव छोड़ सकना उतना सुखद नहीं हो सकता जितना उन्हें सुसंस्कारी बना देना, यह सम्पत्ति ऐसी है जो उनको सदा गौरवान्वित रखेगी और पग-पग पर श्रेय, सहयोग से लाभान्वित करेगी । सफलताएँ किसी भी क्षेत्र की क्यों न हों उन्हें व्यक्तित्व सम्पन्न लोग ही प्राप्त करते हैं ।

इस सृजन में सर्वोपरि लाभांश स्रजेता के हिस्से में आता है । मूर्तियाँ गढ़ने से, चित्र बनाने से, अभिनय से दर्शकों को लाभ मिलता है और वे कृतियाँ भी सम्मानस्पद होती हैं किन्तु गढ़ने वालों को आर्थिक लाभ भी होता है, सन्तोष भी मिलता है साथ ही अपनी कलाकारिता को अधिकाधिक समुन्नत बनाने का वह लाभ भी मिलता है जो उस स्रजन से सम्बन्धित अन्य किसी को भी नहीं मिलता, उच्चस्तरीय कलाकारिता की उपलब्धि सभी सिद्धियों की तुलना में कहीं अधिक ऊँची है । परिवार सृजन में संलग्न व्यक्तियों को असामान्य कलाकार कह सकते हैं । सामान्य कलाकार वस्तुओं को गढ़ने और हलचलों में सौष्ठव भरने तक सीमित रहते हैं । यह जड़ पदार्थों को पदार्थजन्य हलचलों से आकर्षित बनाने भर की बात हुई । बड़ी बात वह है जिसमें मनुष्य जैसे उद्धत प्राणी को सुसंस्कारिता से सम्पन्न करते हुए देव स्तर तक पहुँचाया जाय ।

दूसरों की आदतें बदलने के लिए अपनी आदतें बदलनी होती हैं । दूसरों का स्वभाव सुधारने के लिए पहले अपना सुधारना होता है । उपदेशों से जानकारी भर दी जा सकती है । व्यक्ति का सुधारना उन्हीं के लिए सम्भव होता है जो अपने आपको आदर्श के रूप में विकसित कर सके हैं । शिक्षा तो सहज ही सुनी जा सकती है पर प्रेरणा तभी मिलती है जब अनुकरण के लिए प्रभावशाली आदर्श सामने हो । ज्योतिवान दीपक ही दूसरे नयों को जलाता है । साँचे के अनुरूप ही खिलौने या पुर्जे ढलते हैं । दूसरे को कुछ सिखाना बताना भर हो तो बात दूसरी है अन्यथा ढालने का लक्ष्य सामने हो तो सर्वप्रथम स्वयं ढलने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं ।

परिवार को सुसंस्कारी बनाने के प्रयास में उसके लिए अग्रणी लोगों को सर्वप्रथम अपनी ही गढ़ाई करनी पड़ती है । इस सन्दर्भ में जो जितनी सफलता प्राप्त कर लेंगे उन्हें परिवार निर्माण में उसी अनुपात में सफलता मिलेगी । जो गुण सहचरों में उत्पन्न करने हैं वे सर्वप्रथम अपने में उत्पन्न करने होंगे । अनुकरणप्रिय मनुष्य प्राणी जो कुछ समझता है उसमें तो शिक्षकों के परिश्रम का फल भी कहा जा सकता है पर जो बनता है उसमें प्राय: उन्हीं के चरित्रों का योगदान होता है जो साथ रहते और प्रभावित करते हैं । कुसंग और सत्संग के परिणामों से सभी परिचित हैं । इनमें शिक्षण परामर्श नहीं वह प्रभाव काम करता है जो साथी की भली-बुरी विशिष्टता के कारण उत्पन्न होता है ।

सुशिक्षण में पाठ्य विधि पर्याप्त नहीं, उसके लिए उच्चस्तरीय व्यक्तित्व से सुसम्पन्न अध्यापक चाहिए । यह प्रबन्ध न बन पड़ा तो समझना चाहिए कि शिक्षा का अर्थ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जानकारी ही बना रहेगा और उससे कौशल सम्बर्द्धन का छोटा-सा प्रयोजन भर पूरा हो सकेगा । शिक्षा से व्यक्तित्व का निर्माण यदि सच है तो उसके साथ यह शर्त भी अनिवार्य रूप से जुड़ी रहेगी कि शिक्षक का स्तर प्रवक्ता भर नहीं रहना है । वरन् स्रजेता के स्तर तक ऊँचा उठकर अपनी दक्षता का प्रमाण भी प्रस्तुत करता है ।

परिवार निर्माण की दृष्टि से तो यह नितान्त आवश्यक है । मखौलबाजी और बिडम्बना बनानी हो तो पर उपदेश कुशल रहने से भी काम चल सकता है किन्तु यदि वस्तुतः सत्परिणाम ही चाहिए तो स्रजेताओं को यह सिद्ध करना होगा कि जो कहा जा रहा है उस पर उनकी गहन आस्था है । यह प्रमाण अपने चिन्तन और चरित्र में उच्चस्तरीय आदर्शों का समावेश किये बिना किसी प्रकार सम्भव नहीं । जो इस सत्य को समझेंगे और परिवार निर्माण के लिए वस्तुतः इच्छुक होंगे उन्हें वह प्रयास आत्मनिर्माण से आरम्भ करना होगा ताकि ढलाई की जटिल प्रक्रिया को सरल एवं सम्भव बनाया जा सके । यह है वह लाभ जो परिवार निर्माण के लिए प्रयास करने वालों को आत्म-निर्माण के रूप में अनायास ही उपलब्ध होता है ।

घर को तपोवन बनाने की बात कही जाती रही है । गृहस्थ को योग की संज्ञा दी गई है । पतिव्रत, पत्नीव्रत, पितृसेवा, शिशु वात्सल्य, समता, सहकार की सत्प्रवृत्तियाँ यदि सघन सद्भावना की मनःस्थिति से सम्पन्न की जा सकें तो उनका महत्व योगाभ्यास एवं तप साधन से किसी प्रकार कम नहीं होता । इस प्रतिपादन से सहस्रों कथा-गाथाओं से इतिहास पुराणों के पन्ने भरे पड़े हैं । कर्मयोग की जितनी उत्तम साधना गृहस्थ में हो सकती है उतनी कदाचित् ही अन्यत्र बन पड़े । इस प्रसंग में यह कहना भी अत्युक्तिपूर्ण नहीं है कि आत्मनिर्माण के लिए सरल और सार्थक साधना पद्धति परिवार-निर्माण के रूप में ही प्रयुक्त हो सकती है । ऋषि इसी कार्य को गुरुकुलों में आरण्यकों में चलाते हुए सम्पन्न करते थे । परिवार का तात्पर्य समुदाय है । विशेषतया पिछड़े वर्ग का समुदाय । शिवजी की बारात का वर्णन जिन्होंने पढ़ा है वे जानते हैं कि "तनुछीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन तनु धरे" भूत पलीतों का पिछड़ा वर्ग ही उनका समुदाय था । दयालु व्यक्ति इसी समुदाय पर अपना ध्यान केन्द्रित करते और उनकी सुख-सुविधा जुटाने में आत्मोत्सर्ग करते रहते हैं । मूर्धन्यों की पारिवारिकता इसी स्तर पर प्रकट परिलक्षित होती है ।

परिवार निर्माण की प्रतिक्रिया समाज निर्माण में होने की बात समझने में किसी विचारशील को कोई कठिनाई नहीं हो सकती । जिन महामानवों ने विश्व इतिहास में महती भूमिकाएँ सम्पन्न की हैं । उनके व्यक्तित्व सुसंस्कृत वातावरण में ही ढले थे । निजी प्रतिभा का मूल्य स्वरूप और प्रभावी वातावरण की क्षमता महान है । प्रतिभाएँ सुसंस्कारी वातावरण में ढलती हैं तो वे दुष्ट दुरात्मा बन कर अपना और दूसरों का अहित ही करती रहती हैं । यदि उन्हें सुसंस्कृत परिस्थितियों में पलने, परिपक्व होने का अवसर मिला होता तो निश्चय ही स्थिति सर्वथा भिन्न रहती । परिस्थितियों ने जिसे डाकू बना दिया, यदि उसे दिशा और सहायता मिली होती तो किसी सेना का कुशल सेनापति अथवा साहसिक नेतृत्व कर सकने में पूर्णतया सफल सिद्ध हुआ होता । व्यक्ति की मौलिक प्रतिभा को कितना ही महत्व या श्रेय क्यों न दिया जाय, वातावरण के प्रभाव को झुठलाया नहीं जा सकता । कहना न होगा कि मनुष्य को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों में सबसे अधिक सामर्थ्य परिवार के वातावरण में ही होती है । जो उसका निर्माण कर सके वे प्रकारान्तर से सच्चे सेवक हैं । जिस खदान से नर रत्न उपलब्ध हो सकें उसकी प्रशंसा हजार जीभों से करनी पड़ेगी ।

रस्सा और कुछ भी नहीं बिखरे हुए धागों का संयुक्त समुच्चय भर है । समाज और कुछ नहीं, परिवार में बसे हुए मनुष्यों का समुदाय मात्र है । व्यक्तियों का उत्पादन ही नहीं, परिपोषण और परिष्कार भी उसी में होता है । समाज जैसा भी कुछ है पारिवारिक परम्पराओं की देन है । समाज को जैसा भी कुछ बनाना है वैसी परिस्थितियाँ परिवारों में उत्पन्न करनी होगीं । व्यक्ति के एकाकी निर्माण का कोई तुक नहीं । बहरे इसलिए गूँगे होते हैं कि वे सुन नहीं पाते और शुद्धोच्चार की प्रक्रिया का अनुकरण करने का अवसर नहीं पाते । यदि कोई बहरा सुनने लगे तो कुछ ही दिन में उसका गूँगापन अच्छी खासी बोल-चाल में बदल जायगा । यह अनुकरण का चमत्कार है । व्यक्ति की आन्तरिक ढलाई का कार्य दो तिहाई मात्र में दस वर्ष तक पूरा हो चुका होता है । प्रवृत्ति की दृष्टि से व्यक्ति शेष सारे जीवन में एक तिहाई संस्कार ही ग्रहण कर पाता है । दस वर्ष तक की आयु प्रायः परिवार की परिधि में ही व्यतीत होती है । प्रौढ़ावस्था आने पर भी मनुष्यों को प्रायः तेरह घण्टे घर के भीतर ही रहना पड़ता है । स्त्रियाँ और बाल-वृद्ध तो अपना अधिकांश समय उसी सीमा में रहकर व्यतीत करते हैं । इस क्षेत्र में यदि शालीनता और समर्थता बनी होगी तो निश्चय ही उस परिधि में रहने वालों को ऐसा अनुदान मिलता रहेगा जिसके सहारे वे अपनी उपयोगिता एवं विशिष्ठता का परिचय दे सकें । वे समाज निर्माण का सुदृढ़ और चिरस्थायी आधार समझा जाना चाहिए ।

किसी राष्ट्र की समृद्धि, सामर्थ्य, प्रतिभा एवं वरिष्ठता सरकारी दफ्तरों या अफसरों से सीमित नहीं होती वहाँ तो उसकी झाँकी मात्र मिलती है । छावनियों में रहने वाली सेना ही किसी राष्ट्र की शक्ति नहीं है वास्तविक शौर्य पराक्रम तो गली मुहल्लों और घर परिवारों में उगता और बढ़ता है । छावनियों में सेना उपजती नहीं, वह परिवारों से ही आती है । राष्ट्रीय समृद्धि के लिए सरकारी कोष की नाप-तोल करना अपर्याप्त है । समृद्धि तो परिवारों में संचित रहती है । सरकार तो उन पर टैक्स लगाकर निचोड़ती भर है । राष्ट्रीय चरित्र का मूल्यांकन अफसरों को

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देखकर नहीं नागरिकों के स्तर से किया जाता है । सन्त, ऋषि, महापुरुष, सुधारक, प्रज्ञावान, मूर्धन्य कलाकार, आसमान से नहीं टपकते । उन्हें आवश्यक प्रकाश पारिवारिक वातावरण तथा सम्पर्क में आने वाले सृजन परिजनों से ही उपलब्ध होता है । अन्न कोठों में भरा तो रहता है, पर उसका उत्पादन खेतों में होता है और खेत का हर पौधा उस सम्पदा को बढ़ाने में समर्थ सहभागी की भूमिका निभाता है ।

समाज निर्माण के लिए कुछ भी किया या कहा जाता रहे । आन्दोलन और प्रचार के लिए किसी भी प्रक्रिया को क्यों न अपनाया जाय । प्रचार तन्त्र और सृजन संस्थान का कितना ही बड़ा ढाँचा खड़ा किया जाय किन्तु वास्तविकता की आधारशिला परिवार के प्रचलन में सुधारात्मक प्रवृत्तियों के समावेश से ही सम्भव हो सकेगी । जड़ को सींचे बिना पत्ते पौधे और उद्यान को सुरम्य बनाने में अन्य उपाय आधे-अधूरे ही बने रहेंगे । वृक्षों को खुराक तो जड़ों से मिलती है, समाज का अक्षयवट अपना परिपोषण परिवारों से उनमें व्यवस्थित क्रम से रहने वाले व्यक्तियों से ही प्राप्त करता है । अस्तु, समाज निर्माण की समाज सुधार की बात सोचने वालों को उस महान आरोपण के लिए परिवारों की क्यारियाँ ही उर्वरता सम्पन्न बनानी होंगी । इस तथ्य को जितनी जल्दी समझ लिया जाय उतना ही उत्तम है ।

कहा जाता रहा है कि व्यक्ति और समाज दो पहिये हैं और परिवार उन दोनों को जोड़ने तथा गतिशील करने वाली धुरी । यह धुरी सही रीति से द्रुतगति से घूमने लगे तो समझना चाहिए, प्रगति पथ सुनिश्चित रीति से चल पड़ा और उसका परिणाम उज्ज्वल भविष्य के रूप में प्रयुक्त होकर ही रहेगा ।

परिवार निर्माण के स्वर्णिम सूत्र

अपने परिवार के जिन लोगों को नियति ने एक सूत्र में बाँधकर हमें सौंपा है, उनमें भी अन्य मनुष्यों की तरह दोष-दुर्गुण होने सम्भव हैं । उनकी प्रतिक्रिया अपने मन पर प्रतिकूल होनी भी स्वाभाविक है, पर यह स्थिति अकाट्य नहीं है । कोई बुद्धिमान चाहे तो इसे बदल भी सकते हैं । दोषों की भाँति गुण भी हर किसी में होते हैं । अपने परिवार के जिन व्यक्तियों को हम दोषयुक्त देखते हैं उनमें भी कुछ गुण होंगे ही, यदि उन गुणों पर अधिक ध्यान दिया जाय, बढ़ाया और प्रोत्साहन दिया जाय तो निश्चय ही उनकी मात्रा बढ़ेगी । बहुत चर्चा करने से दोष भी बढ़ते हैं और गुण भी बढ़ते हैं । दोषों की चर्चा कम करके गुणों को कहा, सुना और समझा जाय तो निश्चय ही यह सुधार का बहुत अच्छा तरीका सिद्ध होगा । उपेक्षा करने से दोष घट जाते हैं ।

दोषों की चर्चा बार-बार सुनने से मनुष्य हताश होता है, अपने को तिरस्कृत अनुभव करता है और धीरे-धीरे निर्लज्ज एवं ढीठ बनता चला जाता है । कभी एकान्त में बहुत आदर और प्रेमपूर्वक वातावरण में दोषों की ओर ध्यान दिलाना, जिन परिस्थितियों में उसे उन भूलों का शिकार बनना पड़ा उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करना और अन्ततः उन्हें छोड़ने की आवश्यकता एवं उपयोगिता बताना लाभदायक हो सकता है । उन भूलों को छोड़ने के लिए कोई व्यावहारिक तरीका भी सुझाया जाना चाहिए । इस प्रकार किसी की बुराइयों को घटाने या हटाने में सुविधा होगी, किन्तु यदि उसे सबके सामने तिरस्कृत एवं लांछित किया जायगा तो वह भूल को छोड़ने की अपेक्षा चिढ़कर और उलटा आचरण करेगा । दबाव से तत्काल किसी को विवश किये जाने पर केवल सामयिक रोकथाम हो सकती है । दबा हुआ असन्तोष एवं प्रतिरोध किसी अन्य रूप में फूटता है तो वह और भी बुरा पड़ता है ।

दोषों को सुधारने के लिए बहुत ही धैर्य और संयम की आवश्यकता है । प्रेम और सेवा, सहानुभूति से लोगों के मन पर अपनी छाप छोड़ने वाले लोगों के अनुरोध पर कठोर मन वाले लोगों का भी हृदय परिवर्तन होते देखा गया है । सहनशीलता, क्षमता और उदारता के आधार पर बुरों को भला बनाया जा सकता है । आतंक, गाली-गलौज, मार-पीट, दबाव, निन्दा, दुराग्रह के आधार पर क्रिया तो रुक सकती है पर मन नहीं बदल सकता । जिसका मन नहीं बदला वह सुधरा कहाँ ? भीतर ही भीतर सुलगते रहने वाली चिन्गारी तो कभी विस्फोट के रूप में भी प्रकट हो सकती है । इसलिए सुधार के कार्य में धैर्य रखने, प्रतीक्षा करने और क्रमिक परिवर्तन होने का तरीका ही अच्छा है । हमारी इच्छानुसार दूसरे लोग तुरन्त सुधर जायें ऐसी अधीरता से लाभ नहीं हानि ही होती है ।

जो लोग अपने साथ सम्बद्ध हैं उनको साथ लेकर चलने के लिए उदारता और सहनशीलता का भारी महत्व है । शंकर जी को सबसे बड़ा देवता इसीलिए माना गया है कि उनके समाज में भूत, पलीत, सर्प, सिंह सभी के लिए आदरपूर्ण स्थान प्राप्त है । जिनके मस्तक पर ज्ञान की गंगा और प्रेम का चन्द्रमा विराजमान होता है सचमुच वे बड़े उदार होते हैं और अपने साथ खोटे-खरे सभी को निवाह लेते हैं । कितने ही उदारहृदय व्यक्ति अपनी फूहड़, कर्कशा, कुरूप, रोगिणी, मूर्खा यहाँ तक कि शीलरहित पत्नी को भी बड़े आदरपूर्वक जीवन भर निवाहते हैं और अपनी ओर से कर्तव्य पालन में रत्तीभर भी कमी नहीं रहने देते । इसी प्रकार उदार महिलाएँ अपने पतियों में अनेक दोष रहते हुए भी उन्हें सहन करती हुई, निवाहती हुई, जिन्दगी पूरी कर लेती हैं । यह बड़प्पन का चिह्न है । मनुष्यता का गौरव इस प्रकार की सहनशीलता में ही होता है ।

कई बार बुढ़ापे की कठिनाइयों के कारण माता-पिता चिड़चिड़े हो जाते हैं और अनुपयुक्त बातें करने लगते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

समझाने बुझाने में अपना अपमान मानते और खिन्न होते हैं । इन परिस्थितियों में सहनशीलता ही सबसे उपयोगी नीति सिद्ध होती है । उनकी बातों को धैर्य और सहानुभूति के साथ सुना जाय और जितना सम्भव हो उतना आदेश तुरन्त मानकर बाकी बात को पीछे के लिए छोड़ दिया जाय तो तात्कालिक झंझट तुरन्त शान्त हो सकता है ।

कई बच्चे बड़े नटखट होते हैं, उनके नये रक्त की चंचलता कुछ न कुछ करने को विवश करती है । अनुभव के अभाव में जो करते हैं वह गड़बड़ जैसा बन जाता है । इन परिस्थितियों में बच्चों पर बरस पड़ना, उन्हें बुरी तरह धमकाना या तिरस्कृत करना, अपना माथा ठोकना और खिन्न होना उचित नहीं । उनकी कुछ बातों को अनदेखा-अनसुना किया जा सकता है, कुछ को हँस मुस्करा कर विनोद के रूप में लिया जा सकता है, कुछ के लिए उन्हें मीठी झिड़की दी जा सकती है और कुछ ऐसा भी सुझाया जा सकता है कि वे किसी उपयोगी खेल या कार्य में अपनी चंचलता को प्रयुक्त कर सकें । इस प्रकार बालकों के ऊधम से नाकोंदम रहने वाली समस्या सहनशीलता के आधार पर बहुत ही हलकी और छोटी प्रतीत होने लग सकती है ।

शरीर में नये खून की तेजी और मस्तिष्क में अनुभव की कमी होने के कारण अक्सर घर के वयस्क लड़के-लड़कियाँ कुछ न कुछ ऊँट-पटाँग करते रहते हैं । उनमें जोश तो होता है पर होश नहीं । पच्चीस वर्ष से कम की आयु 'गधा पच्चीसी' कही जाती है । उस अवधि में होशियार बच्चों में भी न्यूनाधिक गधापन बना रहता है । इस उम्र के बच्चों पर काबू रखना भारी चतुरता और दूरदर्शिता का काम है । समझाना, धमकाना, प्यार करना, प्रोत्साहन देना, सहन करना इन सभी साधनों को समन्वय करके नवयुवकों का मार्गदर्शन सम्भव होता है । राजा जिस प्रकार साम, दाम, दंड, भेद की नीति के सहारे प्रजा पर शासन करता है उसी प्रकार परिवार का संचालन करने के लिए गृहपति में आवश्यक दूरदर्शिता रहनी चाहिए ।

आतुर, उत्तेजित, असहिष्णु, अधीर, निराश, कटुभाषी , छिद्रान्वेषी प्रकृति के गृहपति अपने इन्हीं दोष-दुर्गुणों के कारण सारे परिवार को अव्यवस्थित कर देते हैं । घर के सदस्यों में एक दो ऐसे भी हों जिनका व्यक्तित्व निखरा हुआ न हो तो बाकी लोग उन्हें निभाते हुए घर की व्यवस्था बनाये रह सकते हैं । परस्पर मनोमालिन्य के अवसर मानवीय दुर्बलताओं के कारण प्रायः नित्य ही आते रहते हैं । समझदार लोग उनकी उपेक्षा करते हैं और आत्मीयता सहिष्णुता एवं उदारता के आधार पर परिवार संस्था को विघटित होने से बचाये रहते हैं । समाज में प्रतिष्ठा केवल उन्हीं परिवारों की सुरक्षित रहती है जिनमें दूरदर्शिता और उदारता की आवश्यक मात्रा मौजूद है । इसके अभाव में धन, विद्या, पद, प्रतिष्ठा आदि सब कुछ होते हुए भी क्षुद्रता और संकीर्णता के कारण घटित होती रहने वाली छोटी-मोटी घटनाओं के कारण वह परिवार अपनी प्रतिष्ठा एवं सुदृढ़ता खोता चलता है और कुछ दिन में वह बुरी तरह बिखर भी जाता है ।

जिस प्रकार शरीर के विभिन्न कलपुर्जे मिलकर पूर्णता होती है और उन सबके ठीक काम करने पर नीरोगिता रहती है, उसी प्रकार परिवार का उचित गठन मानव जीवन की सुव्यवस्था का ठोस आधार बनता है । अन्य सारे सुख साधन एक ओर और परिवार का सुसंतुलन यदि एक ओर रखा जाय तो पारिवारिक जीवन का महत्व अधिक मानना पड़ेगा । जिन लोगों के साथ मिल-जुलकर जीवनक्रम चलाना पड़ता है उनकी व्यवस्था अव्यवस्था का अपने ऊपर भारी प्रभाव पड़ता है । अशान्त और विक्षुब्ध पारिवारिक जीवन लेकर कोई व्यक्ति न तो सन्तुष्ट रह सकता है और न प्रसन्न । भले ही बाहरी सुविधाएँ कितनी बढ़ी-चढ़ी क्यों न हों ?

कभी-कभी संयोगवश भी किसी परिवार में अच्छे या बुरी व्यक्तियों का बाहुल्य होता है । अव्यवस्था रहते हुए भी समझदारी का मंगलमय दौर बना रहता है । कभी-कभी प्रयत्न करने पर भी दुर्भाग्य पीछा नहीं छोड़ता और कुपात्रता अपना नंगा नाच करती है । यह अपवाद हैं और कभी-कभी कहीं-कहीं ही देखने को आते हैं । आमतौर से जिन परिवारों को सद्भावना की जमीन पर उगाया गया है, स्नेह से सींचा और सहिष्णुता का खाद दिया गया है वे हरे-भरे रहते और फलते-फूलते हैं । गरीब परिवारों में स्वर्ग-सी एकता एवं शान्ति देखी गई है और अपार ऐश्वर्य वाले कुटुम्ब, ईर्ष्या, द्वेष की अग्नि में जलते रहते हैं । स्वार्थ, संकीर्णता, असहिष्णुता जहाँ भी रहती है वहीं नरक उत्पन्न करती है, पारिवारिक जीवन में इन तत्वों की अभिवृद्धि रहेगी तो वहाँ भी नरक के दृश्य ही उपस्थित रहेंगे ।

पारिवारिक प्रगति एवं शान्ति मानव जीवन की एक श्रेष्ठ सफलता मानी गई है । इस विभूति का वरदान उन्हें ही मिलता है जो मानव स्तर की उत्कृष्टता का महत्व समझते हैं और इन दिव्य सम्पदाओं से घर के प्रत्येक सदस्य की मनोभूमि को परिपूर्ण बनाने के लिए तत्परतापूर्वक प्रसन्न रहते हैं ।

परिजनों के सुधार की पूर्ण प्रक्रिया

आमतौर से लोग दूसरों को अपने अनुकूल बनाने के लिए उपदेश देने की प्रणाली को अपनाते हैं । सोचा यह जाता है कि लच्छेदार भाषा में लम्बा-चौड़ा उपदेश करने से दूसरे प्रभावित हो सकते हैं और वे अपना स्वभाव एवं दृष्टिकोण बदलकर हमारे अनुयायी या अनुकूल बन सकते हैं । इसी मान्यता के आधार पर आज चारों ओर प्रवचनों, भाषणों और लेखों की घुड़दौड़ मची हुई है । यह मान्यता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पूर्णतया निरर्थक है, ऐसा तो नहीं कह सकते, क्योंकि कभी-कभी इनका कुछ प्रभाव भी होता देखा गया है, पर यदि वक्ता के व्यक्तित्व से सुनने वाला प्रभावित हो तभी वह प्रभाव पड़ता है । सभा, सोसाइटियों में भाषण करते समय लोग प्रस्तुत वक्ता की बढ़ा-चढ़ाकर प्रशंसा करते हैं । यदि सुनने वालों ने उस पर विश्वास कर लिया और वक्ता के व्यक्तित्व से प्रभावित हो गये तब तो वे उसकी बात ध्यानपूर्वक सुनेंगे एवं उसका प्रभाव भी ग्रहण करेंगे अन्यथा उसकी भाषण शैली की आलोचना को अपने मनोरंजन का विषय बनाकर खिसक जावेंगे ।

वाचालता की निरर्थकता

आज वक्ता बहुत बढ़ गये हैं और साथ ही वाचालता भी, पर देखा यह गया है कि अपने स्वार्थ की कोई बात भले ही मान ले पर ऐसी कोई बात उनकी न सुनी मानी जायगी, जिसमें सुनने वाले को कोई कष्ट या नुकसान दीखता हो । राजनैतिक व्याख्यानदाता असंतोष उभारकर कोई बढ़ी-चढ़ी माँगें करने, हड़ताल कराने, लड़ाने के लिए श्रोताओं को तत्पर कर सकते हैं पर जुआ, नशा, सिनेमा, आलस्य, असंयम, स्वार्थ, कुविचार, दुर्भाव, दुस्वभाव आदि छोड़ने के लिए प्रस्तुत नहीं कर पाते क्योंकि मनुष्य स्वार्थ, संकीर्णता एवं बुराई को बड़ी कठिनाई से ही छोड़ता है । उसे छुड़ाने के लिए उच्चकोटि के श्रेष्ठ संस्कार वाले व्यक्ति ही सफल होते हैं क्योंकि वे वाणी से नहीं अपने आचरण एवं व्यक्तित्व से दूसरों को प्रभावित करते हैं । इस प्रकार के ठोस प्रभाव से प्रभावित व्यक्ति ही अपने में सुधार या त्याग कर सकने की प्रेरणा से प्रभावित करते हैं ।

वाणी की चतुरता से प्रभावित करने की कला अब जनता द्वारा एक प्रकार से वेश्या-नृत्य की तरह तिरस्कृत एवं बहिष्कृत ही की जा रही है । लोग उससे कुछ मनोरंजन भले ही कर लें, अपने में कोई ठोस परिवर्तन तब तक नहीं करेंगे जब तक वक्ता के व्यक्तित्व से अत्यधिक प्रभावित न हों । यह तथ्य जितना सामाजिक क्षेत्र में लागू होता है उतना ही पारिवारिक क्षेत्र में भी । हम चाहते हैं कि हमारे परिजन, स्त्री, बच्चे हमारा कहना मानें, अनुकूल आचरण करें और उस रास्ते पर चलें जिस पर हम चलाना चाहते हैं तो उनके सामने अपना आचरण भी प्रस्तुत करना पड़ेगा । ठीक है समझाना-बुझाना भी उचित और आवश्यक है यदि तर्क, प्रमाण और उदाहरणों के साथ कोई बिना लाग-लपेट की बात सीधे ढंग से समझाई जाय तो उसका कुछ न कुछ प्रभाव भी पड़ता है और परिणाम भी निकलता है पर हृदय, स्वभाव, विचार और भाव परिवर्तन जैसी कोई बड़ी बात किसी से कराने के लिए सबसे कारगर उपाय यही है कि हम अपने आपको बदलें, सुधारें और अपने उत्कृष्ट व्यक्तित्व की छाप अपने अनुयायियों पर छोड़ें । जलते हुए दीपक से दूसरे दीपक जलाये जाते हैं । जो स्वयं ही बुझा पड़ा है वह दूसरों में प्रकाश कैसे उत्पन्न करेगा ?

वातावरण का प्रभाव

परिवार में शान्ति और व्यवस्था तभी रह सकती है जब घर के लिए सज्जनता, स्नेह एवं सदाचरण से परिपूर्ण गतिविधियाँ अपनावें । आज हमारे चारों ओर जो दूषित वातावरण फैला हुआ है, उसका प्रभाव दुर्बल मस्तिष्क के लोग आसानी से ग्रहण कर लेते हैं । अच्छाई की अपेक्षा बुराई अधिक आसानी से सीखी जा सकती है । वातावरण के संपर्क में हमारे घर वाले भी आते ही हैं, चारों ओर जो हो रहा है, उसे वे भी देखते-सुनते ही हैं अतएव वे भी उन बुराइयों को सीख लेते हैं जो छोटी होते हुए भी हमारी पारिवारिक व्यवस्था एवं सुख-शांति को नष्ट करने में चिंगारी जैसी सिद्ध हो सकती हैं । दुर्गुणों और दुर्भावों का सबसे बुरा प्रभाव परिवार पर पड़ता है क्योंकि अधिक समय तक अधिक घनिष्टतापूर्वक परिवार के लोग ही साथ-साथ रहते हैं और अपने गुण-दोषों से एक दूसरे को प्रभावित करते हैं । समाज में मनुष्य एक दूसरे से बहुत थोड़े समय तक मिलते हैं, वहाँ बनावट भी बरती जाती है इसलिए किसी प्रकार दुर्गुणी व्यक्ति भी अपना काम चला लेते हैं । घर परिवार में तो हर आदमी की आदतें नंगे रूप में प्रकट हो जाती हैं क्योंकि उसी क्षेत्र में तो उसे अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट करने के लिए विवश होना पड़ता है । किसी व्यक्ति का वास्तविक स्वरूप उसके परिवार में रहकर ही देखा जा सकता है क्योंकि ढोंग बाहर तो चल जाता है, पर घर में तो उसे अपना नग्न स्वरूप ही प्रकट करना होता है ।

परिजनों को दुर्गुणी न बनने दें

दुर्गुणी परिजन, उतना ही दु:ख देते हैं जितना शरीर में घुसा हुआ कोई निरन्तर पीड़ा देने वाला कष्टसाध्य रोग । दुर्गुणी स्वजनों को सद्गुणी बनाना उतना ही आवश्यक है जितना बीमार शरीर को नीरोग बनाना । शरीर में घुसे हुए रोग की उपेक्षा करने और उसे पनपने देने में एक दिन मृत्यु संकट ही उपस्थित हो जाता है । उसी प्रकार परिजनों में घुसे हुए दुर्गुण उस छोटे से घर को नष्ट-भ्रष्ट और नारकीय अग्नि-कुंड जैसा दु:खदायक बना सकते हैं । इसलिए समय रहते उस स्थिति में परिवर्तन कर लेना चाहिए । आग छोटे रूप में जब लगी हो, तब प्रारम्भिक दशा में उसे आसानी से बुझाया जा सकता है पर जब वह दावानल का प्रचंड रूप धारण कर ले तब उसे बुझा पाना सम्भव नहीं रहता । दुर्गुणों के समाधान के लिए प्रयत्न आरम्भिक स्थिति में सफल हो सकते हैं, उनमें परिपक्वता आ जाने पर सुधार की गुंजाइश बहुत कम ही रह जाती है ।

कोई व्यक्ति यदि सुखी रहने की आकांक्षा करता हो तो उसे अपने शरीर की तरह परिवार को भी निर्मल बनाना पड़ेगा और उसके लिए उसे पूरा ध्यान देना और प्रयत्न करना अपेक्षित होगा । यह कैसे हो ? यह सोचते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

समय हमें यह ध्यान रखना होगा कि उपदेश देने की प्रक्रिया एक बहुत छोटी सीमा तक ही कारगर होती है । इतने मात्र से यदि काम चल गया होता तो हर घर में कोई न कोई समझाने-बुझाने वाला रहता ही है और वह अपने बलबूते कुछ न कुछ साँवपटाँव समझाता ही रहता है । तब फिर सुधार क्यों न हो गया होता ? फिर कोई घर क्यों अशांति का केन्द्र रहा होता ?

परिवार संस्था को नष्ट न करें

पाश्चात्य देशों में परिवार संस्था को ही नष्ट कर डालने का प्रयत्न चल रहा है । वे रोग के साथ रोगी कोभी समाप्त कर रहे हैं । वहाँ वयस्क होते ही लड़कों को माता-पिता का आश्रय छोड़कर स्वावलम्बी बनना पड़ता है और अपना अलग घर बसाना पड़ता है । इस प्रकार स्त्री और उसके छोटे बच्चों का ही परिवार रह जाता है । माँ-बाप बूढ़े होने पर अपनी संचित कमाई पर गुजारा करते हैं या सरकार से वृद्धावस्था की सहायता लेकर 'वृद्ध-गृहों' में रह जिन्दगी के दिन पूरे कर लेते हैं । फिर भी उनकी समस्या सुलझ नहीं पा रही है । दुर्गुणी पति-पत्नी एक दूसरे को दु:ख देते ही हैं और उन्हें पुराने को छोड़ने तथा नया साथी ढूँढ़ने की मृगतृष्णा में निरन्तर भटकना पड़ता है । किशोर बालक वहाँ भी माता-पिता के लिए सिर दर्द बने रहते हैं, वयस्क होकर स्वावलम्बी हो जाने से पूर्व के दिन, जब तक कि बच्चे किशोर रहते है, माता-पिता को बुरी तरह कुढ़ाते रहते हैं । इस गुत्थी को योरोप वाले भी नहीं सुलझा पा रहे हैं फिर भारत में तो वह सुलझेगी भी कैसे ? जहाँ माता-पिता, छोटे बहिन-भाई, विधवाएँ, विधुर आर्थिक तथा अन्य कारणों से विवश होकर एक ही नाव में बैठकर जिंदगी पार करते हैं । हमारी आर्थिक मान्यताएँ, बच्चों का भविष्य, आर्थिक परिस्थितियाँ एवं उपार्जन की कठिनाई को देखते हुए परिवार को इस प्रकार तोड़-फोड़ डालना सम्भव नहीं हो सकता । ऐसी दशा में पश्चिमी देशों की अपेक्षा हमारे लिए यह और भी अधिक आवश्यक है कि परिवार की परिस्थितियाँ सुधारने का प्रयत्न किया जाय और यह कार्य आर्थिक सुधार से नहीं मानसिक स्तरों के स्वस्थ निर्माण से ही सम्भव है । घर के लोग सद्गुणी बनें तभी समस्या सुलझ सकती है ।

परिवार की सुख-समृद्धि

प्रत्येक सद्गृहस्थ की आकांक्षा रहती है कि उसका परिवार खुशहाल और प्रेमपूर्ण वातावरण में निर्वाह करे पर वह इसके लिए उन्हें सद्गुणी बनाने की आवश्यकता की ओर ध्यान नहीं देता । ऐसी दशा में आकांक्षा अतृप्त ही रह जाती है और निर्धन व्यक्ति जिस प्रकार मन मसोसते और अपने दुर्भाग्य को कोसते रहते हैं उसी तरह दुर्गुणी परिवार के संचालक को भी अपनी व्यथा को हर घड़ी सहन करते रहना पड़ता है, पर इतने से भी तो कुछ काम चलने वाला नहीं है । बढ़ती हुई बुराई जब विस्फोट की स्थिति में पहुँचती है तो सहनशक्ति का ह्रास भी हो जाता है और जीवन नरक के प्रत्यक्ष दर्शन करने को विवश होना पड़ता है ।

परिवार को सुधारने की इच्छा रखने वाले हर व्यक्ति को सबसे पहले अपने आप को सुधारना पड़ेगा क्योंकि असली प्रवचन वही है । माता और पिता पर बच्चों को जन्म देने का ही नहीं, उन्हें सुसस्कारी बनाने और दीक्षा देने का उत्तरदायित्व भी है । पढ़ाई ठीक न होने का दोष शिक्षकों को दिया जा सकता है पर आदतें ठीक न होने का दोष विशुद्ध रूप से अभिभावकों को ही दिया जायगा, जिन्होंने ढील छोड़कर बच्चों को बिगड़ जाने की स्थिति तक चला जाने दिया । लाड़-प्यार में आरम्भ के दिनों में माँ-बाप बच्चों पर बहुत खर्च करते हैं, बच्चा पैसे के मूल्य को समझ नहीं पाता और वह फिजूलखर्ची की आदत सीख जाता है अंतत: वही आदत बढ़ी-चढ़ी स्थिति में पहुँचकर बच्चे को 'उड़ाऊ' बना देती है । माता-पिता यदि आरम्भ से ही मितव्ययी रहें और धन को सदुपयोग से बरतें, सादगी अपनावें तो बच्चा भी धन की उपयोगिता एवं आवश्यकता को समझेगा और अपव्ययी न बन सकेगा । माता-पिता में परस्पर जो कलह, संघर्ष और मनोमालिन्य रहता है उसका प्रभाव बच्चों के कोमल हृदय पर पड़े बिना नहीं रह सकता । वे भी द्वेष, घृणा, कटुता और दुराव की भावनाएँ हृदयगंम कर लेते हैं और आगे चलकर यही दुर्गुण, क्लेश एवं द्वेष का विकराल रूप धारण करके सामने आते हैं । जिन माता या पिता के हृदय में अपने माँ-बाप के प्रति, पति या पत्नी के प्रति, ईश्वर के प्रति, धर्म के प्रति श्रद्धा होगी उसके बालक भी अपने माता-पिता के प्रति, बड़े-बूढ़ों के प्रति श्रद्धावान एवं भावनाशील रहेंगे ।

शिक्षा का सामयिक प्रारम्भ

एक माता किसी सुयोग मनोवैज्ञानिक के पास गई और पूछा कि वह अपने चार वर्ष के बच्चे की शिक्षा कब से आरम्भ करावे ? मनोवैज्ञानिक ने उत्तर दिया आप पाँच वर्ष लेट हो गईं । बालक के गर्भ में आते ही उसका शिक्षण अपने आप में आवश्यक हेर-फेर के साथ आरम्भ कर लेना चाहिए । पाँच वर्ष की आयु तक तो बालक आधी पढ़ाई समाप्त कर लेता है । सूक्ष्म रूप से घर के सारे प्रभाव परमाणु बच्चे के अंत:करण में प्रवेश कर जाते हैं, स्वभाव ढल जाता है । पाँच वर्ष के बाद तो उसे स्वभावजन्य नहीं, अक्षर ज्ञान की शिक्षा प्राप्त करनी ही शेष रह जाती है ।

रज-वीर्य के संयोग से बालक का शरीर ही नहीं बनता वरन् दोनों के मन की मानसिक स्थिति के आधार पर बालक का मन भी बनता है । जो माता-पिता स्वयं दुर्गुणों एवं कुसंस्कारों से भरे पड़े हैं वे अपने बच्चों में क्यों कर सत्प्रवृत्तियाँ पनपती देख पावेंगे ? काम-वासना में अंधे होकर जिन्होंने बिना पूर्व तैयारी के बिना अपने गुण, कर्म, स्वभाव में आवश्यक सुधार किये, संतानोत्पादक किया है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वस्तुत: उन्होंने विष बीज ही बोया है । आमतौर से पहली संतान मूर्ख और अंतिम संतान बुद्धिमान होती देखी जाती है उसका कारण माता-पिता का नवयौवन की स्थिति में परिपक्व एवं ढलती उम्र में बुद्धिमान होना ही एकमात्र कारण है । संतान का जन्म पृथ्वी पर पीछे होता है, उस पर वातावरण का प्रभाव जन्म लेने के बाद पड़ता है पर वास्तविक जन्म तो गर्भ में आने के दिन ही हो जाता है और उसकी शिक्षा-दीक्षा उसी दिन से आरम्भ हो जाती है ।

माता-पिता का दायित्व

अभिमन्यु को चक्रव्यूह भेधन की शिक्षा अर्जुन ने तब दी थी जब वह अपनी माता सुभद्रा के गर्भ में था । हर एक बालक अभिमन्यु की परिस्थिति में ही होता है, उसे जो कुछ सिखाया जाता है हम अर्जुन की तरह अपनी वाणी, क्रिया द्वारा उसे सिखा सकते हैं । रानी मदालसा ने अपने बच्चों को गर्भ में ही ब्रह्मज्ञान की शिक्षा देकर ब्रह्मज्ञानी उत्पन्न किया था । जब उसके पति ने एक बालक राजकाज के उपयुक्त बनाने का अनुरोध किया तो मदालसा ने उन्हीं गुणों का एक तेजस्वी बालक उत्पन्न कर दिया । हर माता की स्थिति मदालसा की-सी होती है । यदि वह अपनु गुण, कर्म, स्वभाव में आवश्यक सुधार कर ले तो वैसे ही गुणवान बालक को जन्म दे सकती है जैसा कि वह चाहे । ऊसर खेत और सड़े बीज के संयोग से जैसे बेतुके अविकसित पौधे पैदा हो सकते हैं, वैसे ही बच्चे हमारे घरों में जन्मते हैं । गुलाब के फूल बढ़िया खेत में अच्छे माली के पुरुषार्थ से उगाये जाते हैं पर कँटीली झाड़ियाँ चाहे जहाँ, चाहे जब उपज पड़ती हैं । अच्छी संतान सुसंस्कारी माता-पिता ही प्रयत्नपूर्वक उत्पन्न कर सकते हैं, किन्तु कुसंस्कारी बालक हर कोई फूहड़ स्त्री-पुरुष उगलते रह सकते हैं । अच्छी सद्गुणी संतान की आकांक्षा गुलाब की फसल उगाने की तरह है जिसके लिए माँ-बाप को काफी पहले अपने आपको संस्कारवान बनाने के लिए तत्पर होना पड़ता है । यदि यह कार्य हमें कठिन लगता हो तो संस्कारवान संतान की आकांक्षा भी छोड़ देनी चाहिए और जैसे भी उद्दंड, दुर्गुणी, कुसंस्कारी, दुर्मति बच्चे जन्मे उन्हें अपनी करनी का फल मानकर संतोष कर लेना चाहिए ।

पहले अपना सुधार

एक महात्मा इसके लिए प्रसिद्ध थे कि उनकी शिक्षाओं का दूसरों पर बड़ा प्रभाव पड़ता था । वे जिससे जो कुछ कह देते थे वह वैसा ही करने लगता था । इस प्रशंसा को सुनकर एक महिला अपने बच्चों को लेकर यह उपदेश दिलाने महात्मा के पास पहुँची कि बच्चा अधिक शक्कर न खाया करे । डॉक्टर मिठाई के लिए मना करते थे पर बालक मानता न था । महात्मा पहले तो कुछ गम्भीर हुए पर पीछे को दस दिन बाद आकर उपदेश देने के लिए कहकर उसे विदा कर दिया । महिला दस दिन बाद फिर आई । महात्मा ने शक्कर न खाने का उपदेश दिया और बालक ने उसी दिन से उसे मानना शुरू कर दिया । पास बैठने वाले लोगों ने पूछा इतनी छोटी बात के लिए आपने दस दिन बाद आने के लिए उस महिला को क्यों कहा ? महात्मा जी ने बताया कि तब वह स्वयं शक्कर बड़ी रुचिपूर्वक खाते थे । इसलिए उन दिनों दिये गये उपदेश का कोई प्रभाव बालक पर नहीं पड़ सकता था । इन दस दिनों में मैंने स्वयं शक्कर त्यागी और उसके प्रति घृणा बुद्धि भी पैदा की । इतना सुधार अपने में कर लेने के बाद ही मेरे लिए यह सम्भव हो सका कि बच्चे को शक्कर छोड़ने का प्रभावशाली उपदेश दे सकूँ ।

बच्चों को आमतौर से उनके अभिभावक बहुत अच्छे उपदेश देते रहते हैं और उन्हें राम, भरत एवं श्रवण कुमार देखना चाहते हैं, पर कभी यह नहीं सोचते कि क्या हमने वाणी एवं आक्रोश को अपने में आवश्यक सुधार करके इस योग्य बना लिया है कि उसका प्रभाव बच्चों पर पड़ सकें ?

परिवार और हमारे कर्तव्य

परिवार ही वह आधार है, जिस पर समाजरूपी किला स्थिर रहता है । पारिवारिक व्यवस्था में एक ओर तो मनुष्य की सुख-सुविधाओं में वृद्धि होती है तथा प्रगति के मार्ग खुलते हैं, तो दूसरी ओर सृष्टि का चक्र भी इसी धुरी पर चलता है । मानव को, जन्म लेने से सक्षम होने तक, परिवार पर ही निर्भर रहना पड़ता है । जैसा परिवार होगा, वैसे ही व्यक्ति के गुण, कर्म, स्वभाव बनेंगे तथा वैसा ही राष्ट्ररूपी मन्दिर खड़ा होगा ।

पश्चिमी सभ्यता के चकाचौंध ने इस व्यवस्था को लगभग हिलाकर रख दिया है । हमारी परिवार व्यवस्था संकुचित होती चली जा रही है । पश्चिम में तो संयुक्त परिवार की प्रथा लगभग समाप्त हो चुकी है । हमारे यहाँ भी इसका प्रभाव पड़ा है और संकीर्णता की मनोवृत्ति फैली है । यही कारण है कि हम दिनों-दिन अधिक स्वार्थी तथा संकीर्ण होते चले जा रहे हैं । जैसा खाद तथा पानी पौधे को मिलेगा, वृक्ष का ढाँचा वैसा ही होगा । स्वार्थपरता तथा संकीर्णता की जो बाढ़ हमारे यहाँ फैली है, उसका एकमात्र कारण हमारे परिवार का वह स्वरूप बदल जाना है, जो कभी था । आवश्यकता आ पड़ी है कि हर विचारशील इस चरमराती हुई पारिवारिक-व्यवस्था को सहारा दें तथा फिर से विचार करें कि भूल कहाँ है ? क्योंकि यही गिरावट अगर चलती रही तो समाज का बड़ा ही वीभत्स रूप सामने आयेगा, जिसमें मनुष्य-मनुष्य को कच्चा चबा जाने की बात सोचेगा ।

हमारे पुराने विचारकों ने गृहस्थ जीवन की बड़ी महिमा गाई है तथा सद्गृहस्थ को योगी कहकर पुकारा है । वास्तव में वह योगी है भी । अगर अपने उत्तरदायित्वों के प्रति सजग रहें । योगी की परिभाषा मोटे शब्दों में यही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

है कि जो समाज को सुव्यवस्थित ढंग से संचालित करने के लिए अपना जीवन अर्पित कर दे, सद्गृहस्थ परिवार के संचालन का भार अपने ऊपर लेता है तथा यह अनुभव करता है कि उसके ऊपर एक ऐसी पाठशाला की जिम्मेदारी है, जिसमें देश तथा समाज के कर्णधारों को शिक्षण मिलता है ।

विवाह तो प्राय: सभी करते हैं । लेकिन जहाँ एक व्यक्ति सृष्टि-संचालन तथा प्रजा-पालन की दृष्टि से शादी करता है । दूसरा काम-सेवन की सुविधा को ध्यान में रखकर करता है । दूसरे वर्ग के लोगों को हम सद्गृहस्थ के दायरे में नहीं रख सकते । जहाँ सद्गृहस्थ का विवाह करना, उसकी प्रगति का मार्ग प्रशस्त करता है, असद्गृहस्थ के लिए दु:ख का कारण बन जाता है । समाज के प्रति कर्तव्य समझकर विवाह करने वाले लोगों की सन्तानें स्वभावत: शिष्ट एवं शालीन होकर सुख-शान्ति की वृद्धि का कारण सिद्ध होती हैं । क्योंकि ऐसा व्यक्ति विवाह द्वारा आई हुई जिम्मेदारी को समझता है तथा उत्पन्न कर्तव्यों को पूरी तत्परता से पूरा करने के लिए सारी क्षमता का प्रयोग करता है'। विवाह उसके लिए काम-क्रीड़ा अथवा इन्द्रिय-भोग का रजिस्ट्रेशन न होकर, एक धार्मिक तथा सामाजिक कर्त्तव्य होता है ।

वास्तव में परिवार एक ऐसी प्रयोगशाला है, जहाँ सद्गृहस्थ की क्षमताओं का विकास निरन्तर होता जाता है । गृहस्थ-जीवन की महिमा तभी है, जब सद्गृहस्थ बन कर परिवार के प्रति अपने कर्तव्यों का सर्वतोमुखी पालन किया जाय अन्यथा वही परिवार दु:ख और कष्ट का कारण बन जाता है ।

शादी करने का दृष्टिकोण यही होना चाहिए कि इसके माध्यम से समाज को योग्य राष्ट्रप्रेमी प्रदान किया जाय । अन्यथा काम-सेवन की दृष्टि से किया गया विवाह नरक का ही सृजन करता है ।

सद्गृहस्थों का प्रथम कर्त्तव्य है कि वह अपने परिवार में संकीर्णता का प्रवेश न होने दें । विभिन्न घटकों में प्रेम का वातावरण रहे । प्रेम तथा सहयोग के अभाव में परिवार-नर्क का रूप धारण कर लेता है । स्वार्थपरता अभाव से ही उत्पन्न होती है । अक्सर अभाव में लोग लड़ने-झगड़ने लगते हैं । सद्गृहस्थ का कर्त्तव्य है कि परिवार को जितने अर्थ की आवश्यकता है, उसका उपार्जन करे । आर्थिक स्थिति ठीक हुए बिना प्रगति के मार्ग अवरुद्ध रह जाते हैं । इस कमी को दूर करने के दो ही उपाय हैं-पहला अनावश्यक खर्चों में कटौती तथा दूसरा आय की वृद्धि । सद्गृहस्थ को सोचना होगा कि इन दोनों में से कौन-सा कदम उठाना होगा, जिसमें आर्थिक-समस्या का निवारण हो । आय की वृद्धि करने के लिये उसे अपने आलस्य-प्रमाद पर विजय पाना होगा तथा कर्मठता का परिचय देना होगा । आलसी तथा अकर्मण्य निश्चय ही उतना उपार्जन नहीं कर पाते, जिससे परिवार की आवश्यकता पूरी की जा सके । इस स्थिति में हर सदस्य किसी तरह छीन-झपटकर अपनी आवश्यकता की पूर्ति करता है । इस छीना-झपटी में स्वार्थपरता का जन्म होना स्वाभाविक है । पूरे समय के सदुपयोग तथा पूरे परिश्रम करने पर भी अगर आर्थिक-तंगी दूर न हो तो सभी सदस्यों को विचार-विमर्श द्वारा यह निष्कर्ष निकालना चाहिए कि किन-किन खर्चों में कटौती की जा सकती है ।

स्वार्थपरता के अंकुरित होने का दूसरा कारण है-अधिक सम्पन्नता । इस स्थिति में हर सदस्य अपने लिये अधिक से अधिक पाने की इच्छा करने लगता है तथा विलासिता, अकर्मण्यता तथा फैशनपरस्ती को प्रश्रय मिलता है । ऐसी अव्यवस्थित दशा में स्वार्थपरता तथा कलह परायणता की वृद्धि हो जानी स्वाभाविक ही है ।

एक और गुण, जो सद्गृहस्थी के लिये जरूरी है-समता की दृष्टि है । उसे हर सदस्य को समता की दृष्टि से देखना चाहिए । किसी को अधिक महत्व दे देना तथा किसी को कम-कलह को जन्म देना है । ईर्ष्या-द्वेष का जन्म होता है तथा दोनों की दृष्टि संशयात्मक हो जाती है ऐसे परिवार को टूटते देर नहीं लगती ।

हमें पारिवारिक-सुख को अक्षुणय बनाये रखने के लिये समानता का व्यवहार करना होगा । जिसकी जो आवश्यकता तथा स्थिति होती है, उसी के अनुसार उस पर खर्च करना और ध्यान देना चाहिए , किन्तु भोजन तथा वस्त्र के मामले में सबको बराबरी की दृष्टि से ही देखना चाहिए ।

सद्गृहस्थ को शिष्टाचार को महत्व देना चाहिए । क्योंकि शिष्ट-परिवार से ही शिष्ट-व्यक्ति समाज को प्राप्त होंगे । सद्गृहस्थ स्वयं मर्यादित-जीवन जीकर दूसरे सदस्यों को भी वैसी ही रीति-नीति अपनाने की प्रेरणा देते हैं ।

परिवार के हर सदस्य को शिक्षित तथा विकसित करने की जिम्मेदारी भी सद्गृहस्थ समझता है; क्योंकि अशिक्षित तथा अनपढ़ व्यक्तियों पर सदाशयता के सारे प्रयत्न विफल हो जाते हैं ।

समाज की आवश्यकतानुरूप बच्चे पैदा करना हमारा कर्त्तव्य होना चाहिए । कोई जमाना था, जब अधिक बच्चे होना सौभाग्य की निशानी समझी जाती थी । पर आज अधिक बच्चे पैदा करके हम समाज तथा अपने प्रति अन्याय ही करेंगे ।

हर व्यक्ति समाज का ऋणी है । हम आज जो भी हैं, समाज द्वारा ही विनिर्मित हैं । समाज के प्रति हमारे कर्त्तव्य की जानकारी हमें होनी चाहिए । समाज ने शिक्षा, ज्ञान, अन्न, वस्त्र आदि कितने ही प्रकार की सुविधायें देकर हमें प्रगति के मार्ग पर अग्रसर किया है तो हमारा भी कर्तव्य है कि समाज को योग्य नागरिक प्रदान कर अपनी सामाजिक-निष्ठा का परिचय दें । इसीलिए हमारे वैदिक मनीषियों ने गृहस्थाश्रम को एक प्रमुख आश्रम बताया तथा इसे धर्म का एक अंग बनाया । संसार रहने लायक तभी तक है, जब तक यहाँ प्रेम का विस्तार है । हम समाज-प्रेमी व्यक्ति समाज में बढ़ा सकते हैं, अगर गृहस्थाश्रम की

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महत्ता को हृदयगंम कर लेते हैं । अन्यथा वही होगा जो पश्चिमी सभ्यता के परिवारों में होता है । वहाँ के परिवार किस तरह बिखर रहे हैं, किसी से छिपा नहीं है ।

परिवारों को इस दुर्गति से उबारा जाय

परिवार व्यक्तित्व के निर्माण की प्रयोगशाला और पाठशाला है । स्कूलों में बहुत कम पढ़ाई होती है । उतने से काम कितना चलता है । ढलाई तो परिवार की परम्परा के प्रभाव प्रवाह में बन पड़ती है । मनुष्य को निजी विकास करना हो तो अपने गुण, कर्म, स्वभाव के उत्कर्ष का अभ्यास परिजनों पर प्रयोग करने के रूप में ही कर सकता है । तैरना तालाब में घुसने से आता है । परिवार को प्रशिक्षित समुन्नत बनाने के लिए बड़ों को अपना उदाहरण प्रस्तुत करना पड़ता हैऔर पग-पग पर सूझ-बूझ का परिचय देना संतुलन बिठाना पड़ता है । यह समझदारी एकाकीपन से सम्भव नहीं । परिवार एक छोटा राष्ट्र है जो उसकी व्यवस्था बना लेगा वह बड़े क्षेत्र की बड़ी जिम्मेदारियाँ पूरी कर सकने में भी असफल न रहेगा ।

इन तथ्यों से न्यूनाधिक मात्रा में सभी अवगत होते हैं किन्तु इस विडम्बना को क्या कहा जाय, जिसके कारण गृहस्थों की स्थिति दिन-दिन असमाधानकारक बनती जा रही है । निराशा ही निराशा दीख पड़ती है । बहुत लोगों का एक साथ रहना कोई बड़ी बात नहीं है । रेल के डिब्बे में, मुसाफिर खाने में, धर्मशालाओं में, थोड़ी जगह रहते भी बहुत लोग घुसे बैठे रहते हैं । इतने पर भी उनसे स्नेह-सहयोग कहाँ पाया जाता है ? जेलखानों में, अस्पतालों में, कारखानों में, सिनेमा, सरकसों में भी भीड़ बहुत रहती है पर इतने भर से परस्पर सौजन्य की शृंखला में कहाँ बँधते हैं । ऐसा न होने पर जितनी घिचपिच बढ़ती है उतनी ही हैरानी में भी बढ़ोत्तरी देखी जाती है ।

रोटी खाने और रात गुजारने का प्रयोजन तो सराय में रहकर भी पूरा किया जा सकता है । गृहस्थ साधना सर्वथा दूसरी बात है । उसे एक प्रकार का योगाभ्यास कहा गया है जिसमें संयम और सेवा की साधना हृदय की विशालता विकसित करते हुए सँजोनी पड़ती है । अस्तु, उस क्षेत्र में भी सत्परम्पराओं का समुचित समावेश होना चाहिए । उसमें जितनी कमी पड़ेगी उतनी ही अव्यवस्था, उच्छृंखलता पनपेगी । परिवारों का सौमनस्य आकाश से नहीं उतरता या उसे कलाकारों जैसी अपनी दूरदर्शिता और तत्परता का परिचय देते हुए कुम्हार द्वारा बनाये पकाये गये बर्तनों की तरह विनिर्मित करना होता है । उसमें जितनी कमी पड़ेगी उतनी ही विद्रूपता दृष्टिगोचर होती है ।

प्राय: सुविधा-साधनों की विपुलता जुटा देने भर से कोई परिवार सुखी-समुन्नत समझा जाता है । पर वास्तविकता ऐसी है नहीं सुविधाएँ अनुकूलतायें जुटा देना एक बात है और उनका सही सदुपयोग कर सकना सर्वथा दूसरी । सत्परम्पराओं के अभाव में सम्पदा का दुरुपयोग होता है । उनके सहारे दुर्गुण पनपते हैं । विलासिता, अहमन्यता, प्रमाद एवं दुर्व्यसनों को अपनाने में दरिद्रता नहीं सुसम्पन्नता कारण होती है ।

पुरातन स्वर्णिम युग में परिवारों के बीच स्नेह-सौजन्य पलता पनपता था । एक दूसरे को भरपूर सद्भाव और सहकार प्रदान करते थे । दुलार और सुधार में किसी की भी उपेक्षा नहीं होती थी । उस परम्परा की अवमानना होने पर परिस्थितियाँ भी उलटती जा रही हैं और घर जीते-जागते नरक बनते जा रहे हैं लूट के माल की तरह हर सदस्य उस परिकर में से सुविधाएँ तो खसोटना चाहता है पर यह नहीं बनता कि खाद पानी लगाकर इस वृक्ष को समृद्ध बनाने में योगदान दिया जाय ।

आखिर ऐसा होता क्यों है ? इसका कारण यहाँ भी वही है जो अन्य क्षेत्रों में पतन-पराभव का कारण बना हुआ है । सदाशयता की जहाँ भी उपेक्षा बरती जायगी वहीं दुर्गति उत्पन्न होगी । गृहस्थ बसाने, बढ़ाने और किसी महत्वपूर्ण प्रयोजन के उपयुक्त बनाने में यदि आदर्शों का समावेश रहे तो ऐसे बुरे दिन देखने को न मिलें जैसे कि हर परिवार पर छाये हुए दीखते हैं ।

घर बसाने का आरम्भ विवाह प्रक्रिया से आरम्भ होता है । वर वधू का चयन सौन्दर्य और वैभव के आधार पर होता है । जिस वधू को ससुराल में रूप और दहेज के कारण प्रवेश मिला है वह पहले ही दिन समझ जाती है कि दुनिया में चेहरे का आकर्षण और दौलत ही सब कुछ है । गुणों की कोई कीमत नहीं । ऐसी दशा में यदि उसका मन अधिक रूपवान, धनवान की ओर खिंचने लगे तो किसी के पतिव्रत को दुहाई देते हुए यह बात अनुचित नहीं रहनी चाहिए । जब आधार ही गलत रहा-आरम्भ ही गलत हुआ तो उससे श्रेष्ठ परिणति की आशा कौन करे ?

दाम्पत्य जीवन अनन्य सहकार की परिणति है । एक को दूसरे का ध्यान रखना पड़ता है । दोनों को समान रूप में एक दूसरे को स्नेह, सम्मान, विश्वास और सहकार प्रदान करना है । ताली दोनों हाथ से बजती है । पति उच्छृंखलता बरते और पत्नी को दासी समझे तो दोनों पहियों की समता सहकारिता रहने पर भी गाड़ी आगे बढ़ेगी ही नहीं ।

सन्तानोत्पादन इन दिनों इस घोर महँगाई के जमाने में असाधारण उत्तरदायित्व है । उसके लिए आँखें मूँद-कर अनावश्यक उत्पादन में प्रवृत्त नहीं होना चाहिए । पत्नी का स्वास्थ्य, परिवार की आर्थिक स्थिति, बच्चों का भविष्य और समूचे समाज पर पड़ने वाले दबाव को ध्यान में रखते हुए प्रजनन में प्रवृत्त होने से पूर्व हजार बार सोचना चाहिए कि उतना भार उठा सकना सम्पन्नता और क्षमता में कमी रहने पर भी उठाना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उचित है या नहीं । अनावश्यक रूप से बच्चे उत्पन्न कर लेने के उपरान्त इतनी अधिक समस्या उत्पन्न होती है कि उनके कारण गृहस्थ का ढाँचा ही चरमरा जाता है । स्वास्थ्य शिक्षा, स्वावलम्बन, चरित्र व्यक्तित्व आदि की आवश्यकता जब जुट नहीं पाती तो विग्रह खड़े होना स्वाभाविक है ।

सद्गुणों के सम्बर्द्धन की बात को भी निर्वाह साधन जुटाने जितना ही महत्व मिलना चाहिए । श्रमशीलता, मितव्ययता, सुव्यवस्था, शालीनता और सहकारिता को सद्गुणों का सच्चा वैभव माना जाय और इन मानवी गरिमा को अक्षुण्ण रख सकने वाली विभूतियों को हर सदस्य के स्वभाव अभ्यास में सम्मिलित किया जाय । इसके लिए परिवार के वरिष्ठों का प्रमुख उत्तरदायित्व है कि वे संकोच छोड़ें और स्वयं आगे बढ़कर घर के हर सदस्य को साथ लेकर अभ्यास करायें । एक आँख दुलार की दूसरी सुधार की रखने से ही शालीनता पनपती है । हर किसी को मनमर्जी बरतने देने से या तो अराजकता फैलेगी और वही स्थिति बनेगी जो आज सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है ।

उत्तराधिकार में धन छोड़ मरने की अपने समाज में ऐसी कुप्रथा है जिससे संतान के लिए सोची गई सुविधा के स्थान उनके लिए अगणित समस्याएँ उत्पन्न होती हैं । परस्पर विग्रह का यह एक बहुत बड़ा कारण है । सदस्य को स्वावलम्बी बनाना चाहिए और यह अनुभव करना तथा करने देना चाहिए कि पैतृक सम्पदा हथियाने या उड़ेलने की दोनों ही प्रवृत्तियाँ अनैतिक, असामाजिक एवं अन्ततः हर किसी के लिए हर दृष्टि से हानिकारक हैं । सद्गुणों को सुविकसित व्यक्तित्व की विरासत छोड़ मरना ही दूरदर्शिता के दृष्टि से पर्याप्त होना चाहिए ।

लड़की, लड़कों में भेदभाव, कुरीतियों का घटाटोप, दिनचर्या की अस्तव्यस्तता, स्त्रियों को पर्दे में कैद रखना, कमाऊ व्यक्तियों को मनमर्जी का खर्च करने की छूट मिलना, जैसी दुष्प्रवृत्तियाँ संयुक्त, परिवार की जड़ें खोखली करते हैं । अनुशासन रह सके और सज्जनोचित आचार संहिता निभ सके तो ही परिवार का स्तर ऊँचा रहेगा । इन तथ्यों को नये सिरे से समझने-समझाने की आवश्यकता है ।

सुसंस्कृत परिवारों का निवास ही स्वर्ग है और दुष्प्रवृत्तियों के प्रचलन से वह नरक बनता है इस आधार पर हमें ऐसी आचार संहिता बनानी चाहिए जिसमें एक भावभरी सहकारी समिति की तरह न्यायोचित व्यवस्था का निर्वाह सध सके । आज की स्थिति में वे सत्परम्पराएँ न रहने पर परिवार टूटते जा रहे हैं । उन्हें फिर से धरती के स्वर्ग बनाने के लिए जन-जन का दृष्टिकोण एवं अभ्यास बदलने की आवश्यकता अनुभव की जानी चाहिए ।

प्यार भी-सुधार भी

यों हर व्यक्ति अपने सम्पर्क परिचय क्षेत्र में हर किसी से प्रेम सहयोग की आशा अपेक्षा करता है । यह उचित भी है और आवश्यक भी । बदले में प्रत्युपकार एवं प्रशंसा करना भी इसी आधार पर बन पड़ता है । सर्वथा एकाकी व्यक्ति तो अपना निजी जीवनक्रम भी ठीक तरह नहीं चला पाता, पर जहाँ प्रगति और सुविधा का प्रश्न है, वहाँ तो भौतिक क्षेत्र में सहयोग और आत्मिक क्षेत्र में स्नेह की अधिकाधिक आवश्यकता पड़ती है ।

पारिवारिक घनिष्टता, सहकारिता और सुव्यवस्था तो विशेषतया इसी आधार पर निभती है । इसके बिना नीरसता ही छाई रहती है और उपेक्षा, अवज्ञा, अनुशासनहीनता भी पनपती है । सुसंस्कृत परिवारों को नर-रत्नों की खदान समझा जाता है । श्रेष्ठ समुन्नत नागरिक प्रायः ऐसे ही परिवारों में पनपते हैं । महापुरुषों का उद्भव भी प्रायः ऐसे ही वातावरण में होता है ।

आवश्यक नहीं कि स्वजन सम्बन्धियों, परिजनों के लिए बढ़-चढ़कर सुविधा साधन ही जुटाये जायें । उनके न होने पर भी काम चल सकता है । पर एक आकांक्षा ऐसी है जिसके बिना किसी को स्वजन की तृप्ति नहीं हो सकती वह है सद्भावना । आत्मीयता इसी को कहते हैं । अपने आप का जितना ध्यान रखा जाता है, उतना ही यदि अन्य किसी का भी रखा जा सके, तो समझना चाहिए कि आत्मीयता विकसित हुई और घनिष्टता सधी । वह इतनी तृप्तिदायक है कि वह मिलते रहने पर अन्य प्रकार के अभावों को भी सहते रहा जा सकता है ।

किसी को सुधारना हो तो उसके लिए भी प्यार का पुट रहना चाहिए । प्यार वह आग है जिससे किसी को भी पिघलाया जा सकता है । धातुओं को पिघलाकर ही उन्हें औजार-उपकरणों, पुर्जों के रूप में ढाला जाता है । गलाई के बाद ढलाई होती है । सुधारने के प्रयास करने के पूर्व उसमें प्यार की भाव संवेदना का समावेश करना चाहिए ।

अभिभावकों को छोटों के साथ किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए । इसके लिए कहावत है कि 'एक आँख प्यार की-दूसरी सुधार की' रखी जाय । इसी सन्तुलन से जीवनक्रम प्रगति पथ पर ठीक तरह चल पाता है । दोनों में से यदि मात्र एक का ही प्रयोग किया जाय तो वह अतिवाद कहा जायगा और परिणामतः अहितकर सिद्ध होगा । सन्तुलन ही सब प्रयोजनों में सही सिद्ध होता है । पारस्परिक व्यवहार में भी ।

प्यार में मनुष्य को प्रोत्साहन मिलता है, साहस विश्वास एवं आश्वासन भी । जहाँ भी यह मिलता है । उसे आत्मीय माना जाता है । आत्मीय का सिखावन परामर्श भी गले उतरता है और उसकी समीक्षा, आलोचना भी सहन होती है । यहाँ तक कि प्रताड़ना भी विद्वेष या विद्रोह उत्पन्न नहीं करती । उसकी कटु प्रतिक्रिया स्नेह का स्मरण आते ही समाप्त हो जाती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुधार का अर्थ प्रताड़ना नहीं है वरन् अधिकाधिक सुयोग्य, समुन्नत बनाने के लिए कष्टसाध्य तत्परता में संलग्न करना है । देखा गया है कि सुविधायें मनुष्य को आलसी, विलासी बनाती हैं । उपभोग करने के साधन असाधारण रूप से मिलने लगें तो मनुष्य प्रमादी, व्यसनी और अहंकारी बनता चला जाता है । वैभव प्रदर्शन में रुचि बढ़ती है और वाहवाही लूटने, प्रसिद्धि पाने तथा बड़प्पन की धाक जमाने की उत्कण्ठा बेहिसाब विस्तृत होती चली जाती है । यह सब असाधारण सम्पदाओं की प्रतिक्रिया है । मोहजन्य प्यार ऐसे ही उपहार उड़ेलता रहता है । लोग प्यार का परिचय इसी रूप में देते और पाते हैं कि उन्हें चापलूसी भरा मधुर व्यवहार असीम मात्रा में मिले । साथ ही सुविधा सामग्री की भी विपुलता न्योछावर होती रहे, भले ही वह किसी प्रकार पाई, कमाई गयी हो । प्रियपात्र को श्रम न करने देने, कोई अभाव-अनुभव न होने देने, भविष्य के लिए सम्पदाओं के ढेर लगा देने का सिलसिला चलता है यह घटिया दर्जे का, मनुष्य के व्यक्तित्व को बिगाड़ने वाला-उसमें अनेक दुष्प्रवृत्तियाँ भर देने वाला है । राजा-रईसों के स्त्री, बच्चे, प्रिय पात्र प्रायः इसी प्रकार की आदतों से ग्रसित होते चले जाते हैं । इससे उनका भविष्य बिगड़ता था । साधन घटते या छिनते ही उनकी बुरी तरह दुर्दशा होती थी । छोटे रूप में सामान्य गृहस्थों के परिवार में भी यही प्रक्रिया चल पड़े तो वह आकार में छोटी होते हुए भी हानिकारक उतनी ही होती थी जितनी कि बड़ा दुलार पाने वालों को वह अधिक गहरे पर्त में धकेलती थी ।

सुधार का तात्पर्य है निखार । उभार, उत्थान, उत्कर्ष, अभ्युदय । यह गुण पक्ष है । पदार्थ पक्ष नहीं । पदार्थों की, सुविधा-साधनों की, ललक-लिप्सा की बड़ी मात्रा में पूर्ति होते रहने से तात्कालिक प्रसन्नता तो होती है पर उतने भर से आन्तरिक वर्चस्व में अभिवृद्धि नहीं होती । यह सम्भावना तो तब बनती है जब व्यक्ति संयमी, साहसी, पुरुषार्थी और स्वावलम्बी बनता है । इन्हीं सद्गुणों को अभ्यास में उतारने के लिए प्रयत्न किया या कराया जाता है उसी को सुधार प्रक्रिया समझा जा सकता है । इस दिशा में कदम बढ़ाने पर मन मारना पड़ता है, संयम साधना पड़ता है और अभ्यस्त, अनुपयोगी आदतों को उखाड़ फेंकने के लिए दुस्साहस अपनाना पड़ता है । इस स्थिति को कोई सहज स्वीकार नहीं करता उसके लिए तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरणों से भरेपूरे परामर्श देने पड़ते हैं । साथ ही दबाव भी । आवश्यक नहीं कि वे दबाव भर्त्सना भरे हों या उन्हें निर्देश पालन के लिए बाधित किये जाने के ढंग से प्रयुक्त किया गया हो । उन्हें इस प्रकार भी समझाया जा सकता है कि प्रगतिशीलता अपनाने की परिणति क्या हो सकती है और अनगढ़ बने रहने पर पिछड़ापन ही हाथ लगता है । सुधार की शुरूआत वहाँ से होती है जहाँ व्यक्ति को समुन्नत, सुसंस्कृत, प्रखर प्रतिभा सम्पन्न बनाने की ललक जगती है और निश्चित मार्ग पर चल पड़ने की उमंग मचलती है । यही है महान बनने का मार्ग । जिसकी मनःस्थिति में उत्कृष्टता का पक्षधर उभर आया समझना चाहिए कि उसके अभ्युदय का द्वार खुल गया उज्ज्वल भविष्य का सुयोग बन गया ।

जिन्हें हम सच्चे मन से प्यार करते हैं । उनके लिए उपरोक्त दोनों ही अनुदान उपलब्ध कराये जाने चाहिए । आत्मीयता की भाव-सम्वेदनाओं में अमृतोपम मिठास होता है । उसे पाने के लिए हर कोई तरसता है जिसे जितनी मात्रा में वह उपलब्ध हस्तगत होती है वह उतना ही कृतकृत्य हो जाता है । माता और बच्चों के बीच, पति और पत्नी के बीच सहज रूप से दुलार की वर्षा होती देखी जा सकती है । यह प्रकृति-क्रम है । शिशुओं के प्रति वात्सल्य छोटे जीव-जन्तुओं में भी बरसता है । मनुष्य की स्थिति और जिम्मेदारी उनकी तुलना में कहीं ऊँची है । उसे अपने प्रियपात्रों को सद्गुणी, सुयोग्य, साहसी एवं पराक्रम परायण बनाना उनकी स्वच्छता सर्वतोमुखी हो ऐसा प्रयत्न करना चाहिए ।

प्यार वह नहीं जिसमें उत्कृष्ट लक्ष्य का समावेश न हो । बाजारू दोस्ती का स्वरूप यह है कि प्रियपात्र का चापलूसी के सहारे अधिकाधिक शोषण किया जाय । पतियों को पत्नियों के साथ प्रेम के नाम पर इसी विडम्बना को रचते देखा जाता है । वास्तविकता की परख यह है कि साथी को बहिरंग और अन्तरंग दृष्टि पाने से किसने किसे कितना समुन्नत बनाया ?

सुधार-परिवर्तन की सरल प्रक्रिया

जिस प्रकार कृषि, व्यवसाय, उद्योग, शिल्प आदि में उसकी समग्रता अर्जित करने के लिए पूरा ध्यान देना पड़ता है । उसी प्रकार परिवार संचालन में भी सतर्कता बरतनी पड़ती है । यदि उसका एक भी पक्ष गड़बड़ाने लगे तो छोटे पुर्जे की खराबी से पूरी मशीन बन्द हो जाने जैसा संकट उठ खड़ा होता है । सम्पन्नता कितनी ही आवश्यक क्यों न हो, पर वही सब कुछ नहीं है । कई बार तो वह सर्प को दूध पिलाने की तरह अनर्थकारी भी बन जाती है । दुर्गुणों को पोषण मिलता है और वे दुष्प्रवृत्तियों का रूप धारण करके ऐसे संकट खड़े करती है, जिनसे गरीब मध्यवर्ती लोग सहज ही बच जाते हैं ।

मनुष्य जीवन की प्रगति और अवनति का प्रधान कारण है-उसके व्यक्तित्व का स्तर । वह यदि सुसंस्कृत सुविकसित हों, तो समझना चाहिए कि उत्कर्ष-अभ्युदय के सारे स्रोत खुल गये । सुख-शान्ति से रहने, साथियों की प्रसन्नता, कृतज्ञता, सहकारिता प्राप्त होते रहने के सरंजाम जुट गये । यदि इसके विपरीत कहीं व्यक्तित्व गया-गुजरा, हेय और अनगढ़ रहा, तो समझना चाहिए कि प्रचुर सुविधा-साधन होते हुए भी चिन्तन, चरित्र और व्यवहार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

में विकृतियाँ भरे रहने के कारण परिस्थिति विग्रहकारी ही बनी रहेगी । न स्वयं चैन से रहना बन पड़ेगा और न साथियों को सन्तुष्ट रख सकना । उलझी हुई समस्यायें और भी अधिक उलझती जायेंगी और उस जाल-जंजाल से निकल सकने के लिए कोई उपाय न सूझ पड़ेगा । ऐसी दशा में स्वजन सम्बन्धी भी कोई कारगर सहायता कर सकने में समर्थ न हो सकेंगे । जीवन रोते-रुलाते, गिरते-गिराते व्यतीत होगा । भले ही दोष किसी का समझा जाता रहे । संसार दर्पण की तरह है । उसमें अपना प्रतिबिम्ब परिलक्षित होता है । जो गये-गुजरे स्तर के हैं, उन्हें प्रगति और प्रसन्नता का अवसर कभी भी न मिल सकेगा ।

इस तथ्य को समझते हुए परिवार के छोटे-बड़े सभी सदस्यों के गुण-कर्म-स्वभाव में शालीनता के समावेश का निरन्तर प्रयास होना चाहिए । इस कार्य में परिवार के वरिष्ठ एवं समझदार लोगों का विशेष उत्तरदायित्व है । श्रमशीलता, शिष्टता, मितव्ययता, व्यवस्था एवं सहकारिता के पंचशीलों को पाँच देवों की तरह आराध्य मानने की बात हर एक के गले उतारनी चाहिए । उनकी महिमा एवं महत्ता विस्तारपूर्वक समझानी चाहिए । सीधे ऐसे परामर्श काम न करते हों, तो फिर दूसरा तरीका एक ही बच जाता है कि प्रगतिशील लोगों के जीवन चरित्रों, संस्मरणों के प्रेरक प्रसंग समय-समय पर सुनाते रहा जाय । अच्छा तो यह है कि रात्रि को अवकाश के समय घरेलू मनोरंजन की तरह कथा-कहानियाँ कहते रहने का क्रम चलाया जाय यह तद्विषयक पुस्तकों के सहारे हो सकता है । घर में ऐसा साहित्य रहना ही चाहिए, जिसे पढ़ने-सुनने से उत्कर्ष की दिशाधारा का परिचय मिले । कहानियाँ स्वयं में एक अच्छा मनोरंजन हैं । उसमें लोकरुचि भी होती है । पुस्तक विक्रेताओं की दुकानों पर तीन-चौथाई, कथा-साहित्य मिलता है, क्योंकि माँग और बिक्री भी उसी की रहती है । वेद केवल चार बनकर हीं समाप्त हो गये, पर पुराण अठारह बने । इतना ही नहीं इसके बाद अठारह उप-पुराण भी बने । इनमें से प्रत्येक का कलेवर इतना बड़ा है, जिसे वेदों-उपनिषदों की तुलना में कहीं अधिक विस्तार वाला देखा जा सकता है । यह कथा सुनने की लोकरुचि का प्रमाण है । वह छोटों से लेकर बूढ़ों तक को समान रूप से प्रिय होता है ।

'पंचतन्त्र' ग्रन्थ के निर्माण की कथा प्रसिद्ध है । एक राँजा के लड़के बड़े उजड्ड थे । पढ़ाने वाले किसी अध्यापक को टिकने न देते थे । पढ़ने-लिखने में तनिक भी रुचि नहीं लेते थे । राजा को चिन्ता हुई कि इनका भविष्य कैसे बनेगा ? उसने घोषणा की, कि जो अध्यापक हमारे लड़कों को पढ़ाने और सुधारने में सफल होगा, उसे मुँहमाँगा पुरस्कार दिया जायगा । कई विद्वान आये और हार मानकर वापस लौट गये ।

अन्त में एक विष्णु शर्मा नामक विद्वान आये । उन्होंने नया बीड़ा उठाया और नया तरीका अपनाया । वे मात्र कहानियाँ सुनाते थे । राजकुमारों को धीरे-धीरे इसमें दिलचस्पी बढ़ी और वे देर तक अध्यापक के पास बैठकर कहानियाँ सुनते रहते । वे कथायें बड़ी सारगर्भित होती थीं । उनमें जीवन विकास के तथ्यों का भरपूर समावेश रहता था । सुनने वाले लड़कों के मन में वे तथ्य भी उतरते गये । उन्हें अपने भविष्य और विकास के सम्बन्ध में सोचने का अवसर मिला । फलतः उनकी विचारधारा बदलती चली गयी । वे सही मार्ग समझने के साथ-साथ उस पर चलने भी लग गये । इस प्रकार कुछ ही दिन में उनकी समस्त गतिविधियाँ सन्तोषजनक एवं उत्साहवर्द्धक बन गयीं । पढ़ने-लिखने लगे । धीरे-धीरे ऐसे बन गये, जैसा कि राजा चाहता था । पंडित को मुँहमाँगा पुरस्कार मिला और वह कथा ग्रन्थ पंचतन्त्र के नाम से लोकप्रिय हुआ ।

यह एक घटना भर है, जिसने समय की सीमित आवश्यकताओं की पूर्ति की । अब जीवन के अनेक पक्ष प्रकाश में आये हैं । समस्यायें प्रकट हुईं और अनेक समाधान आवश्यक जान पड़े हैं । अस्तु कथा साहित्य भी समय के अनुरूप होना चाहिए । ऐसा अनुरूप जो व्यक्तित्व विकास में सभी पक्षों पर प्रकाश डाल सकने में सक्षम हो ।

दुर्भाग्य एक ही है कि लेखकों, प्रकाशकों और बुक सेलरों की फौज खड़ी हो जाने पर भी ऐसा साहित्य नहीं सृजा जा सका, जो व्यक्तित्व विकास की आवश्यकता पूरी करने में कोई महत्वपूर्ण भूमिका निभा सके । कुत्साओं को भड़काने वाला, दिशाभ्रम उत्पन्न करने वाला साहित्य तो नित्य नये पहाड़ की तरह उपजता चला जाता है, पर उसमें दिशा-बोध करा सकने वाली क्षमता नहीं के बराबर होती है । इतने पर भी उपयोगिता का बीज नाश नहीं हुआ है । ढूँढ़ने पर सत्साहित्य भी मिल ही जाता है । भले ही वह 'खोदा पहाड़ निकली चूहिया' वाली उक्ति ही चरितार्थ करता हो । भले ही स्वल्प मात्रा में जहाँ-तहाँ उपलब्ध क्यों न होता हो ? ढूँढ़ने वाले कोयले की खदान में हीरा ढूँढ़ लेते हैं । खारे समुद्र में गोता लगाकर मोती बटोर लाते हैं, तो कोई कारण नहीं कि व्यक्तित्व विकास में सहायक सिद्ध होने वाला साहित्य कहीं-न-कहीं से कामचलाऊ मात्रा में खोजा न जा सके । इसी की घरों में अवकाश के समय पढ़ने की, सुनने की आवश्यकता होनी चाहिए । यह सामग्री विवेचनात्मक भी हो सकती है और कथा-प्रसंगों से सम्बन्धित भी । दोनों ही पक्ष उपयोगी हैं । बच्चों की समझ में कहानियाँ ही आती हैं, पर बड़े तो विचारोत्तेजक सामग्री में भी रस ले सकते हैं और उस आधार पर ऐसा बहुत कुछ हृदयगम कर सकते हैं, जो समुन्नत-सुसंस्कृत बनाने में उत्साहवर्द्धक रूप में सहायक सिद्ध हो सके ।

यों निजी विचार-विनिमय का भी महत्व है और उस आधार पर भी परिवार के सदस्यों के साथ उनकी स्थिति और आवश्यकता के अनुरूप विचार-विनिमय किए जाते रहने का क्रम चलता रह सकता है । वार्तालाप और परामर्श मात्र भौतिक आवश्यकताओं के सम्बन्ध में नहीं

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होते रहने चाहिए, वरन् वार्तालाप इस संदर्भ में भी होते रहना चाहिए कि चिन्तन और चरित्र में अपेक्षाकृत कैसे अधिक सुधार तथा विकास किया जाता रह सकता है । इसमें भिन्न-भिन्न लोगों के लिए उनकी स्थिति को देखते हुए अलग-अलग प्रकार के परामर्श आवश्यक हो सकते हैं । हर व्यक्ति की समस्यायें भिन्न-भिन्न हैं । हर किसी को अपनी स्थिति के अनुरूप प्रगतिशीलता की ओर अग्रसर करने वाला व्यावहारिक परामर्श चाहिए । मात्र सिद्धान्तों की चर्चा विवेचना भर कर देने से काम नहीं चलेगा । इसके लिए भिन्न-भिन्न स्तर का परामर्श, मार्ग-दर्शन चाहिए । उसे समय-समय पर उपलब्ध कराते रहना परिवार के प्रभावशाली सदस्यों का काम है ।

इस सन्दर्भ में एक बड़ी कठिनाई यह है कि किसी भी व्यक्ति को अपने सुधार के सम्बन्ध में दूसरों का परामर्श रास नहीं आता, इसमें वह अपना अपमान समझता है । सभी की मान्यता है कि दुनिया में डेढ़ अकल है, जिसमें से एक उसकी और आधी समस्त संसार की । अपने को हर कोई सर्वज्ञ एवं सुयोग्य मानता है । कोई जब उसकी समीक्षा करता है, तो उसे इसमें अपमान लगता है और बताने वाले को अपना विरोधी-विद्वेष मान बैठता है । इस मनोवैज्ञानिक कठिनाई से बचने का एक ही उपाय है कि सीधी शिक्षा न देकर किसी अन्य की घटना का सन्दर्भ देते हुए उसे तथ्य से अवगत कराया जाय । यह कार्य कहानियों, संस्मरणों के माध्यम से अधिक अच्छी तरह हो सकता है । वह उपलब्ध न हो, तो विवेचनात्मक पुस्तकों के वे अंश विशेष अनुरोध करके पढ़ाये-सुनाये जा सकते हैं, जिनमें उनकी निजी समस्याओं पर सार्वजनिक रूप से प्रकाश डाला गया है । यदि उस प्रकार की पुस्तकों का लेखक कोई प्रामाणिक व्यक्ति हो तो और भी अच्छा । ऐसी दशा में यह कहा जा सकता है कि यह परामर्श उन लेखक महोदय का है, जो तुम्हारे लिए फिट बैठता है । इस पर विचार किया जाय और यदि उचित समझा जाय, तो उस परामर्श को अपना लिया जाय । यह तरीका अधिक सटीक और प्रभावशाली है ।

गीता के प्रतिपादनों को इसीलिए महत्वपूर्ण माना गया है कि वह भगवान कृष्ण के मुख से कही गयी है, यदि इस संदर्भ को हटा दिया जाय और उन्हीं प्रतिपादनों को अपने विचार कहकर सुनाया जाय, तो उसकी उपेक्षा ही होगी और मान्यता देने में सन्देह भी बना रहेगा । यही बात अन्य प्रसंगों के सम्बन्ध में भी है । घर के लोगों को कोई सिद्धान्त की बात-उनके स्वभाव से विपरीत कही जाय तो 'घर का जोगी जोगना, आन गाँव का सिद्ध' वाली कहावत सिद्ध होती है । जिन लोगों के साथ रहना होता हैं, उन्हें अति परिचय के कारण सामान्य समझा जाता है और महत्व नहीं मिलता । इस कठिनाई से पार पाने का यही तरीका ठीक पड़ता है कि जो सुधार-परिवर्तन घर वालों में कराये जाने हैं, उनके सम्बन्ध में आवश्यक शिक्षा स्वयं के विचार न बताकर किसी प्रामाणिक व्यक्ति का मन्तव्य बताया जाना चाहिए । यही बात कथा-संस्मरणों के माध्यम से भी गले उतारी जा सकती है ।

प्रयत्न जारी रखा जाय । निराश न हुआ जाय । प्रगति धीमे क्रम से होती हो तो भी धैर्य रखा जाय । सतत् प्रयास निष्फल नहीं जाते । वे समयानुसार फलित होते और अपना लक्ष्य पूरा करके रहते हैं ।

परिवार को सम्पन्न ही नहीं सुसंस्कृत भी बनायें

व्यक्ति और समाज की मध्यवर्ती कड़ी परिवार है । वह दोनों ही क्षेत्रों को पोषण प्रदान करती है । हृदय, ऊपरी भाग मस्तिष्क, मुख एवं चेहरे के साथ जुड़ी हुई इन्द्रियों को भी पोषण प्रदान करता है और नीचे के हिस्से में धड़ से जुड़े हुए अंग-अवयवों को भी । व्यावहारिक जीवन में परिवार को हृदय माना जाता है, जो अपने प्रत्येक सदस्य को परिष्कृत, परिपुष्ट बनाता है, साथ ही समाज को समुन्नत, सभ्य, समर्थ बनाने का कार्य भी करता है । इसे धड़ के हाथ-पैरों की सुरक्षा, सुव्यवस्था के समतुल्य समझा जा सकता है । इतना महत्वपूर्ण स्थान होते हुए भी आश्चर्य है कि परिवार को समग्र रूप से समुन्नत बनाने में न्यूनतम ध्यान दिया जाता है ।

घर के कमाऊ व्यक्ति गृहपति का स्थान ग्रहण करते हैं । इन्हें बरीयता इसी आधार पर मिली हुई है । उनका प्रधान पौरुष भी यही रहता है । इसलिए वे अर्थप्रधान बन जाते हैं । परिवार को सुखी-समुन्नत बनाने के लिए वे आर्थिक साधनों से ही प्रयत्नरत रहते हैं । अच्छा भोजन, अच्छे वस्त्र, मनोरंजन के उपकरणों का बाहुल्य, महँगी पढ़ाई का प्रबन्ध, ठाठ-बाट, शान-शौकत, खर्चीली शादियाँ आदि की योजनायें बनती और कार्यान्वित होती रहती हैं ।

धन भी निर्वाह की एक सर्वविदित आवश्यकता है । पर वह उतनी बड़ी नहीं है, जिसके उन्माद में प्रगति की अन्यान्य आवश्यकताओं को पूरी तरह भुला दिया जाय । समग्र विकास ही वास्तविक विकास माना जाता है । यदि शरीर का एक अंग बहुत मोटा, बहुत फूला बन जाय, तो उपलब्धि नहीं वरन् बीमारी ही कहा जायगा । इसी प्रकार परिवार की अर्थव्यवस्था तो ठीक हो, किन्तु सदस्यों का स्वास्थ्य, स्वभाव, चिन्तन-चरित्र लड़खड़ाने लगे और वे दुष्प्रवृत्तियों, दुर्व्यसनों के चंगुल में फँसते जायें । तो समझना चाहिए कि संकटों के, विग्रहों के बादल घिरने में देर नहीं । ऐसी दशा में आर्थिक सम्पन्नता उन दुर्गुणों की वृद्धि में सहायक होगी । आग में तेल पड़ने की तरह वह भड़कने ही लगेगी । इससे तो वे गरीब नफे में रहते हैं, जो रोज कमाते और रोज खाते हैं । उनके पास न वक्त खाली रहता है और न फिजूलखर्ची की सुविधा । इस विवशता के कारण उन्हें अनेक अवांछनीयताओं से बचे रहने का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

संयोग अनायास ही मिल जाता है । कुसंग में पड़ने के लिए उनके पास फालतू समय नहीं रहता । दुर्व्यसन खरीदने के लिए जेब में पैसा नहीं रहता । यह स्थिति सम्पन्न समुदाय में उपहासास्पद भले ही हो पर जीवन के स्वस्थ विकास का, कुमार्ग न अपना पाने का सुयोग-सौभाग्य तो मिलता ही रहता है ।

परिवार के संचालक उत्तरदायी सदस्यों को दृष्टिकोण में विशालता और समग्रता रखनी चाहिए । उन्हें बारीकी से देखना चाहिए कि उनका श्रम, समय, कर्तव्य और उत्तरदायित्व परिजनों के लिए अर्थ साधन जुटाने में तो समाप्त नहीं हो रहा है । यदि ऐसा ही है, तो अपनी भूल माननी चाहिए और विचार करना चाहिए कि जीवन विकास के लिए जिन अन्य तथ्यों की आवश्यकता है, उनकी ओर ध्यान दिया जा रहा है कि नहीं ? उनके सम्बन्ध में सतत् प्रयत्नशील रहा जा रहा है कि नहीं ?

निर्वाह साधनों की तरह स्वास्थ्य भी एक महती आवश्यकता है । उसे वास्तविक और आधारभूत सम्पदा माना जाना चाहिए । किन्तु साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि इस लक्ष्य की प्राप्ति बहुमूल्य स्वादिष्ट व्यंजनों या पौष्टिक दवाओं के सहारे नहीं हो सकती । इस हेतु प्रकृति का अनुसरण करना पड़ेगा । इन्द्रिय संयम बरतना पड़ेगा । आहार में ही नहीं विहार में भी समग्र संयम का समावेश करना पड़ेगा । अधिकांश लोग आवश्यकता से अधिक मात्रा में अभक्ष्य पदार्थों का समय-कुसमय चर्वण करते रहते हैं । यह भूल तो देखने में तनिक-सी प्रतीत होती है, पर वास्तव में दुर्बलता, रुग्णता और अकाल मृत्यु का वही मूलभूत कारण है । रसोईघर में क्या बने, किस प्रकार बने और उसे कौन कितनी मात्रा में, किस प्रकार खायें इसकी सुव्यवस्था बना लेना घर को एक ऐसा सुरक्षित किला बना लेना है, आहार, श्रम और दिनचर्या में सुव्यवस्था का नियमन एक ऐसा सिद्धान्त है, जिसका ठीक तरह परिपालन करते रहने पर स्वस्थ रहने की गारण्टी मिल जाती है । स्वास्थ्य संरक्षण के बहाने उन नियमों-अनुशासनों के साथ सम्बन्ध जुड़ जाता है, जो न केवल स्थिति को, दिनचर्या को, स्वस्थता को सँभालता है, वरन् जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रगति का पथ प्रशस्त करता है ।

अभिभावक उचित-अनुचित तरीकों से अपनी, परिवार की सम्पन्नता बढ़ाने में जुटे रहते हैं । इसी में वे अपना गौरव मानते हैं और वर्तमान तथा भविष्य को सुख-शान्ति से भरा-पूरा होने की कल्पना करते रहते हैं । पर परिणामतः होता इससे ठीक विपरीत ही है । कारण कि जिस वस्तु का समुदाय बन जाता है वह चाहे कितनी ही मूल्यवान होने पर भी विपरीत परिणाम ही उत्पन्न करती है । सम्पदा भी । उसके अनावश्यक मात्रा में होने पर अपव्यय सूझता है । उसके बदले व्यसन और दुर्गुणों का पिटारा पल्ले पड़ता है । जिस कमाई को अपने निज के कठोर परिश्रम से अर्जित नहीं किया गया है, उसका कोई मूल्यांकन नहीं कर सकता और न उसके सुदपयोग द्वारा कारगर लाभ उठाने का सुयोग हस्तगत होता है । सम्पदा के बदले खरीदे गये दुर्गुण जीवन के साथ जोंक की तरह चिपक जाते हैं और खून पीते रहते हैं । उनके रहते न किसी की सभ्य समाज में गणना होती है, न प्रामाणिकता और विश्वसनीयता हाथ लगती है । इस अभाव में किसी का सच्चा सहयोग एवं सद्भाव भी उसके हाथ नहीं लग पाता । प्रगति के अवसर सामने तो आते हैं पर उन्हें उत्साहपूर्वक अपनाये न जाने पर वापस लौट जाते हैं । सम्पन्नता विलासिता सिखाती है, आलसी, प्रमादी और अहंकारी बनाती है । इस यथार्थता को न समझ पाने वाले ही यह सोचते रहते हैं कि धन-वैभव ही सब कुछ है । उसकी बड़ी मात्रा हाथ लगने पर उसके बदले सुख-सुविधा के प्रचुर साधन कमाये जा सकते हैं । मान्यता अपनी जगह बनी रहने पर भी वह फलित नहीं होती । अनुभव की कसौटी पर वह खोटे सिक्के की तरह निरर्थक सिद्ध होती है ।

होना यह चाहिए कि परिवार को सुसम्पन्न बनाने के लिए जितना प्रयत्न किया जाता है, उसकी अपेक्षा उसे सुसंस्कृत, सद्गुणी बनाने का प्रयत्न किया जाय, क्योंकि यही सम्पदा है, जो जीवन भर साथ देती है । कठिनाइयों का बोझ उतारती और प्रगति का पथ प्रशस्त करती है । सद्गुणी अपनों के बीच ही नहीं परायों के बीच भी सम्मान और सहयोग प्राप्त करता है । उसके कारण व्यक्तित्व का वजन बढ़ता है । किसी भी क्षेत्र में उसका बढ़ा-चढ़ा मूल्यांकन होता है । यही वह आधार है, जिसके कारण जनसाधारण का स्नेह, सहयोग और सद्भाव पाया जाता है । जिसके पास यह उच्चस्तरीय पूँजी है उसे निर्वाह के स्वल्प साधन रहते हुए भी आत्मसंतोष एवं लोक सम्मान की कमी नहीं रहती । जो इतना अर्जित कर सका उसे सामान्य सुविधाओं के रहते भी ऐसा अनुभव नहीं होता कि वह दरिद्र है । दूसरे सुसम्पन्नों की तुलना में उन्हें कम प्रसन्नता मिल रही है ।

परिवार को सुसम्पन्न बनाने के व्यापक प्रचलन में हेर-फेर होना चाहिए । सोचा जाना चाहिए कि इस ललक को अतिशय मात्रा में पालने का दुष्परिणाम ही सामने आकर रहेगा । अस्तु, हितैषी होने का दावा करते हुए भी वस्तुतः परिजनों के अनहित का सरंजाम नहीं जुटाना चाहिए । जितना निर्वाह के लिए नितान्त आवश्यक है उतना ही कमाया जाय । ताकि किसी को पूर्वजों की कमाई पर गुलछर्रे उड़ाने, बैठे-ठाले दिन काटने की ललक न उठे । परिवार के हर सदस्य को यह सोचने देना चाहिए कि उसे अपने पैरों पर खड़ा होना है, स्वावलम्बी बनना है । सही बात भी यही है । संसार के हर प्रगतिशील को सद्गुणी की पूँजी ही आरम्भ से अन्त तक काम देती रही है । उसी के सहारे अपने को समर्थ, सुयोग्य और प्रामाणिक, सम्मानित बनने का अवसर मिलता रहा है । यही है वह अवलम्बन जिसने मनुष्य को आगे बढ़ाया, ऊँचा उठाया है । इस सम्पदा की महत्ता से परिवार का

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ध्यान हटा देना उन्हें भी भ्रमजंजाल में फँसा देने के बराबर है । वैभव का अतिशय महत्व समझने-समझाने से किसी का भी हित साधन नहीं होता । दूरदर्शिता की तनिक भी कमी रही तो उसका सदुपयोग नहीं बन पड़ता । ऐसी दशा में जिन अवलम्बन को सब कुछ समझा या समझाया गया था वह धोखे की टट्टी भर साबित होता है । वैभव की सनक में आमतौर से लोग व्यक्तित्व में उत्कृष्टता का समावेश करने की आवश्यकता को समझ नहीं पाते और वैभव के साथ-साथ दुर्गुणों का जखीरा जमा करते जाते हैं ।

विलासिता मनुष्य को स्वप्नदर्शी बनाती है । वह वर्तमान की तरह भविष्य को भी सदा सुख-सुविधाओं से भरा-पूरा रहने की आशा करता रहता है । जबकि सही बात यह है कि प्रतिकूलता की हवा बहने लगने पर वह ताश का बना काल्पनिक महल देखते-देखते धराशायी हो जाता है । तब तक समय निकल चुका होता है और नये सिरे से सद्गुणों की सम्पदा अर्जित कर सकना कठिन हो जाता है ।

शिल्प, संगीत, साहित्य, कला-कौशल अर्जित करने के लिए जिस प्रकार दीर्घकालीन और अनवरत अभ्यास करना पड़ता है । उसी प्रकार सद्गुणों को स्वभाव का अंग बनाने के लिए, उन्हें दैनिक जीवन में भरपूर स्थान देने के लिए प्रयत्नरत रहना पड़ता है । आदतें देर में पकती हैं । वे हथेली पर सरसों जमाने की तरह न तो तुर्त-फुर्त उपलब्ध होते हैं और न जमी हुई आदतों से पीछा छुड़ाना जल्दी से सम्भव हो पाता है । उन्हें योजनाबद्ध रूप से अपनाना और क्रमबद्ध रूप से व्यवहार में उतारना पड़ता है । परिवार के वरिष्ठों का ध्यान इसी केन्द्र पर केन्द्रित रहना चाहिए और उन्हें अपने परिजनों को सुसंस्कारी बनाने के लिए परिपूर्ण सतर्कता के साथ अनवरत प्रयत्न करना चाहिए । इस कार्य में अपना समय और परिश्रम लगाने में कृपणता नहीं बरतनी चाहिए ।

पारिवारिक वातावरण उत्कृष्ट और प्रगतिशील बने

परिवार एक ऐसी संस्था है, जहाँ से व्यक्तित्व निर्माण की अति आरम्भिक शिक्षा प्रारम्भ होती है । पारिवारिकता के वातावरण में ही व्यक्तित्व को ऊँचा उठाने वाले उत्कृष्ट विचार संस्कार उपलब्ध हो सकते हैं, क्योंकि यह कार्य उसी वातावरण में सम्पन्न हो सकता है जिसमें मनुष्य विश्वास करता है । परिवार का वातावरण ही वह माध्यम है जिससे उसमें पलने वाले सभी छोटे-बड़े प्रभावित होते और बनते ढलते हैं । शिक्षण बाहरी लोग भी दे सकते हैं पर संस्कार घनिष्ठों द्वारा ही मिलता है । छोटी आयु में यह प्रभाव अत्यधिक मात्रा में ग्रहण किया जाता है किन्तु आयु बढ़ने के बाद भी पारिवारिक वातावरण की प्रतिक्रिया निरन्तर होती है और सुख-दुःख की, उत्थान पतन की मनःस्थिति एवं परिस्थिति बनाने में असाधारण भूमिका सम्पन्न करती है ।

परिवार का, पारिवारिक वातावरण का प्रभाव व्यक्तित्व को उठाने गिराने में जितना पड़ता है उतने अन्य समस्त साथियों एवं माध्यमों के संयुक्त साधनों का भी नहीं पड़ता । सुसंस्कृत परिजनों के बीच मनुष्य रुग्ण और दरिद्र रहकर भी जीवनयापन कर सकता है । किन्तु गृहकलह के बीच सम्पन्नता भी नीरस और कई बार तो असह्य भी बन जाती है । सर्वविदित है कि हत्याओं और आत्महत्याओं में अधिकांश का कारण पारिवारिक विद्रूपता होती है । विक्षिप्तों और सनकियों की मानसिक दुर्दशा के कारण भी प्रायः पारिवारिक असन्तोष ही रहते हैं । रुग्णता में आहार-विहार को दोष दिया जाता है कि यह विकृतियाँ, विसंगतियाँ प्रायः पारिवारिक ढर्रे में घुली रहती हैं और उस के सदस्यों पर अनायास ही लदती रहती हैं । घर की रसोई व्यवस्था में यदि दूरदर्शिता का और विनोद पद्धति का शालीनता का तथा कार्य निर्धारण में सुव्यवस्था का समावेश हो तो उसमें रहने वालों को आहार-विहार के व्यतिक्रम का कदाचित् ही दोषी बनना पड़े ।

सामाजिक कुरीतियाँ लगती तो ऐसी हैं मानो वे बाहर से आ टपकी हैं और उन्हें विवशतापूर्वक वहन करना पड़ रहा है । पर वस्तुतः ऐसा होता नहीं । घर परिवार के लोग ही कुछ मूढ़मान्यताओं से जकड़े होते हैं और दुराग्रहपूर्वक उन रूढ़ियों को छाती से चिपकाये रहते हैं, जिन्हें विज्ञ समाज में उपहास माना जाता है । कहने को तो हर बात में समाज का दबाव कहकर अपने को निर्दोष सिद्ध करने की चेष्टा की जा सकती है । किन्तु सच्चाई यह है कि समाज के किसी सभ्य सदस्य को घरेलू मामलों में दखल देने का न तो समय है और न उत्साह । कोई चाहे इस प्रथा को माने या न माने, बाहरी व्यक्तियों को उसमें कोई खास दिलचस्पी नहीं हो सकती । उथली चर्चा तो सड़क पर होने वाले बन्दर के तमाशे की भी होती रहती है । कुप्रथाओं को अपनाने या छोड़ने के लिए हर परिवार पूर्णतया स्वतन्त्र है । दुराग्रही अपनी ही मूढ़मान्यताओं को सामाजिक कुप्रथा कहते हैं और उन्हें करते हुए परम्पराओं को दोष देते रहते हैं यह आत्मप्रवंचना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । घर का वातावरण दूरदर्शिता अपनाने और विवेक का आश्रय लेने का हो तो आज के विसंगठित समाज में इतनी सामर्थ्य है ही नहीं जो किसी को इस या उस प्रकार का प्रचलन अपनाने के लिए विवश कर सके ।

अनैतिकताओं के लिए मनुष्य की निजी लिप्साएँ और कुत्साएँ भी बहुत हद तक जिम्मेदार होती हैं और प्रचलित प्रवाहों का भी असर पड़ता है । किन्तु यदि परिजन उनका समर्थन न करें अहयोग एवं विरोध का रुख रखें तो निश्चय ही वह आवेश हलका पड़ता जायगा । एक महिला यदि अपने पति की अनुपयुक्त कमाई से खरीदे बहुमूल्य जेवर, कपड़े पहनने से इन्कार कर दे, मिष्ठान्न पकवान न खाये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और अपने परिश्रम के बदले रूखा-सूखा खाये और फटा-टूटा पहनकर काम चलाने लगे तो इतने भर से अनीति की कमाई और घर में प्रवेश बहुत हद तक रुक सकता है । छोटे बच्चे यदि ऐसी दशा में जेब खर्च लेना बन्द कर दें और मेहनत मजदूरी करके न्याय अन्न खाने की आकांक्षा व्यक्त करें तो उपार्जनकर्त्ता को अपनी रीति-नीति के सम्बन्ध में परिवर्तन करने के लिए अपने आप विवश होना पड़ सकता है ।

अनगढ़, अशिष्ट, आलसी, दुर्व्यसनी, भीरु, दुराग्रही, दुर्गुणी प्रकृति के मनुष्य ही हर क्षेत्र में असफल रहते हैं । अपंग, असमर्थ रहते हुए भी सद्गुणी सम्मान पाते और स्नेहभाजन बनकर रहते हैं । वफादारी, स्वामिभक्ति जैसे सद्गुणों से मन मोह लेने वाले कुत्ते तक प्राणप्रिय हो कर रहते हैं फिर कोई कारण नहीं कि मन्दबुद्धि, दुर्बलकाय या कुरूपता जैसे कारणों से मनुष्य को उपेक्षित, तिरस्कृत एवं पिछड़ी हेय स्थिति में समय गुजारना पड़े । कुसंस्कारिता ही मुनष्य का सबसे बड़ा अभिशाप है जिसके कारण पग-पग पर ठोकर खानी और हर दिशा में निराशा, असफलता देखनी पड़ती है । यह अभिशाप विशुद्ध रूप से पारिवारिक अनुदान है । अनगढ़ व्यक्तित्वों के कुकरमुत्ते कुसंस्कारी परिवारों के कूड़े-कचरे में ही पैदा होते देखे गये हैं । अपवाद तो हर क्षेत्र में जब तब उत्पन्न होते रहते हैं ।

अनीति, दुष्टता और कुमार्गगामिता की प्रवृत्तियाँ असंस्कृत परिवार में ही उत्पन्न होती और प्रोत्साहन पाती हैं । यदि परिवार के वातावरण को सुधारा और परिष्कृत किया जा सके तो उसमें एक-से-एक श्रेष्ठ नर रत्न उत्पन्न हो सकते हैं । सुसंस्कृत व्यक्तित्व ऐसे ही परिवारों में उत्पन्न होते हैं, जहाँ का वातावरण सुसंस्कारिता से भरा हुआ हो । कोई एक अपवाद भले ही निकल आए । परन्तु अपवादों को नियम मानकर नहीं चला जा सकता । सामान्यतया होता यही है कि सुसंस्कृत परिवारों में ही सुसंस्कारी व्यक्तित्व जन्मते हैं, उसी प्रकार असंस्कृत या कुसंस्कारी वातावरण जहाँ व्याप्त हो, उन परिवारों में उसी स्तर के व्यक्ति उत्पन्न होते हैं । इसलिए परिवारों में यदि उत्कृष्टता का वातावरण बनाया जा सके, ऐसी परम्पराएँ डाली जाएँ जिनमें श्रेष्ठ आचरण की प्रेरणा मिले तो समाज का अभिनव कायाकल्प होते देर न लगेगी ।

परिवार में स्वर्गीय वातावरण कैसे बने ?

परिवार एक ऐसी संस्था है जिसके सदस्यों को सब प्रकार की सुरक्षा और प्रगति के निमित्त भरपूर सहायता मिलती है । इसके सूत्र संचालकों को यह अनुभव हस्तगत होता है कि किसी संगठन का सुसंचालन किस प्रकार किया जाय और विभिन्न स्तर वालों के बीच तालमेल किस प्रकार बनाकर रखा जाय ?

समाज और व्यक्ति के बीच की एक कड़ी है-परिवार । समाज क्या है ? अनेक परिवारों का संगठन । उसे व्यक्तियों का उपयुक्त स्तर का संगठन भी कहा जा सकता है । व्यक्ति और समाज जिस केन्द्रबिन्दु पर एकत्रित होते हैं उसे परिवार कहा जा सकता है । यदि इस संगठन की सुव्यवस्था चल पड़े तो उसे नर-रत्नों की खदान भी कह सकते हैं ।

परिवार अनायास ही बन जाता है । माता-पिता, भाई-बहिन, अंश-वंश के लोग तो उसमें होते ही हैं । सन्तान के अतिरिक्त पिता के सगे सम्बन्धियों का समुदाय भी परम्परा एवं स्नेह-सहकार के आधार पर उसी के अन्तर्गत निर्वाह करता है । इस प्रकार चाचा, ताऊ, चाची, ताई, भतीजी आदि का एक अच्छा खासा समूह एक साथ रहता और मिल-जुलकर निर्वाह करता है । फलतः संयुक्त परिवार बन जाता है ।

इसमें स्नेह सहयोग तो प्रधान हैं ही । भारतीय जनता के कृषि प्रधान होने के कारण भी इसकी उपयोगिता है । वह कार्य ऐसा है जिसके साथ अनेक छोटे-बड़े बिखरे हुए कार्य जुड़े रहते हैं । उन्हें पूरा करने के लिए कितनों का ही सहयोग चाहिए । वयस्क सदस्य मिल-जुलकर कृषि कार्य करते हैं । उन्हें मिलता तो भोजन-वस्त्र ही है पर काम एक वेतनभोगी श्रमिक से कहीं अधिक करते हैं । फलतः सब का सामूहिक श्रम एकत्रित होकर पारिवारिक वैभव या सम्पदा बन जाता है । जिस पर सभी का अधिकार होता है सभी गौरवान्वित होते और उसकी सुविधा से लाभ उठाते हैं । साथ रहने से एक घर, एक चूल्हा, एक बुहारी, एक दीपक आदि से काम चल जाता है । खर्च की बचत होती है । एक दूसरे का सहयोग करते, हाथ बँटाते और आड़े समय में काम आते हैं । ऐसी ही और अनेक सुविधाएँ, संयुक्त परिवार में मिलती हैं । जिनका सामूहिक सहयोग से चलने वाला गृहउद्योग है वे भी इस व्यवस्था के अन्तर्गत अधिक सुविधा अनुभव करते हैं । जुलाहे का काम ऐसा है जिसमें कई तरह के काम गुँथे होते हैं, उनमें महिलाएँ और बच्चे भी कुछ न कुछ सहायता करते हैं । बालकों को परम्परागत अनुभव का लाभ मिलता है और वे आरम्भ से ही उसके अभ्यस्त होने के कारण बड़े होने पर नया व्यवसाय ढूँढ़ने के लिए मारे-मारे नहीं फिरते । भारतीय समाज का गठन ही ऐसा है जिसमें संयुक्त परिवार हर दृष्टि से सुविधाजनक रहते हैं । इसके प्रत्यक्ष लाभ भी हैं और परोक्ष भी । दैनिक कार्य- विधि आसानी से निपट जाती है और किसी सदस्य की मृत्यु हो जाने पर उसकी पत्नी तथा बच्चों को अनाथ की तरह नहीं भटकना पड़ता । संयुक्त परिवार के सहयोग से उनकी नाव भी पार लग जाती है ।

पाश्चात्य देशों की बात अलग है । उनने पृथक प्रकार की परम्परा अपनाई है । वयस्क होते ही बच्चे अपना स्वतंत्र घर बसा लेते हैं । अलग से आजीविका कमाने और रहने लगते हैं । इससे पति-पत्नी अपनी कमाई पर गुलछर्रे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उड़ाकर आरम्भ में तो बहुत प्रसन्न रहते हैं पर यह प्रसन्नता अधिक दिन नहीं टिकती । प्रसव होने पर जननी एक प्रकार से असहाय हो जाती है । उसे अपना शरीर और बच्चा सँभालना कठिन पड़ता है । फिर घर के अन्य काम, रसोई, सफाई व्यवस्था आदि कौन करे ? वे सब पति को दफ्तर जाने से पहले या लौटने के बाद करने पड़ते हैं । बच्चे की हारी-बीमारी में उन्हीं को रात-रात भर जागना पड़ता है । स्वयं बीमार हो जायें तो तीमारदारी के लिए किसी दूसरे की सहायता की आशा नहीं की जा सकती । बुढ़ापा तो और भी कष्टमय होता है । वह आयु ऐसी होती है जिसमें शरीर अपनी पूरी व्यवस्था स्वयं नहीं सँभाल पाता, दूसरों की सहायता अभीष्ट होती है । घर का सूनापना भी खलता है । बुड्ढे बुढ़िया जब तक दो हैं तब तक एक-दूसरे की कुछ देखभाल करते रहते हैं । एक के मर जाने पर सर्वथा एकाकी, असहाय रह जाता है । कमाऊ बच्चे तो पहले ही अपना घर बसा चुके होते हैं । वे अपने छोटे बच्चों को सँभाल लें सो बहुत । वयोवृद्ध माता-पिता न उन्हें सुहाते हैं और न किसी प्रकार की सहायता ही करते हैं । वे सम्पन्न देश हैं इसलिए अनाथ बुड्ढों और बालकों की साज सँभाल किसी प्रकार किसी हद तक हो जाती है । यदि वहाँ भारत जैसी निर्धनता और बेरोजगारी रही होती तो एक कमाए सब खायें वाली उक्ति कैसे चरितार्थ होती ?

भारत जैसे देशों की स्थिति को देखते हुए संयुक्त परिवार प्रणाली सर्वश्रेष्ठ है । यद्यपि उसमें मनमानी उच्छृंखलता बरतने की, दूसरों की परवाह न करने की छूट नहीं है, तो भी सब मिलाकर सीमित स्वतंत्रता और अनुशासनबद्धता का बन्धन रहते हुए भी लाभ अपेक्षाकृत कहीं अधिक है । आर्थिक दृष्टि से भी और सहकार की दृष्टि से भी । यह लाभ कम महत्व के नहीं हैं । यदि इनसे लाभान्वित होना है तो कुछ अनुशासन तो आरम्भ से ही निभाना पड़ता है, जो आदत में सम्मिलित हो जाने पर जीवन भर उपयोगी सिद्ध होता है ।

मानवी प्रगति के आरम्भिक दिनों में ज्ञान और स्वभाव को उपयोगी बनाने की दृष्टि से अध्यापक और अभिभावक दोनों की ही समान आवश्यकता पड़ती है । अध्यापक प्रशिक्षण के सहारे ज्ञानवृद्धि करते हैं । खेलकूद, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि की सुविधा भी बनाते हैं, पर बच्चों का स्वभाव बनाना प्रधानतया पारिवारिक वातावरण का ही काम है । बच्चे स्कूल में तो कुछ घंटे ही रहते हैं । शेष सारा समय तो घर या पड़ौस में ही बीतता है । यही वह उपयुक्त समय है जिसमें गुण, कर्म, स्वभाव के व्यक्तित्व को विकसित परिष्कृत करने के बीजाकुंर बोये जाते हैं । जहाँ पारिवारिक व्यवस्था नहीं होती माँ-बाप अकेले ही रहते हैं । सो भी दिन भर रोटी कमाने के लिए निकल जाते हैं । उनके छोटे बच्चों का समय किराये के बच्चेखाने में कट तो जाता है पर प्यार किराये पर नहीं लिया जाता और न आत्मीयता के दबाव बिना वह सीखा सिखाया जा सकता है । जिसे व्यक्तित्व या स्वभाव की विशिष्टता कहते हैं । भारतवासी उस दृष्टि से भाग्यवान हैं कि उनमें से अधिकांश को संयुक्त परिवार प्रणाली के अन्तर्गत रहना पड़ता है । बँधी बुहारी की तरह वे एक होकर रहते हैं । सभी जानते हैं कि तिनकों के सम्मिश्रण से मजबूत रस्सा बटा जाता है और कच्चे धागे मिलकर उपयोगी कपड़ा बुनते हैं ।

संयुक्त व्यवस्था के जहाँ अनेक लाभ हैं वहाँ कुछ दायित्व भी हैं । गृह संचालकों का, प्रतिभाशाली सदस्यों का काम है कि वे दूरदर्शिता अपनायें और घर का वातावरण ऐसा बनायें, जिनमें छोटे-बड़े सभी को सद्गुणों के अभ्यास का अवसर मिले और गुण गरिमा के आधार पर सभी समुन्नत बनें । इस दृष्टि से पंचशीलों का अत्यधिक महत्व है ।

श्रमशीलता, मितव्ययिता, सुव्यवस्था, शिष्टता, सहकारिता की पाँच विशिष्टतायें ऐसी हैं जो परिवार में रहकर ही ठीक प्रकार अभ्यास में उतारी जा सकती हैं । इन सद्गुणों की व्याख्या-विवेचना तो कोई भी कर सकता है । इनके लाभ भी बता सकता है पर काम इतने भर से नहीं चलता । इन गुणों को छोटे-बड़े सभी के स्वभाव में उतारने की बात बन पड़े तो समझना चाहिए कि संयुक्त परिवार को वह श्रेय सौभाग्य मिला, जिसके लिए हर सदस्य को अनुशासन पालन का अंकुश स्वेच्छापूर्वक सहन और वहन करना पड़ता है ।

उपरोक्त पंचशीलों को परिवार के सदस्यों को मात्र समझाया सुनाया ही न जाय वरन् ऐसा प्रयत्न किया जाय जिससे इन सब बातों का बार-बार उपयोग करने का अवसर मिले और वे उसके स्वभाव के अंग बनकर रहें ।

इसके लिए यह तरीका सबसे अच्छा है कि घर के सब काम मिल-जुलकर किये जायें । एक पंक्ति में बैठकर खाया जाय । इससे परस्पर सद्भावना बढ़ती है और उस अनावश्यक संकोच की दीवार टूटती है, जिसके कारण एक दूसरे के साथ खुले मन से बात करने में सकुचाते हैं ।

इन सद्गुणों के प्रशिक्षण का सीधा और सरल तरीका यह है कि घर के सब कामों को मिल-जुलकर करने की आदत डाली जाय । आमतौर से घर के दैनिक कामों में सफाई, रसोई, कपड़ों की साज-सँभाल, वस्तुओं को यथा स्थान लगाने जैसे काम प्रमुख होते हैं । इन्हें एकाध महिला के ऊपर न छोड़कर घर के सभी स्त्री-पुरुष करने में जुट पड़ें और हिल-मिलकर उन्हें निपटायें तो एक अत्यन्त मनोरंजक माहौल बन जाता है और सभी काम प्रायः एक दो घंटे में ही निपट जाते हैं । बाकी सारा समय गृह उद्योगों में, पढ़ने-लिखने में या समाज सेवा में, घर की महिलायें भी लगा सकती हैं । उन्हें चौबीस घंटे घिरे रहने, दिन रात पिसते रहने जैसी शिकायत नहीं करनी पड़ती ।

घर की पूरी सफाई एक महिला करे, इसकी अपेक्षा यह अच्छा है कि घर का एक-एक भाग सब लोग बाँट लें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

या मिलकर एक साथ पूरी सफाई कर डालने की व्यवस्था करें । रसोई में एक शाक काटे, एक चूल्हा जलाये, एक आटा गूँथे, एक रोटी बेले, दूसरी सेके । यदि गरम-गरम खाने की आदत हो तो एक-एक दो-दो खाते चलें और अपने-अपने जूठे बर्तन माँजकर यथास्थान रखते चलें ।

घर के कपड़े एक साथ बड़े बर्तन में वाशिंग पाउडर डालकर उसमें भिगो दिये जायें । थोड़ी देर बाद उन्हें धोने का सिलसिला चलाया जाय । एक धोता जाय, दूसरा सुखाता जाय तो एक घण्टे में सारे घर के कपड़े साफ किये जा सकते हैं । सूखने पर लोहा करने की बात भी कुछ कठिन नहीं है । घर में कई इस्त्री हों तो उससे कई व्यक्ति लोहा करने में लग सकते हैं । इस प्रकार सबेरे का शाम का काम मिल-जुलकर करने से एक खेल मनोरंजन की तरह वह काम आसानी से निपट सकता है । किसी को भी भार अनुभव नहीं हो सकता ।

जो खाता है उसे पकाना आना चाहिए । जो पकाता है उसे बर्तन साफ करना भी सीखना चाहिए । जो कपड़े मैले करता है उसे धोना क्यों नहीं आना चाहिए ? कोई किसी का परावलम्बी क्यों रहे ? स्वावलम्बन क्यों न अपनाया जाय ? अपनी-अपनी वस्तु को साफ सुथरी और यथास्थान क्यों न रखें ? हर व्यक्ति अपना अलग-अलग काम करे-पृथकता की नीति अपनाये, इसकी अपेक्षा यह क्या बुरा है कि सहकारिता की नीति अपनाई जाय और सब काम सब लोग मिलजुलकर करें । सहकारिता का सिद्धान्त इसी प्रकार अपनाया जा सकता है ।

दो घरेलू उद्योग अनिवार्यत: हर घर में चलें एक शाक वाटिका, दूसरा टूट-फूट की मरम्मत । आँगनवाड़ी हर घर में लगनी चाहिए । जगह कम पड़ने पर छप्परवाड़ी, छतवाड़ी भी लगाई जा सकती है । मकान पक्का हो तो पुरानी टोकरी, पेटी, बक्से, नाँद, गमले आदि इस काम के लिए प्रयुक्त हो सकते हैं । मुफ्त की ताजी सब्जियाँ प्राप्त करते रहना एक अच्छा घरेलू उद्योग है । यह बारहों महीनों, मौसम के अनुरूप सब्जियाँ बोते रहकर सदा घर उगाई सब्जियों से काम चलाया जा सकता है । इससे उपार्जन पोषण की कला, रचनात्मक कला आती है और काफी पैसा बचता है । चटनी के लायक धनिया, पोदीना, मिर्च, अदरक जैसी वस्तुयें तो आसानी से लग सकती हैं । जगह हो तो एक दो नीबू के पेड़ भी लग सकते हैं । इस आधार पर चटनी के लायक सामग्री गमलों में लगाई जा सकती है ।

दूसरा घरेलू उद्योग है टूट-फूट की मरम्मत । घर के स्टोव, लालटेन, बक्से, चारपाइयाँ आदि की मरम्मत घर पर ही हो सकती है । फटे जूते, चप्पलों की मरम्मत और पॉलिश हो सकती है । इसके लिए छोटे-मोटे औजार आसानी से खरीदे जा सकते हैं और थोड़ी अकल लड़ाकर या किसी जानकार को बुलाकर यह कार्य आसानी से सीखे जा सकते हैं । चूहों के बिल, छत की दरारें, टूटे फर्श आसानी से सुधारे जा सकते हैं । यहाँ तक कि हर तीन महीने में पूरे घर की पुताई नीला थोथा डालकर ही सकती है । घर दमकता भी रहेगा और कीड़े-मकोड़े के जमा होने जैसा खतरा भी न रहेगा । इसी प्रकार घर का फर्नीचर, किवाड़, खिड़कियाँ भी घर पर ही रंगी, पोती जा सकती हैं । चारपाइयाँ अक्सर टूटती और ढीली होती रहती हैं । उन्हें सुधारना और नये सिरे से बुनना कुछ भी कठिन नहीं है । थोड़े से अभ्यास भर की आवश्यकता है । इस आधार पर पुरानी फेंककर नई खरीदने में जो खर्च पैसा लगता है उसकी बचत हो सकती है ।

कपड़े सीने से लेकर धोने तक का काम आसानी से किया जा सकता है । धोबी आजकल तेजाब डालकर परिश्रम बचाने लगे हैं । ऐसी धुलाई बाहर कराने पर कपड़े की जिन्दगी आधी रह जाती है । यदि घर पर ही कपड़े सीना, रफू करना, बड़े कपड़ों में से छोटे निकालने जैसा कला-कौशल सीख लिया जाय तो उससे काफी बचत हो सकती है । स्वेटर घर पर बुनने से मजबूत रहते हैं और बहुत दिन चलते हैं । ऊन भी असली लगाने से वे गरम भी पर्याप्त होते हैं । इन्हीं चीजों को बाजार में खरीदा जाय तो वे महँगी भी पड़ेंगी और क्वालिटी की दृष्टि से घटिया भी होंगी ।

पुस्तकों की जिल्दें बनाकर यथास्थान सुसज्जित ढंग से रखी जायें । मेजपोशों, तकियों को धोते बदलते रहा जाय तो यह काम भी ऐसा है जो देखने से सुहावना, स्वच्छ एवं सुरुचिपूर्ण लगते हैं । छोटी-मोटी वस्तुयें फेंक देने की अपेक्षा उनसे दूसरे काम लिए जा सकते हैं । कद्दू के खरबूजे के बीज छीलकर उन्हें ठंडाई के काम लाया जा सकता है । वे पीसने पर दूध का काम देते हैं ।

बच्चे क्लास पास करने पर पुस्तकें सँभालकर रखा करें तो उन्हें पुरानी पुस्तकें खरीदने वालों के हाथों बेच या किसी जरूरतमन्द को मुफ्त में दिया जा सकता है । लापरवाही से उन्हें गन्दा कर देना या फाड़ देने की उच्छृंखलता बच्चों को भी नहीं करने देना चाहिए ।

परस्पर संभाषण में कोई किसी का अधूरा या असम्मानसूचक नाम न लें । या तो रिश्ता बताते हुए-पिताजी, माताजी, बुआजी, दीदीजी आदि सम्बन्धसूचक नामों से संबोधन किया जाय, छोटों को पुकारना हो तो भी उनका नाम लेने के अतिरिक्त 'जी' शब्द और जोड़ा जाय । इसका यह प्रभाव होता है कि बच्चे भी वैसा ही अनुकरण करने लगते हैं । ऐसे संबोधन से घर वालों को या बाहर वालों को सुनने में बहुत प्रिय लगता है । चाहे छोटे ही बच्चे क्यों न हों पर उन्हें तुम या आप कहकर बुलाना चाहिए । नाम भी पूरा लेना चाहिए । आधा-अधूरा अपमानसूचक संबोधन के साथ बुलाने से उनके स्वाभिमान को चोट पहुँचती है और हीनता के भाव जागते हैं । अक्सर छोटी आयु में लाड़-प्यार से अपना बड़प्पन या अधिकार जताने के लिए इस प्रकार संबोधन किए जाते हैं पर पीछे उन्हें पड़ोसी और स्कूली साथी भी अपना लेते हैं और वह परस्पर बड़ी आयु तक चलती रहती है । होना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह चाहिए कि गुणपरक नाम रखे जायें ताकि बच्चा उसका अर्थ समझते हुए अपने को उसी प्रकृति का बनाने का प्रयास करे ।

छोटे-छोटे कामों का दायित्व बच्चों को आरम्भ से ही सिखाना चाहिए । नियत स्थान पर, नियत समय पर मल-मूत्र का त्याग करना, अपने कपड़े, जूते, पुस्तकें आदि नियत स्थान पर रखना । सवेरे उठकर सबको नमस्कार करना आदि । इस प्रकार के अभ्यास से नियमितता की, अनुशासन की आदत पड़ती है । बाजार से हानिकारक वस्तुएँ खरीदकर खाने के लिए पैसे देने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि बीच में भूख लगने पर घर की वस्तुएँ ही खाया करें । उन्हें थोड़ी मात्रा में स्कूल जाते समय साथ रख दी जा सकती हैं । उन्हें खेलने-कूदने का, प्रकृति का सान्निध्य का, घूमने का भी अवसर देना चाहिए । अनुशासन में इतना अधिक नहीं कस देना चाहिए कि वे भविष्य में मिलने-जुलने की प्रकृति ही गँवा दें और संकोची बन बैठे ।

परिवार के सभी लोगों के बीच इतना खुलापन होना चाहिए कि अपनी या दूसरे साथी के मन की बात स्पष्ट कही जा सके । मन की बात मन में दबाये रहने से घुटन अनुभव होती है । कहते-सुनते रहने से पक्ष या विपक्ष स्तर का कोई न कोई समाधान निकलता है और संकोच-संकोच में जो गलत धारणाएँ बनती हैं, वे पनपने नहीं पातीं । खुले मन वाले परिवार एक दूसरे से अपनी इच्छा या दूसरों की गलती के सम्बन्ध में जो धारणायें बना लेते हैं उससे मनों में खाई बनती है और अवसर आने पर बुरी तरह फूटती है । यह बात मात्र बच्चों के सम्बन्ध में नहीं, बड़ों के बारे में भी है । ऐसी परम्परा पड़नी ही नहीं देनी चाहिए । मिल-जुलकर घर का काम करने, बाजार से कोई वस्तु खरीदनी हो तो घर के अन्य समझदार लोगों को भी साथ ले जाना चाहिए । ताकि सस्ते मोल में घटिया या कम नाप-तोल की चालाकी से वे परिचित हो सकें । वस्तुएँ ठीक कीमत पर, ठीक स्तर की तोल-नाप में पूरी लेने का अनुभव उन्हें होता रहे । अविश्वास वातावरण में अदल-बदल कर विभिन्न स्थानों से वस्तुयें खरीदनी चाहिए; ताकि बाजार के व्यापारियों के उतार-चढ़ावों का अनुभव होता रहे और जेब न कटे ।

घरेलू सत्संग का कोई समय निकालना आवश्यक है । रात का समय इसके लिए ठीक पड़ता है । समाचार पत्रों में छपी घटनाओं में से जो सीखने लायक हों उनकी टीका-टिप्पणी, आलोचना, समीक्षा करने का अवसर उन्हें देना चाहिए जो विचार व्यक्त कर सकने जितनी बुद्धि अर्जित कर सके हैं । इस अवसर पर गाँव, पडौस या समीपवर्ती क्षेत्रों में घटित हुई घटनाओं की समीक्षा भी की जा सकती है । एक तरीका प्रेरणाप्रद कथा-कहानियाँ कहने का भी है । रूढ़िवाद और अन्धविश्वास फैलाने वाले साहित्य का तो इस निमित्त चयन नहीं करना चाहिए । महापुरुषों के जीवन चरित्र, संस्मरण, भले बुरे कार्यों के परिणाम भी साथ ही बताते चलने चाहिए । इस निमित्त प्रज्ञा पुराण की कथायें उद्देश्यपूर्ण हैं । उन्हें क्रमशः कहते और निष्कर्षों पर प्रकाश डालते हुए कहने-सुनने की व्यवस्था बनाई जाय तो व्यावहारिक ज्ञान के अतिरिक्त कहने-बोलने का अभ्यास भी बढ़ता है । बोलने की कला इस आधार पर सभी वयस्कों को सिखाई जा सकती है । अनावश्यक वाचालता के स्तर तक न पहुँचे तो वार्तालाप करने या वक्तृता देने की कला का जीवन में बहुत महत्व है । इसका अभ्यास रहने पर मनुष्य को चुप्पी साधने की दुर्बलता के कारण जो अन्याय सहने पड़ते हैं, उनके अवसर कम ही आते हैं उनके हल निकल आते हैं । ध्यान रखने की बात इतनी ही है कि सौजन्य बना रहे । कटुता या तिरस्कार का भाव न आने पाये । वार्तालाप का आनन्द तभी है जब उसमें उत्तेजना न आने पाये, सन्तुलन बना रहे और आगे वार्ता की भी गुंजाइश बनी रहे । वार्ता होती रहे और सौजन्य बना रहे । गलतफहमियाँ दूर होती रहें । इसी में उसकी शोभा है । यह अभ्यास आरम्भ से ही डालना चाहिए ।

कुसंग से घरवालों को बचाना घर के समझदारों का काम है । आवारा लड़के अपने साथ अनेकों दुर्गुण लादे फिरते हैं और जिसके भी सम्पर्क में आते हैं उसे फुसलाकर अपनी दुरभिसंधियों का शिकार बना लेते हैं । ऐसी ही बुरी आदतें कुछ स्त्रियों में भी होती हैं । वे झूठी, सहानुभूति दिखाती और घर में विग्रह खड़े करती हैं । घर के लोगों को उनकी कुचालों से समय रहते ही सावधान कर देना चाहिए, ताकि उनकी मैत्री केवल सज्जनता की प्रकृति वालों से ही हो । खेल के मैदान में, स्कूल में, सत्संगों, समारोहों में मिलने-जुलने की बात ठीक है । घरों पर आवागमन कम से कम ही रहे । इसका ध्यान रखा जाय ।

समय का मूल्य समझने वाले, काम-काजी लोग यारबाजी बहुत नहीं बढ़ाते और गप्प लड़ाने के लिए न किसी के घर जाते हैं, न बुलाते हैं । इससे व्यर्थ की बकवास में, निन्दा, चुगली में रस आने लगता है । इधर की बात उधर पहुँचती है और विग्रह विरोध का सामना करना पड़ता है । अतिथि सत्कार का खर्च भी कई बार तो इतना बढ़ जाता है कि घर के लोगों को आवश्यक खर्च में भी उससे कटौती करनी पड़ती है । घनिष्टता में अपने यहाँ की कमजोरियाँ उजागर होती हैं और वे बाहर फैलती हैं । मित्र बनकर ही लोग उधार माँगते, सब्जबाग दिखाते और दुर्व्यसनों की आदत डालते हैं । आजकल के समय में जिसके जितने कम घनिष्ट मित्र हैं वह उतना ही सुखी है । कोई समय था जब अधिक लोगों से मित्रता होना अच्छी बात समझी जाती थी । अब स्थिति उलट गई है । नाकारा लोग मित्रता का जाल फैलाते और भोले लोगों को फँसाकर उनका अनर्थ करते रहते हैं ।

घर में शिक्षा, साहित्य और संगीत का मनोरंजन क्रम बना रहे, इसका प्रयत्न करना चाहिए । घर में चुनी हुई उपयोगी पुस्तकों का पुस्तकालय रहे । इसके निमित्त कुछ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

राशि नियमित रूप से निकालते रहनी चाहिए ताकि जीवन में उत्कृष्टता और व्यावहारिकता बढ़ाने वाले ज्ञान का एक भण्डार घर में जमा होता रहे । शिक्षित उन्हें पढ़ा करें और अशिक्षित उन्हें सुना करें । इसी प्रकार प्रेरणाप्रद गीतों का संगीत रूप में ज्ञान रहना चाहिए । छोटे-छोटे बाजों पर तालबद्धता का अभ्यास तो बहुत जल्दी ही हो जाता है । बड़ी आयु वाले छोटी आयु वालों को इस प्रकार पढ़ाया करें जिस प्रकार के लोग ट्यूशन वाले मास्टर पढ़ाते हैं । हर बड़ी आयु वाले अपने से कम आयु वालों को पढ़ाया करें तो घर में शिक्षा अभिरुचि की परम्परा ही चल पड़ेगी और अशिक्षा का अभिशाप घर से निरन्तर दूर होता रहेगा । सेवा सहकारिता का, आत्मीयजनों के प्रति कर्तव्य भावना का परिचय भी इस उपाय से मिलता है । इसी प्रकार सायंकाल पूजा कक्ष में सामूहिक भजन कीर्तन का चलन चलता रहे । इस आरती कृत्य को एक धर्म परम्परा के रूप में अपना लिया जाय तो धार्मिकता का वातावरण भी बनता है और संगीत का अभ्यास भी होता है । घर में संगीत के उपकरण भी रहें और किसी एक दो को यह दायित्व सौंपा जायं कि वे घर में संगीत का शौक छोटे बड़े रूप में सभी को लगाने का प्रयत्न करें । इससे सरसता उभरती है और भावुकता को प्रश्रय मिलता है । सुरुचि और कलाकारिता की अभिवृद्धि होती है ।

नया गृहस्थ नये विवाह से बनता है । संयुक्त परिवार प्रायः तभी तक रहता है जब तक बच्चे कमाऊ नहीं हो जाते और बड़े-बूढ़ों की साज-सँभाल का संयुक्त दायित्व भी बना रहता है । बड़े बूढ़े नहीं चाहते कि उनका ऐसा उद्यान उन्हीं के सामने बिखर जाय । इसी प्रकार व्यवसाय का आर्थिक पक्ष भी इसी से सधता है । शर्त एक ही है कि स्त्रियाँ आपस में लड़ें-झगड़ें नहीं और घर के कामों में रस लेती एवं उत्साह दिखाती रहें । सद्भाव, सहयोग बनाये रहें । इसमें कमी पड़ने या विग्रह चल पड़ने की स्थिति में पृथक रहना ही एकमात्र उपाय रह जाता है । बात बढ़ जाती है तो व्यवसाय भी अलग-अलग करने पड़ते हैं । युवाओं की महत्वाकांक्षायें प्रायः अपना स्वतन्त्र पुरुषार्थ करने और अपनी कमाई का लाभ स्वयं ही होती है । देर सबेर में प्रकट और कार्यान्वित होकर भी रहती है ।

ऐसी स्थिति आने से पूर्व ही बँटवारा कर लेना चाहिए । अच्छा हो कि घर के समझदार लोग इस व्यवस्था को अपने सामने ही बना दें ताकि पीछे मनोमालिन्य और विग्रह खड़ा न होने पाये । मोटे कानूनी हिसाब से सबको समान बँटवारे का प्रचलन है पर नैतिक तकाजा दूसरा है । जो नाबालिग है, जिन कन्याओं का विवाह होना है, जो स्त्रियाँ बिना कमाऊ हैं, उनकी व्यवस्था के लिए आवश्यक अंश पहले निकाल लिया जाय और जो कमाऊ हैं या जिनके पीछे जिम्मेदारियाँ नहीं हैं, उन्हें-आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए कम दिया जाय । जो सम्मिलित परिवार की कमाई से अधिक पढ़-लिखकर पहले ही कमाऊ हो चुके हैं उनका हिस्सा नाम मात्र का रह जाता है, क्योंकि वे समय से पहले ही अपना शेयर ले चुके । जिन्हें कृषि आदि से कम पढ़े होने के कारण जिन्दगी काटनी है । उनका आधार उनसे न छीना जाय । कानूनी बँटवारा गलत है । न्यायोचित तथ्यों को ध्यान में रखते हुए विशेषतया असमर्थ पक्ष के लिए विशेष सुविधाओं का ध्यान रखते हुए जो निर्णय किया जाता है वही न्यायोचित है ।

विवाह को नये गृहस्थ का आधार मानकर चलना चाहिए । उन्हें आगे चलकर स्वतंत्र गृहस्थ बनना ही पड़ता है । इसलिए पति-पत्नी के बीच असाधारण घनिष्टता होनी चाहिए । दोनों में से प्रत्येक को अपने स्वार्थ गौण और साथी की आवश्यकताओं को प्राथमिकता देना चाहिए । मनोमालिन्य, विग्रह, असहयोग इसी कारण उपजता है कि पुरुष प्रधान समाज की मध्यकालीन परम्परा का अनुगमन करते हुये पुरुष अपना विशेषाधिकार मानते हैं और पत्नी को बिना उचित-अनुचित का विचार किये आज्ञा पालने के लिए बाधित करते हैं । उसे जितना स्नेह, सम्मान और सहयोग मिलना चाहिए उतना नहीं देते उपेक्षा बरतते हैं । फलस्वरूप लोकलाज या बच्चों सम्बन्धी विवशता के कारण वे किसी तरह जिन्दगी के दिन तो गुजार लेती हैं पर दोनों के बीच वह सद्भाव नहीं बन पाता जो दाम्पत्य जीवन का मूलभूत आधार है ।

रंग रूप में कमी अथवा दहेज कम मिलने जैसी बातों को लेकर उपेक्षा, अपमान जैसी बात को तो जुबान पर आने ही नहीं देना चाहिए । आजीवन कृतज्ञ रहना चाहिए कि वह अपने माता-पिता का घर छोड़कर उनकी, उनके परिवार की सेवा करने आई और मात्र अन्न-वस्त्र लेकर प्रसन्न रह रही है । उसके श्रम-सहयोग का मूल्यांकन किया जाय तो भी वह उतना भारी बैठता है कि बदले में ससुराल के समस्त परिवार का विशेषतया पति को उसका कृतज्ञ होना चाहिए और उस कृतज्ञता की समय-समय पर चर्चा भी होती रहनी चाहिए ।

वधू अपने पिता के घर से जिस स्थिति में आई थी उसकी तुलना में उसके स्वास्थ्य, शिक्षा, अनुभव एवं प्रसन्नता व सुविधा में अभिवृद्धि ही होती रहे, कमी न पड़े । इसका ध्यान उस समूचे परिवार को रखना आवश्यक है ।

यह कल्पना मूर्खतापूर्ण है कि यौनाचार में अतिवाद बरतने से पुरुष का पौरुष्य प्रकट होता है या नारी को संतोष मिलता है । इस दिशा में अधिकाधिक संयम बरता जाना चाहिए और वार्ता विनोद के आधार पर आत्मीयता बढ़ानी चाहिए । स्मरण रखने योग्य बात यह है कि यौनाचार में अतिवाद अपनाने से नर की अपेक्षा नारी के कोमल अंगों पर अधिक दबाव पड़ता है और जननेन्द्रिय सम्बन्धी प्रदर आदि कई बीमारियाँ आरम्भ से ही लग जाती हैं ।

बच्चों की संख्या अधिक या जल्दी-जल्दी बढ़ने देना स्त्री के ऊपर प्रत्यक्ष अत्याचार है । इससे उसके स्वास्थ्य

का सर्वनाश होता है और सोने भर को पूरा समय न मिल पाने पर उसका कचूमर निकल जाता है । उठती जवानी में ही बुढ़ापा घेर लेता है । गर्भावस्था के नौ महीने अपच, अशक्तता, दबाव, तनाव से भरे रहते हैं । प्रसव कष्ट एक प्रकार से मृत्यु तुल्य ही होता है । अनेकों स्त्रियाँ तो उसी व्यथा में अपने प्राण गँवा बैठती हैं । बच्चे को दूध पिलाने में उन्हीं का रक्त सफेद दूध बनकर खर्च होता है । इसलिए विवाह के जितने अधिक समय पश्चात् बच्चों की बात सोची जाय उतना ही अच्छा है । कुछ दिन उसे दाम्पत्य जीवन की सरसता अनुभव करने का अवसर मिलना चाहिए । विवाह के उपरान्त जल्दी ही बच्चा पेट में आ जाने पर तो उनकी व्यथा बढ़ ही जाती है । विवाह की दाम्पत्य घनिष्टता का तो अवसर मिल ही नहीं पाता ।

इस अत्याचार की, भार लादने की प्रत्यक्ष शिकायत वे भले ही न करें पर उनका अचेतन मन पति की इस मूर्खता पर खीजता ही रहता है और उदासी, उपेक्षा, खीज का सिलसिला चल पड़ता है । सच तो यह है कि इस बढ़ती आबादी के दिनों में जो बिना बच्चे उत्पन्न किये रह सकते हैं वे सच्चे अर्थों में देशभक्त और विचारशील हैं । इतना न बन पड़े तो भी एक या दो बच्चों के उपरान्त प्रजनन प्रक्रिया से छुट्टी पा लेनी चाहिए । इसमें स्त्री की अपनी शारीरिक और मानसिक उन्नति का अवसर मिलता है और बच्चों की समुचित देखभाल होने तथा उन्हें सुयोग्य बनाने का भी अवसर मिलता है ।

अधिक बच्चे उत्पन्न करना इस जमाने में एक अनाचार है । इससे जननी का स्वास्थ्य चौपट होता है, पिता के ऊपर आर्थिक दबाव पड़ता है । परिवार के अन्य लोगों के मुँह का ग्रास छिनता है । समुचित देखभाल न हो पाने के कारण बच्चों का भविष्य बिगड़ता है और साथ ही समूचे देश की अर्थव्यवस्था बिगाड़ने का देशद्रोह जैसा पाप बढ़ता है ।

बढ़ती जनसंख्या समूचे समाज के लिए एक अभिशाप है सरकार उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य आदि सुविधाएँ बढ़ाने के लिए भारी टैक्स लगाती है । फलतः गरीबी बढ़ती है । इतने पर भी जितना प्रबन्ध हो पाता है, उसकी तुलना में जनसंख्या आगे निकल जाती है । फलतः बढ़े-चढ़े प्रबन्ध करने पर भी पिछड़ापन बढ़ता ही जाता है । सुविधाओं की वृद्धि और आवश्यकताओं की पूर्ति हो ही नहीं पाती । इन सब तथ्यों को ध्यान में रखते हुए उस मूढ़मान्यता को भूल ही जाना चाहिए कि पुत्र होने पर वंश चलता है । पिण्डदान मिलता है, आदि-आदि । कोई समय रहा होगा जब जनसंख्या बहुत कम थी और जंगल अन्धाधुन्ध थे, तब सब प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त थीं । कृषि कार्य के लिए घर के अधिक सदस्यों की आवश्यकता थी । पर अब तो स्थिति बिल्कुल उलटी हो गई है । इन दिनों किसी को भी बच्चे उत्पन्न होने की खुशी नहीं मनानी चाहिए कि कुछ लाभ या श्रेय मिला । वरन् गम्भीर होना चाहिए कि इसके वयस्क, विवाह, स्वावलम्बी होने का इतना खर्च सिर पर लद गया कि जिसे जुटाने के लिए कितनी चिन्ताएँ करनी पड़ेंगी और उसके लिए कितने भले-बुरे उपाय अपनाने पड़ेंगे । यदि बच्चों का दबाव न हो तो अपनी कमाई को परमार्थ कार्यों में लगाकर कोई भी व्यक्ति प्रचुर मात्रा में आत्म-संतोष और परमार्थी होने का यश अर्जित कर सकता है ।

जिन लोगों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है अतिवाद अपनाकर छोटी ही आयु में कितने ही बच्चे पैदा कर लेते हैं । ऐसे व्यक्ति यदि भरी जवानी में मर जायें तो उनके स्त्री, बच्चों की कितनी दुर्दशा होती है इसे भुक्त-भोगी ही जानते हैं । उन सबका बिलखना उस मृतक को जलते नरक में भूनता होगा जिसने व्यवस्था किये बिना इतने बच्चे पैदा कर डाले । अच्छा हो हर बच्चे के पीछे दस-दस हजार का बीमा कराया जाता रहे, उससे कम से कम प्रगति न सही उनकी उदर पूर्ति तो होती रहेगी । इतनी कठिनाई पर विचार न करते हुए जो प्रजनन कर्म में लगे रहते हैं उन्हें कुत्ते जैसे पशुओं की उपमा दी जानी चाहिए जो हर साल कई-कई बच्चे जनते हैं और वे सभी भूखे प्यासे मरते रहते हैं ।

परिवार की सुव्यवस्था बनाकर परिवार के सदस्यों को स्वावलम्बी और सुसंस्कारी बनाना चाहिए । उत्तराधिकार में बड़ी-सी दौलत छोड़कर उन्हें आलसी, प्रमादी, दुर्व्यसनी और परस्पर कलह करने वाली नहीं बनाना चाहिए । उठती उम्र में ही यदि एक दो बच्चे पैदा करके संतोष कर लिया जाय तो पचास-पचपन वर्ष की आयु आने से पूर्व ही बच्चों को स्वावलम्बी बनाकर निश्चिन्त हुआ जा सकता है । ढलती आयु में भारतीय संस्कृति के अनुरूप वानप्रस्थ लेकर जीवन के उत्तरार्द्ध को परमार्थ प्रयोजन के लिए उत्सर्ग किया जा सकता है । लोक और परलोक को सुख-शान्तिमय बनाने का यही तरीका है ।

हिन्दू धर्म वर्णाश्रम धर्म है । इसमें वानप्रस्थ को मेरुदण्ड कहा गया है । सुयोग्य लोकसेवी समाज को अवैतनिक रूप से मिलते रहें तो उसका सर्वतोमुखी प्रगतिशील होना स्वाभाविक है । पूर्ण समाज के गुजारे का प्रबन्ध न हो पाये तो किसी संस्था के अनुशासन में रहकर लोक-कल्याण के कामों में निरत रहा जा सकता है । इस प्रकार ढलती आयु का श्रेष्ठतम सदुपयोग हो सकता है और परलोक सुधर सकता है । जब तक अपने देश में वानप्रस्थ परम्परा जीवित रही तब तक यह देश सेवा-साधना में निरत लोगों के अनुग्रह से तैतीस कोटि नागरिकों को तैंतीस कोटि देवताओं के समतुल्य बनाये रहा और यह भारत भूमि स्वर्गादपि गरीयसी बनी रही । अब तो लोकसेवा की बात मूर्खता मानी जाती है । हर व्यक्ति वेतन चाहता है और उस वेतन के साथ जुड़े हुए उत्तरदायित्वों को पूरा नहीं करता इसलिए सरकारी कर्मचारियों की भारी संख्या होते हुए भी आध्यात्मिक तो क्या भौतिक प्रगति का वैसा तारतम्य नहीं बैठता जैसा कि बैठना चाहिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

२.३० समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र

कर्तव्यनिष्ठा की बात हमें जीवन के आरम्भिक दिनों से ही सीखनी, सिखानी और अनुभव में उतारनी चाहिए ताकि बड़े होने पर वे विशेषताएँ स्वभाव में सम्मिलित हो जायें । स्मरण रहे कि किन्हीं तथ्यों को स्वभाव में सम्मिलित कर लेना या करा देना बहुत बड़ी बात है । वह छोटी आयु में जितनी अच्छी तरह हो सकता है उतनी बड़ी उम्र पर नहीं हो सकता । गीली लकड़ी मोड़ी जा सकती है । गीली मिट्टी से बर्तन बन सकते हैं पर उनके सूख जाने पर तो टूटने की बात हाथ रह जाती है । इस दृष्टि से १२ से १८ वर्ष तक की आयु ऐसी है जिसे जीवन निर्माण की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी कहा जा सकता है । उस अवधि में विचारशीलता उगे तो समूचे जीवन को सही तरीके से व्यतीत करने की योजनाएँ बन सकती हैं और निभ सकती हैं । तब सामयिक कठिनाइयों का सामना भी कम ही करना पड़ता है । अन्यथा जिन्होंने योजनाबद्ध जीवन नहीं जिया है उनके लिए यह अति कठिन है कि अप्रत्याशित घटनाओं का सामना और समस्याओं का समाधान करते रहें ।

बड़े-बूढ़ों का सम्मान करना, उनकी आवश्यकताओं, समस्याओं का प्रबन्ध करना, समय-समय पर सम्मान प्रदर्शित करना दो कारणों से आवश्यक है । एक तो यह कि उनके द्वारा पिछले दिनों की गई सेवा सहायता का ऋण उतारना है । दूसरे यह कि नई पीढ़ी को दृश्यमान प्रशिक्षण मिलता है कि बड़ों के साथ कैसा व्यवहार करना है । आज का जवान कल बूढ़ा बनने वाला है । तब उसे अपनों से छोटों की सहायता आवश्यक होगी । वह समय पर उपलब्ध होती रहे । इसके लिए छोटों के सामने वे आदर्श उपस्थित करने चाहिए, जिसे देखकर वह यह सीखें कि बड़ों के साथ किस प्रकार का बर्ताव एवं शिष्टाचार का निर्वाह करना चाहिए । जो अपने बड़ों की उपेक्षा करते हैं उन्हें अपना समय आने पर उसी प्रकार का तिरस्कार सहना पड़ता है ।

समूचे परिवार से उपयुक्त विचार-विनिमय के लिए समय निकालना चाहिए । उन्हें भूतकाल की परिस्थितियों और भावी योजनाओं से अवगत करना चाहिए ताकि वे लोग घर की तरह स्थिति से परिचित रहें और अपनी महत्वाकांक्षाओं के सम्बन्ध में सोच सकें कि वर्तमान परिस्थितियों में क्या सोचना और क्या करना उचित है ? जहाँ तक किसी के दोष-दुर्गुणों की बात कहने का प्रश्न है वहाँ यह उचित है कि उस बात को एकान्त में उस प्रकार कहा जाय जिसमें उसे अपमान नहीं सत्परामर्श प्रतीत हो और अपनी भूल सुधार लें । सबके सामने निन्दापरक शब्दों में कहना-सुनना करने से बात बिगड़ती है । सुधार होने की अपेक्षा बात प्रतिष्ठा का प्रश्न बन जाती है और प्रतिशोध एवं विग्रह का वातावरण बनाती है । परामर्श देने की परोक्ष शैली उत्तम है । किन्हीं अन्यों के उदाहरण प्रस्तुत करते हुए बात इस प्रकार कहनी चाहिए कि सबके लिए भी उपयोगी हो और साथ ही जो भूल करता है उसे सुधारने के लिए संकेत मिल जाय । इसके उपयुक्त आदर्शवादी उदाहरणों महामानवों के जीवन वृत्तान्तों में मिल सकते हैं । उस प्रकार की पुस्तकें घर में रहनी चाहिए और जिस प्रसंग को उभारना हो उस पर विशेष रूप से निशान लगाकर पढ़ने के लिए दुबारा देनी चाहिए । यह तरीका अपेक्षाकृत अधिक लाभदायक है । प्रज्ञा पुराणों में तो वर्तमान समय के अनुरूप उदाहरणों की भरमार है । उनमें हर स्तर के उत्तम उदाहरण ढूँढ़े जा सकते हैं ।

शिक्षण का सबसे अच्छा तरीका अपना उदाहरण प्रस्तुत करना है । परिवार के वरिष्ठ एवं प्रतिभाशाली लोगों के लिए यह गुंजाइश नहीं है कि वे कोई अनैतिक स्वेच्छाचार करते । इससे उनकी दूसरों को अच्छी शिक्षा देने की क्षमता समाप्त हो जाती है ।

परिवार के प्रभावशाली सदस्य यदि अपना उदाहरण प्रस्तुत न करें तो घर के छोटे सदस्यों पर मात्र शिक्षा देने भर से काम न चलेगा । उपदेशों को लोग मनोरंजन समझते हैं, उनसे प्रेरणा ग्रहण करने लायक उनकी मनःस्थिति नहीं होती । मनुष्य अनुकरणीय स्वभाव का है । बन्दर की तरह वह भी नकल उतारना जानता है । क्या कहा गया ? इसे सुनने की अपेक्षा यह देखा जाता है कि क्या-क्या किया जा रहा है ? जो किया जा रहा है वही मर्म-स्थल होता है । बाप दिन भर हुक्का गुड़गुड़ाता रहे और बेटे को छिपकर बीड़ी पीने के लिए मना करे तो वह उपदेश गले न उतरेगा । सोचा जाता है कि यदि तम्बाकू पीना वस्तुतः बुरा होता तो बाप स्वयं क्यों पीता ? वह दुनिया का दुरंगापन देखता है और सोचता है कि हाथी के दाँत दिखाने के अलग और खाने के अलग होते हैं । दुनिया की कथनी और करनी में अन्तर रहता है । इस मान्यता के उपरान्त बच्चे झूठ बोलने लगते हैं । पूछने पर अपराध स्वीकार नहीं करते । उसे छिपाते हैं और दुर्व्यसनों के लिए पैसा या तो चुराते हैं या झूठ बोलकर किसी बहाने माँगकर ले जाते हैं । इस प्रकार चुपके-चुपके उनमें कुसंग, जुआ, सिनेमा, आवारागर्दी आदि दोष पनपते रहते हैं जब तक प्रकट होते हैं जब बुरी आदतें परिपक्व हो जाती हैं और प्रकट होकर चर्चा का विषय बन जाती हैं ।

इन सबको परिवार को बचाना है तो परिवार संचालकों पर यह दायित्व आता है कि वे अपना चरित्र व्यवहार शालीनतायुक्त रखें । क्रोध में आपे से बाहर होकर दूसरों को विद्रोही न बनायें । प्रतिकूलता दृष्टिगोचर होने पर भी अपने को संयत रख और सुधारने, समझाने का ऐसा तरीका अपनायें जिसमें आत्मीयता और शुभचिन्तकता का गहरा पुट लगा हुआ हो । सुधारने का यही तरीका कारगर होता है । सभी में जन्मजात रूप से स्वाभिमान की आकांक्षा होती है । उस पर चोट लगने से मनुष्य तिलमिला उठता है और फिर अपने व्यवहार को प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर अपने पक्ष या परोक्ष रूप से अड़ जाता है । ऐसी स्थिति नहीं ही आनी चाहिए कि साँप मरे न लाठी टूटे की

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कहावत चरितार्थ हो । सुधार का उद्देश्य भी पूरा हो जाय और झगड़े का अवसर भी न आवे ।

परिवार में अक्सर नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के बीच खींच-तान चलती है । नई पीढ़ी अपने ढंग से रहना चाहती है । उसे पश्चिम के तौर तरीके पसंद हैं । उठती आयु के लड़कों में ही नहीं लड़कियों में भी अपना रहन सहन, स्वतंत्र, स्वच्छंद रखना चाहती हैं । उन्हें सादगी से रहने और पुरानी परिपाटी अपनाने के लिए एक सीमा तक ही झुकाया समझाया जा सकता है । इसलिए प्रयत्न यह होना चाहिए कि अड़ने की स्थिति न आने पावे । मध्यवर्ती समझौता करके इस प्रकार काम चलाया जाय कि बात टकराने की स्थिति तक पहुँचने से पहले ही सँभल जाय ।

उच्चतर संस्कारों का सृजन करें

परिवार-निर्माण के कुछ सूत्रों की संक्षिप्त जानकारी दी जा चुकी है । इससे आगे की असामान्य जानकारी यह है कि घर में आस्तिकता, आध्यात्मिकता और धार्मिकता का वातावरण बनना चाहिए । नास्तिकता मनुष्य को उच्छृंखल व मर्यादाहीन बना देती है । कर्मफल, परलोक, ईश्वरीय नियन्त्रण आदि को स्वीकार न करने के कारण यह मनोवृत्ति अवसर आने पर कुछ भी क्रूर कर्म करने के लिए तैयार हो सकती है । मनुष्य को पशु और पिशाच बनने से रोकने में सच्चे ईश्वर विश्वास से बढ़कर और कोई आत्मानुशासन नहीं हो सकता ।

आध्यात्मिकता का अर्थ है आत्मनिर्भरता, आत्मबोध-जीवन का महत्व, स्वरूप और लक्ष्य समझकर तदनुसार रीति-नीति निर्धारित करना । परावलम्बी-बहिर्मुखी व्यक्ति अपनी भीतरी कमजोरियों के कारण बाहरी जीवन में भी डरा-मरा, हारा-थका, दीन-हीन ही बना रहता है । आत्मगौरव, आत्मसंतोष जैसे दिव्य उपहार उसे कभी मिल ही नहीं पाते । आत्मबल संसार का सबसे बड़ा बल है और वह केवल अपनी गरिमा समझने वालों को ही मिलता है । बाहर से कुछ पाने के लिए सभी उत्सुक रहते हैं, पर यदि भी भीतर से कुछ पाने के लिए उतना ही प्रयास किया जाय तो चमत्कारी प्रभाव पैदा हो सकता है । अपने अन्दर की सोयी हुई शक्तियाँ जाग्रत होकर साधारण मनुष्य को भी देवताओं जैसी विभूतियों से सजा सकती हैं । वे उपलब्धियाँ प्रगति का प्रत्येक द्वार खोल सकती हैं । जिनमें आत्मविश्वास है, जिन्होंने आत्मनिर्माण किया है ऐसे व्यक्ति ही महामानवों की कतार में खड़े हो सकने योग्य बने हैं । इतिहास उन्हीं के गीत गाता है । जाग्रत नारी का कर्तव्य है कि वह व्यक्तिगत मान्यताओं में भी आस्तिकता और आध्यात्मिकता को गहराई तक उतारे और उन्हें परिवार के अन्य लोगों की आस्थाओं में भी बिठाने के लिए लगातार प्रयत्न करें ।

धार्मिकता का अर्थ है-कर्त्तव्य पालन-कर्मयोग । आज अधिकारों की ही माँग है, कर्तव्य को हर क्षेत्र में उपेक्षित रखा जा रहा है । नवयुग में कर्त्तव्य पालन को पहला स्थान मिलेगा-अधिकारों को नहीं । धर्म का विशालकाय ढाँचा केवल इसी एक आदर्श की जड़ें जन मानस में गहराई तक जमाने के उद्देश्य से खड़ा किया गया है । यों आज आस्तिकता, आध्यात्मिकता और धार्मिकता को भ्रम और पाखण्डों ने घेर लिया है । इन क्षेत्रों में दुःखदायी विकृतियाँ घुस पड़ी हैं, तो भी मूल रूप में ये तीनों ही धारायें इतनी पवित्र और इतनी उपयोगी हैं, कि उन्हें अपनाये बिना मनुष्यता का असली स्वरूप स्थिर नहीं रखा जा सकता । हमारे घरों में आदर्शवादी तत्वज्ञान की त्रिवेणी बहनी चाहिए और उसमें स्नान करके परिवार के हर सदस्य को देवमानव बनने का अवसर मिलना चाहिये ।

हमारे घरों में पूजा-उपासना का वातावरण रहना चाहिये । अच्छा तो यह है कि परिवार के सभी लोग प्रातः काल नित्यकार्य से निपट कर कुछ समय ईश्वर की गोद में बैठने की भावना के साथ उपासना के लिए शान्तचित्त से एकान्त में बैठें । गायत्री मंत्र का जप और उगते हुए सूर्य की दिव्य किरणें अपने शरीर, मन और अन्तःकरण में प्रविष्ट होने का ध्यान करें । समय का अभाव हो तो पन्द्रह मिनट भी इसके लिए लगाते रहने से काम चलता रहता है । उपासना भी नित्य के दैनिक कार्यों में सम्मिलित रहनी चाहिए । यदि अधिक व्यस्तता या अरुचि का वातावरण हो तो भी इतना तो होना ही चाहिये कि पूजा-स्थल पर गायत्री माता का-भगवान का चित्र स्थापित हो और काम-काज में लगने से पहले वहाँ जाकर, घर का प्रत्येक सदस्य दो मिनट मौन खड़ा होकर गायत्री मन्त्र का पाँच बार जप मन ही मन कर लिया करे और प्रणाम करके इस छोटे से उपासना क्रम को पूरा कर लिया करे । इसमें बाधा केवल अरुचि और उपेक्षा के कारण ही हो सकती है, परन्तु आस्तिकता के अनेक प्रकार के लाभों को समझा देने पर श्रद्धा के बीजाकुंर उगाये जा सकते हैं । उसके लिए बहुत-सा साहित्य युग निर्माण योजना द्वारा तैयार किया जा चुका है । भोजनशाला में प्रवेश करने से पूर्व हर महिला को कुछ समय गायत्री मन्त्र का विधिवत् अथवा मानसिक जप करना चाहिये । भोजन बन जाने पर चूल्हे में से अग्नि निकालकर रोटी के नन्हें-नन्हें टुकड़े घी और शक्कर में मिलाकर गायत्री मन्त्र के अन्त में स्वाहा शब्द लगाकर होम देने चाहिये । इसके बाद एक चम्मच से उसके चारों ओर जल की धार घुमा देनी चाहिये । यह अति संक्षिप्त गायत्री हवन हो गया । भारतीय संस्कृति की जननी गायत्री और भारतीय धर्म का पिता यज्ञ है । यह दिव्य माता-पिता नित्य ही हमारी श्रद्धा द्वारा पूजे जाने चाहिये, इसमें उपेक्षा न बरती जाय तो ही ठीक है । इस तत्परता से घर में दिव्य वातावरण बनता है और उसका प्रभाव किसी न किसी के लिए कल्याणकारी होता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

२.३२ समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र

घर में एक स्थान पर पूजा की सुसज्जित चौकी होनी ही चाहिये । घर में भगवान का निवास है इस आस्तिक मान्यता की छाप घर भर पर बनी रहे इसके लिये भगवान का सिंहासन सजाने में घिरने वाली जगह और थोड़ी-सी सामग्री लगा देना उचित है । यह क्रम अपने भौतिक मूल्य की तुलना में असंख्य गुने सत्परिणाम उपस्थित करता है । दोनों समय सामूहिक आरती, दोनों समय चौके में बनी रसोई की थाली का भोग यह दोनों क्रिया चल पड़ें तो समझना चाहिये कि अपना घर देवमन्दिर बन गया और उसमें उज्ज्वल भविष्य की सम्भावनायें झाँकने लगेंगी ।

आध्यात्मिकता और धार्मिकता की आस्थायें परिवार के लोगों में जमाने और विकसित करने के लिये हमें कई प्रकार के प्रयास करने पड़ेंगे और उन्हें धैर्य के साथ लम्बे समय तक चलाते रहना पड़ेगा । इसके लिए कथा बाँचने जैसा सत्संग प्रयोग नित्य ही चलना चाहिए । रामायण कथा-गीता कथा आदि धर्म ग्रन्थों की यदि प्रगतिशील युग की समस्याओं को सुलझा सकने वाले स्तर की व्याख्या हो सके, तो वे धर्मग्रन्थ भी भावनात्मक नवनिर्माण के आधार बन सकते हैं । रूढ़िवादी लकीर पीटने से तो वे ग्रन्थ भी प्रतिगामी कूड़ा-करकट ही गले बाँध देते हैं । घर में रात्रि के समय कथा-प्रसंग होते रहें और उसमें न केवल घर के वरन् पड़ौस के नर-नारी भी भाग लेते रहें तो वह दीखने में छोटी किन्तु वास्तव में बहुत बड़ी बात होगी । इस बीजारोपण का कुछ दिनों में ही आश्चर्यजनक सत्परिणाम देखा जा सकता है । धार्मिकता के संस्कारों को फलने-फूलने का अवसर मिल सके तो वे किसी सामान्य मनुष्य को भी महामानव बनने की सम्भावना पैदा कर सकते हैं ।

आवश्यक नहीं कि कथा में धर्मग्रन्थ ही पढ़े, सुने जायें और उनका समय रात्रि का ही हो । सुविधा और रुचि के अनुसार इसमें परिवर्तन किये जा सकते हैं । रात्रि की अपेक्षा तीसरे प्रहर भी इसका समय हो सकता है । व्यक्ति, परिवार और समाज की समस्याओं के स्वरूप समझाने वाली और उनके समाधान बताने वाली पुस्तकें भी एक प्रकार से धर्मग्रन्थ ही हैं । संस्कृत में बात कही गई हो या देशी भाषा में-इसमें कुछ अन्तर नहीं आता ।

प्राचीनकाल के ऋषियों ने अपने समय की समस्याओं पर उसी समय की परिस्थितियों का ध्यान रखते हुए प्रकाश डाला था । आज की स्थिति उस समय से भिन्न है । आज वे समस्यायें नहीं जो प्राचीनकाल में थीं । अब नई समस्यायें सामने हैं और उनके समाधान आज के हिसाब से ही ढूँढ़ने होंगे । यह काम युग दृष्टाओं और काल पुरुषों का है । विवेकानन्द, दयानन्द, गाँधी, विनोबा आदि को हम युगदृष्टाओं में गिन सकते हैं और उनके द्वारा दिए गये सुझावों के अनुसार अपनी विचारधारा परिष्कृत करने का लाभ उठा सकते हैं । कथा का उद्देश्य युग दृष्टाओं के साहित्य से भली प्रकार पूरा हो सकता है ।

सामूहिक भजन-कीर्तन, गायन-वादन की परम्परा भी घरों में चल पड़े तो उससे मनोरंजन की एक बहुत बड़ी आवश्यकता पूरी हो सकती है । भगवान के गुणगान से लेकर जीवन के भीतरी और बाहरी क्षेत्र में आदर्शवादी उमंगें उत्पन्न करने और प्रगति की दिशा में चरण बढ़ाने तक के विभिन्न विषय इन सहगानों में हो सकते हैं ।

परिवार का भावनात्मक निर्माण करने के लिए साप्ताहिक परिवार गोष्ठियों में घर की समस्याओं पर परस्पर विचार-विनिमय करने, बजट बनाने तथा भारी रीति-नीति निश्चित करने का सिलसिला चलाया जा सकता है । समस्याओं का समाधान ढूँढ़ा जा सकता है और प्रगति के नये चरणों का निर्धारण किया जा सकता है । हर नारी को इसके लिये सुनिश्चित रूपरेखा बनानी होगी और अपने निज के व्यक्तित्व को विकसित करने के साथ समूचे परिवार का नवनिर्माण करने के लिए साहस समेटना पड़ेगा । इसी में उसके सच्चे अर्थों में निर्माणकर्त्री कहलाने की सार्थकता है ।

यह परिवार निर्माण की योजना इस प्रकार चल सकती है जिस प्रकार हमने अन्य सारे नित्य तथा जीविका सम्बन्धी कार्यों के लिए समय निर्धारित कर रखा है, उसी प्रकार कुछ समय ऐसा भी निश्चित कर लें, जिसमें परिवार निर्माण का ही काम किया जाये । सायंकाल इसके लिए सबसे उपयुक्त समय रहेगा । वह समय ऐसा होता है कि घर-बाहर का सब काम हो चुका होता है । सब लोग खा-पीकर निश्चिन्त हो चुके होते हैं और इकट्ठे भी रहते हैं । वह समय ऐसा होता है जिसमें दिन भर की तमाम बातें याद और प्रकट की जा सकती हैं । दिन की सारी गतिविधियाँ समाप्त हो चुकी होती हैं और केवल आराम करना शेष रह जाता है । ऐसे समय यदि उन्हें जीवन निर्माण की शिक्षा दी जाय तो उनका मन-मस्तिष्क सुविधापूर्वक समझ, सीख तथा ग्रहण कर सकता है ।

इस गोष्ठी में परिवार की दैनिक समस्याओं पर विचार किया जाना चाहिये । किसको क्या असुविधा हुई अथवा किसने किसको क्या असुविधा पहुँचाई ? इस सबका लेखा-जोखा इस गोष्ठी में लिया जाना चाहिये । असुविधाग्रस्त परिजन की समस्या पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जाना चाहिये और यदि उसकी असुविधा वास्तविक है तो उसे दूर करने का प्रबन्ध किया जाना जरूरी है । शिकायतों तथा अभियोगों पर विचार होना चाहिये । इसके दो उद्देश्य होने चाहिये एक तो यह कि अभियुक्त यदि वास्तव में दोषी है तो उसकी भर्त्सना की जानी चाहिये और आगे के सुधार के लिए निर्देश दिये जाने चाहिये । साथ ही अभियुक्त को इस बात की शिक्षा दी जाये कि वह अपने में इतनी सहिष्णुता तथा क्षमाशीलता विकसित करे जिससे उसे कोई साधारण-सी बात इतनी बुरी न लगे कि उसे परिवार-परिषद में रखने की आवश्यकता पड़े । सबके लिए शोभनीय तथा उपयोग यही है कि किसी को शिकायत ही न हो । इससे आपस में प्रेम-भाव तथा

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समझदारी बढ़ती है । साथ ही क्षमाशीलता तथा सहिष्णुता का अभ्यास होता है जो कि जीवन-प्रगति के लिए महत्त्वपूर्ण गुण माने गये हैं ।

दूसरी बात परिवार-गोष्ठी के विचार-विवेचन में यह होनी चाहिए कि हर व्यक्ति यह बतलाये कि दिन भर किस-किस प्रकार के विचार अथवा भाव उसके मन-मस्तिष्क में उठते रहे । सबके विचार सुनकर उनकी विवेचना की जानी चाहिए कि उनका अमुक विचार उचित, उपयुक्त तथा उपयोगी है और अमुक विचार अनुचित तथा अहितकर है । अनुपयुक्त विचारों के त्याग और उपयुक्त विचारों के विकसित करने की प्रेरणा दी जानी चाहिए ।

इस परिवार गोष्ठी में परिवार की समस्याओं पर विचार किया जाना चाहिए । परिवार में किस-किस चीज की कमी है ? वह कमी क्यों है और कैसे पूरी की जा सकती है । इस पर सम्मिलित विचार किया जाना चाहिए और सभी के परामर्श तथा सुझाव लिए जाने चाहिए । इन समस्याओं में आय-व्यय के असन्तुलन की समस्या हो सकती है । आय कम है और व्यय ज्यादा है । सभी सदस्य इस बात पर सुझाव दें कि वे कौन-कौन-सी विधियाँ हो सकती हैं जिनसे आय-व्यय का सन्तुलन ठीक रखा जा सकता है । नियम के अनुसार सबसे पहले खर्च की मदों अथवा मात्रा की कमी पर विचार किया जाना चाहिए । तदुपरान्त उन विधियों पर विचार किया जाना चाहिए जिनसे परिवार की आय में वृद्धि की जा सकती है । सभी का परामर्श होने से यदि किन्हीं सदस्यों को अनावश्यक खर्च तथा सुविधाओं में कटौती की जायेगी तो वे अन्यथा अनुभव न करेंगे । आय बढ़ाने के लिए यदि परिवार के योग्य कुछ उद्योग बढ़ाना पड़ा तो सभी उसमें सहर्ष सहयोग करेंगे ।

इसी परिवार गोष्ठी में समाचार-पत्रों का पठन-पाठन होना चाहिए और विशेष-विशेष समाचारों की व्याख्या की जानी चाहिए । समाचारों के माध्यम से परिजनों को देश-देशान्तर की गतिविधियों का ज्ञान कराना चाहिए । इससे जब उनमें ज्ञान का विकास होगा तो उत्तरदायित्व का भाव भी बढ़ेगा । ज्ञानोपरान्त उत्तरदायी व्यक्ति छोटी-छोटी तथा तुच्छ बातों पर कलह नहीं करता, उसका दृष्टिकोण विशाल और हृदय उदार हो जाता है । समाचारों के माध्यम से उन्हें संसार की दुष्टताओं और कुटिलताओं से सावधान कराया जा सकता है और उनकी हानियों पर प्रकाश डाला जा सकता है । इससे उनमें व्यावहारिक योग्यता का विकास होगा ।

इसी परिवार-गोष्ठी में सत्साहित्य के अध्ययन की योजना रखी जा सकती है । चरित्र नायकों की जीवनियाँ सुनाकर उन्हें प्रेरणा दी जा सकती है । त्याग, बलिदान, निस्वार्थ सहायता, सहयोग, पारस्परिकता की कथाएँ सुनाकर उनमें गुणों का अभिवर्द्धन किया जा सकता है ।

इसी परिवार-गोष्ठी में उन्हें दैनिक तथा पारिवारिक कर्त्तव्यों का निर्देश दिया जा सकता है और किस के साथ क्या व्यवहार किया जाना चाहिए इसकी शिक्षा दी जा सकती है । साथ ही नित्य-प्रति उनकी दैनिकी सुनकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि किसका कितना विकास होता चल रहा है ।

परिवार-गोष्ठियों के प्रचलन को भी एक ऐसी ही मनोवैज्ञानिक प्रणाली माननी चाहिए, जिससे वर्तमान पारिवारिक बुराइयों को बदलकर सुनागरिक देने की स्थिति उत्पन्न की जा सकती है ।

प्राचीनकाल में स्वजनों के निर्माण के लिए उपयुक्त वातावरण अपने आप मिल जाता था । किन्तु अब, जब घरों में सदाचरण, आदर्शजीवन और चरित्र-निष्ठा का अभाव हो गया है, तब परिवार के कुछ विचारवान् व्यक्तियों को वातावरण बदलने के लिए यह पग उठाना आवश्यक है । कुछ बुद्धिमान और पढ़े-लिखे लोग गृह-संचालकों में निष्ठापूर्वक परिवार-गोष्ठियों का आयोजन करने लगें और गृहस्थ-जीवन को महान बनाने के लिये कटिबद्ध हो जायें तो दूसरे लोग भी उससे प्रेरित हुए बिना न रहेंगे । अच्छाइयों के प्रति आग्रह का भाव अभी भी लोगों में कम नहीं, केवल मार्गदर्शन की आवश्यकता बाकी है ।

कई बार कोई बात होती है, जिसे घर के आदमी संकोच, लज्जा, भय आदि कारणों से अभिभावकों के सम्मुख प्रकट नहीं करते और भीतर ही भीतर घुला करते हैं । किन्हीं को कोई शिकायत करनी होती है, पर उनकी बात सुनी नहीं जाती, इसलिये वे औरों से बुराई करते घूमते हैं । इन सब कारणों को दूर करने का माध्यम इसी परिवार-गोष्ठी को बनाया जा सकता है ? जिस किसी को कठिनाई या कष्ट हो, उसे दूर करने के लिये उदारतापूर्वक प्रयत्न किया जाय, किसी को मनोमालिन्य हो तो उनको प्रेमपूर्वक समझाना, सिखाना चाहिए ।

यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि आदर्श और सिद्धान्त कितने ही अच्छे क्यों न हों, उन्हें यदि किसी को बन्धनपूर्वक अपनाने के लिये कहा जायेगा तो उससे स्वभावतया कष्ट होगा और लोग किसी अच्छी बात को भी स्वीकार न करना चाहेंगे । परिवार में कोई समस्या आती है और उसका निर्णय किया जाता है तो वह निर्णय एक व्यक्ति के हित में होता है, दूसरे के विरोध में । प्रतिपक्षी ने भले ही गलती की हो, पर वह बुरा मान जायेगा । इसलिये अपनी बात को नम्र और मधुर शब्दों में दलीलों के द्वारा समझाया जाये । अच्छी बातों को भी समझाने में बहुत अधिक दबाव नहीं डालना चाहिए । झिड़कना या कटुशब्द कहना भी बुरा है । ऐसे अवसरों पर समझाने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि किसी बुराई की सीधी टीका करने की अपेक्षा उसे अप्रत्यक्ष रूप में कहा जाय । किसी में आलस्य का अवगुण हो तो निरालस्यता और श्रमशीलता के लाभ बताकर उसको रचनात्मक सुझाव दिये जायें । तम्बाकू पीना हानिकारक है, यह तो पीने वाला भी जानता है । आप तो उसे यह बताइये कि तम्बाकू

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

न पीने से क्या लाभ है ? व्यक्तिगत आक्षेप की बात हो तो भी जो उसका विरोधी गुण हो, उसकी व्याख्या करने से लोग को अपने निर्णय के पक्ष में किया जा सकता है, इससे अपनी बुराइयों को समझने का अवसर भी उन्हें अपने-आप मिल जाता है ।

इन गोष्ठियों में परिवार के आर्थिक सन्तुलन की चर्चा की जाय । आर्थिक संतुलन बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि घर के प्रत्येक सदस्य को आर्थिक स्थिति की पर्याप्त जानकारी रहे । पूरी जानकारी न होने से कभी-कभी लोग आय से अधिक खर्च के लिए पैसे माँगते हैं और खर्च का संतुलन ठीक नहीं रखते, इसलिए प्रतिदिन के आय-व्यय से लोगों को अवगत कराया जाता रहे । मासिक, त्रैमासिक या वार्षिक बजट बनाकर लोगों के सामने रखा जा सकता है । आवश्यक लेन-देन, खरीद-फरोख्त पर परस्पर चर्चा भी हो सकती है, राय ली जा सकती है ताकि किसी को यह कहने का अवसर न मिले कि अमुक कार्य हमारी इच्छा के विपरीत हुआ है ।

मनोरंजन-

परिजनों के सात्विक मनोरंजन की भी व्यवस्था होनी चाहिए । संगीत, गायन-वादन का कार्यक्रम रखा जा सकता है । मेले-ठेले घूमने लिवा ले जायें । कोई धार्मिक या सामाजिक चलचित्र दिखाये जायें तो उनसे कोई हानि नहीं होती । दर्शनीय स्थलों की ओर ले जाया जा सकता है । तीर्थ स्थानों का भ्रमण, अच्छे लोगों के सम्पर्क में कुछ दिन का समय बिताने का भी कार्यक्रम होना चाहिए ।

इन सब कार्यक्रमों का परिवार के सदस्य भावना और ईमानदारी के साथ पालन करें तो परिवार के पालन-पोषण के साथ उनकी बौद्धिक और चारित्रिक आवश्यकता की पूर्ति हो सकती है । परिजनों के निर्माण के लिए आवश्यक ज्ञान बढ़ाना, समय निकालना और कार्यक्रम बनाना हर गृहस्थ का परम धर्म-कर्त्तव्य है । सभ्य समाज की रचना का आधार यही है । सुख-समुन्नति तथा भौतिक समृद्धि और आत्म-कल्याण के मानवीय लक्ष्य को भी इसी तरह सरलतापूर्वक सम्पन्न किया जा सकता है ।

कथा माध्यम से परामर्श दें

परिवार-शिक्षण की दृष्टि से घर के बड़े यह परम्परा आरम्भ कर सकते हैं कि दिन भर की काम-काजी, बात-चीत के समय-समय पर हलके-फुलके ढंग से यह परामर्श देते रहें कि इस कार्य को किस तरह अच्छी तरह किया जा सकता है । इसमें सिद्धान्त और व्यवहार दोनों का जिक्र किया जाय । लड़की यदि आँगन में बुहारी लगा रही है और वह उस कार्य को ठीक तरह कर नहीं पा रही है तो उसे अच्छी तरह सफाई करके दिखानी चाहिए और बताया जाना चाहिए कि भूल कहाँ होती है और उसे दूर करके अच्छी सफाई करने का सिद्धान्त और तरीका क्या है ? इसी प्रकार बच्चों द्वारा किये जाने वाले कामों को किस प्रकार अधिक सुन्दर ढंग से किया जा सकता है, बड़ों को इसका मार्गदर्शन व्यावहारिक और सैद्धान्तिक दोनों ही रीति से करते रहना चाहिए । कार्यों की तरह ही विचार भी प्रकट होते रहते हैं । इस ओर भी ध्यान जाना चाहिए कि कौन किस सम्बन्ध में क्या सोचता है और उसके सोचने में कितना औचित्य तथा कितना अनौचित्य मिला हुआ है ? परामर्श इस सम्बन्ध में भी दिया जाना चाहिए ।

इस सन्दर्भ में एक विशेष बात ध्यान में रखनी चाहिए कि सुधार का परामर्श देना बहुत ही टेड़ी खीर है । इसमें दूसरे को अपना अपमान अनुभव हो सकता है, उसके स्वाभिमान को ठेस लग सकती है । आमतौर से यह सहन नहीं होता । गलती बताने वाले को निन्दक, विद्वेषी, सनकी आदि कहा जाता है और किसी को उलटे-सीधे तर्क का सहारा लेकर उस परामर्श की काट की जाती है । अशिष्ट लोग मुँहजोरी करने लगते हैं और शिष्ट मुख से तो कुछ नहीं कहते, पर व्यवहार में उपेक्षा एवं अवज्ञा बरतकर अपना विरोध प्रकट करते हैं । दोनों ही परिस्थितियों में बात एक ही सिद्ध होती है कि परामर्शदाता के मार्गदर्शन को अस्वीकार कर दिया गया ।

ऐसे प्रसंगों में खीजने और बुरा मानने की अपेक्षा यह देखना चाहिए कि सत्परामर्श और उपयोगी शिक्षण की भी अवज्ञा क्यों हो रही है ? होता यह है कि परामर्श के साथ-साथ भर्त्सना, कटुता, तिरस्कार एवं मूर्ख, अनाड़ी सिद्ध करने वाले भावभंगिमा तथा शब्दावली का पुट लग जाता है और सुनने वाले को उतना अंश ही तिलमिला देता है । एक गिलास दूध में एक मक्खी पड़ जाने से सारा दूध अपेय बन जाता है । ठीक इसी प्रकार सत्परामर्श के साथ तिरस्कार, अपमान, कटु शब्दों का समावेश कर दिया जाय, अपना अहंकार और दूसरे को मूर्ख ठहराया जाय तो इतने भर से भारी बात बिगड़ जाती है और गुड़ को गोबर में बदलते देर नहीं लगती ।

परामर्शदाता की भूमिका निभाने से पूर्व वाणी की यह कलाकारिता सीखी जानी चाहिए कि जिस तरह दूसरे के सम्मान, स्वाभिमान की रक्षा करते हुए-उसे खिजाने नहीं, प्रोत्साहित करने के ढंग से अभीष्ट शिक्षा किस प्रकार दी जा सकती है । जो किया जा रहा है, उसमें जितना भ्रम हुआ है, जितना उत्साह दिखाया गया है उतने अंश की पहले प्रशंसा की जानी चाहिए; इसके बाद जो कमी रही है उसकी भूल का उल्लेख न करते हुये यह बताया जाना चाहिए कि उस कार्य को और भी अधिक कुशलता, सुन्दरता एवं सफलता के साथ किस प्रकार किया जा सकता है । खण्डनपरक चर्चा हर प्रसंग में हानिकारक होती है । समीक्षा करनी टेड़ी खीर है । उसे कोई बिरले ही गले उतार पाते हैं और बिरले ही सन्तुलित ढंग से उसे कर पाते हैं । आमतौर से समीक्षा कटुता एवं मनोमालिन्य का रूप धारण कर लेती है । इससे दुःखी होकर यह सोचा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाने लगता है कि ''बुरा जमाना आ गया, लोग ढीठ हो गये, सत्परामर्श सुनने को कोई तैयार नहीं-ऐसी दशा में आँखों पर पट्टी और मुख पर ताला लगाये रहना ही उचित है ।''

यहाँ समझने की बात इतनी है कि कडुवी कुनैन खाने के लिए प्रौढ़ और दूरदर्शी व्यक्ति ही तैयार हो सकते हैं, बच्चे उसे खाने को रजामंद नहीं होंगे । खाने के लिए जोर दिया जाय तो वे उसे फेंक-फाँक देंगे और खाने का बहाना बना देंगे । उन्हें खिलाना हो तो चीनी की परत चढ़ाकर गले उतारने की व्यवस्था बना सकते हैं । हमें यही मानकर चलना चाहिए कि भर्त्सना भरा पमरार्श किसी को भी स्वीकार नहीं हो सकता । ऐसी समीक्षा से किसी को सहमत करना कठिन है; जिसमें उसकी मूर्खता सिद्ध की गई हो ।

समीक्षा किए बिना, परामर्श दिए बिना सुधार सम्भव नहीं । अपने आप अपनी गलती ढूँढ़ लेने और सुधार लेने वाले तो सन्त होते हैं, सामान्य मनुष्य नहीं, उन्हें सँभालने, सुधारने और दिशा देने की आवश्यकता रहेगी ही । इसलिए मध्यवर्ती सन्तुलित मार्ग निकालना चाहिए और प्रशंसायुक्त निन्दा करने की कला सीखनी चाहिए । जिसे परामर्श दिया जा रहा है उसे अपने और उसके बीच घनिष्ट आत्मीयता और गहरी सद्भावना का विश्वास भी दिलाते रहना चाहिये । समीक्षक के प्रति निन्दक और द्वेषी होने की आशंका जगती है । अस्तु, उसे निरस्त करने के लिए परामर्श देने से पूर्व अपनी सद्भाव सम्पन्न घनिष्टता का विश्वास किसी न किसी रूप में अवश्य ही स्मरण करा देना चाहिए । हर काम में कुछ न कुछ श्रम और मनोयोग लगा ही होता है, उतने की प्रशंसा किये बिना समीक्षा की शुरूआत कभी नहीं करनी चाहिए । जो गलती रही है, उससे होने वाली हानि को प्रधानता न देकर उस कल्पना चित्र में रंग भरना चाहिए जो सुधार होने पर सुखद सम्भावना सामने आने की आशा जगाता है । वर्तमान भूल से होने वाले चर्चा परामर्श के अन्त में और हलके ढंग से करनी चाहिए ताकि उसे अभीष्ट जानकारी मिलने और सँभलने की सर्तकता तो जग जाय, पर यह अनुभव न हो कि उसे तिरस्कृत किया जा रहा है । जिन परिस्थितियों में भूल होती है, दोषी तो उन परिस्थितियों को बता देने से भी काम बन जाता है ।

परामर्शदाता का उद्देश्य निन्दा करना या जी दुःखाना तो होता नहीं; वह सुधार ही तो चाहता है । इस प्रयोजन के लिए व्यक्ति की निन्दा करने की अपेक्षा परिस्थितियों का दोष कह देने से भी काम चल सकता है । इसमें मानापमान का झंझट भी नहीं रहता, साथ ही परोक्ष रूप से असावधानी की भर्त्सना भी हो जाती है । मंतव्य इतने भर से हल हो सकता है ।

जिन्हें अपना घर-परिवार सँभालना हो उन्हें सभी सदस्यों को पग-पग पर तो नहीं, पर अवसर देखकर भूलों के लिए टोकने और अधिक अच्छा करने का उपाय बताने की प्रक्रिया अनवरत रूप से जारी रखनी चाहिए । व्यक्ति एवं परिवार की तरह यही रीति-नीति समाज सुधार के क्षेत्र में भी प्रयुक्त होनी चाहिए और प्रत्येक शुभाकांक्षी को सत्परामर्श देने का प्रयास निरन्तर जारी रखना चाहिए । यह प्रयत्न किस चट्टान से टकराकर टूटते हैं ? जो इसे जान लेगा वह सामने वाले के सम्मान, अपमान का, सम्वेदनाओं का समुचित ध्यान रखे रहेगा । फलतः उसका तीर ठीक निशाने पर बैठता रहेगा और यह शिकायत करने का कोई कारण न रहेगा कि लोग सत्पमरार्श भी सुनने-मानने को तैयार नहीं हैं ।

इसके लिए परिवार गोष्ठी में कथा, कहानियाँ सुनाने की प्रक्रिया चलाई जाय । बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सभी नर-नारी कथा प्रसंगों को बड़े चाव के साथ सुनते हैं । परिवार कथा माध्यम से श्रेष्ठतम सिद्धान्तों को सुगमतम ढंग से परिजनों के गले उतारा जा सकता है । विवेकपूर्वक कार्य किया जाय तो पौराणिक कथाएँ भी इसके लिये बड़ी उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं ।

किन्तु ध्यान रखने योग्य तथ्य यह भी है कि यदि पुराणों को महत्त्व देना हो तो एक सिरे से उनका वाचन अन्धाधुन्ध नहीं होना चाहिए । उनमें से उपयोगी अंश ढूँढ़े और उभारे जाने चाहिए । इन ग्रन्थों में ऐसी चर्चाएँ भी कम नहीं जो आज की स्थिति में न केवल निरर्थक हैं वरन् ऐसे कई बार तो अनर्थ का भी समर्थन करती हैं । अस्तु, यह नितान्त आवश्यक है कि पुराण, ग्रन्थों को पहले स्वयं पढ़ लिया जाय और उनमें से केवल उपयुक्त शिक्षा देने वाले प्रसंगों को छाँटकर ही सुनाया जाय ।

इतिहास में ऐसे प्रेरक घटनाचक्र असंख्य हैं जो मानव जीवन के विविध पक्षों पर प्रकाश डालते हैं और अवांछनीयताओं की हानि तथा सन्मार्ग पर चलने के लाभ सिद्ध करते हैं । ऐसे कथा-प्रसंगों पर अनेक प्रेरणाप्रद पुस्तकें बाजार में, पुस्तकालयों में मिल जाती हैं । कल्पित कहानियों एवं उपन्यासों की तो कमी नहीं है । अपने 'युग-निर्माण' मासिक पत्रिका इसी प्रकार की पाठ्य सामग्री से भरी रहती है ।

ज्ञान-चर्चा गोष्ठी में इसी प्रकार का कथा साहित्य सुनाया जाया करे । इसमें सम्मिलित होने के लिए न आग्रह करना पड़ेगा और न समझाने, दबाव डालने की आवश्यकता पड़ेगी । बाल-वृद्ध, नर-नारी सभी उसमें उपस्थित होने के लिए स्वयं ही उत्सुक रहेंगे और कोई यह अनुभव न करेगा कि यह उपदेश प्रवचन का रूखा विषय है और उसे सुधारने, सँभालने के लिए ही सारा संरजाम खड़ा किया गया है । परोक्ष शिक्षा जितनी सफल होती है उतनी प्रत्यक्ष निर्देश की शैली नहीं । कथा-प्रसंगों का यह उपक्रम वस्तुतः परिवार के लोगों की मनोभूमि एवं चिन्तन दिशा परिष्कृत करने के लिये बहुत सरल, सरस और सफल माध्यम है । इसे हर परिवार में आरम्भ किया जाना चाहिए ।

'नानी की कहानी' वाली बात अभी भी मुहावरों में आती है । दादी या नानी के जिम्मे एक काम यह भी होता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

था कि वे बच्चों को कहानियाँ सुनायें । बच्चे उन्हें घेरकर बैठ जाते थे और वे बड़ी हँसी-खुशी के वातावरण में शिक्षा और मनोरंजन का समन्वय करते हुए कहानियाँ कहती थीं । न केवल बालक वरन् पूरा परिवार उन्हें चावपूर्वक सुनता था । चौपालों पर भी बड़े-बूढ़े सिंहासन बत्तीसी, वेताल पच्चीसी, बीरबल विनोद, आल्ह-खण्ड एवं कथा-पुराणों के प्रसंग सुनाते थे और उन्हें सुनने के लिए बड़ी संख्या में छोटे-बड़े उपस्थित होते थे । अब मनोरंजन के दूसरे साधन बन गये-व्यस्तता बढ़ गई और आलस्य छा गया-ऐसी दशा में वह कहानियों वाला प्रचलन भी बन्द हो गया । रामायण की कथा रात्रि को मुहल्ले-मुहल्ले में होती थी और सुनने के लिए उस क्षेत्र के बहुत लोग इकट्ठे होते थे, इस प्रचलन से ज्ञानवृद्धि और मनोरंजन का दुहरा लाभ है । यह दोनों ही ऐसे हैं जिन्हें निरर्थक नहीं कहा जा सकता । सामूहिकता की प्रवृत्ति घटने और वैयक्तिकता बढ़ने से इस दिशा में शिथिलता बढ़ती जाती है । यह चिन्ता की बात है ।

इसी प्रचलन को अब नये सिरे से हमारे घरों में आरम्भ किया जाना चाहिए । पुराने लोग पुस्तकों के तथा शिक्षा के अभाव में कहानियाँ जबानी याद रखते थे । अब वैसी आवश्यकता नहीं रही । इस उद्देश्य को पूरा कर सकने वाली ढेरों पुस्तकें बाजार में उपलब्ध हैं । मुहल्ले का पुस्तकालय इस आवश्यकता की पूर्ति कर सकता है । हर घर में नई-नई पुस्तकें खरीदते रहना तो कठिन पड़ेगा, पर एक मुहल्ले में एक छोटा पुस्तकालय इस प्रयोजन के लिए लाभदायक हो सकता है और उससे अदल-बदलकर प्रत्येक परिवार पुस्तकें प्राप्त करने, सुनने, वापस करने का सिलसिला चल सकता है । एक ही जगह खरीदी हुई पुस्तकों से पूरे मुहल्ले का काम चल सकता है ।

घर का कोई उत्साही सदस्य इस कार्य को अपने कन्धे पर ले सकता है । बदल-बदल कर कई व्यक्ति भी इसे पूरा करते रह सकते हैं । कहने वाले की वक्तृत्व कला का अभ्यास होगा और मनोरंजन की एक उत्साहवर्द्धक परिपाटी चल पड़ेगी । अपने कहानी कहने वाली की एक विशेष पद्धति यह होनी चाहिए कि कहानी के हर मोड़ पर एक छोटी समीक्षात्मक-विवेचनात्मक टिप्पणी अपनी ओर से लगाते चलें । जिससे उसी में से कितनी ही प्रकार के निष्कर्ष निकालते रहें और नई-नई दिशाओं, प्रेरणाओं तथा भाव सम्वेदनाओं का लाभ मिलता रहे । यह शैली मासिक 'युग निर्माण योजना' द्वारा भली प्रकार सीखी जा सकती है । कितने ही छोटे-छोटे जीवन चरित्र तथा कुछ और भी पुस्तकें इस प्रयोजन के लिए छपी हैं । उनकी लेखन शैली यही है कि ऐतिहासिक प्रसंगों एवं जीवन वृतान्तों को टिप्पणी समेत प्रस्तुत किया जाय । हर व्यक्ति निष्कर्ष नहीं निकाल सकता । कथाओं में हर मोड़ पर कुछ समझने योग्य तथ्य दिए होते हैं इन्हें उभारा जा सके तो उससे सुनने वालों की अन्तःचेतना नई-नई अनुभूतियों से लाभान्वित होती रह सकती हैं । परिवार शिक्षण का यह बहुत ही अच्छा तरीका है ।

जिन सत्प्रवृत्तियों को घर के लोगों में उगाया, जगाया जाना आवश्यक है उनके लिए सीधा उपदेश देने की अपेक्षा कथा माध्यम से परोक्ष रूप में गले उतारना अधिक श्रेयस्कर है । सीधी शिक्षाएँ रोज-रोज नहीं दी जा सकतीं । इससे ऊबने और खीजने लगने का खतरा है, पर कथा माध्यम से तो हर दिन उसी तथ्य को पुष्ट किया जाता रहे तो भी हर्ज नहीं । उन्हें हर दिन उसी उत्साह और चाव के साथ सुना जा सकता है ।

अपने परिवार में जिन वृत्तियों की कमी दिखाई पड़ती है-जिन्हें बढ़ाया जाना आवश्यक है । उसी स्तर की कहानियों का चुनाव करते रहने से, कहने की शैली निखारते रहने से परिवार शिक्षण का काम भली प्रकार चलता रह सकता है ।

आवश्यक नहीं कि हर दिन कहानियाँ ही सुनाई जायें । समाचार-पत्रों की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ, भजन-कीर्तन, रामायण-कथा, पहेलियाँ, प्रश्नोत्तर जैसे कई आधार समय-समय पर बदले जाते रह सकते हैं । जिस घर में इन माध्यमों से जो अधिक पसन्द किया जाय वहाँ उसकी प्रधानता रखी जा सकती है ।

विचार परिष्कार की, दृष्टिकोण विकसित करने की, आदर्शवादी उमंगें उत्पन्न करने की दृष्टि से रात्रि को कहानियाँ कहने का प्रचलन देखने में छोटा किन्तु परिणाम में बहुत ही बड़ा सिद्ध हो सकता है । इस अति प्राचीन किन्तु अति नवीन परम्परा को पुनर्जीवित करने के लिए हमें नये सिरे से प्रयत्न आरम्भ करना चाहिए । परिवार-निर्माण में जहाँ भी रुचि हो वहाँ यह नया प्रयोग-परीक्षण आरम्भ किया जाना चाहिए और निज के अनुभव से यह देखना चाहिए कि यह छोटा-सा शुभारम्भ कितना बढ़ा-चढ़ा सत्परिणाम प्रस्तुत करता है ।

परिवार निर्माण में कथा पुराणों का योगदान

परिवार में अनेक सम्बन्ध होते हैं-पति-पत्नी, माता-पिता, पुत्र-पुत्री, भाई-भाई, भाई-बहिन, देवर-भाभी, देवरानी-जिठानी, नन्द-भाभी आदि के इन सम्बन्धों में मधुरता बरसती रहे तो परिवार में सुख-शान्ति स्थिर रहती है और सभी स्वर्गीय जीवन का उपभोग करते हैं । यदि किसी कारणवश आपस में कटुता आ जाये तो आए दिन लड़ाई-झगड़े होते रहते हैं और वह परिवार एक नरक की तरह दृष्टिगोचर होने लगता है ।

पारिवारिक सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाने वाले और सुख-शांति को बनाये रखने वाले अमूल्य-सूत्र यह हैं कि माता-पिता और परिवार के अन्य बड़ों के प्रति पुत्र-पुत्री व बहू आदर की दृष्टि से देखें, उनका यथोचित सम्मान करें, उन्हें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देवरूप मानें, नित्य उनके चरण-स्पर्श करें, उनकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करें, उनकी सेवा करें और आशीर्वाद लें, सभी सदस्य 'आप पहले' की उत्तम नीति को अपना आदर्श बनायें, अपने से पहले परिवार के अन्य सदस्यों के सम्बन्ध में सोचें, भोजन, वस्त्र व अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति में दूसरों को प्राथमिकता देने का प्रस्ताव रखें, अपनी स्वार्थपरता के लिए दूसरों के अधिकारों का हनन न करें, बड़ा भाई छोटे भाई-बहिनों को पिता के अभाव में अपने ही पुत्र, पुत्री के समान समझे, उनकी पत्नी भी सबसे ऐसा व्यवहार करे । पत्नी अपने पति को देवरूप मानकर उसकी पूजा करे, आज्ञा का पालन करे, पति की किसी बात का विरोध न करे, वह कभी कोई कटु बात कह भी दे, तो उसे सहन कर ले, भाई-भाई अपने को परिवार का एक अभिन्न अंग मानें और दूसरों से अपने स्वार्थों को अलग न समझें । साथ-साथ रहें, साथ-साथ कार्य करें । बहू सेवाभावी हो, आज्ञाकारी हो, सहनशील हो, सास-ससुर, देवर-देवरानी, जेठानी आदि के सम्बन्ध में अपने पति के कान न भरती रहें, सबको अपने मधुर व प्रिय व्यवहार से आकर्षित करे, माता-पिता अपनी सन्तान के प्रति जागरूक रहें, उनकी भौतिक प्रगति के साधन उपलब्ध करना ही उनके जीवन का उद्देश्य नहीं है । उन्हें एक अच्छा नागरिक और मनुष्य बनाना ही वास्तविक लक्ष्य होना चाहिए ।

परिवार के प्रत्येक सदस्य में यदि दूसरों के प्रति तप, त्याग और बलिदान की पवित्र भावना विद्यमान रहती है तो कोई कारण नहीं कि उस परिवार में स्वर्गीय जीवन की अनुभूति न होती हो । पुराणों ने इस कार्य को बड़ी तत्परता से किया है । पग-पग पर इन्होंने परिवार के हर सदस्य के दूसरों के प्रति आवश्यक कर्त्तव्यों का सुन्दरता से प्रतिपादन किया है । ऐसे आदर्श उदाहरण कथाओं के माध्यम से दिए गये हैं जो इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य हैं और भारतवर्ष के अतिरिक्त अन्य किसी देश के इतिहास में ऐसे आदर्श उदाहरण देखने-सुनने को नहीं मिलते तभी तो उन उच्च सिद्धान्तों के आदर्शों का प्रतिपादन करने वाले इन ग्रन्थों को विश्वव्यापी ख्याति प्राप्त है । विदेशियों ने इन पर खोजें की हैं, विदेशी भाषाओं में इनका अनुवाद हुआ है । टिप्पणियाँ लिखी गई हैं, विस्तृत लेख लिखे गये हैं । कारण स्पष्ट है, पारिवारिक जीवन की जटिल समस्याओं को सुलभ रूप से सुलझा देना ही इनकी विशेषता है । पुराण की कथाओं को अपना आदर्श मानने वाले परिवार में कभी कलह, क्लेश होना सम्भव नहीं है ।

आज्ञाकारी पुत्र के रूप में राम, श्रवणकुमार, भीष्म, नचिकेता आदि के उज्ज्वल उदाहरण हमारे सामने हैं । राम ने पिता की आज्ञा को मानकर राज्य का त्याग किया और १४ वर्षों तक वनों की भीषण कठिनाइयों को सहन किया, श्रवणकुमार ने अपने अन्धे माता-पिता को काँवर में बिठाकर तीर्थयात्रा कराई, भीष्म ने पिता की प्रसन्नता और अपने राज्याधिकार को तिलांजलि दी, पिता के दान करने पर नचिकेता प्रसन्नता से यमपुर गये । आज ऐसे पुत्र ढूँढ़े नहीं मिलते और माता-पिता के प्रति घोर उपेक्षा हो रही है ।

भाई-भाई के आदर्श सम्बन्धों के लिए राम, लक्ष्मण और भरत के नाम सर्वप्रथम हमारे सामने आते हैं । एक-दूसरे के प्रति त्याग की भावना से भ्रातृ-प्रेम जग पाया है । कौरव सदैव से पाण्डवों के विरोधी रहे थे परन्तु जब यक्षों ने कौरवों को बन्दी बनाया तो युधिष्ठिर ने उन्हें छुड़वाया था । पुष्कर के दुर्व्यवहार को भुलाकर राजा नल ने अपने भाई को क्षमा कर दिया था । आज घर-घर में, भाई-भाई में कटुता दिखाई देती है, बँटवारे होते हैं । संघर्ष होते हैं, आपसी सम्बन्धों का विच्छेद होता है, साथ-साथ रहने की भावना धूमिल हो गई है ।

पुराणों में वर्णित दाम्पत्य जीवन की कथाओं की पुनरावृत्ति सारे विश्व में सम्भव नहीं है । राजमहलों में भोग-विलास का जीवन व्यतीत करने वाली सीता अपने पति की कठिनाइयों को सरल करने के लिए घोर दुःखों को स्वयं निमन्त्रण देती है और उसी में अपना सौभाग्य मानती है । गान्धारी को जब पता चला कि उसके भावी पति प्रज्ञाचक्षु हैं तो उसने भी अपने नेत्रों पर पट्टी बाँध ली । उसने सोचा जब मेरे पतिदेव खुले नेत्रों से इस जड़ जगत को निहार नहीं सकते तो मुझे तो इसे देखने का कोई अधिकार नहीं है । सावित्री जानती थी कि वह एक वर्ष के बाद विधवा हो जायेगी । परन्तु एक बार उसने अपना पति वरण कर लिया तो वह जन्म-जन्मान्तरों के लिए उसका आराध्य हो गया । यमराज भी उसकी धारणा को बदलने में असफल रहे ।

द्रौपदी का जीवन सुख और सौभाग्य से ओत-प्रोत था, क्योंकि वह अपने पतियों को अपने कुशल व्यवहार से सन्तुष्ट रखना जानती थी । महासती अनुसूया, शैव्या, दमयन्ती, सुकन्या आदि के जीवन आज भी हमारे लिए आदर्श बने हुए हैं । वैज्ञानिक युग की पत्नी समानधिकार माँगती है और स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करना चाहती है, वह किसी प्रकार के भी अंकुश के विरोध में है तभी ऐसी घिनौनी घटनाएँ सामने आ रही हैं, जिन पर मानवता रोती है और असुरता खिल-खिलाकर उपहास करती है ।

पुराणों में मदालसा जैसी आदर्श माताओं के जीवन चरित्र विस्तार से दिए हैं जिन्होंने अपने बच्चों को लोरियाँ देते हुए आत्मज्ञान का उपदेश दिया है । ऐसी जागरूक माताएँ ही अपने सन्तान का सच्च पथ प्रदर्शन कर सकती हैं । आज की माताएँ तो अपने बच्चों को सुखी, भौतिक जीवन की तो शिक्षा दे सकती हैं । धर्म, सदाचार, संयम, आत्मज्ञान की शिक्षायें तो उनके लिए अनावश्यक मानी जाती हैं ।

सीता एक आदर्श बहू थी जिसने सास को अपनी माता समझकर उनकी हर आज्ञा का पालन किया । कौशल्या ने सीता को अपनी पुत्री समझकर उसे मातृत्व स्नेह प्रदान किया । व्यास ने अपने पुत्र शुकदेव को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मज्ञानी बनाया । बड़े होने पर जब स्वयं शिक्षा देना उचित नहीं समझा तो ब्रह्मज्ञानी राजा जनक के पास भेज दिया ।

पुराणकारों ने परिवार निर्माण की ओर विशेष ध्यान दिया है । परिवार निर्माण के अमूल्य सूत्रों को उन्होंने माला की तरह पिरो दिया है और तत्सम्बन्धी चरित्रों का चित्रण इस ढंग से किया है कि पाठक व श्रोता के मन में भाव तरंगें उछलने लगती हैं कि काश ! मैं भी ऐसा ही उदाहरण प्रस्तुत कर सकता । पारिवारिक जीवन के आदर्शों को प्रेरित और प्रोत्साहित करने में पुराणकार बहुत अंशों में सफल हुए हैं ।

परिवार निर्माण की सुखद सम्भावनाएँ

मनुष्य को इस सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहा जाता है । यह है भी इस विश्व-वसुधा का राजकुमार, परमात्मा का ज्येष्ठ पुत्र । वे कौन-सी विशेषताएँ हैं जिनके कारण मनुष्य को यह गौरव मिला है ? भाषा, जिसके माध्यम से वह अपने आप अन्य लोगों के सामने व्यक्त कर लेता है । परन्तु अन्य प्राणी भी अपनी भाषा में एक दूसरे से भाव व्यक्त कर अपना काम चला लेते हैं । भले ही उनकी अभिव्यक्ति की सीमा सीमित हो, परन्तु उसके बिना उनका कोई काम नहीं हो सकता तो फिर क्या बुद्धि की विलक्षणता वह विशेषता है जिसके कारण उसे अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ होने का गौरव मिला है । अन्य प्राणियों में बौद्धिक विलक्षणता के ऐसे-ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि उन्हें देखकर दाँतों तले अँगुली दबा लेनी पड़ती है । मनुष्यों की बौद्धिक क्षमता तो फिर भी अन्य लोगों से सीखी गई, विरासत से प्राप्त हुई होती है, पशु-पक्षियों और मानवेतर प्राणियों को कहाँ वैसी सुविधा प्राप्त होती है फिर भी कई बार उनमें मनुष्यों को भी हतप्रभ कर देने वाली विलक्षण बुद्धि देखी जाती है । मनुष्य के पास वैसा शरीर भी नहीं है कि वह दूसरे सभी प्राणियों से इक्कीस सिद्ध हो ।

शारीरिक बल की दृष्टि से तो मनुष्य दूसरे अन्य कई प्राणियों से कमजोर है ही । शरीर की मूल प्रवृत्तियाँ भी कोई भिन्न नहीं हैं कि उनके कारण वह श्रेष्ठ कहा जा सके । भूख, प्यास, नींद, प्रजनन आदि की मूल प्रवृत्तियों की दृष्टि से मनुष्य और अन्य प्राणियों में कोई अन्तर नहीं दिखाई देता । मनुष्य को अन्य प्राणियों के समान भूख लगती है, उसे भी प्यास सताती है, वह भी अन्य प्राणियों के समान सन्तानोत्पादन करता है, ये सब प्रवृत्तियाँ मनुष्यों और अन्य प्राणियों में समान होती हैं । अन्तर होता है तो केवल इतना कि मनुष्य के क्रियाकलापों में सुघड़ता होती है । अन्य प्राणियों के क्रियाकलापों में अनगढ़ता, ज्यों-त्यों कर लेने की हड़बड़ाहट होती है ।

यह सुघड़ता तब से आरम्भ हुई, मनुष्य ने अपने क्रियाकलापों, आचरणों और व्यवहारों को जब से संस्कारित करना आरम्भ किया, तभी से वह अन्य प्राणियों की पंक्ति में उठकर आगे बढ़ सका । उस संस्कारित करने की प्रक्रिया के साथ ही मानव-सभ्यता का आरम्भ हुआ और उसने संस्कृति की यात्रा पर पग बढ़ाए । इस जाग्रति ने मनुष्य जाति को समग्र रूप से सभ्य और सुसंस्कृत बनाया । आज भी कई क्षेत्रों में आदिवासी पिछड़े लोग सभ्यता की दृष्टि से काफी पीछे हैं । इसका कारण यही है कि वे सभ्यता के विकास में अन्य समुदायों के साथ कदम से कदम मिलाकर न चल सके ।

इस सभ्यता के विकास से जहाँ मनुष्य समाज ऊँचा उठा, वहीं एक दूसरा पक्ष भी है जिसके कारण मनुष्य अन्य प्राणियों से ही नहीं अन्य लोगों से भिन्न होता है । शरीर का आकार-प्रकार, दुबला-पतला, मोटा-छोटा, लम्बा-नाटा होना नहीं, मनुष्यों में ही भिन्नता होने का कारण उनका अपना व्यक्तित्व है और इस व्यक्तित्व के आधार पर ही वह अन्य प्राणियों और मनुष्यों से श्रेष्ठ या निकृष्ट बनता है ।

यह व्यक्तित्व ही मनुष्य की मूल सम्पदा है । इसकी श्रेष्ठता और निष्कृटता के आधार पर ही किसी व्यक्ति को श्रेष्ठ या निकृष्ट होना निर्भर है । प्रश्न उठता है कि यह व्यक्तित्व क्या है ? मनुष्य जो दिखाई देता है, आचरण, रहन-सहन व बोल-चाल और व्यवहार का जैसा जो कुछ प्रभाव छोड़ता है क्या वही व्यक्तित्व है ? इसका उत्तर निश्चित ही 'नहीं' में है । व्यक्तित्व में ये सब बातें समाहित तो हैं पर वह इन सबके जोड़ से भी ऊपर बहुत कुछ भिन्न है । आँख से देखने पर तो व्यक्तित्व शरीर की बनावट, आकर्षक साज-सज्जा, आकर्षक चाल-ढाल और शिष्टाचार का अवलम्बित दीखता है, पर परख की दृष्टि जब गहराई में प्रवेश करती है तो गुण, कर्म, स्वभाव का दृष्टिकोण एवं चरित्र का समुच्चय ही व्यक्तित्व की कसौटी बन जाता है । सम्मानित और तिरस्कृत, समुन्नत और पतित, प्रखर और पिछड़े लोगों के बीच पाया जाने वाला अन्तर तो परिस्थितिजन्य दीखता है, पर वस्तुतः यह विभेद अन्तस्थिति का होता है । वह अन्तःस्थिति जो मान्यता, अभिरुचि और आदत के रूप में समूचे अन्तराल पर कब्जा जमाये बैठी है । अन्तःक्षेत्र से उठने वाली सुगन्ध अथवा दुर्गन्ध ही समीपवर्ती वातावरण को उल्लसित एवं कलुषित बनाती है । अन्तराल ही बाह्य जगत में प्रतिबिम्बित होता है और स्वर्गीय एवं नारकीय प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करता है । अपना ही स्वभाव समीपवर्ती लोगों के साथ सहयोग एवं विग्रह के अवसर रचना और इन्हें चित्र-विचित्र घटनाक्रमों के रूप में सामने ला खड़ा करता है ।

जीवन का सबसे बड़ा उपार्जन एवं वैभव परिष्कृत व्यक्तित्व ही है । पग-पग पर मानवी अनुदानों और दैवी वरदानों के उपहार बरसाने वाला सौभाग्य और कुछ नहीं मनुष्य का स्वउपार्जित व्यक्तित्व ही है । कोई किसी को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यदि वस्तुत: कोई ठोस अनुदान दे सकता है तो वह एक ही अनुग्रह है कि व्यक्तित्व को परिष्कृत करने में सहायता की जाय । अन्य सम्पदाएँ ऐसी हैं जिन्हें कोई किसी को कितने ही बड़े परिमाण में देकर भी वास्तविक हित साधन नहीं कर सकता । उत्तराधिकार में मिले धन का कितने लोग सदुपयोग कर पाते हैं ? कितने उसे देर तक सुरक्षित रखते हैं और कितने हैं जो बिना परिश्रम के मिली हुई कमाई से उत्पन्न होने वाली दुष्प्रवृत्तियों से अपने को बचा पाते हैं । उपकार वही सार्थक है जो व्यक्तित्व को विकसित करने की सहायता के रूप में लिया या दिया जा सके । अनुग्रह वही धन्य है जो प्रखरता और प्रतिभा निखारने में सहयोग प्रदान करे । सौभाग्यशाली वे हैं जिन्होंने सुसंस्कृत लोगों का सान्निध्य पाया अन्यथा आदान-प्रदान तो इस दुनिया में चलते ही रहते हैं । कई बार तो साथियों द्वारा छूत की बीमारियों की तरह ऐसी बुरी आदतें भी लाद दी जाती हैं जो सर्वनाशी पतन-पराभव का दु:ख-दारिद्र का कारण बनी हुई मरणपर्यन्त त्रास देती रहती हैं । कई बार अनावश्यक अनुग्रह भी अभिशाप की तरह भारभूत और कष्टकारक सिद्ध होते हैं । बाजार में आदान-प्रदान ही तो होता है । यह एक विनिमय व्यवस्था भर है । लेन-देन की सौदागरी उपयोगी तो है पर इसमें ऐसा कुछ नहीं है जिसके लिए अनुग्रह अनुभव किया जाय या कृतज्ञ हुआ जाय ।

सुसंस्कारिता जिसे मिली उसने वह सब कुछ पा लिया जिसे पाकर मनुष्य जीवन का अमृतोपम रसास्वादन करने का अवसर मिलता है । आध्यात्मिकता, दृष्टिकोण की उत्कृष्टता और धार्मिकता व्यवहार की शालीनता को ही कहते हैं । शब्दों की ऊँचाई से किसी रहस्यवादी कल्पना में भटकने की आवश्यकता नहीं है । जिन भौतिक सिद्धियों का और आध्यात्मिक ऋद्धियों का वर्णन चमत्कारी एवं अलंकारिक भाषा में किया गया है वे समस्त विभूतियाँ मात्र सुसंस्कारिता की ही देन हैं । समुन्नत, सम्मानित और समृद्ध जीवन वस्तुत: सुसंस्कारों के कल्पवृक्ष का ही फलता-फूलता स्वरूप है ।

अपने युग की सबसे बड़ी आवश्यकता भी सुसंस्कृत व्यक्तियों की है, कहना चाहिए सुसंस्कारिता के अभिवर्द्धन की है । इन दिनों व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में जितनी भी समस्याएँ व्याप्त हैं, उनका एकमात्र कारण अभिवर्द्धन के उपयुक्त वातावरण न मिल पाना है । इसके अभाव में ही व्यक्तिगत जीवन में दोष-दुर्गुण, अनीति, अवांछनीयता और उनके कारण कई प्रकार के कष्ट-क्लेश तथा समस्याएँ उत्पन्न होती हैं तथा सामाजिक जीवन में अव्यवस्था, भ्रष्टता, आतंक और असुरक्षा व्यापती है ।

व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में व्याप्त कष्ट-कठिनाइयों और समस्याओं के समाधान का एक ही उपाय है कि समाज में सुसंस्कारिता का वातावरण उत्पन्न किया जाय ताकि लोगों को सत्प्रवृत्तियाँ अपनाने के लिए प्रेरणा और प्रोत्साहन मिले । इसे यों भी कहा जा सकता है सुसंस्कृत व्यक्तियों का निर्माण, सुसंस्कारिता का अभिवर्द्धन अपने युग की महती आवश्यकता है । यह कार्य एक सीमा तक तो प्रचार माध्यमों से भी पूरा हो सकता है । पर स्थायित्व लाने की अपेक्षा हो तो इतने मात्र से यह आवश्यकता पूरी नहीं हो पाती । इसके लिए अन्त:चेतना के मर्मस्थल तक सुसंस्कारिता को पहुँचाना होगा ।

प्रश्न उठता है कि संस्कारों की यह सम्पदा कहाँ से प्राप्त की जाय ? इसका एक ही उत्तर है कि वातावरण में सदाशयता उत्पन्न हो । ऐसा वातावरण जहाँ संव्याप्त हो, वहीं उस स्तर के संस्कार उत्पन्न होंगे । सुसंस्कारिता का वातावरण जहाँ संव्याप्त हो, इस स्तर के लोग जहाँ आत्मीयता की भावसम्वेदना और सहकारिता की रीति-नीति अपनाकर चल रहे हों, वहाँ रहने वाला व्यक्ति सुसंस्कारी बन सकता है । इस सन्दर्भ में स्वाध्याय, सत्संग एवं मनन-चिन्तन से भी उपयोगी प्रकाश मिल सकता है । निजी प्रयत्नों से भी उपयोगी प्रकाश मिल सकता है । निजी प्रयत्नों से भी आत्मनिर्माण में बहुत कुछ प्रगति हो सकती है, किन्तु जहाँ तक बाह्य अनुदानों का सवाल है, वहाँ उपयुक्त वातावरण वाला समर्थ शिक्षा संस्थान एक ही हो सकता है और वह है परिवार । परिवार में, व्यक्तित्व की ढलाई अनायास ही होती रहती है । न प्रशिक्षण करना पड़ता है और न प्रयत्न । योजना बनाने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती और न प्रेरणा देने अथवा दबाव डालने की । सब कुछ स्वचालित क्रम से होता रहता है और उस परिवार में रहने वाले उसी प्रकार ढलते चले जाते हैं, जिस प्रकार कि छोटे बच्चे बड़ों का अनुकरण करके बोलना, चलना या अन्य व्यवहार करना सीख लेते हैं । यह तथ्य जितनी जल्दी समझ लिया जाय उतना ही उत्तम है कि सुसंस्कारिता उपलब्ध करने के लिए उस विशिष्टता के वातावरण से सुसम्पन्न परिवार की नितान्त आवश्यकता है । कुसंस्कार और दुर्गुण तो रास्ते चलते भी सीखे जा सकते हैं । मन का पतनोन्मुख प्रवाह अपने भीतर से संचित दुष्प्रवृत्तियों को उगा लेता है, पर श्रेष्ठता तो प्रयत्नसाध्य एवं साधनसाध्य है । यदि सुसंस्कारिता की, व्यक्तित्व की गरिमा समझी जाय और उस गरिमा पर वर्तमान की सुख-शान्ति एवं भविष्य की सुखद सम्भावना को निर्भर माना जाय तो यह तथ्य भी स्वीकार करना होगा कि परिवार का परिष्कृत वातावरण ही स्वर्ग है, जिसमें रहकर देवताओं जैसी समर्थता एवं वरिष्ठता प्राप्त की जा सकती है । कुटुम्बियों के लिए दैवी वरदान और स्वर्गीय ऐश्वर्य जैसी विभूतियाँ यदि किसी को उपलब्ध करानी हों तो उनके लिए कुबेर जैसी दौलत छोड़ने या इन्द्र जैसी सुविधा देने की आवश्यकता नहीं है । सुसंस्कारों का वैभव उपलब्ध कर सकने की सम्भावनाओं से परिपूर्ण वातावरण में रहने का अवसर उन्हें प्रदान करना चाहिए । यह ऊँचे से ऊँचे स्तर का अनुदान है जिसे कोई विवेकशील दूरदर्शी अपने प्रिय परिजनों के लिए दे सकता है । कहना न होगा कि यह उपलब्धियाँ कहीं अन्यत्र भेजकर प्राप्त नहीं कराई जा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकतीं । बाहर का रंग उड़ जाता है, टिकाऊ तो भीतर का ही होता है । सद्गुणों की सम्पदा परिष्कृत परिवारों में ही उपलब्ध की जा सकती है । अस्तु, अपने लिए, अपने प्रियजनों के लिए सबसे अधिक सौभाग्य सम्पादन एक ही प्रकार हो सकता है, कि परिवार की परम्परा में शालीनता का उच्चस्तरीय समावेश करने के लिए सच्चे मन से प्रबल पुरुषार्थ किया जाय ।

घर की परिधि पारिवारिकता की सत्प्रवृत्ति सीखने और परिपक्व करने की पाठशाला-प्रयोगशाला है । यहाँ जो उपलब्ध किया गया है उसे किसी भी क्षेत्र में प्रयुक्त करके सफलता के लक्ष्य तक सरलतापूर्वक पहुँचा जा सकता है । यह प्रवृत्ति जहाँ भी पहुँचेगी सुखद परिणाम उत्पन्न करेगी । उद्योग उपार्जन के लिए चल रहे कारखानों में जहाँ मालिक मजदूरों के मध्य पारिवारिकता रहती है वहाँ धन और यश मिलने में कोई कमी नहीं रहती । जिन सार्वजनिक संगठनों में सदस्यों के बीच पारिवारिकता सद्भाव सुदृढ़ होगा वहाँ उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सुखद अवसर पग-पग पर मिलेंगे । समाज हो या शासन-मठ हो या जमात-आन्दोलन हो या अभियान-सम्बद्ध लोगों के बीच जितनी पारिवारिकता, आत्मीयता होगी उसी अनुपात से अपना वर्चस्व सिद्ध करते और गौरवान्वित होते दृष्टिगोचर होंगे ।

आत्मविकास की चर्चा बहुत होती रहती है । उसकी साधना के लिए अनेकानेक उपचारों का प्रयोग होता रहता है, पर लक्ष्य तक मात्र वे ही पहुँचते हैं, जो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धान्त को जानते ही नहीं, मानते भी हैं । लोभ और मोह के भव-बन्धन बड़े कठिन और दुःखद माने जाते हैं । इनसे छूटने को ही परम पुरुषार्थ, मोक्ष माना जाता है । इस नागपाश को काटने का एक ही सीधा सच्चा उपाय है व्यक्तिवादी संकीर्ण स्वार्थपरता का निराकरण कुछ तोड़ने या छोड़ने से नहीं हो सकता पारिवारिक उदारता दृष्टिकोण में जिस क्रम से घुसती जाती है उसी अनुपात से लोकसाधना में अभिरुचि बढ़ती जाती है और आदर्शों के लिए अधिक करने के लिए मन मचलता है । यही है वह मनःस्थिति जिसमें आत्मसन्तोष, लोकसम्मान एवं दैवी अनुग्रह प्राप्त करने की समस्त सम्भावनाएँ विद्यमान हैं ।

परिवार निर्माण के लिए मानसिक पोषण भी आवश्यक है

हम केवल शरीर नहीं हैं । स्थूल शरीर तो कलेवर मात्र है । इसे भीतर मन, मस्तिष्क तथा अन्तःचेतना जैसे सूक्ष्म उपादान भी हैं । शरीर को चलाने के लिये जिस प्रकार संतुलित और पोषक आहार की आवश्यकता पड़ती है । उस भोजन से शरीर की वृद्धि व पोषण हो उसके लिए पाचन होना आवश्यक है । समुचित पाचन के लिए व्यायाम, श्रम भी आवश्यक है । ठीक उसी प्रकार हमारे मन, मस्तिष्क तथा आत्मा को भी भोजन तथा व्यायाम की पूरी-पूरी आवश्यकता होती है ।

शारीरिक बल से दिमागी ताकत और मनोबल अधिक महत्त्वपूर्ण है । उनसे भी अधिक शक्ति आत्मबल में निहित होती है । आत्मबल पर कुछ विचार करना हमारे इस प्रकरण का विषय नहीं है । हम अभी मस्तिष्क व मनोबल के अभिवर्द्धन की ही बात पर विचार कर रहे हैं । अतः व्यक्ति जब अपने स्वार्थों से कुछ ऊपर उठकर अपने परिवार के संचालन का भार अपने कन्धों पर लेता है तो उसके लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह अपने परिवार के सदस्यों की शारीरिक अभिवृद्धि व पोषण के लिए खाद्य-सामग्री ही नहीं जुटाए वरन् उसके मन मस्तिष्क को विकास देने के लिये भी मानसिक खाद्य की व्यवस्था करे ।

शरीर को जब आहार की आवश्यकता होती है तो हमें भूख लग जाती है । तब हम खाने के लिये आतुर हो उठते हैं । उसी प्रकार हमारे मन, मस्तिष्क को भी भूख लगती है । उन्हें भी उस भूख को मिटाने के लिये खाना चाहिए । यह भूख हर मनुष्य को लगती है । यह बात दूसरी है कि वह उस भूख का अनुभव करता हो या नहीं कर पाता हो ।

शारीरिक भूख को मिटाने के लिये दूध, फल, रोटी, शाक, भात आदि आहार लिया जाता है । उसी प्रकार मन, मस्तिष्क का आहार स्वाध्याय तथा सत्संग से पूरा होता है । स्वाध्याय से तात्पर्य किसी पुस्तक को स्वयं पढ़ना या दूसरे से पढ़वा कर स्वयं सुनना । सत्संग से तात्पर्य है किसी विद्वान तथा चरित्रवान व्यक्ति के अर्जित तथा अनुभवों का लाभ उनकी वाणी तथा आचार व्यवहार से प्राप्त करना ।

जिन लोगों को इस बात का ज्ञान होता है कि हमारे शरीर को पोषण देने के लिये किस प्रकार का भोजन करना चाहिए । शरीर के लिये सभी आवश्यक तत्वों की पूर्ति करने वाला स्वच्छ तथा पवित्र और ईमानदारी से उपार्जित आहार ही हमारे शरीर को समुचित पोषण प्रदान करता है । यह जानने वाले व्यक्ति भोजन में इन सब बातों का ध्यान रखते हैं, किन्तु इनसे अनभिज्ञ व्यक्ति उनका ध्यान नहीं रखते, उन्हें तो पेट भरने से मतलब रहता है, किन्तु शरीर तो अपनी माँग को पूरी कराके ही छोड़ता है ।

अकाल की स्थिति में लोग अन्न के अभाव में जीवित रहने के लिये व भूख शांत करने के लिये वृक्षों के पत्ते, छाल तथा अन्य कई पदार्थ भी खा जाते हैं । इसी प्रकार यदि हम अपने मन, मस्तिष्क की भूख को अच्छे मानसिक खाद्य-उत्तम पुस्तकों व सत्संग के द्वारा पूरी नहीं करते तो वह इधर-उधर मुँह मारकर जो कुछ हाथ लगता है, उसे ही उदरस्थ कर लेता है और उसी के अनुरूप हमारे विचार व आदतें, व्यवहार आदि बन जाते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

आहार कैसा हो ? इस सम्बन्ध में तो हम कुछ जानते भी हैं, सावधानी भी रखते हैं किन्तु मन और मस्तिष्क को कैसा आहार दिया जाय उसके सम्बन्ध में अभी तक अधिकांश लोग अनजान ही हैं । उन्हें तो यह पता भी नहीं है कि इन्हें भी भूख लगती है । जबकि ये तो शरीर से भी अधिक समर्थ व क्रियाशील रहने वाले हैं । इसलिये ये जो भी सामने आता है उसे खा लेने में पीछे नहीं रहते और उसका परिणाम यह होता है कि खराब व जहरीले खाने को खाते हुए हमारा शरीर रोगी हो जाता है ठीक उसी प्रकार हमारा मन, मस्तिष्क भी विकारग्रस्त हो जाता है ।

परिवार के मुखिया तथा समझदार सदस्यों पर यह दायित्व आ जाता है कि वे अपने तथा अपने परिवार के सदस्यों की मानसिक भूख को शांत करने का भी समुचित प्रबन्ध करें । भक्ष्याभक्ष्य का जो विवेक भोजन के सम्बन्ध में बरता जाता है वैसा ही स्वाध्याय तथा सत्संग के सम्बन्ध में बरता जाय । इसके लिये एक घण्टा या दो घण्टे का समय निश्चित कर देना चाहिए । इस समय भोजन की तरह अनिवार्य रूप से सभी को स्वाध्याय व सत्संग में आना ही चाहिए, ऐसी व्यवस्था बनानी चाहिए ।

इस प्रकार की व्यवस्था नहीं बनती है तो परिवार के वे सदस्य जिन्हें यह पता नहीं लगता है कि मन, मस्तिष्क को भी भूख लगती है और उसे भी शुद्ध, पवित्र व पोषक आहार की आवश्यकता होती है तो वे अपनी अनजानी भूख को इधर-उधर तृप्त कर आते हैं ।

हम अपने रोजमर्रा के जीवन में देखते हैं कि महिलाएँ अत्यधिक बातूनी होती हैं । इनकी बातों के विषय प्रायः एक दूसरे की निन्दा व टीका-टिप्पणी होती है । इसका मूल कारण यही मानसिक भूख तथा उसे गलत खाद्य मिलता रहना है । पहले महिलाओं की पढ़ाई पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था । वे प्रायः अशिक्षित होती थीं । उन्हें पुरुष से नीचा माना जाता था । अतः पुरुषों की अपेक्षा उनके मानसिक पोषण पर कम ध्यान दिया जाता था । फिर भी भूख तो भूख ही है वह इधर-उधर की बातों में ही तृप्त होती रही । यह भूख कितनी प्रबल होती है उसका उदाहरण गाँवों के पुराने पनघटों पर देखने को मिल जाता है । ग्रामीण महिलाएँ सिर पर सेरों पानी का बोझ उठाये देर तक बातें करती रहती हैं । उन्हें उसका पता ही नहीं चलता ।

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय कई स्वाध्यायशील नेताओं को जेल में पढ़ने के लिये पुस्तकें नहीं दी जाती थीं । इसके पीछे उनकी मानसिक भूख को अतृप्त रखने का ही उद्देश्य है । डॉ० राममनोहर लोहिया जब लाहौर की जेल में थे तो उन्हें महीनों तक पुस्तकों के दर्शन ही नहीं होते थे । यह उन जैसे अध्ययनशील व्यक्ति के लिये भोजन न देने से भी बड़ी सजा थी । परिवार के वे मुखिया जो परिवार वालों के भोजन, वस्त्र, मकान आदि शारीरिक आवश्यकताओं को पूरी करके ही अपने दायित्व की इतिश्री समझ लेते हैं वे अपने परिवार वालों को अनजाने में वैसी ही सजा देते हैं जैसी डॉ० लोहिया को साम्राज्यवादी विदेशी सरकार ने दी थी ।

बच्चों के बढ़ते हुए शरीर को जिस प्रकार अधिक पोषक आहार वयस्कों से अधिक बार चाहिए जिससे कि उनके वृद्धिशील शरीर की आवश्यकताएँ पूरी होती रहें वे कुपोषण के शिकार न हों । इसी भूख के कारण वे दिन भर 'भूख-भूख करते रहते हैं । इसी प्रकार उनके मन मस्तिष्क को भूख लगती है । उसी के कारण वे अपने से बड़े सदस्यों से हरदम कोई न कोई प्रश्न पूछते रहते हैं । यह जिज्ञासा और कुछ नहीं उनके मन, मस्तिष्क की भूख ही होती है ।

जिस प्रकार कड़ी भूख लगने पर पौष्टिक आहार लेकर शरीर का बल व आकार-प्रकार, सौष्ठव जा सकता है उसी प्रकार बालकों को शारीरिक व मानसिक खाद्य मिलता रहे तो उनके भावी जीवन के प्रासाद की नींव सुदृढ़ हो जाती है । बालकों के मन में जो संस्कार इस काल में भरे जा सकते हैं वे बड़े हो जाने पर सम्भव नहीं हो सकते । वे अपनी जिज्ञासा की तृप्ति के लिये अपने माता-पिता से जो प्रश्न पूछते हैं उनका उत्तर यदि सावधानी व बुद्धिमत्ता पूर्वक दिया जा सके तो उनकी बहुत कुछ मानसिक क्षुधा तृप्त की जा सकती है । यही नहीं उनका बहुत कुछ शिक्षण भी इसके साथ किया जा सकता है ।

इतने महत्त्वपूर्ण मानसिक पोषण की ओर आज तक अधिकांश परिवार के कर्त्ता ध्यान नहीं दे पाये । किन्तु इस ओर अब उन्हें ध्यान देना ही चाहिए । कुछ घण्टे पूरी तरह इसी प्रयोजन के लिये रखे जायें । यों तो जब भी समय मिले बातचीत के दौरान इस बात का ध्यान रखा जाय कि परिवार के सदस्यों के मन, मस्तिष्क को खुराक मिलती रहे ।

परिवार में सभी सदस्यों के मानसिक विकास के लक्ष्य को पूरा करने वाली सुरुचिपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं व साहित्य को बजट में स्थान मिलना चाहिए । शरीर की पुष्टि के लिये आहार की मद में जितनी राशि रखी जाती है उसका दशमांश तो इस मद में रखना ही चाहिए ।

शाम के समय जब भोजनादि से सब लोग निवृत्त हो जाते हैं तब मनोरंजन व स्वाध्याय दोनों उद्देश्यों को पूरा करने की गरज से शिक्षाप्रद कहानी कहने या कोई अच्छी शिक्षाप्रद पुस्तक पढ़ने का क्रम चलाना चाहिए । इसमें परिवार के सब सदस्यों का सहयोग रहे तो ज्ञान वृद्धि व जीवन निर्माण की दिशा में बहुत उपयोगी कदम हो सकता है ।

बच्चों को तो कहानी सुनने में बड़ा ही रस आता है । उन्हें भूत-प्रेत व परियों की कहानियाँ न सुनाकर शिक्षाप्रद कहानियाँ तथा महापुरुषों के जीवन वृतान्त सुनाये जायें तो उनसे वे बहुत कुछ सीख सकते हैं । भय, रहस्य व कपोल कल्पना पर आधारित कहानियाँ बच्चों के विकास में बाधक बनती हैं । महापुरुषों के जीवनवृत्त इसके लिए बहुत ही उपयुक्त हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिन परिवारों में सब लोग पढ़े-लिखे हैं और उनकी वय तथा रुचियाँ भिन्न हैं, तो वे अपनी पढ़ी हुई पुस्तक या पत्रिका की महत्त्वपूर्ण बातें इस समय सुना सकते हैं । इससे सभी का सभी विषयों में सामान्य ज्ञान बढ़ेगा । देश-विदेश के समाचारों तथा समाज में पनप रही विकृतियाँ व चल रही गतिविधियों पर चर्चा भी यहाँ हो सकती है ।

जिन परिवारों में पढ़े-लिखे व्यक्ति कम हैं तो वे पढ़े-लिखे व्यक्ति चाहे किसी वय के हों अपने परिवार के अन्य सदस्यों से वे सब बातें बताएँ जो दूसरों के लिए उपयोगी हैं और उसकी ज्ञान-वृद्धि के लिये आवश्यक हैं । माता-पिता को यदि पढ़ने-लिखने का अवसर नहीं मिला और वे अपने पुत्र, पुत्रियों को पढ़ाने में रुचि रखते हैं तो उनके अक्षर ज्ञान व पढ़ाई से लाभ उठाएँ, उनसे काम की पुस्तकें पढ़वाएँ या स्वयं पढ़ना सीख लें । जिनके पास जीवन का अनुभव है भले ही वे पढ़े-लिखे न हों तो उस अनुभव को पढ़े-लिखे लोग भी उनकी बातों के द्वारा पा सकते हैं । इस प्रकार यह पारस्परिक सहयोग का क्रम परिवार के समग्र विकास में बहुत सहायक होगा ।

बिना रसोईघर के घर की कल्पना जिस प्रकार नहीं की जा सकती, उसी प्रकार बिना स्वाध्याय का क्रम चलाये परिवार की कल्पना भी आधी-अधूरी ही रहेगी । इस सत्य को जितना शीघ्र स्वीकार कर लिया जाय व वैसी व्यवस्था बनायी जाय, परिवार निर्माण की दिशा में यह महत्त्वपूर्ण कदम होगा ।

परिवार निर्माण का एक महत्त्वपूर्ण उपकरण

परिवार-निर्माण का अर्थ सन्तान संख्या का विस्तार करना नहीं और न यह है कि किसी तरह मन से सर्वथा पृथक लोगों को एक बाड़े में बन्द किये रहने का आग्रह करते रहा जाय । कुटुम्ब बड़ा हो या छोटा, उसकी शोभा सफलता इस बात में है कि सुव्यवस्था एवं सुसंस्कारिता को उसमें कितना प्रश्रय मिल रहा है और गुण, कर्म, स्वभाव की विभूति सम्पदा यहाँ किस कदर बढ़ रही है । इस प्रयोजन में गरीबी या व्यस्तता बाधक नहीं है । कठिनाई एक ही रहती है कि घर के लोगों को शरीर सुख ही ध्यान में रहता है, उनके दृष्टिकोण एवं भावनास्तर को ऊँचा उठाने की आवश्यकता अनुभव नहीं की जाती और न उसके लिए कुछ प्रयत्न ही किया जाता है ।

बात तब बनेगी जब यह समझा जाय कि शारीरिक सुख या आर्थिक सुविधा का महत्त्व अति स्वल्प है, उतने भर से आलसियों, विलासियों और अहंकारियों जैसी विडम्बनाएँ ही हाथ लगती हैं । व्यक्तित्व का विकास, चिन्तन एवं दृष्टिकोण की प्रखरता पर निर्भर रहता है । आध्यात्मिक न सही, भौतिक ही सही किसी भी क्षेत्र में दूसरों को प्रभावित कर सकने वाला व्यक्ति ही सफल हो पाता है । यह आकर्षण वेश विन्यास का नहीं गुण-सम्पदा का ही होता है । दुर्गुणी व्यक्ति अपने निकटतम व्यक्तियों को ही रुष्ट रखता है और उनके सहज सहयोग तक से वंचित बना रहता है । इसके विपरीत सद्गुणी अपनी सुगन्ध से रास्ता चलने वालों तक को आकर्षित करता है और उन्हें अपना प्रशंसक, मित्र और सहयोगी बना लेता है ।

बाप-दादों की कमाई बैठे-बैठे खाना अथवा चोरी, चालाकी से वैभव खड़ा कर लेना दूसरी बात है, पर यदि किसी को किसी भी क्षेत्र में वास्तविक सफलता प्राप्त करनी हो तो उसके लिए सद्गुणों की सम्पदा अनिवार्य रूप से आवश्यक है । मानवी प्रगति के प्रत्येक पक्ष में दूसरों का सहयोग आवश्यक होता है । यह सहयोग किसी को अनायास ही नहीं मिल जाता; वरन् प्रामाणिकता की परख पर सही सिद्ध होने वालों को ही यह अनुदान उपलब्ध होता है । चोर-चोर मौसेरे भाई तो हो सकते हैं, पर वह रिश्ता तभी तक चलता है जब तक वे एक-दूसरे के अनैतिक स्वार्थों को सिद्ध करते रहते हैं । जैसे ही उसमें शिथिलता आई वैसे ही वह मैत्री बालू की दीवार की तरह विस्मार होती दिखाई देती है । प्रगति के ठोस आधारों में दूसरों का विश्वास और उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप मिलने वाला सद्भाव भरा सहयोग अनिवार्य रूप से आवश्यक होता है । जिसने यह उपार्जन कर लिया, समझना चाहिए कि उसकी प्रगति का द्वार खुल गया, वह भौतिक या आत्मिक किसी भी क्षेत्र में अपने स्नेही सहयोगियों की सहायता से आगे बढ़ सकने में समर्थ हो सकता है ।

दूरदर्शी गृहपति अपने परिवार के लिए आर्थिक साधन जुटाते रहने में ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं कर देते, वरन् पूरी सतर्कता और गम्भीरता के साथ यह अनुभव करते हैं कि इन आत्मीयजनों को चिन्तन एवं स्वभाव की दृष्टि से भी सुसम्पन्न बनाया जाय । जहाँ यह मान्यता काम कर रही होगी और इसके लिए प्रयत्न चल रहे होंगे वहाँ सुसंस्कारिता बढ़ेगी और उसकी बहुमूल्य फसल से घर के लोग यथासमय लाभान्वित होंगे । परिवार के प्रति मोह, ममता तो सभी रखते हैं, पर जहाँ दूरदर्शी आकांक्षा जग रही हो, समझना चाहिए कि परिवार के प्रति उत्तरदायित्व निबाहने की बात यहीं बन पड़ रही है ।

स्पष्ट है कि किसी को भी हर घड़ी आदर्शवादिता अपनाने की शिक्षा नहीं दी जा सकती । इस दिशा में अति करने से उलटी प्रतिक्रिया होती है । समयानुसार परोक्ष रूप से ही इस प्रकार का प्रशिक्षण किया जा सकता है । किसी दिशा में अधिक सोचना, उसकी उपयोगिता समझना और जो उपयुक्त जँचे उसे अपनाना मनुष्य का काम है । इस सन्दर्भ में सहायता भर की जा सकती है । आग्रह थोपा नहीं जा सकता । यदि थोपा जा सका होता तो गाँधीजी जैसे महापुरुष के बड़े पुत्र हीरालाल गाँधी को जहाँ-तहाँ भर्त्सना क्यों सहनी पड़ती ? तब हिरण्यकश्यपु जैसे प्रभावशाली का पुत्र क्यों न अपने पिता का अनुसरण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करता ? थोपने से मनुष्य की जीवन्त चेतना को किसी दिशा में ढाला नहीं जा सकता, बाध्य तो शरीर ही किया जा सकता है । अन्त:चेतना को दिशा देने वाले साधन ही जुटाये जा सकते हैं । उस प्रकार का रुझान उत्पन्न करने वाला वातावरण ही बनाया जा सकता है । उसी के लिए शक्तिभर प्रयत्न करना गृहस्वामी का कर्त्तव्य है । इस दिशा में सतर्क और प्रयत्नशील रहा जाय तो उतने भर से बहुत काम चल सकता है ।

इस सन्दर्भ में जो साधन-सामग्री जुटाई जानी चाहिए उसमें प्राथमिकता घरेलू पुस्तकालय को, ज्ञान-मन्दिर को दी जानी चाहिए । यह हर विचारशील परिवार की अनिवार्य आवश्यकता है । पेट की भूख बुझाने के लिए हर परिवार काा एक रसोईघर, अन्नभंडार अनिवार्य रूप से आवश्यक होता है । ठीक उसी प्रकार मस्तिष्क की अन्त: करण की भूख बुझाने के लिए ज्ञान भंडार भी होना ही चाहिए । पेट का महत्त्व समझा जाय और अन्त:करण की उपेक्षा की जाय तो ही ज्ञान-भंडार को निरर्थक कहा जा सकता है । जो चेतना का, चिन्तन का, दृष्टिकोण का, अन्त:करण का, भाव सम्वेदनाओं का कोई मूल्य नहीं समझते जिनके लिए धन और विलास ही सब कुछ है, उन्हें ज्ञान सम्पदा का महत्त्व बताया, समझाया जा सकना कठिन है । पर जिन्होंने यह समझ लिया है कि मानवी सत्ता, चिन्तन और चेतना के स्तर पर ही समुन्नत और पतित होती है, सम्पन्न और दरिद्र बनती है उन्हें यह स्मरण भर दिलाना पर्याप्त होगा कि शरीर की तरह आत्मिक चेतना की भी कुछ भूख होती है और उसका साधन जुटाना पेट भरने की सामग्री जुटाने से कम नहीं वरन् कुछ अधिक ही आवश्यक है । घरेलू पुस्तकालय की स्थापना इसी अभाव की पूर्ति करती है ।

कूड़े-कचरे की तरह किस्सा, कहानियों की, धर्म ढकोसलों की बेकार पुस्तकें हर घर में पाई जा सकती हैं; पर ऐसे विचारशील परिवार विरले ही मिलेंगे जिन्होंने घर के हर सदस्य को भावनात्मक परिष्कार कर सकने वाले साहित्य को प्रयत्न करके तलाश किया हो । अच्छी पुस्तकें खरीद ली जायें और उन्हें उपेक्षापूर्वक किसी मेज, अलमारी में पटक दिया जाय तो उतने भर से भी कुछ काम नहीं चलता । उन्हें आवश्यक महत्त्व देने के लिए सुसज्जित स्थान पर सुसज्जित रूप में रखना, उनका महत्त्व समझाना और स्नेह, दुलार के साथ पढ़ने या सुनने के लिए सहमत करना भी एक बड़ा काम है ।

निम्नगामी मानसिक हलचलें उत्पन्न करने वाले ओछे, उथले साहित्य में तो हर किसी की सहज रुचि होती है । पानी नीचे की ओर तो अपने आप बहता है, पर यदि उसे ऊपर लाना हो तो कई तरह के साधन जुटाने और श्रम करने की आवश्यकता पड़ेगी । ठीक यही बात कुरुचि को सुरुचि की ओर मोड़ने के सम्बन्ध में भी है । विवेकशीलता उत्पन्न करने वाला साहित्य आमतौर से नीरस समझा जाता है और उसे पढ़ने में अरुचि रहती है; इस ओर रुचि उत्पन्न करना उपयोगी पुस्तकें खरीदकर घर में रख देने से भी अधिक कठिन काम है । पैसा तो किसी प्रकार खर्च किया भी जा सकता है, पर यदि खरीदी पुस्तकों को किसी ने पढ़ा ही नहीं तो घर में बेकार का कूड़ा-करकट बढ़ा और उद्देश्य कुछ भी पूरा न हुआ । अस्तु, जहाँ ज्ञान मन्दिर की उपयोगिता समझी जाय, वहाँ यह जिम्मेदारी भी मानी जाय कि सारी व्यवहारकुशलता का प्रयोग करके उन्हें पढ़ने के लिए प्रोत्साहन भी दिया जायगा और इसकी देखभाल भी रखी जायगी कि वैसा हो भी रहा है या नहीं ।

जो बिना पढ़े हैं, उन्हें पढ़कर सुनाया जाना चाहिए । एक तरीका यह भी है कि इस प्रकार का साहित्य पढ़े जाने और सुने जाने का क्रम बनाया जाय और उसके लिए नियत समय निर्धारित किया जाय । यदि गृहपति स्वयं पुस्तकें सुनाने लगें और जो पढ़ाया सुना गया है उसे गहराई से समझने, न समझने की परीक्षा रूप से पूछताछ करने लगें तो उस पाठन का महत्त्व और भी बढ़ सकता है और कुछ दिन में सारे परिवार की सहज रुचि उस ओर ढल सकती है ।

अब गुरुकुल रहे नहीं-धर्मोपदेश के नाम पर निरर्थक बिडम्बनाएँ चलती और भ्रम फैलाती रहती हैं । जीवनोपयोगी शिक्षा के लिए घर के लोगों को किसी विद्यालय में पढ़ने भेजा जाय यह तो सम्भव नहीं । ऐसे सुयोग्य शिक्षक अपने घर में आकर रहने लगें, यह भी असम्भव है । फिर ऐसे सूक्ष्मदर्शी, प्रभावशाली लोग हैं भी कहाँ जो व्यक्ति की, समाज की वर्तमान समस्याओं का सही और सामयिक समाधान प्रस्तुत कर सकें । इन सब कठिनाइयों का समाधान घरेलू पुस्तकालय की स्थापना से ही सम्भव हो सकता है । जीवित या स्वर्गीय महामानवों की अति महत्त्वपूर्ण शिक्षा किसी भी समय कितने ही देर प्राप्त करते रहने, उनके साथ सत्संग करते रहने का उपाय एक ही है कि इनके ग्रन्थों को ध्यानपूर्वक, श्रद्धापूर्वक पढ़ा जाय और यह मनन किया जाय कि उस कसौटी पर अपनी स्थिति कितनी खरी उतरती है ? साथ ही यह भी मनन किया जाय कि उत्कृष्टता अपनाने के लिए क्या कुछ किया जा सकता है ।

बड़े-बड़े धर्म-ग्रन्थों से घर की शोभा बढ़ती है । आध्यात्मिक और दार्शनिक ग्रन्थ विशिष्ट लोगों के लिए विशिष्ट प्रयोजनों के लिए लिखे हैं । परिवार के लोगों को उनके स्तर के अनुरूप उनकी समस्याओं का समाधान करने वाली सरल पुस्तकें ही उपयोगी हो सकती हैं । बछड़े की पीठ पर हाथी का हौदा नहीं लादा जा सकता । बच्चों, किशोरों, महिलाओं, छात्रों तथा काम-काजी तरुणों को उनकी वर्तमान स्थिति में जो समेस्याएँ सामने हैं उनका व्यावहारिक हल बताने वाली पुस्तकें ही घरेलू पुस्तकालय के काम की हो सकती हैं । बड़े धर्म-ग्रन्थों के प्रति श्रद्धा तो रखी जाय, पर साथ ही यह समझा जाय कि वे परिवार के सदस्यों का सामयिक एवं व्यावहारिक मार्गदर्शन नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर सकते । ऐसी दशा में उन्हें पढ़ने का आग्रह किया जाय और वह कार्यान्वित होने भी लगे तब भी अभीष्ट प्रयोजन सिद्ध न होगा । अस्तु, घरेलू पुस्तकालय की स्थापना पढ़ने के लिए प्रोत्साहन का क्रम बनाने के साथ उपयोगी पुस्तकों के चुनाव का भी अति सतर्कतापूर्वक ध्यान रखा जाना चाहिए ।

इस प्रयोजन के लिए कुछ तो पैसा खर्च होना ही है । उसे अन्न, शाक, दूध, दवा, कपड़ा, साबुन स्तर का अनिवार्य रूप से आवश्यक दैनिक खर्च मानकर ही चलना चाहिए । कभी उत्साह, कभी उपेक्षा का उतार-चढ़ाव उसमें नहीं चलना चाहिए । यह दैनिक और अनिवार्य खर्च है ? इसको स्मरण रखने और आदत का अंग बनाने के लिए यह विधि अपनाई जानी चाहिए कि घर के किसी पवित्र स्थान पर, पूजा स्थल पर ज्ञानघट स्थापित किया जाय और इस मद को जितना महत्त्व दिया गया हो उतना पैसा उस पेटी में नियमित रूप से डाला जाय । खुले पैसों की वैसे भी अब किल्लत नहीं रही, पर यदि उसमें झंझट लगता हो तो उतने पैसे की एक छोटी पर्ची उसमें डाली जा सकती है और उन्हें हर महीने नोट रुपयों में बदला जा सकता है । इस राशि से हर महीने या कई महीने का पैसा इकट्ठा करके एक साथ कई नई पुस्तकें खरीदी जा सकती हैं ।

आरम्भिक स्थापना के अवसर पर कुछ अधिक खर्च हो सकता है । इसके लिए अलग से एक सुन्दर कपाट बन सकता हो और उस पर ज्ञान मन्दिर का अलग से एक सुन्दर छोटा बोर्ड लग सकता हो तो घर में आने वाले अन्य लोगों को भी इसकी उपयोगिता समझने का अवसर एवं प्रोत्साहन मिल सकता है । आरम्भ में कुछ अधिक पुस्तकें खरीदने से ही तो यह स्थापना सम्भव होगी, इसलिए उसे रेडियो, टेलीविजन, जेवर, सिलाई की मशीन, बिजली का पंखा जैसी उपयोगी वस्तुएँ खरीदने की तरह ही आवश्यक कार्य मानकर साहसपूर्वक कुछ राशि खर्च कर देनी चाहिए । मुहल्ले का, गाँव का पुस्तकालय स्थापित करना भी इस प्रयोजन की पूर्ति का एक महत्त्वपूर्ण अंग है, उसके लिए भी उतना ही उत्साह, त्याग एवं प्रयत्न करना आवश्यक है जितना कि घरेलू पुस्तकालय के लिए । इस सामूहिक पुस्तकालय से तो माँगकर भी अपने परिवार की आवश्यकता पूरी की जा सकती है ।

परिवार-निर्माण की पुण्य प्रक्रिया

मनुष्य अपने जीवन के लिए ही सब कुछ नहीं करता देह की आवश्यकताएँ बहुत थोड़ी हैं । वह तो थोड़े प्रयत्न से ही पूरी हो सकती हैं । दिन-रात काम में लगे रहने की आवश्यकता तो परिवार के सुख-सुविधा के साधन जुटाने के लिए हैं । भोजन, वस्त्र, निवास, शिक्षा-साधन, दवादारू, मनोरंजन, विवाह-शादी, सुख-सुविधा की जिम्मेदारी इतनी बड़ी हो जाती है कि उसे जुटाने में ही मनुष्यों को दिन रात शारीरिक तथा मानसिक श्रम करना पड़ता है । कई बार तो वह श्रम इतना अधिक और इतना आवश्यक होता है कि निज के स्वास्थ्य, विश्राम, विकास और विनोद तक को उठाकर ताक पर रख देना पड़ता है । आत्मकल्याण एवं परमार्थ जैसे आध्यात्मिक कर्त्तव्यों की पूर्ति के लिए अवकाश नहीं रह जाता ।

परिवार भी एक प्रकार से अपना ही शरीर है । जिस प्रकार हाथ अपने लिए नहीं, समस्त शरीर के लिए कमाते हैं उसी प्रकार परिवार के समर्थ व्यक्ति अपने लिए ही नहीं, अपितु सारे कुटुम्ब के लिए श्रम संलग्न रहते हैं । वह स्वाभाविक क्रम है और उसमें सब कोई अपने-अपने ढंग से लगा रहता है । फिर भी देखा जाता है कि परिवार न तो सुखी रह पाते हैं और न सुविकसित होते हैं । जिन कुटुम्बियों के लिये इतना प्रयत्न किया गया था वे तो अपनी गतिविधियाँ ऐसी नहीं रख पाते, जिनसे अपने को सन्तोष एवं प्रसन्नता मिले । सच तो यह है कि अधिकांश परिवारों के लोग अपने आचरण, व्यवहार से एक-दूसरे को दुःख ही पहुँचाते हैं । लोक-लज्जावश घर में इकट्ठे रहते तो हैं पर इच्छा यही बनी रहती है कि यदि एक-दूसरे से अलग या दूर रहें तो ही अच्छा ।

इन असन्तोषजनक पारिवारिक परिस्थितियों की जिम्मेदारी उक्त भूल पर है, जिससे उत्तरदायी व्यक्तियों द्वारा घर के लोगों की शारीरिक, आर्थिक, सुख-सुविधाओं का तो ध्यान रखा जाता है, पर उनके भावनात्मक एवं चारित्रिक निर्माण की ओर से उपेक्षा बरती जाती है । कर्त्तव्य की उपेक्षा, इतना बड़ा और इतना वास्तविक पाप है कि उसका दंड अनिवार्य रूप से मिलता है । शरीर निर्माण की ओर से उपेक्षा बरती गई तो शरीर जर्जर हुए, मन का निर्माण भुलाया गया तो मस्तिष्क कुसंस्कारी एवं अशान्त बन गया । परिवार का ही ख्याल रख निर्माण का कर्त्तव्य भुला दिया तो इसके परिणामस्वरूप परिवार नारकीय दोष-दुर्गुणों से भर गये और जहाँ गृह-उद्यान का हर पौधा प्रमुदित-सुरभित रहना चाहिए था, वहाँ कुढ़न और क्लेश से भरे हुई अशान्ति एवं उद्विग्नता ही हाथ रह गई ।

इसमें भाग्य को या किसी दूसरे को दोष देना व्यर्थ है । अपनी हर भली-बुरी परिस्थिति की जिम्मेदारी हमें ही स्वीकार करनी चाहिए । घर वालों के जिस पहलू पर हमने ध्यान दिया, वह विकसित हुआ । शिक्षा पर ध्यान दिया तो पढ़ाई-लिखाई में उन्नति हुई । रहन-सहन का स्तर बढ़ाना चाहा तो वह बढ़ गया । सौन्दर्य-सजावट को पसन्द किया तो घर वाले उसे भी सीख गये, पर यह ध्यान ही न रहा कि भावनात्मक और चारित्रिक विकास इन सभी बातों से ऊपर है । शिक्षा, स्वास्थ्य, धन खोकर तो मनुष्य अपने व्यक्तित्व, व्यवहार एवं सन्तोष को बनाये रख सकता है पर यदि आन्तरिक विकास न हुआ तो समस्त सुख-सुविधा के साधन होते हुए भी अशान्ति एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और भी अधिक दुर्गुणी बना देती है तब उसकी वह बुद्धि या सम्पत्ति उलटी विपत्ति का कारण बनती है । इसलिए जिनमें थोड़ी भी दूरदर्शिता हो, उन्हें यह भी अनुभव करना चाहिए कि परिवार का भावनात्मक निर्माण उनकी भौतिक सुख-सुविधा के साधन जुटाने से भी अधिक आवश्यक है ।

देखा गया है कि पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्रचुर सम्पत्ति मिलने पर भी सन्तान उसका लाभ न उठा सकी । आलस्य, प्रमाद, व्यसन, दीर्घसूत्रता, अहंकार, लापरवाही जैसे छोटे-छोटे दुर्गुणों के कारण वह सारी सम्पदा कुछ ही दिनों में स्वाहा हो गई । जहाँ घाव होता है, वहीं कीड़े पड़ते हैं । जहाँ असावधानी, आलस्य सरीखे दुर्गुण रहते हैं वहाँ उन्हें ठगने-लूटने वाले अनेक पैदा हो जाते हैं । इसी प्रकार अभिभावक अच्छा खिला-पिलाकर बच्चों को हृष्ट-पुष्ट बना दें तो भी इस बात का क्या भरोसा कि वे अन्त तक स्वस्थ एवं नीरोग बने रहेंगे । नशेबाजी, व्यभिचार, चटोरेपन आदि थोड़े से दोष ही उस हृष्ट-पुष्ट शरीर को कुछ ही दिनों में रोगग्रस्त, अल्पायु एवं जीर्ण-जर्जर बना सकते हैं । विवाह के लिये अच्छा जोड़ा ढूँढ़ दिया जाय, तो भी कोई भरोसा नहीं कि उनका दाम्पत्य जीवन सुखी ही बना रहेगा । असहिष्णुता, अविश्वास, अहंकार, असहयोग जैसे थोड़े से दुर्गुण उस दृष्टि से एक-दूसरे के लिए उपयुक्त जोड़े को परस्पर द्वेष दुर्गतिग्रस्त कर सकते हैं और उनका गृहस्थ जीवन नरक जीवन बन सकता है । एक-दूसरे से अलग हो सकते हैं । आग की छोटी-सी चिंगारी बड़े से बड़े वन या नगर को भस्मसात कर सकती है । छोटे-छोटे दुर्गुण जो देखने में मामूली और महत्वहीन मालूम पड़ते हैं, मनुष्य को दुःख-दरिद्र के गर्त में धकेल सकते हैं और उनके सम्पर्क में रहने वालों का सुख-सन्ताप नष्ट हो सकता है ।

ऐसे अगणित उदाहरणों से इतिहास के पन्ने भरे हैं जिनमें अत्यन्त छोटी, गई-गुजरी एवं अभावग्रस्त परिस्थितियों से उत्पन्न होने वाले व्यक्तियों ने इतना उत्कर्ष किया, जिसे देखकर दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ती है । उन्होंने इतनी सहायता-सुविधा कहाँ से प्राप्त कर ली जिससे वे अन्धकार को चीरते हुए प्रकाश की ओर बढ़ सके ? इसका एक ही उत्तर है 'उनके भावनात्मक एवं चारित्रिक स्तर का परिष्कृत होना ।' सद्गुणों के आधार पर मनुष्य क्या नहीं कर सकता ? जिसमें आन्तरिक महानता होगी, वह बाहरी क्षेत्र में हर साधन-सुविधा किसी न किसी प्रकार कहीं न कहीं से प्राप्त कर ही लेगा ।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक अभिभावक को-परिवार के समर्थ संचालक-को यह भी प्रयत्न करना चाहिए कि उसके कुटुम्ब का हर व्यक्ति बाहरी दृष्टि से ही नहीं, आन्तरिक दृष्टि से भी समुन्नत बने । सद्गुणों की पूँजी ही वह पूँजी है, जिसके बल पर कोई व्यक्ति अपनी एवं अपने साथियों की सुख-सुविधा बढ़ा सकता है, आनन्द एवं संतोष की जिन्दगी जी सकता है । यह सम्पत्ति जिसने अपने परिजनों को दी; समझना चाहिए कि वह परिवार के ऋण से उऋण हो गया और जिसने उपेक्षा बरती, समझना चाहिए कि उसने अपने एक अत्यन्त आवश्यक कर्तव्य का पालन करने में चूक कर दी ।

युग निर्माण योजना का मध्य बिन्दु परिवार-निर्माण है । व्यक्ति-निर्माण और समाज-निर्माण इसके ओर-छोर के दो सिरे हैं । परिवार-निर्माण का कार्य हाथ में लेने वाले को अनिवार्य रूप से अपना सुधार करना पड़ेगा । गीली मिट्टी से वैसा ही खिलौना बन सकता है जैसा कि साँचा हो । कुलपति को अपने गुण, कार्य, स्वभाव का ऐसा परिष्कार करना होता है जिसे घर के दूसरे सदस्य अपने अनुसरण में ला सकें । इस प्रकार परिवार-निर्माण का कार्य आत्मनिर्माण का सबसे सरल तरीका है । इसी प्रकार परिवारों को सुधार समाज-सुधार एवं विश्व-कल्याण का उद्देश्य भी सहज ही हुआ करता है । लोग अपने-अपने परिवारों को सुधार लें तो फिर समस्त विश्व के सुधर जाने में और क्या कठिनाई रह जायगी ?

हम अपने विचार परिवार को परिष्कृत बना लें तो यह एक सर्वोत्कृष्ट समाज-सेवा मानी जायेगी । इस प्रकार की पुण्य परम्परायें चलती रहने से ही इस देश को स्वर्गीय सुख लूटने का अवसर मिला है । आगे भी हमारी स्वर्गीय सुख-समृद्धि का यही आधार होगा । परिवार ही देश, समाज तथा वैयक्तिक उन्नति के आधार होते हैं । उनके निर्माण की पुण्य-प्रक्रिया फिर से प्रारम्भ होनी चाहिए ।

परिवार निर्माण की सर्वतोमुखी सुखद सम्भावनाएँ

परिवार का अर्थ दाम्पत्य जीवन नहीं है । वह तो नये परिवार की शुरूआत है । सृजन और परिष्कार के लिए यह आवश्यक नहीं कि विवाह करके नया परिवार ही बनाया जाय और सृजन प्रयास वहीं से आरम्भ किया जाय । हर मनुष्य किसी न किसी परिवार का सदस्य होता है । इसके बिना किसी की गुजर नहीं । छोटे बालक अविवाहित होते हैं तो भी वे परिवार के महत्वपूर्ण सदस्य हैं और उस क्षेत्र में आदान-प्रदान से अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । कुँवारियाँ, विधवाएँ, परित्यक्ताएँ, कुमार, विधुर और विरक्त व्यक्ति भी किसी न किसी परिवार की छाया में रहकर ही सामान्य निर्वाह की सुविधा प्राप्त कर रहे हैं । साधु जमातों में, मठों में रहते हैं, बीमार अस्पतालों में और सैनिक छावनियों में । ऐसा निर्वाह संस्थान जिसमें एक दूसरे के साथ किसी न किसी प्रकार कर्त्तव्य, उत्तरदायित्व, अधिकार एवं सुविधाओं के सूत्र में बँधे हुए हैं परिवार कहे जा सकते हैं । गायत्री

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

परिवार या महिला परिवार एक स्थान पर नहीं रहता तो भी आदान-प्रदान के अति महत्वपूर्ण सूत्रों में बँधे होने पर कई प्रयोजनों में परस्पर गुँथे रहने के कारण यह भी परिवार कहे जाने की परिधि में आ गया । हमें परिवार निर्माण इसी व्यापक अर्थ में लेना चाहिए । अंश-वंश के कुछ लोगों का एक घर में रहना छोटा परिवार है और समाज तथा विश्व बड़ा । पारिवारिकता एक दर्शन है जिसे अपनाये बिना अन्य प्राणियों का काम तो किसी प्रकार चल भी सकता है पर मनुष्य के लिए इसके बिना कोई गति ही नहीं । अस्तु, प्रकारान्तर से हर स्थिति के व्यक्ति को परिवार के साथ गुँथा रहना पड़ता है । ऐसी दशा में हर किसी के लिए आवश्यक है कि ऐसे महत्वपूर्ण संस्थान को परिष्कृत करने के लिए प्राणपण से प्रयत्न करे ।

महिलाएँ प्रमुख भूमिका निभायें सो ठीक है । पर सब कुछ उन्हीं पर छोड़कर पुरुष वर्ग दूर से तमाशा देखे और उन्हीं से सब कुछ कर गुजरने की अपेक्षा रखे ऐसा नहीं हो सकता । मोर्चे पर लड़ना तो सैनिक को ही पड़ता है किन्तु उसे ठीक तरह लड़ सकने और विजयी बनकर लौटने के लिए दूसरों को भी कम प्रयत्न नहीं करने पड़ते । सैनिकों को भोजन, वस्त्र, आयुध, वाहन, प्रशिक्षण, मार्ग-दर्शन आदि अनेकानेक साधनों की आवश्यकता पड़ती है । इन्हें जुटाने में असंख्य मनुष्यों का अनवरत श्रम और नागरिकों का कर रूप में दिया गया अनुदान प्रचुर परिमाण में नियोजित होता है तब कहीं वह स्थिति बनती है जिसमें सैनिकों को सफलतापूर्वक मोर्चा सँभाल सकना संभव हो सके । जाग्रत नारी की भूमिका अग्रिम होगी यह निश्चित है पर परिवार निर्माण अभियान इतना बड़ा है जिसके लिए जाग्रत पुरुष की भी इससे कम कहीं अधिक ही प्रयास करने होंगे । सैनिक लड़ें तो पर उनका पथ प्रशस्त करने के लिए इंजीनियर, डॉक्टर, ड्राइवर, रसोइया, कारीगर आदि का अता-पता भी न हो तो विजय श्री प्राप्त करना तो दूर, मोर्चे तक पहुँचना एवं लड़ने के सार्थक बनने तक सम्भव न हो सकेंगे । जाग्रत महिलाएँ परिवार निर्माण की अग्रिम भूमिकाएँ निभायें और दूसरे लोग उसको भरपूर सहयोग करने तथा साधन जुटाने में किसी प्रकार कमी न रखें तभी बात बनेगी । महिला जागरण से अभिप्राय उस पुरुष वर्ग को भी सम्मिलित रखने का है जो इस महान प्रयोजन की उपयोगिता समझते हैं और उसमें सहयोग देने के लिए उत्सुक हैं ।

जाग्रत नारी संगठित रूप से अपने निजी परिवार को तथा सम्पर्क क्षेत्र को प्रभावित करे । इसके लिए समय निकाले और संघबद्ध होकर काम करे । उसे घर परिवार का कार्य भार वहन करते हुए भी इतना समय बच सकता है, जिसमें अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए बहुत कुछ किया जा सके । घर में भी संगठित प्रयास करने होंगे और बाहर सम्पर्क क्षेत्र में भी वही नीति अपनानी होगी । मिल-जुलकर काम करने की व्यवस्था न बन सकी तो न किसी घर को, कुटुम्ब को सुसंस्कृत बनाया जा सकेगा और न सामूहिक प्रयत्नों से इस सृजन प्रवाह को अग्रगामी बनाया जा सकेगा । अतएव जाग्रत नारी को गृह-व्यवस्था की ही तरह परिवार परिष्कार का काम दैनिक कृत्यों में सम्मिलित करना है । वहाँ पुरुष वर्ग को भी अपने घरों की नारियों को इसके लिए समझाना, उत्साह भरना, सहयोग देना तथा अवसर प्रदान करने में पीछे नहीं रहना चाहिये । कैदी और जेलर की स्थिति बदली जानी चाहिए । जनसम्पर्क में आने पर पुरुष यदि कुमार्गगामी नहीं होता तो नारी के ऊपर यह अविश्वास करने की आवश्यकता नहीं है कि यदि वह नारी जाग्रति के लिए पड़ौस में जाना या पड़ौसियों को बुलाना आरम्भ करेगी तो दुराचारिणी हो जायेगी अथवा उनके काबू में न रहेगी । महिला जाग्रति के सदस्य भी यदि इसी क्षुद्रता से घिरे रहें और सामन्तवादी आतंक को छोड़ सकने में सहमत न हो सकें तो समझना चाहिए कि इतने दिन तक उनके घर में महिला जागरण अभियान का आलोक पहुँचना निरर्थक चला गया । प्रगति के लिए अवसर तो मिलना ही चाहिए । समय और सुविधा न मिले तो कोई भी, कुछ भी नहीं कर सकता । प्रत्येक भावनाशील पुरुष का इस युग-सन्ध्या में परम पवित्र कर्तव्य है कि वह अपने घरों की, प्रभाव क्षेत्र की महिलाओं को अवसर देने और दिलाने का प्रयत्न करे कि वह अभियान की गतिविधियों को क्रियान्वित करने के लिए घर में तथा घर के बाहर उपयुक्त अवसर प्राप्त कर सके । इसके लिए समय सम्बन्धी सुविधा देने के लिए वर्तमान ढर्रे में आवश्यक हेर-फेर करना होगा अन्यथा बेतुकी अस्त-व्यस्तता में ही वह जकड़ी रहेगी और कुछ कहने लायक काम न होने पर भी घेरे में घिरी बन्धनों में जकड़े कैदी की तरह समय गँवाती रहेगी । नर का प्रथम सहयोग यही हो सकता है कि वह महिला जागरण की गतिविधियों से अपने घर की तथा पड़ौस की महिलाओं को अधिक संख्या में सम्मिलित होते रहने का उपाय सोचे और निरन्तर प्रयत्न करके इस प्रकार परिस्थिति पैदा करे ।

परिवार निर्माण मिशन की गरिमा को समझने वाले प्रत्येक नर-नारी को अपना समय, श्रम और मनोयोग जितना सम्भव हो उतना उसमें लगाने के लिए कटिबद्ध होना चाहिए । इस अनुदान के लिए समर्पित किए गये अनुदान नकद रुपये की तरह हैं, जिनका प्रतिफल हाथों-हाथ मिलता है । अन्य पुण्य परमात्मा का फल प्राप्त करने के लिये देर तक प्रतीक्षा करनी पड़ सकती है किन्तु यह शुभ कार्य ऐसा है जिनका प्रतिफल दूसरों को, समाज को जितना मिलना है उससे अनेक गुना उन्हें मिलेगा जो उसमें संलग्न होंगे, समय देंगे और श्रम करेंगे ।

सुख-साधनों में शरीर के उपरान्त दूसरा नम्बर परिवार का ही आता है । धन का तीसरा, शिक्षा का चौथा और सम्मान का पाँचवा नम्बर है । शरीर कुछ अर्जित करने के लिए स्वास्थ्य रक्षा एवं विनोद विश्राम के अनेकानेक उपाय किये जाते हैं, किन्तु संयम के अभाव में दुर्बलता और

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रुग्णता ही घेरे रहती है । परिवार के लिए आदमी बहुत कुछ करते और मरते खपते हैं किन्तु सुसंस्कारिता का वातावरण न बन पाने में उसमें भी सराय की तरह रहना और कैदखाने की तरह पिसना पड़ता है । घर परिवार में यदि सुसंस्कारिता बढ़ सके तो निश्चय ही संतोष, आनन्द और विकास विस्तार का एक द्वार खुला है । परिवार-निर्माण अभियान के लिए जो सोचा और किया जायगा उसका प्रभाव अपने कुटुम्बियों पर पड़े बिना नहीं रह सकता । इस क्षेत्र में जो सुधार, परिष्कार होगा उनका लाभ प्रियजनों को तो मिलेगा ही मिलेगा अपने निज के संतोष में भी असाधारण वृद्धि होगी । परिवार कल्याण के लिए किये गये प्रयत्न परिजनों के वर्तमान को सुखद और भविष्य को उज्ज्वल बनाते हैं । समाज को उसका आशातीत लाभ मिलता है । साथ ही स्वयं भी नरक से निकल कर स्वर्ग में पहुँचने जैसी अनुभूति होती है । उस प्रयत्न को अपनी कार्य-पद्धति में सम्मिलित करने के प्रस्तुत सुअवसर को छोड़ा न जाय इसी में दूरदर्शिता है ।

हमारे परिवार स्वस्थ परम्पराओं के केन्द्र बनें

परिवार एक प्रयोगशाला है । उसमें सम्मिलित सदस्य अपने गुण, कर्म, स्वभाव को परिष्कृत करने का प्रयोग एवं प्रयत्न करते हैं । एकाकी मनुष्य अधिक स्वार्थी और अधिक उच्छृंखल हो सकता है, पर जिन्हें मिल-जुलकर साथ रहना और एक दूसरे की सुख-सुविधा का कठिनाई एवं आवश्यकता का ध्यान रखना है-उन्हें स्वभावतः अपने ऊपर अंकुश रखना होगा, संयमशीलता का, आत्मानुशासन का पाठ पढ़ना होगा ।

इस प्रयास में सबसे पहले परिवार तथा उसके सदस्यों को व्यवस्थित बनाया जाय । अनेकानेक सद्गुणों में व्यवस्था का अपना स्थान है । इसे जागरूकता, सतर्कता, कुशलता एवं सुरुचि सम्पन्नता की चार सत्प्रवृत्तियों का समन्वय कहा जा सकता है । हमारा प्रयत्न यह होना चाहिए कि अपने घर-परिवार के प्रत्येक कार्य में व्यवस्था-बुद्धि का समुचित समावेश दृष्टिगोचर होता रहे । हर वस्तु यथास्थान रखी हो । हर काम समय पर और सही रीति से सम्पन्न हो ।

पुरुष का काम है परिवार में सुसंस्कृत वातावरण बनाने और श्रेष्ठ परम्पराएँ स्थापित करने में पूरा-पूरा योगदान दे और अपने प्रभाव से पिछली अस्त-व्यस्तताओं का निराकरण करे । नारी का कर्तव्य है कि परिवर्तित प्रचलनों को स्थायित्व प्रदान करने के लिए पूरी सतर्कता बरते और सुधार क्रम में शिथिलता न आने दे ।

अस्त-व्यस्तता, आदतों के अभ्यास को बदलने में धैर्य और अध्यवसाय की जरूरत होती है । उतावली, उत्तेजना भर्त्सना और प्रताड़ना जैसे भौंड़े उपायों से सुधार कार्य में उलटे और अवरोध खड़ा हो जाता है । जिन्हें सुधारा जाता है वे कटु विरोध से रुष्ट होकर दुराग्रह अपनाने लगते हैं । इसलिए अच्छा यही है कि धीरे-धीरे ध्यानपूर्वक किन्तु बराबर टोकते रहने पर, यह न करके यह करना चाहिए, जैसे परामर्श देकर देर-सबेर में न्यूनाधिक मात्रा में सभी को सुधारा जा सकता है । परिवर्तन क्रम सफल होने में देर लगे तो भी धैर्यपूर्वक उसे जारी ही रखा जाना चाहिए ।

यह भूल नहीं जाना चाहिए कि प्रगति का घोंसला छोटी-छोटी आदतों के तिनकों से ही बुना जाता है । व्यवस्था, बुद्धि का प्रारम्भिक अभ्यास यदि घर की परम्पराओं में सम्मिलित करके नहीं रखा गया है तो यह असावधानी आगे चलकर महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व निबाहते समय भी आड़े आवेगी और उपेक्षावृत्ति के कारण रहने वाली छोटी-छोटी असावधानियाँ इकट्ठी हो होकर व्यक्ति को फूहड़, निकम्मा, गन्दा और असफल बनाती चली जायेंगी । अस्तु, नौकरों के रहते हुए भी स्त्रियों के सब कुछ कर लेने में समर्थ होते हुए भी इस व्यवस्था एवं स्वच्छता प्रयोजन में घर के प्रत्येक सदस्य को योगदान देना चाहिए ।

सामूहिक रूप में करने से स्वच्छता व्यवस्था एक रचनात्मक मनोरंजन बन जाती है । दीवारों की पुताई, किवाड़ों तथा फर्नीचरों पर रंग-रोगन अपने हाथों मिल-जुलकर थोड़े से समय में और थोड़े से खर्चे में आसानी से किया जा सकता है । फलतः घर सदा, सर्वदा, नित-नवीन दीखता रह सकता है । टूटी-फूटी वस्तुओं की मरम्मत करना एक कला है । एक गृह उद्योग है । इससे टूटी-फूटी बेकार प्रतीत होने वाली वस्तुएँ फिर नई हो जाती हैं, पैसा बचता है और हर वस्तु का पूरा और सही उपयोग करने की आदत बनती है । बर्तन, कपड़े, जूते, फर्नीचर, फर्श, पुस्तकों आदि की जिल्दें आदि वस्तुओं की मरम्मत करना सीखने की इच्छा हो तो कहीं से भी सीखा जा सकता है । उतना कोई भी जानकार सिखा सकता है । साप्ताहिक छुट्टी के दिन यदि टूट-फूट मरम्मत करना एक अच्छा मनोरंजन तथा शिल्प कौशल मान लिया जाय और उसमें भाग लेने के लिए घर के सब लोगों को आमन्त्रित कर लिया जाय तो वे सब सीख भी सकते हैं और एक नया दृष्टिकोण, नया स्वभाव विकसित कर सकते हैं । कहावत है कि जिसे टूटे को बनाना और रूठे को मनाना आता है उसे बहुत कुछ आता है ।

बच्चों के पास काम कुछ नहीं रहता । स्वस्थ खेल खेलने की परिस्थितियाँ भी उनके सामने नहीं होतीं, ऐसी दशा में वे तोड़-फोड़ या लड़-झगड़ करने लगते हैं । उनकी दृष्टि में यह भी एक काम होता है । क्रियाशीलता कुछ करना-कराना चाहती है । बच्चों को और कुछ नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सूझता तो शैतानी करने लगते हैं । इससे उन्हें झिड़कने की अपेक्षा यह अधिक उपयुक्त है कि किसी उपयोगी काम में लगाये रखा जाय । उससे वे अपनी क्रियाशीलता को रचनात्मक दिशा में मोड़कर भावी जीवन के लिए उपयोगी स्वभाव विनिर्मित कर सकते हैं । माताएँ उन्हें खेल का अनुभव कराते हुए घरेलू कामों में कुछ सहायता करते रहने में लगाये रह सकती हैं । इसमें कई लाभ हैं । श्रमशीलता, सहयोग की भावना, रचनात्मक क्रियाकलाप, परिवार निर्माण में योगदान का अभ्यास उस छोटे प्रयास से भी होता रह सकता है । शैतानी से उत्पन्न सिरदर्द से तो सहज ही बचत हो जायगी ।

समय का विभाजन, निर्धारण और उसकी मुस्तैदी के साथ पालन यह ऐसा सद्‌गुण है जो महत्वपूर्ण उत्तरदायित्वों के निर्वाह में असाधारण रूप से सहायक सिद्ध होता है । घर के हर सदस्य को इस दिशा में उपेक्षा न बरतने के लिए कहा, समझाया जाना चाहिए । हर किसी की दिनचर्या नियम निर्धारित होनी चाहिए और जब तक कि और असाधारण अड़चन ही न आ जाय तब तक उसका पूरी मुस्तैदी के साथ पालन करने की आदत डालती चाहिए । रात को जल्दी सोने और प्रातः जल्दी उठने की आदत इतनी ठीक है कि उसकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी ही अच्छी है । अक्सर लोग रात को दस बारह बजे तक गपशप करते रहते हैं और सबेरे बहुत देर से धूप चढ़े उठते हैं । ऐसे लोग उस बहुमूल्य अवसर को गँवा देते हैं जो प्रातः जल्दी उठकर काम करने पर दूनी, चौगुनी सफलता के रूप में मिलता है । घर के प्रमुख सदस्य यदि अपने नियम इस प्रकार के बना लें तो ऐसा वातावरण बनने लगे जिसके प्रभाव से सारे सदस्य उसी क्रम में सहज ही ढल जावें ।

प्रारम्भ में यह बातें छोटी-छोटी लगती हैं किन्तु सद्‌गुणों के यह बीज विकसित होने पर जब अपना चमत्कार दिखाने लगते हैं तब पता पड़ता है कि इन उपेक्षित समझे जाने वाले नियमों का कितना महत्व है ।

पुरुषों को चाहिए कि घर से बाहर जाने और वापस आने के समय में नियमितता बरतें, अनावश्यक प्रतीक्षा के कारण खीज उत्पन्न न होने दें । देर से आना हो या आकस्मिक अनिश्चित स्थिति आ जाय तो इसकी सूचना यथा सम्भव घर भिजवा दें । पुरुषों की अस्त-व्यस्तता में स्त्रियों का सम्मय निर्धारण क्रम भी बिगड़ जाता है और उसके खाने, सोने, पढ़ने आदि में व्यतिक्रम पड़ने से जो गड़बड़ी पड़ती है उससे विक्षोभ उत्पन्न होना स्वाभाविक है । पूरे परिवार को समय की दृष्टि से नियमित होने की आदत डाली जा सके तो यह एक बहुत बड़ी बात है । इसके लिए नर और नारी के बीच पूरा-पूरा सहयोग होना चाहिए ।

प्रातः से लेकर रात को सोने तक हर किसी का समय पूरी तरह व्यस्त होना चाहिए । उठते ही मल-मूत्र त्याग करने में किसी को भी आलस्य नहीं करने देना चाहिए । हाजत न होने पर भी आदत डालने की दृष्टि से भी नित्य-नियत समय पर जाते रहना चाहिए । इससे देर-सवेर में वैसी ही आदत बन जायगी । जब हाजत होगी तब जायेंगे की मान्यता वाले निश्चित रूप से अपनी मल-विर्सजन प्रक्रिया को गड़बड़ा देते हैं और पीछे जन्म भर दुःख पाते हैं । शौच, स्नान, मंजन, कपड़े धोना आदि हर कार्य में नियमितता बरती जानी चाहिए और निर्धारित दिनचर्या के अनुसार एक क्षण भी व्यर्थ गँवाये बिना अपने-अपने कामों में हर किसी को जुटा रहना चाहिए । जिसके पास काम न हो उसे अध्ययन का काम देना चाहिए । खाली दिमाग में शैतान की दुकान खुली रहती है और खाली समय काटना जीवन लाभ लेने से वंचित कर देने वाली कुल्हाड़ी अपने पैरों आप मारने की बराबर है ।

कुसंग में, अवारागर्दी में, मटरगश्ती में, गपशप में समय की बर्बादी अनेकानेक दोष-दुर्गुण पैदा करती है । समय को व्यस्त रखना और उपयोगी कर्मों में जुटे रहना प्रगति का पथ प्रशस्त करना ही उच्चकोटि का उत्पादक मनोरंजन भी है । जब अपने निर्धारित कर्मों में रस आने लगता है तो फिर अन्य मनोरंजक साधन ढूँढ़ने की आवश्यकता कभी-कभी ही पड़ती है । बच्चे से लेकर बूढ़े तक हर किसी को उपयोगी कार्यों में अपनी-अपनी स्थिति और सामर्थ्य के अनुसार व्यस्त रहने की आदत डालनी चाहिए । इससे श्रम का सत्परिणाम तो प्रत्यक्ष सामने आता है, सबसे बड़ा लाभ है कि समय का मूल्य समझने और उसका सहयोग करने में सतर्क रहने की उस सत्प्रवृत्ति का विकास होता है जो समयानुसार कल्पवृक्ष का काम करती है और प्रगति की दिशा में एक बड़े उपहार लाकर प्रस्तुत करती है ।

सादगी अपनाने की सज्जनोचित शालीनता घर के हर सदस्य के स्वभाव का अंग बने । सुन्दरता और सुसज्जा की अभिरुचि को तो प्रोत्साहन देना चाहिए पर इसके लिए भौंड़े, फूहड़, ओछे, बचकाने तरीके नहीं अपनाने चाहिए । हिप्पियों जैसा, सिनेमा के नट नर्तकों जैसा वेश विन्यास बनाना, तड़क-भड़क की रंग-बिरंगी आकर्षक पोशाकें पहनकर तथा शृंगार सामग्री से सज-धज कर अपनी बाल-वृत्ति दिखाना नितान्त बेहूदगी दिखाने का चिह्न है ।

बच्चों को स्वच्छ तो रखा जाय पर 'फैशनेबिल' न बनाया जाय । बहुमूल्य वस्त्र आभूषणों से सजाना पैसे का अपव्यय तो है ही उनकी आदतों को भी बिगाड़ना है । सजधज उनके स्वभाव में सम्मिलित हो जाती है । बड़प्पन का अहंकार उनके सिर पर भूत की तरह चढ़ता है । साथियों से अधिक सम्पन्नता प्रकट करना अकारण ही ईर्ष्या, द्वेष का कारण बनता है और एक दूसरे का अनुसरण, करके उस उद्धत परम्परा को अपनाते हैं । अस्तु, फैशनपरस्ती की बीमारी उन्हें नहीं ही लगनी चाहिए । उन्हें समझदार और जिम्मेदार लोगों की तरह सादगी और सज्जनता का गौरव समझने देना चाहिए, इससे वे सादगी में हीनता न देखेंगे अपनी प्रामाणिकता पर स्वयं सन्तुष्ट होंगे और दूसरों की दृष्टि में वजनदार सिद्ध होंगे ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कहना न होगा कि मितव्ययता को प्रामाणिकता का सर्व स्वीकार चिह्न माना गया है । अपव्ययी लोग सदा पैसे की तंगी भुगतते हैं, कर्जदार रहते हैं और समझदार लोगों की दृष्टि में अविश्वसनीय ठहरते हैं । उनकी ईमानदारी सदा संदिग्ध रहती है । फिजूलखर्ची की पूर्ति अन्ततः बेईमानी से ही करनी पड़ती है । इसलिए व्यवहार बुद्धि के लिए फिजूलखर्ची लोगों को अपने यहाँ नौकर नहीं रखते न उनके साथ मित्रता अथवा किसी किस्म की रिश्तेदारी जोड़ते हैं । फिजूलखर्च लड़कों से साथ ब्याही हुई लड़कियों को आजीवन दुःख भुगतना पड़ता है । आर्थिक तंगी, आवारागर्दी और दुर्व्यसनों की पतनोन्मुख प्रवृत्ति की मार से अपव्ययी लोग सदा पिटते हैं और अपने आश्रितों को भी अपार कष्ट देते हैं । अस्तु, आरम्भ से ही यह सतर्कता बरतनी चाहिए कि घर का कोई सदस्य अनेक दुर्गुणों की खदान फिजूलखर्ची का शिकार न होने पाये ।

गृह प्रबन्ध में परिवार के सदस्यों को कुछ न कुछ जिम्मेदारी सौंपी जानी चाहिए । समय-समय पर उन्हें इकट्ठा करके घर की स्थिति, आवश्यकता, कठिनाई एवं भविष्य की रूपरेखा से परिचित कराते रहना चाहिए तथा उनसे परामर्श लेते रहना चाहिए । यह रीति-नीति जिन घरों में अपनाई जाती है उनके सदस्य यह समझते रहते हैं कि पारिवारिक प्रगति एवं वर्तमान स्थिति में वे उसे किस हद तक निभा सकते हैं । घर का मालिक खुद ही मरता-खपता रहे, कुड़कुड़ाता, चिड़चिड़ाता रहे, इसकी अपेक्षा यह उत्तम है कि सभी सदस्य मन्त्रिमण्डल जैसे मिले-जुले उत्तरदायित्व को समझने और तदनुरूप अपनी गतिविधियाँ सही करने का विचार कर सकें । अच्छी आदतें सीखने का अवसर जहाँ मिल सके वस्तुतः वही सफल परिवार कहा जा सकता है ।

दिशा बिगड़ने न दी जाय

परिवार संस्था लौकिक तथा आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए अतीव उपयोगी है, किन्तु तभी जब उसकी दिशा सही रहे । उसके साथ जुड़ी हुई आदर्श मान्यताएँ सुदृढ़ रहें । आज उन मान्यताओं में विकृति आने के कारण परिवारों की उपयोगिता प्रायः समाप्त होती जा रही है ।

पश्चिमी सभ्यता की चकाचौंध ने परिवार-व्यवस्था को आज हिलाकर रख दिया है । आज जिधर भी दृष्टि डालें, एक ही दृश्य दिखाई पड़ेगा । लोग पारिवारिक जीवन से ऊबे, शोक-सन्ताप में डूबे, अपने भाग्य को कोसते नजर आते हैं । जहाँ किसी ने थोड़ी-सी सहानुभूति दिखाई, वहाँ अपने परिवार की बखिया स्वयं ही उधेड़ी जाने लगती है । बहुत ही कम परिवार ऐसे होंगे, जिनमें स्नेह-सौभाग्य की सुधा बहती दिखाई पड़े । अन्यथा घर-घर में कलह-क्लेश, कहा-सुनी, झगड़े-टंटे, मार-पीट, रोयाधोई, टूट-फूट, बाँट-बँटवारा और रार-जिद फैली दीखती है । सास-पतोहू, पिता-पुत्री, भाई-भाई, ननद-भाभी, देवर-भौजाई में ही नहीं पति-पत्नी में और बच्चों में लड़ाई-झगड़ा, द्वेष-वैमनस्य तथा मनोमालिन्य उठता-फैलता दिखाई देता है । आज का पारिवारिक जीवन कलुषित, कुटिल और कलहपूर्ण ही हो रहा है ।

अपने पैरों पर खड़े होते ही पुत्र असमर्थ हो चुके वृद्ध रुग्ण माता-पिता को छोड़कर अलग घर बसा लेता है । भाई-भाई की उन्नति और समृद्धि को शत्रु की आँखों से देखता है । पति-पत्नी को चूस डालने को सचेष्ट है । पत्नी पति को चैन नहीं लेने देती । बहू-बेटियों को फैशन का सन्निपात ग्रसे है । छोटी सन्तानें जिद्दी, अनुशासनहीन तथा मूढ़ बनती जा रही हैं । परिवार के सभी सदस्यों के व्यसन बढ़ते जा रहे हैं और आय की व्यवस्था की चिन्ता किये बिना व्यय की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है । कौटुम्बिक प्रतिष्ठा की कल्पना भी ध्यान में नहीं आती । जहाँ आत्मगौरव ही नहीं रहा, वहाँ पारिवारिक प्रतिष्ठा की किसे चिन्ता ? परिवार के संवेदनशील सदस्य चिन्ता से चूर रहते और शरीर मन की थकान से भरे रहते हैं । परिवार की असहनीय परिस्थितियों के कारण लोग अपने जीवन-लक्ष्य की ओर, परोपकार एवं लोकसेवी जैसी प्रवृत्तियों की ओर बढ़ नहीं पाते और अपने दुर्भाग्य को धिक्कारते हैं । ऐसे नारकीय पारिवारिक जीवन में सुख-शान्ति, सन्तोष-सौहार्द्र और सौभाग्य की उपलब्धि कर सकना सम्भव नहीं दीखता ।

अनेक लोगों का कहना है कि आज पारिवारिक जीवन में फैली फूट, बिखराव तथा गृह-कलह का कारण आर्थिक अभाव है । यदि आर्थिक कठिनाइयाँ दूर हो जाएँ, आवश्यकताओं और इच्छाओं की पूर्ति होती रहे, तो फिर मन में माधुर्य और स्वभाव में सरसता बने रहने में बाधा ही क्या है ? आखिर क्रोध, चिड़चिड़ापन तथा असहिष्णुता इसीलिए तो होती है कि व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए परेशान है और आमदनी न बढ़ पाने के कारण बढ़ी हुई आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो पा रही हैं ? जहाँ आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त आमदनी हो वहाँ फिर असन्तोष की गुंजाइश कहाँ ? वहाँ सभी शान्त, सन्तुष्ट, सुखी जीवन बिताते हुए मिल-जुलकर अवश्य रहेंगे ।

पर यह धारणा पूरी तरह सही नहीं है । यदि पूरी तरह सही होती तो आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न परिवारों में गृह-कलह एवं बिखराव दिखाई नहीं देता । संसार में जहाँ गरीब परिवार भरे पड़े हैं, वहीं एक से एक पैसे वाले परिवार भी मौजूद हैं । यदि पारिवारिक सुख-शान्ति का आधार आर्थिक समृद्धि ही है तो हर धनवान परिवार को सुखी, सन्तुष्ट तथा संगठित रहना ही चाहिए, किन्तु वास्तविकता इसके विपरीत है । कई गरीब परिवारों में शांति एवं संगठन पाया जाता है । जबकि अधिकांश अमीर परिवारों में आये-दिन झगड़े और बँटवारे होते रहते हैं । धन के कारण घरों में न केवल कहा-सुनी हो जाती है, बल्कि खून-खराबी तक की नौबत आ जाती है । अमीर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

घरों की महिलाएँ गहने-कपड़ों की कमी-ज्यादती को लेकर रार ठानती हैं और पुरुष आमद-खर्च को लेकर मल्लयुद्ध की मुद्रा अपनाये रहते हैं । ऊपर से लकदक, मुस्कान भरी, मधुर दिखाई देने वाली धनियों की जिन्दगी में भीतर कटुता, क्लेश एवं खोखलापन ही अधिकतर पाया जाता है, सुख शान्ति कहीं-कहीं ही होती है । स्पष्ट है कि पारिवारिक सुख-शान्ति का प्रधान आधार धन नहीं हो सकता ।

एक धारणा यह भी है कि औद्योगीक ग के दबाव से परिवार का ढाँचा बदलता है । औद्योगीकरण से व्यस्तता बढ़ती है और सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन आता है । शहरी व्यस्तता पारिवारिक जीवन की एकता को खा जाती है, किन्तु यह मान्यता भी सही नहीं है । विश्व के प्रतिष्ठित समाजशास्त्री अब इस धारणा से सहमत नहीं हैं । उनका कहना है कि औद्योगीकरण तथा नगरों से पारिवारिक विघटन का सम्बन्ध नहीं है । प्रभावक नियम संयुक्त राष्ट्र अमरीका और ब्रिटेन में औद्योगीकरण की गति में कोई खास फर्क नहीं है । किन्तु अमरीका में तलाकों का औसत अनुपात ब्रिटेन की तुलना में बहुत अधिक है । अमेरिका में ही कई छोटे-छोटे नगरों में सम्बन्ध विच्छेदों के मामलों का अनुपात न्यूयार्क और वाशिंगटन के समकक्ष है । यदि सघन औद्योगीकरण ही पारिवारिक विघटन का आधार होता तो इन छोटे शहरों में, जहाँ उतनी औद्योगिक समृद्धि नहीं है सम्बन्ध विच्छेद न्यूयार्क वाशिंगटन से बहुत कम होने चाहिए थे ।

पाश्चात्य समाजशास्त्री यह मानने लगे हैं कि सांस्कृतिक मानदंडों का प्रचलन ही पारिवारिक व्यवस्था का आधार है । अमरीका में जो सांस्कृतिक वातावरण बना, तलाकों को आधुनिकता का पर्याय मानने की प्रवृत्ति फैली, उसका असर छोटे शहरों में भी उतना ही हुआ, जितना बड़े महानगरों में ।

अमरीका की तुलना में ब्रिटेन में प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं के प्रति आदर का भाव शेष है । अतः अमरीका की ही गति से औद्योगीकरण के बावजूद, पारिवारिक विघटन की गति अमरीका से बहुत मन्द है । अतः न तो धन, न ही औद्योगीकरण, अपितु सांस्कृतिक मूल्य ही पारिवारिक सुव्यवस्था के आधार हैं । जिस समाज में सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास होता है, वहीं पर इस तरह की विघटनकारी प्रवृत्तियाँ प्रबल होती हैं ।

स्पष्ट है कि परिवार से सम्बन्धित उच्च मूल्यों को जहाँ भुला दिया जायगा, वहाँ पारिवारिकता का लाभ उठाना तो दूर उसे सूत्रवत बनाये रखना भी असम्भवत सा हो जायेगा । बाड़े में बन्द भेड़ों की तरह एक घर में रहने वाले मनुष्यों के समूह को परिवार कह भले ही लिया जाय, पर उनसे उस प्रयोजन की पूर्ति नहीं हो सकती, जो परिवार संस्था के साथ जुड़ा हुआ है । एक दूसरे को स्नेह, सहकार प्रदान करते हुए, उदारता एवं कृतज्ञता का रसास्वादन करते हुए संयुक्त समाज की संरचना में अपनी-अपनी जिम्मेदारी निबाहें, तभी परिवार राष्ट्र के एक छोटे किन्तु सुव्यवस्थित महत्वपूर्ण घटक सिद्ध हो सकते हैं । परिवार भीड़ को नहीं उच्च उद्देश्यों के आधार पर सुदृढ़ आत्मीयता के पवित्र बन्धनों में बँधे व्यक्तित्वों की संयुक्त इकाई को ही कहा जा सकता है ।

सुदृढ़ आत्मीय सम्बन्धों का आधार संकीर्ण स्वार्थ नहीं हो सकते । परिवार के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए गृहस्थ योग की साधना करनी होती है । योग का अर्थ है जोड़ना, मिलना । सामान्यतः मनुष्य की जो स्थिति होती है, वह अपूर्णता की स्थिति होती है । इस अपूर्णता को मिटाने के लिए वह किसी दूसरी शक्ति के साथ अपने को जोड़कर शक्ति-संचय करता है, अपनी सामर्थ्य बढ़ाता है । यही योग है ।

गृहस्थ-साधना को गृहस्थ-योग भी कह सकते हैं । इससे प्राप्त होने वाली सिद्धियाँ अन्य किसी भी योग से कुछ कम नहीं हैं । गृहस्थ धर्म का पालन धर्मशास्त्रों के अनुसार मनुष्य का आवश्यक कर्तव्य है । प्राचीन समय में अधिकांश ऋषि परिवार-संस्था में रहकर ही कार्य करते थे । सप्त ऋषियों में श्रेष्ठ माने जाने वाले महर्षि वशिष्ठ एवं अरुंधती, अत्रि जी और उनकी पत्नी अनुसूया जी दोनों सद्गृहस्थ थे । याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी पारिवारिक जीवन ही तो बिताते थे । योगीराज कृष्ण और योगेश्वर शंकर दोनों ने पारिवारिक जीवन जिया । इसी के माध्यम से वे उत्कर्ष के चरम लक्ष्य तक जा पहुँचे ।

किन्तु ऐसा परिवार बनाने के लिए उसके प्रति बहुत स्पष्ट उत्कृष्ट दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है । उसी के अनुरूप व्यवस्थित प्रयास और क्रिया-कलाप अपनाने होते हैं ।

परिवार एक प्रकार से छोटा राष्ट्र है । सुविस्तृत समाज का छोटा संस्करण है । उसकी आवश्यकताएँ भी बहुपक्षीय होती हैं । भोजन-वस्त्र की, शौक-मौज की, शिक्षा सुविधा की व्यवस्था बनाये रखने से ही परिवार की आवश्यकता पूर्ण नहीं हो जाती, वरन् उस छोटे क्षेत्र में ऐसा वातावरण बनाना पड़ता है, जिसमें पलने वाले प्राणी हर दृष्टि से समुन्नत, सुसंस्कृत बन सकें । अधिक खर्च करने अधिक सुविधा साधन रहने से नौकर-चाकरों की व्यवस्था रहने से घर साफ-सुथरा और सुसज्जित रह सकता है । सम्पन्नता के आधार पर बढ़िया भोजन-वस्त्र, ऐश-आराम, विनोद, मनोरंजन के साधन मिल सकते हैं । किन्तु व्यक्तित्व को समग्र रूप से विकसित कर सकने वाले सुसंस्कार केवल उपयुक्त वातावरण में ही सम्भव हो सकते हैं । ऐसा वातावरण कहीं बना बनाया नहीं मिलता-न कहीं खरीदा जा सकता है, उसे तो स्वयं ही बनाना है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्राचीनकाल में गुरुकुलों की बात दूसरी थी । वहाँ उत्कृष्टता का वातावरण बना हुआ रहता था, घर-परिवार में जो कमी रहती थी, उसकी पूर्ति वहाँ हो जाती थी, ऋषि तपस्वी अपने ज्ञान, कर्म और प्रभाव से विद्यार्थियों के चरित्र-निर्माण की आवश्यकता पूरी किया करते थे । पर अब वैसे गुरुकुल, विद्यालय भी कहाँ हैं ? अब तो वह आवश्यकता प्रत्येक सद्गृहस्थ को स्वयं ही पूरी करनी पड़ेगी । इसे यदि पूरा न किया गया, घर में सुसंस्कृत वातावरण न बनाया जा सका, परिष्कृत परम्पराओं का प्रचलन न किया जा सका तो उस घर में रहने, पलने वाले लोग भूत-वेताल बनकर ही रहेंगे ।

स्वास्थ्य, शिक्षा, चतुरता की दृष्टि से वे कितने ही अच्छे क्यों न हों, मानवी सद्गुणों से वंचित ही रहेंगे । कोई कितना कमाता है-कितना बड़ा कहलाता है यह बात अलग है और किसका व्यक्तित्व कितना समुन्नत है, यह प्रश्न बिल्कुल अलग है । बड़ा आदमी बनना सरल है-श्रेष्ठ, सज्जन बनना कठिन है । सुख-शांतिपूर्वक रहने और अपने साथियों को प्रसन्न संतुष्ट रखने के लिए बड़प्पन की नहीं-महानता की आवश्यकता पड़ती है उसी का उपार्जन मानव-जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है । कोई परिवार इस दिशा में जितना सफल होता है उसकी उतनी ही सार्थकता मानी जा सकती है ।

घर के वातावरण में यदि अवांछनीयताएँ, विकृतियाँ फैली पड़ी हैं तो इसका एकमात्र कारण सद्प्रवृत्तियाँ, सद्भावनाएँ उत्पन्न कर सकने वाले वातावरण का अभाव है । उसे पैदा करने पर ही उलझनें सुलझेंगी । अन्धकार का अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं, प्रकाश का अभाव ही अन्धकार है । ठीक यही बात पारिवारिक वातावरण पर लागू होती है जहाँ सद्भावनाओं को आरोपित पल्लवित न किया गया होगा, वहाँ दुर्भावनाओं की दुष्प्रवृत्तियों की कँटीली झाड़ियाँ उगेंगी ही और उनके काँटे चुभे बिना रहेंगे ही नहीं । यही है पारिवारिक क्लेश-कलह का दार्शनिक कारण । बाहरी दृष्टि से लड़-झगड़ या मनोमालिन्य के दूसरे स्थूल कारण भी हो सकते हैं । उनका निवारण भी किया जा सकता है फिर भी आन्तरिक दुर्बुद्धि जहाँ बनी हुई है वहाँ द्वेष और क्लेश के लिए कुछ न कुछ बहाने आमने सामने आते ही रहेंगे और दुर्गन्ध भरी नारकीय सड़न उत्पन्न करते ही रहेंगे, ऐसे घर परिवार में रहकर कोई व्यक्ति न तो सुखी-सन्तुष्ट रह सकता है और न जीवन में महत्वपूर्ण प्रगति कर सकने योग्य गुण, कर्म, स्वभाव का अभ्यस्त हो सकता है ।

अवांछनीय वातावरण में पलने वाले प्राणी हेय और गई-गुजरी स्थिति में ही जिन्दगी गुजारते हैं । अधिक पैसा, अधिक ठाठ-बाट और अधिक वैभव पाकर आदमी दूसरों को आकर्षित, आतंकित कर सकता है पर उसकी सुख-शान्ति में तनिक भी वृद्धि नहीं होती । आनन्द और उल्लास तो केवल सुसंस्कारी व्यक्तियों के हिस्से में ही आता है । वे ही स्वयं सन्तुष्ट रहते हैं और साथियों को आनन्द देते हैं । प्रसन्न रहने और प्रसन्न रखने की विशेषता ही देव-प्रकृति कहलाती है वस्तुतः यही सबसे बड़ी दौलत है । अभागे लोग पैसे को ही सब कुछ मानते और उसी के लिए मरते-खपते हैं । विवेकवान जानते हैं कि परिष्कृत दृष्टिकोण से सद्भावनाओं से बढ़कर और कोई आनन्ददायक वस्तु इस संसार में नहीं है, इसलिए वे इसके उपार्जन, अभिवर्द्धन पर ध्यान देते हैं । भले ही दृष्टि से उन्हें गरीबी की श्रेणी में ही क्यों न रहना पड़े ?

परिवार निर्माण का अपना प्रयोजन इतना भर नहीं है जितना कि गृह-विज्ञान की प्रचलित पुस्तकों में पढ़ाया जाता है । उसे गृहसज्जा भर कहा जा सकता है । परिवार निर्माण की दृष्टि से भी यह आरम्भिक और उचित कदम है । आवश्यकता उसकी भी है पर उतना भर कर लेने पर भी कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता । अमीर लोग गृहसज्जा के लिये नौकर रखते भी हैं । सफाई, सुव्यवस्था और सजावट के लिए यदि नौकर चाकर मौजूद हैं तो वह कार्य हो ही जायगा । कुशल गृहणियाँ भी यदि निरालस्य, स्फूर्तिवान और सुरुचिपूर्ण प्रकृति की हों तो वे जागरूक रहकर चलते-फिरते गन्दगी एवं अव्यवस्था को हटाती समेटती रहती हैं । बात की बात में सबस कुछ सुन्दर, सुव्यवस्थित बन जाता है ।

परिवार निर्माण वस्तुतः एक दर्शन है । क्रियाकलाप तक उसे सीमित नहीं रखा जा सकता । जिस प्रकार की व्यवस्था अभीष्ट हो उसके लिए परिवार के लोगों की मनःस्थिति का निर्माण किया जाना चाहिये । यह प्रयोजन तभी सफल हो सकता है, जब अपना मनोयोग समय और श्रम उसके लिए नियमित रूप से लगाया जाय । यह अभिरुचि, तत्परता एवं संलग्नता तब उत्पन्न हो सकती है, जब परिवार निर्माण की आवश्यकता को गम्भीरतापूर्वक समझा जाय और यह सोचा जाय कि इस महान उत्तरदायित्व का निर्वाह करना कितना अधिक महत्वपूर्ण है । यह काम नौकरों से, बाहर के आदमियों से कराने का नहीं है । अन्यान्य लोग बता-सिखा सकते हैं, परिवार के लोगों में घुल-मिल नहीं सकते, घनिष्ट आत्मीयता भरा अपनापन ही आन्तरिक आदान-प्रदान का माध्यम होता है । मनःस्थिति पर प्रभाव डालने की क्षमता केवल उन्हीं में होती है, जो अन्तःक्षेत्र का स्पर्श करें । विशेषतया स्वभाव एवं दृष्टिकोण में परिष्कृत परिवर्तन करने के लिए तो ऐसे ही शिक्षक की आवश्यकता पड़ती है । ऐसा शिक्षक बाहर से ढूँढ़ना बेकार है, यह कार्य हमें स्वयं ही करना पड़ेगा । भोजन, स्नान, निद्रा, विनोद आदि की आवश्यकतायें पूरी करने के लिए श्रम हमें स्वयं ही करना होता है, यह प्रयोजन दूसरों के द्वारा पूरे नहीं कराये जा सकते । परिवार निर्माण का कार्य अपने अतिरिक्त बाहर के लोगों से कराया नहीं जा सकता । आज की स्थिति में इस तथ्य को हमें पूरी तरह ध्यान में रखना चाहिये । दूसरे कुछ सामयिक परामर्श दे सकते हैं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

या क्षणिक प्रभाव डाल सकते हैं । सुसंस्कारों की जड़ जमाने के लिए जिस अध्यवसाय की दीर्घकालीन और अनवरत आवश्यकता पड़ती है, उसकी पूर्ति कोई बाहर का व्यक्ति कब तक और कहाँ तक करेगा ?

प्रश्न इतना भर नहीं है कि परिवार का वातावरण अच्छा बनाया जाय और परिजनों को सुसंस्कृत स्तर तक पहुँचाया जाय । यह केवल एक पक्ष है । परिवार निर्माण का दूसरा पक्ष और भी अधिक महत्वपूर्ण है । वह है अपनी निज की आदतों, आस्थाओं और गतिविधियों का निर्माण, नियन्त्रण करना । यह कार्य परिवार की प्रयोगशाला में ही सम्भव हो सकता है । जलाशय में घुसे बिना तैरना कहाँ आता है ? व्यायामशाला में प्रवेश किये बिना पहलवान कौन बनता है ? पाठशाला में भर्ती हुए बिना सुशिक्षित कौन बनता है ? व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर ही अपने गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता का अभ्यास किया जाता है । एकाकी चिन्तन, मनन, अध्ययन, प्रवचन करते रहने से केवल बौद्धिक समाधान मिलता है । सत्प्रवृत्तियाँ परिपक्व तो अभ्यास से होती हैं । अभ्यास के लिए उपकरण चाहिये । इस प्रयोजन के लिये परिवार से बढ़कर और कोई उपयुक्त माध्यम हो ही नहीं सकता । जिन लोगों के बीच हमें रहना पड़ रहा है, उन्हें परिष्कृत बनाने के लिये प्रयास करना वस्तुतः अपनी प्रकृति को ही सुधारना है । बकझक करनी हो तो बात दूसरी है-यदि सचमुच किन्हीं को बदलने योग्य प्रभाव उत्पन्न करना है तो उसका एकमात्र उपाय अपनी स्थिति का प्रभाव डालने योग्य बनना ही हो सकता है । जो इस दिशा में वस्तुतः बढ़ना चाहता होगा, उसे अपनी प्रभावोत्पादक क्षमता बढ़ानी पड़ेगी । अपना अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करना पड़ेगा । अपने व्यक्तित्व को उतना प्रामाणिक बनाना पड़ेगा कि जिसके सम्पर्क में आया जाय-उस पर छाप पड़े । परिवार निर्माण के लिये प्रयास करना वस्तुतः अपनी श्रेष्ठ मान्यताओं को मूर्तरूप देने के लिये प्रयोगशाला में प्रवेश करना है । परिजनों के माध्यम से अपनी शालीनता एवं क्रियाकुशलता को विकासोन्मुख बनाना है । इस प्रकार पारिवार निर्माण की दिशा में किये गये प्रयास-केवल कुटुम्बियों की सार्थक सेवा ही सम्पन्न नहीं करते, वरन् अपने व्यक्तित्व को भी निखारते हैं । अपनी आदतों में भी उत्कृष्टता का समुचित समावेश करते हैं । यह दुहरे लाभ की प्रक्रिया सर्वथा अपनाये जाने योग्य है । परिवार निर्माण दुहरी सफलता प्रस्तुत करता है । सुसंस्कृत परिजन न केवल अपने लिये, वरन् निर्माणकर्ता के लिये भी आनन्द भरे अनुदान प्रस्तुत करते हैं । मेंहदी पीसने वाले के हाथ रंग जाते हैं, वाली उक्ति के अनुसार उस कार्य में संलग्न व्यक्ति को आत्मनिर्माण का लाभ भी मिलता ही है ।

आजीविका उपार्जन के अतिरिक्त कुछ समय हमें परिवार-निर्माण के लिये भी नियमित रूप से देना चाहिये । यह एक उच्चकोटि का मनोरंजन है । ताश, शतरंज, गपशप, सिनेमा, मटरगश्ती, यारबासी, आलस्य अनुत्साह-पूर्वक काम करने की मन्दगति आदि व्यसनों और प्रमादों में हमारा बहुत-सा समय नष्ट होता है । हिसाब लगाया जाय तो प्रतीत होगा कि समय की यह बर्बादी बहुत बड़ी है । इतनी अधिक है कि उसे बचाकर ही परिवार निर्माण के अनेक महत्वपूर्ण कार्य करने का अवसर प्राप्त किया जा सकता है और फुरसत न मिलने का बहाना सर्वथा निरर्थक सिद्ध हो सकता है । मनोरंजन में सबसे बढ़िया, सबसे सार्थक, सबसे हलका और सबसे सरल परिवार-निर्माण ही है । इसमें न केवल अपना ही वरन् साथ-साथ सारे घर परिवार का मनोरंजन होता है । उसकी आड़ में प्रशिक्षण इतना अधिक हो जाता है कि कोई विद्वान अध्यापक भी उतना नहीं कर सकता ।

परिवार-निर्माण के दो पक्ष हैं-एक व्यावहारिकता क्रियापरक और दूसरा दार्शनिक-दृष्टिकोण परक । हमें दोनों ही तथ्यों का अपनी क्रिया-प्रक्रिया में समुचित समावेश करके चलना होगा ।

परिवार की प्रारम्भिक आवश्यकता तो रोटी, कपड़ा और मकान की होती है । इसके बाद शिक्षा, चिकित्सा, आतिथ्य, रीति-रिवाजों के निर्वाह और आपत्तिकालीन स्थिति का सामना कर सकने वाली सामर्थ्य भी रखनी होती है । यह कार्य उपार्जन और खर्च का संतुलन बनाये रहने पर सम्भव हो सकता है । यदि जीवनयापन के लिये आवश्यक सामान्य ज्ञान और लोकव्यवहार का अनुभव हो तो मनुष्य पैसे की तंगी में न रहेगा और खर्च की सुविधा से सम्बन्धित घर-परिवार की मोटी आवश्यकता बिना बहुत बड़ी अड़चनों का सामना किये पूरी होती रहेंगी । कम आमदनी हो तो खर्च घटाया जा सकता है । एक उपार्जनकर्ता पर निर्भर न रहकर घर के दूसरे लोग भी थोड़ी-थोड़ी आमदनी के छोटे-मोटे गृह उद्योग अपनाकर अर्थ संतुलन में सहायक हो सकते हैं । मनुष्य को जितनी बुद्धि मिली है और कलाइयों में जो क्षमता है वह इसके लिये पर्याप्त है कि किसी सामान्य परिवार का गुजारा किसी प्रकार हँसी-खुशी के साथ होता चला जाय ।

कठिनाई तब आती है जब परिवार के सदस्यों में स्नेह-सौजन्य का, सद्भाव-सहयोग का अभाव रहता है । एक दूसरे में रुचि नहीं लेते, अपने-अपने मतलब में चौकस रहते हैं, अनुशासन नहीं मानते और परस्पर मनोमालिन्य रखकर समय-कुसमय लड़ते-झगड़ते रहते हैं । जहाँ यह स्थिति होगी वहाँ अर्थ साधन रहते हुये भी परिवार एक ऐसे कैदखाने की स्थिति में होगा जहाँ विवशतापूर्वक समय काटना पड़ता है । ऐसी स्थिति में परिवारों में न घनिष्टता रहती है न आत्मीयता । ऐसी निरापद स्थिति में दिन तो कटते रहते हैं, पर वह उपलब्धियाँ जो इस पवित्र संस्था के सदस्यों को मिल सकती थीं, प्रायः नहीं ही मिल पातीं । आज के अधिकांश परिवारों की स्थिति ऐसी ही दुर्भाग्यपूर्ण बनी हुई है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिवार के हर सदस्य को समझना-समझाया जाना चाहिये कि कुटुम्ब एक पूरा शरीर है । जिसमें सभी को एक आत्मा की तरह रहना होता है और अपनी स्थिति वही माननी होती है, जो शरीर में विभिन्न अंग-अवयवों की है । हाथ-पाँव आदि का अस्तित्व देखने में तो अलग है पर वे पूरी तरह शरीर के साथ जुड़े हुए हैं और उनके परिश्रम का लाभ पूरे शरीर को मिलता है । यों प्रकारान्तर से अन्य अवयवों के उपार्जन का लाभ उन्हें भी मिलता है । इस प्रकार कोई घाटे में नहीं रहता वरन् दूसरे की विशेषताओं का लाभ पाकर वह उपलब्धि प्राप्त करता है, जो एकाकी रहने पर किसी भी प्रकार सम्भव नहीं हो सकती थी ।

परिवार संस्था की सफलता उसकी भावनात्मक स्थिति और आदर्शवादी आचार संहिता पर टिकी हुई है । जब तक ये आधार बने रहेंगे तब तक अभावग्रस्त घर परिवारों की भी स्थिति ऐसी सुखद बनी रहेगी जिस पर स्वर्ग निछावर किया जा सके । शरीर की भूख रोटी, कपड़ा और मकान, अन्न, जल एवं हवा तक ही सीमित है, पर आत्मा की भूख स्नेह, सम्मान और सहयोग की परिस्थितियाँ मिलने पर ही बुझती है । हमारा प्रयत्न यह होना चाहिये कि यह तीनों ही अपने परिवार में समुचित मात्रा में विद्यमान बनी रहें । परिवार के छोटे, बड़े और बराबर वालों के बीच ऐसा सघन सम्बन्ध जुड़ा रहे जिससे प्रत्येक-प्रत्येक का सम्मान करे, महत्व समझे, एक दूसरे के दुःख-सुख को सफलता-असफलता को अपना समझे ।

उत्कर्ष की दिशा में बढ़ चलें

जिस प्रकार घर की वस्तुओं को स्वच्छ, सुव्यवस्थित और सुसज्जित रखने में उनकी शोभा और सुरक्षा बनी रहती है उसी प्रकार के लोगों में सद्भावनायें और सत्प्रवृत्तियाँ बढ़ती रहने से ही वे सुगठित रहते हैं और एक दूसरे के प्रति सहयोग रखते हुए सुविकसित होते हैं । यदि परस्पर उदासीनता, उपेक्षा का भाव रहे तो फिर समझना चाहिये कि कई जानवरों को एक बाड़े में बन्द कर देने पर जो स्थिति होती है वही बन गई । ऐसे परिवार कभी फलते-फूलते नहीं । स्नेह-सौजन्य के अभाव में, धर्मशाला या होटल में साथ-साथ रहने वालों की तरह किसी प्रकार दिन ही काटते हैं, वह लाभ नहीं मिलता जो परिवार संस्था के हर सदस्य को स्वाभाविक रूप से मिलना चाहिये ।

अधिकारों को आगे रखने और कर्तव्यों के भूल जाने से मनुष्य का व्यक्तित्व ओछा हो जाता है । इससे परस्पर खींचतान बढ़ जाती है और समाज में नये विग्रह खड़े होते हैं । परिवारों के जहाज इसी दुर्बुद्धि की चट्टान से टकराकर चूर-चूर होते और उठते हैं । छोटे-छोटे स्वार्थों को ही सब कुछ समझ लेने की आदतें हर नर-पशु में पाई जाती हैं । वे दाँत, सींग और पंजे फैलाये एक दूसरे पर घात लगाते रहते हैं । मनुष्य देखने में ही भोला-भाला लगता है, उसके भीतर भी अहंकार, द्वेष, छीना-झपटी और अहसान भुला देने जैसी बुराइयों की मात्रा कुछ कम नहीं होती । यदि उन्हें काबू में न किया जाय तो जिस घर में ऐसे लोग रहेंगे वहाँ नरक का वातावरण बनाये रखेंगे ।

भौतिक कठिनाइयों को सुलझाने में भी एड़ी-चोटी का पसीना एक करना पड़ता है, फिर विचारों और भावनाओं की गुत्थियों को सुलझाना तो और भी कठिन होता है । इस भारी जिम्मेदारी को सुसंस्कृत नारी यदि चाहे तो सहज ही उठा सकती है । उसके भीतर प्रकृति ने सद्भावनाओं का कभी न सूखने वाला झरना बना रखा है । इस अमृत के भंडार में से वह एक-एक चुल्लू उस घर के लोगों को पिला सकती है और टेढ़े स्वभाव के व्यक्तियों को भी शिवजी की सेना कहलाने का सौभाग्य प्रदान करा सकती है । सरकस वाले तरह-तरह के जानवरों को साधकर, उनकी सहज शत्रुता भुलाकर उन्हें मित्र जैसा व्यवहार करने का आदी बना देते हैं । यह बाजीगरी नारी की मूल प्रकृति में मौजूद है । वह चाहे तो इस कौशल का उपयोग करके किसी भी स्तर के लोगों में स्नेह-सौजन्य भरा सहयोग पैदा कर सकती है ।

आमतौर से परिवार-भर के दोष-दुर्गुणों का दुःखदायी प्रभाव नारी अपने ऊपर सहती है । यह सहनशीलता तारीफ करने योग्य तो है । किन्तु इतना भर काफी नहीं । दुर्गुण और दुर्भाग्य जहाँ के तहाँ बने रहेंगे तो आपस का सहयोग बन ही नहीं पड़ेगा । स्नेहजन्य का खाद, पानी पाये बिना उस छोटे बगीचे का कोई भी पौधा पूरी तरह विकास पा ही नहीं सकता ।

साधारण मनुष्य के स्वभाव में पशुओं जैसे कुसंस्कारों की मात्रा कम नहीं होती । मनुष्य बनने के पहले जीव तमाम पशु-पक्षियों के जन्मों में रहता है । उस समय की आदतों की जड़ें उसमें काफी गहरी जमी रहती हैं । इन्हें उखाड़ देना मात्र धर्मोपदेशों से नहीं हो सकता । यदि वैसा संभव रहा होता तो अब तक उपदेशकों और साहित्यकारों ने कब का यह कार्य कर लिया होता । भावनाओं को शुद्ध बनाने में बड़ी सावधानी से संघर्ष करना पड़ता है । ध्यान यह रखना पड़ता है, कि दोषों को उखाड़ भी दिया जाय और किसी के स्वाभिमान को चोट भी न लगे । इसके लिए परिवार के हर सदस्य के साथ बड़ा गहरा तालमेल बिठाना पड़ता है । ऐसा कर लेना मनोविज्ञान की दृष्टि से बड़ी चतुरता और सफलता कही जा सकती है । नारी को यह कठिन काम भी सरल करके दिखाना चाहिये । वह ऐसा कर भी सकती है । इसी से उसकी भाव गरिमा का प्रमाण मिलेगा ।

परिवार के प्रत्येक सदस्य को सुसंस्कारी बनाना गृहिणी का सबसे महत्वपूर्ण और सबसे आवश्यक कर्तव्य है । सद्गुणों को स्वभाव का अंग बनाया जा सके-कर्मनिष्ठा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

में उत्साह स्थिर रह सके ऐसे अभ्यास आरम्भ से ही कराये जाने चाहिये । परिस्थितियाँ ऐसी उत्पन्न करनी चाहिए जिनमें रहकर बालक मानवोचित सद्गुणों की शिक्षा प्राप्त कर सके और जीवन संग्राम में तैयारी के साथ उतर सके । परिजनों में ऐसी कर्मठता और साहसिकता उत्पन्न करने के लिये जिन अभिभावकों ने प्रबल प्रयत्न किये उन्हीं को सच्चे अर्थों में परिवार का पालनकर्ता कह सकते हैं । बुरी आदतों का अभ्यासी बनाकर जिन्दगी भर कँटीली झाड़ियों में भटकने के लिए जिन्होंने अपनी सन्तान को असहाय छोड़ दिया उन्होंने प्रकारान्तर से शत्रुता ही बरती । बालकों को विलासिता, अहंकारिता और उच्छृंखलता बरतने के खुले अवसर देना वस्तुतः गृह संचालक के पवित्र कर्तव्य से सर्वथा विपरीत स्तर की बात है ।

परिवार के सदस्यों की सच्ची सेवा उन्हें सद्गुणी और स्वावलम्बी बनाने में है । बाप-दादों की छोड़ी सम्पदा से ब्याज भाड़े पर गुजारा करने वाली सन्तान भले ही आराम के साथ दिन काट ले पर उसकी प्रतिभा का स्तर लुंजपुंज ही रहेगा । जिसने कठोर कर्मक्षेत्र में उतरकर भुजबल और मनोबल को चरितार्थ करने का अवसर नहीं पाया उसे एक प्रकार से अपंग ही कहना चाहिये । पूर्वजों की कमाई पर गुजर करने वाली सन्तान को पराक्रम की कसौटी पर कसते हुए अपंग ही घोषित करना पड़ेगा ।

चिड़िया घोंसले में थोड़ा मजबूत होने वाले बच्चे को उड़ना सिखाने के लिए घोंसले से नीचे धकेलती है । बच्चा डरता है, हिचकता है तो भी वह लाड़-प्यार की भावुकता भुलाकर उसे धकेल ही देती है । नीचे गिरते हुए बच्चा पंख खोलता है । अभ्यास न होने से वह लड़खड़ाता है तो चिड़िया सहारा देती है । लगातार साथ रहकर उसे उड़ने का अभ्यस्त बना देती है । वह जानती है कि जन्म देना या पाल देना ही नहीं बच्चे, को स्वावलम्बी बनाना भी आवश्यक है । यह दृष्टिकोण प्रत्येक अभिभावक का रहना चाहिये । ब्याज-भाड़े की कमाई पर, परिवार के अन्य सदस्यों की सहायता पर, गुजर करने की बात घर के किसी सदस्य के मन पर नहीं बैठने देनी चाहिये । सबको यह सोचने देना कि उन्हें अपनी जिन्दगी का भार स्वयं ही वहन करना है और अभिभावकों की सहायता से इतना भी अवसर प्राप्त करना है कि स्वावलम्बन की समस्या का हल अपने पराक्रम से ही पूरा किया जा सके ।

इस प्रकार की समर्थता प्राप्त करने का उत्साह न केवल बालकों, किशोरों तथा युवकों में उत्पन्न किया जाना चाहिये वरन् महिलाओं में भी वैसी ही उमंग पैदा की जानी चाहिये । उन्हें इस प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये ताकि वे आड़े समय स्वावलम्बी जीवन जी सकें । आवश्यक नहीं कि यह उपार्जन मुसीबत के समय ही किया जाय । सुविधा सम्पन्न स्थिति में भी उत्पादक पराक्रम करना बड़े सौभाग्य एवं गौरव की बात है, इससे दबी हुई प्रतिभा की अनेक परतें उभरती हैं और निठल्ले दिन काटने वालों की तुलना में वह पुरुषार्थी व्यक्ति हर दृष्टि से सुयोग्य एवं समर्थ बनता चला जाता है । इस प्रकार के अवसर देना वस्तुतः सुविधा साधनों से लाद देने की अपेक्षा हजार गुना अधिक श्रेयस्कर है ।

कई व्यक्ति अपनी बहू-बेटियों को गुड़िया बनाकर रखते हैं और उन्हें कोमल परमुखापेक्षी बनाये रहते हैं । उनके लिये आरामतलबी के साधन जुटाते हैं और विलासिता के उपकरण इकट्ठे करते हैं । समझा जाता है कि उन्हें यह सुखद सौभाग्य मिल रहा है पर वस्तुतः यह सर्वथा उलटी बात है । परावलम्बी अनुदान पाकर सम्भव है किसी को शारीरिक सुविधा या मानसिक प्रसन्नता मिलती भी रहे पर आत्मा का पतन ही होता रहेगा । जब तक किसी को यह अनुभव न हो कि वह आत्मनिर्भर है, समर्थ एवं सुविकसित है, तब तक उस गौरव की अनुभूति नहीं हो सकती जो मानवी अन्तःकरण को संतोष देने की दृष्टि से नितान्त आवश्यक है ।

न केवल आर्थिक क्षेत्र में वरन् अनुभव के क्षेत्र में भी परिवार के हर सदस्य को इस योग्य बनाया जाना चाहिये कि वह सामने आने वाली प्रत्येक समस्या का सही स्वरूप समझने और उन्हें हल करने में अपनी बुद्धिमत्ता के सहारे ही समर्थ हो सके । विद्या-अध्ययन, विचार-विनिमय, अनुभव एवं विविध विषयों की विस्तृत जानकारी के अभाव में मनुष्य की समझ कूपमण्डूक जैसी बनी रहती है । स्वतन्त्र चिन्तन की नीर-क्षीर विवेक की उसमें क्षमता ही नहीं होती । जो पक्ष सुझा दिया जाता है उसी की तोता रटन्त चलती रहती है । गुण-अवगुण के औचित्य की उभयपक्षीय चेतना जिसके मस्तिष्क में रहती है वही यथार्थवादी निर्माण पर पहुँच सकता है और उलझनें सुलझा सकता है । अस्तु, यह आवश्यक है कि परिवार के हर सदस्य को इतना विचारशील बनाने के लिये अध्ययन, विचार-विनिमय एवं तर्क-वितर्क कर सकने योग्य मस्तिष्क का निर्णय करने में सहायता दी जाय । जीवन के विस्तृत क्षेत्र में आत्मरक्षा और प्रगति की दृष्टि से ऐसी विचारकर्ता नितान्त आवश्यक हैं । परिवार के सदस्यों को यदि ऐसी विचारशीलता उत्पन्न करने के अवसर दिये गये हैं तो समझना चाहिये कि गृहपति ने अपने उत्तरदायित्वों में से एक अति महत्वपूर्ण पक्ष का ठीक तरह निर्वाह कर दिया ।

प्रतिभाशाली व्यक्तित्व ही मनुष्य की सबसे बड़ी सम्पदा है । धन दौलत जैसे साधनों में स्थिरता तनिक भी नहीं । यदि हो भी तो भी उतने भर से पेट पालना ही सम्भव है । मनुष्य पेट तक सीमित नहीं । उससे आगे भी उसमें बहुत कुछ है । इस 'बहुत कुछ' को विकसित करने के लिये प्रतिभा को विकासोन्मुख किया जाना चाहिये । कहना न होगा कि प्रतिभा सद्गुणों के समन्वय का ही नाम है । आत्मविश्वास को ही प्रतिभा के रूप में प्रकाशवान देखा जा सकता है । आत्म-निरीक्षण, आत्म-सुधार, आत्म-निर्माण और आत्म-विकास के चार पायों पर

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्म-विश्वास अथवा आत्मबल का मचान् खड़ा होता है । ऐंठ, अकड़, धूर्तता या उच्छृंखल दुस्साहस के ओछे तरीके अपनाने वाले उदण्ड व्यक्ति भी कई बार अपने को प्रतिभाशाली मानने लगते हैं पर बात वैसी है नहीं । धैर्य, साहस, संयम, सदाचार, व्यवस्था, कर्तव्यनिष्ठा जैसे सद्गुणों की मिली-जुली धारा ही प्रतिभा बनती है और उसी से मनुष्य प्रभावशाली बनता है । यही प्रभाव दूसरों पर अपनी छाप छोड़ता है और उसी के आधार पर प्रगति के पथ पर बढ़ चलने का पराक्रम उत्पन्न होता है ।

उत्तराधिकारियों को सम्पत्तिवान छोड़कर मरना, वस्तुतः उनके लिए स्नेही नहीं वरन् द्वेष भरा आचरण है । उससे उनकी उपार्जन प्रतिभा घटती है और उस प्रयास से सूझबूझ में तीक्ष्णता आने का अवसर नष्ट होता है । स्पष्ट है कि बिना परिश्रम के उपलब्ध हराम की कमाई का उपभोग करने वालों के पीछे आलस्य, प्रमाद जैसी जड़ता से लेकर व्यसन और अपव्यय जैसी अनेकों दुष्प्रवृत्तियाँ पीछे पड़ती हैं । व्यक्तित्व जंग लगे निकम्मे लोहे की तरह दिन-दिन गलता चला जाता है । आराम के दिन काटना यों सौभाग्य समझा जाता है पर है, वह परले सिरे का दुर्भाग्य । जिसमें संघर्ष न हो, जिसमें पराक्रम और पुरुषार्थ को प्रखर बनाने वाले अवरोध न हों, भला उस जीवन में भी कोई रस हो सकता है ?

हमें अपने परिवार के प्रत्येक सदस्य को जीवन संग्राम में बढ़चढ़ कर हाथ दिखा सकने योग्य पराक्रमी योद्धा बनाना चाहिये । इस प्रकार की क्षमता कठिनाइयों से जूझने और स्वावलम्बी रीति-नीति अपनाने से ही विकसित हो सकती है । वस्तुतः यह प्रतिभा ही सबसे बड़ी उपलब्धि है । इसी के सहारे गई-गुजरी परिस्थितियों में उत्पन्न हुए व्यक्ति क्रमशः ऊँचे उठे और आगे बढ़े हैं । महामानवों के, प्रगतिशील लोगों के जीवन क्रम में यह तथ्य सर्वत्र उभरा पाया जायगा कि उन्हें संघर्ष में भारी रुचि रही है और परिस्थितियों से जमकर जूझने में उन्होंने प्रबल पुरुषार्थ का परिचय दिया है । दुस्साहस का ही दूसरा नाम उत्कर्ष है । जमीन का पेट चीरकर जब बीज अपनी हस्ती से खिलवाड़ करता हुआ अंकुर बनकर ऊपर उभरता है; तभी उसके वृक्ष बन सकने की सम्भावना मूर्तिमान होती है । विकासोन्मुख जीवन प्रक्रिया भी इसी प्रकार अंकुरित एवं विकसित होती रही है ।

सदाचरण की ही तरह प्रबल पुरुषार्थ में और करीने की सुन्दर सुव्यवस्थित जिन्दगी में भी समुचित निष्ठा होनी चाहिये, तभी कोई व्यक्तित्व समर्थ और सुविकसित हो सकेगा । परिवार के प्रत्येक सदस्य की मनःस्थिति में इन्हीं सद्गुणों के बीज बोये जाने चाहिये । इसका सर्वोत्तम उपाय यही है कि उन गुणों से अपने को अभ्यस्त करें और आये दिन ऐसे उदाहरण प्रस्तुत करते रहें जिनका अनुकरण करके घर के सभी सदस्यों को उसी मार्ग का अनुगमन, उसी क्रिया का अनुकरण करने की इच्छा उत्पन्न होती रहे । हर सदस्य को अपनी स्थिति के अनुरूप कर्तव्य और उत्तरदायित्व सोचने चाहिये । उनके निर्वाह में जहाँ वे चूकते हों, लड़खड़ाते हों वहीं आगे बढ़कर उन्हें सहायता देनी चाहिये । यह कार्य बिना झिड़के, बिना खीजे, शान्त चित्त और स्नेहासिक्त मनःस्थिति से किया जाय तभी सफल हो सकता है ।

विलासिता, आरामतलबी और फिजूलखर्ची की आदत घर में किसी को भी नहीं पड़ने देनी चाहिये । चुस्ती और स्फूर्ति स्वभाव का अंग बनती चली जाय । कठिनाइयों से जूझने की हिम्मत बढ़ती जाय तो समझना चाहिये कि उत्तराधिकारियों को ऐसी सम्पदा मिल गई जिसके आधार पर वे प्रगतिशील जीवन जी सकेंगे ।

इस स्तर तक लाने के लिए परिवार के हर सदस्य को मानसिक रूप से तैयार करना होगा । वे परिवार को आरामगाह नहीं सद्गुण बढ़ाने की पाठशाला-प्रयोगशाला मानने लगें और उसी के अनुसार अपना आचरण बनाते चलें, तो काम बन जाय । उनमें से हर एक सदस्य ऐसा कुछ करने को तैयार रहे जिससे परिवार का स्तर ऊँचा उठता हो, सद्गुणों का अभ्यास बढ़ता हो और एक दूसरे के सहयोग का वातावरण बनता हो घर की पाठशाला में, (१) श्रमशीलता, (२) स्वच्छता, (३) नियमितता, (४) मितव्ययता, (५) सुव्यवस्था, (६) मधुरता, (७) सहकारिता, (८) उदारता, (९) धर्मभावना आदि नौ पाठ पढ़े जा सकते हैं । यदि सद्गुणों को स्वभाव का अंग बनाने में सफलता प्राप्त की जा सके तो समझना चाहिये कि घरों में देवताओं जैसा जीवन जी सकने की संभावना बन गयी । घर के छोटे सदस्यों को भी बड़े होने पर किसी कुटुम्ब का नेतृत्व करना होगा, बड़ों को आगे-आकर घर-परिवार की अधिक वजनदार और अधिक बड़ी जिम्मेदारियाँ उठानी पड़ेंगी । इसलिये क्या छोटे, क्या बड़े सभी के लिए यह उचित है कि वे अपने में घुस पड़ी दुष्प्रवृत्तियों को हटाने और सत्प्रवृत्तियों को बढ़ाने का अभ्यास करें । कहना न होगा कि इस कुशलता के निर्वाह में सुयोग्य नारी की भूमिका सदा सफल होकर ही रहती है ।

ध्यान रखने योग्य एक बात यह है कि घर का कोई भी व्यक्ति निठल्ला न बैठा रहे । उसे कुछ न कुछ रचनात्मक प्रयत्न करते रहने में लगाये ही रखा जाना चाहिये । विश्राम निठल्लेपन को नहीं कहते । रात को गहरी नींद सोना और आवश्यकतानुसार सुस्ता लेना उचित है, पर विश्राम के नाम पर बेकार पड़े नहीं रहना चाहिये 'खाली दिमाग शैतान की दुकान' वाली कहावत सब जानते हैं । अपने परिवारों में यह कुप्रथा बेतरह धँस पड़ी है कि कुछ लोग कोल्हू के बैल की तरह पिसें और बाकी लोग निठल्ले रहकर समय बर्बाद न करें । प्रश्न केवल यह नहीं कि क्रियाशील ही निठल्ले ही बन जायें ? समस्या यह है कि हर सदस्य का खाली समय रचनात्मक काम में लगाया जाय । इससे परिवार का स्तर तथा परिजनों की आदतों को श्रेष्ठ बनाना सम्भव होगा । इसके लिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

आवश्यक है कि हर सदस्य को पहले से पड़ी हुई आदतों को बदला जाय । लेकिन यह काम बड़ी समझदारी से करने का है । इसके लिये किसी को सीधा हुक्म देने से उसके अहंकार को चोट लग सकती है । इसलिये नम्रता के साथ अपने कार्यों में थोड़ा सहयोग देने की बात ही दबी जबान से कहनी चाहिये । हो सकता है आनाकानी, बहानेबाजी या इन्कारी का उत्तर मिले, पर उससे निराश नहीं होना चाहिये और रुक-रुककर समय-समय पर काम की जरूरत समझाते हुए थोड़ी-बहुत टोक-टाक का क्रम चलाते ही रहना चाहिये । धीरे-धीरे वे लोग अपनी इच्छा से ही उत्साह प्रकट करने लगेंगे । यहाँ अपने अपमान को आड़े नहीं आने देना चाहिये, बल्कि परिवार का हित, साधन, भविष्य निर्माण ध्यान में रखकर प्रयास चालू रखना चाहिये । इसके लिए यदि उपेक्षा और अपमान के कड़ुए घूँट पीने पड़ें तो भी प्रसन्नतापूर्वक पी लेने चाहिये ।

घर में नित्य ही ढेरों काम होते हैं, उनमें बराबरी वालों तथा छोटों को साथ लेकर चलने से सबका मनोरंजन भी होता है और सबको सब कामों में रुचि लेने की आदत पड़ती जाती है । सबमें स्वच्छता, व्यवस्था और श्रमशीलता का अभ्यास बढ़ता है । घर की सफाई, वस्तुओं को यथास्थान सजाना, पाखाने, नाली आदि को अच्छी तरह धोना, कपड़े धोना, सुखाना जैसे ढेरों काम हर दिन करने होते हैं । इन्हें एक ही व्यक्ति करता रहे, इसके उपेक्षा कहीं अच्छा यह है, कि उन्हें खेल-खेल की तरह हँसते-हँसाते, मिल-जुलकर निपटाया जाय । साप्ताहिक अवकाश के दिन बर्तन, कपड़े, जूते, फर्नीचर, पुस्तकें, मकान आदि की टूट-फूट को सुधारने का काम करना पहले से निश्चित करके रखा जा सकता है । सबका श्रम, घर की स्वच्छता एवं सुसज्जिता में लगे तो गरीबों के झोंपड़े भी अमीरों के महल से बढ़कर सुरुचिपूर्ण लग सकते हैं ।

परस्पर सहयोग के कितने ही आधार हो सकते हैं । बड़ी आयु के शिक्षित छोटी आयु वालों को पढ़ाया करें । ऊँची कक्षा में पढ़ने वाले निचली कक्षा वालों को पढ़ाया करें । रात को इकट्ठे बैठने, कहानियाँ कहने या उपयोगी पुस्तकें सुनाने का सामूहिक क्रम चलाया जाय । इससे उपयोगी ज्ञान सम्वर्द्धन का सिलसिला चल पड़ता है और बोलने का अभ्यास बढ़ता है । बड़े बच्चे छोटों को पढ़ायें तो ट्यूशन फीस बचती है-अच्छे नम्बरों से पास होने की सम्भावना तो बढ़ती ही है, परस्पर सहयोग के साथ जुड़ी हुई सद्भावना का विस्तार भी होता है । समय की पाबन्दी के लिए हर किसी को कहा जाना चाहिये । जल्दी सोने और जल्दी उठने की परम्परा चलनी चाहिये । दिनचर्या का पालन करने, अनियमित न होने और समय की बर्बादी बचाने के लाभ घुमा-फिराकर समझने-समझाने की बात चलती ही रहनी चाहिये । अनियमितता के कारण मनुष्य का स्वभाव, समय और प्रगति में, सृजन-अभिवर्द्धन में बेहिसाब नुकसान होता है । शरीर को आलस्य और मस्तिष्क को प्रमाद से बचाना बहुत जरूरी है । संसार के हर महापुरुष ने इनसे बचकर, पुरुषार्थ, समय और मनोयोग के सहारे ही सफलतायें पाई हैं । समय को श्रम में उत्साहपूर्वक लगाये रहने वाली मनःस्थिति को ही दूसरे शब्दों में सिद्धियाँ कहते हैं ।

घर के वातावरण में शिष्टाचार का-श्रद्धा-सम्मान, ममत्व और वात्सल्य का गहरा पुट रहना चाहिये । बड़ों के प्रति छोटों में कृतज्ञता, श्रद्धा और सम्मान के भाव रहने चाहिये । प्रातःकाल उठकर बड़ों के चरणस्पर्श करके प्रणाम करने की अपनी सांस्कृतिक परम्परा को फिर से जीवित किया जाना चाहिये । पिता, चाचा-ताऊ, माता, चाची-ताई, बुआ, बड़ी बहिन, बड़ा भाई, बड़ी भावज, सास, ससुर, जेठ-जिठानी आदि को सभी छोटी आयु के स्त्री-पुरुष प्रातः उठते ही चरण छूकर प्रणाम किया करें । बराबर वाले परस्पर अभिवादन करें । छोटों के सिर पर हाथ फेर कर स्नेह, दुलार देने, वात्सल्य भरी मुस्कान से आशीर्वचन बोलने में बड़ों को भी कंजूसी नहीं करनी चाहिये । मात्र झूठा संकोच ही इसमें आड़े आता है । यदि एक बार उसे साहसपूर्वक तोड़कर इसका शुभारम्भ कर दिया जाय तो समझना चाहिये कि पीढ़ियों तक यह चक्र घूमता रहेगा और बड़ों तथा छोटों के बीच मुरझाते हुए स्नेह-सम्बन्ध फिर हरे-भरे हो जायेंगे । गाली-गलौज, तू-तड़ाक, मारपीट जैसे असभ्य प्रचलन हममें से किसी के भी घर में सहन नहीं किये जाने चाहिये । जहाँ वे चल रहे हैं, वहाँ से कड़ाई के साथ उनका उन्मूलन कर दिया जाना चाहिये ।

छोटों द्वारा बड़ों के अनुचित, अनैतिक और असामयिक निर्देशों को मानने में असमर्थता व्यक्त की जा सकती है, या टालटूल की नीति अपनाई जा सकती है । पर जहाँ तक सन्मान का, शिष्टाचार का तथा सेवा-सहायता का प्रश्न है, उसमें कहीं भी शिथिलता नहीं रहनी चाहिये । बड़ों के लिये भी उचित यही है कि आयु भले ही अधिक हो जाय पर घर के छोटों को बालक मानकर उन्हें वैसा ही स्नेह-दुलार देते रहें । एक आँख प्यार की एक सुधार की रखी जानी चाहिये । केवल दुलार से भी मनुष्य बिगड़ता चला जाता है । गलतियों के लिये आड़े हाथों लिया जाना चाहिये पर वह सब होना चाहिये आत्मीयता और शिष्टता की मर्यादाओं की रक्षा करते हुए ही । छोटी आयु के सदस्य भी आखिर मनुष्य ही तो हैं और आत्म-सम्मान की भूख तो उन्हें भी रहती है । सास-बहू के बीच माता और पुत्री जैसा स्नेह, जेठानी-देवरानी में सगी बहनों जैसी ममता होनी चाहिये । जो पक्ष जितना विवेकशील होगा वह दूसरे पक्ष की गलतियों को दर-गुजर करते हुए स्नेह-सूत्रों को बनाये रह सकता है । अपने लिए अधिक दूसरे के लिए कम की नीति ही सारे झंझटों की जड़ है । स्वयं कम पाने और अधिक करने की नीति अपना ली जाय तो फिर ओछी प्रकृति वालों के साथ भी निर्वाह हो सकता है । मैत्री इसी उदारता पर स्थिर और सुदृढ़ रह

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकती है । ससुर, जेठ आदि बड़ों को पिता जैसा सम्मान और देवर, भतीजे, ननद आदि को उनकी आयु के अनुसार समानता का अथवा बच्चों जैसा दुलार दिया जा सकता है । ऐसा व्यवहार स्वयं करते रहना भर पर्याप्त नहीं । प्रयत्न यह होना चाहिये कि वैसी दूरदृष्टि, उदारता एवं आत्मीयता, परिवार के हर सदस्य में बढ़ती चले । सुख-दु:ख के एक दूसरे के साथ जुड़े रहने कष्ट को हलका करने तथा उचित बात में प्रोत्साहन एवं सहयोग देने में कुछ उठा न रखें । एक दूसरे के चरित्र पर पूरा ध्यान रखें । सद्गुणों के बढ़ाने में परामर्श दें और साथ लेकर वैसा करने का अनुभव-अभ्यास भी करावें । दुर्गुणों के प्रति तीखी नजर रखें और जब भी-जिनमें भी-जो भी दुष्प्रवृत्ति पनप रही हों उसे उखाड़ने के लिए सभी अपने-अपने ढंग से प्रयास करें । शरीर में रोग उठने पर जैसे पूरे घर परिवार को चिन्ता होती है, उसी प्रकार दुर्गुणों को दुर्बुद्धि को मन:क्षेत्र में उत्पन्न होने को भी एक भयंकर स्थिति विपत्ति समझा जाना चाहिये । दूरदर्शिता पूर्ण संतुलित नीति अपनाकर शारीरिक अस्वस्थता की तरह मानसिक तथा चरित्र सम्बन्धी रोगों से भी छुटकारा पाया जा सकता है । घर में सबको स्वास्थ्यप्रद भोजन मिल सके इसके लिए भी कुछ परिवर्तन लाने जरूरी हैं ।

चटोरापन छोड़कर सुपाच्य और प्राणवान आहार की तरफ सबकी रुचि मोड़े बिना परिवार भर की स्वास्थ्य समस्या उलझी ही पड़ी रहेगी । भाप से भोजन पकाने में कुछ कठिनाई तो होती है । पर आहार के जीवन-तत्वों को पोषण दे सकने योग्य बनाये रहने का और कोई रास्ता भी तो नहीं है, हाथ की चक्की का आरम्भ करना दकियानूसीपन, कंजूसी, काम के दबाव की ओर अधिक बढ़ाना तो समझा जा सकता है पर उपयोगी व्यायाम तथा अन्न को जीवनदाता बनाये रहने के लिये यह कदम उठाया जाना भी आवश्यक है ।

थाली में जूठन न छोड़ने की आदत घर के हर सदस्य में डाली जानी चाहिये । वर्तमान परिस्थितियों में अन्न का एक दाना भी बर्बाद नहीं किया जाना चाहिये । खाते समय देख लिया जाय कि कहीं थाली में किसी वस्तु की अनावश्यक मात्रा तो नहीं आ गई है । दुबारा माँगने में हर्ज नहीं, अधिक प्रतीत होता हो उसे पहले से ही निकाल दिया जाना चाहिये । इसमें परोसने वाले को भी अनावश्यक शिष्टाचार बरतने की अपेक्षा समझदारी से काम लेना चाहिये । सप्ताह में एक दिन या एक जून उपवास करने की, शाकाहार पर रहने की परम्परा चल पड़े तो इससे पेट को विश्राम मिलने से स्वास्थ्य भी सुधरेगा और अन्न की देशव्यापी कमी को सहज ही पूरा कर लेने का एक बहुत उपयोगी मार्ग बन जायेगा ।

यह सब छोटी-छोटी बातें भी परिवार और समाज की व्यवस्था पर बहुत प्रभाव डालती हैं । यह जितनी आसान लगती हैं उतनी ही कठिन भी हैं । कोई व्यक्ति किसी एक स्थान पर इन्हें बड़ी आसानी से लागू कर सकता है, लेकिन घर-घर, जन-जन के स्तर पर इन्हें लागू करना बहुत कठिन है । इन्हें इस विशाल स्तर पर लागू करने का एक ही रास्ता है और वह है कुशल गृहणियों को इसके लिये तैयार करना ।

यदि उन्हें इसका महत्व समझाया जा सके तथा परिवारों में नई परम्परायें चालू करने योग्य सूझबूझ उनमें पैदा की जा सके, तो फिर यह कठिन दिखने वाले काम खेल की तरह पूरे हो सकते हैं । पारिवारिक स्तर पर अनेकों ऐसे कार्यक्रम चालू करने की श्रेष्ठ परम्परायें बनाने की आवश्यकता है, जिनके बिना प्रगति के मार्ग रुके पड़े हैं । यह जितनी जल्दी सम्भव हो सके उतना ही अच्छा है ।

परिवार में इस प्रकार के कल्याणकारी परिवर्तन लाने के लिये सबसे पहली आवश्यकता इस बात की है कि नारी अपने आपको शारीरिक, मानसिक और नैतिक दृष्टि से सुयोग्य बनाने के लिये भरसक प्रयत्न करें । अनुभव तथा विचारों की पूँजी बढ़ायें और वह कुशलता विकसित करें जिसके आधार पर उन्हें अपने महान उत्तरदायित्वों को पूरा करने में सफलता मिल सकती है । असल में यह कार्य पुरुषों का है कि वे नारी को रसोईदारिन, चौकीदारिन एवं धाय के अलावा अन्य जिम्मेदारियाँ उठाने की क्षमतायें विकसित करने के लिए समुचित अवसर तथा सहयोग दें । पर यदि वे उतनी उदारता तथा दूरदर्शिता न दिखा सकें, तो भी नारी का कर्तव्य है कि वह आत्म-विकास के लिए स्वयं आगे बढ़ें और जो भी साधन मिल सकें, उन्हीं के सहारे ऊँचे उठने और आगे बढ़ने के लिये जी तोड़ प्रयत्न चालू कर दें । इसके लिये नारी को अतिरिक्त परिश्रम करना पड़ेगा । लेकिन यह सब जिस उच्च भावना से और उत्साह के साथ किया जाना है, उसके कारण इस श्रम से किसी प्रकार की थकान या परेशानी अनुभव नहीं होगी ।

परिवार निर्माण का महान प्रयोजन पूरा करने में जितनी सफलता प्राप्त की जा सके उसे समूची मानव जाति की सेवा मानना चाहिए । अपना परिवार भी तो राष्ट्र की ही एक महत्वपूर्ण इकाई है । मिशन के सभी सदस्यों और सदस्याओं को मिल-जुलकर अपने को, अपने परिवार को परिष्कृत करने के महान प्रयोजन में संलग्न होना चाहिये ।

परिवार को सुसंस्कृत बनाया जाय

जो परिवार निर्माण के महान प्रतिफल को समझते हैं । वे उस उपलब्धि के लिए कारगर प्रयत्न करने की तैयारी करें । बात यदि साधन-सुविधा बढ़ाने भर की होती तो जिस-तिस प्रकार अधिक सम्पत्ति अर्जित कर लेने भर से वह प्रयोजन पूरा हो सकता था पर बात इतनी छोटी है नहीं । सुसम्पन्न परिवारों में कुसंस्कारिता का दौर निर्धन लोगों से भी अधिक रहता है । ऐसी दशा में सम्पदा के आधार पर अधिक साधन जुटाने और अधिक सत्परिणाम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पाने की आशा को छोड़ ही देना चाहिए । सम्पदा की उपयोगिता हो सकती है, पर सब कुछ इसी के सहारे उपलब्ध नहीं हो सकता । परिवार में सुसंस्कारिता का वातावरण उत्पन्न करना एक ऐसा लक्ष्य है । जिसे धनी और निर्धन समान रूप से उपलब्ध कर सकते हैं इसके लिए ऐसे उपाय बरतने होते हैं जिससे परिवारियों के चिन्तन, चरित्र एवं रुझान में अव्यवस्था के प्रति तिरस्कार और शालीनता के प्रति उत्साह उत्पन्न होता है । गुण, कर्म, स्वभाव का समन्वय ही व्यक्तित्व है । परिवार के हर सदस्य का व्यक्तित्व स्तर ऊँचा उठे इसके लिए उपयुक्त कार्य-पद्धति अपनाने और उसके लिए कुछ सिद्धान्तों को निश्चित करने को प्रथम चरण माना जाना चाहिए ।

परिवार निर्माण के लिए कदम बढ़ाने वालों को हजार बार समझना चाहिए कि वह प्रक्रिया अनुपयुक्त आदतें बदलने और उपयुक्त प्रचलन को उसके स्थान पर प्रतिष्ठापित करने की है । आदतों के साथ खेलना होगा । उन्हीं को बदलना होगा । इसमें उतावली काम नहीं देती । यह पक्का सर्कस का खेल है । जिसमें विभिन्न स्वभावों के जीव-जन्तुओं को हैरत भरे खेल दिखाने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है । सर्कस में प्राणियों को साधने में उसके शिक्षक जिस स्तर के धैर्य, साहस एवं कौशल का परिचय देते हैं । लगभग उसी स्तर की दूरदर्शिता एवं प्रतिभा परिवार संस्था का भावनात्मक नवनिर्माण करने के लिए अपनाया जाना चाहिए । उसमें एक आँख प्यार की और दूसरी सुधार की रखी जानी चाहिए । प्यार का अनुपात बढ़ाना होगा किन्तु साथ ही सुधार के लिए अनुशासन को इतना सुनिश्चित रखना होगा जिसे असहयोग मिलने पर भी बदलना न पड़े । देर में सुधारने के लिए धैर्य रखा जा सकता है पर निर्धारित नीति बदलने की गुंजाइश नहीं रहनी चाहिए । कुसंस्कारिता का प्रतिरोध न किया जाय तो परिस्थितियाँ बेकाबू ही होती चली जायेंगी और सुधार को विद्रोह के आगे सिर झुकाने को विवश होना पड़ेगा । ऐसा दुर्भाग्य उपस्थित होने का अवसर नहीं आने देना चाहिए । सुधार क्रम अपनाने का वज्र निश्चय होना चाहिए, पर उसे दूसरों के गले उतारने में अधीर या आतुर नहीं होना चाहिए । सर्कस के रिंग मास्टर को जानवर साधने में कितना समय लग जाता है, उसका दुलार और सुधार क्रम किस प्रकार बढ़ा-चढ़ा रहता है, निराशा किस प्रकार उसके पास तक नहीं फटकती ? यह विशिष्टता परिवार सुधार की प्रक्रिया हाथ में लेते समय अपनाई जानी चाहिए ।

परिवार के सदस्यों को सुसंस्कृत बना देना ही उन की सबसे बड़ी सेवा है । इस तथ्य को भली प्रकार हृदयंगम कर लेना चाहिए । अधिक सुविधाओं को रिश्वत देकर परिजनों को प्रसन्न करने या अनुकूल बनाने की नीति उस स्थिति से तो बहुत ही अवांछनीय बन जाती है, जब उसके लिए अनीति अपनानी पड़ रही हो । अधिक घने सम्बन्धियों के लिए अधिक सम्पदा छोड़ने और अधिक सुविधा देने की नीति तात्कालिक प्रसन्नता भले ही उत्पन्न कर ले, अन्ततः निश्चित रूप से दुष्परिणाम उत्पन्न करती है । परिजनों के लिए सुसंस्कारिता के अनुदान देकर ही कोई गृहपति सच्चे अर्थों में गौरवान्वित हो सकता है । विलासिता के अनावश्यक साधन देकर प्रियजनों का हित नहीं साधा जाता, उन्हें भावी विपत्ति में धकेला जाता है । गृहपति की उपेक्षा या परोक्ष सहमति से घर में कुसंस्कारिता और अव्यवस्था बढ़ती गई, परिजन संकीर्णता और उद्दण्डता के अभ्यस्त बनते गये तो समझना चाहिए कि अनजाने ही इसका अहित सँजोया गया, जिनके हित की उथली चिन्ता सिर पर सवार रहती है । ऊँचा दृष्टिकोण, उज्ज्वल और सज्जनोचित स्वभाव यदि परिजनों को दिया जा सके, तो समझना चाहिए कि गृहपति ने अपने आश्रितों को लाख करोड़ की सम्पदा उत्तराधिकार में प्रदान की है ।

कुशल प्रशिक्षक में मृदुलता और कठोरता का सन्तुलित समावेश होना चाहिए । माता को प्यार से बच्चों को भरपूर दुलार देने के साथ-साथ अनुशासन सिखाने के लिए ऐसा भी, आये दिन करना पड़ता है, जो बच्चों के मनोनुकूल न हो, कहते हैं लाड़ में बच्चे बिगड़ते हैं । यह सही है, अनावश्यक दुलार मिलने से भी, गरिष्ठ भोजन अति मात्रा में देने से पेट बिगड़ने की ही तरह दिमाग बिगड़ता है । दुलार उतना ही देना चाहिए, जितना हजम हो सके, अपच उत्पन्न करना, जितनी मात्रा खिलाते जाना दुलार लगता भले ही है, पर तत्वतः वह वैसा है नहीं । मोह को सत्यानासी इसीलिए कहा गया है कि अमुक परिजनों के साथ अत्यधिक उदारता बरतने से उनकी आदतें बिगड़ती हैं । बिगड़ी आदतों को लेकर वे स्वयं दुःख पाते हैं और उन कृपालुओं को शाप देते हैं जिन्होंने अविवेकपूर्वक, अनावश्यक और अनुचित होने की बात का ध्यान न रखते हुए बेहिसाब लाड़-प्यार उलीचा । ठीक इसी प्रकार कठोरता का पक्ष भी है । अति को सर्वत्र वर्जित किया गया है । रूखा, कर्कश, कठोर, उपेक्षापूर्ण व्यवहार करने से भी परिजनों को भी असन्तोष रहता है । वे किसी ऐसे प्रभाव का अनुभव करते हैं जिसमें उनके अन्तःक्षेत्र में अतृप्ति बनी रहती है । कठोरता कारणवश अपनाई जा सकती है । रुखाई यदा-कदा अपनाई जा सकती है, किन्तु वह नीति के रूप में प्रयुक्त की जानी चाहिए और उथली दिखावटी होनी चाहिए । आत्मीयता एवं ममता की वास्तविकता इसमें है कि प्रियजनों का दूरगामी हित साधन होता है । इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए यह भी आवश्यक हो सकता है कि प्रियजनों की अनुपयुक्त इच्छा, चेष्टा एवं आदत को सुधारने, बदलने का भी उपभोग किया जाय । इस प्रयास में उत्पन्न हुई असहमति, मनोमालिन्य उत्पन्न करने तक आगे बढ़ सकती है । इस स्थिति से निपटने का उपाय तो ढूँढ़ना चाहिए पर हारने और हथियार डालने के लिए तैयार नहीं होना चाहिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रशासक का काम अकेली कठोरता से भी चल सकता है, पर प्रशिक्षक का काम बहुत कठिन है । उसे दुलार और सुधार के विरोधी उपकरणों को समान रूपे से प्रयुक्त करके काम चलाना पड़ता है । दर्जी को काटने की कैंची और सीने की सुई का उपयोग करना होता है और दोनों को समान महत्व देना पड़ता है । डॉक्टर को घाव करने और उसे भरने का कौशल अपनाना पड़ता है । प्रशिक्षक को माता-पिता का समन्वित प्यार छात्रों को देना पड़ता है, साथ ही गुरु का उत्तरदायित्व निभाते हुए कठोर अनुशासन को भी बनाए रखना पड़ता है । छात्र रीझते भी है और खीझते भी । उसका ध्यान रखना असन्तुलन उत्पन्न न होने देना, अध्यापक का कर्त्तव्य है फिर भी यह प्रभावित मात्र अपने उत्तरदायित्व से ही रहता है । बच्चे उसे नीति बदलने के लिए विवश नहीं कर पाते ।

अनुपयुक्त आदतों का परिवर्तन ही व्यक्तित्व का परिष्कार है । परिवार निर्माण की प्रधान प्रक्रिया यही है । इसमें उद्देश्य और अनुशासन को अपने स्थान पर चट्टान की तरह अडिग रहना चाहिए । गतिशीलता के तीव्र न सही मन्द रहने तक का धैर्य रखा जा सकता है । पर निराशा या असफलता को अंगीकार नहीं किया जा सकता है । यह मन्तव्य जिनका होगा वे ही परिवार निर्माण जैसे दीखने में अतिसरल किन्तु व्यवहार में अति कठोर प्रयोजन को पूरा कर सकेंगे, इसमें उस आत्म साधना को इस स्थिति प्रज्ञ स्थिति की आवश्यकता पड़ती है । जैसे गीताकार ने कर्म कौशल का नाम दिया है इसे अपनाने में प्रशिक्षक का भी उतना भी लाभ है जितना शिक्षार्थी का । इस प्रयत्न में सहभागी बनकर दोनों ही कृतकृत्य होते हैं ।

परिवार को सुसंस्कारी कैसे बनाएँ ?

वह कौन-सा कारण है जो मनुष्य को सबसे ज्यादा त्रस्त किये दे रहा है ? इस घुटन का उत्तर एक ही शब्द में दिया जा सकता है कि 'गृह-कलह' कलह क्यों उत्पन्न होती है ? स्पष्ट ही कलह का कारण सुसंस्कारिता का अभाव है, कुसंस्कारिता जहाँ भी होगी वहाँ द्वन्द्व पैदा होगा, विग्रह खड़े होंगे और कलह मचेंगे । जिस परिवार के सदस्य सुशील, सुसंस्कृत सभ्य एवं उदात्त स्वभाव वाले होंगे वहाँ गृह-कलह और विग्रह खड़े होने के कोई कारण ही नहीं हैं । भले ही वह परिवार सम्पन्न हो या विपन्न, निर्धन हो या धनी । कुछ लोग हैं जो आर्थिक स्थिति को पारिवारिक विघटन का कारण मानते हैं । उनका यह सोचना एकांगी ही है । आर्थिक कठिनाइयों के कारण कुछ असन्तोष अवश्य उत्पन्न होता है किन्तु उतना नहीं, जितना कि घर-घर में दिखाई दे रहा है । यदि आर्थिक सुदृढ़ता ही पारिवारिक सुख-शान्ति का कारण रही होती तो उन सभी परिवारों में सुख-सम्पन्नता दिखाई देती जो समृद्ध हैं । परन्तु ऐसा अनिवार्य रूप से कहीं दिखाई नहीं देता कि जो परिवार सम्पन्न हैं, वहाँ का वातावरण भी सुख-शान्ति से भरा हुआ है ।

वस्तुतः पारिवारिक सुख-शान्ति का कारण आर्थिक या भौतिक नहीं है वरन् परिवार में रहने वाले सदस्यों की संस्कारशीलता है । जो कुटुम्ब भावनात्मक रूप से संगठित, एक, सुदृढ़ और सुसंस्कृत होते हैं वहाँ गृह-कलह के कोई कारण ही नहीं दिखाई देते । इसके विपरीत संस्कारशीलता के अभाव में सुशिक्षित होने पर परिवारों के सयाने-लड़के दुर्व्यसनी एवं दुर्गुणी बन जाते हैं । चारित्रिक गुणों से रहित उच्छृंखल, निरकुंश और अनुशासनहीन हो जाते हैं । यह संस्कारशीलता का अभाव ही है जो घरों में बड़े-बूढ़ों के अधिकार एवं कर्तव्यों में सन्तुलन नहीं रखने देती और क्लेश-कलह के कारण उपस्थित करते हैं । स्त्रियाँ घर की सुख-समृद्धि में शान्ति, सन्तोष, स्नेह, सौहार्द्र एवं हँसी-खुशी के योगदान का महत्व न जानने के कारण गाल फुलाये, मुँह लटकाये, रूठी और ऐंठी रहती हैं तथा कुटुम्ब के वातावरण को विषाक्त किये रहती हैं । संस्कारों का ही अभाव है जो घर के सदस्यों को असहिष्णु और अहंवादी बना देता है । घर की बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ अधिकार लिप्सा से पीड़ित होकर दूसरे लोगों का उठना- बैठना दूभर कर देती हैं । क्या कारण है ? इन सब विकारों, विकृतियों एवं त्रुटियों का एक ही कारण है और वह है परिवारों का असंस्कृत होना ।

सुसंस्कृत परिवार का इतना महत्व तो बताया जाता है, उसका गुणगान भी खूब किया जाता है । परन्तु उसका अर्थ क्या है ? परिवार में सुसंस्कृत होने का एक ही अर्थ है उसके सदस्यों में गुण, कर्म स्वभाव का सुन्दर विकास होना । दूसरों को उनकी दुःखदायी क्रियाओं, कुमार्ग पर ले जाने वाले उनके दुर्गुणों और क्रोध, द्वेष, दुर्भाव, ईर्ष्या, स्वार्थ, अनुदारता, असहिष्णुता आदि दोषों का परिमार्जन कर उनके स्थान पर सदाचार, सुशीलता, प्रेम, पारस्परिक एकता, उदारता, मधुरता और प्रसन्नता के बीजारोपण करना ही उनको सुसंस्कृत बनाना है ।

परिजनों को इस प्रकार सुसंस्कारिता के मार्ग पर अग्रसर करने का उत्तरदायित्व गृहपति को अपने ऊपर लेना चाहिए, क्योंकि परिवार का मुखिया और संचालक होने से उसी का प्रभाव सबसे ज्यादा होता है । अपने देश में पितृसत्तात्मक परिवारों का ही प्रचलन है । प्रत्यक्ष रूप में परिवार पर उसी का नियन्त्रण रहता और माता उस नियंत्रण को प्रभावी बनाती है । इसलिए परिवार के संचालन शासन में माता-पिता दोनों को ही भूमिका होती है । किसकी भूमिका प्रधान है और किसकी गौण ? यह विभाजन नहीं किया जा सकता पर इतना निश्चित है कि परिवार को दोनों ही समान रूप से प्रभावित करते हैं । उनकी बात को घर का कोई सदस्य कदाचित् ही टाल पाता है । उपेक्षा की स्थिति तब आ सकती है जब गृहपति स्वयं ही सुसंस्कृत न हो स्वयं ही उन गुणों का अनुसरण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करता हो अथवा सुधार में सीख के स्थान पर अधिकार का प्रयोग करता हो और दण्ड अथवा भय के आधार पर वंचित संस्कारों को आरोपित करने का प्रयास करे । इस तरह की भूल के कारण परिवार में पहले से ही ज्यादा गृहकलह का वातावरण और सघन ही जायेगा तथा सुधार के लिए किये गये प्रयास अभिशाप सिद्ध होंगे ।

परिवार के सदस्यों को सद्गुणी, सदाचारी, सुशील और सुसंस्कृत बनाने के लिए सर्वप्रथम स्वयं को सद्गुणी, सदाचारी और सुशील बनना चाहिए अन्यथा इस प्रयोजन के लिए किये गये मौखिक उपदेश व्यर्थ तो जायेंगे ही अपनी प्रतिक्रिया उत्पन्न किये बिना भी न रहेंगे । स्वयं अपना आचरण और रहन-सहन ऐसा रखना चाहिए जिससे परिजनों को स्वयमेव ही उसका अनुकरण करने की प्रेरणा मिले । उदाहरण के लिए, यदि परिवार के सदस्यों को सभी प्रकार के दुर्व्यसनों से दूर रखना है तो सर्वप्रथम यह देखना चाहिए कि अपने में तो कहीं कोई ऐसा व्यसन नहीं है । परिजनों को सादगी और मितव्ययता सिखाना है तो स्वयं अपनी आवश्यकताओं को कम से कम किया जाए और वाणी से नहीं आचरण से सादगी अपनाने की प्रेरणा दी जाय । घर के लोगों को समय का पाबन्द और नियमित दिनचर्या का पालन करने वाला बनाना है तो स्वयं अपना जीवनक्रम एक निश्चित निर्धारित दिनचर्या में बाँध लेना चाहिए । इसी प्रकार क्रोध, कटुता और उत्तेजना के दुर्गुणों को अपने स्वभाव से निकाल कर प्रसन्नता, मधुरता तथा स्थिरता विकसित कीजिए ताकि घर के लोगों को ही वैसी ही प्रेरणाएँ मिलें । अधिकारों का कम से कम प्रयोग किया जाय और कर्त्तव्यपालन पर अधिक से अधिक ध्यान दिया जाए ताकि परिजनों में कर्त्तव्यपालन के प्रति निष्ठा भाव जाग्रत हो ।

परिजनों को सुसंस्कारित बनाने के अतिरिक्त उन्हें हर दृष्टि से सुविकसित और सुयोग्य बनाना भी उतना ही आवश्यक है । इस क्रम में परिवार के प्रत्येक सदस्य को शिक्षित एवं साक्षर बनाने के लिए हर सम्भव प्रयास करने चाहिए । उसमें से विकासोन्मुख सदस्यों को शिक्षित और विकसित बनाये तथा प्रौढ़ निरक्षरों को साक्षर बनाने के लिए भी आवश्यक तथा हर सम्भव प्रयत्न करने चाहिए । बिना शिक्षा या साक्षरता के संस्कार-शोधन में कठिनाई ही उत्पन्न होगी । स्मरण रखा जाना चाहिए कि शिक्षा जीवन निर्माण की आधारशिला है और इस तथ्य को समुचित महत्व देते हुए उन सदस्यों को जिन्होंने विद्यालय में शिक्षा प्राप्त की है, चाहिए कि वे उन सदस्यों को घर पर ही शिक्षित या साक्षर बनाने का प्रबन्ध करें जिन्हें विद्यालय में जाने का समय नहीं मिला या वैसी सुविधा उपलब्ध नहीं हो सके । कम से कम इतनी शैक्षणिक योग्यता तो हर किसी में होनी चाहिए कि वह प्रेरणाप्रद जीवन साहित्य का स्वाध्याय कर सके और उससे लाभ उठा सके । जिस परिवार में इतना कर लिया गया, परिवार के सभी सदस्यों में शिक्षा के प्रति रुचि जाग्रत कर ली गई, उस परिवार के सम्बन्ध में आश्वस्त हुआ जा सकता है कि वहाँ सुसंस्कारिता के अभिवर्द्धन की सम्भावनाएँ पुष्ट होने लगी हैं ।

सुसंस्कारिता संबर्द्धन के लिए और भी उपाय किये जाने चाहिए तथा ऐसा माध्यम अपनाना चाहिए जिससे कि परिजनों को सहज ही इस दिशा में गति मिलती रहे । इसके लिए परिवार में आस्तिकता का वातावरण बनाना अतीत व उपयोगी सिद्ध हो सकता है । इसमें कोई दोराय नहीं है कि आस्तिकता शुभ संस्कारों की जननी है । अतः घर के प्रत्येक सदस्य को आस्तिक, ईश्वर विश्वासी और धर्म श्रद्धालु बनाने के लिए परिवार का वातावरण धार्मिक बनाये रखना चाहिये । इसके लिए प्रतिदिन प्रातः सायं सामूहिक प्रार्थना का कार्यक्रम चलाया जा सकता है । संध्या समय, रात के सोते समय पारिवारिक गोष्ठी का उपक्रम भी काफी उपादेय सिद्ध हो सकता है जिसमें कथा-प्रसंगों के माध्यम से धर्म प्रेरणा और नैतिक शिक्षण की आवश्यकता पूरी होती रहे । धर्मोत्सवों और संस्कार आयोजनों के द्वारा भी घर के लोगों का धर्म के प्रगतिशील स्वरूप का परिचय-प्रशिक्षण किया जा सकता है । इस प्रकार घर का वातावरण धार्मिक बनाये रहने से सदस्यों के मन में दुर्गुणों के प्रति सहज ही वितृष्णा उत्पन्न होगी तथा उनके अन्तरंग में अनायास ही सुसंस्कारिता के बीज पड़ेंगे

मानसिक और भावनात्मक परिष्कार के अतिरिक्त शरीर स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना भी परिजनों को सुसंस्कारी बनाने की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण कदम है । शरीर स्वास्थ्य के लिए व्यायाम और श्रम के महत्व से इन्कार नहीं किया जा सकता । इसके लिए वृद्ध व्यक्ति प्रातः भ्रमण का कार्यक्रम बना सकते हैं । तरुण सदस्य परिश्रमपूर्ण व्यायाम कर सकते हैं । किशोर घर में अपने साथियों के साथ हाकी, फुटबाल, बालीबाल कबड्डी आदि खेल खेलने जा सकते हैं । स्त्रियाँ शरीर श्रम की आवश्यकता पूरी करने के लिए अनाज और मसाले कूट-पीस सकती हैं । घरों में बागवानी, घर की सफाई आदि शौक पैदा कर व्यायाम का लाभ उठाया जा सकता है । कहने का आशय यह है कि प्रत्येक परिजन को ऐसे श्रम के लिए प्रेरित करना चाहिए जिससे शारीरिक व्यायाम होता रहे और उसके माध्यम से स्वास्थ्य संरक्षण की आवश्यकता पूरी होती रहे ।

स्वास्थ्य संरक्षण के लिए व्यायाम के बाद भोजन का क्रम आता है । बल्कि कहा जाना चाहिए कि दोनों का समान महत्व है । इस सन्दर्भ में परिवार के सभी सदस्यों की रुचि एक समान बनाने का प्रयास करना चाहिए अर्थात् स्वाद को नहीं आहार की सात्विकता या पौष्टिकता को महत्व देने का अभ्यास डालना चाहिए । कहना नहीं होगा कि सात्विक भोजन शारीरिक पोषण की ही आवश्यकता पूरी नहीं करता बल्कि मन की वृत्तियों का भी संशोधन करता है । सात्विक प्रकृति वाले व्यक्ति की साधारण से साधारण और सादे से सादे भोजन में स्वाद आता है । अतः घर की रसोई को पराकाष्ठा तक सरल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सात्विक तथा सादा रखना चाहिए । भोजन का स्तर इतना माध्यमिक होना चाहिए जो तीसों दिन समान रूप से चलता रहे । दो दिन पूरी-पकवान, दो दिन मेवा-मिष्ठान्न और दो दिन खीर-हलुवा तथा बाकी दाल शाक का क्रम चलाया जाए तो उससे परिवार के लोगों की रुचि तो बिगड़ती ही है घर की आर्थिक स्थिति पर भी अनावश्यक दबाव पड़ता है । साधारण एवं सामान्य भोजन स्वास्थ्य को तो सन्तुलित रखता ही है, खर्च की दृष्टि से भी सस्ता पड़ता है, शाक-सब्जियाँ और मौसमी फल-मक्खन, मलाई, से किसी भी रूप में कम लाभदायक नहीं है ।

सभी सदस्यों में एकरस और परस्पर स्नेह बनाये रखने के लिये यह भी आवश्यक है कि सबके साथ समान व्यवहार किया जाये । घर के सभी सदस्य समान मूल्य के वस्त्र पहनें, किसी के कपड़े कम ज्यादा मूल्य के न हों । इसके साथ ही सभी सदस्यों को सुविधायें भी एक जैसी प्राप्त होनी चाहिए । यह नहीं कि पिता घर का मुखिया है तो उसके लिए विशेष सुविधाएँ और छोटे बच्चे या अन्य सदस्य कुछ नहीं कमाते तो उन्हें कम सुविधाएँ । यह विषमता अथवा भेदभाव परिवार के लोगों में द्वेष और वैमनस्य उत्पन्न करता है । इसी प्रकार घर के सम्बन्ध में प्रत्येक जानकारी परिवार के सभी सदस्यों को रहनी चाहिए । कम से कम आय व्याय का ज्ञान तो हर सदस्य को रहे ही । इसके लिए घर के सदस्यों को इकट्ठा करके सब की राय से घर का बजट बनाना चाहिए परिवार के आय व्यय की जानकारी परिजनों की अपनी-अपनी आवश्यकताएँ आर्थिक परिधि से बाहर जाने से बचाएँगी और उनमें मितव्ययता का विकास तो होगा ही ।

इस तरह के और भी कई उपाय ढूँढ़े जा सकते हैं तथा उन्हें क्रियान्वित किया जा सकता है जिनके प्रभावस्वरूप परिवार का प्रत्येक सदस्य घर के प्रति प्रगाढ़ अपनत्व अनुभव करने लगे । स्वयं को उस परिवार शरीर का ही एक अंग समझने लगे और पारिवारिक सुख-शान्ति को किसी भी मूल्य पर नष्ट न होने दे । परिजनों में इस प्रकार सुसंस्कारिता का विकास कर ही घर का वातावरण सुख-शान्तिपूर्ण बनाया जा सकता है । जहाँ सुंसस्कारिता होगी वहाँ के सदस्य जानेंगे भी नहीं कि गृह-कलह क्या होता है ? क्योंकि वहाँ तो प्रत्येक एक दूसरे से आत्मीयता के प्रगाढ़ बन्धनों में बँधा रहेगा । किसी के व्यक्तित्व से किसी के अहं को टकराहट का प्रश्न ही कहाँ पैदा होता है ? जब किसी को अपना कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व या अहं ही नहीं है ।

परिवार निर्माण की धुरी—नारी

स्त्री को परिवार का हृदय और प्राण कहा जा सकता है । परिवार का सम्पूर्ण अस्तित्व तथा वातावरण गृहणी पर निर्भर करता है । यदि स्त्री न होती तो पुरुष को परिवार बनाने की आवश्यकता न रहती और न इतना क्रियाशील तथा उत्तरदायी बनने की । स्त्री का पुरुष से युग्म बनते ही परिवार की आधारशिला रख दी जाती है और उसे अच्छा या बुरा बनाने की प्रक्रिया भी आरम्भ हो जाती है ।

परिवार बसाने के लिए अकेला पुरुष भी असमर्थ है और अकेली स्त्री भी । पर मुख्य भूमिका किसकी है, यह तय करना हो तो स्त्री पर ही ध्यान केन्द्रित हो जाता है । क्योंकि अन्दरूनी व्यवस्था से लेकर परिवार में सुख-शान्ति और सौमनस्य के वातावरण का दायित्व प्रायः स्त्री को ही निभाना पड़ता है । इसलिए स्त्री के साथ गृहणी, सुगृहणी गृह-लक्ष्मी जैसे सम्बोधन जोड़े गये हैं । पुरुष के लिए ऐसा कोई विशेषण नहीं मिलता ।

यहाँ गृहणी से तात्पर्य केवल पत्नी से ही नहीं है । स्त्री चाहे जिस रूप में हो, वह जिस परिवार में रहती है वहाँ के वातावरण को अवश्य प्रभावित करती है । माता, पत्नी, बहिन, बुआ, चाची, ताई, दादी, ननद, देवरानी, जेठानी, भाभी आदि सभी परिवार के निर्माण में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं और वहाँ के वातावरण को, उस घर के सदस्यों को प्रभावित करती हैं । कारण कि पुरुष तो अधिकांशतः बाहर रहते हैं, वृद्ध या असमर्थ पुरुष घर में रहते भी हों तो वे स्त्री की तरह वहाँ के वातावरण को प्रभावित नहीं करते । क्योंकि स्त्री की कोमलता, संवेदना, करुणा, स्नेह और ममता की जो हार्दिक विशेषताएँ होती हैं, वे पुरुषों में नहीं होतीं । इन विशेषताओं के कारण ही महिलाएँ घर के सदस्यों के अधिक निकट रहतीं और उन्हें प्रभावित करती हैं ।

पुरुष या पिता में एक बारगी कोई दुर्गुण भी हो, तो भी माँ अपनी सन्तान को उससे बचा सकती है । शिवाजी के पिता-मुसलमान राजा के दरबार में नौकरी करते थे और उनकी अधीनता को मानते थे । पर जीजाबाई अपने पुत्र को स्वातन्त्र्य योद्धा के रूप में ही विकसित करना चाहती थीं । इसके लिए उन्होंने आवश्यक सभी सतर्कताएँ बरतीं । अपने पति के प्रभाव से बचाया और शिवाजी को उसी ढाँचे में ढाला । यह आश्चर्यजनक हो सकता है, कि पिता जिसके प्रति कृतज्ञ हो, जिसकी रोटी खाते हों और यह भी चाहते हों कि पुत्र भी उन्हीं की तरह निकले तथा पुत्र विपरीत दिशा में ही विकसित हो, अलग ही मनोभूमि रखने वाला बन जाय । लेकिन माँ के महत्व को देखते हुए यह अस्वाभाविक नहीं है । सामान्य जनजीवन में भी अयोग्य और दुर्व्यसनी पिता की सन्तानें योग्य तथा सच्चरित्र बन जाती हैं । इसका कारण यही है कि वहाँ मातायें दोष-दुर्गुणों से होते रहने वाले कटु-अनुभवों की पुनरावृत्ति सन्तान में न आने देने के लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील रहती हैं । यह भी देखा जाता है कि ईमानदार, विश्वासपात्र और सच्चरित्र व्यक्तियों की सन्तानें कभी बेईमान, धोखेबाज और चरित्रहीन निकल जाती हैं । यह भी इसलिए कि माताएँ तथा परिवार में रहने वाली स्त्रियाँ बच्चों के प्रति विशेष रूप से सावधानियाँ नहीं रखतीं तथा कई भूलें और त्रुटियाँ कर डालती हैं, जिनका प्रभाव बच्चों पर भी पड़ता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सन्तान के निर्माण में ही नहीं, परिवार के समूचे निर्माण में भी पुरुष की अपेक्षा नारी की भूमिका हजार गुनी अधिक महत्वपूर्ण और अधिक प्रभावशाली है । इसलिए स्वामी दयानन्द ने कहा है- ''एक पुरुष के शिक्षित और सुसंस्कारी होने का अर्थ है, अकेले उसी का उपयोगी बनना और एक माँ यदि शिक्षित, समझदार तथा सुयोग्य हो तो समझना चाहिए पूरा परिवार आदर्श-रत्न बन गया, नर-रत्नों की खदान निकल आयी ।'' लेकिन हमारे देश में अभी वह सौभाग्यसूचक स्थिति नहीं आ पायी है, जिसमें कि सभी नर-रत्न हो सकें । किसी समय में भारत में ३३ करोड़ नर-रत्न रहे होंगे, जिन्हें तैतीस कोटि देवताओं के नाम से पुकारा जाता था, पर अब वह बात पुराण कल्पना ही लगती है । ऐसा लगना स्वाभाविक भी है, क्योंकि भारतीय समाज का अध्ययन करते समय नारी का जो रूप उभरकर सामने आता है, उसे देखकर विश्वास नहीं होता कि कभी वह नर-नारायण की जननी रही होगी ।

इसलिए परिवार-निर्माण में महान उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए नारी को अपनी योग्यता, शारीरिक एवं मानसिक क्षमता विकसित करनी चाहिए । शारीरिक दृष्टि से रुग्ण, कमजोर तथा मानसिक दृष्टि से अविकसित स्त्रियाँ अपना तो निर्माण कर ही नहीं सकतीं, परिवार का निर्माण कहाँ से करेंगी ? शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ एवं नीरोग बनने के लिए प्रकृति के नियमों का पालन नितांत आवश्यक है । प्रकृति बड़ी कठोर है और वह किसी के द्वारा भी नियम का उल्लंघन सहन नहीं करती । जो भी उपेक्षा करेगा, उसे रोग और दुर्बलता का दण्ड भुगतना ही पड़ेगा । स्वास्थ्य को बिगाड़ने वाली आदतों से सभी परिचित हैं, उन्हें छोड़ दिया जाय और संयमित, नियमित तथा व्यवस्थित जीवन जिया जाय तो प्रकृति के उपहार, स्वास्थ्य और शक्ति आसानी से प्राप्त किये जा सकते हैं ।

माताएँ स्वयं प्राकृतिक नियमों का पालन करने लगें तो स्वयं उनका स्वास्थ्य तो ठीक रहेगा ही, घर के अन्य सदस्यों को भी इससे प्रेरणा मिलती रहेगी और वे भी उन नियमों का पालन करने लगेंगे अन्यथा स्वयं नियमों का उल्लंघन करते रहा जाय और घर के अन्य सदस्यों, बच्चों को नियम पालन के लिए कहा जाय तो यह कभी भी नहीं हो सकता । स्वयं के लिए हो या दूसरों के लिए, घर में खाने के लिए चटपटी, मिर्च-मसाले की, तली-गली-सड़ी चीजें बनाई जायें तो न स्वयं की स्वास्थ्य रक्षा हो सकती है और न घर के अन्य सदस्यों पर समझाने-बुझाने का प्रभाव पड़ता है ।

शारीरिक-विकास के लिए जहाँ प्रकृति के नियमों का पालन आवश्यक है, वहीं मानसिक विकास के लिए शिक्षा की भी आवश्यकता है । अच्छा तो यही है कि लड़कियों को आरम्भ से ही पढ़ाया जाय, पर जिन महिलाओं को बचपन में ऐसी सुविधा नहीं मिली है, उन्हें अपने परिवार के सदस्यों से, शिक्षित स्वजनों से पढ़ना-लिखना सीखना चाहिए । घर के जिम्मेदार सदस्यों को भी चाहिए कि वे वस्त्र, भोजन और आवास की तरह ही शिक्षा को भी प्राथमिक आवश्यकता मानें और घर की अशिक्षित महिलाओं के लिए ऐसी व्यवस्था करें । आभूषण, सौन्दर्य प्रसाधन, शृंगार, फैशन, टीपटाप और मनोरंजन से भी अधिक महत्व शिक्षा को दें । विद्या से बढ़कर कोई संपत्ति नहीं है और अज्ञान से बढ़कर कोई दारिद्र्य नहीं ।

शिक्षित महिलाएँ अपने परिवार की अशिक्षित महिलाओं को पढ़ा सकती हैं । आजकल कई ऐसी समाज-सेवी संस्थायें भी काम कर रही हैं, जो प्रौढ़ महिला-शिक्षा की व्यवस्था करती हैं । पास में वैसी कोई सुविधा हो तो उसका लाभ भी उठाया जाना चाहिए और शिक्षा की आवश्यकता को अविलम्ब पूरा करने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए ।

शिक्षित महिलाएँ अपने अर्जित ज्ञान और विकसित क्षमता का लाभ पूरे परिवार को देती रह सकती हैं । अशिक्षित और निरक्षर स्त्रियों में ज्ञान और क्षमता जैसी चीज मिलना असम्भव-सा ही है । उनका ज्ञान अपने आस-पास तक ही सीमित रहता है और योग्यता केवल चौके-चूल्हे में ही प्रयुक्त होती है । इसके विपरीत शिक्षित स्त्रियाँ अपनी नयी-नयी जानकारियों का लाभ पूरे परिवार को देती रहती हैं । उन्हें बच्चों का पालन-पोषण ही नहीं, उनके विकास और निर्माण की कला भी आती है ।

महिला-शिक्षा के लिए शिक्षित महिलाएँ सेवा-भावना से भी प्रयास कर सकती हैं । प्रतिभा का उपयोग लाभ उठाने में नहीं, लाभ देने में करना अधिक गौरवपूर्ण है । महिला-शिक्षा के लिए कुछ परिवारों में सामूहिक रूप से, मुहल्ले या गाँव में ऐसी शिक्षित महिलाओं को प्रयत्न करना चाहिए । फुरसत के समय जब पास-पड़ौस की महिलाएँ मिलकर बैठती हैं तो घण्टों समय व्यर्थ की गप्प-बाजियों और निन्दा-चुगलियों में बीत जाता है । उस समय का उपयोग यदि ज्ञान-चर्चा, शिक्षा-अभ्यास और प्रेरक कथा-प्रसंग कहने-सुनने में किया जाय तो न कोई अतिरिक्त समय लगता है और न व्यर्थ की गप-शप से बैर-वैमनस्य पैदा होने की सम्भावना रहती है ।

स्वास्थ्य और शिक्षावृद्धि के लिए स्वयं तथा परिवार को लक्ष्य रखकर किये जाने वाले प्रयत्नों के अतिरिक्त एक तीसरा प्रयास और भी महत्वपूर्ण है, वह है घर की सुव्यवस्था तथा परिवार को सुसंस्कृत बनाने की चेष्टा । कहा जा चुका है कि ठोस प्रभाव कह-सुनकर नहीं, स्वयं के माध्यम से आदर्श प्रस्तुत कर ही उत्पन्न किये जा सकते हैं । प्राय: देखा जाता है कि घरों में स्वच्छता और सुरुचि पूर्ण सुसज्जा का बड़ा अभाव रहता है । स्वयं गृहणी का इस ओर कोई ध्यान नहीं तो परिवार के अन्य सदस्य भी इस विषय में कोई ध्यान नहीं देते । घर में गन्दगी देखकर बच्चे भी वहाँ और गन्दगी बढ़ाने लगते हैं । घर की यह अस्त-व्यस्तता बताती है कि यहाँ आलस्य और प्रमाद का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राज्य है । आलस्य और प्रमाद से मानव-जीवन का बहुत बड़ा दोष समझा गया है और उसका पहला परिचय गन्दगी के रूप में मिलता है । इसलिए गृहिणी को स्वयं साफ-स्वच्छ रहने के साथ-साथ घरों में भी सुरुचि और सुसज्जा का वातावरण बनाना चाहिए एवं घर के अन्य लोगों में भी स्वच्छता के संस्कार डालने चाहिए ।

गृहिणी को 'गृह-लक्ष्मी' के सम्मानजनक विशेषण से सम्बोधित किया गया है, जिसका अर्थ है-वह नैतिक दृष्टि से सुदृढ़ और स्वभाव की दृष्टि से देवी है । मधुरता तथा सद्भाव का अमृत उसमें बहता रहता है, जिसके द्वारा वह घर के अशान्त सदस्यों को धैर्य बँधाती, दिशा बताती और प्रेरणा देती है तथा परिवार-संस्था की नींव भी मजबूत बनाती है ।

परिवार में सुख-शान्ति का आधार उसके सदस्यों में रहने वाला स्नेह, सहयोग और सद्भाव है । घर में इसी से स्वर्गीय वातावरण का सृजन होता है । इसलिए गृहिणी को इसके लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील रहना चाहिए । परिवार के सभी सदस्य एक दूसरे की सुविधा का ध्यान रखें, परस्पर आदर-सम्मान करें, एक दूसरे का सहयोग करें और स्नेह, सद्भाव तथा आत्मीयता, उदारता भरें । इसके लिए प्रेरणायें भरने का काम भी स्त्री ही अधिक कुशलतापूर्वक कर सकती है ।

स्वयं अपना व्यवहार भी उसी स्तर का रखना चाहिए तथा छोटों के प्रति असीम दुलार, स्नेह, ममता तथा बड़ों के प्रति श्रद्धा और सम्मान बरतना चाहिए । इस तरह की प्रेरणाएँ भरने के लिए रात्रि में सोते समय पारिवारिक गोष्ठियाँ करने, बच्चों को प्रेरणाप्रद कथा-गाथाएँ सुनाने का काम भी बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है ।

कई बार ऐसे प्रसंग आते हैं, जब घर के लोगों में आपस में ही एक दूसरे के प्रति गुत्थियाँ और ग्रन्थियाँ बन जाती हैं तथा मन-मुटाव रहने लगता है । इन समस्याओं का समाधान और गुत्थियों का सुलझाव भी विवेक और समझदारी के साथ किया जा सकता है, पुरुष जिस तरह परिवार की भौतिक कठिनाइयाँ हल करता है तत्सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करता है, उसी तरह गृहणी को भी परिजनों की भावात्मक तथा विचारात्मक समस्याओं को हल करने का प्रयत्न करना चाहिए ।

पूरे परिवार के दोष, दुर्गुणों और बुराइयों के दुःखदायी प्रभाव नारी अपने ऊपर सहन करती है । यह सहनशीलता स्तुत्य है पर इतना भर पर्याप्त नहीं है । उन्हें सहन करते रहना और उनके समाधान की कोई चेष्टा न करना प्रच्छन्न रूप से दोष-दुर्गुणों को बढ़ावा देने जैसा है । यह तो ठीक है कि मनुष्य के स्वभाव में अच्छाइयाँ और बुराइयाँ दोनों ही भरी पड़ी हैं । उसमें देवोपम गुण है तो पशु तुल्य कुसंस्कारों की कमी भी नहीं । गौरवास्पद तो यही है कि अच्छाइयों को उभारा जाय और बुराइयों को दबाया या नष्ट किया जाय । पिछले कई जन्मों से पशु-योनियों में भटकते हुए उनके संस्कार लेकर जन्मा मनुष्य वह प्रभाव शीघ्र छोड़ देगा-यह सरल नहीं है । पर नारी के लिए सरल हो सकता है, क्योंकि मनुष्य की नकेल उसके हाथ में तभी आ जाती है, जबकि वह जन्म लेता है और वह उसी समय से आवश्यक सावधानी तथा सूझबूझ बरते तो मनुष्य को परिवार की स्वामिनी होने के नाते घर के सदस्य को मनचाही शिक्षा दे सकती है । मनोवैज्ञानिकों के लिए स्वभाव परिष्कार भले ही कठिन हो, पर नारी के लिए, माँ के लिए वह नितान्त सरल है । वह यह काम आसानी से कर सकती है और मनुष्य की निर्मात्री होने के कारण इसे करने में ही उसकी शान है ।

परिवार संस्था का पुनर्गठन हो

परिवार संस्था को, व्यक्ति और समाज की मध्यवर्ती संस्था कहा जा सकता है । परिवार का कलेवर छोटा होता है-चर्म-चक्षुओं की आदत यह है कि वस्तु के आकार के अनुरूप उसका महत्व माना जाय । परिवार छोटी संस्था है, इसलिये उसे उपेक्षणीय समझा जाता है । पर यदि गम्भीरतापूर्वक सोचा जाय तो प्रतीत होगा कि व्यक्ति और समाज की व्यवस्था एवं प्रगति की आधार भूमिका निभाने की पूरी जिम्मेदारी परिवार के स्तर पर ही निर्भर रहती है । अस्त-व्यस्त परिवारों में पले हुए लोगों का व्यक्तित्व कभी उच्चस्तर का नहीं हो सकता और न पिछड़े स्तर के लोग कभी प्रगतिशील, सुविकसित समाज की रचना कर सकते हैं । गरीबी एक बात है और संस्कृति दूसरी । गरीबी परिस्थितियों पर निर्भर है, पर संस्कृति को हर परिस्थिति में सुस्थिर रखा जा सकता है । पारिवारिक परम्पराएँ यदि सद्भाव सम्पन्न हों, उनमें उच्चस्तरीय प्रचलन विद्यमान हो तो समूची मानवी जाति का, समस्त संसार का वातावरण सुख-शांति से भरा-पूरा रह सकता है और स्वल्प साधन रहते हुए भी स्वर्गीय परिस्थितियों का आनन्द उपलब्ध हो सकता है ।

दुर्भाग्य यह रहा है कि व्यक्ति-निर्माण के लिये, धर्म और समाज निर्माण के लिए शासन जैसा समर्थ तन्त्र परिवार संस्था को सुविकसित बनाये रखने के लिए खड़ा नहीं किया गया है । उसकी समस्याओं को सुलझाने के लिए उसका परिष्कृत ढाँचा खड़ा करने के लिए सर्वांग पूर्ण आचार-संहिता और विश्वव्यवस्था की आवश्यकता थी, पर वह व्यवस्था लोगों के ध्यान में नहीं आई । होम साइन्स 'गृहविज्ञान' के नाम से लड़कियों को स्कूलों में पुस्तकें तो कितनी ही पढ़ाई जाती हैं, पर उनमें काम-काजी, साज-सँभाल की ऊपरी जानकारियाँ भर होती हैं । परिवार के सदस्यों का भावना-स्तर, चिन्तन, दृष्टिकोण, किस प्रकार परिष्कृत किया जाय, उनमें गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता का विकास कैसे किया जाय ऐसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तथ्य नहीं ही दिखाई पड़ते हैं । सुसज्जित घर में रहने का आनन्द तो अच्छे होटलों में रहकर भी उठाया जा सकता है । अमीर लोग वैसी सुविधा उपयुक्त सामग्री खरीद कर, प्रशिक्षित नौकर रखकर भी उपलब्ध कर सकते हैं । परिवार का बाह्य अंग ही उस सुव्यवस्था और सुसज्जा को माना जा सकता है, जो गृहविज्ञान की पुस्तकों में लिखी मिलती हैं और स्कूलों में पढ़ाई जाती हैं । यहाँ अभाव उस तन्त्र का बताया जा रहा है जो परिवार के वातावरण को सुसंस्कृत बनाता और जिसमें पले हुए लोग संस्कारवान बनकर निकलते हैं । परस्पर सद्भाव बरतने और समाज में सत्प्रवृत्तियों का अभिवर्द्धन करने वाले कुशल माली सिद्ध होते ।

आवश्यकता इस बात की है कि उपेक्षित परिवार संस्था को नये सिरे से गठित किया जाय और उसे अपनी द्विपक्षीय भूमिका का निर्वाह कर सकने की क्षमता से सम्पन्न बनाया जाय । इसलिये कितने ही नये आधार खड़े करने होंगे और अवांछनीय प्रचलनों से पीछा छुड़ाना पड़ेगा । मजबूत आधार वे ही हो सकते हैं जिनमें न्याय, नीति, औचित्य और विवेक को समुचित प्रश्रय दिया गया हो । परम्पराओं का महत्व इसलिये है कि वे स्वभाव का अंग बन जाती हैं । रुचि उसी ढाँचे में ढल जाती है और ढर्रा उसी पटरी पर लुढ़कने लगता है । मनःक्षेत्र में इन परम्पराओं की जड़ें इतनी गहरी जमी रहती हैं कि निष्पक्ष दृष्टि से अवांछनीय सिद्ध होने पर भी पूर्वाग्रहों के पक्ष में प्रायः हठवादिता बनी रहती है और उसके पक्ष में विचित्र प्रकार के तर्क प्रस्तुत किये जाते रहते हैं । परिवर्तन के लिये रजामन्द करना तो और भी कठिन पड़ता है ।

जो हो, अवांछनीयताओं को निरस्त करके औचित्य का प्रतिष्ठापन नितान्त आवश्यक है । यदि आत्महत्या के लिए कटिबद्ध मानव जाति को उज्ज्वल भविष्य के राजमार्ग पर घसीटना है तो कई महत्वपूर्ण कदम उठाने पड़ेंगे । व्यक्ति का नैतिक, बौद्धिक, चारित्रिक स्तर ऊँचा उठाना पड़ेगा और मानवी आदर्श एवं कर्त्तव्यों को अपनाने के लिये उसे राजी-राजी से रजामन्द करना पड़ेगा । सामाजिक प्रचलनों में ऐसी मर्यादाएँ, प्रथाएँ तथा धाराएँ जोड़नी पड़ेंगी जो समूहगत अवांछनीयताओं को निरस्त करके निष्पक्ष न्याय को व्यवहार में ला सकने की परिस्थितियाँ बना सकें ।

व्यक्ति और समाज की स्थिति उच्चस्तरीय बनाने का व्यावहारिक उपाय एक ही है कि परिवारों का पुनर्गठन किया जाय । इस गठन में भारी उथल-पुथल करने की जरूरत नहीं है और न प्रचलित परम्पराओं को नष्ट करना ही अभीष्ट है । प्राचीन और नवीन को, प्रचलन और औचित्य को परस्पर मिला देने की सुधार प्रक्रिया अपनाकर ही अभीष्ट प्रयोजन पूरा किया जा सकता है । हमारे प्रयास इसी दिशा में हैं । परिवार संस्था की ओर लोकचेतना को आकर्षित करके जन-जन को यह समझाया जाना है कि परिवार छोटे होने पर भी वे उपेक्षणीय नहीं हैं । वे बहुत ही शक्तिशाली होते हैं और दूरगामी परिणाम उत्पन्न करते हैं । इसलिये उन्हें सुविकसित बनाने की दिशा में समुचित ध्यान दिया जाना चाहिये अन्यथा व्यक्ति और समाज की दुर्दशा दूर न हो सकेगी और आज जो समस्याएँ सर्वभक्षी विभीषिका बनकर रह रही हैं उनका समाधान नहीं हो सकेगा ।

युद्धों में रक्तपात का क्रूर-कर्म कठोर प्रकृति के बने पुरुष से ही सफलतापूर्वक सम्भव हो सकता है । नारी की करुणा इस दिशा में उसे बहुत आगे तक नहीं बढ़ने देती । यों प्रकारान्तर अथवा आपत्ति धर्म के अनुरूप वे भी युद्ध में प्रवृत्त होती देखी गई हैं । परिवार का भावनात्मक क्षेत्र पूरी तरह नारी के अधिकार क्षेत्र में आता है । यों उसकी आर्थिक तथा नियामक प्रखरता का भार प्रायः पुरुष को ही सँभालना पड़ता है, पर जहाँ तक भावनात्मक बीजारोपण तथा उस फसल को उगाने, बढ़ाने और फली-फूली बनाने में नारी जो कर सकती है वह नर के लिए किसी भी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता । घर-परिवार नारी का प्रधान कार्यक्षेत्र है । नौकरी, व्यवसाय आदि करना पड़े तो भी घर सँभालना उसी के जिम्मे रहता है । परिवार के छोटे-बड़े सदस्य बाहर कम और घर में अधिक समय तक रहते हैं । इस अवसर पर उन्हें तरह-तरह की सुविधा एवं व्यवस्था का लाभ महिलायें ही प्रदान करती हैं और प्रत्यक्ष परोक्ष प्रभाव डालती हैं । धर्मोपदेशक की तरह तो नहीं, पर प्रकारान्तर से वे समूचे परिवार को प्रभावित करती हैं । यदि उनका स्तर ऊँचा हो तो वे निर्धनता जैसी कठिनाइयों के रहते हुए भी घर को देव मन्दिर जैसा सुरुचिपूर्ण बना सकती हैं और अपने आन्तरिक सौन्दर्य से घर के हर सदस्य को मुग्ध करके कठपुतली की तरह नचा सकती हैं । आदतें सुधारना, बदलना और आरम्भ करना वस्तुतः घर की ढलाई-भट्टी की सहायता से ही सम्भव हो सकता है । परिवार वह प्रयोगशाला है जिसमें किये गये अनुसन्धानों का लाभ समूचे समाज को मिलता है । यह वह नर्सरी है जिसमें उगाये हुए पौधे जहाँ-तहाँ सुरम्य उद्यान बनकर विकसित होते हैं और अपनी हरियाली तथा सुषमा से मनोरम वातावरण उत्पन्न करते हैं ।

परिवार संस्था का आरम्भ नारी के गृह प्रवेश के साथ होता है । एकाकी पुरुष दफ्तर में काम करके और सराय में सोकर भी गुजर कर सकता है, पर घोंसला बनाने और अण्डे बच्चों को सँभालने की बात नव-वधू के साथ ही जुड़ी आती है । सूक्तिकार की वह उक्ति अक्षरशः सही है जिसमें कहा गया है कि 'न गृहं गृह मित्याहु गृहिणी गृह मुच्यते' अर्थात् इमारत घर नहीं कहलाती वस्तुतः गृहणी, घरवाली ही घर है । गृहलक्ष्मी के प्रवेश से ही टूटे पुराने घर झोंपड़े हास-उल्लास से भर जाते हैं और सृजन के बहुमुखी प्रयत्न एक निश्चित दिशा में चल पड़ते हैं । घर का आरम्भ ही नारी नहीं करती वरन् उसका विस्तार, पोषण, विकास भी वही करती है, अब उसमें इतना और जोड़ना है कि परिवार को सुसंस्कृत, परिष्कृत और समुन्नत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बनाने का ईश्वर प्रदत्त उत्तरदायित्व भी वही सँभाले । उसका भावनात्मक ढाँचा इस प्रयोजन को भली प्रकार पूरा कर सकने के लिये सर्वथा उपयुक्त बनाया गया है ।

इस दिशा में पहले कदम यह होना चाहिये कि गृहलक्ष्मी, गृहसंचालिका इस योग्य बने कि वह इतनी प्रतिभा को उपयुक्त उत्तरदायित्व निबाहने में सक्षम सिद्ध कर सके । महिला जागरण का उद्देश्य ऐसे इंजीनियर तैयार करना है जो नये समाज का नया भवन बनाने में अपनी कुशलता सिद्ध कर सकें । नारी जागरण के अन्य प्रयोजन भी हैं, प्रतिफल भी, पर सबसे बड़ी उपलब्धि वही मिलनी है कि उस परिवार संस्था में नवजीवन भरा जा सकेगा और उस क्षेत्र में उगे हुए नर-रत्न व्यक्ति और समाज-निर्माण की समस्त समस्याओं का सहज समाधान कर सकेंगे ।

अपने परिवारों का पुनर्निर्माण आरम्भ करें

नारी की गर्भधारण क्षमता, कोमलता, स्नेह-सौजन्य भरी सहृदयता जैसी प्रकृति प्रदत्त देवी प्रवृत्तियों ने उसे इस योग्य बनाया है कि परिवार के चित्र-विचित्र घटकों को अपनी भाव रज्जु में ठीक प्रकार बाँधे रह सके । उसकी सहज प्रकृति और प्रवृत्ति इसके लिए पूर्णतया उपयुक्त एवं सक्षम है कि व्यक्ति और समाज की मध्यवर्ती, परिवार संस्था की सूत्र संचालिका बनने का श्रेय प्राप्त कर सके । आज की नारी अपनी उस जिम्मेदारी को ठीक तरह निभा सकने की क्षमता खोती चली जा रही है, उसके लिए जिस कुशलता, दूरदर्शिता, धैर्य और अध्यवसाय की आवश्यकता पड़ती है, उसका क्रमशः ह्रास ही होता चला जा रहा है । यों कहने को तो अभी भी प्रजनन कर्म उसी को करना पड़ता है और घर, परिवार का भार वहन वही करती है, पर वह खदान अब हीरे नहीं उगाती । वे परिवार अब कहाँ हैं, जो नर-रत्न महामानव, देव पुरुष उत्पन्न करने का श्रेय प्राप्त करते थे ।

आज परिवार संस्था बुरी तरह टूट रही है । फिर उसके दिव्य आश्रम में रहने वाले स्वर्गीय सुख-शान्ति का रसास्वादन कैसे करें ? उस कल्पवृक्ष की छाया से, पलकर निकलने वाले देवमानवों के दर्शन कैसे हों ?

महिला जागरण अभियान को इस दिशा में पूरी सतर्कता बरतनी होगी कि जब वहाँ जितनी सुविधा नारी को मिलती जाय, वहाँ वह अपनी इस सुखद स्थिति का उपयोग परिवार संस्था के पुनर्निर्माण में करने लग जाय । जाग्रत महिलाएँ अपना सामाजिक उत्तरदायित्व निभायें । नारी जागरण की सामूहिक गतिविधियों को अग्रगामी बनायें । साथ ही अपने निज के परिवारों का नव-निर्माण करने में भी कुछ उठा न रखें । अन्य लोगों को आकर्षित करने का यह सबसे अच्छा तरीका है । जाग्रत महिलाएँ अपने घर परिवार को कितना सुन्दर, कितना सुव्यवस्थित एवं कितना समुन्नत बना सकती हैं । इस अनुकरणीय उदाहरण को प्रस्तुत करने के लिए अपने परिवार के हर सदस्य को पूरी तत्परता के साथ प्रयत्न करना चाहिए ।

हमारी पारिवारिक परम्पराओं का पुनर्गठन होना चाहिए । अपने घर लिपे-पुते, साफ-सुथरे, स्वच्छ, सुव्यवस्थित रह सकते हैं । यदि नव-जाग्रति को स्वच्छता और सुव्यवस्था के साथ जोड़ दिया जाय तो सहज ही उस दिशा में उत्साह जगेगा और श्रम करने, समय लगाने को जी करेगा । हर दिन घर के सब लोग मिलकर घर की वस्तुओं का यथाक्रम सुव्यवस्थित ढंग से रखने, जहाँ-कहीं तनिक भी गन्दगी हो उसे बुहार फेंकने के लिए लगा दिया करें तो पूरा घर एक सुसज्जित प्रदर्शनी जैसा लगेगा । साप्ताहिक छुट्टी के दिन दीवारें पोतने, किवाड़े रंगने, फर्नीचर पर पालिश, टूट-फूट की मरम्मत करने के लिए लगा दें । किताबों की जिल्दें बाँधना, फटे-टूटे कपड़ों की जोड़-गाँठ, दचके-पिचके बर्तनों को ठोक-पीट, बिखरी वस्तुओं को यथाक्रम लगाना, रद्दी चीजों को कबाड़ियों को, दूसरे जरूरतमन्दों के हवाले करना जैसे अनेक छुट-पुट काम घर में मिल सकते हैं जिन्हें करने से पुरानी वस्तुएँ नई बन जाती हैं और घर किसी सुसज्जित देव-मन्दिर जैसा दीखने लगता है । ऐसे घर में प्रवेश करते ही कोई बाहर का आदमी यह अनुभव करता है कि यहाँ कोई सुरुचियुक्त, कलात्मक दृष्टि वाले सुसंस्कृत मनुष्य रहते हैं । ऐसा सम्मान प्राप्त करना एक बड़े गौरव की बात है ।

हर घर में फूल पौधे उगाना, शाक-वाटिका लगाना एक सराहनीय आदत है । इससे छोटे बच्चों में भी सृजनात्मक एवं उत्पादक कार्य करने का अभ्यास बनता है । सबसे बड़ी बात है परिवार के सदस्यों में स्वच्छता, व्यवस्था एवं श्रमशीलता के प्रति उत्साह उत्पन्न होना । मामूली कामों के सहारे विकसित किये गये इस अभ्यास से भविष्य में जो महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व कन्धे पर आते हैं, उन्हें भी तत्परता एवं मनोयोग के साथ पूरे करने की आदत बनती है और उसका प्रतिफल शानदार सफलताओं के रूप में सामने आता रहता है ।

एक दूसरे के प्रति शिष्टता और मधुरता का व्यवहार करें, उसकी परम्परा हमारे घरों में उत्पन्न की जानी चाहिए । यह कार्य मात्र धर्मोपदेश या डाँट-डपट करने से सम्भव न होगा वरन् बड़ों को अपना स्वभाव बदलकर छोटों को उस शालीनता का अनुकरण करने की प्रभावशाली प्रेरणा देनी होगी । जिस आकृति का खिलौना ढालना हो, पहले उसी प्रकार का साँचा बनाना पड़ता है । मिट्टी को उसी में चिपका-चिपकाकर खिलौने बनाये जाते हैं । यही व्यवस्था घर में श्रेष्ठ परम्पराओं की स्थापना के लिए करनी पड़ती है । बड़े अपने स्वभाव से छोटों के प्रति शिष्टाचार एवं सम्मानयुक्त मधुर व्यवहार करेतै हैं और समय-समय पर स्नेह-सौजन्य युक्त संकेत करते चलते हैं कि उन्हें भी वैसा ही आचरण करना चाहिए । यही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रभावशाली तरीका परिजनों का स्वभाव बदलने में कारगर सिद्ध होता है ।

अक्सर घरों में छोटे बच्चे परस्पर गाली-गलौज, मार-पीट, छीना-झपटी करते देखे जाते हैं । यह शिक्षा वे प्रकारान्तर से घर के बड़ों से ही सीखते हैं । असहिष्णुता और अशिष्टता का व्यवहार चलता रहता है तो बालकों की कोमल वृत्ति उसे पकड़ लेती है और अपने ढंग से आचरण में ले आती है । ऐसा अव्यवस्थित परिवारों में ही होता है । सभ्य स्तर के घरों में बच्चे एक दूसरे के साथ शिष्टाचार, सम्मान और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने के आदी होते हैं । ऐसा उन्होंने अपने बड़ों से ही सीखा होता है । नकल करने में बालक और बन्दर बड़े प्रवीण होते हैं । अपने क्षेत्र में जो कुछ आये दिन होता देखते हैं, वे उसी का अनुकरण करने लगते हैं । यदि घर की परम्परा बदलनी हो तो प्रभावशाली सदस्यों को अपनी बुरी आदतें छोड़नी होगी । बोलने में मधुरता, व्यवहार में शिष्टता और दृष्टिकोण में शालीनता का समुचित समावेश करना होगा । इस परिवर्तन का प्रभाव सभी कुटुम्बियों पर पड़ेगा और क्या छोटे, क्या बड़े अपने स्वभाव में वैसा परिवर्तन करते दिखाई देंगे । इसके लिए समय-समय पर उन्हें समझाते-बुझाते रहना भी उचित है । अच्छी बात अच्छे ढंग से कही जाय तो आमतौर से मानवी विवेक उसे बहुत कुछ स्वीकार भी कर लेता है । घर के लोगों के स्वभाव में सज्जनता का समावेश करके हमें उनके उज्ज्वल भविष्य का पथ प्रशस्त करते हैं । दूसरों के साथ सज्जनोचित्त व्यवहार करके ही उनसे सम्मान और सहयोग प्राप्त किया जा सकता है । स्पष्ट है कि मनुष्य दूसरों की सद्भावना पाकर ही उनका सहयोग ले सकता है और जिसे जितना अधिक सहयोग मिलता रहता है, उन्हें उसी अनुपात में सफलताएँ भी मिलती चली जाती हैं ।

परस्पर सहानुभूति की, स्नेह और सहयोग की प्रकृति घर के सभी लोगों में पैदा की जानी चाहिए । एक दूसरे के दु:ख-दर्द में सम्मिलित हो यह पता लगाते रहें कि कोई किसी कठिनाई में तो नहीं है । शारीरिक कष्ट, मानसिक उलझन, उचित आवश्यकताओं का पूरा न होना, अपमान-जनक व्यवहार जैसे कारणों से मनुष्य खीजता और खिन्न रहता है । कोई ऐसी कठिनाई में फँसा हो तो उसे उपयुक्त सहयोग या परामर्श देकर खिन्नता दूर करनी चाहिए । हारी बीमारी सबमें लोग एक दूसरे का ध्यान रखें तो कठिनाई में फँसा व्यक्ति यह अनुभव करता है कि वह अकेला नहीं है । उस पर सहानुभूति की वर्षा होती है । इस अनुभूति के साथ भारी कठिनाइयाँ भी हलकी और सह्य बन जाती हैं। बड़ी कक्षाओं के बच्चे छोटी कक्षा वालों को पढ़ाने की सहायता दे सकते हैं। मिठाई आदि घर में आवे तो उसे पहले दूसरों को बाँटकर तब पीछे स्वयं खाने की आदत यदि बचपन से ही पड़ जाय तो बड़े होने पर स्वार्थपरता और संकीर्णता की दुष्प्रवृत्ति कम ही पनपने पावेगी । उदार मनुष्य दूसरों के मन में अपना स्थान बनाता है और बदले में बढ़ा-चढ़ा प्रतिदान पाता है । उदार व्यवहार घाटे का सौदा नहीं है । स्वार्थी की तुलना में उदार प्रकृति का मनुष्य कहीं अधिक मात्रा में मौलिक और आत्मिक लाभ प्राप्त करता है ।

फिजूलखर्ची की बुरी आदत से स्वयं बचना चाहिए और दूसरों को बचाना चाहिए । धन कमाना सरल है, उसका सही उपयोग कर सकना विवेकशील और दूरदर्शी लोगों के लिए ही सम्भव होता है । आमतौर से लोग अपने समय, चिन्तन एवं धन का अनुपयुक्त कार्यों में अनावश्यक अपव्यय करते हैं । फलत: दोष-दुर्गुण बढ़ते जाते हैं और अभाव के कारण उन साधनों से वंचित रहना पड़ता है जो प्रगतिशील जीवनयापन के लिए नितान्त आवश्यक थे । कृपण बनना तो बुरा है, आवश्यक कामों में खर्च करना ही चाहिए, पर अपव्यय एक पाई का भी सहन न किया जाय । एक क्षण भी आलस्य, प्रमाद में बर्बाद न किया जाय और हर घड़ी उपयोगी कामों में न लगे रहा जाय, एक पैसा भी अनुपयुक्त कामों में खर्च न करके अपने समस्त साधनों को उपयोगी सत्प्रयोजनों में लगाये रहा जाय तो दुहरा लाभ होगा । समय और धन की बर्बादी से जो अनेकानेक दोष-दुर्गुण उत्पन्न होते हैं, उनसे बचे रहना सम्भव हो जाय और यों उन दोनों महाशक्तियों के सत्प्रयोजनों में नियोजित रहने पर जो एक से एक बढ़कर लाभ मिलते हैं, उनमें निरन्तर बढ़ोत्तरी होती चली जायगी। इसी दुहरे लाभ का खाई और मीनार जितना अन्तर सद्गुणी और दुर्गणों के बीच देखा जाता है । परिवार के हर सदस्य को इसी उपयोगी रीति-नीति को अपनाने की प्रेरणा देनी चाहिए ।

परिवार का हर सदस्य अपने शरीर, कपड़े, सामान आदि की पूर्ण सुव्यवस्था रखें । उनका स्तर जागरूक व्यक्तियों द्वारा प्रयुक्त होने जैसा रहना चाहिए। इतना ही नहीं, अन्य परिजनों द्वारा फैलायी जाने वाली व्यवस्था को देखने और सुधारने का स्वभाव भी सबका बनाया जाय । गन्दगी और अव्यवस्था एक ही प्रक्रिया के दो नाम हैं और यह किसी व्यक्ति की बहुत बड़ी निन्दा है कि उसे फूहड़, आलसी और अव्यवस्थित कहा जाय । अर्द्ध-मूर्च्छित चेतना में ही प्रमाद उत्पन्न होता है और आरम्भ किये काम को लोग आधा-अधूरा छोड़कर चल देते हैं । जो भी काम करना है, उसे समेटकर या पूरा करके ही उठना चाहिए । कपड़े उतार कर उन्हें जहाँ-तहाँ नहीं पटकना चाहिए । वरन् ठीक तरह खूँटी पर टाँगने के उपरान्त ही आगे बढ़ना चाहिए । जल्दीबाजी की बन्दर जैसी चंचलता प्राय: हर काम को अधूरा छोड़ कर नया करने की उतावली करती है । उसी में फूहड़पन फैलता है । पीछे इन बिखरे कामों या पदार्थों को समेटने में समय भी बर्बाद

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होता है और वस्तुओं के भी खोने, टूटने का डर रहता है । देखने में अस्त-व्यस्तता की आदत मामूली-सी बुराई लगती है पर उसके कारण जब बड़े कामों और बड़े उत्तरदायित्वों को निभाने में असमर्थ रहने के रूप में सामने आती है तो प्रतीत होता है कि एक छोटी-सी चिंगारी सारे गाँव को जलाकर नष्ट करने वाली किस तरह बन जाती है ।

हर परिवार को स्नेह, सौजन्य, सद्भावना और सत्प्रवृत्तियों को अभ्यास करने की प्रयोगशाला के रूप में विकसित होना चाहिए, घर का वातावरण ऐसा बनना चाहिए, जिसमें रहकर हर व्यक्ति क्रमशः अधिक सुसंस्कारी बनता चला जाय । सम्पन्नता के बिना काम चल सकता है पर शालीनता के बिना तो केवल दुर्गति ही हाथ रह जाती है । बहुमूल्य, वस्त्र, आभूषण भले ही न हों, कीमती भोजन भले ही न मिले, पर ईमानदारी, उदारता जैसे मानवोचित सद्गुणों की सम्पदा अधिकाधिक मात्रा में सुसज्जित रहने का अवसर मिलना चाहिए । इतना बन पड़े तो समझना चाहिए कि परिवार को सच्चे अर्थों में सुसम्पन्न बना लिया गया ।

संयुक्त परिवार का लाभ तभी है, जब उसका प्रत्येक घटक एक दूसरे के लिए अधिक सद्भावसम्पन्न और अधिक सहयोगी सिद्ध हो सके । महिला जागरण अभियान की सदस्याओं को अपने परिवार का पुनर्निर्माण करने में संलग्न होना चाहिए ताकि उस सफलता से प्रभावित होकर दूसरे लोग भी मिशन में सम्मिलित होने के लिए आकर्षित हो सकें ।

परिवार निर्माण में कथा-प्रसंगों का महत्व

अपेक्षित और आवश्यक सुधार के लिए प्रेरणा, परामर्श, सलाह और शिक्षण आधारभूत आवश्यकता है । यह आवश्यकता पूरी कर पाना न तो आसान है और न ही हर किसी के लिए सम्भव । सुधार का परामर्श देना वास्तव में टेढ़ी खीर है क्योंकि कोई भी व्यक्ति इसे सरलतापूर्वक हजम नहीं कर सकता । परामर्श को पचा पाना तो दूर रहा लोग इसे एक सीमा से अधिक सहन भी नहीं कर पाते । इसमें दूसरे अपना अपमान अनुभव कर सकते हैं, उनके स्वाभिमान को इससे ठेस पहुँच सकती है और लोग इसे अस्वीकार कर सकते हैं । अस्वीकार ही नहीं उलट कर प्रतिकार भी कर सकते हैं । कारण कि आमतौर पर सुधार का परामर्श सहन नहीं होता । गलती बताने वाले को निन्दक, विद्वेषी, सनकी आदि कहा जाता है यह तो सर्वविदित है और किसी भी उलटे-सीधे तर्क का सहारा लेकर परामर्श की बात काटने लगते हैं । अशिष्ट लोग मुँहजोरी करने लगते हैं और शिष्ट व्यक्ति सुधार का परामर्श सुनकर मुँह से भले ही कुछ न कहते हों पर व्यवहार से निश्चित ही उपेक्षा एवं अवज्ञा बरत कर प्रकारान्तर से असहमति तथा विरोध व्यक्त करते हैं, दोनों ही परिस्थितियों में बात एक ही सिद्ध होती है कि परामर्श को अस्वीकार कर दिया गया ।

परिवार निर्माण एक अनिवार्य आवश्यकता है । इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए परिवार में प्रचलित परम्पराओं तथा स्वजनों में विद्यमान दोष-दुर्गुणों का परिष्कार करने के लिए परामर्श देना भी आवश्यक है और परामर्श को कोई भी व्यक्ति सीधे-सीधे स्वीकार नहीं करता तो प्रश्न उठता है कि यह आवश्यकता किस प्रकार पूरी की जाए ? जब अपने ही निकटवर्ती लोग और विशेषतः घर-परिवार के सदस्य तो आत्मीयता, मैत्री, स्नेह की परिधि में अन्य बाहरी व्यक्तियों की अपेक्षा समीप होते हैं, वही सुधारवादी परामर्शों की उपेक्षा अवज्ञा करते हैं तो समस्या और टेढ़ी हो जाती है । ऐसी स्थिति में खीझने और बुरा मानने की अपेक्षा विचार यह किया जाना चाहिए कि सत्परामर्श एवं उपयोगी शिक्षण की अवज्ञा क्यों हो रही है ? इसका विश्लेषण करने पर अलग-अलग परिवारों में अलग-अलग कारण तथा अलग-अलग स्थितियाँ विद्यमान मिलेंगी । यह इतना सत्य है कि भूल में सीधे परामर्श के प्रति जिसे उपदेश भी कहा जा सकता है आमतौर पर उपेक्षा भाव का पाया जाना । यह कारण परामर्श में बाधक न बने अथवा स्वजन सम्बन्धियों का उपदेश कड़वे घूँट की तरह न लगे, इसके लिए एक आसान उपाय अपनाया जा सकता है और यह है अपने परिवार में परिवार गोष्ठियों का प्रचलन । परिवार में सुसंस्कारिता का वातावरण बनाने के लिए यह प्रचलन अति उपयोगी सिद्ध हो सकता है और होता रहा है ।

इन परिवार गोष्ठियों में आदर्शवादी प्रेरणाएँ प्रदान करने वाली कथा-कहानियाँ, प्रेरक प्रसंग कहे सुने जाएँ । कहना नहीं होगा कि प्रेरक कहानियों में रोचकता और शिक्षाओं का अद्भुत समन्वय होता है। बच्चों से लेकर बूढ़े तक सभी लोग कथा-प्रसंगों को बड़े चाव के साथ सुनते हैं है । बच्चों के लिए तो जो साहित्य छपता है, उसमें निन्यानवें प्रतिशत भाग कथा-कहानियों का ही रहता है । वयस्क-प्रौढ़ व्यक्तियों के लिए छपने वाली पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों में भी कथा साहित्य की ही भरमार होती है। प्रेसों में प्रायः अस्सी प्रतिशत छपाई कथा साहित्य की ही होती है । इस प्रकार कथा-कहानी साहित्य की सशक्त प्रभावशाली और महत्वपूर्ण विद्या है । प्राचीनकाल में इस विद्या का उपयोग धर्मक्षेत्र में भी प्रचुरता से किया जाता रहा है और लोगों को आदर्शवादी प्रेरणाएँ शिक्षाएँ देने के लिए इस विद्या का खूब उपयोग होता आया है । संस्कृत में इतना अधिक कथा साहित्य लिखा गया है कि शेष साहित्य के कुल योग से भी कई गुना अधिक है। पुराण, उपपुराण, महाकाव्य, नाटक आदि ग्रन्थों का विस्तार अन्य विद्याओं में लिखे गए साहित्य की तुलना में कहीं अधिक है। रामायण,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

महाभारत, भागवत आदि कथा ग्रन्थ, धर्मक्षेत्र में ये भक्ति भावना के साथ पढ़े सुने जाते हैं और इस कथन-श्रवण का पुण्य माहात्म्य बताया जाता है। यह सब कथा-श्रवण के पीछे मनुष्य की सहज रुचि का ही परिचायक है ।

कथा प्रसंग कहने सुनने की इस प्रभावशाली और स्थापित पद्धति का उपयोग परिवार में सुसंस्कारिता का वातावरण बनाने के लिए किया जाना चाहिए और जिन गोष्ठियों का आरम्भ किया जाए उनमें धार्मिक, सामाजिक नैतिक एवं आदर्शवादी दिशा देने वाली प्रेरणाप्रद कहानियाँ कही सुनाई जानी चाहिए । यदि पौराणिक कथाओं को इस प्रचलन में महत्व देना हो तो उन्हें अधाधुन्ध पढ़ने का क्रम नहीं अपनाना चाहिए बल्कि उनमें से उपयोगी अंश ढूँढ़ने और उन्हें उभारने की रीति-नीति अपनानी चाहिए । इसी प्रकार नैतिक शिक्षण की आवश्यकता है कि पुराण साहित्य प्राचीनकाल की आवश्यकता को ध्यान में रखकर लिये गये हैं । उनमें से कई प्रसंग आज की परिस्थितियों में महत्वहीन हो चुके हैं ।

पुराण ग्रन्थों के समान ही इतिहास में से भी ऐसे प्रेरक घटनाक्रम छाँटे जा सकते हैं जो मानव जीवन के विविध पक्षों पर तो प्रकाश डालते ही हों, अवांछनीयताओं की हानि तथा सन्मार्ग पर चलने के लाभ भी सिद्ध करते हों । ऐसे कथा प्रसंगों की आपको प्रेरणाप्रद पुस्तकें बाजार में मिल सकती हैं और पुस्तकालयों में से ढूँढ़ी जा सकती हैं ।

परिवार का शिक्षण करने के लिए, स्वजनों को सीधे ढंग से परामर्श देने के लिए चलाई जाने वाली पारिवारिक गोष्ठियों में इसी प्रकार की प्रेरणाप्रद कथा-कहानियाँ कही सुनाई जानी चाहिए । इस क्रम का आरम्भ हो जाने के बाद गोष्ठी में सम्मिलित होने के लिए न तो किसी से आग्रह करना पड़ेगा और न ही उन्हें समझने, दबाव डालने की आवश्यकता पड़ेगी । बाल, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, छोटे-बड़े परिवार के सभी सदस्य इस तरह की गोष्ठियों में सम्मिलित होने के लिए उत्सुक रहेंगे और कोई भी यह अनुभव न करेगा कि यह उपदेश प्रवचन का रूखा विषय है जिसका सरंजाम उन्हें सुधारने-सम्भालने लिए ही खड़ा किया गया है ।

कहा जा चुका है कि कथा-कहानियाँ सभी को रुचिकर लगती हैं और हर किसी में अच्छी रोचक कहानियाँ सुनने की इच्छा भूख की तरह जागती रहती है । संयुक्त परिवारों में अभी भी बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों को छोटे बच्चे घेरकर बैठ जाते हैं और उनसे कहानियाँ सुनने का आग्रह करते हैं । यह बात अलग है कि दादी-नानी की कहानियों में शिक्षा भले ही कम मिलती हो, उनमें रोचकता का ही ज्यादा समावेश रहता है । किन्तु यह सच है कि उनकी रोचकता बच्चों को बाँधे रखती है । कहानियाँ बच्चों को ही प्रिय लगती हों ऐसा भी नहीं है । गाँवों में जहाँ मनोरंजन के आधुनिक साधन नहीं पहुँच पाए हैं लोग चौपालों पर बैठकर सिंहासन बत्तीसी, बेताल पच्चीसी, अकबर बीरबल के मजाक, आल्हा ऊदल की कहानियाँ और राम-कृष्ण के जीवन प्रसंग बड़े चाव के साथ कहते सुनते हैं। मनोरंजन के आधुनिक साधन इन दिनों उपलब्ध हैं। वे भी एक प्रकार से कहानियाँ ही कहते बताते हैं । उदाहरण के लिए सिनेमा को ही लिया जाए । किसी भी फिल्म का आधार उसकी कहानी ही होती है और नई-नई कहानी देखने के लिए ही लोग नई-नई फिल्में देखने जाते हैं ।

निश्चित ही कहानी कहना और कहानी सुनना मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञान वृद्धि और नैतिक शिक्षा का भी एक सशक्त सफल माध्यम है । पुराने प्रचलन को, घरों में कहानियाँ कहने की परम्परा को पुनर्जीवित किया जाना चाहिए। घर का कोई भी उत्साही सदस्य इस कार्य को अपने कन्धों पर ले सकता है। बदल-बदल कर परिवार के समझदार सदस्य भी इस आवश्यकता को पूरी कर सकते हैं । इससे कहने वाले को वक्तव्य कला का अभ्यास होगा और घरों में मनोरंजन की एक उत्साहवर्द्धक परिपाटी चल पड़ेगी ।

परिवार शिक्षण में स्वजनों से सुधार और परिष्कार करने का, उनमें आदर्शवादी उमंगें उत्पन्न करने की दृष्टि से कहानी कहने का प्रचलन देखने में भले छोटा प्रतीत होता हो,परन्तु परिणाम में यह अतीव उपयोगी और लाभप्रद सिद्ध हो सकता है।

परिवार के साथ आत्मनिर्माण का दुहरा लाभ

परिवारों के प्रभावशाली सदस्य आगे बढ़ें और अपने अपने कुटुम्ब में उत्कृष्ट चिन्तन तथा श्रेष्ठ आचरण के लिए वातावरण बनायें । तभी इस महान सृजन प्रयोजन में सफलता मिलेगी । अपने शरीर को आप सम्भालना पड़ता है । शौच, स्नान, भोजन, शयन आदि कृत्य स्वयं ही करने होते हैं । दूसरे तो एक सीमा तक इनकी व्यवस्था बनाने और सुविधा उत्पन्न करने में ही एक सीमा तक सहायता कर सकते हैं । ठीक इसी प्रकार जो परिवार का उत्तरदायित्व स्वीकार करने की स्थिति में हैं उनके सदस्यों को आगे बढ़ना चाहिए और अन्य दूरदर्शियों के साथ योजनाबद्ध रूप में धैर्यपूर्वक इस दिशा में कदम बढ़ाना चाहिए । यह कार्य धैर्यपूर्वक करने का है । उतावली में हानि होगी । आदतें देर से बनती हैं और देर से छूटती हैं । हर मनुष्य को अपने आप के प्रति असाधारण पक्षपात होता है । न अपने दृष्टिकोण में, न स्वभाव में, न क्रिया-कलाप में कोई दोष दीखता है। अपनी पीठ किसी को नहीं दीखती । इसी प्रकार अपने व्यक्तित्व की पृष्ठभूमि समझना भी सर्वसाधारण के लिए अति कठिन होता है। न तो कोई आत्मसमीक्षा करता है और न अपने दोष-दुर्गुणों को

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वीकार करता है। बताने पर अपना अपमान सोचता है और उस कथन को विद्वेषपूर्ण ठहराता है । प्रचलित ढर्रा बदलने के लिए-सुधार परिवर्तन के लिए सहमत करने में निश्चित रूप से असामान्य कठिनाई का सामना करना पड़ता है। अपने घनिष्ट तक इसकी उपेक्षा करते असहमत रहते और कई बार तो विरोध करते देखे गए हैं । आमतौर से ऐसे प्रयासों का उपहास होता है । व्यंग्य चलते हैं । प्रयत्नकर्त्ताओं को सनकी ठहराया जाता है। सामने सहमत पीछे असहमत की आँख मिचौनी चलती है । बाहर का सुधार सरल है, घर का कठिन । वस्तुओं की उलट-पलट करने में कुछ तो अड़चन पड़ती ही है पर व्यक्तियों का स्वभाव, अभ्यास एवं ढर्रा बदलना और भी अधिक कठिन है। ऐसी दशा में सफलता उन्हें ही मिलेगी जो धैर्यपूर्वक, संकल्पपूर्वक, साहसपूर्वक इस प्रयास में सदा-सर्वदा लगे रहने का निश्चय करेंगे । अवज्ञा होने पर उत्तेजना हो उठने और कलह खड़ा करने या खीज कर हाथ खींच लेने वाले उतावले लोग इस कार्य में हाथ न डालें तो ही अच्छा है । सफलता तो मिलेगी नहीं उलटे मनोमालिन्य का वातावरण बन जायगा ।

बच्चों को प्रौढ़ बनने में देर लगती है । कुसंस्कारिता बचकानापन है । बच्चे भी अनगढ़ होते हैं और कुसंस्कारी भी । दोनों को ही समुन्नत और सुसंस्कृत बनाने में धैर्य-पूर्वक प्रयासरत रहना पड़ता है । अनगढ़ परिवार को एक छोटा बच्चा मानकर चलना चाहिए और परिपक्व परिपुष्ट बनाने के लिए दूरगामी योजना बनानी चाहिए। गिरना सुगम है, उठना कठिन । विग्रह उत्पन्न करने और कुसंस्कारी आदतें सिखाने तथा कुमार्ग पर धकेलने में हर कोई सफल हो सकता है, किन्तु शालीनता को गले उतारना और उसे स्वभाव का अंग बनाने जैसी परिपक्व स्थिति तक पहुँचाना वटवृक्ष लगाने और उसे प्रौढ़ परिपक्व बनाने जितना कठिन है । यह एक उच्चस्तरीय साधना है। सृजन महान है। परिवार में सदस्य भले ही थोड़े हो या छोटे, पर उनमें सुसंस्कारिता उत्पन्न करना और परिपक्व बनाना उतना ही कठिन है जितना अनगढ़ पत्थर को सुगढ़ देव प्रतिमा में बदल देना । व्यक्ति गढ़ने का शिल्प संसार में सबसे बड़ा कला कौशल है । एक व्यक्ति गढ़कर भी कोई शिल्पी धन्य हो सकता है । फिर पूरे परिवार को बनाने का प्रयत्न करना और उसमें सफलता प्राप्त कर लेना भी सामान्य बात नहीं है । कार्य की गरिमा और जटिलता को समझते हुए जो धैर्यपूर्वक उस प्रयास में जुट सकें उन्हें सच्चे अर्थों में कलाकार कहा जायेगा । ऐसे कलाकार, जिन्हें स्वयं को इस तप साधना में तपाने और गलने के लिए व्रतशील तपस्वी की तरह तत्पर होना पड़ता है ।

परिवार निर्माण के लिए तत्पर होने में प्रिय परिजनों का सर्वोपरि लाभ है ऐसा लाभ जिसकी तुलना अन्य किसी सौभाग्य से नहीं हो सकती । उत्तराधिकारियों के लिए धन वैभव छोड़ सकना उतना सुखद नहीं हो सकता जितना उन्हें सुसंस्कारी बना देना । यह सम्पत्ति ऐसी है जो उनको सदा गौरवान्वित रखेगी और पग-पग पर श्रेय, सहयोग से लाभान्वित करेगी । सफलताएँ किसी भी क्षेत्र की क्यों न हों उन्हें व्यक्तित्वसम्पन्न लोग ही प्राप्त करते हैं । शिक्षण तो कहीं भी पाया जा सकता है किन्तु व्यक्तित्वों की ढलाई प्रधानतया परिवारों में ही होती है । गुरुकुल भी छोटे बच्चों को ढालने में तभी सफल होते थे जब उनकी पारिवारिकता का वातावरण बनाने का प्रधान रूप से और प्रशिक्षण का गौण रूप से प्रयत्न किया जाता था । हर परिवार को एक छोटे गुरुकुल के रूप में विकसित होना चाहिए ।

इस सृजन में सर्वोपरि लाभांश सृजेता के हिस्से में आता है । मूर्तियाँ गढ़ने से, चित्र बनाने से अभिनय से दर्शकों को लाभ मिलता है और वे कृतियाँ भी सम्मानास्पद होती हैं किन्तु गढ़ने वालों को आर्थिक लाभ भी होता है, संतोष भी मिलता है साथ ही अपनी कलाकारिता को अधिकाधिक समुन्नत बनाने का वह लाभ भी मिलता है जो उस सृजन से सम्बन्धित अन्य किसी को भी नहीं मिलता । उच्चस्तरीय कलाकारिता की उपलब्धि सभी सिद्धियों की तुलना में कहीं अधिक ऊँची है । परिवार सृजन में संलग्न व्यक्तियों को असामान्य कलाकार कह सकते हैं । सामान्य कलाकार वस्तुओं को गढ़ने और हलचलों में सौष्ठव भरने तक सीमित रहते हैं । यह जड़ पदार्थों को पदार्थजन्य हलचलों से आकर्षक बनाने भर की बात हुई। बड़ी बात यह है जिसमें मनुष्य जैसे उद्धत प्राणी को सुसंस्कारिता से सम्पन्न करते हुए देव स्तर तक पहुँचाया जाय ।

दूसरों की आदतें बदलने के लिए अपनी आदतें बदलनी होती हैं । दूसरों का स्वभाव सुधारने के लिए पहले अपना सुधारना होता है । उपदेशों से जानकारी भर दी जा सकती है। व्यक्ति को सुधारना उन्हीं के लिए सम्भव होता है जो अपने आपको आदर्श के रूप में विकसित कर सके हैं। शिक्षा तो सहज ही सुनी जा सकती है पर प्रेरणा तभी मिलती है जब अनुकरण के लिए प्रभावशाली आदर्श सामने हो । ज्योतिवान दीपक ही दूसरे नयों को जलाता है । साँचे के अनुरूप ही खिलौने या पुर्जे ढलते हैं । दूसरे को कुछ सिखाना बताना भर हो तो बात दूसरी है अन्यथा ढालने का लक्ष्य तो सामने हो तो सर्वप्रथम स्वयं ढलने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं ।

परिवार को सुसंस्कारी बनाने के प्रयास में उसके लिए अग्रणी लोगों को सर्वप्रथम अपनी ही गढ़ाई करनी पड़ती है। इस संदर्भ में जो जितनी सफलता प्राप्त कर लेंगे उन्हें परिवार निर्माण में उसी अनुपात में सफलता मिलेगी । जो गुण सहचरों में उत्पन्न करने हैं वे सर्वप्रथम अपने में उत्पन्न करने होंगे। अनुकरण-प्रिय मनुष्य प्राणी जो कुछ समझता है, उसमें तो शिक्षकों के परिश्रम का फल भी कहा जा सकता है पर जो बनता है उसमें प्रायः उन्हीं के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चरित्रों का योगदान होता है जो साथ रहते और प्रभावित करते हैं । कुसंग और सत्संग के परिणामों से सभी परिचित हैं । इनमें शिक्षण परामर्श नहीं वह प्रभाव काम करता है जो साथी की भली बुरी विशिष्टता के कारण उत्पन्न होता है ।

परिवार निर्माण का कार्य जो-जो हाथ में लें, वे सर्वप्रथम यह निश्चय करें कि परिजनों के चिन्तन और चरित्र में क्या सुधार परिवर्तन अभीष्ट है जो निर्धारण हो उसे सर्वप्रथम अपने दृष्टिकोण एवं क्रियाकलाप में समाविष्ट किया जाय । इससे अपनी गतिविधियों में इस प्रकार का हेर-फेर होगा । जिसका सहज प्रभाव समस्त परिवार को अनुप्राणित करने लगे ।

यह आत्मसाधना ही है जो परिवार निर्माण के बहाने अपने आपको चिन्तन की दृष्टि से सुसंस्कृत और आचरण की दृष्टि से सभ्य बनाती है । सृजन के लिए उत्कृष्ट स्तर की कलाकारिता चाहिए । व्यवहार कौशल का दूरदर्शी विवेक का संतुलन एवं साहस का समन्वय वस्तुतः समग्र व्यक्तित्व का निर्माण है । आत्मनिर्माण और परिवार निर्माण का उभयपक्षीय प्रयोजन पूरा करने के लिए जो आगे बढ़ते हैं उन्हें सच्चे अर्थों में जनशिल्पी कहा जा सकता है ।

परिवार निर्माण की परोक्ष पृष्ठभूमि

परिवार निर्माण अभियान के बहुमुखी लाभ हैं । इन छोटे से घर-घरौंदों में साधनों की सुव्यवस्था, गतिविधियों की शालीनता और भावनाओं की उत्कृष्टता की प्रतिष्ठापना की जा सके तो उनमें स्वर्ग उतरता, थिरकता दिखाई देगा । साधन तो सुखदायक भर होते हैं । सन्तोष और आनन्द तो सद्भावनाओं और सत्प्रवृत्तियों पर आधारित रहता है । स्वर्ग में साधना का नहीं सुसंस्कारिता का ही बाहुल्य होता है । सज्जनता ही मनुष्य को देवोपम बनाती है । परिवार निर्माण का उद्देश्य है अपने इसी घोंसला को सुख-शान्ति का प्रत्यक्ष भाण्डागार बनाकर रख देना । भले ही उसमें साधनों का अभाव ही क्यों न बना रहे ? हँसता-हँसाता सहजीवन कितना उत्साहवर्द्धक, कितना आनन्ददायक और कितना प्रगतिशील होता है ।

परिवार महान उपलब्धियों का केन्द्र है । यदि वातावरण उपयुक्त हो तो उस छोटी-सी प्रयोगशाला में हाड़-माँस की कायाओं को पारस और कल्पवृक्ष जैसी विशिष्टताओं से सम्पन्न किया जा सकता है । सिद्धिदायक तपोवन और उमंग उल्लास भरा विनोद-निकेतन का उभयपक्षीय उद्देश्य अपने इन्हीं अभावग्रस्त और अशिक्षित कहे जाने वाले परिवारों में सम्भव हो सकता है ?

सुसंस्कृत परिवारों को कल्पवृक्षों का उद्यान कह सकते हैं । कल्पवृक्ष स्वयं यशस्वी और सम्मानित होते हैं । उनके सम्पर्क में आने वाले निहाल होते हैं । सुसंस्कृत परिवार का उद्यान अपनी गरिमा से स्वयं लाभान्वित होता है और अपने प्रभाव क्षेत्र को अभिनव प्रेरणाएँ प्रदान करता है ।

परिवार ही समाज के मेरुदण्ड में जुड़े हुए अस्थि खण्ड हैं । जब वे विसंगत होते हैं तो कमर में दर्द ही नहीं होता, शरीर का सारा ढाँचा लड़खड़ा जाता है । समाज का कोई प्रत्यक्ष स्वरूप नहीं है । परिवार की सम्मिलित इकाई ही समाज है । गुलदस्ता और हार दीखता जिस भी रूप में हो, वस्तुतः वह विभिन्न पुरुषों का गठन समुच्चय भर है । समाज-सुधार की चर्चा करना ही यदि अभीष्ट हो, करता-धरता कुछ न हो तो बात दूसरी है अन्यथा पुनरावर्तन के लिए परिवारों के रूप में फैली हुई समाज वृक्ष की जड़ों को सींचने में तत्परता बरतनी होगी । उसमें जमे हुए कृमि-कीटकों को हटाने की चेष्टा करनी होगी ताकि वे चुपके-चुपके कुतरते-कुतरते समूचे वृक्ष के अस्तित्व को ही धराशायी न करने लगें ।

परिवार निर्माण छोटा काम दीखता भर है । वस्तुतः वह आज के सृजनात्मक प्रयोजनों में सबसे मूर्धन्य गिना जाने योग्य है । उसके लिए दो कार्यक्षेत्र हैं । एक प्रत्यक्ष दूसरा अप्रत्यक्ष । एक स्थूल दूसरा सूक्ष्म । प्रत्यक्ष एवं स्थूल पक्ष वह है; जिसमें सांसारिक सुव्यवस्था का, प्रसन्नता एवं प्रगति का वातावरण बनता है । असहयोग, मनोमालिन्य एवं विग्रह के कारणों का निराकरण होता है । इसमें उस आश्रम में रहने वालों का भी सुख-सन्तोष है और प्रकारान्तर से समूचे समाज का उत्थान, कल्याण भी । घरों की पाठशाला प्रयोगशाला में ही नर-रत्न ढलते हैं और उन्हीं के पुरुषार्थ से उज्ज्वल भविष्य का सामूहिक आधार खड़ा होता है। समर्थ व्यक्तित्व ही अपने लिए अपने परिवार, समाज और समय के लिए वरदान सिद्ध होते हैं । यह समस्त तथ्य उस परिवार निर्माण की प्रक्रिया के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए हैं जो देखने में तुच्छ और व्यवहार में उपेक्षित बनी रहती हैं किन्तु उसका प्रभाव-परिणाम व्यापक उत्थान पतन का आधारभूत कारण बना होता है ।

परिवार निर्माण अभियान पर इन दिनों विशेष जोर दिया जा रहा है । पंचशीलों का प्रचलन घरों में धार्मिक वातावरण, पर्व संस्कार आदि के माध्यम से भाव शिक्षण की रचनात्मक प्रक्रिया को क्रियान्वित करने के लिए महिला संगठन खड़े किये जा रहे हैं और उनकी क्षमता तथा क्रियाशीलता बढ़ाने के लिए साप्ताहिक सत्संगों का प्रचलन किया जा रहा है । परिजनों ने इस छोटे शुभारम्भ को आज के सृजनात्मक प्रयोजनों में मूर्धन्य माना है और वे उसे क्रियान्वित करने में तत्परतापूर्वक लग भी गये हैं । अभी आरम्भ है । जिसने इस दिशा में कदम बढ़ाये हैं, उन्हें तत्काल यह अनुभव होता है कि यह निकट धर्म है । तत्काल परिणाम उत्पन्न करने वाला उसे अपने ढंग का अद्भुत प्रयोग ही कहा जा सकता है । प्रतिफल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हाथों-हाथ मिलते देखकर हर किसी को यह अनुभव हो रहा है कि व्यस्तता कितनी ही क्यों न हो, समस्याएँ एवं आवश्यकताएँ कितनी ही बढ़ी-चढ़ी क्यों न हों, उन सबको गौण माना जा सकता है, प्राथमिकता देने योग्य कार्य एक ही परिवार निर्माण है। तथाकथित परिवार नियोजन का जितना ढिंढोरा पीटा गया है, उतना यदि परिवार निर्माण के लिए प्रयास किया गया होता तो दुहरा लाभ होता । लोग जिम्मेदारी अनुभव करते, घरों का वातावरण बनाते और साथ ही सहज बुद्धि से बच्चे कम पैदा करने या न करने का निर्णय भी अनायास ही करते ।

परिवार निर्माण के पक्ष में कुछ-कुछ परोक्ष कारण भी हैं । जो सामान्य बुद्धि की समझ में कदाचित् न भी आये, पर वे भी उतने ही तथ्यपूर्ण हैं, जितने प्रत्यक्ष प्रतिफल । यह युग-सन्धि की बेला है । सृष्टा प्रस्तुत असन्तुलन को दूर करने के लिए व्यापक परिवर्तन की बागडोर अपने हाथ में ले रहे हैं । अनौचित्य का उन्मूलन और सत्प्रवृत्तियों का सम्वर्द्धन दोनों ही प्रयोग एक साथ चलेंगे और उनमें चरम गतिशीलता बढ़ती चली जायगी । यह कार्य अनायास ही नहीं होगा । सृष्टा के कार्यों में हाथ बँटाने वाले युग पुरुष ही इसे सम्पन्न करेंगे । यह भूमिका सामान्य स्तर के अनगढ़ लोगों से निभ नहीं सकती । उसे संचित संस्कारी वाले देवात्मा ही सम्पन्न करेंगे । अवतारों के साथ सदा देव मण्डली भी अवतरित होती रही है और वही युग प्रयोजन को पूरा करने में हाथ बँटाने का काम करती रही है। भूतकाल से भी यही होता रहा है और इन दिनों भी उसी की पुनरावृत्ति होनी है । एक ओर जहाँ दूषित वातावरण के कारण कुसंस्कारी सन्तानों का अन्धाधुन्ध प्रजनन चल रहा है, नई पीढ़ी का अनावरण सर्वत्र सिरदर्द बन रहा है । वहाँ साथ ही यह भी दूसरा कार्य देवात्मा के अवतरण का भी चल रहा है । देवता पाण्डवों के रूप में अवतरित होने की तैयारी कर रहे हैं उन्हें कुन्ती जैसी उदरदरी में पलने की सुविधा चाहिए । हनुमान का तेजस् अपने गर्भ में धारण कर सकना अंजनी के लिए ही सम्भव हुआ है। पवन पुत्र कहलाने में ही उनके गौरव की रक्षा भी हो सकी ।

युग सृजन के लिए एक से एक भारी कामों का बोझ वहन कर सकना मूलभूत कन्धों के लिए सम्भव हो सकता है । लम्बी मंजिलें पूरी करने में सबल टाँगें ही समर्थ होती हैं। बड़े काम करने की अपेक्षा प्रतिभावानों से ही की जाती है । सामान्यजन तो साहसी अग्रगामियों का अनुकरण मात्र करते हैं । सृष्टा इस तथ्य को भली-भाँति समझते हैं और परिवर्तन का महान कार्य सम्पन्न करने के लिए इन दिनों देवात्माओं को बड़ी संख्या में अवतरित एवं प्रकट होने की व्यवस्था बना रहे हैं ।

स्वतंत्रता आन्दोलन के दिनों असंख्य प्रतिभाएँ उच्चस्तरीय आदर्शों को लेकर कार्यक्षेत्र में उतरी थीं और वे उस उद्देश्य के पूर्ण होने तक प्राण-पण से निष्ठापूर्वक जुड़ी रहीं । इन दिनों उस आन्दोलन की तुलना में अतीव व्यापक, अतीव गम्भीर एवं उन्मूलन और सृजन का उभय-पक्षीय प्रयोजन पूरा करने वाला अभियान आँधी-तूफान की तरह उठने जा रहा है । स्वतंत्रता आन्दोलन भारत के राजनैतिक क्षतिज पर सीमित था और उसमें अँग्रेजों को उखाड़ना भर उद्देश्य था । उसे एक देश का शासन परिवर्तन भी कह सकते हैं । युग सृजन में ४०० करोड़ मनुष्यों के वर्तमान चिन्तन और चरित्र का एक प्रकार से काया-कल्प ही होना है । इसके वजन और महत्व को देखते हुए किंकर्तव्यविमूढ़ होकर रह जाना पड़ता है । कार्य जल्दी भी होना है और उसकी असंख्य दिशा धाराओं में उत्पन्न होने वाले उभार को सुनियोजित करना है । महामानव ही सदा से ऐसे प्रयोजन पूरे करते रहे हैं । इस समय भी युग-पुरुष ही इतनी बड़ी जिम्मेदारी वहन करने के लिए कटिबद्ध एवं अग्रगामी हो रहे हैं ।

इस प्रकटीकरण के दो स्वरूप हैं। एक तो यह कि जिन जाग्रत आत्माओं में दैवी अंश विद्यमान हैं उनके जागरण परिष्कार की प्रक्रिया आरम्भ हो और उनकी प्रसुप्त प्रखरता को जगाकर मोर्चे पर लड़ने के लिए खड़ा कर दिया जाय । दूसरा क्रम है कि नई आत्माएँ जन्म लें और अपने पूर्व संचित पुण्य प्रखरता के कारण बड़े उत्तरदायित्व सम्भालें । सर्वविदित है कि प्रतिभाओं को उभारने-निखारने से लेकर अवतरणों की भूमिका बनाने तक के परोक्ष उत्तरदायित्वों का भार महाकाल ने युग निर्माण योजना के कन्धे पर डाला है । साथ ही विश्वास किया गया है कि उसके प्रामाणिक एवं समर्थ प्रयास इस प्रयोजन को यथासमय सही ढंग से पूरा भी कर लेंगे ।

परिवार निर्माण अभियान के अन्तर्गत चल रहे कार्यक्रमों में प्रसुप्त प्रतिभाओं को जगाने की क्षमता विद्यमान है। जो जागे उन्हें प्रशिक्षित, परिष्कृत करने का कार्य शान्तिकुंज की सत्र-शिक्षण योजना में सन्निहित है । उनमें कई प्रकार के प्रशिक्षण सत्र चलाये जा रहे हैं- (१) एक महीने एवं तीन महीने के महिला सत्र, (२) पाँच-पाँच दिन के तीर्थाटन एवं परिवार निर्माण सत्र, (३) एक महीने के ब्रह्मवर्चस् साधना सत्र, (४) एक महीने एवं तीन महीने के परिव्राजक सत्र । जैसे कितने ही सत्र एक साथ इन्हीं दिनों चल पड़े हैं। इनमें अपने-अपने स्तर की शिक्षा प्राप्त करने के लिए युग निर्माण परिवार के नर-नारी बाल-वृद्ध पहुँचेंगे । इन सभी को शिक्षण कम और आलोक अधिक मिलेगा । जिनमें दैवी अंश विद्यमान होंगे वे अनुभव करेंगे कि इन सत्रों में सम्मिलित होने के उपरान्त वे पहले जैसी स्थिति में नहीं रहे । कुछ सीखकर नहीं कुछ साथ लेकर लौटे। यह अनुदान सामयिक सुविधाएँ पथ-प्रशस्त करने एवं कष्ट-कठिनाइयों के समाधान तक ही सीमित नहीं होता, वरन् उसमें यह अद्भुत विशेषता भी होती है कि प्रसुप्त क्षमताओं को जगाने-उभरने और सुनियोजित करने का अतिरिक्त उद्देश्य भी पूरा करे ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

इन दिनों जाग्रत आत्माओं की खोज चल रही है । युद्ध काल में जवानों की भर्ती का आकर्षक प्रचार होता है और उसके लिए आवश्यक प्रबन्ध भी जुटाया जाता है । आज की स्थिति यही है । देवात्माओं को युग सृजन में लगाने के लिए उन्हें ढूँढ़ निकालना, परिष्कृत एवं प्रशिक्षित करना आवश्यक है । यह समग्र प्रक्रिया अपने ढंग से सुनियोजित क्रम से चल रही है । परिवार निर्माण की कार्य-पद्धति घर-परिवारों की छिपी प्रतिभाओं को अपने आकर्षक कार्यक्रम के अनुसार उन पुण्य-प्रयोजन में रुचि लेने तथा सहयोग देते देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यहाँ दैवी अंश की विद्यमानता है और खाद पानी मिलने पर उस पौधे के विशाल वृक्ष बनने की महामानवों की भूमिका निभा सकने की क्षमता है ।

ठीक इसी प्रकार दूसरा उपाय यह है कि इन दिनों युग सृजन की अनेकों सुधारात्मक एवं सृजनात्मक गतिविधियाँ शाखा संगठनों के माध्यम से चल रही हैं । वरिष्ठ, कनिष्ठ एवं समयदानी परिव्राजक नवसृजन के पुण्य-प्रयोजनों में अपने आवश्यक कार्यों में हर्ज करके भी तत्पर हो रहे हैं । परिवार निर्माण संगठन तथा उसके साथ जुड़े हुए पंचशील, प्रचलन, धार्मिक वातावरण एवं आयोजन शिक्षण की पन्द्रहसूत्री योजना के माध्यम से अपने ढंग की अनोखी प्रक्रिया सम्पन्न हो रही है । गायत्री महापुरश्चरण एवं यज्ञायोजनों के माध्यम से सूक्ष्म वातावरण के परिशोधन की प्रक्रिया सम्पन्न हो रही है । नवरात्रि की सामूहिक साधना तीन पर्वों के विशेष कार्यक्रम समय-समय पर सम्पन्न होते हैं । झोला पुस्तकालयों और चल पुस्तकालयों के माध्यम से विचारक्रान्ति अभियान का आलोक व्यापक बन रहा है । युग साहित्य का लाभ शिक्षितों को पढ़ने से और अशिक्षितों को उसे सुनने से मिल रहा है । शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वावलम्बन के उद्देश्य पूरा करने वाले कितने ही कार्यक्रम चल रहे हैं । इनके आकर्षण जिन्हें प्रभावित करते हैं, जो उनमें सम्मिलित होते एवं सहयोग देते हैं उनकी सुरुचि भी यह प्रकट करती है कि इन व्यक्तियों में दैवी अंश की उपयुक्त मात्रा विद्यमान है । वर्षा आते ही सूखी घास हरी हो जाती है । इसी प्रकार यह सम्भावना विद्यमान है कि देवात्माएँ इन गतिविधियों से प्रभावित होंगी और प्रेरणा प्राप्त करेंगी ।

भगवान राम सीता की खोज में भटकते हैं और लक्ष्मण से कहते हैं, यह संध्या काल है । सीता यदि इस क्षेत्र में होगी तो नदी तट पर संध्या वन्दन करने अवश्य पहुँचेगी, हमें चलकर उधर ही खोज करनी चाहिए । इससे प्रकट है कि संस्कारों की प्रबलता कठिन परिस्थतियों में भी बनी रहती है । परिवार निर्माण और समाज निर्माण के लिए चल रही सृजनात्मक प्रवृत्तियाँ सर्वसाधारण के गले भले ही न उतरें पर देवात्माएँ अपनी विशिष्ट प्रवृत्ति के कारण इनमें सम्मिलित हुए बिना न रहेंगी और उनकी खोज करना सहज सम्भव हो जायगा । सघन वनों में यदि वन्य पशुओं को देखना हो तो उस क्षेत्र के जलाशयों के निकट छिपकर बैठ जाने से उन सभी के दर्शन हो सकते हैं । व्यक्ति निर्माण के लिए साधनात्मक, परिवार निर्माण के रचनात्मक और समाज निर्माण के सुधारात्मक कार्यक्रमों की उपयोगिता ऐसी है कि जहाँ कहीं भी देवात्म-सत्ता विद्यमान होगी वहाँ वह उसमें सम्मिलित होने से रुक ही नहीं सकेगी ।

जागरण की इस प्रक्रिया का अगला चरण शान्तिकुंज की प्रशिक्षण प्रक्रिया है जिसमें सम्मिलित होते रहने वालों ने अपने व्यक्तित्व और कर्तृत्व में पिछले दिनों भी उत्साहवर्द्धक प्रगतिशीलता और प्रखरता का अनुदान पाया है । अगले दिनों उसमें और भी अधिक गतिशीलता का समावेश होगा । युग सृजन के लिए जिस उच्चस्तरीय आत्माओं की इन दिनों आवश्यकता पड़ रही है उसकी अधिकांश पूर्ति अपने देव परिवार के परिजन ही बड़ी मात्रा में पूरी कर लेंगे, ऐसी आशा की जा सकती है।

नये अवतरण के पथ-प्रशस्त करना परिवार निर्माण अभियान का एक अतिरिक्त प्रयोजन है, जिसे परोक्ष अथवा रहस्यमय कहा जा सकता है । विशिष्ट देवात्माओं के अवतरण का इन्हीं दिनों शुभमुहूर्त है । सन् १९८० से सन् २००० के मध्यवर्ती वर्ष युग सन्धि के हैं । इस बीस वर्षों में जहाँ अधिक अनेक चित्र-विचित्र उपलब्धियाँ दृष्टिगोचर होगी, वहाँ उनमें एक बड़ी प्रक्रिया है-महामानवों का अभिनव जन्म धारण । इसके लिए आवश्यक तैयारी यह करनी है कि ऐसे दम्पत्ति युग्म बनें जो स्वयंभू मनु शतरूपारानी जैसी साधनात्मक जीवन नीति अपनाकर भगवान को कई जन्मों तक अपनी गोदी में खिला सकने में समर्थ हो सकें । शकुन्तलाएँ भरत को-सीताएँ लव-कुशों को-मदालसाएँ ब्रह्मऋषियों को जन्म दे सकती हैं । ऋषियों के आँगन में ऋषिकुमार, देवमानवों के घर देवात्मा खेलते देखे जाते हैं । जिन शरीरों के माध्यम से देवात्मा अवतरित हो सकें वे उत्कृष्ट स्तर के होने चाहिए । हेय स्तर के नर-नारी अपने स्तर की ही निष्कृष्ट और उद्दण्ड सन्तानों को जन्म सकते हैं । उच्च आत्माएँ जिनके पेट में पलें, जिनके शुक्राणु में प्रवेश करें उनका स्तर बाजारू नहीं ऊँचा होना चाहिए । जिस परिवार में वे पलें उनका वातावरण ऐसा होना चाहिए, जिनमें देवात्माएँ आवश्यक प्राणवायु उपलब्ध हो सकें । घुटन के वातावरणों में वे न तो अवतरित होने को सहमत होती हैं और न देर तक ठहरने को । देखा गया है कि महामानव या तो अनाचारी परिवारों में उतरते ही नहीं । किसी कारणवश उतर सकें तो घुटन सह न सकने के कारण वापस लौट जाते हैं । प्रतिभाशाली बालक प्रायः दीर्घजीवी नहीं होते, इसका सबसे बड़ा कारण है उनके लिए उपयुक्त स्तर का वातावरण न मिल सकना।

देवात्माओं के अवतरण की सन् १९८० से २००० के मध्य अत्यधिक सम्भावना है । वे कहाँ जन्मे इसके लिए युग निर्माण परिवार के परिजनों को कहने लायक भूमिका

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निभाने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है । दाम्पत्य जीवन से अधिक सौजन्य पैदा करना-परिवारों के वातावरण में शालीनता का अनुपात बढ़ाना ही वे उपाय हैं जिनमें दिव्यात्माओं को अवतरित होने और ठहरने के लिए सहमत किया जा सकता है । परिवार-निर्माण योजना लगती तो कोई समाज सुधार जैसा प्रक्रिया है, पर उसकी परोक्ष पृष्ठभूमि देवात्माओं के आगमन के निमित्त उपयुक्त परिस्थितियों का सृजन करना भी है ।

इन दिनों आदर्श विवाहों के प्रचलन पर विशेष रूप से जोर दिया जा रहा है । इनमें अन्य विवेचनाओं के अतिरिक्त एक कार्य बिना देन-दहेज और बिना धूमधाम अपव्यय के विवाहों का प्रचलन भी है । विवाह एक नये परिवार का शुभारम्भ है । इसे पुण्य पर्व की-यज्ञ जैसी पवित्र प्रक्रिया कहा जा सकता है। इसका श्री गणेश यज्ञानुष्ठान जैसी पवित्रता एवं आदर्शवादिता के साथ होना चाहिए । यदि लड़की-लड़के खरीदे बेचे जाते रहे, धूमधाम अपव्यय का उन्मादियों जैसा आचरण होता रहा दोनों पक्ष एक-दूसरे की बर्बादी का कुचक्र रचते रहे तो शुभारम्भ निश्चित रूप से अपनी पवित्रता गँवा देगा । अपव्यय, अपहरण से जिन परिवारों की बर्बादी हुई है । उनके सदस्यों के घाव जन्म भर रिसते रहेंगे और अभिशाप उगलते रहेंगे । अपने पितृग्रह की बर्बादी जिसने ससुराल वालों के अनाचरण के कारण देखी है वह उस दुष्टता को कभी भुला नहीं सकेगी और भीतर ही भीतर घृणा एवं विद्रोह भरा रहेगा । बाहर से उसे भले ही पराधीनता स्वीकार करनी पड़े । बिना अपव्यय के सादगी के वातावरण से सम्पन्न होने वाले विवाह ही परिवार-निर्माण के अनेकानेक उद्देश्यों को पूरा कर सकते हैं । जिनमें दाम्पत्य जीवन का आनन्द, गृहस्थ जीवन का साफल्य एवं दिव्यात्माओं का अवतरण भी सम्मिलित है।

स्मरण रहे परिवार निर्माण का महान कार्य सुसंस्कृत महिलाओं के नेतृत्व में ही ठीक तरह सध सकता है । पुरुष तो उनके सहयोगी भर हो सकते हैं । दोनों के सम्मिलित प्रयास इस पुण्य प्रयोजन में पूरी तत्परता के साथ जुट पड़ें, समय की यह एक अति महत्वपूर्ण माँग है जिसे परिजनों को पूरा करने के लिए आगे आना चाहिए ।

परिवार की दार्शनिक पृष्ठभूमि

हमारी पारिवारिक व्यवस्था में आज जो विघटन, हताशा, उदासीनता, उत्साहहीनता तथा लगभग अराजकता की स्थिति आ गई है, उसका मुख्य कारण परिवार के तत्वदर्शन की विस्मृति है । किसी भी संस्था की प्रगति उसके पीछे निहित सामाजिक दर्शन के ऊपर निर्भर करती है । यहाँ दर्शन का अर्थ हवाई ऊहापोह से नहीं, क्रियाशीलता की पथप्रदर्शक प्रेरणा से है।

परिवार-संस्था के मूल स्वरूप पर विचार करें तो दो बातें स्पष्ट होती हैं पहली यह कि भारतीय समाज में परिवार प्रणाली का अस्तित्व आदि काल से चला आ रहा है, यद्यपि उसके बाह्य-स्वरूप में समय-समय पर परिवर्तन होता रहा है । दूसरी यह कि परिवार-परम्परा का प्रमुख उद्देश्य इसे आत्मविकास का यह माध्यम बनाना रहा है । क्रमशः संकीर्णता का दूर होते जाना ही कुटुम्ब भावना की सफलता की कसौटी है । आत्मीयता की परिधि का अनवरत विस्तार ही इष्ट है । परिवार परम्परा के प्रोत्साहन के पीछे ऋषियों की दृष्टि किस लक्ष्य पर टिकी थी इसकी जानकारी इस प्रसिद्ध श्लोक में मिलती है –

''अयं निजः परोवेत्ति गणना लघुचेतसाम् ।
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।।''

अर्थात् यह अपना है और यह पराया, ऐसा गुनते-गिनते रहना क्षुद्रचित्त लोगों का काम है । उदार चरित वाले जनों के लिये यह समस्त पृथ्वी ही एक परिवार है ।

इस प्रकार परिवार व्यवस्था मनुष्य को दूसरों से जिस आत्मीयता का बोध कराती थी, नागरिकों में उसका निरन्तर विस्तार-विकास इस व्यवस्था के पीछे निहित प्रेरणा थी ।

योगवाशिष्ठ में कहा गया है-

''गृहस्थ यजते यज्ञः गृहस्थस्तप्यते तपः ।
चतुर्वर्णाश्रमाणान्तु गृहस्थस्तु विशिष्यते ।।''

अर्थात् गृहस्थ ही वास्तविक रूप से यज्ञ करते हैं । वे ही सच्चे तपस्वी हैं । इसीलिये चारों वर्णों में गृहस्थाश्रम ही सर्वोपरि है । महर्षि वेदव्यास ने भी कहा है-**''गृहस्थ्येदं हि धर्माणां सर्वेषां मूलमुच्यते ।''** अर्थात् गृहस्थाश्रम ही सर्वधर्मों का आधार है । **''धन्यो गृहस्थाश्रमः''** कहा गया ।

परिवार-व्यवस्था की यह प्रशंसा और उसका प्रोत्साहन मात्र सामूहिक आवास तथा दैनन्दिन जीवन में सहभागिता के उद्देश्य से नहीं किया गया था । इस सामान्य प्रयोजन भर के लिये इतने अधिक गौरव-गान की कोई आवश्यकता नहीं पड़ सकती थी ।

स्पष्ट है कि आत्मोन्नति के सुलभ माध्यम के रूप में ही परिवार-व्यवस्था को प्रोत्साहित, प्रशासित किया गया । प्रेम, आत्मीयता, सहयोग, सहायता, सम्वेदना, सद्भाव तथा सबकी उन्नति के समान अवसर एवं सामूहिक प्रयास की व्यवस्था ही पारिवारिक जीवन का प्रयोजन है । उन्नति मात्र सांसारिक सुख एवं सुविधा-साधनों की दृष्टि से नहीं, अपितु आत्मिक दृष्टि से भी । आहार-विहार मात्र की सामूहिकता से परिवार-व्यवस्था का उद्देश्य पूरा नहीं हो जाता । अनेक पशु-पक्षी समूह-जीवन जीते हैं । साथ-साथ रहते, सोते-जगते, घूमते-फिरते, खाते-पीते हैं, किन्तु उन्हें एक परिवार नहीं कहा जाता । बाड़े में बन्द भेड़ों की तरह एक ही मकान में सामूहिक रूप में रहने वाले लोगों से भी परिवार का प्रयोजन नहीं सिद्ध हो पाता ।

हमारे महान पूर्वजों ने मनुष्य जीवन का प्रयोजन इतने तक ही सीमित नहीं माना था । इसे आत्मकल्याण का सुर दुर्लभ अवसर परम सत्य तक पहुँचने का साधना यंत्र एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्म-विस्तार द्वारा पूर्णता प्राप्ति का सामर्थ्य से युक्त शक्ति भंडार कहा गया है । सामान्य स्थिति में मनुष्य के भीतर अपूर्णताएँ होती हैं । किन्तु परिश्रम एवं निष्ठा से वह पूर्णता से जुड़ सकता है । जुड़ने की इस प्रक्रिया को ही योग कहते हैं । अपने प्राचीन पूर्वजों ने राजयोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, सहजयोग, ध्यानयोग, प्राणयोग, स्वरयोग, जपयोग, लययोग, तन्त्रयोग जैसे विभिन्न योगों की पद्धतियाँ, विधि-विधान एवं कार्यप्रणाली आविष्कृत, निरूपित की । इनके स्वरूप में भिन्नताएँ हैं, किन्तु सभी का उद्देश्य असत् से सत् की ओर, क्षुद्रता से विराटता की ओर तम से प्रकाश की ओर, अपूर्णता से पूर्णता की ओर प्रगति करना है । मानवीय आत्मा की भूख मिटाना ही इन सबका उद्देश्य है । क्षुधा-शांति के लिये अपनी प्रकृति, परिवेश एवं साधन-सामर्थ्य के अनुसार लोग रोटी, चावल, दलिया, फल-फूल, मिठाई आदि में से किन्हीं एक-दो या अनेक वस्तुओं का सहारा लेते हैं । आत्मिक भूख मिटाने के लिये ये विभिन्न योग भी ऐसे ही आहार व्यंजन समझे जा सकते हैं । इन योगों में से एक गृहस्थ योग भी है । गृहस्थ योग शब्द इस तथ्य का द्योतक है कि परिवार व्यवस्था का प्रयोजन हमारे पूर्वजों की दृष्टि में क्या था ? वह पूर्णता की साधना का एक मार्ग था ।

सामाजिक जीवन मनुष्य की अतिरिक्त विवशता है, क्योंकि वह एक सामाजिक प्राणी है । अपनी सामाजिकता को मूर्तरूप देने के लिये उसने जो सामाजिक संस्थाएँ गढ़ी हैं, उनमें परिवार संस्था अद्वितीय है । रोटी, कपड़ा और मकान की प्रारम्भिक आवश्यकता से लेकर शिक्षा, चिकित्सा, उत्सव, रीति-रिवाजों का निर्वाह और संकटों का सामना-सभी में मनुष्यों को-अपने साथियों के सहयोग की आवश्यकता होती है । परस्पर की यह निर्भरता ही सहानुभूति की भाव-संवेदनाओं को प्रेरित एवं पुष्ठ करती है । भाव-संवेदनाएँ न हों, तब भी स्वार्थों का दबाव किसी व्यवस्था के समझौते की प्रेरणा तो देता ही है । किन्तु उससे मनुष्य को कभी भी तृप्ति नहीं मिलती । मनुष्य की संरचना ही ऐसी है कि उसके लिए भूख-प्यास, यौनावेग, वस्त्र, विश्राम आदि की व्यवस्था जितनी आवश्यक है और बौद्धिक विस्तार की आकांक्षा जितनी प्रचंड है, उतनी ही तीव्र लालसा, अनिवार्य आवश्यकता एवं प्रबल आकर्षण भावनात्मक तुष्टि के प्रति भी उसमें विद्यमान होते हैं । भावनाएँ मनुष्य की सबसे बड़ी थाती और प्रेरणा हैं ।

व्यवस्था, विकास एवं भावनात्मक तुष्टि तीनों का सम्यक् विचार करते हुए ही परिवार-व्यवस्था का भारतीय स्वरूप रचा गया है । भौतिक साधनों का सामूहिक उपार्जन एवं उपभोग जिस भाव-प्रेरणा से प्रखर एवं मर्यादित बना रहता है, उसका प्रशिक्षण परिवार की पाठशाला में ही भलीभाँति दिया जा सकता है । उसके बिना न तो उपार्जन के लिये वांछित श्रमनिष्ठा एवं मनोयोग ही विकसित हो पाते हैं, न ही उपभोग के लिये वांछित संयम । यही स्थिति बौद्धिक विकास एवं भावनात्मक आदान-प्रदान की है । मनुष्य अनुकरण से ही सीखता है । यदि उसे बिना प्रशिक्षण के बाल्यावस्था में ही खुले समाज में छोड़ दिया जाये तो उसके लिए भीतर सदा सद्विवेक-बुद्धि जग पाना तक अत्यन्त कठिन हो जाये, व्यवस्था-बुद्धि भी न आ पाये और अनगढ़ मन की परस्पर विरोधी आकर्षणों की रस्साकशी में जो दुर्गति हो, वह प्रगति को असम्भव बना दे । अभी पाठशालाओं एवं प्रशिक्षण संस्थाओं का जो स्वरूप है, वह न तो व्यक्ति जीवन को पूरी तरह समेट पाता, न ही व्यक्ति के संपूर्ण समय से सम्बद्ध रह पाता । ऐसी स्थिति में एक पूर्णकालिक पाठशाला की आवश्यकता है । ऐसा विद्यालय परिवार ही हो सकता है । उस विद्यालय में ही उसे सघन आत्मीयता भरा वह प्रशिक्षण मिल सकता है, जिसकी शैशव एवं कैशोर्य की अवधि में विशेषकर व्यक्ति को आवश्यकता होती है ।

इस प्रकार परिवार-व्यवस्था का सीधा सम्बन्ध मानव-जीवन के प्रति दृष्टिकोण से है । जो समाज मानव जीवन के प्रति जैसा दृष्टिकोण रखेगा वह अपनी परिवार-व्यवस्था में वैसे ही तत्वों के समावेश, संरक्षण, विकास एवं प्रोत्साहन का प्रबन्ध करेगा । यदि मनुष्य जीवन मात्र भौतिक उत्कर्ष की आकांक्षाओं, उपलब्धियों तक सीमित माना जाये तब उसकी व्यवस्था में वैसी ही प्रेरणाएँ भरनी होंगी, यदि मानसिक, आध्यात्मिक विकास भी मानव जीवन का अभीष्ट माना गया तो फिर वैसी प्रेरणाएँ भी सम्मिलित करनी होंगी ।

आहार-विहार की आवश्यकता प्राणिमात्र को होती है । प्रजनन की आकांक्षा से जुड़ी यौन-उत्तेजना भी सभी में होती है । इतने भर के लिये कैसी भी सामूहिक व्यवस्था की जा सकती है । सुरक्षा का प्रयोजन भी उसे पुष्ट ही करता है । परिवार-संस्था इससे वृहत्तर उद्देश्यों को ध्यान में रखकर बनी है । कार्य-विभाजन, आर्थिक व्यवस्था एवं समृद्धि तथा उपभोग में संतुलन बनाए रखना भी उसका अनिवार्य अंग है और भाव भरी सम्वेदनाओं को निरन्तर विकसित, परिष्कृत करते जाना भी इस व्यवस्था का प्रयोजन है । अपनी स्वस्थ रूप में परिवार व्यवस्था इन सभी आवश्यकताओं एवं उद्देश्यों की पूर्ति करती रही है । अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों की सिद्धि के लिए आवश्यक विशेषताओं एवं दक्षताओं को वह बढ़ाती रही है ।

बाल्यावस्था में मनुष्य की संकीर्णता एवं स्वार्थपरता का अनगढ़ रूप स्पष्ट रहता है । वह यही चाहता है कि सबसे अच्छा और सबसे अधिक खाने, पहनने को उसी को मिले, खर्च करने को मनचाहे पैसे, अधिकाधिक सुख-सुविधाएँ और सबका स्नेह-दुलार उसे ही मिले । अपने इन निहित संकीर्ण स्वार्थों की पूर्ति के लिये हठ करने में उसे न तो संकोच होता है, न ही लज्जा आती है । दूसरों के प्रति उसमें उतनी ही दिलचस्पी होती है, जितने अंश तक वे उनके इन छोटे-छोटे स्वार्थों की पूर्ति में सहायक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होते हैं । अन्य मामलों में उदासीनता का ही भाव उसमें होता है ।

धीरे-धीरे उसका यह आत्मभाव विकसित होता है । त्याग, सहानुभूति, संवदेना और आत्मीयता से उत्पन्न सुख की भी उसे जानकारी होती है । भाई-बहिन, माता-पिता, पत्नी और बच्चों के प्रति उसका आत्मभाव फैलता जाता है । परिवार-जनों से बढ़ते-बढ़ते यह आत्मीयता पुरजनों, देशजनों तक बढ़ती हुई मानव-मात्र के एवं प्राणिमात्र के प्रति विस्तृत होती जाती है । विस्तार का यह स्वरूप भौतिक आवश्यकताओं के क्षेत्र में नहीं देखा जाता । भौतिक आवश्यकताओं के स्वरूप में इतना अधिक अन्तर नहीं आता । इससे भी यही स्पष्ट होता है कि मनुष्य की संरचना में भौतिक आवश्यकताओं से कई गुना अधिक स्थान बौद्धिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक आवश्यकताओं का है । उनकी पूर्ति के लिये वांछित गुणों एवं सामर्थ्य का प्रशिक्षण भी परिवार में ही होता है ।

परिवार-व्यवस्था आत्मोन्नति का एक प्राकृतिक, स्वाभाविक एवं सर्वसुलभ माध्यम है । बशर्ते उसके पीछे क्रियाशील दर्शन को समझा जाय । उसे स्वार्थों की खींचतान का कुरुक्षेत्र न बना डाला जाय, अपितु उन सत्प्रवृत्तियों के विकास का साधना-स्थल बनाया जाये, जो जीवन को सार्थक बनाती हैं ।

व्यक्ति और समाज का उत्कर्ष परिवार निर्माण से

व्यक्ति और समाज की मध्यवर्ती कड़ी है-परिवार । परिवार वह पाठशाला है, जिसमें व्यक्तित्व को विनिर्मित करने के प्राय: सभी महत्वपूर्ण पाठ पढ़ाये जाते हैं । परिवार वह प्रयोगशाला है, जिसमें समाज को समुन्नत बना सकने की क्षमता के धनी नर-रत्न ढाले जाते हैं । परिवार एक संयुक्त व्यक्तित्व है जिसमें मिलजुल कर भावनात्मक और साधनपरक सुव्यवस्था जुटाई जाती है । परिवार एक छोटा समाज है जिसमें एक राष्ट्र व्यवस्था के सारे तत्त्व विद्यमान हैं । छोटे कारखानों में महत्वपूर्ण उपकरण भी ढाले जाते हैं । परिवारों की छोटी-सी परिधि यदि सुसंस्कृत हो तो समुद्र मंथन से निकलने वाले चौदह रत्नों की तरह उसका उत्पादन अत्यन्त उच्चस्तरीय हो सकता है ।

स्कूलों में बहिरंग ज्ञान का लोक स्थिति वाला पक्ष पढ़ाया जाता है । गणित, भूगोल, इतिहास, विज्ञान आदि विषयों को पढ़कर यह जाना जाता है कि संसार की स्थिति क्या है उस स्थिति में अवगत होकर सुविधा साधनों का उपार्जन एवं उपयोग ठीक तरह बन पड़ता है । इसी लाभ को दृष्टि से रखकर स्कूली शिक्षा का ढाँचा खड़ा किया गया है । उसकी उपयोगिता से इन्कार नहीं किया जा सकता । साधनों की शरीर को आवश्यकता पड़ती है । उसके लिए कृषि, शिल्प, व्यवसाय, कला, श्रम विनिमय आदि के सहारे निर्वाह के साधन उपलब्ध होते हैं और व्यवहार कुशलता के कई पक्ष सीखे जाते हैं । इन सब बातों को देखते हुए शरीर निर्वाह के उपरान्त दूसरी आवश्यकता शिक्षा की ही समझी गई है । इसके लिए निजी और शासकीय स्तर पर प्रयत्न भी बहुत होते हैं जिनका औचित्य भी है ।

इतने पर भी यह तथ्य जहाँ का तहाँ बना रहता है कि साधनों से भी अधिक उपयोगिता व्यक्ति को चेतनात्मक पक्ष सुनियोजित करने की है । सद्गुणी और सुसंस्कृत मनुष्य ही निजी जीवन में अभीष्ट प्रगति करते संतुष्ट रहते और दूसरे से सम्मान सहयोग पाते हैं । स्वस्थ, प्रसन्न और सम्पन्न भी वही देखे जाते हैं । इस उपलब्धि की मानव जीवन में महती आवश्यकता है । यदि उसकी व्यवस्था बन पड़े तो सुविधा साधन रहते हुए भी व्यक्ति घटिया और ओछे स्तर का बना रहता है, ऐसे व्यक्ति अपने लिए और दूसरों के लिए समस्या ही बने रहते हैं । साधनों का दुरुपयोग होने से सुख के स्थान पर दु:ख ही मिलता है । विकास के स्थान पर वह वैभव अपने पैर आप कुल्हाड़ी मारने जैसे संकट उत्पन्न करता है ।

साधन सम्पन्नता की दृष्टि से शिक्षा एवं उद्योग का अपना महत्व है । किन्तु यह भुला नहीं देना चाहिए कि साधन ही सब कुछ नहीं । मानवी सम्पन्नता का एक पक्ष उसके सद्गुण भी हैं । सुसंस्कारिता पर व्यक्तित्व की गरिमा निर्भर है और यही है वह सम्पन्नता जिसके आधार पर मनुष्य गौरवास्पद बनता है और अपने उत्कृष्ट कर्तव्य से समूचे समाज को सुख-शान्ति की दिशा में अग्रसर करता है । यह सुसंस्कारिता पाठ्य पुस्तकों के माध्यम से ही, वातावरण के प्रभाव से उपलब्ध होती है । मनुष्य जिन लोगों के बीच रहता है, जिन परिस्थितियों में निर्वाह करता है, प्राय: उसी ढाँचे में ढलने लगता है । अपवादों की बात दूसरी है अन्यथा आमतौर में देखा यही जाता है कि संगति का प्रभाव सबसे अधिक पड़ता है । मनुष्य जो देखता है उसी का अनुकरण करता है ।

बच्चों के विकासक्रम को बारीकी से देखा जाय तो पता चलेगा कि वे कुछ भी रहे हैं, जैसे भी बन या ढल रहे हैं वह सब कुछ पारिवारिक वातावरण का प्रभाव है । मातृभाषा का तात्पर्य है माता जिस शब्दावली का उपयोग करती उसका अनुकरण । खान-पान, रहन-सहन, रुचि-रुझान, स्वभाव-व्यवहार पर पूरी तरह पारिवारिक वातावरण की छाप देखी जा सकती है, यही वास्तविक शिक्षण है । दौलत तो हवा में उड़ने वाले पत्रों की तरह इधर से उधर भगदड़ मचाती रहती है । असली वैभव तो व्यक्तित्व का स्तर है । वही उत्कृष्ट एवं निकृष्ट परिस्थितियाँ जुटाने के लिए उत्तरदायी है । सुसंस्कारिता ही सच्चा सौभाग्य है । उसे प्राप्त करने के लिए उपयुक्त वातावरण चाहिए और उसकी व्यवस्था बचपन से ही होनी चाहिए । मन:शास्त्र के विद्वान कहते हैं कि मनुष्य के व्यक्तित्व का आधा भाग पाँच वर्ष की आयु तक विनिर्मित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

हो जाता है । इसके बाद शेष सारे जीवन में आधे की पूर्ति होती है ।

यदि धन को ही परिपूर्ण न मान लिया जाय और उसके उपार्जन और उपयोग में सत्प्रवृत्तियों की भी आवश्यकता समझी जाय तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचना होगा कि जीवन की सफलता के मूलभूत साधन पारिवारिक वातावरण के रूप में ही उपलब्ध होने चाहिए । स्वास्थ्य, शिक्षा, सज्जा, विनोद आदि की तरह यदि सुसंस्कारिता को भी विकास का एक आधार माना जा सकेगा तो स्वीकार करना होगा कि जिन बच्चों के उज्ज्वल भविष्य की कामना कल्पना की जाती है उन्हें पारिवारिक वातावरण में शालीनता, सुव्यवस्था की खुराक मिलनी चाहिए । सभी जानते हैं कि कुपोषण के शिकार–उपयुक्त भोजन के अभाव में बालकों का स्तर कैसा गया–गुजरा बन जाता है । वे दुर्बलता और रुग्णता से ग्रसित रहते हैं और अपंगों जैसी पिछड़ी जिन्दगी जीते हैं । ठीक इसी प्रकार मानसिक कुपोषण के शिकार, कुसंस्कारी अथवा पिछड़ेपन से ग्रसित वातावरण में मात्र दुर्गुण पाने वाले बालकों का भविष्य भी निश्चित रूप से ऐसा बनता है जिसे दीन–दयनीय या दुर्भाग्यपूर्ण ही कह सकते हैं । अपने बच्चों के प्रति प्राणिमात्र में सहज यह प्रवृत्ति पाई जाती है । इसी आधार पर उन्हें लालन–पालन का सहयोग मिलता है । कितना अच्छा होता यदि इसमें एक समझदारी और जुड़ जाती कि बालकों को सुसंस्कारिता की भी आवश्यकता है । इसके बिना उनके लिए प्रस्तुत किये गये सारे अनुदान धूलि के बराबर निरर्थक सिद्ध होते हैं । बालकों के लिए सच्ची हितकामना हो तो उन्हें सुसंस्कारी बनने का अवसर दिया जाना चाहिए । इसके लिए अन्यत्र ढूँढ़–खोज करना महँगा भी है–व्ययसाध्य भी और बच्चे तथा अभिभावकों के लिए भावनात्मक दृष्टि से कष्टकारक भी । इसका सुनिश्चित और सर्वसुलभ उपाय एक ही है, पारिवारिक वातावरण में शालीनता के तत्वों का समावेश । यही हर स्थिति में सम्भव भी है ।

प्राचीनकाल में बालकों को गुरुकुलों में भेज दिया जाता था । वहाँ शिक्षण तो कुछ घण्टों का होता था पर परिष्कृत वातावरण के साथ जुड़ा रख कर उन्हें परोक्ष रूप से मानवी सद्गुणों में अभ्यस्त किया जाता था । उन शिक्षण संस्थाओं की प्रधान विशेषता उत्कृष्टता की गतिविधियों से भरे–पूरे वातावरण की प्रखरता ही होती थी । इसी प्रभाव से प्रभावित होकर गुरुकुलों के स्नातक नर–रत्नों की भूमिका निभाते थे । अब वैसा कहीं कुछ नहीं है । ऊँचे रहन–सहन आडम्बरी शिष्टाचार की अनेकों दुकानें यह ढिंढोरा पीटती और अनजानों को बहकाने में सफल होती रहती हैं कि हमारे यहाँ बच्चों को पढ़ने भेजिये हम उन्हें शिक्षित और सभ्य बना देंगे मालूम नहीं वे उस महँगे आडम्बर का कितना लाभ उन बालकों को दे पाते हैं जिससे बड़ी–बड़ी आशाएँ बाँधकर अभिभावकों ने अपने जेबें खाली कर दीं ।

सम्पन्नता को अहमन्यता और शिष्टाचार की विडम्बना बच्चों को तथाकथित सभ्यता का एक थोड़ा अंश भले ही सिखा पाये पर वह संस्कारिता दे नहीं सकती । क्योंकि शिक्षकों से लेकर नौकरों तक के मूलभूत स्वभाव में यदि सद्भाव सम्पन्नता का, सदाशयता का बाहुल्य न हुआ तो मशीनी ढर्रा छात्रों को अन्तस् उत्कृष्टता के साँचे में ढालने में सफल न हो सकेगा । सभ्यता एक बात है और सुसंस्कारिता दूसरी । सभ्यता एक कला है जो थोड़े प्रयत्न से सीखी और सिखाई जा सकती है, किन्तु संस्कारिता तो व्यक्तित्व की ऊर्जा है जो एक से दूसरे पर बिना प्रयास के ही छाने लगती है । सत्संग और कुसंग का प्रतिफल इसी आधार पर२.७६ बनता है ।

व्यक्ति की उत्कृष्टता और समाज की समर्थता बढ़ाने के दोनों उद्देश्य एक ही प्रकार पूरे हो सकते हैं कि पारिवारिक वातावरण में सुव्यवस्था एवं सुसंस्कारिता का समावेश किया जाय । इतने भर से बचपन में सहज स्वभाव मिलने वाली प्रगतिशीलता का आधा अंश अनायास ही पूरा होता रहेगा । इस उपलब्धि की धनी पीढ़ी वयस्क होने पर शालीनता का वातावरण उत्पन्न करेगी । फलतः व्यक्ति निर्माण एवं समाज निर्माण की प्रवृत्तियाँ, परिस्थितियाँ निरन्तर अनुकूल होती चली जायेंगी और उज्ज्वल भविष्य की संरचना का कठिन कार्य सरल बन जायगा ।

परिवार एक छोटे से घरोंदे में निवास निर्वाह करता है । उसके सदस्यों में आधे से अधिक बाल–वृद्ध होते हैं । दैनिक गतिविधियों में खाने, पहनने, धोने, सँजोने जैसे छोटे काम ही होते रहते हैं । देखने में उसका स्वरूप अनाकर्षक एवं महत्वहीन जैसा लगता है । इसी से वयस्क घर छोड़कर सिनेमा, होटल ,मटरगस्ती आदि में रस लेते और घर से बाहर रहने से प्रसन्न देखे जाते हैं । यह परिवार का बाह्य स्वरूप है । यदि इस खदान की गहराई में उतरा जा सके तो प्रतीत होगा कि भावनात्मक सम्पदा का अजस्र स्रोत इन छोटे से घरोंदों में विद्यमान है और उसकी मूर्छना जगाकर इतना सरस एवं प्रभावोत्पादक बनाया जा सकता है कि उसमें रहने का जिसे जितना अवसर मिले वह उसे अपना उतना ही बड़ा सौभाग्य माने ।

बच्चों की भावनात्मक आवश्यकता अपने ढंग की है और बड़ों की अपने ढंग की, बच्चों को अपने ढंग का निर्वाह चाहिए बड़ों को अपने ढंग का । दोनों को ही दैनिक जीवन की अधिकांश आवश्यकताओं के लिए परिवार को मिलने वाले साधनों पर निर्भर रहना होता है । परिवार का उत्कृष्ट वातावरण ही है जिसे अलंकारिक रूप से स्वर्ग कहा गया है । विक्षोभकारी पारिवारिक वातावरण को नरक कह सकते हैं । हर व्यक्ति हर व्यक्ति को अपनी दिनचर्या का आधे से अधिक भाग घर में परिवार के बीच ही गुजारना पड़ता है । कमाने के लिए बाहर रहने की आवश्यकता होती है पर उसका उपयोग और आहार निद्रा, शौच, सज्जा जैसे नित्य कार्य तो घर की चहारदीवारी

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में ही रहकर पूरे करने होते हैं । इतने समय में ही परिष्कृत वातावरण से इतने अनुदान वयस्कों को मिल सकते हैं कि वे मानसिक प्रसन्नता भली प्रकार बनाये रह सकें । इसके विपरीत यदि घर में कुसंस्कारिता छाई रही तो फिर समझना चाहिए नरक में जिन संकटों का सामना करने की बात कही जाती है लगभग वैसी ही उसमें रहने वाले हर व्यक्ति को सहन करनी होगी ।

बच्चे अपना व्यक्तित्व निर्माण घर के वातावरण से ही करते हैं । गुण, कर्म, स्वभाव की परोक्ष शिक्षा उन्हें वहीं से साँस लेने की तरह अनायास ही मिलती रहती है । बड़े अपनी थकान उतारने तथा उत्साह पाने के लिए इसी का आश्रय तकते हैं जिन्हें यहाँ अनुकूलता मिलती है व सच्चे अर्थों में धन्य बनते हैं । जिन्हें निराश रहना पड़ता है जिन्हें विक्षोभ मिलता है, वे अपने आप को निश्चित रूप से दुर्भाग्यग्रस्त ही अनुभव करेंगे । भले ही उन्हें सुविधा साधनों का कितना ही बाहुल्य क्यों न उपलब्ध होता हो ? अमीरी और गरीबी की उपेक्षा करके पारिवारिक शालीनता अपने आप में एक ऐसी सौभाग्यशीलता है, जिसे प्राप्त करके हर किसी को उल्लास एवं आनन्द की अनुभूति होती है । इतना ही नहीं प्रगति की दिशा में बढ़ने के लिए आवश्यक बल, उत्साह एवं साहस भी उन सुखद परिस्थितियों में मिलता है । सुखद पारिवारिक वातावरण सच्चे अर्थों में मनुष्य के लिए एक दैवी वरदान ही कहा जा सकता है ।

परिवार की परिधि में रहने वाले सदस्य किस प्रकार इस छोटे से घरोंदे में से अपने शारीरिक निर्वाह एवं मानसिक उल्लास के साधन प्राप्त करते हैं, इसे ध्यानपूर्वक देखने, समझने का प्रयत्न किया जाय तो प्रतीत होगा कि यह छोटा-सा संस्थान उन सबके लिए जितना महत्वपूर्ण है उतना और कुछ नहीं । व्यक्ति को जन्म से लेकर मरण पर्यन्त जो सुखद अनुभूतियाँ और सुखद सुविधाएँ एवं दिशा प्रेरणाएँ मिलती हैं उनकी तुलना समस्त संसार से मिले समस्त अनुदानों की अपेक्षा कहीं अधिक होती है । मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है यह तथ्य तभी पूर्णतया सत्य हो सकता जब उसे पारिवारिक अनुकूलता भी मिलती रहे, अन्यथा टाँग पकड़कर पीछे घसीटने वाले अवरोधों में अधिकांश पारिवारिक असन्तोष, विग्रह एवं विक्षोभों के ही होते हैं । उन्हीं से टकराकर प्रगतिशीलता के इरादे अस्त-व्यस्त, नष्ट-भ्रष्ट हो रहते हैं ।

समाज निर्माण की बात सोचने वालों को यह तथ्य भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि समाज की स्वतंत्र सत्ता कुछ नहीं वह मात्र परिवारों का समुच्चय है । परिवार जैसे हों उनका मिला-जुला स्वरूप ही समाज का भला बुरा स्तर बनकर सामने आ खड़ा होगा । सरकारी कर्मचारी और प्रजाजन दोनों ही परिवारों की फैक्टरियों में ढलते हैं । शिल्पी, व्यवसायी, श्रमिक, कलाकार, बुद्धिजीवी वर्ग के अग्रणी समझे जाने वाले लोग भी अपने कुशलता पर पारिवारिक दृष्टिकोण की छाप लादे रहते हैं । उदण्डताओं और अपराधों की वर्षा बादलों में से नहीं होती, यह सारी फसल परिवार के खेत-खलिहानों में से इकट्ठी होती है । आलसी, प्रमादी, सनकी, दुर्गुणी, छली, भीरु, व्यसनी प्रकृति के गये-गुजरे लोगों से अपना समाज भरा पड़ा है । यह टिड्डियों की तरह कहीं से उड़ते नहीं चले आये हैं । सारे परिवारों की कीचड़ में से इन कृमि-कीटकों की उत्पत्ति हुई है । समाज निर्माण की बात दार्शनिक दृष्टि से किसी भी रूप से कही जा सकती है और उसकी व्याख्या, विवेचना, योजना प्रस्तुत करते हुए प्रतिपादन तो कुछ भी हो सकता है, पर यदि वस्तुतः वैसा कुछ करना ही हो तो परिवारों की इकाइयों को सुधारने का काम हाथ में लेना होगा । पकी हुई ईंटें का समुच्चय ही सुदृढ़ इमारत के रूप में खड़ा हो सकता है । नदियों का सम्मिलित केन्द्र समुद्र कहलाता है और परिवारों का समुच्चय समाज । समाज निर्माण का स्वर-संगीत, वस्तुतः परिवार के स्वर सप्तकों की झंकार करने में निनादित हो सकेगा ।

परिवार निर्माण हृदय एवं उसका क्षेत्रविस्तार धड़ है । व्यक्ति उसका सिर और समाज हाथ पैर का ढाँचा ढकोसला । यदि विश्व मानव की स्थिति सुधारनी है तो रुग्ण हृदय की चिकित्सा करनी होगी अन्यथा धड़कन, रक्तचाप शोथ से लेकर गतिरोध होने पर मरण संकट की आशंका बनी ही रहेगी । व्यक्ति निर्माण के लिए धर्मतन्त्र को और समाज निर्माण के लिए शासन तन्त्र को प्रखरता अपनानी होगी । वे दोनों पहले से भी साधन सम्पन्न हैं, आवश्यकता केवल इतनी ही है कि उन्हें सुनियोजित कर दिया जाय बड़ा काम परिवार निर्माण का है जो नये सिरे से सँजोना पड़ेगा । इस दिशा में योजनाबद्ध कार्य महिला जाग्रति अभियान के अन्तर्गत ही हो सकता है । युग निर्माण योजना का यह पक्ष इतना महत्वपूर्ण है कि उसकी गरिमा को ध्यान देने पर यह स्पष्ट दिखता है कि व्यक्ति निर्माण और समाज निर्माण की दोनों ही महती आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए परिवार निर्माण को अनिवार्य माध्यम मान कर चलना होगा ।

परिवार की आत्मा नारी है । उसी का उस पर पूरा अधिकार है । नियति ने उसे प्रजनन से लेकर शिशुपालन के समस्त साधनों से भरा-पूरा विशिष्ट क्षमता सम्पन्न शरीर दिया है । शिशुओं के परिपोषण के लिए उपयुक्त कुशलता दी है । साथ ही हृदय में ऐसी भाव संवेदना भर दी है जिसके सहारे वह घर के हर सदस्य को उसकी आवश्यकता के अनुरूप गुदगुदी प्रदान कर सके । शरीर की सज्जा कोई भी कर सकता है, पर घर परिवार के हर कोने में स्वच्छता, सज्जा, सुरुचि और कलात्मकता को सँजोये रहना मात्र उसी का काम है । पुरुष को प्रकृतितः यह नहीं आता, करना हो तो प्रयत्नपूर्वक ही इसका अभ्यास करना होगा ।

परिवार का शासन अनुशासन में बँधे रहने में उसी की सद्भाव शृंखला समर्थ रहती है । नारी को गृहलक्ष्मी इसलिए कहते हैं कि वह साधनों का अभाव रहते हुए भी सुसम्पन्नता जैसा वातावरण बनाये रह सकती है । वैदिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऋषि ने उसे साम्राज्ञी कहकर संबोधित किया है । परिवार को यदि एक छोटा राष्ट्र मान लिया जाय, जैसा कि वह है भी तो फिर नारी को उस समूह की अधिष्ठात्री साम्राज्ञी ही नहीं निर्मात्री भी कहा जा सकता है । सुलक्षणा नारी अपने आपको, परिवार को और उसके रहने वाले सदस्यों को योजनाबद्ध रीति से ऐसा कुछ बना सकती है, जिससे उन्हें श्रेय प्राप्त हो सके और सृजनकर्ता को उसकी क्षमता के अनुरूप गौरवान्वित होने का अवसर मिल सके ।

युग परिवर्तन का मेरुदण्ड परिवार निर्माण है । रीढ़ की हड्डी पीठ पीछे रहने और चमड़ी के नीचे ढकी रहने के कारण प्रत्यक्ष नहीं दीखती । सामने तो सौन्दर्य की ध्वजा बनकर नासिका ही रहती है, जिसकी उपयोगिता नाम मात्र की है । विधि को ऐसी ही विडम्बनाओं में से एक यह भी है कि मोटी दृष्टि से व्यक्ति और समाज का दायित्व दीखता है । धर्म और शासन पर बहुत ध्यान दिया जाता है पर यह एक प्रकार से भुला ही दिया जाता है कि परिवार के उस खदान का कितना अधिक महत्व है जिसमें से अपने समय और समाज का गौरवास्पद बनाने वाले नर-रत्न उपलब्ध होते हैं । परिवार संस्था का पुनरुत्थान करने की बात यदि समझी स्वीकारी जा सके तो उसी संदर्भ में इतना और भी मान लेना चाहिए कि यह कार्य प्रधानतया सुविकसित तथा सुसंस्कृत नारी के हाथों ही सम्पन्न हो सकता है । परिवार निर्माण का अर्थ दूसरे शब्दों में नारी जागरण है । इस महान प्रयास को उथली दृष्टि वाले कोई छोटा मोटा समाज सुधार आन्दोलन जैसा कम महत्व का समझ सकते हैं पर जिनको तथ्यों की गहराई में जाने की क्षमता है वे अनुभव करेंगे कि नवयुग के अवतरण के लिए किये जाने वाले प्रयासों में महिला जागरण अभियान को प्रमुखता ही देनी होगी ।

परिवार में सहयोग एवं सद्भावना की आवश्यकता

घर में कटुतापूर्ण वातावरण है । एक-दूसरे को सहयोग अपना-बिराना सोचकर दिया जाता है । बहू के प्रति सास-ननद आदि के हृदय में कोई स्थान नहीं है । बहू घर में बीमार पड़ी है । उसे दवा, चाय, भोजन, पानी आदि की समय-समय पर आवश्यकता रहती है, किन्तु इसकी कौन व्यवस्था करे ? उससे तो जले-भुने हैं । इधर पति भी, खुले दिल से पत्नी की सेवा नहीं कर पाता है, क्योंकि घर में परम्परागत वातावरण है । पति स्वयं अपनी पत्नी की सेवा कैसे करे ? यह तो लोक के विरुद्ध है । भला कहीं मर्दों को भी औरत की सेवा करनी चाहिए । पति भी थोड़ा दबे स्वभाव का है । इस कारण वह भी अपनी पत्नी की सेवा नहीं कर पाता है । इधर बेचारी पत्नी अकेलेपन अवस्था में कराहती रहती है । किन्तु उसकी कौन सुने ? थोड़ा-बहुत पति अपनी पत्नी के पास जाकर कुछ पूछताछ करता है तो घर में व्यंग्य की बरसात शुरू हो जाती है । क्या जमाना आ गया है ? औरतों के गुलाम हो गये हैं, आज के मर्द तो ये व्यंग्य बाण उसे सेवा करने से दूर किये देते हैं । पति मन ही मन परेशान कि क्या करे ? पत्नी की हालत दिनों-दिन गिरती जा रही है, घर का कोई सदस्य उसकी ठीक तरह से साल-सँभाल नहीं करता है ।

आजकल परिवार के परिजन परस्पर सेवा की भावना नहीं रख पाते हैं । जैसे-तैसे परिवार तो दिखाई देते हैं । पर भीतर की परिवारीय भावना मर चुकी होती है । ऐसा लगता है, सभी किसी होटल में रहते हैं, जहाँ खाना-विश्राम करने को मिलता है । एक-दूसरे के दुःख-दर्द से क्या मतलब ? आखिर क्या कारण है, परिवारों में परस्पर सेवा की भावना लुप्त होती जा रही है ।

परिवार के हर सदस्य को एक-दूसरे की सेवा करने के लिए तत्पर रहना चाहिये । ये ही क्षण होते हैं, जब एक दूसरे के प्रति व्यावहारिक प्रेम अभिव्यक्त करते हैं अन्यथा शाब्दिक प्रेम बनाये रखने से क्या लाभ ? किसी व्यक्ति के हृदय को जीतना है तो उसकी कष्ट और बीमारी के क्षणों में निःस्वार्थ भाव से सेवा कर दीजिए, वह सदा के लिए अपना हो जाता है ।

सेवा के सुअवसर केवल बीमारी के समय ही नहीं रहते हैं । घर के परिजन पर किसी भी प्रकार की विपत्ति या कष्ट है, उस समय उसे सहायता पहुँचा देना सेवा ही है । संकट आर्थिक हो या सामाजिक हो या राजनैतिक-कैसा भी संकट तो संकट है और हर समय हर आदमी को सहायता और सहयोग की आवश्यकता रहती है । इस समय सेवा पहुँचाना परिजनों का कर्तव्य है ।

यदि बीमारी कष्ट, विपत्ति, संकट आदि के क्षणों में परिवार के परिजन एक दूसरे के सहयोग, सहायता व सेवा के लिये ही बढ़ते रहे तो परिवारीय वातावरण में स्नेहिलता बनी रहती है । पति-पत्नी के दाम्पत्य जीवन में सुखप्रद आकर्षण बना रहेगा । वे एक दूसरे के लिये हर घड़ी हर काम के लिए तत्पर रहेंगे । उनकी प्रसन्नता का प्रभाव यह होगा कि घर के परिजन भी प्रसन्न बने रहेंगे तथा परिजन भी सेवा की भावना बनाये रख सकेंगे । उनमें भी प्रसन्नता बनी रहेगी । इस प्रसन्नता के वातावरण में बच्चों का विकास भली-भाँति होता रहेगा तथा सहयोग, सहायता और सेवा का पाठ बच्चे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से सीखते रहेंगे, जिसका उपयोग वे अपने भावी जीवन में कर सकेंगे । सहयोग, सहायता और सेवा की भावना के विकास पर परिवार की प्रसन्नता और प्रगति निर्भर है ।

भावनात्मक एकरूपता

आदर्श परिवार की स्थापना और आदर्श परिवार व्यवस्था का अनुपम लाभ उठाने के लिये हर व्यक्ति के मन में आकांक्षा उठती है । उसके अनेक नियम, उपनियम, बनाये गये हैं । परिवार के सदस्यों में कतिपय गुणों के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विकास और शिष्टाचारों के निर्वाह की बात भी कही जाती है । यह सभी आवश्यक तथा उपयोगी हैं, किन्तु इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण है पारिवारिक भावना, भावनात्मक एकरूपता । अन्य सब नियमोपनियम, गुण, शिष्टाचार आदि उसके आवश्यक कलेवर हैं, जिनके आधार पर उसका स्वरूप सुन्दरतम बनाया जाता है । परन्तु भावनात्मक एकरूपता तो उसका प्राण है ।

भावनात्मक एकरूपता का अर्थ है परिवार के सदस्यों में गहन आत्मीयता की अनुभूति । हम सब एक हैं, एक दूसरे के लिये हैं, साथ-साथ मरने जीने के लिए हैं, एक-दूसरे के दुःख से दुःखी, सुख से सुखी हैं आदि बातें कहना-सुनना और बात है तथा उसकी गहरी अनुभूति होना और बात है । सोचा, समझा और कहा जाना तो बुद्धि के आधार पर भी सम्भव है, किन्तु उतना मात्र पर्याप्त नहीं । बुद्धि से आगे बढ़कर अन्तःकरण की गहराइयों के स्पर्श से, स्नेह आत्मीयता जैसी भाव संवेदनाओं के विकास से ही उन सशक्त भाव सूत्रों का निर्माण होता है, जिनमें बँधकर कठिन से कठिन परिस्थिति तथा कठोर से कठोर परीक्षाओं में परिजन टूटकर बिखरते नहीं । न तो वैभव एवं सम्पन्नता उनके अपनत्व को प्रभावित कर पाती हैं और न अभावग्रस्त कठिनाइयाँ उन्हें डिगा पाती हैं ।

भावनात्मक स्तर सबल अथवा हीन होने का प्रत्यक्ष प्रभाव समाज में कहीं भी देखा जा सकता है । उसके अभाव में लोग नगण्य-सी साधन सम्पदा अथवा पद प्रतिष्ठा पाते ही अपने को परिजनों से भिन्न मानने लगते हैं । उनकी दृष्टि तथा व्यवहार में स्वजनों के प्रति हीन भावना तथा तिरस्कार के भाव प्रकट होने लगते हैं । दूसरे पक्ष में भी उसकी प्रतिक्रियास्वरूप द्वेष-दुर्भाव पैदा होने लगता है, किन्तु जहाँ भावनात्मक सूत्र सबल हैं वहाँ बड़े से बड़ा पद एवं वैभव पाकर भी आत्मीयता उतनी ही सघन बनी रहती है । अपनत्व का अधिकार सारे सांसारिक अधिकारों से बड़ा सिद्ध होता है ।

इसी प्रकार कष्ट-कठिनाइयों में भी उसका प्रभाव देखा जा सकता है । भावहीन परिजन अपनी व्यक्तिगत सुविधाओं में नाममात्र की कमी अथवा जरा-सी भी कठिनाई सहन नहीं करना चाहते । उनसे बचने के लिए स्वयं को शेष परिवार से अलग करने के लिये छटपटाने लगते हैं, किन्तु दूसरी ओर भावसम्पन्न का ढंग और ही होता है । वे अपनत्व के नाते बड़े से बड़े संकट का सामना मिल-जुलकर ही करते हैं तथा आत्मीयता के स्नेहसिक्त वातावरण में बड़ी से बड़ी कठिनाइयों को हँसते-खेलते पार कर जाते हैं ।

भावनात्मक स्तर हीन होने पर सामान्य शिष्टाचार की कमी भी परिवार को विघटित कर देती है । शिष्टाचार के बड़े-बड़े मर्मज्ञ भी मनुष्य की मनोभूमि का अन्दाज लगाने में भूल कर जाते हैं और हास-परिहास से लेकर विशेष उत्सव प्रसंगों में हुई सामान्य-सी घटनाओं को सम्मान का प्रश्न बनाकर 'महाभारत' खड़ा कर देते हैं । किन्तु गहन भावनात्मक एकता की स्थिति और ही होती है । वहाँ शिष्टाचार से अनभिज्ञ व्यक्ति भी एक दूसरे को इतना प्यार, सम्मान दे सकते हैं कि उसकी तुलना में बहिर्जगत का बड़े से बड़ा सम्मान भी छोटा लगने लगा । आत्मीयता भरा 'तू' का संबोधन बेटे, बेटी से लेकर माता-पिता एवं 'भगवान' तक को हर्षित कर सकता है और अपनत्वहीनता 'आप' का सम्बोधन भी मनुष्य के हृदय पर आघात कर सकता है ।

अस्तु, परिवार संस्था का पुनर्जीवन करने के लिये जहाँ अनेक नियम, गुण, शिष्टाचार के शिक्षण का अभ्यास कराया जाना है, वहाँ आत्मिक संवेदनाओं के विकास को भी ध्यान में रखना होगा । संयुक्त परिवार जैसी श्रेष्ठ प्रणाली इसी के अभाव में तिरस्कृत, बहिष्कृत होती जा रही है । मानवीय विकास की दृष्टि से संयुक्त-परिवार बड़े ही उपयोगी और अनुकरणीय हैं ।

जो लोग संयुक्त परिवार में रहते हैं वे भाग्यशाली हैं । पर समुचित भावनात्मक एकता के अभाववश समस्याएँ वहाँ उत्पन्न होती हैं और वे इतनी विकट होती हैं कि उनके रहते लगता है-इससे तो अलग घर बसा लिया जाता तो वही अच्छा था । इन समस्याओं में मुख्य हैं-पारिवारिक जीवन में आने वाली क्लेशपूर्ण परिस्थितियाँ । संयुक्त-परिवारों के टूटने का कारण जहाँ अधिकतम सुख-सुविधायें उठाने का आकर्षण है, वहीं परिवारों में होने वाले क्लेश, कलह भी हैं । बल्कि मुख्य कारण तो यही नजर आता है कि पुरानी पीढ़ी यानी कि माता-पिता और नई पीढ़ी पुत्र तथा बहू आपस में सामंजस्य नहीं बिठा पाते ।

पुरानी और नई पीढ़ी के द्वन्द्व ने बढ़ते-बढ़ते सामाजिक रूप धारण कर लिया है । इसकी शुरूआत परिवार से हुई है । जिस दिन लड़के की शादी होकर बहू घर आती है उस दिन से माँ-बाप अपने बेटे को परिपक्व दृष्टि से देखने लगते हैं । अब तक उनकी दृष्टि से लड़का बच्चा-सा था, पर अब बहू ले आया है तो वह संसारी व्यक्ति हो चुका है और उसे संसारी व्यक्ति की तरह रहना चाहिये । माता-पिता के निर्देश भी उसे इसी रूप में मिलने लगते हैं ।

सारी भूल माता-पिता से ही होती हो यह भी बात नहीं है । नई-नई पत्नी पाकर युवक उसकी ओर आवश्यकता से अधिक आकर्षण अनुभव करते हैं । लेकिन इस दृष्टिकोण को उचित नहीं कहा जा सकता । उसके पीछे सिद्धान्त न होकर शारीरिक कारण ही होते हैं । उन पर विवेकपूर्वक नियंत्रण न रखा जाये तो वह असंतुलन ही उत्पन्न करते हैं । वही नहीं उस स्थिति में पड़े हुए व्यक्ति को किसी के द्वारा दिए गये उचित परामर्श भी अखरने लगते हैं ।

इधर पत्नी की तरफ अधिक आकर्षित होते देखकर माँ यह समझती है कि उसका बेटा हाथ से निकला जा रहा है । कल तक तो बेटा माँ की गोदी में 'माँ-माँ'

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कहता हुआ आकर सिर रखकर लेट जाता था वह दूसरे घर से आई लड़की के मोहपाश में आबद्ध होकर माँ की ओर ध्यान देना भी नहीं चाहता । माँ का रवैया इसी महत्वपूर्ण बिन्दू पर चिन्ता करते-करते बहकने लगता है और यह दूसरे घर से आई लड़की की मान्यता इतने प्रबल रूप में अपनी जड़ें जमा लेती है कि वह बहू को कभी भी अपनी बेटी की तरह नहीं मान सकती ।

सास-बहू के पारिवारिक झगड़ों का अधिकांश कारण यह असंतुलित दृष्टि ही है । कदाचित् मातायें बहू को अपनी बेटी की तरह समझकर उससे आत्मीय व्यवहार करने लगें । दोष अकेली माँ के मत्थे भी नहीं मढ़ा जाना चाहिये । कोई युवती जब अपने परिवार को, भाई-बहिनों को, सगे माता-पिता को छोड़कर अपनी ससुराल आती है तो यह आशा की जानी चाहिये कि वह अपने पति के परिवार वालों को भी अपने घर के लोगों की तरह ही माने, पर होता यह है कि एक तो बदला हुआ वातावरण, दूसरे मायके में दी गई शिक्षायें और अपनी सहेलियों से मिले निर्देश और अनुभव उसे अजनबी परिवार के प्रति रूखा बना देती हैं । साथ रहते-रहते समझदार सास-बहू अपने सम्बन्ध अच्छे बना लें यह बात और है अन्यथा जिन घरों में सास-बहू के बीच हमेशा द्वन्द चला करता है वहाँ डोरी शुरू से खिंचने लगती है ।

बहू उस समय अपने पति घर अपना अधिकार करने के लिये प्रयत्नशील रहती है, तो माँ अपने बेटे को हाथ से न निकलने देने के लिए सजग और पति और पुत्र को लेकर, अन्य कारणों की आड़ में संघर्ष शुरू होता है । जिन घरों में ऐसा नहीं होता वहाँ भी दूसरा तरह से द्वन्द चलने लगता है । यदि सास-बहू को अपने बेटी मान भी ले तो वह अपेक्षा करती है कि बहू बेटी की तरह ही उसकी आज्ञाकारिणी हो । इस तरह की आज्ञायें बहुत कुछ यह समझ कर दी जाती हैं, जैसे वह एकदम नासमझ या बच्ची हो । यह ठीक है कि बहू की अपेक्षा सास अधिक अनुभवी और दूरदृष्टि सम्पन्न होती है, पर इसका अर्थ यह तो होता नहीं कि बहू का मस्तिष्क एकदम कोरा कागज ही है जिस पर समझ या सूझबूझ का एक भी अक्षर नहीं लिखा हुआ है ।

सास की आज्ञाओं और निर्देशों में बहू अपनी उपेक्षा या अवमूल्यन समझने लगती है, क्योंकि सास के सामने उसकी योग्यता और क्षमता नगण्य हो जाती है । वह न अपने मन का कोई काम कर सकती है और न उसे इसकी छूट ही अनुभव होती है तो वह यह मानने लगती है कि सास उसे अपने हाथ का यन्त्र भर बनाकर रखना चाहती है । मनमुटाव की ग्रन्थियाँ यही से बनना शुरू होती हैं ।

किन्हीं-किन्हीं घरों में सास-बहू का संघर्ष आमने-सामने होने लगता है । ऐसा उन घरों में होता है जहाँ सास और बहू वैचारिक तथा मानसिक दृष्टि से एक ही धरातल पर रह रही हों अन्यथा यह संघर्ष शीतयुद्ध के रूप में ही चलता है । माँ अपने बेटे को अपनी ओर खींचती है तथा बहू अपने पति के कान अलग भरती है । कुल मिलाकर ऐसी दशा में पुरुष की स्थिति बड़ी विचित्र हो जाती है । पति तटस्थ रहता है तो भी उस पर दोनों ओर से प्रहार होता है और किसी का पक्ष भी लेता है तो दूसरा पक्ष उसको अपने हाथ से बाहर निकल गया समझता है । माँ का पक्ष लेने वालों की संख्या कम है, अधिकांश पति अपनी पत्नी की ओर ही झुकते हैं ।

पत्नी की ओर झुकने का कारण है । एक तो पति, पत्नी से अधिक प्रभावित रहता है क्योंकि विवाह के बाद उसी का सम्पर्क सान्निध्य बड़ा रसमय लगता है और दूसरे विवाह के बाद माता-पिता द्वारा अपनाये गए रवैयों के कारण उनमें ही अधिक दोष देखने लगता है ।

जो भी हो-पारिवारिक क्लेश बना रहा तो परिवार टूटे या बना रहे दोनों ही परिणाम अच्छे नहीं कहे जा सकते । विवेकशीलता और पारिवारिक सद्भाव बनाये रखने के लिए उन गुत्थियों को समझ-बूझ के साथ सुलझाया जाना चाहिए जो उसे तोड़ देती हैं या चटखा देती हैं। इन समस्याओं का समाधान किए बिना किसी भी परिवार में सुख-शान्ति का वातावरण बनाये रखना असम्भव है । गृहस्थी में सम्पूर्ण कर्तव्यों का निर्वाह आध्यात्मिक सम्बन्धों पर निर्धारित रहता है । इन सम्बन्धों में यदि शुद्ध व सात्विकता बनी रहे तो गृहस्थी में एक सुखद वातावरण बना रहता है, किन्तु इन सम्बन्धों में यदि खटाई उत्पन्न हो गई तो वही गृहस्थ नारकीय यंत्रणाओं में घिर जाता है । परिवार के अमन-चैन मिट जाते हैं। सारा घर लड़ाई का अखाड़ा बन जाता है, सारे श्री-सौभाग्य धूल में मिट जाते हैं । उन्नति रुक जाती है और लोग निर्धनता का दीन-हीन जीवन बिताने को विवश हो जाते हैं । परिवार में जब अपने-अपने स्वार्थ का भ्रष्टाचार बढ़ता है और लोग कर्तव्य की आध्यात्मिक भावना को भुला देते हैं तभी गृहस्थ की दुर्दशा होती है । कितने कृतघ्न होंगे वे लोग जो अपने स्वार्थ के लिए परिवार में फूट के बीज बोकर सारी पारिवारिक व्यवस्था को तहस-नहस कर डालते हैं ।

यह दुर्भाग्यपूर्ण क्रम तभी रुक सकता है जब परिवार के सदस्यों के बीच पुनः कोमल संवेदनाओं को जाग्रत और विकसित किया जाय । आज प्रगतिशीलता के नशे में पुराने अच्छे-बुरे सभी मूल्यों को समाप्त करने की दुर्भाग्यपूर्ण हवा चल पड़ी है । उसे रोकना होगा । विवेकपूर्वक श्रेष्ठ परम्पराओं को अंगीकार करना होगा । अभिभावक एवं संतान, पति-पत्नी, भाई-बहिन, देवर-भाभी, ननद-देवरानी, सास-बहू आदि के बीच परस्पर कृतज्ञता और सद्भाव के भाव प्रवाह पुनः प्रवाहित करने होंगे ।

वास्तव में परिवार में हर व्यक्ति की अपनी भूमिका होती है । भावनाशील व्यक्ति ही उसका ठीक निर्वाह कर सकते हैं तथा उसी आधार पर अन्य सदस्य उसका मूल्यांकन करके उसके प्रति कृतज्ञता का भाव रख सकते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं । यदि हृदय के सद्भावों को एकदम सुखा ही न दिया जाय तो पिता के श्रम, माँ के करुणा भरे त्याग, पति-पत्नी का परस्पर समर्पण, भाई-बहिनों का निश्छल स्नेह हर किसी के अन्दर पुलकन पैदा कर सकता है । उस स्थिति में ओछे स्वार्थों को महत्व मिलने का प्रश्न ही नहीं उठेगा ।

इस युग में पारिवारिक सम्बन्धों में जो कडुवाहट आ गई है वह मनुष्य के संकुचित दृष्टिकोण और स्वार्थपूर्ण प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप ही है । स्वार्थपरता आसुरी प्रवृत्ति है जो छीना-झपटी, विग्रह और कलह पैदा करती है । सद्भाव दैवी प्रवृत्ति है । उससे प्रभावित परिवार का हर सदस्य एक दूसरे को देवताओं की तरह कुछ न कुछ देना ही चाहता है । इस मार्ग पर चलकर सभी सुख एवं सम्मान पाते हैं । जैसे-जैसे पिता और पुत्र, पिता और पुत्री के सम्बन्ध बड़े कोमल, मधुर और सात्विक होते हैं । इस अध्यात्मिक सम्बन्ध का सहृदयतापूर्वक पालन करने वाले व्यक्ति देव-श्रेणी में आते हैं । उनका मान और प्रतिष्ठा होनी ही चाहिये ।

व्यक्ति का भावनात्मक प्रशिक्षण माता करती है । उसके रक्त, माँस और ओजस् से बालक का निर्माण होता है । कितने कष्ट सहती है वह बेटे के लिए । स्वयं गीले बिस्तर में सोकर बच्चे को सूखे में सुलाते रहने की कष्टसाध्य क्रिया पूरी करने की हिम्मत भला है किसी में ? माता का हृदय दया-पवित्रता से ओत-प्रोत है, उसे जलाओ तो भी दया की ही सुगन्ध निकलती है, पीसो तो दया का ही रस निकलता है । ऐसी दया और ममत्व की मूर्ति माता के प्रति हार्दिक सम्मान का भाव रखना कौन अनुचित कहेगा ?

इसी क्रम में राम और भरत, गोरा और बादल के आदर्श भ्रातृ-प्रेम को फिर से पुनरुज्जीवित करना है । इससे हमारी शक्ति हमारी सद्भावनायें जाग्रत होंगी । हमारा साहस बढ़ेगा और पुरुषार्थ पनपेगा । स्नेहमयी बहिन, उदारता की मूर्ति भावजों को भी उसी तरह सम्मान प्रदर्शित करना चाहिये, जिस तरह माता के प्रति अपनी शालीनतापूर्ण भावनायें हों ।

घर का वातावरण कुछ इस तरह का शील-संयुक्त, हँसमुख और उदार बने जिससे सारा परिवार हरा-भरा नजर आये । इसके लिए धन आदि उपकरणों की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी अपने सम्बन्धियों के प्रति कर्तव्य और सेवा भावना की । परिवार में सौमनस्य हो तो वहाँ न तो सुख की कमी रहेगी, न शांति की । उस घर में आह्लाद फूटा पड़ रहा होगा जहाँ सबके दिल मिले होंगे ।

अभिभावक एवं संतान

परिवारों में स्वर्ग की कल्पना एवं अनुभूति जिस आधार पर की जा सकी-की जा सकती है, वह उसके सदस्यों के बीच कोमल संवेदनात्मक आदान-प्रदान ही है । यों हर परिवार के सदस्यों में बातचीत, हास-परिहास से लेकर वस्तुओं के आदान-प्रदान का कुछ न कुछ क्रम चलता ही रहता है, किन्तु यह सब यदि संवेदना-हीन स्थिति में है-मात्र शिष्टाचार, लोकलाज अथवा अपने बड़प्पन के प्रदर्शन के लिये किए जाते हैं तो उससे परिवार में स्वर्ग सृजन की कल्पना नहीं की जा सकती । धनी परिवारों में सामान्य प्रसंगों पर भी परिजन एक दूसरे को मूल्यवान उपहार दिया करते हैं, पिकनिक, मनोरंजन जैसे कार्यक्रमों में लम्बे समय तक साथ-साथ रहते, हँसते-बोलते हैं, किन्तु गरीब परिवारों में न तो लोगों के पास भेंट आदि देने के लिए अतिरिक्त धन होता है और न मनोरंजन आदि के लिए उतना समय ही वे लगा सकते हैं । किन्तु इतने मात्र से यह नहीं कहा जा सकता कि अमीर घरों में स्वर्ग रहेगा-गरीब घरों में नहीं । बल्कि इसके विपरीत अमीरी की तड़क-भड़क के पीछे नारकीय यंत्रणाओं की झलक और गरीबी के पीछे से उठती स्वर्गीय सुगन्धि का अनुभव किया जा सकता है । स्थूल समय साधन कितने जुट पाते हैं, यह बात गौण रह जाती है व आत्मिक चेतना का अपनत्व भरा प्रवाह कितना उठता है यह बात प्रमुख हो जाती है । परिवार के सभी सदस्यों में इसी का विकास और संचार अभीष्ट है ।

परिवार के सम्बन्धों की चर्चा उठते ही अभिभावकों एवं सन्तान का स्मरण अनायास ही हो जाता है । यह हर छोटे-बड़े परिवार के अनिवार्य घटक हैं । माता-पिता अथवा पुत्री-पुत्र के रूप में संसार के हर व्यक्ति को रहना ही पड़ता है । उनके परस्पर एक दूसरे के प्रति कर्तव्यों के बारे में बहुत कुछ कहा जाता रहा है । माता-पिता के संतान के प्रति तथा संतान के माता-पिता के प्रति कर्तव्यों की सूची बहुत विशद है । उनका पालन करने वालों को लौकिक यश एवं समृद्धि तथा पारलौकिक पुण्य एवं सद्गति प्राप्त होने की बात कही जाती है । विवेक इस कथन को अलंकारपूर्ण तो मान सकता है किन्तु निराधार नहीं ।

परन्तु इन सभी उक्तियों की गरिमा को सांसारिक, स्वार्थपरक दृष्टिकोण से नहीं नापा, आँका जा सकता है । सूक्ष्म संवेदनाओं को भुलाकर यदि स्थूल दलीलों से इन सम्बन्धों का मूल्यांकन करने का प्रयास किया जाय तो वे मात्र मखौल बनकर रह जावेंगे । उदाहरण के लिए 'माँ सम्बन्ध' को लें । भारतीय संस्कृति में 'माँ' को सर्वोच्च सम्मान एवं गौरव दिया गया है । उसके द्वारा बालक को गर्भ में रखने, दूध पिलाने, पालने-पोसने जैसी अनेक भाव भरी उक्तियाँ प्रचलित हैं । उसके इस ऋण से उऋण होने की बात कही जाती है । सन्तान उसके अनुदानों की कल्पना मात्र से पुलकित, रोमांचित हो उठती है । माँ तो सन्तान की कल्पना के आधार पर ही प्रसव जैसे मर्मान्तक पीड़ा पहुँचाने वाले प्रकरण को भूल जाती है । यह संवेदनायें उस आत्मिक सुख-संतोष की अनुभूति कराती हैं जिनके ऊपर संसार का बड़े से बड़ा सुख-वैभव न्योछावर किया जाना भी सामान्य सी बात लगती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह तो भावनात्मक व्याख्या हुई । स्थूल बुद्धि से इन्हीं की विवेचना की जाय तो सारा महत्व ही समाप्त हो जायगा । संवेदनाओं को न देखा जाय तो माँ क्यों बच्चों के लिए इतना कष्ट सहे ? प्रसव का प्राणान्तक कष्ट क्यों स्वीकार करे ? उनके लिये अपने खाने-पीने से लेकर घूमने-फिरने तक पर क्यों बन्धन नियन्त्रण लगाये ? यदि बच्चों से खिलौने की तरह मन बहलाना अच्छा लगता है तो किराये के बच्चे प्राप्त करना कहीं अधिक सुगम रह सकता है । कहने का तात्पर्य यह है कि यदि मात्र संवेदनाओं को हटा दिया जाय तो मातृत्व का उत्तरदायित्व स्वीकार करने के लिए किसी को तैयार करना कठिन है । आज मातृत्व को कर्तव्यों की उपेक्षा जितने अंशों में होती है वह सब भावनात्मक स्तर के हनन का ही दुष्परिणाम है ।

इसी प्रकार संतान की ओर से भी तर्क प्रस्तुत हो सकते हैं । माँ के अनुदानों के प्रति सन्तान के हृदय में कृतज्ञता भरी मृदुलता क्यों कर रह सकेगी । मातृ देवोभव आदि उक्तियाँ निरर्थक हो जावेंगी । मातृ ऋण को लोग क्यों स्वीकार करेंगे या महत्व देंगे ? यदि उसे किसी रूप में स्वीकार भी किया जाय तो कोई पुत्र उसका हिसाब गणितीय ढंग से करके मुक्ति पा सकते हैं । जैसे माँ ने बाल्यावस्था में कितना दूध पिलाया ? गर्भ को ६-७ पौंड भार को लिए फिरने में कितना श्रम लगा । बच्चे की सेवा सुश्रुषा में कितना समय लगाया-उस सब का बाजार की दर पर हिसाब लगाया जा सकता है । फिर बच्चे से माता-पिता ने कितना मनोरंजन किया-कितना घरेलू काम कराया इसे उसमें से घटाकर शेष हिसाब चुकता करके ऋण मुक्त हुआ जा सकता है ।

यह सब चर्चा तर्कसंगत भले ही कही जाय किन्तु गले नहीं उतरती ऐसा कहना पवित्र सम्बन्धों का यह अच्छा-खासा मखौल उड़ाना ही कहा जायगा । कहीं यह हिसाब लगाया जाने लगे तो वैसा करने वालों को तर्क सम्मत बुद्धिजीवी की संज्ञा न देकर घटिया-निकृष्ट स्तर का व्यक्ति कहा जायगा । निश्चित रूप से भावनात्मक स्तर ही मानवीय गरिमा के अनुरूप परिवारों का गौरवमय स्तर बना सकते हैं ।

अभिभावक एवं संतान को अपने अन्दर इसी दृष्टिकोण का विकास करना चाहिये । मनुष्य के अन्दर छिपी हुई स्नेह, अपनत्व की दिव्य भावनाओं की तुष्टि उसके बिना सम्भव नहीं । पिता-पुत्र को ही लें, तो वे वयस्क होने के पूर्व पुत्र अथवा वृद्ध हो जाने पर पिता एक दूसरे से अपनी शारीरिक सुख-सुविधाओं की पूर्ति भर से सन्तुष्ट नहीं हो सकते, उनकी आत्मिक आकांक्षायें भी होती हैं । एक दूसरे से आत्मीयता भरा स्नेह-सम्मान पाये बिना उसका समाधान नहीं होता । वह आकर्षण, वह लगाव पैदा किए बिना पिता-पुत्र के बीच आदर्श सम्बन्धों की स्थापना आदर्श कर्तव्यों का पालन, कठिन एवं अस्थाई ही नहीं असम्भव जैसे ही हो जाते हैं ।

पिता-पुत्र के सम्बन्ध संसार में सबसे घनिष्ट होते हैं और कोमल भी । इतने घनिष्ट की पुत्र पिता की आत्मा का अंश ही नहीं उसका प्रतिबिम्ब होता है । पुत्र के गुण-कर्म, स्वभाव देखकर पिता के गुण-कर्म, स्वभाव का अनुमान किया जा सकता है और पिता के देख लेने के बाद पुत्र के देखने की ही जरूरत हो, ऐसा नहीं । पुत्र अधिकांशतः पिता का सर्वतो उत्तराधिकारी होता है । पिता-पुत्र की यह समानता उनकी घनिष्टता का ही प्रमाण है ।

यह सम्बन्ध कोमल भी कम नहीं होता । किसी ओर से प्रमाद हो जाने से यह टूट भी जल्दी जाते हैं । अनेक बार तो पिता-पुत्र के सम्बन्ध जब एक बार टूट जाते हैं तब जीवन भर नहीं जुड़ते । बाहर से वे भले ही पास-पास रहते रहें एक दूसरे के प्रति अपना कर्तव्य करते रहें किन्तु अन्तर में वह एकता नहीं रहती, जो पिता-पुत्र के सम्बन्धों की पवित्र शोभा है । इस सम्बन्ध को यथावत् तथा यथायोग्य बनाए रखने के लिए दोनों ओर से सतर्क और सावधान रहना चाहिये केवल रक्त अथवा जन्म पर ही निर्भर रहने से प्रमाद हो जाने का डर रहता है ।

आज पिता-पुत्र के बीच सम्बन्धों में वह सामीप्य और स्नेह, श्रद्धा कम देखने को मिलती है जिसकी आशा की जाती है और जिसे होना भी चाहिये । यह अशोभनीय तथा अहितकर है । ऐसा नहीं होना चाहिये । पिता-पुत्र की इस कमी से परिवार का विकास रुक जाता है । आर्थिक पतन हो जाता है । प्रतिष्ठा जाती रहती है । लोग हँसते हैं । परिवार का भावी उत्तराधिकारी टूटकर अलग हो जाये तो पिता के बूढ़ा होने पर उस धुरी को कौन धारण करेगा ? कौटुम्बिक कार-व्यापार को कौन सँभालेगा ? पिता-पुत्र में अन्तर होते ही लोग बीच में आकर स्थान बनाने का प्रयत्न करते हैं । दोनों को अलग-अलग पाकर लाभ उठाने और अपना हस्तक्षेप करने के लिये प्रयत्नशील होने लगते हैं । तरह-तरह के कारण गढ़ कर जनश्रुतियाँ बनाते, अफवाहें फैलाते और उपहास उड़ाते हैं । पिता को दृढ़ रहने और पुत्र को उत्तराधिकार माँगने के लिये उकसाते, सहायक बनते, परामर्श देते और न्यायालय तक ले जाते हैं । ऐसी दुष्टतायें समाज में कम नहीं चल रही हैं । इसलिए प्रत्येक सद्गृहस्थ को अधिक से अधिक सावधान रहना चाहिये । यहाँ तक कि पिता-पुत्र ही नहीं परिवार के किन्हीं भी सदस्यों में फूट न पड़े । इसके लिये कोई भी त्याग करना पड़े, करने को तैयार रहना चाहिये सहनशीलता तो एक दैवी गुण ही है उसे तो ग्रहण ही किये रहना चाहिये ।

इस सम्बन्ध की रक्षा में पहला कर्तव्य पिता का है । पुत्र के अस्तित्व में आने से पूर्व ही पिता प्रौढ़, पूर्ण और योग्य हो चुका होता है । पुत्र उसके सामने जन्मता और उसकी गोद में खेलता और देख-रेख और निर्देश में पलता, बढ़ता और जवान होता है । इस बीच में सोलह-सत्रह साल की इतनी पर्याप्त अवधि होती है कि पुत्र को इच्छानुसार ढाला जा सकता है । यदि उसके संस्कार पुत्रोचित् बना दिए जाएँ तो कोई कारण नहीं कि पुत्र जीवन भर पिता का आज्ञाकारी एवं अनुगत न बना रहे ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तब तक उसका स्वभाव और संस्कार इतने गहरे हो सकते हैं कि बाहर का कोई भी प्रतिकूल प्रभाव उनको बदल सकना तो दूर हिला तक नहीं सकता किन्तु खेद है कि लोग पिता तो आसानी से बन जाते हैं किन्तु पुत्र को पुत्र बनाने का प्रयत्न नहीं करते । वे रक्त के नैसर्गिक सम्बन्ध के बलबूते बेखबर पड़े रहते और उसका निर्माण करना आवश्यक नहीं समझते । विधिवत निर्माण के अभाव में वे जंगली झाड़ी की तरह जिधर चाहते बढ़ते रहते हैं, सँभाली पौध की तरह सुव्यवस्थित नहीं हो पाते ।

बनने को तो कोई भी पिता बन जाता है, किन्तु यह उत्तरदायित्व कम गम्भीर नहीं है । सन्तान पैदा करने का अर्थ है-समाज में एक नया नागरिक बढ़ाना । यदि वह नागरिक योग्य हुआ तो समाज का हित करेगा, अयोग्य हुआ तो हानि पहुँचायेगा । उसके द्वारा पारिवारिक अशांति के विषय में तो कहा ही क्या जाये । एक अयोग्य संतान परिवार की अतीतकालिक प्रतिष्ठा ही नहीं गिरा देता भविष्य भी खराब कर देता है । घर में फूट डाल देना, आर्थिक दशा बिगाड़ देना तो उसके लिए साधारण सी बात होती है । ऐसी ही अयोग्य सन्तानों में पिता-पुत्र के बीच नहीं बनती और वे एक-दूसरे के विरोधी तक बन जाते हैं ।

पुत्र को पिता का प्रतिबिम्ब बतलाया गया है । जैसा पिता होगा पुत्र भी बहुत कुछ वैसा ही होगा । पिता के रहन-सहन और आचार-विचार का पूरा प्रभाव बच्चों पर पड़ता है । इसलिए पुत्र को सुशील और योग्य बनाने के लिए पिता को स्वयं भी वैसा ही बनना पड़ेगा । व्यसनी, दुर्गुणी, क्रोधी, अनुदार अथवा संकीर्ण स्वभाव वाले पिता यदि यह चाहें कि उनको सुशील, सभ्य और विनम्र सन्तान मिल जाये यह सम्भव नहीं । उन्हें अपनी ही तरह की सन्तान पाने और वह सब व्यवहार सहने के लिए तैयार रहना चाहिये जैसा कि वे दूसरों से करते आ रहे हैं ।

पिता-पुत्र का जनक ही नहीं उसका पथ-प्रदर्शक और मित्र भी है । जो पिता अपने पुत्र का ठीक-ठीक पथ-प्रदर्शन करते और मित्र की तरह व्यवहार करते हैं उनके बीच कभी विरोध नहीं होता । पुत्र को अपने स्नेही और स्पष्ट पिता के प्रति बड़ी श्रद्धा होती है । वे उनकी तरफ इतना आकर्षित रहते हैं कि पिता के बिना एक क्षण भी नहीं रह सकते । बहुत बार तो अपने गुणों के कारण पिता पुत्र को वश करने में माँ को भी पीछे कर दिया करता है । अनेक परिवार ऐसे ढूँढ़े जा सकते हैं जिनमें बच्चे पिता को ज्यादा चाहते और अधिक देर उन्हीं के पास रहना पसन्द करते हैं, जितनी देर पिता घर में रहता है वे उसे छोड़कर कहीं जाना ही पसन्द नहीं करते । वे माँ की अपेक्षा पिता के साथ खाना-पीना, घूमना-फिरना और सोना ज्यादा पसन्द करते हैं । माँ के पास सोते होने पर भी पिता की आहट पाकर उसके पास से उठ जाते हैं । बच्चों का स्वाभाविक आकर्षण होता तो माँ की तरफ ही है, किन्तु प्रेम की प्रबलता से वे पिता की ओर खिंच जाते हैं । सच बात तो यह है भावनात्मक संतुष्टि अन्य सभी आकर्षणों को पीछे छोड़ देती है । जिस परिवार में वह उपलब्ध हो, उस परिवार के लोग क्या छोटे, क्या बड़े बाहर तरह-तरह की संगति में भटकते नहीं हैं । देश, विदेश के किशोरों का सर्वेक्षण करने में यह तथ्य उभर कर सामने आये हैं कि जो बालक-बालिकायें, अभिभावकों से भावनात्मक संतुष्टि पाते हैं, वे संगी-साथियों, घूमने-फिरने और खेल-कूद के आकर्षण छोड़ कर भी उन्हीं के साथ अधिक से अधिक समय बिताना पसन्द करते हैं । ऐसी स्थिति में किसी प्रकार के विद्रोह, अवज्ञा जैसे प्रसंग खड़े होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता ।

यह सोचना गलत है कि आज के बच्चे अनुशासन में रहना पसन्द नहीं करते । अनुशासन आतंक से नहीं आत्मीयता से स्थापित होता है । सर्वेक्षणों से स्पष्ट हुआ है कि बालक ढीले-पोले माता-पिता को नहीं व्यवस्थित एवं अनुशासनप्रिय अभिभावकों को अधिक पसन्द करते हैं । हाँ उसका रूप भावनात्मक हो-आतंकपरक नहीं ।

बहुधा गलती यह होती रहती है कि जनक, पालक और वयोवृद्ध होने के कारण पिता अपने को पुत्र का स्वामी समझने लगता है और उस पर हुक्म चलाना अपना जन्मजात ही नहीं नैसर्गिक अधिकार मान लेता है । अपना अधिकार व्यक्त करने के लिये उनको आदेश देना और उसको मनवाना अपना गौरव मानता है । यह एक दोष है । ठीक है कि पिता को आदेश देने का अधिकार है और पुत्र का कर्तव्य है कि उसका पालन करे । तथापि अधिकार प्रकट करने के लिए हुक्म चलाना ठीक नहीं । जो काम आदेश द्वारा कराया जा सकता है, वह स्नेहपूर्वक भी कराया जा सकता है । इससे पुत्र के स्वाभिमान पर ठेस नहीं लगती और न वह अपने को अधीन ही अनुभव करता है । कृपणता और संकीर्णता भी पिता के लिए बड़े दुर्गुण माने गये हैं ।

पिता केवल एक पुत्र का ही तो पिता नहीं होता । वह अनेक सन्तानों का पिता और पूरे परिवार का अधिष्ठाता और व्यवस्थापक होता है । इसलिये उसमें न्यायप्रियता, निष्पक्षता व समानता का गुण भी होना चाहिए । उसके अभाव में किसी न किसी की भावनाओं को चोट लगती ही रहेगी । उसे भाई-भाई का झगड़ा पूरी बुद्धिमानी और निष्पक्षता से ही निपटाना चाहिये । अनेक बार अनेक पुत्रों के बीच पिता के स्नेह का अनुदान बराबर नहीं होता । वह किसी को अधिक और किसी को कम चाहता है और इसकी अभिव्यक्ति व्यवहार तक में हो जाती है । बहुधा पिता या तो सबसे बड़े बेटे को सबसे ज्यादा चाहता है अथवा सबसे छोटे को । बीच वाले बेचारे यों ही गौण अथवा उपेक्षित रह जाते हैं । पहला बेटा तो स्वाभाविक रूप से प्यारा होता ही है । वही माता-पिता में वात्सल्य का उदय किया करता है और फलस्वरूप उसके पूरे वेग का अधिकारी भी बनता है । सबसे छोटा बच्चा उनकी अंतिम रचना होती है इसलिये उस पर भी प्यार कुछ अधिक होता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है । कई बार यह भी होता है कि अपने सुशीलता और सुकुमारिता के कारण किन्हीं पिताओं को बेटे से कहीं अधिक बेटी प्यारी होती है । वह उसे अच्छे से अच्छा खिलाने, पहनाने और हर इच्छा पूरी करने की यह सोच कर कोशिश करते हैं कि कुछ दिन बाद पराई हो जायगी तब न जाने उसे यह चीज मिली या न मिली । उसके विवाह और देने के लिए बचाने के प्रयत्न में पुत्रों की उपेक्षा कर जाते हैं । सम्भव है यह प्रवृत्ति कुछ स्वाभाविक हो । तब भी बुद्धिमान और नीतिवान पिता को यह अन्तर प्रकट नहीं होने देना चाहिये । इससे मनोमालिन्य पैदा होता है । उपेक्षित लड़के पिता को पक्षपाती समझकर उससे विरत होने लगते हैं । अभिभावकों की यह भूल उनके प्रति पुत्रों की श्रद्धा कम करने का कारण तो बनती ही है, भाई-बहिनों के परस्पर स्नेह सम्बन्ध भी तोड़ देती है ।

बहुत बार बड़ों की शिकायत पर छोटों की डाँट-फटकार और ताड़ना तक हो जाती है किन्तु छोटे की शिकायत पर उसे ही उलटी डाँट मिलती है । बहिन की शिकायत पर भाई को भी घुड़की मिलती है किन्तु भाई की शिकायत हँसकर टाल दी जाती है । चाहे स्नेहवश ही क्यों न हो किन्तु है यह पक्षपात ही । भावनात्मक स्तर का निर्वाह बड़ा कठिन होता है । उसे पूरा करने के लिये अपनी इच्छाओं तक का बलिदान करना पड़ता है और वह हर बुद्धिमान पिता को करना ही चाहिये । पक्षपाती पिता का कोई न कोई पुत्र विद्रोही हो ही जाता है, इसलिये अपने व्यवहार और स्नेह में पिता को न्याय और निष्पक्षता की अवहेलना नहीं करनी चाहिये । अयोग्य लड़कों के लिए तो पिताओं का अस्सी प्रतिशत स्नेह मर जाता है । वे उसे फूटी आँख नहीं सुहाते । जो कुछ उसके साथ करते हैं, उसे लोकलज्जा के कारण मजबूरी समझते हैं । वे हर समय उन्हें टेढ़ी नजर और घृणा भरे हृदय से देखते रहते हैं । स्वाभाविक होने पर भी इसका परिणाम और भी खराब होता है । घृणा और तिरस्कार पाकर वह बिगड़ा हुआ लड़का और बिगड़ जाता है और पिता का शत्रु की तरह विरोधी हो जाता है ।

बुराई का परिमार्जन बुराई से नहीं होता । उसकी विकृतियों का कारण सहानुभूतिपूर्वक खोजना और उन्हें दूर करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए । घृणा से घृणा तथा तिरस्कार से विद्रोह का जन्म हो जाता है । इसलिए नालायक बेटे के साथ भी पिता को पिता का कर्तव्य नहीं भूलना चाहिये । यदि उसे उसका उचित स्नेह का अधिकार कुछ भी न मिलता रहे तो वहाँ का ऐसा असर होगा जो सुधरने के बजाय बिगड़ता चला जायेगा । निःस्वार्थ आभार बुरे से बुरे को कृतज्ञ बना देता है । बहुत से पिता ऐसे पत्नी भक्त होते हैं कि माँ की जरा-सी शिकायत करने पर बेटे की लाठी-डण्डे से खबर लेते हैं । इस पत्नी भक्ति से घरवाली की आदत बिगड़ जाती है उसके स्वभाव में क्रूरता आ जाती है जिससे वह जरा-जरा-सी बात की शिकायत करने लगती है । पत्नी ही क्यों न हो शिकायत करते ही बच्चे पर टूट नहीं पड़ना चाहिये । पिता घर का अधिष्ठाता है । उसे न्याय ही करना चाहिये और न्याय-आसन पर बैठकर उसे यह भूल ही जाना होगा कि वह किसी का पति और किसी का पुत्र है । अभियोगी अथवा अभियुक्त कौन है ? उसका इससे कोई सम्बन्ध नहीं रहना चाहिये । उसका कर्तव्य सुनना और समुचित न्याय कर उचित दण्ड निर्धारित करना है ।। ऐसे निष्पक्ष और न्याय-निष्ठ पिता की सन्तान कभी विद्रोही नहीं होती ।

परिवार के भावनात्मक सम्बन्धों पर आघात करके उन्हें जर्जर बनाने के लिये पुत्र और पुत्री के बीच का भेदभाव भी है । प्रारम्भ से ही उनके बीच भेद के बीज पड़ जाने से वे परिवार और समाज में अनेक शाखाओं, उपशाखाओं के रूप में फैलने लगते हैं । परिवार लड़के-लड़कियों, महिलाओं-पुरुषों से ही मिलकर बनता है । कन्या के साथ पक्षपातपूर्ण व्यवहार सिर्फ इसलिये कि वह कन्या है, नारी है, स्पष्ट रूप से मानवीय भावनाओं का हनन है । कारण जो भी रहे हों इस स्तर का पक्षपात आज भारतीय समाज में बुरी तरह घुसा हुआ है । उसके कारण बच्चों के मनों में अहंकार अथवा आत्महीनता एवं द्वेष के बीच अनचाहे-अनजाने ही पड़ते चले जाते हैं ।

पुत्र जन्मा तो बहार आ गई, हँसी-खुशी, राग-रंग, बधाइयाँ, भोज, दावतें और न जाने क्या-क्या ? पुत्री जन्मी तो पतझर, दुःख, निराशा और भाग्यहीनता के उच्छ्वास । हमारी भारतीय संस्कृति में नारी की दयनीय दशा की करुण कहानी यहीं से प्रारम्भ होती है और अन्त तक दुःखान्त ही चली जाती है ।

पुत्र का नामकरण संस्कार किया जाता है, अन्नप्राशन संस्कार कराया जाता है, विद्यारम्भ और यज्ञोपवीत आदि संस्कार धूमधाम से कराये जाते हैं और कल्पना की जाती है कि यह संस्कार बालक के जीवन में शक्ति, शुचिता और तेजस्विता का अभिवर्द्धन करेंगे किन्तु कन्या को इन संस्कारों से वंचित रखा जाता है । तात्पर्य यह कि अपने आदर्श शास्त्रीय मान्यताओं तक ही सीमित हैं । व्यवहार में कन्या के उज्ज्वल पक्ष की बात भी सोचना भारतीय परम्परा के विपरीत हो गया है । नर और नारी दोनों आत्मिक परिपूर्णता का समान उद्देश्य लेकर ही मनुष्य शरीर प्राप्त करते हैं एक को मार्गदर्शन मिले, प्रकाश मिले, सम्बल मिले और दूसरे को प्रेरणा व प्रोत्साहन तो दूर मानवीय जीवन की गरिमा ही समझने न दी जाये, यह कहाँ का न्याय और कैसी सभ्यता है ?

बेटे का पालन-पोषण, लाड़-प्यार इस तरह किया जाता है जैसे उसे अगले दिनों राजगद्दी मिलने वाली हो कन्या को तो जीवन निर्वाह की सुविधायें प्रदान कर दी जाती हैं यही क्या कम उपकार है उसके लिये ?

शहरों की बात दूसरी है जहाँ सामाजिक जीवन अब नई करवट लेता जा रहा है, पर गाँवों में आज भी स्थिति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह है कि यदि किसी ने बच्ची को पढ़ाने-लिखाने का साहस दिखाया तो कक्षा ५ या अधिक से अधिक सुविधा वाले क्षेत्रों में कक्षा १० तक पढ़ा दिया और इस पढ़ाई तक पहुँचने से पूर्व ही उसके लिए साँकल तलाश दी । बेचारी ने जरा साँस ली कि गले में विवाह का बन्धन डाल दिया । लड़के अवारागर्दी करें तो माँ-बाप की यही इच्छा रहती है कि बेटा पढ़-लिखकर कुछ हो जाये उधर कन्या पढ़ने-लिखने की हार्दिक अभिलाषा को कुचलकर मन मसोस रह जाती है । फिर वह चाहे कितनी ही बौद्धिक क्षमता सम्पन्न क्यों न हो ।

छोटे भाइयों को, भाइयों के बच्चों को, चाचा ताऊ के बच्चों को, पालन का अधिकांश भार बेचारी यह कन्यायें ही उठाती हैं । चौके-चूल्हे का बोझ इन कोमल कलियों पर डाल कर भी माँ-बाप का फतवा होता है 'अजी घर में नहीं सीखेंगी तो ससुराल में नाम धरायेंगी ।' घर वालों की नाक न कटे इस अपयश के भय से किशोरी कन्यायें मन में आत्महीनता की भावनाएँ लिए घर में अपमान भरा जीवन जीती और वहाँ से यथा शीघ्र निकाले जाने की प्रतीक्षा करती रहती हैं । यह है अपनी सुसंस्कृत कही जाने वाली जाति की, सुघड़ कही जाने वाली व्यवस्था और परम्परा जिसे हम लम्बे समय से लादे हुए चले आ रहे हैं ।

इनके निवारण के कार्यक्रम बहुत कुछ बनाये जा सकते हैं, किन्तु वह सब चलेंगे भावनात्मक आधार पर ही । अभिभावक यदि बेटी की पीड़ा को समझ सकें तो अपने परिवार के भावनात्मक संतुलन से लेकर दूसरों परिवारों में स्वर्ग सृजन तक का लाभ सहज ही उठा सकते हैं ।

उसकी उपेक्षा अनेक रूपों में विकृतियाँ पैदा करके उपेक्षा करने वालों को दण्डित करती रहती हैं । इस पक्षपात से बेटी ही पीड़ित नहीं होती, अभिभावक एवं परिवार के अन्य सदस्य भी उसका दण्ड पाते हैं । समाज इस दयनीय दुर्दशा का हर्जाना भी उसके माँ-बाप से खूब अच्छी तरह वसूल करता है । कन्या को स्वस्थ और प्रकाशपूर्ण वातावरण में रखा गया होता उसे शिक्षित, स्वावलम्बी और स्वाभिमानी बनाया गया होता तो लड़के वाले नाक रगड़ते और लड़की वालों के दरवाजे पर हाथ जोड़े रखे रहते कि यह कन्या हमें मिल जाये तो सुनसान घर में रोशनी आ जाये । कूड़े, कचरे को उठाने के लिये तो मुआवजा चाहियें सो लड़के वाले अच्छी तरह से वसूल करते हैं और कन्या को दयनीय स्थिति में रखने का पाप उसके माँ-बाप भी अच्छी तरह भुगतते हैं ।

स्पष्ट है कि पक्षपात मुक्त माता-पिता और हीन भाव से मुक्त सुयोग्य कन्यायें इस दुष्टतापूर्ण परम्परा को जरा-सी देर में समाप्त कर सकती हैं । घरों को स्वर्ग में परणित कर सकने वाली गृहलक्ष्मी को लोग आदर सहित, कृतज्ञता मानते हुए सहर्ष स्वीकार करेंगे । जो उसका महत्व न समझें उन पर कन्या को थोपने का कोई कारण नहीं । पुत्र के समान कन्या भी स्वावलम्बी जीवन बिता सकती है । भावनात्मक समानता के वातावरण में पली कन्या के लिए ऐसा करना जरा भी कठिन नहीं होगा ।

किसी भी पक्ष से देखें अभिभावकों एवं सन्तान के बीच भावनात्मक प्रगाढ़ता आवश्यकता भी है और उपयोगी भी । बच्चों के मन में इसी आधार पर वह श्रद्धा सद्भाव जाग्रत हो सकता है जो माता-पिता के लिए भी सुखद हो और बच्चों को जीवन में प्रगति की अनेक दिशायें खोल दे । इस सद्भाव के अभाव में ही घरों में लड़कों को बागी होते देखा जाता है । लड़कियाँ प्रत्यक्ष बगावत तो नहीं करतीं किन्तु उनके अन्दर जो असन्तोष एवं आत्महीनता दबी रहती है, वह उनकी संतानों में कुसंस्कार के बीजों के रूप में स्थापित हो जाती है । अस्तु, कुशल गृहणी एवं गृहपति को परिवार में वह वातावरण प्रारम्भ से ही बनाना चाहिये जहाँ संतान पर समुचित अनुशासन कायम रखते हुए भी उनके बीच भावनात्मक निकटता भी बढ़ती चले ।

बड़ों के आदेश और उनका सम्मान

परिवार का संतुलन बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि उसमें वयोवृद्धों के प्रति क्या दृष्टिकोण है ? सद्भावसम्पन्न परिजनों में सभी एक दूसरे के सम्मान का ध्यान रखते हैं, किन्तु वयोवृद्धों के प्रति विशेष रूप से सम्मान व्यक्त करना आवश्यक है । उस सद्भाव के आधार पर ही उनके अनुभव एवं मार्गदर्शन का समुचित लाभ उठाया जा सकता है ।

यही कारण है कि बच्चों और नवयुवकों को सदा से यही शिक्षा दी जाती रही है कि वृद्धजनों का आदर करना चाहिये, उनकी सलाह को मानना और आदेश का पालन करना चाहिये । आदर इसलिये करना चाहिये कि अधिक आयु हो जाने पर मनुष्य अधिक सत्कर्म कर लेता है । मानव-जीवन सत्कर्मों के लिए ही तो मिला है । सन्मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति आयु वृद्धि के साथ-साथ सत्कर्मों की पूँजी भी बढ़ाता चलेगा । आज आमतौर से धनी लोगों का जिस प्रकार समाज में सम्मान होता है उसी प्रकार विचारशीलों की दृष्टि में अनुभवी, लोकसेवी और धर्म-परायण लोगों की प्रतिष्ठा होती है । जो कोई वृद्ध पुरुष अपने जीवन में सन्मार्गगामी रहा है और विवेक की दृष्टि से अपनी मनोभूमि को परिमार्जित करता रहता है तो स्वभावतः उसका सर्वत्र आदर होना चाहिये । छोटी आयु के लोगों को उसका आदेश मानना ही चाहिये । गुरुजनों का, वयोवृद्धों का आदर करना, सुख पहुँचाना शास्त्रों में एक श्रेष्ठ धर्म-कर्तव्य माना गया है । पारिवारिक सुव्यवस्था की दृष्टि से तो यह पद्धति और भी अधिक उपयोगी है । जहाँ वृद्धजन आदरपूर्वक जीते हैं और सुख पाते हैं, वह घर सदा फलता-फूलता ही रहता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस व्यवस्था में कई बार अपवाद भी उत्पन्न होते हैं । वृद्धावस्था में अनेक कुसंस्कार और भी अधिक विकृत रूप में उपस्थित होते हैं । स्वयं तो शरीर और मन की दुर्बलता से कुकर्म नहीं कर पाते पर दूसरों को खोटी सलाह देते रहते हैं । उनकी बात न मानी जाय तो नाराज होते हैं, कोसते हैं और हठ करते हैं । धर्म की दुहाई देकर, बड़ों की आज्ञापालन करना उचित बताकर अपनी अनुपयुक्त रीति-नीति पर छोटों को चलने के लिए विवश करते हैं । ऐसी दशा में उसके लिए एक धर्म-संकट उपस्थित हो जाता है, जो बड़ों की आज्ञा मानने, उनका आदर करने के साथ-साथ उचित, अनुचित एवं कर्तव्य, अकर्तव्य का भी विचार करते हैं और सन्मार्ग को प्रधानता देना चाहते हैं । ऐसी दशा में अनुचित आदेश की अपेक्षा विवेक एवं औचित्य को ही प्रधानता देनी चाहिए ।

एक पिता अपनी कन्या का विवाह सम्बन्ध किसी प्रयोजन के वशीभूत होकर अनुपयुक्त व्यक्ति के साथ पक्का कर आते हैं । कन्या, उसके भाई-बहिन और माता इस अत्याचार के विरुद्ध हैं पर पिता महोदय गृहस्वामी होने के कारण अपनी ही बात पर अड़े हैं और उस अनुचित कार्य को अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाए हुए हैं । आप सोचें कि ऐसी स्थिति में वयोवृद्ध का आदेश माना जाने योग्य है या नहीं ?

एक युवक का विवाह हुए कई वर्ष हो गये । संतान नहीं हुई । पिताजी पोते का मुख जल्दी देखने के लिये आतुर हैं और अपने बेटे का दूसरा विवाह करने की तैयारी में लगे हैं । आप ही बतावें कि उस पिता की इच्छा उचित है ?

पिछले स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने वालों को घर के बड़े-बूढ़ों का विरोध सहना पड़ता था । आज भी राष्ट्र रक्षा के लिए जो सैनिक भर्ती हुए हैं उन सबको अपने बड़े-बूढ़ों की सहमति कहाँ प्राप्त हो सकती है ? मोह की प्रबलता भला इतने बड़े त्याग की बात सहन भी कैसे कर सकती है ?

एक पिता, मिलावट और बेईमानी का व्यवहार करते हैं । टैक्स की चोरी करते हैं । जवान लड़का इससे सहमत नहीं होता । पिताजी इसमें घर की आर्थिक हानि की सम्भावना सोचते हैं और लड़के पर दबाव डालते हैं । बड़ों की आज्ञा आँखें बन्द करके मानने वाले धर्मोपदेश सुनाते हैं । लड़का सोचता है क्या करूँ ? आप उसे क्या सलाह देंगे ?

कई मातायें अपने बच्चों को आँखों के सामने रखना चाहती हैं । घर से दूर गाँव में पढ़ने नहीं भेजना चाहतीं । बच्चा अशिक्षित रह जाता है । क्या यह दृष्टिकोण उचित है ? छोटे बच्चों की जल्दी शादी करने के व्यामोह में कितने ही माता-पिता अपने बच्चों की जिन्दगी बर्बाद करते हैं । क्या उनका यह निर्णय बुद्धिमत्तापूर्ण होता है ? उसी प्रकार सामाजिक कुरीतियों के अन्धविश्वासी होने के कारण कई वृद्धजन हठवश कोई खर्चीला कार्यक्रम घर वालों पर थोप देते हैं और उससे परिवार की अर्थ-व्यवस्था ही नष्ट हो जाती है । कई वृद्धायें पर्दा-प्रथा की कट्टर पक्षपाती होने के कारण अपनी बहू-बेटियों को पढ़ने नहीं देतीं, घर से बाहर पैर नहीं रखने देतीं, अपने शासन के आगे दूसरों की इच्छा और आवश्यकता की परवाह नहीं करतीं । ऐसी स्थिति में उनका आदेश चलता भी रहे तो क्या भीतर ही भीतर घोर असंतोष न सुलगता रहेगा और उसका दुष्परिणाम उत्पन्न न होगा ।

पिता अपने ही व्यवसाय में अपने बच्चों को लगाये रखना चाहता है, पर बच्चों की प्रतिभा एवं अभिरुचि दूसरी दिशा में सुविधा खोजती है । क्या यह उचित होगा कि बच्चों की आकांक्षा को निरस्त करके बड़ों की व्यवस्था ही प्रधान रहे ? यदि ऐसा ही किया जाता रहता तो संसार के लगभग सभी महापुरुष अपने पिता के आज्ञाकारी बेटे और उन्हीं के छोटे-मोटे व्यवसायों को चलाते रहने वाले तुच्छ व्यक्ति ही बने रह जाते ।

संसार में समझदार और वृद्ध पुरुषों की कमी नहीं । उनके अनुभव और ज्ञान से नई पीढ़ी का भारी मार्गदर्शन होता है । इसीलिए उनकी महत्ता को सदा से अक्षुण्ण रखा जाता है । गुरुजनों की सेवा, शिक्षा और आज्ञा का समुचित ध्यान रखना कर्तव्य माना गया है । वैसा ही हमें करना भी चाहिए । उनके शारीरिक सुख और सुविधा का तो पूरा-पूरा ध्यान रखा ही जाना चाहिए और यदि उनका कोई सुझाव या आदेश व्यावहारिक न हो तो कम से कम अपमान के शब्दों में प्रत्युत्तर तो नहीं ही देना चाहिये । ऐसे प्रसंगों पर चुप हो जाने से तात्कालिक कटुता उत्पन्न होने से रोकी जा सकती है ।

औचित्य और आज्ञा के धर्म-संकट में जो उचित है, जो धर्म है, जो कर्तव्य है उसे ही प्रधानता दी जानी चाहिए । वृद्ध पुरुष बड़े हैं पर धर्म कर्तव्य उनसे भी बड़ा है । बड़ों का आदेश पालन किया जाना चाहिए पर विवेक की पुकार उससे भी पहले सुनी जानी चाहिए । व्यामोह यदि वृद्धों के कलेवर में प्रवेश करके बोले तो उसे सुनने से पूर्व औचित्य का ध्यान आवश्यक है फिर चाहे वह किसी के मुख से ही उच्चारित हुआ हो । आयु-वृद्ध से ज्ञान-वृद्ध बड़ा है । आयु का महत्व निश्चय ही बहुत है पर विवेक से बढ़कर उसकी महत्ता स्वीकार नहीं की जा सकती । बड़ों की सभी बातें हम मानें, उनको सब प्रकार सुखी सन्तुष्ट बनाने का प्रयत्न करें, पर जब वे अनैतिक, असंगत, अविवेकपूर्ण आदेश देने लगें तो उनकी पूर्ति के लिए तत्परता दिखाना आवश्यक नहीं । वृद्धावस्था की प्रतिष्ठा ज्ञान, विवेक, धर्म और दूरदर्शिता के कारण ही होती है यदि यह तत्व उसमें न रहें तो वृद्ध पुरुषों और गुरुजन न रहकर बूढ़े आदमी मात्र रह जाते हैं । हमें वृद्ध पुरुषों और गुरुजनों का परिपूर्ण अनुगमन करना चाहिये, पर यह जरूरी नहीं कि सफेद बालों के कारण विवेकहीन बूढ़े आदमी भी हमारे मार्गदर्शक बनें हीं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यहाँ यह बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि बड़ों की बात उचित न होने पर न मानना और बात है तो बड़ों के प्रति उपेक्षा, अवज्ञा एवं असम्मान का स्वभाव बना लेना और बात है । बड़ों के मार्गदर्शन का लाभ न मिल सकता हो तो भी उन्हें उचित सम्मान एवं सुविधायें देने में चूक नहीं करना चाहिए । बड़ों का मार्गदर्शन ही नहीं उनका सद्भाव एवं आशीर्वाद भी बहुत महत्व रखता है ।

भारतीय संस्कृति में 'आशीर्वाद' प्राप्त कर लेना परम सौभाग्य और विजय का सूचक माना गया है । यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि अपने से बड़े-बुजुर्ग माता-पिता एवं गुरुजनों से आशीर्वाद मिलने से मनुष्य का मनोबल बढ़ता है और उससे एक प्रकार की शक्ति अनुभव की जाती है । इसलिए प्रत्येक मंगल कार्य, उत्सव, पर्व और किसी भी शुभ कार्य के आरम्भ में अपने से बड़ों का आशीर्वाद प्राप्त करते हैं । यह बड़ों के प्रति सम्मान करने और आत्मबल सम्पन्न होने का लक्षण है । जो ऐसा नहीं करता उसे नीच प्रकृति का उच्छृंखल व्यक्ति माना जाता है ।

बाल्मीकि रामायण में बताया गया है–

मातरं पितरं विप्रमाचार्यं चावमन्य ते ।
स पश्यति फलं तस्य प्रेतराज वशं गतः ।।

अर्थात- जो माता, पिता, ब्राह्मण और गुरुदेव का सम्मान नहीं करता वह यमराज के वश में पड़कर पाप का फल भोगता है ।

किसी के प्रति सम्मान प्रकट करने या प्रणाम करने से मनुष्य छोटा नहीं हो जाता वरन् इससे श्रेष्ठत्व की प्रतिष्ठा ही होती है और उस उच्च भावना का लाभ भी मिले बिना रहता नहीं । शुद्ध अन्तःकरण से किया हुआ नमन आंतरिक शक्तियों को जगाता है इसलिए श्रेष्ठ पुरुषों ने सदैव ही इस मर्यादा का पालन किया है । भगवान राम और आचार्य रावण में पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता थी । राम-रावण की कुटिलता को जानते थे किन्तु पाण्डित्य और श्रेष्ठता के प्रति उनके हृदय में जो श्रद्धा भावना थी उसके वशीभूत होकर ही उन्होंने विपरीत परिस्थिति में भी इस नैतिक मर्यादा का पालन किया था । रामायण में लिखा है–

अस कहि रथ रघुनाथ चलावा ।
विप्र चरण पंकज सिर नावा ।।

'इस प्रकार रणोद्यत राम ने अपना रथ आगे बढ़ाया और रावण के सम्मुख पहुँचकर उसके चरण-कमलों में अपना शीश झुकाया ।'

सैद्धान्तिक मतभेद के बावजूद भी व्यावहारिक जीवन में बड़ों को सम्मान देने का उच्च आदर्श भारतीय संस्कृति की अपनी निजी विशेषता है । वह आत्मा ही बलवान होता है जो प्रभुसत्ता के समक्ष अपने आपको बिल्कुल लघु मानता है और तुलसीदास जी के शब्दों में **'सियाराम मय सब जग जानी, करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी'** की भावना रखने वाला ही सच्चा कर्मयोगी होता है । अनावश्यक अभिमान मनुष्य को पतित बनाता है, इसका उदय न हो इसलिए बड़ों के समक्ष सदैव विनम्र होकर रहने की शिक्षा हमें दी गई है । महाभारत में अनेक ऐसे प्रसंग आते हैं जब विपक्षी पितामह भीष्म और द्रोणाचार्य के अर्जुन आदि पाण्डव चरण-स्पर्श करते और उनका शुभाशीष प्राप्त करते हैं । शिष्य की निष्ठा से द्रवीभूत गुरु उनकी जय कामना करते हैं और वैसा होता भी है । यदि यह मान लें तो भी यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है कि जो शक्ति अभिमान के वशीभूत न हो वह श्रेष्ठ तो होगी ही और उस श्रेष्ठता से लाभान्वित होने का लाभ उन्हें अनायास मिला ही ।

सम्मान से प्रत्येक मनुष्य को एक प्रकार की आध्यात्मिक तृप्ति मिलती है, उसे प्रत्येक व्यक्ति चाहता है । आपको भी सम्मान मिले, इसके लिए इस आदि सभ्यता की परम्परा को जीवित रखना चाहिये । बड़े दुर्भाग्य की बात है कि आधुनिक शिक्षाधारी व्यक्तियों में अहंकार इतना बढ़ रहा है कि बड़ों को सम्मान देना वे अनावश्यक समझते हैं । इसे वे छोटापन मानते हैं । कई व्यक्ति तो माता-पिता को मारने-पीटने और उन पर रौब दिखाने में ही अपना बड़प्पन मानते हैं । यह हमारी संस्कृति के नाम पर कलंक ही है कि लोग अपने जन्मदाताओं को त्रास दें । गुरु-परम्परा तो प्रायः समाप्त-सी होती जा रही है और इनके प्रति उनकी भावनायें भी बिल्कुल ओछी हो गई हैं । सामयिक अनुशासन को बनाये रखने के लिए और आत्म-सम्मान प्राप्त करने का भी यही मार्ग है कि हम भी अपनों से बड़ों के साथ वैसा ही व्यवहार करें । दार्शनिक सुकरात ने कहा है–'अच्छा सम्मान पाने का मार्ग यह है कि तुम भी सम्मान करो । तुम जैसा प्रतीत होने की कामना करते हो वैसा बनने का प्रयास करो ।'

बड़ों के प्रति सम्मान और अनुशासन होना पारिवारिक संगठन का आधार है । यह संगठन जहाँ प्रेममूलक होता है वहाँ पारस्परिक आत्मीयता होती है । एक सदस्य दूसरे सदस्य का ध्यान रखता है और अधिकार के स्थान पर कर्तव्य की प्रधानता रहती है । इस स्थिति में सुख और अमन के लिए बाह्य साधनों पर नितान्त अवलम्बित नहीं होना पड़ता । लोगों में पारस्परिक स्नेह और आत्मीयता हो तो कोई कारण नहीं कि घरेलू वातावरण कष्टप्रद लगे । पारस्परिक अनुशासन सुख और व्यवस्था का मेरुदण्ड है, इसे अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि लोगों में बड़ों के प्रति आदर का भाव बना रहे । ऐसा होने से उस वातावरण में श्रद्धा और विश्वास में कमी नहीं होने पाती और वह संगठन सुदृढ़ स्थिति में कायम बना रहता है । जब तक यह संगठन कायम रहता है तब तक धन-धान्य की भी कमी नहीं रहती और बाहरी लोगों के आक्रमण भी सफल नहीं होते । इसलिए इस भावना को पवित्र दैवी तत्व माना गया है । पितरों को पूजने की प्रथा बड़ों के प्रति आस्था का ही चिह्न है ।

सम्मान के पीछे मूल भावना जितनी पवित्र होगी उतना ही वह अधिक उपादेय होगा और जिसके प्रति सम्मान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रकट किया गया है उसके हृदय में 'आशीर्वाद' की बहुत-सी मात्रा खींच लाने वाला होगा । लोकव्यवहार और दिखाने के लिए प्रदर्शित सम्मान से आत्मिक अभिव्यक्ति नहीं होती और वह एक संकीर्ण विचार मात्र रहकर अपने आप में ही सिमटकर रह जाता है । सम्मान की परम्परा का प्रारम्भ आत्मविकास की मूल प्रेरणा को लेकर होता है इसलिए वह निष्काम और निर्लोभ होना चाहिए । वहाँ पर अहंकार, लोभ आदि आसुरी वृत्तियों का प्रादुर्भाव न होना चाहिये । इसे एक रूढ़ि मात्र भी बनकर न रह जाना चाहिये । वरन् इस भावना को अन्तर्रात्मा के स्पर्श की सुखानुभूति होने देनी चाहिए ताकि सम्मान आध्यात्मिक प्रशस्ति का ही साधन बना रह सके ।

समय बीतने के साथ परम्परा अपने आप रूढ़ि का रूप ले लेती है । यदि उसकी मूल प्रेरणा में आत्मीयता और अनुशासन का भाव न रहे तो यह परम्परा भी वैसी ही निष्फल हो जाती है । बड़ों की समता और उनके अनुभवों का लाभ हम विनीत होकर पा सकते हैं । बनावटीपन के कारण तो अपने आप ही छले जाते हैं । हम जब बालक थे तो माता-पिता ने जिस तरह हमारी सेवा सुश्रूषा की थी हमें भी अपने माता-पिता की सेवा उसी आदर भावना से करनी चाहिए । जो ऐसा नहीं करते उनकी विद्या का नाश हो जाता है और वे कृतघ्न कहलाते हैं ।

धार्मिक श्रद्धा का विकास और उच्चादर्श की प्रेरणा प्रारम्भिक वातावरण से मिलती है । छोटी अवस्था से ही इन भावनाओं का उद्दीपन होता है । हमारे बालक अपने जीवन का निर्माण हमारे स्वभाव से ही अनुकरण करके सीखते हैं । उन्हें एक विशेष प्रकार की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि में ढालने के लिए और आत्मसम्मान प्राप्त करने के लिए भी हमारे आचरण में बड़ों के प्रति सम्मान का समावेश बना रहना चाहिये । धर्म, सदाचार और नैतिकता का बीजारोपण यहीं से होता है । यह परम्परा इधर कुछ समय से लुप्त हो गई है जिसके कारण हमें बड़े कष्ट मिले हैं । लोगों के जीवन क्षुद्र और अहंकारी बने, पारिवारिक संगठन स्थिर न रह सके, जिससे आर्थिक, नैतिक पतन हुआ और सामाजिक जीवन में भी पारस्परिक विश्वास डाँवाडोल हो गया । अब इस गलती को दोहराना नहीं चाहिए । अपने जीवन की सर्वतोमुखी प्रगति अभीष्ट हो तो बड़ों के सम्मान में भूल न करें । माता-पिता और गुरुजनों के आशीर्वाद से जीवन संग्राम में विजय ही होती है । यह आस्था परिवार के हर सदस्य में जाग्रत करना हितकारी है ।

भाई-भाई, भाई-बहिन

परिवार के सम्बन्धों में जिन सम्बन्धों से सबसे अधिक क्षेत्र प्रभावित होता है वे हैं-'भाई और बहिन' । भाई-भाई हों या भाई-बहिन बन्धुत्व की निश्छल पवित्रतम और सघनतम आत्मीयता भ्रातृ भाव एवं भगिनी भाव में देखी जा सकती है । इन सम्बोधनों में भरा हुआ भाव इतना सबल और सक्षम है कि वह अपने अंग में सारे विश्व को समेट सकता है ।

यहाँ ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि महत्वपूर्ण यह सम्बोधन नहीं-उनमें सन्निहित भाव है । भावहीन होने पर रक्त सम्बन्धी भाई-भाई, भाई-बहिन, को भी किसी प्रकार औपचारिकता निभाना भी कठिन हो जाता है और यदि वह भाव जाग जाता है तो रक्त और वंश तो क्या यह सम्बन्ध अपनी गोद में सारे विश्व को ही समेट लेने में समर्थ हो जाते हैं । पारिवारिक सद्भाव एवं सुख-शांति से लेकर सामाजिक समानता, संगठन के लिए यह भाव अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होते हैं । अस्तु हर घर में यह प्रयास किया जाना चाहिए कि प्रत्येक सदस्य में गहन भ्रातृभाव एवं भगिनी भाव का विकास हो सके ।

भाई-भाई के सम्बन्ध परिवार एवं समाज की सशक्त रचना के प्रमुख आधार हैं । सघनतम मित्र, आदर्श सहयोगी, विश्वस्त मार्गदर्शक, निष्ठावान अनुगामी, हार्दिक समर्थक सभी भाव एक साथ मिला देने पर जो स्वरूप बनता है वह सब 'भाई' के सम्बन्ध में समाहित हो जाता है । गोस्वामी तुलसीदास जी ने परिवार रूपी शरीर में भाई की उपमा 'हाथ' से दी है । कार्य करने के लिए, प्रेम एवं अपनत्व भरे आदान-प्रदान से लेकर कष्ट, कठिनाई के निवारणार्थ हाथ ही पहले आगे आ जाते हैं । हाथ मिलाने से लेकर बाँहों में भर लेने जैसे भाव भरे प्रसंगों में हाथ ही पहल करते हैं । इसी प्रकार विपरीत परिस्थितियों में भी वह कतराते नहीं । शरीर पर वज्र भी टूटे तो यथासाध्य हाथ पहली चोट अपने ऊपर लेकर शरीर को बचाने का प्रयास करते हैं । वास्तव में सच्चे भाई में यह सभी गुण होते हैं ।

पारिवारिक प्रसंगों में बहुधा विपरीत, अनपेक्षित परिस्थितियाँ आ जाती हैं । उनका समाधान सच्चे सहयोगियों के माध्यम से ही निकलता है । वह सहयोग अपनत्व प्राप्त करने देने का सबसे उपयुक्त माध्यम है-'भाई' । एक भाई पर किसी भी प्रकार की कठिनाई आने पर दूसरा दौड़ता है, उसे दौड़ना ही चाहिए । जो दो-चार भाई हैं उनका कोई सामना करने को तैयार नहीं होता । एक की अनुपस्थिति में दूसरा बच्चों का अभिभावक बन जाता है ? भाई का दुःख-सुख भाई से अधिक कौन अनुभव कर सकता है । भाई एक आत्मा, एक ही माँस मिट्टी के भिन्न-भिन्न आकार होते हैं । वे एक दूसरे के स्वाभाविक सहायक साथी माने गए हैं । भाई से अधिक किस पर गर्व और विश्वास किया जा सकता है । वे सब एक हैं, उन्हें सदा एक रहना चाहिए । किन्तु खेद है कि भाई-भाई के झगड़े नित्य देखने में आते रहते हैं । इस अस्वाभाविकता की खोज की जानी चाहिए और उसे दूर किया जाना चाहिए । जहाँ भाई-भाई मिलकर रहते हैं वहाँ सबकी तरक्की होती है और वह परिवार धन्य हो जाता है । भाई संसार में दुर्लभ पदार्थों में गिना गया है । उसे किसी मूल्य पर भी अपने से अलग नहीं होने देना

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चाहिए । भाई के अलग हो जाने पर मनुष्य की शक्ति वैसे ही कम हो जाती है जैसे हाथ कट जाने से शरीर की शक्ति तथा तना कट जाने से वृक्ष की दृढ़ता ।

भाई-भाई का झगड़ा स्वाभाविक नहीं । किन्तु वे आये दिन लड़ते रहते हैं । अलग होते और एक दूसरे के विरोधी बनते रहते हैं । इस अस्वाभाविकता के अनेक कारण हो सकते है उनमें से एक अनुचित विकास भी है । अधिकाँश माता-पिता लड़कों को प्रकृति पर छोड़ देते हैं । उनके प्राकृतिक विकास में कोई हस्तक्षेप नहीं करते । मनमाने ढंग से बढ़ते हुए पौधे और बच्चे प्रायः गलत रूप ही पकड़ लेते हैं । माता-पिता को छोटेपन से ही यह देखते रहना चाहिए कि कहीं कोई लड़का उच्छृंखल, उदण्ड अथवा व्यतिक्रामक तो नहीं होता जा रहा है । वह अपने दूसरे भाइयों का उचित ध्यान रखता है या नहीं । कहीं उसमें स्वार्थ और अपनेपन की भावना तो घर नहीं कर रही है । यदि ऐसा हो रहा हो तो तत्काल उस पर प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए और प्रयत्नपूर्वक उसकी अनानुकूलमुखी प्रवृत्ति को वांछनीय दिशा में मोड़ा जाना चाहिये । बच्चों का स्वभाव पेड़ की नई डाली की तरह कोमल होता है । वह उचित बन्ध लगाकर किसी भी दिशा में मोड़ा, झुकाया जा सकता है ।

इस मोड़ को लाने के लिए ताड़ना अथवा दण्ड का मार्ग उचित नहीं । इससे बच्चा सुधरने के बजाय और बिगड़ सकता है । ढीठ हो सकता है । जिसके सामुख्य में उसे ताड़ना दी गई है उसका अधिक विरोधी हो सकता है । ताड़ना, यातना अथवा भय से कोई प्रवृत्ति दबाई तो जा सकती है, मिटाई नहीं जा सकती । वह अवसर पाकर फिर उभर आयेगी और तब उस तेजी से उभरेगी जैसे रुका हुआ गैस संध पाते ही वेग से फूट पड़ता है । दण्ड सुधार का उचित उपाय नहीं । इसे यथासम्भव या तो प्रयोग में ही न लाना चाहिये या गौण रखना चाहिए ।

दो छोटे भाइयों का झगड़ा मिटाने के लिए अनेक बार माता-पिता यह भूल भी कर बैठते हैं कि उनको एक दूसरे से बोलने और साथ खेलने से मना कर देते हैं और यथा सम्भव इस निषेध का पालन करने का भी प्रयत्न किया करते हैं । यह उपाय बड़ा खतरनाक है । इससे सम्भव है उनके आपसी वाद-विवाद भले ही ज्यादा न हों, किन्तु इसका दूरगामी प्रभाव बड़ा खराब पड़ता है । उनमें पारस्परिक मनोमालिन्य पलता और जमा होता जाता है, वे अपने अवचेतन मन में एक दूसरे से भिन्नता का भाव भरते जाते हैं जो आगे चलकर जब वे सयाने, जवान और घरवार वाले बनते हैं तो बात-बात पर प्रकट होते और भाई को भाई का विरोधी बना देते हैं । दो झगड़ने वाले बच्चों का एक दूसरे से बोलना बन्द कराने के बजाय उन्हें लड़ने न देने का प्रयत्न करना चाहिये । झगड़े का कोई मामूली-सा कारण ही होगा उसे शीघ्र ही समझा और दूर किया जा सकता है । बल्कि बच्चे यदि आपस में स्वयं ही बोलना बन्द कर दें या एक साथ न खेलें तो उनको तत्काल एक स्थान पर करके मेल करा देना चाहिए । भिन्नता का भाव तो किसी दशा में भी भूल कर भी न देना है और न बढ़ाना है ।

रुचि वैचित्र्य भी भाई-भाई के झगड़े का एक कारण है । माता-पिता को चाहिये कि खाने-पहनने और खेल, मनोरंजन में उनकी रुचि वैचित्र्य को प्रोत्साहित न होने दें । उनको एक जैसा ही खाना और एक जैसा ही कपड़ा देने चाहिए, यथासम्भव मनोरंजन अथवा खेल के उपकरण ऐसे ही देने चाहिये जिनसे अलग न खेला जा सके । खेलने के लिये भाइयों को साथ ही होना पड़े । भाई-भाई जितना साथ-साथ खेलेंगे, खायेंगे और रहेंगे वे एक दूसरे के अधिक समीप आते रहेंगे । बाल-बुद्धि के कारण वे झगड़ सकते हैं । किन्तु इसकी ज्यादा परवाह नहीं करनी चाहिये थोड़े दिनों में उन्हें एकता का आभास हो जायेगा । इस एकरूपता का सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि उनके संस्कार परोक्ष रूप से भाई के प्रति अधिकाधिक आत्मीयता में ढलते जायेंगे जो आगे चल कर अपना लाभ प्रकट करेंगे ।

बच्चों की संगत पर बड़ा ध्यान रखना चाहिये । बहुत बार बाहर के अवांछित तत्व भाई-भाई में विरोध पैदा कर देते हैं । किसी बाहरी समवयस्क के प्रभाव में आकर बच्चे अपने भाइयों की उपेक्षा करने लगते हैं जो उनके मनमुटाव का कारण बनता है । एक परिवार के बच्चों के संस्कार दूसरे परिवार के बच्चों की तरह ही हों, यह जरूरी नहीं । संगत से बच्चे अनुचित संस्कार, विरोधी स्वभाव अथवा असंगत आदतें ग्रहण कर सकते हैं जो कि घर पर भाई-भाई के विरोध का कारण बन सकती हैं । बहुत बार दुष्ट आदमी और कभी-कभी बच्चे भी एक भाई को दूसरे भाई से लड़ाने का षड्यन्त्र किया करते हैं । वे उनकी शिकायत करते, कल्पित पक्षपात का भ्रम पैदा करते और पानी रख-रखकर उन्हें लड़ाते रहते हैं । अनुकूल-प्रतिकूल और अच्छा-बुरा बनने में संगति का बहुत प्रभाव पड़ता है । दूसरे बच्चों के साथ खेलना-बोलना तो बन्द नहीं करना चाहिये क्योंकि इससे सामाजिक भावना का विकास रुकता है, किन्तु इस बात का ध्यान जरूर रखा जाना चाहिये कि वे गलत बच्चों अथवा आदमियों की संगत में न आने पायें ।

छोटे-बड़े का भेद, माता-पिता का पक्षपात भी भाई-भाई में मनोमालिन्य बढ़ा देता है । यह कमी माता-पिता की है । उन्हें इस विषय में अपना सुधार कर ही लेना चाहिये । सब बच्चे उनके हैं । उनके लिये सब बराबर हैं । कोई भी कारण उन्हें विषम-भाव रखने के लिये विवश न कर सके । यदि वे स्वयं असमान भाव रखेंगे तो कैसे आशा कर सकते हैं कि सगे भाई, भाई के प्रति समान भाव रखें । इस प्रकार यह कुछ प्रारम्भिक तथ्य हैं जिनके प्रति असावधानी अथवा प्रमाद बर्तने से भाई-भाई में विरोध के बीज पड़ सकते हैं जो आगे चलकर प्रतिफलित हो सकते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

बाल्यावस्था के इन कारणों के अलावा कुछ कारण ऐसे हैं जो आगे जवान हो जाने पर बाल-बच्चेदार हो जाने पर भाई-भाई में झगड़े खड़े करते हैं । उनमें से एक कारण जायदाद का बँटवारा भी है । जायदाद के बँटवारे पर भाई, भाई का शत्रु बन जाता है । मार-पीट और मुकदमेबाजी तक हो जाती है । अच्छा तो यह हो कि पिता ऐसी कोई जमीन जायदाद ही न रखे जिस पर झगड़ा खड़ा हो । यदि हो तो उसका बँटवारा उचित समय पर समान रूप से कर देना चाहिये । जो पिता बँटवारे में जरा सी असावधानी अथवा पक्षपात बरतता है वह न केवल भाई-भाई को ही शत्रु बना देता है बल्कि अपने लिए भी संकट पैदा कर लेता है । बँटवारे के समय योग्य-अयोग्य लड़कों का विचार रखना भी खतरे से खाली नहीं है और किसी को चोरी-छिपे देना तो सबसे बुरा है । बँटवारे में पिता को पूरी तरह साफ-सुथरा और निष्पक्ष रहना चाहिये ।

बहुत बार ऐसा भी हो जाता है कि पिता बँटवारा किये बिना ही दिवंगत हो जाता है । ऐसे समय में सबसे बड़े भाई को पिता का स्थान लेना चाहिये और बँटवारा शान्तिपूर्वक करना चाहिए । कितना अच्छा हो कि सबसे छोटे को सबसे ज्यादा मिले और उसी प्रकार क्रम से हर बड़ा भाई खुशी से कम स्वीकार करता जाय । साथ ही बँटवारे में यह ख्याल रखा जाये कि अमुक भाई की स्थिति कमजोर है; उसके बच्चे ज्यादा हैं अथवा उसकी आवश्यकता अधिक हैं, उसे सबसे ज्यादा मिलना चाहिये । तब तो भाई के प्रति भाई के स्नेह और आत्मीयता का आदर्श ही मूर्तिमान हो जाये । भाइयों के प्रति भाइयों का ममत्व सागर की तरह उमड़ पड़े । बँटवारे के समय बहुत होशियार और उदार रहना चाहिये, जमीन-जायदाद को झगड़े की जड़ बतलाया गया है । एक दूसरे के प्रति त्याग-भावना रखने से यह बँटवारा भी भाइयों में फूट नहीं डाल सकता । जमीन या मकान का कोई हिस्सा अथवा नोटों की कोई गड्डी इतनी मूल्यवान नहीं है जितना भाई-भाई का प्रेम और संगठन ।

भाई-भाई में फूट डालने में एक कारण स्त्रियाँ भी होती हैं । प्राय: वे सम्मिलित परिवार में रहना पसन्द नहीं करतीं । वे तो अपना घर अलग कर अपने एकाकी आधिपत्य में अधिक विश्वास करती हैं । जब तब सच्ची लगाकर अथवा तिल का ताड़ बनाकर भाई-भाई में लड़ाई कराकर, चूल्हा-चौका अलग कर लेने की कोशिश किया करती हैं । सभी भाइयों को अपनी ऐसी स्त्रियों से होशियार रहना चाहिये और उनके मन्त्रित्व अथवा परामर्श पर ज्यादा कान न देना चाहिये । जो पुरुष मानसिक दुर्बल और इन्द्रियलोलुप ज्यादा होते हैं उन पर स्त्रियों की यह माया आसानी से चल जाती है । भाइयों का मिल कर रहना ज्यादा कीमती है व मुकाबले किसी कुटिल नारी के हास-रुदन के । सभी भाइयों को अपनी नारियों को इस विस्फोटक प्रवृत्ति को दबाते रहना चाहिए । इसके लिये समझाने-बुझाने से लेकर सख्ती तक काम में लाई जा सकती है । नारियों का स्वभाव भी बच्चों की तरह हठी होने पर भी नमनीय होता है । थोड़ा धैर्य रखा जाये और उनके कहते ही परिचालित न होकर उन्हें अपने अनुकूल मोड़ने का प्रयत्न करने से उनमें सामंजस्य आ ही जायेगा । भाई-भाई का मेल बनाये रखने के लिए पुरुषों को गृह-कलह से भयभीत नहीं होना चाहिए । जो पुरुष अपने स्वरूप का विस्मरण कर सदैव बन जाता है स्त्रियाँ उन्हें ही अपनी कठपुतली बना लेती हैं । भाई का महत्व स्त्री से कम नहीं है, इस बात को कभी नहीं भूलना चाहिये । फिर सबसे बड़ी बात यह है कि स्त्रियों को अपनी दुरभिसन्धि चलाने का अवसर तभी मिलता है और साहस भी तभी होता है जब वे भाई-भाई के बीच कोई सन्ध पा लेती हैं । यदि भाई पूरी तरह से मिले रहें एक-दूसरे का समुचित आदर, सम्मान और लिहाज करते हों तो सहज नहीं कि कोई स्त्री उनमें फूट डालने की सोच भी सके ।

भाई-भाई में फूट डालने का एक कारण बच्चों का झगड़ा भी होता है । बच्चे आपस में लड़ते हैं । फिर स्त्रियाँ झगड़े में पड़तीं हैं और उसके बाद पुरुष पड़ जाते हैं । इस प्रकार लड़ाई हो पड़ती है और भाई-भाई अलग हो जाते हैं । इस विषय में बच्चों का झगड़ा बच्चों तक ही रखना चाहिये उसे किसी भी मूल्य अथवा कारण पर आगे नहीं बढ़ने देना चाहिये । यदि कोई भाई किसी भाई के बच्चे को पीट भी दे तब भी किसी को इसका कोई विचार नहीं करना चाहिए । सब बच्चे सबके हैं । पिता और ताऊ, चाचा में कोई भेद नहीं है इस अभेद भावना से चलने वाले भाइयों में बच्चों को लेकर कभी झगड़े नहीं होते ।

भाई-भाई की तकरार किन करणों से होती है-उनका बौद्धिक विवेचन अनेक प्रकार से किया जा सकता । मनुष्य की बनावट ही ऐसी है कि एक व्यक्ति की रुचि और बुद्धि दूसरे से कुछ न कुछ भिन्नता रखती है । अपनत्व के अभाव में यही स्वाभाविक रुचि की भिन्नता ही तकरार का कारण बन जाती है । यदि अपनत्व की भावना सबल हो तो हजार कारणों का भी निवारण सहज ढंग से हो जाता है । मतभेद के प्रसंग आते हैं और व्यावहारिक स्तर पर हल कर लिए जाते हैं- आंतरिक संवेदनाओं को वे स्पर्श भी नहीं कर पाते । आदर्श भाइयों में यह उदाहरण पर्याप्त मात्रा में मिल सकते हैं ।

उदाहरण के लिये भगवान श्रीकृष्ण और बलराम जी के जीवन के प्रसंग देखें । बचपन में खेलकूद में एक दूसरे को चिढ़ाने से लेकर बड़े तक में उनके बीच रुचि की भिन्नता दिखती है । किन्तु उनका भ्रातृभाव उनसे अछूता रहता है । बलराम जी ने चिढ़ाया, कृष्ण ने मैया से शिकायत की और बात समाप्त, गौ चराने और राक्षसों का सामने करने में दोनों अभिन्न होकर ही खड़े दिखाई देते हैं । दुर्योधन बलराम जी का शिष्य था उनका स्नेह उसके प्रति था, बहन सुभद्रा का विवाह वे दुर्योधन से ही करना

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चाहते थे । किन्तु श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपयुक्त समझा उन्हीं से सुभद्रा का विवाह हुआ, किन्तु इस बात पर कृष्ण बलराम में तकरार नहीं हुई । बड़े भाई ने छोटे भाई के आग्रह का औचित्य स्वीकार किया । बहुत बार बलराम जी श्रीकृष्ण को भरी सभा में डाँट देते हैं पर वे अपमान अनुभव नहीं करते । अनेक उतार-चढ़ावों के बावजूद भी उनके गहन अपनत्व में अन्तर नहीं आता । स्पष्ट है कि रुचि भेद सच्चे भ्रातृभाव को खण्डित नहीं कर सकता ।

ऐसे ही अनेक उदाहरण पाण्डवों में देखने को मिल सकते हैं । उनकी अपराजेयता का आधार उनका प्रगाढ़ बन्धु भाव ही रहा है । वैसे व्यावहारिक मतभेदों के ढेरों प्रसंग उनके जीवन में भी आते रहे । प्रकृति भेद तो राम आदि में भी मिलता है । एक ही माँ के पेट से पैदा लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न मौन साधक हैं-कहीं बोलते नहीं पाये जाते, उधर लक्ष्मण इतने मुखर हैं कि अयोध्या से लेकर जनकपुरी तक और जंगल से लेकर लंका तक किसी के भी सामने कड़ी से कड़ी बात भी कहने में नहीं झिझकते । किन्तु यह स्वभाव भेद उनकी भावनात्मक निकटता में कहीं कमी नहीं ला पाता । ऐसे ही प्रसंगों की चर्चा बच्चों एवं बड़ों के बीच की जाय, चिंतन में उसे स्थान मिले तो भ्रातृभाव को आज भी इतना शुद्ध और सबल बनाया जा सकता है कि कोई भी स्थूल आघात उसे डिगा न सके ।

भाई-भाई की तरह भाई-बहिन का सम्बन्ध बेजोड़ है । नर के नारी से अनेक रिश्ते होते हैं, किन्तु बहिन और भाई का रिश्ता कितनी पवित्रता और प्रगाढ़ता से युक्त है इसका उदाहरण उस समय देखने को मिला, जब भारतीय धर्म एवं संस्कृति के सन्देशवाहक एवं प्रतिनिधि के रूप में स्वामी विवेकानन्द विश्वधर्म सम्मेलन में सम्मिलित हुये और उन्होंने अमेरिकावासियों की उपस्थिति में 'ब्रदर्स एवं सिस्टर्स' सम्बोधन का प्रयोग किया तो उपस्थित विशाल जनसमूह ने इस सम्बोधन का हार्दिक स्वागत किया । अमेरिका जनता का कदाचित् यह प्रथम अवसर था जब उन्होंने किसी व्याख्याता को अपने इतने समीप अनुभव किया हो । इसके पूर्व वे मात्र औपचारिक सम्बोधन के अभ्यस्त थे जिसे 'लेडीज एण्ड जेन्टलमेन' कहा जाता है । इस उद्‌बोधन में वह माधुर्य, औदार्य एवं विशालता नहीं जो भाइयों एवं बहिनों में है । यह रिश्ता इतनी पवित्रता से ओत-प्रोत है जिसने समस्त भौगोलिक सीमाओं को विस्मार कर अभिन्नता एवं आत्मीयता के मधुर सम्बन्धों की स्थापना कर दी । अतः यह कहना समीचीन होगा कि भाई-बहिन का रिश्ता सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक है, भाई बहिन के सम्बन्ध में जो प्यार एवं सम्मान है अन्यत्र सहज सुलभ नहीं । यह जाति एवं धर्म से परे है ।

भारतीय संस्कृति और इतिहास के पृष्ठों को पलटने से सहज ही आभास हो सकता है कि हमारे अनेक पर्व जो सामाजिक सद्‌भावना, सदाशयता की प्रगाढ़ता को सुदृढ़ बनाने के लिये भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि में गढ़े गये हैं उनमें अनेक ऐसे पर्वोत्सव हैं, जो मात्र भाई एवं बहिन के सम्बन्ध सूत्र को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए चिरकाल से आज तक अवाध गति से सोल्लास मनाये जाते हैं जिसमें 'रक्षाबन्धन' प्रधान है । 'भाई दूज' के पर्व भी वर्ष में दो बार आयोजित होते हैं, जिसमें मात्र बहिन एवं भाई परस्पर निकट से निकटतर एवं निकटतम होते चले जाते हैं ।

इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनसे ज्ञात होता है कि यह रिश्ता इतना निर्मल तथा असीम है जिसमें जाति, वर्ग, धर्म तथा सम्प्रदाय भी आड़े नहीं आते । इतिहास की धारा को मोड़ने वाली घटना नहीं मालूम क्या ? जिसमें क्षत्राणी विधवा रानी द्वारा एक मुगल सम्राट को रक्षाबन्धन प्रेषित किया था तथा भ्रातोचित सहायता उपलब्ध करने में सफलता प्राप्त की थी । रक्षासूत्र का दर्शन वस्तुतः भाई का बहिन के प्रति नैतिक संरक्षण प्रदान करने का प्रतीक है । अनेक पौराणिक इतिवृत्तों तथा आख्यानों में इस पवित्र सम्बन्ध की महत्ता तथा उपादेयता पर प्रतीकात्मक शैली में बल दिया गया है ।

जो अपने माता-पिता का इकलौता नहीं अथवा असामाजिक नहीं है, जानता है कि परिवार ही इस सम्बन्ध का आश्रय स्थल है, जिसमें स्वर्गीय भावना से युक्त भाई-बहिन का रिश्ता निरन्तर अंकुरित होने के बाद पल्लवित तथा पुष्पित होता रहता है ।

हमारा दृष्टिकोण यदि दूषित नहीं है तो भाई-बहिनों के पारस्परिक विनोद, संलाप तथा वार्तालाप से सहज ही अन्दाज लगाया जा सकता है ये भाई-बहिन हैं-दूषित दृष्टिकोण का प्रयोग इसलिए करना पड़ा क्योंकि आज हमारी आँखों में बस एक ही रिश्ता हावी है पति तथा पत्नी का ।

बाल्यावस्था में छोटे भाई तथा बहिन खिलौने से खेलते हैं, घरौंदें बनाते और मिटाते हैं, किन्तु क्या मजाल कि कोई अन्य व्यक्ति के समक्ष बहिन को और बहिन के समक्ष भाई को संत्रस्त कर दे । जिन्हें बहिनें न हों, हो सकता है वे इस अनुभव से (अज्ञ) शून्य हों, किन्तु जिस परिवार में बहिन और भाई रहते हैं, वहाँ का वातावरण निस्सन्देह कठोर हृदय को भी कोमलता में परिणत करने में सक्षम होता है । किन्तु इस वातावरण की सृष्टि में माता-पिता का योगदान ही प्रमुख रहता है, माता-पिता ही परिवार संस्था के संचालक, व्यवस्थापक तथा सम्पादक होते हैं । यदि उनके द्वारा बेटे और बेटी के प्रति स्वल्प वैषम्य का भाव अभिव्यक्त हुआ तो यह विषबेलि फिर फैलने लगती है जिसका सूक्ष्म प्रभाव उन अबोध बालक मनों पर अप्रत्यक्ष रूप से पड़ने लगता है जो कालान्तर में एक विष वृक्ष ही बन जाता है । बिशेषकर बहिन और भाई के मध्य एक हीनत्व और अलगाव की भावना विकसित होने लगती है । साथ ही माता-पिता यदि समान रूप से प्यार तथा दुलार, सुविधा, सहयोग शिक्षा और संस्कार पुत्र और पुत्री को देते हैं तो इस विसंगति से, विघटन से परिवार अछूता रहता है । ऐसे सौहर्द्रपूर्ण आत्मीयता से ओतप्रोत भाई-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

बहिन के परिवार में यदि किसी नूतन सदस्य की अभिवृद्धि भाई की पत्नी अर्थात बहिन को भावज के रूप में होती है तो यह भी सौम्यता और सहृदयता से प्रभावित ही होती है क्योंकि नूतन सदस्य भी इस वातावरण को आत्मसात करने में सुख और शांति की ही अनुभूति करता है । क्योंकि संसार का हर अशांत आदमी भी शांति को पसन्द करता है । जैसे हर बेईमान आदमी भी ईमानदारी पसन्द करता है । आत्मज को आत्मा से उत्पन्न जिस प्रकार मानते हैं उसी प्रकार भावज भी भावजन्य एक ऐसा सदस्य है जो कल तो भिन्न तथा अपरिचत था, आज मात्र भाव संवेदना की स्थापना से अभिन्न तथा आत्मीय बन जाता है-इस प्रकार के आचार और व्यवहार की मधुरता में भाई और बहिन के पवित्र सम्बन्धों की प्रतिध्वनि और प्रतिबिम्ब की ही अनुभूति होती है, दूसरी ओर भाई और बहिन के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार ग्रन्थि रहती है तो नवागन्तुक सदस्य इसमें अपने आपको निर्लिप्त नहीं रख सकता । तानों और छीटाकशी की घटनायें जो आरम्भ में तो महत्व नहीं रखतीं, बाद में उग्ररूप धारण कर पारिवारिक विघटन का कारण बन जाती हैं ।

अत: निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि परिवार में ही भाई, बहिन वह प्रशिक्षण पाते हैं जिसका विस्तार शनैः-शनैः जब होता है, तब समस्त संसार ही भाई-बहिन का समूह अर्थात 'वसुधैव कुटुम्बकम्' लगने लगता है । जैसे-जैसे भाई-बहिन की आयु में वृद्धि होती है उनके अवयव, उनके कार्य व उनके उत्तरदायित्व अलग-अलग विभक्त हो जाने के कारण सौहार्द्र, सद्भाव एवं प्रेम का प्रवाह तो अवरुद्ध नहीं होता पर समय के अभाव एवं आयु के दबाववश बालकोचित चांचल्य एवं चुहलबाजी वाला सम्बन्ध अवश्य सीमित होता चला जाता है । प्रत्युत सम्बन्धों के निर्वाह में भावनाओं एवं सम्वेदनाओं के अविरल प्रवाह की ही महती आवश्यकता होती है, उसमें आंतरिक रूप से कोई अन्तर नहीं पड़ता बाह्य रूप से भले ही भेदभाव परिलक्षित होता हो ।

भाई-बहिन की वास्तविक परीक्षा होती है, जब भावज द्वारा भाई के स्नेह को विभाजित कर दिया जाता है, स्वाभाविक है पत्नी के प्रति आकर्षणाधिक्य के कारण बहिन उपेक्षाजन्य खिन्नता की अनुभूति करे । वस्तुत: बहिन की भ्रान्त धारणा ही होगी कि बहिन के प्रति भाई के स्नेह एवं सद्भाव में अभाव हो गया है-एक लड़की जिसने इस परिवार में आकस्मिक रूप से पदार्पण किया उसके प्रति यदि विशिष्ट सद्भावना का प्रदर्शन या सदाशयता की अभिव्यक्ति भाई द्वारा की जाती है तो बहिन को आपत्ति नहीं होनी चाहिये । इसी प्रकार भाई का स्नेह बहिन के प्रति पूर्ववत रहता है तो ननद के प्रति रोष भावज को आना भी न्यायोचित नहीं कहा जा सकता । कतिपय ऐसे उदाहरण देखने में आये हैं जब बहिनों द्वारा भाइयों की उपेक्षा एवं भाइयों द्वारा बहिनों की उपेक्षा की गई है । इन परिस्थितियों को अपवाद रूप में ही ग्रहण करना चाहिये, फिर भी इस संदभ में सतर्कता बरतना अत्यन्त आवश्यक है ।

बहिन का सम्बन्ध जब किसी सम्पन्न परिवार से हो जाता है तो 'प्रभुता पाय काह मद नाही' की उक्ति चरितार्थ होने लगती है, उसी स्थिति में बहिन भाई के साथ विवाह के पूर्व वाला सद्भाव व्यक्त करने में असफल हो जाती है । इसी प्रकार बहिन यदि सम्पन्न परिवार से विपन्न परिवार में विवाहित होती है तो उस स्थिति में भी भाई द्वारा बड़प्पन का प्रदर्शन बहिन के प्रति उपेक्षा का द्योतन करता है, जिससे बहिन को ठेस पहुँच सकती है, ऐसी विसंगतियों का निर्माण उथली मनोभूमि वाले भाई-बहिनों में ही होता है, अन्यथा ऐसी अनेक लोक-कथायें भी हैं जब सम्पन्न बहिन द्वारा विपन्न भाई के लिये और सम्पन्न भाई द्वारा अपनी विपन्न बहिन के लिये बड़ी से बड़ी कुर्बानी करके दिखाई है । संकट में पड़े पाण्डवों की रक्षार्थ सुभद्रा के भाई श्रीकृष्ण ने सारथी तक का कार्य किया । इसी प्रकार बहिनों के त्याग एवं उत्सर्ग के अगणित उदाहरण हैं ।

बड़े दु:ख का विषय है आजकल भाई-बहिन के सम्बन्ध में लेन-देन एवं उपहारों ने घुसपैठ कर कहीं-कहीं खटाई का काम किया है । यदि भाई बहिन को उपहार देता है तो बहन के प्रति उसका सच्चा प्रेम समझा जाना, सम्वेदनशीलता एवं भाव प्रवणता की कसौटी पर खोटा ही व्यवहार माना जायेगा-भाई के प्रति बहिन का निश्छल एवं निष्कपट और निस्वार्थ भाव जब तक बना रहता है तब तक लेन-देन की दाल नहीं गलती, किन्तु भौतिकवादी युग में इस प्रकार की विकृति का साम्राज्य बढ़ता जा रहा है । इसे सांस्कृतिक दृष्टि से एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति ही कहा जा सकता है । बहिन का तो एक ही अभीष्ट रहना चाहिये-भाई सुखी एवं प्रसन्न रहता है तो इससे बड़ा सद्भाव एवं सम्पदा और कुछ नहीं हो सकती-सम्बन्धों में वस्तुओं का विनिमय करना ही भाव और वृत्ति को अलगावोन्मुख करना है । स्वेच्छा से भाई अपनी सामर्थ्यानुसार यदि कुछ देता है तो बहिन को स्वीकार करने में आपत्ति भी नहीं होनी चाहिए किन्तु प्रदत्त वस्तु में मीन-मेख निकालना अथवा नुक्ताचीनी करना अपने भाई की भावना को ठेस पहुँचाना है। सम्बन्धों में चाँदी के चन्द टुकड़े महत्वहीन हैं, यह सम्बन्ध तो गंगा के सदृश निर्मल तथा पावन है, इसकी पावनता कच्चे धागे में पिरोई गई आन्तरिक स्निग्धता, भ्रात-वत्सलता और अलौकिक दिव्य भावनाओं के समन्वय की ही प्रतीक है। भाई बहिन का रिश्ता भ्रातृ सूत्र से सम्बद्ध स्नेहाभिव्यक्ति का ही प्रतीक नहीं वरन् आत्मा के सम्बन्धों की दुहाई है, जिसमें एकरूपता है, एकानुभूति है, साथ ही सामंजस्य एवं सहानुभूति के स्वर उनके हृदय में निरन्तर निनादित हो रहते हैं यदि बहिन-बहिन और भाई-भाई हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आदर्श सहेली–ननद, भाभी

मनुष्य जब अकेला रहता है तो अपने आप से ही बातें करता है, स्वयं प्रश्न करता और स्वयं उत्तर भी देता है, क्योंकि उसकी आदत किसी न किसी से बात करने की होती है, बिना बात किये उसे शांति तथा संतोष नहीं मिलता । इसलिये वह बात करने के लिए एक साथी तथा श्रोता की हर समय आवश्यकता अनुभव करता है। एक कहावत के अनुसार तो ''उन्हें बिना बात किये खाना हजम नहीं होता ।'' वस्तुत: मन की बात किसी निकटस्थ और विश्वस्त साथी से कह देने से मन का बोझ हलका हा जाता है, परिवारों में भी यह स्थिति देखी जाती है, बातचीत से मन की गाँठें खुलती हैं,अन्तर की व्यथा, वेदना और रहस्य अन्तरंग साथी के समक्ष कहना हर पुरुष और नारी चाहती है, विशेषकर जो सुनकर उपहास न उड़ाये, बल्कि सहानुभूति और संवेदना की ही अभिव्यक्ति करे ऐसे साथी के समक्ष तो दिल खोलकर रखने की इच्छा होती है ।

परिवार में जब एक नूतन सदस्य पदार्पण करता है नववधू के रूप में, उस समय ननद अपनी भाभी के लिये मन में न जाने कौन-कौन से स्वप्न सँजोये रहती है, ऐसे अवसर पर ननद के मन में कितनी कमनीय कोमल कल्पनायें होती हैं, उसे एक नई सहेली मिलेगी, उससे अपने मन की खूब बातें करेगी, एक दूसरे की दु:ख-सुख की बातें सुनेंगी, सुनायेंगी आदि अन्यान्य मनसूबे बाँधती रहती हैं ननद । उधर नई भाभी का मन भी हलचल से भरा रहता है, पतिगृह उसके लिये नया है, वह भी सबके लिये नई होगी। नूतन गृह के आचार-विचार, मान-मर्यादाओं से वह पूर्णत: अपरिचित तथा अनभिज्ञ है, कैसे समय कटेगा, परिवार के अधिकांश सदस्य बड़े तथा सम्माननीय होंगे, कैसे उनके समक्ष अपनी आंतरिक, अनुभूतियों को अभिव्यक्त करेगी, किन्तु उसे आशा की किरण इस ऊहापोह के निबिड़तम में अन्ततोगत्वा ननद के रूप में मिल ही जाती है । एकमात्र ननद ही उसकी सच्ची सहेली है, जिससे उन्मुक्त प्यार सुलभ होगा, साथ ही घर की समस्त परम्पराओं, रीति-रिवाजों का परिचय मिल जायेगा ।

दोनों पक्ष जब एक दूसरे से इस तरह आश्वस्त हों, तो साक्ष्य होने पर परस्पर आकर्षण बढ़ता है और सामीप्य पाकर प्रेम में प्रगाढ़ता आने लगती है, परिवार में निरन्तर हास-परिहास, उमंग-उल्लास का वातावरण सदैव बना रहता है । एक साथ उठना, एक साथ बैठना, एक साथ कार्य सम्पादित करना, एक साथ खाना-पीना, इत्यादि सौहार्द्रपूर्ण सहकारी क्रियाकलाप सतत उत्साह में अभिवृद्धि ही करते हैं, समीपता बढ़ती जाती है, ऐसी अनुभूति होने लगती है जैसे ननद को एक सहेली ही नहीं एक और बहिन मिल गई तथा भाभी को सहोदर बहिन की रिक्तता की पूर्ति ननद के रूप में हो जाती है ।

खिलाड़ी भावना से, परस्पर सहयोग, सहकार, गृहकार्य तथा गृह प्रबन्ध बात करते ही हो जाता है । होना भी यही चाहिये भाभी कोई और तो नहीं ननद के भाई की अर्धांगिनी, सहधर्मिणी तथा सहचरी है, इस दृष्टि से भी वह प्रेम, सौहार्द्र, आत्मीयता और सद्भाव पाने की अधिकारिणी है । वस्तुत: दोनों ओर से प्रेम पल्लवित हो तभी पुष्पित तथा फलित होने की अपेक्षा की जा सकती है । टेलीफोन की घण्टी किसी नम्बर को दें और वह उत्तर न दे तो वार्तालाप सम्भव नहीं, हम किसी से हाथ मिलाने के लिये आगे बढ़ायें और सामने वाला अपना हाथ खींच ले तो मैत्री स्थापित ही नहीं हो सकती । एकांगी प्रयास सदैव निष्फल रहते हैं । भाभी प्रेमपूर्ण व्यवहार करे और ननद नहीं, तो आत्मीयता की परिकल्पना की ही नहीं जा सकती । इसी प्रकार ननद का व्यवहार शालीनता हो किन्तु भाभी का अशालीन तब पटरी नहीं बैठ सकती । समानान्तर समान प्रयासों से ही सम्बन्ध सूत्र स्थापित होते हैं । स्वभावों में समता है तब तो सोने में सुगन्ध की उक्ति चरितार्थ होगी, किन्तु यह आवश्यक नहीं कि सबके स्वभाव समान हों, भाभी और ननद के लिये भी यह नियम लागू होता है, सामंजस्य सर्वोपरि स्वभाव है, परस्पर स्वभावों में तेजी और नरमी भी हो सकती है किन्तु जब यह जानते ही हैं कि सहयोग-सहकार के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं तब तो समन्वय अपरिहार्य हो जाता है । प्रेमातिरेक से सम्बन्धों में खटास भी पैदा की जाती है, प्रेमाधिक्य का मनोविज्ञान यही है कि एक दूसरे की छोटी-छोटी बातें फिर ताने लगने लगती हैं, भले ही वह निश्छल तथा स्वाभाविक रूप से कही गई हों । सद्भावना में भी दुर्भावना की गंध आने लगती है, ऐसी विकृतियाँ प्रेम के स्थान पर घृणा, ईर्ष्या को जन्म देती हैं । परस्पर स्वाभिमान और अहं को चोट जब लगने लगती है तो कुण्ठा पनपने लगती है, एकाधिकार के प्रति विद्रोहात्मक भाव, परस्पर समझ का अभी भी मनोग्रन्थियों को सुदृढ़ बनाता जाता है, जिससे परिवार का वातावरण विषाक्त होने लगता है ।

जब कभी ऐसे मन-मुटाव, मतभेद और सम्बन्धों में दरार पड़ने की स्थिति विनिर्मित हो तब घर के वयस्क और बडे कहे जाने वाले परिजनों का उत्तरदायित्व बढ़ जाता है, जिसमें भाभी भी सम्मिलित है, ननद चूँकि छोटी है इसलिये भी भाभी यदि अपने दृष्टिकोण को परिष्कृत कर सहयोगात्मक रुख अपना ले तो कोई कारण नहीं कि ननद उसकी इच्छानुवर्तिनी न हो जाय । सास को भी निष्पक्ष रूप से अपनी बेटी के सदृश बहू को भी मानना उचित होगा क्योंकि यह मानकर चलना बेटी के हित में ही होगा क्योंकि कभी न कभी उसकी बेटी भी तो किसी की बहू बनेगी, उसके समक्ष भी ऐसी स्थितियाँ निर्मित हो सकती हैं ।

ननद यदि अशिक्षित है तो शिक्षित भाभी को उसका प्यार तथा सम्मान पाने के लिये एक ही तरीका हो सकता है कि वह उसकी शिक्षा में सहायता दे, इससे परस्पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सौहार्द्र बढ़ेगा, ननद उसके जीवनपर्यन्त गुणगान गायेगी, मान लीजिये अशिक्षित स्थिति में ही ननद का विवाह हो गया तथा उसकी ससुराल की स्थिति अनुकूल नहीं हो तो भाभी अपने पति को प्रेरित कर ननद की शिक्षा की व्यवस्था में योगदान दे सकती है । यही बात ननद के लिये भी लागू होती है, यदि भाभी अशिक्षित है तो ननद शिक्षित है तो ननद का धर्म यही है कि वह अपनी भाभी को साक्षर बनाये, जिससे वह उसकी कृतज्ञ बन जायेगी । इस प्रकार कभी भी भेदभाव अथवा पारिवारिक विग्रह जन्म नहीं ले सकता है, इस प्रकार कल्याणकारिक प्रशिक्षण प्राप्त ननद जब पराये घर जाती है तो उसके समक्ष घर का आदर्श रहता है । वहाँ पर भी उसके समक्ष एक ननद आती है जो अनेक वर्षों से भाभी की प्रतीक्षा विभिन्न कल्पनाओं के साथ कर रही थी, अपने घर जैसा वातावरण यदि वहाँ मिलता है तो ननद थोड़ी-सी समझदार तथा विवेकशील है तो अपने पूर्वानुभाव के आधार पर परिस्थिति को अपनी मन:स्थिति के अनुकूल बना सकती है । वस्तुत: परिस्थिति प्रधान नहीं होती, वह तो मन:स्थिति की प्रतिक्रिया तथा प्रतिफल मात्र है । नारकीय वातावरण अर्थात् परिस्थिति को चाहे तो अपनी मन:स्थिति से स्वर्गीय बनाया जा सकता है, किन्तु आवश्यकता स्वस्थ मन:स्थिति की ही होती है, अत: उसके ननद जीवन का अनुभव भावी जीवन में सफल मार्ग-दर्शन कर सकता है । मतभेद, कटुता की समस्त परिस्थितियों का सौहार्द्र, सौमनस्य और मिलनसरिता की मानसिकता से जन्म के पूर्व ही नष्ट किया जा सकता है, प्रतिशोध की भावना का प्रश्न तो यहाँ उठता नहीं है ।

ननद यदि सम्पन्न परिवार में पहुँच जाती है तो उसके ऊपर एक विशेष उत्तरदायित्व आ जाता है, उसके द्वारा सदैव ऐसा प्रयास किया जाना ही श्रेयस्कर होगा, कि भाई तथा भाभी को उसके बड़प्पन का आभास न होने पाये बल्कि औपचारिकतावश भाई यदि कोई उपहार आदि देता है तो उसे हतोत्साहित कर दें और समझावें कि तुम्हारे प्रयत्नों से ही तो भरापूरा सम्पन्न घर मिला है अब और क्या देने को शेष रहा । भाभी की सदाशयता की प्रशंसा सम्पन्न ननद द्वारा किया जाना उसके मन को जीतना होगा, तभी भाभी की श्रद्धा भाजन ननद बन सकती है । थोथे अहंकार से तो बात बिगड़ती ही है, बनती नहीं । इसी प्रकार यदि ननद गरीब घर में विवाहित हुई और मायका सम्पन्न है तब यही भूमिका भाभी को निर्वाह करना उसके सम्मान को ही बढ़ाता है, ननद सदैव उसके प्रति कृतज्ञ रहेगी, यदि गरीब ननद का भाभी समुचित सम्मान तथा सत्कार करती है तो समृद्धि का प्रदर्शन किसी भी अर्थ में औचित्यपूर्ण नहीं माना जाता । गौरव गरिमा बड़प्पन तो इसी में ही है कि सम्पन्नता में भी सहानुभूति का भाव अक्षुण्ण बना रहे । गरीब ननद को यदि भाभी स्वयं अपने पति से कहकर समय-समय पर अपनी सामर्थ्य के अनुरूप सहायता दिलवाती है तो ननद फिर भाभी के इस उपहार को जीवनपर्यन्त नहीं भूल सकती, बल्कि सदैव उसकी गुणगाथा ही गावेगी । ऐसे अवसर पर उदारता, सामंजस्य स्थापन में सहायक सिद्ध होती है । ननद को भी अपनी मर्यादा का ध्यान रखना चाहिये । सच्चा प्यार तथा सम्मान माँगने से नहीं मिलता, उसके लिये स्वयं पहले देना पड़ता है और फिर वस्तुओं के आदान-प्रदान के माध्यम से स्नेह तथा सौहार्द्र का मूल्यांकन भी नहीं किया जा सकता है ।

परिवार में यदि परिजन विशेषकर भाभी और ननद परस्पर समझदारी, निष्पक्षता, सद्भाव, सम्मान, प्रशंसा आदि का व्यवहार करें तो विग्रह की सम्भावना ही नहीं रहती ।

वस्तुत: परिवार निर्माण के लिये प्रेम और सम्वेदना की नींव की महती आवश्यकता होती है, समस्त नाते-रिश्ते मात्र कच्चे धागे के समान होते हैं, जिन्हें तोड़ने में देर नहीं लगती, जोड़ने में स्वाभाविकता नहीं आती, गाँठ फिर भी बाँधनी पड़ती है, बनाने का कार्य मिटाने से कठिन है जिन सम्बन्धों को हम निभा नहीं सकते उन्हें तोड़ने का भी अधिकार नहीं है ।

आदान-प्रदान, सम्मान, असम्मान, रीति-रिवाज आदि प्रेम की अभिव्यक्ति के साधन हैं साध्य नहीं, यदि साधनों को साध्य समझ लिया जायेगा तो प्रेम का आधार ही मिट जायेगा । स्वाभाविक है कि ननद को जीवन भर न तो भाभी के पास रहना है, न भाभी को ननद के पास । फिर धैर्य और संतोष के साथ ही क्यों न सम्बन्धों में माधुर्य, आत्मीयता पैदा की जाय । अपनी सुविधा और सामर्थ्य के अनुसार विनिमय होता है तभी वास्तविक सन्तोष भी मिलता है । भाभी एवं ननद बहिन का भाव विकसित करें तो परिवार में सच्चा सौमनस्यपूर्ण वातावरण बनने में कोई बाधा ही नहीं रहती ।

भाई-बहिन तथा ननद-भाभी के बीच के मधुर सम्बन्धों का प्रवाह बहन के विवाह के बाद भी चलता रहता है । उसमें कई बार सामान्य व्यावहारिकता का अभाव दूध में खटाई का काम कर जाता है । बहिन जब कभी अपनी ससुराल से मैके आती है तब उस समागम से आत्मीय भाव बढ़े ही घटे नहीं इसका उत्तरदायित्व दोनों ही पक्षों पर आता है ।

ममत्व के प्रति नैसर्गिक आकर्षण मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षियों में भी पाया जाता है, गाय से मिलने के लिये जिस प्रकार बछड़ा आतुर रहता है, उसी प्रकार माँ का घर अर्थात मायके का नाम सुनने मात्र से बहिन-बेटियाँ हर्ष विभोर हो जाती है और उनका मन मयूर आनन्दातिरेक से नृत्य कर उठता है, जननी के प्यार तथा दुलार में वह निश्छल वात्सल्य है जिसमें गंगा की पावनता और हिमालय की उच्चता के दर्शन होते हैं, माँ के आँचल से स्नेह की वह अमृतधारा प्रवाहित होती है जिसमें अवगाहन करने की, बेटी की इच्छा अस्वाभाविक नहीं कही जा सकती । अनेक दिनों की सुसुप्त इच्छा तीव्र से तीव्रतर होने लगती है,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिस परिवार में शैशव, बाल्यकाल और कैशोर्य, 'बीता' जिस देवत्व की साकार प्रतिमूर्ति माता-पिता की निर्मल छत्रछाया में स्नेह और औदार्य का शिक्षण पाया, जिन भाई-बहिनों का पवित्र प्यार मिला, जिनके साथ वर्षों खेलना, कूदना हुआ जिनसे सदैव निष्कपट सौहार्द्र मिला, जिन भाभी तथा भतीजों का आदर-सत्कार मिला भला ऐसे स्वर्गीय स्थल में जाने और उनके मध्य सुखद क्षण बिताने की कौन बहिन कामना न करेगी ? आखिर उसे मायके में जाने पर अपनी गृहस्थी के जाल-जंजाल से कुछ तो मुक्ति मिलती है, मायके में जो सुविधायें हैं भला अन्यत्र सुलभ कहाँ, मायके में वह बहू नहीं रहती वरन् बहिन तथा बेटी रहती है इसलिये हास-परिहास की उन्मुक्तता भी शांति की अनुभूति कराती है ।

इधर माता-पिता तथा भाई-बहिन और भाभी-भतीजे भी अपनी बेटी, बहिन और ननद की प्रतीक्षा में पलकें बिछाये रहते हैं, यह तभी सम्भव होता है जब बहिन ने अपना स्थान मायके के सदस्यों के हृदय में बना लिया होता है । लेकिन सभी बहनें मायके में जाकर वांछित तथा कल्पित आनन्द उठा पाती हों, ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्या वे उतना प्यार पाती हैं ? जितना अपेक्षा करती हैं, यदि नहीं, तो क्यों ? इसमें मात्र मायके को ही दोषी नहीं ठहराया जा सकता मायके से बहन के टूटते और ढीले पड़ते सम्बन्धों में बहन को अपनी भूमिका पर पुनर्विचार करना होगा । यद्यपि जब तक माता-पिता हैं और वे समझने में समर्थ हैं तब तक बेटी को प्यार सुलभ हो सकता है, किन्तु भाभी के अस्तित्व को नकारना भी बहिन के हित में नहीं होता, माता-पिता का साथ उनके वय को देखते हुए अधिक दिन का नहीं होता जिनके साथ अधिक दिन सम्बन्ध निभाये जा सकते हैं उन्हें भाभी-भाई कहा जाता है, इसलिये बहिन को भाभी के साथ सौहार्द्रपूर्ण सौमनस्य स्थापित करने में ही आनन्द की उपलब्धि मायके में हो सकती है । भाभी की गरिमा को बहिन यदि आँच नहीं आने देतीं तो बहन मायके की समस्त खुशियाँ लूट सकती है ।

बहिन का मायके जाना सदैव तो होता नहीं है ऐसी परिस्थितियों में वह अपने भाई को यदि पत्र लिखे तो भाभी के प्रति विशेष प्रेम और सम्मान का भाव अभिव्यक्त करे, मायके के अन्य सदस्यों में सम्भवतः वह भाभी को भी पृथक पत्र लिख सकती है, जिससे भाभी का मन अपनी सहेली ननद से मिलने के लिये व्यग्र तथा व्याकुल हो उठेगा । पत्र में वह सामर्थ्य होती है कि लोग अपने शत्रुओं को भी पत्राचार के माध्यम से मित्र बना लेते हैं, पत्रों से मित्रता स्थापित होते देखी जाती है । आजकल तो पत्र-मित्र की परम्परा सुदूर क्षेत्रों में भी फैली हुई है । फिर क्यों न बहिनें इस कला से लाभ उठायें ।

बहिन का जब मायके जाना हो उस समय यदि वह भाई-भतीजों के लिये अपनी सामर्थ्य के अनुसार कुछ कपड़े, खिलौने आदि का उपहार लाती है, तो उस समय उसे भाभी को नहीं भूलना चाहिये, सम्भव हो तो उसके लिये भी सुन्दर साड़ी, स्वेटर या चूड़ियाँ लाई जा सकती हैं । इससे भाभी के दिल में ननद के लिए बहुत स्थान बन सकता है, वस्तुतः इसमें बिगड़ता ही क्या है, जब सबके लिये कुछ न कुछ लाई है, तो भाभी के लिये क्यों नहीं ? यदि किसी के लिये नहीं ला सकी तो भाभी के लिये भी प्रश्न नहीं उठता ।

स्थिति उस समय भी बहिन की दयनीय हो जाती है जब वह मायके में जाकर केवल माँ के पास बैठकर गप्पें हाँके और भाभी अकेली चूल्हे-चौके के काम में दिन भर लगी रहे। बहिन के लिये यही उचित होगा कि वह भाभी के कार्यों में हाथ बँटायें, तब ननद भाभी के काम में रुचि लेने लगेगी तो शिष्टाचारवश भी अपने काम को भाभी न करने के लिये आग्रह करेगी । स्वाभाविक है कि कुछ दिनों के लिये आई मेहमान के समान ननद से, जो अब इस घर की नहीं रह गई, काम कराने में भाभी को स्वयं अच्छा नहीं लगेगा । इसका अर्थ यह नहीं कि ननद यह मानकर भाभी को सहयोग पहले से ही न दे । इसमें बहिन का क्या घटता है, यदि वह अपने आपको कुछ देर के लिये पुनः बहू मान ले और भाभी को सहयोग दे । ननद इस व्यवहार से भाभी की सहानुभूति की अधिकारिणी बन जाती है।

भाभी भी किसी की उसी के समान बेटी है, भाई की व्यस्तता और कार्य की अधिकता के कारण भाभी अपने मायके अनेक दिनों से नहीं जा पाती, पिंजड़े में बन्द पक्षी के समान वह भी माता की उन्मुक्त स्नेह छाया में जाना पसन्द करेगी, बहिन अपनी भाभी से कुछ दिनों के लिये उसके मायके जाने के लिये कह सकती है, जब तक तुम मायके से लौटकर नहीं आओगी मैं भैया की व्यस्तता में घर का सारा कार्य कर लिया करूँगी। भला ऐसी कौन भाभी होगी जो इस प्रकार के प्रस्ताव को जो उसकी शुभचिंतक ननद द्वारा रखा गया हो, उसे स्वीकार न करे । बल्कि भविष्य में भाभी ऐसी ननद की पूजा करेगी साथ ही उसकी प्रतीक्षा में सदैव पलक पामड़े बिछाये रहेगी ।

विवाहोपरान्त बहिन का स्वल्प प्रवास ही मायके में हो पाता है । क्योंकि उसे भी अपने घर परिवार के कार्यों में व्यस्त रहना पड़ता है जब वह मायके आये तो उसके समक्ष ऐसी परिस्थिति भी आ सकती जब उसे न्यायाधीश की भूमिका निर्वाह करनी पड़े। माँ बहू की शिकायत करे और बहू माँ की । दोनों अपनी-अपनी कैफियत देकर अपने आपको निर्दोष सिद्ध करने की कोशिश करें और एक दूसरे को दोषी ठहरायें । माँ बेटे से बहू का पक्षधर समझकर उससे कुछ नहीं कहती किन्तु बहिन को यह कार्य समझौते का सम्हालना पड़ सकता है, यह क्षण बहिन के लिये बड़ी कसौटी का होता है । बहिन की निष्पक्षता के साथ दोनों पक्षों की बातें ध्यानपूर्वक सुनना चाहिये । स्वभावतः बेटी का झुकाव माँ की ओर रहता है किन्तु ऐसे अवसर पर भाभी को यह आभास नहीं होना चाहिये, क्योंकि वह भी तो कहीं की आखिरकार बहू ही तो है । ऐसा समझकर ही कोई निर्णय यदि बहिन देती है तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसकी प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है । यदि गलती बहू की पाई जाती है तो धैर्यपूर्वक परिस्थिति को ध्यान में रखकर उसे समझाया जा सकता है और यदि माँ की गलती पाई जाती है तो माँ को आगाह किया जा सकता है ।

जब वातावरण शांत हो उस समय भाई-भाभी को भी समझने का प्रयत्न बहिन कर सकती है, यदि वह देखती है कि चूँकि माँ-भाई के आश्रित है और वास्तव में उसका कोई दोष नहीं है और उसका पक्ष सही है तथा बहिन कोई अन्य सहायता करने में असमर्थ है तो भाई, भाभी की भावना को उभारकर, संवेदना का वातावरण उपस्थित किया जा सकता है और भाई को समझाया जा सकता है । अपनी माँ को भी जो रूढ़िग्रस्त, अन्धविश्वासी और टोना-टोटका में विश्वास करती है, शिक्षित प्रगतिशील बहू जब उसका विरोध करती है तो कलह मच जाती है, बदलते हुये इस युग में अपने आपको समायोजित करने की सलाह बहिन दे सकती है । साथ ही वृद्धा माँ को भाभी के मात्र दुर्गुण ही यदि दिखाई देते हैं तो बहिन भाभी के गुणों की ओर भी संकेत कर माँ का ध्यान आकर्षित कर सकती है, जिससे भाभी और माँ के मनमुटाव को आसानी से दूर किया जा सके । यदि ऐसा करने में बहिन अपने आपको असमर्थ पाती है तो उसके लिये आपद्धर्म यही हो सकता है वह मौन रहे, न माँ का पक्ष ले न भाभी का, उसे रहना ही कितने दिन है, पक्षपात करने में घृणा ही उसके पल्ले पड़ेगी । उसकी उपस्थिति में मायका नर्क न बने उसके समग्र प्रयास इसी दिशा में होने चाहिये ।

बहिन को मायके में किसी भी प्रकार की विभ्रांति उत्पन्न होने पर ठण्डे दिमाग से सोचने की आदत डालनी चाहिये। इससे भाई-भाभी और माँ का प्यार सदैव सुलभ रहेगा-भाई-भाभी के आपसी झगड़े में भी बहन की अनावश्यक मध्यस्तता उसके हित में नहीं है । उसके लिये सबसे अच्छी स्थिति यही हो सकती है कि मायके का वातारवण सौजन्यता और सौहार्द्र से ओत-प्रोत हो, जिसके मध्य आकर वह भी स्वल्प आनन्द की अनुभूति कर सके । बहिन यह बात भी सदैव ध्यान में रखे कि उसके भाई-भाभी का जीवनस्तर क्या है, उसके अनुरूप ही वह उतने दिन तालमेल बिठाकर व्यतीत करे ।

मायके का बजट उसकी वजह से यदि अस्त-व्यस्त होगा तो भाई को पुनः बुलाने में अनेक बार सोचना पड़ सकता है। मायके की परिस्थिति के अनुकूल ढाल लेना ही उसकी व्यवहारकुशलता, भाभी के प्रति सच्चे प्रेम का परिचायक होगा । लेन-देन पवित्र सम्बन्ध में गौण माने जाते हैं, आत्मिक आदान-प्रदान की तुलना में वस्तु विनिमय का कोई महत्व नहीं । अपनी सुविधा और सामर्थ्य के अनुसार तो हर भाई-भाभी, ननद को देना अपना धर्म समझते हैं, फिर क्यों कुछ माँग कर अपना ओछापन प्रकट करें ।

बहिन यदि सम्पन्न है तो अपने भाई-भतीजे पर इतना खर्च न करे जिससे वे उसके प्रतिउत्तर स्वरूप व्यवहार लौटाने में असुविधा अनुभव करें । सम्बन्धों के स्थायित्व के लिये यह बात मुख्तयतः श्रेयस्कर होगी कि पैसे को प्यार और सद्भाव का मापदण्ड न माना जावे ।

इस प्रकार अपने चिंतन को परिष्कृत कर बहिनें मायके जायें तो आनन्द और सुख की उपलब्धि उन्हें सदैव होती रहेगी भले ही मायके में माता-पिता हों अथवा नहीं । मायके में सदैव सम्मान और स्वागत की पात्र बनने के लिये बहिन को स्वयं अपनी व्यावहारिक बुद्धि को विकसित करना होगा । जिससे वह मायके में अपनी उपयोगिता और सामंजस्य भी स्थापित करने में सफलता प्राप्त कर सकती है ।

देवरानी, जेठानी की आत्मीयता

संयुक्त परिवार की सफलता बहुत अंशों में उस घर की बहुओं पर निर्भर रहती है, जिन्हें देवरानी-जेठानी के रूप में एक साथ रहना पड़ता है । यदि वे बहिनों की तरह एक दूसरे के प्रति सद्भाव रखते हुए एक दूसरें की पूरक बनने का प्रयास करें तो उनके स्वयं के लिए और सारे परिवार के लिये भी वह एक वरदान सिद्ध हो सकता है । अनेक घरों में देवरानी तथा जेठानियों के बीच जो खिंचाव और संघर्ष पाया जाता है, वह सामान्य सी व्यावहारिक भूलों को लेकर बढ़ता है । यदि वे समझदारी से काम लें तो उन अप्रिय प्रसंगों का निवारण तो सहज ही हो सकता है, स्वर्गीय सद्भाव की स्थापना भी की जा सकती है ।

देवरानी-जेठानी के बीच संघर्ष, खिंचाव का कारण स्वार्थजनित निकृष्ट दृष्टिकोण ही होता है । सामान्यतः यदि किसी गृहस्थ में चार पुत्र हैं तो कोई एक नौकरी के कारण बाहर है, एक विद्याध्ययन कर रहा है, एक पशुओं की देख-भाल पर नियुक्त है, तो एक कृषि का भार सँभाले हुए है । जो बाहर सर्विस में है, उसका रहन-सहन का स्तर अन्य भाइयों की अपेक्षा उच्चकोटि का है । जो पढ़ रहा है, उसका रहने सहने का ढंग भी सभ्य नागरिकों जैसा है। किन्तु शेष दोनों भाइयों का जीवन साधारण किसानों जैसा ही है । दोनों का कड़ी मेहनत करते हुए भी खान-पान और वेष-भूषा निम्न स्तर का ही है, उनके रहन-सहन की यह विषमता भी कभी-कभी गृह-कलह का कारण बन जाती है ।

कृषि कार्य में संलग्न दोनों भाइयों की पत्नियाँ घर के अधिक काम-काज के कारण आपस में मेल-जोल से नहीं रह पातीं । जेठानी, देवरानी को सारे काम का बोझ सौंप कर स्वयं आराम का जीवन जीना चाहती है । बच्चों में भी भेद-भाव रखती है, अपने बच्चों की सुख-सुविधा का ही वह ध्यान रखती है । देवरानी के बच्चे, उन बच्चों को सुखी और प्रसन्न देखकर वैसी ही सुख-सुविधा की माँग अपनी माँ से करते हैं, किन्तु माँ को वह अधिकार न होने के कारण, वह बेचारी मन मसोस कर रह जाती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

है । जब वह व्यवहार उसे असह्य हो जाता है तो दु:खी होकर वह अपने पति से इसकी शिकायत करती है और कहती है कि यह सब होते हुए भी, जेठानीजी सारे दिन चख-चख करती रहती हैं । एक मजदूरनी का जीवन जीते हुए भी मुझे चैन नहीं लेने देती, भली-बुरी सुनाती रहती हैं । इस स्थिति में हमारा निभाव इस घर में कैसे हो सकता है ?

पत्नी की शिकायत पर पति यदि ध्यान नहीं देता है, अथवा बड़े भाई के प्रभाववश पत्नी की शिकायत का निराकरण नहीं कर पाता है, तो पत्नी पति के प्रति भी विद्रोह कर बैठती है । जेठानी से बात-बात में उलझने लगती है । जेठानी इसे कब सहन कर सकती है । परिणाम यह होता है कि गृहस्वामिनी होने के कारण जेठानी उसे सभी प्रकार नीचा दिखाने और उसके लिये असुविधा खड़ी करने का प्रयास करती है । उसके बच्चों के प्रति भी उसका व्यवहार कठोर हो जाता है।

देवरानी जब अपने को इस स्थिति में पाती है तो खुले रूप से जेठानी की अवहेलना करने लगती है, लात का जबाव घूँसे से देने लगती है । इस प्रकार आये दिन घर में कुहराम मचता रहता है। जेठानी-देवरानी की यह प्रतिद्वन्द्विता बच्चों को भी उदण्ड बना देती है। वे भी आपस में उलझने लगते हैं, अपने-अपने माता-पिता से वे झूठी-सच्ची शिकायतें करते रहते हैं । फलस्वरूप भाई-भाइयों में भी भीतर ही भीतर तनाव बढ़ जाता है ।

अपनी पत्नी अपने बच्चे व स्वयं अपने प्रति भाई-भावज का यह दुर्व्यवहार देखता है तो उसका जी भी भाई के प्रति हलका हो जाता है, घर के काम-काज में उसकी पहली जैसी रुचि और लगाव नहीं रहता है। घर के काम में जब शिथिलता आती है तो बड़े भाई को यह सहन नहीं होता और छोटे भाई के प्रति डाँट-फटकार शुरू हो जाती है । फिर भी छोटा भाई पूर्ण मनोयोग से काम-काज नहीं करता, नतीजा यह होता है कि कृषि कार्य में शिथिलता आ जाती है । फलत: उपज घट जाती है, जिससे घर की समृद्धि भी शनै:-शनै: घटने लगती है । जब घर में घटती शुरू होती है तो स्त्रियों में और भी अधिक चक-चक और लड़ाई-दंगा होने लगता है, इसका प्रभाव भी देवरानी पर ही अधिक पड़ता है वह अपने पति को पृथक रहने के लिए विवश करती है। यदि पति इसकी अवहेलना करता है तो बार-बार उसे इसके लिए विवश करने लगती है ।

पत्नी की रोज-रोज की शिकायतों से तंग आकर व सब कुछ अपनी आँखों से देखकर और खुद उस व्यवहार को सहकर वह अपने भाई से इस व्यवहार को बदलने व दोनों परिवारों को समान सुख-सुविधा देने का अनुरोध करता है । किन्तु भाई द्वारा इस ओर ध्यान न दिए जाने पर दु:खी मन से भाई से अलग रहने की माँग करता है । इसकी सूचना अपने बाहर रहने वाले भाई को भी देता है तथा घर की समस्त वारदातों से उन्हें अवगत कराता हुआ वर्तमान स्थिति को बदलने में उनकी सहायता चाहता है ।

घर की बिगड़ती हुई स्थिति और गृह-कलह के इस समाचार से दु:खी होकर वह पत्र द्वारा घर की व्यवस्था सँभालने और पूर्ववत प्रेमभाव से रहने के लिए भाइयों को समझाता है । सफलता न मिलने पर छुट्टी लेकर बच्चों सहित घर आकर भाई-भावजों को समझाता है, किन्तु उसके सारे प्रयास व्यर्थ चले जाते हैं। घर की स्त्रियों पर कुछ भी प्रभाव जब नहीं पड़ता तो अपनी पत्नी को कार्य भार सँभालने को कहता है ।

उसकी पत्नी उसके साथ बाहर आराम का जीवन जीने की अभ्यस्त हो जाने के कारण और स्वभाववश घर का काम-काज स्वयं करने को राजी नहीं होती है । बल्कि वह भी अपनी देवरानी-जेठानी के समान ही गृह-कलह में भागीदार बन जाती है । इस प्रकार कलह शांत न होकर बढ़ता ही जाता है और स्त्रियों द्वारा प्रारम्भ हुआ कलह पुरुषों में भी कलह का कारण बन जाता है । इस स्तर पर पहुँच जाने पर एक गृहस्थ बारह-बाट हो ही जाता है और भाई-भाई में वैमनस्य बढ़कर वे एक दूसरे के भाई न रहकर परस्पर शत्रु बन जाते हैं ।

ऐसे परिवारों में संयोगवश यदि सुशिक्षित स्त्री आ जाती है तो वह भी अन्य स्त्रियों की भाँति ही गृह-कार्यों से जी चुराती है और उन जैसी ही कलह-प्रिय हो जाती है । जबकि ऐसी स्त्री उस परिवार के झगड़े को समाप्त करने में सहायक बन जाती थी और उस घर को स्वर्ग बना सकती थी । संयुक्त-परिवार प्रथा इस प्रकार स्त्रियों की असहन-शीलता, अशिक्षा और गृह-कार्यों से जी चुराने के कारण दिन पर दिन टूटती जा रही है ।

भारतवर्ष में संयुक्त परिवार प्रथा, प्राचीनकाल से प्रचलित है । परिवार में माता-पिता, ताऊ-ताई, चाचा-चाची, दादा-दादी आदि परिवार के सभी सदस्य एक साथ रहते थे, सभी में परस्पर बड़े प्रेम और सहानुभूति का व्यवहार होता था, सभी लोग बड़ी तत्परता के साथ अपना-अपना दायित्व पूर्ण करते थे और परिवार के सभी सदस्यों की सुख-सुविधा का ध्यान एक-दूसरे को रहता था । यदि कभी किसी कारणवश किन्हीं में कुछ लड़ाई-झगड़ा हो भी जाता तो उसे बड़ी शांति के साथ समझा बुझा कर शांत कर दिया जाता था । स्त्रियाँ भी परस्पर एक-दूसरे के हितों का ध्यान रखती थीं, घर की बड़ी स्त्री अपने को गृहस्वामिनी न मानकर, सबके समान ही अपने को मानती थी । किसी को किसी से शिकायत का अवसर नहीं आने देती थी । घर में यदि कोई स्त्री अस्वस्थ हो जाती तो उसका कार्य अन्य सभी बाँटकर उसे भी पूरा कर लेती थीं । प्रत्येक गाँव और नगर में आज भी इस प्रकार के अनेक परिवार देखने को मिल सकते हैं, जिनमें परिवार के सभी सदस्य बड़े प्रेमपूर्वक आपस में मिल-जुलकर रहते और घर की शांति बनाये रहते हैं । यदि परिवार का कोई सदस्य इसकी अवहेलना करता है तो सभी मिल-जुलकर उसे समझा-बुझाकर सही रास्ते पर ले आते हैं । ऐसे परिवार किसी भी स्थिति में घर की सुख-शांति को ठेस नहीं पहुँचने देते ।

भावना और विवेक की दृष्टि से देखा जाय तो देवरानी-जेठानी के बीच गहन अपनत्व भरा सद्भाव होना नितान्त स्वाभाविक है । सामान्यतः परदुःख कातरता, सहानुभूति एवं सम्वेदना का भाव ऐसे व्यक्ति में ही प्रचुर मात्रा में पाया जाता है जो पीड़ा और प्रताड़ना के दौर से गुजर चुका होता है । कहावत भी प्रसिद्ध है कि 'घायल की गति घायल जाने और न जाने कोय' इस दृष्टि से स्वाभाविक है कि जिसके पैर में विंवाई फट चुकती हैं वह दूसरे की विंवाई की पीड़ा का सहज ही अनुमान भुक्तभोगी होने के कारण लगा लेता है ।

संयुक्त हिन्दू परिवारों में इस सिद्धान्त का अपवाद जेठानी और देवरानी नामक रिश्ते में प्रायः देखने को मिलता है । जेठानी और देवरानी वस्तुतः एक ही परिवार से सम्बद्ध होने के पूर्व एक-दूसरे से अपरिचित रहती हैं किन्तु जिस परिवार में आकर वे सम्मिलित होती हैं, प्रारम्भ में दोनों की स्थिति एक-सी ही होती है

अन्तर- केवल इतना रहता है कि बड़े भाई का विवाह पहले हो जाने के कारण जेठानी पहले और छोटे भाई का विवाह बाद में होने के कारण देवरानी बाद में पदार्पण करती है । जो ज्येष्ठ है, वरिष्ठ है अथवा अनुभवी है उससे अर्थात् जेठानी से देवरानी को सहानुभूतिपूर्ण मार्गदर्शन की अपेक्षा स्वाभाविक है । सास चूँकि पुराने ढर्रे की और अपेक्षाकृत कठोर प्रकृति की होती है इसलिये भी अधिक सहयोगी की आशा जेठानी से वह करती है, किन्तु स्थिति कहीं-कहीं इसके विपरीत ही पाई जाती है । सहयोग तो दूर कठोरमना जेठानी देवरानी के साथ वही बर्ताव करती है जो आरम्भ में उसके साथ किया गया था । वह यह भूल जाती है कि जब उसके साथ कठोरता बरती जाती थी तो उस पर कैसी गुजरती थी और अब देवरानी पर वैसी ही कठोरता बरतने से उस पर कैसी गुजर रही होगी, सहज ही जेठानी भुक्तभोगी होने के नाते अनुमान लगा सकती है, आखिरकार वे समानधर्मी और सहधर्मी ही तो हैं, एक ही तरकश के तीर, एक ही माला के मनके, एक ही वृक्ष के पक्षी के समान हैं ।

यदि चाहती तो नवागत देवरानी को अनुजा समझकर परिवार की समस्त मर्यादाएँ, आचार-विचार, रीति-रिवाज और व्यावहारिकता, सौम्यता तथा सरलता के साथ समझा सकती थी, जिससे परिवार में सौमनस्य और सौहार्द्र अक्षुण्ण बना रहता । इस सन्दर्भ में यही कहा जा सकता है कि या तो जेठानी अपने द्वारा भुक्त पीड़ा को भूल चुकी है अथवा अपनी पीड़ा का प्रतिशोध देवरानी से लेकर झूठा संतोष प्राप्त करना चाहती है ।

संयुक्त हिन्दू परिवारों में जेठानी से देवरानी का पाला न पड़े ऐसी कल्पना निरर्थक है, अर्थात निर्विवाद रूप से इस संयोग को नकारा नहीं जा सकता । कतिपय अपवादों को छोड़कर अधिकांश देवरानी जेठानी में पारस्परिक प्रेम का अभाव और कटुता का प्रभाव देखा ही जाता है भले ही दोष इसमें देवरानी का हो अथवा जेठानी का ।

ऐसी स्थिति में निर्माण की पृष्ठभूमि में कौन-कौन-से कारण हो सकते हैं इस पर गम्भीरता से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक संयुक्त हिन्दू परिवार में जहाँ द्वन्द्वात्मक स्थिति रहती है, उस परिवार की लड़कियाँ बचपन से ही प्रशिक्षण अपने आप प्राप्त करती रहती हैं, उनके अवचेतन में अपनी माँ जो जेठानी अथवा देवरानी हैं के आचरण की छाप परोक्ष रूप से पड़ती रहती है और हाथ पीले होने के बाद जब वह लड़की देवरानी या जेठानी बनती है तो मायके के वे संस्कार उस पर हावी हो जाते हैं । इतना ही नहीं ससुराल जाने के पूर्व मातायें भी इन दबे हुए संस्कारों को उभारने की कोशिश करती हैं और यह कहती हुई पाई जाती हैं कि अपनी जेठानी से सावधान रहना । फिर क्या माँ की चेतावनी उसे हर पल सावधानी बरतने के लिये प्रेरित करती है और देवरानी पहले से ही जेठानी को अपनी शत्रु मान कर ही चलती है, उसकी हर बात में संदेह करती है, जेठानी उसे अच्छी शिक्षा भी देना चाहती है तो उसके अन्दर का संदेह उसे उलटी पट्टी पढ़ाना समझता है । फिर देखने में यह आता है कि देवरानी पूर्वाग्रहों और दुराग्रहों से बुरी तरह ग्रस्त होने के कारण परिवार के वातावरण को विषाक्त बनाने में अग्रणी रहती है, क्या करे उसे ऐसा ही चश्मा पहनाकर विदा किया गया था । ऐसा दोषपूर्ण दृष्टिकोण कि उसे जेठानी में अच्छाई एक भी नहीं, बुराई ही बुराई दिखाई देती हैं । सिखा-पढ़ा कर जो भेजा गया है । इसके लिए आवश्यक है कि घर-घर में देवरानी और जेठानी द्वारा सहयोग, सद्भाव, सहानुभूति का प्रायोगिक प्रशिक्षण लड़कियों को आरम्भ से ही दिया जाना चाहिये । तभी मनोमालिन्य और मतभेदों के जन्म की संभावना समाप्त हो सकेगी ।

प्रतिकूल स्वभाव के लोगों में भी मित्रता होते देखी जाती है, प्रतिकूल मनःस्थिति के व्यक्ति को भी अनुकूल बनाया जा सकता है, उसके लिए धैर्य और समय की साधना करनी पड़ती है, जेठानी को तो एक ही धुन सवार रहती है कि देवरानी तुरन्त मेरे अनुसार चलने लगे, यदि जेठानी का जादू असर नहीं करता अर्थात् उसकी इच्छानुवर्तिनी देवरानी तुरन्त नहीं बनती तो 'संघर्ष हमारा नारा' है ही । जेठानी काश ! गम्भीरता से विचार करती और यह जान सकी होती कि पशुओं को भी प्रशिक्षित किया जा सकता है फिर तो वह उसी वर्ग और ज़ाति की नारी ही है । पत्थर को भी तराशकर मनोनुकूल प्रतिमा बनाई जा सकती है यदि यह मानकर चला जाय कि देवरानी अभी अनगढ़ पत्थर है तो एक कुशल शिल्पी के समान जेठानी उसकी काट-छाँट कर सकती है यदि उसे गीली मिट्टी ही समझे तो अपने साँचे में ढाल कर जो आकृति देना चाहे दे सकती है किन्तु जेठानी को धैर्य कहाँ ? वस्तुतः उसे सद्भाव की छैनी और सम्वेदना की हथौड़ी से गढ़ने में ही शीघ्र सफलता मिल सकती है और

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सौमनस्य और सौहार्द्र का वातावरण परिवार में बनाया जा सकता है, किन्तु प्रयास एकांगी जो भी किये जाते हैं-वे सफल नहीं होते । देवरानी का सहयोग भी उसी अनुपात में आवश्यक है । आगे बढ़ने के लिये देवरानी, जिठानी दायें और बायें कदम के समान सहयोग दें ।

ऐसा भी देखने में आता है कि किसी परिवार में जेठानी कम पढ़ी-लिखी अथवा अशिक्षित रहती है और देवरानी उच्च शिक्षित । ऐसी परिस्थिति में भी विसंगति के कारण तालमेल नहीं बैठ पाता । देवरानी को अपनी शिक्षा का अहंकार रहता है तो जेठानी को अपने पद का तथा अनुभव का । बात-बात में प्रतिष्ठा आड़े आती है । दोनों अपने अहंभाव को परस्पर आरोपित करने का भरसक प्रयत्न करती हैं, जिसके परिणाम अहितकर ही होते हैं । जेठानी भी देवरानी की कमजोरियों को, दोषों को खोजना आरम्भ कर देती है, फलस्वरूप समय पाकर एक दूसरे को असम्मानित करने की ताक में रहती हैं, कभी जेठानी इस कुचेष्टा में सफल हो जाती है, तो कभी देवरानी-निरन्तर टकराव होता ही रहता है । एक दूसरे को समझने के लिए कोई खाली नहीं रहती इसलिये समझौते का प्रश्न ही नहीं उठता । कोई झुकना पसन्द नहीं करती, प्रतिष्ठा का प्रश्न जो है ।

ऐसी परिस्थिति में सुशिक्षित देवरानी को यह समझना चाहिये कि शिक्षा का सही अर्थ है अपने गुण, कर्म और स्वभाव का परिष्कार अर्थात् अपने आचार-विचार में कुशलता लाना ही शिक्षा का प्रधान उद्देश्य है । काश देवरानी मिलनसारिता तथा व्यावहारिक कुशलता का उपयोग करके जेठानी को सम्मानित कर उसके अहं को संपुष्टि प्रदान कर सकती ।

देवरानी जेठानी के संघर्ष से सम्पूर्ण परिवार प्रभावित होता है, बच्चों पर भी उसका अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता, इतना ही नहीं जेठ और देवर अर्थात् सहोदर भाइयों में भी यदाकदा महाभारत होते देखा गया है । ऐसे अवसरों पर जेठानी और देवरानी अग्नि में घी का ही काम करती हैं, अपने पतियों को उकसाती रहती हैं और पति उनकी बातों में आकर घर को छिन्न-भिन्न करके ही मानते हैं । घर-घर माता-पिता का विभाजन होते देखा जाता है और जब सहोदर भाइयों में मात्र औपचारिक सम्बन्ध रह जाते हैं तभी जेठानी देवरानी की संघर्ष ज्वाला शांत होती है ।

ऐसे अवसरों पर यदि भाई विवेकशील होते हैं तो पत्नियों की बातों में विश्वास नहीं करते और संघर्ष की स्थिति टल जाती है । बल्कि निष्पक्षता के साथ समस्या की गहराई में जाकर उसका समाधान खोजते हैं, संयुक्त परिवारों के बिखराव को रोकने के लिए उनके सदस्यों की सबसे बड़ी विशेषता यही होनी चाहिए कि वे न्यायप्रिय, उदार, दूरदर्शी और सहिष्णु हों, दूध का दूध और पानी का पानी वाली न्यायनिष्ठा ही उनकी सफलता में सहायक सिद्ध हो सकती है । पुरुष वर्ग ही क्यों नारियों के भी अपने स्वभाव का अंग सहयोग और सहानुभूति को बनाने में ही परस्पर सम्मान तथा सुख-शांति की प्राप्ति हो सकती है । पुरुष तो प्रायः बाहर ही रहते हैं घर में इनको ही अधिक समय रहना पड़ता है ।

वैसे आजकल देवरानी और जेठानी के बीच कटुता, मनमुटाव, विषमता का कारण उनकी निपट स्वार्थपरता और छुद्र संकीर्णता ही है, वे केवल मेरा पति, मेरे बच्चे तक ही अपने संसार को सीमित रखना चाहती हैं, अच्छी चीज खायेगा तो मेरा बच्चा खायेगा, पियेगा तो मेरा बच्चा पियेगा और पहनेगा तो मेरा बच्चा पहनेगा । देवरानी-जेठानी परस्पर सोचती हैं । कलह का मुख्य कारण आज यही परिलक्षित होता है । संयुक्त परिवार के प्रत्येक सदस्य में औदार्य, औदात्य, सहिष्णुता, परपीड़ा में सम्वेदना का भाव विकसित होने में भी परिवार की सफलता निर्भर करती है ।

देवरानी और जेठानी में परस्पर ममता, समता तथा एकता के भाव का विकास हो तभी कटुता का पलायन हो सकता है, वस्तुतः आचरण अथवा व्यवहार को आंतरिक भावना का दर्पण कहा जा सकता है, जिसकी जैसी भावना है उसी के अनुरूप ही तो वह आचरण और व्यवहार करता है, जिसका बोध सहज ही हो जाता है । सुमधुर सरस वाणी से एक-दूसरे के हृदय को जीत कर सगी सहोदरा बहिनों के समान जेठानी और देवरानी के रहने में कोई असुविधा नहीं दिखाई देती । संघर्ष की दीवारें तो बहुत कमजोर होती हैं, सहोदरत्व और ऐक्य भाव की स्थापना मात्र से अविलम्ब टूट जाती हैं । मायके की बहिन का साथ तो अस्थायी होता हैं किन्तु देवरानी-जेठानी का स्थायी । फिर स्थायी बहिन से सगापन क्यों न विकसित किया जाये, ऐसा परस्पर विचार करना चाहिये, क्योंकि इस समझौते में हानि नहीं लाभ ही लाभ है ।

बेटी और बहू में अन्तर न रहे

करुणा, स्नेह, वात्सल्य, सहृदयता, दया, क्षमा आदि मनुष्यता के लक्षण हैं । इन्हीं गुणों के कारण मनुष्य पशुओं से भिन्न और श्रेष्ठ माना गया है । जिसके हृदय में इन गुणों का अभाव रहता है उसे कोई मनुष्य कहने में हर्ष अनुभव नहीं करता । क्रूरता, निष्ठुरता, हृदयहीनता मनुष्य के नहीं हिंस्र पशुओं के दोष होते हैं । मनुष्य में उक्त मानवीय गुणों का होना अपेक्षित है । संयोगवश जो अपने में इन मानव मूल्यों का अभाव अनुभव करें, उन्हें इनका विकास कर अमानवीयता का दोष धो डालना चाहिये । गुण-अवगुण विधि का विधान नहीं होते । यह परिस्थितियाँ अथवा संस्कारों से जीवन में प्रवेश करते हैं और प्रयत्न द्वारा घटाये-बढ़ाये जा सकते हैं ।

दूसरों के लिये दारुण अथवा क्रूर होने पर भी हर मनुष्य अपने बच्चों के लिये तो स्नेहपूर्ण होता ही है । बच्चों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

के प्रति स्नेह एवं सौहार्दपूर्ण वातावरण का होना स्वाभाविक है । मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी तक अपने बच्चों को प्यार किया करते हैं । जिसके भी बच्चे हैं वह इस सत्य को अच्छी तरह अनुभव करता है और यह भी जानता है कि घर का, गृहस्थ का उल्लास एवं आनन्द अधिकांश बच्चों पर ही निर्भर रहा करता है । बच्चों के अभाव में घर का आनन्द-उल्लास बहुत कुछ फीका हो जाता है । बच्चों को प्यार करने के लिए सबका हृदय लालायित रहता है । जिनके अपने बच्चे नहीं वे दूसरों के बच्चों को प्यार करके सुख पा लिया करते हैं । यही नहीं कि बच्चे जब तक छोटे रहें तभी तक अभिभावकों के हृदय में उनके लिए स्नेह अथवा वात्सल्य रहे । बड़े हो जाने पर भी अभिभावकों का प्रेम उसी प्रकार बना रहता है ।

बच्चों में भी कुछ प्राकृतिक कारणों से लड़कों से अधिक ममता लड़कियों पर होती है । यह कोई पक्षपात नहीं है । लड़कियों में लड़कों की अपेक्षा ममत्व, करुणा, कोमलता, नम्रता, मधुरता और आज्ञापालन का गुण अधिक होता है । साथ ही अभिभावक यह भी जानते हैं कि लड़के तो सदा पास ही रहेंगे किन्तु लड़कियाँ एक दिन पराये घर चली जायेंगी । इस सामान्य विछोह की कल्पना भी लड़कियों के प्रति ममता का भाव बढ़ा दिया करती हैं ।

लेकिन आज समाज में यह देख कर हृदय दुःख से द्रवित हो उठता है कि ससुराल वाले ब्याह कर आई हुई लड़की को अपनी लड़की की तरह नहीं मानते और न उनको वैसा स्नेह ही देते हैं । वे यह नहीं सोच पाते कि लड़कियाँ-लड़कियाँ सब बराबर होती हैं । जैसी अपनी पुत्री वैसी पराई । फिर ब्याह के बाद तो लड़की ससुराल की हो जाती है । वही घर उसका अपना घर बन जाता है और सास-श्वसुर ही माता-पिता हो जाते हैं । ससुराल का सुख-दुःख उसका और उसका सुख-दुःख ससुराल वालों का हो जाता है ।

अधिकतर ससुराल वाले निष्ठुरता, स्वार्थ अथवा अवांछनीय प्रवृत्तियों के कारण उसे पराई ही समझते रहते हैं । सो ब्याह कर आई हुई बहू उनके स्नेह, प्रेम और सहानुभूति की सहज अधिकारिणी होती है । वे उसे उसका अधिकार नहीं देते बल्कि उलटा लूट का माल समझकर उससे कठोरता का व्यवहार किया करते हैं । तरह-तरह की यातना देना, सताना, अपमानित, उपेक्षित अथवा अवहेलित करना अपना अधिकार समझ लेते हैं । उन्हें यह सोचना चाहिये कि उनके भी बच्चियाँ हैं या होंगी तब उन्हें भी एक दिन ससुराल जाना होगा । यदि ससुराल वालों की प्रवृत्तियों की यह परम्परा चलती रहेगी तो उनकी लड़कियाँ भी इस तरह से त्रस्त एवं अपमानित होंगी । किन्तु मनुष्य की इस स्वार्थी प्रवृत्ति को कहाँ तक कोसा जाये कि अपनी बच्ची पर तो होने वाले अत्याचार को सुनकर विचलित हो उठते हैं किन्तु अपने घर बहू बनकर आई दूसरों की लड़कियों से दुर्व्यवहार करने से नहीं चूकते ।

ससुराल वालों को वधुओं के साथ अनुचित व्यवहार नहीं करना चाहिये । एक तो उन्हें अपनी बेटियों की तरफ देखना चाहिये, उन्हें सोचना चाहिये कि वह माता-पिता से दूर होकर उनके आश्रित हो गई हैं । उसके हितों की रक्षा करना उसकी उन्नति और विकास में सहायक होने की बजाय उलटे उसे सताया जाना निश्चित ही एक अनैतिकता है । अनैतिक व्यक्ति कभी सुखी नहीं रह सकता । इसीलिये देखा जाता है कि बहू के सताने वाले परिवार अधिकतर सुख-शांतिपूर्वक नहीं रह पाते और बदले में ब्याह के बाद उनकी बेटियाँ भी सताई और उत्पीड़ित की जाती हैं ।

'इस हाथ दे उस हाथ ले'-वाले इस संसार में कोई भी अपने कर्मफल से मुक्त नहीं किया जा सकता है । ससुराल में बहू के सताये जाने का अर्थ केवल यही नहीं होता कि केवल उसी को सताया जा रहा है । उसे उत्पीड़ित करने से जो दुःख उसके माता-पिता, भाई-बहिनों को होता है वह भी उत्पीड़कों पर परोक्ष रूप से प्रभाव डालकर पाप का भागी बनाता है । एक बहू को कष्ट देने का अर्थ है बहुतों को सताना । इस प्रकार अनेकों की यातना देने का परिणाम, प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष किसी भी रूप में कल्याणकारी नहीं होता है ।

वैसे भी मनुष्यता का तकाजा यह है कि किसी को दुःख, तकलीफ, न दी जाये और फिर उसे सताना अथवा दुःख देना तो और भी घोर पिशाचता है जो हर प्रकार से अपने आश्रित और निर्दोष हो । ससुराल में अधिकतर बहुओं की स्थिति यही होती है । एक तो वे मुँह बन्द गउओं की तरह यों ही होती हैं । ससुराल में ससुराल वालों के सिवाय उनका दुःख-सुख पूछने वाला और कौन होता है ? माता-पिता उन्हें धर्म को साक्षी बनाकर सौंप चुके होते हैं उनका कोई अधिक अधिकार उन पर नहीं रह जाता । फिर ससुराल वाले भी तो धर्म को साक्षी बनाकर उनका गा-बजा कर अपना बनाकर लाते हैं और हर प्रकार से सुखी रखने का वचन देकर आते हैं । ऐसी दशा में उन पर अत्याचार करना धर्म से द्रोह करना है । धर्म से द्रोह करना किसके लिए मंगलदायक हो सकता है इसे एक साधारण आदमी भी समझता है । तब भी लोग आये दिन धर्म और मानवता को तिलांजलि देकर बहुओं पर अत्याचार करते रहते हैं ।

समाज में फैली इस क्रूरता का जो सबसे बड़ा कारण समझ में आता है वह है दहेज प्रथा । यह हत्यारी दहेज प्रथा जब तक समाज को ग्रास किए रहेगी वधुओं का उत्पीड़न होता ही रहेगा । 'लोभ को पाप का मूल' माना गया है । लोभ में पड़कर मनुष्य कौन-सा पाप करने को तैयार नहीं हो जाता ? लोभ मनुष्य को अन्धा बनाकर यह देख सोच सकने में असमर्थ बना देता है कि वह जो कुछ अनुचित कर रहा है उसका परिणाम उसकी आत्मा और उसके परिवार के लिये क्या होगा ? परिणाम कुछ भी हो, कोई भी पाप क्यों न लगे किन्तु लोभी मनुष्य अपने

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुकृत्यों से विरत नहीं होता । लोभ मनुष्य को न केवल अन्धा ही बना देता है बल्कि मूर्ख भी बना देता है । लोभ की मूर्खता लोक-परलोक दोनों के लिए अकल्याणकारी होती है ।

अन्य व्यवसायों की तरह लोभियों ने लड़कों के विवाहों को भी एक व्यवसाय बना लिया है । दहेज के नाम से वे लड़कों की कीमत ऊँची से ऊँची कर देते हैं । जिन अभिभावकों के ब्याह योग्य लड़कियाँ हैं, उन्हें लड़के चाहिये ही होंगे । यथासाध्य ही नहीं, असाध्य दहेज की पूर्ति कर वे वर खोजते हैं और अपनी सामर्थ्य से अधिक खर्च करके भी जब बेटी को दुःख मिलता है तो उनकी आत्मा कराह उठती है ।

बहुधा देखा जाता है कि माँ चाहती है बेटी पराये घर जाकर मालकिन बनकर रहे । पति का असीम स्नेह उसके ऊपर बरसे । चाहे जहाँ खूब घूमे-फिरे, ऐश करे, सिनेमा देखे, अच्छे-अच्छे कपड़े पहने । सब घर से अच्छा खाये उसकी सास का कोई जोर दबाव उसके ऊपर न रहे । उसके ससुराल वाले जब चाहे मैके चली आने दें । पति की आमदनी का कम से कम हिस्सा उसके परिवार वालों के लिए खर्च हो, घर का काम कम से कम करना पड़े । पर साथ ही वह माँ अपनी बहू के लिए ठीक इसके विपरीत सोचती है । बहू अपने पति से कम से कम मिलने पाये । घर की किसी भी तकलीफ की भलाई-बुराई अपने पति से न करे । कहीं घूमने-फिरने न जाय, हमारे लाये हुए कपड़े और वस्तुओं का इस्तेमाल करे । घर का पूरा काम वही करे और सब घर के सदस्यों को खिलाने के बाद में बचे हुए भोजन को स्वयं खावे । ससुराल की कोई बात अपने मायके में न बतावे । २४ घण्टे घर के अन्दर ही पर्दे में रहे और उसके पति की आमदनी पर उसका किसी तरह का आधिपत्य न हो ।

यह समझ में नहीं आता कि उसी एक महिला का जब बेटी के लिए सोचती है तो ढंग कुछ और है और बहू के लिये सोचती है तो ढंग और ही है । आखिर एक ही घर में ऐसी दोहरी नीति क्यों ?

विभिन्न परिस्थितियों में एक सामान्य प्रतिक्रिया परिलक्षित होती है । इससे मुक्ति का एक ही मार्ग है बहुएँ समझें कि गलती हमारी ही है हमारी भावनाएँ, विचार पूर्वाग्रह ऐसे क्यों हैं ? हम उनका सामना करें । एक बात यहाँ पर और भी है कि जब वे सास बन जाती हैं तब उन बदलों को वे अपनी बहू से लेना चाहती हैं जैसा व्यवहार उनकी सासों ने उनके साथ किया था । यह नहीं सोचतीं कि प्राचीनता की रूढ़ियाँ अब समाप्त हो चुकी हैं और तब की बात में बहुओं का जो आज तुम्हारे सामने हैं क्या दोष हो सकता है ? रूढ़ियों में जकड़ी हुई महिलाएँ शायद अपने को न बदल सकें । लेकिन फिर भी पढ़ी-लिखी विवेकी महिलाओं को ही अपने को बदलना होगा । जिससे परिवार में कटुता न आने पाये ।

मानव की सबसे बड़ी कमजोरी 'स्वार्थ' है और वह स्वार्थ स्त्री में जरूरत से ज्यादा भरा होता है। स्त्री चाहती है कि मेरा बेटा और मेरा दामाद दोनों ही वश में रहें और मेरा बेटा अपनी ससुराल वालों से सदैव तनाव रखे । यह कैसे हो सकता है ? जो तुम्हारा बेटा है वह किसी का दामाद भी है । जो तुम्हारा दामाद है वह किसी का पुत्र भी है ।

इसी तरह हम देखते हैं कि जो स्त्री एक ही घर में दोहरी नीति अपनाती है तो घर में तनाव, मन-मुटाव होने लगता है । अगर वही स्त्री अपनी बहू को बेटी बना कर रखे, उसे बेटी के ही समान प्यार दे, जैसा अपनी बेटी के लिये चाहे वैसा ही अपनी बहू के लिये भी चाहे तो हो नहीं सकता कि सास बहू के सम्बन्ध मधुर न हों । अगर सास अपनी बहू को बेटी का-सा प्यार देगी । तो बहू भी उसे माँ का सम्मान और प्यार देगी इस तरह सास और बहू के झगड़े का अन्त हो सकता है ।

पुत्रवधू का घर में वही स्थान है जो पुत्री का है, पर पुत्री और पुत्रवधू में बहुत-सा अन्तर भी है । कुटुम्ब में पुत्री के शैशव, बालपन, किशोरपन भी बीतते हैं, इसलिए बेतकल्लुफी के कारण उसका आदर कम होता है, प्रेम अधिक होता है और कुटुम्ब की कोई विशेष जिम्मेदारी भी उसके ऊपर नहीं होती, जबकि पुत्रवधू यौवन के साथ घर में प्रवेश करती है, इसलिए वह प्रारम्भ से ही जिम्मेदार व्यक्ति होती है-इसलिए उसका आदर अधिक होता है ।

पुत्रवधू की जिम्मेदारी पुत्र से भी बढ़कर है । वह सास-ससुर को माता-पिता की तरह प्यार भी करती है और गुरु की तरह आदर भी ।

कुटुम्ब की सुख-शांति का आधार पुत्रवधू ही है । वह चाहे तो पति को एक बड़े धर्म संकट से बचा सकती है, जिससे पति पत्नी का आदर, प्यार भी कर सके और माता-पिता का आज्ञाकारी सेवक भी बना रहे और वह चाहे तो पति को धर्म संकट में डालकर माता-पिता की सेवा से, शिष्टाचार से विरक्त कर सकती है । देखा जाता है कि बड़े आज्ञाकारी, सेवाभावी लड़के भी पत्नी के आते ही माता-पिता की तरफ से बड़े लापरवाह, उदण्ड और स्वार्थी हो जाते हैं । इसका एक कारण तो उनका खुदगर्जीपन है जो मौका न मिलने से दबा हुआ था, पर दूसरा पुत्रवधू का अविवेक और कर्त्तव्यशून्यता भी है । माता-पिता पुत्र का पालन बड़ी उमंग और प्रेम से करते हैं और विवाह भी बड़ी उमंग से करते हैं । विवाह होने पर पुत्रवधू का स्वागत भी बड़े उत्साह से करते हैं । उनकी इन आशा उमंगों को धक्का न लगे इसका ख्याल पुत्रवधू ही रख सकती है । पुत्र और पुत्रवधू दोनों को इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि वे क्या कारण हैं जिससे माता-पिता असंतुष्ट होते हैं ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पहला कारण यह है कि माता-पिता को भ्रम हो जाता है कि पुत्र अब हमारी परवाह नहीं करता-वह अब पत्नी की ही बात सुनता है, पर इस भ्रम को दूर करना कठिन नहीं है । पुत्र और पुत्रवधू यद्यपि अभिन्न हैं, पर जब सास बहू में गृह-प्रबन्ध आदि को लेकर कोई बात हो रही हो तो पुत्र अपनी पत्नी का वकील बनकर माँ से चर्चा न करे, बहुत जरूरत हो तो पत्नी ही नम्रता से खुलासा करे । अपवाद रूप में किसी बड़ी घटना की बात दूसरी है । दूसरी बात यह है कि दाम्पत्य क्रीड़ाओं के वश में होकर माता-पिता की जरूरी सेवाओं की उपेक्षा न हो और न क्रीड़ाओं का विशेष प्रदर्शन हो ।

माता-पिता के सामने पति-पत्नी उन्हीं की दो सन्तानें की तरह रहें । तीसरी बात यह है कि स्वतन्त्रता का विशेष प्रदर्शन न करें, पहले के समान माता-पिता से बात-बात में सलाह लेते रहें । इन बातों का ख्याल रखा जाय तो माता-पिता को यह भ्रम न होगा कि पुत्र अब हमारी परवाह नहीं करता । इस शिष्टाचार के पालन में पुत्र और पुत्र वधू की कोई हानि नहीं है, बल्कि थोड़ी-बहुत मात्रा में असंयम का निरोध ही है । कोई भी माता-पिता अपनी सन्तान को दु:खी देखना नहीं चाहते । हाँ, यह मानव स्वभाव है कि उपकार के बदले में अगर किसी को प्रतिस्पर्द्धा मिले तो वह उसे असह्य होगी, इसलिये पुत्र और पुत्रवधू को माता-पिता के प्रतिस्पर्द्धा न बनना चाहिये ।

माता-पिता के असन्तोष का दूसरा कारण यह होता है कि माता पुत्रवधू पर कार्य का भार डालकर कुछ विश्राम करना चाहती है पर पुत्रवधू इसे अपमान समझती है वह सोचती है कि 'मैं दासी नहीं हूँ, जो दिन भर काम में जुटी रहूँ' इस बात को लेकर चुपचाप या मुँह बजाकर जो संघर्ष होता है उससे माता-पिता असन्तुष्ट हो जाते हैं ।

विवाह के बाद नव-वधू को विश्राम देना और उसे कुछ समय तक मेहमान की तरह रखना उसकी ससुराल वालों का कर्तव्य है, पर कुछ दिन बीत जाने पर और घर की हालत देखकर पुत्रबधू का कर्तव्य है कि वह जल्दी से जल्दी गृहसेवा के कार्य में अपनी सास को अधिक से अधिक छुट्टी दे दे ।

यह बात हर हालत में बुरी है कि सास बहू के भीतर दो प्रतिस्पर्द्धा के समान गाली-गलौज का असभ्य व्यवहार हो । ऐसी दुर्घटनाओं में दोनों तरफ का या दोनों में से किसी भी एक तरफ का कुसूर हो सकता है, पर पुत्रवधू जहाँ तक बन सके सहन करके सास का विनय भंग न करे । अगर बातें असह्य हों और बार-बार हों तो वह अलग हो सकती हैं ।

पुत्रवधू को इन दो बातों का अवश्य ख्याल रखना चाहिये । पहली तो यह कि जब तैंक सास जिन्दा है या वह समर्थ और योग्य है अथवा उसकी रुचि है तब तक उसके हाथ से गृह प्रबन्ध का अधिकार छीनने की या सास का अधिकार न मानने की कोशिश न करे । आखिर एक न एक दिन अधिकार उसके हाथ में आने वाला ही है, जल्दी लूटने की कोशिश करने से या तो अधिकार दुर्लभ हो जायगा या गृह प्रबन्ध बिगड़ जायेगा और परस्पर विद्वेष बढ़ जायगा-वह अलग । हाँ जब वृद्धता आदि के कारण सास अपनी इच्छा से गृह प्रबन्ध का अधिकार बहू को सौंपे तब वह ले सकती है ।

दूसरी बात यह है कि बहू को अपमान का अनुभव न करना चाहिए । बहुत काम या छोटा काम करने से वह अपने को दासी समझ कर अपमानित न माने, सास की डाँट-फटकार से वह अपना अपमान न समझे । किसी व्यक्ति का अपमान तब होता है जब संसार की निगाहों से गिरता है । माता-पिता या सास-ससुर की सेवा करने से उनकी डाँट-फटकार सहने से किसी की इज्जत कम नहीं होती है, बल्कि उसकी नम्रता, सहिष्णुता, सेवा-भाव आदि के कारण तारीफ होती है । अपमान का अनुभव तभी हो सकता है जब हम गुरुजनों को गुरुजन मानने से या संसार के सामने प्रगट करने में दीनता-हीनता समझें । गुरुजनों को गुरुजन न मानना कृतघ्नता भी है और मूर्खता भी ।

यह हो सकता है कि पुत्रवधू सास की अपेक्षा ज्यादा पढ़ी-लिखी हो, फिर भी शिष्टाचार के नाते उसे नम्र ही रहना चाहिए और यह न भूलना चाहिए कि गृह-प्रबन्ध में सास का अनुभव बहू से काफी अधिक हो सकता है और वह किताबी ज्ञान की अपेक्षा अधिक कीमती हो सकता है ।

हाँ, एक बात सासों को भी ध्यान में रखना चाहिए कि उनका काम पुत्रवधू को सिखाना और उससे काम लेना है, हुकूमत का मजा लेना या उसका अपमान करना नहीं बात-बात पर यह कहना ठीक नहीं कि-तेरी माँ ने तुझे कुछ नहीं सिखाया, वहाँ क्या भाड़ झोंकती रही । पुत्रवधू के माता-पिता आदि के बारे में अपमानजनक शब्द न कहना चाहिये ।

इसके अतिरिक्त विनय और शिष्टाचार के नाम पर पुत्रवधू के जीवन को जकड़ना न चाहिये । वह बात-चीत भी न कर सके, साधारण विनोद भी न करे सके, ससुर से जेठ से या सास से बोल भी न सके, यह सब ठीक नहीं । उसका स्थान पुत्र के ही बराबर है । यह बात कुटम्ब के किसी भी व्यक्ति को न भूलनी चाहिए ।

भाव दृष्टि से देखा जाय तो सास-बहू के सम्बन्धों में मधुरता नितान्त स्वाभाविक हो जाती है । बहू यह अनुभव न करे कि जिसने अपना पाला-पोषा पुत्र और जमी-जमाई गृहस्थी सौंपने के लिए उसे बुलाया है, बहू उससे कुछ अपेक्षायें भी रखती है । सास सोचे कि जो लड़की माता-पिता, भाई, परिवार को छोड़कर उसके यहाँ बिना शर्त आ गयी है, उसके स्नेहाधिकार को सुरक्षित रखा जाय । बस इतने मात्र से दोनों ओर से स्नेह सम्मान और सहयोग की ऐसी प्रबल हिलोरें उठने लगें कि वे दोनों तो धन्य हो ही जावें, उन पवित्र लहरों में स्नान करके सारा परिवार भी स्वर्गीय सुख की अनुभूति

करने लगे । हर घर में ऐसे प्रयास हों-वह सार्थक हो तथा पारिवारिक जीवन धन्य बने यही आशा, आकांक्षा की जानी चाहिये ।

आतिथ्य धर्म के आधार

अतिथि सत्कार पारिवारिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग है । हमारे देश में तो इसे बहुत बड़ा महत्व का स्थान दिया गया है, एक बड़ा पुण्य बताया है । स्मृति-पुराण, इतिहास आदि में अतिथि सत्कार के नियम, आदर्श, उपाख्यान भरे पड़े हैं । आज जबकि अनेकों सभ्यतायें निकट सम्पर्क में आ रहीं हैं, आज के संघर्ष और भाग-दौड़ प्रधान युग में, समस्याओं से घिरे हुए मानव जीवन में अतिथि सत्कार के नियम, मर्यादायें क्या हैं ? अतिथि और अतिथेय दोनों किस मर्यादा तक अपना कर्तव्यपालन कर इस पुण्य सामाजिक नियम परम्परा का पोषण करें ? आज के जीवन में अतिथि धर्म कहाँ तक पालन किया जाय यह विचारणीय है ।

अतिथि को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि निमन्त्रण मिलने पर ही किसी के घर जाय । किसी आवश्यक कार्यवश स्वयं को ही जाना पड़े तो उसकी पूर्व सूचना दे देनी चाहिए । यदि बहुत अधिक घनिष्टता हो तो पत्र में गाड़ी या पहुँचने के समय का संकेत भी कर दिया जाय जिससे अतिथेय स्वागत सत्कार के लिए आ जाय । यदि अपने ही काम से कहीं जाना हो और साधारण-सी जानकारी हो तो पत्र द्वारा ठहरने आदि की अनुमति प्राप्त कर लेना चाहिये ।

बिना पूर्व सूचना के उस पर भी बाल-बच्चों के दल-बल सहित अचानक किसी के घर पहुँच जाना अव्यावहारिक है साथ ही बुरा भी । कदाचित् अतिथेय के घर उस समय स्वागत सत्कार की व्यवस्था न हो तो क्या स्थिति पैदा होगी ? स्पष्ट है वह मन ही मन चिन्ता, आत्म- ग्लानि महसूस कर परेशानी अनुभव करेगा और अतिथि पर मन ही मन झुँझलायेगा ।

अतिथि को चाहिए कि उसका कोई भी कार्य अतिथेय के लिए कष्ट का कारण न बने । उसके दैनिक कार्यक्रम में कोई बाधा न पड़े । अतिथेय के कार्यक्रम और व्यस्तता का ध्यान रखे । दर-असल इस सम्बन्ध में बहुत ही कम लोग सोचते हैं । जब अतिथेय को कई काम करने होते हैं तब भी उसे लोग अपने मनोरंजन अथवा साथ रहने के लिए, घूमने के लिए मजबूर करते हैं । उसके दिन भर के कार्यक्रमों का ध्यान नहीं रखते । इससे अतिथि एक तरह की बला-सी लगता है । अपने कारण अतिथेय के कार्यक्रमों में अव्यवस्था पैदा न हो इसका पूरा-पूरा ध्यान रखा जाय ।

अतिथि को अपने मेजबानों के यहाँ जैसी व्यवस्था मिले उसी में सन्तुष्ट रहना चाहिये । अपने लिए कहकर किसी विशेष सुविधा आराम की माँग न करे । पूछने पर किसी तरह की आज्ञा न दें । अतिथेय अपने मेहमान के आराम का आदर सत्कार का पूर्ण ध्यान रखता है, उसके लिए इच्छानुसार भोजन को पूछता है । ऐसी स्थिति में अपनी इच्छानुसार भोजन आराम आदि के लिए न कहा जाय, अतिथेय के यह कहने की 'यह आपका घर है' इसका ऐसा ही अर्थ लगाकर घर में अनावश्यक अधिकार, हस्तक्षेप, वस्तुओं को छूना, कागजात एवं आवश्यक सामान को उठाना, देखना, इधर-उधर जासूसी की-सी निगाह डालना, अच्छा नहीं । अतिथेय जितनी अधिक स्वतन्त्रता, उदारता बरते उतना ही अतिथि को अपनी सीमा मर्यादा में रहना चाहिए, इससे परस्पर प्रेम आत्मीयता बनी रहती है । किसी के यहाँ लाभ प्राप्ति का दृष्टिकोण रखकर न जाया जाय । स्वार्थ की खटाई पड़ते ही स्नेह सम्बन्ध विकृत हो जाते हैं ।

अतिथि को चाहिये कि वह अतिथेय के कार्यों में पूरा-पूरा हाथ बँटाये । साथ में पत्नी हो या अतिथि ही स्त्री हो, तो उसे घर के कार्य, भोजन बनाना, बच्चों को सम्हालना, बर्तन साफ करना, मकान की सफाई, स्वच्छता आदि कामों में पूरा-पूरा योग देना चाहिए । पुरुष भी घर से लेकर बाहर के कार्य व्यापार में अतिथेय का सहयोग दे सकता है ।

अतिथि कितने दिन तक ठहरे ? इसका निर्णय वस्तुस्थिति और परस्पर के सम्बन्धों के आधार पर ही किया जा सकता है । फिर भी जहाँ तक बने बिना कारण अधिक समय तक ठहरने का प्रयास न किया जाय । अधिक दिन ठहरने से परस्पर का आकर्षण स्नेह कम हो जाता है । इसके साथ ही व्यवहार में भी शिथिलता उत्पन्न हो जाती है ।

जाते समय अतिथेय के प्रति आभार, हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिये । उसे ऐसा मालूम हो कि अतिथि ने उसके यहाँ काफी सुख और आनन्द का समय बिताया । इसके लिए बार-बार कृतज्ञतापूर्ण आभार प्रकट किया जाय । अपने स्थान पर पहुँचकर भी पत्रों द्वारा अतिथेय को धन्यवाद दे और सम्मान के भाव प्रकट करे । कुल मिलाकर अतिथि का आगमन सभी तरह सुखकर, आनन्दप्रद, उल्लासमय हो । अतिथेय पर किसी तरह का बोझा न पड़े । दोनों का मिलन आनन्ददायक हो । मधुर हो ।

अतिथेय का स्थान भी अतिथि धर्म को निभाने के लिए महत्वपूर्ण है । अतिथेय पर ही अतिथि सत्कार, अतिथि की सेवा निर्भर करती है । सम्पूर्ण अतिथि धर्म का बहुत बड़ा भार अतिथेय, गृहस्वामी पर ही है ।

अतिथेय पर्याप्त प्रसन्नता, उत्साह के साथ अतिथि का स्वागत करे । आवश्यक समझें तो स्टेशन पर अथवा अपने घर से दूर ही लेने के लिये जायँ । इससे अतिथि सन्तुष्ट होगा । उसे अपने आने पर प्रसन्नता, आनन्द अनुभव होगा ।

अतिथि के स्वागत सत्कार में आडम्बर अमर्यादा का आचरण न किया जाय । अपनी स्थिति के अनुसार उसका सेवा सत्कार करें । घर की स्थिति सामान्य हो, अपने ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

परिवार के पालन-पोषण में कठिनाई पड़े, दूसरी ओर अतिथि के लिए कीमती मिठाइयों की दावत दी जाय, उस के लिए अनाप-शनाप खर्च किया जाय तो अन्त में जल्दी ही कर्ज का बोझ, उसकी चिन्ता, परेशानी, क्लेश बढ़ेगा और अतिथि को इसका कारण जानकर उसे कोसा जायगा । भूलकर भी आडम्बरपूर्ण सत्कार न किया जाय । अपनी स्थिति के अनुसार सुविधापूर्वक जो सत्कार बन पड़े, अतिथि की अर्चना में जो फल-फूल, नैवेद्य सुलभ हो, उसे भावना और हार्दिकता के साथ प्रस्तुत करना चाहिये ।

खाने-पीने के मामले में हमारे यहाँ एक बहुत बुरी आदत है, वह यह कि अधिक परोसने, अधिक खाने के लिए अतिथि को बाध्य किया जाता है । सामान्यतया प्रेम प्रदर्शन आत्मीयता के लिए इसे किसी हद तक ठीक भी माना जा सकता है । किन्तु मूलतः यह रिवाज अच्छा नहीं । आज के विकसित और सभ्य कहे जाने वाले युग में यह अनाड़ीपन की बात है । आवश्यक वस्तुयें अतिथि के समीप रख देनी चाहिये । वह अपनी रुचि के अनुसार जो आवश्यक समझेगा ग्रहण कर लेगा । जबरन परोसना, खिलाना आदि स्वास्थ्य और धन दोनों को नष्ट करता है और कइयों को तो इस तरह का आतिथ्य एक भार-सा लगता है । हरेक बात में अतिथि के मनोभावों का पूरा-पूरा ध्यान रखना आवश्यक है ।

अतिथि की सुविधा, उसके आराम का भी पूरा-पूरा ध्यान रखा जाय । उसे निर्जीव वस्तु की तरह एक ओर पटक देना अथवा उसमें दिलचस्पी न लेना, दिन-रात सुनसान जगह में बन्दी की तरह रख छोड़ना, अतिथि को बन्दीगृह जैसा लगता है । उसके मनोरंजन, प्रसन्नता आदि के लिये पूरी-पूरी दिलचस्पी, आत्मीयता रखी जाय । साधन सुविधाओं का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाय ।

गृहस्वामी को अतिथि के सामने अपनी दुःख, हानि, परेशानियों की गाथायें या इतिहास नहीं कहना चाहिये । सभी लोगों के जीवन में अपनी कुछ न कुछ समस्यायें होती ही हैं । अतिथि भी इनसे सर्वथा मुक्त नहीं होता । वह तो अपने प्रवास काल में कुछ चैन, शांति, प्रसन्नता, आनन्द की अपेक्षा रखकर निकलता है । अतः अपनी दुःख, परेशानी भरी गाथाओं से अतिथि को असन्तोष, अशांति हो सकती है, इससे भूलकर भी ऐसा प्रयास नहीं करना चाहिये ।

बात-चीत के मध्य में अतिथि की भावनाओं, विचारों का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाय । अपना मत, अपनी ही बात अतिथि पर न लादी जानी चाहिए । इससे परस्पर के सम्बन्ध बिगड़ने की सम्भावना रहती है । ऐसी कोई बात न कही जाय जो अतिथि को चुभ जाय । गृहस्वामी का स्थान सुनने वालों में रहता है । अतिथि जो कुछ कहे उसे सुने, कभी-कभी अपनी इच्छा, विचारों के विपरीत भी बोले तो विरोध आदि न करके मूक भाव से उसके विचारों को सुन लिया जाय । क्योंकि इस समय वह अतिथि है ।

अतिथि के समक्ष घर की अव्यवस्था, सामान की धर-पटक, बच्चों को पीटना, मारना, उत्तेजना और चिड़चिड़ापन का व्यवहार करना सदैव वर्जित है । यह एक तरह से अतिथि का अपमान है । सम्भव है वह यह सोचे कि यह सब तूफान मेरे कारण खड़ा हुआ है । इससे अतिथि को मानसिक क्लेश और आत्मग्लानि होगी इसी तरह अतिथि की व्यवस्था के लिये घर में भाग-दौड़, चीखना-चिल्लाना न हो । घर का वातावरण और कार्यक्रम शांतिपूर्वक चलता रहे । सब अपना-अपना काम करते रहें ।

इसके लिये घर के बच्चों सहित सभी परिजनों को उचित शिक्षण दिया जाना चाहिये । अतिथि आगमन को पारिवारिक तालमेल और शालीनता, शिष्टाचार का परीक्षण मान लेना चाहिये । जो भूलें उस समय हो जावें उनको उस समय महत्व न देकर बाद में शांति से उन पर चर्चा कर लेनी चाहिये । ताकि बाद में वह दोहराई न जावें ।

अतिथि को विदा करते समय उनके आगमन पर हार्दिक कृतज्ञता, प्रसन्नता प्रकट करते हुए यह प्रदर्शित करें मानो वे उचित सेवा सत्कार न कर पाये हों । स्टेशन या जो भी सवारी हो वहाँ तक पहुँचाने जायँ । विदा करते समय घर को पुनः पवित्र करने का आग्रह भी करें । विदा करते समय ऐसी हार्दिकता प्रकट करें मानो अपने घर से आज भगवान अतिथि देव जा रहे हैं । हाथ जोड़कर प्रणाम कर अन्तिम अभिवादन भी करें ।

अतिथि सत्कार या आतिथ्य ग्रहण में सबसे महत्वपूर्ण बात है हार्दिकता की, अनन्यता की । बनावटी तौर पर उक्त व्यवहार भी नीरस, खोखला, निष्प्रभावकारी सिद्ध होता है । इससे परस्पर हृदय जुड़ते नहीं । आतिथ्य सत्कार के लिये साधन-सुविधा वस्तुओं का कोई महत्व नहीं है । इस पुण्य-प्रथा के लिए यदि कोई आवश्यक तत्व है तो वह है हार्दिकता अनन्य प्रेम निश्छलता । श्रीकृष्ण ने दुर्योधन के षट्रस मुक्त व्यंजनों को त्यागा, विदुरानी के हाथ से केले के छिलके खाकर अधिक प्रसन्नता, सन्तोष प्राप्त किया था । श्रीराम ने शबरी के झूठे बेर खाकर, निषादराज का आतिथ्य स्वीकार कर अपने को धन्य माना था ।

जहाँ हार्दिक प्रसन्नता का आदान-प्रदान नहीं होता वहाँ अतिथि और आतिथेय के धर्म का निर्वाह सम्भव नहीं । ऐसे प्रसंगों को टालना चाहिए । अनचाहे अतिथि के रूप में अपने निकट से निकट सम्बन्धी के यहाँ भी जाना उचित नहीं । देवी सती अपने पिता दक्ष के यहाँ उनके न चाहते हुए भी गयी थीं तो उन्हें पश्चात्ताप की अग्नि में जलना ही पड़ा । बहुत बार आतिथेय के मन में अतिथि के प्रति स्नेह, सम्मान तो होता है किन्तु उसकी आर्थिक अथवा सामयिक मजबूरियाँ ऐसी होती हैं कि वह उनके कारण आतिथ्य का उत्तरदायित्व सम्भाल नहीं पाता । ऐसे अवसरों पर अतिथि को स्वतः ही स्थिति समझकर सहजभाव से बिगड़ने के पूर्व ही शालीनतापूर्वक उसके सामने तथ्य रख देना बुरा नहीं है । ऐसे अवसर पर अपने हृदय के सद्भाव व्यक्त करने में भी संकोच नहीं करना चाहिये ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आतिथ्य की मर्यादा बनी रहे उसका लाभ हर पक्ष को मिलता रहे इसके लिये आवश्यक है कि न तो उसकी उपेक्षा की जाय और न आकाश-पाताल जैसा महत्व ही दे दिया जाय । अतिथि और आतिथेय दोनों ही एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति रखें और एक-दूसरे की मजबूरियों को समझें, ध्यान में रखें । इससे एक दूसरे के प्रति सद्भाव युक्त कृतज्ञता का भाव उदय होता रहता है और हर आतिथ्य का प्रसंग एक मधुर स्मृति और प्रेरक प्रसंग के रूप में हृदय को आह्लादित करता रहता है । परिवारों में यह प्रसंग अनिवार्य रूप से आते ही हैं । उन्हें ऐसा ही सुखद एवं हितकर बनाया जाना चाहिये ।

परिवार जागरण की प्रक्रिया और उसकी महान सम्भावनाएँ

परिवार निर्माण के छोटे से दीखने और बिखरे-से लगने वाले क्रिया-कलाप का भावी परिणाम क्या हो सकता है इसकी यदि सही कल्पना की जा सके तो प्रतीत होगा कि सृजनात्मक कार्यक्रमों में यही सबसे मूर्धन्य और महत्वपूर्ण है । लगने में तो पैसा और विनोद सबसे बड़े दीखते हैं और उसके लिए लोग अपने स्वास्थ्य, सन्तुलन और ईमान तक को गँवाते रहते हैं, पर इतने पर भी तथ्य तो जहाँ के तहाँ ही रहेंगे । पैसा और विनोद कितना ही आकर्षक, उत्तेजक क्यों न हो जीवन क्रम की सुव्यवस्था का महत्व सर्वोपरि रहेगा । नशा उतरते ही यह समझने में देर नहीं लगती है कि व्यक्तित्व मूल्यवान है, वैभव नहीं । ठीक इसी प्रकार परिवार निर्माण की बात हलकी उथली-सी भले ही लगे उसकी परिणति एवं प्रतिक्रिया पर ध्यान देने से प्रतीत होगा कि मानवी समाज की प्रगति शान्ति और समृद्धि की आधारशिला इसी पर रखी हुई है ।

निरन्तर जिन विषयों की चर्चा होती है, जिनका महत्व समझा-समझाया जाता है उन्हें मस्तिष्क अपना भी लेता है और स्वभाव एवं आचरण का प्रवाह भी उसी दिशा में जुड़ता है । बलिवैश्व धर्म कृत्य के सहारे जिन पारिवारिक पंचशीलों का प्रतिपादन आये दिन होता रहता है, उनकी महत्ता एवं प्रतिक्रिया का बखान किसी न किसी प्रकार सुनने को मिलता है । स्वभावत: वह दर्शन एवं प्रचलन व्यक्तित्व का अंग बनता चला जाता है । पंचशीलों में जिन प्रधान सद्गुणों का समावेश है यदि वे स्वभाव में, चिन्तन एवं चरित्र में समाविष्ट होते हैं तो निश्चय ही प्रभावित व्यक्ति का भविष्य उज्ज्वल बनेगा । उसका सम्पर्क जिससे भी रहेगा उन्हें चन्दन वृक्ष के समीप उगने वाले पौधों की तरह सुखी, सौभाग्यशाली बनने का अवसर मिलेगा । अगली पीढ़ी यदि पंचशील के ढाँचे में ढलती है और वर्तमान पीढ़ी को उन सत्प्रवृत्तियों से प्रभावित होने, अपनाने का अवसर मिलता है तो समझना चाहिए कि उज्ज्वल भविष्य की सम्भावनाओं को साकार होने में कोई बड़ी कठिनाई शेष नहीं रह गई ।

असन्तोष, खीज, निराशा, भय, चिन्ता एवं उद्विग्नता की मन:स्थिति में मनुष्य की कार्यक्षमता तीन चौथाई नष्ट हो जाती है । शरीर विवशता में कुछ काम करता भी है तो वह आधा-अधूरा होता है, उसमें इतने छिद्र रहते हैं कि कई बार तो वह श्रम न करने से भी अधिक महँगा पड़ता है । मन में सन्तुलन, उत्साह बना रहे तो दुर्बलता और स्वस्थ योग्यता रहने पर भी मनुष्य थोड़ा-थोड़ा करके भी इतना काम कर लेता है । जो सुयोग्य के कर्तृत्व से भी अधिक बहुमूल्य सिद्ध हो । कछुए खरगोश से शर्त बदकर चलने और अन्तत: कछुए द्वारा बाजी जीत जाने की कहानी का एक ही निष्कर्ष है कि समर्थता से भी अधिक मानसिक स्थिरता का महत्व है । कहना न होगा कि यह सद्गुण परिवार के शान्त वातावरण में उपजता और बढ़ता है । जिन घरों में स्नेह-सद्भाव रहते हैं वहाँ न तो चंचलता पाई जाती है, न उद्विग्नता, न आवेश उभरते हैं, न आक्रोश । कुछ कुसंस्कारी प्रकृति होती भी है तो उसे माता का वात्सल्य, पत्नी का विश्वास उसे सहज सरलता के साथ दूर कर देता है ।

उपयुक्त आहार-विहार का स्वास्थ्य रक्षा से अविच्छिन्न सम्बन्ध है । आहार तो घर के चौके में ही मिलता है । भोजनालय प्रकारान्तर से एक चिरस्थायी अस्पताल है । वहाँ से हर दिन 'टॉनिक' भी पिया जा सकता है और विष मिक्चर भी, भोजन निश्चित रूप से औषधि है । उससे क्षुधा ही शान्ति नहीं होती, रसना की तृप्ति ही नहीं होती वरन् बलिष्ठता और दीर्घजीवन की आधारशिला भी रखी जा सकती है । आहार में रोगों से बचाने और हटाने के दोनों गुण विद्यमान हैं । यदि घर का रसोईघर अमृत परोसा जाय-उसे खिलाने की विधि व्यवस्था में चिकित्सक जैसा अनुशासन बरता जाय तो कोई कारण नहीं कि अस्पताल का चक्कर काटने और डॉक्टर का दरवाजा खटखटाने की आवश्यकता पड़े । अन्न ही मन है । मनों में जो विक्षोभ पाया जाता है उसका बहुत बड़ा कारण आहार में घुसी हुई अवांछनीयता का ही है । भोजन को औषधि रूप में पाने की व्यवस्था घर में बन सकती है, बाजार में नहीं । होटल स्वाद तो देते हैं, पर प्रकारान्तर से उनमें वे प्रदूषण भी घुले रहते हैं जिनके कारण शारीरिक ही नहीं मानसिक स्वास्थ्य भी लड़खड़ाता, गड़बड़ाता देखा गया है ।

आहार पाक विद्या नहीं है । न उसकी गरिमा स्वादिष्टता पर टिकी हुई है । षटरस व्यंजन और छप्पन भोग आहार की विशिष्टता का परिचय नहीं देते । उसके साथ चिकित्सक जैसी सूक्ष्म दृष्टि जुड़ी रहनी आवश्यक है । किसके लिए क्या चाहिए ? इसका निर्णय भोजनालय की अध्यक्षा ही कर सकती है । उसे अस्पताल की बड़ी नर्स और बड़ी डॉक्टर के समतुल्य समझा जाना चाहिए । समूचे परिवार की स्वास्थ्य रक्षा का परोक्ष उत्तरदायित्व उसी के कन्धों पर रहता है । प्रश्न एक ही है कि उसका निर्वाह कर सकने की क्षमता का विकास हुआ है या

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

नहीं । यह कार्य होम साइन्स की पाक विद्या की पुस्तकें पढ़ने से नहीं वरन् सुसंस्कारी परिवारों में पाये जाने वाले सद्गुणों से ही विकसित होता है ।

मन की खीज बढ़ते-बढ़ते क्रोधी प्रकृति भी बन सकती है, पर उसका आरम्भ पारिवारिक छेड़छाड़ से ही होता है । पिल्ले लड़ाने वाले अन्ततः उसे कटखना कुत्ता ही बनाकर छोड़ते हैं, घर में हर घड़ी होने वाली चख-चख उसके सदस्यों में मनोमालिन्य से लेकर विद्वेष तक के बीजारोपण करती है और वे बढ़ने पर विष वल्लरी जैसे दुष्प्रवृत्तियों, दुरभिसंधियों में विकसित होते हैं । यदि पारिवारिक वातावरण में, आदि से अन्त तक शालीनता छाई रहे तो उसमें पलने वाले हर अंकुर, हर पौधे और हर पेड़ को सुविकसित एवं सुसंस्कृत बनने का अवसर मिलता रहेगा । यह प्रक्रिया जहाँ पनपेगी वहाँ दुर्भाग्य से बचना और सौभाग्य को उपलब्ध करना कितनी बड़ी मात्रा में सम्भव हो सकेगा ? इसकी आज तो कल्पना ही की जा सकती है । प्रमाण, उदाहरण ढूँढ़ने हों तो उस अतीत का स्मरण करना पड़ेगा, जिसमें घर में स्वर्ग की आत्मा निवास करती थी । या फिर उस भविष्य की कल्पना करनी पड़ेगी जिसे नवसृजन की महत्वपूर्ण प्रयोगशाला परिवार निर्माण को फलते-फूलते देखा जा सके ।

परिवारों में कन्याएँ वधू बनकर दूसरे घर में जाती हैं । यदि वे अपने साथ सुसंस्कारिता की दहेज सम्पदा लेकर जाया करें तो निश्चय ही उस नये घर में प्रत्यक्ष गृहलक्ष्मी की भूमिका निभा सकती हैं । अपनी नई उपस्थिति से किसी घर में नये आनन्द, उल्लास का अरुणोदय प्रकट कर सकती हैं । इस प्रकार विवाहों के साथ पुरातन में नवीनता का नीरस ढर्रे में नवजीवन का संचार होता रह सकता है । इस प्रयोजन की पूर्ति सौन्दर्य शिक्षा या पैसा लेकर जाने वाली वधू नहीं कर सकती, उसके लिए सद्गुणों से सम्पन्न ऐसी महिला चाहिए जिसे देव पुत्री कहा जा सके । जहाँ उनका पदार्पण होगा वहाँ का हर निवासी अपने सौभाग्य को सराहेगा । कहना न होगा कि ऐसी देव कन्याएँ आसमान से नहीं उतरतीं वरन् सुसंस्कृत परिवारों में ढाली और खरादी जाती हैं ।

गरीबी दूर करने के लिए अनेकानेक छोटी-बड़ी योजनाओं की इन दिनों भरमार है । इसी में एक और अध्याय यह जुड़ना चाहिए कि परिवार का हर समर्थ व्यक्ति बचे हुए समय में कुछ उपार्जन करने की बात सोचे और वैसा कुछ करते समय अपने को हीन नहीं वरन् स्वावलम्बन, स्वाभिमान की दिशा में बढ़ने वाला अग्रणी माने तो इतने भर से ही स्थिति उलट सकती है । गृह उद्योगों के लिए हर जगह गुंजाइश है, हर परिस्थिति में किसी न किसी रूप में चल सकते हैं । यह उत्साह उभरे और प्रचलन बने तो समझना चाहिए कि प्रायः दूनी उपार्जन शक्ति का नया उदय होगा और गरीबी को आसानी से खदेड़ा जा सकेगा । जापान जैसा देश इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है । वहाँ हर घर में छोटे-छोटे कुटीर उद्योगों का प्रचलन है । बचे हुए समय का उपयोग महिलाएँ, बच्चे तथा वयोवृद्ध उसमें मनोरंजन की तरह प्रयुक्त करते हैं और खेल-खेल में ही उतना कमा लेते हैं जितना कि गृहस्वामी दुकान, दफ्तर से कमा कर लाते हैं ।

इस प्रचलन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि हर परिवार अपने आप में उद्योगशाला बना रहता है । उसका आर्थिक स्वावलम्बन कभी नहीं छिनता । कमाऊ के मरने पर पूरा परिवार अनाथालय बन जाना, यह आज की अकर्मण्यता का अभिशाप है । परिवारों में हो सकने वाला उपार्जन यदि उपेक्षित रहेगा तो स्वभावतः खाली समय में घर के लोग कलह खडा करने, दुरभिसंधियाँ रचना और दुर्व्यसनों में उसे लगावेंगे । इस प्रकार पतन का गर्त गहरा ही होता चला जायगा । गरीबी को यदि वस्तुतः हटाना हो तो उसके लिए बिजली, पानी, व्यवसाय उत्पादन आदि का प्रबन्ध तो करना ही होगा, पर साथ ही यह भी ध्यान रखना होगा कि आधी श्रम शक्ति परिवारों के दायरे में नष्ट होती रहती है । इसे इसी प्रकार बर्बाद होने दिया तो ऊपरी उपचारों से कुछ बनेगा नहीं, गृह उद्योगों से धन ही नहीं बढ़ता कौशल भी विकसित होता है जो पैसे से भी कहीं अधिक मूल्यवान है । गृह उद्योगों में बिक्री का सामान न बन सके तो भी जिन कार्यों के लिए पैसा बाहर देना पड़ता है उन्हें तो श्रम कौशल से बचाने का प्रबन्ध हो ही सकता है । इस प्रकार उपार्जन न सही बचत पक्ष भी परिवार की, देश की सम्पन्नता बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो सकता है ।

निरक्षरता दूर करने के लिए सरकारी प्रयासों को सराहा भी जाना चाहिए और बढाया भी । किन्तु स्मरण रहे शिक्षित लोग अपने घर या पड़ौस को शिक्षित बनाने के लिए जब तक प्रयत्नशील न होंगे तब तक इतनी बड़ी समस्या का हल मात्र सरकारी साधनों से हो नहीं सकेगा । शिक्षितों को राष्ट्र का शिक्षा ऋण चुकाना चाहिए । इस भावना को उभारा जाय और जो उससे बचे उन पर दोषारोपण करने से लेकर गुदगुदाने, झकझोरने तक का दबाव डाला जाय तो साक्षरता निवारण के लिए लाखों अध्यापकों और अरबों रुपयों की जो आवश्यकता अनुभव की जा रही है, उसकी तनिक भी आवश्यकता न पड़ेगी । हर घर में, हर मुहल्ले में, सुविधा के समय चलने वाली प्रौढ़-पाठशालाएँ स्थापित और गतिशील हो सकती हैं । शिक्षित महिलाएँ तीसरे प्रहर के अवकाश वाले समय को इस पुण्य-प्रयोजन में लगा सकती हैं । बड़े क्लास के विद्यार्थी छोटे क्लास वालों को पढ़ाया करें । अध्यापक इसी नीति को अपनाकर छात्रों की सेवा-सहायता किया करें तो शिक्षा की कमी से जो पिछड़ापन सर्वत्र छाया दीखता है उसका कहीं पता भी न चले ।

अध्यापक वर्ग वेतन बढ़ाने की माँग ही न करता रहे वरन् अपने विशिष्ट और पवित्र कर्तव्य पर भी ध्यान दे । स्कूल में पाँच घण्टे पढ़ाने के अतिरिक्त जो उन्नीस घण्टे का समय बचता है, उसमें से दो-दो घण्टे निजी रूप से

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

छात्रों को पढ़ाने में लगाये और शिक्षा-पद्धति में जो कमी है उसे पूरा करे । यदि ऐसा उत्साह जग पड़े तो शिक्षा का अधूरापन जिसे संस्कार भले ही पूरा न कर सके पर अध्यापक वर्ग अपने निजी पुरुषार्थ से सहज ही पूरा कर सकता है । वेतन वृद्धि की माँग की तरह ही यदि कर्तव्य वृद्धि और उत्तरदायित्व वृद्धि के लिए भी शिक्षिकों में उत्साह जाग पड़े, शिक्षित स्वयंसेवी भावना से इस दिशा में कुछ करने चल पड़े तो सरकार का मुँह तके बिना भी शिक्षा के अभाव एवं अधूरेपन की समस्या का समाधान हो सकता है ।

गरीबी, निरक्षरता और बीमारी अपने देश की पिछड़े वर्ग की यही तीन प्रमुख समस्याएँ हैं । उनके समाधान का उत्तरदायित्व सरकार पर, समर्थों पर तो है ही, पर यह भुला नहीं देना चाहिए कि एक और भी समर्थ पक्ष है, जिसे जगा देने पर इन तीनों से ही जनशक्ति के सहारे अत्यन्त सरलता और सफलता के साथ बढ़ा जा सकता है । ऊपर इसी समाधान के सन्दर्भ में कहा गया है कि परिवार में दबी प्रचण्ड शक्ति को यदि बर्बादी से बचाया और सृजन में लगाया जा सके तो यह उपेक्षित पक्ष भी अपनी प्रखरता और समर्थता का इतना बड़ा परिचय दे सकता है कि समाधान ढूँढ़ने वालों को आश्चर्यचकित रह जाना पड़े । बड़े लोगों को मनाने और बड़े साधन जुटाने की प्रतीक्षा करना, 'नौ मन तेल होने पर राधा का नाच ठनने' जैसा है । चट्टानें तोड़ने की अपेक्षा दूसरी मोड़दार पगडन्डी ढूँढ़ लेना और अपने पैरों चल पड़ना अधिक सरल और अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण है । परिवारों के रूप में विकेन्द्रित शक्ति केन्द्रों को यदि गुदगुदाया, सम्भाला सँजोया जा सकता है तो उन छोटे खेत, तालाबों से भी प्रचुर सम्पदा का उपार्जन हो सकता है ।

मशीनों का आश्रय लेकर उपलब्धियों का उपार्जन करना और सुविधा साधन बढ़ाना अच्छी बात है, पर जब तक उतनी बड़ी व्यवस्था नहीं बन पाती तब तक साठ करोड़ मनुष्यों में से समर्थ के दो-दो हाथों का उपयोग करना क्या बुरा है ? इनमें से आधे हाथ ही आधा-अधूरा काम करते हैं । मस्तिष्कों के मनोयोग का तो इतना भी उपयोग नहीं बन पड़ता । यदि उस दिशा में बरती जाने वाली उपेक्षा को ही हटाया जा सके तो इतनी बड़ी सृजन शक्ति का उद्भव हो सकता है, जिसके सहारे व्यक्ति और समाज की भौतिक ही नहीं आत्मिक समस्याओं का समाधान भी सरलतापूर्वक सम्भव नहीं हो सकता है ।

धर्मधारणा और आदर्शों की प्रेरणा के लिए संत मनीषियों के प्रवचन सत्संग भी सराहे ही जाते रहेंगे पर सभी को सर्वदा तो उपलब्ध हो नहीं सकते । इस आत्मिक क्षुधा को मिटाने के लिए परिवार में निरन्तर चलने वाली कथा-कहानियों वाली शैली ही कारगर सिद्ध हो सकती है । आस्था क्षेत्र में ज्ञान गंगा की आस्तिकता, आध्यात्मिकता और धार्मिकता की त्रिवेणी संगम की प्रभावी भूमिका रहनी चाहिए, पर इसके लिए किसी चमत्कारी भागीरथी की प्रतीक्षा की जाय ? क्यों न अपने परिवार देवता की मनुहार करने और मनौती मनाने में जुटा जाय ? दीपकों का समुदाय जब दीपावली की रात्रि को शरद पूर्णिमा से भी अधिक गौरव प्रदान कर सकता है तो कोई कारण नहीं कि परिवारों में ज्योति जागरण का महा अनुष्ठान अभीष्ट ऋद्धि-सिद्धियों का वरदान न दे सके । लक्ष्मी को पूजते मुद्दतें बीत गईं अब गृहलक्ष्मी की प्रतिष्ठा और समर्थता की अर्चना करके देखा जाय ।

क्रान्तिकारी कार्लमार्क्सों का उदय होने में देर लगती दीखे तो घरेलू प्रज्ञा पुस्तकालयों के सहारे विचार क्रान्ति की बात सोची जा सकती है । अनैतिकताओं और अन्ध-परम्पराओं से जूझने में यदि मूर्द्धन्य प्रतिभाओं ने हार मानी है, तो उन्हें परास्त करने के लिए प्रबुद्ध परिवारों के छापामार दस्ते खड़े किये जायें । यह नई रणनीति अपनाने भर की देर है विजय श्री के समीप पहुँचने के लिए इस नये प्रयोग से नये आधार और नये आयाम बन सकते हैं ।

यदि आदर्शवादी जागरूकता की चण्डी देव परिवारों के सरकारी प्रयत्नों से प्रकट हो सके तो यह कहने की आवश्यकता न पड़ेगी कि अनाचार का वृत्तासुर अनियन्त्रित हो रहा है । प्रजातन्त्री व्यवस्था में वोट से राज्य पलटते हैं यह वोट कहाँ रहते हैं ? इसे तलाश करने के लिए दूर जाने की आवश्यकता नहीं, वे परिवारों में ही विराजमान विद्यमान मिल सकते हैं । विनाश से उबरने और विकास को वरण करने के लिए अन्य आधार भी उपयोगी हैं, पर परिवार संस्था के अन्तराल में छिपी अनन्त सामर्थ्य को उभारना और उसका प्रयोग करना सबसे अधिक आवश्यक है और सबसे महत्वपूर्ण है ।

व्यक्ति, परिवार और समाज निर्माण के लिये त्रिविधि आयोजन

महिला शाखाओं का एकमात्र कार्य यह है कि परिवार निर्माण योजना द्वारा निर्धारित कार्यक्रमों को गतिशील करना और उसका नेतृत्व कर सकने योग्य समर्थ महिलाओं की संख्या बढ़ाना । आधी जनसंख्या महिलाओं की है और परिवार संस्था से शत-प्रतिशत मनुष्यों का सम्बन्ध है । पूरी अथवा आधी मनुष्य जाति के वर्तमान और भविष्य का जिससे सीधा सम्बन्ध हो, वह अभियान संसार का भाग्य विधायक ही समझा जा सकता है । इतने बड़े काम को हाथ में लेने वाले, इतना बड़ा उत्तरदायित्व सँभालने वाले अभियान को हर दृष्टि से महान ही कहा जा सकता है । युग परिवर्तन की सम्भावना सच्चे अर्थों में इसी पर निर्भर है । जो इसे अग्रगामी बनाने के लिए कार्यक्षेत्र में उतरते हैं उनकी दूरदर्शिता और उदारता को जितना सराहा जाय उतना ही कम है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

इस आन्दोलन के लिए बड़े सभा-सम्मेलनों की या बहुत बड़े प्रचार तन्त्र की आवश्यकता नहीं है । कुटीर उद्योग के स्तर पर ही इसे घर-घर पहुँचाने और आँगन-आँगन में उगाने की आवश्यकता है । इसके लिए प्रधान उपाय उपचार हैं-परिवार गोष्ठियों की व्यवस्था,-हर्षोत्सवों के रूप में नियोजित भावभरे आयोजन इस प्रयोजन के लिए सबसे अधिक उपयुक्त हो सकते हैं । घर परिवार की, पड़ौस, रिश्ते की, मित्र मण्डली इकट्ठी होकर किसी परम्परा को अपनाने एवं गतिशील करने में अधिक सफल हो सकती है । अपने समझे जाने वाले लोग कभी भी भावभरी मन:स्थिति में होंगे और किसी उपयोगी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे तो उनके फलित होने की सम्भावना स्वभावत: अधिक रहेगी । परिवार गोष्ठियों को प्रस्तुत उद्देश्य की पूर्ति के लिए अत्यधिक उपयोगी माना जा सकता है ।

भारतीय संस्कृति में इस प्रयोजन के लिए संस्कारों और पर्वों के रूप में गृह उत्सवों की प्रथा प्रचलित थी और उस माध्यम से सभी को उपयोगी प्रेरणाएँ मिलती थीं । सम्मिलित होने वाले उन धर्मकृत्यों को अभीष्ट प्रगति के लिए गुरुजनों द्वारा अपनी परिस्थितियों के अनुरूप मार्ग-दर्शन प्राप्त करते थे । यों लकीर पीटने की तरह उन प्रथाओं की चिह्न पूजा तो अभी भी होती है, पर उनमें अनुप्राणित करने की जो प्रखरता थी, वह समाप्त हो गई । उसे पुनर्जीवित करने का ठीक यही समय है । देवालय तो पहले से ही बना है उसका जीर्णोद्धार हम सब मिल-जुलकर कर लें तो भी यह कम गर्व गौरव की बात नहीं है ।

भारतीय धर्मानुयायी को सोलह बार या दस बार सुसंस्कारित किया जाता है और इसके लिए जन्म से लेकर मरणपर्यन्त बार-बार ऐसे आयोजन किये जाते हैं जिनमें देवाह्वन, धर्मानुष्ठान एवं उपयोगी मार्गदर्शन का समुचित समावेश है । (१) गर्भावस्था में पुंसवन, (२) जन्म के उपरान्त नामकरण, (३) छह महीने का होने पर अन्न प्राशन, (४) एक वर्ष की आयु में मुंडन (५) तीन वर्ष का होने पर विद्यारम्भ, (६) बारह वर्ष का यज्ञोपवीत, (७) बीस-पच्चीस के बीच विवाह, (८) चालीस के उपरान्त वानप्रस्थ, (९) पैंसठ के बाद संन्यास जीवित स्थिति में यह नौ संस्कार ही प्रधान हैं । दसवाँ अन्त्येष्टि जीवन समाप्त होने के उपरान्त किया जाता है । यों संस्कारों की संख्या सोलह बताई गई है और उन सबके विधि-विधान भी हैं, पर वर्तमान व्यस्तता और महँगाई की परिस्थिति में यह नौ बन पड़ें तो भी कम सन्तोष की बात नहीं है ।

उपरोक्त नौ में से पाँच ऐसे हैं जो छोटी धर्म गोष्ठियों के रूप में कुशल महिलाओं के नेतृत्व में परस्पर मिल-जुलकर ही सम्पन्न होते रह सकते हैं । (१) पुंसवन, (२) नामकरण, (३)अन्नप्राशन, (४) मुण्डन, (५) विद्यारम्भ के धर्मानुष्ठानों में बच्चों के प्रति शुभकामना प्रकट करने तथा उनके अस्तित्व अवतरण पर आनन्द मनाने का अवसर मिलता है । इसके साथ-साथ यह पूरी-पूरी गुंजाइश है कि उन अवसरों से तालमेल बिठाते हुए हर परिवार की स्थिति के अनुरूप समस्याओं के समाधान एवं प्रगति- प्रोत्साहन के लिए उपयोगी मार्गदर्शन प्रस्तुत किया जा सके । जिनके नेतृत्व में यह आयोजन होते वे अपनी कुशलता एवं दूरदर्शिता के आधार पर इन आयोजनों के माध्यम से उपयोगी सुधार परिवर्तन की दृष्टि से बहुत कुछ कर सकती हैं । रचनात्मक उत्साह पैदा कर सकती हैं । प्रेरणाप्रद वातावरण बना सकती हैं । इनमें से हर अवसर को उसमें क्रियान्वित किये जाने वाले कर्मकाण्डों की, श्लोक मन्त्रों की, प्रचलन कारणों की ऐसी विवेचना कर सकती हैं जिसमें उस परिवार की विशेष परिस्थिति के अनुरूप आलोक एवं परामर्श समन्वित हो ।

एक-दूसरे के हर्ष शोक में सम्मिलित होने का प्रचलन मानवी सामाजिकता का उपयोगी चिह्न है । जिन परिवारों में महिला शाखाओं की संस्था है, उनमें इस प्रकार के संस्कार आयोजन समय-समय पर सरलतापूर्वक सम्पन्न होते रह सकते हैं । निर्धारित तिथि पर मुहल्ले-पड़ौस में आमन्त्रण दिया जाय । तीसरे प्रहर का समय रखा जाय । (१) २४ बार सामूहिक गायत्री पाठ, (२) गायत्री हवन, (३) पूर्णाहुति से पूर्व संस्कार का विशेष कृत्य, (४) भजन कीर्तन, (५) प्रवचन । इन पाँच प्रकरणों में सभी संस्कार प्राय: एक जैसी क्रिया-पद्धति से सम्पन्न होते रह सकते हैं । थोड़े से विशेष कृत्य ही हर संस्कार में भिन्न होते हैं । पूर्णाहुति से पूर्व उन्हें करा देने की छोटी-छोटी विधियाँ भी वे महिलाएँ आसानी से करा सकती हैं जो हवन कराने में प्रवीण हैं ।

संस्कार परम्परा को घर-घर में प्रचलित, पुनर्जीवित करना है । इसलिए उनका स्वरूप इतना सादा और सस्ता होना चाहिए कि निर्धन स्तर के लोगों को भी मन मसोस कर न बैठना पड़े । गरीबी और अमीरी का प्रदर्शन करने वाली कोई भिन्नता इन आयोजनों में न रहने पाये इसलिए उन्हें न तो आडम्बरपूर्ण बनना चाहिए और न खर्चीला । शाखा की ओर से ही सारी व्यवस्था की जाय । हवन सामग्री, समिधा, अन्यान्य उपचार उपकरण शाखा की ओर से भेजे जायें । स्वागत के लिए भुनी सौंफ का प्रबन्ध भी शाखा ही करे । एक छटाँक शुद्ध घी का प्रबन्ध भार ही उन पर डाला जाय । जिनके यहाँ यह आयोजन हो आतिथ्य में पानी के अतिरिक्त और किसी के यहाँ कुछ भी स्वीकार न किया जायगा । इस प्रकार आयोजन कराने वाले पर घी के अतिरिक्त कुछ भार न पड़ेगा । अन्य खर्च एवं प्रबन्ध शाखा की ओर से किया जायगा । उसके बदले में शाखा को कोई दान प्राप्त होता हो तो उसमें न आपत्ति की जायगी और न माँग रखी जायगी । इस प्रकार यह आयोजन सदस्यों के घरों पर वर्ष में एकाध बार तो हो ही जाया करेंगे । बड़े परिवारों में तो कई-कई बार भी उनकी बारी आ सकती है । ऐसे अवसर पर कई बच्चों के संस्कार इकट्ठे एक ही तिथि में भी किये जा सकते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भारतीय समाज में अनेकानेक पर्व त्यौहार हैं । कहते हैं कि उनसे वर्ष का कोई दिन खाली नहीं रखा गया । इन सबका मनाया जाना तो कठिन है पर इनमें से कुछ बहु प्रचलितों को तो प्रेरणाप्रद वातावरण उत्पन्न करने की दृष्टि से, परिष्कृत ढंग से मनाया ही जा सकता है । (१) दिवाली, (२) गीता जयन्ती, (३) बसन्त पंचमी, (४) होली, (५) रामनवमी, (६) गायत्री जयन्ती, (७) गुरु पूर्णिमा, (८) श्रवणी, (९) कृष्ण जन्माष्टमी, (१०) विजय दशमी । ये पर्व आमतौर से सर्वत्र प्रचलित हैं । प्रान्त विशेष में शिवरात्रि, गणेश चतुर्थी, मकर संक्रान्ति, वैसाखी आदि को भी विशेष महत्व मिला हुआ है । स्थानीय मान्यताओं के अनुरूप इनमें से जहाँ जो विशेष उत्साह से मनाये जाते हों उनमें काट-छाँट करके ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि औसतन हर महीने एक पर्व मन जाया करे । साप्ताहिक सत्संग में मात्र महिलाओं की उपस्थिति होती है । पर्व आयोजनों में स्त्री-पुरुष सभी मिल-जुलकर सम्मिलित हुआ करें । मनाने का ढंग प्राय: वही है जो साप्ताहिक सत्संगों में रखा गया है । (१) सामूहिक सस्वर, संगीत सहित गायत्री पाठ २४ बार, (२) गायत्री हवन,(३) भजन-कीर्तन, (४) प्रवचन । संस्कारों में पूर्णाहुति से कुछ पूर्व विशेष कृत्य किये जाते हैं । पर्वों में देव पूजन के समय ही पर्व की अधिष्ठात्री देव सत्ता की सामूहिक पूजा अर्चा होती है । प्रवचनों का विषय बदलता रहता है । संस्कारों के समय परिवार समस्याओं में से प्रत्येक पर प्रकाश डाला जा सकता है । इसी प्रकार सामाजिक समस्याओं के समाधान एवं सामूहिक प्रगति के उपायों का सुविस्तृत और सामयिक विवेचन पर्वों के इतिहासों एवं प्रयोजनों के साथ तालमेल बिठाते हुए भली प्रकार किया जा सकता है । संस्कार एवं पर्व पद्धति पुस्तक में यह सभी कर्मकाण्ड पहले से ही प्रकाशित हो चुके हैं । इस सन्दर्भ में छपी हुई छोटी-छोटी पुस्तकों में विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला जा चुका है । पर्व और संस्कारों के पीछे छिपे उद्देश्यों के सम्बन्ध में उन पद्धतियों में ऐसे श्लोक भी दिये गये हैं जो उनके साथ जुड़े हुए उद्देश्य एवं कर्तव्यों पर प्रकाश डालते हैं । इन आयोजनों के माध्यम से युग निर्माण योजना के दो उद्देश्यों का जनमानस में उतारने से उत्साहवर्द्धक सफलता मिल सकती है । धर्मश्रद्धा एवं प्रथा परम्पराओं का समन्वय रहने से इन आयोजनों में ऐसी भाव-सम्वेदना जुड़ जाती है जो प्रस्तुत प्रसंग को हृदयंगम कराने में असाधारण रूप से समर्थ सिद्ध होती है । परिवार निर्माण और समाज निर्माण के सम्बन्ध में इन आयोजनों के माध्यम से लोकमानस को प्रशिक्षित करने में अन्य उपायों की तुलना में अधिक सरलता रहती है ।

तीसरा प्रयोजन है व्यक्ति निर्माण । इसके लिए हर मनुष्य को आत्म-निरीक्षण, आत्म-सुधार, आत्म-निर्माण एवं आत्म विकास के लिए कुछ महत्वपूर्ण सोचने और करने के लिए स्वयं साहस जुटाना चाहिए । अपनी मन:स्थिति और परिस्थितियों पर गम्भीर दृष्टिपात करके अवगति के कारणों को ढूँढ़ निकालना और उन्हें निरस्त करने के लिए आत्म-सुधार के लिए उपाय सोचना एवं तत्पर होना मनन कहलाता है । मनन में आत्मशोधन होता है और वे छिद्र बन्द होते हैं, जो पिछड़ेपन के लिए, दुर्गति के लिए प्रधान रूप से उत्तरदायी हैं । मनन का दूसरा साथी है चिन्तन । चिन्तन का अर्थ है भावी प्रगति के सम्बन्ध में विचार करना, योजना बनाना और उसके सम्बन्ध में जिन विशेषताओं का सम्पादन आवश्यक है उनका उपार्जन करने के लिए सुनियोजित रीति से कटिबद्ध होना । मनन में भूत पर दृष्टि रखते हुए और चिन्तन में भविष्य पर विचार करते हुए वर्तमान का निर्धारण करना उद्देश्य है । एक में निराकरण है, दो में सम्बर्द्धन । दोनों को मिलाकर ही एक पूरी बात बनती है । प्रगति की आवश्यकता अनुभव करने वाले हर व्यक्ति को आत्मपरिष्कार के लिए, व्यक्तित्व को प्रखर बनाने के लिए उपरोक्त छहों उपायों का अवलम्ब करना चाहिए । आत्म-निरीक्षण, आत्म सुधार, आत्म-निर्माण और आत्म-विकास के लिए मनन, चिन्तन की प्रक्रिया जारी रहनी चाहिए और इस आत्म-चिन्तन के लिए गुरुवार को प्रात:काल का समय विशेष रूप से निर्धारित करना चाहिए । उस दिन सभी नैष्ठिक साधकों को दो घण्टे का मौन, अस्वाद व्रत एवं ब्रह्मचर्य का विविधि व्रत पालन करना पड़ता है । सर्वसाधारण को इस आत्म-चिन्तन के लिए गुरुवार का अथवा कोई अन्य सुविधा का दिन निर्धारित करके दो घण्टे सर्वथा एकान्त में बैठकर अपने आप से बात करनी चाहिए, अपने ही द्वारा अपने को सुधारा जाय और बढ़ाया जा सकता है । आत्मनिर्माण की यह प्रक्रिया हर दिन भी प्रात: उठते और रात को सोते समय आत्मबोध, तत्वबोध साधना के अन्तर्गत जारी रखी जा सकती है । इतना न बन पड़े तो कम से कम सप्ताह में एक दिन तो आत्मसाधना का यह उपाय-उपचार अपनाया ही जाना चाहिए ।

शाखाओं का एक महत्वपूर्ण कार्य यह है कि वह संगठन खड़े करें, सदस्यों की संख्या बढ़ायें, साप्ताहिक आयोजनों को प्रेरणाप्रद बनायें तथा संस्कार, पर्व और जन्म दिवसोत्सवों का सुनियोजित कार्यक्रम बनायें और उन्हें अधिकाधिक प्रभावी सफल बनाने के लिए तत्परता पूर्वक प्रयत्न करें । यह प्रयत्नशीलता जहाँ जितने उत्साह से चलेगी वहाँ नवनिर्माण की आधारशिला उतनी ही सुदृढ़ होती चलेगी ।

पथभ्रष्ट परिवार कैसे सुधरें ?

प्रचलित परिवारों का स्वरूप तो बड़ा भौंड़ा, बेतुका, अदूरदर्शितापूर्ण और उथली मान्यताओं से ग्रसित है । यही कारण है कि जो उसे जितना बढ़ाते और उसके लिए सिद्धान्तों का परित्याग कर कोल्हू के बैल की तरह मरते-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

खपते हैं, वे मात्र हर प्रकार की हानियाँ ही हानियाँ उठाते हैं । परिवार की उच्चस्तरीय संरचना से जो लाभ और श्रेय मिलना चाहिए उसकी उन्हें झलक-झाँकी भी नहीं मिल पाती । गले का वह पत्थर उन्हें त्रास ही देता रहता है । नरक जैसी विसंगतियों के बीच रहने वाले निरन्तर खीजते और सोचते रहते हैं । उससे पीछा छुड़ाने की जो कल्पनायें करते रहते हैं, उन्हीं की वैरागी होने, घर छोड़ने, भजन-भक्ति करने के लिये किसी दूर क्षेत्र में चले जाने की योजनायें बनती रहती हैं । वैसा कर तो कोई बिरले ही पाते हैं, पर कुछ दिन के लिए तीर्थयात्रा आदि पर निकलकर थोड़ा मन हलका करने की चिह्न पूजा तो कर ही लेते हैं । अमुक कार्यों से निपट लेने पर वही मौत के दिन पूरे करने का मानस भी बनाते हैं । किसी साधु मण्डली के आश्रम में जगह बनाते या खोजते भी देखे जाते हैं, पर वैसा बन नहीं पाता । व्यामोह से ग्रसित रहने की दशा में अभ्यास तो उन्हीं परिस्थितियों में मरते-खपते रहने के लिये वापस करता रहता है और असमंजस में महायात्रा का दिन आ पहुँचता है । मरने के उपरान्त भी सम्भवत: विपन्न परिवार में आयु बिताने वाले भूत-प्रेत ही बनते होंगे । खीज और असमंजस भरा जीवन जीने के उपरान्त कोई मरणोपरान्त शान्ति और सद्गति पा भी नहीं सकता ।

प्रस्तुत परिवारों का श्रीगणेश विकृत प्रेरणाओं के आधार पर ही होता है और उसके साथ तालमेल बिठाये रहने में भी हेय स्तर की विचारणा ही चरितार्थ होती रहती है । परिवार का संकीर्ण अर्थ है-विवाह करके संतान उत्पन्न करना और उसी छोटे समुदाय को मात्र अपना मानना । इस प्रकार संकीर्ण स्वार्थपरता के पोषक सहायक इस विवाह के नाम पर और भी साथ लग लेते हैं । बन्धन और भी अधिक जकड़ जाते हैं । वहन करने के लिये बोझ और भी अधिक लद पड़ता है ।

प्रचलित प्रथा में एक नया परिवार विवाह के साथ आरम्भ होता है । जिसका मोटा स्वरूप है-कामुकता जैसी पशु-प्रवृत्ति के लिये एक घोषित आधार मिलना । वर-कन्या की आपसी पसन्दगी माँसलता के आधार पर होती है । नख-शिख की संरचना पर आधारित आकर्षण भी इसी प्रवृत्ति का एक आधार रहता है । गुण, कर्म, स्वभाव, चिन्तन, चरित्र, आस्था, लक्ष्य, साकार आदि देखने की किसी को फुरसत ही नहीं होती । उत्तेजना देने वाला आकर्षण ही पसंदगी का प्रमुख कारण बनता है । देन-दहेज का मोल-भाव तो इस पसंदगी के बाद आरम्भ होता है । विवाह बन्धन में बँधने वाले संचित मनोरथों की पूर्ति इसमें मानते हैं कि उनका यौनाचार अतिशय उत्तेजनापूर्ण स्थिति में चल पड़े । निरंकुशता पर कोई प्रतिबन्ध न लगे ।

इस मन:स्थिति में वे परिवार संस्था के सदस्य बनकर दो बैलों की जोड़ी की तरह उस कृषि कार्य में कहीं लग पाते हैं, जिसमें एक संगठन को उस स्तर का बनाना लक्ष्य रहता है, जिसमें उस परिकर के सभी छोटे-बड़े सदस्यों में मोद मनाने, स्नेह-सहयोग के साथ रहने में अधिकाधिक उदारता अपनाने की आवश्यकता पड़ती है । परिवार एक सुविस्तृत कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों का निर्वाह क्षेत्र बनकर सामने आता है । इसी के निर्वाह पर किसी दम्पत्ति युगल को विवाह बन्धन में बँधने का श्रेय मिलता है । इसके लिये आरम्भ के दिन से ही उन्हें एक-दूसरे का भार वहन करने की कष्टसाध्य एवं जिम्मेदारियों से लदी हुई परिस्थितियों से जूझना पड़ता है । यह भावना यदि जग न सके तो विवाह होने के उपरान्त जल्दी से जल्दी अलग होने, नया घर बसाने, प्रस्तुत कुटुम्ब की जिम्मेदारियों से बचने और नवयौवन से अधिक कमाने की स्थिति का पूरा लाभ उन दो को ही मिल सके, जो कमाया जाय उसे मनचाहे गुलछर्रे उड़ाने की छूट मिल सके, यही मनोवृत्ति बनी रहती है । देखा गया है कि नौकरी लग जाने पर नयी उम्र के लड़के कहीं अन्यत्र बदली कराने का ताना-बाना बुनते हैं ताकि कमाई को खुले हाथ से खर्च करने की सुविधा रहे । परिवार की चिन्ताओं, समस्याओं और जिम्मेदारियों को नकार देने पर अधिक सुविधा का लाभ मिल सके, आरम्भ में यही अच्छा लगता है । बाहर जाने का अवसर जिन्हें नहीं मिलता है, वे लड़-झगड़ कर बँटवारा करते और अलग चूल्हा जमाने की कोशिश करते हैं । दबावों और अभावों के बीच यदि साथ-साथ रहना भी पड़े तो फिर अन्यमनस्क मन से खिंचने वाली गाड़ी टूटती, चरमराती और बुरी स्थिति में ही ज्यों की त्यों खिंचती रहती है । साथ रहने पर भी मुसाफिरखाने में एक साथ पड़े यात्रियों की तरह स्थिति बनी रहती है । धर्मशालाओं और सरायों में भी किसी प्रकार लोग समय काटते हैं । जेलों में कैदी और बाड़े में बकरी-बकरे भी साथ-साथ रहने की विवशता को सहन करते हैं । अनास्था की मन:स्थिति से सदस्यों के बीच परिवार में भी अपने-अपने स्वार्थों को लेकर ऐसी ही खींचतान होती रहती है । संयुक्त शक्ति का अनुभव न होने पर प्रगति तो क्या होनी है ? मनोमालिन्य और कलह ही अधिकांश शक्ति को बर्बाद कर देता है ।

दूरदर्शिता के अभाव में विवाह के उपरान्त सन्तानोत्पादन का सिलसिला आरम्भ होने में देर नहीं लगती । यह तो कोई सोचता ही नहीं कि नवागन्तुकों को संस्कार भी देने हैं, उन्हें सुयोग्य भी बनाना है । इसके लिये अभिभावकों में से प्रत्येक का जीवनयापन आदर्शों से भरापूरा होना आवश्यक है । परिवार का वातावरण शालीनता से भरापूरा होने पर ही उस खदान से नर-रत्न उपजने की सम्भावना बनती है । ऐसा न हो तो बच्चे थोड़ा बड़े होते-होते अपनी निकृष्टता का परिचय देने लगते हैं । अभिभावकों के लिये यमदूतों जैसे त्रास उत्पन्न करते हैं । इसमें दोष बालकों का कम और जन्मदाताओं का अधिक है, जिन्होंने कुत्सित परिस्थितियों को ध्यान में न रखते हुए भी नवागन्तुकों को बुला भेजा ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समझा जाता है कि संतान से वंश चलता है, घर का दीपक जलता है, बुढ़ापे में सहारा मिलता है, मरने पर पिण्डदान देने वाला परलोक सुधारता है । इन सबसे भी बड़ी बात यह है कि अनौचित्य अपनाकर जिस सम्पत्ति का संग्रह किया गया है उसे किस उत्तराधिकारी के लिये छोड़ मरा जाय ? देश, धर्म, समाज, संस्कृति की आवश्यकतायें तो ऐसे लोगों को सूझती ही नहीं । गिरों को उठाने और पिछड़ों को बढ़ाने के लिये संचित संपदा का उपयोग हो सकता है । यह बात तो पाषाण जैसे निष्ठुर मानस में उठती ही नहीं । अनावश्यक संपदा संग्रह की ललक कभी हलकी हुई नहीं । उदारता को चरितार्थ कर सकना भी दुरूह ही बना रहा, ऐसी दशा में संचय को किसे दिया जाय ? यह प्रश्न मन में उठता ही नहीं, उठे भी तो वैसा साहस जुटता नहीं । जुटे भी तो इससे पहले ही अपनी वृद्धावस्थाजन्य असमर्थता चढ़ दौड़ती है और जवान लड़के बलात उस पर अधिकार जमा लेते हैं । मरने के बाद जो होना था वह ऐसे लोगों के जीवित रहते ही हो लेता है । अपनी ही कमाई में से एक पैसा इच्छानुसार किसी पुण्य परमार्थ में लगा सकना कठिन हो जाता है । पास-पड़ौस के बूढ़ों की ऐसी दुर्दशा देखते हुए भी जवानी का जोश और बलिष्ठ लालच ऐसा कुछ सोचने ही नहीं देता कि अपने श्रम, समय, कौशल और पुरुषार्थ का कुछ अंश किसी सप्रयत्न में उज्ज्वल-भविष्य की संरचना में लग सके ।

कभी सन्तानोत्पादक का महत्व रहा होगा, जब धरती अधिक और जनसंख्या कम और जंगलों में रहने वाले अपनी सुरक्षा और समृद्धि की आशा से अधिक सन्तानोत्पादन में लाभ देखते रहते होंगे, पर आज की इस घोर महँगाई और बढ़ी आबादी के कारण उत्पन्न हो रही विनाशकारी समस्याओं के बीच प्रजनन की ओर एक भी कदम बढ़ाना दण्डनीय अपराध से कम स्तर का नहीं बन रहा है । प्रत्येक परिणाम को भी देखा जाय तो जननी का स्वास्थ्य, पिता का आर्थिक भार, परिवार की सुविधाओं में कटौती, अभावग्रस्त परिस्थितियों में नवजातों का भविष्य अन्धकारमय बनना सुनिश्चित है । देश की आर्थिक और सामाजिक कमर तो टूटती ही है । इन परिस्थतियों में समझदारों को एक बच्चा जनना भी अनावश्यक लगता है, पर जो विचारशून्य और विवेकहीन हैं उन्हें स्वान-शूकरों की तरह अन्धाधुन्ध प्रजनन में भी कोई लज्जा और विपत्ति की बात नहीं दीखती है । कुसंस्कारी और अस्त-व्यस्त परिस्थितियों में पलने वाले बालक अभिभावकों के लिए विपत्ति विभीषिका बनकर निरन्तर त्रास देते हैं । सम्बन्धियों, पड़ौसियों और देशवासियों के लिये तो सदा समस्या ही बने रहते हैं । परिवार में से किसी को भी इन अनगढ़ों से किसी प्रकार का सहारा नहीं मिलता । इसलिये बढ़ते परिवार मात्र क्लेश और कलह के अखाड़े ही बने रहते हैं । बाहर के शत्रुओं से जितना आक्रमण का भय रहता है, उससे अधिक अपने द्वारा ही संकट खड़े किये जाने की आशंका अधिक वास्तविक होती है ।

नया परिवार बसाना अर्थात् विवाह करना अन्ततः कितना अधिक महँगा पड़ता है, इसे कोई भी वस्तुस्थिति का पर्यवेक्षण करने वाला सहज ही समझ सकता है, पर जिनके ऊपर तात्कालिक लाभ ही उन्माद बनकर चढ़ा हुआ है, उसे भविष्य के दुष्परिणामों को समझ सकने की सूझ-बूझ रह ही कहाँ जाती है ?

घर छोड़कर भाग निकलने और रीति बैरागी बनने की कुण्ठा स्वयं इन्हीं परिस्थितियों में होती है अन्यथा सहकारी जीवन के असीम आनन्द के लाभ से लाभान्वित होने वाले ही सर्वत्र दीख पड़ते । आदर्शों और सिद्धान्तों को गँवाकर, भावी सम्भावनाओं को देख सकने वाली दूरदर्शिता के अभाव में तात्कालिक लाभ को ही सब कुछ समझने की मूर्खता ही इन दिनों सिर पर छाई रहती है । इन दिनों इसी मनःस्थिति में नये परिवार बनते, बढ़ते और हर किसी के लिये विपत्तियाँ और विसंगतियाँ ही खड़ी करते रहते हैं । यदि इसी सब के लिये परिवार खड़ा किया जाता हो तो वे लोग हजार गुने अधिक बुद्धिमान माने जायेंगे जो विवाह करने, बच्चे जनने, कामाचार में अपनी जीवनी शक्ति खपा देने और उपार्जन को बेतुके कार्यों में बर्बाद करने की मूर्खता से बचे रहते हैं और अपनी बहुमूल्य शक्तियों को किन्हीं उच्चस्तरीय कामों में नियोजित करके स्वयं धन्य बनते और अपनी परम्परा को धन्य बनाते हैं । जीवन का सच्चा लाभ लेने में ऐसे ही लोग प्रायः सफल हो पाते हैं । शेष तो कोल्हू के बैल की तरह स्वयं पिसते और दूसरों को पीसते हैं ।

तब फिर पारिवारिकता की इतनी अधिक सराहना क्यों की जाती है और उसे आवश्यक, अनिवार्य क्यों बताया जाता है ? इसके उत्तर में फिर एक बार यही कहना चाहिये कि पारिवारिकता का उद्देश्य है सहजीवन । इसमें इतना और जोड़ना चाहिये कि आदर्शों के परिपालन का भी ध्यान रखना चाहिये ।

चूहों की आयुष्य कुछ महीनों की ही होती है । इसी बीच वे प्रायः साठ तक बच्चे जन लेते हैं । काम-क्रीड़ा और प्रसव पीड़ा का मीठा, कड़ुवा रसास्वादन भी निर्णय रूप में करते रहते हैं, पर इस उत्पादन परिकर का कोई भी घटक यह अनुभव नहीं करता कि इस कौतुक-कौतूहल से उन्हें किस प्रकार का लाभ मिला । लक्ष्यविहीन और अनियंत्रित सभी कृत्य और अन्यान्यों के लिये दुर्भाग्य ही सिद्ध होते हैं । मनुष्य के लिये यही नियति है । कामुकता की पूर्ति भर के लिये किए गये विवाह सन्तानोत्पादन के रूप में तो फलित होते हैं, पर उससे वह आनन्द नहीं मिल पाता जो पारिवारिकता के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़े होते हैं । यह लाभ उन्हीं को मिलता है जिन्होंने पारिवारिकता के आदर्श और सिद्धान्त को प्रधानता देते हुए अपना मरिकर बनाया या जुटाया है, अन्यथा प्रजनन कृत्य की धुरी पर घूमने वाला उत्पादन दिशाविहीन होकर भटकता ही रहेगा । अपने लिये, दूसरों के लिये भारभूत होकर रहने के अतिरिक्त और कुछ परिणति प्रस्तुत कर न सकेगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्मरण रखने की बात यह है कि विवेक के आधार पर उच्च लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए सहजीवन की व्यवस्था बनायी जाय । इसके लिये वंश परिकर को भी सुधारने, ढालने, उठाने और बढ़ाने के कृत्य में निरत रहा जा सकता है । सहयोगियों को प्रसन्न करने के लिये अँगुलियों पर गिनने की उपेक्षा निश्चय यह होना चाहिये कि चन्दन वृक्ष की भूमिका निबाहते हुए अपने इर्द-गिर्द उगे हुए पेड़-पौधों को भी सुगन्धित करके रहेंगे, प्रयत्नशील को सफलता मिलती ही है, भले ही वह आंशिक एवं समयसाध्य ही क्यों न हो ?

बाल निर्माण में परिवार की भूमिका

भारतीय समाज में परिवार-प्रणाली आदि-काल से ही अपना अस्तित्व बनाये चली आ रही है । हाँ, यह बात अवश्य है कि समय के परिवर्तन के साथ-साथ परिवार-प्रणाली में भी अनेक परिवर्तन होते आये हैं । परिवार मानव-जीवन के विकास की प्रथम पाठशाला संस्था, प्रणाली, प्रयोगशाला आदि कहा जाता है । बालक जब अपनी माँ के गर्भ में होता है, तभी से उसका परिवार में विकास-क्रम प्रारम्भ हो जाता है ।

जिस प्रकार वृक्ष की सफलता उसकी जड़ पर निर्भर होती है, उसी प्रकार मनुष्य की सफलता एवं सुख-शान्ति परिवार पर निर्भर है । यदि वृक्ष की जड़ कमजोर, अव्यवस्थित, शुष्क अथवा अनुपयुक्त होती है तो वृक्ष किसी भी हालत में विकसित होकर वृद्धि नहीं कर सकता । इसी प्रकार परिवार के अव्यवस्थित, कुसंस्कृत तथा अनुपयुक्त होने पर मनुष्य-जीवन भी सुसंस्कृत एवं उन्नतिशील नहीं बन सकता । मनुष्य के जीवन-विकास में परिवार का एक महत्वपूर्ण योगदान होता है । अतः हमें अपने परिवार के निर्माण में बहुत ही सावधानी बरतनी चाहिए । परिवार का निर्माण तभी हो सकता है, जब हम पहले व्यक्ति निर्माण करें । जब बालक का जन्म होता है, तभी से हमें उसके विकास की ओर ध्यान देना चाहिए । इसके पूर्व हमारे लिए भी यह आवश्यक है कि हम कोई ऐसा आचरण नहीं करें, जिससे बालक पर उसका गलत प्रभाव पड़े । जब बालक जन्म लेता है तो सबसे पहले उसके स्वास्थ्य संरक्षण और बलवर्द्धक की लाभप्रद प्रक्रियाएँ अपनाएँ । माँ का कर्तव्य होता है कि वह बच्चे को उचित समय पर दूध पिलाये, टट्टी करने पर उसकी सफाई आदि करे । आवश्यकतानुसार स्नान करवाये एवं उसे अधिक से अधिक आराम देने का प्रयत्न करे । जब बालक लगभग एक-डेढ़ वर्ष का हो जाता है तो उसमें कुछ-कुछ आत्मचेतना का अंश दिखाई देता है । उसमें अनुकरण करने की प्रवृत्ति का उदय होता है । यह समय उसके उचित विकास का होता है । इस समय परिवार के प्रत्येक सदस्य को ध्यान रखना चाहिए कि कोई ऐसा व्यवहार अथवा आचरण न करें, जिसका बालक अनुकरण करे और आगे चलकर इसका उस पर गलत प्रभाव पड़े । धीरे-धीरे बालक अनुकरण की प्रवृत्ति से जब थोड़ा-थोड़ा बोलना, चलना सीख लेता है तो वह परिवार के लोगों को अपना समझने लगता है । माँ, बाप, भाई, बहिन आदि सम्बोधन करने लगता है । परिवार के सदस्यों के आचरणों की नकल करने लगता है । तरह-तरह के प्रश्न करने लगता है । यह समय विशेष सावधानी का है । ऐसे समय में बालक को उचित उत्तर व संस्कारों की शिक्षा देनी चाहिए । इस समय उसकी उम्र लगभग ४-५ साल की हो सकती है । अतः परिवार में सुबह से रात तक ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे कि बालक में सद्गुणों का विकास हो । हम घर को साफ-सुथरा रखने का प्रयास करें । घर के काम-काज अपने हाथों से करें । ऐसा करते देख बालक भी घर के कार्य करने में रुचि लेगा । परिवार के सदस्य प्रार्थना, पूजा, शिष्टाचार करें तो बालक में भी अनुकरण की प्रवृत्ति से इन गुणों का विकास हो सकता है ।

अभिभावकों का कर्तव्य है कि अपने बच्चों के लालन-पालन का, खिलाने-पिलाने का, लाड़-प्यार का, सुख-सुविधा एवं पढ़ाई-लिखाई आदि का वह अवश्य ही ध्यान रखें । इतना ही नहीं वह अपने बच्चों को सभ्य और सद्गुणी बनाये यदि बालक में अच्छी आदतों का, सत्प्रवृत्तियों का एवं सद्भावनाओं का समुचित विकास नहीं किया गया तो वह सदा दुःखी ही रहेगा । जो अभिभावक अपने बच्चों को सचमुच सुखी बनाना चाहते हों, उनके भविष्य को उज्ज्वल बनाना चाहते हों तो वे अपने बच्चों को सद्गुणी बनावें । परिवार में बालक जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त अपना जीवन-निर्वाह करता है । अतः परिवार व अपने को सुखी बनाने के लिए उसे सद्गुणों को अपनाना होगा । सद्गुणों की पूँजी पहले हमें अपने स्वभाव में संचित करनी होगी । पहले हमें सद्गुणी बनना होगा, तब हम बच्चों को सद्गुणी बना सकते हैं । यदि हम ऐसा नहीं करते तो बच्चों को अच्छा बनाने की बात सोचना व्यर्थ है ।

पारिवारिक आचार-संहिता की आवश्यकता

परिवार एक संस्था एवं व्यवस्था है । प्रत्येक व्यवस्था की एक निश्चित कार्य-पद्धति होती है । साथ ही उस व्यवस्था के टिके रहने एवं गतिशील रहने के लिये उसके सदस्यों को कुछ निश्चित नियमों का निर्वाह करना होता है । इसे ही उस व्यवस्था की आचार-संहिता कहते हैं । आचार-संहिता के पालन के बिना कोई भी व्यवस्था चल नहीं पाती ।

परिवार में विविध-सम्बन्ध होते हैं । वे पारस्परिक सम्बन्ध सद्भाव और सम्वेदना पर ही बने एवं टिके होते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं । प्रत्येक सदस्य की रुचि एवं प्रकृति भिन्न-भिन्न होती है । उन्हें आपस में एक-दूसरे से व्यवहार करना एवं सामंजस्य स्थापित करना होता है । यदि वह सामंजस्य न बन पाये, तो बड़ी कठिनाई आ खड़ी होती है । आपसी कटुता और तनाव की स्थिति बन जाती है । घर आनन्द रहित एवं पीड़ादायक हो जाता है ।

परिवार में विविध सम्बन्धों के निर्वाह के लिये मर्यादाएँ एवं नीति नियम स्थिर किये जाने चाहिए । माता-पिता, माँ-बेटा, माँ-पुत्री, पिता-पुत्र, पिता-पुत्री, पति-पत्नी, भाई-भाई, भाई-बहिन, ननद-भाभी, चाचा-भतीजे, देवर-भाभी, देवरानी-जेठानी जैसे अनेक सम्बन्ध और सम्बन्धों के अनेक स्तर होते हैं । इन सभी स्तरों एवं सभी सम्बन्धों का समुचित निर्वाह किया जाता रहे, तभी आपसी तालमेल बना रहता है । स्नेह सौहार्द्र को बढ़ाते रहना भी पारिवारिक व्यवस्था का अंग है । मात्र आपसी तालमेल बिठाकर काम चलाना परिवार संस्था का उद्देश्य नहीं । उसके लिये तो होटल, धर्मशाला, सराय, शिविर जैसी व्यवस्थाएँ ही पर्याप्त हैं । किन्तु परिवार-व्यवस्था का उद्देश्य इससे बहुत ऊँचा है । प्रत्येक सदस्य के गुणों-विशेषताओं का निरन्तर विकास करना और दोषों को धोकर बहाते रहना उसका एक उद्देश्य है । उनमें आपस में ऐसी प्रगाढ़ आत्मीयता विकसित हो, जो उनके केन्द्रित अहं को लगातार व्यापक बनाती जाय । 'स्व' की उनकी परिधि निरन्तर फैलती जाय । जिससे वे आगे चलकर समाज से और फिर सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्ड से अपनी एकात्मता स्थापित कर सकें । हर व्यक्ति इतना आगे न भी बढ़ सके तो भी वह परिवार तथा समाज से जुड़ सके । इतना प्रशिक्षण तो उसका न्यूनतम उद्देश्य ही है । क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का हित भी इसी में है । मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और उसकी सारी प्रगति ही स्नेह-सहयोग के आधार पर विकसित हुई है । एक ओर जहाँ स्वतन्त्रता की आकांक्षा प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में विद्यमान है, वहीं समर्पण एवं समन्वय की आकांक्षाएँ भी हैं । एक की स्वतन्त्रता दूसरे का बन्धन कब बनने लगती है, यह बोध करा देना पारिवारिक व्यवस्था का ही प्राथमिक दायित्व है । स्वतन्त्रता एवं समर्पण, स्वाभिमान एवं सहयोग का समन्वय कैसे हो सकता है, अनुशासन और आत्म-गौरव दोनों के तालमेल का स्वरूप क्या हो सकता है, यह जानकारी परिवार-संस्था ही स्वाभाविक रूप से दे सकती है । स्नेह और कृतज्ञता के भावों की अभिव्यक्ति आपसी व्यवहार में स्पष्टता एवं मधुरता का समावेश सिखाना तथा शिष्टाचार के वे सभी नियम-व्यवहार सिखाना परिवार संस्था का दायित्व है, जो मनुष्य की उत्कृष्टता एवं सज्जनता को प्रकट करते हैं ।

मानवीय शील का संरक्षण एवं परिष्कार स्वयं में अत्यन्त महत्वपूर्ण है । इस महत्वपूर्ण प्रक्रिया को सम्पादित करने वाली परिवार-संस्था पवित्र एवं उपयोगी है । वह पारस्परिकता तथा सहयोग-सहायता का ऐसा भाव विकसित करती है, जो मनुष्य की सर्वांगीण उन्नति का आधार बन सके । इस हेतु उसकी एक आचार-संहिता बनायी जाने की आवश्यकता स्पष्ट है ।

बिना इस आचार-संहिता के पालन के न तो परिवार संस्था का पालन हो सकता, न ही अपेक्षित उपयोग । मनुष्य की प्रकृति में उत्कर्ष-अपकर्ष, उत्कृष्टता-निकृष्टता दोनों प्रकार की सम्भावनाएँ सन्निहित होती हैं । इसलिये उसे दिशा-विहीन या इच्छानुसार गतिशील होने के लिये नहीं छोड़ा जा सकता । कोई दिशा-निर्देश नहीं किया जाय, मार्ग न निर्धारित किया जाय, तो भी अन्य पशु-पक्षियों, प्राणियों की तरह सीमित गतिविधियों में ही वह उलझा रहे, ऐसा नहीं है । इसके स्थान पर, आवश्यक अंकुश एवं दिशा-निर्देश के बिना व्यक्ति किसी भी दिशा में किसी भी सीमा तक जा सकता है । वह पाशविक समूह की स्वाभाविकता से भी वंचित हो सकता है और व्यक्ति-व्यक्ति के बीच आकाश-पाताल जैसा अन्तर होते देर नहीं लगती ।

उत्कृष्टताओं, अच्छाइयों से भी मनुष्य का प्रेम है, तो कुसंग, भ्रान्तियाँ, पतनशीलता भी उसे भाने लगती हैं । मानव-स्वभाव में खूबियाँ और खामियाँ दोनों भरपूर हैं । इसलिये मनुष्यों की प्रत्येक संस्था के लिये एक बुद्धिसम्मत, हृदयग्राह्य आचार-संहिता बनानी होती है ।

परिवार के विविध स्तरीय सम्बन्धों के मुख्यतः तीन वर्ग किये जा सकते हैं । एक तो बड़े, दूसरे बराबरी वाले तीसरे छोटे । इन वर्गों के आपसी सम्बन्धों के सूत्र पारिवारिक आचार-संहिता का अंग हैं । बड़ों का छोटों से क्या सम्बन्ध हो, उनके प्रति कैसा व्यवहार हो, इसके भी तीन वर्ग हो सकते हैं-छोटे बच्चों के प्रति क्या व्यवहार हो ? किशोरों के प्रति क्या व्यवहार हो और युवकों के प्रति क्या व्यवहार हो ? किशोरियों एवं युवतियों के प्रति व्यवहार का स्वरूप किशोरों-युवकों से भिन्न होगा । अतः उसका अलग विचार आवश्यक है ।

बड़ों के प्रति छोटों के व्यवहार का स्वरूप भी निर्धारित होना चाहिए और बराबरी वालों के आपसी व्यवहार की रूपरेखा भी विचार का विषय है । ये सात मुख्य सम्बन्ध स्तर हुए । इनके अनेक उपवर्ग किये जा सकते हैं । सामान्य रूप में सात वर्गों में ही पारिवारिकता सम्बन्धों का विश्लेषण एवं निरूपण किया जा सकता है तथा आवश्यक मर्यादाएँ बाँधी जा सकती हैं ।

इन सम्बन्धों का आपसी स्वरूप निर्धारित हो जाय प्रत्येक के अधिकार एवं कर्त्तव्यों की मार्गदर्शक रूपरेखा निश्चित हो जाय तभी पारिवारिक व्यवस्था से वे श्रेष्ठ परिणाम प्राप्त हो सकते हैं, जिनके लिये कि वह मूलतः बनी है और जिनके कारण उसकी इतनी महत्ता है ।

बिना कर्तव्यों के अधिकार टिक नहीं सकते । परिवार में अपना अधिकार चाहना तो सरल है, किन्तु कर्तव्यों के पालन के बिना तो उनका अस्तित्व ही सम्भव नहीं है । अन्य संस्थाएँ प्रत्यक्ष एवं सीमित प्रयोजनों से बनायी चलायी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जाती हैं । उनमें भी अधिकार और कर्तव्य दोनों का सन्तुलन तो अत्यन्त आवश्यक होता है । किन्तु कई बार अधिकारों को अधिक महत्व देने पर भी वे कुछ समय तक घिसटते रह सकते हैं । क्योंकि वहाँ संस्था का तन्त्र बाहरी होता है । जैसे–शासन व्यवस्था । शासन–व्यवस्था का निर्माण तो सम्पूर्ण समाज की सहमति से होता है, और उसकी परिधि में भी सम्पूर्ण समाज आता है । किन्तु उसका संचालन एक सीमित प्रशासन-तन्त्र करता है । शासक वर्ग इस प्रशासन तन्त्र के लिये जनता से कुछ अधिकार माँगता है; ताकि वह शासन के कर्तव्य पूरे हो सकें । जनता द्वारा एक बार अधिकार सौंप देने के बाद प्रशासन-तन्त्र जनता से कह सकता है । वह कर्त्तव्यों की अवहेलना करता रहकर अधिकारों के बल पर कुछ दिन व्यवस्था को घसीट सकता है । यद्यपि कुछ न कुछ कर्तव्य तो उसे तब भी निभाने ही होते हैं और अधिकारों का दुरुपयोग करते जाने पर वह अधिक समय तक टिक भी नहीं पाता । तो भी उसके अधिकार प्रयोग के उपकरण प्रत्यक्ष एवं बाह्य होने से, फौज-पुलिस, डण्डा-गोली के बल पर वह कुछ दिन मात्र अधिकार भोग पर टिका रह सकता है । परिवार-व्यवस्था में ऐसे कोई बाहरी उपकरण नहीं होते । वह तो टिकी ही भावनात्मक सफलता की नींव पर होती हैं । इस भावना की अभिव्यक्ति एक-दूसरे के प्रति कर्तव्य के रूप में होती है । जहाँ कर्तव्यों का निर्वाह न होगा, वहाँ भावना भी स्थायी नहीं रहेगी और इस प्रकार परिवार का आधार ही नष्ट हो जायेगा ।

परिवार में किसी को भी अधिकार तभी तक प्राप्त है, जब तक दूसरों को उस हेतु स्वीकृति है । जिस क्षण परिवार के अन्य सदस्य उस अधिकार को मानने से इन्कार कर दें, उसी क्षण से वह अधिकतर समाप्त होने लगता है । माँ पर सन्तान का अधिकार तभी तक है, जब तक उसके भीतर से ममता का अजस्र स्रोत फूट रहा है और वह स्वयं ही कर्तव्य की बलिवेदी पर न्यौछावर हुई जा रही है । यदि ममता का यह स्रोत ही न हो, तो कौन-सी सन्तान माँ पर अपना अधिकार जमा सकती है ? कानून बहुत करेगा तो यह निर्धारित कर देगा कि सन्तान को जन्म देने पर उसके उदर-भरण, वस्त्र आदि की यथाशक्ति-व्यवस्था आप को करनी होगी । उतने भर से सन्तान की अस्तित्व रक्षा हो सकती है । किन्तु उसके व्यक्तित्व के निर्माणकारी वे बहुमूल्य तत्व स्नेह, ममता, दुलार, प्यार, पल-पल की जागरूकता, गहरी सम्वेदना, ये सब तो माँ को स्वत: की इच्छा के बिना एक पल नहीं मिल सकते ।

पत्नी पर पति का अधिकार तभी तक है, जब तक वह अपने कर्तव्यों का निर्वाह करके पत्नी के हृदय में अपने लिये स्थान बनाये हैं, अन्यथा किसी भी क्षण पति वाले उसके सारे अधिकार पत्नी रद्द कर सकती है । तात्पर्य मात्र इतना ही है कि परिवार में अधिकारों से भी पहले कर्तव्य की ही सत्ता है । अपने कर्तव्य पालन द्वारा ही परिवार में अपना अधिकार बना रहता है । उसके बिना नहीं ।

पारिवारिक कर्तव्यों की अवहेलना एक नैतिक अपराध है, क्योंकि उससे परिवार व्यवस्था में विघटन की स्थिति उत्पन्न होती है । प्रत्येक व्यवस्था में अपने आधारों को सुदृढ़ करने तथा उन्हें कमजोर बनाने वाले प्रयासों को रोकने के लिये जागरूकता की आवश्यकता होती है ।

शासन-व्यवस्था का स्वरूप भिन्न है । राज्यद्रोह के अपराध के लिये वहाँ कठोर दण्ड-विधान किये जाते हैं, जिनमें जेल जुर्माने से लेकर फाँसी तक की सजाएँ सम्मिलित हैं । शासन-व्यवस्था को क्षति पहुँचाने के प्रयासों की योजना पर विचार-विमर्श करना तक एक दण्डनीय अपराध है ।

परिवार-व्यवस्था की आधार-भिन्नता के कारण वहाँ का दण्ड-विधान भी भिन्न होगा । किन्तु दण्डनीय विधान है आवश्यक । अनौचित्य पर अंकुश तभी सम्भव है, जब उसके प्रतिकार की व्यवस्था हो । सिर्फ उसे अनुचित कहने भर से कुछ होने का नहीं । अनीति करने वाला भी यह जानता है कि वह जो कर रहा है, वह उचित नहीं । यही बात उससे फिर कहने भर से बात बनती नहीं । अत: दण्ड विधान जरूरी है । पारिवारिक आचार-संहिता में दुलार और सुधार की दोनों ही व्यवस्थाएँ रहनी चाहिए । अनुदान देने की तरह अवाँछनीयता के प्रति विरोध और प्रतिरोध को भी समुचित स्थान मिलना चाहिए ।

परिवारों में आचार-संहिता का पालन अनिवार्य हो

समाज व्यवस्था एक विशिष्ट विधि विधान के अनुसार चलती है । जहाँ निरंकुश कार्य व्यवस्था हो, जिसके मन में जो आये करता चले वहाँ का समाज शासन संगठित रूप से चल नहीं सकता । कई लोग जहाँ एक साथ रहते हैं, वहाँ अनेकानेक प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं । व्यवस्था सँभालने वाले अग्रगामी उन्हें समय रहते सुलझाते हैं अथवा एक सुनिश्चित आचार-संहिता बनाते हैं, जिसका परिपालन सबके लिए अनिवार्य होता है । परिवार भी एक प्रकार की प्रजातंत्रीय व्यवस्था है । जिसमें भाँति-भाँति के चिन्तन प्रकृति वाले सदस्य रहते हैं । इस संस्था के स्वस्थ विकास के लिये जरूरी है कि इसके सदस्यों के व्यवहार की एक स्पष्ट रूपरेखा हो । प्रत्येक सदस्य अपने कर्तव्यों का पालन और अधिकारों को सदुपयोग करता रहे तो हमारे परिवारों में उस स्वर्गीय वातावरण की झाँकी देखी जा सकती है, जिसकी कल्पना हम धरती पर होने की करते हैं ।

शासन चलता है तो कार्यपालिका के सहारे । मंत्रालयों सचिवालयों में तो नीति निर्धारित होती है । एक्जीक्यूट करने का काम तो कार्यपालिका ही करती है । इसी प्रकार परिवार व्यवस्था का मेरुदण्ड पत्नी होती है । हमारे राष्ट्र की बहुसंख्य परिवार संस्थाओं में अभी भी पुरुष कमाऊ

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सदस्य व पत्नी घर रहकर व्यवस्था सँभालने वाली भूमिका निवाहती हैं । घर का व्यावहारिक संतुलन आने वालों से मिलने-बात करने आतिथ्य आदि का काम स्त्री के हाथों ही सम्पादित होता है । पुरुष आर्थिक समस्याएँ सुलझा भर सकता है, परिवार की सुविधा के साधन जुटा सकता है, घर का सुनियोजित संचालन नहीं कर सकता । यह सब तभी सम्भव है, जब दोनों में परस्पर सामंजस्य बना हो । नारी तो अपने पितृगृह को छोड़कर पूरी तरह अपने सगे-सम्बन्धियों का स्नेह छोड़कर ससुराल आती है वहाँ उसे तो एकमात्र प्रकाश स्तम्भ पति ही दीखता है । यदि ससुराल में औरों से उसे सद्व्यवहार न मिले, तो उसके स्नेह व सहज आत्मीयता की गहन आकांक्षा की पूर्ति होगी । अपने विछोह की क्षतिपूर्ति वह परिवार को आत्मीय बनाकर करती है, पर फिर भी पति का अनन्य प्रेम, स्नेह भरे दो शब्दों के अभाव में औपचारिकता मात्र रह जाता है । यदि वह मिल गया तो विपुल वर्षा होने पर उर्वर भूमि में उगने वाली वनस्पति की तरह उसका व्यक्तित्व भी सद्गुणों से विभूषित हो लहलहाने लगता है । आचार-संहिता की यह माँग है कि नारी की स्वाभाविक आकांक्षा पति का प्रेम उसे मिले ।

आज हम सुनते हैं कि घरों में हिस्टीरिया, मिरगी, अनिद्रा, बेहोश हो जाना, सिरदर्द इत्यादि रोगों की प्रधानता स्त्रियों में ही पायी जाती है । वस्तुतः इन शारीरिक रोगों की जड़ मन है । परस्पर तालमेल के अभाव में असन्तोष पनपता रहता है, लज्जावश वे अपनी व्यथा कह भी नहीं पातीं, चुपचाप सहती रहती हैं । मन की बेचैनी व कष्ट इन शारीरिक रोगों में प्रकट होते हैं । पारिवारिक सुव्यवस्था व विकास के लिये जरूरी है कि किसी प्रकार की ग्रंथि नारियों के मन में पनपने न पाये । उनका अच्छा चिकित्सक मात्र पति हो सकता है । जिसका आत्मीयता युक्त सद्व्यवहार ही एकमात्र इलाज है ।

जहाँ पति को नियमों का पालन करना आवश्यक है, वहाँ पत्नी को भी अपनी ओर से कोई दुराव, छिपाव न रख अपनी व्यवस्थागत-व्यवहारगत चिंतनपरक समस्याओं को पति से सतत चर्चाकर सुलझाते रहना चाहिये । बच्चों के समक्ष कभी ऐसी नौबत न आये कि आपसी तनाव का दुर्व्यवहार रूपी तमाशा वे देखें और उनके भी कोमल मस्तिष्कों पर इसका प्रभाव पड़े, इसका एकमात्र समाधान है परस्पर विचारविमर्श । व्यस्तता चाहे कितनी ही हो परिवार के सदस्यों पत्नी बच्चों पर समुचित समय देना हर पति का कर्तव्य है । इसकी उपेक्षा परिवार संस्था के नियम-आचार की अवहेलना है ।

परिवार समाज की इकाई ही तो है । यदि व्यक्ति अपना, अपनी स्त्री तथा बच्चों का ही भावनात्मक निर्माण न कर पाया तो उसने समाज में रहने की पात्रता कहाँ विकसित की ? आचार-संहिता का पालन कर ही विधिव्यवस्थापूर्वक परिवार को सुसंगठित बनाया जा सकता है ।

सृजन की सत्प्रवृत्तियों का अगला चरण

परिवार निर्माण का शुभारम्भ, श्रीगणेश घरों में धार्मिक वातावरण बनाने और उसके लिए सामूहिक उत्साह उत्पन्न करने के लिए स्थान-स्थान पर संगठन खड़े किये गये हैं । इतने व्यापक, भारी और महत्वपूर्ण कार्य को संगठित प्रयत्नों से ही सम्पन्न किया जा सकता है । इसलिए हर संगठन को सफल बनाने, महिला सत्संग चलाने और उनमें अधिक उपस्थिति का प्रयत्न करने के लिए कहा गया है । परिवार निर्माण में सहयोग तो पुरुषों का भी चाहिए, पर उसका नेतृत्व उसी क्षेत्र की अधिष्ठात्री-गृहलक्ष्मी जाग्रत महिला ही कर सकती है । इसलिए यह महाक्रान्ति की लाल मशाल उसी के हाथ में थमाई गई है और नवयुग का तुमुल शंखनाद करने की जिम्मेदारी भी उसी पर लादी गई है । आरम्भ में क्या करना होगा, इसका संक्षिप्त कार्यक्रम सर्वसाधारण के सम्मुख प्रस्तुत किया जा चुका है ।

बलिवैश्व की पाँच आहुतियों को प्रतीक मानकर पारिवारिक पंचशीलों को चिन्तन एवं व्यवहार में उतारने के लिए कहा गया है । प्रत्येक व्यक्ति के लिए भावनात्मक, चारित्रिक, पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक क्षेत्रों में पालन करने योग्य पाँच पंचशील अनुबन्ध अनुशासन हैं । उनका पालन करना मानवी कर्तव्य और उत्तरदायित्वों का अंग है । इन्हें न केवल विचारणा में प्रमुख रखा जाय वरन् व्यावहारिक जीवन में उतारने के लिए भी सामर्थ्य भर प्रयत्न किया जाय । इस धर्मधारणा को निरन्तर स्मरण रखने और उसके प्रति प्रगाढ़ आस्था व्यक्त करने के लिए बलिवैश्व की पाँच आहुतियाँ देने की परम्परा है । इसे वैयक्तिक जीवन में सामाजिक उत्तरदायित्वों को साझेदारी का प्रतीक भी समझा जा सकता है ।

घर में धार्मिक वातावरण बनाये रखने के लिए नित्य नमन, वन्दन, आरती, कथा-कीर्तन की परम्परायें बनाने चलाने के लिए कहा गया है । समय-समय पर भावनात्मक वातावरण में परिवार गोष्ठियों के उपक्रम प्राचीनकाल में जन्मदिनों और संस्कारों के नाम पर चलते थे । वह पद्धति बहुत ही प्रेरक और प्रभावोत्पादक है । सत्प्रवृत्तियाँ उभारने के लिए उनका पुनर्जागरण किया जाना चाहिए । इसी प्रकार गाँव-मुहल्ले की धर्म गोष्ठियाँ पर्व-त्यौहारों के उल्लास भरे अवसरों पर करते रहने से सद्भाव सम्बर्द्धन के लिए सामूहिक उत्साह उभारने की दृष्टि से बहुत महत्व है । समय-समय पर बड़े आयोजन गायत्री यज्ञों और युग निर्माण सम्मेलनों के आधार पर किये जाते रहें । तीर्थ-यात्रा के लिए धर्म प्रचारकों की मण्डलियाँ निकलती रहें, परिव्राजकों की टोलियाँ नव जागरण की चेतना उत्पन्न करने के लिए घर-घर पहुँचें और जन-जन से सम्पर्क साधें । यह सभी कार्यक्रम ऐसे हैं जो व्यक्ति और समाज

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

की उत्कृष्टता की ओर अग्रसर करने, परिवारों में शालीनता उत्पन्न करने की दृष्टि से अतीव उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं ।

यह छोटे कार्यक्रम आरम्भ में इसलिए अपनाये गये हैं कि सरलता एवं परम्परा निर्वाह के साथ-साथ इनमें सामूहिक सद्भावना उभारने वाले क्रिया-कृत्यों का समावेश है । इनके माध्यम से धर्म चेतना वाले व्यक्तियों को आसानी से समावेश किया जा सकता है और उनकी सामूहिक चेतना को सृजनात्मक प्रयोजनों में आसानी से लगाया जा सकता है । भाव शिक्षण की दृष्टि से, धर्म कृत्य का समन्वय 'सोने में सुगन्ध' का काम करता है । प्रभाव शक्ति का अनुपात अत्यधिक बढ़ जाता है । इन प्रयत्नों को आरम्भिक चरण समझा जाना चाहिए और यह मानकर चलना चाहिए कि इन प्रयोजनों में आवश्यक सफलता मिलने पर उस युग शक्ति का उदय होगा जिसके सहारे अगले चरण में उठने वाले कदम सरलतापूर्वक अग्रसर हो सकें ।

यह धर्म धारणा अध्यात्म क्षेत्र की भावनात्मक प्रक्रिया हुई । यह नितान्त आवश्यक अति समर्थ और सत्परिणित की दृष्टि से असंदिग्ध भी है । इतने पर भी यह नहीं कहा जा सकता है कि इतने से ही समय प्रगति के लक्ष्य तक पहुँच सकना सम्भव हो जायगा । भाव पक्ष की तरह ही क्रिया पक्ष भी सामर्थ्यवान है । भाव को अध्यात्म और क्रिया को सामर्थ्य कहते हैं । दोनों का समन्वय ही जीवन है । शरीर की क्रियाशीलता और आत्मा की चेतना का मिलाजुला स्वरूप ही जीवन है । ब्रह्म और प्रकृति के सम्मिलित प्रयत्नों से ही यह सृष्टि चल रही है ।

परिवार क्षेत्र में घुसे हुए आलस्य, प्रमाद के दो दैत्य पिछड़ी परिस्थितियाँ उत्पन्न करने के लिए मुख्यतया जिम्मेदार हैं । अपने परिवारों में समग्र और श्रमशक्ति का बहुत ही स्वल्प उपयोग हो पाता है । समर्थता भी अधिकतर बैठे-ठाले अपना समय गुजारती है । आधे मन से मन्द गति से किये गये काम समय चौगुना नष्ट करने पर भी अस्त-व्यस्त और आधे-अधूरे ही बने रहते हैं । इस जड़ता को हटाये बिना परिवारों में न तो जागरूकता उत्पन्न हो सकेगी, न स्फूर्ति । इसलिए सभी घरों में किसी न किसी रूप में कुटीर उद्योगों का प्रचलन होना चाहिए । इसमें तो आर्थिक उन्नति के गरीबी से छूटने के आधारभूत सिद्धान्तों का समावेश है । श्रम और मनोयोग का समन्वय करके उसे उत्पादन में नियोजित किया जा सके तो आर्थिक लाभ से भी अधिक हित साधन, स्वभाव और दृष्टिकोण में उपयोगी परिवर्तन होने का है । जहाँ यह शुभारम्भ हुआ समझना चाहिए कि वहाँ सर्वतोमुखी प्रगति की सम्भावना खड़ी हो गई ।

कुटीर उद्योगों में से कहाँ किस का प्रचलन किया जाय यह श्रम एवं कौशल का स्तर देखते हुए तथा स्थानीय खपत का ध्यान रखते हुए ही करना होगा । पर मान्यता इस सिद्धान्त को मिलनी चाहिए कि शारीरिक एवं मानसिक क्षमता की बेकारी बर्बादी सहन न की जाय और उसे उपयोगी प्रयोजनों में निरत रखा जाय । इस दृष्टि से कुटीर उद्योगों को ही प्रमुखता मिलेगी क्योंकि उसके साथ उत्पादन एवं अर्थ लाभ की दुहरी उपलब्धियाँ भी जुड़ी हुई हैं । शाक वाटिका और टूट-फूट मरम्मत के दो काम तो ऐसे हैं जो हर घर में समान रूप से चल सकते हैं । कपड़ों की सिलाई से लेकर धुलाई तक के अनेक पक्ष ऐसे हैं जिन्हें हर घर में प्रश्रय मिल सकता है । पुराने कपड़ों में से नये कपड़े बना लेना अपने आप में एक अच्छा खासा उद्योग है । स्थानीय परिस्थितियों को देखते हुए अन्यान्य उद्योग भी चल सकता है । जहाँ भी ऐसे प्रयत्न चलें वहाँ कच्चे माल देने और बना माल खरीदने वाला एक सहकारी तन्त्र भी निश्चित रूप से खड़ा करना पड़ेगा अन्यथा महँगा कच्चा माल खरीदने और प्रतिस्पर्धा में कौड़ी मोल बेचने से उत्पादनकर्त्ता के हाथ में निराशा ही लगेगी ।

परिवार निर्माण का दूसरा पक्ष है, शिक्षा सम्बर्द्धन । शिक्षा के दो रूप हैं एक अध्ययन दूसरा स्वाध्याय । इन दोनों को ही समान रूप से महत्व देना होगा । स्वाध्याय के लिए हर घर में एक प्रज्ञा पुस्तकालय रहना चाहिए । जिसमें चुना हुआ ऐसा साहित्य ही रखा जाय जो व्यक्ति, परिवार और समाज के नव निर्माण में व्यावहारिक मार्गदर्शन कर सके । ऐसी एक भी पुस्तक न रहे जो गन्दगी एवं विकृत को परोक्ष रूप से प्रोत्साहन देती हो । साहित्य का उद्देश्य है चिन्तन को परिष्कृत करना । यदि उद्देश्य का ध्यान न रखा जाय और बचकाने मनोरंजन के लिए भ्रष्ट पुस्तकें एकत्रित कर ली जायें तो उसे रसोईघर में विष पकाने की तरह ही समझा जायगा । सत्साहित्य को शिक्षित लोग नियमित रूप से पढ़ें और बिना पढ़ों को पढ़कर सुनायें । इन दोनों सत्संग का यही व्यावहारिक स्वरूप है । नवसृजन के लिए यह प्रक्रिया अनिवार्य रूप से आवश्यक है । इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए युग निर्माण योजना की सदस्यता की शर्त में दस पैसा और एक घण्टा समय ज्ञानयज्ञ के लिए निकालने की बात जोड़कर रखी गई है । ज्ञानघट रखने और झोला पुस्तकालय बनाने का तात्पर्य विचार क्रान्ति अभियान को निरन्तर गतिशील रखना है । जिन परिवारों में प्रज्ञा पुस्तकालय नियमित रूप से चल पड़े, समझना चाहिए कि गृहपति ने अपना तीन चौथाई वजन हलका कर लिया ।

शिक्षा का दूसरा पक्ष अध्ययन है । अध्ययन का तात्पर्य है भौतिक जानकारियों की अभिवृद्धि । स्कूली पढ़ाई का यही उद्देश्य है । परीक्षाओं के बहाने बच्चों को इसी प्रक्रिया में नियोजित रखा जाता है । नौकरी मिलने न मिलने की बात को एक कोने पर रखा जाय और विशुद्ध ज्ञान वृद्धि की दृष्टि से अध्ययन क्रम चलाया जाय । हर परिवार के सदस्य अपनी आवश्यकता एवं सम्भावना को देखते हुए इस प्रकार का पाठ्यक्रम अपना सकते हैं अथवा बना सकते हैं जिससे जीवनोपयोगी आवश्यक ज्ञानवृद्धि का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सिलसिला नियमित रूप से चलता रहे । विदेशों में ऐसे निर्धारित पाठ्य-क्रम-पत्राचार विद्यालय परीक्षा उपक्रम मौजूद हैं जिसमें विभिन्न स्तर के व्यक्ति अपनी आवश्यकता के अनुरूप ज्ञानवृद्धि का क्रम निरन्तर जारी रख सकें और अभीष्ट विषयों में प्रवीण पारंगत बन सकें । अपने देश में भी इस प्रकार की आवश्यकता है । जब तक कोई निर्धारित पद्धति न हो तब तक स्कूलों की अथवा किसी अन्य शिक्षा की पढ़ाई अपनाई जा सकती है । ऐसा निर्धारण स्वयं भी किया जा सकता है । हर हालत में घरों में पढ़ने-पढ़ाने का उपक्रम नित्य कार्य में ही सम्मिलित रहना चाहिये ।

संयुक्त परिवार पद्धति अपनाने से ही काम चलेगा । बिखराव से कमाऊ लोग भले ही मौज कर सकें । बालकों, वृद्धों और असमर्थों को इससे भारी कठिनाई सहनी पड़ेगी । संकीर्णता बढ़ने और उदारता घटने की भावनात्मक हानि तो प्रत्यक्ष ही है । आर्थिक दृष्टि से भी संयुक्त परिवारों में लाभ है । नवयुग में विश्व परिवार का आदर्श ही अपनाया जाना है । इसलिए संयुक्त परिवार पद्धति को आज के अनुरूप पुनर्जीवित किया जाय । पुरातन आधार आज की परिस्थितियों में उपयोगी नहीं रहे । स्वतन्त्रता और अनुशासन का बुद्धिसंगत समन्वय करने से ही पारिवारिकता को वैज्ञानिक स्वरूप मिल सकेगा । इसके लिए 'लार्जर फैमिली' योजना के अन्तर्गत किये गये प्रतिपादन ध्यान देने योग्य हैं । कई कुटुम्ब मिलकर भोजन पकाने, बच्चे पालने, सहकारी दुकान चलाने, शिक्षा तथा मनोरंजन की व्यवस्था करने की योजना बना सकें तो इसमें समय, श्रम, स्थान की तो बचत होगी ही, सुविधा भी रहेगी और बचत भी होगी । सामूहिकता एवं सहकारिता के आधार पर ही अगले दिनों प्रगति की समस्त योजनाएँ खड़ी होनी हैं । व्यक्तिवाद के दिन लद गये । मिल-जुलकर रहने, सोचने और काम करने से ही बात बनेगी । इस दृष्टि से एक वंश के लोगों का इकट्ठा रहना ही पर्याप्त नहीं, वरन् एक मुहल्ले या वर्ग के लोगों का संयुक्त परिवार बनना, उनमें उचित कर्तव्य उत्तरदायित्वों का समावेश रहना सुनियोजित आचार-संहिता अपनाने के लिये सभी को बाधित करना आवश्यक है । इन थोड़ी पंक्तियों में तो लार्जर फैमिली योजना का सुविस्तृत स्वरूप नहीं रखा जा सकता । उसका उल्लेख अलग से होगा । चिन्तन इसी दिशा में चलना चाहिए कि बड़े संयुक्त परिवार का गठन और संचालन अपने युग का एक बड़ा काम है । जिसमें परिवार निर्माण के एक महत्वपूर्ण पक्ष की आवश्यकता पूरी होती है ।

स्वास्थ्य सम्बर्द्धन की दृष्टि से हर परिवार को नये सिरे से विचार करना होगा और नई परम्परा आरम्भ करने के लिए साहस जुटाना होगा । भोजन पकाने के खाद्य पदार्थों के चयन की वर्तमान पद्धति में भारी दोष है । उसमें आमूल-चूल नहीं तो क्रान्तिकारी परिवर्तन तो करना ही होगा । अन्यथा स्वाद के नाम पर पेट में अभक्ष्य ठूँसा जाता रहेगा और स्वास्थ्य की बर्बादी का यह कारण बने रहने से दुर्बलता एवं रुग्णता से छुटकारा मिल ही नहीं सकेगा । समय कुसमय खाने और गरम रोटी की माँग करने से पकाने वाली के समय की कितनी बर्बादी होती है, इसका अनुमान लगाया जाना चाहिए और प्रचलन ऐसे होना चाहिए कि चौका नियत समय पर आरम्भ और बंद होने का नियम बने और चले ।

श्रम सन्तुलन, विनोद मनोरंजन का परिवार के हर सदस्य को उपयुक्त अवसर मिले । किसी को न तो आवारागर्दी की छूट हो और न कोई कैदी की तरह पिंजड़े में बैठा सड़ता रहे । न कोई बाबू बना फिरे और न ही किसी को चक्की के पाट से पिसना पड़े । मिल-जुलकर काम करने का प्रचलन पारिवारिक मनोरंजन के रूप में किया जा सकता है । इसमें न किसी के अहंकार की वृद्धि होगी और न किसी को हेय बनकर रहना पड़ेगा । घर की हर व्यवस्था में परिवार के सभी सदस्य भागीदार बनें तो संयुक्त उत्तरदायित्व का भाव पनपेगा और गृह व्यवस्था से लेकर पारिवारिक प्रगति के हर प्रयोजन में सभी का मनोयोग लगने लगेगा ।

समर्थों के अनगढ़पन से बालकों और वृद्धों को विशेष रूप से कष्ट सहन करना पड़ता है । शौक-मौज की ललक में न तो बालकों को समुचित स्नेह सहयोग मिल पाता है और न ही वयोवृद्धों की सेवा-सुश्रूषा बन पड़ती है । परिवार व्यवस्था में इन दोनों उपेक्षित वर्गों के लिए दूरदर्शिता की नीति अपनाई जानी चाहिए । बच्चों की मिठाई, खिलौने एवं महँगे आकर्षक परिधान जैसी वस्तुएँ जुटाने, महँगे ट्यूशन लगाने का काम धनवान ही कर पाते हैं । उनसे भी इतना नहीं बनता कि सुसंस्कारिता उत्पन्न करने के लिए स्वयं ध्यान दें अथवा उस स्तर के वातावरण से उन्हें विकसित होने की व्यवस्था करें । निर्धनों को तो सुविधा सम्बन्धी कठिनाई भी है । जो हो परिवार से शिशुओं को जिस स्तर का भावनात्मक एवं बौद्धिक पोषण मिलना चाहिए, उससे वह वंचित ही रह जाते हैं और अन्ततः अनगढ़ व्यक्तित्व लेकर ही दुर्भाग्य भरा जीवन जीते हैं । यही दुर्गति वृद्धों की भी होती है न उन्हें किसी उपयुक्त काम में लगने का अवसर मिलता है न उनकी भावनात्मक अपेक्षाओं की सहानुभूति मिलती है । ऐसी दशा में दोनों ही खीजते रहते हैं । बालकों की खीज एक प्रकार की होती है वृद्धों की दूसरी तरह की किन्तु दोनों ही अपने को असंतुष्ट, अभावग्रस्त अनुभव करते हैं । समर्थों का उत्तरदायित्व है कि वे अपने काम ही धन्धे में न लगे रहें अपनी हर समस्याओं को सब कुछ न समझें । घर के समस्त आश्रितों के लिए ऐसी व्यवस्था निर्धारित करें जिससे हर परिवार के छोटे बड़े सदस्य को प्रसन्नता और प्रगति का अवसर निरन्तर मिलता रहे । इस संदर्भ में बड़ा पक्ष अर्थ सन्तुलन है । बजट बनाकर खर्च करने पर ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह पता चलता है कि कहीं अपव्यय तो नहीं हो रहा है और कहीं किसी को उचित आवश्यकता से भी तो वंचित नहीं रहना पड़ रहा है

हर परिवार में अनौचित्य, आत्मरक्षा की जागरूकता रहनी चाहिए । कुसंग से बालकों का अत्यधिक अहित होता है । कुरीतियाँ घर की बर्बादी का बड़ा कारण होती हैं । ठग और चोर तरह-तरह के कुचक्र रचते रहते हैं । गन्दगी और कृमि कीटकों द्वारा हानि होती रहती है, पर जागरूकता के अभाव में इन बातों की ओर ध्यान ही नहीं जाता । आवश्यकता सर्तकता की, आत्मरक्षा की ही नहीं अवांछनीयता के प्रति आक्रोश बनाये रहने की भी है । असहयोग, विरोध और संघर्ष की प्रखरता बनी रहने से ही आक्रमणों से होने वाली हानियों से किसी कदर बचा जा सकता है । इस प्रकार सत्प्रवृत्तियों के सम्बर्द्धन में पूरे परिवार की रुचि रहनी चाहिए और सहयोग समर्थन भी । श्रमदान से लेकर अंश दान तक यथासम्भव अनुदान इसलिए नियमित रूप से प्रस्तुत किये जाने चाहिए कि शालीनता और सद्भावनाओं का वातावरण बने, सत्प्रवृत्तियों के परिपोषण में हर गृहस्थ अपने परिजनों समेत संतोष और गर्व अनुभव करे तभी किसी परिवार को सुसंस्कृत कहा जा सकेगा ।

परिवारों को परिष्कृत करने की बड़ी योजनाएँ बड़े लोग मिल कर बनायेंगे और उन्हें बड़े पैमाने पर क्रियान्वित करेंगे । तब तक छोटे रूप में उपरोक्त कार्यक्रमों का प्रचलन तो आरम्भ कर ही दिया जाना चाहिए । धर्मतन्त्र के लोग शिक्षण के अन्तर्गत आरम्भ किये गये आरम्भिक प्रचलन के उपरान्त यह दूसरा चरण ऐसा है जिसे निर्माणकर्त्ताओं को अपने प्रयास कार्यक्रम में सम्मिलित रख कर ही चलना चाहिए ।

संगठन के प्रमुख उत्तरदायित्व और उनका निर्वाह

परिवार निर्माण के लिए किये जाने वाले सामूहिक एवं संगठनात्मक प्रयत्नों में, सबसे महत्वपूर्ण कार्य है- लोकशिक्षण को गतिशील बनाना । इस अभियान में लोगों की आस्थायें बदलनी हैं और दृष्टिकोण ऊँचा करना है तथा ढर्रे में परिवर्तन लाना है । यह कार्य कठिन है । वस्तुओं की हेरा-फेरी आसानी से हो जाती है, साधन जुटाने एवं व्यवस्था बनाने का कार्य भी प्रतिभाशाली लोगों के लिए उतना कठिन नहीं है । कठिन तो मनुष्यों का स्वभाव, चिन्तन एवं अभ्यास बदलना है । यह कार्य मात्र भावभरी श्रद्धा के सहारे, धर्मतन्त्र के माध्यम से ही हो सकता है ।

बच्चों जैसा उथला शिक्षण कुछ अधिक काम नहीं कर सकता, महिला कल्याण, समाज कल्याण के नाम पर चल रही प्रवृत्तियाँ कितनी धन-शक्ति और कितनी जन शक्ति खर्च कराने के उपरान्त, कितनी फलप्रद होती हैं, इसे हम सब प्रत्यक्ष देखते हैं । अभीष्ट प्रयोजन के लिए यदि वस्तुतः कुछ ठोस प्रयत्न करना और ठोस परिणाम पाना है तो इसके लिए धर्मतन्त्र का उपयोग किए बिना दूसरा रास्ता नहीं । यों आज उस क्षेत्र में पाखण्ड और अन्धविश्वास का बोल-बाला है और निहित स्वार्थों की ही तूती बोलती है । इतने पर भी उसके मूलभूत क्षमता सनातन है और हर परिस्थिति में अपना अस्तित्व बनाये रहेगी । धर्म का सही उपयोग होने लगे तो उसकी प्रति लोकश्रद्धा को वापस लौटाते देर न लगेगी । साथ ही उसकी उपयोगिता प्रत्यक्ष परिलक्षित होने लगेगी । यही किया भी जाना चाहिए । यही किया भी जायगा ।

परिवार में धार्मिक वातावरण बनाने के लिए उपासना प्रक्रिया एवं कथा शैली का विकास करना होगा । साथ ही ज्ञान-गोष्ठियों की प्रक्रिया भी तेजी से चलानी होगी । यह कार्य परिवार में संस्कारों के निमित्त होने वाले छोटे-छोटे आयोजनों से जितनी अच्छी तरह सम्पन्न हो सकता है उतना और किसी प्रकार नहीं । (१) पुसंवन (२) नामकरण, (३) अन्न प्राशन, (४) मुण्डन, (५) विद्यारम्भ । यह पाँच संस्कार ऐसे हैं जो किये जाते तो छोटे बालकों के नाम पर हैं, पर वस्तुतः उन उत्सवों के साथ जुड़े हुए क्रिया-कृत्यों एवं विधि-विधानों में उस परिवार के लोगों का ही प्रशिक्षण है कि उन्हें बाल-विकास के निमित्त स्वयं क्या बनना और क्या करना चाहिए । उन धर्म-कृत्यों के संचालक, आयोजन में उपस्थित लोगों से कर्मकाण्ड की व्याख्या करते हुए वह सब कुछ कह सकते हैं जो उस परिवार को परिष्कृत करने के लिए कहा जाना आवश्यक है ।

बच्चों को सभी प्यार करते हैं और उनके कल्याण की कामना एवं हर्ष अभिव्यक्ति के लिए उत्सव मनाने की इच्छा सभी को होती है । जन्मदिन आदि पर प्रायः आवश्यकता से चिरपुरातन को नित नवीन के साथ जोड़ देने से श्रद्धा और विवेक का समन्वय बन पड़ता है और उसका प्रतिफल हर दृष्टि से उत्साहवर्धक होता है । इन धर्मोत्सवों को प्रशिक्षणपरक और सरल, सस्ता बनाया जा सके तो उससे अच्छा परिवार प्रशिक्षण दूसरा हो ही नहीं सकता । अभियान द्वारा निर्धारित पद्धति में यह दोनों ही तथ्य भली-भाँति जोड़ दिये गये हैं । आतिथ्य, झंझटभरी परिपाटी एवं दक्षिणा की लूट-खसोट के दरवाजे पूरी तरह बन्द कर दिये गये हैं, ताकि निर्धन से निर्धन और व्यस्त से व्यस्त व्यक्ति भी इन योजनाओं के सहारे अपने परिवार में प्रभावी हर्षोल्लास का आनन्द ले सकें । इसी प्रकार शाखा सदस्यों में से ही ऐसी महिलायें प्रशिक्षित की जा रही हैं जो इन आयोजनों के कर्मकाण्डों की व्याख्या करने के साथ-साथ उस परिवार को, उपस्थित समुदाय को अभीष्ट प्रेरणाओं से अनुप्राणित कर सकें ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस प्रचलन को आरम्भ करने एवं गतिशील बनाने में बहुत कठिनाई नहीं है । क्योंकि परम्परा प्रवाह साथ जुड़ा होने से महिलाओं को उसके लिए सहज ही सहमत किया जा सकता है । बाल मंगल के नाम पर वे कुछ भी कर सकती हैं, फिर छोटे धर्मानुष्ठानों में तो उनका सहज उत्साह होना स्वाभाविक है । संगठन द्वारा घर-घर जाकर अथवा ज्ञान गोष्ठियाँ बुलाकर महत्व बताने एवं उत्साह उत्पन्न करने का प्रयास किया जाये तो घर-घर से इसकी माँग उठेगी और संगठन को इसकी व्यवस्था बनाने के लिए सुविस्तृत एवं सुनियोजित प्रबन्ध करना पड़ेगा । बच्चों के आयोजन, महिलायें ही मिल-जुल कर कर लिया करें । किन्तु सदस्याओं एवं सदस्यों के जन्मदिन ऐसे ही जिन में नर-नारी सभी की उपस्थिति बड़ी संख्या में होनी चाहिए और उन्हें सफल बनाने के लिए अपेक्षाकृत अधिक दौड़-धूप की जानी चाहिए । जन्मदिन आयोजन में व्यक्ति निर्माण के समस्त तत्व विद्यमान हैं । आत्मनिर्माण के लिए जितनी प्रेरणाएँ अभीष्ट हैं, व्यक्ति विशेष को जो संकेत किया जाना आवश्यक है, वह सब कुछ आयोजन के क्रिया-कृत्यों की विवेचना करते हुए ही कहे जा सकते हैं । परिवार-निर्माण और आत्म-निर्माण की समन्वित शिक्षण प्रक्रिया जन्मदिन आयोजन के भावभरे वातावरण में इस प्रकार चलाई जा सकती है कि उसका गहरा प्रभाव पड़े और तदनुकूल आचरण का क्रम चल पड़े । इन आयोजनों के माध्यम से उसे जनसमुदाय से सम्पर्क साधना और उन्हें प्रभावित करके संगठन में सम्मिलित करने का उपक्रम तेजी और सफलतापूर्वक चल सकता है ।

शाखा संगठनों को इनके लिए घर-घर उत्साह उत्पन्न करने के अतिरिक्त यह प्रबन्ध भी करना होगा कि प्रभावी सदस्य वहाँ पहुँच कर सारी व्यवस्था स्वयं सँभाल सकें । पूर्व परिचित प्रक्रिया न हो तो हर किसी को अड़चन का सामना करना पड़ता है । जिनके यहाँ आयोजन होते हैं । उन्हें किसी अड़चन का सामना करना पड़े, हर वस्तु बिना भागदौड़ के मिल जाय, व्यवस्था संचालन में अड़चन न पड़े, यह उत्तरदायित्व शाखा को ही सँभालना चाहिए । इसके लिए सुयोग्य, अनुभवी और प्रतिभाशाली कार्यकर्त्ताओं की संख्या बढ़ानी चाहिए तथा इन आयोजनों में जिन वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है, उन सबका प्रबन्ध शाखा के पास रहना चाहिए । ताकि किसी को भागदौड़ न करनी पड़े और सभी आवश्यक वस्तुएँ एक ही जगह तत्काल उपलब्ध हो सकें । गीत वाद्य की व्यवस्था इन अवसरों पर हो सके तो आनन्द एवं आकर्षण में और भी अधिक वृद्धि हो जाती है । महिलायें आपस में मिलजुलकर भजन मण्डली बना सकें तो बहुत ही उत्तम है । अन्यथा आवश्यकतानुसार पुरुष गायक वादकों का भी प्रबन्ध किया जा सकता है । एक सीमा तक तो यह कार्य टेपरिकार्डर और लाउडस्पीकर के सम्मिलित सुयोग से ही हो सकता है । शाखा संगठन को इन पारिवारिक आयोजनों का, ज्ञान गोष्ठियों का विस्तार एवं प्रबन्ध करने में प्रमुखतया संलग्न होना चाहिए । इस माध्यम से वे उपयोगी वातावरण बना सकेंगी और मिशन के लक्ष्य को व्यापक बनाने की दृष्टि से बहुत कुछ कर सकेंगी शाखा के कार्यकर्त्ताओं की टोलियाँ जन सम्पर्क साधने और उत्साह उत्पन्न करने तथा प्रबन्ध बनाने के दोनों ही प्रयोजनों को पूरा करती हैं ।

प्रचार प्रक्रिया के समतुल्य ही दूसरा पक्ष है साधन जुटाना । यह कार्य भी संगठन को ही करना चाहिए । विद्यालय के लिए, सत्संग के लिए, दफ्तर के लिए उपयुक्त स्थान चाहिए, इसके अतिरिक्त प्रचार साधनों के लिए पैसा चाहिए । यंत्र उपकरण, साहित्य तथा पूजा उपचार के उपकरण जुटाने में काफी पैसा लगेगा । इसका प्रबन्ध मिल-जुलकर ही किया जा सकता है । जनशक्ति की तरह ही जनभक्ति भी आवश्यक है अन्यथा मात्र उत्साह प्रदर्शित करने भर से भी काम नहीं चलेगा । प्रगति की गाड़ी रुक जायगी । चन्दा करने के लिए रसीद बहियाँ हरिद्वार या मथुरा से मँगाई जा सकती हैं । अपनी निजी छपाने में बहुत लागत लगाने की अपेक्षा दो चार रसीद वही लेकर थोड़े से पैसों से ही काम चल सकता है ।

शाखा संगठन में अग्रणी तो महिलाएँ ही होंगी, पर उनका पृष्ठ शोषण पुरुषों को ही करना होगा । प्रभाव और सम्पर्क की दृष्टि से वे ही आगे होते हैं । इसलिये संगठन खड़ा करने उसके लिये सहयोग जुटाने एवं साधन एकत्रित करने की भूमिका उन्हें ही निभानी चाहिये । जहाँ समर्थशाखा संगठन न होंगे, जहाँ उत्तरदायित्वों के निर्वाह में उत्साह होगा वहाँ देखते-देखते परिवार निर्माण की प्रक्रिया को द्रुतगति से अग्रसर और उत्साहवर्द्धक रीति से सफल होते देखा जा सकेगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संयुक्त परिवार सौभाग्य और समुन्नति का द्वार

संयुक्त परिवार एक आदर्श प्रणाली

भारतवर्ष में सम्मिलित-परिवार की प्रथा प्रचलित है । जिसमें केवल पति-पत्नी और उनके दो-चार बच्चों की गणना ही नहीं की जाती, वरन् माँ-बाप, छोटे-बड़े भाई-बहिन, चाचा, ताऊ उनके स्त्री-पुत्र आदि सबका समावेश हो जाता है । अब भी गाँवों और छोटे कस्बों में ऐसे बहुसंख्यक परिवार मौजूद हैं, जिनके सदस्यों की संख्या चालीस और पचास तक पहुँच जाती है । पर आधुनिक विचारों के लोग इस प्रथा का विरोध करते हैं और योरोप, अमेरिका के निवासी पृथक परिवार की प्रथा को ही लाभकारी बतलाते हैं । मौज-मजे की दृष्टि से किसी हद तक इसे उपयोगी कहा भी जा सकता है किन्तु यदि नैतिकता, उदारता, सहयोग, परोपकार आदि अन्य मानवीय गुणों की दृष्टि से विचार किया जाय तो निःसन्देह सम्मिलित परिवार प्रथा ही श्रेष्ठ ठहरती है । उसमें मनुष्य की स्वार्थ-वृत्ति पर अंकुश लगाकर वह समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ सद्व्यवहार और उदारता के व्यवहार को सीखता है । इस दृष्टि से परिवार ही समाज-संगठन की पहली सीढ़ी है जो व्यक्ति अपना अनेक प्रकार से उपकार करने वाले माता-पिता, भाई-बहिन, सगे-सम्बन्धियों की सहायता करने में आनाकानी करता है, उससे समस्त जाति या समाज की सेवा, सहायता और उपकार की आशा किस प्रकार की जा सकती है ?

यहाँ यह तथ्य भुलाया नहीं जाना चाहिए भारतीय संस्कृति में पारिवारिक व्यवस्था का एक निश्चित श्रेष्ठ उद्देश्य रहा है । परिवार साधन है । उसका उद्देश्य है-आत्म-विकास, आत्मा में सतोगुण की परिपुष्टि, सुखी और समृद्ध जीवन । इसका प्रयोग है-सेवा, कर्म और साधना ।

आत्मविकास का मोटा-सा अर्थ है 'अपनत्व की भावना का विस्तार कर, संकीर्णता-स्वार्थपरता का भाव दूर करना, जिससे कि यह भावना व्यापक बन सके ।' परिवार इसमें सहायक होता है ।

परिवार के श्रेष्ठ उद्देश्यों की प्राप्ति सम्भव तभी होती है जब इसे साधन मानकर उसका उपयोग सावधानी के साथ किया जाये । परिवार के प्रत्येक सदस्य को सुयोग्य, बच्चों को सुशील, सुशिक्षित, अनुशासित बनाने की तत्परता सदा बरती जाये । प्रेम, सहानुभूति, संवेदना, अपनत्व, त्याग, उदारता, सेवा, सदाचरण की शिक्षा और व्यक्तिगत उदाहरण द्वारा ही यह सम्भव हो पाता है । परिवार के प्रत्येक सदस्य का आचरण एक दूसरे को प्रभावित करता है । सम्मानित बड़ों के आचरण की तो छोटों पर गहरी छाप पड़ती है ।

जहाँ परिवार को आत्मविकास का साधन न मानकर उसे भोगविलास का केन्द्र-स्थल व अवसर मान लिया गया, वहाँ न तो प्रेम टिक सकता है, न आत्मीयता और त्याग भावना । इसीलिए भारतीय समाज निर्माताओं ने गृहस्थ जीवन को सदैव तप एवं साधन कहा, बताया है ।

निर्जीव वस्तुओं का निर्माण-शृंगार कला-कौशल की प्रतिष्ठा पाता है फिर सजीव व्यक्तियों का निर्माण-परिष्कार कितनी उत्कृष्ट साधना की अपेक्षा रखता होगा, यह स्पष्ट है । उसके लिये सतत अध्यवसाय, अटूट प्रेम, अहं के विसर्जन और आत्मभाव के निरन्तर सघन विस्तार की जरूरत होती है । इस कठोर तप-साधना के परिणाम भी तो अधिक कोमल-मधुर होते हैं ।

निर्जीव वस्तुएँ एक और एक मिलकर दो होती हैं । पर सजीव मनुष्य एक और एक मिलकर ग्यारह होते हैं । इस सच्चाई का प्रत्यक्ष अनुभव वहाँ किया जा सकता है जहाँ परिवार के सभी लोग परस्पर सच्चा प्रेम करते हैं । एक दूसरे के लिये आदर, उदारता, त्याग एवं आत्मीयता की भावनाएँ निरन्तर प्रदान करते रहते हैं, रामायण का सबसे बड़ा शिक्षण पारिवारिक आधार की आध्यात्मिकता एवं कर्तव्यशीलता का शिक्षण ही है । एक से कोई भूल होती है तो दूसरे स्वयं कष्ट उठाकर अपनी उदारता से उसका समाधान करते हैं ।

पौराणिक उपाख्यानों में जहाँ-जहाँ आदर्श समाज व्यवस्था का वर्णन मिलता है, वहाँ-वहाँ परिवार भी उच्च आदर्शों का निर्वाह करते दिखते हैं । मनुष्य के स्वभाव के अनुसार भूलें हर समय होती हैं किन्तु आदर्श परायणता उन्हें पतन का नहीं आत्मविकास का ही माध्यम बना लेती हैं । रामायण में राजा दशरथ का अनुचित वरदान देने के लिए भी वचनबद्ध होना, कैकयी का अनुचित वरदान माँगना, राम का धोबी के कथन से प्रभावित होकर सीता को वनवास देना आदि तीनों ही मानवीय दुर्बलताएँ हैं । परन्तु इनका समाधान रामायण के पात्रों द्वारा ही प्रतिहिंसा और विद्वेष के रूप में नहीं वरन् दूसरे पक्ष के आदर्श त्याग के रूप में प्रस्तुत किया गया है । दशरथ कैकयी को संतुष्ट करने के लिये स्वयं पुत्र-शोक में मरना स्वीकार करते हैं, राम भी विमाता और पिता को प्रसन्न करने के लिये अनुचित आज्ञा होते हुये भी खुशी-खुशी वन चले जाते हैं, भाई की सुरक्षा के लिये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

लक्ष्मण और पति की सेवा के लिये सीता वनवास का कष्टसाध्य जीवन स्वीकार करती हैं ।

भरत भाई का अधिकार लेना किसी भी प्रकार स्वीकार नहीं करते और राम की खड़ाऊँ को सिंहासन पर बिठाकर स्वयं भी एक तपस्वी की तरह जीवन बिताते हुए राज-काज चलाते हैं । कौशल्या न तो अपने बेटे को वन जाने से रोकती है और न उर्मिला अपने पति को । परिवार का सच्चा आधार यही प्रेम, यही आत्म-त्याग है । इसी का निर्वाह करने के कारण हर सदस्य एक आदर्श व्यक्तित्व के रूप में विकसित होता गया, हर कठिनाई उन्हें कुन्दन बनाती रही तथा श्रेष्ठ समाज की रचना सम्भव हो सकी ।

महाभारत में कौरवों के पतन और पाण्डवों की विजय के पीछे भी यही पारिवारिक स्नेह, सद्भाव दिखाई देता है । इन उपाख्यानों से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि आदर्श परिवार के जीवन से ही सामाजिक विकास की प्रवृत्तियाँ विकसित होकर फलित होती हैं ।

स्वार्थ बुद्धि से यह तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि हम क्यों सामाजिकता, सहकारिता के झमेले में पड़ें ? व्यक्तिगत मौज-मजे को ही क्यों न महत्व दें ? किन्तु यह दलील वे ही दे सकते हैं जो विवेक के लिए दरवाजे बन्द कर दें तथा तथ्यों की ओर से आँख बन्द कर लें । भारतीय मनीषी ही नहीं, पाश्चात्य विचारकों ने भी अनेक प्रकार के प्रयोग -परीक्षण के बाद यह तथ्य स्वीकार कर लिया है कि मनुष्य की मूल प्रवृत्ति ही ऐसी है कि वह सामाजिक जीवन, सामूहिकता, सहकारिता के बिना संतुष्ट नहीं रह सकता । सामूहिकता की परम्परागत पद्धतियों में विकृति आने लगे तो मनुष्य उन्हें बदल तो सकता है-नई पद्धतियाँ गढ़ सकता है, किन्तु उनकी सर्वथा उपेक्षा नहीं कर सकता । उसके बिना न तो उनका विकास सम्भव है और न वह उससे हितकर संतोष ही पा सकता है ।

मनुष्य की यह सामाजिक भावना कभी नष्ट होगी, ऐसा मानने का कोई भी आधार दिखाई नहीं देता । अतः परिवार-व्यवस्था का स्वरूप निर्धारण समाज और व्यक्ति दोनों की मौलिक आवश्यकता ही मानी जायेगी । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए जोशीले फतबों और उफान भरे नारों के स्थान पर परिवार-संस्था के स्वरूप पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना होगा ।

कुछ दिन पहले अनुभवहीनता के जोश और आवेश में यह प्रतिपादन शुरू हुआ कि संयुक्त परिवार-प्रणाली को तोड़ा जाय और उसके स्थान पर पति-पत्नी मात्र के छोटे-छोटे परिवार बसाये जायें । जब तक बच्चे समर्थ न हों, तब तक माँ-बाप उनका संरक्षण करें और जैसे ही वे विवाह और आजीविका की दृष्टि से समर्थ हो जायें, वैसे ही उन्हें अलग परिवार बसाने के लिए स्वतन्त्र कर दिया जाय । पाश्चात्य देशों में यह प्रयोग पिछले दिनों बड़े उत्साह के साथ हुआ है । योरोप, अमेरिका में यह संयुक्त कुटुम्ब प्रथा जहाँ-तहाँ ही दिखती है । अधिकांश व्यक्ति अपना छोटा परिवार ही बसाते हैं, अपने देश में भी उसका अनुकरण सुशिक्षित वर्ग में धीरे-धीरे जोर पकड़ता जाता है । ज्यादा पढ़ी-लिखी लड़कियाँ और नई रोशनी के लड़के सम्मिलित रहना नापसन्द करते हैं । वे घरवालों से अलग घर बसाने की चेष्टा करते हैं, ताकि सम्मिलित कुटुम्ब के बोझ, उत्तरदायित्व और नियन्त्रण से छुट्टी पाकर उन्हें अधिक सुविधा से दिन काटने का अवसर मिल जाये ।

यह अदूरदर्शितापूर्ण निर्णय शीघ्र ही भूल और पश्चाताप के रूप में सामने आ जाता है । नवदम्पत्ति का मौज-मजे का जोश थोड़े समय में ही ठण्डा हो जाता है । बढ़ती हुई पारिवारिक जिम्मेदारियाँ, हारी-बीमारी, प्रसव, बच्चों के पालन जैसी समस्याएँ उन्हें एकाकी जीवन की सीमाओं का बोध करा देती हैं तथा अपने परिवार की उपेक्षा करने वाले अन्य सहयोगी ढूँढते फिरते हैं ।

स्थूल समस्याओं का समाधान तो चिकित्सालय, प्रसूतिगृह, शिशुकेन्द्रों आदि के माध्यम से आंशिक रूप से निकल भी आता है, किन्तु मनुष्य की अपनत्व की भावना का उभार गहन आत्मीयता भरे पारिवारिक वातावरण के अभाव में अतृप्त ही रह जाता है । इस मनोवैज्ञानिक व्यथा से क्या जवान, क्या बुजुर्ग, सभी पीड़ा और कुण्ठा से भरा जीवन जीने के लिये बाध्य हो जाते हैं ।

आज पश्चिमी देशों में कोई भी पिता अपनी सन्तानों से सहायता की आशा नहीं करता, न ही सास-बहू की सेवा की अपेक्षा करती है । वृद्धों के रहने के लिये वृद्ध-भवन बनाए गये हैं, जहाँ राजकीय व्यय से बूढ़ों के रहने की उपयुक्त व्यवस्था की जाती है । तो भी वृद्ध-भवनों में रहने वाले वृद्धजन संतुष्टि का अनुभव नहीं कर पाते । आत्मीयता की प्यास इन वृद्ध-भवनों में कैसे बुझे ? जिन्हें जीवन भर पाला-पोसा, अपना अंग मानकर प्रत्येक साँस में जिनसे अभिन्नता की अनुभूति की, वे ही जीवन के सबसे नाजुक समय में, पूरी तरह पराये हो गये हैं, यह अनुभूति उन वृद्ध-भवनों के निवासी वृद्धों को मथती और सालती रहती है । निवास, भोजन और सामान्य दिनचर्या की सुन्दर व्यवस्था होने पर भी यह अभाव उन्हें बेचैन, उदास और दुःखी रखता है । अनेक पश्चिमी देशों में इन वृद्धजनों की चिन्ता दो प्रकार से की जा रही है-

(१) नागरिकों की औसत आयु बढ़ गई है, किन्तु कार्य से निवृत्ति (रिटायर) होने की अवस्था घट गई है । इसलिये बेकार बूढ़ों की संख्या बढ़ती जा रही है । समाज-शास्त्रियों और सरकारों को चिन्ता सता रही है कि इन बड़े-बूढ़ों का क्या किया जाये ?

(२) वृद्ध-भवनों में रहने वाले वृद्धों की एकाकी स्थिति, गहरी निराशा और घुटन को देखने वाले उनकी चर्चा सुनने-पढ़ने वाले युवकों-युवतियों पर इसका गम्भीर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है । उन्हें लगता है कि जिन बच्चों के लिये आज हम प्राण न्योछावर कर रहे हैं, कल वे वयस्क होते ही अपना स्वतन्त्र परिवार बसा लेंगे और हमें भी ऐसी ही एकाकी, घुटन और बेचैनी से भरी जिन्दगी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जीनी होगी । इससे उनका वर्तमान पारिवारिक वातावरण भी प्रभावित होता है । मुक्त वात्सल्य प्रेम में जैसे भीतर ही भीतर कहीं कोई रोड़ा-सा अटक जाता है । भीतर ही भीतर एक कचोट सालती रहती है ।

इसी कचोट के कारण आज वहाँ अनेक संस्थाओं का जन्म हुआ है । जिनमें से कुछ के सदस्य इन वृद्धों को अपना बड़ा भाई कहते हैं तो कुछ को 'चाचा' कहते हैं । ये सप्ताह में छुट्टी के दिन उन्हें अपने घर बुलाते या किसी होटल में ले जाते हैं, सगे बड़े भाई या चाचा जैसा सम्मान देते हैं, उपहार आदि भी देते हैं, ऐसा करते समय उनके स्वाभिमान को किसी भी प्रकार ठेस न लगे, इसका भी सतर्कतापूर्वक ध्यान रखते हैं । इन संस्थाओं का प्रभाव भी पड़ा है । वृद्धों के मन में आधुनिक सभ्यता में पल रहे मनुष्यों के प्रति, उन्हें कृतघ्न और संकीर्ण मान लेने के कारण जो घृणा का भाव आने लगा था, वह गलने लगा है । सर्वथा अपरिचितों का यह आत्मीय व्यवहार उन्हें मानवीय सम्वेदना के प्रति आशावादी बनाता है और कई बार वे गहरे अपनत्व की भावना से गद्‌गद हो जाते हैं । इन प्रयोगों को देखते हुये भी उस प्राचीन भारतीय संयुक्त परिवार व्यवस्था की श्रेष्ठता का स्मरण हो आता है, जिसमें वृद्धजनों का सदा सम्मान किया जाता था तथा प्रत्येक महत्वपूर्ण काम में उनका परामर्श अनिवार्यत: लिया जाता था ।

आकस्मिक विपत्तियाँ एवं दुर्घटनायें समाज में हमेशा होती रही हैं और भविष्य में भी उनसे मुक्त नहीं हुआ जा सकता । ऐसे अवसर आ पड़ें तो पृथक परिवार पर मानो वज्रपात हो जाता है । यदि किसी पृथक परिवार के प्रमुख की किसी कारण नौकरी छूट जाय, कारोबार रुक जाये अथवा दुर्घटनावश पंगु, अपंग हो जाय तो उन परिवारों की दशा कैसी शोचनीय हो जायेगी ? यह घटना उसके लिये बेहद चिंता का विषय बन जायेगी । नौकरी लगने, कारोबार बहाल होने अथवा किसी सहृदय की सहायता मिलने तक सारे परिवार का जीवन दूभर हो जायगा । यदि उसकी आर्थिक स्थिति खराब हुई तो बच्चों को भूखा मरने तक की नौबत आ सकती है, किन्तु सम्मिलित परिवार में यह कठिनाई नहीं होती । कुछ दिनों के लिए किसी के बैठ जाने से न तो उसे भूखा रहना पड़ता है और न बच्चों की फीस आदि ही रुकती है । वह अधिक चिन्तित हुए बिना आश्वासन के साथ अपनी जीविका फिर स्थापित कर सकता है ।

यह करुण चित्र, मात्र कल्पना नहीं है । सभी देशों में पंगु असमर्थ लोग समस्या बने हैं । इंग्लैण्ड में अधिकांश पंगुओं को उपयुक्त काम दिलाने की व्यवस्था सरकार द्वारा कर दी जाती है । तो भी वहाँ ४ प्रतिशत पंगु बेकार हैं । इन्हें सरकार की ओर से बेकारी भत्ता मिलता है । भारत में पंगुओं की संख्या १५ लाख के लगभग है । इनमें से ९ लाख ऐसे हैं, जिन्हें थोड़ा-बहुत काम में लगाया जा सकता है । बेकारी के भत्ते की व्यवस्था यहाँ अभी सम्भव नहीं दिखाई देती । ऐसी स्थिति में बेकार पंगुओं का जीवन-निर्वाह दूभर हो जायगा ।

इसी प्रकार, योरोप में सभी बेकार लोगों को बेकारी का भत्ता दिया जाता है । विशेषकर जब मजदूर बेकार हो जाते हैं, तो अनेक जीवन का साधन यह भत्ता ही होता है । भारत का मजदूर बेकार होते ही या तो घर की ओर दौड़ पड़ता है या फिर भीख का कटोरा सम्हालता है और दाने-दाने के लिये तरसता है, किसी तीव्र लू के थपेड़े से या तीखी शीत लहर की मार से मौत की गोदी में जा गिरता है । प्रतिष्ठित वर्ग की पारिवारिक व्यवस्था का प्रभाव गरीबों, कमजोरों पर भी पड़ता है । भारत के मजदूरों में भी वृद्धजनों की उपेक्षा की प्रवृत्ति प्रबलतर हो उठी तो बूढ़े या बेकार मजदूरों को भूखों ही मरना होगा । क्योंकि बेकारी के भत्ते की व्यवस्था का भार तो फिलहाल हमारी राष्ट्रीय सरकार उठा नहीं सकती ।

इसलिये वृहद पारिवारिक-भावना को नष्ट करने पर होने वाले इन गम्भीर परिणामों का विचार भी प्रत्येक जागरूक नागरिक को करना ही होगा । जहाँ संयुक्त परिवार-प्रणाली में बूढ़े-बीमार, पंगु-लाचार, पागल-बेकार सभी ससम्मान जीवन जी सकते हैं, वहीं अपनी बीबी और नाबालिग बच्चों का ही अपना परिवार मान बैठने की संकीर्णता, समाज में इन गम्भीर समस्याओं की सृष्टि करेगी, जिनका प्रभाव समाज के प्रत्येक घटक पर पड़ेगा ।

भारत की समाज व्यवस्था में विदेशों की अपेक्षा और भी जटिलताएँ हैं । विधवा, विधुर, परित्यक्ताओं जैसी समस्यायें भारत की अपनी हैं । संयुक्त परिवार प्रथा हो तो विधवा को आर्थिक संकट और विधुरों को गृह-व्यवस्था की कठिनाई नहीं पड़ती । वे भी उसी खाँचे में समा जाते हैं और निर्वाह क्रम किसी प्रकार चलता रहता है । परित्यक्तायें और पति-विमुक्त महिलाएँ अपने बच्चों समेत मैके चली जाती हैं और उस परिवार का भी गुजारा उसी शृंखला में बँधकर होने लगता है । ऐसी महिलाएँ एकाकी अपना भार स्वयं तो उठा ही नहीं पातीं-उनका एकाध भाई हो तो वह भी अकेले इस अतिरिक्त भार को सँभालने में असमर्थ रहता है ।

पाश्चात्य देशों में जो अनुभव हुए हैं उनके आधार पर वहाँ के विचारक भी परिवार की संयुक्त प्रणाली विकसित करने के लिये चिंतित, आतुर और प्रयत्नशील हैं । वहाँ भी पृथक परिवारों को असफल प्रयोग माना जाने लगा है । उनके कारण उत्पन्न समस्याओं का समाधान ढूँढ़ने के लिए सरकारी एवं गैर सरकारी प्रयास विभिन्न स्तरों पर करने पड़ रहे हैं । फिर भारत जैसे देश में जहाँ चिकित्सा, प्रसूति, शिशुपालन, अपंग एवं बेरोजगारी को भत्ता देने जैसी व्यवस्थाएँ नहीं हैं, विधवा, परित्यक्ताओं जैसी अन्य नई समस्यायें अलग से हैं, वहाँ पृथक परिवार प्रथा को किस आधार पर उपयोगी ठहराया जा सकता है ।

यह सब परिस्थितियाँ अवांछनीय हैं, कोई नहीं चाहता कि वह किसी पर आ पड़े । किन्तु संसार चक्र में उनसे कोई मुक्त नहीं रह पाता । मनुष्य पर लद पड़ने वाली उपर्युक्त अनचाही समस्याओं के समाधान के अतिरिक्त

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्ति, परिवार तथा समाज की प्रगति के विधेयात्मक पक्ष से देखने पर भी संयुक्त परिवार प्रणाली विभिन्न दृष्टियों से उपयोगी और लाभकारी हैं ।

यह मोटा नियम है कि यदि दस व्यक्ति इकट्ठे रहें, तो उन पर जितना खर्च आता है, उसकी अपेक्षा दसों के अलग-अलग रहने में कहीं अधिक खर्च आयेगा । मानिये, एक कुटुम्ब में चार भाई हैं । उनके अनेक बच्चे हैं । यदि वे सब एक साथ मिलकर रहते हैं तो उनका खाना-पीना एक ही चूल्हे पर हो जायेगा । खर्च कम आयेगा । यदि वे चारों भाई अलग-अलग रहने लगें तो उनके लिए चार मकानों की आवश्यकता होगी, चार चूल्हे अलग-अलग जलेंगे । गृहस्थी की सारी व्यवस्था अलग-अलग करनी होगी । इस प्रकार उन सब पर खर्चे का भार अधिक पड़ेगा । रोशनी, उपकरण, साज-सामान का अलग प्रबन्ध करने से यदि उन चारों को अलग-अलग दो-दो सौ रुपया खर्च आता है तो मिलकर रहने पर सबका काम छह सौ रुपया में ही चल जायेगा । इस प्रकार पूरे परिवार को तो दो सौ रुपया प्रतिमाह बचत का लाभ होगा ।

यदि परिवार शिक्षित, संभ्रान्त और सम्पन्न हुआ, तब खर्च का स्तर बढ़ जायेगा । वहाँ मिलकर रहने से एक रेडियो, एक अखबार, एक वाचनालय तथा एक पुस्तकालय से सबका काम चल सकता है, वहाँ इन सबकी व्यवस्था चार जगह करनी होगी । हाउस-टैक्स, वाटर-टैक्स तथा आय-टैक्स अलग-अलग देना होगा । एक अतिथि पर चारों को अलग-अलग चार जगह खर्च करना होगा । एक परिवार के बच्चों को स्कूल में एक साथ पढ़ाने से 'कन्सेशन' की सुविधा रहती है, अलग-अलग रहने से यह सुविधा समाप्त हो जाती है । एक कक्षा में पढ़ने वाले बच्चों की किताबों के एक 'सेट' से ही काम चल सकता है । पृथक रहने से उन सबके लिये अलग से पुस्तकें खरीदनी पड़ेंगी । अलग रहने से इस प्रकार के और न जाने कितने खर्चे होते हैं, जो सम्मिलित रूप से रहने में बच जाया करते हैं, ऐसी बचतें किसी भी परिवार की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ बनाने का आधार बनती हैं ।

आर्थिक तंगी का विभक्त परिवारों पर अनिष्टकारी प्रभाव पड़ रहा है । खर्च में कटौती की चेष्टा करने पर रहन-सहन और कपड़े-लत्तों में अधिक हेर-फेर की गुंजाइश नहीं निकलती । मकान के भाड़े और यातायात के व्यय भी बढ़ते ही जाते हैं । नतीजा यह होता है कि कटौती भोजन-सामग्री में की जाती है, स्वास्थ्यकर पदार्थों का प्रयोग वैसे भी हमारे यहाँ कम ही हो पाता है । घी-दूध दुर्लभ ही हो चले हैं । भोजन के सामान भी शुद्ध नहीं मिलते । ऊपर से यह कटौती की स्थिति । इसका सीधा प्रभाव स्वास्थ्य पर पड़ता है ।

ऐसी स्थिति में भोजन के साथ ही जिन मुद्दों में कटौती की जाती है, वे हैं स्वाध्याय के लिए अनिवार्य श्रेष्ठ पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ । इसके परिणामस्वरूप स्वाध्याय से वंचित परिवार के सदस्य पास-पड़ौस में चल रहे सिनेमा के गानों का ही स्वाध्याय-मनन आदि करते रहते हैं । दिमाग को तो खुराक चाहिए ही, श्रेष्ठ पुस्तकें, उत्तम विचार न मिलें, तो वह खाली तो बैठा नहीं रहेगा ।

सुसंस्कृत परिवार में भोजन के लिए भी थोड़ा बहुत खर्च करने की व्यवस्था सामान इकट्ठा खरीदने तथा ईंधन आदि की बचत द्वारा हो सकती है । पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ भी पूरे परिवार के लिये इकट्ठी आने पर अलग-अलग जितना खर्च आता है, उससे यह खर्च बहुत कम हो जाता है ।

आय के साधन बढ़ाने में भी संयुक्त परिवार बहुत सहायक हो सकते हैं । आज पैसे की तंगी की समस्या कम नहीं हैं । महिलाएँ भी इस हेतु काम ढूँढ़ने का प्रयत्न करती हैं । परन्तु स्थान सीमित ही होते हैं । सभी को पर्याप्त आमदनी वाला काम मिल नहीं पाता । संयुक्त-परिवार में अपने लघु-उद्योग चलाये जा सकते हैं । जो पैसों की कमी की भी समस्या हल करेंगे, समय और श्रम के सदुपयोग की व्यवस्था भी हो जायेगी ।

संयुक्त-परिवार में एक सुविधा सहकारी स्टोर के रूप में अपनी घरेलू जरूरतों की सभी वस्तुएँ इकट्ठी खरीद सकते हैं । इससे वस्तुएँ अच्छी भी मिल जायेंगी और सस्ती भी । अलग-अलग लोगों को अलग-अलग खरीद करने में जो ढेरों श्रम व समय बरबाद होता है, उसकी बचत हो सकेगी ।

संयुक्त परिवार की शक्ति एवं साख बढ़ जाती है । चार भाई जब मिलकर रहते हैं, तब उनकी शक्ति चार गुनी होती है और समाज में उनका प्रभाव बढ़ जाता है । कोई विरोधी जल्दी अहित करने का साहस नहीं कर पाता । इसके विपरीत जब सब अलग-अलग रहते हैं तो उनकी शक्ति तथा साख घट जाती है । उनमें से किसी को भी कोई दुष्ट कष्ट पहुँचा सकता है, कोई सबल व्यक्ति दबाने की कोशिश कर सकता है ।

आपस में फूट रहने से समाज में उनका आदर तथा विश्वास उठ जाता है । लोग यही कहने लगते हैं कि जब यह भाई-भाई मिलकर नहीं रह सकते तब भला दूसरों के साथ क्या सहयोग कर सकते हैं ? समाज का यह अविश्वास व्यक्ति के लिए न केवल हानिकारक अपितु कष्टकर भी होता है । बुद्धिमान विरोधी किसी परिवार को परास्त करने के लिये फूट का शस्त्र इसीलिये सबसे अधिक उपयोगी समझते हैं । परिवार में फूट डाल दो, भाई-भाई में विरोध पैदा कर दो, परिवार का पतन हो जायेगा और इस प्रकार साँप मर जायेगा और लाठी टूटने से बच जायेगी । संगठन से शक्ति और फूट से निर्बलता पैदा होती है, यह सर्वविदित है ।

सम्मिलित परिवार में किसी एक के रोगी हो जाने से यदि एकाध व्यक्ति बराबर उसकी परिचर्या में रहे तो भी किसी काम में बाधा नहीं आती । रोगी को बड़ी राहत मिलती है । उसकी देखभाल ठीक से हो जाती है । उसकी दवा तथा पथ्य का प्रबन्ध समय पर हो जाता है । एकाकी परिवारों में जब कोई बीमार पड़ जाता है तो एक मुसीबत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

खड़ी हो जाती है । परिवार-प्रमुख अकेला होने से परेशान तो होता ही है, साथ ही वह काम-काज के कारण बीमार की तीमारदारी भी ठीक से नहीं कर पाता और रोगी जहाँ सप्ताह भर में ठीक हो जाना चाहिए, उसे डेढ़-दो सप्ताह लग जाता है । यदि परिवार प्रमुख ही बीमार पड़ जाये, तब तो मानो सारे परिवार की चलती हुई गाड़ी ही रुक जाती है । परेशानी का कोई ठिकाना ही नहीं रहता ।

प्रसव के समय सम्मिलित परिवारों में स्त्रियों को बड़ी सुविधा रहती है । घर पर अनेक स्त्रियाँ सेवा-सहायता के लिये उपलब्ध हो जाती हैं । उसे प्रसव अथवा सौर काल में किसी प्रकार की असुविधा नहीं होती । घर की अकेली स्त्री या तो रिश्ते से किसी को बुलाये और घर की सारी व्यवस्था उसे सौंपकर हर तरह से उस पर निर्भर हो जाये अथवा अस्पताल में जाकर अनेक सप्ताहों के लिये घर को सूना करे और पति तथा बच्चों के खाने-पीने आदि की अव्यवस्था पैदा करे । घर की अकेली स्त्रियों को प्रसव काल में असुविधा होती है । कुछ समय के लिये बच्चे निःसहाय जैसे हो जाते हैं और उनके लिये पिता को कुछ समय माता का कर्तव्य पूरा करने का अस्वाभाविक काम करना पड़ता है । फिर भी न समय पर खाना हो पाता है न उनकी देख-भाल । जच्चा भी बेचारी समय पर पथ्य अथवा खाद्य नहीं पा पाती ।

ऐसे कठिन समय में एकाकी परिवारों की दशा बड़ी दयनीय तथा कष्टदायक हो जाती है । सम्मिलित परिवारों में यह असुविधा अथवा कठिनाई नहीं रहती । वहाँ तो जच्चा को सँभालने और बच्चों तथा पुरुषों की खोज-खबर लेने के लिये अनेक स्त्रियाँ होती हैं । लड़के-लड़कियों के शादी-विवाह में जो दिक्कत पृथक परिवारों में होती है वह सम्मिलित परिवारों में नहीं होती । जहाँ सम्मिलित परिवारों में उसकी व्यवस्था, देखभाल तथा प्रबन्ध करने वाले घर के अनेक लोग होते हैं जो पूरी दक्षता एवं जिम्मेदारी से काम करते हैं, वहाँ पृथक परिवारों में ऐसे अवसर पर या तो नौकरों का प्रबन्ध करना पड़ता है, अथवा गैर लोगों के कृपाधीन रहना पड़ता है । दूसरे आदमी कितने ही ईमानदार क्यों न हों, किन्तु उनकी जिम्मेदारी परिवार के सदस्यों के समान गम्भीर नहीं हो पाती । ऐसी स्थिति में बेचारा परिवार-प्रमुख अकेला काम करते-करते और दौड़ते-दौड़ते अधमरा हो जाता है किन्तु फिर भी वह सुन्दरता तथा शोभा नहीं बन पाती जो सम्मिलित परिवार में रहती है ।

कहा जा सकता है कि संयुक्त-परिवार में मात्र अपंगों, दुर्बलों, रुग्णों, असमर्थों और अविकसितों को ही लाभ है । समर्थ को तो हानि ही है । अतः जो सक्षम, समर्थ हैं, वे संयुक्त-परिवार में रहकर अपने व्यक्तित्व-विकास की व्यापक सम्भावना को क्यों अवरुद्ध करें ? उनके पूरे विकास से उनका स्वयं का भी अधिक लाभ होगा और समाज को अधिक सहायता-अनुदान उपलब्ध होगा ।

वस्तुस्थिति ऐसी होती, तो यही कहा माना जाता । पर सच्चाई यह है कि योग्य व्यक्ति को तो संयुक्त परिवार में विशेष लाभ प्राप्त होता है । हर व्यक्ति की रोज-मर्रा की सामान्य आवश्यकतायें पूरी करने में ढेरों समय खराब करना पड़ता है । संयुक्त-परिवार में योग्य व्यक्ति की सामान्य आवश्यकताएँ की पूर्ति के लिये अनेक परिजन हमेशा तत्पर रहते हैं । इससे उसे अपने मुख्य गुणों के विकास के लिये अधिक समय उपलब्ध होता रहता है । अलग रहने पर उसे छोटी-मोटी व्यवस्थाओं में ही उलझे रहना पड़ता । घर की सामान्य जरूरतों की पूर्ति में ही समय का अधिकांश खर्च करना होता । सुसंस्कृत संयुक्त परिवार में उसकी विशेषता के प्रति आदरभाव विद्यमान रहता है । सभी उसे पारिवारिक प्रतिष्ठा का एक आधार मानते और उस पर गर्व करते हैं, तथा उसके लिए सभी समुचित व्यवस्थाएँ कर दी जाती हैं । लेखक, कलाकार, संगीतज्ञ, दार्शनिक, वैज्ञानिक, डाक्टर, अफसर, प्रतिभाशाली छात्र-छात्रा आदि को संयुक्त-परिवार के सदस्यों द्वारा अपने मुख्य गुण के विकास के लिए अधिकाधिक समय तथा अन्य समस्त सम्भव सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं ।

संयुक्त-परिवार प्रथा में सब सदस्यों का उपार्जन एक जगह इकट्ठा होता है और उस सम्मिलित पूँजी से बड़े व्यवसाय आसानी से आरम्भ हो जाते हैं । नौकर महँगे पड़ते हैं, ईमानदार भी नहीं होते, दिन-रात जुटे भी नहीं रहते, अधिक लाभ में उतनी दिलचस्पी भी नहीं होती, इसलिये नौकरों की अपेक्षा घर के आदमी सदा अधिक लाभदायक सिद्ध होते हैं । घर की पूँजी, घर का श्रम जुट जाये तो किसी भी व्यवसाय में लाभ होगा । किसान के लिये तो यह जीवन-मरण का प्रश्न है । उसके पास घर, खेत और पशुओं के इतने अधिक काम रहते हैं कि उनमें छोटे बच्चे और बूढ़े, असमर्थ भी बहुत सहायता कर सकते हैं । सबके मिले हुये श्रम से ही कृषि और पशु-पालन लाभदायक रहता है अन्यथा नौकर रखकर मामूली किसान रोटी भी नहीं पा सकता ।

मनुष्य की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है अपने समान व्यक्तियों की मित्र मण्डली का निर्माण । संयुक्त-परिवार में तो अपने परिजनों में ही हर वर्ग के व्यक्ति को घर में ही मित्र मिल जाते हैं । वह व्यवस्था न होने पर लोग मित्र-मण्डली की चाह में अवसरवादियों, स्वार्थियों से आये दिन धोखा खाते और दुःख पाते रहते हैं । फिर उनके आर्थिक स्तरों में अन्तर होता है तो निर्धन वर्ग वाला आत्महीनता से बचने के लिये अपना आर्थिक संतुलन बिगाड़ देता है । संयुक्त-परिवार में इस प्रकार की विकृतियों से बचे रहकर भी सहज ही हमजोलियों, मित्रों के बीच उन्मुक्त हर्षोल्लास भरा जीवन जीने का अवसर मिल जाता है ।

बच्चों को खेलने से लेकर पढ़ाई-लिखाई में एक दूसरे का मार्गदर्शन अनायास मिलता रहता है । बहू-बेटियाँ एक दूसरे की चतुराई तथा विशेषताओं का लाभ सहज ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उठाती रह सकती हैं । बड़ों को छोटों के द्वारा सम्मान एवं सेवा तथा छोटों को बड़ों के संरक्षण तथा अनुभवयुक्त मार्गदर्शन का लाभ सतत मिलता रहता है । यह सब लाभ व्यावहारिक भी हैं तथा भावनात्मक तुष्टि भी पर्याप्त मात्रा में इनके साथ जुड़ी रहती है ।

आत्मीयता और सामूहिकता के लाभ सर्वविदित हैं । बड़े सेठ साहूकारों, संस्थाओं, फर्मों का निरीक्षण करने से यह तथ्य प्रकट हो जाता है कि उनकी उन्नति का मूल आधार संगठन तथा सहयोग ही रहा है । बड़ी समितियाँ विशेष लाभकारी सिद्ध होती हैं । बैंक सामूहिकता के लाभ के आधार पर ही उपयोगी सिद्ध होते हैं ।

सुव्यवस्थित संयुक्त परिवार में यह सामूहिकता तथा सहकारिता सहज सुलभ होती है । इससे परिवार के सभी सदस्यों को लाभ मिलता है । आन्तरिक-परिष्कार में भी सुसंस्कृत परिवार के वातावरण की भूमिका विशेष सहायक होती है और भौतिक उत्कर्ष में भी । इस प्रकार संयुक्त-परिवार अभ्युदय-उत्कर्ष का सर्वश्रेष्ठ माध्यम है ।

संयुक्त-परिवार के आधार और व्यवहार

सम्मिलित परिवारों तथा कुटुम्बों में जो सुख, सुविधा तथा उन्नति करने का अवसर रहता है वह पृथकता में नहीं । भारतीय संस्कृति सदैव से सम्मिलित परिवारों के आदर्श को ही प्रोत्साहन देती रहती है । किन्तु अपने यहाँ कुछ समय से इस प्रवृत्ति का ह्रास हो गया है । यही कारण है कि परिवारों की दशा दिनों-दिन गिरती जा रही है और वे बिखरते और क्षीण होते जा रहे हैं । इस परिस्थिति से उबरने तथा पारिवारिक जीवन को सुख-शांतिमय बनाने के लिए सम्मिलित परिवारों का लाभ और टूटे-फूटे परिवारों की हानियाँ समझनी और यह भूल सुधारनी होगी ।

सम्मिलित परिवारों में एक नहीं अनेक लाभ तथा सुविधाएँ रहती हैं । संगठन तथा सहयोग के गुणों से जो लाभ होते हैं वे सब सम्मिलित परिवार प्रथा में होते हैं । इस प्रथा से परिवार की शक्ति तथा प्रतिष्ठा बढ़ती है । छोटे-बड़े सब सदस्यों को विश्वास तथा आश्वासन बना रहता है । अपंग, अपाहिज, असमर्थ तथा न कमा सकने वाले सदस्यों का जीवन भी आराम से कट जाता है । रोगियों, प्रसूताओं तथा विधवाओं को सुविधा तथा साहस बना रहता है । आपत्ति तथा काम-काजों में एक घर के बहुत से लोगों की शक्ति तथा सहयोग उपलब्ध रहता है । बच्चों की उचित देखभाल रहती है । पारस्परिक प्रेम, त्याग तथा अनुशासन का भाव बढ़ता है । आर्थिक दृष्टिकोण से बचत तथा लाभ होता है । सम्मिलित परिवार प्रथा हर दृष्टिकोण से उचित तथा लाभकारी है ।

किन्तु अच्छी बात भी तभी अच्छी होती है और तब तक ही अच्छी बनी रहती है जब तक कि उसकी अच्छाई के वे नियम पूरी तरह से पालन किये जाते रहें जो अच्छाई के आधार होते हैं । कोई भी व्यवस्था बिना नियमों के नहीं चल सकती । फिर चाहे वह व्यवस्था अपने आप में कितनी ही अच्छी एवं उपयोगी क्यों न हो ? अस्तु, हमें संयुक्त-परिवारों के विघटन के कारण और उनके निवारण के आधार खोजने होंगे ।

परिवारों के विघटन तथा उनमें होने वाली कलह का एक कारण तो असमानता का व्यवहार हो सकता है । अतः छोटे व बड़ों की मर्यादा तथा महत्व को ध्यान में रखते हुए, उचित यही है कि सबके साथ समानता का व्यवहार किया जाये । ऐसा न करने से विषमता बढ़ती और परिवार में फूट पड़ती है । आपस में तनाव तथा कहा-सुनी हो जाती है ।

अनेक बार परिवार में ऐसे सदस्य भी होते हैं जो कुछ कमा नहीं सकते । नासमझ घरों में उनके साथ असमानता का व्यवहार किया जाता है । यह प्रवृत्ति अनुचित है । किसी हद तक एक-आध डिग्री का तो अन्तर चल सकता है अधिक नहीं । अशक्तों तथा वृद्धों की सद्भावनाओं में बड़ी शक्ति होती है, उनकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए ।

कौन कितना कमाता है, सम्मिलित परिवारों में इसका कोई महत्व नहीं होना चाहिए । परिवार का एक सम्मिलित कोष होना चाहिए जिसमें सब अपनी कमाई यह सोचकर जमा करें कि मैं जो कुछ कमाता हूँ अपने लिये नहीं, पूरे परिवार के लिये कमाता हूँ । मेरी सारी आय परिवार की आय है, उस पर मेरा कोई व्यक्तिगत अधिकार नहीं है । इस भावना से न तो किसी में अहंभाव आयेगा और न पारिवारिक व्यय की समानता पर क्षोभ होगा । असमान कमाई पर भी समान कमाई सुविधाओं के अधिकार पर सन्तुष्ट रहना परिवार में एकता और सद्भाव बनाये रहने का एक सफल मंत्र है, इसका उपयोग किया ही जाना चाहिए ।

एकतन्त्रता भी बहुत बार परिवारों में विघटन का कारण बनती है । जो मुखिया है, प्रधान है, सूत्रधार है वह अपने को पूरे परिवार का स्वामी और अन्य सदस्यों को अपना अधीनस्थ मान बैठता है । सब पर हुक्म चलाना और अपनी हर इच्छा को मनवाना अपना अधिकार मान बैठता है । इससे दूसरों में अश्रद्धा तथा अरुचि का भाव पैदा हो जाता है और वे उस एकतन्त्र शासन अथवा अनुशासन के भार से मुक्त होकर आश्वस्त होने के लिये पृथक हो ठीक समझते हैं ।

इसके लिए सबसे सरल तथा उचित उपाय यह है कि उसमें प्रजातन्त्र जैसी पद्धति चलाई जाये । परिवार व्यवस्था में सभी वयस्क सदस्यों की राय को स्थान होना चाहिए । परिवार के आय-व्यय अथवा अन्य समस्याओं के हल के लिए किन-किन बातों पर किस प्रकार खर्च किया जाय इसके निर्णय में सबका परामर्श होना चाहिए ।

इसके अतिरिक्त परिवार की अन्य समस्याएँ, कठिनाइयाँ तथा प्रश्न भी हो सकते हैं । जैसे बच्चों के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

झगड़े, स्त्रियों का मनमुटाव और पुरुषों की गलतफहमी । इनके निराकरण के लिए सायंकाल सबकी गोष्ठी हो, सब लोग अपनी शिकायतें तथा आपत्तियाँ रखें । सब लोग उन पर निष्पक्ष रूप से विचार करें और उनका औचित्य-अनौचित्य देखकर पूर्ति की जाय या समझा-बुझा दिया जाय । ऐसा करते रहने से समय-समय पर मनो-मालिन्य तथा भ्रम दूर होते रहेंगे और पारस्परिक सद्भाव बना रहेगा जो पारिवारिक एकता बनाये रखने में बहुत उपयोगी रहेगा ।

इसके साथ एक और भी महत्वपूर्ण बात है-लोगों के स्वभाव तथा संस्कार परिष्कृत होने की । इसके लिए नित्य प्रति परिवार की गोष्ठी होती रहनी चाहिए जिसमें पारस्परिक प्रेम, सहयोग तथा मिल-जुलकर रहने का लाभ और टूट-फूट की हानियों पर चर्चा होती रहनी चाहिए । इससे परिवार में परिष्कृत वातावरण बनता चला जायगा और जल्दी ही वह समय आ जायेगा जबकि हर सदस्य दूसरे के लिए अधिक से अधिक त्याग करने के लिए तत्पर रहने लगेगा । तब परिवार मिला ही नहीं रहेगा, उसमें सुख-शांति की वृद्धि भी होगी ।

यों एक दम्पत्ति से उत्पन्न बच्चे, उनकी धर्मपत्नियाँ, बहन और शिशु सब मिलकर एक सम्मिलित कुटुम्ब होता है । संगठित परिवार की संक्षिप्त और स्थूल व्याख्या इतनी ही है, किन्तु सम्मिलित परिवार की आत्मा उससे बिल्कुल भिन्न है । सामूहिकता का अर्थ यह है कि हर व्यक्ति औरों के हित स्वार्थ और सुख में अपना यथार्थ स्वार्थ सन्निहित देखे । सबकी भलाई में अपनी भलाई, सबकी समुचित समुन्नति में अपनी सुख-समुन्नति के दर्शन करे ।

जिस मानव समूह में एक-दूसरे का सुख-दु:ख अपना सुख-दुख न बन सका, वहाँ पारिवारिक भावना नहीं मानी जायेगी । पशु-पक्षी एक साथ रहते हुए भी इसी आत्मभाव के अभाव में पारिवारिक नहीं माने जाते । पारिवारिक जीवन का लक्षण है-'प्रेम, आत्मीयता, सहयोग, सहायता, संवेदना, सद्भाव तथा सबके प्रति यथायोग्य व्यवहार, सबकी मंगल-कामना, सबकी सुख-सुविधाओं का विचार आदि के सात्विक गुण ।'

परिवार का अर्थ है-एक दूसरे को सांसारिक सुख में सहृदयता के साथ आत्मोन्नति में यथासाध्य सहयोग करना । जहाँ प्रत्येक अपने स्वार्थ का ही ख्याल रखता हो वहाँ परिवार कहाँ ? वहाँ तो पाशविक समूह जैसी भावना ही समझना चाहिए । परिवार की प्रतिष्ठा-हमारी प्रतिष्ठा, परिवार की उन्नति- हमारी उन्नति, उसकी समृद्धि-हमारी समृद्धि और उसकी लाभ-हानि हमारी लाभ-हानि है, ऐसी आत्म-भावना पारिवारिकता का विशेष लक्षण है ।

परिवार एक पवित्र तथा उपयोगी संस्था है । इसमें मानव की सर्वांगीण उन्नति का आधार, सहयोग-सहायता और पारस्परिकता का भाव रहता है । यह भाव वह शक्ति है जिसके आधार पर मनुष्य आदि जंगली स्थिति से उन्नति करता-करता आज की सभ्य स्थिति में पहुँचा है । सहयोग की भावना ही मनुष्य जाति की उन्नति का मूल कारण रही है । एकता, सामाजिकता, मैत्री आदि की सहयोगमूलक शक्ति ने ही आज मानव सभ्यता को उच्चता पर पहुँचा दिया है ।

आज भी तो पूरा समाज सहयोग और पारस्परिकता के आधार पर ही चल रहा है । यदि समाज से सहयोग की भावना नष्ट हो जाय तो तुरन्त ही चलते हुए कल-कारखाने, होती हुई खेती और बढ़ती हुई योजनाएँ व विकास पाती हुई कलाएँ, शिल्प, साहित्य आदि की प्रगति रुक जाय और कुछ ही समय में समाज जड़ता से अभिभूत होकर नष्ट हो जाय ।

पारिवारिकता की भावना का सामाजिक चरित्र पर कितना गहरा असर पड़ता है, यह समझने के लिए समाज के विभिन्न वर्गों का अध्ययन किया गया है । देखा गया है कि जिन जातियों में पारिवारिकता स्थिरता है, उनमें बहू-बेटियों की इज्जत की सुरक्षा को अत्यधिक महत्व दिया जाता है । साथ ही उनमें श्रम व पुरुषार्थ की गरिमा को भी उतना ही महत्व दिया जाता है । उदाहरण के लिए, खेतिहर मजदूरों में श्रमशीलता की प्रवृत्ति को ही महत्व दिया जाता है । खेतों में दिन-रात खपना, घाम-शीत वर्षा-आतप सहना वहाँ शर्म की नहीं, गौरव की बात मानी जाती है । यह सब विशेषताएँ सच्चरित्र समाज के गठन के लिये अति उपयोगी हैं ।

इसके विपरीत कुछ पिछड़े वर्गों में जिनमें पारिवारिक विशृंखलता है, उनमें चारित्रिक दोष प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं । बहू-बेटियों की इज्जत बेचना या लूटना उनके लिये सामान्य बात होती है । वे श्रम सद्भाव द्वारा आजीविका कमाने की अपेक्षा अपराध वृत्तियों की ओर उन्मुख पाये जाते हैं ।

ऐसे अनेक सर्वेक्षण देश-विदेश के विभिन्न समाज-शास्त्रियों ने अनेक देशों में किए हैं । उन विभिन्न व्यक्तियों द्वारा भिन्न-भिन्न स्थानों पर किए गये स्वतन्त्र प्रयोगों के निष्कर्ष एक ही प्रकार के निकले हैं ।

परिवार व्यवस्था की इस शक्ति को समझ लेने के कारण पाश्चात्य विचारक संयुक्त परिवार प्रथा को किसी न किसी रूप में पुनर्जीवित करने के लिये व्याकुल हैं । वर्तमान पारिवारिक व्यवस्था की असफलता तथा उससे उत्पन्न पीड़ा को वे नयी परिवार व्यवस्था के जन्म के पूर्व की 'प्रसव पीड़ा' मानने लगे हैं । योरोप के आधुनिक चिंतक यह स्वीकार करने लगे हैं कि समाज व्यवस्था के नैतिक ह्रास के मूल में विशृंखलित परिवार व्यवस्था ही है । यदि नयी पीढ़ी को समुचित पारिवारिक प्रशिक्षण मिले, स्वस्थ सहयोगी वातावरण में विकास का अवसर मिले तो संयत और जिम्मेदार नागरिकों की कमी देखते-देखते पूरी हो सकती है ।

सम्मिलित परिवार प्रथा की उपयोगिता और महत्ता सर्वविदित है, किन्तु प्रारम्भ में कहा जा चुका है कि उसके

लिये परिवार के सदस्यों में प्रगाढ़ अपनत्व तथा सहकारिता, उदारता जैसे गुणों की अनिवार्य आवश्यकता है । दैववश यदि परिवार के सदस्यों में आंतरिक खिंचाव अथवा स्वार्थपरता पनप जाय तो उन्हें जबरदस्ती बाँध कर रखना लाभ के स्थान पर हानि का कारण बन जाता है । संतुलन बिगड़ जाने से परिवार के कुछ सदस्य पिसते और कुछ मजा करते हैं । कुछ अहंकार और स्वेच्छाचार की वेदी पर जा बैठते हैं और कुछ को कोल्हू के बैल की तरह दीन-दयनीय स्थिति में रहना पड़ता है । कुछ पूरी उच्छृंखलता बरतते हैं और कुछ सहन करते-करते ही दम घुटाते रहते हैं, कुछ को फिजूलखर्ची में संकोच नहीं होता, कुछ दवा-दारू जैसी अनिवार्य आवश्यकताओं तक के लिये पैसे-पैसे को मुहताज रहते हैं । असहयोग और मालिन्य से विषाक्त आज के संयुक्त परिवार मात्र ढकोसला बनकर रह रहे हैं । इस स्थिति में घर का हर सदस्य असंतुष्ट देखा जाता है ।

संयुक्त परिवार तभी सराहनीय और लाभदायक हो सकते हैं, जब उसके सभी सदस्य अपने-अपने कर्तव्य और उत्तरदायित्वों को ठीक तरह समझें और निबाहें । परिवार के सदस्यों की ऐसी मनोभूमि न हो तो यह मानना चाहिए कि सामूहिकता के बड़े आदर्श वहन करने की क्षमता परिजनों में नहीं है । वह क्षमता विकसित करने के लिए उन्हें आपद् धर्म के रूप में छोटे समूहों में बाँट देना उचित है । आंतरिक स्नेह सूत्र बिल्कुल टूट जायें इसके पूर्व ही उन्हें छोटी इकाइयों में बाँट देना उचित होता है । इन अवांछनीय परिस्थितियों के अतिरिक्त नौकर-पेशा व्यक्तियों को मजबूरन ही संयुक्त परिवार से अलग रहना पड़ जाता है ।

लेकिन इन सब तथ्यों के बावजूद संयुक्त परिवार के लाभों को अस्वीकार नहीं किया जा सकता । अस्तु, जहाँ किन्हीं भी कारणों से रक्त सम्बन्धों के आधार पर परम्परागत संयुक्त परिवार व्यवस्था न चल पाये वहाँ उसकी नयी पद्धतियाँ लागू की जा सकती हैं । इस दिशा में देश-विदेश में अनेक सफल प्रयोग हुए हैं ।

भारत में इसके लिए छोटे-छोटे परिवारों की संयुक्त व्यवस्था करके वृहत्तर परिवार-लार्जर फैमिली बनाने का क्रम अपनाया जाना चाहिए । यह नितान्त सरल सम्भव और व्यावहारिक है कि एक मुहल्ले के कुछ लोग मिलकर एक सम्मिलित रसोई घर बना लें । बारी-बारी से उन घरों की स्त्रियाँ भोजन बनाया करें और शेष को अन्य उपयोगी कार्य करने के लिए अवकाश मिल जाया करे । सौ आदमियों का भोजन बनाने के लिये पाँच-सात महिलाएँ पर्याप्त हो सकती हैं । जबकि वर्तमान प्रचलन के अनुसार हर स्त्री अपने औसतन चार-पाँच आदमियों के परिवार के लिए ही चूल्हा फूँकने में लगी रहती है । यदि एक स्त्री का भोजन बनाने का कार्य १०-२० व्यक्तियों की आवश्यकता पूरी कर सकता है तो उतने से काम के लिए चार-पाँच रसोई बनाने वालों का श्रम क्यों बर्बाद किया जाय ? हर आदमी अपनी औरत से अपने लिए भोजन बनवाये, हर स्त्री अपने मर्द के लिए ही भोजन बनाये, यह बड़ी संकीर्ण और सामन्ती दुष्प्रवृत्ति है । इसमें स्वार्थपरता और अहमन्यता का पुट है । यह प्रवृत्ति पनपती, परिपक्व होती रहे तो उसकी प्रतिक्रिया विष वेल की तरह अनेक शाखा-प्रखाशाओं में फूटती है और ऐसी विकृतियाँ उत्पन्न करती है, जिसमें पूरे समाज को भयंकर क्षति उठानी पड़े ।

उचित यही है कि पुरानी संयुक्त परिवार पद्धति को अब वैज्ञानिक और व्यावहारिक आधार पर पुनर्जीवित किया जाय । अर्थशास्त्र का तकाजा है कि छुट-पुट अलग-अलग उत्पादनों की अपेक्षा एक कारखाना लगाकर बड़ा उत्पादन किया जाय । यह सस्ता पड़ेगा, अच्छा बनेगा और सुविधाजनक रहेगा । यह भोजन पकाने और बच्चे पालने के रूप में भी किया जा सकता है । बड़े परिवार में बहुएँ नम्बर से चौका सम्भालती हैं । जिसकी पारी होती है, वह भोजन पकाती है और बाकी अन्य काम सम्भालती हैं । मुहल्ले या कुछ परिवारों का भोजन एक जगह बने तो उसके दो तरीके हो सकते हैं, एक यह कि खाने वालों की जितनी संख्या हो, उनके लिए भोजन बनाने में कितने व्यक्तियों की जरूरत पड़ेगी, यह देखा जाय । उतनी ही स्त्रियों की पारी बना दी जाय । अपने-अपने नम्बर से सभी पकावें और बाकी का जो समय बचता है, उसका उपयोग वे विद्याध्ययन, गृह उद्योग अथवा अन्य किसी महत्वपूर्ण काम में करें । यदि वह अदल-बदल उत्पन्न करे तो फिर स्थायी रूप से कुछ नर और नारी, रसोइये, नौकर रखे जा सकते हैं । इसमें दुहरा लाभ है । कुछ बेकारों को काम मिलेगा और घरों की महिलाएँ पुरुषों के कन्धे से कन्धा मिलाकर काम करने की योग्यता प्राप्त करने में जुट जायें ।

आज तो अवकाश के अभाव में कोई महत्वपूर्ण काम कर सकना उनके लिए सम्भव ही नहीं है । गरीब लोग आर्थिक तंगी के कारण और अमीर लोग चोंचलेबाजी के कारण घर की महिलाओं को चौके में ही जोते रहते हैं । हजार इच्छा रहते हुए भी वे कुछ कर नहीं पातीं । योग्यता वृद्धि के बिना कोई कुछ बड़ा काम नहीं कर सकता है । क्षमता बढ़ाने का अभ्यास समय माँगता है । यदि नारी को समुन्नत बनाना है तो उसको अभ्यास करने के लिए अवसर और अवकाश देना पड़ेगा । यह इसी प्रकार सम्भव है कि सबसे बड़ी व्यस्तता का, किन्तु सबसे कम मूल्य का उत्पादन देने वाला कार्य सम्मिलित सहयोग के आधार पर नये सिरे से पुनर्गठित किया जाय ।

ठीक यही बात शिशुपालन के सम्बन्ध में हो सकती है । प्रायः माता ही चौबीसों घण्टे बच्चों को गले से बाँधे फिरती हैं और कोई महत्वपूर्ण काम हाथ में न होने पर बच्चों की चित्र-विचित्र हरकतों का बेढंगापन सम्भालने, सुधारने में ही पूरा समय लगाती रहती हैं । इस प्रक्रिया को दूरदर्शितापूर्ण ढंग से हल किया जा सकता है, बड़े

परिवारों में जिस दिन किसी बहू की पारी चौके को सम्भालने की या खेत पर काम करने जाने की होती है । तब दूसरी महिलाएँ अपने बच्चों के साथ-साथ उसके बच्चे भी सम्भालती हैं और उसे निर्धारित काम करने का अवकाश देती हैं । हम भी तो लार्जर फैमिली, (बड़ा परिवार) प्रयोग करने के लिए चले हैं । उसमें चौके का केन्द्रीकरण करने की तरह शिशु पालन को भी केन्द्रित करने की आवश्यकता पड़ेगी । जितने समय बच्चों को माता के पास रहना अनिवार्य हो उतने समय ही रहें, शेष समय अन्य पारी वाली महिलाएँ उन्हें सम्भालने, खिलाने आदि का कार्य करती रहें ।

अपने प्रयोग में यह बात आई नहीं है, इसलिए अटपटी लगती है, पर वस्तुतः है यह पूर्णतया व्यावहारिक और पूर्णतया सरल । यह प्रयोग पिछले दिनों भी होते रहे हैं और प्रगतिशील दिशा में बहुत सफलतापूर्वक हो रहे हैं । अमीर लोग बच्चे पालने के लिये धाय तथा दूसरी नौकरानियाँ रखते थे । अब भी रखते हैं । अस्पतालों में मरीज महिलाओं के बच्चों के पालने का अन्य प्रबन्ध रहता है अन्यथा छोटा बच्चा बीमार माता की दुर्गति बनाकर रख देता । जच्चा खानों में भी प्रजनन कार्य पूरा होते ही नर्सें नवजात शिशु को बच्चा गृह में ले जाती हैं और वहीं उसकी साज सम्भाल करती हैं । जच्चा आराम करती रहती है । इसमें छोटे बालकों को तनिक भी असुविधा नहीं उठानी पड़ती है वरन् वे और अच्छे सुयोग्य संरक्षण में रहकर अपेक्षाकृत अधिक सुखी और सन्तुष्ट रहते और प्रगति करते हैं । विदेशों में स्त्रियों को महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व सँभालने पड़ते हैं । वे दफ्तर जाते समय बच्चों को शिशुगृह में छोड़ जाती हैं और निश्चिन्ततापूर्वक अपना काम करती रहती हैं । हर माता को शिशु पालन की उपयुक्त ट्रेनिंग मिली हुई नहीं होती, इसलिए हर किसी के लिए उस कार्य को आरोग्य शास्त्र और शिशु मनोविज्ञान शास्त्र के अनुरूप निवाहना सम्भव नहीं होता । किन्तु कुशल परिचारिकाएँ उसे इतनी खूबी से निबाहती हैं जैसा कि माता भी नहीं कर सकती । इस संरक्षण में रहकर बच्चे माताओं के पास की तुलना में कहीं अधिक प्रसन्न रहते और स्वास्थ्य लाभ करते हैं । इसमें चार गुना लाभ है ।

(१) बच्चे सुयोग्य संरक्षण में अधिक विकसित और प्रमुदित होते रहते हैं । (२) थोड़ा पैसा देकर सुयोग्य माताएँ अपना समय बचाती हैं और उससे अपने बच्चों तथा परिवार वालों को सुखी बनाने के लिए अधिक धन, उपार्जित करती हैं (३) उनकी प्रतिभा का लाभ सारे समाज को मिलता है । (४) शिशु पालक परिचारिकाओं को काम मिलता है । समुन्नत देशों में भ्रमण करके सर्वत्र यह प्रयोग पूरी तरह सफलतापूर्वक चलता हुआ गली-गली, मुहल्ले-मुहल्ले देखा जा सकता है । जिस प्रकार हमें यह प्रयोग अटपटा लगता है ठीक उसी तरह उनसे भारत में हर महिला का दिन-रात बच्चे गले से लटकाये फिरने वाली प्रथा का विवरण सुनाया जाय तो वे इस दकियानूसीपन पर हँसते-हँसते लोट-पोट हो सकती हैं और इस प्रथा को 'कंगारू' प्रथा कह सकती हैं ।

समुन्नत देशों की तरह हम पृथक शिशु पालन गृह न बना सकें तो भी पारी-पारी कुछ को उन्हें सम्भालने शेष को अन्य उपयोगी कार्यों के लिए अवकाश मिलना सम्भव हो सकता है । वृद्धाएँ इस कार्य को बड़ी आसनी के साथ रुचिपूर्वक कर सकती हैं । कई घर मिलकर एक नौकरानी भी इस कार्य के लिए रख सकते हैं । इस पर अनेकों महिलाओं को शिक्षा, स्वावलम्बन, पारिवारिक सुव्यवस्था एवं नारी जागरण जैसे महत्वपूर्ण कार्यों के लिए अधिक अवसर मिल सकता है । इन व्यवस्थाओं को बनाकर हम घाटे में नहीं रहते और न किसी विशेष झंझट में फँसते हैं वरन् सही बात तो यह है कि महत्वपूर्ण लाभ कमाते हैं और झंझट से छुटकारा पाकर अधिक महत्वपूर्ण काम हाथ में लेते हैं ।

यह प्रयोग नारी जागरण की दृष्टि से भी बहुत लाभप्रद सिद्ध हो सकते हैं, आज की स्थिति में नारी को पूरी तरह घरेलू कामों में व्यस्त रहना पड़ता है । देखने में चौका-चूल्हा साज सँभाल जैसे हलके काम ही उसके जिम्मे दीखते हैं । पर वे इस तरह बेसिलसिले बिखरे होते हैं कि फुरसत नाम की चीज कदाचित् ही किसी को मिलती हो । मर्दों के घर आने और भोजन करने का कोई समय नहीं । हर किसी को गर्म भोजन की माँग रहती है । उसके लिए चौका बिखरा ही पड़ा रहता है और एक प्रकार से उस बन्धन में बँधा ही रहना पड़ता है । पकाना भले ही चार आदमियों के लिए पड़े पर सबेरे से लेकर रात तक चूल्हा जलता रहता है और उसकी ड्यूटी पर नियुक्त रहना ही पड़ता है ।

इसके बाद बच्चों की बढ़ी हुई संख्या और उनके अस्त-व्यस्त क्रिया-कलापों की फरमाइशों को पल-पल पर नये-नये प्रकार अपनाकर पूर्ति करना इतना व्यस्त कार्यक्रम है, जिसमें से सिर उठाने की फुरसत नहीं मिलती । बिगाड़ना, बखेरना, घर के हर सदस्य का अधिकार है, सम्भालने की जिम्मेदारी नारी की है ।

रात को सबसे पीछे सोना और सबेरे सबसे पहले जागना, इस कुचक्र में पिसते-पिसते उसकी नींद पूरी नहीं हो पाती । दोपहर को भी कोई भाग्यवान ही थोड़ा सुस्ताने का अवसर पाती है अन्यथा उस समय भी सीने-पिरोने, धोने, इस्त्री करने, अनाज चावल बीनने, फटकने जैसे अनकों काम प्रतीक्षा की लाइन लगाये हुये ही खड़े रहते हैं ।

काम में लगे रहना, समय को बर्बाद न करना अच्छी बात है । इससे मनुष्य में सक्रियता, जागरूकता बनी रहती है । बेकार बातों के लिए गुंजाइश ही नहीं रहती । शरीर और मन स्वस्थ रहता है इस दृष्टि से व्यस्तता को कोई बुरा नहीं कह सकता । फालतू बैठे रहने से ही मनुष्य जंग खाये चाकू की तरह नष्ट होने लगता है और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उसे अनेकों विकृतियाँ घेर लेती हैं । यहाँ स्त्रियों के व्यस्त रहने और फुरसत न मिलने को कोसा नहीं जा रहा है वरन् यह कहा जा रहा है कि इन छोटे कामों में उलझे रहने से उन्हें बड़े कार्य करने का, योग्यता एवं कुशलता बढ़ाने का, अवसर ही नहीं मिलता है और वे कोल्हू का बैल मात्र बनकर जिन्दगी गुजार डालती हैं । पारिवारिक उत्तरदायित्व वे निबाहें, पर साथ ही उतनी सुविधा भी होनी चाहिए कि शिक्षा, स्वावलम्बन, स्वास्थ्य सम्वर्द्धन, लोकमंगल जैसे कार्यों में भाग लेकर अपनी, अपने परिवार की, अपने समाज की उन्नति में कुछ महत्वपूर्ण योगदान दे सकें ।

बात यहीं समाप्त नहीं हो जाती, उसके अगले कदम और भी अधिक महत्वपूर्ण हैं । सहकारी स्टोर के रूप में यह संयुक्त परिवार अपनी घरेलू आवश्यकता की सभी चीजें इकट्ठी खरीद सकते हैं । इसमें वस्तुयें अच्छी भी मिलेंगी और सस्ती भी । अलग-अलग कामों को अलग-अलग खरीद करने में जो ढेरों समय बर्बाद होता है, उसकी बचत हो सकेगी ।

सबसे बड़ी बात है, सहकारिता का-सहयोग भरी स्नेह प्रक्रिया का विकास । आज हम एक दूसरे से असम्बद्ध, स्वार्थी, संकीर्ण, व्यक्तिवादी बनते चले जा रहे हैं । आवश्यकता सामूहिक दृष्टिकोण के विकास की है । व्यक्ति एवं समाज की प्रगतिशील सम्भावनाएँ इसी उदार चिन्तन एवं रुझान पर निर्भर हैं । समाजवाद एवं अध्यात्म दोनों के दर्शन हमें इसी दिशा में चलने की प्रेरणा देते हैं । बड़े संयुक्त परिवार का प्रस्तुत वैज्ञानिक प्रयोग हमें इसी ओर अग्रसर करता है ।

यह मान्यता गलत है कि युवक वर्ग संयुक्त परिवार प्रणाली को पसन्द नहीं करता । अनेक सर्वेक्षणों से यह तथ्य उभरकर सामने आये हैं कि हमारे यहाँ भावी पीढ़ी में, अभी भी संयुक्त परिवार के लिये सुदृढ़ भावना मौजूद है । आई० पी० देसाई ने कुछ ही वर्षों पहले पूना में हाईस्कूल के छात्रों का एक सर्वेक्षण कर देखा कि उनमें से ९७ प्रतिशत किशोरों ने सम्मिलित परिवार में साथ-साथ खाने-पीने, वार्तालाप और मनोविनोद के क्रम को अत्यधिक पसन्द किया । ७२ प्रतिशत ने घर के कामों में माता-पिता को सहयोग देना अपना मनपसन्द काम बताया । ८९ प्रतिशत छात्रों ने बाहर जाने से पहले सयानों से अनुमति लेने की आवश्यकता बताई और उसे उचित माना ।

समाजशास्त्री श्री के० एम० कपाड़िया ने कुछ समय पूर्व एक अनुसन्धान किया । उन्होंने संयुक्त परिवार के प्रतिशिक्षितों की धारणा जानने के लिए ५१३ स्नातकों से भेंट की । उनमें से ५७.३ प्रतिशत संयुक्त परिवार में रहते थे और उनमें ८६ प्रतिशत उसे अच्छी व्यवस्था मानते थे । स्पष्ट है कि अधिकांश भारतीय हिन्दू युवक अभी भी संयुक्त परिवार के प्रति आकृष्ट हैं । उन लोगों में भी जो इस समय संयुक्त परिवारों में किसी कारणवश नहीं रहते हैं, अधिकांश संयुक्त-परिवार, व्यवस्था के इच्छुक हैं ।

वस्तुतः संयुक्त परिवार की सम्वेदनाएँ भारतीय जन मानस में काफी गहराई में बैठी हुई हैं । अपवादों की बात तो और है किन्तु यदि अधिकांश व्यक्ति भले ही वे पृथक परिवारों में ही रह रहे हों-संयुक्त परिवार भावना से अछूते नहीं हैं । अलग-अलग रहने वाले पृथक परिवार जब किसी कठिन परिस्थिति में से गुजरते हैं तो उनके दूरस्थ कुटुम्बी भी उससे प्रभावित हो जाते हैं । उस सम्वेदना के फलस्वरूप एक सहयोग और सद्भावना का ऐसा प्रवाह चालू हो जाता है जो कष्ट-कठिनाइयों का बहुत अंशों में शमन करने में सफल हो जाता है ।

संयुक्त पारिवारिकता की इस नितान्त वैज्ञानिक, स्वाभाविक एवं लाभप्रद पद्धति को यों ही उपेक्षा में पड़े रहने देना उचित नहीं । परम्परागत कौटुम्बिक रूप में अथवा नवीन वृहत्तर परिवार पद्धति में, किसी न किसी रूप में भी उसे जाग्रत करने एवं अपनाने में ही हित है । इससे व्यक्ति परिवार एवं समाज को भौतिक, आत्मिक-दोनों ही दृष्टियों से लाभ ही होगा ।

संयुक्त परिवार की आधारभूत प्रेरणाएँ

मार्क्स ने लिखा था-"अब तक दार्शनिकों ने संसार की केवल व्याख्या की है । उसे बदलना अधिक महत्व का कार्य है ।" इन दिनों दार्शनिकों की जो स्थिति है, उसे देखते हुए यह बात सत्य ही है । यद्यपि भारत में दार्शनिक सदा, साथ ही समाज-जीवन के सक्रिय कार्यकर्ता, सुधारक एवं युगानुकूल व्यवस्था का निर्माण करने में प्रयासरत सामाजिक नेता की भी भूमिका निभाते रहे हैं ।

स्वर्गीय श्री सम्पूर्णानन्द ने समाज-वैज्ञानिकों एवं दार्शनिकों से आग्रह किया था कि वे उन सामाजिक मूल्यों की पुनर्स्थापना, संरक्षण एवं सम्वर्द्धन के लिए यथाशीघ्र उपाय करें, जो संयुक्त परिवार-व्यवस्था के नियामक तत्व रहे हैं और अब तेजी से विलुप्त हो रहे हैं ।

संयुक्त परिवार व्यवस्था की उपयोगिता पर विचार करते समय सर्वप्रथम इन आधारभूत मूल्यों का ध्यान रखा जाना आवश्यक है । शेष उपयोगिताएँ बाद की वस्तु हैं ।

ये आधारभूत मूल्य क्या हैं ? सर्वोपरि यह आत्मभावना के विस्तार की प्रक्रिया है । व्यावहारिक स्तर पर यही आत्म-भावना, सहयोग-सहकार के रूप में, प्रतिफलित होकर मानवीय प्रगति का मूल आधार बनती है । स्वार्थवाद, अलगाव, एकाकीपन की निषेधात्मक प्रवृत्तियों को दूर करना तथा बन्धुत्व, सौहार्द, सामूहिकता की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन करना संयुक्त परिवार प्रथा-की मूल्यगत उपलब्धि है । सम्मिलित श्रम एवं पुरुषार्थ की प्रवृत्ति तथा उपार्जित धन को मिल बाँटकर आवश्यकतानुसार एवं सन्तुलित ढंग से खर्च करने की प्रवृत्ति का सर्वोत्तम प्रशिक्षण, संयुक्त-परिवार व्यवस्था में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

ही होता है । शील, शिष्टाचार, सौजन्यता की श्रेष्ठ भावनाएँ यहीं पल्लवित होती हैं । दूसरे के लिए त्याग की दैवी प्रवृत्ति का विकास संयुक्त परिवार में ही स्वाभाविक रूप में होता है । मनुष्य नैसर्गिक रूप में एक अत्यन्त लचीला प्राणी होता है । वातावरण के अनुरूप उसकी विशेषताएँ ढलती चली जाती हैं । इसीलिए छोटे बच्चों को मिट्टी के लोंदे जैसा कहा जाता रहा है, जिन्हें घड़ा, सुराही, नाद, खपड़े, ईंट, हँड़िया आदि के भिन्न-भिन्न रूप दिये जा सकते हैं । मनुष्य के व्यक्तित्व निर्माण में पर्यावरण एवं प्रशिक्षण का अत्यधिक महत्व है । पशु-पक्षियों जैसी वर्गीय समरूपता उसमें कदापि नहीं पाई जाती । व्यक्ति-व्यक्ति में गुण, कर्म, स्वभाव की अनन्त विविधताएँ तथा भिन्नताएँ होती हैं । बिना प्रशिक्षण के मनुष्य रामू भेड़िया और चिम्पांजी जैसी स्थिति में पड़ा रहता है । उसके लिए अविराम प्रशिक्षण केन्द्र दिन-रात निरन्तर लगने वाली पाठशाला का काम संयुक्त परिवार ही कर पाते हैं ।

परिवार की पश्चिमी जगत में स्वीकृत व्याख्या में मानव-जीवन के सीमित पहलुओं की ही परितुष्टि हो पाती है । भाव-सम्वेदनाओं के सहस्रों रंगों से वह व्यवस्था वंचित ही रहती है । मानव के भाव-जगत की हजारों परतें पति-पत्नी बच्चे वाली परिवार-व्यवस्था में सूनी उजाड़ प्रकाशरहित ही पड़ी रहती हैं । भाव-सम्वेदनाओं की इन्द्रधनुषी छटाएँ वहाँ कभी भी नहीं उभरतीं । माँ-बाप-वृद्धों के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा, भाई-भाई का अनूठा प्यार भाई-बहिन के बीच आत्मानुशासित मर्यादा और अन्तरंग स्नेह, नन्द-भाभी, सास-बहू, जेठ-देवर, जिठानी-देवरानी, चाचा-चाची, ताऊ, बुआ, भतीजे आदि के सम्बन्धों का रंगारंग परिदृश्य बहुरंगी, बहुआयामी, आलोकवर्णी, भावनाओं का अनोखा संसार उनके लिए अज्ञात-अपरिचित ही है । दुनिया में कुछ भी इतना एकांगी, सीमित और संकीर्ण नहीं, जितना बीबी-बच्चे तक सिमटी परिवार-व्यवस्था से जुड़ी भाव-सम्वेदनाएँ होती हैं । इस सृष्टि में हर क्षेत्र विविधरंगी हैं । गिरि-पर्वत, नदी-झरने, वृक्ष, फल-फूल, प्रकाश-छाया, बादल सभी हजार-हजार रूपरंगों, सहस्रों तरह के परिदृश्यों में देखे पाए जाते हैं । मनुष्य तो प्रकृति का लाड़ला बेटा है । उसके चिन्तन और अनुभव जगत की सामर्थ्य तो और भी विस्तृत अकूत है । फिर वह पारिवारिक सम्वेदना के नाम पर गिनी-चुनी दो-चार तरह की ही सम्वेदनाओं से परिचित हो-नर-नारी का यौनाकर्षण, काम-भाव, सन्तान के प्रति मोह और दुलार, वृद्धों के साथ औपचारिक सत्कार-उपहार का भाव परिवार के नाम पर हो, तो यह उसके विराट व्यक्तित्व के अनुरूप नींव का काम नहीं दे सकता । प्रारम्भ में यदि इतने सीमित रिश्ते और भावनात्मक रंग ही उसे ज्ञात रहें, तो इससे उसके व्यक्तित्व में एकांगिता ही आयेगी ।

निःसन्देह विलक्षण प्रतिभासम्पन्न, विशिष्ट-सम्वेदनशील व्यक्ति बिना पारिवारिक प्रशिक्षण के भी आत्मीयता की परिधि को विश्व-ब्रह्माण्ड तक विकसित कर लेते हैं । किन्तु औसत जन-सामान्य प्रायः प्रशिक्षण प्राप्त सम्वेदनाओं की ही गूँज भरे रहता है । यह आकस्मिक बात नहीं है कि जिन दिनों भारत में संयुक्त परिवार प्रणाली अपने श्रेष्ठ रूप में विद्यमान थी, जब घर को तपोवन मानकर गृहस्थ-योग की साधना एक स्वाभाविक लोक-अभिक्रम के रूप में प्रचलित थी, उस समय इस देश के औसत नागरिक में भी व्यावहारिक बन्धुत्व, आत्मीयता मैत्री तथा सामाजिकता के गुण विद्यमान थे । जो कि पश्चिम के आधुनिक सभ्य युग में मंचों और गोष्ठियों में ही जोर-शोर से कहे सुने जाते हैं । व्यावहारिक जीवन में तो अलगाव-दुराव, कुंठा, एकाकीपन का ही प्रावल्य है ।

इसलिए संयुक्त-परिवार प्रथा की सर्वोपरि उपयोगिता जीवन-मूल्यों के विकास एवं प्रशिक्षण से सम्बन्धित है । यही उसका मूल आधार है । जहाँ इस मूल आधार की उपेक्षा प्रारम्भ हुई, वहाँ इस व्यवस्था का मूल्य कम होने लगता है । संयुक्त-परिवार व्यवस्था वस्तुतः मनुष्य के जीवन-दर्शन का ही एक अंग है । जहाँ आत्मीयता एवं समता का यह जीवन-दर्शन नहीं है, वहाँ इस व्यवस्था को टिकाऊ बनाए रख पाना भी कठिन होगा । जब नींव ही हिलने लगे, तो ऊपरी मरम्मत कब तक काम दे सकती है ।

संयुक्त-परिवार व्यवस्था हमारे मनीषी पूर्वजों द्वारा सुविचारित व्यवस्था थी । इसमें एक ओर तो व्यक्तिवादी कुंठाओं को न पनपने देने की व्यवस्था थी, दूसरी ओर व्यक्ति के आत्म-सम्मान को सुरक्षित रखने का भी पूरा ध्यान रखा गया था । व्यक्तिवाद व्यक्ति के अहं को इतना अधिक महत्व देने लगता है कि वह अमर्यादित होता चला जाता है । इससे दूसरे का अहं आहत होता है और आपसी टकराहट, कलह तथा लड़ाई की शुरूआत हो जाती है । व्यक्ति की आवश्यकताएँ हैं ? अन्य प्राणियों की तरह सीमित नहीं होतीं । वे इच्छा तथा परिस्थिति के अनुसार बढ़ती घटती रहती हैं । अमर्यादित व्यक्तिवाद से व्यक्ति की ऐच्छिक आवश्यकताओं का स्वरूप इतना फैलता चला जाता है कि वह दूसरों की बुनियादी आवश्यकताओं पर ही आक्रमण हो जाता है । दूसरों का पेट काटकर अपने अनावश्यक शौक-मौज को पूरा करने की स्थिति आ खड़ी होती है । दूसरों को निर्वसन रखकर अपने सिर पर भारी-भरकम पगड़ी लपेटना आवश्यक लगने लगता है । दूसरों के घर में भूख से बिलखते बच्चों को कराहते रोते-रहने देकर अपने कुत्ते के लिए महँगे, सुगन्धित, साबुन-इत्र, मसालेदार माँस का प्रबन्ध जरूरी दीखने लगता है । भारतीय संस्कृति में ऐसी प्रवृत्तियों को सदा अपराध कर्म, पाप-प्रवृत्ति कहकर भर्त्सना की गई है । अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताएँ घटाते रहना और योग्यताओं, क्षमताओं, विशेषताओं एवं सामर्थ्य का अधिकांश अंश लोकहित में लगाते रहना हमारा आदर्श

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहा है । हमारी परिवार-व्यवस्था में भी ऐसी ही प्रेरणाएँ निहित रहीं हैं । परिवार के सभी सदस्यों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति की व्यवस्था को उसमें सदैव प्राथमिकता दी जाती रही है । ऐसा किये बिना, किसी एक सदस्य द्वारा अपने शौक-मौज में जुट जाना, सदा ही पारिवारिक भावना के विरुद्ध माना जाता रहा है और परिवारों के विघटन तक का कारण यही बनता रहा है । इसी से प्रकट है कि ऐसा करना पारिवारिक भावना के प्रतिकूल होना सर्वमान्य है ।

दूसरी ओर सामूहिकता की परिवार से इतर जो भावना एवं व्यवस्था है, उसमें व्यक्ति के आत्म-सम्मान को प्राय: ठेस पहुँचाने वाली स्थितियाँ विनिर्मित होती रहती हैं । उनमें स्वाभाविकता नहीं रहती । सरकारी या निजी संस्थाओं द्वारा लाभान्वित व्यक्ति का व्यक्तित्व दब जाता है । उसमें दाता-ग्रहीता का भाव आ ही जाता है । रोग, शोक, आर्थिक-संकट या अन्य विशेष प्रसंगों में सरकारी या गैर सरकारी संस्थाओं से प्राप्त होने वाले अनुदान व्यक्ति को संकोच में भी डालते हैं, उन्हें प्राप्त करने वाला व्यक्ति एहसान से दबे होने का अनुभव करता ही देखा जाता है, जबकि परिवार में हर सदस्य उसका सम्मानित घटक होता है । रोग में, विपत्तियों में या विशेष प्रसंगों पर, परिवार से मदद पाना वह अपना हक मानता है । वैसी सहायता पाने पर उसमें बाहर से प्राप्त होने वाले दान-अनुदान की भावना नहीं आती ।

परिवार वह उद्यान है, जहाँ छोटे-बड़े, कँटीले-कोमल, सुरभित-गन्धविहीन, सभी प्रकार के पुष्प-पौधे लगे होते हैं और उन सबकी समग्र सत्ता ही उद्यान को एक इकाई बनाती है । उस उद्यान की शोभा-सुषमा इसी में होती है कि उसके सभी पौधे-सुरक्षित रहें, उन्हें कोई काटे-उखाड़े नहीं ।

सहयोग-सम्वेदना, आत्मीयता-स्नेह की यह प्रक्रिया, जो संयुक्त परिवार की आधारभूत प्रेरणा है, आज उसकी भी आवश्यकता है । यदि उसे समझा और अपनाया जाय, तो हमारे विकास की नयी सम्भावनाएँ सामने आती चली जायेंगी ।

पारिवारिकता का अभिनव स्वरूप

संयुक्त परिवार पद्धति को अब वैज्ञानिकता के आधार पर व्यावहारिक स्तर पर नये रूप में पुनर्जीवित करना ही उचित है ।

संयुक्त परिवार व्यवस्था के विघटन के बाद अभी जो वैकल्पिक संस्थाएँ प्रचलित हुई हैं उनमें से कोई भी उस व्यवस्था के आधारभूत तत्वों की पूर्ति नहीं कर सकी हैं । वे आधारभूत तत्व हैं-आत्मीयता का विस्तार, समानता, संगठन, सहयोग, सामूहिकता, सुव्यवस्था, शिशुओं की ममतामय स्नेह के साथ निरन्तर देखभाल और कार्यों का सुसंयोजित विभाजन-जिससे समय तथा श्रम की बचत हो । मानवीय प्रगति के लिए ये नितान्त आवश्यक तत्व हैं । अत: इनके पोषण अभिवर्द्धन की आवश्यकता है ।

संयुक्त परिवार के पुराने ढर्रे की विकृतियों से सबक सीखकर उनसे बचने की भी आवश्यकता है । इसलिए नई व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए, जिससे कि इस दिशा में क्रमश: अग्रसर हुआ जाय । संयुक्त परिवार के लाभों से लाभान्वित रहने और विकृतियों से बचने का नया प्रयोग 'लार्जर फैमिली' ही हो सकता है । उसके प्रथम चरण में तीन व्यवस्थाएँ हाथ में ली जानी चाहिए, पहली सहकारी वस्तु भंडार की व्यवस्था, दूसरी संयुक्त भोजनालय की व्यवस्था, तीसरी संयुक्त शिशु पालन की व्यवस्था । किसी न किसी रूप में ये तीनों व्यवस्थाएँ प्रचलन में हैं । आवश्यकता इन्हें सुसम्बद्ध, सुसंगठित और सुव्यवस्थित रूप देने की है ।

सहकारी-वस्तु भंडार अभी भी प्रचलित हैं । पर वे पारिवारिकता से जुड़े नहीं हैं । फैक्टरी आदि में कई स्थानों पर श्रमिक संगठनों ने अपने लिये आवश्यक वस्तुओं की स्वयं ही व्यवस्था करने के लिये ऐसे सहकारी स्टोर खोले हैं और जहाँ सुव्यवस्था है, वहाँ ये स्टोर अत्यधिक लाभदायक सिद्ध हुए हैं । सभी आवश्यक वस्तुएँ अच्छे किस्म की और बाजार से सस्ती एक ही स्थान पर सुलभ हो जाती हैं । अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा अलग-अलग खरीदी में नष्ट होने वाले समय की भी बहुमूल्य बचत होती है, जिसे प्रौढ़ पाठशाला आदि सृजनात्मक कामों में लगाया जा सकता है ।

'लार्जर फैमिली' के रूप में रहने वाले एक मुहल्ले-टोले के लोग मिलकर यदि अपने सहकारी स्टोर का संचालन करें, तो वे इससे बहुत लाभ उठा सकते हैं । स्टोर के संचालन के लिए गठित समति के लार्जर-फैमिली के सभी वयस्क सदस्य रहें या जो लोग इस दिशा में रुचि रखते हों, अनुभवी एवं प्रामाणिक हों वे ही रहें । सुविधानुसार व्यवस्था बनाई जा सकती हो । कार्यकारी समिति में ५-६ से १०-११ तक सदस्य रहें । यह समिति महीने, दो महीने या ६ महीने में चक्रीय क्रम से बदलती रहे । कार्यकारी समिति ही स्टोर की दैनन्दिन व्यवस्था, वस्तुओं की खरीद, बिक्री भंडारण, रक्षण, स्टॉक-रजिस्टर आदि नियमित रखने तथा हिसाब-किताब व्यवस्थित रखने का काम देखें । इसमें 'लार्जर-फैमिली' की समर्थ, शिक्षित, समझदार महिलाएँ भी विभिन्न उत्तरदायित्व सम्भाल सकती हैं ।

स्टोर के बजट की रूपरेखा 'लार्जर-फैमिली' के पारिवारिक गोष्ठी में प्रतिमास प्रस्तुत हुआ करे । इसी गोष्ठी में प्रत्येक परिवार अपनी मासिक आवश्यकताओं की सूची प्रस्तुत किया करे । ताकि वस्तुओं की खरीदी उसी अनुपात में की जाये, अनावश्यक मात्रा में कोई वस्तु न आ जाये अन्यथा बाजार में उसके दामों की घट-बढ़ से लेकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अधिक समय तक उसे रखे रहने तक की कई समस्याएँ आ जाती हैं । इसी गोष्ठी में मासिक आय-व्यय का विवरण प्रस्तुत हुआ करे तथा स्टोर-संचालन सम्बन्धी सामान्य निर्णय लिये जायें । दैनन्दिन व्यवस्था सम्बन्धी निर्णय कार्यकारी-समिति कर लिया करे । उसके लिए आमसभा यानी पारिवारिक गोष्ठी की प्रतीक्षा से झंझट तथा हानि हो सकती है ।

संयुक्त भोजनालय की व्यवस्था भी ऐसी ही सहज, व्यावहारिक एवं उपयोगी हो सकती है । जिस प्रकार मुहल्ले के लोग मिलकर सहकारी स्टोर चलाएँ, वैसे ही एक सम्मिलित रसोईघर बना लिया जाये । इसमें सामूहिकता के लाभ तो होंगे ही समय की बचत महिलाओं को सक्रियता के अन्य क्षेत्रों में अग्रसर होने का अवसर दिलायेगी, जिससे समानता का व्यावहारिक रूप सामने आयेगा । अभी तो नारी को चूल्हा-चौका की साज- सम्हाल में ही ढेर सारा समय देना होता है । चौके-चूल्हे की व्यवस्था है भी समय-साध्य । उसकी उपेक्षा से तो दूसरी झंझटें उठ खड़ी होंगी । अच्छा, स्वच्छ भोजन न मिल सकेगा । घर के भोजन का स्वाद एवं आत्मीयता स्नेह भरी व्यवस्था का लाभ भी मिल सके और समय की भी बचत हो, इसके लिये संयुक्त भोजन व्यवस्था नितांत आवश्यक है । बड़े परिवारों में यह प्रचलन है कि बहुएँ बारी-बारी से चूल्हा सम्हालती हैं । जिस दिन जिसका क्रम हुआ, उसने रसोई की व्यवस्था सम्हाल ली, शेष गृह-व्यवस्था के अन्य कामों में जुटी रहीं । इसे ही विस्तृत तथा नया रूप दिया जा सकता है ।

सौ आदमियों की भोजन व्यवस्था के लिए सात-आठ महिलाएँ पर्याप्त हैं । इसकी पारी बाँधी जा सकती है । 'लार्जर-फैमिली' के सदस्यों की संख्या के अनुरूप रसोई बनाने वाली टोलियाँ बन जायें और वे क्रम से दायित्व सम्हालें या चाहें तो महिला या पुरुष रसोइये रखे जा सकते हैं । यद्यपि तब भी व्यवस्था की देख-रेख करने के लिए कम से कम एक पारिवारिक सदस्य होना ही चाहिए ।

इस संयुक्त भोजन व्यवस्था के अनेक लाभ हैं । चौके के लिए प्रत्येक घर में स्थान नहीं रखना पड़ेगा । इससे स्थान की बचत होगी । उपकरणों की भी कम आवश्यकता होगी । धुँए से नित्य हर एक गृहणी को कष्ट पहुँचे, ऐसी स्थिति नहीं रहेगी । समय और श्रम की बचत होगी । बचे हुए समय का उपयोग, अध्ययन, घरेलू उद्योग आदि में कर व्यक्तित्व विकास तथा पारिवारिक उन्नति की गति तीव्र की जा सकेगी । महिलाओं को योग्यता बढ़ाने के लिये अवसर मिलेंगे । अभी तो यह स्थिति है कि विविध शिल्प-उद्योगों तथा कलाओं को सीखी हुई निपुण नारी भी अभ्यास के अभाव में धीरे-धीरे अपनी क्षमताएँ खोती जाती है । सारे गुण प्रशिक्षण में पलीता लगाकर वह चूल्हे-चौके में ही सिमटती-धँसती चली जाती है । इससे व्यक्ति रूप में तो उसे हानि होती ही है, प्रशिक्षण में जो समाज का धन और समय लगा था, वह भी व्यर्थ जाता है । 'मानवीय श्रम' (मैन-पावर) जो नारी शिक्षा के दौरान लगाया जाता है, उसका कोई भी मूल्य नहीं मिल पाता । यह सामाजिक और राष्ट्रीय दृष्टि से भी आपत्तिजनक स्थिति है ।

संयुक्त भोजन व्यवस्था के पक्ष में एकमात्र दलील यह दी जा सकती है कि इससे सभी व्यक्तियों की विशेष रुचि के व्यंजन चाहे जब नहीं उपलब्ध हो सकेंगे । यह वस्तुतः कुतर्क है । व्यंजनों के प्रति रुचि विशेष की संकीर्णता मिटनी ही चाहिए । सही बात तो यह है कि जिस समाज में व्यक्तियों को व्यक्तित्व विकास के विविध क्षेत्र नहीं मिल पाते, उनमें विविधता की आंतरिक आकांक्षा विकृत होकर बहुत मामूली-मामूली वस्तुओं पर केन्द्रित हो जाती है । भोजन के सम्बन्ध में लोगों का चटोरापन ही अधिक बढ़ा-चढ़ा होता है, जहाँ परिवार के सभी लोग कार्य व्यस्त नहीं होते । भोजन-सम्बन्धी, विविधता तो संयुक्त-व्यवस्था में और अधिक उत्तम रीति से समाविष्ट हो सकती है । जब जो चाहें, वह अलग परिवार में भी नहीं बन पाता । यदि आर्थिक कारण न भी हों, तो कभी गृहणी की अन्य व्यस्तताएँ, कभी रिश्तेदारी में कहीं कोई आयोजन आदि अथवा कभी बाजार में आवश्यक वस्तु की अच्छी किस्म का न मिल पाना ऐसे अनेक कारण हो सकते हैं, जब जो व्यंजन जिस दिन चाहा जाये, उस दिन न बन पाये । अतः संयुक्त भोजन व्यवस्था में ऐसा न हो पाने की कोई कमी बताना अपनी संकीर्णता तथा आशंका की पुष्टि के लिए गढ़ी गई बहानेबाजी हो सकती है, वास्तविकता नहीं । वास्तविकता तो यह है कि संयुक्त भोजन व्यवस्था हर प्रकार से लाभकर, उपयोगी और करणीय है ।

शिशुपालन के बारे में भी यही बात है । पाश्चात्य देशों में कामकाजी महिलाओं ने बेबी-सिटिंग का रास्ता अपनाया है । मुहल्ले भर की कामकाजी महिलाएँ मिलकर किसी एक कुशल दाई को दिन भर, कार्यालयीन समय के लिये नियुक्त कर लेती हैं जो सबके बच्चों की देखभाल करती हैं । छोटे बच्चों की देखभाल कुशल परिचारिकाएँ माता से भी अधिक अच्छी तरह करती हैं । पश्चिमी देशों में तो शासन एवं सामाजिक संस्थानों की ओर से सुव्यवस्थित शिशुपालन गृह भी हैं । अपने यहाँ यह व्यवस्था सर्वसुलभ होने में देर है । इस हेतु संयुक्त शिशु पालन की व्यवस्था अपनाई जा सकती है । मुहल्ले की सेवाभावी वृद्धाएँ इस कार्य को सम्हाल सकती हैं या फिर मुहल्ले के लोग मिल-जुलकर कुशल प्रशिक्षित परिचारिका रख सकते हैं । सुयोग्य संरक्षण में बच्चे अधिक प्रसन्न रहेंगे, विकसित होंगे । सामूहिक व्यवस्था का मनोवैज्ञानिक लाभ सामूहिक आत्मीयता के रूप में विकसित होकर मिलेगा । अपने बच्चों के प्रति अधिक अपनत्व का संकीर्ण रूप कुछ घटेगा । माताओं को समय मिलेगा, जिसका उपयोग वे शिक्षण, उपार्जन में कर सकती हैं । बच्चों व परिवार के लिये धन कमा सकती हैं या कोई उपयोगी काम कर सकती हैं । नारी जागरण तथा समाज

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सेवा के पुण्य कर्म कर सकती हैं और अपनी प्रतिभा का लाभ सारे समाज को दे सकती हैं ।

सामूहिकता, सहकारिता स्नेह सहयोग और अपनत्व विस्तार की यह प्रक्रिया चल पड़े तो आगे और भी विकास होता जायेगा । सामूहिक घरेलू शाक-वाटिकाएँ, सहकारी लघु-उद्योग व्यवस्था आदि के रूप में इससे व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक लाभों का क्रम बढ़ता ही जायेगा । सहकारिता और पारिवारिकता का यह समन्वय ही आज की आवश्यकता है । इससे संयुक्त परिवार व्यवस्था के रक्षणीय मूल्यों को नवजीवन मिलेगा और नारी उत्कर्ष की नयी दिशाएँ भी खुलेंगी ।

पारिवारिकता क्यों ?

थोड़े से ऐसे जीवों के, जो एक साथ खाते-पीते-सोते और उठते-बैठते हैं, एक ही घर में रहने से परिवार नहीं बन जाता । इस प्रकार तो हम घर की ईंटों को ही परिवार कह सकते हैं । किसी परिवार के आधे लोग चाहे पृथ्वी के भिन्न-भिन्न भागों में रहते हों पर हम उसे सुख सम्पदापूर्ण परिवार कह सकते हैं । पारिवारिक जीवन के सच्चे अंग तो प्रेमपूर्वक स्मरण, परस्पर का सद्भाव, सब की मंगल कामना, सब के प्रति सच्ची सहानुभूति, माता-पिता का निश्चल आशीर्वाद, पुत्र की आज्ञाकारिता, कर्तव्य पालन, सत्यनिष्ठा भगिनी का अभिमान, प्रेम तथा सौजन्य, पत्नी का त्याग, बलिदान और सर्वतोमुखी प्रेम, वृद्धों की सेवा, प्रतिष्ठा अतिथियों का सम्मान और आदर इत्यादि हैं ।

परिवार परमात्मा की ओर से स्थापित एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा हम अपना आत्मविकास सहज ही में कर सकते हैं और आत्मा में सतोगुण को परिपुष्ट कर सुखी, समृद्ध जीवन प्राप्त कर सकते हैं । मानव जीवन की सर्वांगीण सुव्यवस्था के लिए पारिवारिक जीवन प्रथम सोपान है । मनुष्य केवल सेवा, कर्म और साधना में ही पूर्ण शांति प्राप्त कर सकता है ।

प्रत्येक परिवार में पूर्वजों की जैसी धारणाएँ विचार, धर्म या रूढ़ियाँ चली आती हैं, उन्हीं के अनुसार गुप्त रूप से प्रत्येक बच्चे के मानसिक संस्थान पर प्रभाव पड़ा करता है । जो बच्चा चार घण्टे स्कूल में जाकर बीस घण्टे घर में अपने पारिवारिक सदस्यों में व्यतीत करता है, उस पर घर का गुप्त प्रभाव निरन्तर पड़ता रहता है । आधुनिक बालकों की मानवोचित भावनाओं एवं पुरुषोचित शक्तियों की प्राप्ति में विफलताओं की सर्वाधिक जिम्मेदारी उनके अभिभावकों की है ।

हमारी रूढ़ियाँ और अन्धविश्वास

अपने अभिभावकों से प्राप्त होने वाले बुरे परम्परागत संस्कार या सामाजिक रूढ़ियाँ बच्चों के लिये बड़े शत्रु हैं । मैं ब्राह्मण हूँ, वह चमार है-मैं क्षत्रिय हूँ, वह शूद्र है-मैं अमीर हूँ, वह अस्पृश्य है-उसे मेरी समानता का अधिकार नहीं-इस प्रकार की अनेक रूढ़ियाँ छात्रों के दिमागों में पाई जाती हैं । सब बच्चों का मानस स्फटिक की तरह स्वच्छ न होकर, रूढ़ियों, पुराने धार्मिक संस्कारों, घर के रीति-रिवाजों, भोजन सम्बन्धी विचारों तथा सांस्कृतिक विकास से आच्छादित होता है । जब आप बच्चे को उठाना चाहते हैं, तो पहले आपको परिवार का वातावरण परिवर्तित करना पड़ता है । ज्यों-ज्यों परिवार का वातावरण बदलता है, त्यों-त्यों बच्चे में भी अन्तर आना प्रारम्भ होता है । बालक परिवार के संस्कारों का प्रतीक हैं ।

बच्चे में वीर-पूजा (हीरो वरशिप) की जन्मजात भावना बड़ी तीव्र होती है । वह आदर्श के समीप आना चाहता है । उसका सबसे पहला आदर्श माता है । माता के गुण, दोष, आदतें, स्वभाव, दूध के साथ सम्पर्क और आदेशों के साथ मानसिक जगत में प्रवेश करते हैं । माँ के पश्चात् पिता वीर-पूजा का पात्र बन जाता है । परिवार में पिता का महत्व सर्वाधिक है । वह समस्त परिवार के लिये आदर्श है । उसी के पथ-निर्देश पर सब चलते हैं, उसी की आदतों और योग्यता, शिक्षा, सभ्यता का अनुकरण प्रतिपल किया जाता है । समस्त परिवार पिता की प्रतिच्छाया ही है । उसके मानस की अप्रत्यक्ष किरणें जिस वातावरण का निर्माण कर देती हैं, उसी में प्रत्येक बच्चे का मानसिक और नैतिक संस्थान विनिर्मित होता है । आपका परिवार वैसा ही होगा, जैसे आप स्वयं हैं, जैसे आपके विचार, आदर्श, रूढ़िगत संस्कार, भावनाएँ और अन्धविश्वास हैं ।

जैसा पिता, वैसा परिवार

पिता का महत्व मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से बहुत अधिक है । प्रत्येक परिवार अनुकरण का दास है । वह बड़ों का अनुकरण करता है । अतः पिता के रहन-सहन, विचारों और आदतों द्वारा घर के बच्चों की आदतों का निर्माण होता है । अतः पिता हर प्रकार से आदर्श रहें । अपने जीवन का कोई भी दोषपूर्ण पहलू परिवार के सामने न लायें । आदर्श पिता का परिवार ही सुखी, समृद्ध और उन्नतिशील हो सकता है ।

घर का वातावरण बनाने वाले अन्य भी तत्व हैं । पहले घर में दीवारों पर लगी हुई तस्वीरों को ही लीजिये । यदि यह चित्र अश्लील, कामोत्तेजक, सस्ते, शृंगारपूर्ण जीवन या सिनेमा की अभिनेत्रियों से सम्बन्धित होंगे, तो अप्रत्यक्ष रूप से घर का वातावरण अशुद्ध होता रहेगा । इसका प्रभाव बड़े होने पर बच्चों के चरित्र में प्रकट हो जायेगा । इसी प्रकार जिन परिवारों में गन्दी गालियाँ देने, बच्चों या नौकरों को मारने-पीटने, दुःखी करने का क्रम है, उनके बच्चे दुष्ट और निर्मम प्रकृति के होते जायेंगे । पोशाक का दिखावा, अधिक बनाव, पाउडर, सेन्ट-इत्र, खुशबूदार तेल लगाकर सज-धज कर निकलने वाले परिवारों के बच्चे उद्दण्ड और कामुक प्रकृति के निकलेंगे । जैसा घर का वातावरण, वैसे ही बच्चे के संस्कार ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पिता को अपना महान दायित्व समझना चाहिए और स्वाध्याय, चिंतन, मनन एवं सेवा-भाव के बीज पारिवारिक सदस्यों में बोने चाहिए । पिता ही प्रथम शिक्षक और पथ-प्रदर्शक है । उसे उत्साही, मिलनसार, भावुक, परोपकारी, अधिक परिश्रमी, अटल विश्वासी, व्यवहार कुशल, सच्चा समालोचक, विनोदपूर्ण होना चाहिए । जिस संलग्नता से वह पवित्र जीवन व्यतीत करेगा, उसी परोपकारिता, पितृ-भक्ति और मृदुता से उसका परिवार उसके पद चिह्नों पर चलेगा ।

सम्मिलित रहें या पृथक हो जाएँ ?

सहयोग की भावना मनुष्य जाति की उन्नति का मूल कारण है । हमारी एकता-शक्ति, सामाजिकता, मैत्री भावना, सहयोग परायणता ही हमारी आधुनिक सभ्यता का मूल मन्त्र है । सभ्यता के प्रारम्भ में मनुष्यों ने आपस में एक दूसरे को सहयोग दिया, अपनी स्थूल और सूक्ष्म शक्तियों को परस्पर मिलाया । इस संगठन से उन्हें ऐसी चेतनाएँ एवं सुविधाएँ प्राप्त हुईं, जिनके कारण अनेक हिंस्र पशुओं के ऊपर मनुष्य का आधिपत्य स्थापित हो गया । दूसरे प्राणी जो साधारणतः शारीरिक दृष्टि से मनुष्य की अपेक्षा कहीं अधिक सक्षम थे, इस मैत्री भावना, सम्मिलित योग्यता के अभाव में जहाँ के तहाँ अविकसित पड़े रहे । उनकी शक्तियाँ विशृंखलित, विघटित, असंगठित रहीं । संघशक्ति का प्रादुर्भाव उनमें न हो सका ।

यही बात परिवारों के सम्बन्ध में है । वे ही परिवार उन्नति कर सके हैं जिनमें पारस्परिक सहयोग, संगठन, एकता, पारस्परिक सद्भाव रहे हैं । बड़े सेठ, साहूकार संस्थाओं, फर्मों का निरीक्षण करके मालूम करें तो उनका संगठन ही उन्नति का मूल मिलेगा । विद्युत, अग्नि, गैस, बाष्प की तरह जन-शक्ति भी एक होकर अनेक गुनी अभिवृद्धि को प्राप्त होती है ।

व्यक्तिवाद के स्थान पर समूहवाद की प्रतिष्ठा पाना संसार अब पहचानता जा रहा है । मजदूर, किसान, कारीगर अपने संघ विनिर्मित कर रहे हैं । यहाँ तक कि बुरे व्यक्ति भी बुरे कर्मों के लिये घनिष्ट संघ बनाकर अवांछनीय साहसिक कार्य प्रतिष्ठित कर रहे हैं ।

सम्मिलित कुटुम्ब के असंख्य लाभ

पृथक-पृथक रूप से छोटे-छोटे प्रयत्न करने में शक्ति का अपव्यय अधिक और कार्य न्यून होता है । अकेला मनुष्य थोड़ी देर बाद रुक जाता है । परन्तु सामूहिक और संगठित सहयोग से ऐसी अनेक चेतनाओं और सुविधाओं की उत्पत्ति होती है, जिसके द्वारा बड़े-बड़े कठिन कार्य सहज हो जाते हैं । सम्मिलित खेत, सम्मिलित रसोई, सम्मिलित व्यापार, सम्मिलित संस्था, सम्मिलित परिवार की प्रवृत्ति से मानव प्राणी की सुख, शांति एवं सफलताओं में आश्चर्यजनक रीति से अभिवृद्धि होती है ।

आर्थिक दृष्टि से विचार कीजिए तो धन का मितव्यय होता है तथा सम्पन्नता में अभिवृद्धि होती है । पृथक-पृथक रहने पर पृथक ही चूल्हे जलते हैं, दीपक जलते हैं, भोजन, निवास तथा शिक्षा इत्यादि के निमित्त प्रत्येक छोटे परिवार को पृथक ही व्यय करना पड़ता है । आजकल मकान की समस्या बड़ी विषम है । चार भाई यदि पारस्परिक स्नेह का विकास कर सम्मिलित रहें, तो चार मकानों के स्थान पर एक से ही कार्य चल जायेगा । चार मकान, चार फर्नीचर, फर्श, सजावट का सामान की आवश्यकता प्रतीत न होगी । अतिथियों के अतिरिक्त पलंग, बिस्तर फिर सब को पृथक रखने की क्या जरूरत ? घर के साधारण नौकर, जैसे कहार, रसोइया, मेहतर, चौकीदार, दूध दुहने वाले का व्यय भी एक ही स्थान से किया जा सकेगा और चारों भाइयों को आराम भी प्राप्त होगा । चार भाइयों के एक साथ सम्मिलित रहने में यदि सौ रुपये का व्यय है, तो पृथक रहने से चार सौ का व्यय अवश्य हो जायेगा । एक भाई दूसरे अच्छे भाई का व्यवहार, प्रोग्राम, दिनचर्या देखकर उसका अनुकरण करेगा, गन्दगी से बचेगा, व्यर्थ की आदतों जैसे सिनेमा, मद्य, सिगरेट, सैरसपाटा इत्यादि अनेक प्रकार के अपव्यय से बचा रहेगा । ''जो मैं चाहता हूँ, वह सब को भी होना चाहिए । सब के लिये वही व्यवस्था करने में बहुत व्यय पड़ेगा । केवल मेरे ही लिये यह वस्तु होने से सब को बुरा प्रतीत होगा''-ऐसा सोचकर गृह के अन्य सदस्य भी अपनी आवश्यकताओं पर संयम और मन पर नियन्त्रण रखेंगे । जब यह नियन्त्रण हट जाता है, तो हर एक व्यक्ति खुले हाथ से व्यय करता है । घर की जुड़ी हुई सम्पत्ति नष्ट हो जाती है । झूठे दिखावे में आदमी बरबाद हो जाता है ।

आर्थिक लाभ

इस प्रकार जहाँ व्यय में किफायत होती है, वहाँ सम्पन्नता में वृद्धि होती है । मितव्यय वाला धन क्रमशः एकत्रित होता है । घर के विश्वस्त आदमी मिलकर कारोबार में जितना लाभ कर सकते हैं, उतना नौकरों द्वारा नहीं हो सकता । सब की आय एक ही स्थान पर एकत्रित होने से संचित पूँजी में वृद्धि होती है । अर्थशास्त्र का अकाट्य नियम है, ''अधिक पूँजी अधिक लाभ ।'' जैसे किसी व्यापार में एक हजार की पूँजी लगाई जाती है, तो दस प्रतिशत लाभ होता है । पर उसी में दस हजार की पूँजी लगाई जाये तो पन्द्रह प्रतिशत लाभ होने लगेगा । सब की कमाई एक स्थान पर होने से, पारिवारिक उद्योग धन्धे छोटे-छोटे व्यापार और छोटी कम्पनियाँ चालू की जा सकती हैं । ये ही छोटी कम्पनियाँ मिलकर बड़ी कम्पनियाँ बन जाती हैं ।

प्रत्येक परिवार की एक साख होती है । अच्छी साख वाले परिवार के प्रत्येक सदस्य को जीवन में अग्रसर होने में यह पूर्व संचित प्रतिष्ठा-सम्पदा बहुत लाभ पहुँचाती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

मानसिक दृष्टि से लाभ

मानसिक दृष्टि से विचार कीजिये, तो अनेक लाभ हैं । साथ-साथ रहने से सामाजिकता की वृद्धि होती है, मनोरंजन रहता है और तवियत लगी रहती है । चित्त ऊबता नहीं । बच्चों की मीठी-तोतली बोली, माता का सुखद वात्सल्य, भाई-बहिनों का सौहार्द्र, पत्नी का प्रेम, सब का सहयोग, कष्ट के समय उत्साह-जैसे विविध भावों का एक रुचिकर थाल सामने रहता है जिसे खाकर मानसिक क्षुधा तृप्त हो जाती है । पत्नी को लेकर पृथक हो जाने वाले लोग इन षट्रस मानसिक व्यंजनों से वंचित रह जाते हैं । छोटे बच्चों का खेलना, बड़े बच्चों का पढ़ना, लड़कियों का काढ़ना-बुनना, अध्ययन, संगीत, स्त्रियों की अनुभवपूर्ण बातें, गृहकार्य करना, गृहपति का आगन्तुकों से वार्तालाप, वृद्धाओं की धर्मचर्चा एवं नानी की कहानियाँ किसी में प्रेम किसी में चखचख, खटमिट्ठा स्वाद मिलकर कुटुम्ब एक अच्छा मनोरंजन स्थल बन जाता है । यह अपने आप में एक सोसायटी है ।

आपत्ति की सुरक्षा के लिये सम्मिलित कुटुम्ब की प्रथा एक बहुत बड़ी गारण्टी है । स्त्रियों के शान्त सदाचार की रक्षा के लिये यह एक ढाल के समान हैं । बीमार पड़ जाने पर इतने व्यक्ति सेवा-सुश्रूषा के लिये प्रस्तुत रहते हैं और रोग मुक्ति का उपाय करते हैं । सब के साथ वृद्धावस्था आराम से कट जाने का सन्तोष रहता है । अपाहिज या अशक्त हो जाने पर भी इस आश्रय का विश्वास रहता है । मृत्यु हो जाने पर स्त्री, बच्चों का पालन-पोषण हो जाने की निश्चिन्तता रहती है । पाश्चात्य देशों में जहाँ पृथक परिवार हैं, विधवाओं का जीवन बड़ा अश्लील रहता है । उन्हें स्वयं गृह के बाहर का काम-काज करना पड़ता है या अन्यों का मोहताज रहना पड़ता है । हमारे बड़े परिवार में इनके पालन-पोषण तथा सम्पूर्ण जीवन सुख से व्यतीत करने की अच्छी सुव्यवस्था है । बच्चे, बूढ़े, अपंग, पागल, विधवा सभी को आश्रय प्राप्त हो जाता है ।

बाल-मनोविज्ञान के अनुसार बच्चे अनुकरणप्रिय होते हैं । एक अच्छा परिवार एक स्कूल की भाँति है, इसमें हर एक बच्चा प्रारम्भ से ही घरेलू शिक्षा प्राप्त करता है । वे साथ-साथ खेलते-कूदते खाते-पीते हैं, उनका शारीरिक और बौद्धिक स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन अभिवृद्धि को प्राप्त होता है । परिवार का प्रत्येक बालक बड़ों का अनुकरण कर कुछ न कुछ उत्तम शिक्षा, आदत, स्वभाव की विशेषता ग्रहण करता है । यही कारण है कि बड़े प्रतिष्ठित खानदानों की लड़कियाँ प्रायः चतुर, सुसंस्कृत, अच्छी आदतों वाली, सभ्य और व्यवहार-कुशल होती हैं । माँ-बाप की अकेली सन्तान, विशेषकर कन्या बड़े परिवार से पृथक प्रायः अकेली माँ-बाप के साथ रहती है, तो वह गृह संचालन के कार्य में बहुत कम सफल हो पाती है । उसके पारिवारिक संस्कार विकसित नहीं हो पाते । बुजुर्गों और अनुभवी व्यक्तियों के गुप्त संस्कार प्रतिपल बच्चों का आत्मिक विकास किया करते हैं । अतः पृथक रहकर बालक उतना विकसित नहीं हो पाता, जितना एक सुसंस्कृत, सुशिक्षित और सात्विक प्रकृति के सुसंचालित परिवार में पनपता है ।

सामाजिक दृष्टिकोण से लाभ

सामाजिक दृष्टि से सम्मिलित परिवार अधिक प्रतिष्ठित माना जाता है । चार अनुभवी व्यक्तियों के परिवार की सम्मिलित जन-शक्ति देखकर प्रतिद्वन्द्वी अनायास मुकाबला नहीं करते, मित्र आकर्षित होते हैं । सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ती है । सम्मिलित शक्ति के स्वामित्व का बल घर के प्रत्येक सदस्य को रहता है । हर सदस्य समझता है कि किसी ने मेरा अपमान किया तो समस्त परिवार की जन-शक्ति उससे प्रतिशोध लेगी । बीस व्यक्तियों के कुटुम्ब की सब की शक्ति का अनुमान मान लीजिये एक मन है, तो वैसे पृथक-पृथक हर एक का बल दो सेर हुआ । पर, समाज में हर एक का बल एक-एक मन समझा जाता है । इस प्रकार हर एक को बीस गुनी शक्ति का लाभ तो अनायास ही प्राप्त हो जाता है ।

पृथक रहने पर तो मनुष्य की जो वास्तविक शक्ति होती है, उससे भी न्यून प्रतीत होती है । दूसरे व्यक्ति समझते हैं कि "अपनी निजी आवश्यकताओं से इसके पास समय, बल और धन कम ही बचता होगा । इसके द्वारा यह किसी को हानि लाभ न पहुँचा सकेगा ।" इस मान्यता के आधार पर यह व्यक्ति वास्तविक स्थिति से भी छोटा प्रतीत होने लगता है । ऐसी स्थिति में देश या समाज की सेवा के निमित्त कोई महान् त्याग करने के लिये भी वह व्यक्ति तत्पर नहीं हो पाता । यदि हो भी जाता है, तो उसे अतीव चिन्ता रहती है तथा उसके आश्रितों की कठिनाई का ठिकाना नहीं रहता ।

धार्मिक दृष्टि से लाभ

धार्मिक दृष्टि से सम्मिलित परिवार कर्तव्य, संयम, त्याग, निःस्वार्थता, सेवा भावना की शिक्षा का पुण्य-स्थान है । माता-पिता, बड़े भाई, सास, ननद, जिठानी आदि के प्रति जो कर्तव्य है, वह सम्मिलित कुटुम्ब में रहकर ही निभाया जा सकता है । बड़े का सत्कार, सेवा, आदर तभी सम्भव है, जब तक उनके साथ रहें । बड़े भी अपने अनुभव का लाभ छोटों को उसी दशा में दे सकते हैं । जिन बड़ों ने एक बालक को गोदी में खिलाया है और एक युग तक बड़ी-बड़ी आशाएँ रखी हैं, वह समर्थ होते ही, पृथक हो जाता है, तो उन्हें भयंकर मानसिक आघात लगता है । यह धार्मिक दृष्टि से एक कृतघ्नता हैं । ऐसी कृतघ्नता को अपनाने से मनुष्य अपने सहज धर्म लाभ से, कर्तव्य पालन से वंचित रह जाता है ।

जो परिवार को अपना धर्मक्षेत्र मानकर, नाना प्रकार के पुण्य कर्त्तव्यों का पालन करते हुये उसके द्वारा प्रभु पूजा

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करते हैं, वे सच्चा आत्मलाभ करते हैं । आपका परिवार परमेश्वर के द्वारा आपको सौंपा हुआ एक उद्यान है । उसमें नाना प्रकार के छोटे-बड़े पौधे लगे हुए हैं । एक कर्तव्यशील माली की तरह आपको प्रत्येक छोटे-बड़े पौधे को सींचना है । जो इस प्रकार अपने कर्तव्य का पालन करते हैं, वे एक प्रकार की योग साधना करते हैं और योग के फल को प्राप्त करते हैं । अपने निजी सीमित स्वार्थ की दृष्टि को विस्तृत करके जब मनुष्य उसे स्त्री, पुत्र, पौत्र, परिजन आदि में फैलाता है, तब उसके अहंभाव का विस्तार द्रुतगति से होने लगता है । फिर ग्राम, देश, विश्व से बढ़कर वसुधैव कुटुम्बकम् की उसकी दृष्टि हो जाती है और सब कुछ अपना, आत्मा का, परमात्मा का दीखने लगता है, यही जीवनमुक्ति है ।

इस प्रकार सम्मिलित परिवार एक सुदृढ़ गढ़ है, जिसमें कोई भी बाहर का व्यक्ति प्रवेश नहीं कर सकता, क हानि नहीं पहुँचा सकता, सर्वतोमुखी उन्नति हो सकती है । पर खेद के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि आज हमारे अधिकांश सम्मिलित परिवार कलह और मनोमालिन्य के शिकार हैं । इसका कारण मुखिया (अधिष्ठाता-घर का प्रधान) की कमजोरियाँ हैं । यदि प्रधान मनुष्य के मनोविज्ञान का अच्छा जानकार है, बच्चों, बूढ़ों, युवकों और स्त्री-स्वभाव को अच्छी तरह समझता है, तो वह कुटुम्ब में कलह का अवसर ही न आने देगा । उसे बड़ा अनुभवी, दूरदर्शी, न्यायसंगत, निः स्वार्थ, निष्पक्ष, शान्त-स्वभाव का होना चाहिए । उसका विवेक जाग्रत रहे, वह शान्ति से सबके पक्ष सुने, विचारे और तत्पश्चात् निर्णय प्रदान करे । वह परिवार का कन्ट्रोलर या पथप्रदर्शक है, उसे आने वाली कठिनाइयाँ, घर की आर्थिक सुव्यवस्था, विवाह सम्बन्धों की चिन्ता, युवकों की नौकरियाँ, स्त्रियों के स्वास्थ्य और शिशु पालन का ज्ञान होना अपेक्षित है । अनेक बार उसे युक्ति से काम लेना पड़ेगा, प्रशंसा और प्रेरणा देनी होगी, क्रोध और डाँट-फटकार का प्रयोग कर पथभ्रष्टों को सन्मार्ग पर लाना होगा और आर्थिक कार्यों में आगे चलना होगा । अपनी धार्मिक उज्ज्वलता से उसे सब पारिवारिक सदस्यों का आदर और प्रतिष्ठा का पात्र भी बनना होगा ।

पारिवारिकता से जुड़ा असाधारण दायित्व

परिवार और कुटुम्ब दोनों समान अर्थबोधक प्रतीत होते हैं, पर वस्तुतः है उनके बीच असाधारण अन्तर । वंश परिकर से जुड़ने वालों का समूह कुटुम्ब कहा जाता है, यह विवाह-प्रजनन की परिणति है । जिसके साथ वे सभी प्रवृत्तियाँ जुड़ती हैं जो वंशवृद्धि के अतिरिक्त वंश विकास की आवश्यक नीति-नियमों के साथ जुड़ी हुई होती हैं । उनकी उपेक्षा होने पर उस परिकर में अव्यवस्था फैल जाती है और जो हैं उनका निर्वाह ही नहीं जीवन भी बाधित हो जाता है ।

परिवार की संरचना में यह आवश्यक नहीं कि वह सुनियोजित ढंग से सुसंस्कृत बनाया जाय अथवा जहाँ ऐसा व्यवस्था क्रम चल रहा है, वहाँ जाकर सम्मिलित हुआ जाय । परिवार सुयोग्य माली द्वारा काटा-छाँटा, रोपा और बढ़ाया गया उद्यान है, कुटुम्बों को जंगली झाड़ियों का झुरमुट ही कहा जा सकता है । जो जगह घेरते हैं वे अपने परिकर में साँप-बिच्छुओं को आश्रय देते हैं, उनके समीप जाने, गुजरने वाला भी काँटे-चुभने, कपड़े फटने, दिशा भूलने जैसे जंजालों में फँसता है, वे स्वयं तो अनुपयोगी होने के कारण तिरस्कार के भाजन बनते ही हैं ।

जिनमें नवागन्तुकों का समुचित स्वागत-सत्कार करने, सुविधा देने की क्षमता हो वे उसे नाप-तौल लें और निमन्त्रण भेजने की उतावली न करके तब तक के लिये रुकें जब तक कि बारात ठहराने के लिये उपयुक्त जनवासे की, सत्कार सामग्री की व्यवस्था न बन जाय । विवाह करने की उतावली क्यों की जाय ? उसमें भिन्न मनःस्थिति और परिस्थिति में पली विचित्र महत्वाकांक्षाओं के सपने सँजोये रहने वाली एक भावुक और अनुभवहीन युवती के उत्साह को, मानस को, स्वभाव को, क्रिया-कलाप को एक नई दिशा देनी पड़ती है । धर्मपत्नी की भूमिका निभा सकना पति का दर्प भरे मानस की इच्छापूर्ति वाली बात मनवाने की अपेक्षा कहीं अधिक कठिन है । इसे सरकस के कलाकार सधाने जैसे अनेक जोड़-तोड़ों से भरापूरा कौशल समझना चाहिए, इसके लिये सर्वप्रथम पति का अपना समग्र व्यक्तित्व ऐसा होना चाहिए कि स्वयं साँचा बन सके और साथ में चिपकने वाले को ठीक अपने जैसा स्वरूप दे सके । इससे कम तैयारी में कोई उपयुक्त सहधर्मिणी पा नहीं सकता, ऐसी प्रतिमायें गढ़ी-गढ़ाई बाजार में नहीं मिलतीं, उन्हें अपने हाथों मूर्तिकार की तरह गढ़ना और चित्रकार की तरह भावभरी तस्वीर बनाने में अपनी कलाकारिता की छाप छोड़नी पड़ती है सुगृहणियाँ आदर्शों की दिशा में चलने और चलाने वाली गृहणियाँ अपवाद रूप से पितृगृह से ढली और किसी सौभाग्यशाली को वरदान की तरह मिली होंगी अन्यथा इस सन्दर्भ में सफल मनोरथ व्यक्ति को यह निर्माण कार्य स्वयं करना पड़ता है । इसके लिए चेतावनी या धमकी देते रहने भर से खाई और भी चौड़ी होती है । किसी को उत्कृष्टता के ढाँचे में ढालने के लिये सर्वप्रथम सृजेता को ही उच्चस्थिति तक पहुँचना चाहिए । अनगढ़ों को सुगढ़ बनाना भी एक असाधारण कला है-उसके साथ सघन आत्मीयता, प्रसन्नमुद्रा, क्षमाशीलता और अटूट धर्म की आवश्यकता होती है जो इस योग्य अपने को ढाल सकें वे पत्नी-पति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपयुक्तता के ढाँचे में ढलने का साहस करें अन्यथा अयोग्यता-असमर्थता की स्थिति में अविवाहित रहना ही अच्छा है । ठीक यही बात वयस्क युवती के लिए भी लागू होती है, उसे अनगढ़ स्तर के पति को भी सुसंस्कृत बनाने के लिए आवश्यक चिन्तन और कौशल पितृगृह से सँजो लेना चाहिए । अच्छे उदाहरण देखने को न सही सुनने को तो मिल ही जाते हैं, उनका बारीकी से पर्यवेक्षण करने पर यह पता चलता है कि इसे देखने में छोटे किन्तु व्यवहार में अत्यन्त भारी-भरकम कार्य को सम्पन्न करने के लिये कितना अधिक संतुलित कौशल चाहिये । नारी पक्ष का वजन और भी अधिक भारी है, क्योंकि उसे न केवल पति को बालक की तरह सँभालना पड़ता है वरन् एक अपने ढंग के ढाँचे में ढले हुए परिवार को भी समेट-बटोर कर इस स्थिति तक लाना पड़ता है जिसमें शालीनता की परम्परायें फूल-फल सकें । बात इतने तक ही समाप्त नहीं हो जाती, नवजात शिशुओं का प्रजनन तो उतना कष्टसाध्य नहीं हैं । उन्हीं आदतों को सुसंस्कारिता के साथ अविच्छिन्न रूप से जोड़ सकना और भी अधिक जटिल है । जो समझते नहीं, जिन पर आदेश काम नहीं करते उन्हें उपयुक्त स्तर का बनाना कितना असाधारण कार्य होता है-इसे भुक्तभोगी ही जानते हैं । यह सब कुछ न आने पर नवविवाहितों को ऐसे चक्रव्यूह में फँसना पड़ता है, जिससे बाहर निकल सकने का कोई मार्ग नहीं दीखता । पति-परिवार, सन्तान सभी बेकाबू हो रहे हैं तो उनको अपने ढाँचे में ढालना, मण्डली को मानवी गरिमा से तालमेल बिठा लेने योग्य बनाना, काफी बोझिल कार्य हैं । इसके लिए जिन नर-नारियों में आवश्यक धैर्य और कौशल है, जिन्होंने अपने सृजनकर्त्ता कलाकार के स्तर तक पहुँचा लिया हो उन्हीं का विवाह बन्धन में बँधना सार्थक है अन्यथा उपयुक्त स्थिति न बन पड़ने तक अविवाहित बने रहना ही श्रेयस्कर है । आयु बढ़ते ही विवाह अनिवार्य रूप में करना ही पड़ेगा-इस मान्यता में दूरदर्शी विवेकशीलता का समावेश कहीं दीखता नहीं ।

विवाह के पूर्व भी हर युवक-युवती के सामने एक परिवार विद्यमान रहता है । लड़की के लिए उसमें माता-पिता, भाई-बहन भी सेवा-श्रम करते रहने के लिए उपलब्ध रहते हैं । लड़कों के भी अभिभावक, भाई-भतीजे, चाचा-भाई एवं उनकी पत्नियाँ, वृद्धायें आदि कितने ही सदस्य रहते हैं-उस कुटुम्ब का अनेक स्तर का अनेक प्रकार का सहयोग-अनुदान ऋण के रूप में अपने ऊपर चढ़ा होता है, फिर उससे उऋण होने को भी प्राथमिकता दी जाय तो उसे कृतज्ञता की, कर्तव्य पालन की अभिव्यक्ति ही कहा जायेगा ।

जिनका निजी परिवार बहुत छोटा है, उनका सदस्य संख्या बढ़ाने का, चहल-पहल देखने का मन करता है । उनके लिए एकमात्र उपाय यही है कि किन्हीं असमर्थ परिवारों के बालकों को अपने संरक्षण में ले लें, उनके भरण-पोषण की, शिक्षा-चिकित्सा की व्यवस्था बनायें । स्वावलम्बी होने तक उनकी भरपूर सहायता करें, इसके उपरान्त उन्हें अपने पैरों पर खड़ा होने और स्वतन्त्र बुद्धि से जीवनयापन करने के लिए खुला छोड़ दें । उनमें से कोई स्वेच्छापूर्वक साथ रहने के लिए इच्छुक हों तो उसे वैसा अवसर भी दिया जा सकता है । इन दूसरों के पेड़-पौधों को सींचने-बढ़ाने में एक परिष्कृत बुद्धि वाले माली की तरह लगे रहा जा सकता है ।

अनर्थ का पहाड़ वहाँ से टूटना आरम्भ होता है जब अपने प्यार-दुलार या अनुचित धन-वैभव को किसी के लिए उत्तराधिकार में हस्तान्तरित करने की संकीर्णता जोर मारती है । सन्तानरहित या मात्र लड़कियों वाले लोग किसी को गोद रखने की बात सोचते हैं, यह क्षुद्रता का घिनौना उदाहरण है । अपने प्यार-दुलार को क्या असंख्यों पिछड़े हुए लोगों को नहीं दिया जा सकता ? क्या संचित सम्पदा को किसी एक के लिए छोड़ मरना कृपणता की चरम सीमा नहीं है ? क्या उस संचय को देश, धर्म, समाज, संस्कृति की असंख्य आवश्यकताओं की पूर्ति में नहीं लगाया जा सकता ? वृन्दावन के राजा महेन्द्रप्रताप अपना उत्तराधिकार प्रेम महाविद्यालय को हस्तांतरित कर गये थे, ऐसा अन्यान्य असंख्य उदारचेता भी कर चुके हैं । गोद रखने की प्रथा में संकीर्ण कृपणता झाँकती है । असमर्थ बालकों को स्वावलम्बी बनने तक संरक्षण देना दूसरी बात है । निस्वार्थ सेवा, समुचित कृतज्ञता और प्रतिदान की ललक लेकर वापिस लौटती है, उसी में आनन्द मिलता है । मात्र अपने पत्नी के पेट से, जन्मे बच्चे के लिए ही प्यार और वैभव सुरक्षित रखा जाय, इसमें महानता की झलक-झाँकी कहीं भी नहीं दीख पड़ती । गोद लेने, पराये बच्चे को उत्तराधिकारी घोषित करने, उसी से बुढ़ापे में सेवा-सहायता की अपेक्षा करने, वंश चलने जैसी कामना करना अवास्तविकता और अनुदारता के जाल-जंजाल में ही भटक मरना है ।

विवाह के साथ ही व्यक्ति असंख्य दायित्वों से लदता है, उनके न निभ पाने पर असाधारण रूप से त्रास सहता है । बच्चे जनने लगना अपने ऊपर इतनी जिम्मेदारी को लादना है जो समूचे परिवार के ऊपर ऐसा भार बनती है जो खींचे नहीं खिंच पाती । भावी परिणामों और दायित्वों को भली प्रकार समझने और उनके लिए समुन्नत क्षमता अर्जित कर लेने पर ही नया कुटुम्ब बढ़ाने का साहस हजार बार सोच-समझकर करना चाहिए । इन दिनों वस्तुस्थिति को समझते हुए फूँक-फूँक कर ही कदम बढ़ाना चाहिए । जो आँख बन्दकर विवाहोत्सव और सन्तानजन्म का हर्षोत्सव देखने के लिए कुछ भी कर गुजरने के लिए आतुर हैं, वे कुटुम्ब में और नये सदस्य तो बढ़ा सकते हैं, पर परिवार सृजन के उस श्रेय का लाभ नहीं ले सकते जो सृजेता, संरक्षक सदस्य सभी को सब प्रकार कृतकृत्य करता है ।

सुनियोजित परिवार एक ऐसा माध्यम है जिसमें संचालकों को आत्मपरिष्कार के लिए बाधित होना पड़ता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है । अपने को उदाहरण बनाये बिना किसी से भी आदर्शवादी अनुकरण की आशा नहीं करनी चाहिए । जिस परिवार के संचालक अपने को अनुकरणीय स्तर तक न पहुँचा चुके होंगे, उनके लिए यह सम्भव न होगा कि अन्यान्य परिजनों को सन्मार्ग पर चलाकर उत्कृष्टता का लक्ष्य प्राप्त करा सकें । दुर्गुणी, दुर्बुद्धिग्रस्त और अनाचारी लोग अपने सदस्यों और अनुचरों को भी वही विरासत में छोड़ मरते हैं, उसी छूत की संक्रामकता से उन्हें भी पतन-पराभव की आधि-व्याधियों में जकड़ते हैं । बाहर वाले अपरिचितों को भी मौखिक आदेश परामर्श भी दिये जा सकते हैं, पर निकटवर्ती लोग तो वस्तुस्थिति समझते और नंगा स्वरूप देखते हैं । ऐसी दशा में उनके लिए वही वास्तविक परामर्श होता है जो अपने चिन्तन, चरित्र और व्यवहार के रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

शालीनता, पुष्पवाटिका की तरह फलती है । अपनी सुगन्ध और शोभा से, दर्शकों का मन मोहती और वातावरण को सुगन्ध से भरती है, उसकी सर्वत्र सराहना होती है । इसके विपरीत हेय व्यक्ति के कण-कण में घुसी हुई निष्कृटता सर्वप्रथम अपने को अप्रामाणिक, अनगढ़ एवं घृणा-तिरस्कार का भाजन बनाती है । उसके उपरान्त उसके साथी-सहयोगी उस संस्कार छूत से प्रभावी होते हैं । कचरा जब सड़ता है तो विषाणुओं से सारे प्रभाव क्षेत्र में सड़न-असहनीय दुर्गन्ध भरती है । परिवार कैसा बन पड़ा ? इसके सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि जैसा कुछ उसे बनाया गया वैसा बन गया । कुन्ती और मदालसा ने अपने स्तर का प्रजनन और परिवार बनाकर खड़ा कर दिया । परिवार बनाने में कोई बुद्धिमत्ता नहीं, यह कार्य तो क्षुद्र स्तर के प्राणी कीड़े-मकोड़े भी करते रहते हैं । मनुष्य की गरिमा यह है कि वह परिवार के साथ रहने की प्रवृत्ति-प्रेरणा को सार्थक बनाने, सीखने-सिखाने का, ढलने-ढालने का क्रम जारी रखें ।

सेवा का दृष्टिकोण तो विश्वव्यापक स्तर का रखा जा सकता है, पर उसे व्यवहार में चरितार्थ कर पाना अपने निकटवर्ती क्षेत्र में ही बन पड़ता है । परिवार एक ऐसी संस्था है जो बालक के जन्मने से पूर्व ही उसे सहयोग प्रदान करने के लिए तैयार रहती है । अपने बहुमुखी उदारता से उसे बना-बढ़ाकर लाभान्वित करती है, स्नेह देने और सुधारने-सिखाने में उसकी अपने ढंग की भूमिका रहती है । बड़े होने पर उस बालक का कर्तव्य हो जाता है कि जो अनुदान दिया गया है, उसका प्रतिदान देने की तैयारी करे और जब तक वह शृंखला पूरी तरह न बन पड़े तब तक नये उत्तरदायित्व अपने-अपने ऊपर ओढ़ने का दुस्साहस न करे । यह उऋणता मात्र भोजन-वस्त्र जैसी सुविधाएँ जुटा देने भर से पूरी नहीं हो जाती वरन् यह अपेक्षा रखती है कि अधिक सुसंस्कृत बनकर अपने परिवार का सदस्य उस भावनात्मक विभूतियों से उन्हें लाभान्वित करे, जो सच्चे अर्थों में किसी को प्रामाणिक प्रतिभावान और सुसंस्कृत बनाती हैं । परिवार की खदान भले कोयले जैसी रही हो, पर उसमें से प्राणवान प्रतिभाओं को तो हीरा बनकर ही निकलना चाहिए । कीचड़ में कमल खिल सकते हैं, सीपियों में मोती बन सकते हैं तो कोई कारण नहीं कि सामान्यतया अनगढ़ परिस्थितियों वाले परिवार में भी उच्चस्तरीय प्रतिभाएँ न जग सकें-इस सुयोग का बन पड़ना ही पारिवारिकता की सच्ची उपलब्धि है ।

संयुक्त परिवार हर तरह से उपयोगी

संयुक्त-परिवार के गुणों और दोषों दोनों का विचार एवं स्मरण आवश्यक है । संगठन और सहयोग से, प्रेम एवं आत्मीयता से उपलब्ध होने वाले आनन्द तथा लाभ सम्मिलित परिवारों की स्वाभाविक उपलब्धि है । किन्तु ये अच्छाइयाँ, तभी तक बनी रहती हैं, उनके सुफल तभी तक मिलते रहते हैं, जब तक उनके आधार कायम रहें और आवश्यक नियमों का पालन किया जाता रहे ।

संयुक्त-परिवार में सुख-शान्ति एवं सुव्यवस्था का आधार आत्मीयता एवं पारस्परिक सहयोग ही होता है । जिम्मेदारियों का आपसी बँटवारा सभी के सिर का बोझ उठा सकने योग्य बना देता है ।

सामूहिक उपार्जन से सबसे बड़ा लाभ यह है कि सम्मिलित सम्पत्ति की मात्रा अधिक होती है और उस पर हर एक को अपना अधिकार प्रतीत होने से प्रसन्नता होती है । पारिवारिक समृद्धि परिवार के प्रत्येक सदस्य को हर्ष देती है । वह जानता है कि हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति में उसका उपयोग होगा । उपयोग के अतिरिक्त समृद्धि का होना अपने आप में लोगों की प्रसन्नता का आधार बनता है । इसका कारण उस समृद्धि के कारण हो सकने वाली सुरक्षा का बोध ही है । संयुक्त परिवार में यह बोध गलत भी नहीं सिद्ध होता । हारी-बीमारी, विपत्ति, दुर्घटना शोक आदि के क्षणों में परिवार की सम्पत्ति एवं सहायता काम आती है । विवाह-शादियों तथा उल्लास के अन्य आयोजनों, उत्सवों में भी जो विशेष खर्च सिर पर आ पड़ता है, उसे संयुक्त परिवार की सुदृढ़ आर्थिक स्थिति तथा मिली-जुली पूँजी से सहजता से उठाया जा सकता है । बाद में उसे स्वाभाविक क्रम से पूरा किया जाता रहता है । इससे ऋण के ब्याज तथा मानसिक बोझ दोनों से मुक्ति मिलती है । एक-दूसरे के सहयोग से पहिया लुढ़कता रहता है और अत्यधिक श्रम तथा चिन्ता का अवसर नहीं आ पाता ।

मनुष्य को आर्थिक सहयोग की तो जब-तब ही आवश्यकता पड़ती है पर मानवीय सहयोग की सदैव ही पड़ती रहती है । हर्ष-उल्लास और विपत्ति-पीड़ा के अवसर पर जब परिवार के लोग एक के साथ ही उठ खड़े होते हैं तथा अपने-अपने ढंग से सहायता करते हैं, तो उससे होने वाली प्रसन्नता अनुभव की ही वस्तु है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सबके साथ रहने का उल्लास ही अलग है । मनुष्य सामाजिक प्राणी है । अपरिचितों के बीच पहुँचकर भी उसका दिमाग एकान्त के तनाव-बोझ से हलका होने लगता है, यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है । परिचितों से अपने अनुभवों का सम्प्रेषण करने, आदान-प्रदान करने की ललक हर एक में होती है । फिर आत्मीय-स्वजनों के बीच उत्पन्न होने वाले उल्लास का क्या कहना ! माँ की ममता भरी दृष्टि, पिता का गम्भीर व्यक्तित्व, भाई-. बहिनों का उमड़ता स्नेह, मीठी नोंक-झोंक, पत्नी का प्रेम तथा बच्चों की मधुर-मधुर नटखट, कुतूहल, जिज्ञासा तुतलाहट, इन सबका सम्मिलित आनन्द मन को सरस-सक्रिय बनाये रहता है । कष्ट की स्थिति में उपलब्ध सेवा सुश्रूषा, आत्मीयता की छाया, उसे सहज तथा हलका बना देती है ।

संयुक्त परिवार की सम्मिलित पूँजी और विश्वस्त सहयोग नये उद्योग प्रारम्भ करने का आधार बन सकता है । दूसरे सहयोगी या नौकर लाभ के प्रति उतने उत्सुक नहीं होते या फिर निश्छल नहीं होते, अकेले लाभ कमाने के चक्कर में रह सकते हैं, दिन-रात जुटना भी पसन्द नहीं कर सकते । घर की पूँजी और घर का श्रम, विश्वस्त आत्मीयों का सहयोग-सहभागिता निश्चय ही अधिक लाभ का आधार बनती है । खेती, बागवानी, पशुपालन एवं गृह उद्योग में घर के लोगों का सम्मिलित श्रम ही लाभकारी सिद्ध होता है । छोटे-बड़े, बच्चे-बूढ़े, सबके उपयुक्त काम की गुंजाइश भी होती है । न कोई निठल्ला रहता है, न बेकार । सभी शक्ति अनुसार काम करते और आवश्यकतानुसार सुविधा-साधन प्राप्त करते रहते हैं ।

मिल-जुलकर रहने से समाज में परिवार की साख बढ़ती है । लोग भी सम्मान करते हैं । विरोधी चाहे जब अहित करने की कुचेष्टा का दुस्साहस नहीं कर पाते ।

श्रद्धा-सम्मान, विनम्रता, सौजन्य, सन्तुलन जैसे सद्गुणों के प्रशिक्षण का सर्वाधिक उपयुक्त स्थल संयुक्त परिवार ही है । बड़ों के प्रति श्रद्धा की अभिव्यक्ति, छोटों के प्रति प्यार-दुलार की मधुरता, शील-संकोच, कब खुलकर बात करना, कब चुप रहना, कैसे क्यों कहना, मनोरंजन आदि के समय भी कैसे मर्यादा बनाये रखना, ये सब संयुक्त परिवार में दैनन्दिन जीवन में ही स्वभाव का अंग बनते जाते हैं । अपनी आवश्यकताएँ दूसरों के तारतम्य के अनुसार मर्यादित करना, दूसरों के अंश का भी ध्यान रखना, दूसरों के लिये त्याग की तत्परता जैसे अमूल्य सद्गुण संयुक्त परिवार में ही स्वाभाविकता से सीखे जाते हैं । पति-पत्नी, बच्चों वाले परिवार में बच्चों को ही श्रेष्ठ गुण सीखने के अवसर कम ही मिलते हैं । उन्हें लेना ही लेना आता है, देने की त्याग की वृत्ति का उनका नियमित प्रशिक्षण नहीं हो पाता । यह भावनात्मक प्रशिक्षण संयुक्त परिवार प्रथा की सबसे बड़ी विशेषता है । श्रमशीलता, सहयोग, आत्मानुशासन, मितव्ययिता जैसे प्रगति के लिये आवश्यक गुणों का विकास पारिवारिक भावना की स्वाभाविक निष्पत्ति है । शिष्टाचार, वाक्-संयम, आवेग-आवेश पर नियन्त्रण का अभ्यास परिवार के वातावरण में अनायास होता चलता है ।

साथ-साथ रहने पर कई तरह की बचत होती है । चार भाई अलग रहकर चार चूल्हे जलायेंगे । चार कमरे, चार उपकरण, चार अलग-अलग व्यवस्थाएँ जुटानी होंगी । यही बात प्रकाश, साज-सामान आदि पर लागू होती हैं । साथ रहने पर कम खर्च आता है । आमोद-प्रमोद के साधनों में तो अच्छी खासी बचत हो जाती है । एक रेडियो, एक अखबार, सम्मिलित पुस्तकालय से सबका काम चल जाता है । बच्चों की पुस्तकें भी एक दूसरे के काम आती जाती हैं । एक ही कक्षा के बच्चे किताबों के एक सेट से काम चला लेते हैं । इसी प्रकार की अनेक मदों में बचत होती रहती है । छोटी-छोटी बचत ही कुल मिलाकर बड़ा रूप ले लेती है और ठोस लाभ का आधार बन जाती है ।

अपनी पत्नी-बच्चों को लेकर अलग परिवार बसा लेने वालों को रोग-विपत्ति, प्रसव-काल तथा बच्चों के लालन-पालन के समय आटा-दाल का भाव मालूम पड़ता है । ऐसे परिवार में पति या पत्नी अथवा छोटे बच्चे में एक से अधिक बीमार पड़ा, तो सारा कामकाज अव्यवस्थित होने लगता है । पत्नी रोग शय्या पर है तो घर और बच्चे की व्यवस्था सम्हालने के लिये पति अवकाश ले और खीझता-झन्नाता जैसे-तैसे काम निपटाए । घर का काम ही इतना हो जाता है कि रोगी की समुचित सुश्रूषा, देखभाल नहीं हो पाती और उसके अच्छा होने में अधिक समय लगता है । माता-पिता, भाई-बहन के साथ रहने पर, एक-दो व्यक्तियों की बीमारी से उनकी परिचर्या सामान्य क्रम में ही होती रहती है, किसी एक को पूरे समय खपना नहीं पड़ता । घर में कोई अस्त-व्यस्तता नहीं आती ।

यही स्थिति दुर्घटना, संकट-आकस्मिक विपत्ति के समय होती है । अकेले आदमी के ऐसे समय हाथ-पाँव ही फूलने लगते हैं । कहीं अपाहिज-असमर्थ हो गये, तो आजीविका का विकट प्रश्न आ खड़ा होता है । नौकरी छूट जाने पर बच्चों की पढ़ाई बन्द होने से उनके भूखों मरने तक की नौबत आ जाती है । संयुक्त परिवार में ऐसी भयंकर स्थिति कभी नहीं आती । परस्पर सहयोग से सब झेल लिया जाता है ।

जिस पत्नी को लेकर, सन्तान के अधिक अच्छे ढंग से लालन-पालन की कामना से अलग घर बसाया गया था, वह जब सचमुच ही आसन्न-प्रसवा होती है, तो खुशी का वह अवसर भी चिन्ता एवं परेशानी का पहाड़ साथ लिये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लगने लगता है । अस्पताल में भी प्रसव-काल में घर-परिवार या परिचय की किसी स्त्री की उपस्थिति आवश्यक होती है । उस समय आत्मीय सुहृद की उपस्थिति कष्ट के उन क्षणों को हलका बनाती है । प्रसव के उपरान्त लम्बे समय तक जच्चा को सेवा-सुश्रूषा की अत्यधिक आवश्यकता होती है । संयुक्त परिवार में यह सब सुगमता से होता रहता है । जबकि एकाकी परिवारों की दशा उस समय अत्यधिक कठिनाइयों से भरी हो जाती है । इसका जच्चा और बच्चा, दोनों पर हानिकारक प्रभाव पड़ सकता है । प्रसव की टूटी स्त्री लम्बे समय तक पनप नहीं पाती । उस समय यदि अधिक श्रम करना पड़ गया, उचित विश्राम न मिल पाया तो पोषक पदार्थों का संग्रह किसी काम नहीं आने का । थकान में वह खाया ही न जायेगा । शरीर टूट जायेगा, बच्चे को भी पौष्टिक दूध न मिल सकेगा । एकाकीपन अत्यधिक महँगा सिद्ध होगा ।

बच्चों का पालन-पोषण भी कोई हँसी-खेल नहीं है । उनके उमड़ते उल्लास से भरपूर अनन्त जिज्ञासा को प्रतिपल उचित समाधान चाहिए, कल्पना-प्रिय मन को किस्से-कहानियों का भण्डार चाहिए और सक्रिय शरीर को संरक्षक-मार्गदर्शक साथी चाहिए । बड़े-बूढ़े इन सभी आवश्यकताओं की स्वाभाविक पूर्ति करते हैं । उनके पास समय और अनुभव दोनों भरपूर होते हैं । बच्चों-बूढ़ों की जोड़ी खूब जमती है ।

इस प्रकार संयुक्त परिवार प्रथा से बच्चों, बूढ़ों, वयस्कों सभी को अनगिनत लाभ हैं । वयस्कों को बड़े-बूढ़ों के प्रति कृतज्ञता का मानवीय भाव रखना ही चाहिए । उनके जरा-जीर्ण शरीर को अपना बोझ आप ढोने, बिना सेवा-सहायता के दुर्गति सहने के लिये छोड़ देना कठोरता एवं कृतघ्न है । अपने संकीर्ण सुखों की भ्रान्त कामना के कारण अपने पालकों, जीवनदाताओं को निस्सहाय छोड़ देना क्या उचित है ?

संयुक्त परिवार ही वह एकमात्र व्यवस्था है, जिसमें किसी विधवा या परित्यक्ता को ससम्मान मायके में शरण मिल जाती है । उसका शील पूर्णत: सुरक्षित रहता है तथा एकाकी आर्थिक भार भी नहीं उठाना पड़ता । अपनी क्षमता भर श्रम करने से उसका भी परितोष होता है और सामान्यक्रम में गुजारा हो जाता है । इसी प्रकार विधुरों को गृह-व्यवस्था की ऊब भरी झंझट नहीं मोल लेनी पड़ती ।

संयुक्त परिवार ही वह प्रणाली है, जिसमें असमर्थ, असहाय, अयोग्य, अविकसित लोग भी खप सकते हैं, अन्यथा वे दर-दर की ठोकरें खाते फिरते हैं और समाज के नियमों के लिये एक समस्या बने रहते हैं ।

इस प्रकार संयुक्त परिवार हर तरह से उपयोगी लाभकारी एवं आवश्यक है । लेकिन सिर्फ तब, जब वे अपने आधारों पर खड़े हों । अपनी अन्तर्निहित प्रेरणाओं से भरे हों ।

परिवार अर्थात् सहकारी परिकर

व्यक्ति और समाज की मध्यवर्ती कड़ी है-परिवार । व्यक्ति को अपनी सूझ-बूझ, व्यवस्था, क्षमता, सुसंस्कारिता आदि गुण-कर्म-स्वभाव से सम्बन्धित विशेषताएँ बढ़ानी पड़ती हैं । इनका अभ्यास न होने पर कोई किसी क्षेत्र में प्रगति नहीं कर सकता । जीवनयापन की सुनियोजित विधि-व्यवस्था ही समग्र साधना है, इसे एकाकी नहीं किया जा सकता । प्रयोग-परीक्षण और अभ्यास के लिये कोई सुविधा सम्पन्न सुनियोजित तन्त्र चाहिए । ऐसी प्रयोगशाला निकटतम क्षेत्र में नितान्त सरलतापूर्वक उपलब्ध हो सकने वाली परिवार व्यवस्था ही है ।

समाज के साथ समुचित तालमेल बिठाने के लिये किसी न किसी प्रकार का अनुभव अभ्यास करना ही होता है । दूसरों को अनुकूल बनाने, उनकी स्थिति समुन्नत करने तथा सुधार प्रयोजन के लिये संघर्ष करने जैसे कितने ही कार्य करने पड़ते हैं । कितने ही अनुभव एकत्रित करने और प्रयोग-अभ्यासों में प्रवीणता प्राप्त करने की आवश्यकता होती है । इसके लिये क्या विद्यालय में प्रवेश पाया जाय ? कितने दिन में इस प्रकार का पाठ्यक्रम पूरा किया जाय ? इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि यह समस्त सुविधाएँ और परिस्थितियाँ परिवार परिकर में सहज उपलब्ध हैं, यदि मनोयोग पूर्वक प्रयोग परिणामों का विश्लेषण-विवेचन करते हुये उसी क्षेत्र में सही रीति नीति अपनाई जा सके । कृत्यों के परिणामों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करते रहा जाय तो उस शिक्षा की समग्र आवश्यकता पूरी हो सकती है, जो सामाजिक सुसंतुलन उपलब्ध करने और अभीष्ट सहयोग प्राप्त होते रहने के लिये नितान्त आवश्यक है ।

इस प्रकार व्यक्तित्व परिष्कार और लोकमंगल के दोनों परमार्थ परिवार क्षेत्र में सुयोग्य माली की भूमिका निवाहते हुये सहज ही सम्पन्न किये जाते रहते हैं । जीवित रहने की सुविधा और शांति, प्रसन्नता प्राप्त करने के लिये भी परिवार व्यवस्था का अंग बनकर रहने में सभी प्रयोजनों की पूर्ति हो सकती है । शर्त एक ही है कि यह सब शालीनता के ढाँचे में रहकर सम्पन्न किया जाय ।

परिवार एक छोटा राष्ट्र है, उसकी सुरक्षा, सुविधा, सुव्यवस्था एवं सर्वतोमुखी प्रगति के लिये वैसे ही कौशल की आवश्यकता पड़ती है जैसे कि किसी शासनाध्यक्ष को अपने देश को सुखी-सुरक्षित रखने के लिये करनी पड़ती है । राष्ट्रों का महत्वपूर्ण विभाग अर्थ है, आर्थिक सुसंतुलन बिठाये बिना अन्य सभी विभाग लड़खड़ा जाते हैं । परिवार की अर्थ-नीति भी ऐसी बनानी पड़ती है जिसमें घाटे का बजट न बनाना पड़े । ऋणों पर निर्भर न रहना पड़े । अभावों से ग्रस्त रहकर कष्टसाध्य निर्वाह के दलदल में न फँसना पड़े । शासन में गृहविभाग का अपना महत्व है,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वह व्यवस्था सँभालता है, शांति और सुरक्षा की जिम्मेदारी उठाता है । परिवार की भी यह धारा अपने छोटे क्षेत्र में उतनी ही महत्वपूर्ण है, यदि इसे सँभालने में अनगढ़ता का परिचय दिया जाय तो पारिवारिक ढाँचा बुरी तरह लड़खड़ा जाता है । सफाई, खाद्य, आवास-प्रवास और विकास शासन के अंग होते हैं । परिवार में भी इन सभी के लिये समुचित स्थान है, उन्हें सही और सुन्दर ढंग से सँभालना पड़ता है । जो कुलपति इस सन्दर्भ में प्रमाद बरतते हैं उनके लिये परिवार एक सुविधा और प्रसन्नता का आधार न रहकर नरक बन जाता है, परस्पर टकराता है और संचालक को काटने के लिये दौड़ता है ।

व्यवस्थापक का दर्जा व्यवसाय से लेकर अन्यान्य क्रियाकलापों में अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है । गवर्नर की, सुपरिन्टेण्डेन्ट की, मैनेजर की सूझबूझ पर ही किसी तन्त्र की सुव्यवस्था रहती है और प्रगति होती है । परिवार के सम्बन्ध में भी ठीक यही बात है, व्यवस्था बुद्धि संचालन में तो होनी ही चाहिए, साथ ही उसे वह विद्या जानने और अपने परिकर में बुद्धिमत्तापूर्वक उसका प्रयोग करने के लिये सहभागी बनना चाहिए । परिजनों की इच्छा, आवश्यकता, सलाह की निरन्तर उपेक्षा करने से वे लोग घुटन और खीज तो अनुभव करते ही हैं, साथ ही अयोग्य-असमर्थ बनकर भी रह जाते हैं ।

परिवार एक सहकारी समिति की तरह चलना चाहिए । साझे की दुकान जैसा उसका संचालन होना चाहिए । कृषकों-बुनकरों आदि का सारा परिवार मिल-जुलकर अपनी-अपनी योग्यता, क्षमता के अनुरूप काम करने में जुटा रहता है । सभी उस परिकर के साथ आत्मभाव जोड़े रहते हैं, हानि-लाभ को निजी समझते हैं । प्रतिष्ठा में सभी सहभागी रहते, तभी उस तन्त्र का सुसंचालन बन पड़ता है । थोड़े साधनों में भी सहकारी भागीदारी के आधार पर सन्तोष और प्रसन्नता की स्थिति बनी रहती है । यह सब अनायास ही नहीं हो जाता, इसका वातावरण बनाना और ढर्रा चलाना पड़ता है । समझदारों की इसमें विशेष भूमिका रहती है, बालबुद्धि नासमझों को भी वह किसी प्रकार बहलाते, पुचकारते, धमकाते हुए साथ लेकर चलते हैं । यही अभ्यास निज के साथ जुड़े हुए अंग-अवयवों, विचारों, विशेषताओं, विभूतियों के सम्बन्ध में भी है । यदि उनका अभिवर्धन, परिष्कार, सुनियोजन एवं सदुपयोग न किया जा सके तो समझना चाहिए कि दुरुपयोग बन पड़ने पर उपलब्धियाँ भी विपत्तियाँ बनकर अनर्थ का सरंजाम खड़ा करेंगी ।

दार्शनिक, सैद्धान्तिक, ऐतिहासिक, सामान्य ज्ञान कला-कौशल सम्बन्धी जानकारियाँ स्कूलों में, पुस्तकालयों में प्राप्त हो सकती हैं । विचार-विनिमय द्वारा भी बहुत कुछ सीखा-जाना जाता है, पर सामयिक समस्याओं का व्यावहारिक हल क्या हो सकता है ? इसकी जानकारी परिवार में सम्मिलित व्यक्तियों के चित्र-विचित्र स्वभावों के साथ तालमेल बिठा सकना, परिवार व्यवहार का स्वतन्त्र दर्शन, समझने से, अभ्यास में उतारने से ही बन पड़ता है । व्यक्तित्व की समग्रता एकाकी जीवन में, एकान्त में रहकर उपार्जित कर सकना सम्भव नहीं । इस तरह का एकाकीपन अपनाने वाले प्रायः कल्पना की उड़ानों में उड़ते रहते हैं । संतुलन तो कठिनाइयों से निपटने और सुव्यवस्था के आधार खड़े करने के कौशल से ही बन पड़ता है । इस हेतु ऐसे लोगों का सहचरत्व आवश्यक है जो देर तक साथ रह सकें, उनकी क्रिया-प्रक्रिया में आने वाले उतार-चढ़ावों से किसी सही निष्कर्ष पर पहुँच सकना सम्भव हो सकता है । इसके लिये परिवार के साथ जुड़कर रहना एक प्रकार से आवश्यक ही समझा जाना चाहिए ।

अपने चिन्तन, चरित्र, व्यक्तित्व, कर्तृत्व का दूसरे पर क्या, कितना, कब तक, कैसे प्रभाव पड़ा ? इसकी प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया जानने के लिये ऐसे समुदाय के साथ रहना आवश्यक है जो प्रयोग और परिणामों का लेखा-जोखा अनवरत रूप से प्रस्तुत करता रहे इस स्तर का अनुभव उन लोगों के माध्यम से संचित नहीं किया जा सकता जो कारणवश थोड़े समय के लिये मिलते और वापिस चले जाते हैं । अस्थाई सम्पर्क में आने वाले लोग प्रायः अपना प्रयोजन सिद्ध करने की ही फिकर में रहते हैं, वे मतलब साधने के लिये चापलूसी भी कर सकते हैं, प्रशंसा की झड़ी भी लगा सकते हैं, साथ ही यह भी सम्भव है कि वे अन्तर का प्रभाव अधिक अनुभव करते हों और लड़-झगड़ कर डरा देने वाले कदम उठायें । यह सब उनकी सामयिक नीति का अंग हो सकता है, उसमें स्थायित्व वाली यथार्थता कम रहती है, साथ रहने और उतार-चढ़ावों को देखने से मनुष्यों की प्रवृत्ति का बोध होता है और तदनुरूप अपने ढर्रे-ढाँचे में उत्कृष्टतावादी परिवर्तन करना पड़ता है ।

मनुष्य की शारीरिक और मानसिक संरचना ही ऐसी है जिसके कारण उसे समूह में ही रहना और सामुदायिक क्रिया-कलापों के आधार पर अपनी आवश्यकताएँ पूरी करनी और दूसरों को सहयोग भरी सुविधाएँ देनी पड़ती हैं । कोई सही रीति से जीना चाहे तो उसे समाज का एक घटक बनकर ही रहना होगा । इसकी छोटी और चिरस्थायी सुविधा व्यवस्था परिवार परिकर में ही सरलता और सुविधापूर्वक मिलती है ।

भोजन, वस्त्र, निवास जैसी अनिवार्य आवश्यकताएँ अन्य प्राणी तो किसी प्रकार जुटा लेते हैं, पर मनुष्य के लिये इतना भी सम्भव नहीं । शिक्षा, चिकित्सा, आजीविका, यातायात आदि के लिये भी उसे असंख्यों के सहयोग से ही व्यवस्था जुटानी पड़ती है । यह सम्बद्ध परिकर भी एक प्रकार से परिवार ही है । कृमि-कीटक भले ही अपने बलबूते काम चला लें, पर मनुष्य तो वर्तमान विकसित स्थिति में अपने ऊपर निर्भर नहीं रह सकता, इसे एकाकी नहीं अनेकों की सहायता आये दिन पड़ती है ।

विश्व ब्रह्माण्ड भी एक परिवार है । ग्रह-नक्षत्र और नीहारिकाएँ परस्पर एक दूसरे के साथ सुदृढ़ बन्धनों में बँधे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हुये हैं तभी अन्तरिक्ष में विचरण करने वाले घटक किसी प्रकार अपना अस्तित्व बनाये हुये हैं अपनी पृथ्वी भी सौर-परिवार की एक छोटी सी सदस्य हैं ।

पदार्थ जगत की संरचना अणु-परमाणुओं के समुच्चय से हुई है, उनकी ऊर्जा और गति ही प्रकृति की सभी हलचलों के लिये उत्तरदायी है । संसार में जो कुछ है और हो रहा है वह मूलतः ऊर्जा तरंगों और परमाणु परिकर का ही क्रिया-कलाप है । इस दृश्य जगत को इन्हीं नन्हें घटकों का मिलन एवं आदान-प्रदान समझा जाना चाहिए । प्रकृति क्षेत्र की हलचलें किसी विशाल परिवार में चलती रहने वाली बहुमुखी गतिविधियों के समतुल्य ही समझी जानी चाहिए ।

शरीर यों दीखने में एक सामान्य इकाई दीखता है, पर उसका बारीकी से पर्यवेक्षण करने पर प्रतीत होता है कि उसकी संरचना अनेक अंग-अवयवों से मिलकर हुई है । बड़े अवयव तो प्रत्यक्ष भी देखे-जाने जा सकते हैं, पर उन्हें विनिर्मित करने वाले जीवाणु तो अदृश्य स्तर के ही होते हैं । इन सबका सम्मिलित परिवार ही काय-कलेवर है, इसे भी एक विशाल परिवार ही कहना चाहिए ।

यहाँ एकाकी कहीं कोई नहीं है, सभी का अस्तित्व और क्रिया-कलाप, सामूहिक शक्ति और क्रिया के आधार पर ही चल रहा है । फिर कोई व्यक्ति चाहे कि वह सर्वथा एकाकी रहकर गुजर कर सकता है, तो यह मात्र भ्रान्ति ही होगी । एकांत कुटी बनाकर रहने वालों को भी अपनी छोटी व्यवस्था बनाये रखने के लिये भी ऐसे अनेक साधनों-उपकरणों की जरूरत पड़ती रहती है जो अनेक के सहयोग से विनिर्मित हुये होते हैं । आदिमकालीन कबीलों के ढंग का निर्वाह वन्य-प्रदेशों में करने वाले भी आहार खोजने और तन ढकने के लिये कुछ उपाय करते हैं और उसमें किन्हीं अन्य लोगों द्वारा विनिर्मित हुये उपकरणों का समावेश होता है । यह प्रत्यक्ष न सही परोक्ष स्तर पर सहायता करने वाला परिवार ही है । प्राणी का जन्म तक माता-पिता के सहयोग सम्मिश्रण ही सम्भव होता है, ऐसी दशा में सर्वथा एकाकी जीवन मनुष्य स्तर के विकसित प्राणी के लिये तो सम्भव नहीं है । पशु-पक्षी झुण्ड बनाकर रहने और साथ-साथ चलने-उड़ने में ही अपनी भलाई अनुभव करते और वैसी ही आदत डालते हैं । यह सब परिवार प्रक्रिया का ही अपने-अपने ढंग से किया गया प्रयोग-उपचार है ।

जो अनिवार्य है इससे इन्कार करना व्यर्थ है । होना इतना भर चाहिए कि इस प्रचलन में अपना स्थान सुनियोजित किया जाय और उसके अनुरूप गुण, कर्म, स्वभाव का ढाँचा ढाला जाय । असामाजिक रहने में न किसी की गति है और न खैर । आदान-प्रदान जीवनचर्या का प्रारम्भिक आधार है, इसलिये मिल-जुलकर रहने, सहयोग देने और लेने की नीति अपनानी चाहिए, उससे बिदकने की किसी को भी आवश्यकता नहीं है । समझदारी के युग में मात्र राग-द्वेष जैसे मनोविकारों का परित्याग ही वैराग्य कहलाता था । वस्तुतः ऋषिकल्प मनस्वी भी उपासनापरक अध्यात्म तपश्चर्या के अतिरिक्त लोकमंगल की प्रवृत्तियों को भी उतना ही महत्व देते थे । इसके लिये प्रव्रज्या अपनाते और तीर्थयात्रा पर निकलते थे, आश्रमों में गुरुकुल तथा आरण्यक चलाते थे । गृहस्थ जैसी व्यवस्था बनाते थे और सत्साहित्य के सृजन से लेकर शोध कार्यों और बहुमुखी प्रशिक्षणों में निरत रहते थे । सभी देवता अपने-अपने स्तर के परिवार बनाकर उच्चस्तरीय क्रिया-कलापों में निरत रहते थे । परिवार परिकर में रहने की आवश्यकता भी है और उपयोगिता भी । समझा जाना चाहिए कि परिवार का तात्पर्य है-सामूहिक सहकारी जीवन ।

परिवारों में सहकारिता का समावेश

बिखराव उसी सीमा तक सहन होता है, जिससे एकता में कोई व्यवधान न पड़े । ईश्वर एक से अनेक हुआ तो, पर उसने विराट् ब्रह्म के रूप में विश्व ब्रह्माण्ड की एकता भी बनाये रखी । शरीर में कितने अंग-अवयव विभिन्न प्रकार के विनिर्मित तो हुए, पर उन सबका सहयोग एक समग्र शरीर की संरचना कर सका । व्यक्ति एक इकाई तो है, पर उसकी स्थिरता, सम्पन्नता, प्रसन्नता और प्रगति सहजीवन में ही है । इस दिशा में पहला कदम परिवार परिकर में प्रवेश करते हुए ही उठाना पड़ता है । वह एक प्रयोगशाला-पाठशाला है, जिसमें सामाजिक शालीनता के लिये आवश्यक मर्यादाओं और वर्जनाओं का नित्य-नियमित रूप से अभ्यास करना पड़ता है । एकाकी प्रकृति का व्यक्ति अपने स्वभाव, अभ्यास को इस योग्य नहीं बना सकता कि सर्वजनीन सद्भाव, सहयोग अर्जित कर सकने में समर्थ एवं सफल हो सके ।

परिवार संस्था को जीवन्त स्थिति में बनाये रहना इसलिये आवश्यक है कि उसी आधार पर अगले दिनों समाज व्यवस्था एवं विश्व व्यवस्था चलनी है । समय की गति अत्यधिक द्रुतगामी हो गयी । बढ़ी हुई जनसंख्या और उसकी बढ़ती हुई आवश्यकता ने समय के अनुरूप प्रचलनों में क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिये विवश किया है । अब धरती पर इतनी जगह नहीं रह गयी है कि हर किसी के लिए अलग-अलग ठीक तरह रहने की व्यवस्था जुट सके । स्थान की कमी ने मिल-जुलकर रहने की उपयोगिता समझने के लिये विचारशील वर्ग को उद्बोधन दिया है कि वे सहजीवन की पारिवारिकता की आवश्यकता समझें और अपने प्रभाव क्षेत्र में अन्यान्यों को परिचित कराने के लिये विशेष प्रयत्न करें । मनुष्य पारिवारिकता की, सहकारिता की वृत्ति अपनाकर ही अधिकाधिक सभ्य बनता चला आया है । आदान-प्रदान की नीति अपनाने से ही उसकी समर्थता बढ़ी है । मध्यकालीन अन्धकार युग में विलगाव और बिखराव का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रतिफल देख लिया । उन कडुवे फलों को बार-बार चखने की आवश्यकता नहीं है । विपन्नता की विषम बेला में नये सिरे से उपाय खोजना पड़ेगा । अनौचित्य में परिवर्तन लाने के लिये कदम उठाना पड़ेगा अन्यथा सामयिक विषमता का सामना कर सकना सम्भव न होगा ।

अत्यधिक छोटे परिवार बसाने का प्रयोजन पाश्चात्य देशों ने इस शताब्दी में भली प्रकार पूरा कर लिया है । उसके हानि-लाभों का भी अनुमान लगा लिया गया है । कमाऊ होते ही पति-पत्नी अभिभावकों को छोड़कर अलग स्वतंत्र घर बसाकर रहते हैं । परिवार की कोई जिम्मेदारी रहती नहीं । भोजन बाजार से खरीदकर खा लिया जाता है । मौज-मस्ती ही एकमात्र काम रह जाता है । आजीविका उपार्जन के उपरान्त सारा समय उसी माहौल में बीतता है । इसमें व्यवधान डालने के लिये बच्चे उत्पन्न हो जाते हैं, तो उनसे पीछा छूटते न देखकर किसी प्रकार पाल तो लिया जाता है, पर जैसे ही थोड़े समर्थ होते हैं, वैसे ही उन्हें शिशुपालन गृहों में डाल दिया जाता है, इसी स्थिति में वे जीते, पढ़ते, बड़े होते और काम-धंधे में लग जाते हैं । माता-पिता का स्नेह-सान्निध्य उन्होंने जाना ही नहीं । ऐसी दशा में यह आशा कैसे की जा सकती है कि वे अपने जन्मदाताओं के प्रति कृतज्ञता, आत्मीयता जैसे सद्भाव सँजोयें ? उनके कोई स्वजन सम्बन्धी होंगे इसे जानने की तो उन्हें इच्छा तक नहीं होती । ऐसी दशा में वे समर्थ होने पर इस पूर्वज समुदाय की कोई सेवा-सहायता करेंगे, इसकी आशा कैसे की जा सकती है । वृद्धावस्था आने पर उस स्वेच्छाचार के अभ्यस्त लोगों को सन्तान से कोई सहानुभूति या सहायता न मिले तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं है ? जराजीर्ण स्थिति में मौत के दिन किसी प्रकार बूढ़ा खाने के अनाथालयों में ही व्यतीत करने पड़ते हैं । वहीं वे अपने को एकाकी अनुभव करते हुए दम तोड़ते हैं ।

स्वच्छन्दता, विलासिता के उन्माद में दाम्पत्य जीवन ही कहाँ टिक पाता है ? नवीनता की ललक रसास्वादन की सहज प्रवृत्ति होती है । तितलियाँ और भौंरे एक फूल पर टिके रहने पर विश्वास नहीं करते । वे एक से दूसरे पर, दूसरे से तीसरे, चौथे, सौंवे पर मँडराने पर प्रसन्नता पाते हैं । पाश्चात्य देशों में दम्पत्ति जीवन भर इसी प्रयोग को करते हुए अनेकानेक साथी बदलते रहते हैं । यही दशा वृद्धावस्था में भी रहती है । जो जिसके साथ अधिक सुविधा देखता है वह उसके समीप चला जाता है । जिसके साथ कठिनाई का सामना करने, विकास करने में सुविधा गँवाने को बाधित होना पड़े, उसके साथ कौन रहे ? जराजीर्ण स्थिति में कोई युग्म पति-पत्नी का उत्तरदायित्व निभा सके, ऐसा कभी-कभी कहीं-कहीं दीख पड़ता है अन्यथा अधिक सुविधा, अधिक स्वच्छन्दता बढ़ते रहने की अभ्यस्त प्रवृत्ति अन्तकाल तक चलती रहती है । इस प्रचलन का कटु अनुभव पाश्चात्य जगत को तो भली प्रकार हो चुका है । अविकसित देश भी अपनी पुरानी परम्पराओं को छोड़कर तथाकथित 'सम्पन्न सभ्यों' का अनुसरण करने का मानस बना रहे हैं । इसे रसास्वादन की दृष्टि से ही उपयोगी समझा जा सकता है । प्रतिफल की दृष्टि से उस स्थिति में उत्पन्न होने वाली असंख्य हानियों को समझा जाने लगा है । जो जन्मदाताओं और संतान तक को एक-दूसरे के साथ जुड़ा हुआ न रख सकें, उसमें दाम्पत्य जीवन तूफानी चक्रवातों को पार करते टिक सकेगा, इसकी आशा कैसे की जाय ? इस विपन्नता का जीवनक्रम की स्थिरता पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है । आत्मीयता, श्रद्धा, सद्भावना, कृतज्ञता की उपेक्षा करके मात्र भौतिक सुविधाओं के सहारे कोई कितने दिन प्रसन्न रह सकता है । इसे आधुनिकता के रंग में रंगी हुई तथाकथित सभ्यसमुदाय की मनःस्थिति और परिस्थिति का निकटता से पर्यवेक्षण करने पर सहज ही जाना जा सकता है ।

बढ़ती हुई आधुनिकता छूत की बीमारी की तरह अछूते क्षेत्रों को भी अपनी चपेट में ले ले तो कोई आश्चर्य नहीं । फलतः सर्वत्र एकाकीपन, स्वेच्छाचारिता के माहौल में कोई किसी के प्रति निष्ठावान न रह सकेगा । किसी को किसी की विश्वसनीयता पर, प्रामाणिकता पर भरोसा न रहेगा और अवसरवाद ही सब कुछ बन जायेगा । परिवार परम्परा के बिखराव के यह सहज स्वाभाविक परिणाम हैं । जिन्होंने इसका भली प्रकार अनुभव कर लिया उनकी स्थिति समझते हुए अपने लिये उपयोगी, चिरस्थाई सुख-शान्ति का मार्ग चुना जाय, इसी में भलाई है ।

सहकारिता को हर क्षेत्र में कार्यान्वित करते हुए ही प्रगति और प्रसन्नता का उपलब्ध हो सकना सम्भव है । यही है मानवी प्रगति के साथ जुड़े हुए तथ्यों का सार संक्षेप । इसी महान परम्परा को वंश विकास के संदर्भ में जोड़ने पर 'संयुक्त परिवार' की परिपाटी बनती है । इसमें प्रत्यक्ष लाभ भी है और परोक्ष लाभ भी । समय, श्रम, धन और दौड़-धूप की बचत करने में परिवार व्यवस्था के अन्तर्गत सहजता बन पड़ती है ।

संसार भर के विचारशीलों में सहजीवन, सहअस्तित्व एवं सहयोग संवर्द्धन की उपयोगिता समझी जा रही है । उसका दैनिक जीवन में उपयोग संयुक्त परिवार के रूप में ही संभव दीखता है । इस प्रणाली को आज नहीं तो कल अपनाने के लिए लोकमानस को सहमत होना पड़ेगा । इसके अतिरिक्त विषमताओं से घिरे वातावरण में और कोई स्थिर साधन है नहीं ।

सहजीवन की आचार संहिता न बन पड़ने और आपाधापी को अधिक स्थान मिल जाने से ही वर्तमान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिवार असुविधा भरे हो जाते हैं और जिन्हें अधिक स्वतंत्रता प्राप्त करने की इच्छा है, वे उस तनाव भरे वातावरण से अलग होने की बात सोचने लगते हैं । भूल यही हो जाती है कि सहजीवन के सिद्धान्तों को व्यवहार में जोड़े रहने वाली आचार-संहिता का निर्माण नहीं हो सका है । यदि सुव्यवस्था की रीति-नीति समझी, बनाई, चलाई जा सके तो संयुक्त परिवार में सुविधा ही सुविधा है । बचत ही बचत है । प्रसन्नता ही प्रसन्नता है । उस विधा के अन्तर्गत प्रगति की जितनी सम्भावना है, वह एकाकी, अनिश्चित और विशृंखलित परिपाटी अपनाने में हो ही नहीं सकती ।

कम योग्यता वालों को बेकार न रहना पड़े और अधिक क्षमतासम्पन्न अधिक महत्व के काम में लगें तो वैयक्तिक और सामूहिक प्रगति का नया मार्ग खुल सकता है । सुयोग्य महिलाएँ मात्र चूल्हा फूँकने और झाड़ू लगाने में ही अपनी उच्चस्तरीय योग्यता समाप्त कर दें तो इसमें हर किसी के लिए हर प्रकार का घाटा ही घाटा है । इसकी अपेक्षा यह कहीं अधिक उत्तम है कि घरेलू व्यवस्था में उन्हें खपाया जाय जो उपयुक्त काम न मिलने के कारण आजीविका कमा सकने में असमर्थ रहते हैं । संयुक्त परिवार वंश आधार पर बनते हैं, पर सामूहिक परिवार तो समान स्वभाव के लोग एक साथ मिलकर चला सकते हैं । जब सभी क्षेत्रों में सहकारिता को अधिक उत्साह के साथ अपनाया जा रहा है तो कोई कारण नहीं कि परिवार व्यवस्था के लिये वही रीति-नीति न अपनाई जा सके । इस विधा को अपनाने में सबसे बड़ा भावनात्मक लाभ यह है कि मिल-जुलकर रहने, एक जैसी रीति-नीति अपनाने का अभ्यास बढ़ता है । सबसे अलग होकर रहने और एकाकी जीवन बिताने में स्वच्छन्दता भले ही अधिक मिल जाय, पर उसमें उन सभी लाभों से वंचित रहना पड़ता है, जो मिल-जुलकर रहने, एक-दूसरे के साथ संगति बिठाने और तालमेल अपनाने के आधार पर उपलब्ध होते हैं ।

बहुमुखी प्रगति के मार्ग पर चलती हुई मनुष्य जाति को अपनी शान्ति, सुरक्षा और प्रगति के लिए हर क्षेत्र में सहकारिता को बढ़ावा देना होगा । व्यवसाय भी इसी आधार पर चलेंगे । व्यवस्था और प्रगति के सभी तन्त्र ऐसे बनेंगे जिनमें सामूहिकता और सहकारिता की ही प्रधानता रहे । अब इसी विधा को अपनाना अगले दिनों अनिवार्य हो जायगा । तो फिर परिवार के क्षेत्र में ही अलगाव और बिखराव की अवांछनीयता को क्यों सहन किया जा सकेगा ? संयुक्त परिवार के बिखने में यदि अड़चन दिखाई देती हो तो सहकारी परिवारों का गठन क्ये आधार पर अपनाकर नई आचार संहिता के आधार पर किया जा सकता है ।

पारिवारिक-प्रजातन्त्र के सुख तथा आनन्द

सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा कितनी लाभदायक एवं उपयोगी है, यह कोई छुपा तथ्य नहीं । इसकी इतनी उपयोगिता देखकर ही समाज में उसका प्रचलन हुआ था । अब भी कोई व्यक्ति अपने परिवार से पृथक होने की माँग करता है तो वह स्वार्थी समझा जाता है । जो लोग शामिल रहते हैं वे उदार दृष्टिकोण के सतोगुण प्रधान समझे जाते हैं ।

उपरोक्त तथ्य के होते हुए भी आज हम देखते हैं कि सम्मिलित परिवारों में क्लेश, कलह, मनोमालिन्य, ईर्ष्या, द्वेष, आपाधापी, दुराव एवं कपट का बोलवाला है । घर में जो अधिक कमाता है, जो अधिक चतुर है, जिसकी चलती है वह अपने तथा अपने स्त्री पुत्रों के स्वार्थ साधन को प्रधानता देता है और परिवार के अन्य सदस्यों की उपेक्षा करता है । बड़े छोटों पर रौब गाँठते उन्हें उचित अनुचित तरीके से दबाते हैं । छोटे-बड़ों का समुचित आदर नहीं करते । उनके कर्कशता के प्रतिरोध में अपमान जनक शब्द कहते तथा अवज्ञा करते हैं । कोई काम से जी चुराता है, किसी को अत्यधिक श्रम करना पड़ता है । खान-पान, आदर-सम्मान, कपड़े-जेवर, श्रम-विश्राम, आना-जाना, मनोरंजन, जेबखर्च, बीमारी, चिकित्सा आदि में जब असमानता का व्यवहार होता है तो ईर्ष्या के अंकुर मन में उठते हैं । यह जब बराबर पनपते रहते हैं, बराबर उनमें पानी लगता रहता है, एक के बाद दूसरी घटनाएँ इन अंकुरों को पुष्ट करने के लिए उपस्थित होती रहती हैं तो मनोमालिन्य की जड़ें मजबूत हो जाती हैं और नारंगी की तरह बाहर से एक दीखते हुए भी भीतर ही भीतर उस परिवार में पृथकता मजबूत हो जाती है । ऐसे परिवार उन सब लाभों से वंचित रह जाते हैं जो कि सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा में मिलने चाहिए । असन्तुष्ट सम्मिलित परिवारों की स्थिति कई बार तो पृथक-पृथक रहने की अपेक्षा भी अधिक बुरी हो जाती है ।

पारिवारिक कलह, असन्तोष और मनोमालिन्य का कारण व्यवस्थाक्रम में गड़बड़ी है । परिवार एक राज्य है । इसकी व्यवस्था, प्रणाली, शासन पद्धति भी राज्य व्यवस्था के ढंग पर ही होनी चाहिए । प्राचीनकाल में राजतन्त्र का सिद्धान्त उपयोगी भी था और सर्वप्रिय भी । पर आज समय बहुत बदल गया है । सांसारिक, सामाजिक, मानसिक परिस्थितियों में भारी हेर-फेर हो गया है । इसलिए राजतन्त्र के स्थान पर प्रजातन्त्र को पसन्द किया गया है । प्रजातन्त्र के तीन प्रमुख सिद्धान्त हैं । (१) जनता द्वारा शासन, (२) जनता के हित के लिए शासन, (३) हर नागरिक के अधिकार की रक्षा । इसी आधार पर हमें पारिवारिक प्रजातन्त्र की स्थापना करनी चाहिए । वैधानिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रधान घर का मुखिया रहेगा, पर गृह नीति के संचालन में परिवार के सदस्यों का समुचित हाथ रहना चाहिए ।

घर के लोगों की नित्य नहीं तो प्रति सप्ताह बैठक अवश्य होनी चाहिए, जिसमें विचार-विनिमय के लिए सबको अवसर मिले । इस बैठक में निम्न विषयों पर चर्चा की जावे । (१) हर सदस्य अपनी कठिनाई, इच्छा तथा आवश्यकता बताए (२) गृह नीति में जो दोष हों या दूसरे सदस्य जो भूल कर रहे हों उसे बतावें; (३) पारिवारिक उन्नति के लिए जो सुझाव हों उन्हें रखें; (४) घर से बाहर की व्यापारिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक समस्याओं पर विचार प्रकट करें । बैठक में घर का प्रधान एक-एक करके घर के हर सदस्य से यह चारों प्रश्न पूछे और बिना किसी संकोच के, निर्भयतापूर्वक किन्तु नम्रता और प्रेम मिश्रित वाणी में अपनी-अपनी बात विस्तारपूर्वक कहने के लिए हर सदस्य को अवसर दिया जाय । पर्दा प्रथा के कारण जो नववधुएँ अपने विचार खुद नहीं प्रकट करना चाहतीं हैं वे किसी दूसरे के द्वारा अपनी बात कहलवा सकती हैं ।

फूट और लड़ाई का अधिक आधार गलतफहमी पर निर्भर रहता है । जब आपस में विचार परिवर्तन होता रहता है तो बहुत सी गलतफहमी दूर होती रहती है और किसी ने जो भूल की थी वह सुधार लेता है । इस प्रकार इन बैठकों से लड़ाई-झगड़े का आधा भाग तो अपने आप नष्ट हो जाता है । शेष बातों के सम्बन्ध में अपनी विचार-विनिमय से ऐसे मार्ग ढूँढ़े जा सकते हैं जिनसे कठिनाइयाँ कम रहें और सुविधाएँ बढ़ें ।

जब घर का हर सदस्य यह समझता है कि गृह व्यवस्था में मेरा भी हाथ तथा अधिकार है मेरा स्वार्थ भी समान रूप से सुरक्षित है, तो फिर कोई कारण नहीं कि वह सम्मिलित रहने के इतने लाभों को छोड़कर पृथकता की कठिनाई और जिम्मेदारी को अपने ऊपर लादना चाहे । यदि समानता, सम्मान, सुहृदयता और स्वार्थ रक्षा की चतुर्विधि व्यवस्था हर सदस्य के लिए बरती जाय तो परिवार सुदृढ़ आधार पर खड़े रहेंगे और अलग होने की आवश्यकता न पड़ेगी ।

घर में सब लोग एक दूसरे का उचित सम्मान करें । कोई किसी के स्वाभिमान पर चोट न पहुँचावे । रोगी, बालक, वृद्ध या किसी विशेष स्थिति की बात छोड़कर भोजन के सम्बन्ध में समानता बरती जाय । स्वास्थ्य, आयु और योग्यता के अनुसार सबके काम बँटे हुए हों । न कोई निठल्ला रहे और न किसी को अत्यधिक श्रम करना पड़े । अपनी स्थिति के अनुसार थोड़ा-थोड़ा जेबखर्च भी हर एक को मिलता रहे, जिसे स्वेच्छापूर्वक खर्च कर सकें । एक-दूसरे की गतिविधि पर ध्यान रखें । समानता कार अर्थ बालक और वृद्ध को समान मात्रा में भोजन देना या लड़की और नववधू को बराबर कपड़े जेवर बनवाना नहीं है । अपनी-अपनी स्थिति और आवश्यकता के अनुरूप सबको चीजें दी जाएँ । आवश्यकता के अनुकूल वस्तुएँ देना ही समानता का वास्तविक तात्पर्य है । यदि रोगी को फल मिलते हैं तो नीरोगी का भी वही माँगना वह समानता नहीं है । घर की आर्थिक स्थिति का, आय व्यय का ब्यौरा घर के समस्त बालिगों को मालूम रहना चाहिए ।

इस प्रकार पारिवारिक प्रजातन्त्र की स्थापना से गृह शासन भली प्रकार चल सकता है । सबकी विचारधारा का समन्वय होने से उत्तम गृह नीति बन सकती है । जब परिवार अधिक बढ़ने लगे तो स्वभावों में असाधारण अन्तर होने से किसी की पटरी न बैठती हो तो 'प्रान्तीय स्वाधीनता' दी जानी चाहिए । केन्द्रीय सरकार के आधीन, गृह स्वामी की देखरेख में, अलग छोटे उपपरिवार भी बनाये जा सकते हैं । लड़झगड़ कर अलग होने की अपेक्षा सहमति, स्वीकृति और संरक्षता में पृथक होना कहीं अच्छा है । स्त्रियों का संघर्ष चौका-चूल्हा अलग कर देने या काम बाँट देने से दूर हो जाता है । पुरुषों का संघर्ष कार्यक्षेत्र की पृथकता से मिट जाता है ।

संकीर्ण, अनुदार, तुच्छ दृष्टिकोण के कारण घर में संघर्ष होते हैं । अपने निजी स्वार्थों की परवाह न करके घर के अन्य सदस्यों के हित का समुचित ध्यान रखा जाय, आपस में प्रेम, सहानुभूति, सेवा, सहायता एवं समानता का उदार धार्मिक दृष्टिकोण रखा जाय तो परिवार का प्रजातन्त्र अच्छी तरह चल सकता है । यह प्रजातन्त्र घर में शान्ति रख सकता है, सुव्यवस्था रख सकता है । शत्रुओं को परास्त कर सकता है, अपनी प्रतिष्ठा बढ़ा सकता है और घर के हर एक व्यक्ति को सुरक्षा, सुविधा, निश्चितन्ता, प्रसन्नता तथा सम्पन्नता प्रदान कर सकता है । ऐसे प्रजातन्त्र की प्रजा अपनी शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, धार्मिक और आध्यात्मिक उन्नति की ओर निरन्तर अग्रसर हो सकती है ।

आइए ! हम लोग अपने घरों में पारिवारिक प्रजातन्त्र की स्थापना करके गृह-स्वराज्य का उपभोग करें ।

संयुक्त परिवार थोपें नहीं, बनायें

संयुक्त परिवार प्रणाली सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा आर्थिक सभी दृष्टियों से उपयोगी और लाभकारी है । किन्तु ध्यान रहे कि आदर्श प्रक्रिया अच्छी तभी सिद्ध होती है, जब उसे उसके लिए सुनिश्चित आधारों पर खड़ा किया जाय । ऐसा न होने पर, ढेरों श्रम तथा साधन लगाने के बाद भी विक्षोभ ही हाथ लगता है । संयुक्त परिवार-प्रणाली के सम्बन्ध में भी यह तथ्य लागू होता है ।

अपने देश में संयुक्त परिवार की संख्या घटती हुई दीख रही है। उसका एक कारण तो यह है कि औद्योगीकरण तथा नौकरी के सिलसिले में स्नेहशील भाइयों को भी दूर-दूर रहने को बाध्य होना पड़ता है । इस मजबूरी के अतिरिक्त उसके लिए आवश्यक गुणों और दृष्टिकोणों का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अभाव भी है । उसके कारण संयुक्त परिवार में कार्यों और सुविधाओं का सन्तुलन बिगड़ जाता है । कोई पिसता रहता है, कोई आलस्य में पड़ा रहता है । कोई मनमाना खर्च करता है, कोई आवश्यकताओं के लिए भी मुहताज हो जाता है । ऐसी अनैतिक मनोभूमियों में संयुक्त परिवार की सफलता की आशा नहीं की जा सकती ।

संयुक्त परिवार को एक सहकारी समिति मानकर इस प्रकार गठित किया जाना चाहिए कि हर किसी को अपना कर्त्तव्य पालन करने के लिए स्वेच्छापूर्वक विवश होना पड़े । एक दूसरे के लिए असीम प्यार रखें और अपनी अपेक्षा अन्यों की सुविधा को प्राथमिकता देते रहें । आवेश और कटुता, दुर्भाव और तिरस्कार, आलस्य और अकर्मण्यता, अहंकार और दबाव की क्षुद्रताएँ आदि निरस्त की जा सकें, तो बिखरते परिवारों को पुनः संयुक्त रहने के लिए सहमत किया जा सकता है । सुव्यवस्थित आचार संहिता पर निर्धारित हमारी संयुक्त परिवार प्रणाली अपने देश के लिए उपयोगी सिद्ध है ही, साथ ही समस्त संसार को भी इस परम्परा को अपनाने के लिए आकर्षित करेगी । पर यह सम्भव तभी है, जब शालीनता और सज्जनता को बनाये रखा जाय और उसके विकास का निरन्तर ध्यान रहे ।

शालीनताविहीन सम्मिलित परिवारों की स्थिति के दुष्परिणाम आज स्पष्ट देखे जा सकते हैं । अपनत्व के अभाव में सम्मिलित परिवार का लाभ तो सब उठाना चाहते हैं, दायित्व कोई नहीं सँभालना चाहता । देखा-देखी इतनी बढ़ जाती है कि किसी काम को न करने के कारण पूरे परिवार को हानि होने वाली हो तो भी सब एक-दूसरे की ओर ताकते रहते हैं । शक्ति नष्ट होती रहती है, पर उसका उत्पादक उपयोग नहीं हो पाता । एक दूसरे से छिपाकर पैसों और वस्तुओं की चोरी भी की जाती है । कई सम्मिलित कृषक परिवारों में परिवार के सदस्य ही खेत से बीज चुरा लेते हैं । अन्न आँगन में बिखरा रहता है । कई किलो अनाज भोजन की जूठन के रूप में फेंका जाता है, जबकि अलग हो जाने के बाद न तो आँगन में इस तरह एक भी कण बिखरा दीखेगा और न कभी जूठन के रूप में अन्न को फेंका जायगा ।

संयुक्त परिवार में जहाँ आत्मघाती प्रवृत्तियाँ पनपें, आलस्य, अकर्मण्यता, प्रमाद, चोरी, झूठ, छल-कपट, शक्ति की बरबादी, दुर्व्यसन, अपव्यय आदि की वृद्धि होती रहे, वहाँ कलह, द्वेष, सन्ताप, उद्विग्नता और पश्चात्ताप के सिवाय और किस बात की उम्मीद की जा सकती है ?

ऐसे विक्षोभ और हताशा के विषाक्त वातावरण में हर व्यक्ति अपने भविष्य की चिन्ता से त्रस्त रहता है । असुरक्षा और आशंका से वह भयभीत, बेचैन और परेशान रहता है । ऐसी मनःस्थिति निश्चय ही व्यक्ति को क्रमशः जिद्दी, चिड़चिड़ा, आलसी, सन्देहशील, चिन्ता-ग्रस्त और कायर बनाती जाती है । स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है, नींद उड़ जाती है, मानसिक शान्ति दुर्लभ हो जाती है ।

इस वातावरण में पनपने वाले बच्चों के सुकुमार मन पर इसका अत्यन्त प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । दिन-रात की चख-चख, हल्ला-गुल्ला, चोरी, झूठ, घृणा, अविश्वास, सन्देह, दुराव का वातावरण उन्हें हीनविचार और निम्नगामी प्रवृत्तियों के सिवाय और क्या दे सकता है ? संघर्ष यदि स्पष्ट और सदुद्देश्य प्रेरित होता है, तो वह शक्ति देता है । पर सामने जिन्हें अपना बनाना, जिनसे सहयोग सद्भाव, आत्मीयता, अपनत्व का प्रदर्शन करना, उन्हीं के विरुद्ध पीठ-पीछे जहर उगलना तथा घात लगाना, दाँव-पेच गढ़ना, सोचना झूठ और पाखण्ड का ही पाठ पढ़ाता है ।

ऐसे सम्मिलित परिवारों के वयस्क अपने झूठ और पाखण्ड में नन्हें बच्चों को जमकर उपयोग करते हैं । घर की सम्मिलित वस्तुओं को चुराने और चोरी-छिपे बेचने में विशेषकर माताओं द्वारा लड़कियों की सहायता ली जाती है । स्पष्ट है कि ये लड़कियाँ चोरी में प्रवीण, सन्देहशील, झगड़ालू और ईर्ष्या डाह से भरी बनती जाती हैं । गृहणी बनने पर उनका क्या स्वरूप होगा, यह अभी से स्पष्ट एवं निश्चित हो जाता है ।

वृद्धों की तो कलहपूर्ण सम्मिलित परिवारों में सर्वाधिक दुर्गति होती है । पिता-माता और सयानों के प्रति भारतीय संयुक्त परिवारों में जो आदर का भाव रहता था, वह तो शायद ही कहीं देखने को मिल पाता है । सामान्यतः अब उन्हें अनादर, उपेक्षा, असम्मान, अवमानना, कटुक्तियों और तिरस्कार का ही सामना करना पड़ता है । बेचारे वृद्ध माता-पिता चाहते हैं कि हमारे जीते जी तो बँटवारे की नौबत न ही आये । पर यह नेक इच्छा उन्हें बहुत महँगी पड़ती है । वे सदा सबको प्रसन्न रखने के प्रयास में सबके उलाहने सुनते हैं, दुर्व्यवहार सहते हैं, हलाहल को नीलकण्ठ की तरह स्वयं पीते रहते हैं, कटुक्तियाँ चुपचाप झेलते हैं, कई कमजोरियों को मौन-पीड़ा के साथ देखते, सन्तुलन का प्रयास करते रहते हैं, छिपकर कर्ज लेने और सबकी आवश्यकताओं की पूर्ति की यथासम्भव चेष्टा करते रहते हैं, अपने खाने-पीने तक की स्वयं चिन्ता नहीं रखते, दूसरों को उनकी ओर ध्यान देने की फुर्सत ही कहाँ ?

यदि बँटवारा हो जाए तो भी इनकी दुर्दशा ही बढ़ती है । अपनी-अपनी रसोई सब बाँट लेते हैं । बुड्ढे-बुढ़िया को दो रोटियाँ भी आदर के साथ देने का किसी को समय नहीं मिलता ।

यह तो उन वृद्धों की बात हुई, जो शालीन, सन्तुलित और नेक हैं । पर ऐसे भी बड़े-बूढ़े कम नहीं, जो असमानता के व्यवहार से वातावरण को विषाक्त बनाते हैं । परिवार में असमानता का आशय यह है कि एक कोटि के व्यक्तियों के बीच समान व्यवहार न करना । किसी का पक्षपात और किसी की उपेक्षा करना । बहुत बार माता-पिता ऐसा करने की भूल कर बैठते हैं कि बाजार से कोई चीज लाते हैं तो केवल अपने बच्चों में

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बाँट देते हैं और दूसरे बच्चे देखते रह जाते हैं और यदि उन्हें देते भी हैं तो अपने बच्चों से कम । माताएँ नाश्ता देते समय अपने बच्चों को ज्यादा और दूसरे के बच्चों को कम देती हैं । बहुत बार तो वे चीजें छिपाकर रख लेती हैं और आँखें बचाकर अपने बच्चों को चोरी से खिला देती हैं । ऐसा करना सर्वथा अनुचित है । सबके साथ समानता का व्यवहार किया जाना चाहिए । ऐसा न करने से विषमता बढ़ती है और परिवार में फूट पड़ती है, आपस में तनाव तथा कहा-सुनी हो जाती है ।

परिवार का एक सम्मिलित कोष होना चाहिए जिसमें सबको अपनी कमाई यह सोचकर जमा कर देनी चाहिए कि मैं जो कुछ कमाता हूँ, अपने लिए नहीं-पूरे परिवार के लिए कमाता हूँ । मेरी सारी आय-परिवार की आय है, उस पर मेरा कोई व्यक्तिगत अधिकार नहीं है । इस उदार भावना से न तो किसी में अहंभाव आयेगा और न पारिवारिक-व्यय की समानता पर क्षोभ होगा । बल्कि अपने आप में गौरव का ही भाव उभरेगा कि मैं अपने परिवार के लिए अधिक उपयोगी हो रहा हूँ । असमान कमाई पर भी समान साधन सुविधाओं के अधिकार पर सन्तुष्ट रहना परिवार में एकता तथा सद्भाव बनाये रहने का एक सफल मन्त्र है, इसका उपयोग किया ही जाना चाहिए ।

वृहत्तर परिवारों की संरचना-सामयिक आवश्यकता

एकाकी मनुष्य न प्रगति कर सकता है और न प्रसन्न रह सकता है । मानवी संरचना ही कुछ ऐसी है कि जिसमें मिल-जुलकर चलने और सहयोगपूर्वक आगे बढ़ने की व्यवस्था है । मनुष्य सामाजिक प्राणी है । उसे अन्यान्य प्राणियों से आगे बढ़कर जिस ऊँचाई तक चढ़ने और साधनसम्पन्न बनने का सुयोग मिला है उसमें उसकी सहकारी सामाजिक प्रवृत्ति का सबसे बड़ा योगदान है । यदि वह एकाकीपन से ग्रसित रहा होता, तो मनुष्यों में आगे बढ़ सकने की स्थिति उसे प्राप्त हुई ही न होती । अपने अनुदानों को दूसरों के लिए हस्तान्तरित करते रहने, हिल-मिलकर रहने और मिल-बाँटकर खाने की आदत ही वह दैवी वरदान है, जिसके आधार पर मनुष्य को प्रकृति का लाड़ला बेटा और परमात्मा का युवराज कहलाने का अवसर मिला ।

इस प्रवृत्ति में घटोत्तरी नहीं होनी चाहिए । उसे निरन्तर अधिकाधिक प्रोत्साहन मिलना चाहिए । परिवार संस्था से समाज आरम्भ होता है । दाम्पत्य जीवन के साथ अभिनव सहकार का नूतन अध्याय जुड़ता है । बच्चे उसे और भी विस्तृत एवं सघन बनाते हैं । वृद्धजनों और भाई-बहिनों के कितने ही उत्तरदायित्व एवं व्यवहार परिवार से जुड़ते हैं, फलतः वह छोटे रूप में एक समाज या राष्ट्र का रूप धारण कर लेता है । संगठन, संचालन एवं सामूहिक निर्वाह की व्यवस्था सीखने के लिए परिवार से अधिक सरल-सरस किन्तु महत्वपूर्ण व्यवस्था और कोई है नहीं ।

आज आवश्यकता है परिवार के सामाजिक स्वरूप को आगे बढ़ाने की, क्योंकि सघनता, एकता, आत्मीयता वितरण जैसी अनेकानेक सत्प्रवृत्तियों का विकास, साथ रहने और मिल-जुलकर निर्वाह करने की प्रक्रिया अपनाने पर ही सम्भव होता है । आर्थिक संगठन इस उद्देश्य की पूर्ति में कदाचित् ही कुछ सहायता कर पाते हैं । अर्थ सुविधा का जितना महत्व है, उससे कहीं अधिक भावनात्मक सहकारिता का है । सत्प्रवृत्तियों को यदि मानवी गरिमा का आधार माना जाय तो वह भी स्वीकारना पड़ेगा कि इसका प्रयोग, अभ्यास एवं परिपाक करने के लिए भावनात्मक पारिवारिकता को ऐसा प्रोत्साहन मिलना चाहिए, जिससे वह व्यवहार में भी उतर सके ।

पारिवारिकता को अग्रगामी बनाने के लिए विज्ञजनों ने 'लार्जर-फेमिली' व्यवस्था की परिकल्पना की है । निर्वाह जन्य व्यवस्थाओं का बिखराव दूर करके उसे केन्द्रित करने के लिए इस निर्धारण को उपयोगी एवं महत्वपूर्ण माना गया है । एक गली-मुहल्ले के लोग मिल-जुलकर ऐसी व्यवस्था बना लें, जिसमें भोजन पकाने, कपड़े धोने, बच्चे खिलाने, बाजार की खरीद-फरोख्त करने, ट्यूशन लगाने, सुरक्षा प्रबन्ध करने जैसी दैनिक आवश्यकताओं को अलग-अलग न रखकर एक संयुक्त व्यवस्था के अन्तर्गत सुनियोजित बना लिया जाय । कहना न होगा कि उपरोक्त प्रयोजनों का अलग-अलग प्रबन्ध करने पर हर परिवार का ढेरों समय व्यर्थ जाता है । उसी जंजाल में दिन गुजर जाता है, फलतः और कोई महत्वपूर्ण काम करने की गुंजाइश ही शेष नहीं रहती । समय की इस बर्बादी को व्यवस्था बनाकर आसानी से रोका जा सकता है । इस आधार पर जो अवकाश मिले उसकी अभीष्ट प्रगति के लिए अपने-अपने ढंग से अपने-अपने प्रयोजनों में प्रयुक्त किया जा सकता है । इसमें पैसे की, समय की बचत होती है और तरह-तरह की चिन्ताओं में व्यग्र रहने, साधन जुटाने की भाग-दौड़ करने से सहज छुटकारा मिल सकता है ।

बड़े कुटुम्ब की तरह सभी सदस्यों का समय एकत्रित करके उसे कार्यविभाजन के अनुसार नियोजित कर देने से भी काम चल सकता है । एक रसोईघर में एक परिवार के लोग भोजन करें, तो इसमें क्या हर्ज है । स्कूलों के बोर्डिंगों में सेना की छावनियों में, साधुओं के लंगरों में यह व्यवस्था बड़ी सरलतापूर्वक चलती भी रहती है । यही सोचकर प्रयोग करें और कुछ उत्साही लोग इसकी पहल करें, तो सभी को इसमें अनुकूलता प्रतीत होगी और एक से दूसरे का अनुकरण करने पर यह प्रथा-परम्परा चल पड़ेगी । छोटे बच्चों को खिलाने का प्रबन्ध एक जगह बन पड़े तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घर के अन्य उसी में बँधे रहने के स्थान पर अन्य काम कर सकते हैं । विशेषतया महिलाओं के लिए तो प्रगति का एक नया द्वार ही खुल जाता है । बच्चे भी प्रसन्न रहेंगे । पक्षियों में, खिलौनों में उनका मन लगा रहेगा । थोड़े बड़े होने पर उन्हें बाल-विद्यालयों में अन्यत्र भेजने की अपेक्षा यह अधिक सस्ता और सही है कि मुहल्ले के बच्चों की अपनी पाठशाला हो जिसमें वे खेलते भी रहें और पढ़ते भी । जब तक वे स्कूल जाने लायक न हों, तब तक यह शिक्षणक्रम बहुत ही सुविधा और सफलता के साथ 'लार्जर फैमिली' पाठशाला के अन्तर्गत अपने मुहल्ले में ही चल सकता है । इसमें बाल विकास में समीपवर्तियों के अधिक स्नेह-सहकार बढ़ाने में, अतिरिक्त सहायता मिल सकती है । बच्चे सुरक्षित भी रहेंगे, प्रसन्न भी और अभिभावकों की देख-भाल के अन्तर्गत भी ।

यह सुविधा सम्वर्द्धन की बात हुई । समय और पैसे की बचत को उपरोक्त प्रतिपादन में उभारा गया है । किन्तु उससे भी बड़ी बात पारस्परिक स्नेह, सहयोग और सद्भाव सम्वर्द्धन की है । यह स्वाभाविक है जो लोग आँख के सामने रहते हैं, किसी कारण मिलते-जुलते और आदान-प्रदान का सहकारी प्रयोग चलाते हैं, उनके बीच सहज घनिष्टता उत्पन्न होती है । एक दूसरे के सुख-दुःख में सहचर होते हैं । हाथ बटाते और हिम्मत बढ़ाते हैं । यह लाभ देखने में सामान्य होते हुए भी, वस्तुतः असामान्य है । इस प्रयास से नैतिकता, सामाजिकता और सहकारिता के सम्वर्द्धन में जो भावनात्मक प्रोत्साहन मिलता है, उसका महत्व कम नहीं आँका जाना चाहिए । समयानुसार जब उसकी उपलब्धियाँ सामने आती हैं, तो प्रतीत होता है कि वंशानुक्रम के आधार पर चलने वाले कुटुम्बों की तरह ही यह सम्पर्क क्षेत्र का सुविधा-सम्वर्द्धन के आधार पर बना परिवार भी कम उपयोगी नहीं है । कमाई मिल बाँटकर खाने जैसा आधार खड़ा हो सकता तो उसे संयुक्त परिवार भी कहा जा सकता था, पर उस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए प्रारम्भिक कदम के रूप में इतना भी कम नहीं है कि एक मुहल्ले के लोग सुविधा सम्वर्द्धन के लिए सम्मिलित व्यवस्था सोचें और बिखराव की मनोवृत्ति पर अंकुश लगाकर केन्द्रीकरण की दिशा में कुछ न कुछ करने के लिए आगे बढ़ें ।

प्राचीनकाल में बिरादरियों की पंचायतें होती थीं । उनमें बुद्धिमान, परिपक्व और प्रभावशाली लोग पंच सरपंच की भूमिका निभाते थे । वोट डालकर चुनाव तो नहीं होते थे, पर विशिष्टता और वरिष्ठता के आधार पर उनका सम्मिलित स्वरूप अनायास ही पंचायत जैसा बन जाता था । उन दिनों एक व्यवसाय के लोग एक बिरादरी बन जाते थे । व्यवस्था एवं सुविधा की दृष्टि से वे इर्द-गिर्द ही रहते थे । बिरादरियाँ इसी आधार पर बनती थीं । उनमें अन्तर्कलह खड़ा न होने पाये-नैतिक अनाचार न पनपे-कोई उच्छंखलता न बरते-सामाजिक अनुशासन का व्यतिक्रम न हो-इसकी देख-भाल एवं जिम्मेदारी इन बिरादरी पंचायतों पर रहती थी । छोटे-मोटे आर्थिक झगड़े और मनोमालिन्य भी वे ही निपटा दिया करती थीं । इसी व्यवस्था को एक क्षेत्रीय समुदाय में चलने वाली कार्यपालिका के ऊपर न्यायपालिका का अनुशासन कहा जा सकता है ।

समर्थों का असमर्थों के प्रति अन्याय तभी हर क्षेत्र में उभरता है, जब कुछ उद्दण्ड और मूर्ख प्रकृति के भी हर समुदाय में रहते हों । इनका नियमन लोकमत का दबाव और पंचायत के निर्णय की समन्वित शक्ति से बिना किसी कठिनाई के होता रहता था । स्त्रियों को, बच्चों को-सताने की शिकायतें आमतौर से उठती रहती हैं । अवज्ञा, अवहेलना और उद्दण्डता के कौतुक भी आये दिन देखने को मिलते रहते हैं । उनकी ओर से उपेक्षा बरतने और घर-परिवार में उतनी सूझ-बूझ या दबाव व्यवस्था न होने से अनीति पनपती रहती है और पके फोड़े की तरह सड़ती रहती है । इनका निराकरण मुहल्ले की पंचायतें बड़ी आसानी से कर सकती हैं और पुरानी बिरादरी पंचायतों का स्थान नये सिरे से नये रूप में ग्रहण कर सकती हैं । इस आधार पर सुव्यवस्था और सद्भावना बने रहने में, देखने में छोटा किन्तु दूरगामी परिणाम की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रयोजन सिद्ध होता रह सकता है ।

यही विशाल परिवार प्रक्रिया अपने-अपने क्षेत्र में सुविधा-सम्वर्द्धन की तरह प्रगतिशील प्रयोजनों को भी कार्यान्वित कर सकने में समर्थ हो सकती है । छोटे गृह-उद्योगों की नींव इसी आधार पर रखी जा सकती है । आगे की शिक्षा प्राप्त करने वालों के सामयिक विद्यालय इसी योजना में सम्मिलित रखे जा सकते हैं । कथा-वार्ता, सत्संग, विचार-विनिमय, संगीत-प्रवचन छोटे-मोटे खेल-मनोरंजन, रेडियो, टेलीविजन जैसे कितने ही प्रबन्ध इस प्रकार किये जा सकते हैं कि के सभी सदस्य उनका समुचित लाभ उठा सकें ।

इन दिनों कितनी ही निवास कालोनियाँ बस रही हैं । उनमें से कुछ ऐसी भी होती हैं, जिनमें एक व्यवसाय के या एक जगह काम करने वाले, अपने लिए नये घरों का प्रबन्ध करते हैं ? अच्छा हो, कुछ प्रगतिशील-विचारवान लोग ऐसी कालोनियाँ बसायें, जिनमें 'लार्जर-फैमिली' स्तर की सुविधाएँ खड़ी की जा सकें । कुछ छोटे गाँव ऐसे बसाये जा सकते हैं, जिनमें भारत की जलवायु तथा गरीबी को देखते हुए ऐसा ढाँचा खड़ा किया जा सके, जो दूसरों के लिए अनुकरणीय हो सके ।

प्रयत्न नया होने से उसमें कितने ही उतार-चढ़ाव आ सकते हैं । आशा-निराशा उत्पन्न करने वाले घटनाक्रम घटते रह सकते हैं । कुछ लोग आरम्भ में उत्साह दिखाकर फिर किसी छोटी बात पर तुनक सकते हैं । ऐसे अपवादों की चिन्ता न करके यदि धुन का धनी इसे किसी बड़े परिवार का संचालन करने वाले भारी-भरकम गृहपति की तरह उसे चलाते रहा जाय तो कुछ ही समय में ऐसी स्थिति आ जायेगी जिसमें उसे सरल और सफल माना जा सके ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कम्युनिस्ट पार्टी के आरम्भिक प्रतिपादकों के मस्तिष्क में एक सपना था-'कम्यून' । कम्यून का अर्थ लगभग यही होता है जो लार्जर फैमिली का है । विशाल परिवार की आचार संहिता क्या हो ? इसकी अर्थव्यवस्था कैसे चले ? पारस्परिक सम्बन्धों का निर्धारण किस रीति-नीति के आधार पर विनिर्मित हो ? यही चिन्तन उस स्थापना के पीछे काम करता रहा और योजनाएँ बनती रहीं । गली, मुहल्लों और गाँवों में उसका प्रयोग चला । तथ्यों ने उसकी उपयोगिता का पूरा-पूरा समर्थन किया । बड़े मस्तिष्क और दूरदर्शी विचारकों ने इस आधार पर समूचे समाज के गठन की बात सोची । उस व्यापक प्रचलन का तारतम्य बिठाते-बिठाते एक शासन पद्धति का उस आधार पर ढाँचा खड़े करने की बात आगे बढ़ गई । क्रान्तियाँ हुईं और कम्यून चिन्तन को राजनीतिक पार्टी तथा शासन तन्त्र के रूप में मान्यता मिल गई । यही है-संक्षेप में कम्युनिज्म का बीजारोपण और उसके विशाल उद्यान में परिणत होने का इतिहास ।

बढ़ती हुई जनसंख्या आकाश चूमती महँगाई बड़े हुए खर्च जुटाने की व्यवस्था निर्वाह-साधन समेटने में सिरदर्द जैसी दौड़धूप को ध्यान में रखते हुए उसका समाधान ढूँढ़ना ही पड़ेगा । इस प्रयास में लार्जर फैमिली-वृहत्तर परिवार व्यवस्था ऐसी है, जिसमें समय और पैसे की बचत के अतिरिक्त प्रसन्नता बढ़ाने और सद्भावना का वातावरण बनाने की सुखद सम्भवनाएँ जुड़ी हुई हैं ।

सहजीवन बनाम संयुक्त-परिवार

विकासात्मक दृष्टिकोण रखने से हमें ज्ञात होगा कि आत्मबोध एवं जीवन का आनन्द लेने की प्रक्रिया एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण विलक्षणता होती है । पृथ्वी पर निवास करने वाले जीव-जन्तुओं की लगभग दो करोड़ की संख्या में मनुष्य ही एकमात्र ऐसा जीव है जिसे यह गौरव प्राप्त है । वह प्यार और सहयोग के लिये लालायित रहता है । वैसे तो मनुष्य धार्मिक, राजनैतिक आदि प्रकारों से विभक्त है । लेकिन मनुष्य की सबसे छोटी इकाई परिवार है ।

आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक और समाज के अस्तित्व के नीतिपरक दृष्टिकोण को समझने की परिवार एक कुंजी है । प्रायः सभी परिवारों में मिलते-जुलते समारोह होते हैं जिनमें आपस में सभी मिल-जुलकर भाग लेते हैं भले ही वे सब किसी अन्य समाज के ही क्यों न हों ? प्रत्येक समाज मानव की तीन प्रधान आवश्यकताओं को पूरा करता है । पहली-परिवार बच्चों को जन्म देने का एक माध्यम है, जिससे मानव जाति को स्थायी रखा जा सके । दूसरा परिवार के बच्चों का संरक्षण करना और सुशिक्षित बनाना । तीसरा परिवार श्रम के विभाजन का आदेश देना है जिससे परिवार का प्रत्येक घटक परिवार के लिये कुछ कार्य करता है । परिवार का मुखिया पुरुष परिवार के लिये आजीविका जुटाता है, गृहस्वामिनी बच्चों की और घर की साज सम्भाल करती है और कभी-कभी स्वयं भी आजीविका कमाने में योगदान देती है । पश्चिम की तरह भारत में भी यह क्रम अब बढ़ता जा रहा है ।

एक अच्छे गाँव में कदाचित् ही कोई व्यक्ति संकट अथवा बीमारी के समय सहानुभूति प्राप्त करने में असफल रहता हो । संयुक्त परिवार में वृद्ध और रोगी की देख-रेख करना एक कर्तव्य के रूप में माना जाता है, इसी प्रकार वृद्धावस्था में माता-पिता और अविवाहित, विधवा व विधुर को भी किसी प्रकार की समस्या से जूझने की आवश्यकता नहीं होती । भारतीय परिवारों की यह एक परम्परा रही है कि वे अपने परिवार के वृद्ध और रोगियों की तन्मयता से सेवा करते हैं । यहाँ वृद्धों और बीमारों को अनाथालयों या वृद्धाश्रमों में पश्चिमी देशों की तरह नहीं भेजा जाता । उन्हें भेड़-बकरी की तरह बाड़े में बन्द नहीं कर दिया जाता । अपितु पूरा सम्मान दिया जाता है ।

संयुक्त परिवारों की पारम्परिक प्रणाली को समाप्त कर जो नये छोटे परिवार बन रहे हैं, उसके परिणाम अच्छे नहीं निकले हैं । संयुक्त परिवार का सबसे बड़ा उपहार उसका भावना प्रधान होना है । यह देखा गया है कि छोटे परिवार का वातावरण तनावपूर्ण रहना है । इसका कारण आर्थिक और सामाजिक नहीं है, वरन् इसका कारण भावनात्मकता का पारस्परिक स्नेह-सद्भाव है । अब जैसे-जैसे शहर फैलते-फैलते चले जा रहे हैं एवं आजीविका हेतु दौड़ गाँव-कस्बों से शहरों की ओर चल पड़ी है, ये विडम्बनाएँ बढ़ती चली जा रही हैं । हमें इन्हें व आगत समस्याओं को दृष्टिगत रख लगता तो यही है कि पुरातन सहजीवन प्रणाली की ओर ही लौटना होगा ।

पूर्वकाल से ही एशिया में सामूहिक परिवार प्रणाली (प्रथा) विद्यमान है । अब यह प्रथा समाप्त हो रही है जिसके कुछ कारण हैं । लड़कियों को शिक्षित किया जाता है और उनका विवाह भी अब देर से होता है अतः बाल विवाह के समय जो बाल बहू को सास के शिक्षण की आवश्यकता होती थी वह अब नहीं रही । शिक्षित बहू भी स्वतन्त्र रूप से अलग घर में रहने का दबाव डालती है । जीविका उपार्जन करने वाले सदस्य अब बेकार और निठल्ले परिवार के सदस्यों का भार उठाना पसन्द नहीं करते । व्यापारियों के सामूहिक परिवार अब सरकार द्वारा अधिक कर लगाने के कारण बँट रहे हैं । कृषि भूमि से सम्बंधित संशोधनों और नये नियमों के अन्तर्गत अब भूमि की अधिकतम सीमा का निर्धारण हो गया है जिससे परिवार में भूमि का बँटवारा हो गया है और इस प्रकार सामूहिक परिवार में विघटन हो रहा है ।

बीसवीं सदी का उत्तरार्द्ध अभूतपूर्व सामाजिक परिवर्तनों का युग है, जो कई लोगों के लिए दुःखपूर्ण हैं, जिसकी बराबरी भूतकाल के घटनाक्रमों से नहीं की जा सकती । विवाह विच्छेदों की बढ़ती दर, हिंसात्मक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

घटनाओं में अत्यधिक वृद्धि, नींद की गोलियों का करोड़ों लोगों द्वारा उपयोग, नशाखोरी और विभिन्न प्रकार की नशीली दवाओं का अत्यधिक प्रचलन-यह सब इस चिन्ता के युग में मानव समाज के एकाकीपन, विफलता, ऊब, निराशा के द्योतक हैं । ऐसा लगता है कि पश्चिमी समाज विशेष करके अमरीकी समाज जिसकी नकल पश्चिम में अक्सर हुआ करती है-वह एक ऐसे प्रयोग पर उतारू हो गया है जो परम्परागत सामाजिक ढर्रे को तिलांजलि देकर समाज का नया ढाँचा और नयी दृष्टि से उच्छृंखल और निर्बाध संस्कृति की निरंकुश सामाजिक पद्धति के प्रयोग में लगा है । नये साहसिक कदम उठाने की पिछली परम्पराओं के अनुरूप इस लहर में भी नयी पीढ़ी बढ़-चढ़कर भूमिका सम्पन्न कर रही है ।

मनुष्य जीवन का ढाँचा और ढर्रा ऐसा है जिसमें सह जीवन की आवश्यकता विशेष रूप से पड़ती है । अन्य प्राणियों में से कुछ ही ऐसे हैं जो एकाकी निर्वाह कर सकते हैं । अन्यथा उन्हें भी समूह बनाकर रहना पड़ता है । इसके बिना उनके निर्वाह तथा सुरक्षा की समस्या उलझ जाती है । चींटी, दीमक, मधुमक्खी, टिड्डी आदि का तो स्वभाव ही सहजीवन के रूप में परिपक्व हो गया है किन्तु मनुष्य की शारीरिक, मानसिक आवश्यकताएँ ही ऐसी हैं जिनकी पूर्ति के लिए उसे समाज के अन्यान्य वर्गों के साथ तालमेल बिठाना और आदान-प्रदान का द्वार खोलना पड़ता है ।

दैनिक जीवन का क्रम भी सहजीवन के आधार पर बनता है और वह परिवार की व्यवस्था के अन्तर्गत ही सम्भव है । सुविधा एवं सुनिश्चिता उसी में रहती है ।

इन दिनों पुरातन ढर्रे की परिवार प्रक्रिया की उपेक्षा हो रही है । उसे दकियानूसी समझा जा रहा है । इसके स्थान पर मनमर्जी के लोगों के साथ रहने के प्रयोग चल पड़े हैं । इसे 'कम्यून' पद्धति कहा जाता है । इन्हें एक प्रकार की सहकारी समितियाँ कहनी चाहिए, जो एक प्रकृति के लोगों को स्वीकार्य विधि व्यवस्था बनाती हैं और लोग होटलों की तरह एक दो दिन के लिए तो नहीं पर कुछ अधिक समय तक उनके सदस्य बनकर रहते हैं । सभी को अपने हिस्से का खर्च वहन करना पड़ता है ।

इन दिनों भिन्न-भिन्न प्रकार के कम्यून समूचे अमेरिका में हैं । इनमें वहाँ का एक तिहाई युवा वर्ग बसता है । इन कम्यूनों की संख्या चाहे जितनी हो लेकिन लोग औसतन इनमें एक साल तक ही रहते हैं । इन आँकड़ों से ऐसा लगता है कि विक्षुब्ध मनोदशा वाला युवा वर्ग नये-नये प्रकार के सामाजिक ढाँचों का रसास्वादन करने के लिए अल्पसमय के लिए इन कम्यूनों में आकर रहने को बाध्य होता जा रहा है । इन कम्यूनों में स्थायी तौर से तो अभी ऐसी प्रजातियाँ रहती हैं जिन का समाज में परम्परागत रूप से अभी कोई स्थान बना नहीं है । विषम परिस्थितियों के इन दिनों में जहाँ जीवन नीरस और परम्परा से अपना नाता तोड़ने वाले युवा वर्ग के लिए सद्भावशून्य बनता जा रहा है, ऐसी स्थितियों में इस प्रकार के 'कम्यून' इन लोगों के लिए अमेरिका में विकसित हुए हैं ।

कम्यूनों में रहने वाले परिवार में मिलने वाली सुविधा भर उठाते हैं, सहजीवन में जो पारस्परिक उत्तरदायित्व उठाने पड़ते हैं, उनसे बच जाते हैं । यहाँ तक कि यौनाचार की सुविधा तो प्राप्त करते हैं पर पत्नी या बच्चों के प्रति कर्त्तव्य, उत्तरदायित्व का निर्वाह करने के लिए बाधित नहीं होते । साथ रहने वाले एक प्रकार से ठेकेदारी की शर्त निबाहते हैं और इतने भर आदान-प्रदान में अपना काम चला लेते हैं इस प्रकार वे लगभग होटलों की आवश्यकता पूरी करते हैं । अन्तर कुछ अधिक समय टिकने और एक जैसी प्रकृति के लोगों के एक क्षेत्र में रहने और एक ढर्रे अपनाने भर का होता है । यह सुविधा होटलों में नहीं होती और वे अपेक्षाकृत महँगे भी होते हैं ।

परिवार की आवश्यकता इस नये ढंग में पूरी करने के उत्साह की परिणति कुछ अच्छी समझ में नहीं आई है । उनमें भावनात्मक एकता, आत्मीयता, सहकारिता, वफादारी जैसे गुणों का अभाव रहने से संयुक्त परिवार की पुरातन सुविधा नहीं मिल सकी । विनोद और स्वेच्छाचार की अधिक गुंजाइश रहने पर भी लोग अपने को एकाकी, असहाय, असुरक्षित, अनिश्चित स्थिति का अनुभव करने लगे हैं । इस कुण्ठाग्रस्त मनःस्थिति का उपचार अधिक उच्छृंखलता अपनाने के रूप में सोचा गया है । फलतः नशा व्यभिचार और दूसरे प्रकार के दुर्व्यसनों को अपनाने की दिशा में प्रवाह बह चला है । उसकी परिणति ने अपराधों की बाढ़ खड़ी कर दी है ।

अखबारों, आँकड़ों एवं फिल्मों के अनुसार यह मान्यता आम बनी हुई है कि अमरीका में नशीली दवाओं और स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में स्वेच्छाचार अत्यधिक मात्रा में है । इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि युवावर्ग में मादक पदार्थों का प्रचलन बढ़ने से परिवार संस्था लड़खड़ा गई है । अमरीकन जर्नल ऑफ अर्थो साइकियाट्री में विक्टर जियोसिया ने एसीडॉक्सी एण्ड आर्थोडॉक्सी शीर्षक लेख में बताया है कि १४ वर्ष से अधिक आयु वाले युवा वर्ग के ५० प्रतिशत से अधिक युवकों ने 'साइकेडेलिक' दवाओं का अनुभव किया है और पाप नामक लोकनृत्य और लोकसंगीत में भाग लिया है । जो-जो व्यक्ति इन नशीली दवाओं तथा उत्तेजक नाच-गान से प्रभावित हुए उन्होंने परम्परागत मर्यादाओं तथा परंम्पराओं को तोड़कर अत्यधिक उच्छृंखलता का परिचय दिया । हिप्पी मूवमेण्ट का प्रारम्भ न्यूयार्क के पूर्वी माडा तथा सानफ्रांसिस्को के दाइट एस्वादी में हुआ । रेडियो एवं टी० वी० पर उत्तेजक दृश्य एवं गाने सुनने के फलस्वरूप उनकी यह प्रवृत्ति विकसित हुई है । न्यूयार्क और सान्फ्रांसिस्को के अधिकांश युवा पूरे अमरीका में हिप्पी समुदाय के रूप में विकसित हुए और फैल गये ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संसार के विज्ञजन परिस्थितियों को देखते हुए विचार करने लगे हैं कि पुरातन संयुक्त परिवार प्रणाली का सर्वथा परित्याग मानवी सुख-शांति और सामाजिक स्थिरता की दृष्टि से हितकरी सिद्ध नहीं होगा । एकाकी स्वेच्छाचारी जीवन में तात्कालिक सुविधाएँ हो सकती हैं पर अन्ततः उसका परिणाम न व्यक्ति के हित में होगा और न समाज के । अस्तु उचित यही समझा जा रहा है कि प्रगति के नाम पर अपनाये गये अत्युत्साह पर पुनर्विचार किया जाय और सहजीवन के उस पुरातन प्रचलन को नये सिरे से अपनाया जाय । यह हो सकता है कि उस प्रथा प्रचलन में जो असामयिकता, अवांछनीयता आ गई हो उसे बुद्धिमत्ता पूर्वक बदल लिया जाय ।

संयुक्त परिवार प्रणाली ही हर दृष्टि से श्रेयस्कर

मैक्समूलर ने संयुक्त परिवार को भारत की आदि परम्परा माना है, जो भारतीयों को सामाजिक विरासत के रूप में प्राप्त होती रही है । हिन्दू समाज की इकाई मूलतः संयुक्त परिवार ही रहा है, न कि व्यक्ति । श्री पणिकर ने कहा है कि "सैद्धान्तिक रूप से असम्बन्धित होते हुए भी ये दोनों संस्थाएँ जाति और संयुक्त परिवार व्यावहारिक रूप में एक दूसरे से इस प्रकार गुँथी हुई हैं कि वे एक सामान्य संस्था ही हो गयी हैं । हिन्दू परिवार की इकाई व्यक्ति न होकर संयुक्त परिवार है । "

श्रीमती इरावती कार्वे ने कहा है कि "एक संयुक्त परिवार उन लोगों का समूह है जो साधारणतः एक ही भवन में रहते हैं, जो एक ही रसोई में बना हुआ भोजन करते हैं, जो सम्पत्ति के सम्मिलित स्वामी होते हैं, जो सामान्य पूजा में भाग लेते हैं और जो किसी न किसी प्रकार एक दूसरे के रक्त सम्बन्धी हैं ।" इससे संयुक्त परिवार के संरचनात्मक सम्बन्धों का ज्ञान होता है । श्री आई. पी. देसाई ने कहा है कि " हम उस गृह को संयुक्त परिवार कहते हैं जिसमें एकाकी परिवार से अधिक पीढ़ियों, (तीन या अधिक) के सदस्य रहते हों और जिसके सदस्य एक दूसरे से सम्पत्ति, आय और पारस्परिक अधिकारों तथा कर्त्तव्यों द्वारा सम्बद्ध हों ।

बुलेटिन ऑफ दी क्रिश्चियन इंस्टीट्यूट फॉर दी स्टडी ऑफ सोसाइटी में कहा गया है कि "संयुक्त परिवार से हमारा तात्पर्य उस परिवार से है, जिसमें कई पीढ़ियों के सदस्य होते हैं और वे एक दूसरे के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करते हैं । जॉली ने संयुक्त परिवार को स्पष्ट करते हुए कहा कि "न केवल माता-पिता, सन्तान, भाई तथा सौतेले भाई सामान्य सम्पत्ति पर रहते हैं, बल्कि कभी-कभी इनमें कई पीढ़ियों तक की सन्तानें पूर्वज तथा समानान्तर सम्बन्धी भी सम्मिलित रहते हैं ।"

संयुक्त परिवार के विभाजन को रोकने के लिए मनु ने कहा है "माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् ज्येष्ठ पुत्र ही सारी पैतृक सम्पत्ति को ले ले तथा दूसरे भाई उसके संरक्षण में उसी तरह रहें जैसे वे पिता के साथ रहते थे । 'स्मृति काल में' परिवार सम्पत्ति का विभाजन न करने पर जोर दिया गया था ।

संयुक्त परिवार मूलतः सदस्यों के सहयोग पर आधारित होता है । इसमें 'एक सबके लिए सब एक के लिए' की अभिव्यक्ति होती है । एक उत्पादक इकाई के रूप में संयुक्त परिवार के विभिन्न सदस्यों में परस्पर सहयोग पाया जाता है । संयुक्त परिवार में अन्य परिवारों की अपेक्षा स्थायित्व अधिक पाया जाता है । इसमें सभी सदस्य कर्त्तव्यपरायणता के सूत्र में बँधे रहते हैं । अनेक पीढ़ियों के सदस्य होने के कारण इसमें सांस्कृतिक निरन्तरता बनी रहती है । संयुक्त परिवार के समस्त गुण कृषक समाज के ग्रामीण परिवारों में सन्निहित होते हैं । सोरोकिन और जिमर मैने ने कहा है कि ग्रामीण समाजों में परिवार का इतना अधिक महत्व होता है कि इन समाजों की अन्य संस्थाएँ तथा सामाजिक सम्बन्ध भी पारिवारिक ढाँचे के अनुरूप ही होते हैं । ग्रामीण समाजों के इस लक्षण को पारिवारिकता की संज्ञा दी गई है और पारिवारिकता को ही इन समाजों के ढाँचे का प्रमुख स्वभाव माना गया है ।

वैदिक ग्रन्थों में दम्पत्ति को आशीर्वाद देते हुए कहा गया है कि तुम जीवन भर अपने बेटों एवं पोतों के साथ रहो । ऋग्वेद के एक मन्त्र में वधू से कहा है कि तू सास ससुर, ननद, देवर आदि पर शासन करने वाली साम्राज्ञी बन । कात्यायन ने कहा है कि यदि परिवार का अन्न खाते हुए व्यक्ति ने शिक्षा ग्रहण की है, तो ऐसी दशा में प्राप्त शिक्षा के आधार पर अर्जित सम्पत्ति पर व्यक्ति का अधिकार न होकर संयुक्त परिवार का होगा ।

श्री कपाड़िया ने कहा है कि संयुक्त परिवार साधारणतः हिन्दुओं की विशिष्ट विशेषता मानी जाती है ।

देहरादून के जौनसार बाबर क्षेत्र एवं गढ़वाल और हिमालय के कुछ भागों के खस-राजपूत द्रौपदी प्रथा के आधार पर संयुक्त परिवार में रहते हैं । एक खस परिवार में कई पीढ़ी के लोग एक घर में एक साथ भोजन व सम्पत्ति के आधार पर साथ रहते हैं । एक पत्नी के साथ विवाह करके जो सभी भाइयों की सामान्य पत्नी मानी जाती है । बड़ा भाई सम्पूर्ण व्यवस्थापक होता है । बड़ा भाई ही सभी पत्नियों के साथ विवाह करता है उसे कुछ अधिक अधिकार प्राप्त होते हैं । यदि इनके यहाँ परिवार में पत्नियों के कारण विभाजन की स्थिति आती है तो ये पत्नी को तलाक देना अधिक उचित मानते हैं किन्तु परिवार विभाजन नहीं करते हैं ।

मलयालम के 'थारवाड' में एक स्त्री के कई पीढ़ियों के वंशज साथ रहते हैं, इसमें एक स्त्री, उनके पुत्र तथा पुत्रियाँ, उसकी पुत्रियों के पुत्र एवं पुत्रियाँ तथा पुत्रियों की पुत्रियों के लड़के एवं लड़कियाँ पाई जाती हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिन्दू परिवार में गृहस्थ शास्त्रों में वर्णित निर्देशों का पालन करते हुए, ऋषियों, मुनियों, देवताओं, अतिथियों और प्राणी मात्र के प्रति अपने सामाजिक और मानवीय दायित्वों को निभाता है । डा० प्रभु के अनुसार परिवार में जीवित सदस्य ही नहीं रहते वरन् मृत पूर्वजों एवं भावी जन्मों का भी स्थान रहता है । वह अपने जीवन में धार्मिक कृत्यों को अधिक महत्व देता है । हिन्दू परिवार और उसकी परम्पराओं का आधार आध्यात्मिक निरन्तरता की भावना है । इसमें सम्पत्ति को महत्व न देकर अपने कर्तव्य पालन का पूर्ण प्रयास किया जाता है ।

संयुक्त परिवार भारतीय संस्कृति की निरन्तरता और स्थायित्व को बनाये रखने में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करता है । इनमें सदस्यों का प्रथाओं, परम्पराओं, रूढ़ियों और सामाजिक प्रचलनों के अनुसार आचरण करना पड़ता है ।

इसमें सामूहिक प्रयत्न यह रहता है कि धन कोष को बढ़ाया एवं सम्पत्ति का बचतपूर्वक ढंग से उपयोग किया जाता है । इसमें वस्तुओं का क्रय एक साथ होता है एवं कर्ता के नियन्त्रण में अनावश्यक खर्चे का भी बचाव होता है । सामूहिकता के कारण कम खर्चे में अधिक लोगों का भरण-पोषण होता है ।

संयुक्त परिवार में एक मुखिया के अनुशासन एवं नियन्त्रण का पालन करना पड़ता है । इससे भावी जीवन में अधिक प्रगति होती है । कोई भी सदस्य पारिवारिक प्रतिष्ठा को क्षति पहुँचाने वाला काम नहीं करता है । नहीं अवांछनीय आदतों का प्रश्रय होता है ।

ऐसे परिवार में बच्चों की देखभाल अच्छी तरह हो जाती है, बच्चे उद्दण्ड नहीं हो पाते । वृद्ध कठोर काम तो नहीं कर पाते किन्तु बच्चों के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं ।

संयुक्त परिवार में पुरुष वर्ग कठोर श्रम एवं स्त्रियाँ घर की सम्पूर्ण व्यवस्था की देखभाल करती हैं । वृद्ध एवं असमर्थों को कोई कठिन कार्य नहीं दिया जाता है । इस तरह श्रम के उचित विभाजन से उत्पादन भी बना रहता है और किसी पर अनावश्यक दबाव भी नहीं पड़ता है ।

संयुक्त परिवार व्यवहार रूप में सामुदायिक जीवन के उदाहरण हैं । संयुक्त परिवार से समाज में त्याग, परोपकार, सहयोग एवं सामूहिकता का विकास होता है । इससे राष्ट्रीय एकता की भावना को सम्बल प्राप्त होता है । सम्मिलित सदस्यों के कारण समाजसेवा एवं देशसेवा का भी सुअवसर रहता है । संयुक्त परिवार में भविष्य सुरक्षा के प्रति सदस्य निश्चिन्त रहकर मानसिक सन्तुलन बनाये रखने में सक्षम रहते हैं । बालकों एवं सदस्यों का स्वास्थ्य मनोरंजन एवं सदस्यों में प्रेम-वात्सल्य व हास-परिहास का वातावरण विद्यमान रहता है ।

संयुक्त परिवार सदस्यों को बीमा जैसा संरक्षण प्रदान करता है । किसी सदस्य की असमर्थता एवं दैवी विपत्ति पर उसकी देखभाल की समुचित व्यवस्था रहती है । इसमें आर्थिक सुरक्षा अनुभव कर के सदस्य व्यक्तित्व का स्वस्थ विकास करते हैं ।

संयुक्त परिवार में बच्चों को बुजुर्गों के अनुभवों का लाभ एवं अनेक सदस्यों के साथ रहने के कारण प्रारम्भिक शिक्षा मिलती है । बूढ़ों के मार्गदर्शन में पले बच्चे बालकों के समाजीकरण में महत्वपूर्ण योगदान प्राप्त होता है । बालकों में सद्गुणों का विकास होता है । प्रेम, सहयोग, त्याग, सहनशीलता, परोपकार, सेवा आदि की शिक्षा पाते हैं । इसमें व्यक्तिवाद के स्थान पर सामूहिकता एवं समष्टिवाद की भावना का विकास होता है । बच्चे परमार्थ परायणता का दृष्टिकोण अपनाते हैं जो परिवार, समाज, देश के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

डॉ० आर० एन० सक्सेना ने कहा है कि समय-समय पर होने वाली पूजा-विधियों और उत्सवों द्वारा परिवार के सदस्यों में पारस्परिक निर्भरता और सहयोग का स्थापित होना, परिवार के प्रत्येक सदस्य की एक निश्चित स्थिति और कार्य का परम्परानुसार पूर्व निर्धारित होना, कर्त्ता को सर्वोपरि सत्ता तथा अधिकार मिलना, कर्त्ता को मिले हुए न्यायिक कार्य तथा अधिकार और कृषि पर आधारित सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था इत्यादि हिन्दू परिवार की संयुक्त संरचना को स्थायित्व प्रदान करने में मुख्य कारण रहे हैं । वर्तमान समय में संयुक्त परिवार विघटित हो रहे हैं । अँग्रेजों के भारत आगमन के पश्चात् से औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप नवीन सामाजिक आर्थिक शक्तियों का भारतीय समाज पर प्रभाव पड़ने लगा है ।

भारत का वास्तविक स्वरूप है देहाती जीवन । उसमें कृषि, पशुपालन, गृह-उद्योग आदि के सहारे आजीविका उपार्जन का क्रम चलता है । यह कार्य ऐसे हैं जिनमें संयुक्त परिवार पद्धति के आधार पर मिल-जुलकर एक साथ रहना ही आर्थिक एवं सामाजिक आधार पर ठीक बैठता है । पाश्चात्य देशों की बात दूसरी है । वहाँ औद्योगिकता प्रधान वातावरण से शहरी सभ्यता पनपी है और छोटे मकान तथा स्वेच्छाचारी रहन-सहन के कारण विघटित परिवारों का क्रम चला है । इसमें कमाऊ लोग तो नफे में रहें, अधिक सुविधा स्वच्छता का उपयोग कर सकें तो उनसे सम्बन्धित वृद्धों, बालकों तथा रुग्ण, अपंग, असमर्थों पर कहर बरसा, उन्हें जान के लाले पड़े और अनाथ, असहनीय जैसा दीन-हीन तिरस्कृत उपेक्षित जीवनयापन करने के लिए बाधित हुए । एक ही अंश-वंश के लोग इस प्रकार असमान स्थिति में रहें तो उसे शहरी सभ्यता का अभिशाप ही कहा जायेगा । परिवारों का विघटन उसी ने तो किया है ।

पाश्चात्य देशों ने प्रगति की ठेकेदारी की है । वैज्ञानिक, औद्योगिक, बौद्धिक, आर्थिक, सामाजिक क्षेत्रों में उनकी तूती बोलती है । इसी उत्साह ने उनमें विघटित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिवारों का नया प्रयोग आरम्भ किया । कमाऊ लोग तो अभी भी अपनी स्वेच्छाचारिता को अक्षुण्ण रखने के लिए उसी का समर्थन करते हैं पर समूचे समाज एवं उसकी छोटी इकाई परिवार की स्थिति पर दूरदर्शितापूर्ण पर्यवेक्षण करने पर इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि यदि बहुजन हिताय, बहुजन-सुखाय का आदर्श अपनाना हो तो संयुक्त परिवार, परम्परा की ही ओर वापिस लौटना पड़ेगा ।

संयुक्त परिवार व्यवस्था को जीवन्त बनाए रखें

स्रष्टा के 'एकोऽहं बहुस्यामि' के उद्घोष के साथ ही सृष्टि का शुभारम्भ माना जाता है । आत्मविस्तार का यह संकल्प सृष्टि के कण-कण और अणु-अणु में परिलक्षित होता है । अपने ही सौर परिवार के १२ ग्रहों और अन्यान्य उपग्रहों की उत्पत्ति सूर्य से हुई है । सभी संयुक्त सूत्र से बँधे गुँथे अनन्त काल से अनुशासनबद्ध, मर्यादित और कार्यरत हैं । किसी में न टकराव है न बिखराव । सृष्टा ने मनुष्य से भी यही आशा अपेक्षा की है कि वे संयुक्त, संघबद्ध एक दूसरे के परस्पर पूरक, सहायक, सहयोगी बनें । यही मनुष्य जाति की उन्नति का मूल मन्त्र है । संगठनात्मक प्रयासों से ही मनुष्य को सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी बनने का सुअवसर प्राप्त हुआ है । यदि प्रारम्भ से ही व्यक्तिवाद, स्वार्थपरता, संकीर्णता, अलगाव, टकराव बना रहा होता तो पाषाण युग से अधिक प्रगति के सुअवसर देखने को न मिलते । यदि सृष्टि के आरम्भ से ही आदमी कबीले, समूह और झुण्ड बनाकर संयुक्त न रहा होता तो अपने अस्तित्व को बनाए रखने में भी समर्थ न हो पाता और उसे प्रागैतिहासिक काल के दैत्याकार जीव-जन्तुओं ने उदरस्थ कर लिया होता । यही झुण्ड और कबीले प्रगति करते-करते कालान्तर में परिवार, संयुक्त परिवार, ग्राम समूहों में परिवर्तित होते चले गये ।

भारत में परिवार व्यवस्था हजारों वर्ष पुरानी है । यद्यपि पराधीनता के अन्धकार युग में अनेक विदेशी सभ्यताओं ने यहाँ की संस्कृति पर भी अपना प्रभाव डाला जिससे यहाँ की संयुक्त परिवार व्यवस्था बड़ी तेजी से विघटित और विशृंखलित हुई है । भारतीय परिवार मात्र सहयोग और सहनिवास ही नहीं वे एक सहकारी संस्था हैं । यों मिल-जुलकर तो लोग होटल और धर्मशालाओं में भी रह लेते हैं और सहनिवास के कुछ नियम मर्यादाओं का निर्वाह भी करते हैं, किन्तु ऐसा सहकार सीमित और सामयिक होता है । इनमें परिवार जैसी आत्मीयता नहीं होती । भारतीय परिवारों में वास्तविक समाजवाद का दर्शन किया जाना सम्भव है ।

पश्चिमी देशों में परिवार मानव जीवन की सीमित आवश्यकताओं को लेकर जुड़े और विकसित हुए हैं । उनमें भारत जैसा भावनात्मक लगाव, उदार आत्मीयता नहीं होती । भारतीय परिवारों में भाव सम्वेदनाओं को अनेक रूपों में आज भी न्यूनाधिक रूप में देखा जा सकता है । जबकि विश्व भर में संयुक्त परिवार व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो चली है । मानव के भावजगत के बहुआयामी रूपों को यहाँ की संयुक्त प्रणाली परिवार व्यवस्था में देखा जा सकता है, जहाँ माता-पिता, बाबा, दादी के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा और उनका वात्सल्य स्नेह, भाई-भाई का निःस्वार्थ अनूठा प्रेम और त्याग, भाई बहन की आत्मानुशासित मर्यादाओं और अन्तरंग स्नेह, ननद, भाभी, सास, बहू, देवर, जेठ, जेठानी, देवरानी, चाचा, चाची, ताऊ, बुआ, भतीजे आदि का बहुआयामी दृश्य देखकर सहज ही कहा जा सकता है कि भाव संवेदनाओं के विस्तार में ही आनन्द है न कि सिकोड़ने-समेटने में । जीवन जीने का असली आनन्द संयुक्त परिवार व्यवस्था में है न कि एकाकी जीवन में । पश्चिमी जगत की पति-पत्नी और बच्चे वाली व्यवस्था में ऐसा भाव संवेदनाओं, प्रेम, स्नेह, ममता, उदार आत्मीयता का सौजन्यपूर्ण वातावरण नहीं है । इसीलिए दुनिया में कुछ भी इतना रूखा और संकीर्ण नहीं, जितना कि पत्नी तथा बच्चे तक सिमिटी-सिकुड़ी परिवार व्यवस्था ।

संयुक्त परिवार व्यवस्था वस्तुतः मनुष्य के जीवनदर्शन का एक अंग है । इसमें व्यक्तिवादी कुण्ठाएँ और अभाव नहीं पनपने पाते । इसमें मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास की असीम सम्भावनाएँ सन्निहित हैं । सम्मिलित परिवारों में सुख-सुविधाओं और उन्नति के जो अवसर उपलब्ध हो सकते हैं वे एकाकी व पृथक परिवारों में नहीं । भारतीय संस्कृति सदैव ही सम्मिलित परिवारों के आदर्श को प्रोत्साहित करती रही है, किन्तु कुछ समय से संयुक्त परिवार व्यवस्था का ह्रास होने लगा है जिसका स्थान छोटे एकाकी परिवार (पति-पत्नी एवं बच्चे) लेते जा रहे हैं । इसीलिए सुख शान्ति के मूल सिद्धान्त और आदर्श भी लुप्त होते जा रहे हैं ।

ससीम से असीम, क्षुद्र से महान, स्वार्थी से सन्तोषी बन पाना संयुक्त परिवार प्रणाली में ही सम्भव है । इस व्यवस्था में विकास एवं विस्तार की सम्भावनाएँ अधिक हैं । जो जितना विकसित है उसकी आत्मीयता उतनी ही व्यापक होगी । क्षुद्रता की जकड़ से मनुष्य आत्मकेन्द्रित बना रहता है । वह सम्पर्क भले ही बहुतों से रखता हो किन्तु स्वार्थवश अपना लाभ हर समय उसकी दृष्टि पर छाया रहता है । परिवार उच्चस्तरीय दार्शनिकता है । घर परिवार में हर समय एक-दूसरे के काम आने में त्याग-बलिदान की भावना रहती है । यही स्नेह-सूत्र परिवार को एक-दूसरे से बाँधे गुँथित किये रहते हैं । एकाकी मनुष्य अथवा एकाकी परिवारों में संयुक्त परिवारों के मुकाबले आत्मीयता, त्याग, बलिदान की भावना नहीं विकसित हो पाती । आज तो हानि लाभ की दृष्टि से प्रत्येक व्यवस्था का मूल्यांकन किया जाता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हानि-लाभ की दृष्टि से भी संयुक्त परिवार व्यवस्था में आज की स्थिति में लाभ अधिक, हानि नगण्य है । एकाकी परिवारों की अपेक्षा संयुक्त परिवारों के आवास, निवास, भोजन, वस्त्र पर औसत कम खर्च आता है और आज की कमर तोड़ महँगाई में मकान किराया या बिजली, ईंधन, तेल आदि के खर्चों में भारी-किफायत की जा सकती है । यदि परिवार के सभी परिजन माँ-बाप, भाई-बहन अलग-अलग रहें, पकायें खायें उस व्यवस्था में दुगुना-चौगुना व्यय अधिक होना स्वाभाविक है । संभ्रान्त परिवार यदि संयुक्त बने रहें तब तो उनके खर्चे में और भी भारी किफायत की जा सकती है । जैसे संयुक्त परिवार में रेडियो, लाइब्रेरी तथा निर्वाह के साधनों आदि से काम चल सकता है । इसके अतिरिक्त कितने ही प्रकार के टैक्सों में किफायत और रियायत, सुविधा और सरलता हो जाती है ।

उदाहरण दिल्ली जैसे महानगर में ही यदि पचास हजार परिवारों को संयुक्त बने रहने के लिए सहमत किया जा सके तो पाँच हजार आवासीय फ्लेटों की बचत की जाकर पच्चीस हजार ऐसे लोगों को बसाने की व्यवस्था की जा सकती है जो फुटपाथों, प्लेटफार्मों, धकेलगाड़ी, रिक्शा अथवा पेड़ों की छाया में सोकर सर्दी, गर्मी, बरसातें बिताते हैं । इन्हीं परिवारों पर खर्च होने वाली रोशनी, पंखे, कूलर, फ्रिज, हीटर आदि से इतनी बिजली की बचत की जा सकती है जिससे १ हजार ग्रामीण ट्यूबबैलों को निरन्तर विद्युत सप्लाई की जा सके, जिससे चार हजार एकड़ असिंचित भूमि को सिंचित बनाया जाकर बीस हजार टन अतिरिक्त अन्न उत्पादन किया जा सके । इन्हीं परिवारों के खाने-पकाने के लिए ऊर्जा पर खर्च होने वाले व्यय से बचत की जाकर एक सुनहरी खाद का कारखाना सरलता से चलाया जाकर १० लाख टन खाद प्रतिवर्ष प्राप्त की जा सकती है, जिससे दिल्ली प्रान्त के सब्जी उत्पादक कृषकों की खाद की आवश्यकता पूरी की जा सकती है । इन्हीं परिवारों में अलग-अलग वाहनों पर खर्च होने वाले पेट्रोल, डीजल को बचाकर प्रतिवर्ष करोड़ों की विदेशी मुद्रा की बचत की जा सकती है ।

संयुक्त परिवारों में यदि कोई कभी रोगी अथवा दुर्घटनाग्रस्त हो जाए अथवा किसी महिला को प्रसवासन्न जैसी अवस्था में अथवा किसी आवश्यक कार्य से बाहर जाना पड़ जाय तो एक दूसरा उस जिम्मेदारी को स्वत: सम्हाल लेता है । यदि असमय में ही पति अथवा पत्नी में से एक की मृत्यु हो जाय तो एकाकी परिवारों पर बज्रपात ही हो जाता है । उनके बच्चों के भूखा मरने, जेल भुगतने जैसा अवसर आ खड़ा होता है ऐसे में बेसहारों को कौन सहारा दे, किन्तु संयुक्त परिवारों में किसी को कहने की आवश्यकता नहीं होती उनकी व्यवस्था स्वत: बन जाती है । विवाह-शादी, सुख-दु:ख के अवसरों पर एकाकी परिवारों की अपेक्षा संयुक्त परिवारों में अच्छी व्यवस्था बन जाती है ।

संयुक्त परिवार व्यवस्था हर दृष्टि से लाभकारी है । वर्तमान सन्दर्भ में जब आदमी अन्दर से शुष्क होता चला जा रहा है, शहरीकरण बड़ी तेजी से बढ़ रहा है, इसकी उपादेयता और भी अधिक हो जाती है । उदार आत्मीयता का विस्तार, मिल-बाँटकर खाने की वृत्ति, सहयोग सहकार का शुभारम्भ संयुक्त परिवार व्यवस्था से किया जाय तभी सारी विश्ववसुधा को एक धागे में पिरोने की एक सुव्यवस्था कुटुम्ब की तरह बनाने की कल्पना साकार की जा सकती है ।

पारिवारिक अनुशासन व्यवस्था का संचालन यों हो

भारत में अब पहले जैसे विशाल संयुक्त परिवार भले ही अधिक न हों, तो भी कुछ छोटे संयुक्त परिवार, जिनमें तीन पीढ़ियों के लोग साथ रह रहे हों, पर्याप्त संख्या में पाए जाते हैं । उनमें अनुशासन व्यवस्था बनाए रखने की जिम्मेदारी परिवार के मुखिया को निभानी होती है । छोटे परिवारों में भी, जिनमें कई बच्चे हों, उन्हें अनुशासन का प्रशिक्षण देना तथा आवश्यक सत्परामर्श देते रहना आवश्यक होता है ।

प्रत्येक परिवार के मुखिया में अपने परिवार के सदस्यों के प्रति स्नेह-सद्भाव भरी सघन आत्मीयता रहती है । प्रत्येक सदस्य के स्वभाव तथा कार्यक्षमता में निरन्तर परिष्कार होता चले, भूलों से वह जहाँ तक हो बचे, ताकि अपना भविष्य समृद्ध बना सकें, यही मुखिया की इच्छा होती है । उसी दृष्टि से वह सुझाव, सलाह देते रहना अपना कर्त्तव्य मानता है । यह स्वाभाविक भी है और आवश्यक कर्त्तव्य भी किन्तु ऐसे सुझावों-सलाहों की प्रतिक्रिया प्राय: प्रतिकूल होती है । कई बार मूक अवज्ञा की जाती है तो कई बार कटु उत्तर भी दे दिया जाता है । अपनी भूल सुधारने को तो कोई कदाचित् ही कभी तैयार होता है । उलटे परामर्श देने वाले के प्रति शंका, सन्देह, कटुता, तिक्तता का भाव पाल लेने जैसी ही प्रतिक्रिया व्यक्त करने की प्रवृत्तियाँ ही प्रमुखता से पाई जाती हैं ।

अपने स्नेह-सद्भाव का ऐसा विचित्र प्रतिदान किसे प्रसन्नता देगा, परिवार के गुरुजनों को या मुखिया को इन प्रतिक्रियाओं से पीड़ा होनी स्वाभाविक है । उस हताशा में सोचा जाने लगता है कि "बुरा जमाना आ गया, लोग ढीठ हो गये, सत्परामर्श सुनने को कोई तैयार नहीं-ऐसी दशा में आँखों पर पट्टी और मुँह पर ताला लगाये रहना ही उचित है ।"

यहाँ समझने की बात इतनी ही है कि कड़ुई कुनैन खाने के लिए प्रौढ़ और दूरदर्शी व्यक्ति ही तैयार हो सकते हैं, बच्चे उसे खाने को रजामंद नहीं होंगे खाने के लिए जोर दिया जाय तो उसे फेंक-फाँक देंगे और खाने का बहाना बना देंगे । उन्हें खिलाना हो तो चीनी की परत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चढ़ाकर गले उतारने की व्यवस्था बना सकते हैं । हमें यही मानकर चलना चाहिए कि भर्त्सना भरा परामर्श किसी को भी स्वीकार नहीं हो सकता । ऐसी समीक्षा से किसी का सहमत करना कठिन है, जिसमें उसकी मूर्खता सिद्ध की गई हो ।

समीक्षा किये बिना, परामर्श दिये बिना सुधार सम्भव नहीं । अपने आप अपनी गलती ढूँढ़ लेने और सुधार लेने वाले तो सन्त होते हैं । सामान्य मनुष्यों को उन्हें सँभालने, सुधारने और दिशा देने की आवश्यकता रहेगी ही । इसलिए मध्यवर्ती सन्तुलित मार्ग निकालना चाहिए और प्रशंसायुक्त निन्दा करने की कला सीखनी चाहिए । जिसे परामर्श दिया जा रहा है उसे अपने और उसके बीच घनिष्ट आत्मीयता और गहरी सद्भावना का विश्वास भी दिलाते रहना चाहिए । समीक्षक के प्रति निन्दक और द्वेषी होने की आशंका जगती है । अस्तु ,उसे निरस्त करने के लिए परामर्श देने से पूर्व अपनी सद्भावसम्पन्न घनिष्टता का विश्वास किसी न किसी रूप में अवश्य ही स्मरण करा देना चाहिए । हर काम में कुछ न कुछ श्रम और सहयोग लगा ही होता है, उतने की प्रशंसा किये बिना समीक्षा की शुरूआत कभी नहीं करनी चाहिए । जो गलती रही है उससे होने वाली हानि को प्रधानता न देकर उस कल्पना चित्र में रंग भरना चाहिए जो सुधार होने पर सुखद सम्भावना सामने आने की आशा जगाता है । वर्तमान भूल से होने वाली हानि की चर्चा परामर्श के अन्त में और हल्के ढंग से करनी चाहिए ताकि उसे अभीष्ट जानकारी मिलने पर संभलने की सतर्कता तो जग जाय, पर यह अनुमान न हो कि उसे तिरस्कृत किया जा रहा है । जिन परिस्थितियों में भूल होती रही है, दोषी उन परिस्थतियों को बता देने से भी काम बन जाता है । परामर्शदाता का उद्देश्य निन्दा करना या जी दुखाना तो होता नहीं, वह सुधार ही तो चाहता है । इस प्रयोजन के लिए व्यक्ति की निन्दा करने की अपेक्षा परिस्थितियों का दोष कह देने से भी काम चल सकता है । इसमें मान-अपमान का झंझट भी नहीं रहता, साथ ही परोक्ष रूप से असावधानी की भर्त्सना भी हो जाती है । मन्तव्य इतने भर से हल हो सकता है ।

जिन्हें अपना घर-परिवार सँभालना हो उन्हें सभी सदस्यों को पग-पग पर तो नहीं पर अवसर देखकर भूलों के लिए टोकने और अधिक अच्छा करने का उपाय बताने की प्रक्रिया अनवरत रूप से जारी रखनी चाहिए । व्यक्ति एवं परिवार की तरह वही रीति-नीति समाज सुधार के क्षेत्र में भी प्रयुक्त होनी चाहिए और प्रत्येक शुभाकांक्षी को सत्परामर्श देने का प्रयास निरन्तर जारी रखना चाहिए । यह प्रयत्न किस चट्टान से टकराकर टूटते हैं ? जो इसे जान लेगा वह सामने वाले के सम्मान, अपमान का, सम्वेदनाओं का समुचित ध्यान रखे रहेगा । फलतः उसका तीर ठीक निशाने पर बैठता रहेगा और यह शिकायत करने का कोई कारण न रहेगा कि लोग सत्परामर्श भी सुनने-मानने को तैयार नहीं हैं । चाहे किसी बड़ी संस्था का संचालन हो या अपने छोटे से परिवार का, उसमें यह ध्यान रखना जरूरी है कि हमें किन्हीं यंत्र समूहों से नहीं, चेतन संवेदनशील मनुष्यों से व्यवहार करना है, जिनमें भावनात्मक उद्वेग, वैचारिक आवेग और आत्मसम्मान की भावना तथा स्वयं के पूर्वाग्रह पर्याप्त प्रबल होते हैं । इसीलिए व्यवहार के समय ये सभी बातें ध्यान में रखनी होती हैं । तभी पारिवारिक अनुशासन का प्रशिक्षण सरलता से होता रह सकता है ।

सामंजस्य की रीति-नीति

जिस परिवार में सुख, शान्ति और सन्तोष विद्यमान हो वह स्वर्ग के समान है । इसके विपरीत जिस घर में कलह, अशान्ति और असन्तोष हो वह नर्क के समान होता है । इसमें कोई सन्देह नहीं ।

भारत में अधिकतर संयुक्त परिवार परिपाटी चली आ रही है । पाश्चात्य देशों में विवाह होने पर पुत्र और पुत्रवधू परिवार से अलग रहने लगते हैं । माता-पिता के लिए मासिक या वार्षिक पेन्शन भेजकर अपने कर्त्तव्य की इति-श्री समझ बैठते हैं । माता-पिता या कोई पारिवारिक सदस्य अस्पताल में बीमार पड़ा हो तो पुत्र औपचारिकता के नाते 'सम्वेदना का तार' भिजवाकर सन्तोष कर लेता है । परन्तु हमारे देश में अभी तक ऐसी स्थिति पैदा नहीं हुई है ।

किन्तु यहाँ भी पारिवारिक विघटन की स्थिति प्रायः पैदा हो रही है । माँ-बाप के सुनहले स्वप्न साकार नहीं हो पाते । पुत्र पैदा होने पर यही इच्छा रहती है कि कब बड़ा हो ? कब हमारे जीते जी इसका विवाह हो ? कब बहू आए ? इत्यादि । कभी-कभी वे बाल-विवाह कर देने में कोई हर्ज नहीं समझते । ऐसी स्थिति में कोई (अबोध नवदम्पत्ति) अपने कर्त्तव्य को कैसे समझ पाएगा ? कभी-कभी चट मँगनी और पट शादी भी हो जाती है ।

नई बहू परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिए आकर्षण का केन्द्र बन जाती है । स्वभावतः पुत्र द्वारा माँ के स्नेह में कमी आ जाती है । यदि दुर्भाग्यवश बहू को दहेज कम मिला हो तो सास के सामने सिर उठाने की हिम्मत नहीं पड़ती । कोई न कोई बहाना ढूँढ़कर बहू को डाँटने, फटकारने, भला-बुरा कहने में कोई और कोर-कसर बाकी नहीं रखती । कोई सुशील स्वभाव की बहू हो तो चुपचाप कड़वा घूँट पीकर आत्महीनता एवं ग्लानि का जीवन जी लेती है । यदि तेज तर्रार हुई तो खूब जम कर ठनती है । पति दुविधा में पड़ जाता है कि क्या किया जाए ? किस का पक्ष लिया जाए ? सास-बहू, ननद-बहू और भावज-बहू के कलह से सारा परिवार परेशान हो जाता है ।

यदि हम चाहते हैं कि परिवार सुसंस्कृत बने, सद्गृहस्थ की स्थापना हो तो पहले हमें उन कारणों को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ढूँढ़ना एवं दूर करना होगा जिससे घर नर्क बनता है, उन बातों का समावेश पारिवारिक जीवन में करना होगा जिससे घर स्वर्ग बनता है । आइए, इस पर गम्भीरता से विचार करें ।

भारतीय परिवारों में सास-बहू का झगड़ा सदियों पुराना बन गया है । बहू, एक नये भिन्न परिवार की लड़की है, जिसे अपने ससुराल की कोई जानकारी नहीं । घर का काम-काज और सदस्य उसके लिए अजनबी हैं । उसे उचित मार्गदर्शन की आवश्यकता है । वह अपनी सास से 'माँ का प्रेम' प्राप्त करना चाहती है किसी 'कमाण्डर' जैसे व्यवहार को नहीं । उससे किसी भी कार्य से गलती होना स्वाभाविक है अतः अच्छी प्रकार उसे काम समझाया जाना चाहिए । वह अपने 'मायके' की हेटी और आलोचना सहन नहीं कर सकती, भले ही वह किसी निर्धन परिवार की लड़की हो । आत्मसम्मान की रक्षा हर व्यक्ति करना चाहता है फिर उसे क्यों वंचित किया जाए ? यह जरूरी नहीं कि बहू तो सर्वगुण सम्पन्न हो और सास झगड़े की जड़ । बहू जब अपने कर्त्तव्य में जान-बूझकर उपेक्षा करती है, धृष्टता, दुर्जनता का व्यवहार करती है तो सास बड़ी होने के नाते यह कैसे सहन कर लेगी ? जहाँ सास से यह अपेक्षा की जाती है कि वह बहू को पुत्रीवत् देखे । मातृवत् स्नेह दे, वहाँ बहू से भी यह आशा की जाती है कि वह सास को सर्वोपरि सम्मान दे । घरेलू काम-काज को कर्त्तव्य समझकर करती रहे । भावज और देवरानी के बच्चों को नहलाए । उनके कपड़े साफ करे और उन्हें प्यार करे । परिवार के सभी बड़ों की यथायोग्य सेवा करे । सहनशीलता, सूझ-बूझ, कार्य-कुशलता और श्रमशीलता का परिचय दे । किसी से अशिष्ट व्यवहार न करे । तभी पारिवारिक कलह की समूल समाप्ति हो सकती है ।

परिवार निर्माण का दूसरा अंग है -बच्चे । माँ-बाप बच्चों को जन्म दे देते हैं किन्तु सही लालन-पालन सुसंस्कार देने की आवश्यकता नहीं समझते । बच्चे परिवार की इकाइयाँ हैं । इनकी उपेक्षा देश के प्रति उपेक्षा होगी । बच्चों को संस्कारवान एवं स्वस्थ बनाने के लिए निम्नलिखित बातों की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए ।

(१) माता-पिता अपने लाड़ले को अनावश्यक कुछ भी न सिखाएँ । खाने-पीने और शौचादि का समय निश्चित कर दीजिए । कम से कम एक वर्ष तक माँ को अपने स्तन का दूध पिलाना ही चाहिए । तभी माँ के संस्कार बच्चे में प्रविष्ट हो सकते हैं । बच्चे को हर वक्त खिलाते रहने से उसे अपच ही होगा ।

(२) बच्चों को भूत-प्रेत और अन्धेरे का भय मत दिखाइए । इस से बच्चे का स्वभाव शंकालु और डरपोक हो जाता है । व्यक्तित्व के विकास के लिए निडरता का होना परमावश्यक है ।

(३) पारिवारिक कलह के घिनौने वातावरण से बच्चों को दूर रखा जाए । गाली-गलौज देने वालों से बच्चों का सम्पर्क न हो । शिष्टाचार के पालन में तनिक कठोरता न बरती जाए ।

(४) पारिवारिक व्यक्ति अपने व्यसनों का प्रदर्शन बच्चों के सामने न करें । बच्चा-बन्दर की भाँति नकलची होता है । धूम्रपान करने वाला और शराबी पिता अनायास ही ये दुर्गुण विरासत में अपनी सन्तान को छोड़ देता है ।

(५) जादू-परियों और दैत्यों की कहानी के बजाय महापुरुषों के प्रेरक प्रसंग बच्चों के मनःस्तरानुसार सुनाने चाहिए, जिससे उन में निर्भीकता, वीरता, साहस, सज्जनता, दया, विवेक और परहित कातरता आदि गुण स्वतः विकसित हो सकें ।

पारिवारिक शान्ति, समृद्धि एवं हित के लिए अपव्यय को रोकना आवश्यक है । फैशन, मृत्युभोज, ब्रह्मभोज एवं अन्य असंगत कार्यों पर धन खर्च करने की अपेक्षा बच्चों को सुशिक्षित, सुसंस्कारी बनाने पर धन खर्च किया जाना चाहिए ।

समय का अपव्यय भी एक विकट समस्या है । स्त्रियाँ खाली समय में प्रायः निरर्थक बातें या किसी की निन्दा करती हैं । खाली समय में परिवार की शिक्षित स्त्रियों को महिला-उपयोगी साहित्य पढ़कर दूसरों को सुनाना चाहिए । जहाँ ऐसा सम्भव न हो वहाँ स्त्रियाँ घर की सजावट-सफाई का कार्य कर सकती हैं अथवा कोई अन्य दस्तकारी का काम कर सकती हैं । इससे परिवार की आर्थिक स्थिति कुछ हद तक सुधर सकती है ।

परिवार के प्रबुद्ध व्यक्ति अपने व्यस्त जीवन से समय निकालकर परिवार के सदस्यों की सम्भावित त्रुटियाँ दूर करने के लिए प्रेम तथा लगन से काम करें । उन्हें चरित्रवान्, सद्गुणी एवं परोपकारी बनाने के लिए उत्साहित करें । यह तभी सम्भव हो सकता है यदि परिवार का मुखिया इस स्तर का व्यक्ति हो ।

व्यावहारिक जीवन की सफलता का मूलाधार

हमारी संयुक्त परिवार प्रणाली दिनोंदिन विच्छिन्न होती जा रही है । भाई-भाई में परस्पर अनबन है । पति-पत्नी में एक-दूसरे से नहीं बनती है । बेटा-बाप के साथ नहीं रहना चाहता । सास बहू में परस्पर तकरार हो रही है । बहुधा परिवार का प्रत्येक सदस्य अपनी बात को सत्य साबित कर उसके समक्ष दूसरों के विचारों के महत्व को स्वीकार नहीं करता । इसी प्रकार हमारी सामाजिक स्थिति का भी यही हाल है । समाज में व्याप्त परस्पर असहयोग, असमानता, संघर्ष, लड़ाई, झगड़ों की वृद्धि हो रही है । और भी जरा अपनी विस्तृत दृष्टि डालिए तो अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी यही स्थिति है । एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के फिक्र में है । एक देश दूसरे के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अस्तित्व को अपने से नीचा रखना चाहता है । वे परस्पर तरह-तरह की होड़ में व्यस्त है ।

हमारी उक्त सामाजिक, पारिवारिक स्थिति का मूल कारण क्या है ? जिसके कारण यह स्थिति पैदा हो गई है और हमारा पारिवारिक, सामाजिक, अन्तर्राष्ट्रीय जीवन अशान्त, दु:खी, ईर्ष्या, द्वेष, भय, परस्पर प्रतिहिंसा की भावनाओं से ओतप्रोत एवं अव्यवस्थित बनता जा रहा है । साथ ही पतन की ओर अग्रसर हो रहा है ।

उक्त समस्या पर विचार करते हुए एक कहानी याद आती है कि एक समय दो बकरियाँ जंगल से चरकर लौट रही थीं । मार्ग में उन्हें एक नाला पड़ा जिस पर एक संकरा-सा पुल था । उसे उन दोनों को आमने-सामने से पार करना था अर्थात् भिन्न-भिन्न दिशाओं में जाना था । पुल छोटा और संकरा होने से वे एक दूसरे से उस पर आमने-सामने से टकराईं । इस स्थिति में उन दोनों में से एक किसी को वापिस मुड़ जाना था ताकि क्रमश: वे एक-एक पुल को पार करें । किन्तु उलझन यह पैदा हो गई कि कौन मुड़े और वापिस लौटे ? उन दोनों में कोई भी पहले पहल इसके लिए तैयार नहीं हुईं । इस झगड़े में दोनों आपस में भिड़ गईं और नदी में गिरकर विनाश को प्राप्त हुईं ।

ठीक यही स्थिति हमारे सामाजिक, पारिवारिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय जीवन की है । सभी अपनी यह इच्छा एवं धारणा रखते हैं कि दूसरों को झुकाया जाय और स्वयं न झुकें, भले ही अनुचित पक्ष ही निज का क्यों न हो ? परिणाम में वही बकरियों वाली हालत होना अवश्यसम्भावी है ।

मानव जीवन सामाजिक जीवन है । उसका विकास उन्नति, प्रगति, सफलता का अधिकांश भार समाज पर ही अवलम्बित है । समाज से दूर रहकर अपनी स्वतन्त्र सत्ता कायम करके जीवन क्षेत्र में सफलता एवं विकास पथ से दूर ही रहना पड़ेगा । सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन मनुष्य के लिए आवश्यक है उसके पैदा होने से मरने तक इससे विपरीत परिस्थिति में उसका जीवन विकास असम्भव है और मानव के सामाजिक जीवन में आवश्यकता इस बात की है कि वह झुकना सीखें । इन दोनों में केवल एक को ही अपनाया जावे तो भी व्यावहारिक जीवन में सफलता नहीं मिलती ।

अधिकांश परिवारों की स्थिति पर विचार किया जाय तो पता चलता है कि उनका संचालन प्राय: राजतन्त्र प्रणाली के आधार पर चलता है । परिवार में एक खास व्यक्ति जो कुछ करना चाहता है, वही किया जाता है । अन्य लोगों की भावनाओं एवं विचारों को कुचलकर उन्हें भी उसी के लिए बाध्य किया जाता है । ऐसी परिस्थिति में या तो मुख्य व्यक्ति ऐसा हो जो आदर्श, जीवननिष्ठ एवं समान दृष्टि का हो जिसका प्रत्येक कार्य, विचार सबके लिए समान रूप से हितकर सिद्ध हो और किसी दूसरे के स्वाभाविक अधिकारों को क्षति न पहुँचे तथा उसका निर्णय सर्वमान्य हो । किन्तु ऐसे व्यक्ति बिरले ही होते हैं । जनसाधारण में ऐसा होना सम्भव नहीं है । फलस्वरूप हमारी पारिवारिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न होती जा रही है । परिवार का प्रत्येक सदस्य अपनी खिचड़ी अलग पकाना चाहता है । परिवार के राजतन्त्रीय बन्धन का उसकी भावनाओं और दृष्टिकोणों पर अनावश्यक हस्तक्षेप उसे स्वीकार नहीं है । परिणामस्वरूप एक दूसरे में घृणा और संघर्ष पैदा हो जाता है और परिवार विभाजित हो जाते हैं । ऐसी परिस्थिति में यदि एक-दूसरे के प्रति झुका जाय तो सारी विग्रहता पृथकत्व, दूषित भावनाएँ, परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, शान्त हो सकती हैं और पारिवारिक जीवन सुख-शान्ति, सहयोगपूर्ण बन सकता है ।

आज विज्ञान के युग में सामाजिक जीवन में मनुष्य एक-दूसरे से कितना निकट आता जा रहा है ? तरह-तरह के दल, सभी संगठन, सम्प्रदाय चल रहे हैं । सभी परस्पर संगठन एकता पर जोर देते हैं । लम्बे-लम्बे भाषण देते हैं । किन्तु जरा उनके अन्तरंग में प्रवेश करके देखिये वहाँ भी वही स्थिति मिलेगी जिस का हम ऊपर वर्णन कर आये हैं । प्रत्येक सदस्य एक-दूसरे से सकपकाया हुआ, छेड़ा हुआ सा उद्विग्न हालत में अपनी खिचड़ी अलग पकाने के व्यापार में नजर आयेगा । यह स्थिति अधिकांश समाज, संगठन, दल, सम्प्रदाय आदि में आपको मिलेगी क्योंकि लोगों में झुकने की प्रवृत्ति न होकर परस्पर अपने विचार, अपनापन थोपने की आदत बढ़ती जा रही है । जिसमें दूसरों का अस्तित्व, दृष्टिकोण व व्यक्तित्व की उपेक्षा की जाती है ।

अन्तर्राष्ट्रीय विषम परिस्थिति का प्रधान कारण यही है । परस्पर प्रतिद्वन्द्विता, होड़ चल रही है । कोई भी अपने आपको छोटा मानने अथवा झुकने के लिए तैयार नहीं । अत: इस आधार पर बढ़ता हुआ विश्व विनाश की ओर ही अग्रसर हो रहा है । सभी की यही इच्छा रहती है कि एक से एक संहारक अस्त्र-शस्त्र सामग्री तैयार की जाय ताकि दूसरे को झुका दिया जाय और स्वयं को न झुकना पड़े ।

अत: स्वयं न झुककर जबरन दूसरों को झुकाने की, अपने ही विचार, दृष्टिकोण की पुष्टि और अपने अस्तित्व के समक्ष दूसरे के अस्तित्व को नगण्य समझकर उसको क्रिया रूप में लाना ही आज के पारिवारिक, सामाजिक, अन्तर्राष्ट्रीय जीवन की अशांति, असुरक्षा, हानि, विनाश का कारण बने हुए हैं । यदि यह प्रवृत्ति दिनोंदिन इसी प्रकार बढ़ती रही तो मानव जाति को इस भयंकर परिस्थिति का सामना करना पड़ेगा जब भाई-भाई में, बाप बेटे में, पति-पत्नी में, सम्प्रदाय-सम्प्रदाय में, राष्ट्र-राष्ट्र में संहार चक्र घूमेगा और मानवता को भारी क्षति पहुँचेगी ।

इस प्रकार संसार का प्रत्येक मनुष्य यह सोच ले कि परस्पर दूसरों के झुकने में कोई अपमान की बात नहीं है और दूसरों को उनकी भूल पर झुका देने में कोई गर्व की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बात नहीं है वरन् समाज व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाये रखने के लिए आवश्यक है तो बहुत सी समस्याएँ, परस्पर तनाव, होड़, विनाश आदि स्वतः शान्त हो जाएँ और मानव का भविष्य सुखमय, विकासमय, सफलतामय बन जाय ।

आज प्रजातन्त्र का युग है वैसे भी प्रत्येक व्यक्ति में स्वयं का आत्मगौरव, स्वाभिमान स्वयं की कुछ न कुछ सत्ता होती है अतः बलपूर्वक अपने विचार व्यवहार दृष्टिकोण को दूसरों पर थोपने की चेष्टा मत कीजिए । उनकी उपेक्षा मत कीजिए । यदि वे गलती भी करते हैं तो उसके लिए अपने विशाल हृदय में समा लीजिए । दूसरों के लिए अपने को झुकाने की प्रवृत्ति पैदा कीजिए । इसके लिए अपने आपको छोटा मान लेना कोई बुरी बात नहीं है इससे आप अपने कई सहयोगी, मित्र, संरक्षक, मार्गदर्शक प्राप्त कर सकेंगे । इतना ही नहीं आपकी इस वृत्ति से अनेक जिद्दी, हठधर्मी, अहंकारी व्यक्ति भी प्रेरणा लेकर सुधर जायेंगे । सफल जीवन का एक आधार यह भी है । इस अर्थ में झुकने की वृत्ति बड़े बनने की निशानी है । जो व्यक्ति जितना नमनशील होगा उतना ही बड़ा माना जायगा ।

पृथकता छोड़ें–सामूहिकता अपनायें

यह समस्त विश्व एक शरीर की तरह है । इसमें मनुष्य का स्थान एक उँगुली के बराबर समझा जा सकता है । उँगली का महत्व तभी तक है जब तक कि वह शरीर के साथ जुड़ी हुई है ।

असंख्य आत्माओं में जगमगाने वाली चेतना की ज्योति का केन्द्र एक ही है । पानी की प्रत्येक लहर पर एक अलग सूर्य चमकता है, पर वस्तुतः वह एक ही सूर्य की अनेक प्रतिच्छवियाँ हैं । समुद्र की हर लहर का अस्तित्व भिन्न दिखाई पड़ने पर भी वस्तुतः वे विशाल सागर की हिलोरें ही हैं । इस समस्त विश्व में केवल एक ही समष्टि आत्मा है–जिसे परमात्मा के नाम से पुकारते हैं । सबमें वही प्रतिभाषित हो रहा है । माला की मणियों के मध्य पिरोये हुए धागे की तरह पृथक दीखने वाले प्राणियों को परस्पर एक सूत्र में बाँधे हुए है ।

इस बन्धन में बँधे रहना ही श्रेयस्कर है । समग्र का परित्याग कर जब हम पृथक होते हैं, अपने अहंकार की पूर्ति के लिये अपना वर्चस्व प्रकट करने और अलग रहकर अधिक सुविधा प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं तब हम भारी भूल करते हैं । पाते कुछ नहीं खोते बहुत हैं । समग्रता के वैभव से लाभान्वित होने की सुविधा खो बैठते हैं और एकाकीपन के साथ मिलने वाली तुच्छता–हर दृष्टि से अपर्याप्त सिद्ध होती है ।

अँगुली हाथ से अलग कटकर रहने की तैयारी करते समय यह सोचती है कि मैं क्यों सारे दिन हाथ का आदाब बजाऊँ ? क्यों उसके इशारे पर नाचूँ ? इसमें मेरा क्या लाभ ? मेरे परिश्रम और वर्चस्व का लाभ मुझे क्यों न मिले ? यह अलग रहकर ही हो सकता है । इसलिए अलग ही रहना चाहिए । अपने श्रम और उपार्जन का लाभ स्वयं ही उठाना चाहिए । यह सोचकर हाथ से कटकर अलग रहने वाली उँगली कुछ ही समय में देखती है कि उसका अनुमान गलत था । शरीर के साथ जुड़े रहने पर उसे जो जीवनदाता रक्त मिलता था वह मिलना बन्द हो गया । उसके अभाव में वह सूख कर सड़ गई । उस सड़े टुकड़े को छूने में भी लोगों ने परहेज किया जब कि हाथ में साथ जुड़े रहने पर वह भगवान का पूजन करती थी । हाथ मिलाते समय बड़ों के स्पर्श का आनन्द लेती थी । महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखती थी । बड़े काम करने का श्रेय प्राप्त करती थी । पृथक होने के साथ-साथ वह सारी सुविधाएँ भी समाप्त हो गईं । अँगुली नफे में नहीं घाटे में रही ।

फूल का अपना अलग भी महत्व है पर वह नहीं जो माला में गुँथे रहने पर होता है । एकाकी फूल किसी महापुरुष या देवता के गले में नहीं लिपट सकता । यह आकांक्षा तो सूत्रात्मा को आत्मसमर्पण कर माला में गुँथने के बाद ही पूरी हो सकती है । व्यक्तिवादी, एकाकी स्वार्थी, संकीर्ण मनुष्य समूहगत चेतना से अपने को अलग रखने की सोच सकता है । अपने ही लाभ में निमग्न रह सकता है । दूसरों की उपेक्षा कर सकता है–उन्हें क्षति पहुँचा सकता है और इस प्रकार अपने उपार्जन को शोषणात्मक उपलब्धियों को अपने लिए अधिक मात्रा में संग्रह कर सकता है । पर अन्ततः यह दृष्टिकोण अदूरदर्शितापूर्ण सिद्ध होता है । पृथकता के साथ जुड़ी हुई दुर्बलता उसे उन सब लाभों से वंचित कर देती है, जो समूह का अंग बनकर रहने से ही मिल सकते थे ।

समुद्र की हर लहर अपना सरंजाम अलग खड़ा करे तो वे तनिक से जल के रूप में बिखर जायेंगी और ज्वार-भाटे के समय उनका जो गौरव देखकर लोग आश्चर्यचकित रह जाते थे उससे उन्हें वंचित ही रहना पड़ेगा । नौकाओं को पलट देने की शक्ति, गरजती हुई ध्वनि फिर उनमें कहाँ रहेगी ? किसी गढ्ढे में पड़ी सूख जायेंगी । अपने स्वरूप को भी स्थिर न रख सकेंगी । सूखने के बाद उनका अस्तित्व, उनकी सरसता की चर्चा का अस्तित्व भी मिटा देगा । वहाँ सूखा नमक भर श्मशान की राख की तरह पड़ा होगा ? लहरें समुद्र से पृथक अपने अस्तित्व का स्वतंत्र निर्माण करने की-एषणा महत्वाकांक्षा के आवेश में भटकने का ही उपक्रम करती हैं । लाभ के लोभ में घाटा ही वरण करती हैं ।

ईंटों के समन्वय से भवन बनते हैं । बूँदों के मिश्रण से बादल बनते हैं । परमाणुओं का सहयोग पदार्थ की रचना करता है । अवयवों का संगठित स्वरूप शरीर है । पुर्जों की घनिष्टता मशीन के रूप में परिणत होती है । पंचतत्वों से मिलकर यह विश्व सृजा है । पंच प्राण इस काया को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवित रख रहे हैं । दलबद्ध योद्धा ही समर्थ सेना है । कर्मचारियों का गठित समूह ही सरकार चलाता है । यदि इन संघटकों में पृथकतावादी प्रवृत्ति पनपे और डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग-अलग पकने लगे तो जो कुछ महान दिखाई पड़ता है तुच्छ में बदल जायगा ।

तुच्छता अपना अस्तित्व तक बनाये रख सकने में असमर्थ है । प्रगति भी पारस्परिक सहयोग पर निर्भर है । दूसरों को पीछे छोड़कर एकाकी आगे बढ़ जाने की बात सोचने वाले उन संकटों से अपरिचित रहते हैं जो एकाकी के अस्तित्व को ही संकट में डाल सकते हैं अँगुली हाथ से कटकर अलग से अपने बलबूते पर प्रगति करने की कल्पना भर कर सकती है । व्यावहारिक क्षेत्र में उतरने पर कड़ुई सचाई सामने आती है कि पृथकता लाभदायक दीखती भर है वस्तुतः लाभदायक तो सामूहिकता ही है ।

एक ही आत्मा सब में समाया हुआ है । इस तथ्य को गम्भीरतापूर्वक समझना चाहिए और एक ही सूर्य की असंख्य लहरों पर चमकने के पीछे सन्निहित वस्तुस्थिति पर ध्यान देना चाहिए । हम सब परस्पर सघनतापूर्वक एक-दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं । मानवीय प्रगति का गौरवशाली इतिहास उसकी समूहवादी प्रवृत्ति का ही सत्परिणाम है । बुद्धि का विकास भी सामूहिक चेतना के फलस्वरूप ही सम्भव हुआ है । बुद्धि ने सामूहिकता विकसित नहीं की, सहयोग की वृत्ति ने बुद्धि का विकास संभव किया है ।

हमें समूह का एक अंग होकर रहना चाहिए । अपने को समाज का एक घटक अनुभव करना चाहिए । प्रगति एकाकी नहीं हो सकती । सुविधाओं का उपभोग एकाकी किया जाय तो उससे अगणित विकृतियाँ उत्पन्न होंगी । बाहर ईर्ष्या, द्वेष बढ़ेगा, आक्रमणकारी बढ़ेंगे और व्यसनों की भरमार आ धमकेगी । अन्तर का चोर जैसी आत्मग्लानि खाने लगेगी और परिवार में आपा-धापी पैदा होगी । व्यक्तिगत बड़प्पन के प्रयत्नों को ही तो 'स्वार्थ' कहा जाता है । स्वार्थी सम्मान नहीं तिरस्कार प्राप्त करता है । उस मार्ग पर चलते हुए उत्थान नहीं पतन ही हाथ लगता है । संकीर्णता की परिधि में आबद्ध पोखर का जल सड़ेगा और सूखेगा ही । स्वच्छता और सजीवता तो प्रवाह के साथ जुड़ी हुई है । बहता हुआ जल ही सराहा जाता रहा है ।

हम पृथकतावादी न बनें । व्यक्तिगत बड़प्पन के फेर में न पड़ें । अपनी अलग से प्रतिभा चमकाने का झंझट मोल न लें । समूह के अंग बनकर रहें । सबकी उन्नति में अपनी उन्नति देखें और सबके सुख में अपना सुख खोजें । यह मानकर चलें कि उपलब्ध प्रतिभा, सम्पदा एवं गरिमा समाज का अनुदान है और उसका श्रेष्ठतम उपयोग समाज को सज्जनतापूर्वक लौटा देने में ही है ।

समुद्र बादलों को देता है । बादल जमीन को देता है- जमीन नदियों के द्वारा उस जल को पुनः समुद्र में पहुँचा देती है । यही क्रम विश्व की स्थिरता और हरितिमा शांति और शीतलता का आधार है । हम अपने को विस्तृत करें । सबको अपने में और अपने को सब में देखें । आत्माओं में चमकती हुई परमात्मा की सत्ता को समझें । यदि ऐसा कर सके तो हमें व्यक्तिवाद की तुच्छता छोड़कर समूहवाद की महानता ही वरण करनी पड़ेगी ।

सम्मिलित रहें या अलग हो जाएँ ?

आज व्यक्तिवाद के स्थान पर समूहवाद को अधिक उपयोगी स्वीकार किया जा रहा है । विज्ञान ने भी ऐसे साधन उपलब्ध करा दिये हैं कि दुनिया सिमटकर छोटी-सी होती जा रही है । राज्य मिट गये उनका स्थान राष्ट्रों ने ले लिया, राष्ट्रों के सम्बन्ध-सूत्र भी एक दूसरे से इतने घनिष्ट हो रहे हैं कि एक देश की घटना का प्रभाव दूसरे देशों पर पड़े बिना नहीं रह सकता । अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को सुधरा बनाये रखने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्था अस्तित्व में आये बरसों हो गये हैं । विश्वराष्ट्र और विश्वसमाज का विचार भी अब कल्पना मात्र नहीं रह गया है । पूरी पृथ्वी, पूरी मानव-जाति एक बड़े परिवार के रूप में निकट आती जा रही है । यह हर्ष की बात है पर हैरानी होती है और साथ ही दुःख भी कि परिवार संस्था टूटती जा रही है ।

हमारे देश में प्राचीनकाल से संयुक्त परिवार प्रथा चली आ रही है । इसके अनेकों लाभ रहे हैं और अब भी जहाँ संयुक्त परिवार हैं, उनके लाभों को देखते हुए यही कहना पड़ेगा कि ओछे स्वार्थ, अपने उपार्जन का स्वयं ही लाभ उठाने की दृष्टि से जो नवदम्पत्ति अलग परिवार बनाने की बात सोचते हैं वे गलती करते हैं । जिन नवदम्पत्तियों ने अलग परिवार बसा लिया विचारपूर्वक उनकी स्थिति को देखा परखा जाय तो उनकी मूढ़ता पर तरस ही आयेगा ।

बाहर गाँव या अपने परिवार से दूर नौकरीपेशा लोगों की बात और है । ऐसे परिवार मुश्किल से १० प्रतिशत होंगे । पर शेष ९० प्रतिशत दम्पत्ति में से जो अपने माता-पिता से अलग होने की बात सोचते हैं उसका कारण इतना मात्र है कि वे सोचते हैं हम जो कमाते हैं उसका लाभ भी हमें ही उठाना चाहिए । परिवार के दूसरे सदस्यों का उस पर क्या अधिकार ?

यह धारणा उन्हें घाटे में ही रखती है । यह एक मान्य तथ्य है कि मनुष्य जाति ने अद्यावधि जो विकास किया है उसका कारण प्रत्येक व्यक्ति के अलग-अलग प्रयास नहीं, सहयोग और सामूहिकता की भावना ही है । सभ्यता के आरम्भ में मनुष्यों ने एक दूसरे को सहयोग देना आरम्भ किया, अपनी शक्तियों को एक सूत्र में मिलाया तो वह न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

केवल अपनी सुरक्षा की ओर से निश्चिन्त हो गये वरन् उन्होंने अपना विकास भी आरम्भ कर दिया । अन्यथा वन में रहने वाले हिंसक पशुओं से अपनी रक्षा कर पाना मनुष्य के विकास की एक बहुत बड़ी रुकावट बनी हुई थी ।

यह रुकावट जैसे ही दूर हुई और एकता की शक्ति उद्‌भूत हुई मनुष्य की विकास यात्रा आरम्भ हो गयी । उस पिता की कहानी सर्वविदित है जिसने मरते वक्त अपने पाँच लड़कों को उन्नति और आत्मरक्षा की शिक्षा देते हुए एक-एक लकड़ी का टुकड़ा दिया था । पहले पाँचों टुकड़ों को एक में बाँधकर अलग-अलग बेटों से उस गठ्ठर को तोड़ने के लिए कहा था । गठ्ठर को कोई बेटा न तोड़ सका । गठ्ठर को खुलवाकर जब सब को अलग-अलग लकड़ियाँ दी गईं और तोड़ने के लिए कहा गया तो वे आसानी से टूट गयीं ।

उन्नति के लिए उसके मार्ग में आने वाली बाधाओं को हटाते चलना ही अत्यावश्यक है और एकाकी व्यक्ति हो अथवा परिवार उन बाधाओं को दूर करने में प्राय: असमर्थ ही रहते हैं । उदाहरण के लिए केवल दम्पत्ति रह रहे हों और उन दोनों में से किसी का स्वास्थ्य खराब हो जाय, तो परिचर्या से लेकर घरेलू काम-काज और जीविकोपार्जन तक में व्यवधान आ जाते हैं । सम्मलित परिवार हो तो एकाध सदस्य की रुग्ण स्थिति परिवार की गाड़ी को चलने से रोक नहीं पाती ।

वर्तमान युग में सर्वत्र समूहवाद पनप रहा है । बड़ी-बड़ी फर्में, कम्पनियाँ, फैक्ट्रियाँ और संस्थायें जो दिन-दूनी और रात चौगुनी प्रगति कर रही हैं उनके मूल में पारस्परिक सहयोग, सद्‌भाव, एकता व संगठन ही है । विद्युत, अग्नि, वाष्प और पानी की तरह जनशक्ति भी एक होकर अभिवृद्धि को प्राप्त होती है । इन शक्तियों का अनुपात एक और एक दो का है तो जनशक्ति की अभिवृद्धि का अनुपात एक और एक मिलकर ग्यारह की उक्ति चरितार्थ करता है ।

लेकिन स्वार्थ और संकीर्णता का पर्दा जिन आँखों पर पड़ा रहता है उन्हें इससे होने वाले लाभ भी नहीं दिखाई देते और न हानियाँ ही दीख पड़ती हैं । परन्तु इससे इन दोनों क्षतियों से वंचित तो नहीं रहा जा सकता । अलग-अलग काम, अलग-अलग किये जायँ तो उनसे शक्ति का अपव्यय ही होता है । उदाहरण के लिए, पाँच व्यक्तियों का भोजन एक व्यक्ति आसानी से बना सकता । अब पाँचों के लिए अलग-अलग भोजन बनाने का प्रबन्ध पाँच व्यक्तियों की शक्ति को फिजूल नहीं तो क्या करेगा ? विघटित परिवारों में ठीक यही होता है ।

यह तो हुआ सामाजिक पक्ष । संयुक्त परिवार को नकारने, अलग परिवार बसाने की हठवादिता ने जो थोड़ा बहुत 'कम्यून' सरीखा लाभ मिल सकता था वह तो नष्ट-भ्रष्ट कर ही दिया है । पारिवारिक सन्दर्भ में आर्थिक दृष्टि से भी अलग परिवार बसाना कोई लाभ का सौदा नहीं है । अलग-अलग रहने पर यह तो निश्चित है कि अलग-अलग चूल्हे जलेंगे, भोजन, निवास, शिक्षा आदि का भी अलग-अलग प्रबन्ध करना पड़ेगा । चार भाई यदि परस्पर स्नेह का विकास करें तो चार मकानों के स्थान पर एक मकान से ही चला सकते हैं । चार मकान, चार फर्श, चार फर्नीचर, अलग-अलग सजावट का सामान आदि के अलग-अलग खर्चों में बहुत कुछ बचाया जा सकता है ।

न केवल 'आर्थिक दृष्टि से लाभदायक' है । संयुक्त परिवार वरन् मानसिक दृष्टि से भी संयुक्त परिवार के अगणित लाभ हैं । व्यक्ति अकेला रहे, उसे जंगल में छोड़ दिया जाय तो न उसमें सामाजिकता का भाव आयेगा न सभ्यता सीख सकेगा । अकेलेपन से आगे बढ़कर दो व्यक्तियों का साथ उससे कम, पर असामाजिकता और असहिष्णुता तो लाता ही है । सम्मिलित परिवार में अधिक सदस्यों के बीच रहने से बच्चों में सामूहिकता और सहिष्णुता का विकास आसानी से होने लगता है और यह सामाजिकता के विकास का अत्यन्त-लाभदायक पक्ष है । परिजनों के बीच रहने से मनोरंजन तो होता है, चित्त भी नहीं ऊबता और तबीयत भी लगी रहती है ।

सम्मिलित परिवार की तुलना एक ऐसे थाल से की जा सकती है जिसमें बच्चों की मीठी तोतली बोली, माँ का सुखद वात्सल्य, भाई-बहनों का सौहार्द्र, पत्नी का प्रेम, सबका सहयोग और कष्ट के समय उत्साहपूर्ण सेवा जैसे विविध व्यंजन रहते हैं । अब उन्हें कोई खाना न चाहे तो यह बात अलग है ।

सम्मिलित रहें, अलग घर बसाने की न सोचें

आधुनिक दर्शनशास्त्र के प्रणेता और प्रतिनिधि विद्वानों में से कइयों का मत है कि सृष्टि का विकास द्वन्द्व से हुआ है । कमजोर प्राणियों को दबाकर शक्तिशाली प्राणी अपना वर्चस्व कायम रखते हैं और कमजोर प्राणियों का अस्तित्व धीरे-धीरे क्षीण होते हुए लुप्त हो जाता है । इसके विपरीत दूसरे विचारकों का कथन है कि सृष्टि का विकास आपसी सहयोग के आधार पर हुआ है । इस प्रतिपादन की पुष्टि के लिए जो तर्क दिये जाते हैं, वे तथ्यपूर्ण भी प्रतीत होते हैं । जैसे-चींटी इस सृष्टि की सबसे कमजोर इकाई है, उससे कमजोर जीव-जन्तु भी हो सकते हैं । यदि प्रकृति शक्तिशाली को ही जीने का अधिकार देती तो इन क्षुद्र जीव-जन्तुओं का अस्तित्व कभी का लोप हो गया होता ।

कौन सा मत सही है और कौन सा गलत इस विवाद की चर्चा करना यहाँ अभीष्ट नहीं है । इसकी चर्चा केवल इसलिए की जा रही है कि मनुष्य समाज में सभी स्तर के व्यक्ति रहते हैं-कमजोर भी और शक्तिशाली भी । सभी अपने-अपने ढंग से जीते हैं और जीवन सुविधाओं का अधिकारपूर्ण लाभ उठाते हैं । यदि शक्तिशाली, बुद्धिमान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

और मेधावान व्यक्तियों की गणना की जाय तो उनकी संख्या थोड़ी सी ही होगी । इसके उपरान्त भी मनुष्य समाज ने निरन्तर प्रगति की है और जो स्थिति कल थी आज उससे बेहतर स्थिति प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की है । यह प्रगति और सफलता केवल आपसी सहयोग के द्वारा ही सम्भव हो सकी है । सभ्यता के आरम्भ में जब तक मनुष्यों ने एक-दूसरे से सहयोग करना नहीं सीखा था तब तक हम आदिम युग में ही जीते रहे, परन्तु जैसे-जैसे एक-दूसरे का सहयोग लेना आरम्भ हुआ सभ्यता की विकास यात्रा आरम्भ हुई है ।

वर्तमान में मनुष्य की सभ्यता को जिस उज्ज्वल स्थिति में देखा जाता है उसका मूल सहयोग ही है । इसी के आधार पर एकता का बल, संगठन की शक्ति, मैत्री भावना और परस्पर अवलम्बन की नींव पड़ी । आरम्भ में भी जो दूसरे प्राणी मनुष्य से अधिक शक्तिशाली थे, शारीरिक दृष्टि से मनुष्य की अपेक्षा कहीं अधिक सक्षम थे इसी सहयोग और संगठन के अभाव में जहाँ के तहाँ अविकसित पड़े रहे । उनकी शक्तियाँ विशृंखलित, विघटित और असंगठित ही रहीं ।

यही नियम परिवारों पर भी लागू होता है । परिवार समाज और व्यक्ति के बीच की एक कड़ी है । यह भी कहा जा सकता है कि समाज और व्यक्ति के निर्माण केन्द्र है । परिवार में जैसा वातावरण होगा, व्यक्ति की मनोभूमि पर, उसके स्वभाव पर वैसा प्रभाव पड़ेगा और जैसे परिवार होंगे उसकी प्रतिक्रिया समाज पर भी अनिवार्य रूप से होगी । परिवार की स्थिति का समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है-यह बाद की बात है । प्रथम विचारणीय तो यही है कि उन परिवारों की कैसी बुरी दुर्दशा होती है जिनमें सहयोग, सद्भाव, आत्मीयता और संगठन का अभाव रहता है । इसके विपरीत जिन परिवारों में सहयोग, संगठन, एकता और पारिवारिक सद्भाव बना रहता है वह दिनों-दिन उन्नति करता चला जाता है । परिवारोत्तर संस्थाएँ भी संगठन के बल पर ही उन्नति करती और सफल होती हैं । बड़ी कम्पनियों, फर्मों, संस्थाओं और व्यापारिक प्रतिष्ठिनों का यदि निरीक्षण करें तो उनकी सफलता के मूल में कर्मचारियों का आपसी तालमेल, संगठित व्यवस्था ही कारणरूप में विद्यमान मिलेगी ।

संयुक्त परिवारों में सुख-शान्ति और सुव्यवस्था की सम्भावना अधिक इसीलिए रहती है कि वहाँ सदस्यों में पारस्परिक सहयोग का सम्बन्ध बना रहता है । परिवार की जिम्मेदारियों को सभी सदस्य थोड़ा-थोड़ा करके निभाते चलते हैं और किसी पर असह्य भार नहीं आ पाता । विघटित परिवारों में सभी उत्तरदायित्वों का भार पति-पत्नी पर ही रहता है । किसी निकटवर्ती स्वजन का सामीप्य न मिलने के कारण हारी-बीमारी में जो परेशानियाँ आती हैं उनकी चक्की में भी उन्हें ही पिसना पड़ता है । संयुक्त परिवारों में ऐसी अवाँछित स्थितियों के कारण उत्पन्न हुई कठिनाइयाँ भी हँसी खेल की तरह सह ली जाती हैं ।

यह भी एक तथ्य है कि अलग-अलग कोई प्रयत्न किये जायँ तो उनमें मिलने वाली सफलता महँगी ही पड़ती है । एक छोटा सा उदाहरण ही देखें । प्रायः प्रत्येक परिवार में खाना पकने, बर्तन साफ करने और बच्चों की देखभाल करने के लिए गृहणी को अपना सारा समय लगाना पड़ता है । इस प्रकार आधी जनसंख्या शेष आधी जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यवस्था करने में ही जुटी रहती है । लेकिन रूस, चीन और अन्य साम्यवादी देशों में सामूहिक व्यवस्था के जो प्रयोग किये गये हैं उनसे एक बड़ी जनशक्ति का समय और श्रम नष्ट होने से बचाया जा सका है । सहकारिता के जो प्रयोग इन दिनों चल रहे हैं उनसे भी यही निष्कर्ष निकल रहे हैं कि अलग-अलग कार्य करने, छोटी-छोटी व्यक्तिगत इकाइयाँ बनाने के स्थान पर सामूहिक व्यवस्था कई गुना लाभदायक है । सहकारी खेती, सहकारी उद्योग, सम्मिलित व्यापार, सहकारी संस्थाएँ और सामूहिक क्षेत्रों की व्यवस्था जहाँ कहीं भी ठीक ढंग से की जा सकी हैं वहाँ उन्हें चमत्कृत कर देने वाली सफलता मिली है ।

अपने समाज में-संयुक्त परिवारों के रूप में यह व्यवस्था परम्परागत ढंग से पहले ही विद्यमान है । किन्हीं कारणों से उनमें विकृतियाँ आ गयी होंगी । उनका संशोधन असम्भव नहीं है और न ही उसकी कोई बहुत बुरी प्रतिक्रिया दिखाई देती है । परम्परागत भारतीय परिवारों में उनके सदस्यों के बीच मतभेद होते हुए भी बड़े मजे से निर्वाह होता है । अनर्थ यह हो रहा है कि आधुनिक सभ्यता के प्रभाव से अथवा बढ़ती हुई स्वार्थपरता के कारण संयुक्त परिवार टूट रहे हैं ।

मनमानी करने की छूट नहीं मिलती और अन्य सदस्यों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए अपनी जरूरतों को सीमित रखना पड़ता है-इतनी भर असुविधा या तकलीफ संयुक्त परिवारों में होती है । यद्यपि आत्म विकास की दृष्टि से ये भी महान गुण हैं । परन्तु इन्हें असुविधा ही मान लिया जाय तो भी संयुक्त परिवारों में हर तरह से लाभ ही लाभ और सुविधा ही सुविधा है । ये असुविधाएँ या अड़चनें भी स्वयं केन्द्रित मनोवृत्ति में ही होती हैं, बदले में सहयोग, सद्भाव, सुरक्षा और स्नेह-सौजन्य के जो अजस्र वरदान मिलते रहते हैं वे इस मूल्य पर बहुत सस्ते ही सिद्ध होते हैं । उदाहरण के लिए, सबके साथ रहने की उल्लासपूर्ण परिस्थितियों को ही लें । मनुष्य का स्वभाव है कि एकान्त में रहना उसे पसन्द नहीं आता । अन्य व्यक्तियों के बीच रहने पर उसे उल्लास की अनुभूति होती है और उसकी चिन्ताएँ मानसिक व्यथायें कम होने लगती हैं । अनजाने और अचीन्हे लोगों के बीच पहुँच कर भी अपनी चिन्ताएँ कम होने लगती हैं । फिर संयुक्त परिवारों में तो सब अपने ही आत्मीय, स्वजन और स्नेह लुटाने वाले घनिष्ट परिजन रहते हैं । उनके सान्निध्य में तबीयत लगी रहती है, चित्त प्रफुल्लित रहता है । बच्चों की मीठी तुतलाहट भरी बातें, उनसे मिलने वाली श्रद्धा और सम्मान,

माँ का सुखद वात्सल्य, भाई-बहिनों का सौहार्द्र, पत्नी का प्रेम, सबका सहयोग कष्ट के समय उपलब्ध सुश्रूषा-जैसे विविध रुचिकर भावों का सजा सजाया थाल सामने रहता है, जिसका आस्वादन करते हुए हर घड़ी आनन्द और उल्लास की रसासिक्त मनःस्थिति बनी रहती है ।

पत्नी के उकसाने पर ही अथवा अपना कोई पूर्वाग्रह किसी भी कारण से जो युवक दम्पत्ति परिवार के साथ सम्बन्ध विच्छेद कर लेते हैं उन्हें इस रसास्वादन से वंचित ही रह जाना पड़ता है । इन सुखद परिणामों के अतिरिक्त आपत्ति से सुरक्षा की गारण्टी भी एक ऐसी उपलब्धि है जिसे किसी भी मूल्य पर प्राप्त नहीं किया जा सकता । सम्मिलित परिवार में उसके सदस्यों को आपत्ति से सुरक्षा की गारण्टी सहज ही मिली रहती है । कभी कोई सदस्य बीमार पड़ जाता है तो इतने अधिक व्यक्ति सेवा सुश्रूषा के लिए प्रस्तुत रहते हैं और रुग्ण व्यक्ति को हाथों हाथ लेते हैं । वृद्धावस्था आराम से कट जाने का सन्तोष रहता है । अपाहिज या अशक्त हो जाने पर भी इस आश्रय का विश्वास रहता है । मृत्यु हो जाने पर स्त्री-बच्चों का पालन-पोषण हो जाने की निश्चिन्तता रहती है । पश्चिमी देशों में और अपने यहाँ भी जहाँ पृथक् परिवार हैं विधवा स्त्रियों का जीवन बड़ा कष्टकर रहता है, उन्हें स्वयं घर के बाहर भटकते रहना पड़ता है अथवा दूसरों का मोहताज बनना पड़ता है, जबकि संयुक्त परिवारों में उसके निर्वाह की समुचित व्यवस्था के आधार उपलब्ध रहते हैं ।

इसका अर्थ यह नहीं है कि संयुक्त परिवार सब तरह से आदर्श हैं अथवा जहाँ भी संयुक्त परिबार हैं, वहाँ सुनिश्चित रूप से सुख-शान्ति विद्यमान है । यह एक सुनिश्चित सत्य है कि व्यवस्था कोई भी क्यों न हो, जब तक पूर्णतया, निर्दोष और सुलझी हुई नहीं होगी उसके सत्परिणाम प्राप्त नहीं किये जा सकते । संयुक्त परिवारों के साथ भी यही बात लागू होती है । उस परम्परा का निर्वाह करते हुए भी उसके व्यावहारिक पहलू को उपेक्षित ही किया जाता रहा तो अनेकानेक विकृतियाँ स्वाभाविक ही उत्पन्न होंगी और उसके घटक विघटन की बात सोचने लगेंगे ।

संयुक्त परिवार एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें लौकिक लाभों के साथ-साथ आत्मिक हित भी सधते चलते हैं । इस व्यवस्था से होने वाले बहुपक्षीय स्थूल लाभों के अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि उसके सदस्य अपने ही स्वार्थ को पूरा करते रहने की बात न सोचते रहें, वरन् उसके मूलभूत आदर्शों का ही निर्वाह करें । तभी संयुक्त परिवारों की स्थिति सुखद और उनका वातावरण उल्लासपूर्ण बन सकेगा । इस सम्बन्ध में यह मानकर चला जाना चाहिए कि संयुक्त परिवारों का प्रचलन जिस किसी भी युग में हुआ होगा तब उस प्रयोगशाला में उच्च आध्यात्मिक गुणों के विकास को ही मुख्य महत्व दिया गया होगा । इसके बिना तो संयुक्त परिवार सुव्यवस्थित रूप से चल पाना जरा भी सम्भव नहीं है ।

इस यथार्थपरक दृष्टिकोण को जहाँ भी अपनाया जायगा-वहीं इस व्यवस्था के बहुपक्षीय लाभों के साथ-साथ अपना आत्मिक विकास भी होता चलेगा । कहा जा सकता है-कहीं और निर्जन या एकान्त में की गयी आत्मिक साधनाओं से अधिक वह साधना सहज होगी । क्योंकि संयुक्त परिवार में रहते हुए कर्त्तव्यनिष्ठा, संयम, त्याग, निःस्वार्थ भाव और सेवा परायणता जैसे सद्गुणों का विकास करने की स्थितियाँ भी अनायास और सहज ही मिलने लगती हैं । माता-पिता, बड़े भाई, सास-ननद, जिठानी, देवरानी आदि के प्रति अपने कर्त्तव्यों को बड़ी सरसता और जिम्मेदारी के साथ परिवार में रहकर ही निभाया जा सकता है । बड़ों का सत्कार, उनकी सेवा तभी सम्भव है-जबकि हम उनके साथ रहें और बड़े भी अपने अनुभवों का लाभ उसी दशा में दे पाते हैं । अतः परिवार को अपना धर्मक्षेत्र-साधनक्षेत्र मानकर उसमें रहते हुए परिवार के विभिन्न साधनों के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए ।

परिवार एक उद्यान है । उसमें विभिन्न प्रकार के छोटे-बड़े पौधे लगे होते हैं । उस उद्यान की शोभा सुषमा इसी में है कि इसमें लगे पेड़-पौधे कटने बिलगने न पायें । माना कि संयुक्त परिवारों में कई त्रुटियाँ अथवा विकृतियाँ आ गयी हैं । उसमें अनेकों बुराइयाँ भी हैं और आलोचना की भाषा में कहा जाय तो उसकी हानियाँ भी हैं, किन्तु वे त्रुटियाँ, बुराइयाँ और हानियाँ विघटित परिवारों में और ज्यादा बढ़ती-फैलती-फूलती रहती हैं । विवेक का तकाजा है कि जो बुराइयाँ आ गयी हैं उन्हें दूर किया जाय न कि उस कारण से इतनी सुन्दर व्यवस्था को चौपट ही कर दिया जाय । गुलाब के पौधे में काँटे भी होते हैं परन्तु लोग उसके फूल ही चुनते हैं, काँटों को छोड़ देते हैं । संयुक्त परिवारों में भी वैसी ही कठिनाइयाँ सम्भावित हैं, काँटे छोड़ कर फूल चुनने की समझदारी के समान उन कठिनाइयों से बचा जा सकता है ।

सम्मिलित रहें या पृथक् हो जायँ-जैसा प्रश्न जब भी-कभी उठे, तो अपना चिन्तन इसी प्रकार यथार्थ पर आधारित रखते हुए निर्धारित करना चाहिए । इस सम्बन्ध में किसी विचारक का यह प्रतिपादन बड़ा ही भाव भरा है-"जिन बड़ों ने एक बालक को गोदी में खिलाया है और एक युग तक उससे बड़ी-बड़ी आशाएँ रखी हैं, वह समर्थ होते ही केवल अपने सुख की व्यवस्था के लिए उनसे सम्बन्ध तोड़ लेता है । इससे बड़ी कृतघ्नता क्या होगी ?

मिल जुलकर रहें

भारतीय मनीषियों ने एक निश्चित, श्रेष्ठ और उच्च उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए परिवार संस्था का गठन किया । संस्कृति मनीषियों की दृष्टि से परिवार साधन है और उसका उद्देश्य है आत्मविकास, आत्मीकजीवन में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सतोगुण की परिपुष्टि, सुखी और समृद्ध जीवन । इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सेवा, कर्म और साधना का प्रयोग किया जाता रहा है । आत्मविकास शब्द का सामान्य अर्थ है अपनत्व की भावना का विस्तार, संकीर्णता और स्वार्थ भावना का निवारण जिससे कि यह भावना व्यापक बन सके । परिवार इस उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक ही होता है । इन श्रेष्ठ उद्देश्यों की प्राप्ति तभी सम्भव है जब इसे साधन की तरह मानकर इसका सावधानीपूर्वक उपयोग किया जाय ।

स्वाभाविक ही इस उद्देश्य के लिए परिवार के प्रत्येक सदस्य को सुयोग्य, बच्चों को सुशील, सुशिक्षित और अनुशासित बनाने की तत्परता बरती जाना आवश्यक है । प्रेम, सहानुभूति, संवेदना, अपनत्व, त्याग, उदारता, सेवा और सदाचरण की शिक्षा देना आवश्यक है । चूँकि परिवार का प्रत्येक सदस्य दूसरे को प्रभावित करता है, इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि किस तरह के उदाहरण अपने माध्यम से ही उपस्थित किये जाएँ और इस प्रक्रिया में, जब अपना उदाहरण प्रस्तुत कर अन्य सदस्यों को प्रेरित किया जाता है तो आत्मविकास का प्रयोजन स्वतः ही सरलता से पूरा होता चलता है । इसीलिए भारतीय समाज व्यवस्था के नियामकों ने गृहस्थ जीवन को सदैव तप एवं साधन कहा बताया गया ।

इसी तप साधना के प्रतिपादन क्रम में मनीषियों ने संयुक्त परिवार परम्परा का प्रचलन प्रवर्तन किया है । जिसमें केवल पति-पत्नी और उनके दो चार बच्चों की गणना ही नहीं की जाती वरन् माता-पिता, छोटे-बड़े भाई-बहन, चाचा-ताऊ तथा उसके स्त्री-पुत्रों का समावेश भी हो जाता है । आधुनिक सभ्यता के प्रभाव स्वरूप कई स्थानों पर यह परम्परा भले ही नष्ट होती जा रही हो और संयुक्त परिवार टूट रहे हों परन्तु जहाँ भी यह प्रचलन विद्यमान है, वहाँ इसके लाभ और सत्परिणाम अवश्य देखे जा सकते हैं ।

इस अतीव उपयोगी व्यवस्था का विरोध क्यों किया जाता है ? निश्चित ही इस परम्परा को अनावश्यक बोझ उबाऊ और प्रगति में अवरोधकारी बताने वाले व्यक्ति पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित होते हैं । मौज-मजे की दृष्टि से भले ही यह विघटन कुछ समय के लिए लाभप्रद दिखाई दे किन्तु यदि नैतिकता, उदारता, सहयोग, परोपकार आदि अन्य मानवीय गुणों की दृष्टि से विचार किया जाए तो निस्सन्देह संयुक्त परिवार की परम्परा ही श्रेष्ठ ठहरती है । क्योंकि उसमें मनुष्य की स्वार्थवृत्ति पर अंकुश लगता है तथा वह समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ सद्व्यवहार करने और उदारता बरतने के गुण सीखता है । दुःख तकलीफ के समय परिवार के लोगों द्वारा हर घड़ी सहायता के लिए प्रस्तुत रहना, एकता, संगठन और सामूहिक जीवन का अभ्यास आदि अन्य आत्मिक और मांगलिक लाभ तो अतिरिक्त हैं । इन विशेषताओं को नजर अन्दाज कर केवल व्यक्तिगत लाभ के लिये ही जहाँ अनेक प्रकार से अपना उपकार करने वाले माता-पिता, भाई-बहन तथा सगे सम्बन्धियों की सेवा-सहायता करने में आनाकानी की जाती हो वहाँ समस्त जाति या समाज की सेवा-सहायता और उपकार करने की प्रवृत्ति के विकास की आशा किस आधार पर की जा सकती है ?

कहा जा चुका है कि परिवार संस्था का उद्देश्य आत्म विकास है । अपने साथ रहने वाले सदस्यों का निर्माण और उनके व्यक्तित्व का विकास भी इस उद्देश्य में स्वतः ही समाहित हो जाता है । इसके लिए सतत अध्यवसाय अटूट प्रेम अहं के विसर्जन और आत्मभाव के निरन्तर अभिवर्धन की आवश्यकता होती है । संयुक्त परिवार की इस साधना के लिए सबसे उपयुक्त और उपयोगी व्यवस्था कहा जा सकता है । इसी में स्नेह, सद्भाव, सामूहिकता और सामाजिकता के सद्गुण विकसित होते हैं । पौराणिक उपाख्यानों में कई स्थानों पर यह तथ्य भलीभाँति उभरकर आया है कि आदर्श परिवारिक जीवन से ही सामाजिक विकास की प्रवृत्तियाँ विकसित होकर फलती-फूलती हैं ।

स्वार्थ बुद्धि से सोचने वाले कह सकते हैं कि हम क्यों सामाजिकता और सहकारिता के झमेले में फँसें ? व्यक्तिगत मौज मजे को ही क्यों न अपनाएँ ? यह तर्क विवेक को एक किनारे पर रखकर ही दिया जा सकता है । अन्यथा तथ्यों और अपने आसपास घटित होने वाली परिस्थितियों पर दृष्टिपात किया जाय तो यह धारणा चरमरा कर टूटने लगती है । भारतीय मनीषी ही नहीं अब पाश्चात्य विचारक भी अनेक प्रकार के प्रयोग परीक्षण कर चुकने के बाद यह स्वीकार करने लगे हैं कि मनुष्य की मूलप्रवृत्ति ही ऐसी है कि वह सामाजिक जीवन, सामूहिकता और सहकारिता के बिना संतुष्ट नहीं रह सकता । मनुष्य में विद्यमान यह सामाजिकता की भावना कभी नष्ट होगी, यह मानने का कोई कारण नहीं दिखाई देता । इस दृष्टि से संयुक्त परिवारों की अनावश्यकता, व्यर्थता सिद्ध करने वाले प्रतिपादन निराधार ही सिद्ध होते हैं ।

अलग परिवार बसाने की चेष्टा में यही दृष्टिकोण सामने रहता है कि सम्मिलित परिवार के बोझ, उत्तरदायित्व और नियंत्रण से छुटकारा पाया जाय तथा अधिक सुविधा से दिन काटने का अवसर प्राप्त हो सके । जोश-जोश में यह कदम उठा तो लिया जाता है पर इस अदूरदर्शितापूर्ण निर्णय का परिणाम जल्द ही कई तरह की असुविधाओं के रूप में सामने आता है और अपनी भूल पर पश्चात्ताप होने लगता है । बढ़ती हुई परिवारिक जिम्मेदारियाँ, प्रसव, हारी-बीमारी और बच्चों के पालन-पोषण जैसी मान्यताएँ उन्हें एकाकी जीवन की सीमाओं का बोध करा देती हैं । इन समस्याओं का समाधान खोजने के लिए परिवार के पास जाने में झिझक होती है इसलिए वे अन्य सहयोगी ढूँढ़ते फिरते हैं । जिस परिवार की उपेक्षा करके अलग थे, सहायता के लिए उन्हीं परिजनों के पास जाएँ तो क्या मुँह लेकर ? यह संकोच दुविधा में डाल देता है जबकि वास्तविक सहायता वहीं से मिल सकती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऐसे समय में स्थूल समस्याओं का समाधान भी अस्पतालों, प्रसूतिगृहों शिशुकेन्द्रों आदि के माध्यम से आंशिक रूप से निकल भी आता है किन्तु उस समय गहन आत्मीयता की जिस भावनात्मक पिपासा का उभार होता है । वह पारिवारिक वातावरण के अभाव में अतृप्त ही रह जाती है । इस मनोवैज्ञानिक व्यथा से क्या जवान और क्या बुजुर्ग सभी पीड़ा व करुणा से भरा जीवन जीने के लिए बाध्य हो जाते हैं । पश्चिमी देशों में इन दिनों पिता अपनी संतानों से सहायता की आशा नहीं कर सकता, न ही सास बहू से सेवा की अपेक्षा करती है । वृद्धों के रहने के लिए, उनकी देखभाल के लिए कई संस्थान अस्तित्व में आए हैं । वृद्धों के लिए वृद्ध भवन बनाये जा रहे हैं, जहाँ सरकारी खर्च से वृद्धों को रहने के लिए उपयुक्त व्यवस्था की जाती है, तो भी वहाँ रहने वाले वृद्धजन संतुष्टि का अनुभव नहीं कर पाते ।

इन दुष्परिणामों के अतिरिक्त और भी कई दु: स्थितियाँ हैं, जिनका सामना विघटित परिवारों को करना पड़ता है । इन स्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए संयुक्त परिवार की भावना और व्यवस्था को नष्ट नहीं होने देना चाहिए । इस विघटन के गम्भीर परिणामों पर प्रत्येक जागरूक नागरिक को विचार करना ही चाहिए । माना कि इस समय परिस्थितियाँ बहुत तेजी से बदलती जा रही हैं इस बदलती परिस्थितियों में संयुक्त परिवारों के परम्परागत रूप का निर्वाह हो पाना कठिन है । फिर भी ऐसे उपाय तो किये ही जा सकते हैं जो बदलते समय में संयुक्त परिवारों की परम्परा जीवित रख सकें । मिल-जुलकर संयुक्त परिवार के रूप में रहने के लाभ अगणित और अनन्त हैं ।

सहजीवन, प्रगति और प्रसन्नता का आधार

परिवार का अर्थ है-परिकर, समूह, समुदाय । उसे इतनी संकीर्ण सीमा में आबद्ध नहीं करना चाहिए कि उस दायरे में स्त्री-बच्चे के अतिरिक्त और किसी का प्रवेश ही न हो सके । यों वंशगत कुटुम्ब को ही आमतौर से परिवार कहा जाता है, क्योंकि उस समूह के लोग एक-साथ मिल-जुलकर एक ही मकान में रहते हैं । उनका आर्थिक स्रोत भी सम्मिलित ही होता है और सदस्यों को एकमान्य अनुशासन में रहना होता है । एक ही आचार संहिता अपनानी पड़ती है । इसमें इच्छानुसार बरतने की छूट एक सीमा तक ही रहती है, यदि यही सब वंश परिकर के अतिरिक्त अन्य लोग भी मिलकर अपना लें, तो वह भी एक परिवार ही बन जायगा । यह अनिवार्य नहीं कि सम्मिलित कुटुम्ब को ही परिवार माना जाय उसके लिए विवाह करना या सन्तानोत्पादन में प्रवृत्त होना बिल्कुल भी आवश्यक नहीं । यों प्रचलन आजकल ऐसा ही है, पर आवश्यक नहीं कि जो कुछ हो रहा है वह सब कुछ उचित, पर्याप्त या अनिवार्य ही हो ।

अनेक व्यक्ति ऐसे हैं, जो स्वेच्छा या परिस्थितिवश विवाह या सन्तानोत्पादन की स्थिति में नहीं होते । यह स्वेच्छापूर्वक भी हो सकता है और विवशता में भी । इतने पर भी उन्हें रहना परिवार की छत्रछाया में ही चाहिए । समूह व्यवस्था के अन्तर्गत ही निर्वाह की आवश्यकता से लेकर परिशोधन और प्रगति का अनुभव, अभ्यास बहुत कुछ इसी आधार पर बन पड़ता है । इस स्थिति में उगे बीजांकुर ही बड़े होने पर अधिक फलते-फूलते और ऐसे स्वभाव के रूप में विकसित होते हैं जो उत्थान-पतन के लिए प्रधान रूप से जिम्मेदार होते हैं ।

विचारसाम्य के आधार पर क्रिया-कलाप की एकता को लेकर भी परिकर बनते हैं । छात्रों के छात्रावास, सेना की बैरकें इसी आवश्यकता की पूर्ति करते हैं । साधुओं के आश्रम, गुरुकुल, आरण्यक भी इसी आधार पर अपने को सुविकसित करते हैं । जिन्हें विदेशों में अपरिचितों के साथ रहना पड़ता है वे भी सर्वथा एकाकी नहीं रहते । किसी होटल, सराय आदि का आश्रय लेते हैं । सर्वथा एकाकी रहने के प्रयोग कई एकान्तवासी कहे जाने वाले साधु-सन्तों ने किया तो है, पर वह इस प्रकार से अपूर्ण है । शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी सर्वथा आत्मनिर्भर रहने पर बन न पाई उन्हें भी अनिवार्य साधन सामग्री के लिए दूसरों के अनुदान की अपेक्षा पड़ी । मन:क्षेत्र में उठते रहने वाले अनेक उतार-चढ़ावों का जब स्वयं समाधान होने की स्थिति नहीं बन पड़ती, तब भी दूसरों के साथ विचार-विनिमय करके ही किसी उपयोगी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है । यह कार्य यदि किसी साहित्य के आधार पर किया जाय तो भी वह प्रकारान्तर से उनके लेखकों के साथ विचार क्षेत्र में जुड़ना ही हुआ । एकान्तवासी भी कल्पनाएँ करने से निवृत्त नहीं हो सकते । कल्पनाएँ ऐसे वातावरण के सन्दर्भ में ही उठती हैं जो अपेक्षाकृत अधिक अनुकूल हो । यह क्षेत्र भी जनशून्य नहीं हो सकता । निस्तब्धता तो व्यवहार में ही नहीं, कल्पना के लिए कठिन एवं अरुचि तक लगती है । भेड़ियों की माँद में पला रामू बालक चौदह वर्ष की आयु तक मनोवैज्ञानिकों के संरक्षण में पला और जिया, पर उसे शैशव के आरम्भ के दिनों में जिस रीति-नीति को अपनाना पड़ा वे ही उसका स्थाई स्वभाव बन पायीं । वह मनुष्यों की तरह बोलना न सीख सका और हाथ पैरों के सहारे पशुओं की तरह चलने की आदत न छोड़ सका । किसी को जन्म से ही एकान्त में रहना पड़े तो वह वनमानुषों जैसा ही कुछ हो सकता है । एकान्तवासी बनकर रहने वाले भी इस निवास से पूर्व समाज के सान्निध्य-संरक्षण में ही रहे होते हैं । उनकी चेतना, ज्ञान-सम्पदा, अर्चना, अनुभव अभ्यास, निष्कर्ष आदि उपलब्धियों में पूर्व अनुभवों का ही समावेश होता है । वे सभी समाज परिकर में ही रहकर संचित किये गये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होते हैं । इस प्रकार विचारक्षेत्र में जो कुछ संचय है । वह सामाजिक अनुदान ही होता है । यह जहाँ से जिन लोगों से इस प्रकार विचार क्षेत्र में जो कुछ संचय बटोरा गया है उसे भूतपूर्व परिवार ही कह सकते हैं । भविष्य के लिए किसी ने मधुर कल्पनाएँ सँजो रखी हों तो वे किसी समुदाय के साथ ही जुड़ी हुई होंगी । भले ही वे देवताओं के स्वर्ग परिकर के साथ ही क्यों न जुड़ती हों । ब्रह्मलोक आदि की सरस कल्पनाएँ करते इसीलिए बन पड़ती है कि वहाँ किसी उच्चस्तरीय प्राणियों का निवास या प्रभाव सुखद परिस्थितियों का सृजन कर रहा होगा । सर्वथा जनशून्य परलोक की कल्पना करने पर तो वहाँ भी भयंकर निस्तब्धता की अनुभूति होगी और जी घबराने लगेगा ।

शरीर भी एक परिवार है । उसके अंग-अवयव सदस्यगण हैं । उन सबका भरण-पोषण करना पड़ता है । कहीं कोई गड़बड़ी उठ खड़ी हो तो उसका समाधान सोचना पड़ता है । कुटुम्बियों में से प्रत्येक के सम्बन्ध में जिस प्रकार बहुमुखी व्यवस्था जुटानी पड़ती हैं उसी प्रकार काय-कलेवर के सभी अंगों, अवयवों, विभागों को सही स्थिति में रखने के लिए पग-पग पर सतर्कता बरतनी पड़ती है । मन:क्षेत्र में भी मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का, सचेतन, अचेतन, सुपर चेतन का समुदाय है । ज्ञान तन्तुओं का चित्र-विचित्र क्षमताओं से भरा-पूरा एक विशालकाय परिकर है । इस प्रकार न तो शरीर किसी पत्थर की तरह एकाकी है और न मन:क्षेत्र भी संस्कारों से रहित है । यह एकाकी लगने वाले क्षेत्र अपने-अपने स्तर के दृश्य, अदृश्य सहयोगियों को, परिजनों को सँजोये हुए बैठे दिखाई पड़ेंगे । मरने के बाद भी जिस परलोक की कल्पना की जाती है वह भी स्वर्ग-नरक का अपने ढंग का समूह परिकर है । प्रेत लोक में भी प्राणी एकाकी नहीं रहता, वहाँ भी उसकी बिरादरी के अनेक सदस्य पहले से ही जमे या आते-जाते दीख पड़ते हैं । सर्वथा एकाकीपन की कल्पना कर सकना तो मनुष्य जैसे विकसित स्तर के प्राणी के लिए सम्भव नहीं । जीवाणु, विषाणु, मृदा, जन्तु, जलजीव भले ही विचार शक्ति के अभाव में अपने को एकाकी स्थिति में मानते हैं, पर चेतना का हल्का सा उभार आते ही अपने चारों ओर साथी सहयोगियों से भरा-पूरा संसार दिखाई पड़ता है । पूर्णता की स्थिति में पहुँचने वाले दिव्यदर्शी, परमहंस भी विराट् ब्रह्म की प्रत्यक्ष झाँकी विशाल विश्व के रूप में ही करते हैं । उनका परिवार किसी घर की छोटी सीमा में आबद्ध न रहकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की मान्यता अपना लेता है । उसे समस्त विश्व ही अपने निजी परिवार की तरह दीख पड़ता है । स्वयं ईश्वर भी एकाकी नहीं रह सका । उसने 'एकोऽहं बहुस्याम' की आकाँक्षा की और अपने वैभव विस्तार का परिचय देने, उसके साथ क्रीड़ा-कल्लोल करने के लिए सुविस्तृत संसार रच डाला । उसकी सहयोगिनी माया भी प्रकृति बनकर असंख्य स्तर के घटकों के साथ जुड़कर अपने विशालकाय परिकर का परिचय देने लगी । जीव का जन्म माता-पिता के सहयोग, समन्वयं और भाव भरे समर्पण से ही सम्भव होता है । मरने के उपरान्त निर्जीव काया को सड़न से बचाने के लिए अन्य लोग अन्त्येष्टि का प्रबन्ध मिल-जुलकर करते हैं । यदि सभी मुँह मोड़ लें तो भी निर्जीव काया में से ही ऐसी कृमि उपज पड़ते हैं जो उस निरर्थक कचरे को खाकर समाप्त कर दें । इस कार्य में वन्य पशु-पक्षी भी यथासम्भव सहयोग प्रदान करते हैं । इस सृष्टि में किसी के लिए भी ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ वह मात्र अकेला रह सके । ऐसा शून्य तो सोचते भी नहीं बन पड़ता ।

यह सब इसीलिए कहा जा रहा है कि किसी के मन में संकीर्ण स्वार्थपरता का एकाकीपन जड़ न जमाने पाये । यह सर्वथा असम्भव है साथ ही उस दिशा में सोचने-चलने से पग-पग पर असुविधाओं, विसंगतियों और विडम्बनाओं का ऐसा सामना करना पड़ता है, जिसमें असुविधाओं और विपत्तियों के अतिरिक्त और कुछ हाथ लगता ही नहीं । सामाजिकता की सुविधाओं और सम्भावनाओं का समुच्चय है । सबसे अलग रहकर नितान्त स्वार्थी बनने के लिए भी समूह का परित्याग नहीं किया जा सकता । शोषण, अपहरण, आक्रमण के लिए भी तो अन्य लोग चाहिए । प्रशंसा एवं प्रतिष्ठा बढ़ानी हो तो भी जय-जयकार करने वाले कोई अन्य लोग ही चाहिए ही । जिन्हें रिझाना, दबाना या प्रभावित करना है वे भी तो कोई और ही होंगे । इस प्रकार भले या बुरे प्रयोजनों के लिए किन्हीं अन्यों के साथ किसी न किसी प्रकार का सम्पर्क जुड़ना आवश्यक हो जाता है ।

भ्रूण की स्थिति में जीव माता के उदर में रहता है और उसी के अनुदानों से ही पलता और बढ़ता है । जन्म लेने के उपरान्त उसकी सामान्य-सी आवश्यकताओं को भी अभिभावक ही पूरा करते हैं । अपने आप तो वह दूध पीने के लिये भी उस केन्द्र तक नहीं पहुँच सकता । करवट तक नहीं बदल सकता । मल-मूत्र की सफाई तक करना उसके लिए सम्भव नहीं होता । यदि यह व्यवस्था न बन पड़े तो समझना चाहिए कि उस नवजात का जीवित रह सकना भी सम्भव नहीं । अन्य प्राणियों के बच्चे किसी प्रकार भले ही जीवन धारण किये रह सकें । वस्तुस्थिति हर किसी को समझनी चाहिए और समाज के साथ सम्पर्क बनाने के प्रथम आधार परिवार परिकर को साथ लेकर जीवनयापन करने की बात सोचनी चाहिए ।

व्यक्ति अपने हित की बात सोचता है यह बुरा नहीं, पर उस सोच को इतना संकीर्ण नहीं होना चाहिए कि अपना तात्कालिक स्वार्थ ही सब कुछ बनकर रह जाय । अनुशासन, अनुबन्ध का निर्वाह करने में उच्छृंखलता बरती जाय । अपने कर्तव्यों और दूसरों के अधिकारों की उपेक्षा चल पड़े । ऐसी एकपक्षीय स्वार्थपरता परिणाम में अनर्थ बनकर ही सामने आती है । सन्तुलन नहीं निभ पाता है और वह स्थिरता एवं सफलता का आधारभूत कारण नहीं बनता है । समूह की उपेक्षा करके अपनाया गया स्वार्थ अपने और दूसरों के लिए संकट और अवरोध ही खड़े करता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पारिवारिकता मनुष्य के सहजीवन की एक सुनिश्चित विधा और अनिवार्य आवश्यकता है । जिसकी उपेक्षा करके सुख, शान्ति और प्रगति का लाभ उठा सकना तो दूर सामान्य निर्वाह भी असम्भव है । संयुक्त परिवार की आवश्यकता मानवी विकास के आरम्भ काल से ही समझी जाती रही है । वनमानुष जैसी आदिम काल की अनगढ़ स्थिति से ऊँचे उठते-उठते आज सृष्टि का मुकुट-मणि बन सकना उसके लिये इसी आधार पर सम्भव हुआ है । बौद्धिक और भौतिक उपलब्धियाँ पारस्परिक आदान-प्रदान के आधार पर ही बनती, बढ़ती और एक-दूसरे को हस्तान्तरित होती चली आई हैं । प्रगतियों का, उपलब्धियों का कोई भी पक्ष क्यों न हो, विकास का सरंजाम इसी आधार पर जुट सकता है । अलगाव की व्यक्तिवादी स्वार्थपरता किसी प्रकार छद्म अथवा अनाचार अपनाकर कुछ देर के लिये लाभ लेने का गर्व कर सकती है । कलई खुलने पर तो वे सर्वथा एकाकी ही रह जाते हैं । लाभ तक साझेदार रहने वाले तथाकथित मित्रों का भी पता नहीं चलता ।

अपने मतलब से मतलब रखने वाले समझते भर इतना हैं कि हम चतुरता कर रहे हैं । स्वयं किसी के काम नहीं आते, पर अपना उल्लू सीधा करते हैं । वे यह भूल जाते हैं कि यहाँ सब कुछ आदान-प्रदान के आधार पर ही चल और बढ़ रहा है । नियति का अतिक्रमण करके किसी का सुख चैन से रह सकना सम्भव नहीं । अकेलेपन की प्रवृत्ति सरसता और प्रसन्नता के समस्त स्रोत सुखा देती है । हर दृष्टि से हर क्षेत्र में संकीर्णता हानिकारक ही सिद्ध होती है । इसलिये मिल-जुलकर रहना सिखाने वाली पारिवारिकता को ही श्रेय, सौभाग्य और समझदारी के साथ जोड़ा गया है ।

पारिवारिक संगठन कैसे स्थिर रहे ?

श्रीमद्भगवतगीता में कृष्ण-अर्जुन से कहते हैं:-

यद्दाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतोजनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ।।
न मे प्रार्थस्य कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्तएव च कर्मणि ।

श्रेष्ठ पुरुष जिस रास्ते से चले जाते हैं सब ही निम्न श्रेणी के मनुष्य उसी मार्ग पर चलने लगते हैं । मुझे कोई काम करना शेष नहीं है तथापि मैं इसी हेतु कार्य करता रहता हूँ ।

भगवान राम और कृष्ण के अवतारों का एक प्रमुख प्रयोजन लोकशिक्षा भी था । जहाँ उन्होंने अपनी अमृतमयी वाणी से बहुमूल्य उपदेश एवं सन्देश दिये हैं, वहाँ अपने आचरण द्वारा ऐसे उदाहरण भी उपस्थित किये हैं जिनको अपनाकर मनुष्य जाति सुख-शान्तिमय जीवन यापन कर सकती है तथा अपनी अनेक उलझनों को सुलझा सकती है ।

श्री रामचन्द्रजी के अनेक आदर्श गुणों में एक गुण यह भी था कि वे अपने परिवार का समुचित ध्यान रखते थे, उनकी कठिनाइयों को सरल बनाने, प्रसन्न रखने तथा सुख-दुःख में साथ रहने में किसी प्रकार की कमी नहीं रखते थे । जिनमें यह गुण होता है उन्हीं का परिवार उनके पीछे चलता है और प्रेमपूर्वक संगठित रहता है । आजकल घरों के पारिवारिक मुखिया तथा किन्हीं संगठनों के संचालक इस गुण को अपनाने की कमी करते हैं । इसी से उनके आश्रित या अनुयायी असंतुष्ट रहते हैं और आये दिन कलह मचा रहता है ।

श्री रामजी की मुखियागिरी से उनका परिवार ही नहीं प्रजाजन भी संतुष्ट थे । यहीं तक नहीं वन पर्वतों के निवासी भील, कोल, रीछ, वानर आदि के साथ भी उनका व्यवहार आत्मीयता का होने के कारण वे दूरवर्ती होते हुए भी कुटुम्ब की सी स्थिति अनुभव करते थे । रामायण में इसका वर्णन इस प्रकार है:-

प्रभु तरु तर कपि डार पर किये ते आप समान ।
तुलसी कहूँ न राम से साहब सील निधान ।।

श्री रघुनाथजी ने भीलों के प्रति चित्रकूट में क्या वर्ताव किया ? जब भी कोई खबर मिली कि रामचन्द्र जी इस पर्वत पर हैं ।

यह सुधि कोल किरातन पाई ।
हरषे जनु नव निधि घर आई ।।
कंदमूल फल भरि भरि दोना ।
चले रंक जनु लूटन सोना ।।
करहि जुहार भेट धरि आगे ।
प्रभुहि विलोकहि अति अनुरागे ।।
राम स्नेह मगन सब जाने ।
कहि प्रिय बचन सबहि सन्माने ।।
प्रभुहिं जोहार बहोरि बहोरी ।
बचन विनीत कहहिं कर जोरी ।।
हम सब भाँति करब सेवकाई ।
करि केहरि अहि बाघ बराई ।।
हम सेवक परिवार समेता ।
नाथ न सकुचब आयसु देता ।।
वेद वचन मुनि मन अगम ते प्रभु करुणा ऐन ।
वचन किरातन के सुनत, जिमि पितु बालक बैन ।।
राम सकल वनचर परितोषे ।
कहि प्रिय वचन प्रेम परिपोषे ।।

अब रीछ वानरों पर प्रभु का कितना प्रेम था वह नीचे की चौपाइयों से विदित होगा ।

तुम्हरे बल मैं रावण मारयो ।
तिलक विभीषण कहं पुनि सारयो ।।
निज निज गृह अब तुम सब जाहू ।
सुमिरहु मोहिं डरहु जनि काहू ।।
परम प्रीति समीप बैठारे ।
भगत सुखद मृदु बचन उचारे ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तुम अति कीन्ह मोरि सेवकाई ।
मुख पर केहि विधि करहुँ बड़ाई ।।
ताते तुम्ह मोहि अति प्रिय लागे ।
मम हित लागी भवन सुख त्यागे ।।
अनुज राज संपति वैदेही ।
देह गेह परिवार सनेही ।।
सब मम प्रिय नहिं तुमहिं समाना ।
मृषा न कहों मोर यह बाना ।।

इन नीचे की दो चौपाइयों में रामचन्द्र जी ने रीछ वानरों को ही सबसे प्यारे कहा । देखिये कितना महान आदर्श है रघुनाथजी ने चित्रकूट से वापिस होते समय भरतजी को थोड़े से में अपनी प्रजा पालनादि का भार सौंपते हुए कहा –

मुखिया मुख सो चाहिये, खान पान को एक ।
पाले पोषे सकल अंग, तुलसी सहित विवेक ।।

यहाँ पर मुख को मुखिया की उपमा दी है जैसे नाना प्रकार के भोजनों को खाकर मुख अपने अन्दर एक कणिका भी नहीं रखता । इसी प्रकार मुखिया को अपने परिवार के प्रति वर्ताव करना चाहिए । दूसरी बात मुख और शरीर के सम्बन्ध की यह है कि जब शरीर के किसी अंग में कोई दर्द होता है तब वह अंग अपनी पीड़ा बिना मुँह के नहीं बता सकता । पर मुँह रोता है कराहता चिल्लाता है और जब तक उस अंग की पीड़ा शांत नहीं हो जाती, रोता कराहता ही रहता है । इसी तरह मुखिया को अपने परिवार के किसी भी मनुष्य को चाहे वह छोटा हो, बड़ा हो, तरुण हो, वृद्ध हो, ज्ञानी हो, मूर्ख हो, समानता का बर्ताव रखते हुए उसकी तकलीफ में हाथ बँटाना चाहिए ।

परिवार के अर्थ घर कुटुम्ब के मनुष्यों के समूह से लेकर और भी कई तरह के समूह हैं । जिन्हें परिवार कहते हैं यथा:-

प्रजा-राजा, सेना-सेनापति, जमात-महंत, विद्यार्थी-अध्यापक, शिष्य-गुरु इत्यादि कई प्रकार के परिवार और मुखिया हैं और इस प्रकार के मुखिया के वास्ते अपने परिवार के प्रति ऐसा ही भाव रखने का नियम है ।

मुखिया को अपने लिए अपने परिवार से बहुत अधिक सुविधा सामिग्री प्राप्त करने की चेष्टा न करनी चाहिए । नहीं तो परिजन उससे असंतुष्ट रहने लगेंगे । घर के संचालन का कर्त्तव्य है कि वह अपने भोजन, वस्त्र, शौक, मौज में उतना खर्च न करे जो अपने आश्रितों एवं अनुयायियों के लिए न जुटा सके । अपने परिजनों की अपेक्षा जो स्वयं अधिक शौक, मौज करता है वह गृहपति कभी सफल गृह संचालक नहीं बन सकता ।

यों थोड़ी बहुत बुराई सभी परिवारों में होती है । अनुयायी या परिजन भी सर्वथा निर्दोष या सद्गुणी नहीं होते । पर उनमें थोड़ी बुराई रहते हुए भी परिवार का संगठन चलता रह सकता है । यदि संचालक में आदर्शवाद की समुचित मात्रा हो । इसके विपरीत संचालक का दोष भी अच्छे परिवार को छिन्न-भिन्न कर देने का कारण बन सकता है । ऐसे अनेकों, आधुनिक तथा प्राचीन अनुभव उपलब्ध हो सकते हैं । रामायण में रावण, भागवत में कंस, महाभारत में कौरवों का नाश, कौटुम्बिक विरोध और मुखिया की त्रुटियों के कारण ही हुआ स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है । दैनिक जीवन में भी ऐसे उदाहरण सर्वत्र दीखते हैं ।

जिन मुखियाओं को अपना संगठन या परिवार प्रिय है उन्हें रामायण से श्री रघुनाथ जी के चरित्र से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए और अपने साथियों के साथ समुचित स्नेह, सहानुभूति, उदारता, सहृदयता एवं त्याग का उदाहरण उपस्थित करना चाहिए तब वह संगठन स्थिर रह सकना सम्भव हो सकेगा ।

सम्मिलित परिवार इस तरह चलता है

अच्छी बात तो तभी अच्छी होती है और तब तक ही अच्छी बनी रहती है, जब उसकी अच्छाई के वे नियम पूरी तरह से पालन किये जाते रहें जो अच्छाई के आधार होते हैं । कोई भी व्यवस्था बिना नियमों के नहीं चल सकती । फिर चाहे वह व्यवस्था अपने में कितनी ही अच्छी एवं उपयोगी क्यों न हो ?

एक तो यों ही भारत से सम्मिलित परिवार प्रथा उठती जा रही है । दूसरे जो परिवार इस प्रथा को चला भी रहे हैं, उनमें उपेक्षित लाभ तथा सुख-सुविधा की सम्भावनाएँ समाप्त हो गई हैं । कलह, ईर्ष्या-द्वेष, स्वार्थ, आपा-धापी, अवज्ञा और शासन, अनुशासनहीनता के ही दृश्य देखने में आते हैं । दिन-रात की लड़ाई-झगड़ों के कारण सम्मिलित परिवार प्रथा अभिशाप सी बनी हुई है । इसी तू-तू, मैं-मैं तथा दिन-रात के कलह-क्लेश के कारण लोग उसके प्रति शंकालु होते जा रहे हैं । मिल-जुलकर रहने के बजाय पृथक् रहना पसन्द कर रहे हैं ।

पृथक्ता अथवा भिन्नता अच्छी नहीं, मेल, एकता, तथा संगठन की भावना सदैव ही अच्छी है । जीवन की उन्नति तथा विकास का यह एक बड़ा आधार है । इसे यों ही नहीं छोड़ दिया जाना चाहिए । यदि इस पुनीत प्रथा में कुछ बुराइयाँ आ गई हैं तो वे दूर की जा सकती हैं । उन्हें दूर किया जाना चाहिए और सम्मिलित परिवार प्रथा की परम्परा को पुनर्जीवित किया जाना चाहिए । विकृति के कारणों तथा उनके निवारण के उपायों पर विचार करने के बाद समुचित सुधार किया जा सकना सरल हो जायेगा ।

परिवारों के विघटन तथा उनमें होने वाले कलह का एक कारण तो असमानता का व्यवहार हो सकता है । यहाँ पर असमानता का यह अर्थ नहीं कि बड़े-छोटों सबके साथ एक जैसा व्यवहार नहीं किया जाता । वह तो नहीं ही किया जा सकता । जो वृद्ध हैं, गुरुजन अथवा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण हैं उसके अनुरूप किया जाने वाला व्यवहार कनिष्ठों तथा बच्चों के साथ तो नहीं ही किया जा सकता । बड़ों के साथ बड़ों जैसा और बच्चों के साथ बच्चों जैसा व्यवहार ही किया जायेगा । यही उचित भी है । यहाँ पर असमानता का आशय है, एक कोटि के व्यक्तियों के बीच समान व्यवहार न करना । किसी का पक्ष और किसी की उपेक्षा करना । जितने लोग जिस योग्य हैं उनके साथ तदनुरूप समान व्यवहार किया जाना समानता मानी जायेगी ।

बहुओं में बहुत बार कपड़े जेवर के सम्बन्ध में असमानता बरती जाती है । जो बहू सास ससुर की ज्यादा दुलारी होती है उसका ज्यादा ख्याल रखा जाता है अथवा जिसके बच्चा हो गया है उसका महत्व बढ़ा दिया जाता है । उसको दूसरी बहुओं की अपेक्षा अधिक अच्छे कपड़े अथवा अधिक जेवर दिये जाने की कोशिश की जाती है । इस विषम व्यवहार से स्त्रियों के बीच ईर्ष्या, द्वेष तथा कलह उत्पन्न हो जाता है । यह प्रवृत्ति दूर की जानी चाहिए । इसके लिये जेवरों का रिवाज तो बिल्कुल उठा ही दिया जाना चाहिए । सुहाग चिन्हों के रूप में कतिपय आभूषणों के अतिरिक्त और गहने न बनवाये जाएँ । कपड़े एक समय पर सबके लिये एक साथ लाये जाने चाहिए । रुचि के अनुसार उनके रंगों तथा प्रकार में तो अन्तर हो सकता है किन्तु स्तर तथा मूल्य में अन्तर ठीक नहीं । पारिवारिक बजट में पहले से ही गुंजाइश करके यह व्यवस्था बनाई जा सकती है । किसी प्रकार की कठिनाई नहीं है । भाइयों को अपनी इस इच्छा का त्याग करना ही चाहिए कि मेरी पत्नी अधिक अच्छा पहने और खूब सज-धज से रहे । यह प्रदर्शनात्मक रुचि अच्छी नहीं इससे विषमता बढ़ती, व्यय अधिक होता और स्त्री का स्वभाव खराब होता है । सादगी और सरलता सबके लिए हितकर है । चाहे स्त्री हो या पुरुष ।

यही समानता पुरुषों में भी रहनी चाहिए । सब लोग एक जैसा ही पहनने का अभ्यास करें । जरूरी नहीं कि कोई अधिक कमाता है या किसी ऊँचे पद पर जो है वह ज्यादा शान-शौकत से रहे । अधिक कमाई अथवा उच्च पद की अनुरूपता कीमती कपड़ों पर निर्भर नहीं है । साफ और सुन्दर ढंग से बने कपड़े भी ठीक रह सकते हैं । सरलता एवं सादगी तो पुरुषों के लिये स्त्रियों से भी अधिक शोभनीय है ।

अनेक बार परिवार में ऐसे सदस्य भी होते हैं जो कुछ कमा नहीं सकते । नासमझ घरों में उनके साथ अवमानना का व्यवहार किया जाता है । उन्हें या तो दूसरों के पहने हुए कपड़े दिये जाते हैं अथवा अन्य लोगों की अपेक्षा बहुत रद्दी । यह प्रवृत्ति अनुचित है । किसी हद तक एक आध डिग्री का अन्तर तो चल सकता है अधिक नहीं । इस अन्तर पर अपनी उपयोगिता देखते हुए उन्हें विक्षोभ अथवा दुःख नहीं होगा और हर्षपूर्वक उस पर सन्तोष करेंगे ? ऐसे लोग अधिकतर वृद्धजन ही होते हैं । इस विषय में वे अपने से छोटों के साथ स्पर्धा करने की मूर्खता क्यों पसन्द करेंगे । अच्छा तो यह हो कि इधर से उन्हें अच्छा-अच्छा खाने पहनाने की कोशिश की जाये और उधर से उनका निषेध करते हुए कम खर्चीले रहन-सहन का आग्रह किया जाये । अनुत्पादक सदस्यों को बिल्कुल अनुपयोगी न समझा जाये । उनकी आत्मा का आशीर्वाद और हृदय का सन्तोष ही क्या कम महत्व अथवा मूल्य रखता है । अशक्तों तथा वृद्धों की सद्भावनाओं में बड़ी शक्ति होती है । उनकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए ।

बहुत बार बच्चों की कमीवेशी भी कलह तथा विषमता का कारण बन जाती है । किसी के दो तो किसी के तीन या किसी के चार बच्चे हो सकते हैं । उन पर होने वाले खर्च में यह सोचना चाहिए कि उसके बच्चों पर ज्यादा खर्च होता है मेरे बच्चों पर कम, ठीक नहीं । इसकी नाप-तोल करने से माता-पिताओं में वैमनस्य तथा ईर्ष्या भाव पैदा हो जाता है । सोचना यह चाहिये कि यह बच्चे किसी के अपने नहीं हैं । सब एक ही परिवार के अंग हैं, सब एक ही कुटुम्ब की शक्ति हैं । एक ही वाटिका के फूल हैं । किसी लता विटप ने दो पैदा किये हैं तो किसी ने तीन-चार । सारे परिवार की सारे बच्चों से शोभा है । यह सब एक ही रक्तधारा की लहरें हैं, इनमें कोई अन्तर नहीं । बहुधा बच्चों की कमीवेशी का भाव स्त्रियों में ही अधिक होता है । कुछ मोहवश और कुछ परकीयता की भावना से वे सभी बच्चों को समान अथवा अपना अंश नहीं समझ पातीं । यह भाव समझा-बुझाकर अथवा पुरुषों की दृढ़ अपनत्व भावना से दूर किया जा सकता है अथवा आवश्यकतानुसार सख्ती से भी इसका अभ्यास कराया जा सकता है ।

एकतन्त्रता भी बहुत बार परिवारों के विघटन का कारण बनती है । जो मुखिया है, प्रधान है, सूत्रधार है वह अपने को पूरे परिवर का स्वामी और अन्य सदस्यों को अपना अधीनस्थ मान बैठता है । सब पर हुक्म चलाना अपनी हर इच्छा को मनवाना अपना अधिकार मान बैठता है । इससे दूसरों में अश्रद्धा तथा अरुचि का भाव पैदा हो जाता है और वे उस एकतन्त्र शासन अथवा अनुशासन के भार से मुक्त होकर आश्वस्त होने के लिये पृथक् हो जाना ठीक समझते हैं । एकतन्त्र व्यवस्था में प्रधान का जिसके साथ पक्षपात हो जाता है उसे सुविधाओं की कमी नहीं रहती और जिस पर उपेक्षा दृष्टि हो जाती है वह बहुत से अधिकारों से वंचित हो जाता है । यह ठीक नहीं सम्मिलित परिवार प्रथा में एकतन्त्रता के लिये जरा भी गुंजाइश नहीं है ।

इसके लिये सबसे सरल तथा उचित उपाय यह है कि उसमें प्रजातन्त्र जैसी पद्धति चलाई जाय । सभी वयस्क सदस्यों की परिवार व्यवस्था में, सब का स्थान होना चाहिए । परिवार के आय-व्यय अथवा अन्य

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समस्याओं में सबको सम्मिलित किया जाना चाहिये । क्या आय है यह सबको पता रहना चाहिये और कितना किन-किन बातों पर किस प्रकार खर्च किया जाये इसके निर्णय में सबका परामर्श होना चाहिये । सारी आय एक को पता है और एक ही जिस प्रकार जो कुछ जिस तरह खर्च करना चाहता है, करता है यह सर्वाधिकार अनाधिकार ही माना जाये । इसके लिये समय पर परिवार की बैठक होनी चाहिए और उसमें इस बात को रखकर विचार किया जाना और सर्वसम्मानित निर्णय लिया जाना ही ठीक रहेगा ।

इसके अतिरिक्त परिवार की अन्य समस्याएँ कठिनाइयाँ तथा प्रश्न भी हो सकते हैं । जैसे बच्चों के झगड़े, स्त्रियों का मन-मुटाव और पुरुषों की गलत फहमी । इनका भी निर्णय तथा समाधान सार्वजनिक ढंग से होना चाहिये, इसके लिये सायंकाल सबकी गोष्ठी हो, सब लोग उसमें अपनी शिकायतें तथा आपत्तियाँ रखें । सब लोग उस पर निष्पक्ष रूप से विचार करें । जिसकी गलती हो उसे समझाया जाये और बाकी को सहनशीलता की प्रेरणा दी जाये ।

इससे उनके स्वभाव तथा संस्कार परिष्कृत होते जायेंगे और जल्दी ही वह समय आ जायेगा कि हर सदस्य दूसरे के लिये अधिक से अधिक त्याग करने के लिये तत्पर रहने लगेगा । उसे स्वार्थपरता, तुच्छता, विषमता तथा संकीर्णता के निकृष्ट भाव से स्वयं घृणा हो जायगी और तब परिवार मिला ही नहीं रहेगा उसमें सुख-शान्ति की वृद्धि होगी ।

परिवार की आन्तरिक व्यवस्था

गृह की आन्तरिक व्यवस्था भी एक कला है । प्रायः देखा जाता है कि घर में दो प्रकार के सदस्य होते हैं (१) कार्य करने वाले, जो प्रातः से सायं तक निरन्तर कार्य में लगे रहते हैं, (२) आराम तलब और कामचोर-ये व्यक्ति आनन्द अधिक लेते हैं और उसी अनुपात में कार्य नहीं करते । काम करने वाले वर्ग में मुख्यतः घर का स्वामी, मालकिन, बड़ी भौजाई तथा अन्य उत्तरदायित्व का अनुभव करने वाले व्यक्ति आते हैं । द्वितीय वर्ग में नवयुवक तथा स्कूल में पढ़ने वाली लड़कियाँ, नवीन वधुएँ, मेहमान या पढ़ने के लिए आये हुए दूसरे घर के विद्यार्थी गिने जाते हैं ।

अपने परिवार का अध्ययन कर मालूम कीजिए कि इन दोनों वर्गों में किस व्यक्ति का स्थान कहाँ है ? आपकी नीति सबसे उसकी आयु के अनुकूल कार्य लेने की होनी चाहिए । परिवार एक ऐसी संस्था है, जिसमें सबका समान अधिकार है । काम भी सभी को करना उचित है अन्यथा परिवार की नींव ढह जायगी ।

घर के विभिन्न कार्यकर्त्ता

घर के सब कार्यों की सूची तैयार कीजिए । मान लीजिए आपके घर में निम्न कार्य हैं-घर की झाड़ू, कमरों की सफाई, बैठक की झाड़फूँक-सजावट, प्रातः दूध दुहना या बाजार से लाना, पशुओं की देखभाल, बाजार से सब्जी तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं का खरीदना, रुपये की आय-व्यय का हिसाब, घर का भोजन बनाना, बर्तन साफ करना, बच्चों को पढ़ाना, मासिक बजट तैयार करना, दवादारू और चिकित्सा का प्रबन्ध, सफर कराने का बन्दोवस्त, डाक की सुव्यवस्था इत्यादि । इन सब कार्यों को करने के लिए आप परिवार से निम्नलिखित कार्यकर्त्ता चुन लीजिए

(१) गृहमन्त्री (२) यातायात, (३) विदेशीविभाग, (४)स्वास्थ्य विभाग, (५)अर्थमन्त्री ।

गृहमन्त्री का कार्य प्रमुख व्यक्ति करे, जो घर की सब छोटी-मोटी जानकारी रखे, भावी कठिनाइयों के लिए परिवार को चौकस रखे, लड़ाई-झगड़ों से बचाकर परिवार की प्रतिष्ठा का ध्यान रखे, घर की सामान्य पॉलसी का निर्णय करे । दूसरा प्रमुख कार्य अर्थमन्त्री का है । यह व्यक्ति हिसाब करने, बजट बनाने, अध्ययन का ठीक ब्यौरा रखने, मौसम के समय खाद्य वस्तुओं को खरीदने और बचत की व्यवस्था में चतुर होना चाहिए । घर में पाई-पाई का हिसाब रखा जाय । मास से पूर्व ही वह बजट तैयार कर ले और एक-एक कर सब जिम्मेदार सदस्यों के पास घुमा दे । उनकी आवश्यकताओं के विषय में पूछ ले और उसका उल्लेख बजट में यथास्थान कर दे । कर्ज में आने से परिवार की रक्षा करे । यातायात मन्त्री सफर, मेहमानदारी, यात्रियों की देखभाल करे । विदेश-मन्त्री चिट्ठी-पत्री, अखबार मँगाना, बाहर वाले मेहमानों से अच्छे सम्बन्ध स्थिर रखने का कार्य करे । यदि घर के सब व्यक्ति इन कार्यों में पृथक-पृथक काम विभाजित कर अग्रसर होंगे तो घर का काम क्षण भर में हो सकेगा । किसी के ऊपर अनुचित भार भी न पड़ेगा ।

प्रातःकाल उठकर यदि प्रत्येक सदस्य स्वयं अपने कमरे में झाड़ू लगा ले, अपना बिस्तर स्वयं उठा दे, स्नान के उपरांत साबुन यथास्थान रख दे और तौलिया स्वयं धो डाले, अपने जूते पर स्वयं पालिश कर लिया करे, अपने कपड़े नियत स्थानों पर रखे, तो बहुत सहूलियत हो सकती है । जब एक-एक व्यक्ति काम छोड़कर लापरवाही करते हैं, तो काम पहाड़-सा प्रतीत होता है । यदि प्रत्येक आदमी अपना-अपना काम निपटाता चले तो सब कुछ क्षण भर में निपट जाता है ।

नौकर के ऊपर निर्भर रहता उत्तम नहीं है । नौकर आ जाने से प्रत्येक व्यक्ति मन में आलस्य, कामचोरपन, दूसरे पर शासन करने की भावना आती है । थोड़े दिन पश्चात् कार्यभार से त्रस्त होकर नौकर भाग जाता है । यही हाल रसोइया का होता है । कल्पना कीजिए कि यदि रसोइया एक-एक व्यक्ति के लिए बैठा रहे, तो कैसे भोजन का अन्त हो सकता है । प्रत्येक व्यक्ति को नियत समय पर जो बने, उसे प्रसन्नतापूर्वक खा लेने की आदत डालनी चाहिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

घर की सुव्यवस्था कैसे करें

आइए, मैं आपको अपने घर की सैर कराऊँ । यह देखिये, हमारा स्टोर है । इसमें जो सामने अलमारी है, इसमें छोटे-छोटे सात पीपे चुने रखे हैं । प्रत्येक पीपे पर कुछ लिखा हुआ है । ये सात प्रकार की दालें हैं, जिन पर दाल के साथ दिन का नाम दर्ज है । कौन-सी दाल किस दिन तैयार होगी, इसका प्रबन्ध पहले से ही है । मास के पहले दिन इन पीपों को देख लिया जाता है और मुँह तक भर दिया जाता है । दूसरी ओर मसालों के पीपे हैं, जिनमें वर्ष भर के लिए नमक, धनियाँ, मिर्च, हल्दी, जीरा, गरम मसाला पिसा हुआ रखा है । जब रसोई के मसालदान में कोई वस्तु कम हो जाती है, तो इसमें से ले ली जाती है । एक ओर दो बड़े बोरे गेहूँ के रखे हैं, एक पीपे में चावल हैं, गाय भैंस के लिए १ बोरी खल चुनी इत्यादि रखी है । एक पीपे में ढक्कन से बन्द आटा रखा हुआ है । खूँटी पर तराजू मौजूद है । नियत भिकदार में आटा और दाल तोल कर गृहमन्त्री देता है । इसी में करीने से सजी हुई एक ओर लकड़ी एकत्र रखी है । शेष लकड़ियाँ छत पर एकत्रित हैं । कुछ उपले भी मौजूद हैं । एक कोने में मिट्टी के तेल का पीपा और दो बोतलें रखी हुई हैं । मास के प्रारम्भ में देख लिया जाता है कि स्टाक में क्या-क्या है । स्टाक रखने वाला व्यक्ति बजट के लिए वस्तुओं के परिमाण के सम्बन्ध में सूचना देता है ।

ऊपर एक अलमारी में (जो बन्द है) पाँच तरह के अचार-मुरब्बे और घी एकत्रित है । इसे मास के प्रारम्भ में भर लिया गया है । कुछ तिल का तेल भी रखा है । इसी में पापड़, मँगौरी और सूखे मेवे-किशमिश, बादाम, छुहारे, खोपरा स्पेशल भोजन के लिए तैयार रखे हैं । अलमारी के निचले खाने में दो दर्जन कटोरियाँ, दो दर्जन चम्मच, कुछ थालियाँ गिलास इत्यादि एकत्रित हैं । कुछ बढ़िया गुड़ भी बन्द पीपे में सुरुचिपूर्ण ढँग से रखा है । इस स्टोर में एक मास के लिए तरकारी के अतिरिक्त सब कुछ एकत्रित कर लिया गया है ।

रसोई भी देख लीजिए । एक अलमारी में साफ किए हुए बर्तन सजे रखे हैं । महरी ने उसे धो दिया है, चूल्हा लिपा-पुता साफ है, पटरा धुला हुआ है । एक ओर आले में शक्कर का पीपा, चलनी, कुछ चम्मच, चाय का इन्तजाम है, दूसरी ओर मसालदान विराज रहे हैं । एक ओर दूध बिलोने का यन्त्र रखा है । दही जमा रखा है । मक्खन ढका रखा है । प्रत्येक बालक को प्रातः मक्खन से रोटी और एक पाव दूध का नाश्ता मिलेगा । उसके लिए सब तैयारी है । कुछ सूखी तरकारियाँ भी यहीं रखी हुई हैं । बाजार में बिकने वाले कुछ रायते, सूखे आलू, टमाटर की चटनी, अचार सिरका मौजूद है । यह आपको इतना साफ-सुथरा इसलिए प्रतीत होता है, क्योंकि प्रति ३ मास में घर के हर व्यक्ति मिलकर स्वयं इसकी पुताई कर डालते हैं । यह स्थान सबसे तुच्छ है ।

आगे आइये, यह हमारा गुशलखाना है, छोटा पर साफ । एक ओर साबुन तथा मंजन देखिये । दूसरी ओर साफ तौलिया लटक रहा है । हाथ धोने के पश्चात् इसे काम में लाया जाता है । प्रतिदिन प्रातःकाल फिनाइल से इसकी दीवारें और राख से नल की टोंटी माँज दी जाती है ।

पाखाना इतना साफ है कि कहीं मक्खी का नाम तक नहीं । इसी में आले में फिनाइल का डिब्बा है, नल है, बाहर से धोने के लिए पिचकारी है । बाहर के नल में लगाकर इसे प्रतिदिन खूब स्वच्छ कर दिया जाता है । पाखाना धुलाने की बारी प्रति सप्ताह बदलती है ।

घर के सहन में एक डायरी कील पर लटक रही है । उसी में एक पेंसिल बँधी है । जिस किसी वस्तु को बाजार से मँगाने की आवश्यकता होती है, वह कोई भी इस डायरी में दर्ज कर देता है । प्रत्येक बच्चा-बूढ़ा इसका प्रयोग करता है । अपनी जरूरत की वस्तु के साथ नीचे अपने हस्ताक्षर भी कर देता है । जब बाजार से चीजें लाने वाला व्यक्ति बाजार जाता है, तो इस सिल्प को फाड़कर ले जाता है और सबकी वस्तुएँ एक साथ आ जाती हैं ।

यह हमारा संदूकों का कमरा है । इसमें दस पन्द्रह छोटे-बड़े सन्दूक आप देख रहे हैं । यह सबसे बड़ा सन्दूक रजाई, बिछौना और कम्बलों के लिए है जिसमें फिनायल की तेज महक आ रही है । इसके अतिरिक्त प्रत्येक व्यक्ति का सन्दूक पृथक है । उस कोने के सन्दूक में मैले कपड़े रखे हैं, जो धोबी ले जायेगा । धोबी के घर धुला हुआ प्रत्येक कपड़ा आठ दिन तक चलना होता है । रात्रि की पोशाक पृथक है । प्रातःकाल नहा-धो कर स्वच्छ पोशाक धारण करने की योजना है । परिवार की आन्तरिक व्यवस्था सही कर हम अन्य कार्यों को निश्चिन्ततापूर्वक लग सकते हैं ।

तीन कमरे विशेष महत्व रखते हैं । पहला पूजा गृह है । यह अपेक्षाकृत छोटा पर, स्वच्छ अगरबत्तियों से सुगन्धित और धार्मिक चित्रों से सुसज्जित है । प्रातः सायं घर के सब सदस्यों को भजन, प्रार्थना और पूजा के लिए अनिवार्य रूप से यहाँ उपस्थित होना पड़ता है । बालकपन में डाले गये संस्कारों से प्रत्येक बालक आशावादी, संघर्षशील, आस्तिक और कर्त्तव्यपरायण होता है । इसी में एक छोटा घरेलू पुस्तकालय भी है, जिसमें अनेक छोटे बड़े धार्मिक, आध्यात्मिक और चरित्र निर्माण करने वाले ग्रन्थों, मासिक-पत्रिकाओं का संकलन है । भोजन के पश्चात् सब सदस्य इस कमरे में एकत्रित होते हैं । रेडियो, द्वारा मनोरंजन, समाचार तथा अन्य आवश्यक तत्वों का यहाँ ज्ञान कराया जाता है । बच्चे प्रायः इसमें अपना अधिकांश समय व्यतीत करते हैं ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हमारा शयनागार दो बातों में विशेष महत्व रखता है । यह खूब खुला हुआ हवादार, प्रकाशमय है । बिस्तर सफाई से एक ओर तय करके रखे हुए हैं । शाम होते-होते इन्हें बिछा दिया जायगा । ''बिस्तर लगाना और उठाना'' यह कार्य छोटे बच्चों का है । उन्हें सहायता के लिए एक बड़े व्यक्ति की डयूटी भी लगी हुई है । बच्चों के लिए और भी छोटे-छोटे कार्य चुन दिये गए हैं जैसे-भोजन खिलाना, कुर्सियों की सफाई, पुस्तकों को उठाकर यथास्थान पर जमाना, अपने वस्त्र, जूते बस्ता नियत स्थान रखना, छोटे शिशुओं को खिलाना,घर के पशु-पक्षियों, तोता, बिल्ली, कुत्ता, गाय को मामूली भोजन प्रदान करना इत्यादि । उनकी आयु के साथ धीरे-धीरे उन्हें अधिक जिम्मेदारी का स्थान प्रदान किया जाता है ।

सबसे अधिक परिश्रम बैठक में किया जाता है । प्रात: काल इसकी सफाई की जाती है । बिखरी वस्तुओं को यथास्थान रखा जाता है । कुर्सियों की झाड़ू-पोंछ, पुस्तकों, अलमारी, आलों, ब्रेंचों की सफाई, तस्वीरों की रक्षा, तथा कोनों, किवाड़ों या छत में लगे हुए जालों को तोड़ने का विशेष ध्यान रखा जाता है । इसमें किसी भी सदस्य को उसकी व्यक्तिगत वस्तु को छेड़ने नहीं दिया जाता, केवल बैठने, अपने मित्रों के साथ ठहरने, आमोद-प्रमोद तथा बातचीत करने का अधिकार है । बैठक से घर की प्रतिष्ठा रहती है । उसकी स्वच्छता के लिए प्रत्येक सदस्य प्रयत्नशील रहता है ।

घर के छोटे छोटे कार्य

इसके अतिरिक्त छतों की सफाई का ध्यान रहता है । खाटों की अदवायन खींचने, टूटी वस्तुओं की मरम्मत कराने, घर के पशुओं के चारे दाने की व्यवस्था करने, प्रत्येक बच्चे की शिक्षा में दिलचस्पी लेने, प्रतिमास उसकी परीक्षा लेने का नियम है । एक मास में बच्चा कितना आगे बढ़ा है । उसके शारीरिक, मानसिक, सांस्कृतिक स्तर में कितना परिवर्तन हुआ है । इसका निरीक्षण किया जाता है । बालक के मानसिक विकास में यथाशक्ति सहायता पहुँचाने का प्रयत्न किया जाता है । हमारा यह विचार है कि हमारी विचारधारा, हमारी प्राकृतिक वृत्तियों के अनुभव में निर्धारित होनी चाहिए । बच्चे का अनुभव बढ़ता है । उसके साथ उसका ज्ञान उत्तरोत्तर बढ़ता है । ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अभीष्ट ज्ञान प्राप्त करना, शारीरिक और मानसिक व्यापारों का विकास ही बच्चों की प्रारम्भिक शिक्षा है । जिस घर में बच्चों की चंचलता, उनकी हलचल ,जिज्ञासा, स्वप्रवृत्ति के अनुसार संगी साथी बनाने की चेष्टा, अनुकरण, हर्ष, शोक, भयादि व्यापार, सम्मति प्रदर्शन की इच्छा, एप्रीसीयेशन कुछ न कुछ करते रहना इत्यादि प्रवृत्तियाँ शुभ कार्यों में लग सकेंगी उसी परिवार के बच्चे आगे निकल जायेंगे । प्रत्येक बच्चे को कुछ जिम्मेदारियाँ सौंपिये । जितना ही बच्चा जिम्मेदरियों के प्रति जागरूक बनेगा । उतना ही उसका आत्मविश्वास बढ़ता जायगा ।

पारिवारिक जीवन सत्प्रवृत्तियों का साधना क्षेत्र

सुविधा, प्रसन्नता, निश्चिन्तता, सुसंस्कारिता जैसी सुखद सम्भावनाओं का तारतम्य संयुक्त परिवार के साथ जुड़ता है । इसलिए हर किसी को उसी सार्वभौम सुव्यवस्था के साथ अपने को जोड़ने का प्रयत्न करना चाहिए । साथ ही यह देखना चाहिये कि इसके साथ सुव्यवस्था का समावेश रहे । आचार संहिता का अनुशासन चले, कर्त्तव्य और अधिकार का ऐसा समन्वय हो कि किसी सदस्य को मनमानी करने का अवसर न मिले और किसी को अनुचित दबाव के कारण घुटना न पड़े । संयुक्त परिवारों में एक सहकारी समिति की भूमिका निभाई जा सकती है । अपने कर्त्तव्यों और दूसरे के अधिकारों का समुचित ध्यान रखने का अवसर मिलता रह सकता है ।

मनुष्य के समुन्नत समाज में परिवार एक ऐसी संस्था है, जिसके सहारे उस परिकर का नहीं, हर सम्बन्धित लोगों सदस्यों में से हरेक की सामयिक सुविधा एवं भविष्य की प्रगति सम्भावनाओं की पृष्ठभूमि बनती है । सम्मिलित शक्ति का संयुक्त परिवार में उद्‌भव होता है, उससे न केवल सदस्यों का वरन् समाज के हर घटक को किसी न किसी रूप में लाभ मिलता है । एक अच्छी परम्परा का निर्वाह होता रहता है । अनेक स्तर के लोगों के साथ सहयोग और सद्‌भाव का तारतम्य कैसे मिलाये रखा जाय इसका उपक्रम बनता है ।

एकाकी रहकर व्यक्ति अपनी मनमर्जी चलाने की सुविधा तो किसी प्रकार किसी सीमा तक प्राप्त कर लेता है, पर इसका अत्यधिक मूल्य चुकाना पड़ता है । दूसरों का सहयोग न करने से अपनी क्षमता का लाभ उठाने का लाभ तो मिल जाता है, पर साथ ही यह एक बड़ी हानि अपना सिलसिला चलाने लगती है कि अन्यों का सहयोग उस एकाकी प्रवृत्ति वाले को मिलना बन्द हो जाय । परिवार के अधिकांश कार्य ऐसे हैं जो मिल-जुलकर ही ठीक प्रकार बन पड़ते हैं । निवास-निर्वाह के लिए घर तो हर किसी को चाहिए, उसमें कितनी ही प्रवृत्तियाँ निरन्तर चलती रहती हैं । भोजन बनाना, सफाई, कपड़े-धोना, अतिथि-सत्कार, टूट-फूट की मरम्मत, चौकीदारी, हारी-बीमारी में सहायता और परिचर्या आदि यह लाभ संयुक्त परिवार में मिल सकते हैं । एकाकी प्रवृत्ति का मनुष्य बाजार से रोटी खरीदकर तो खा सकता है, यौनाचार भी पैसे के बल पर कर सकता है किन्तु गृह-व्यवस्था के साथ जुड़ी हुई सुविधाएँ प्राप्त करने से वंचित ही बना रहता है । घर छोड़कर जाने पर ताला तोड़कर चोर माल निकाल ले जाये-इसका खतरा सदा बना ही रहता है, फिर असुरक्षा की स्थिति भी तो बनी रहती है । औंधियारे की तरह एकाकी पक्ष डरावना रहता है, उसमें नीरसता और अनिश्चिन्तता भी जुड़ पड़ती है, ऐसा जीवन एक प्रकार से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भारभूत ही साबित होता है, भले ही किसी को कितनी ही सुविधा-साधन उपलब्ध क्यों न हों ?

संयुक्त परिवार मानवीय प्रगति की आधारशिला, सहकारिता का एक ऐसा आधार है जिसका निर्वाह करने में ही भलाई है । अच्छी परम्पराओं का निर्वाह उसी के सहारे बन पड़ता है । विवाह की परिपाटी को अब निरस्त नहीं किया जा सकता है, इसके बन जाने पर बच्चे भी होते ही हैं । अभिभावक जब वयोवृद्ध हो जाते हैं तो उनकी सेवा-सुश्रूषा भी कृतज्ञता के नाते कर्त्तव्य बन जाती है, इतना परिवार तो हर किसी के साथ गृहस्थ में प्रवेश करते ही बन जाता है । जहाँ कृषि कार्य, पशुपालन, घरेलू गृह उद्योगों का आर्थिक आधार है वहाँ तो उसे घर के सभी सदस्य मिल-जुलकर ही चला पाते हैं । दफ्तर में कमाने और सराय में रहने से जिनका काम चल जाता हो उनकी बात दूसरी है । इसी प्रकार वे लोग भी अपवाद हो सकते हैं जिन्हें सन्त परम्परा अपनाकर परिव्राजक की तरह लोकशिक्षण के लिए निरन्तर परिभ्रमण करना पड़ता है । किसी विशेष धुन के धनी भी ऐसे हो सकते हैं जिन्हें आजीविका की ओर से निश्चिन्तता है और अपने किसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए निरन्तर उसी में तन्मय रहना चाहते हैं । जिन्हें परिवार व्यवस्था में रुचि एवं अनुभव में से कुछ भी नहीं है ? अविकसित, अपंग स्तर के लोगों को तो किसी परिवार के आश्रित होकर ही रहना पड़ता है । वैसे वे लगते भले ही एकाकी हों, पर सर्वथा उस स्थिति में रहकर कोई जीवित तक नहीं रह सकता है । उनका पोषण परिवार, समाज या सरकार करे, यह एक अलग प्रश्न है ।

देखा ऐसा भी गया है कि विवाह होते ही कई लोग अभिभावकों या संयुक्त परिवार के सदस्यों की अपेक्षा अपनी नई कमाई का लाभ अकेले ही उठाना चाहते हैं । अधिक से अधिक शौक-मौज में पत्नी को सम्मिलित रखना चाहते हैं, ऐसों को यह ध्यान रखना चाहिए कि सन्तान होने पर उनके लिए खर्च तो बहुत करना पड़ेगा, कष्ट भी सहना पड़ेगा और देखभाल की जिम्मेदारियों में भी बँधना पड़ेगा, पर यह स्थिति भी देर तक नहीं रह सकती । समयानुसार आज के नवविकसित को भी वृद्ध होना पड़ेगा । तब वयस्क हुई संतान भी उसी का अनुकरण करेगी जो अपने जनक-जननी को करते देखा है, वे भी अपनी रुचि को लेकर अलग हो जायेंगे । वृद्धता की लाचारी आने पर तब उन्हें भी उसी प्रकार निराश्रित होना पड़ेगा जैसा कि उन्होंने अपने समय में स्वयं किया था । यह प्रथा चल पड़ने पर सभी अभिभावकों को वृद्धावस्था, अशक्तता और रुग्णता आदि की स्थिति में वयस्क बच्चों से भी कुछ आशा न रखने का मन बनाना पड़ेगा । यह हो नहीं सकता है कि कोई अपने अभिभावकों की तो उपेक्षा करे, पर स्वयं यह आशा रखे कि उसकी सन्तान पितृऋण चुकाने के लिए अपनी तत्परता प्रदर्शित करेगी । दोहरी परिपाटी चल नहीं सकती, लेने और देने के बाँट अलग-अलग प्रकार के नहीं हो सकते ।

अपनी मान्यताओं, भावनाओं और प्रवृत्तियों को शालीनता के ढाँचे में ढालने का अभ्यास परिवार में रह कर ही हो सकता है । आयु से या बुद्धि से बालक स्तर के व्यक्ति हर समूह में कुछ न कुछ बने ही रहते हैं, इनके साथ व्यवहार करने में वही रीति-नीति अपनाई जाती है जिसके सहारे बालकों के साथ सद्व्यवहार करते बन पड़ता है । बच्चे पग-पग पर भूल करते हैं, इनका ज्ञान-अनुभव स्वल्प होता है । अनुशासन पालने और शिष्टाचार बरतने के लायक भी उनका मानस नहीं होता, फिर भी उनके साथ क्षमा-करुणा का भाव आत्मीयता के सहारे बनाये रहना पड़ता है । शिशु पालन करने की जिम्मेदारी जिन पर भी आती है, वे इसी रीति-नीति को अपनाये रहते हैं । बच्चों की अविकसित स्थिति पर यदि खीजते रहा जाय, उन्हें उपेक्षा या प्रताड़ना देते रहा जाय तो बात बनेगी नहीं बल्कि बिगड़ेगी । बालकों के साथ किये जाने वाले व्यवहार को उनके साथ भी अपनाया जाना चाहिए, जो आयु के तो बड़े हो गये हैं, पर शालीनता के क्षेत्र में अभी भी बहुत पिछड़े हुए हैं । समाधान इसी प्रकार बन पड़ता है, सद्भाव इसी आधार पर बन सकता है । जैसे को तैसा बताने की नीति बच्चों के साथ नहीं अपनाई जाती, उन्हें हर भूल पर तिरस्कृत या प्रताड़ित भी नहीं किया जाता, फिर उन लोगों को ही क्यों आक्रोश का भाजन बनाया जाय जो आयु, शिक्षा या उपार्जन के क्षेत्र में तो बड़े हो चले किन्तु मानवी सद्व्यवहार की परम्परा सीखने-अपनाने का उन्हें अवसर ही नहीं मिला ।

बच्चों के साथ व्यवहार करते समय एक आँख प्यार की, एक आँख सुधार की रखनी पड़ती है । इसी आधार पर उनमें उत्साह बना रहता है और सुधार का उपक्रम चलता रहता है । यदि मात्र प्यार ही करते रहा जाय, उनकी हर भली-बुरी इच्छा को पूरा करते रहने का ही प्रयास किया जाय तो निश्चित रूप से बच्चे बिगड़ेंगे और ऐसे आग्रह करने लगेंगे जिन्हें पूरा करने के लिए न्याय, नीति एवं औचित्य को तिलांजलि ही देनी पड़ेगी । स्त्रियाँ बहुधा कीमती वस्त्राभूषणों के लिए हठ करती देखी गयी हैं, उनमें से कइयों को फिजूलखर्ची की आदत होती है । ठाठ-बाट के प्रदर्शन में घर के हर सदस्य का मन होता है, इसके लिए आवश्यक कार्यों में लगने वाली पूँजी को उड़ा डालने में उन्हें कोई संकोच नहीं होता । कई बार तो यह आग्रह इतना दबाव डालता है कि उसके लिए अनाचार करने या ऋण लेने के लिए बाधित होना पड़े । बच्चों का सही रीति से पालन करने वाले मोहवश ऐसे आग्रहों को मान्यता नहीं देते । प्यार में कमी की जाने का लांछन सहते हुए भी समझदार अभिभावक मात्र वही करते हैं, जो उन्हें करना चाहिए । प्यार के नाम पर अनुचित दबाव डालने वाला वस्तुतः व्यामोह ही होता है और उससे अनेक स्तर का अनहित ही होता है । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए हर सद्गृहस्थ को एक आँख प्यार की एक सुधार की रखनी पड़ती है । सघन आत्मीयता रखते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हुए भी शालीनता का निर्वाह ऐसे ही दृढ़ उपायों से बन पड़ता है । बात घर-परिवार तक सीमित नहीं है । लोक व्यवहार में भी इस नीति का कड़ाई के साथ परिपालन किया जाना चाहिए । अतिवाद के दोनों सिरों को पकड़ने की अपेक्षा मध्यमार्ग अपनाने का ही प्रयत्न करना चाहिए । न पक्षपात भरा हुआ दुलार किया जाय और न परायेपन के साथ जुड़ने वाले उपेक्षा भाव से प्रेरित होकर अनीति पर उतरा जाय । यह दोनों अवांछनीयताएँ राग-द्वेष के नाम से जानी जाती हैं, उन्हें अभ्यास में उतारने के लिए बालकों के साथ किया जाने वाला उचित व्यवहार अभ्यास का अंग बनता है, नीर क्षीर विवेक की दूरदर्शिता अपनाने के लिए सक्षम करता है, यह अवसर परिवार के बीच रहकर छोटों से निपटते रहने के माध्यम से ही परिपक्व किये जाते हैं । दृष्टिकोण इसी आधार पर परिमार्जित होता है ।

दाम्पत्य जीवन में सघन आत्मीयता ही उसे सफल बनाती है, जहाँ भी स्वार्थ संघर्ष चलेगा, कर्तव्य की उपेक्षा और अधिकार के लिए दबाव डालने का प्रयास होगा वहीं दाम्पत्य जीवन में विकृतियाँ भर जायेंगी । सन्तान देकर सहयोग पाया जाता है । अपने लिए कठोर और साथी के लिए उदार रहकर ही पति-पत्नी के बीच प्रगाढ़ घनिष्टता निभती है । यह व्यवहार उन सबके साथ ही किया जाना चाहिए जिन्हें अपना समझा जाता है, जिनके साथ काम करने का सहचरत्व निभाने की अपेक्षा की जाती है । साथी के सद्गुण दीखने-लगते हैं और उसे सुधारने, बढ़ाने, सुविधा देने की रीति-नीति अपनानी होती है । यदि सभी को अपना मानने का दृष्टिकोण हो तो उसी आत्मीयता के साथ सुसम्बद्ध उदारता का परिचय देना होगा । आत्मवत् सर्वभूतेषु की उत्कृष्टता का अभ्यास यदि पति-पत्नी स्तर के मैत्रीभाव से सीखा-समझा और अपनाया जा सके तो उसे गृहस्थ जीवन की पाठशाला में प्राप्त की गई एक बड़ी उपलब्धि माना जा सकता है ।

कृतज्ञता भावना क्षेत्र की एक उच्चस्तरीय विभूति है, उसका अस्तित्व जहाँ भी होगा वहाँ यही प्रयास चल रहा होगा कि जिन्होंने अपने साथ जो उपकार किये हैं, उन्हें ब्याज समेत वापिस करके उऋण हुआ जाय । अभिभावकों के साथ वयस्क सन्तान को इसी श्रद्धा-सद्भावना का परिचय देना पड़ता है । समाज के अनेकानेक पक्ष एवं घटक अपनी प्रगति में निरन्तर सहायक रहे हैं, ऐसी दशा में यदि समाज ऋण से उऋण होने के लिए सार्वजनिक सेवा को भी निजी स्वार्थ साधना से कम नहीं वरन् उससे अधिक ही महत्व देना चाहिए ।

आर्थिक स्वेच्छाचार परिवार के बीच निभता नहीं, अनाचार की उच्छृंखलता भी सद्गृहस्थ अपना नहीं सकते । उसमें रहते हुए प्रगति पथ पर नीति-मर्यादाओं का ध्यान रखना पड़ता है, एक सदस्य अनाचार पर उतारू हो तो समूचे परिवार की व्यवस्था और प्रगति खतरे में पड़ जाती है-यह अनुभव परिवार में रहकर किया जा सकता है । एक दूसरे के साथ किस प्रकार सघन सहयोग रखा जा सकता है ? उनका व्यावहारिक अभ्यास उस परिवार के हर सदस्य को सीखना-समझना और अपनाना पड़ता है । यही हैं वे उपलब्धियाँ जिन्हें परिवार के बीच रहकर अभ्यास में उतारा और उनका प्रयोग सार्वजनिक जीवन में करते हुए अपनी और दूसरों की सुख-शांति को अक्षुण्ण रखा जा सकता है ।

संयुक्त परिवार-व्यवस्था की समस्याएँ और समाधान

कई लोग जहाँ इकट्ठे रहेंगे, वहाँ भिन्न-भिन्न समस्याएँ भी सामने आती रहेंगी । वे ज्यादा गम्भीर रूप लें, इसके पूर्व ही उन्हें सुलझाने के प्रयास कर लेना उचित होता है ।

वस्तुतः परिवार-व्यवस्था एक जनतांत्रिक व्यवस्था है । जब तक यहाँ प्रजातांत्रिक वातावरण रहता है, सभी वयस्क सदस्यों की राय लेकर आपसी विचार-विमर्श से निर्णय लिये जाते हैं । आय-व्यय का हिसाब गुप्त नहीं रखा जाता, अपितु उस पर पारिवारिक गोष्ठी से विचार-विमर्श होता है । सबकी राय से आवश्यक काट-छाँट के साथ ही अगला बजट तैयार किया जाता है इसी प्रकार अन्य समस्याओं के हल का उपाय भी सामूहिक रूप से सोचा जाता है ।

जहाँ इन जनतांत्रिक प्रवृत्ति का लोप होता है, वहीं से संयुक्त परिवार व्यवस्था लड़खड़ाने लगती है और पग-पग पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । जहाँ समानता के स्थान पर विषमता का विष सामने आया वहाँ शान्ति-सुव्यवस्था भंग होने लगती है ।

अधिकार का मद प्रबल होता है । जब यह मद बढ़ने लगता है, तो पारिवारिक सन्तुलन गड़बड़ होने लगता है । श्रद्धा और सम्मान थोपे नहीं जा सकते । रामचरितमानस में कहा गया है कि मुखिया को मुँह की तरह होना चाहिए जब तक मुखिया का व्यवहार इस प्रकार का रहता है, सभी के मन में उसके प्रति श्रद्धा सम्मान रहता है । उसका अनुशासन सभी का हितावह लगता है । जब वह पक्षपात या मनमानी करने लगता है तो श्रद्धा जाती रहती है और अनुशासन की अवहेलना आरम्भ हो जाती है । कई बार मुखिया के आचरण को ठीक-ठीक न समझ पाने के कारण भी असन्तोष भीतर ही भीतर सुलगता रहता है । इस विचार-भ्रम का कारण बनता है परिवार में सहज संशय की स्थिति का न होना और अनावश्यक संकोच का वातावरण बढ़ जाना । बढ़ी-चढ़ी अपेक्षाओं, अधिकार लिप्सा तथा विचार भ्रम के कारण अधिकतर घरों में सास-बहू, देवरानी-जेठानी, ननद-भाभी के झगड़े आये दिन देखने को मिलते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

३.५५ समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र

पारिवारिक कलह का एक कारण अनावश्यक संकोच या सम्वादहीनता की स्थिति होती है । परिवार के जिम्मेदार लोगों का यह कर्त्तव्य है कि जो गलती कर रहा हो, उसे एकान्त में प्रेमपूर्वक भली-भाँति समझा दिया जाय । समझाने पर ऊँची-नीच, लाभ-हानि सबकी समझ में आ जाती है । ऐसा न किया जाकर जहाँ पहले तो लम्बे समय तक चुपचाप सहा जाता है और बाद में आवेश-आक्रोश की कटुतापूर्ण अभिव्यक्ति की जाती है, वहाँ असन्तोष बढ़ता ही जाता है । अपमानित व्यक्ति क्रुद्ध होकर प्रतिशोध भावना से भर जाता है । अत: परिवार के प्रत्येक सदस्य के स्वाभिमान का ध्यान रखा जाना चाहिए ।

जब परिवार में कार्य विभाजन ठीक से नहीं किया जाता तब भी असन्तोष बढ़ता है । घरेलू जिम्मेदारियाँ ठीक से बाँटी जानी चाहिए । स्त्रियों के अधिकांश झगड़े और मनमुटाव जिम्मेदारियों के अनुचित वितरण के ही कारण होते हैं । इसी में अधिकारों का उचित विभाजन न होना भी शामिल है । जब छोटे-छोटे काम में भी निर्णय के लिए किसी एक व्यक्ति का ही मुँह जोहना पड़े तो परेशानियाँ और झंझट बढ़ेंगे ही ।

बच्चों को लेकर होने वाले झगड़े अनुचित मोह का परिणाम होते हैं । यह भी वहीं पनप पाता है जहाँ पारिवारिक मर्यादा न हो तथा उन्मुक्त पारिवारिक चर्चा गोष्ठियाँ न होती हों ।

परिवार में कठिनाइयाँ तब भी पैदा होती हैं जब अनुचित रूप से घर में पैसा आता है और उसके वैसे ही उपयोग की स्वाभाविक इच्छा होती है । अनुचित आय अनाप-शनाप व्यय को प्रोत्साहित करती और आपसी दुर्भाव तथा कलह को जन्म देती है ।

दूसरों की आँख बचाकर अपने लिए वस्तुएँ जुटाना या स्वादिष्ट पदार्थ खाना, चुपके-चुपके निजी कोष बनाना, अपने मनोरंजन, फैशन आदि पर अनुपात से अधिक खर्च करना, परिवार में असन्तोष, द्वेष, दुर्भाव तथा कलह का कारण बनता है । विशेष आवश्यकता होने पर कभी कभार विशेष पूर्ति की जरूरत पड़ सकती है । तो उस वास्तविकता को घर वाले भी समझ जाते हैं । बहानेबाजी किसी से छिपी नहीं रहती ।

गलती करना मनुष्य का स्वाभाविक गुण है । जाने-अनजाने हुई गलती को स्वीकार करने में हेठी का अनुभव न किया जाय, तो परिवार में आये दिन उत्पन्न होने वाले अनेक विवादों का समाधान निकलता रह सकता है ।

परिवार के किसी भी वयस्क समर्थ सदस्य में जब अहंकार बढ़ जाता है और वह पूरे परिवार का पोषक स्वयं को मानने लगता है, तब उसके आचरण में औद्धत्य बढ़ने लगता है । यह औद्धत्य अनेक झंझटों का कारण बनता है ।

परिवार का कोई भी सदस्य जब मनमानी करने पर उतारू हो जाता है तब भी पारिवारिक सौहार्द्र भंग होने लगता है । स्व-केन्द्रित मनोवृत्ति और पारिवारिक भावना साथ-साथ नहीं चल सकती । दो में से एक को ही चुना जा सकता है ।

मानवी प्रकृति में स्वतन्त्रता का भाव सन्निहित रहता है । व्यक्तिगत विचार स्वातन्त्र्य की गुंजाइश रहनी चाहिए । किन्तु व्यवहार-नियन्त्रण आवश्यक है । अनैतिकता एवं अनौचित्य को प्रोत्साहित करने वाला चिन्तन वस्तुत: विचारधारा नहीं, मनोविकृति है । उस पर रोक लगाना स्वतन्त्रता का हनन नहीं, आवश्यक अनुशासन है । अधिक उत्तम गुण तो आत्मानुशासन है । आत्मानुशासन एवं स्वतन्त्रता परस्पर पूरक हैं किन्तु जहाँ आत्मानुशासन की कमी हो, वहाँ बाहरी अनुशासन आवश्यक हो जाता है ।

इस संदर्भ में यह महत्वपूर्ण तथ्य भी स्मरणीय है कि परिवार में सभी को एक दूसरे के प्रति आदर की भावना बनाये रखनी चाहिए । परिवार की मर्यादा इसी का नाम है ।

इस प्रकार पारिवारिक जीवन में उत्पन्न होने वाली मुख्य कठिनाइयाँ ये हैं-(१) अधिकार मद से उत्पन्न असन्तुलन, पक्षपात एवं मनमानी । (२) परिवार के सदस्यों में कार्य तथा अधिकार का उचित बँटवारा न होना । (३) विचार-भ्रम एवं अनावश्यक संकोच ।(४) अनुचित कमाई से उत्पन्न बुद्धि दोष । (५) दुराव-छिपाव । (६) औद्धत्य एवं मनमानी । (७) आत्मानुशासन एवं पारिवारिक अनुशासन का अभाव । (८) आय-व्यय तथा अन्य महत्वपूर्ण बातों की परिवार में सभी वयस्कों को जानकारी न होना तथा सबके विचार-विमर्श से निर्णय न किया जाना । इन सबके समाधान ये हैं-

(१) पारिवारिक भावना का होना यानी पारस्परिक आत्मीयता-सद्भाव ।

(२) सभी के स्वाभिमान की रक्षा, परस्पर सम्मान एवं शिष्टाचार ।

(३) बजट बनाकर ही खर्च किया जाये ।

(४) आय-व्यय की पूरी जानकारी हर वयस्क सदस्य को हो ।

(५) पारिवारिक गोष्ठियाँ हों, जिनमें खुली एवं सौजन्यतापूर्ण चर्चा हो तथा महत्वपूर्ण निर्णय लिये जायें ।

(६) पारिवारिक मर्यादा का निर्वाह किया जाय, अनुशासन एवं आत्मानुशासन हो ।

(७) शील एवं सदाचार कभी न छोड़ा न जाय । परिश्रम तथा ईमानदारी की कमाई ही की जाय ।

(८) किसी का अहंकार न बढ़ने दिया जाय और असमानता का पोषण न होने दिया जाय ।

समस्याओं का समाधान कठिन नहीं । पारस्परिक प्रेम अक्षुण्ण रहे तथा व्यापक दृष्टिकोण अपनाया जाय, तो संयुक्त परिवार सुख-शान्ति के उत्कृष्ट आधार बन सकते हैं और हर सदस्य को उनसे आनन्द की ही अनुभूति होगी । जहाँ यह सम्भव न हो, वहाँ भावनाविहीन प्राण रहित ढाँचे को ढोते रहना व्यर्थ ही है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कौटुम्बिक एकता से ही क्लेश-कलह मिटेंगे

एक घर में कई पशु या मनुष्य रहते हैं । उनमें साधारण कहन-सुनन भले ही हो चले पर ऐसा मल्लयुद्ध कभी नहीं होता जिसमें किसी को भारी आघात लगे या जान-जोखिम जैसा विग्रह खड़ा हो । हम सब एक ही घर के सदस्य हैं । हमारे स्वार्थ परस्पर जुड़े हुए हैं, यह समझ जितनी विकसित होती जाती है, उसी अनुपात से वे हिल मिलकर रहने लगते हैं । इतना ही नहीं, एक-दूसरे की सहायता भी करने लगते हैं ।

मनुष्य जाति में आये दिन विग्रह बने रहते हैं और युद्ध ठनते रहते हैं । पिछले दो विश्वयुद्धों की रोमांचकारी घटनाएँ तो स्मृति पटल के सामने ही हैं । उनके पश्चात् भी १७५ के करीब छोटे-बड़े युद्ध हो चुके हैं । उनमें भी धन-जन की कम हानियाँ नहीं हुई हैं । पिछली शताब्दियों के युद्ध भी कम भयानक नहीं रहे । महाभारत से लेकर गुप्तकालीन, मुगलकालीन युद्धों का विवरण तैयार किया जाय तो वह भी कम भयानक नहीं रहे । व्यक्तिगत क्षेत्रीय दंगे-बलवे आये दिन होते रहते हैं । यह गरम युद्धों की मारधाड़ वाली चर्चा है । अन्याय, अपहरण की दुहाई देने वाले शीत युद्धों द्वारा होने वाली बर्बादी को भी यदि गिना जाय तो प्रतीत होगा कि मिल-जुलकर रहने की स्नेह-सहयोग की प्रवृत्ति से होने वाले लाभ और विग्रह विनाश को तराजू में तौलने पर दोनों लगभग समान ही बैठते हैं । वस्तुस्थिति को देखते हुए कितने ही खिन्न मन लोगों के एकाकी-अलग रहने पर और उदासीनता, असहयोग में दिन गुजारने की बात समझ में आती है और मन करता है कि एकाकी रहकर अन्य पशु-पक्षियों की तरह दिन गुजार लिये जायें तो क्या हर्ज है ? इस प्रगति को लेकर क्या किया जाय जो किसी न किसी बहाने आये दिन विग्रह उत्पन्न करती है और विक्षोभ तथा विनाश सामने खड़ा करती है ।

विचारणीय यह है कि समझदारी का दावा करने वाला मनुष्य क्यों विग्रहों में इतना समय, श्रम और धन खर्च करता है ? प्राण गँवाता और द्वेष-उद्वेग मोल लेता है । इसकी अपेक्षा यही क्षमता, साधन और कौशल यदि प्रगति के साधनों में लगाये गये होते तो सचमुच ही मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग का अवतरण हो गया होता ।

इस संदर्भ के कारण खोजने के लिए हमें गहराई तक उतारना होगा । यदि वास्तविकता हाथ लग सके तो इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि विलगाव की अनेक दीवारें ऐसी खड़ी कर ली गई हैं जिनके कारण परायापन ही सर्वत्र संव्याप्त हो गया है । अपनापन न जाने कहाँ चला गया ? यदि वह बना रहा होता तो निश्चित ही हम सब एक दूसरे के सहयोगी रहे होते और अहित करने की बात न तो सूझ पड़ती और न वैसा करने के लिए हाथ ही उठते । कसाई भी अपने बच्चों को काटकर उनका माँस नहीं बेचता । क्योंकि बच्चों के साथ अपनापन जुड़ा हुआ है । डाकू हत्यारे भी उन्हीं का विनाश करते हैं, जिन्हें वे पराया मानते हैं । अपने कुटुम्बियों की हत्या वे भी नहीं करते । यदि मनुष्यों के बीच परस्पर आत्मीयता की भावना रही होती तो आक्रमण करने और घात चलाने की सम्भावना ही समाप्त हो जाती । युद्धों में प्रतिपक्षी को 'दुश्मन' कहा जाता है । तभी सैनिक लड़ने के लिए तत्पर होते हैं । यदि इनकी समझ इस कथन को स्वीकार करने को इन्कार कर दे और प्रतिपक्षी सैनिकों को भी किसी माँ के बेटे, किसी पत्नी के पति, किन्हीं बच्चों के बाप समझते हुए अपना कुछ भी न बिगाड़ने वाला समझा जा सके तो फिर गोली चलाना और उन्हें धराशायी बनाना कठिन हो जायेगा । अन्तरात्मा वैसा कृत्य करने से रोकेगी ।

मनुष्यों को परस्पर विभाजित करने वाली दीवारें खड़ी हो गयी हैं, उनके सम्बन्ध में हमें गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए और उन्हें गिराने का प्रयत्न करना चाहिए ।

विभाजन रेखाओं में चार प्रमुख हैं-(१) धर्म सम्प्रदाय, (२) देश क्षेत्र, (३) भाषा विविधता, (४) कानून और प्रचलन । यदि इनके आधार पर मनुष्य को मनुष्य के लिए पराया सोचने की दुर्बुद्धि मिट सके तो फिर सभी अपने लगेंगे और अपनों की सेवा, सहायता, सुख-शान्ति एवं प्रगति, समृद्धि की ही आकांक्षा होगी । युद्ध करने और मार गिराने का मन न करेगा । छोटे-मोटे मतभेद होंगे तो उन्हें पंचायतों से तय करा लिया जायेगा । इतने पर भी हल न हो तो यह सोच लिया जायेगा कि युद्ध की तुलना में थोड़ा घाटा उठा लिया जाय । यदि कोई अनीति बरतने पर ही उतारू हो तो शेष जनसमुदाय उसका बहिष्कार एवं हर काम में असहयोग करने के लिए उद्यत हो जाये तो वह दंड इतना बड़ा होगा कि उसके दबाव से कोई भी 'चीं' बोल सके और उलटी राह छोड़कर सीधी पर आ सके ।

अनादिकाल में एक ब्रह्माजी के ही सब पुत्र थे जो मनुष्य कहलाये । समझदारी का सतयुग जब भी आवेगा तब फिर सभी को कुटुम्बी की तरह रहना होगा । मध्य काल में यही सबसे बड़ी भूल हुई कि विरानेपन की भावना बढ़ाने वाले चित्र-विचित्र आडम्बर रचे और पनपाये गये । अब बदलते हुए समय ने वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ दुनिया को बहुत छोटी कर दिया है । द्रुतगामी वाहनों ने यह सुविधा उत्पन्न कर दी है कि विश्व के एक कोने से दूसरे कोने तक कुछ ही क्षणों में-घण्टों में पहुँचना सम्भव हो सके । रेडियो, टेलीविजन के सहारे वार्तालाप और परामर्श की सुविधा सम्भव हो गई है । अखबार एक दिन के समाचार सारी दुनिया में दूसरे दिन फैला देते हैं । संगठनों के सहारे संसार भर के मनुष्य एक सूत्र में बँधते, एक निर्णय करते और उसे कार्यान्वित कर गुजरते हैं । एकता के सम्बन्ध में राष्ट्रसंघ जैसे माध्यमों से कुछ प्रयास

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी हुए हैं पर अभी वह प्रक्रिया समग्र नहीं हो पाई जिसके सहारे खोई हुई एकता को पुनः उपलब्ध किया जा सके । समय आ गया कि उस कमी को पूरा करने के लिए समग्र प्रयत्न किये जायें और माला के बिखरे हुए दाने एक सूत्र में फिर से पिरोये जायें ।

देशों के विभाजन में इस पृथ्वी की दुर्गति न की जाय । धरती माता हम सभी की है । उस पर रहने की, आवागमन की और उत्पादनों के उपभोग की स्वतन्त्रता उसके समस्त पुत्रों को समान रूप से मिलनी चाहिए । अफ्रीका, अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि की वीरान जमीन पर चीन, भारत देश के घिच-पिच वालों को बखेरकर बसा दिया जाय तो सभी को सुविधा मिलेगी । तेल के उत्पादन पर के देशों का ही नहीं, वरन् जहाँ भी उसको जितनी आवश्यकता हो वहाँ उसके लाभ सभी को मिलना चाहिए । विश्व का शासन एक संस्था के अन्तर्गत हो । विश्व सेना एवं विश्व न्यायालय के माध्यम से जहाँ-कहीं गड़बड़ी हो, उसका नियंत्रण किया जाय । अलग-अलग देशों की अलग-अलग सेनाएँ न हों । जिस प्रकार एक जिले से दूसरे जिले में आने जाने की सुविधा रहती है, उसी प्रकार एक देश के नागरिक दूसरे क्षेत्र में बिना रोक-टोक के आ जा सकें और जहाँ भी आजीविका उपलब्ध हो, वहाँ बिना रोक-टोक उसे प्राप्त कर सकें । इस प्रकार एक शासन तले कानून, व्यवस्था, टैक्स, वितरण आदि की एक जैसी नीति सर्वत्र लागू हो । तो हर किसी को "वसुधैव कुटुम्बकम्" का विश्व परिवार का आभास होगा ।

दूसरा विभाजन भाषाओं के कारण हुआ है । सर्वत्र एक भाषा बोली और एक लिपि लिखी जाय । इससे उस कठिनाई का निवारण होगा जिससे भाषाई क्षेत्रों के निवासी गूँगे बहरे बने बैठे रहते हैं और एक दूसरे के साथ विचारों का आदान-प्रदान नहीं कर सकते । इस विभेद से ज्ञान की धाराएँ अवरुद्ध होकर रह जाती हैं । अँग्रेजी में छपे साहित्य को अरबी या बँगाली भाषी लोग तभी पर सकते हैं जब उसका अनुवाद उनकी भाषा में हो अथवा उस विदेशी भाषा का इच्छुक लोग अध्ययन करें । यह दोनों ही कठिनाइयाँ असाधारण हैं । इसके कारण कितना ही उपयोगी ज्ञान क्यों न हो, भाषाओं की सीमा में अवरुद्ध होकर बैठा रहता है । संसार की ६०० भाषाओं में अनुवाद या प्रकाशन करना अत्यधिक कठिन है । फिर इतनी सारी लिपियों के लिए प्रेस टाइप बनाने की टाइपराइटर होने की व्यवस्था कितनी कष्टसाध्य-कितनी व्ययसाध्य है इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है । इसका सरल समाधान एक भाषा, एक लिपि होने से निकल आता है । उच्चस्तरीय ज्ञान विज्ञान का साहित्य लिखे जाने के तुरन्त बाद संसार भर में फैल सकता है । अधिक संख्या में बनने के कारण वह सस्ता भी रह सकता है । ज्ञान को व्यापक बनाने के लिए भाषा लिपि की एकता का होना नितान्त आवश्यक है । इन दिनों भाषा की एकता लोगों में आत्मभाव बढ़ाती है, तब विश्व भाषा के कारण संसार भर के लोग परस्पर आत्मीयता के बन्धनों में बँधकर प्रेमपूर्वक रह रहे होंगे ।

शासन और भाषा की तरह संसारभर का मानव धर्म एक होना चाहिए । साम्प्रदयिक मतभेदों का समापन होना चाहिए । जो बातें नीति और विवेकसम्मत हैं वह सभी धर्मों से ली जा सकती हैं । जो आवश्यक हों वे नये सिरे से जोड़ी जा सकती हैं । जो मान्यताएँ उपयोगिता खो चुकीं वे पुराने कपड़ों की तरह हटाई जा सकती हैं । दुराग्रह किसी का नहीं । "हमारा सो सही-बिराना सो गलत" की हठवादिता छोड़ी जा सके तो विश्व धर्म बनने में तनिक भी कठिनाई न हो और फिर इस कारण लड़ने-झगड़ने की कहीं कोई सम्भावना न रहे । अपने धर्म में दीक्षित करने के लिए कोई किसी को न तो प्रलोभन दे और न दबाव डाले । साम्प्रदायिक दुराग्रह के कारण आये दिन जो खूनखराबी होती हैं उसकी कोई गुंजाइश ही न रहे । विश्व धर्म सभी का एक हो तो विवादों का शास्त्रार्थों का, चित्र-विचित्र धर्म शास्त्रों, कर्मकाण्डों और कथा पुराणों का सिरदर्द मिटने से सभी को हलकेपन की अनुभूति होगी । कैसी अच्छी स्थिति होगी वह ?

इसी प्रकार चौथा चरण सांस्कृतिक एकता का है । वस्त्र विन्यास में इतने अधिक प्रकार के अन्तर न रहें तो सभी गरीब-अमीर एक जैसे दृष्टिगोचर हों और बक्सों भरे विभिन्न डिजाइनों की वस्तुएँ बनवाने में अकारण पैसा खर्च न हो और ढेरों कबाड़ जमा करने की आवश्यकता न पड़े । पर्व त्यौहार सबके एक हों, रीति रिवाज सब एक जैसे अपनायें । प्रथा परम्परा सर्वत्र एक जैसी मिले तो आजकल पड़ोसी-पड़ोसी के बीच जो भेदभाव पाया जाता है, उसका कोई स्वरूप दृष्टिगोचर न हो ।

देश, धर्म, भाषा, संस्कृति की एकता अपनाकर मनुष्य-मनुष्य के बीच पाया जाने वाला वर्तमान अन्तर पूरी तरह समाप्त हो सकता है । ऐसी दशा में सब एक कुटुम्ब के सदस्य होकर रह सकते हैं । खान-पान से लेकर अभिरुचियों तक में एकता बनेगी तो जीवन कितना हलका फुलका, सरल सस्ता और हँसता-हँसाता व्यतीत होने लगेगा । मिल-बाँटकर खाने की प्रवृत्ति सच्चे अर्थों में पारिवारिक एकता की स्थापना करेगी । ऐसी दशा में, युद्धों का कोई कारण शेष न रहेगा और इसमें होता रहने वाला शक्तियों का अपव्यय रुककर प्रगति प्रयोजनों में लगेगा । नई दुनिया इसी प्रकार की बनेगी तभी सुख-शान्ति का द्वार खुलेगा । हममें से प्रत्येक को इस एकता की दिशा में ही यथासम्भव छोटे-बड़े कदम उठाने चाहिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लार्जर फेमिली विश्व परिवार का एक आदर्श लघु संस्करण

देश-काल की आवश्यकता के अनुरूप मनुष्य के चिन्तन में समय-समय पर परिवर्तन आता रहा है । विचारकों एवं चिन्तकों ने युग की माँग को देखते हुए अनेकों प्रकार के विचार दिए हैं जो अपने समय में समाज के नवनिर्माण एवं विकास में विशेष रूप से सहायक रहे हैं । अविकसित समाज के लिए कभी राजतंत्र शासन व्यवस्था के लिए अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हो चुका है । पर अब उसकी उपयोगिता जाती रही जिन देशों में वह प्रणाली विद्यमान है, देर सबेर जाग्रत जनमानस उसे समाप्त कर ही देगा । डिटेक्टर शिप-राजतन्त्र का ही बदला हुआ रूप, कुछ समय बाद प्रकट हुआ । रूस, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों में कुछ समय तक वह भी सफल रहा । युग की माँग ने क्रान्तियों को जन्म दिया और समाज ने उस निरंकुश शासन व्यवस्था को उखाड़ फेंका । थोड़े समय के हेर-फेर से कितने ही देशों में क्रान्तियाँ हुईं । रूस तथा जर्मनी से शनैः शनैः डिक्टेटरशिप प्रणाली समाप्त हुई ।

शासन प्रणाली में हेर-फेर भी चलता रहा । उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में समाजवादी विचारधारा की हवा चली और वह प्रचण्ड होती चली गयी । प्रजातंत्र और साम्यवाद भी समाज व्यवस्था के रूप में उभरकर आये जिन्होंने विश्व के अधिकांश देशों को प्रभावित किया । पूँजीवाद भी समाजवाद की आड़ में साँस लेता रहा और आज भी किन्हीं-किन्हीं देशों में अपना अस्तित्व किसी न किसी रूप में बनाये हुए हैं । पर कल नहीं तो परसों वह भी दुनिया से सिर पर पैर रखकर भागने वाला है । विश्व मानव यह अनुभव करने लगा है कि बढ़ती हुई जनसंख्या एवं उसकी माँगों की पूर्ति समाजवादी व्यवस्था के रहते समुचित ढंग से नहीं हो सकती । कुछ व्यक्ति अमीर बनते जाएँ और कुछ को एक समय की रोटी भी नसीब न हो, मानवता को अब यह मंजूर नहीं । जिन्होंने कसी तरह विपुल सम्पत्ति एकत्रित कर ली है और उसे दबाये हुए हैं देर सबेर उन्हें स्वेच्छा अथवा अनिच्छा से समाज को समर्पित करना होगा । जाग्रत करना विश्वमानस अगले दिनों जबरन उन्हें यह कदम उठाने को बाध्य करेगा ।

युग की आवश्यकता के अनुरूप दो प्रणालियाँ अधिक लोकप्रिय हो रही हैं लोकतंत्र और साम्यवाद । दोनों के मौलिक सिद्धान्तों में थोड़ा अन्तर है अन्यथा लक्ष्य एक ही है समाजवादी व्यवस्था कायम करना । दोनों में से उपयोगी कौन है यह विवादास्पद विषय है । सम्बन्ध विषय का विश्लेषण करना यहाँ अपना लक्ष्य नहीं है । वादों की चर्चा इसलिए करनी पड़ी ताकि उनमें समाहित समाज निर्माण के कुछ उपयोगी सिद्धान्तों की व्याख्या की जा सके जो समस्त मानव जाति के लिए उपयोगी है । उदाहरणार्थ, कम्युनिज्म की कम्यून प्रणाली सिद्धान्ततः एक ऐसी सुन्दर व्यवस्था है जो समाज के पुनर्गठन में विशेष रूप से सहायक सिद्ध हो सकती है ।

तीन देशों का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जिन्होंने कौटुम्बिक समाज व्यवस्था को साकार रूप प्रयोगिक रूप में देना आरम्भ कर दिया है । इजराइल, क्यूबा और चीन-इन देशों में संयुक्त जीवन के छुट-पुट प्रयोग चल पड़े हैं । इजराइल एक छोटा सा देश है जिसकी आबादी मात्र डेढ़ करोड़ है ने इस दिशा में प्रेरक उदाहरण प्रस्तुत किया है । संयुक्त कौटुम्बिक प्रणाली के आधार पर जीवनयापन कर रहे समुदाय को इजराइल में क्वुत्सा या दर्गेनिया कहते हैं । इसका प्रथम प्रयोग फिलस्तीन में १९१० में आरम्भ किया गया । संयुक्त रूप से कृषि फार्मों में काम करने तथा उत्पादन का आवश्यकतानुसार उपयोग करने का यह अभिनव प्रयोग छोटे स्तर पर सीमित व्यक्तियों को लेकर किया गया पर वह अत्यन्त सफल रहा । यह आरम्भिक प्रयास इजराइल वासियों के लिए प्रेरक बना । उन्होंने सोचा कि एकाकी रहने और सम्पदा का अकेले उपभोग करने की नीति भले ही तात्कालिक अच्छी लगे पर समाज के लिए वह अत्यन्त हानिकारक है । उपयोगी विचारधाराएँ और व्यवस्थाएँ देर सबेर वरेण्य होती हैं । यह सिद्धान्त अक्षरशः सही उतरते इजराइल में देखा गया । इजराइल की राजनीति अंतर्राष्ट्रीय नीतियाँ क्या हैं ? कितनी उचित हैं ? इस विवाद में पड़ना अपना उद्देश्य नहीं है । किसी भी राष्ट्र की आंतरिक गृह व्यवस्था कैसी आदर्श होनी चाहिए, उसके नमूने के रूप में यहाँ यह चर्चा की जा रही है ।

कम्यून व्यवस्था पर आधारित दर्गेनिय के प्रयोग से अन्यों को भी प्रेरणा मिली । अन्य स्थानों पर भी इस प्रकार के सामूहिक जीवन पद्धति के प्रयोग आरम्भ हो गये । एक आँकड़े के अनुसार सन् १९६० तक ऐसे गाँवों की संख्या पाँच सौ तक जा पहुँची, जहाँ कम्यून प्रणाली की जीवन पद्धति को लोगों ने सहर्ष स्वीकार किया । अनुमान है कि इजराइल के एक हजार गाँव संयुक्त कौटुम्बिक प्रणाली की व्यवस्था द्वारा परिचालित हैं । लगभग पाँच लाख व्यक्ति दर्गेनिया में संयुक्त रूप से रहते हैं । एशिया के पश्चिमी छोर पर प्रतिकूलताओं के बीच जूझते हुए इजराइल जैसे छोटे से राष्ट्र ने संयुक्त जीवन क्रम का जो उदाहरण प्रस्तुत किया है वह अद्भुत है । संकीर्ण स्वार्थपरता से विरत होकर एक वृहत्तर परिवार को अंगीकार करने का यह प्रयास अपने में बेमिसाल है । 'दर्गोनिया' ने अनेक प्रकार की समस्याओं का एक व्यावहारिक हल प्रस्तुत किया है ।

इजराइल की अपनी एक अनोखी संस्कृति है । यहूदी एक सदी पूर्व तक सारी दुनिया में बिखरे हुए थे । हर देश में उन्हें घृणा की दृष्टि से देखा जाता था । ऐसी हालत में यहूदियों को संगठित करने के लिए 'जीयोनिस्ट' नामक संगठन खड़ा हुआ जिसका लक्ष्य था समस्त यहूदी जाति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को एकत्रित करना तथा फिलस्तीन राष्ट्र में बसाना । अभियान का प्रतिफल यह निकला कि फिलस्तीन में संसार के कोने-कोने से यहूदी युवक-युवतियाँ एकत्रित होने लगे । आर्थिक विपन्नता अवरोध बनकर सामने आयी । पर श्रमनिष्ठ राष्ट्र का निर्माण उनका प्रमुख लक्ष्य था । युवा वर्ग ने कम्यून-सहजीवन की प्रणाली को सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास के लिए श्रेयस्कर माना । हिलमिल कर रहने, काम करने और अपनी रोटी मिल बाँट कर खाने की उन्होंने सद्भाव भरी नीति अपनायी । इस तरह आवश्यकता आविष्कार की जननी बनी और सामुदायिक सह जीवन की नींव पड़ी । यह प्रणाली कालान्तर में इतनी अधिक लोकप्रिय हुई कि स्थान-स्थान पर, गाँव-गाँव में सहजीवन के प्रयोग चलने लगे । समाजशास्त्रियों का मत है कि इजराइल को एक संगठित एवं मजबूत राष्ट्र के रूप में विकसित करने का सबसे अधिक श्रेय कौटुम्बिक सहजीवन प्रणाली को है ।

चीन में भी किसानों के अलग-अलग कम्यून कार्य क्षेत्र दो भागों में बँटा हुआ है । प्रोडक्शन टीम अन्न उत्पादन का कार्य संयुक्त रूप से करती है । प्रोडक्शन विग्रेड उत्पादित माल को वितरित करती है । आँकड़ों के अनुसार चीन में कम्यूनों की संख्या ६० हजार से लेकर ८० हजार तक है । प्रत्येक कम्यून में सदस्यों की संख्या एक जैसी नहीं होती । कृषि के लिए उन्हें जो जमीन मिलती है उसकी मात्रा सदस्यों की संख्या के ऊपर निर्भर करती है । कम्युनिस्ट सरकार होने के कारण चीन की कम्यून व्यवस्था उसके ही नियत्रंण में है । कृषि के सामूहिक प्रयोग से चीन का उत्पादन कुछ ही दशकों में असामान्य गति से बढ़ा है । अन्न के क्षेत्र में आज चीन आत्मनिर्भर है । इसका प्रमुख श्रेय उस सहजीवन के प्रयोग को है । क्यूबा में भी इस तरह के कम्यून स्थान-स्थान पर बने हैं । उनके सदस्य एक साथ रहते, साथ-साथ काम करते तथा उपार्जित सम्पदा का मिल-बाँट कर उपभोग करते हैं ।

संयुक्त जीवन क्रम में लार्जर फैमिली के प्रयोग अपने यहाँ भी चल पड़े तो इसके कितने ही लाभ हैं । छोटी-छोटी जोतों के कारण समय, श्रम और सम्पदा का एक बड़ा भाग व्यर्थ चला जाता तथा उत्पादन भी गिरता है । सामूहिक खेती करने की परम्परा शुरू हो जाय तो इससे उत्पादन तो बढ़ेगा ही, समय, श्रम और धन की बचत होगी । बड़े परिवार अपने देश में कुछ दशकों पूर्व तक समस्त विश्व के लिए एक आदर्श थे । पर वे टूटते गये और अब उनका यत्किंचित उदाहरण ही देखने को मिलता है । उसका पुनर्गठन नवीन परिस्थितियों में कर सकना सम्भव है, हर व्यक्ति अपनी रोटी स्वयं पकाये इसके स्थान पर सामूहिक व्यवस्था बन सके तो इससे हर व्यक्ति को लाभ पहुँचेगा । दूसरे देशों ने अपने ढंग से सहजीवन के प्रयोग आरम्भ किये हैं । उनसे प्रेरणा लेकर देश को परिस्थितियों के अनुरूप गैर सरकारी स्तर पर भी देहातों एवं शहरों दोनों ही स्थानों पर कृषि उद्योग ही नहीं अन्य क्षेत्रों में भी कम्यून प्रणाली के सृजनात्मक प्रयास आरम्भ किये जा सकते हैं ।

इजराइल, क्यूबा व चीन के उदाहरण हमारे सामने हैं संयुक्त कुटुम्ब प्रथा तो भारत की सांस्कृतिक धरोहर है । इस राष्ट्र के स्वर्ण युग के दिनों में नैतिक मूल्यों की पराकाष्ठा का मूल कारण था-वृहत परिवार । न कहीं कोई मुकदमा होता था-न गृह कलह । सभी कुछ निपटारा उस वृहत परिवार की परिधि में हो जाया करता था । आज भी इस देश में यह प्रथा जहाँ-जहाँ भी जीवित है, वहाँ सुख-समृद्धि के साथ शान्ति-उल्लास भरा स्वर्ग जैसा दृश्य देखा जा सकता है । वृहत परिवार मात्र अपने कौटुम्बिक सहजीवियों का ही हो, यह अनिवार्य नहीं । वह तो एक समूह, विशेष का भी हो सकता है, कार्य के आधार पर उस वर्ग विशेष का भी । सहकारी प्रयोगों के लाभों की चर्चा पहले ही की जा चुकी है । वस्तुतः सहकारी जीवन स्तर पर लार्जर फैमिली के स्वरूप को अपनाकर ही हम 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के स्वप्न को साकार करने की बात विचार सकते हैं । यह कोई असम्भव दुष्कर कार्य नहीं है । पहले राष्ट्र के स्तर पर, फिर महाद्वीप के तथा फिर विश्व के स्तर पर इस प्रकार के कम्यून्स बनाये जा सकते हैं जो विश्व परिवार के लघु संस्करण हों । वर्तमान राष्ट्रों की सीमाएँ तो कृत्रिम हैं मानव निर्मित हैं-भावनाओं के स्तर पर इन सीमा बन्धनों को तोड़कर विश्व परिवार बसाने की बात सोची जाय और उसे क्रियान्वित करने के प्रयास विशाल स्तर पर चल पड़ें तो फिर विश्व शांति मात्र एक व्याख्यान या लेखन का विषय नहीं-वास्तविकता बन जायेगी । जब तीन राष्ट्र जो विश्व की लगभग एक चौथाई आबादी के बराबर हैं, ऐसा सोच व कर दिखा सकते हैं तो शेष के लिये यह कोई असम्भव कार्य नहीं । विचारशील व्यक्ति जुट पड़ें तो यू. एन. ओ, शांति सम्मेलनों के प्रयास एक तरफ रखे रह जायेंगे और कम्यून व्यवस्था एक ओर । यदि ऐसा हो सके तो सचमुच यह विश्व-वसुधा के लिए एक सौभाग्य भरा वरदान होगा ।

* * *

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

परिवार संस्था को विशृंखलित न होने दें

भारतीय संस्कृति की अनमोल धरोहर परिवार संस्था

परिवार संस्था सहजीवन के व्यावहारिक शिक्षण की एक प्रयोगशाला है । इसी कारण गृहस्थाश्रम व कुटुम्ब व्यवस्था को अत्यधिक महत्व मनीषियों द्वारा दिया गया है । परिवार समाज संस्था की इकाई माने जाते हैं । इसमें बिना किसी संविधान, दण्ड विधान एवं सैनिक शक्ति की आवश्यकता पड़े सब सदस्य परस्पर तालमेल से सहकार भरा जीवन बिताते हैं । माता-पिता, पुत्र,पति-पत्नी तथा अन्य नाते-रिश्तों के सम्बन्ध किसी दण्ड के भय पर कायम नहीं होते वरन् वे बुर्जुगों द्वारा स्थापित कुल परम्परा-व्यवस्था व आनुवंशिक संस्कारों पर अधिक निर्भर रहते हैं । प्रत्येक सदस्य एक दूसरे का हाथ बँटाने में प्रसन्नता अनुभव करता है । यही सहजीवन की सर्वोपरि आवश्यकता भी है । यहाँ त्याग-सहिष्णुता को स्वेच्छा से खुशी के साथ वहन किया जाता है । वस्तुतः परिवार संस्था में ही 'लार्जर फैमिली कन्सेप्ट' अभिनव आदर्श समाज की संक्षिप्त झाँकी देखने को मिलती है । कुटुम्ब संस्था गृहस्थ जीवन का एक अलौकिक चमत्कारिक स्वरूप है ।

गृहस्थ का आधार है वैवाहिक जीवन । विवाह का अर्थ पाश्चात्य परिभाषा के अनुसार दो शरीरों का मिलन नहीं; हृदय का, आत्मा का, मन की समस्त इच्छाओं-का परस्पर एक दूसरे में विलय है । यही भारत की विशेषता रही है कि यहाँ विवाह को शारीरिक कामोपभोग का सामाजिक स्वीकृति पत्र कभी नहीं माना गया । प्रेम के लिये एक दूसरे को समर्पित कर देने का अर्थ है दो हृदयों को निष्कपट व्यवहार सूत्र में पिरो देना । विवाह संयमपूर्वक लेकिन आनन्दमय जीवन बिताकर पूर्ण आयुष्य प्राप्त करने का सहज मार्ग है । गृहस्थ धर्म का उद्देश्य है स्त्री पुरुषों एवं अन्य सदस्यों का ऐसा संयुक्त जीवन जो उन्हें शारीरिक सीमाओं से ऊपर उठाकर परस्पर निष्ठा, आत्मीयता की डोरी से बाँध देता है । ऐसी परिस्थिति में शरीर भले ही कुरूप-रोगी हो जाय, पारस्परिक निष्ठा कभी कम नहीं होती । बहिन का भाई के प्रति, पत्नी का पति के प्रति, माँ का बेटे के प्रति, बाबा दादी का पूरे सन्तान, समुदाय के प्रति जो उमड़ता हुआ स्नेह देखा जाता है-वह अन्यत्र दुर्लभ है । इस प्रकार गृहस्थाश्रम की परिधि बड़ी व्यापक है एवं वह स्नेहमय, दिव्य, सूक्ष्म आधार स्तम्भों पर टिकी हुई है ।

गृहस्थ धर्म-कौटुम्बिक जीवन क्रम तप और त्याग से भरा हुआ है । गृहस्थी के निर्वाह हेतु किया जाने वाला प्रयत्न किसी तितीक्षा से कम नहीं । परिवार का भार वहन करना-सदस्यों को सहकारितापूर्वक सुविधा के साधन जुटाना एक दुस्तर तपस्या है । उससे भी अधिक दुस्तर जो तपोवनों में बैठकर की जाती है । इस व्यवस्था में ही व्यक्ति अपनी अनेकों प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाना सीखता है । यह भारतीय कुटुम्ब व्यवस्था, चाहे वे हिन्दू हों या मुस्लिम, पारसी या ईसाई में ही देखने को मिलता है कि माँ-बाप स्वयं अपना पेट काटकर भी बच्चों को पढ़ाते हैं छोटों को आगे बढ़ाते हैं । अपनी जिम्मेदारी पूर्णरूपेण निबाहते हैं । इसी खदान से सुसंस्कारी नागरिक निकलते हैं एवं इस व्यवस्था से ही जन्म लेती है भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर-आतिथ्य धर्म । मानवी मूल्यों से प्रतिष्ठापित देव प्रतिमा एवं सही माने में देवालय देखना हो तो आज भी उसे पुरातन-भारत के ग्रामीण परिसर में देखा जा सकता है ।

यह एक विडम्बना ही है कि बढ़ती आधुनिकता की व शहरीकरण की आसुरी लीला ने इस व्यवस्था को हानि पहुँचाने का कुछ सीमा तक प्रयास किया है । यही कारण है कि अब यह संस्था विशृंखलित होने लगी है । धीरे-धीरे यह हवा सुदूर अवस्थित उन क्षेत्रों में भी पहुँचती जा रही है, जहाँ निष्पाप-पवित्र भावना के अतिरिक्त था ही कुछ नहीं । परस्पर स्नेह-सद्भाव से भरा समाज तभी विनिर्मत किया जा सकता है जब उसकी इकाई कुटुम्ब परिवार व्यवस्था को अक्षुण्ण रखा जाय, उसमें अन्तर्निहित मानवी मूल्यों को आघात न पहुँचने पाये । स्थिति नियंत्रण के बाहर तो नहीं है पर यह आलोक जन-जन तक पहुँचाना जरूरी है कि सहयोग-सहकार भरी परिवार व्यवस्था ही सुख शांति से युक्त समाज का मूल आधार है ।

परिवार संस्था के विकास के मूलभूत आधार

सद्भाव, सदाशयता, स्नेह और आत्मीयता ही वह आधार है जिस पर पारिवारिक एकता और संगठन निर्भर करते हैं । पारिवारिक सदस्यों के बीच आपसी सहकार-सहयोग की सत्प्रवृत्तियाँ इसी आधार पर विकसित होती हैं । चिरकाल से परिवार संस्था को जीवन्त बनाये रखने में इन्हीं की प्रधान भूमिका रही है ।

लेकिन आज स्थिति विपरीत हो गयी है । परिवार संस्था आज टूटती जा रही है । परिवारों में इन दिनों मनोमालिन्य, विग्रह बढ़ता जा रहा है । विचार करने पर इसका एक ही कारण दृष्टिगत होता है कि स्नेह एवं आत्मीयता के प्रगाढ़ बन्धन अब ढीले पड़ते जा रहे हैं । जिनका अवलम्बन कर कभी परिवार, व्यक्ति एवं समाज निर्माण का उद्देश्य पूरा करते थे । ऐसे परिवारों में स्वर्गीय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिस्थितियों का दिग्दर्शन कर सकना सम्भव था । ऐसे परिवारों के सदस्यों में स्नेह एवं आत्मीयता कूट-कूट कर भरी रहती थी । आज तो वह सुदृढ़ अवलम्बन टूट जाने के कारण परिवारों में सर्वत्र नारकीय दृश्य ही दिखाई पड़ता है ।

वास्तव में स्वर्ग और नरक कहीं अन्यत्र नहीं । मनुष्य जब चाहे अपने छोटे से घरोंदे में दोनों में से किसी का भी अवतरण कर सकता है । रामायण में ऐसे पारिवारिक आदर्श का उल्लेख मिलता है । एक प्रसंग आता है कि एक बार अयोध्या से राजा जनक जी के दूत जब सन्देश लेकर मिथिला लौटे तो मिथिलावासियों ने बड़ी ही व्यग्रता से पूछा-"अयोध्यावासियों का क्या हाल है ? वहाँ तुमने क्या विशेषता देखी ?" दूत ने उत्तर दिया कि वहाँ के परिवारों की सबसे बड़ी विशेषता है कि घर-घर में स्वर्ग है ।

बात सच भी थी । अयोध्या के निवासियों का पारिवारिक जीवन आदर्शों से ओत-प्रोत था । कहीं आपस में द्वन्द्व-द्वेष दिखाई नहीं देता था । भाई-भाई का ऐसा अनोखा आदर्श तो कहीं अन्यत्र मिलता ही नहीं । बड़े भाई का त्याग छोटों के लिए किस-किस तरह का हो । राज्य संचालन एवं सुख भोग की कामना को जिसने छोटे भाई के लिए ठुकरा दिया । भरत, जिसे अनायास ही सम्पूर्ण राज्य का ऐश्वर्य मिला था-उसने उस ओर दृष्टि उठाकर भी नहीं देखा । बड़े भाई की तरह तप तितीक्षा का कठोर जीवन क्रम हँसते-हँसते अपना लिया ।

यदि हमारे पारिवारिक जीवन में ऐसा उदात्त भाव पाया जाता तो परिवार संस्था क्यों छिन्न-भिन्न दिखाई पड़ती । रामायणकाल में पारिवारिक जीवन में जिन आदर्शों का पालन किया गया है उसे राष्ट्रीय जीवन की सांस्कृतिक धरोहर कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं । यदि उन विभिन्न पक्षों को अपने जीवन का केन्द्र-बिन्दु मानकर चलें तो परिवार में स्वर्गीय वातावरण का अवतरण कोई कठिन नहीं ।

परिवार के सदस्यों के बीच घनिष्ठ आत्मीयता एवं स्नेह-सद्भाव के आधार पर परिवार को एक सूत्र में बाँधा जा सकता है । इस मूल आधार के न रहने पर अपनत्व के बन्धन टूट जाते-भेदभाव पनपने से संकीर्ण स्वार्थपरता को ही बढ़ावा मिलता है । जिस भी परिवार में यह संकीर्णता पनपती है, परिवार को विशृंखलित कर डालती है । अपने ही परिवार के सदस्यों में भेदभाव का होना एक ऐसी चिंगारी है जो भीतर ही भीतर जलाती रहती है । इन दिनों यह चिंगारी अधिकांश परिवारों में सुलगती देखी जा सकती है । आगे चलकर यही पारिवारिक विघटन का कारण बनती है ।

पारिवारिक सदस्यों में जब तक समर्पण, त्याग, उत्सर्ग का भाव बना रहता है तब तक उसकी सुदृढ़ एकता को आँच नहीं आने पाती । परिवार में रहने वाला प्रत्येक सदस्य कर्त्तव्यों को प्रधान और अधिकारों को गौण माने-अपनी नहीं दूसरों की सुख-सुविधा को प्राथमिकता दे तो आपस में मन-मुटाव तथा विक्षोभ की स्थिति उत्पन्न नहीं होगी । इस त्याग-उदारता के उदात्त भाव को माता के हृदय में सहज ही देखा जा सकता है । माता के मन में छोटे बच्चों के प्रति कितना स्नेह वात्सल्य रहता है । बच्चों के लालन-पालन में स्वयं भूखे रहकर भी उसके पोषण की व्यवस्था जुटाती रहती है । स्वयं गीले में सोकर उसे सूखे में सुलाती है । बच्चे को किसी प्रकार का कष्ट न हो इसके लिए वह हँसते-हँसते बड़े से बड़ा कष्ट झेल लेती है । माता न केवल बच्चे को दूध पसीने से सींचती बल्कि अपने रक्त, माँस, हड्डी का एक-एक अंश भी बच्चे के निर्माण में लगा देती है । त्याग का ऐसा उदाहरण अन्यत्र मिलना दुर्लभ है । माता को त्याग की जीवन्त प्रतिमा कहा जा सकता है । ऐसा त्याग भाव यदि कुछ अंश में भी परिवार के हर सदस्य में आ जाय तो कलह विग्रह की स्थिति उत्पन्न न हो ।

उदारता, सहिष्णुता का समावेश दैनिक जीवन के प्रत्येक क्रिया-कलाप में रहना चाहिए । प्रत्येक सदस्य यह ध्यान रखे कि हमारे व्यवहार से किसी का अहित न हो । जाने-अनजाने में ऐसे कटुशब्दों का प्रयोग न हो जो आपसी मन-मुटाव को जन्म दे । व्यवहार एवं वाणी में नम्रता, मधुरता, सौम्यता व शालीनता बनी रहे । परिवार में वाणी की मधुरता का यह प्रारम्भिक अभ्यास आगे चलकर व्यक्ति के सामाजिक जीवन में भी बहुत उपयोगी सिद्ध होता है । यह नम्रता केवल अपने से बड़ों के प्रति ही नहीं हो । छोटों का हृदय भी मधुर व्यवहार द्वारा ही जीता जा सकता है । बच्चों को भी प्यार के साथ सम्मान की आकांक्षा रहती है । इसके अभाव में या तो उनमें आत्महीनता का अभाव पनपता है या वे उद्दण्ड, उच्छृंखल बन जाते हैं । बच्चों के लिए भी तुम या आप जैसे सम्मानसूचक सम्बोधन का प्रयोग किया जाना चाहिए । सामान्य शिष्टाचार का शिक्षण बच्चे यहीं से लेते हैं ।

जहाँ भी चार-पाँच व्यक्तियों का संगठन हो उनके स्वभाव, आदतों, विचारों में कुछ न कुछ भेद अवश्य पाया जायगा । एक ही माँ-बाप की सगी सन्तानें एक जैसी नहीं होती । हाथ की पाँचों अंगुलियाँ बराबर कहाँ होती हैं ? पर सबके सामंजस्य सहकार से ही कोई काम हो पाता है । हम यह चाहें कि सभी व्यक्ति हमारे अनुरूप हो जायें तो यह कदापि सम्भव नहीं । इसके लिए तो दोनों ही पक्षों को कुछ न कुछ उदारता बरतनी ही होगी । ठीक यही बात पारिवारिक सदस्यों के लिए भी लागू होती है । प्रत्येक सदस्य के आपसी सामंजस्य पर परिवार की एकता व संगठन निर्भर करते हैं । स्वभावगत भिन्नता के कारण नयी बातें खड़ी हो सकती हैं । लेकिन यदि दूसरे के व्यवहार से होने वाली असुविधा को हँसते-हँसते टाल दिया जाय या नम्रतापूर्वक उस गलती को बता दिया जाय तो आपसी मन-मुटाव तो दूर एक दूसरे की गलतियों में भी सहज सुधार होता रह सकता है । जहाँ अपनी गलती हो उसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तुरन्त स्वीकार कर लेने में सामने वाले को कुछ कहने सोचने का अवसर ही न मिलेगा । ये बातें लगती तो छोटी हैं लेकिन व्यावहारिक जीवन में इनका बड़ा महत्व है ।

बड़ों के प्रति सम्मान तथा श्रद्धा, छोटों के प्रति स्नेह, प्यार की अभिव्यक्ति ही पारिवारिक सुख-शान्ति का मेरुदण्ड है । यह जिस भी परिवार में जितना ही अधिक होगा वह उतना ही संगठित रहेगा, आनन्द एवं संतोष की निर्झरिणी उन्हीं परिवारों में बहती दिखाई देती है, जिनके प्रत्येक सदस्य सद्भावना एवं सदाशयता से ओत-प्रोत रहते हैं । बच्चों को यह शिक्षा आरम्भ से ही दी जानी चाहिए कि वे बड़ों का सदा आदर करें । शालीनता एवं नम्रता उनके संस्कारों में घोलने के लिए प्रत्यक्ष एवं परोक्ष हर प्रकार के सम्भव प्रयास किए जाने चाहिए । इसमें एक कड़ी और भी जोड़नी होगी कि परिवार में जो बड़े हैं, उन्हें बच्चों की भावनाओं की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए । उनकी भी कुछ मनोवैज्ञानिक कठिनाइयाँ और समस्याएँ होती हैं जिनकी उपेक्षा करने पर उनके भीतर कुण्ठा एवं निराशा की भावना पनपती है ।

इन छोटी-छोटी बातों की प्रायः अधिकांश लोग उपेक्षा कर जाते हैं । जबकि ये ही पारिवारिक एकता एवं विकास की मूलभूत आधार हैं, जिनका अवलम्बन करके हर परिवार अपनी सामान्य परिस्थिति में भी सुख एवं शांति से भरी स्वर्गीय परिस्थितियों का लाभ उठा सकता है ।

परिवार-संस्था की उपयोगिता नष्ट न करें

समझ के विकसित होने और मानव प्रकृति के परिष्कृत होकर संस्कृति का रूप धारण करते-करते परिवार संस्था भी दिनों-दिन विकसित होती गई । इस संस्था को प्रोत्साहन देने और आगे बढ़ाने, परम्परा के रूप में प्रचलित करने के पीछे समाज व्यवस्था के निर्धारण कर्ता ऋषि मनीषियों का यही मंतव्य रहा कि व्यक्ति एकाकी होकर न रहे । उसके अपनत्व की परिधि विकसित हो । दुःख-कष्टों के समय उसकी परेशानियों में भाग बँटाने वाला कोई आत्मीयजन तो हो ही, वह भी औरों के दुःख-सुख अनुभव करने की स्थिति प्राप्त करे । मनुष्य का अपनत्व विकसित होने की सम्भावना परिवार के माध्यम से ही पूरी हो सकती थी और हो सकती है । आत्मिक विकास की इसी सम्भावना को दृष्टिगत रखते हुए परिवार संस्था का उदय हुआ और वह अस्तित्व में आई । इस व्यवस्था के पीछे यही मूल भावना रही कि मनुष्य व्यवस्थित ढंग से स्थाई होकर रहे । उसके स्वभाव, प्रकृति की चंचलता कम हो और किसी एक दिशा में अग्रसर होने की सम्भावना बलवती ही नहीं, सुदृढ़ भी हो । इस परिवर्तन, परिणाम और विकास का उद्देश्य मानवी सभ्यता के विकास में एक-एक व्यक्ति का योगदान पहुँचाना भी था ।

परिवार बसाने के साथ इस तरह का सामाजिक उद्देश्य तो था ही और यह भी कि मनुष्य उल्लासपूर्ण जीवन व्यतीत कर सके । इस सामाजिक मन्तव्य के साथ मनुष्य का निजी, आत्मिक विकास का मन्तव्य भी रहा कि वह परिवार के माध्यम से आत्मकल्याण की ओर अग्रसर हो सके । सामाजिकता, नागरिकता और सामूहिकता की भावना का अभ्यास परिवार की पाठशाला में ही सम्भव समझा गया क्योंकि अपने जैसे मनुष्यों के बीच रहकर ही त्याग, सहानुभूति, सौहार्द्र और आत्मीयता का अभ्यास सम्भव है । परिवार में रहकर ही मनुष्य की संकीर्णता मिटती है और अपनत्व की परिधि व्यापक बनती है । आत्मकल्याण का राजमार्ग भी यही है कि मनुष्य दूसरों के दुःख दर्द को समझकर उन्हें अपना दुःख-दर्द अनुभव करने लगे, उनके साथ सहानुभूति रख सके, उनकी सेवा सुश्रूषा तथा सहायता करने के लिए तत्पर रहे । आत्मिक उन्नति की दिशा में बढ़ने के क्षेत्र में कितनी सफलता मिल रही है, इसका निर्णय निश्चय ही अपनी स्थिति की इन कसौटियों के आधार पर ही किया जा सकता है ।

कोई व्यक्ति जो अब पिता बन चुका है, जिन दिनों बालक रहा होगा तब वह निश्चय ही आज की तुलना में अधिक संकीर्ण, अधिक स्वार्थी और अपने तक ही ज्यादा केन्द्रित रहा होगा । उस समय वह यही चाहता रहा होगा कि मुझे सबसे अधिक और अच्छा खाना मिले, अच्छा पहनना मिले, परिवार के लोग अपना ध्यान मुझ पर ही ज्यादा दें और उनके द्वारा सुख-सुविधाओं के साथ स्नेह दुलार भी मुझे ही ज्यादा मिले । अपनी इस स्वार्थ भावना के वशीभूत होकर वह दूसरे सदस्यों के हितों का ध्यान रखे बिना ही अपना हठ पूरा कराने के लिये प्रयत्न करता रहा होगा । उस समय मानवीय दृष्टि से देखा जाय तो एक प्रकार से वह दूसरों के प्रति उदासीन, अनुदार एवं कृपण ही रहा होगा, किन्तु वयस्क होने के बाद विवाह होने पर प्रायः सभी युवकों की एकान्तिक स्वार्थपरता एवं संकीर्णता में दरार पड़ जाती है । वह केवल अपने ही स्वार्थ के प्रति आग्रही नहीं रह जाते हैं वरन् अपनी पत्नी की सुख-सुविधा, उसकी इच्छाओं एवं हँसी-खुशी के विषय में भी सोचने और ध्यान देने लगा होगा । एक चीज वह अपने लिए लाता है तो एक पत्नी के लिए भी लाता है, इस प्रकार आत्मीयता की परिधि, सुख का दायरा और सुविधाओं का दृष्टिकोण बढ़ जाता है । उसका प्रेम, स्नेह एवं सहानुभूति अपने से बढ़कर, फैलकर दूसरों तक जा पहुँचती है और पत्नी भी उसके व्यक्तित्व का अपना ही अविच्छिन्न अंग बन जाती है ।

कालान्तर में जब बच्चे जन्म लेते हैं, युवक-युवती माता-पिता बनते हैं तो उनके अपनत्व की परिधि और बढ़ जाती है । उनका अपना सम्पूर्ण व्यक्तित्व, समग्र जीवन ही परिवार का और परिवार के लिए हो जाता है । केवल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अपना ही कहा जाए ऐसा कुछ नहीं रह जाता । उनका अपना सब कुछ पूरे परिवार का, पति-पत्नी और बालक बच्चों का हो जाता है । उनमें त्याग, संतोष, सहानुभूति, संवेदना तथा आत्मीयता के अनेकानेक गुण विकसित होते जाते हैं ।

पारिवारिक जीवन अपनाने से आत्मा के संकीर्ण बन्धन सहज और स्वाभाविक रीति से शिथिल होते जाते हैं तथा मनुष्य का व्यक्तित्व सामाजिक बनता जाता है । यह क्रम यदि आगे बढ़ता चले, पत्नी से परिवार, परिवार से परिजन, परिजन से पार्शजन और पार्शजनों से पुरजनों तक फैलता चला जाए तो आत्मीयता का विकास विश्व तक सहज ही सम्भव हो सकता है और विश्व बंधुत्व, विश्व नागरिकता, महान व्यक्तित्व, श्रेष्ठ समाज की संभावना बड़ी सरलता से बिना किन्हीं बड़े प्रयासों के साकार हो सकती है, किन्तु खेद है कि यह विकास का क्रम परिवार तक ही बढ़कर रुक जाता है, आगे नहीं बढ़ पाता ।

यदि परिवार तक ही रुका रहे तो भी कोई हानि नहीं है । हानि उस स्थिति में होती है जब लोग परिवार को भौतिक सुख-सुविधाओं से सम्पन्न तो बनाना चाहते हैं किन्तु उसके कल्याण, विकास और निर्माण की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नहीं समझते जबकि सच्चे अर्थों में परिवार के प्रति यही सच्चा उत्तरदायित्व है । यह सदैव स्मरण रखा जाना चाहिए कि भौतिक सुख-संपदायें तो धूप-छाँव की तरह होती हैं, जो आती और जाती रहती हैं । आज परिवार के लिए लाखों रुपये मूल्य की सम्पत्ति अर्जित कर ली जाय किन्तु कल ही ऐसी परिस्थितियाँ बन सकती हैं जिनमें अर्जित संपदा नष्ट हो सकती है । वैसी स्थिति में परिवार के सदस्यों पर व्यक्तित्व निर्माण की दृष्टि से कोई प्रयत्न नहीं किया गया तो सुख-सुविधाओं का जो अभ्यास बना है; वह सुविधा साधन उपलब्ध न होने पर कष्टकर ही सिद्ध होगी । इसलिए आवश्यक है कि परिवार के लिए धन संपत्ति जोड़कर छोड़ जाने से भी ज्यादा उनके निर्माण पर ध्यान दिया जाय और उन्हें सद्गुणी, सुसंस्कृत तथा विकसित व्यक्तित्व सम्पन्न बनाया जाय ।

यदि परिवार के प्रति इस उत्तरदायित्व की गम्भीरता को समझा जा सके और पूरा करने के लिए ठोस तथा प्रभावशाली कदम उठाये जाएँ तो भले ही कोई व्यक्ति परिवार तक ही अपनी गतिविधियों को सीमित खेर, उतने पर भी विश्व मानवता का बहुत कल्याण किया जा सकता है । परिवार में इस प्रकार श्रेष्ठ व्यक्तित्वसम्पन्न नररत्नों का निर्माण कर विश्व वसुधैव के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन किया जा सकता है । पुराने ढंग से सोचने वाले लोग इस तथ्य की तो उपेक्षा करते ही हैं, नये ढंग से सोचने वाले तथाकथित आधुनिक व्यक्ति उनसे भी एक कदम आगे हैं और परिवार को मौज-मजे का साधन मानकर चलाते हैं ।

दोनों ही स्थितियों में परिवार संस्था का भविष्य धूमिल ही पड़ता है और इन स्थितियों के रहते इस उपयोगी संस्था के सुदृढ़ बने रहने के सम्बन्ध में संदिग्ध ही होना पड़ता है । उचित है कि दोनों ही अतियों से बचा जाए । न परिवार के प्रति अंधामोह रखा जाए और स्वजनों के लिए, पुत्र कलत्रों के लिए पीड़ियों तक का प्रबन्ध करने की चिन्ता की जाय । स्मरण रखा जाना चाहिए कि उनके लिए साधन-सुविधाएँ जुटाकर रख जाने की अपेक्षा उन्हें सद्गुणों की सम्पदा सौंप जाना कहीं ज्यादा श्रेयस्कर है ।

परिवार एक आदर्श प्रजातंत्र है

गृहस्थी एक प्रकार का प्रजातन्त्र है । राज्य संचालन के लिये अनेक कर्मचारी नियुक्त होते हैं, कोई मन्त्री होता है, कोई राज्यपाल, कोई सचिव होता है, कोई डायरेक्टर, कोई कलक्टर, कोई सिपाही । योग्यता और अनुभव के आधार पर पद विभक्त किये गये हैं । उद्देश्य सब का एक ही होता है शासन-तन्त्र में सुव्यवस्था और अनुशासन बनाये रखना । जब तक कर्त्तव्य भावना से अपने अधिकारों का प्रयोग चलता रहता है तब तक राज्य-तन्त्र में किसी तरह की गड़बड़ी नहीं आने पाती ।

गृहस्थ भी किसी प्रजातन्त्र से कम नहीं है । परिवार का सबसे वयोवृद्ध मुखिया होता है । किसी को कृषि का काम मिला होता है, कोई दुग्ध मंत्रालय का काम सम्हालता है, इसी तरह घर की सारी व्यवस्था चलती रहती हैं । शासन में कानूनी नियम होते हैं । गृहस्थी में सम्पूर्ण कर्त्तव्यों का निर्वाह आध्यात्मिक सम्बन्धों पर निर्धारित रहता है । इन सम्बन्धों में यदि शुद्धता और सात्विकता बनी रहे तो गृहस्थी में एक सुखद वातावरण बना रहता है ।

इन सम्बन्धों में यदि खटाई उत्पन्न हो गई तो वही गृहस्थ नारकीय यंत्रणाओं से घिर जाता है । परिवार के अमन-चैन मिट जाते हैं । सारा घर लड़ाई का अखाड़ा बन जाता है, सारे श्री-सौभाग्य धूल में मिल जाते हैं । उन्नति रुक जाती है और लोग निर्धनता का दीन-हीन जीवन बिताने को विवश हो जाते हैं ।

परिवार में जब अपने-अपने स्वार्थ का भ्रष्टाचार बढ़ता है और लोग कर्त्तव्य की आध्यात्मिक भावना को भुला देते हैं तभी गृहस्थ की दुर्दशा होती है । कितने कृतघ्न होंगे वे लोग जो अपने स्वार्थ के लिये परिवार के प्रति अपने उत्तरदायित्व भुलाकर अपना चूल्हा-चौका अलग रखने में अपनी बुद्धिमानी समझते हैं । किसी ने ऐसे कुटिल व्यक्तियों को कभी फलते-फूलते भी नहीं देखा होगा जो फूट के बीज बोकर सारी पारिवारिक व्यवस्था को तहस-नहस कर डालते हैं ।

पिता अपने पुत्र के लिये सारे जीवन-भर क्या नहीं करता ? श्रम करता है, जब वह खुद सो रहा होता है, तब गये रात उठकर खेतों में जाता है, हल चलाता है,

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मजदूरी करता है, नौकरी करता है । क्या सब कुछ अपने लिये करता है ? नहीं । एक व्यक्ति का पेट पालना हो तो चार-छह आने की मजदूरी काफी है दिन-भर श्रम करने का क्या लाभ ? पर बेचारा बाप सोचता है बच्चे के लिए दूध की व्यवस्था करनी है, दवा लानी है, कपड़े सिलाने हैं, फीस देनी है, पुस्तकें लानी हैं और उसके भावी जीवन की सुख-सुविधा के लिए कुछ छोड़ भी जाना है । जब तक शक्तियाँ काम देती हैं कोई कसर नहीं उठा रखता । अपने पेट को गौण मानकर बेटे के लिये आजीवन अनवरत श्रम करने का साहस कोई बाप ही कर सकता है ।

पाल-पोसकर बड़ा कर दिया । शिक्षा-दीक्षा पूरी कराई, विवाह-शादी करा दी, धन्धा लग गया । पिता से पुत्र की कमाई बढ़ गई । उसके अपने बेटे हो गये, स्त्री की आकांक्षायें बढ़ीं । बेटे ने बाप के सारे उपकारों पर पानी फेर दिया । कोई न कोई बहाना बनाकर बाप से अलग हो गया । हाय री ! तृष्णा-हाय रे अभागे इंसान तू कितना नीच है, कितना पतित है ! जिस बाप ने तेरे लिये इतना सब कुछ किया और तू उसकी वृद्धावस्था का पाथेय भी न बन सका । इस कृतघ्नता से बढ़कर इस संसार में और कौन-सा पाप हो सकता है । अपने स्वार्थ, भोग, लिप्सा, स्वेच्छाचारिता के लिये बाप को ठुकरा देने वालों को पामर न कहा जाय तो और कौन सा सम्बोधन उचित हो सकता है ।

पिता परिवार का अधिष्ठाता, आदेशकर्त्ता और संरक्षक होता है । उसकी जिम्मेदारियाँ बड़ी होती हैं । सबकी देख-रेख, सबके प्रति न्याय, सबकी सुरक्षा रखने वाला पिता होता है । क्या उसके प्रति उपेक्षा का भाव मानवीय हो सकता है ? कोई राक्षस वृत्ति का मनुष्य ही ऐसा कर सकता है जो अपने माता-पिता को उनकी वृद्धावस्था में असहाय छोड़ देता है ।

परिवार में पिता को सम्मान मिलता है तो उसके दीर्घकालीन अनुभव, योग्य संचालन, पथ प्रदर्शन, भावी योजनाओं को नियंत्रित करने का लाभ भी परिवार को मिलता है । अपने प्रेम, वात्सल्य, करुणा, उदारता, संगठनात्मक बुद्धि से वह सब पर छाया किये रहता है । वह परिवार का पालन करता है । पिता की पूजा करना, उसकी उचित सेवा-टहल और देख-रेख रखना परमात्मा की उपासना से कम फलदायक नहीं होती । पिता का आशीर्वाद पाकर पुत्र की आकांक्षायें तृप्त होती हैं, जीवन सुमधुर, नियंत्रित और बाधारहित बनता है ।

इस युग में पिता और पुत्र के सम्बन्धों में जो कड़ुवाहट आ गई है वह मनुष्य के संकुचित दृष्टिकोण और स्वार्थपूर्ण प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप ही है । पिता पुत्र के लिये अपना सर्वस्व अर्पित कर दे और पुत्र व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा अनुशासन-अवज्ञा करे तो उस बेटे को निन्दनीय ही समझा जाना चाहिये ।

मनुष्य का सबसे शुभचिन्तक मित्र, हितैषी, पथ-प्रदर्शक, उदार जीवनरक्षक पिता ही होता है । वह समझता है कि बेटे को किस रास्ते लगाया जाया कि वह सुखी हो, समुन्नत हो, क्योंकि उसकी त्रुटियों का ज्ञान पिता को ही होता है । जो इन विशेषताओं का लाभ नहीं उठाते उन्हें अन्त में दुःख और दैन्यताओं का ही मुँह देखना पड़ता है ।

पिता और पुत्र, पिता और पुत्री के सम्बन्ध बड़े कोमल, मधुर और सात्विक होते हैं । इस आध्यात्मिक सम्बन्ध का सहृदयतापूर्वक पालन करने वाले व्यक्ति देव-श्रेणी में आते हैं । उनका मान और प्रतिष्ठा होनी ही चाहिये ।

परिवार में माता का स्थान पिता के समतुल्य ही होता है । एक से दूसरे को बड़ा-छोटा नहीं कहा जा सकता । पिता कर्म है तो माता भावना । कर्म और भावना के सम्मिश्रण से जीवन में पूर्णता आती है । गृहस्थी की पूर्णता तब है जब उसमें पिता और माता दोनों को समान रूप से सम्मान मिले । माता का महत्व किसी भी अवस्था में कम नहीं हो सकता ।

व्यक्ति का भावनात्मक प्रशिक्षण माता करती है । उसी के रक्त, माँस और ओजस से बालक का निर्माण होता है । कितने कष्ट सहती है वह बेटे के लिए । स्वयं गीले विस्तर में सोकर बच्चे को सूखे में सुलाते रहने की कष्टसाध्य क्रिया पूरी करने की हिम्मत भला है किसी में ? माता का हृदय दया और पवित्रता से ओत-प्रोत होता है, उसे जलाओ तो भी दया की ही सुगन्ध निकलती है, पीसो तो दया का ही रस निकलता है । ऐसी दया और ममत्व की मूर्ति माता को जिसने पूज्यभाव से नहीं देखा, उसका सम्मान नहीं किया, आदर की भावनाएँ व्यक्त नहीं कीं वह मनुष्य नर-पिशाच ही कहलाने योग्य हो सकता है ।

इस विकृति को फिर से सुधारना है । राम और भरत, गोरा और बादल के आदर्श भ्रातृ-प्रेम को फिर से पुनर्जीवित करना है । इससे हमारी शक्ति, हमारी सद्भावनायें जागृत होंगी । हमारा साहस बढ़ेगा और पुरुषार्थ पनपेगा ।

स्नेहमयी बहिन, उदारता की मूर्ति भावजों को भी उसी तरह सम्मान प्रदर्शित करना चाहिए, जिस तरह माता के प्रति अपनी आत्मीयतापूर्ण भावनायें हों ।

घर का वातावरण कुछ इस तरह का शीलयुक्त, हँसमुख और उदार बने जिससे सारा परिवार हरा-भरा नजर आये । इसके लिए धन आदि उपकरणों की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी अपने सम्बन्धियों के प्रति कर्त्तव्य और सेवा भावना की । परिवार में सामंजस्य हो तो वहाँ न तो सुख की कमी रहेगी, न शान्ति की । आह्लाद फूटा पड़ रहा होगा उस घर में जहाँ सबके दिल मिले होंगे । हमारा घर भी ऐसा ही हो तो हम समझें कि पारिवारिक जीवन के प्रति अपने उत्तरदायित्व भली प्रकार पूरे किये हैं । यही परमात्मा की सच्ची पूजा है । इसे तिरस्कृत न किया जाना चाहिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पारिवारिक जीवन की समस्याएँ

जिस प्रकार विभिन्न अवयवों के मिलने से एक शरीर बनता है उसी प्रकार कुटुम्ब के सब सदस्यों से मिलकर एक परिवार या पूर्ण व्यक्तित्व बनता है । घर का एक आदमी आदर्शवादी और श्रेष्ठ बने तथा शेष सारा कुटुम्ब फूहड़पन का ऊबड़-खाबड़ जीवन व्यतीत करे, यह बहुत ही बेतुकी बात है । हम कुल्ला तो रोज कर लिया करें, मुँह तो खूब धो लिया करें पर अन्य सारे शरीर को गंदा ही रहने दें, स्नान और सफाई की व्यवस्था न करें तो यह कहाँ की शुद्धता मानी जायगी । स्त्री, बच्चे, भाई, बहिन जो लोग मिल-जुलकर एक साथ एक घर में रहते हैं, एक चौके में भोजन करते हैं उनके गुण, कर्म, स्वभावों का आपस में तालमेल बैठना चाहिए । सभी को अपने आवश्यक कर्त्तव्यों का पालन करना और स्वभाव में इतनी सज्जनता उत्पन्न करना आवश्यक है कि जिससे सब लोग शांतिपूर्वक रह सकें ।

जीवन विकास की शिक्षा का अधिकांश भाग परिवार की पाठशाला में पूर्ण होता है । परिवार के वातावरण को ही संस्कृति कहते हैं । खानदान की अच्छाई की तलाश इस पारिवारिक वातावरण के आधार पर ही की जाती है । विवाह-शादियों में लोग ऊँचे खानदान की बात बहुत बारीकी से देखा करते हैं । अब तो वह रूढ़ि मात्र रह गई हैं, पर प्राचीनकाल में इस देखभाल का, खानदान का मतलब परिवार का रहन-सहन, आदर्श, स्वभाव एवं वातावरण ही समझा जाता था । उन्नतिशील व्यक्तियों और महापुरुषों का निर्माण इस खानदानी वातावरण में पाले-पोसे जाने से संभव है । निकृष्ट परिस्थितियों के कुटुम्ब में पाले-पोसे जाने पर कभी कोई बिरला ही अपवाद रूप से विकसित व्यक्तित्व का महापुरुष बन सका होगा । इसलिए यह आवश्यक है जैसे हम अपने स्वास्थ्य, सुविधा, मनोरंजन, उपार्जन आदि की बातें सोचा करते हैं, इन समस्याओं के लिए चिंतित रहा करते हैं, उसी प्रकार अपने ऊपर जिस परिवार का उत्तरदायित्व भगवान ने सौंपा है उसे सभ्य, सुसंस्कृत और सुविकसित बनाने के लिए पूरा-पूरा ध्यान दें और इसके लिए जो कुछ किया जाना सम्भव हो उसे पूरी तत्परता और दिलचस्पी के साथ एक आवश्यक और महत्त्वपूर्ण कार्य समझकर करते रहें । हमारे घर दीक्षा विद्यालय होने चाहिए । बच्चे स्कूल में शिक्षा प्राप्त करें, पर व्यक्तित्व के विकास की दीक्षा उन्हें घर में मिल सके, ऐसा वातावरण उत्पन्न करना हममें से प्रत्येक को अपना परम पवित्र कर्त्तव्य मानना चाहिए । कार्य यह भी कठिन है, प्रगति भी मंद हो सकती है, पर उपेक्षा से भी काम चलने वाला नहीं है । कुछ करने से ही तो आगे बढ़ना सम्भव होगा ।

साधना, स्वाध्याय और आत्मोन्नति के लिए, परमार्थ के लिए छोड़े गए छह घंटों में से आधा समय अर्थात् तीन घंटे खर्च किये जा सकते हैं । शेष तीन घंटे परिवार और समाज की सेवा में लगाने चाहिए । जिन्हें अपना परिवार सभ्य और सुविकसित देखना हो तो उन्हें कम से कम एक घंटा अपनी परिवार गोष्ठी के लिए बिल्कुल निश्चित रूप से नियत रखना चाहिए। जब सब लोग फुरसत में होते हैं तब परिवार की दैनिक समस्याओं पर विचार-विनिमय करने के लिए एक नियत समय पर ज्ञान गोष्ठी का कार्यक्रम रखा जाया करे । आज के दिन किसके मन में क्या भले-बुरे भाव उठे और क्या प्रिय-अप्रिय परिस्थितियों का सामना करना पड़ा, इसकी चर्चा इस गोष्ठी में की जाती रहनी चाहिए ।

समाचार पत्रों में छपती रहने वाली, अपने आसपास घटित होते रहने वाली घटनाओं से लेकर उनकी आलोचना और समीक्षा इस दृष्टिकोण को लेकर की जानी चाहिए कि उस समीक्षा के प्रभाव से अपने परिवार को दुष्टों और दुष्टताओं से सावधान रहने और सत्कर्मों की ओर अभिमुख होने की प्रेरणा मिले । पौराणिक उपन्यास या कहानियों के माध्यम से भी इस प्रकार का शिक्षण हो सकता है। कहानी कहना भी एक महत्वपूर्ण कला है और परिवार निर्माण के लिए तो इसकी उपयोगिता बहुत ही अधिक है । व्याख्यान, प्रवचन, भजन, सत्संग आदि के कार्यक्रम सभा-सोसायटियों के लिए उपयुक्त हो सकते हैं पर घर की दैनिक गोष्ठियों में उनका विशेष उपयोग नहीं है । उनमें कृत्रिमता का पुट अधिक रहने से नये-नये लोगों पर ही प्रभाव पड़ता है । घर में सीधी-सीधी बातें ही कारगर होती हैं । चर्चा, समीक्षा, विचार-विनिमय, गप-शप । कहानी आदि के हलके-फुलके तरीके न तो किसी के मस्तिष्क पर भार बनते हैं और न उन्हें सुनाते-सुनते कोई ऊबता है । इसलिए परिवार का प्रशिक्षण इन्हीं साधनों के आधार पर किया जाना चाहिए । हमारी दैनिक परिवार ज्ञान गोष्ठियों की प्रक्रिया भी गतिमान हो सकती है।

कोई अभिभावक अपने स्त्री, बच्चों के लिए, परिजनों के लिए भोजन, वस्त्र, दवा, फीस, किताब ज़ेबखर्च, मनोविनोद आदि का प्रबंध कर देने मात्र से अपने कर्त्तव्यों से उऋण नहीं हो सकता । पैसे खर्च करके जो लोग अपने पारिवारिक कर्त्तव्यों को पूरा किया मानते हैं वे भारी भूल करते हैं । सुसंस्कारों का प्रदान एवं उनकी मनोभूमि को सुरुचिपूर्ण, सुसंस्कृत बनाना भी उन्हीं का काम है, इसके बिना अधिकांश उत्तरदायित्व अपूर्ण ही माना जायगा । स्कूलों में शिक्षा मिल सकती है, दीक्षा नहीं । संस्कृति की दीक्षा तो उसी वातावरण में मिलती है जहाँ मनुष्य रहता है । प्राचीनकाल में ऋषि अपने शिष्यों की शिक्षा और दीक्षा दोनों का ही प्रबंध अपने आश्रमों में रखकर किया करते थे । वे आश्रम छात्रों के घर भी थे और शिक्षालय भी । गुरुकुलों में सर्वांगपूर्ण विकास का वातावरण रहता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

था और उनमें पलकर बालक अपने भावी जीवन को समुन्नत बनाने की शिक्षा-साधना किया करते थे । आज वैसा वातावरण बाहर कहीं नहीं दीखता । अब यह कार्य प्रत्येक अभिभावक को स्वयं करना पड़ेगा । अपने घर का वातावरण ऐसा बनाना पड़ेगा जिसमें रहने और साँस लेने से परिवार का प्रत्येक व्यक्ति सभ्य नागरिक बनने की सुविधा प्राप्त कर सके । हमारे घरों को दीक्षा विद्यालयों में परिणित होना चाहिए । बड़ों का जीवन ऐसा हो जिसे देखकर छोटे यह प्रभाव अनायास ही ग्रहण कर लें और स्वयं भी आगे वैसे ही बनने और ढलने की तैयारी करें । एक घंटे की ज्ञान-गोष्ठी के अतिरिक्त निरंतर अपने परिवार की गतिविधियों पर दृष्टि रखें और समय-समय पर परिजनों का प्रेम, शांति, धैर्य एवं सज्जनता के साथ आवश्यक मार्गदर्शन करते रहें तो उसका प्रभाव घर के वातावरण को प्रभावित करता ही रहेगा ।

कई व्यक्ति अपने परिवार को सुसंस्कृत तो बनाना चाहते हैं पर इसके लिए केवल अपशब्द कहना, क्रोधित रहना, निंदा करना, गाली-गलौज या मारपीट करना जैसे बेहूदे तरीके ही उनके पास होते हैं । इन उपायों से किसी का सुधर सकना तो दूर, उलटे अधिक बिगड़ने, चिड़चिड़े होने और विरोधी बनने का ही परिणाम सामने आ सकता है । जिस प्रकार स्कूल के बच्चों को पढ़ाने के लिए अध्यापकों को, गृहस्वामियों और कुलपतियों को भी अपने परिवार का प्रशिक्षण करने की क्रमबद्ध शिक्षा प्राप्त करनी पड़ेगी । दु:ख की बात है कि जहाँ मशीनें चलाने और नौकरी करने जैसे कामों की ट्रेनिंग के लिए अनेक स्थानों पर प्रशिक्षण चलते हैं वहाँ अपना जीवन भलमंनसाहत के साथ जीने और अपने अंगभूत परिवार को सुसंस्कृत बनाने की क्षमता प्राप्त करने का कोई प्रशिक्षण संस्थान नहीं है । लगता है कि इस अभाव की पूर्ति के लिए भी हमें ही एक व्यापक प्रभावपूर्ण व्यवस्था बनानी पड़ेगी । जब तक ऐसी कोई व्यावहारिक शिक्षण व्यवस्था नहीं बन जाती, तब तक इस प्रकार के साहित्य द्वारा ही बहुत कुछ मार्गदर्शन मिल सकेगा ।

जो हो, हमें आत्म-निर्माण और परिवार-निर्माण की उपयोगिता और आवश्यकता समझनी ही होगी और आज की परिस्थितियों के अनुसार हमें कुछ न कुछ सोचने और करने के लिए कटिबद्ध होना ही पड़ेगा । युग निर्माण का श्रीगणेश और शुभारम्भ इसी प्रकार तो होने वाला है ।

मनुष्य स्वभावत: सामाजिक प्राणी है । उसे मिल-जुलकर साथ-साथ रहने में ही सुविधा होती है और इसी में वह प्रसन्नता अनुभव करता है । जिन्होंने परमात्मा को जीवन सहचर और विश्व के प्रत्येक चर-अचर को अपना कुटुम्बी, आत्मीय मान लिया है उनका सूक्ष्म परिवार अत्यंत विशाल हो जाता है । उन विरक्त संत-महात्माओं को बाह्य परिवार की आवश्यकता भले ही प्रतीत न हो पर सर्वसाधारण के लिए तो वह स्वाभाविक ही है और आवश्यक भी । विरक्त लोग भी अपने जैसे अन्य विरक्तों से ताल-मेल बिठाने और अखरने वाले सूनेपन को हटाने का प्रयत्न करते रहते हैं । सामान्य मनुष्यों के लिए तो इसके बिना जीवनयापन कर सकना कठिन हो जाता है ।

आध्यात्मिक विकास, कर्त्तव्य पालन, त्याग, परमार्थ, स्नेह, कृतज्ञता, संयम आदि की वृत्तियों का जितना विकास सम्मिलित कुटुम्ब में होता है उतना पृथक रहने में सम्भव नहीं । घर में कई व्यक्ति ऐसे होते हैं जो स्वयं उपार्जन नहीं कर सकते, जिन्हें परावलंबी रहना होता है । ऐसे लोगों की सुव्यवस्था सम्मिलित कुटुम्ब में ही सम्भव है । बूढ़े माता-पिता, छोटे भाई-बहिन, विधवाएँ, उनके बच्चे आदि कई ऐसे लोग भी प्रत्येक घर में होते हैं जिनकी उपार्जन क्षमता या तो अभी विकसित नहीं हुई है या समाप्त हो चुकी है । हमारा दुर्भाग्य ही है कि रूढ़ियों ने नारी को असक्त, अपंग और बंदी बनाकर इस स्थिति में पटक दिया है कि वे उपार्जन की दृष्टि से स्वावलंबी नहीं बन पातीं । ऐसी दशा में यदि कमाऊ लोग अपनी पत्नी को लेकर अलग रहने लगें तो इन बिना कमाऊ लोगों की भारी दुर्गति होती है । अपने आत्मीयजनों को कठिनाई में पड़ा छोड़कर जो पति-पत्नी मौज उड़ाने के लिए अलग हो जाते हैं उन्हें स्वार्थी और हृदयहीन ही कहा जायगा ।

सभ्य समाज के निर्माण का आधार यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता, कुशलता, शक्ति, ज्ञान और साधन सामग्री का लाभ अपने से पिछड़े हुए जरूरतमंद दूसरे लोगों को प्रदान करे । इसी को पुण्य-परमार्थ, त्याग, दान, उदारता, सहृदयता, मानवता आदि श्रेष्ठ सम्मानित नामों से पुकारते हैं और ऐसे ही कार्यों की प्रशंसा की जाती है । सम्मिलित कुटुम्ब में कमाऊ व्यक्ति को अपने सारे परिवार के लिए त्याग और तप करना पड़ता है जिससे वह प्रशंसा, पुण्य, संतोष और गौरव सभी कुछ प्राप्त करता है । उसके प्रतिदान का सहारा पाकर अविकसित बच्चे विकसित होते हैं और न कमा सकने वाले सुविधापूर्वक जिंदगी काट लेते हैं । दूसरों का सहारा बनकर जीना वस्तुत: एक बड़ी प्रशंसा की बात है और प्रसन्नता की भी । इसके विपरीत जो असमर्थ, आश्रितों की ओर से निष्ठुरता धारण करके संकीर्ण स्वार्थ और सामयिक सुविधाओं से मनमाना लाभ उठाने के लिए पृथक रहने लगे हैं उन्हें वैसे ही घृणित लोगों की श्रेणी में गिना जायगा जो अपने लाभ के आगे दूसरे किसी की सुविधा-असुविधा की बात नहीं सोचते । यदि यह पशु-प्रवृत्ति मनुष्य के आवरण में भी रहे तो फिर उस मनुष्य का कोई नैतिक आदर्श क्या माना जायगा ? अपना पेट पालने, अपना स्वार्थ साधने में तो सियार, बंदर भी चतुर होते हैं । वही आदर्श यदि मनुष्य ने भी अपनाया तो फिर उसकी विशेषता ही क्या रह जायगी ?

जिस प्रकार ब्रह्मांड का छोटा स्वरूप पिंड (शरीर) होता है उसी प्रकार विस्तृत समाज का छोटा स्वरूप अपना परिवार है । परिवार को समुन्नत और सुसंस्कृत बनाना सारे समाज को उत्थान करने की एक छोटी प्रक्रिया है । उसको क्रियात्मक रूप देने की प्रयोगशाला परिवार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है । सारा समाज हमारे नियंत्रण या अधिकार में नहीं है । उस पर अपना दबाव और प्रभाव भी नहीं रहता है पर कुटुम्ब के लोगों के साथ आत्मभाव का तारतम्य इतना गहरा होता है कि परिजनों के उत्थान और विकास के लिए, सुख और समृद्धि के लिए, शिक्षा और दीक्षा के लिए बहुत कुछ किया जा सकता है । समाज-सेवा का परिपूर्ण अवसर इस छोटे क्षेत्र में हर व्यक्ति को प्राप्त है । उसे अपने कौशल, ज्ञान और क्षमता का पूरा लाभ देकर समाज सेवा के लिए अपने उत्तरदायित्व को हर व्यक्ति पूरा करता चले तो सहज ही सभ्य समाज की रचना का उद्देश्य पूरा हो सकता है ।

अर्थ विज्ञान के सिद्धान्तों ने भी अध्यात्म विज्ञान की मान्यताओं को ही पुष्ट किया है । व्यक्तिवाद को, अलगाव की प्रवृत्ति को, स्वार्थपरता को आर्थिक आदर्शों के विपरीत बताया जा रहा है और एक विस्तृत दर्शनशास्त्र के द्वारा यह समझाया जा रहा है कि मिल-जुलकर रहने, काम करने, श्रम, पुरुषार्थ करने और बाँटकर खाने में ही समाज की प्रगति सम्भव है । इसी दर्शनशास्त्र का नाम समाजवाद है । सहकारिता आंदोलन को महत्व इसी दृष्टि से दिया जा रहा है । सामूहिक और सम्मिलित प्रयत्नों के लिए ही संस्थाएँ बनती हैं । प्रजातंत्र का ढाँचा ही साझूहिक और सहकारिता पर खड़ा होता है । इसी आधार पर सरकार बनती और राजकाजी चुने जाते हैं । अमीरों पर अधिकाधिक टैक्स का भार डालना और गरीबों को अधिकाधिक सुविधा प्रदान करना सरकारी नीति होती है । सम्मिलित परिवार ऐसा ही प्रजातंत्र है, जिसमें अधिक कमाने वाले को टैक्स के रूप में न कमाने वालों के लिए अपनी कमाई छोड़नी पड़ती है ।

आर्थिक दृष्टि से भी लाभ इसी में है । दस व्यक्ति इकट्ठे रहें तो उन पर जितना खर्च आता है उसकी अपेक्षा दसों के अलग-अलग रहने में कहीं अधिक खर्च आयेगा । सम्मिलित कुटुम्ब में हारी-बीमारी तथा सुविधा-असुविधा में परस्पर सेवा-सहायता का काम तथा उत्तरदायित्व बाँट लेने की जो सुविधा रहती है वह अलग रहने पर कैसे सम्भव हो सकती है । बहुएँ जब तीन-चार छोटे-छोटे बच्चों की माता बन जाती हैं तो अलग घर बसाने पर नये प्रसव के समय कितनी असुविधा होती है, यह वे ही जानती हैं । सम्मिलित कुटुम्ब में बच्चों का भार माता पर बहुत कम आता है । भरेपूरे कुटुम्ब में वे ऐसे ही साथ-साथ खाते-खेलते, बढ़ते और पलते रहते हैं जबकि अलग घर में बहू को उन बच्चों से ही किसी प्रकार फुरसत नहीं मिलती । हारी-बीमारी के दिनों में सम्मिलित कुटुम्ब का जो सुख है, वह अकेलेपन में कहाँ है ? हँसते-बोलते साथ-साथ सामूहिक जीवन में जिंदगी देखते-देखते बीत जाती है पर अकेलेपन में एक-एक दिन भारी पड़ता है ।

आत्मसंयम और इन्द्रियनिग्रह का जितना अवसर सम्मिलित कुटुम्ब में रहता है उतना अकेले रहने में कहाँ है ? सबकी रुचि का ध्यान रखकर आहार-विहार का कार्यक्रम, दिनचर्या की व्यवस्था बनानी पड़ती है । उच्छृंखलता और स्वेच्छाचार पर वहाँ पूरा नियंत्रण रहता है । ऐसे वातावरण में युवावस्था वाले बुरी संगति से सहज ही बच जाते हैं । अकरणीय कर्म करने का अवसर ही जब न मिलेगा तब पतन की गुंजाइश ही कहाँ रहेगी ? भरेपूरे घरों की लड़कियों और लड़कों को शिष्टाचार बरतना सीखना पड़ता है । बड़ा परिवार सदा से प्रतिष्ठा का सूचक माना जाता है । अभिभावकों के न रहने पर भी विधवाएँ तथा बच्चे अपने को अनाथ अनुभव नहीं करते ।

भारत कृषि प्रधान देश है । यहाँ का प्रमुख उद्योग कृषि है । इस धंधे में कई व्यक्ति घर के हों और सब मिलकर काम करें तो ही लाभ हो सकता है । बँटवारा करके छोटी-छोटी जोतें, छोटे-छोटे परिवारों द्वारा कमाई जायँ तो उनमें क्या लाभ रहेगा ? अन्य व्यापारों में भी ऐसा ही है कि घर के कई आदमी सच्चे मन से मिल-जुलकर काम करें तो उसमें जो लाभ होगा, वह नौकर रखकर या अकेले-अकेले में नहीं हो सकता । बच्चों में शिक्षा, संस्कृति, सभ्यता एवं मिल-जुलकर काम करने की जो महत्वपूर्ण प्रवृत्ति विकसित होती है वह अकेलेपन में रहते हुए सम्भव नहीं होती ।

पिता-माता की सेवा करके उनका आशीर्वाद लेने का, भाई-बहिनों को सेवा-सहायता करने का, बच्चों के साथ खेलने-खिलाने का, मिल-जुल कर खाने-बैठने का, एक दूसरे के प्रेम और विश्वास का जो लाभ इकट्ठे रहने में मिलता है, वह अकेले रहने वालों को कहाँ मिलेगा ? मरघट के पीपल की तरफ वह बेखटक खड़ा तो रहता है पर सूनेपन में उसे मानसिक दृष्टि से भारी अभाव ही बना रहता है । उलझनों और जिम्मेदारियों का बोझ भी अकेले रहने पर अकेले ही भुगतना पड़ता है, जो कई बार अलग जीवन की सुविधा की अपेक्षा बहुत अधिक चिंता और कष्ट का कारण बनता है ।

कई लोग जहाँ इकट्ठे रहेंगे वहाँ कई तरह की समस्याएँ उत्पन्न होती रहेंगी । उन्हें आगे बढ़ने से पूर्व ही सुलझाते रहा जाय तो हमारे परिवार सच्चे प्रजातंत्र बने रह सकते हैं और उनके स्वस्थ विकास से सभ्य समाज का निर्माण होने में भारी योगदान मिल सकता है । परिवार को सुव्यवस्थित बनाया जाय, उनकी एक व्यवस्थित आचार संहिता रहे जिसका सब लोग पालन करें । जिस प्रकार सरकार चलाने के लिए विधान और कानून बने हुए हैं, पंचायतों की व्यवस्था पंचायत एक्ट के मुताबिक चलती है, उसी प्रकार भारतीय परिवारों की भी एक आचार संहिता रहनी चाहिए । उसके अनुसार कार्य करते हुए प्रत्येक अपने कर्त्तव्यों का पालन और अधिकारों का उपयोग करता रहे तो हमारे घर स्वर्गीय वातावरण से ओत-प्रोत हो सकते हैं ।

परिवार का मेरुदण्ड पत्नी होती है । पुरुष दिन भर घर से बाहर रहता है । जितनी देर घर पर रहता है उसमें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी अधिकांश समय शौच, स्नान, भोजन, निद्रा आदि नित्य कर्मों में लग जाता है । प्रायः सारा दिन स्त्री को घर पर रहना होता है । उसका ही सीधा सम्बन्ध परिवार के छोटे-बड़े सब से रहता है । घर की अन्य स्त्रियाँ तथा बच्चे तो दिन भर घर पर रहते हैं, उनके साथ पूरा व्यवहार क्रम पत्नी को ही चलाना पड़ता है । पुरुष जब घर आते हैं तो उनकी व्यवस्था भी उसे ही करनी पड़ती है । इसलिए घर का व्यावहारिक संतुलन बनाये रखना प्रायः स्त्री के हाथ रहता है । पुरुष आर्थिक समस्याएँ हल कर सकते हैं, नियमित और परिपूर्ण संचालन वे नहीं कर सकते, यह कार्य स्त्री को ही करना होता है । स्वास्थ्य, शिक्षा, संस्कृति एवं भावना की परिपूर्ण व्यवस्था रखनी चाहिए । कुछ दोष-दुर्गुण सबमें होते हैं, हममें से किसी की भी पत्नी ऐसी नहीं होती जो पूर्णतया सब प्रकार उपयुक्त हो । माँ-बाप के घर से कुछ शिक्षा लेकर स्त्रियाँ आती हैं, कुछ बातें उनमें जन्मजात भी होती हैं, पर सबसे अधिक निर्माण कार्य ससुराल में होता है । ससुराल में भी यह कार्य विशेष रूप से पति करता है । पति यदि सुयोग्य हो तो फूहड़ पत्नी को सद्गुणों की खान और उन विशेषताओं से सम्पन्न बना सकता है जो पारिवारिक जीवन को सुसंचालित रखने के लिए आवश्यक हैं ।

अपने पिता का भरा-पूरा घर, अपने जन्म परिवार का स्नेह सौजन्य को छोड़कर जब नारी ससुराल आती है तो उसे इस जीवन क्रान्ति में एकमात्र प्रकाश स्तम्भ पति का प्रेम ही दीखता है । यों ससुराल में सभी से उसे सद्-व्यवहार की आशा होती है पर सबसे अधिक आकांक्षा पति की गहन आत्मीयता की होती है । वह अपने बिछुड़े हुए पितृ परिवार की सारी ममता और आत्मीयता की क्षति-पूर्ति पति के प्रेम प्रतिदान द्वारा पूर्ण करना चाहती है । यदि वह मिल गया तो विपुल वर्षा होने पर उर्वर भूमि में उगने वाली वनस्पति की तरह उसका व्यक्तित्व अनेक सद्गुणों की हरियाली से लहलहाने लगता है । यदि यह प्राप्त न हुआ तो जिस प्रकार सूखा पड़ जाने या तुषारपात होने पर हरी-भरी फसल भी नष्ट हो जाती है उसी प्रकार नारी के संचित सद्गुण भी असंतोष की आग में जल-भुन कर समाप्त हो जाते हैं । नारी की स्वाभाविक आकांक्षा आत्मीयता को दिये बिना कोई पति उसका सच्चा प्रेम और सहयोग प्राप्त कर नहीं सकता ।

हिस्टेरिया, मृगी, चिड़चिड़ापन, दुस्वप्न, अनिद्रा, दिल की धड़कन, मासिक धर्म की खराबी, सिर दर्द, कमर दुखना आदि अनेक शारीरिक रोगों की जड़ स्त्रियों के आन्तरिक असंतोष में रहती है । वे स्वाभाविक लज्जावश अपनी वेदना किसी से कह तो नहीं पातीं, कहें भी तो अनुकूलता उत्पन्न करने का कोई उपाय उनके पास नहीं होता । ऐसी दशा में वे चुपचाप सहती तो रहती हैं पर आन्तरिक असन्तोष उनके अनेकों सद्गुणों को जलाता भूनता रहता है । उनका कोमल मस्तिष्क एक प्रकार से विक्षिप्त रहने लगता है, फलस्वरूप शारीरिक स्वास्थ्य ही खोखला नहीं होता, वरन् वे मानसिक विशेषताएँ भी नष्ट होने लगती हैं जो पारिवारिक सुव्यवस्था एवं विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक होती हैं ।

मनु भगवान की उक्ति है कि "जहाँ नारी संतुष्ट है उस घर में समृद्धि की वर्षा होगी और जहाँ उसे असंतोष रहेगा वहाँ सब कुछ नष्ट हो जायगा ।" असंतोष के छोटे-मोटे कारण व्यवस्था, श्रम सम्बन्धी असुविधा, जीवनोपयोगी वस्तुओं के अभाव, तात्कालिक घटनाएँ एवं दूसरे लोगों का असद्व्यवहार आदि कारण भी होते हैं, पर उनका प्रभाव बहुत गहरा नहीं होता । उनमें सुधार भी हो सकता है, भुलाया भी जा सकता है और संतोष भी किया जा सकता है । पर जो कमी और किसी प्रकार पूरी नहीं हो सकती वह पति के प्रेम की कमी है । उपेक्षिता नारी विधवा से भी अधिक दुःखी रहती है । विधवा अपने दुर्भाग्य को अटल मानकर संतोष कर लेती है पर सुहागिन को तो अपनी स्थिति पर आँसू ही बहाते रहने पड़ते हैं ।

असंतुष्ट नारी के गर्भ से कभी सद्गुणी सन्तान उत्पन्न नहीं हो सकती । अवैध संतान के गर्भकाल में माता अनेकों चिन्ताओं, विक्षोभों और भय, लज्जा, दुर्भाव आदि में ग्रस्त रहती है इसलिए आमतौर से ऐसे बच्चे उद्दण्ड और दुर्गुणी निकलते हैं । इसी प्रकार पति के प्रेम के अभाव या अन्य किन्हीं कारणों से यदि नारी असंतुष्ट और विक्षुब्ध बनी रहती है तो उसका प्रभाव गर्भस्थ संतति पर निश्चित रूप से पड़ने वाला है । ऐसे बालकों को उच्च शिक्षा भी उनके मानसिक एवं आत्मिक दुर्गुणों से रहित नहीं बना सकती । इसलिए संतान को सुयोग्य और प्रबुद्ध बनाने की भूमिका के रूप में पत्नी के संतुष्ट, सुखी और निश्चिन्त बनाने की व्यवस्था के लिए तो यह कार्य अनिवार्य ही है क्योंकि बाहर से स्वस्थ दीखने पर जो भीतर से विक्षुब्ध रहती है उस नारी के आचरण में व्यवस्था, शिष्टता आदि की कमी बनी ही रहेगी । वह सुयोग्य गृहिणी नहीं बन सकेगी ।

अविचल विश्वास और परिपूर्ण प्रेम पाकर नारी परम संतुष्ट रह सकती है । जहाँ उसे स्नेह और सम्मान मिलता है, सहानुभूति और कृतज्ञता से देखा जाता है वहाँ वह आत्म-समर्पण करके सब कुछ होम देने को तैयार हो जाती है । नारी का रंग रूप, वेश विन्यास, बनाव शृंगार देखना निरर्थक है । यह चीजें बहुत ही तुच्छ और क्षणिक हैं । आन्तरिक सौन्दर्य काले, कुरूप, अशिक्षित और अस्वस्थ शरीर में भी हो सकता है । उस सच्चे सौन्दर्य का पुष्प भावनाओं की टहनी पर खिलता है । इस आन्तरिक सौन्दर्य का रसास्वादन पति-पत्नी जहाँ आपस में किया करते हैं, वहाँ स्वर्ग ही विराजमान रहता है । जिस पति-पत्नी ने अपनी अन्तरात्मा को एक करके एकता और आत्मीयता की, प्रेम और विश्वास की गंगा प्रवाहित कर ली, उनके परिवार में सदा मंगल ही मंगल रहेगा । एकता वहाँ की नष्ट न होगी, लक्ष्मी वहाँ से टाले न टलेगी । उस घर के हर व्यक्ति का भविष्य आशा और उत्साह की दिशा में ही अग्रसर होगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपेक्षा ने ही परिवारों का स्तर गिराया है

नष्ट और दुर्बल करने के लिए विरोध या आक्रमण आवश्यक नहीं । यह कार्य उपेक्षा से भी पूरी तरह सम्भव हो जाता है । भले ही इसमें कुछ देर लगती है । ध्वंस और आक्रमण का प्रतिफल तत्काल दृष्टिगोचर होता है । विरोध-संघर्ष का प्रत्यक्ष और निन्दा-चुगली का परोक्ष आक्रमण समयानुसार अपना परिणाम प्रस्तुत करता है । पर इसमें एक अच्छाई भी है कि सामने वाला सजग हो जाता है और आत्मरक्षा से लेकर प्रतिशोध, प्रत्याक्रमण तक के अनेक उपाय सोचता है । इससे जागरूकता और सक्रियता के फलस्वरूप बहुत अंशों में आक्रमण से बचाव भी हो जाता है और आक्रमणकारी को निराश होना पड़ता है । आक्रमण और प्रत्याक्रमण का गतिचक्र दोनों ही पक्षों को निरुत्साहित करता है । फलतः हानि उतनी नहीं हो पाती, जितनी सम्भव थी । आक्रमण, प्रत्याक्रमण से दो अन्य समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, वे समझदारी अपनाने के लिए दबाव डालती हैं और क्रुद्ध, उत्तेजित व्यक्ति अन्ततः निराश और शिथिल होकर दूसरा रास्ता अपनाने और इस कुचक्र से पीछा छुड़ाकर अन्य आवश्यक समस्याओं को सुलझाने में लग जाते हैं ।

सहयोग का प्रतिपक्षी है-विद्वेष । एक सौम्य होने से साधारण लगता है और दूसरा उत्तेजक होने के कारण उभरकर ऊपर आ जाता है । इतने पर भी विवेक अपना काम करता है और लोग देर-सवेर में समझ ही जाते हैं कि सृजन की उपलब्धियाँ ही काम आती हैं । ध्वंस से जी की जलन भर ठंडी होती है । वह ठंडक भी देर तक ठहरती नहीं । उस प्रयास में जो खोया वह इतना महँगा होता है कि उद्दण्डता स्वयं ही पंछताती और आत्म-प्रताड़ना की आग में जलती है । इस प्रकार ध्वंस यदा-कदा आवश्यक होने पर भी सब मिलाकर हानिकर ही सिद्ध होता है । अहित के लिए ही नहीं, आक्रान्ता के लिए भी ।

विनाश लीला की एक और सहेली है-उपेक्षा । यह भोली बनी एक कोने में बैठी रहती है । अपनी दुरभिसन्धियों का किसी को पता भी नहीं चलने देती । प्रकट में उसका कोई कुकृत्य सामने भी नहीं आता । फलतः बचने-बचाने की सावधानी बरतने की आवश्यकता भी नहीं समझी जाती । उसकी भर्त्सना भी नहीं होती । जिसकी हानि ही न समझी जाय उससे बचने का प्रयत्न भी कोई क्यों करेगा ? अनेक दुष्प्रवृत्तियाँ अपना व्यवसाय इसी रूप में चलाती हैं । वे मनुष्य के विचार, स्वभाव और व्यवहार में धीरे-धीरे घुसती चली जाती हैं और एक आदत के रूप में व्यक्तित्व का अंग ही बन जाती हैं ।

आहार-विहार का असंयम इसी स्तर का है-आलस्य, प्रमाद को भी इसी श्रेणी में सम्मिलित रखा जा सकता है । अपव्यय, सजधज, व्यसन, कुसंग जैसे कितने ही दुर्गुण ऐसे हैं जो धीरे-धीरे अभ्यास में आते रहते हैं और चेतना पर पूरी तरह कब्जा जमा लेते हैं । नशेबाजी जैसी घातक आदत धीरे-धीरे पड़ती है और परिपक्व बनने पर आवश्यकता ही नहीं, विवशता बनकर दिमाग पर छाई रहती है । यह सब होता कैसे है ? इसका इतिहास एक ही है-दुर्गुणों की उपेक्षा । उनकी हानि पर ध्यान न देना और विष बेल के उगते ही उसके उन्मूलन का प्रयत्न न करना । बीमारियाँ भी इस क्रम से शरीर में घुसती हैं, घुन की तरह उसे भीतर ही भीतर खोखला करती हैं, प्रकट तब होती हैं, जब पानी सिर से ऊपर निकल जाता है । सद्गुणों के सम्बन्ध में बरती जाने वाली उपेक्षा ही मनुष्य को पिछड़ी स्थिति में पड़े रहने की जिम्मेदार है । कोई भी व्यक्ति स्वास्थ्य सम्बर्द्धन की ओर जागरूक रहने लगे और उन प्रयत्नों में रस लेने लगे तो इतने भर से उसका शरीर दुर्बलता और रुग्णता से पिण्ड छुड़ाने एवं बलिष्ठ दीर्घजीवी बन सकता है । अध्ययन में रस आने लगे तो व्यस्त व्यक्ति भी जैसे-तैसे उसके लिए अवसर निकालता रह सकता है और अन्ततः अन्यों की अपेक्षा कहीं अधिक विद्वान बुद्धिमान बन सकता है । अवसर न मिलने का बहाना विशुद्ध रूप से आत्मप्रवंचना है । जिस भी काम में रस आने लगेगा तो उसके लिए न केवल समय मिलेगा वरन् सोचने और करने के लिए भी सुविधा मिलेगी । साथ ही साधन भी जुटते चलेंगे ।

प्रगतिशील लोगों की सफलता पर गम्भीर दृष्टिपात किया जाय तो एक ही निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि उत्कर्ष का बीजारोपण अभीष्ट प्रयोजन से, रस लेने से आरम्भ हुआ था और तत्परता बरतने भर से सहयोग मिलने और साधन बनने के आधार खड़े होते चले गये । पिछड़े लोगों के दुर्भाग्य का पर्यवेक्षण करने पर भी प्रायः यही तथ्य निषेधात्मक पक्ष सामने आता है । उनके पास भी समर्थता एवं परिस्थिति में कमी नहीं थी । न साधनों का अभाव था, न अवसर की कमी । कठिनाई एक ही रही कि सच्चे मन से न प्रगति की आवश्यकता समझी गई और न तत्परतापूर्वक उसकी चेष्टा की गई । फलतः पिछड़ापन लदता चला गया । साधन एक-एक करके समाप्त हो गये और दरिद्रता का दुर्भाग्य जड़ जमाकर बैठ गया ।

लकड़ी को घुन, शरीर को विषाणु, धन को दुर्व्यसन, यश को दुराचरण नष्ट करता है । मनुष्य के भविष्य को अन्धकारमय बनाने में उस उपेक्षावृत्ति का सबसे बड़ा हाथ रहता है जो न तो अवांछनीयता को पहचानने और न उसे हटाने में तत्परता प्रदर्शित करती है । सौभाग्य आकाश से नहीं टपकता, वह प्रयत्नपूर्वक उपार्जित करना पड़ता है । साधना से सिद्धि का सिद्धान्त, सौभाग्य के देवता का अनुग्रह उपार्जित करने में पूरी तरह लागू होता है । साधना का अर्थ जागरूकता, तत्परता और सद्भावना के समन्वय से बनने वाली श्रद्धा है । जहाँ श्रद्धा है, वहीं साधना है । जहाँ साधना होगी वहाँ आज नहीं तो कल सिद्धि को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पहुँचने के लिए विवश होना पड़ेगा । इन तथ्यों की जब तक उपेक्षा होती रहेगी मनुष्यों को इतनी हानि उठानी पड़ेगी जितनी आक्रमण या ध्वंस के रूप में आने वाले संकटों से भी नहीं होती ।

परिवार संस्था की प्रस्तुत दुर्गति के मूल में यही एक विडम्बना काम करती और विभीषिका के रूप में परिणत होती देखी जा सकती है । शरीर के बाद जीवनयापन की दूसरी व्यवस्था परिवार के साथ ही जुड़ी हुई है । घर परिवार को दूसरा शरीर कहा गया है । निर्वाह की कुछ सुविधाएँ शरीर जुटाता है और कुछ की पूर्ति शरीर द्वारा होती है । एकाकी जीवनयापन तो बहुत छोटे दर्जे के कृमिकीटक ही कर पाते हैं अन्यथा हर विकसित प्राणी को सहयोगी जीवन पद्धति, पारिवारिकता अपनानी पड़ती है । चींटी, दीमक, मधुमक्खी, टिड्डी जैसे छोटे कीड़े अपनी निर्वाह प्रक्रिया सहकारिता के आधार पर चलाते हैं । पशु-पक्षियों में तो वह और भी अधिक विकसित होती जाती है । मनुष्य की वरिष्ठता का तो एकमात्र कारण यह सहकारी प्रवृत्ति ही है जिसके कारण पारस्परिक आदान-प्रदान सम्भव हुआ और उपलब्धियों की परम्परा से पीढ़ियाँ अधिकाधिक लाभान्वित होती चली गईं ।

बुद्धिमत्ता उपार्जन है, सहकारिता बीजारोपण । इस सहकारिता का जो प्रयोग मनुष्य को सबसे अधिक प्रभावित करता है वह परिवार संस्था के अन्तर्गत चलने वाला सहकारी जीवन ही है । शरीर के विभिन्न अवयव अपनी-अपनी विशेषता और क्रियाशीलता से जीवन को समर्थ और समृद्ध बनाने में योगदान देते हैं । ठीक इसी प्रकार परिवार में चलने वाली विभिन्न प्रवृत्तियों के फलस्वरूप गृहपति का ही नहीं, उस परिवार में रहने वाले पूरे समुदाय का निर्वाहक्रम ही नहीं चलता, भविष्य निर्धारण भी होता है । महत्व की दृष्टि से शरीर के बाद दूसरा नम्बर परिवार का ही आता है । यहाँ एक बात बार-बार ध्यान रखने योग्य है कि परिवार का अर्थ अंश-वंश के लोगों का जमघट मात्र ही नहीं वरन् वह व्यवस्था है जिसमें जीवन निर्वाह की प्रक्रिया मिल-जुलकर चलाई जाती है । गुरुकुलों एवं आरण्यकों को भी परिवार प्रक्रिया का ही सुविकसित अंग माना गया है, यों छावनियों और सरायों को भी एक दृष्टि से इसी व्यवस्था में सम्मिलित कर सकते हैं ।

शरीर यात्रा के लिए आवश्यक साधन जुटाने में लोग प्रयत्नशील रहते ही हैं । परिवार की आवश्यकताएँ पूरी करने का प्रयत्न भी होता ही है । किन्तु दुर्भाग्य यह है कि इन दोनों को ही समर्थ और उत्कृष्ट बनाने के लिए न तो आवश्यकता जागरूकता की बरती जाती है और न तत्परता । फलतः शरीर जैसा बहुमूल्य यंत्र दुर्बल और रुग्ण बना रहता है । जितनी सेवा सम्भव थी, उतनी कर नहीं पाता । टूटी-फूटी स्थिति में रोता-कलपता, दिन गुजारता और अकाल मृत्यु के मुख से धँस जाता है । यही दुर्गति परिवार की भी होती है । व्यवस्था की दृष्टि से कुरूपता, गन्दगी, बर्बादी, विशृंखलता का दौर छाया रहता है ।

भावना की दृष्टि से स्वार्थों का थोड़ा-सा तालमेल भर जिस-तिस में दीखता है शेष को बाड़े में बन्द भेड़ों, जेल में बन्द कैदियों या सराय में पड़े हुए मुसाफिरों की तरह अपना समय गुजारना पड़ता है । न सहयोग, न सद्भाव । न विचार-विनिमय, न आदान-प्रदान । आपाधापी ही सिर पर चढ़ी रही और सबको अधिक पाने की ही धुन सवार हो, सींचने सँजोने का काम एक दो पर ही छोड़ा जाय और अन्य सब उसमें से अधिक पाने या उपेक्षा बरतने में ही अपना लाभ समझें तो निश्चय रूप से यह संस्थान नीरस और निष्फल ही बना रहेगा । न उत्साह दृष्टिगोचर होगा, न उल्लास । न समृद्धि बढ़ेगी और न प्रगति सम्भव होगी ।

शरीर की महत्ता समझी गई होती और परिवार की गरिमा को ध्यान में रखा गया होता तो इन दोनों ही बहुमूल्य तन्त्र की उपेक्षा का शिकार न होना पड़ता । उत्तेजना गरम आग है और उपेक्षा ठंडी । अत्यधिक गर्मी की तरह अतिशीतता भी समान रूप से विनाशकारी सिद्ध होती है । आवश्यक नहीं कि पौधे को उखाड़ फेंकना ही आवश्यक हो । उसे खाद पानी न देने, सर्दी-गर्मी में न बचाने एवं पशु-पक्षियों द्वारा नष्ट किये जाने की सुरक्षा न रखने पर भी पौधा अपनी मौत मर जायगा । यह अहिंसक हिंसा है जिसका दूसरा नाम उपेक्षा भी है । प्रगति के लिए अपने को और दूसरों को प्रोत्साहित करना पड़ता है । उत्साह भरे प्रयास को ही प्राण या जीवन कहते हैं । इसके अभाव में जीवन्तों को मरण के गर्त में बिलखता और मृतकों को सड़न बदबू में समाप्त होते देखा जा सकता है । परिवार की दुर्गति क्यों हुई ? इतनी उपयोगी संस्था की प्रखरता कहाँ चली गई ? इस प्रश्न का उत्तर खोजते-खोजते इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि 'उपेक्षा' ने यहाँ भी बर्बादी बोई और विकृति उगाई है ।

विनाश के मूलभूत कारणों में ध्वंस और आक्रमण की भूमिका भी कम नहीं, पर यह ध्यान रखने योग्य है कि उद्दण्डता जब-तब ही आँधी तूफान की तरह आती और चली जाती है । निरन्तर की हानि स्थायी प्रदूषण से ही होती है । उपेक्षा वह विषाक्तता है जो क्रमशः नस-नाड़ियों में प्रवेश करती है और सम्बद्ध सभी घटकों को मूर्छित एवं विकृत बनाकर रख देती है । संसार के हर क्षेत्र में प्रगति की अमोघ सम्भावना विद्यमान है । यदि तत्परता और जागरूकता का सहारा कुछेक लोगों ने ही नहीं, जन साधारण ने भी लिया होता तो जो कुछ सामने है, उसमें असंख्य गुना वैभव मनुष्य को उपलब्ध हो गया होता ।

विनाश और व्यवधान के कारण भी अनेक हैं उनके द्वारा उत्पन्न की जाने वाली अड़चनें भी अगणित हैं । उनके कारण जो हानियाँ उठानी पड़ी हैं उनका विवरण भी बढ़ा-चढ़ा है, किन्तु यह ध्यान रखने योग्य है कि प्रगति का अवरोध और अवगति का निर्धारण करने में उपेक्षा ने जितनी क्षति पहुँचाई है उसकी तुलना में समस्त अवरोध

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

मिलकर भी तुच्छ बैठते हैं । जितना भूभाग उष्ण कटिबंधों में बर्बाद हुआ है उससे कहीं अधिक विस्तृत धरातल शीत की बहुलता से निरर्थक बना हुआ है । उपेक्षा से अधिक चिरस्थायी विनाशक शक्ति और किसी की हो सकती है यह कहना कठिन है । असंख्य व्यक्तित्व उपेक्षा के कारण हेय स्थिति में पड़े और विडम्बनाओं की विकृति से सड़े-गले अपनी जीवनलीला समाप्त करते देखे गये हैं । काश, उन्हें प्रोत्साहन मिला होता । काश, उन्हें सृजनात्मक उमंगों से जुड़ने का अवसर मिला होता तो स्थिति उससे सर्वथा भिन्न रही होती जैसी कि बनी हुई है ।

जहाँ तक परिवार संस्था का सम्बन्ध है उन्हें शरीरों की तरह ही उपेक्षा के गर्त में गिरना और अनेकानेक विपत्तियों, विकृतियों का शिकार बनना पड़ता है । लोग इतने भर से अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान लेते हैं कि उन्होंने कुटुम्बियों के लिए कितनी मात्रा में सुख-साधन जुटाया और उत्तराधिकार में कितना धन-वैभव छोड़ा । यह भयंकर भूल है । इस प्रयास में प्रयत्नकर्त्ताओं का तो कचूमर निकलता ही है, कुटुम्बियों को भी उस अनौचित्य को स्वीकार करने पर अपनी पवित्रता, प्रतिभा और प्रखरता से हाथ धोना पड़ता है । लाड़-दुलार में पलने वाली अमीरों में संतान का तथा निर्धन परिवार में पले लोगों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो प्रतीत होगा कि व्यक्तित्व की दृष्टि में सम्पन्नता ने ही हानि पहुँचाई है, विपन्नता ने नहीं । भोजन अपने परिश्रम से ही पचता है । वैभव भी उतना ही हजम होता है जितना कि अपने निज के उचित पराक्रम, पुरुषार्थ से कमाया गया हो । परिवार को सुखी बनाने के लिए प्रयत्नरत मनुष्यों को यदि इतनी समझ और भी रही होती तो कितना अच्छा होगा कि सुसंस्कारिता ही मानव जीवन की चिरस्थायी और कल्याणकारी सम्पदा है ।

परिवारों की उपेक्षा उस अर्थ में होती रही है कि उनमें सुसंस्कारिता का वातावरण उत्पन्न करना न तो आवश्यक समझा जाता है और न उसके लिए प्रयत्न किया जाता है । जिस सन्दर्भ में जागरूकता बरती जायगी, उसकी अभिवृद्धि होगी और जिसकी उपेक्षा होगी उसकी क्रमशः अवनति ही होती जायगी । परिवार निर्माताओं ने जाने या अनजाने में दुष्प्रवृत्तियों का वातावरण बनाया है फलतः उन्हें फलते-फूलते देखा जा सकता है । हर कुटुम्ब दोष-दुर्गुणों का भण्डार बनता जा रहा है । उसमें श्रेय उस नीति को है जो परिवार निर्माताओं द्वारा अपनाई गई है । जहाँ-तहाँ ऐसे भी कुटुम्ब दीख पड़ते हैं जिन्हें धरती पर स्वर्ग के अवतरण का दृश्य कह सकते हैं । नररत्नों की खदानें पहले भी समुन्नत परिवारों में ही दृष्टिगोचर होती थीं और अभी भी वैसे उदाहरण देखने को मिल जाते हैं । इस अन्तर का मूलभूत कारण एक ही है कि सुसंस्कारिता की उपयोगिता आवश्यकता समझी नहीं गई और उसके लिए चेष्टा भी नहीं हुई । फलतः उस सद्भावसम्पन्न शालीनता के दर्शन भी दुर्लभ हो रहे हैं जिसमें गृहपति समेत अन्य सभी परिजनों को उल्लास भरी मनःस्थिति और प्रगतिशील परिस्थिति का लाभ मिलता है । प्राचीनकाल में मनुष्यों की काया में देवत्व की झाँकी मिलती थी । आज भी उसकी पुनरावृत्ति पूर्णतया सम्भव है । शर्त एक ही है कि सम्पन्नता की ही तरह शालीनता का भी महत्व समझा जाय और उसके अभिवर्द्धन का भी वैसा ही प्रयत्न रुचिपूर्वक किया जाय जैसा कि सुविधा साधन बढ़ाने के लिए किया जाता है । परिवारों को स्वर्गोपम बनाना हो-उनमें देव समुदाय को लीला विहार करते देखना हो-तो उस क्षेत्र में उत्कृष्ट आदर्शवादिता का उत्पादन करने के लिए कटिबद्ध होना होगा । इस सन्दर्भ में बरती जाने वाली उपेक्षा तो अविलम्ब समाप्त करनी होगी ।

कमाऊ व्यक्ति परिवार के प्रति उपेक्षा न बरतें

पारिवारिक सद्भाव-सन्तुलन को कमाऊ व्यक्तियों की स्वेच्छाचारिता से प्रायः आघात पहुँचता है । जब उपार्जनशील लोग परिवार को एक इकाई न मानकर अपनी ही चिन्ता में सिमटकर रह जाते हैं तब परिवार में शान्ति तथा सुव्यवस्था को आघात पहुँचता है । पूरे परिवार की सुख-समृद्धि एवं विकास-प्रगति का उदारता तथा सहानुभूतिपूर्वक विचार कर ध्यान रखना परिवार के कमाऊ-सदस्यों तथा उनकी पत्नियों का विशेष दायित्व है । जब वे अपने को परिवार का कर्त्ता-धर्ता मानकर इस समर्थता का उपयोग अपने पक्ष में करने की सोचने लगते हैं, तब पारिवारिक अनुशासन अराजकता में बदलने लगता है ।

जो लोग परिवार की सुविधाओं एवं अधिकारों का लाभ उठाने में तो प्रसन्न रहते हैं, किन्तु कर्त्तव्यों की बारी आने पर पीठ दिखाने लगते हैं, उन्हें कृतघ्न ही कहा जा सकता है । किसी श्रेष्ठतर उद्देश्य के लिए पारिवारिक कर्त्तव्यों का त्याग भिन्न वस्तु है । गौतम बुद्ध ने जीवन मूल्यों के शोधन-अन्वेषण के लिए परिवार छोड़ा । गुरु गोविन्दसिंह ने धर्म-रक्षा के लिये पुत्रों की ही बलि चढ़ा दी । पत्नी कमलारानी की बीमारी की स्थिति में भी श्रीजवाहरलाल नेहरू अँग्रेज-शासन की किसी भी शर्त को मानकर जेल से रिहा होने को तैयार नहीं हुए । ऊपरी तौर पर ऐसे आचरणों को पत्नी, सन्तान एवं परिवार के प्रति कर्त्तव्यों की अवहेलना कहा जा सकता है, किन्तु ऐसे लोगों ने परिवार पोषण से भी श्रेष्ठतर मूल्यों के लिये ऐसा किया था । सम्पूर्ण समाज, देश एवं विश्व को ही अपना परिवार मानकर उसके हित के लिये ये पग उठाये गये थे । उनके पीछे पलायन या स्वार्थ साधन की नहीं, पुरुषार्थ, उत्कृष्टता एवं त्याग की ही भावनाएँ काम करती थीं ।

किन्तु जो अपने शारीरिक इन्द्रियपरक सुखों की तृप्ति के लिये परिवार के प्रति कर्त्तव्य नहीं निभा पाते, वे कर्त्तव्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

विमुखता के दोषी माने जायेंगे । अपने शरीर या अपनी ही पत्नी एवं बच्चों के स्वार्थों का ही हित-चिन्तन करने वाले उपार्जनशील लोग पारिवारिक उत्तरदायित्वों के निर्वाह न करने के लिये निन्दा के पात्र ही कहे जाते हैं ।

कमाऊ लोगों को कई बार अपने ऊपर कुछ ऐसा आवश्यक खर्च भी करना होता है, जो घर वालों के खर्चों से अलग होता है । किसी वकील को अदालत जाने के लिये औसत से अधिक कीमत वाले कपड़े बनवाने पड़ सकते हैं, कर्मचारियों को कार्यालय पहुँचने के लिये साईकिल, स्कूटर आदि परिवार के अन्य लोगों से अधिक उपयोग करना पड़ सकता है या सिटी बस, टैम्पो आदि का अधिक खर्च हो सकता है । सामाजिक कार्यकर्त्ता को कभी सुबह जल्दी नाश्ता करना पड़ सकता है या रात देर से लौटने पर ठण्डे खाने के स्थान पर दूध तथा फल लेने की आवश्यकता पड़ सकती है । अधिकारी को वस्त्रों में, प्राध्यापक को अध्ययन हेतु पुस्तकों में, वैज्ञानिकों को घरेलू प्रयोगशाला के लिये, कलाकार को कला-सामग्री के लिये, साहित्यकार को साहित्य के लिये कुछ अधिक पैसे खर्च करने पड़ सकते हैं । खिलाड़ी को खेल के अच्छे जूते आदि अलग से खरीदने पड़ सकते हैं । व्यापारी को भी अपने पर कई बार कई आवश्यक खर्चे करने होते हैं । ऐसे सभी खर्च आजीविका एवं उपार्जन से ही जुड़े होते हैं । व्यवस्था, वातावरण एवं प्रचलन के अनुसार ये आवश्यक हो जाते हैं । यद्यपि परिवर्तित परिवेश में उन्हें भी अनावश्यक सिद्ध किया जा सकता है, किन्तु ऐसे खर्चों को उचित एवं आवश्यक की ही श्रेणी में गिना जायेगा । परिवार के अन्य सदस्यों की तुलना में वे विशेष खर्चे होते हुए भी अनुचित नहीं कहे जा सकते ।

किन्तु सिनेमा, नशेबाजी, चाट-पकौड़ी, पान, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, बाजारू चीजें खाते फिरने और पैसे फूँकने को कभी भी उचित नहीं ठहराया जा सकता । कमाई करते हैं, इसीलिये दुराचरण का अधिकार उन्हें नहीं मिल जाता । उनके कमाई के योग्य बनने में परिवार का पूरा योगदान है । अब उसी परिवार की अनिवार्य आवश्यकताओं की भी उपेक्षा कर स्वयं जीभ के चटोरपन मिटाने, यारों की मक्कारी भरी प्रशंसा सुनने या अपनी अन्य ऐसी ही दुष्प्रवृत्तियों को तुष्ट करने के लिये, विलासिता की तृप्ति के लिये अपव्यय को अनैतिक ही कहा जायेगा । अश्लील पुस्तकों, सस्ते-उत्तेजक उपन्यासों को दफ्तर और घर में पढ़ना भी कई कमाऊ सदस्य अपनी आंतरिक आवश्यकता मान बैठते हैं । सिनेमा देखना, घण्टों गपशप करने वे अपना विशेषाधिकार समझते हैं । ऐसा दिखाते हैं--मानो दफ्तर के, घर के, बाहर के कामों से घोर मानसिक तनावों को उन्हें झेलना पड़ता है और उस तनाव को मिटाने के लिये विलासिता एवं अपव्यय के ये तौर-तरीके उनके लिये जरूरी हैं मानो घर में दिन भर खटने वालों को, जी-तोड़ मेहनत कर परिवार को व्यवस्थित रखने वालों को तनाव नहीं झेलने पड़ते, घर में बस मजा-मौज ही होता रहता है । एक तो यह तर्क ही आधारहीन एवं असत्य है । दूसरे यदि इन तर्कों में आंशिक सत्य भी स्वीकार किया जाय, तो भी अपने तनावों को शमित करने के बहाने जो उपाय वे अपनाते हैं, उनका औचित्य तो और भी नहीं है । चटोरपन, सिनेमाबाजी, यारबाजी से व्यक्ति की आर्थिक स्थिति ही नहीं, मानसिक क्षमता भी लगातार छीजती और व्यक्ति खोखला होता जाता है ।

इन प्रवृत्तियों के साथ ही कमाऊ व्यक्तियों में अपनी आय का एक अंश चुराने, छिपाने एवं बचाने की हेय प्रवृत्ति भी पनपती देखी जाती है । पत्नी के पास या स्वयं के ही पास चोरी छिपे धन जमा करते जाना, बैंक में लुके-छिपे खाता खोल लेना वे अपनी चतुराई और विशेषता मान बैठते हैं । माँ, पिता, भाई, बहिन, परिवार के प्रति कर्त्तव्यों का उन्हें स्मरण नहीं रह जाता । बच्चों एवं पत्नी पर इस संकीर्णता से क्या दुष्प्रभाव पड़ेगा, स्वयं की मानसिकता संकीर्ण होते जाने से अशांति-अस्थिरता किस प्रकार दबोचती जायेगी, यह सब तो वे सोच ही नहीं पाते ।

इन दिनों वातावरण भी ऐसा कुछ बना है कि जो कमा रहा है, समर्थ है उसके प्रति अनुचित राग और मोहपूर्ण लगाव लोगों में घर कर जाता है । सोचते हैं शायद यह कभी हमारे काम आये । इन गलत धारणा एवं उपेक्षा से उपार्जनशील लोगों के अनुचित आचरण का समर्थन करना अनैतिकता है । यह कह-कह कर कि आखिर बेचारा क्या करे, यही तो खाने-पीने की उमर है, अपनी और अपने बच्चों की चिन्ता कौन नहीं करता, इतना तो कमाता है, थोड़ा मजा-मौज भी न करे क्या ? वे लोग समाज में संकीर्णता, नीति-विहीनता एवं अनौचित्य के विष वृक्षों को ही सींचते हैं ।

जिस हीन अपेक्षा से यह सब अनीति समर्थन किया जाता है, वे कभी भी पूरी नहीं होतीं । जो व्यक्ति अपना हाड़-माँस, प्राण-शक्ति, धन सामर्थ्य सब गला देने वाले माता-पिता, स्नेह-प्रेम से सींच-सींचकर व्यक्तित्व को सरस बनाने वाले भाई-बहिन आदि के प्रति इतना कृतघ्न हो सकता है, वह झूठी लल्लो-चप्पो कर देने भर से क्या दूसरों के प्रति उपकारी हो जायेगा ? तो भी, समर्थ के प्रति लोगों में ऐसा विचित्र आकर्षण देखा जाता है ।

समझदार और सामाजिक चेतना से सम्पन्न लोगों का कर्त्तव्य है कि ऐसी संकीर्णता का विरोध करें । मित्र, परिजन एवं सम्बन्धी ऐसे लोगों को स्पष्ट रूप से समझायें कि यदि आपके माता-पिता परिजन भी आपके साथ ऐसी ही संकीर्ण मनोभाव रखते तो आपकी स्थिति आज क्या होती ? आप उपार्जन में समर्थ ही कैसे हो पाते ?

जिन माता-पिता ने अपनी थोड़ी बहुत जमा-पूँजी बड़े लड़के पर इस आशा से लगा दी कि बड़ा होकर यह छोटे भाई-बहिनों को समर्थ बनने में मदद करेगा, उनके प्रति ऐसी कृतघ्नता कि मानो मेरी बीबी और संतान ही मेरा परिवार है, कितनी ओछी प्रवृत्ति है । अपनी पारिवारिक

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्पत्ति माँ-बाप बड़े लड़के को समर्थ बनाने में लगा देते हैं किसी के पास एक-दो एकड़ ही खेत हुआ तो वह भी बेच देते हैं । यदि पहले ही वह वयस्क पुत्र यह बता दे कि मैं जब कमाऊँ तब बस अपनी पत्नी एवं संतति के लिये सारा धन संग्रह करता जाऊँगा, परिवार के प्रति मेरी कोई जिम्मेदारी न होगी, तो क्या माँ-बाप सारी दौलत यों दाँव पर लगाते ?

आखिर वयस्क पुत्र इतना अबोध तो नहीं होता ? वह अपनी पढ़ाई एवं प्रशिक्षण का आग्रह करता है और इस आग्रह के पीछे यही परोक्ष आश्वासन रहता है कि तब मैं समर्थ बनकर परिवार को भी सुदृढ़-समर्थ बनाऊँगा तथा परिवार की प्रतिष्ठा बढ़ाऊँगा । अब इस संकीर्णता एवं कृतघ्नता से क्या वह परिवार की प्रतिष्ठा बढ़ा रहा होता है ? कर्त्तव्यों के प्रति यह अवहेलना, छोटे भाई-बहिनों के प्रति यह उदासीनता यदि प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर दी गई होती, तो उस पर आशा केन्द्रित कर इतना खर्च क्यों किया जाता ? यह सब समझाना कर्त्तव्यच्युत कमाऊ बेटे के मित्रों, हितचिन्तकों, सगे-सम्बन्धियों का कर्त्तव्य है । जो ऐसे स्वार्थ-भाव को सहते हैं, समर्थन करते हैं, उनमें नैतिक साहस की कमी मानी जायेगी । इन हाँ में हाँ मिलाने वालों को इतनी-सी तर्क बुद्धि के साथ तो विचार करना चाहिए कि यही सब जब उनके साथ बीतेगा, तब उन्हें कैसा लगेगा ? उस स्थिति की कल्पना करें और अनीति के इस समर्थन को जो उनका छोटा बेटा सुन रहा है, देख रहा है, उसके सामने ऐसे उदाहरण पेश करने से बाज आयें अन्यथा बड़े होने पर उनका बच्चा भी कभी बताये-सराहे गये मार्ग पर चलेगा । उपार्जनशील व्यक्ति यदि अपने अन्याय का समर्थन न किये जाने से रुष्ट होता है तो उससे भयभीत नहीं होना चाहिए । सच्चे शुभचिन्तकों को तो यह कर्त्तव्य निभाने में और आगे आना चाहिए । ऐसों के सास-ससुर आदि अपनी बेटी के लिये नाजायज सुविधाओं की आकांक्षा रखकर इस अनीति का समर्थन करते समय यह भी स्मरण रख लें कि कभी उनके बेटे के भी बहू आयेगी । तब वह भी ऐसा ही करेगी, यदि समाज में ऐसा ही वातावरण बनता गया । कमाने वाले को समझाया जाय कि आप अपनी कमाई के ट्रस्टी हैं, उस पर हक पूरे परिवार रूपी ट्रस्ट का है । उस धन का अपने भार के लिये उपयोग करना विश्वासघात जैसा है ।

यदि उपार्जनशील व्यक्ति अपनी कमाई के दर्प में, समझाने पर भी कर्त्तव्य को न समझे, तो उसे घर का सम्मानित सदस्य नहीं माना जाये । पारिवारिक गोष्ठी में जिसमें कि उसे पहले कई बार समझाया जा चुका होता है, उसे परिवार से अलग करने का स्पष्ट निर्णय बेहिचक किया जाये । ताकि सर्वसाधारण यह तो जान लें कि वह व्यक्ति अपने परिवार वालों की मदद नहीं कर रहा था । पारिवारिक कर्त्तव्य का पालन भूल बैठा था । उसकी आर्थिक स्थिति तो इसमें अप्रभावित रहेगी, किन्तु सामाजिक एवं नैतिक स्थिति प्रभावित होगी । इकट्ठा रहने पर तो वह बाहर यह कहता रह सकता है कि वह परिवार का पोषण भी कर रहा है । ऐसे मिथ्या प्रचार का उसे अवसर न मिलेगा । लोकमत उसके विरुद्ध होगा । इससे दूसरों को भी सबक मिल सकता है । लोकमत का व्यक्ति- मन पर जबरदस्त प्रभाव होता है । उसकी अवहेलना का साहस बहुत कम ही लोग कर पाते हैं । इन दिनों ऐसे अन्यायी का प्रतिरोध न होने के कारण ही यह क्रम चल रहा है । विरोध का वातावरण बनने पर वह रुकेगा, क्षीण भी होगा ।

गृहस्थ की दुर्दशा

बच्चों के बढ़ने के साथ ही माँ-बाप में उनका विवाह करके घर बसाने की, सुखी-समृद्ध बनाने की बड़ी-बड़ी कल्पनाएँ उठने लगती हैं । माँ सोचती है-"नई बहू का मुँह देखकर कब सौभाग्यवान बनूँगी ?" उधर पिता भी सोचते हैं-"नई बहू आकर घर को स्वर्ग बनायेगी ।" घर का प्रत्येक सदस्य नई बहू के लिये किसी न किसी सुखद कल्पना में अवश्य खोया रहता है । स्वयं लड़के-लड़कियाँ भी संसार के अनुभवों से शून्य अपनी मधुर कल्पनाओं में कुछ कम खोये-खोये नहीं रहते । कई तो इस सम्बन्ध में अनजान भी रहते हैं । माँ-बाप की लालसा तीव्र हुई कि झट से सम्बन्ध तय हो जाते हैं । बाजे बजते हैं । उत्सव मनाया जाता है । शहनाइयाँ गूँजती हैं और धूमधाम के साथ विवाह-आयोजन सम्पन्न होते हैं । नई बहू घर में आती है ।

समय के बीतने के साथ ही नई बहू का आकर्षण भी कम होने लगता है । कुछ ही समय बीतता है कि कई बातें ऐसी पैदा हो जाती हैं जिनसे सास-बहू में खटकने लगती है । परस्पर ताने, फटकारें, दुर्वचनों का व्यवहार होने लगता है । घर की बेटी भी अपनी माँ का पक्ष लेकर भावज पर बरसती है ।

रात-दिन घर में होने वाली चख-चख जो पहले नहीं होती थी, उसका कारण बहू को समझकर कुलपति श्वसुर भी बहू और उसके कुल की बुराइयाँ बखानने लगते हैं । स्त्री और बेटी द्वारा कान भर देने पर तो उनकी स्थिति और भी असंतुलित हो जाती है ।

गृह-कलह, माँ-बाप द्वारा आरोप-प्रत्यारोप, उधर बहू द्वारा अपने कष्टों की शिकायत सुनकर पति भी परेशान हो जाता है । वह दोनों ही पक्षों से अनन्यता के नाते कुछ कह नहीं सकता । समय के बीतने के साथ ही रात-दिन की अशांति से वह और भी अधिक असंतुलित हो जाता है । माँ-बाप अथवा बहू पर अपनी अशांति प्रकट करता है ।

उधर बहू जो अपने माता-पिता, भाई-बहिन, घर वालों से बिछुड़कर पति-गृह में सुख के स्वर्णिम स्वप्न लेकर आई थी, यह सब देखकर घबड़ा जाती है । पति-गृह में चारों ओर से बरसने वाली गालियाँ, तिरस्कार,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आरोप, प्रत्यारोप, आलोचनाएँ, तिरस्कार आदि उसके धैर्य को विचलित कर देते हैं । संसार की कठोरता से अनजान, अज्ञ, कोमल, भावनाशील युवती इन परिस्थितियों में अधिक दिन संतुलित नहीं रह पाती और एक न एक दिन उसका मानस उद्वेलित हो उठता है । अपने स्वातंत्र्य मौलिक अधिकार, माँ-बाप के गौरव, स्वाभिमान पर चोट पड़ने से उसकी कोमल भावनाएँ कठोर और विद्रोही बन जाती हैं और फिर उसका उद्वेलित मानस गृह कलह की आग में घी का काम देता है । कई तेज मिजाज बहुएँ तो बड़ी लड़ाका और रौद्ररूप बन जाती हैं । सारे घर की शांति काफूर हो जाती है । जो बहुएँ बहुत ही संकोची और सुशील होती हैं वे चिंता, क्लेश, अवसाद, मानसिक घुटन में घुल-घुल कर अपना जीवन नष्ट कर लेती हैं । कई विक्षिप्त हो जाती हैं तो कई अन्य माध्यमों से अपने जीवन की इतिश्री तक कर लेती हैं । इन सभी परिस्थितियों में हमारे गृहस्थ-जीवन की दुर्दशा, तपन विनाश निश्चित है । अनेक गृहस्थियाँ इसी कारणवश उजड़ती, नष्ट-भ्रष्ट होती देखी जा सकती हैं ।

गृहस्थ-जीवन की इस दुर्दशा से अधिकांश परिवार ग्रस्त हैं । परस्पर कलह, लड़ाई-झगड़े, मनमुटाव, परस्पर आरोप-प्रत्यारोप, दोषारोपण, मतभेद आदि की विष-वेल ने परिवार के सभी सदस्यों को जकड़ लिया है । जिससे हमारे पारिवारिक जीवन की सुख-समृद्धि, उन्नति-प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो गया है । गृहस्थ जीवन की इस दुर्दशा ने व्यक्ति की शक्तियों को नष्ट कर उसे पंगु बना दिया है । जीवित होते हुए भी वह गृह-कलह के विष-दंश से पीड़ित होकर निर्जीव सा बनता जा रहा है । निराशा, उदासी, मानसिक घुटन से घुल-घुल कर उसका जीवन सत्व नष्ट होता जा रहा है ।

व्यक्ति से ही समाज और समाज से ही राष्ट्र बनते हैं । ऐसा व्यक्ति जिसका परिवार अंतर्कलह से ग्रस्त है, समाज और राष्ट्र के निर्माण में क्या योग दे सकता है ? गृहस्थ जीवन, जिसके ऊपर समाज और राष्ट्र की स्थिति निर्भर है, उसकी इस दुर्दशा का समाधान किए बिना सुख-शांति, उन्नति विकास की कल्पना करना एक विडम्बना होगी । जो व्यक्ति गृहस्थ जीवन की दुर्घटनाग्रस्त गाड़ी के मलवे में दबा हुआ सिसक रहा है, वेदना से छटपटा रहा है वह समाज अथवा राष्ट्र के कल्याण के लिए सोच ही क्या सकता है ? और क्या कर सकता है ?

पारिवारिक जीवन की गाड़ी सदस्यों के त्याग, प्रेम, स्नेह, उदारता, सेवा, सहिष्णुता और परस्पर आदर भाव पर चलती है । परिवार को सहअस्तित्व, सामूहिक जीवन, सेवा और सहिष्णुता की पाठशाला माना गया है । किन्तु परस्पर के सम्बन्ध स्वार्थपूर्ण आपापूती, संकीर्णता, असहिष्णुता से भर जाते हैं तो परिवार नरक की साक्षात् अभिव्यक्ति के रूप में परिणत हो जाते हैं ।

पारिवारिक जीवन की दुर्दशा का मुख्य कारण है व्यावहारिक जीवन की शिक्षा का अभाव । लड़के और लड़कियों को अनुभवी वृद्ध गुरुजनों के सम्पर्क में रहकर व्यावहारिक जीवन में जीने की जो शिक्षा मिलनी चाहिए उसका आजकल सर्वथा अभाव है । विवाह से पहले कन्या को यह शिक्षा नहीं मिलती कि उसे पति-गृह में जाकर कैसे जीवनयापन करना है ? उसका कर्तव्य उत्तरदायित्व क्या है ? उसे किन-किन सद्गुणों के द्वारा परिवार की गाड़ी को चलाना है ? यही बात लड़कों के सम्बन्ध में भी है । पारिवारिक जीवन की शिक्षा का अभाव ही गृहस्थ जीवन की दुर्दशा का मूल कारण है ।

हमारा पारिवारिक जीवन और गृह-कलह

एक समय था जबकि भारत की परिवार प्रथा संसार भर में अनुपम और श्रेष्ठ मानी जाती थी । परिवार का संगठन ऐसे सिद्धान्तों पर किया गया था कि जिससे प्रत्येक व्यक्ति की कुछ न कुछ उपयोगिता रहती थी और कठिन परिस्थिति आ जाने पर पारस्परिक सहयोग द्वारा सहज में उससे पार पाया जा सकता था । इसके सिवाय यह प्रणाली समानता के सिद्धान्त की भी अनेक अंशों में पूर्ति करती थी । एक बड़े परिवार में समय-समय पर एकाध व्यक्ति का बेकार हो जाना अस्वाभाविक नहीं है । उस बेकारी की अवस्था में भी उसका निर्वाह परिवार के अन्य कमाऊ व्यक्तियों द्वारा होता रहता था । इसी प्रकार उपार्जन करने में असमर्थ बच्चे और वृद्ध व्यक्तियों का पालन-पोषण भी परिवार में उचित रीति से होता रहता है और वे छोटे-मोटे घरेलू कार्यों में सहायता भी देते रहते हैं । इस प्रकार हमारी प्राचीन पारिवारिक पद्धति उन अनेक उत्तरदायित्वों की सहज में ही पूर्ति करती रहती थी, जिनके लिये आज अनेक देशों की सरकारों को बड़े-बड़े मुहकमें खोलकर और करोड़ों रुपये खर्च करके व्यवस्था करनी पड़ती है ।

पर अब पिछले पचास साठ वर्षों में हमारे राष्ट्र और समाज में जो नये-नये आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन हुये हैं उनके फल से भारतीय परिवार प्रणाली टूटने-फूटने लग गई और उसमें अनेक विषाक्त तत्व उत्पन्न हो गये हैं । पूँजीवादी विदेशी समाजों की नकल करके यहाँ के लोगों में भी ऐसी मनोवृत्ति का उदय हो रहा है कि एक ही परिवार के सदस्य भी अपने-अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को प्रधानता देने लगे हैं और इसके परिणामस्वरूप उन में भेद-भाव पैदा होने लगा है । कभी-कभी तो यह भेदभाव इतना अधिक बढ़ जाता है कि उससे अनेक प्रकार के भयंकर लड़ाई-झगड़े और घातक परिणाम उत्पन्न होते हैं । समाचार पत्रों में प्रायः ऐसे समाचार प्रकाशित होते रहते हैं जिनसे प्रकट होता है कि भारतीय परिवारों में प्रेम और सहयोग के स्थान पर द्वेष, घृणा और संघर्ष के भाव पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न हो गये हैं और कहीं-कहीं तो वे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इतना उग्र और विकट रूप धारण कर लेते हैं कि सहसा उन पर विश्वास करने को जी नहीं चाहता ।

पारिवारिक जीवन में पति-पत्नी का सम्बन्ध सबसे घनिष्ट और मधुर माना गया है । शास्त्रकारों ने तो उनको दो शरीर तथा एक प्राण की उपमा देकर नारी को अर्धांगिनी के नाम से पुकारा है । पर आजकल के समाज में विवाह और दहेज आदि की कुरीतियों ने ऐसा गन्दा वातावरण उत्पन्न कर दिया है कि अनेक दम्पत्तियों में विवाह के उपरान्त ही कलह और मनमुटाव आरम्भ हो जाता है । इसके फल से प्राय: नई बहुओं को पीड़ित और अपमानित होना पड़ता है जिसके कारण उनमें से अनेक आत्महत्या करके अपने दु:खद जीवन का अन्त कर डालती हैं । यहाँ पर हम कुछ ऐसे समाचारों का सारांश देते हैं जिनसे विदित होगा कि वास्तव में हमारे समाज शरीर में कैसी विकृतियाँ उत्पन्न हो रही हैं-

होली के अवसर पर थाना गढ़मुक्तेश्वर के ग्राम करीमपुर की २२ वर्षीय नवयुवती श्रीमती रामकली ने अपनी ६ महीने की पुत्री के साथ कुँए में कूदकर आत्महत्या कर ली । छाता थाना (मथुरा) के अन्तर्गत नरी नामक गाँव में एक स्त्री कुँए में गिर कर मर गई । इससे पहले दो महीने के भीतर तीन अन्य स्त्रियाँ भी उसी कुँए में गिरकर आत्महत्या कर चुकी थीं । इन दोनों से रोमांचक समाचार सौराष्ट्र के मोजीरा गाँव से आया है जिसमें कहा गया है कि २१ वर्षीय महिला अपनी ८, ५ और २ वर्ष की आयु की तीन पुत्रियों, ११ वर्ष के एक पुत्र को लेकर कुँए पर गई और एक-एक करके तीनों पुत्रियों को उसमें ढकेल दिया । वह पुत्र को भी उसमें गिराना चाहती थी, पर वह उसके हाथों से निकल भागा । इसके बाद उस महिला ने स्वयं भी कुँए में कूदकर आत्महत्या कर ली ।

इस प्रकार जहाँ स्त्री दीन-स्वभाव की होती है और पति अथवा अन्य सम्बन्धियों पर उसका वश नहीं चलता वहाँ वह प्राय: अपनी जीवनलीला समाप्त करके दुखों से छुटकारा पा जाती है । पर जो स्त्रियाँ कुछ शक्तिशाली स्वभाव की होती हैं वे परिस्थिति का मुकाबला करती हैं जिसके फलस्वरूप गृहस्थी में संघर्ष छिड़ा रहता है । यह संघर्ष अनेक बार यहाँ तक बढ़ जाता है कि पति-पत्नी एक दूसरे की जान के भूखे हो जाते हैं । अभी हाल में अमृतसर जिले के किशन सिंह नामक व्यक्ति पर अपनी पत्नी तेजकौर की हत्या करने का आरोप लगाया गया था । पहले तो किशन सिंह ने पुलिस को सूचना दी कि उसकी पत्नी की चोर हत्या कर गये और कुछ जेवर भी चुरा ले गये हैं परन्तु बाद में पुलिस द्वारा विशेष जाँच करने पर उसने स्वीकार किया कि यह हत्या उसी ने की है, क्योंकि वह इस स्त्री से छुटकारा पाकर दूसरी शादी करना चाहता था। इस प्रकार पतियों द्वारा पत्नियों की हत्या के हजारों अभियोग प्रतिवर्ष अदालतों के सम्मुख पेश हुआ करते हैं जिनसे मालूम होता है कि हमारे दाम्पत्य-जीवन आजकल काफी दर्जे तक गिर चुके हैं ।

पर कुछ समय से इस परिस्थिति ने एक नया मोड़ लिया है । अब तक समाचार पत्रों में इस प्रकार के जो समाचार छपा करते थे उनमें पति द्वारा पत्नियों की हत्या की खबरें ही होती थीं, पर अब पत्नियों द्वारा पतियों से बदला लेने के समाचार भी आने लगे हैं । अमृतसर के सरहाली गाँव की एक स्त्री ने अपने पति मानसिंह की हत्या कर डाली । उन दोनों में काफी अरसे से कलह हुआ करता था । घटना के दिन पत्नी ने सोते समय पति को मार दिया । इसी प्रकार जोधपुर के गालाना नामक गाँव में एक जाट अपनी पत्नी को लिवाने गया वहाँ पर पति-पत्नी में कहा-सुनी हो गई और रात्रि के समय पत्नी ने पति की हत्या कर डाली । बाड़मेर जाड़ीला ग्राम की एक स्त्री ने भी अपने प्रेमी से मिलकर पति को विष दे दिया और स्वयं बाड़मेर जाकर प्रेमी से सिविल मैरिज करने की दरख्वास्त दी, पर संदेह हो जाने से पुलिस ने उनको गिरफ्तार कर लिया ।

पति-पत्नी का रिश्ता बड़ा घनिष्ट माना गया है । पर उसका आधार मुख्यत: यौन-सम्बन्ध पर रहता है । अगर उन दोनों में विवाह के बाद किसी कारणवश प्रेम उत्पन्न न हो सका तो वे भिन्न-भिन्न मार्गों के पथिक बन जाते हैं और उन में मनोमालिन्यता का भाव उत्पन्न हो जाता है । यही मनोभाव आगे चलकर अनेक प्रकार की दुर्घटनाओं के रूप में प्रकट होता है । पर जब हम पिता-पुत्र में भी ऐसे ही शत्रुभाव की बात सुनते हैं तो विशेष आश्चर्य होता है । पिता-पुत्र का सम्बन्ध अधिकांश में त्याग का है । शायद ही ऐसे कुछ पिता होंगे जिन्होंने पुत्र के लिये कम या अधिक स्वार्थ त्याग न किया हो और उस से अपना हार्दिक स्नेह प्रदान न किया हो । फिर भी ऐसी घटनाओं की कमी नहीं है जिनमें पुत्र द्वारा पिता की सेवा करने के स्थान पर उनकी हत्या तक कर डालने की बात सुनने में आती है । कुछ ही समय पहले ग्राम तोकड़ी (जिला गुडगाँवा) के जोरावरसिंह नामक वृद्ध जाट को उसके तीन पुत्रों ने लाठियों से इतना मारा कि उसका देहान्त हो गया । कहा गया है कि झगड़ा सम्पत्ति के बँटवारे पर हुआ था । इसी प्रकार जहीदाबाद (हैदराबाद) के प्रताप रेड्डी नामक व्यक्ति ने अपने माता-पिता की सोते समय हत्या कर डाली, जिसका कारण गृह-कलह था । सीतापुर (उ. प्र.) के रामपुर नामक गाँव के एक चमार नवयुवक ने भी अपने पिता की हत्या कर डाली, पर उसका उद्देश्य इस प्रकार का जघन्य नहीं था । उसका बाप मिसारी चमार अपनी स्त्री को बुरी तरह पीट रहा था जिसे देखकर पुत्र को क्रोध हो आया और उसने हाथ के गँड़ासे से पिता पर वार किया जिससे उसकी मृत्यु हो गई ।

भाइयों के पारस्परिक कलह के समाचारों को विशेष महत्व नहीं दिया जाता, क्योंकि पैतृक सम्पत्ति के बँटवारे के कारण उनमें प्राय: विरोध हो जाता है जो किसी भी हद तक बढ़ सकता है । कहावत भी है कि "भाई सा कोई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हितू भी नहीं, दुश्मन भी नहीं ।'' पर अन्य कारणों से भी भाइयों में प्रतिस्पर्धा और शत्रुता के भाव उत्पन्न हो जाते हैं । हाल ही में दिल्ली में बलदेवराज नामक युवक ने अपने बड़े भाई हीरालाल को छुरा से मार डाला । कारण यह था कि बलदेवराज बेकार रहता था और हीरालाल के बार-बार कहने-सुनने पर कोई काम नहीं करता था । एक दिन हीरालाल ने उसे गाँव भेज दिया कि वहीं जाकर कोई काम करे, पर वह दूसरे ही दिन वापस आ गया । इस पर हीरालाल ने उसे डाँटा फटकारा कि तुम्हें कोई काम तो करना ही होगा, गाँव से लौट आने से क्या फायदा हुआ । इस पर अभियुक्त ने फौरन छुरा निकाल कर भाई पर हमला किया जिसके फलस्वरूप तीन दिन बाद हीरालाल की मृत्यु हो गई । उसने हीरालाल की पत्नी और मँझले भाई को भी घायल किया ।

इसी प्रकार अन्य सम्बन्धियों में भी भयंकर कलह और झगड़े के समाचार आते रहते हैं । नवीनगर (सीतापुर) के एक पार्सी पहलवान ने एक मजदूर को काम पर रखा । इस पर उसका साला नाराज हो गया और दोनों में तकरार होने लगी । झगड़ा बढ़ते-बढ़ते साले ने बहनोई को भाले से मार डाला । चमरपुरा (ग्वालियर) के एक व्यक्ति ने कुछ जेवरों के लालच से अपनी दस वर्ष की भतीजी को मार डाला ।

ऊपर जो समाचार दिये गये हैं उनको नमूने के रूप में ही समझना चाहिए । देश की प्रत्येक अदालत में प्रतिदिन ऐसे दो एक मुकदमे पेश होते ही रहते हैं जिनकी संख्या सब मिलाकर वर्ष भर में कई हजार तक पहुँचती है । इन मुकदमों में कितने साबित होते हैं और कितनों को दण्ड दिया जाता है यह प्रश्न हमारी समझ में विशेष महत्व का नहीं । अगर कानून की त्रुटियों से अनेक दोषी छूट भी जाते हैं, तो भी हम इस पर विशेष जोर देना आवश्यक नहीं समझते । हम तो इन तमाम घटनाओं को अपने समाज की नैतिकता के मापदण्ड से देखते हैं । इनसे हमारे चित्त में अपने देशवासियों के नैतिक पतन का ख्याल करके दु:ख और ग्लानि के भाव ही उत्पन्न होते हैं । कहाँ तो यह आशा की जाती थी कि पारिवारिक संगठन के आधार पर हम बड़ी-बड़ी समस्याओं को हल करके उन्नति मार्ग पर अग्रसर हो सकेंगे और भविष्य में आने वाली कठिनाइयों का सफलतापूर्वक मुकाबला कर सकेंगे और कहाँ आजकल घरों के भीतर ही महाभारत और आल्हा के गृहकलह के दृश्य दिखलाई पड़ रहे हैं । हमको स्मरण रखना चाहिए कि हमारे परिवार ही भारतीय समाज-संगठन की एक-एक कड़ियाँ हैं । अगर ये कड़ियाँ कमजोर पड़ गईं तो हमारी सामाजिक शृंखला में भी शक्तिहीनता व्याप्त हो जायगी और उन्नति के बजाय अवनति की ओर अग्रसर होने लगेंगे ।

परिवार में इतने विग्रह और इतने कलह क्यों ?

आधुनिक सभ्यता की चकाचौंध ने एक प्रकार से परिवार संस्था की जड़ों को हिलाकर रख दिया है । चिन्तन की पद्धति में, सोचने-समझने के ढंग में लोगों ने इतना परिवर्तन कर लिया है और इतने अधिक आत्म-केन्द्रित हो गये हैं कि जिधर भी दृष्टि पसारकर देखा जाए, उधर ही लोग परम्परागत परिवारों से ऊबे, पारिवारिक समस्याओं से त्रस्त हुए नजर आते हैं । जहाँ किसी ने किसी के प्रति सहानुभूति दिखाई, वहीं हर कोई अपनी समस्याओं का दोष अपने परिवार के मत्थे मढ़ता हुआ दिखाई देगा । लोग स्वयं ही अपने परिवार की बखिया उधेड़ने लगते हैं और उसे ही जीवन को नारकीय बनाने वाला कारण सिद्ध करने लग जाते हैं । यह दोषारोपण अनायास और अकारण नहीं है । वास्तव में बहुत ही कम परिवार ऐसे होंगे, जिनमें स्नेह-सद्भाव की सुधा सरिता बहती दिखाई देती हो अन्यथा घर-घर में कलह क्लेश, कहासुनी, झगड़े-टन्टे, वैमनस्य, मनमुटाव आदि प्रवृत्तियाँ घर के कोने-कोने में छाई हुई दिखाई देती हैं सास-बहू, पिता-पुत्र, भाई-भाई, ननद-भौजाई में ही नहीं, पति-पत्नी में भी लड़ाई-झगड़ा, द्वेष, वैमनस्य तथा मनोमालिन्य उठता फैलता दिखाई देता है । इन सब स्थितियों को देखते हुए यह कहने में कोई संकोच नहीं होता कि वास्तव में आज का पारिवारिक जीवन कलुषित, कुटिल और कलहपूर्ण होता जा रहा है ।

यह विपर्यय क्यों है ? जिस गृहस्थ को ऋषियों ने चारों आश्रमों का सिरमौर बताते हुए गाया है कि- **'गृहस्थ एव यज्ञये गृहस्तप्यते तपः'** अर्थात् गृहस्थ ही वास्तव में यज्ञ करते हैं और वही वास्तविक तपस्वी हैं, वह परिवार क्यों अपनी गरिमा खोते जा रहे हैं ? यह विचारणीय है । आमतौर पर परिवारों में पुत्र अपने पैरों पर खड़े होते ही वृद्ध और असमर्थ हो चुके माता-पिता को छोड़कर अलग घर बसाने की बात सोचने लगते हैं किन्हीं कारणों से यदि वे ऐसा नहीं भी करते तो बातचीत और व्यवहार में माता-पिता के प्रति उपेक्षा भाव अवश्य दर्शाने लगते हैं । भाई, भाई की उन्नति और समृद्धि को शत्रु की आँखों से देखता है । पति, पत्नी को चूस डालने के लिए भूखे-भेड़िये की तरह सचेष्ट है । बहू-बेटियाँ फैशन के सन्निपात से ग्रस्त हैं और यह सनक पूरी न होने पर इसमें किसी भी तरह की कोर-कसर आते देखकर वे अपने को महत्वहीन समझे जाने की उपेक्षा किये जाने की शिकायत करने लगती हैं तथा परिवार के अन्य लोगों को कोसने लगती हैं । छोटी सन्तानें जिद्दी, उद्दण्ड,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उच्छृंखल और अनुशासनहीन बनती जा रही हैं । इसके लिए जरा भी मना करने या समझाने पर बौखला-सी उठती हैं ।

इन प्रवृत्तियों के अतिरिक्त परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने व्यसन बढ़ाने, शौक-मौज की नई-नई माँगे उठाने में प्रतिस्पर्धा की भूमिका निबाहते हैं, इन सबके लिए आय की व्यवस्था तो बन नहीं पाती, खर्च जरूर बढ़ता जाता है और परिवार का आर्थिक सन्तुलन गड़बड़ाने लगता है । अपनी-अपनी माँगों को पूरा करने के लिए आग्रहशील परिवारीजनों में कौटुम्बिक प्रतिष्ठा पर ध्यान देने की परवाह ही नहीं होती । जहाँ आत्मगौरव के मानदण्ड ही बदल जाएँ वहाँ पारिवारिक प्रतिष्ठा की किसे चिन्ता होती है ? लेकिन ये सब कारण परिवार के संवेदनशील, समझदार और जिम्मेदार सदस्यों को चिन्ता के कारण चूर किये डालते हैं तथा उनका शरीर मन चिन्ता एवं किंकर्त्तव्यविमूढ़ता के दबाव से थका-माँदा रहता है । जब परिवार के सदस्यों को अपनी ही माँगें लेकर उन्हें किसी भी प्रकार पूरा कराने की चिन्ता पड़ी रहती है तो दूसरी बातों की ओर किसका तथा क्यों ध्यान जाएगा ? इस स्थिति में पारिवारिक सुख-शान्ति, स्नेह-सौहार्द्र और सन्तोष-सद्भाव की कल्पना कर पाना भी कठिन है ।

यह आत्मकेन्द्रित दृष्टिकोण ही है जो परिवार संस्था की जड़ें कमजोर किये डाल रहा है । जब स्वार्थ साधन के लिए ही परिवार संस्था की आवश्यकता समझी जाए तो पारिवारिक हित और पारिवारिक प्रतिष्ठा की ओर ध्यान देने की किसे फुरसत होगी ? कोई क्यों इन बातों में अपना दिमाग खपायेगा ? लेकिन नष्ट और विशृंखलित होती जा रही परिवार संस्था के सम्बन्ध में लोग भिन्न ढंग से ही सोचते हैं । कई लोगों की मान्यता है कि पारिवारिक जीवन में फैलती जाने वाली फूट, बिखराव और कलह का, प्रवृत्तियों का एकमात्र कारण आर्थिक अभाव है । ऐसा सोचने, सिद्ध करने वाले लोग बताते हैं कि यदि आर्थिक कठिनाइयाँ दूर हो जाएँ, आवश्यकताओं और इच्छाओं की पूर्ति होती रहे तो फिर मन में माधुर्य और स्वभाव में सरसता बने रहने के लिए कोई बाधा ही नहीं है ।

यह सोचना एक सीमा तक ही ठीक है । आर्थिक कारणों से परिवार के सदस्यों की सभी आवश्यकताएँ समुचित ढंग से पूरी नहीं हो पातीं किन्तु वह अभावग्रस्त स्थिति किसी एक व्यक्ति के लिए तो होती नहीं है । उससे परिवार के सभी सदस्यों को समान रूप से प्रभावित होना पड़ता है । समान समस्याओं के शिकार व्यक्तियों में एक दूसरे के प्रति सहानुभूति और स्नेह-सद्भाव होना चाहिए कि क्लेश कलह ? देखा तो यह गया है कि सम्पन्न और मध्यम स्थिति के व्यक्तियों की अपेक्षा गरीब और निर्धन लोगों में अधिक आत्मीयता एवं स्नेह सद्भावपूर्ण सम्बन्ध रहते हैं । यदि आर्थिक कारण ही परिवार में बिखराव पैदा करते होते तो उन परिवारों में क्लेश क्यों उत्पन्न होता है जिनकी आर्थिक स्थिति काफी अच्छी है ?

कहा जाता है कि अपनी आवश्यकताएँ पूरी न हो पाने के कारण ही लोग परेशान होते हैं और यह संत्रास ही क्रोध, चिड़चिड़ापन तथा असहिष्णुता उत्पन्न करता है । जहाँ लोगों की आवश्यकताएँ भली-भाँति पूरी होने लगें, प्रत्येक सदस्य की उचित आवश्यकता पूरी हो सके, इतनी आमदनी होने लगे तो कहीं कोई असन्तोष की गुंजाइश नहीं रह जाती । यह प्रतिपादित करते हुए कहा जाता है कि आर्थिक दृष्टि से परिवार सम्पन्न हों तो वह सभी सदस्य शान्त, सन्तुष्ट और सुखी जीवन व्यतीत करते हुए आपस में मिल-जुलकर रहेंगे । कहा जा चुका है कि यह धारणा पूरी तरह सही नहीं है । यदि आर्थिक स्थिति पारिवारिक विग्रह के उत्तरदायी होती तो उन परिवारों में गृह-कलह एवं बिखराव क्यों उत्पन्न होता है जो आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हैं ? समाज में जहाँ एक से एक गरीब और निर्धन स्थिति के लोग हैं वहीं एक से एक सम्पन्न और समृद्ध स्थिति वाले भी हैं । यदि पारिवारिक सुख-शान्ति का आधार केवल आर्थिक स्थिति ही है तो हर धनवान और सम्पन्न परिवार को सुखी, सन्तुष्ट तथा प्रसन्न रहना चाहिए । परन्तु ऐसा नहीं है । अधिकांश सम्पन्न परिवारों में आये दिन बिखराव, कलह एवं वैमनस्य उत्पन्न होता रहता है । धन के कारण घरों में न केवल कहासुनी हो जाती है वरन् मारपीट, मुकदमेबाजी और कई बार तो खून-खराबी तक की स्थितियाँ विनिर्मित हो जाती हैं ।

सम्पन्न परिवारों की महिलाएँ गहने कपड़ों को लेकर आये दिन रुष्ट रहती और रार ठानती हैं । पुरुष सदस्य अपनी सुख-सुविधाओं को लेकर नहीं, अधिक हिस्से का अधिकारी होने की भावना को लेकर मल्लयुद्ध की मुद्रा अपनाये रहते हैं । ऊपर से लकदक, मुस्कान भरी मधुर दिखाई देने वाली धनियों की जिन्दगी के भीतर कटुता, क्लेश एवं खोखलापन ही अधिकतर पाया जाता है और सुख-शान्ति तथा स्नेह-सद्भाव की सम्भावनाएँ चौपट होती रहती हैं । इससे स्पष्ट है कि पारिवारिक सुख-शान्ति का प्रमुख आधार आर्थिक नहीं हो सकता और न ही इस कारण परिवार टूटते बिखरते हैं ।

फिर वे कौन से कारण हैं जो पारिवारिक बिखराव तथा विग्रह की स्थितियाँ रचते रहते हैं ? इसका एकमात्र उत्तर है परिवार में रहने वाले सदस्यों का अपना दृष्टिकोण और उसके अनुसार उनकी रीति-नीति, व्यवहार आचरण । इन दिनों जैसे-तैसे सुविधा साधन बढ़े हैं, सुख और विलास के नये-नये आधार खड़े किये गये हैं, नये-नये उपकरण प्रचलन में आए हैं, वैसे-वैसे मनुष्य की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वार्थलिप्सा और सुख कामना प्रबल होती गई है । इस लिप्सा के लिए निश्चित ही बढ़ी हुई सुख-सुविधाओं को जिम्मेदार नहीं ठहराया जाना चाहिए । जिम्मेदार है वह भावना जिसके वशीभूत होकर मनुष्य अपने लिए और अधिक की माँग करता है तथा पारिवारिक स्नेह सम्बन्धों की प्रेरणा का गला घोंट कर स्वयं ही अधिकतम उपभोग के लिए आतुर हो उठता है । पहले चूँकि सीमित साधन उपलब्ध थे, इसलिए रस्साकशी कम होती थी । अब विज्ञान की कृपा से साधन सुविधाएँ बढ़ी हैं और नये-नये विचार भी प्रतिपादित किए गये हैं । सुखवादी, भौतिकतावादी विलासतापूर्ण जीवनयापन करने में ही जीवन की सार्थकता समझी जा रही है तो वैसी स्थिति में अपने लिए अधिकतम की माँग करना और चाह रखना अस्वाभाविक नहीं है ।

परिवार का आदर्श जहाँ पहले अन्य लोग हैं, वहीं इस आदर्श को तिलांजलि देकर सबसे पहले मैं तथा सबसे अधिक मुझे की माँग ही वह परिस्थितियाँ उत्पन्न कर रही है जिनमें परिवार को बाँधे रखने वाले सूत्र टूटने बिखरने लगे हैं । जिन विशेषताओं और सम्भावनाओं के लिए ऋषियों ने **धन्यो गृहस्थाश्रम** कहा था उन मूल्यों को भुला देने और अधिक से अधिक आत्मकेन्द्रित स्वार्थी बन जाने के कारण ही परिवार संस्था का अस्तित्व खतरे में पड़ता जा रहा है । आज के परिवारों की स्थिति का विश्लेषण किया जाए तो प्रतीत होगा कि बाड़े में बन्द रहने वाली भेड़ों की तरह ही एक छप्पर के नीचे परिवार के लोग रहते भले ही हों पर उनमें परस्पर वह सम्बन्ध चटखते जा रहे हैं, जिनके आधार पर श्रेष्ठ समाज की संरचना का लक्ष्य अपनाया गया था ।

परिवार संस्था का उद्देश्य अपने सदस्यों में स्नेह, सहकार, परोपकार, त्याग, बलिदान के गुणों को प्रोत्साहन देना और विकसित करना है ताकि उस आधार पर श्रेष्ठ समाज की संरचना की जा सके, किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में, जब परिवार संस्था दिनों-दिन जर्जर होती जा रही है यह उद्देश्य पूरा होने की सम्भावनाएँ धूमिल ही पड़ती जाती हैं । इस अनर्थ को रोका जाना चाहिए और परिवार संस्था की गौरव गरिमा को समझते हुए उसे भोग-विलास का, साधन सुविधाओं के उपभोग का आधार नहीं, आत्मविकास का साधन मानना चाहिए । यह ठीक है कि परिवार की छत्रछाया में रहते हुए प्रत्येक सदस्य की आवश्यकताएँ भी पूरी होती चलती हैं । वह भी परिवार संस्था की एक उपयोगिता है किन्तु मुख्य और आधारभूत विशेषता उस संस्था में रहने वाले सदस्यों का आत्मिक विकास है । इस तथ्य को जितनी ही जल्दी समझा और अपनाया जाय, उतना ही शुभ है । इसी आधार पर परिवार संस्था जीवित और उपयोगी रह सकती है । यदि यह आधार टूटा तो न केवल परिवार टूटेंगे वरन् मनुष्य भी टूट जाएगा । परिवार टूटने पर उसे कहाँ से वे प्रेरणाएँ मिलेंगी जो उसे सामाजिक बनाती हैं तथा कहाँ से वह पोषण मिलेगा जो उसे सच्चे अर्थों में मनुष्य कहलाने का अधिकार देती है । इस स्थिति को समझकर परिवार संस्था की टूटन तथा बिखराव को रोका जाना चाहिए ।

पारिवारिक जीवन की अनीति-भेदभाव की नीति

मानव और मानवेतर प्राणियों की जीवन-पद्धति में जहाँ अनेक समानताएँ दिखती हैं वहीं कई मौलिक अन्तर भी अत्यन्त उल्लेखनीय हैं । सृष्टि का प्राय: हर जीव जन्म लेने से कुछ ही देर उपरान्त चलने, फिरने और अपना आहार आप ग्रहण करने की स्थिति में आ जाता है, इसके विपरीत मनुष्य का बालक चलना, फिरना तो दूर अपना आहार तक ढूँढ़ सकने की स्थिति में नहीं होता । माँ स्वयं ही उसके मुँह से स्तन न लगाये तो उसमें इतनी भी सामर्थ्य नहीं कि परमात्मा द्वारा पहले से ही तैयार पके पकाये भोजन को आप ग्रहण कर ले । यह तथ्य इस बात का प्रतीक है कि सन्तान का समुचित पालन-पोषण प्रजनन से भी अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य है । उसकी उपेक्षा का अर्थ, ईश्वरीय नियम-विधान की अवहेलना ही कही जायेगी ।

भारतीय संस्कृति में तो इसे पितृ-ऋण ही कहा गया है और उसे अपने जीवन में उतारकर जाने का निर्देश किया गया है । पितृऋण का अर्थ सन्तान को मात्र जन्म देना नहीं अपितु उसे हर दृष्टि से सक्षम, सुविकसित, समर्थ और संस्कारवान् बनाना होता है । 'अमरकोष' में पिता की परिभाषा 'पालनात् पिता' अर्थात् जो अच्छी तरह पालन-पोषण कर सके वह पिता-इसका अर्थ यह हुआ कि बालकों की उपेक्षा करना, अपने पिता होने को कलंकित करना है । भविष्य में आज के किशोरों द्वारा पड़ने वाले प्रभाव और सम्भावी संरचना की दृष्टि से यह उचित ही नही, अनिवार्य भी है । इस दृष्टि से यदि मनीषियों ने सन्तान पालन की सुचारु व्यवस्था को धार्मिक अंग के रूप में जोड़ा हो तो यह सर्वथा उचित ही था ।

आज जैसी परिस्थितियाँ हैं उन्हें देखकर कोई भी विचारशील व्यक्ति यह मानने को तैयार नहीं होगा कि वस्तुत: क्या हम वही व्यक्ति, वही समाज हैं जिन्होंने अपने कौटुम्बिक कर्त्तव्यों को इतनी कठोर मान्यताओं से जकड़ा था । बच्चों की सम्यक दीक्षा, अनुचित लाड़-प्यार से बचाव और उन्हें दिक्भ्रान्त करने वाली समस्याओं और परिस्थितियों का निराकरण तो आगे की बात है अपने घरों की परम्पराएँ कुछ इस तरह विशृंखलित हो गई हैं कि प्रारम्भ से ही बेटे-बेटियों में भेद-भाव की भीत खड़ी करनी प्रारम्भ कर दी जाती है । एक को महत्व देने और दूसरे की उपेक्षा का अर्थ है बच्चों में आत्महीनता अथवा औद्धत् अहंकारिता को जन्म देना होता है । दोनों ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिस्थितियाँ बच्चों के लिए घातक होती हैं । एक से बच्चा दबकर, पिसकर, मानसिक ग्रंथियों में जकड़कर पाप को प्रोत्साहन देता है तो दूसरा अपराध को । आज यह स्थिति सर्वत्र ही देखी जा सकती है ।

शास्त्रकार ने पिता को उसके दायित्वों का बोध कराते हुए स्पष्ट कहा है-

मालाकारो यथा वृक्षान्प्रभु प्रदत्ता सुसिञ्चति ।
वात्सल्येन तथा सुष्ठु पालयेत्कृत्य निष्ठाया ।।
कन्या सुपुत्रयोस्तुल्यं वात्सल्यं च भवेत सदा ।
तुल्यानन्दं विजानीपाद द्वयोभर्तसि प्राप्तयोः ।।

अर्थात् ? जिस प्रकार माली उद्यान के हर वृक्ष को निकाई, गुड़ाई, सिंचाई द्वारा विकसित करने में लगा रहता है उसी प्रकार सभी बालक चाहे वह पुत्र हो या पुत्री परमात्मा द्वारा प्रदत्त पुष्प-वृक्षों की तरह हैं उनका लालन-पालन समान भाव से करना चाहिए ।

कन्याओं के प्रति बरती गई यह भेदमूलक नीति-नारी जाति की दुर्दशा के रूप में ही अपनी ही छाया के भूत की तरह हमारे सम्मुख खड़ी आतंकित किये हुए है । कन्या की शिक्षा में बरती गई अनीति के कारण मातायें अपने बच्चों के बौद्धिक विकास में योगदान नहीं दे पातीं, आहार में बरती गई उपेक्षा ने उसे इस तरह दुर्बल रखा कि उससे स्वस्थ और समर्थ सन्तान की अपेक्षा तो कभी हो ही नहीं सकती । सो आज के दीन-दुर्बल रोगग्रस्त बालक उसी दुर्दशा की ओर संकेत करते हैं । पुत्र और पुत्री के प्रति भेदभाव की खोदी गई खाई में अन्तत: अपना समाज स्वयं ही औंधे मुँह गिरा और दुष्परिणाम भोगे । यह एक तरह से अधार्मिक कृत्य है अन्यथा शास्त्रकार ने कन्या को 'दस पुत्र रूपा कन्या' अर्थात् एक पुत्री दस पुत्रों के समान बता कर उसके प्रति अधिक कर्त्तव्यों का ही बोध कराया है । तात्पर्य यह होता है कि पुत्र की अपेक्षा कन्या की शिक्षा-दीक्षा, खान-पान, लालन-पालन पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है, यदि वे स्वस्थ रहती हैं, शिक्षित होती है, उन्हें अपनी आत्म-गरिमा का विश्वास हो जाता है तो भावी संतति के रूप में प्रकारान्तर से यह लाभ अन्तत: समाज को ही मिलता है । दुनिया में जिन जातियों ने यह व्यवस्था रखी वह सदा फली-फूली है जबकि उसके विपरीत परिस्थितियों वाले समाज अपनी ही अन्तर्घुटन के कारण नष्ट-भ्रष्ट हो गये हैं ।

यह बहुत ही विलक्षण बात है कि जिस देश, समाज तथा संस्कृति ने कन्या को सर्वाधिक गौरव पद-स्थान प्रदान किया, उसी में कन्याओं के प्रति इतना भेद-भाव बरता गया । लालन-पालन, खान-पान सम्बन्धी आँकड़े तो नहीं बनाये जा सकते, किन्तु शिक्षा सम्बन्धी प्राप्त आँकड़ों से ही यह पता चल जाता है कि उनके साथ कितना कठोर अन्याय किया जाता है ।

'जनरल सर्वे आन दि स्टेट्स आफ वुमेन इन इण्डिया' में कन्या शिक्षा की दयनीय स्थिति का चित्रण करते हुए बताया गया है कि १९४७-४८ में जहाँ विद्यालयों में १०० लड़के पढ़ने भेजे जाते थे वहाँ लड़कियाँ कुल १२ ही भेजी जाती थीं, सन् १९५०-५१ में ५५-५६, ६०-६१ तथा ६५-६६ में यह अनुपात बढ़ा अवश्य पर इतनी अल्पगति से जिसे चींटी की चाल ही कहा जा सकता है । अर्थात् इस वर्षों में १०० लड़कों के अनुपात में कन्याओं की संख्या क्रमश: १४,२०,२५ तथा ३१ तक ही पहुँच पाई । अर्थात् अभी भी यदि कन्याओं के प्रति बरते जाने वाले भेद-भाव में कमी आई है तो वह एक तिहाई से भी कम, दो तिहाई परिवारों में यह भेदमूलक विडम्बना अभी भी यथावत विद्यमान है । उसका निराकरण किये बिना भारतीय समाज आगे बढ़ सकेगा इसकी सम्भावना सदैव संदिग्ध ही रहेगी ।

इस भेद-भाव के दूरगामी परिणाम तो समाज को आगे चलकर भुगतने पड़ते हैं बालकों में वह संस्कार प्रारम्भ से ही जड़ पकड़ लेते हैं । दूरगामी परिणामों का निराकरण किया जा सकता है किन्तु बाल्यावस्था में पड़े आत्महीनता के संस्कार जीवन भर सुधारते नहीं सुधरते । आज हमारे देश की नारी शत्रु से संघर्ष करने, शौर्य प्रदर्शित करने, बच्चों में साहस भरने, उनका दिशा निर्देशन कर सकने की बात तो दूर, वह जीवन की सामान्य कठिनाइयों से भी लड़ने में सक्षम नहीं, फलस्वरूप वह पग-पग पर झगड़-झगड़ कर बाधायें उत्पन्न कर अपनी स्थिति पर सन्तोष करने का प्रयास करती है, पर उस कारण पारिवारिक जीवन बहुत ही अशान्त और क्लेशपूर्ण बने रहते हैं । इस स्थिति को सुधारा जाना अभीष्ट हो तो इसी जड़ को काटना आवश्यक होगा । बच्चों में भेद-भाव की नीति अपने पैरों कुल्हाड़ी मारने की तरह ही है, उससे बच सकें तो शेष समस्याओं को सहज ही सुलझाया जा सकता है ।

परिवार यों न तोड़ें

इस समय हमारे समाज में नयी लहर की बाढ़ आई है । प्रगतिशीलता आधुनिकता का जो स्वरूप देखने में आ रहा है उससे लगता है कि जो रीति-नीति हम अपनाते जा रहे हैं वह न तो प्रगतिकारक है और न ही आदर्श । समाज का स्वरूप और वातावरण बेशक बदला है । प्राचीन परम्पराओं को उसी रूप में जीवित तो नहीं रखा जा सकता था, परन्तु तथाकथित प्रगतिशीलता के भँवर जाल में पड़कर उसके मूल तथ्यों को एकदम उपेक्षित कर देना भी अनुचित है । विकास और उन्नति में अवरोध उपस्थित करने वाली इस नीति का विश्लेषण करने पर यही मानना पड़ता है कि अन्धानुकरण की प्रवृत्ति हममें तेजी से बढ़ रही है । एक ऐसी सभ्यता और संस्कृति की चकाचौंध भरी चमक, दमक को देखकर हम लाभदायक तत्वों की उपेक्षा कर बैठते हैं ।

इस अन्धानुकरण की प्रवृत्ति के कारण भारत से संयुक्त परिवार प्रणाली का विघटन होता जा रहा है । दाम्पत्य जीवन में प्रवेश करते ही पति-पत्नी अपने परिवार को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

छोड़ देते हैं और अलग से घर बसाने की योजना बनाने एवं उसे मूर्तरूप देने में जुट जाते हैं । नौकरी-पेशा लोग रोजगार और उपार्जन के लिए बाहर गाँव जाकर अपनी पत्नी के साथ रहे । यह सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार ठीक भी है । लेकिन भारत में नौकर-पेशा वर्ग बहुत सीमित और अल्पसंख्यक में ही है । अधिकांश युवक एक गाँव में ही रहते हुए अलग रहने लगते हैं ।

इसका सबसे बड़ा कारण है परिवार के वृद्ध सदस्यों और माता-पिता के प्रति उपेक्षा भाव । दो दशक पूर्व तक हमारे देश में संयुक्त परिवार प्रथा थी । परिवार के बच्चे बड़े-बूढ़ों की छत्रछाया में बढ़ते, पनपते थे और अन्य दूसरे चाचा-ताऊ के बच्चों के साथ रहकर एकता, ममता, स्नेह और त्याग का पाठ सीखते थे । तब न तो पति-पत्नी अलग स्वतन्त्र दायित्वों के बोझ तले इतना दबे रहते थे और न ही वृद्ध स्वजन अभिशाप समझे जाते थे । स्वार्थी, आत्मकेन्द्रित तथाकथित प्रगतिशील और आधुनिक सभ्यता की ओर आकृष्ट होते ही परिवारों का विघटन शुरू हुआ और नारी के सामने भी तथा पुरुष के सामने भी एकाकी परिवार की अगणित समस्यायें सामने आईं ।

यह सभी जानते हैं कि एकाकी परिवार में जीवन और भविष्य निश्चित नहीं है तथा सुख-सुविधायें भी उतनी नहीं प्राप्त हो सकेंगी तो भी क्या युवक और क्या युवतियाँ जितनी जल्दी हो सके अपने माता-पिता, भाई-बहिनों, सास-ननद तथा देवर-जेठों से अलग होने की इच्छा करने लगते हैं । जीवन के समस्त सुख और ऐश्वर्य अकेले भोगने तथा वृद्धों के प्रति अश्रद्धा एवं उपेक्षा का भाव होने के कारण ही इस इच्छा का जन्म होता है । परिवार से अलग होते ही परेशानियाँ और कठिनाइयाँ भोगनी पड़ती हैं, उनके फलस्वरूप जीवन भार लगने लगता है और पारिवारिक जीवन में कटुता के अंकुर फूटने लगते हैं ।

एकाकी परिवार में महिलाओं की व्यस्तता बढ़ती है । सम्मिलित सब स्वजनों के साथ रहने पर घर की आन्तरिक व्यवस्था परिवार के सभी सदस्य मिल-जुलकर कर लेते हैं । जबकि केवल पति-पत्नी के साथ रहने पर सारी व्यवस्था का दायित्व अकेली पत्नी पर ही आ जाता है । व्यस्त जीवन में बच्चों पर समुचित ध्यान नहीं दिया जा सकता । वह प्रेम और ममत्व जो पिता व माता से मिलना चाहिए था उसमें कमी आ जाती है । फलस्वरूप बालक का मानसिक विकास वैसा नहीं हो पाता जो सम्मिलित परिवार में सम्भव था । वहाँ पिता का प्यार तो मिलता ही, दादा-दादी, चाचा-चाची, ताऊ-ताई का स्नेह भी उसके चतुर्मुखी विकास में सहायक सिद्ध होता । इसी कारण एकाकी परिवार के बच्चे प्रायः कुण्ठाग्रस्त देखे गये हैं ।

महिलाओं और पुरुषों में वृद्धों के प्रति अवमानना और अविश्वास का भाव तो इस कदर बढ़ रहा है कि वे अपने बच्चों के लिए नौकरों और बाहर के व्यक्तियों पर विश्वास कर लेंगे, परन्तु घर के वृद्ध स्त्री-पुरुषों पर नहीं । यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि नौकर या बाहर का व्यक्ति पारिवारिक या किसी स्वार्थवश बच्चों की देख-रेख और सार-सम्हाल भले ही कर दे, परन्तु उसके साथ आत्मीयता और प्यार की जो खुराक मिलनी चाहिए उससे उन्हें वंचित ही रह जाना पड़ता है । आज के समय में दूसरों के बच्चों को शायद ही कोई उस भावभरे हृदय से दुलारता हो । जब व्यक्ति को अपने सहोदर भाइयों की सन्तानें भी फूटी आँख नहीं सुहाती तो औरों के बच्चों को वह क्या प्यार दे सकेगा । देख-रेख और अन्य बातों का ध्यान जितनी कुशलता से, आत्मीयता से घर की अनुभवी वृद्ध महिलायें कर सकती हैं उतनी आत्मीयता अन्यत्र कहीं मिल पाना असम्भव है ।

जर्मनी में ३८ प्रतिशत महिलायें नौकरी करती हैं । उनमें अधिकांश मातायें हैं । कार्यवश कईयों को घर से दूर भी जाना पड़ता है और ऐसी स्थिति में बच्चों की देख-रेख वहाँ कोई नौकर या आया नहीं, बूढ़ी स्त्रियाँ, नानी-दादी करती हैं । द्वितीय महायुद्ध के बाद इस देश ने जो आश्चर्यजनक प्रगति की है उसके कई कारणों में से एक कारण यह भी है, जिससे बालकों का विकास एक आदर्श नागरिक के रूप में सम्भव हो सका है । यह विज्ञान सिद्ध तथ्य है कि ममत्व और प्रेम की छाया में पला-पनपा बालक चरित्र, क्रियाशीलता, परिश्रम और देश-प्रेम की भावनाओं से ओत-प्रोत होता है ।

दम्पत्ति अक्सर संकीर्ण भावना के शिकार होकर एकाकी परिवार बसाते हैं । परिवार में छोटा भाई ज्यादा कमाता हो और बड़ा कम तो छोटे भाई और उसकी पत्नी में यह भाव उठता है कि-"भैय्या तो हमसे बहुत कम कमाते हैं फिर भी हम उनके बराबर सुख-सुविधाओं का लाभ उठा पाते हैं । हमारी कमाई पर हमारा ही अधिकार है । उसमें किसी भी प्रकार दूसरे को लाभ नहीं उठाना चाहिये । यह संकीर्ण और ओछा विचार दिनों-दिन स्थायी होता चलता है अन्ततः परिवार में विघटन पैदा हो जाता है । लेकिन जिस उद्देश्य से पति-पत्नी अलग हुए थे वे उद्देश्य कदाचित् ही पूरे होते हैं । अलग मकान लेने पर मकान किराया, ईंधन, तेल, बिजली आदि अन्य दूसरे खर्च इतने अधिक अतिरिक्त पड़ते हैं कि पहले जितनी सुविधाएँ भी उपलब्ध नहीं हो पातीं । इस विचार के स्थान पर सोचा जाता, पति-पत्नी एक दूसरे का शोधन समाधान इस प्रकार करते कि-अपनी कमाई का लाभ उठा रहा है तो उसमें अनुचित क्या है । आखिर वह तो अपना ही है तो कितना अच्छा होता । आगे बढ़ने वाली आवश्यकताओं और व्यय की कल्पना कर स्वयं को लाभ में मानकर सन्तुष्ट रहा जा सकता था ।

परिवार, समाज और राष्ट्र की इकाई है । यदि इस संस्था में ही आत्मीयता और सहयोग नहीं बढ़ सका तो समाज में सामूहिकता और सुराज की कल्पना दिवास्वप्न ही बनकर रह जायेगी । युवा दम्पत्तियों को भी और प्रौढ़ पुरुष-महिलाओं को भी एकाकी परिवार बसाते समय इन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तथ्यों की ओर ध्यान देना चाहिए । सोचना चाहिए कि जैसा व्यवहार हम आज अपने माता-पिता से कर रहे हैं, वैसा हमारी सन्तान हम से करे तो अपने हृदय पर क्या बीतेगी ? यह कल्पना या मन बहलाव की बात नहीं, एक सच्चाई है क्योंकि ऐसे अभिभावक अपनी सन्तान को इन्हीं संस्कारों से संस्कारित करते हैं ।

परिवार को टूटने से बचाया जा सके और सम्मिलित परिवार को सामयिक एवं वैयक्तिक परिस्थितियों के अनुसार किसी भी रूप से जीवित रखा जा सके तभी आदर्श समाज की रचना सम्भव होगी ।

परिवार संस्था को टूटने से रोका जाय

सभ्यता के विकास के साथ-साथ विवाह विच्छेद की घटनाओं में जिस तेजी के साथ वृद्धि हो रही है, उन्हें देखते हुए इस समस्या की गम्भीरता का अनुमान लगाया जा सकता है ।

दिल्ली में अकेले सन् ९३ में तलाक के ४७० एवं न्यायिक अलगाव (जुडीशियल सेपरेशन) के ४४९ केस न्यायालय में दाखिल हुए । सन् ९४ में १२३० केस न्यायालय में आये जिनमें तलाक एवं न्यायिक अलगाव दोनों के सम्मिलित आँकड़े हैं । बम्बई में प्रतिवर्ष लगभग १५०० तलाक के मामले न्यायालय में पहुँचते हैं ।

पश्चिम की यह छूत क्रमशः हमारे समाज में भी लगती जा रही है । इससे परिवार जैसे पवित्र संस्था के लिए संकट उत्पन्न हो गया है । बच्चों का भविष्य अनिश्चित-सा हो गया है ।

भारतीय संस्कृति में विवाह एक पवित्र संस्कार माना गया है । यह एक महायज्ञ है जिसमें पति-पत्नी अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की आहुति देकर पारिवारिक जीवन को स्वर्गमय बनाते हैं । यज्ञ की पवित्र अग्नि के साथ इसका आरम्भ होता है परन्तु श्मशान की चिताग्नि भी इस बन्धन को नहीं तोड़ सकती । पति-पत्नी के सम्बन्ध की अविच्छिन्नता की लोक से लेकर परलोक तक चले जाने की धारणा हमारी संस्कृति की विशेषता है । किसी कारणवश यदि परस्पर मतभेद हो जाता है तो सहिष्णुता, त्याग, क्षमा, धैर्य की वृत्तियाँ दोनों में तालमेल बढ़ाती और कलह को शान्त करती हैं, पर आज तो असहिष्णुता और अहमन्यता का ही बोलवाला है । विवाह को सार्थक बनाने वाले भाव बन्धन टूटते जा रहे हैं । पारिवारिक जीवन की स्थिरता, सुख-शान्ति समाप्त होती जा रही है ।

विवाह-विच्छेद के कारणों में सबसे पहला है पति-पत्नी को परस्पर एक-दूसरे को समझने एवं अनुकूल बनाने की क्षमता का अभाव । सामान्य-सी बात पर क्रोध अथवा उत्तेजना के आवेश में अपना मानसिक सन्तुलन गँवा बैठते हैं । उन्हें विवाह-विच्छेद ही समस्या का एक मात्र हल दिखायी देता है ।

परिवार में पति-पत्नी के बीच स्वभाव एवं रुचि की भिन्नता होने के कारण मतभेद होना स्वाभाविक है जिसको पति-पत्नी में से कोई एक विवेकशील पक्ष दूसरे से तालमेल बिठाकर समाधान ढूँढ़ सकता है । जबकि आवेशग्रसित होकर ऐसे भयंकर कदम उठा लेना परिवार के लिए घातक ही होता है ।

पारस्परिक अहंकार एवं द्वेष भी तलाक का कारण बनता है । पत्नी यदि अधिक योग्य एवं प्रतिभाशाली है तो पति अपने अविवेक के कारण अनावश्यक ईर्ष्या करता रहता है । पत्नी के उपयोगी सुझाव को भी स्वीकार करने में वह अपना अपमान समझता है । पत्नी की उपेक्षा से अपने अहम् का प्रदर्शन करता है । परिणामस्वरूप जो योग्य पत्नी उसके लिए अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती थी, इस व्यवहार से क्षुब्ध हो जाती है तथा उनमें परस्पर कटुता बढ़ती जाती है ।

छोटी-छोटी बातों को प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लेने से मतभेद उस सीमा तक पहुँचता है कि तलाक लेने की स्थिति आ जाती है । विवेक के अभाव में विशेष योग्यता भी पारिवारिक विघटन का कारण बन जाती है । पति-पत्नी में बड़े-छोटे की मान्यता ही अविवेकपूर्ण है । परस्पर एक-दूसरे की क्षमता एवं प्रतिभा से प्रसन्न रहकर लाभ उठाया जा सकता है परन्तु इस स्वस्थ दृष्टि के अभाव में तो विग्रह ही उत्पन्न होता है ।

प्रेम विवाह भी विवाह-विच्छेद की घटनाओं में एक महत्वपूर्ण कारण बनता जाता है । इन विवाहों का आधार आरम्भिक शारीरिक आकर्षण होता है, जिसके परिणामस्वरूप लड़के-लड़कियाँ भावावेश में बिना अभिभावकों की सहमति प्राप्त किये विवाह का निर्णय ले लेते हैं तथा सामाजिक नियमों, परम्पराओं एवं स्वस्थ रीति रिवाजों की भी उपेक्षा ऐसे अवसर पर ये करते देखे जाते हैं ।

विवाहोपरान्त कायिक आकर्षण में कमी आते ही परस्पर एक दूसरे की उपेक्षा करने लगते हैं । मानसिक विकास के अभाव में इनमें सामान्य से प्रतिकूल विचार भी असह्य हो जाते हैं, मतभेद की खाई चौड़ी होने लगती है । अभिभावकों एवं समाज का दबाव भी इनके सम्बन्धों पर नहीं होता है । ऐसे अवसर पर किसी की सहानुभूति भी ऐसे व्यक्तियों के साथ नहीं होती है । परिणामस्वरूप वे पति अथवा पत्नी को बदलना चाहते हैं जिसके लिए न्यायालय का दरवाजा खटखटाते हैं ।

आजकल पश्चिमी हवा के साथ स्वतंत्र प्रेम (फ्री लव) की नयी लहर चल पड़ी है । जिसके कारण पति-पत्नी वैवाहिक बन्धनों को शिथिल करके कामज-प्रेम की पशुवत् प्रवृत्ति की स्थापना करना चाहते हैं । हिप्पीवादी प्रवृत्तियाँ इसी स्वेच्छाचार को प्रथा बनाना चाहती हैं । यों वेश्यावृत्ति तो पहले से ही चल और पनप रही थी इस वृत्ति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ने और भी प्रोत्साहन दिया है । इस प्रवाह से समूचे नैतिक मूल्यों के लिए संकट उत्पन्न हो रहा है ।

पति-पत्नी, भाई-बहिन एवं अन्य पवित्र रिश्ते इस अनैतिकता के प्रवाह में टूट जायेंगे । नैतिकता के अभाव में समाज का सभ्य एवं सुसंस्कृतिक ढाँचा लड़खड़ा जायेगा । आज की विकसित सभ्यता पुनः उस आदिम युग में जाना चाहती है जहाँ पशु एवं मानव की नैसर्गिक क्रियाओं में अन्तर नहीं था । इन्द्रियों की माँग की पूर्ति ही जिनका लक्ष्य था ।

विवाह विच्छेद से सर्वाधिक संकट नारी को ही भोगना पड़ता है । भारतीय समाज में नारी वैसे ही सदियों से उपेक्षित चली आ रही है, विवाह-विच्छेद के उपरान्त तो समाज उसे और भी अधिक तिरस्कार की दृष्टि से देखता है । पुनर्विवाह के औचित्य को सिद्धान्त के रूप में स्वीकार किया गया है । परन्तु वह पुरुष वर्ग तक ही सीमित है, समाज ने तो व्यावहारिक रूप में नारी को अब भी इससे वंचित रखा है । पति द्वारा त्याग, सामाजिक उपेक्षा, आर्थिक परावलम्बन एवं तिरस्कार से उसका जीवन दूभर हो जाता है ।

कभी-कभी पति-पत्नी के सम्बन्ध इतने कटु हो जाते हैं कि एक-दूसरे के जीवन के लिए संकट उत्पन्न हो जाता है । ऐसी विषम परिस्थितियों में जीवन की सुरक्षा के लिए शास्त्रकारों ने विवाह-विच्छेद की अनुमति दी थी । वर्तमान हिन्दू विवाह अधिनियम में भी ऐसी विशेष परिस्थितियों में तलाक की व्यवस्था बनायी गयी है जिन आधारों पर विवाह-विच्छेद के लिए अनुमति दी गयी है वे हैं पति-पत्नी किसी द्वारा निरन्तर व्यभिचार किया जाना, धर्म परिवर्तन, कोढ़ अथवा पागल हो जाना, ७ वर्ष तक निरन्तर गायब रहना । परन्तु न्यायालयों में लाये गये 'विवादों' को देखने से यह स्पष्ट हो गया है कि उनमें अधिकतर मामले छोटे-छोटे पारस्परिक मतभेद पर आधारित थे भले ही उन्हें विवाह-विच्छेद सम्बन्धी अधिनियम के जो आधार हैं उनका आवरण दे दिया गया हो ।

परन्तु सामान्यतयाः विवाह-विच्छेद तो परिवार एवं समाज के लिए सर्वदा हानिकारक ही है । विश्व में बढ़ती हुई विवाह-विच्छेद की घटनाओं पर चिन्ता व्यक्त करते हुए अँग्रेज महिला श्रीमती 'एम. मैकिन्टश' ने कहा है कि-

"सभी युगों में नर-नारियों के जीवन के दो प्रधान अवलम्बन रहे हैं एक विवाह-दूसरा घर । वर्तमान युग में यह दोनों आधार तलाक नामक अमंगलकारी प्रेत के प्रभाव से ध्वस्त हो गये हैं । इसने नर-नारियों के हृदयों को भय से भर दिया है, इससे समाज को महान क्षति उठानी पड़ रही है । परिवार टूटते जा रहे हैं, बच्चों का भविष्य संकट में पड़ गया है ।"

पारस्परिक सहयोग, प्रेम, स्नेह की भावना का विकास विवाह-विच्छेद की परिकल्पना से रुक जायेगा एवं परिवार टूटते जायेंगे । इस कल्पना से हृदय काँप जाता है । अलगाव की इस प्रवृत्ति को तब तक निरुत्साहित ही करना चाहिए जब तक कि वैसा करने के लिए अनिवार्य विवशता ही सामने न आ खड़ी हो ।

इस गुलशन को उजाड़ें नहीं सँवारें

परिवार का नाम लेते ही एक ऐसे परिकर का चित्र साकार हो उठता है जिसमें अनेकों सदस्य हों तथा परस्पर एक दूसरे से विभिन्न रिश्ते से जुड़े हों । न केवल रिश्तों से वरन् भावनात्मक सुदृढ़ सम्बन्धों से भी, जहाँ स्नेह सद्भाव और सहकार की त्रिवेणी बहती हो । वह दिन मानव प्रगति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहा होगा जिस दिन परिवार संस्था का अभ्युदय हुआ होगा । जीने को तो अन्य जीव-जन्तु भी एक बाड़े में जी लेते हैं । पेट प्रजनन की जरूरतें भी पूरी कर लेते हैं पर उस परिकर को परिवार नहीं कहा जा सकता । उनके शारीरिक स्वार्थ ही परस्पर एक दूसरे को बाँधे रहते हैं । मोटी दृष्टि से देखने पर लगता है कि यहाँ भी कोई परिवार है पर मान्यता अधिक समय तक कायम नहीं रहती, झटका लगता है और वह बनायी गयी धारणा यह देख-कर टूट जाती है कि वे अपने स्वार्थों के कारण मात्र जुड़े हुए हैं । प्रकृति यदि अपनी सुव्यवस्था एवं सृष्टिक्रम चलाने के लिए प्रेरणा देकर उन्हें जबरन एवं दूसरे सामयिक अवधि के लिये जोड़े रहती है तो इसे पशुओं का स्नेह, सद्भाव, त्याग अथवा बलिदान नहीं कहा जा सकता यह तो प्रकृति की विशेषता है, न कि उन जीवों की ।

पति-पत्नी, पिता-पुत्र, माँ-बेटी, भाई-बहिन आदि जैसे सुमधुर सम्बन्ध तो मानव परिवार में ही दिखायी पड़ सकते हैं । मनुष्येतर जीवों में न तो कोई पति है और न पत्नी । भाई-बहिन के, पिता-पुत्र के सम्बन्धों का दर्शन पशु-समाज में कहाँ होता है ? वहाँ कोई रिश्ता नहीं है । सेक्स दो विपरीत लिंगों को आकर्षित करता है इसी माँग के कारण परस्पर वे आबद्ध होते हैं-प्रजनन का क्रम चलता है । मादा को प्रकृति एक निश्चित समय तक के लिए प्रेरित करती है कि वह बच्चों की देखभाल करे वह पूरा होते ही सम्बन्ध टूट जाते हैं । तब मादा के लिये न तो वह पुत्र होता है और न ही बच्चे के लिए वह माँ । जीवनपर्यन्त सम्बन्धों की स्थिरता एवं प्रगाढ़ता तो उस परिवार में ही दिखायी पड़ सकती है जिसमें मनुष्य रहता है ।

मनुष्य में शारीरिक कम मानसिक एवं भावनात्मक आवश्यकतायें अधिक हैं । नौ इंच के पेट के लिये औसतन डेढ़ पाव आटा पर्याप्त है । पाँच गज कपड़े का आवरण तन ढकने के लिये चाहिए । थोड़े प्रयत्नों द्वारा इनकी पूर्ति सम्भव है । फिर इतना अधिक श्रम पुरुषार्थ करने की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

मनुष्य की आवश्यकता क्यों पड़ी । इसलिए कि उसे मानसिक तृप्ति चाहिए । उस परितृप्ति के लिए ही वह अथक श्रम करता, साधनों का जाल-जंजाल जुटाता है । नाम तथा यश की कामना भी मनोवैज्ञानिक है जो मनुष्य को सदा नाच नचाती रहती है । भावनाओं का पोषण न मिले तो वह विक्षिप्त बन जाता है । पशुओं की भाँति शरीर को पोषण तथा सम्बद्ध इन्द्रियों की तृप्ति तो कहीं भी सम्भव है पर मन: एवं भाव जगत की आवश्यकतायें संसार में कहीं भी पूरी नहीं हो सकती हैं । वे एकमात्र परिवार के भावभरे वातावरण में ही पूर्ण हो सकती हैं । पशु इन्द्रिय तृप्ति के बाद चलते बनते और तब तक शान्त बैठते रहते हैं जब तक कि दूसरा कोई उन्हें प्रेरित करे । मनुष्य की स्थिति सर्वथा भिन्न है । बाड़े में कैद करके पशुओं की तरह पेट एवं सेक्स की जरूरतें पूरा करके उन्हें सन्तुष्ट नहीं रखा जा सकता ।

सराय एवं होटलों में सारी चीजें उपलब्ध रहती हैं । पैसे द्वारा उन्हें खरीदा जा सकता है । पर बहिन का स्नेह और माँ की ममता, पिता का वात्सल्य तथा पत्नी का प्यार भारी कीमत देकर भी नहीं प्राप्त किया जा सकता है । ऐसी कोई भी संस्था अथवा संगठन अब तक नहीं बन सके हैं जो परिवार संस्था का स्थानापन्न बन सकें और मनुष्य की शरीर से इतर मन: एवं भाव जगत की आवश्यकताओं को पूरा कर सकें । घूम-फिर कर नजर सदियों से चली आ रही परिवार संस्था पर ही जाती है । जहाँ मानसिक एवं भाव जगत की परितृप्ति सम्भव है ।

बीसवीं सदी में कुछ देशों में अभिनव प्रयोग हुये । आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से कम्यून व्यवस्था अत्यन्त उपयोगी मानी गयी । वर्ग क्रान्ति के उपरान्त जिन देशों के कम्यूनिज्म की व्यवस्था कायम हुई वहाँ की सामाजिक प्रणालियों में भी आमूल-चूल परिवर्तन किये गये । रूस ने बच्चों के पालन-पोषण के लिए धायघर खोले । पर वह प्रयोग पूर्णतया असफल रहा । अपनी अनेकानेक विशेषताओं के बावजूद भी कम्यून प्रणाली इसलिए सफल नहीं हो सकी, क्योंकि उसमें पारिवारिक भावना का अभाव था । चीन में भी इसी प्रकार की असफलता हाथ लगी । सफलता का उद्घोष करना एक बात है पर उसे सही-सही शब्दों में करतलगत करना दूसरी बात है । विचारकों का मत है कि कम्यून व्यवस्था सैद्धान्तिक रूप से अत्यन्त उपयोगी है । उसके आर्थिक एवं सामाजिक सिद्धान्त कल्याणकारी हैं पर उसका भविष्य उज्ज्वल होगा, यह इसलिये संदिग्ध है कि जीवन के लिए सदाशयता का समावेश उसमें होना चाहिए, वह नहीं हो सका है । मनुष्य जाति के लिए कम्यून प्रणाली का-लार्जर फैमिली का प्रयोग कौटुम्बिक भावना के आधार पर ही सफल हो सकेगा ।

सम्बद्ध असफलता का एक कारण यह भी है कि प्रचलित कम्यून प्रणाली अमनोवैज्ञानिक तथा अव्यावहारिक आदर्शों पर आधारित है । आर्थिक सुनिश्चितता ही पर्याप्त नहीं है, मनुष्य को विचारों एवं भावनाओं का भी पोषण चाहिए । यह उतना ही जरूरी है जितना कि शरीर के लिये आहार, वस्त्र एवं निवास के लिये आवास । कम्यूनिज्म विचारधारा से अनुप्राणित देशों में शिशुघरों में पालन पोषण का प्रयोग असफल रहा । यह देखते हुए प्रसिद्ध विचारक वर्गेस ने लिखा है कि ' 'रूस कौटुम्बिक भावना तथा माता-पिता के आन्तरिक प्रेम को समाप्त करने में असमर्थ रहा है ।''

'दि फेमिली' पुस्तक में हेलेन बोसाँ लिखते हैं कि संसार बिना कुटुम्ब के उसी प्रकार होगा, जैसे बिना सूर्य के आकाश । सूर्य बादल से ढक सकता है किन्तु लुप्त नहीं हो सकता । कुटुम्ब व्यवस्था की दीवाल हिल सकती है, किन्तु उसका अभाव असम्भव है ।''

सीखने एवं अनुभव प्राप्त करने तथा किसी विषय विशेष में प्रवीणता प्राप्त करने की आवश्यकता तो बाद में पड़ती है । सम्बद्ध स्कूल एवं समाज इस आवश्यकता की पूर्ति भी करते हैं । पर व्यक्तित्व के विकास के लिये जिन सुसंस्कारों की जरूरत पड़ती है उनका बीजारोपण तो परिवार संस्था में ही होता है, उन परिवारों में जो सही अर्थों में परिवार नाम को सार्थक करते हैं । 'एटीकेट' मात्र सिखाने वाले कितने ही स्कूल पश्चिमी देशों की नकल पर खुलते जा रहे हैं । अपने प्रयास में सीमित प्रयोगों के लिए वे सफल भी रहे हैं पर समाज, देश और संस्कृति के कुसंस्कारों से युक्त जिन सुसंस्कृत व्यक्तित्वों की जरूरत है, उन्हें दे पाने में सर्वथा असमर्थ हैं । यह महान कार्य तो सद्भाव सुसंस्कार सम्पन्न परिवार के वातावरण में ही सम्पन्न हो सकता है ।

परिवार संस्था की उपयोगिता, आवश्यकता असंदिग्ध है, पर इस सच्चाई से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि परिवारों का स्तर गिरा है । वे सुमधुर सम्बन्ध समाप्त होते जा रहे हैं जिनके कारण परिवार गौरवान्वित होते थे । संकीर्ण स्वार्थपरता का घुन परिवार संस्था को भीतर ही भीतर खोखला बनाने में संलग्न है । पश्चिमी देशों में तो परिवारों की स्थिति और भी बुरी है । सम्बन्धित सदस्यों के रिश्ते मात्र समझौते बनकर रह गये हैं । वहाँ पारिवारिक सद्भावना समाप्त होती जा रही है । आधुनिक सभ्यता में पले समाज में भी वह विष फैलता जा रहा है । अशिक्षित एवं पिछड़े समझे जाने वाले क्षेत्रों में अभी भी सद्भावना एवं सदाशयता भरपूर है । सुशिक्षितों एवं प्रगतिशीलों में भी वह समाप्त नहीं हुई है । आवश्यकता दोनों ही क्षेत्रों में परिमार्जन की है । भारतीय परिवारों को सुगठित, सुसंस्कृत बनाने के लिए संस्कारीकरण के

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनोवैज्ञानिक सनातन उपचारों का अवलम्बन लेना होगा । परिवार संस्था श्रेष्ठ व्यक्तित्वों की गलाई ढलाई करने में तभी समर्थ हो सकेगी ।

पारिवारिक संगठन टूटने न पायें

कोई विरले परिवार ही शान्ति एवं सुव्यवस्थापूर्वक निर्वाह करते दिखाई देंगे अधिकांश में असन्तोष और मन-मुटाव की आग जलती पाई जायगी । हमारी परिवार संस्था टूटती-फूटती नजर आ रही है । इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना होगा ।

इसका प्रमुख कारण है विभिन्न रूपों में परिवार की टूटती हुई मर्यादाएँ । परिवार को सम्भालने का गलत दृष्टिकोण, परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा अपने कर्त्तव्यों में अनिष्ठा । फलस्वरूप परिवार की शान्ति समाप्त हो चुकी है । कलह का साम्राज्य स्थापित हो चुका है । जब शान्ति ही नहीं तो सुख कैसा ? मनुष्य अपने आप में इतना अधिक भ्रष्ट, इतना स्वार्थी, इतना दुष्ट हो गया है जो अपनी आत्मा की हत्या स्वयं कर रहा है ।

परिवार में एक-दूसरे के प्रति हमारा क्या कर्तव्य होना चाहिए ? छोटों के प्रति बड़ों का क्या उत्तरदायित्व होता है ? बड़े अपने से छोटों के प्रति किस तरह निष्पक्ष रूप से व्यवहार और निर्णय करें । आपसी न्याय का प्रतिपादन किस प्रकार किया जाय ? पारिवारिक जीवन में सद्भावना का क्या स्थान है आदि ऐसे महत्वपूर्ण पहलू हैं जिसका अनुपालन परिवार में होने लग जाय तो सुख और शान्ति की आनन्दानुभूति सबको होने लग जाय ।

परिवार में सदस्यों के बीच अपनेपन का विशेष अनुभव होना, परिवार के टिकाऊपन का सर्वश्रेष्ठ गुण है । जब अपनों में अपनेपन का भाव समाप्त हो जाता है तभी आपसी प्रेम के टुकड़े होने लगते हैं । स्वार्थपरता आने लगती है । अतः अपने अन्तर में अपनत्व की भावना पैदा करनी पड़ेगी । अपनत्व की भावना ही भेद-भाव को जीवन से दूर भगा देती है । परन्तु विचारों में भेद-भाव की उत्पत्ति से न जाने परिवार की कितनी बुरी दशा होती है । भेद भावना पारिवारिक जीवन की ऐसी चिनगारी है जो भीतर ही भीतर जलाती रहती है । प्रेम के अंकुर उसमें पनप ही नहीं सकते । आज परिवार की ऐसी ही विषम स्थिति है ।

माता के हृदय में अपने छोटे बालकों के प्रति कितनी उदारता की भावना रहती है । बच्चों के लालन-पालन में अपने भूखे रहकर भी उसकी भूख की चिन्ता रखा करती है । अपने सिर पर हर तरह का बोझ उठा लेती है लेकिन बच्चे को किसी प्रकार का कष्ट न हो यह बराबर ध्यान रखती है । कितना बड़ा त्याग उसके जीवन में रहता है । सचमुच माता त्याग की साक्षात् प्रतिमा है । ऐसा ही त्याग करने की भावना, घर के हर समझदार व्यक्ति के हृदय में आ जाय तो कलह-विग्रह के परिताप से बचा जा सकता है । कलह-विग्रह से परिवार की शान्ति भंग हो जाती है । यह तो परिवार का बहुत बड़ा दुर्भाग्य है ।

भावना हृदय की आन्तरिक वस्तु है । यदि हम झूठे भाव से अपने पारिवारिक सदस्यों के बीच अपनत्व, उदारता और त्याग का भाव प्रदर्शन करना चाहेंगे तो कभी न कभी इसकी सत्यता परिलक्षित हो ही जायगी । तब अन्य सदस्यों का दृष्टिकोण हमारे प्रति कितना गलत हो जायगा । लोग सशंकित हो जायेंगे । हमारे प्रति अश्रद्धालु हो जायेंगे । इस मर्यादा का पालन आन्तरिक गुण है कि हम परिवार में श्रद्धा के पात्र समझे जायँ । यह प्रदर्शन की वस्तु नहीं, भावना की वस्तु है ।

गलती करना मनुष्य का स्वाभाविक गुण है । यदि जाने-अनजाने हमसे किसी प्रकार की गलती हो जाती है जिसका आभास हमें नहीं हो रहा हो तो ऐसी गलती को स्वीकार कर लेना चाहिए । अपनी गलती को स्वीकार कर लेने वाला व्यक्ति जीवन में पुनः गलती करने से सावधान रहता है । इसके लिए आवश्यक है कि अपने यहाँ पारिवारिक गोष्ठी की व्यवस्था अवश्य बना ली जाय ।

इस सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण बात यह भी आ जाती है कि हम अपने परिवार में एक दूसरे के प्रति आदर की भावना बनाये रखें । चाहे कोई छोटा बच्चा ही क्यों न हो उसके प्रति भी आदर की भावना होनी चाहिए । बच्चों का इससे मनोबल बढ़ता है । उपेक्षित बालक कभी भी प्रभावशाली नहीं बन सकता । यह बात जरूरी है कि बच्चे भी बड़ों का आदर करना जानें । इसकी जानकारी उसे होनी चाहिए । इससे हमारे परिवार की मर्यादा बढ़ती है ।

अभिभावक की उदात्त भावना उसकी उत्कृष्टता का परिचायक है । उसके अन्दर कभी ऐसी भावना की उपज नहीं होनी चाहिए जो अहंकार पैदा कर दे । अहंकार मनुष्य के व्यक्तित्व को गिरा देता है । यह सोचकर अभिभावक को यह नहीं मानना चाहिए कि मैं ही पूरे परिवार का पालन करता हूँ, बल्कि ऐसा सोचना चाहिए कि मैं तो एक माध्यम मात्र हूँ । पालनकर्त्ता तो परमपिता परमात्मा है । पालन करने की शक्ति वही प्रदान करते हैं । बच्चों के जीवन में इसका अद्भुत प्रभाव पड़ता है । वह भी उदार और नम्र स्वभाव का बन जाता है ।

मनुष्य की प्रकृति बराबर स्वतन्त्र रहने की होती है । स्वतन्त्रता उसका जन्मसिद्ध अधिकार है । व्यक्तिगत स्वतन्त्र विचारधारा पर परिवार में किसी के द्वारा आक्षेप नहीं होना चाहिए । लेकिन यह ध्यान रखा जाना आवश्यक होगा कि उस विचारधारा से पारिवारिक शान्ति में कोई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यवधान तो नहीं हो रहा है । उस विचारधारा से प्रभावित होकर कोई अपनी नैतिकता तो नहीं खो रहा है । वह विचारधारा सामाजिक जीवन को अस्त-व्यस्त तो नहीं कर रही है । यदि ऐसी विचारधारा है तब तो इसका विरोध और इसकी आलोचना उस व्यक्ति के समक्ष करना ही चाहिए । उसे उपयुक्त सुझावों से आकृष्ट कर सही रास्ता दिखलाना चाहिए । हाँ, यदि किसी परिवार में रूढ़िगत परम्परा का प्रचलन है जिसको मान कर चलने में किसी को आपत्ति है तो इसके लिए किसी को लाचार भी नहीं करना चाहिए । एक-दूसरे के प्रति हमारा फर्ज हो जाता है कि हम एक-दूसरे की रुचियों को अपने हृदय में स्थान दें । इस तरह परिवार में एक स्वाभाविकता बनी रहेगी और सारा परिवार सुख-शान्ति की गोद में अपार आनन्द का अनुभव करेगा ।

व्यापक दृष्टिकोण को अपनाने की परम्परा का प्रस्फुटन तभी होगा जब हम अपने-अपने परिवार को उत्कृष्ट बनाने की प्रक्रियाओं और विशेषताओं को धारण करेंगे । वे विशेषताएँ जो प्राचीनकाल की पारिवारिक आदर्श व्यवस्था थी जिसके आधार पर परिवार का पारस्परिक प्रेम अक्षुण्ण रहता है । हमें अपनानी ही पड़ेगी ।

परिवार-संस्था क्यों टूट रही है ?

मनुष्य की प्रारम्भिक आवश्यकताएँ भोजन, वस्त्र और आवास से सम्बन्धित हैं । इन आवश्यकताओं के बाद स्वास्थ्य, चिकित्सा, शिक्षा, मनोरंजन, आतिथ्य और रीति रिवाजों के निर्वाह का क्रम आता है । इसके अतिरिक्त आपत्तिकालीन स्थिति का सामना करने के लिए भी समुचित व्यवस्था चाहिए । इस तरह की समस्त आवश्यकताएँ उपार्जन और खर्च का संतुलन बनाये रहने पर सरलता से पूरी हो सकती हैं । परिवार में रहते हुए सभी परिवारीजनों के साथ यह आवश्यकता जितनी आसानी से पूरी होती रह सकती है, उतनी सरलतापूर्वक किसी अन्य प्रकार से पूरी नहीं हो सकती । यदि जीवन-यापन के लिये आवश्यक सामान्य ज्ञान और लोक-व्यवहार का अनुभव हो तो मनुष्य के लिए पैसों की तंगी तो नहीं ही रहेगी, खर्च की सुविधा से संबधित घर परिवार की मोटी आवश्यकताएँ बिना बहुत बड़ी अड़चनों का सामना किये पूरी होती रह सकती हैं ।

परिवार संस्था की उपयोगिता में कोई सन्देह नहीं है । निर्वाह की दृष्टि से भी और मनुष्य की भावनात्मक आवश्यकताओं की दृष्टि से भी यह एक अतीव उपयोगी प्रचलन है । कठिनाई तो तब पैदा होती है, जब परिवार के सदस्यों में स्नेह सौजन्य का, सहयोग, सद्भाव का अभाव रहता है । उनमें परस्पर एक दूसरे के प्रति रुचि नहीं होती और परिवार के सभी सदस्य अपने-अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए चौकस रहते हैं, एक-दूसरे में रुचि नहीं लेते, अनुशासन नहीं मानते और परस्पर मनोमालिन्य रखकर समय कुसमय झगड़ते रहते हैं । यह स्थिति जहाँ भी होगी, वहाँ आर्थिक दृष्टि से कितने ही सुविधा साधन उपलब्ध रहते हुए भी कैदखाने का वातावरण रहेगा । जहाँ रहना एक विवशता है किसी न किसी प्रकार वहाँ समय काटना ही पड़ता है ।

जब एक दूसरे के प्रति कोई रुचि और लगाव ही नहीं है तो परिवारों में घनिष्टता तथा आत्मीयता का वातावरण कहाँ से और कैसे उत्पन्न होगा ? ऐसी स्थिति में परिवार के लोग निरापद ढंग से दिन तो काटते रह सकते हैं किन्तु वे उपलब्धियाँ नहीं मिल सकतीं जो परिवार जैसी पवित्र संस्था के सदस्यों को मिलनी चाहिए । आज के अधिकांश परिवारों की स्थिति ऐसी ही दुर्भाग्यपूर्ण बनी हुई है ।

इस संदर्भ में परिवार को लेकर नये सिरे से विचार किया जाना चाहिए । परिवार के हर सदस्य को यह समझना और समझाया जाना चाहिए कि परिवार का अर्थ केवल अपनी निर्वाह सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने वाली संस्था ही नहीं है । वस्तुत: परिवार एक पूरा शरीर है, परिवार के लोग इस पूरे शरीर के ही अंग-प्रत्यंग हैं । शरीर से अलग होकर किसी शरीर का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता । शरीर से अलग होते ही वह नष्ट और भूत हो जाता है । इसके अलावा किसी अंग का अपना कोई अलग से स्वार्थ भी नहीं होता । सभी अंग पूरे शरीर के लिए काम करते हैं और शरीर से ही अपने लिए आवश्यक पोषण प्राप्त करते हैं । इसी प्रकार परिवार के प्रत्येक सदस्य का अलग से अपना कोई स्वार्थ नहीं होना चाहिए, वरन् उन्हें पूरे परिवार के हित में ही अपना हित समझना चाहिए । व्यक्तिगत स्वार्थों को पारिवारिक हितों में समाहित करना चाहिए । शरीर के विभिन्न अंग-प्रत्यंगों में जिस प्रकार एक ही आत्मा, एक ही प्राण का निवास होता है प्रत्येक सदस्य को अपनी स्थिति भी उसी प्रकार की समझनी चाहिए । शरीर के विभिन्न अंग-अवयव दिखाई भर अलग-अलग देते हैं अन्यथा वास्तव में तो वे पूरे शरीर के साथ जुड़े होते हैं, उनके परिश्रम का लाभ भी पूरे शरीर को ही मिलता है और शरीर के माध्यम से ही उस परिश्रम, उपार्जन का उन्हें लाभ मिल पाता है । इस प्रकार कोई घाटे में नहीं रहता वरन् दूसरे की विशेषताओं का लाभ पाकर वह ऐसी उपलब्धियाँ प्राप्त करता है जो एकाकी रहने पर किसी भी प्रकार सम्भव नहीं हो सकती थीं । परिवार के सदस्यों को भी इसी प्रकार का दृष्टिकोण अपनाकर चलना चाहिए कि वे अलग-अलग केवल दिखाई देने के लिये हैं, अन्यथा उनका अस्तित्व शरीर के अंग-अवयवों की तरह परिवार शरीर से जुड़े रहने पर ही सुरक्षित रह सकता है और भावनात्मक रूप से परिवार के प्रति एकात्म रहने पर ही व्यक्तित्व को समुचित पोषण मिल सकता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस स्थिति पर विचार किया जाना चाहिए और यह विश्लेषण किया जाना चाहिए कि परिवार संस्था पर छाये हुये टूटन के संकटों का कारण क्या है ? आरम्भ में कहा गया है कि परिवार संस्था एक शरीर है और उस का अस्तित्व तभी सुरक्षित है जबकि उसके अंग-अवयव एक दूसरे के लिये काम करें, एक दूसरे से सहयोग करें और परिवार के अस्तित्व में ही अपना सहयोग करें और परिवार के अस्तित्व में ही अपना अस्तित्व घुलाये मिलाये रहें । यदि सभी के अंग-अवयव अपने आपको स्वतंत्र और अलग-अलग मानने लगें तथा अपने उपार्जन का लाभ स्वयं अकेले ही लेने की चेष्टा करने लगें तो शरीर व्यवस्था लड़खड़ाएगी ही । हाथ कहने लगें कि मैं जो उपार्जन करता हूँ, जो भोजन उठाता हूँ उसे मुँह में क्यों जाने दूँ ? वह तो मेरा परिश्रम है । मेरे परिश्रम का लाभ मुझे ही मिलना चाहिए । मुँह कहने लगे कि मैं जो कुछ खाता-चबाता हूँ उसे अपने तक ही सीमित क्यों न रखूँ ? पेट में क्यों जाने दूँ ? पेट जो पचाता है उसका सत्व अपने तक ही सीमित रखे, दूसरे अंग-अवयवों को उनका हिस्सा न बाँटे । हृदय अपने पास आने वाले रक्त को संचित करने लगे और उसे शरीर के दूसरे अंगों में न जाने दे, यह सोचने लगे कि मैं अपना संचित कोष औरों को क्यों वितरित करूँ ? तो शरीर की क्या स्थिति होगी ? शरीर जीवित ही नहीं बचेगा और उसके साथ-साथ अपने को ही केन्द्र मानकर व्यवहार करने वाले अंग अवयव भी नष्ट होंगे । शरीर के अंग-अवयवों में कोई संकुचितता नहीं है और इसी कारण देह नगरी जीवित रहती है किन्तु परिवार इसलिये टूट रहे हैं कि उसका प्रत्येक सदस्य आत्मकेन्द्रित होकर विचार करने लगा है तथा उसी के अनुसार व्यवहार करता है । उसी का परिणाम है कि परिवार संस्था टूटती जा रही है ।

इसका एक ही कारण है कि परिवार में रहने वाले सदस्य आत्यन्तिक आत्मकेन्द्रित होते जाते हैं और अपने स्वार्थ के सामने दूसरों की आवश्यकता पर ध्यान नहीं देते । समस्या का समाधान यही है कि परिवार के प्रत्येक सदस्य अपने आपको कुटुम्ब-शरीर का एक अंग मानकर चले और इसी तरह पूरे परिवार का हित ध्यान में रखे ।

टूटता परिवार–बिखरता दाम्पत्य

अमेरिका, इंग्लैण्ड, जर्मनी जैसे समृद्धशाली देशों के तलाक सम्बन्धी आँकड़े इस तथ्य का बोध कराते हैं कि वहाँ का पारिवारिक जीवन दिन-प्रतिदिन टूटता जा रहा है । यह तथ्य और भी चौंकाने वाले हैं कि इन देशों में जैसे-जैसे समृद्धि बढ़ी है उसी अनुपात में तलाक की घटनाओं में भी अभिवृद्धि हुई है । स्पष्ट है कि दृष्टि बहिर्मुखी साधनों पर अत्यधिक केन्द्रित हो जाने का यह दुष्परिणाम है । दाम्पत्य जीवन एवं परिवार को एक सूत्र में बाँधे रहने के आधार हैं स्नेह, सद्भाव, सहकार, सेवा एवं त्याग की वे प्रवृत्तियाँ जिनके कारण अभावों में रहते हुए भी जीवनपर्यन्त पति-पत्नी एक दूसरे से आबद्ध रहते हैं और कष्टमय जीवनयापन करते हुए भी कभी एक दूसरे से अलग होना नहीं चाहते । यह आधार न हो तो एकांगी भौतिक समृद्धि दाम्पत्य जीवन को बाँधे नहीं रख सकती । इसका प्रमाण है पाश्चात्य जगत में बढ़ता हुआ पारिवारिक असन्तोष और टूटता हुआ दाम्पत्य जीवन ।

टूटते हुये परिवार का प्रभाव सम्बन्धित व्यक्तियों पर ही नहीं, समाज के ऊपर भी असाधारण रूप से पड़ता है । परस्पर अविश्वास, असन्तोष की भावना बढ़ती है । परिवार के सदस्य अपने को असुरक्षित समझते एवं बच्चों का भविष्य संकट में पड़ जाता है । बच्चों को मिलने वाले माता-पिता के स्नेह से वंचित रहना पड़ता है । उनका विकास अवरुद्ध हो जाता है । मनोवैज्ञानिकों का मत है कि ऐसे बच्चे ही अधिकांशतः अपराधी बनते हैं तथा अवांछनीय गतिविधियों द्वारा समाज की भारी क्षति करते हैं । इंग्लैण्ड के दो समाजशास्त्रियों रोबिन मेब्बी तथा डेविड वट्टाले ने इंग्लैण्ड में अपराधों का अध्ययन किया है । 'एशियन्स एण्ड क्राइम दी ग्रेडफोर्ड एक्सपीरिएन्स' में ये लिखते हैं कि इंग्लैण्ड में रहने वाले अन्य नागरिकों की अपेक्षा वहाँ रहने वाले एशियाई नागरिकों में अपराधी कम पाये जाते हैं । ग्रेडफोर्ड इंग्लैण्ड के उत्तरी भाग का यह नगर उनके अध्ययन का केन्द्र रहा । उस नगर में विभिन्न समुदायों एवं देशों के लोग रहते हैं ।

इन समाजशास्त्रियों का कहना है कि एशियाई बेराजगारी एवं गरीबी में रहते हुए भी सन्तुष्ट हैं । इनमें अपराध दर न्यून है । अपने निष्कर्षों में इन्होंने कहा कि 'इसका कारण है कि एशियाई व्यक्तियों का सुदृढ़ स्नेह एवं आत्मीयता से युक्त पारिवारिक सम्बन्ध ।'

टूटते हुए पारिवारिक जीवन के प्रति पाश्चात्य जगत के मूर्धन्य विद्वानों ने अपनी चिन्ता व्यक्त की है और चेतावनी दी है कि समाज एवं राष्ट्र के मेरुदण्ड परिवार संस्था की उपेक्षा की गई तो इसके भयानक परिणाम होंगे । सन् १९७४ के नोवेल पुरस्कार विजेता तथा १९७७ के लेनिन पुरस्कार से सम्मानित 'आयरिश' राजनेता एवं न्याय शास्त्री डा० सीन मैक ब्राइडका ने एक सम्मेलन में कहा कि "परिवार संस्था समाज की महत्वपूर्ण इकाई है" सदस्यों का विकास एवं भावी पीढ़ी के नवनिर्माण में स्नेह एवं आत्मीयता से युक्त सुदृढ़ परिवार संस्था ही समर्थ हो सकती है । विवाह विच्छेद की तीव्रगति से बढ़ती हुई प्रवृत्ति इस बात की परिचायक है कि समाज के इस मेरुदण्ड को विकसित करने एवं सुदृढ़ बनाने की उपेक्षा हो रही है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जिन देश समाजों में अभी तलाक का प्रचलन उतना नहीं हुआ है वहाँ विवशता के घेरे में जकड़े हुए परिवार किसी प्रकार चलते तो रहते हैं पर उनकी घुटन वस्तुत: विच्छेद से भी अधिक कष्टकारक है । वहाँ हत्याओं और आत्महत्याओं का बढ़ता हुआ दौर-दौरा प्रधानतया गृह कलह पर ही आधारित होता है । शत्रुता और घृणा की स्थिति में मित्रता एवं सहयोग की विडम्बना कितनी अजीव और कितनी विकृत होती है इसे भुक्तभोगी ही जानते हैं ।

तलाकों की बढ़ती हुई संख्या बताती है कि दाम्पत्ति जीवन के मूलभूत आधार लड़खड़ा रहे हैं और परिवार संगठन के पीछे जो कर्त्तव्य अधिकार के, सहकार सौजन्य के-सहिष्णुता सद्भावना के आधार सन्निहित रहने चाहिए, उनके अभाव में ही वे विसंगतियाँ उभरती हैं । उनके कारण परिवार संस्था जैसी मनुष्य जीवन की उच्चस्तरीय आवश्यकता पर कुठाराघात होता चला जाता है । विलास को प्रधान मानकर आरम्भ होने वाले वर्तमान विवाहों की जो असफलता एवं दुर्गति दृष्टिगोचर हो रही है उसमें सुधार होने के लिए कानूनी प्रतिबन्ध एवं सामाजिक अनुबन्ध काफी नहीं । इस समस्या का समाधान तो इस धर्म धारणा को अन्तराल की गहराई में उतारने से ही सम्भव हो सकता है जिसे पतिव्रत धर्म, पत्नीव्रत धर्म कहते हैं ।

पारिवारिक परम्पराएँ विघटित न हों

पारिवारिक आदर्शों के विघटन का क्रम जब शुरू हो गया था और इन्द्रियभोग प्रधान सभ्यता की ओर जब अधिकांश शिक्षित, साक्षर, अस्वाभाविक आकर्षण का अनुभव करने लगे थे, सूक्ष्मदृष्टाओं ने उसी समय यह चेतावनियाँ बार-बार दी थीं कि इससे परिवार व्यवस्था में आ घुसी विकृतियों का विकल्प तो मिलेगा नहीं, उलटे नयी-नयी विकृतियाँ और उठ खड़ी होंगी और पहले से ही अस्त-व्यस्त सामाजिक जीवन में अराजकता फैल जायेगी ।

आज वह स्थिति सामने है । चारों ओर बलात्कार, महिलाओं से दुर्व्यवहार, छीना-झपटी आदि की हृदय विदारक लज्जाजनक घटनायें भयानक रूप से तेजी से फैल रही हैं । अब इनका विस्तार इतना अधिक हो गया है कि इन दिनों समाचार पत्रों, रेडियो और दूरदर्शन में भी इस समस्या पर चर्चाएँ, विचार-विमर्श, विश्लेषण, निदान का क्रम चल पड़ा है । इस सन्दर्भ में सामाजिक ही नहीं, कानूनी स्थिति को और अधिक स्पष्ट तथा समर्थ बनाने एवं न्यायालयों द्वारा भी अधिक संवेदनशील तथा तथ्यपरक दृष्टिकोण अपनाने पर बल दिया जा रहा है ।

पर इसके साथ ही एक अधिक महत्वपूर्ण पक्ष की उपेक्षा की जा रही है । समाज के भीतर भी जागृति और चेतना की नई हिलोरें उठें जो दुष्प्रवृत्तियों के प्रति तिरस्कार ही नहीं, प्रखर प्रतिकार के लिए आगे बढ़ें, इस प्रयास का महत्व अभी भली-भाँति नहीं समझा गया है । यों चर्चायें तो छुट-पुट होती रहती हैं पर चर्चा से चरित्र का कोई अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है । इसलिए मात्र चर्चाओं से बात बनेगी नहीं ।

कानून में आवश्यक सुधार राज्य शासन का कार्य है । वह तो चलना ही चाहिए और चलेगा भी । पर यह तथ्य भी भूलना नहीं चाहिए कि जो कानून बने हैं, वे भी कम शक्तिशाली नहीं हैं । बाल विवाह तथा दहेज प्रथा रोकने के कानून कब के बन चुके हैं । तो भी नारी को खरीद-फरोख्त के योग्य अथवा अनिवार्यत: शासित बनाकर रखने के योग्य मानने की हीन प्रवृत्ति से उत्पन्न ये कुप्रथायें पर्याप्त रूप से कम नहीं हुई हैं । पूरी तरह रुकने का स्वप्न तो अभी साकार होना दूर ही है । इस विषय में न तो नारियों में ही पर्याप्त जाग्रति आयी है, न ही समाज में ।

कानून तो न जाने कब से बने हैं, पर उनका लक्ष्य अभी भी अप्राप्य है । दहेज निषेध अधिनियम १९६९ अपने उद्देश्य की सिद्धि में सर्वथा असफल ही घोषित रहा है । आज देश में इस सम्बन्ध में कोई सामाजिक चेतना आ गई हो इसका भी कोई प्रमाण नहीं मिलता । आज का शिक्षित युवावर्ग इस कुप्रथा के प्रति न केवल उदासीन है वरन् उसने इस दहेज प्रथा को बड़ी निर्लज्जता के साथ और बढ़ाया है । अधिनियम की नीतियों को कड़ाई से लागू किया जाय तो जनमत को और अधिक अच्छी तरह से जाग्रत व शिक्षित किया जा सकता है । इस सम्बन्ध में राज्य-व्यवस्था को तो आवश्यक कदम उठाने ही चाहिए, क्योंकि इन कानूनों का पालन न हो पाना मानो राज्य की शक्ति तथा व्यवस्था को ही चुनौती देना है । सरकार यदि चाहे तो इस सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण कदम उठा सकती है कि वह दहेज लेना या देना सरकारी कर्मचारियों की आचार नियमावली के विरुद्ध घोषित कर दे । पहले भी द्विविवाहों को रोकने के लिए इस प्रकार का कदम उठाया गया था । दहेज के सन्दर्भ में भी यह बात उसी प्रकार लागू की जा सकती है । इससे भी वातावरण के निर्माण में कुछ सहायता मिलेगी । यद्यपि सरकारी कर्मचारियों की अपनी साठगाँठ इस कानून को निष्क्रिय तथा निष्प्रभावी बना दे सकती है तो भी ऐसा कानून बन जाने से उनमें एक भय तो पैदा हो जायेगा ।

एक दूसरा आवश्यक कदम यह है कि दहेज अधिनियम के अन्तर्गत अपराधों को दण्डनीय बनाना चाहिए, क्योंकि अपराध को अदण्डनीय बनाने की नीति से अधिनियम का जो प्रयोजन था, जो उद्देश्य था वह निरर्थक ही सिद्ध हो गया । कानून को दण्डनीय यानी पुलिस हस्तक्षेप के योग्य बना दिये जाने पर जागरूक नागरिक दहेज के विरुद्ध पुलिस कार्यवाही पर बल दे सकते हैं । यद्यपि यह समस्या तब भी बनी रहेगी कि कितने लोग इस दिशा में आगे बढ़कर पुलिस में रिपोर्ट लिखाने, गवाहियाँ देने और इस प्रकार खुला विरोध करने के लिए आगे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आयेंगे । यानी कानून बन जाने के साथ ही सामाजिक तत्परता में भी बल आने की व्यवस्था बनाई जानी जरूरी है ।

मौजूदा विधान में एक बहुत बड़ी त्रुटि यह है कि भेंट के नाम से कोई भी चीज वर-पक्ष को दी जा सकती है । अत: ऐसी हर भेंट जो ५००) रु० से ज्यादा हो अथवा जिसके द्वारा अपने वित्तीय दायित्व को कम करने में वर समर्थ होता हो, दण्डनीय घोषित की जा सकती है । अनेक महिला संगठनों को इस सम्बन्ध में मिल-जुलकर माँग उठाने तथा दबाव बढ़ाने की आवश्यकता है ।

आज दहेज को बड़ी उमंग के साथ प्रदर्शित किया जाता है मानो वह वर के कीमती टिकाऊ माल होने का कोई शानदार रिकार्ड हो । इस विचित्र प्रवृत्ति पर भी रोक जरूरी है क्योंकि दहेज को प्रदर्शित करने की इस परम्परा से दहेज प्रथा को बढ़ावा ही मिलता है । देखा-देखी फिर दूसरे भी ऐसा करते हैं । बल्कि देखा यहाँ तक गया है कि लोग फिर छिपे-छिपे दहेज के नाम पर दी जाने वाली राशि भी वर पक्ष को खुले आम नि:संकोच दे देते हैं । इसीलिए अपने देश में भी पश्चिमी पाकिस्तान के दहेज (प्रदर्शन-निषेध) अधिनियम १९६७ की ही तरह से एक कानून बनाना चाहिए जिस में विवाह के समय अथवा उसके तुरन्त पहले या बाद में भेंट की गई वस्तुओं के प्रदर्शन पर दण्ड दिया जा सके ।

संशोधित दहेज निषेध अधिनियम के प्रभाव का प्रति पाँच वर्ष बाद मूल्यांकन किया जाना चाहिए । साथ ही अगला कदम यह भी उठाना चाहिए कि वधू को दी जाने वाली भेटों की भी एक अधिकतम सीमा लागू कर दी जानी चाहिए । कारण यह है कि आजकल पढ़ी-लिखी लड़कियाँ भी अपने लिए स्वयं ही माता-पिता से भेंट की माँग करने लगती हैं । इससे भी दहेज प्रथा को प्रोत्साहन तो मिलता ही है भले ही प्रयोजन और उद्देश्य भिन्न ही क्यों न हों । स्पष्टत: कुप्रथायें अधिक विकृत रूप ले रही हैं ।

नारियों की ये असमर्थतायें और समस्यायें मूलत: समाज विनिर्मित हैं, कानून विनिर्मित नहीं । स्थापित सामाजिक, सांस्कृतिक प्रथाओं से उद्भूत नारियों का अध्ययन करने से पता चलता है कि आज भी बहुसंख्यक महिलायें संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों व अवसरों का उपयोग नहीं कर पा रही हैं । क्षेत्रीय भाषाओं की पत्र-पत्रिकाओं का वस्तुपरक विश्लेषण करने पर यह पीड़ाजनक निष्कर्ष निकलता है कि स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान महिलाओं और उनकी समस्याओं के सम्बन्ध में जो आग पैदा हुई थी यह पिछली दो शताब्दि में कम होती गई है । आज भी दहेज जैसी प्रथाओं का अधिकाधिक प्रसार इस बात की ओर संकेत देता है कि महिलाओं की स्थिति और भी गिरती जा रही है । खुद शिक्षित महिलाओं द्वारा अपने माता-पिता पर दबाव डालकर भेंट लेने की कोशिश करना उनकी गिरी हुई स्थिति का ही एक और प्रमाण है । स्पष्ट है कि ऐसी भेंटों के द्वारा वे या तो अपने ससुराल में अपना दबदबा बढ़ाना चाहती हैं या फिर किसी घरेलू उपकरण की कमी की पूर्ति करना चाहती हैं । दोनों ही स्थितियाँ एक ही तथ्य की ओर संकेत करती हैं कि अब भावनाओं का महत्व और भी कम हो गया है तथा भोग उपकरण का महत्व बढ़ गया है ।

इसीलिए अब समस्या को टुकड़ों में बाँटकर देखने की बजाय उन्हें समग्रता के साथ देखना आवश्यक है । समस्या की वास्तविक जड़ सामाजिक भावनाओं और सामाजिक संस्थाओं के ढाँचे की विकृतियों में छिपी हैं । सामाजिक भावनाओं और संस्थाओं में बहुत तेजी से न तो परिवर्तन ही हो सकते हैं और न विकास ही । अत: परिवर्तन की या विकास की इस प्रक्रिया को गतिशील बनाये रखने के लिए कोई ठोस योजनाबद्ध षड़यन्त्र करने पड़ेंगे । इस कार्य को आगे बढ़ाने के लिए इसकी जिम्मेदारी उस राज्य और समाज दोनों को वहन करनी पड़ेगी जो महिलाओं की समानता पर सचमुच विश्वास करता है । इस सम्बन्ध में सामुदायिक संगठन विशेषकर महिला संगठन, बहु-विवाह, दहेज प्रथा, विवाह पर अनावश्यक खर्च और बाल-विवाह आदि कुप्रथाओं के विरुद्ध जनमत तैयार करने एवं महिलाओं में उनके अपने कानूनी अधिकारों के प्रति चेतना जागृत करने के लिए प्रसार आन्दोलन शुरू करने का काम कर सकते हैं ।

इन्द्रियभोगों की प्रधानता देने वाली सभ्यता हमारी संवेदनायें सोख लेती हैं और मानवीय मूल्य नष्ट कर डालती हैं । खर्चीली शादियाँ हमें बेईमान और दरिद्र बनाती हैं । लड़के-लड़कियों का बिकना किसी भी समाज के लिए कलंक है । ये तथा इसी तरह के अन्य विचारों को समाज में फैलाने और जड़ें जमाने की जिम्मेदारी जाग्रत महिला संगठनों और सामाजिक संगठनों को उठानी चाहिए । महिला जाग्रति अभियान तथा युग निर्माण परिवार के परिजन इसी दिशा में प्रयासरत हैं ।

हम पारिवारिक संवेदना खो ही देंगे क्या ?

अमुक व्यक्ति ने आत्म-हत्या कर ली, भाई द्वारा भाई की हत्या कर दी गयी, कपड़ों में मिट्टी का तेल छिड़क कर पत्नी ने खुदकुशी कर ली, महिला बच्चों समेत कुएँ में कूदी, बहू की हत्या के जुर्म में पति, सास व देवर को आजीवन कारावास-ऐसी घटनाएँ आये दिन समाचार पत्रों में प्रकाशित होती रहती हैं । शायद ही कोई ऐसा दिन होगा जिस दिन परिवारों में कलह, हिंसा, मारपीट आदि के समाचार न मिलते हों । यह समाचार एक ओर उस पतन के द्योतक हैं जिससे आज का समाज बुरी तरह ग्रस्त होता चला जा रहा है । दूसरी ओर वे इस तथ्य के प्रमाण भी हैं कि हमारा पारिवारिक स्नेह, आत्मीयता और सौमनस्य किस तरह पीड़ा और पतन का प्रतीक बन गया है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

इस युग में ऐसे परिवारों की संख्या बहुत कम ही होगी जिसमें स्नेह-सौजन्य एवं सहयोगरूपी अमृत की धारा बहती हो । घर-घर में प्रत्येक सदस्य के बीच क्लेश-कलह, ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य तथा मनोमालिन्य की भावनाएँ दृष्टिगोचर होती हैं । परिवार में पति-पत्नी, पिता-पुत्र, भाई-भाई, सास-बहू के मध्य जो प्यार और कर्त्तव्य-भावना होनी चाहिए, उसकी सभी उपेक्षा करते दिखाई देते हैं ।

परिवार की इन असह्य विकृतियों के कारण लोग पारिवारिक जीवन से ऊबे, शोक-सन्ताप में डूबे अपने भाग्य को कोसते नजर आते हैं । ऐसे कलुषित एवं कलह पूर्ण पारिवारिक जीवन में सुधार लाने के लिए आवश्यक है कि उसमें स्नेह, ममता, सौहार्द्र, उदारता इत्यादि दैवी गुणों के बीज बोये जायें और उसे सुव्यवस्थित बनाया जाये, क्योंकि व्यवस्थाक्रम में गड़बड़ी होने पर ही मनोमालिन्य, असन्तोष तथा लड़ाई-झगड़ों की शाखाएँ फूटने लगती हैं । परिणामस्वरूप उस वातावरण में सुख-समृद्धि, उन्नति का मार्ग अवरुद्ध होता चला जाता है ।

इन्हीं परिस्थितियों के उत्पन्न होने के कारण ही गृहस्थ जीवन की कोई दिशा निर्धारित नहीं होती । चलने से पूर्व यदि अपने गन्तव्य स्थान का निर्धारण कर लिया जाय तो मंजिल तक पहुँचने में किसी प्रकार की कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता । इसी प्रकार पारिवारिक जीवन प्रारम्भ करने से पहले उसका आयोजन समझ लिया जाय और उसके अनुरूप ही चला जाय तो ही उत्पन्न होने वाली विकृतियों का निराकरण और सद्भावपूर्ण परिस्थितियों का उभार सम्भव है ।

अतः गृहस्थ बसाने से पूर्व उसका अर्थ एवं उद्देश्य भली प्रकार समझ लेना प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है । मूलतः गृहस्थ का अर्थ परिवार में एक दूसरे के प्रति आत्मीयता और संवेदना के भावों का होता है । भारतीय संस्कृति में पारिवारिक जीवन का एक निश्चित एवं श्रेष्ठ उद्देश्य रहा है । सुखी और समृद्ध जीवन के साथ-साथ सेवा, संवेदना, त्याग, उदारता आदि दैवी गुणों का विकास ही उसका मूल आधार है ।

इस दृष्टि से परिवार को सुविकसित करने में प्रत्येक सदस्य का सहयोग आवश्यक है । शरीर के विभिन्न महत्वपूर्ण अंगों में से कोई अंग कट जाय, लकवा लग जाय अथवा क्षत-विक्षत होकर विकृत हो जाय तो शरीर का सब सौन्दर्य नष्ट हो जाता है । ठीक इसी प्रकार यदि परिवार के सभी सदस्य उसे समुन्नत बनाने के लिए मिल-जुलकर काम करते हैं तो वहाँ सुख-शान्ति का स्वर्गीय वातावरण छाया रहता है । कटुता, मन-मुटाव की स्थिति कभी उत्पन्न नहीं होती । इसके विपरीत यदि सब अपने ही स्वार्थों की पूर्ति करने में लगे रहें, एक दूसरे के प्रति सहयोग, त्याग की भावना न रखें तो पूरे परिवार रूपी शरीर का ढाँचा लड़खड़ाने लगेगा । अतः परिवार को स्वर्गीय बनाने के लिए आवश्यक है कि उसका प्रत्येक सदस्य कर्त्तव्यों को समझकर अपनी भागीदारी निभाये ।

प्रायः लोग अपने कुटुम्ब को सुख शान्तिमय बनाने, उसका भविष्य उज्ज्वल बनाने में आर्थिक दृष्टिकोण को प्रमुखता देते हैं । वे सोचते हैं कि यदि मनुष्य की प्रत्येक आवश्यकता एवं इच्छा बिना आर्थिक कठिनाई के पूरी हो जाय तो असंतोष का प्रश्न ही नहीं उठता । ऐसे परिवारों में सभी शान्त, सुखी जीवन बिताते हुए अवश्य मिल-जुलकर रहेंगे पर यह धारणा पूर्ण रूप से सत्य नहीं है ।

गृहस्थ जीवन को प्रसन्नता से भरा-पूरा बनाने के लिए अर्थ महत्वपूर्ण तो है पर वह परिपूर्ण नहीं है । यदि अर्थ की ही महत्ता होती तो आज सम्पन्न परिवारों में कलह और अशान्ति की छाया न दिखाई देती । प्रायः देखा जाता है कि अमीर घरों में प्रचुर मात्रा में धन-सम्पत्ति होते हुए भी नारकीय वातावरण बना रहता है । घर की महिलाओं में भी परस्पर मधुर व्यवहार नहीं दिखाई देता । इसके अतिरिक्त हर क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए सब साधन उपलब्ध होते हुए कितने ही धनवान व्यक्ति पारिवारिक जीवन में नारकीय कष्ट भोगते रहते हैं ।

इसके विपरीत गरीब परिवारों में शान्ति एवं संगठन पाया जाता है । सभी आपस में एक-दूसरे का दुःख-दर्द समझते हुए सहायता करने को तत्पर रहते हैं । इस प्रकार धन का अभाव रहने पर भी स्वर्गीय आनन्द की प्राप्ति की जा सकती है और प्रगति-पथ पर बढ़ा जा सकता है । ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, नेपोलियन बोनापार्ट, स्वामी रामतीर्थ, अब्राहम लिंकन जैसे संसार में कितने ही महान् व्यक्ति हुए हैं जिन्होंने गरीब परिवार में जन्म लेकर भी अपने पुरुषार्थ के आधार पर सफलता के उच्च शिखर को प्राप्त किया है और विश्व में अपना नाम अमर कर गये हैं ।

वस्तुतः सुख-शान्ति तो मनुष्यों के गुण, कर्म, स्वभाव पर निर्भर करती है । जिनके पास सद्गुणों की सम्पत्ति है वे ही अमीर हैं । ऐसे व्यक्ति हर जगह अपने मित्र एवं सहयोगी तैयार कर लेते हैं । पारिवारिक जीवन की तो आधारशिला ही यह है कि सब कुछ खोकर भी परस्पर स्नेह-संवेदना नष्ट न हो ।

परिवार को सुखी एवं समुन्नत बनाने के लिए केवल आर्थिक सम्पन्नता नहीं, भावनात्मक उत्कृष्टता का होना अत्यावश्यक है । मूलतः यही उसका प्राण है । भावनात्मक उत्कृष्टता का अर्थ है-परिवार के सदस्यों के बीच अटूट आत्मीयता का भाव । इसके विकास से ही परिवार में उन सशक्त स्नेह-सम्बन्धों का निर्माण होता है जिनमें बँधकर परिजन कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी टूटकर बिखरते नहीं हैं वरन् एक दूसरे की सहायता करते हुए आनन्दमय जीवन व्यतीत करते हैं । जहाँ भावनात्मक स्तर-हीन होता है वहाँ साधारण सी घटनाएँ भी ईर्ष्या, द्वेष, जैसे फूट डालने वाले विष-बीज बो देंगी । कठोरता और अनुदारता के वातावरण में रहकर परिवार का प्रगति की दिशा में बढ़ पाना असम्भव है । परिवार के सदस्यों के बीच कोमल संवेदनाओं का आदान-प्रदान ही उसकी सार्थकता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गृहस्थ को योग-साधना कहा गया है । परिवार के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए गृहस्थ योग की साधना करनी होती है अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रति कठोरता बरते, एकाग्रता, नियमितता, भावनाशीलता इत्यादि गुण अपने में विकसित करे और दूसरे के प्रति स्नेह, आत्मीयता, उदारता, कष्टसहिष्णुता, प्रसन्नता, सहयोग के भाव रखे । परिवार एक प्रयोगशाला है जिसमें परस्पर सहयोग, सद्भावना और त्याग परमावश्यक है ।

हमारा यह शरीर विभिन्न अंगों से मिलकर बना है । जो मनुष्य अपने जीवनकाल में इस शरीर की उपेक्षा करता है, वह अन्त में रोग-ग्रस्त होकर नारकीय जीवन बिताते हुए मृत्यु को प्राप्त करता है । शरीर का विकसित रूप ही परिवार है । अनेक सदस्यों से मिलकर एक परिवार बनता है । इसे स्वस्थ रखना भी हमारा कर्तव्य है । शरीर की ही भाँति परिवार के प्रति अपने कर्त्तव्यों, उत्तरदायित्वों को भुला देने से और अपना दृष्टिकोण सही न रखने से हमारा यह कुटुम्ब शरीर रोगग्रस्त हो जाता है । जिस प्रकार विभिन्न प्रकार की औषधियों द्वारा शारीरिक स्वास्थ्य सुधारा जा सकता है उसी प्रकार पारिवारिक स्वास्थ्य का सुधार भी सम्भव है, किन्तु इसके लिए सद्गुणों और सद्भावनाओं रूपी औषधियों की आवश्यकता होती है । शरीर के प्रत्येक अंग के समुचित विकसित होने से शारीरिक सुख मिलता है । पारिवारिक जीवन की सुख-सुविधा के लिये उसके सब अंगों का स्वस्थ, स्वच्छ, संतुलित और सुविकसित होना आवश्यक है ।

बिखरते परिवार–बिलखते मासूम

भौतिकवादी सभ्यता से मनुष्य जीवन का प्रत्येक पक्ष प्रभावित हुआ है । उसके रहन-सहन, व्यवहार, विचार एवं क्रियाकलाप में कोई भी पक्ष ऐसा नहीं है जो उसके प्रभावों से अछूता बचा हो । प्रत्यक्ष उपलब्धियों को इन दिनों सर्वाधिक मान्यता मिली है । इसका एक लाभ साधन सम्पन्नता के रूप में तो करतलगत हुआ है, किन्तु मान्यता भौतिक तत्वों को मिलने से मनुष्य के जीवन दर्शन की सुदृढ़ नींव ही डगमगा गयी है ।

सर्वविदित है कि विचारों एवं भावनाओं की उत्कृष्टता ही वह आधार है जिस पर व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामाजिक सन्तुलन और सुव्यवस्था अवलम्बित है, श्रेष्ठ जीवनदर्शन की यह आधारशिला है । जीवन दर्शन भी भौतिकवादी तत्वों का पक्षधर बन जाय तो व्यक्ति एवं समाज का अध:पतन सुनिश्चित है । भौतिक प्रगति एवं समुन्नति से जिस सुख-शांति की कल्पना की गयी थी वह कभी पूरी नहीं हो सकती ।

एकांगी भौतिकवादी जीवन-दर्शन से मानवी-मूल्यों का बुरी तरह अवमूल्यन हुआ है । परिवार सदियों से व्यक्ति एवं समाज के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी रहा है जिसने मनुष्य के शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक विकास में असाधारण भूमिका निभाई है । परिवार की छत्रछाया में पलकर, स्नेह एवं आत्मीयता पाकर ही मनुष्य आदिम स्थिति से वर्तमान एवं सुसंस्कृत स्थिति में पहुँच सका है । यह श्रेय मुख्यतया परिवार को ही है । यह पवित्र एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्था भी एकांगी भौतिकवादी जीवन दर्शन के कुप्रभावों से अप्रभावित नहीं रह सकी है ।

भावनात्मक तत्वों के शुष्क पड़ जाने एवं चिन्तन में निकृष्टता समावेशित हो जाने से परिवार के प्रमुख घटक पति-पत्नी के बीच अनुदारता के तत्व बढ़ते जा रहे हैं । ज्ञातव्य है कि परिवाररूपी गाड़ी के ये ही दो पहिये हैं । पहियों के क्षत-विक्षत होने पर परिवार का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायेगा । जो रिश्ते त्याग-बलिदान एवं उदात्त भाव संवेदनाओं का अवलम्बन पाकर सुदृढ़ बने रहते हैं आज उनके अभाव में टूटते जा रहे हैं ।

परिवार में भावनात्मक अवमूल्यन का एक अभिशाप प्रस्तुत हुआ है–बिखरते हुए परिवारों-तलाक की बढ़ती हुई घटनाओं के रूप में । छोटे-मोटे मतभेदों, मनमुटाव से उद्विग्न होकर परस्पर एक-दूसरे से छुट्टी पा लेने का यह कानूनी तरीका सुलभ तो जान पड़ता है, किन्तु उससे होने वाली व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक एवं नैतिक हानियों का लेखा-जोखा लिया जाय तो स्पष्ट होगा कि यह सुगम तरीका कितनी अधिक हानि पहुँचा जाता है । सामाजिक एवं नैतिक परोक्ष हानियों को यहाँ छोड़ दिया जाय तो भी अपने ही से जुड़े मासूमों को जो शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक यंत्रणा सहनी पड़ती है, वह भी इतनी पीड़ा दायक है कि हर सहृदय व्यक्ति को विरोध के लिए बाध्य करती और प्रेरणा देती है कि अपने लिए न सही, कम से कम इन मासूमों के लिए तो ऐसे कदम न उठायें ।

एकांगी भौतिक सभ्यता के साथ यह अभिशाप सर्वाधिक जुड़ा हुआ है । अमेरिका जैसा देश सम्पन्नता की दृष्टि से सबसे अधिक विकसित कहा जाता है, तलाक के क्षेत्र में भी अग्रणी है । पिछले दिनों अमेरिका के एक साप्ताहिक पत्र में हृदय विदारक आँकड़े प्रस्तुत हुए हैं–

अमेरिका में जन्म लेने वाले बच्चों में से प्रतिवर्ष लगभग ४५ प्रतिशत बच्चे तलाकशुदा माता-पिता की सन्तान होते हैं । वयस्क होने से पूर्व ही उन्हें माता या पिता किसी एक से वंचित हो जाना पड़ता है । इन दिनों एक करोड़ दस लाख से अधिक बच्चे ऐसे हैं जिनके माँ बाप तलाक ले चुके हैं । अनुमान है कि इस प्रकार परिवार टूटने से लगभग दस लाख की संख्या में ऐसे बच्चे प्रतिवर्ष बढ़ते जायेंगे ।

न्यू हेवन, कनेक्टिकट के 'मेल चाइल्ड स्टडी सेन्टर' के डायरेक्टर अलबर्ट जे० सोल्नित ने बहुत वर्ष पहले ही कहा था "इस शताब्दी के आठवें दशक में बच्चों को जिस मानसिक संकट का सामना करना पड़ रहा है, तलाक उसका मुख्य कारण है ।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पाश्चात्य देशों में तलाक भले ही आम बात बन गयी हो लेकिन बच्चों पर इसकी बहुत बुरी प्रतिक्रिया होती है । विशेषज्ञों का कहना है कि तलाक की सूचना चाहे जितनी सावधानी से दी जाय, उससे हर बच्चे को असहनीय आघात लगता है । ऐसे बच्चे हठी हो जाते हैं । बात-बात पर क्रोध करने लगते हैं । ये बच्चे अपने तज दिये जाने और प्रेम से वंचित होने के भय से भी पीड़ित रहते हैं । कई बार बच्चों के मन में यह बात गहराई से जम जाती है कि माँ या बाप दोनों में से एक व्यक्ति ही तलाक के लिए जिम्मेदार है । जिसके प्रति उनका अविश्वास हो जाता है, उसके प्रति मन ही मन घृणा की भावना पनपने लगती है ।

आयोबा स्थित चाइल्ड गाइडेंस सेन्टर के प्रधान मनोवैज्ञानिक जॉन टेडेस्को का कहना है "ये बच्चे बड़े हो जाने के कारण इतना तो समझ जाते हैं कि क्या हो रहा है लेकिन उन्हें इस अवस्था में स्थिति को सम्हालने की जानकारी नहीं होती ।" कम उम्र के बच्चों को ऐसी स्थिति में गहरा सदमा पहुँचता है । बच्चों की सदा आकांक्षा रहती है कि वे किसी तरह माँ-बाप में फिर से मेल करा दें ।

तलाक के परिणामस्वरूप पारिवारिक विघटन के साथ आर्थिक दबाव भी पड़ता है । मुकद्दमेबाजी का खर्च, दो-दो घरों की पृथक व्यवस्था हो जाने से आर्थिक असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है । सैंसर ब्यूरो की नवीनतम सूचना के अनुसार तलाक शुदा, परित्यक्ता, पुनर्विवाहित अथवा अविवाहित रहने वाली माताओं में से केवल २५% को ही बच्चों का खर्च मिलता है । अर्थाभाव में शेष बच्चे दीन-हीन, अनाथों जैसा जीवन बिताते हैं ।

जिन बच्चों को अधिकार में लेने के लिए मुकदमे लड़े जाते हैं, उन बच्चों की तो और भी दयनीय दशा हो जाती है । माँ-बाप के साथ-साथ न्यायालय भी इन फैसलों को निबटाने में निरन्तर संघर्षरत रहते हैं । देश की न्यायिक शक्ति का अधिकांश भाग इसी में निकल जाता है । कई अभिभावक तो ऐसे होते हैं जो बच्चों को अपने संरक्षण में रखना भी नहीं चाहते । जिन बच्चों पर माँ-बाप का संयुक्त अधिकार हो जाता है तब बच्चों के लिए दो अलग-अलग घरों में माता-पिता के साथ निर्वाह करना बहुत कठिन और उलझाव वाला सिद्ध होता है ।

तलाक का आघात सहने के बाद बच्चों को सम्हालने में बहुत दिन लग जाते हैं, फिर भी वे सामान्य जीवनक्रम नहीं अपना पाते । अमेरिका की प्रसिद्ध समाजसेविका वोलर स्टीन और जॉन केलो ने विभिन्न परीक्षणों के उपरान्त निष्कर्ष निकाला है कि तलाक के बाद अधिकांश बच्चे सदा उदासीन बने रहते हैं । भावुक बच्चे इस आघात को भूल नहीं पाते । वे रह-रह कर तलाक से पहले के जीवन को याद करते और उसी के लिए तरसते हैं ।

टैपलवेथ के पादरी अर्ल ग्रोलमेन तलाक को मृत्यु से भी अधिक भयंकर मानते हैं । उनका कहना है "मृत्यु अन्त ले आती है, जीवन के साथ जुड़े सुख-दुःख भी समाप्त हो जाते हैं, लेकिन तलाक में अन्त होता ही नहीं, उसका नारकीय अभिशाप जीवनपर्यन्त जुड़ा रहता है ।

विश्व के प्रायः सभी देशों में तलाक ने पारिवारिक जीवन को बुरी तरह क्षत-विक्षत किया है । ब्रिटेन में भारी संख्या में ऐसे बच्चे हैं, जो अपने माता-पिता को जानते ही नहीं । वहाँ ९२०००० परिवार ऐसे हैं जिनमें बच्चों को माता या पिता दोनों में से किसी एक का संरक्षण प्राप्त है । इसके साथ ही प्रतिवर्ष ५०००० की संख्या में ऐसे अधूरे परिवार बढ़ जाते हैं । प्राप्त आँकड़ों के अनुसार आज ब्रिटेन में हर आठ परिवारों में से एक परिवार अधूरा है ।

केवल अमेरिका में तलाक के पश्चात् पुनर्विवाह हुए सौतेले माँ-बाप की संख्या लगभग ४० लाख है और २८ वर्ष से कम उम्र के अवयस्क सौतेले बच्चों की संख्या आठ लाख, पचास हजार है । तलाक के पश्चात् पुनर्विवाह इस आशा के साथ किया जाता है कि सम्भवतः अब का पारिवारिक जीवन अधिक सुखी रहेगा, लेकिन ऐसा होता नहीं । उसके परिणाम भी लगभग उतने ही भयंकर होते हैं जितने कि तलाक के कारण हुए थे । दाम्पत्य जीवन में विग्रह उत्पन्न तो होता है, परिवार के सौतेले सदस्यों के साथ भी सामन्जस्य स्थापित नहीं हो पाता ।

सौतेले परिवार में प्रवेश करने वाले बच्चों को दो बार भावनात्मक आघात सहना पड़ता है । पहली बार तब, जब अपने अभिभावक को तलाक लेने से रोक नहीं पाते और दूसरी बार तब जब वे दूसरी शादी रोकने में असफल रहते हैं ।

प्रसिद्ध विचारक आर्थर नौर्टन ने तलाक की समस्या पर गहराई से चिन्तन करने के उपरान्त कहा कि "तलाक के कारण परिवार में अस्थिरता आ जाने से सामाजिक परम्पराएँ भी दोषपूर्ण हो जायेंगी, यह समय ही बतायेगा । क्योंकि पारिवारिक परम्पराओं के माध्यम से ही सामाजिक मान्यताएँ बनती हैं ।"

विश्व के मूर्धन्य समाजशास्त्री एवं मनोवैज्ञानिक इस तथ्य को स्वीकार करने लगे हैं कि तलाक पारस्परिक विग्रहों, मतभेदों का समाधान नहीं है । तलाक से एक तात्कालिक समस्या से छुटकारा पा लिया जाय तो भी अनेक प्रकार की नई समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं । ऐसे व्यक्ति जीवन पर्यन्त दूसरों का विश्वास अर्जित नहीं कर पाते, अविश्वस्त ही बने रहते हैं । बच्चों का भविष्य सदा के लिए अन्धकारमय हो जाता है । सर्वविदित है कि बच्चे का व्यक्तित्व माता-पिता के सम्मिलित प्रयास प्यार-दुलार पाकर बनता विकसित होता है । माता-पिता में से एक के भी अलग हो जाने से उनके ऊपर गहरा आघात पहुँचता है । मन-मस्तिष्क के कोमल तन्तु इस योग्य नहीं होते कि इस प्रचण्ड आघात को सहन कर सकें । फलतः वे टूट से

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाते हैं । स्नेह-प्यार के अभाव से हृदय में जो खाई पड़ जाती है वह कभी नहीं पटती, सदा बनी रहती है । व्यक्तित्व मनोविज्ञान के क्षेत्र में एक नवीन तथ्य उजागर हुआ है कि माता-पिता के स्नेह से वंचित रहने वाले बच्चों का समुचित विकास नहीं हो पाता,भले ही उनके स्वास्थ्य, शिक्षा आदि की सन्तुलित व्यवस्था क्यों न जुटा दी जाय । बाल-अपराध की घटनाओं के आँकड़ों में भी ऐसे ही बच्चों की संख्या सबसे अधिक पायी जाती है जो बचपन में माता-पिता की स्नेह छत्र-छाया से वंचित बने रहे हैं ।

सभी देशों में यह प्रवृत्ति दिनोंदिन बढ़ती जा रही है । अमेरिका, ब्रिटेन का तो मात्र उदाहरण प्रस्तुत किया गया है । अन्यान्य विकसित राष्ट्रों की स्थिति भी विशेष अच्छी नहीं है । बढ़ती हुई इस मनोवृत्ति के अनेक सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक कारण बताये जाते हैं । एक सीमा तक वे कारण सही भी हो सकते हैं, किन्तु सबसे प्रमुख कारण है-एकांगी भौतिकवादी जीवन दर्शन को आश्रय देना, जिसमें वस्तुओं एवं तात्कालिक सुखों को ही महत्व दिया जाता है । बुद्धि भी इन्हीं की पक्षधर बनी रहती है । भाव संवेदना की उपेक्षा होने लगती है जिसे परिपोषित एवं विस्तृत करने के लिए तात्कालिक सुखों में कटौती करनी एवं स्वार्थों की बलि देनी पड़ती है । उल्लेखनीय है कि पति-पत्नी के रिश्ते भौतिक सुखोपभोग के बौद्धिक धरातल पर नहीं, भावनात्मक आधारों पर टिके होते हैं । जब सम्पूर्ण जीवन दर्शन ही उपयोगितावादी मान्यता से अनुप्राणित है तो भला पति-पत्नी के उपयोगितावादी रिश्ते ही क्यों कर अप्रभावित रहें । जहाँ एक दूसरे का मूल्यांकन उपयोगिता एवं प्रत्यक्ष लाभों के आधार पर किया जाने लगा तो भला भावना के सूक्ष्म संवेदनशील तन्तु अपनी सुरक्षा कहाँ तक कर पाते हैं और टूट जाते हैं । जिसकी परिणति परस्पर विग्रहों से बढ़कर तलाक के रूप में होती है ।

बिखरते हुए दाम्पत्य जीवन और टूटते हुए परिवारों की समस्या की रोकथाम कर सकना तभी सम्भव है जब ऐसे जीवन दर्शन को मान्यता मिले जो बुद्धि की तुलना में उदात्त भावनाओं को, त्याग बलिदान की सत्प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन दें । बुद्धि के साथ जुड़ा सद्भावसम्पन्न जीवन दर्शन ही प्रस्तुत संकट से छुटकारा दिला सकता है ।

वे अनुकरणीय नहीं,दयनीय हैं

भारतीय नव-दम्पत्तियों में आजकल पाश्चात्य परिवार प्रणाली की नकल करने की ललक उठने लगती है । किसी से कोई अच्छी बात सीखना सराहनीय है, किन्तु अविवेकपूर्ण ऊपरी रूप देखकर, भीतरी स्थिति का अध्ययन किए बिना किसी बात को अपना लेना बुद्धि की मन्दता अथवा मानसिक दासता का चिन्ह ही कहा जा सकता है ।

विदेशों में परिवार-व्यवस्था के साथ उच्च मूल्यों को नहीं जोड़ा गया । फलतः उनमें मौज-मजे की छूट विशेष रूप से दीखने लगी । यही आकर्षण का कारण बनी और बनती है । किन्तु यह तो उसका एक पहलू हुआ, दूसरा पहलू देखा जाय तो घोर निराशा ही हाथ लगती है । यह सस्ता आकर्षण दुःखद पारिवारिक अस्थिरता तथा भयंकर मानसिक घुटन का कारण बन गया । परिवार बसाने के श्रेष्ठ उद्देश्यों का निर्धारण न हो सकने से वह स्वार्थपरक ही हो गया और वह यौनाचार, मौज-मजा तथा आर्थिक सम्पन्नता से ही जुड़कर रह गया । अस्तु ,दूर से आकर्षक अनुकरणीय जैसा दीखने वाला उनका पारिवारिक जीवन अन्दर से जीर्ण-शीर्ण और दयनीय स्थिति में जा गिरा ।

जब घोषित उद्देश्य ही हीन स्तर का होता है, तो सामाजिक शक्तियाँ भी उसी दिशा में सक्रिय हो जाती हैं । व्यापारिक बुद्धि भी समाज में पतन और अश्लीलता की वृद्धि द्वारा तात्कालिक लाभ की योजना बनाने लगती है । रूपाकार ही जहाँ सब कुछ हो गया, रूप-सज्जा, केश-सज्जा, वस्त्राभूषण तथा घर की सजावट में दक्षता-मात्र पारिवारिक उत्कर्ष का पर्याय बन जाते हैं । ऐसा नहीं है कि सुव्यवस्थित परिवार में इनमें से एक की भी उपेक्षा होनी चाहिए । ये सभी आवश्यक हैं । पर ये स्वच्छ, सरल, सार्थक जीवन-क्रम की स्वाभाविक परिणतियाँ हैं । जहाँ इन्हें साध्य मान लिया गया है, वहाँ असन्तुलन और विकृति उभरने लगती है ।

जहाँ सुखोपभोग का आधार भौतिक वस्तुओं में ढूँढ़ा जाता है, वहाँ पत्नी यौन-तुष्टि और परिहास-विनोद की वस्तु बनकर रह जाती है । उसका रमणी, भोग्या और विनोदिनी रूप ही प्रधान हो जाता है । इस रूप के प्रतिष्ठित हो जाने पर पत्नी की गरिमा तो बचती नहीं, विशेषता भी नहीं शेष रह जाती । पाश्चात्य देशों में आज ऐसे नाइट क्लबों की भरमार है, जहाँ नारी शरीर का क्रय-विक्रय तक होता है ।

स्वेच्छाचारी जीवन वैसे भले ही आकर्षक लगे, किन्तु मनुष्य की नैतिक बुद्धि पर निरन्तर दबाव डालता है । इससे मानसिक विकृतियाँ पनपती हैं और जीवन में असन्तोष, कुण्ठा, हताशा एवं उलझनों की वृद्धि होती जाती है । संशय, अविश्वास, घुटन और अवसाद बढ़ते जाते हैं । परिवार का अर्थ; आमोद-विनोद और पैसे का अनुबन्ध हो जाता है । हृदय की कोमल भावनाओं का कहीं स्थान नहीं रहता है । वह प्रचण्ड काम-शक्ति जो गम्भीर तृप्ति एवं उपलब्धियों का आधार बन सकती थी, हल्के मनोरंजन तक ही पहुँच कर बिखरती, नष्ट होती रहती है ।

जब परिवार रमण-केन्द्र और विनोद-स्थली ही बन कर रह गये, तब उनसे कभी-कभी के तनाव से ही मुक्ति मिल सकती है, सुख-शान्ति मिल पाना तो असम्भव ही है ।

जहाँ परिवार भरपेट भोजन और स्वच्छन्द विहार का 'आपसी समझौता' (म्यूचुअल एग्रीमेण्ट) मात्र है, वहाँ दो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

ही बातों की उम्मीद की जा सकती है । भरपेट भोजन के बाद नींद की और स्वच्छन्द विहार के बाद थकान की । पर परिवार तो बसाया किसी बड़ी ही प्रत्याशा से जाता है । सघन आत्मीयता की वह प्रत्याशा कामावेग को केन्द्रीय वृत्ति बना डालने पर कभी भी पूरी नहीं हो पाती । तब तनाव, चिन्ता और विषाद बढ़ता है । नींद उचटने लगती है । नींद की गोलियाँ लेनी जरूरी हो जाती हैं । यही हैं, पश्चिमी देशों की यौन-केन्द्रित परिवार-व्यवस्था की उपलब्धियाँ जहाँ भरपेट भोजन के बावजूद गहरी नींद नहीं, निरन्तर अशान्ति, बेचैनी और तनाव ही मिलता है । स्वच्छन्द विहार की प्रवृत्ति थकान और असन्तुलन को जन्म देकर इस दुर्दशा को बढ़ाती ही जाती है ।

वस्तुतः परिवार की सार्थकता ही यह थी कि वह व्यक्ति की जहरीली संकीर्णता और तीक्ष्ण स्वार्थपरता को घिसता-चूसता था तथा उसे समरस बनाकर सहनशीलता, सन्तोष, सहयोग, सामाजिकता की, सेवा की भावनाएँ जगाकर समाज के लिए सहायक बनाता था । परिवार का द्वार सदा समाज की ओर खुलता है । जब उसका आधार प्रेम, त्याग और कर्त्तव्य-परायणता न रहकर एक दूसरे को खाते हुए जीने की घात लगाते रहना और छीनाझपटी की ताक में रहना ही हो गया तो फिर उसका परिणाम ऐसे नागरिकों के ही रूप में सामने आयेगा, जो एक-दूसरे को लील जाने की तैयारी कर रहे हों । जैसा खाद-पानी पौधे को मिलेगा, वृक्ष का ढाँचा वैसा ही तो होगा । व्यभिचार और इन्द्रियलिप्सा के लिए गठित परिवार संकीर्ण स्वार्थपरता के अतिरिक्त और कुछ यदि दे सकता है तो वह आत्मघात ही है । ऐसे परिवार तो स्वयं टूटेंगे ही, उन्हें टूटना ही चाहिए, अन्यथा वे व्यक्ति को ही तोड़ते जायेंगे, खोखला बनाते जायेंगे ।

पश्चिम में आए दिन होने वाले सम्बन्ध विच्छेद बच्चों को जिस दारुण कुण्ठा और मानसिक अव्यवस्था का शिकार बनाते हैं, वह भयावह है । आज जो आत्मीय पिता है, माँ के नये पति के आ जाने पर वे बिल्कुल पराये हो जाते हैं । मन में आत्मीयता की डोरी लहराती भी रहे, तो औद्योगिक जीवन की व्यस्तता में उसके जुड़ पाने का समय कहाँ ? पूर्व पिता अपनी नई पत्नी के साथ नवीन जीवन-क्रम के निर्धारण में ही इतना व्यस्त हो जाता है कि उसे अपनी पूर्व-पत्नी के बच्चों के समाचार भी जानने का अवकाश कभी-कभी ही मिल पाता है । अधिकांश तो ऐसे सभी सम्पर्क टूट ही जाते हैं । बच्चे के कोमल मन-मस्तिष्क पर बार-बार ऐसी भावनात्मक चोटें उसके स्वस्थ-विकास को अत्यधिक प्रभावित करती हैं, यह सभी जानते हैं । कई बार ऐसा भी होता है कि माँ नया घर बसाने पर बच्चे को पूर्वपति के पास ही छोड़ जाती है । वहाँ उन बच्चों को नई माँ के आने पर अनेक भावनात्मक जटिलताओं का सामना करना पड़ता है । नई माँ यदि सेवा, स्नेह, प्रेम, त्याग के संस्कारों से संचालित होती, तब तो बात भिन्न थी । जहाँ इन्द्रिय-लिप्सा और स्वच्छता ही परिवार का आधार है, वहाँ बच्चों के भावनात्मक विकास की किसे चिन्ता ? स्वयं जीवन का सुख-स्वाद लेने से फुर्सत मिले तब तो दूसरों के बच्चों पर ध्यान दें । सभ्यता की मर्यादाओं के अन्तर्गत बच्चों के प्रति औपचारिक जिम्मेदारियाँ तो अवश्य ही निभाई जाती हैं, पर आन्तरिक स्नेह के अभाव में बच्चों के मन का सूनापन कभी भी भर नहीं पाता ।

इस प्रकार पश्चिम के छोटे से परिवार भी अपने लिए भार बन गये हैं । माता-पिता से लेकर बच्चों तक सभी भावनात्मक दृष्टि से असन्तुष्ट, उद्विग्न जैसे दिखाई देते हैं । उनकी पूर्ति के लिए बच्चों के लिए स्कूलों में पढ़ाई के साथ स्नेहिल प्रकियाएँ जोड़ने की व्यवस्थाएँ की जा रही हैं, किन्तु उससे भी यह आत्मीयता भरे स्वाभाविक स्नेह की भूख शान्त नहीं होती । नर-नारी भी जीवन में उमंग उल्लास लाने के लिए अनेक खर्चीले प्रयोग करते हैं, किन्तु वह कृत्रिम साधन थोड़ी मलहमपट्टी भले ही कर लें, अधिक कारगर सिद्ध नहीं होने पाते । भावनात्मक अतृप्ति-जनक बुद्धिमत्ता का ताप असह्य होता जाता है ।

इस सबको देखकर वहाँ के पाश्चात्य विचारक पारिवारिक व्यवस्था में भारी परिवर्तन लाने के लिए चिंतन परीक्षण कर रहे हैं । ताकि विक्षोभ की भयंकर ज्वाला में जलते परिवारों को उस दयनीय स्थिति से उबारा जा सके । हम धन्यवाद दें-उन दृष्टा महामना ऋषियों को, जिन्होंने भारतीय परिवार-व्यवस्था में उच्च आध्यात्मिक लक्ष्यों को भी बड़ी खूबी से जोड़कर रखा । भारतीय परिवार-व्यवस्था को वर्तमान परिस्थितियों के अनुरूप उसमें थोड़ा सा परिवर्तन, परिमार्जन भर करके युगानुकूल आदर्श परिवार प्रणाली के रूप में प्रतिष्ठापित किया जा सकता है ।

पारिवारिक भावना की उपेक्षा न की जाये

भारतीय और पाश्चात्य समाज दोनों का अध्ययन विश्लेषण करने वाले समाजशास्त्रियों का यह सर्वसम्मत निष्कर्ष है कि भारतीय समाज पारिवारिक अधिक है, जबकि पश्चिमी समाज प्रधानतः व्यक्तिगत है ।

ऊपरी तौर पर पत्नी और बच्चों के मामले में, इन्हीं दिनों दोनों समाजों में जो कुछ साम्य दीखने लगा है उसका भी विवेचन किया गया है और पाया गया है कि अभी भी यह समानता मात्र ऊपरी है । भीतरी भिन्नता मुख्यतः दृष्टिकोण की है । दोनों समाजों की खामियाँ-कमियाँ भी इसी भिन्न दृष्टि के कारण अलग-अलग हैं और विशेषताएँ भी । बाहरी तौर पर देखना हो तो यह भिन्नता बच्चों के मामले में अधिक स्पष्टता से देखी समझी जा सकती है । अधिकांश भारतीय माता-पिता आर्थिक अभाव के कारण बच्चों के लिए समुचित साधन तो नहीं जुटा पाते, किन्तु सभी भारतीय माता-पिता बच्चों के प्रति समान रूप से सम्वेदनशील तथा आत्मीय होते हैं । पश्चिमी माँ-बाप

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आजीविका के बाद बचे समय का एक सीमित अंश ही बच्चों के लिए देते हैं । शेष समय वे अपनी रुचियों के कार्य के लिए देते हैं । भारतीय माता-पिता अपने ऐसे समय को अधिकांश बच्चों के साथ बिताते हैं, विशेषकर माँ तो बच्चों के लिए ही अपना सम्पूर्ण अतिरिक्त समय देती हैं । पश्चिमी माँ-पिता अपने उपार्जित धन का वह अंश जो दैनन्दिन व्यवस्था-संचालन हेतु आवश्यक व्यय के अतिरिक्त बचता है, अपनी रुचियों, साज-सँवार तथा अपने मनोविनोद में ही मुख्यतः लगाते हैं । भारतीय माता-पिता ऐसे धन को लगभग पूरी तरह बच्चों के लिए सुरक्षित रखने में ही जुटे रहते हैं । यह बात अलग है कि दहेज, खर्चीले विवाह तथा अन्य ऐसी ही सामाजिक कुरीतियों के कारण यह धन बच्चों के उत्कर्ष में लगने के स्थान पर व्यर्थ ही खर्च होता है । वह एक भिन्न विषय है । जहाँ तक दृष्टिकोण की बात है, माता-पिता अपनी सुख-शान्ति, विश्राम-विनोद, निजी रुचियाँ त्यागकर भी बच्चों के लिए ही साधन जुटाते हैं । अपने निजी कार्यक्रमों, भ्रमण, मनोरंजन आदि की व्यवस्था वे बच्चों की सुविधा के अनुसार बनाते हैं । जबकि पश्चिमी माँ-बाप अपने निजी कार्यक्रम अपनी सुविधा के अनुसार बनाते हैं ।

इसके आगे की भिन्नताएँ तो और भी अधिक हैं । पश्चिम में परिवार का सर्वस्वीकृत अर्थ पति-पत्नी और बच्चे, इतना ही माना जाता है । भारत में 'परिवार' शब्द कहते ही माता-पिता, भाई-बहिन, लड़के-भतीजे, बेटियाँ-बहुएँ सबके मस्तिष्क में कौंध जाता है । ''परिवार की व्यवस्था करने के बाद ही तो पत्नी को अपने पास बुला सकता हूँ ।'' यह नौकरीपेशा औसत भारतीय पुरुष के शब्द चाहे जहाँ सुनने को मिल सकते हैं । उस समय उनका आशय वृद्ध माता-पिता तथा छोटे भाई-बहिनों आदि की व्यवस्था से ही होता है । बढ़ती आपाधापी के क्रम में बीबी-बच्चे लेकर अलग बस जाने वाले लोग भी परिवार की बात चलते ही माँ-बाप, भाई-बहिन का भी स्मरण, उनकी चर्चा अवश्य ही कर उठेंगे ।

पारिवारिकता की इस भारतीय भावना को उपेक्षित नहीं, संरक्षित सम्बर्धित किये जाने की आवश्यकता है । इसके मूल में जो संवेदनाएँ हैं, सघन आत्मीयता की ऊष्मा और 'स्व' की परिधि के विस्तार की प्रेरणा है, यह मानव-जीवन को समृद्ध बनाने वाली है । शिक्षित-समझदार लोगों का तो यह विशेष कर्त्तव्य है कि वे इसके मूल में सन्निहित विशेषता को भली-भाँति और फिर इन भावभरी प्रेरणाओं का निरन्तर पोषण करें । संगठन, सहयोग, भावनात्मक, प्रगाढ़ता, पारस्परिक प्रेम, इच्छाओं-आवश्यकताओं के नियमन, आत्मानुशासन, एक-दूसरे के लिए त्याग की सत्प्रवृत्तियाँ इस पारिवारिकता से सहज ही विकसित होती चलती हैं ।

अपनेपन की विशेष अनुभूति ही पारिवारिकता का आधार है । यह अपनत्व कितना अधिक समर्थ एवं गुणकारी होता है, यह अनुभव की ही वस्तु है ।

जहाँ भी पारिवारिकता की भावना का ह्रास हुआ है, वहाँ कोई सत्परिणाम नहीं देखे गये हैं अपितु अकेलापन और अलगाव ही बढ़ा है । भारत में, जहाँ हारी-बीमारी, में महँगी चिकित्सा-सुविधा तथा सेवक-सेविकाएँ जुटा पाना थोड़े लोगों के लिए ही सम्भव है, यह अलगाव बहुत महँगा सिद्ध होता है । प्रसव-काल, रोग के आक्रमण, असमर्थता, दुर्घटना, लड़ाई-झगड़ा आदि में पग-पग पर अपनों की जरूरत महसूस होती है । जब पत्नी गर्भवती होती है, तब उसे अस्पताल में भर्ती करा देने भर से बात नहीं बनती । प्रसव-कष्ट के समय सघन सहानुभूति के लिए और उसके उपरान्त जच्चा-बच्चा की साज-सम्हाल के लिए आत्मीय परिजनों की तीव्र आवश्यकता का अनुभव होता है । नवजात शिशु को सम्हालते हुए, घर के अन्य काम कर पाना बहुत दुष्कर हो जाता है । यही स्थिति बीमारी तथा अन्य किसी कारण से उत्पन्न असमर्थता के समय होती है । उस समय परिवार के लोग सहजता से सहयोग देते हैं, वैसा दूसरे कहाँ दे पाते हैं ?

शादी-ब्याह तथा अन्य सामाजिक आयोजनों का जो स्वरूप है, उसमें से अपव्यय के कारणों को समाप्त कर दिये जाने पर भी, सामूहिकता का रूप तो बना ही रहेगा । उस व्यवस्था को भली-भाँति सम्हालने तथा साथ ही, विश्वस्त रूप से सामानों आदि की देखभाल करने के लिए आत्मीयों की जरूरत पड़ती है । उस समय भी परिवार के लोग ही अधिक उत्साह से आगे आते हैं ।

विधवाओं-परित्यक्ताओं की समस्याओं के उचित समाधान अभी तक तो खोजे ही नहीं गये हैं । फिर ऐसे समाधानों को लोकमान्यता मिलने में भी समय लगेगा । तब तक समस्या अपनी जगह अटल है और पति-पत्नी बच्चों वाले परिवार की अवधारणा में उसके समाधान का कोई भी मार्ग नहीं है । जबकि भारतीय परिवारों के पुराने स्वरूप में उसके लिए स्थान स्वाभाविक ही बन जाता है । विधवा को आर्थिक-संकट से सीधे नहीं जूझना पड़ता । विधुरों को घर की व्यवस्था सम्हालने के झंझट में नहीं पड़ना होता । परित्यक्ताएँ भी मायके में ही रहकर घर के एक सदस्य की तरह काम करती हुई अपना गुजारा चला लेती हैं ।

पश्चिम में वृद्धावस्था की विभीषिका बहुत बढ़ी-चढ़ी होती है । भौतिक साधनों-सुविधाओं के बावजूद, वहाँ के वृद्ध लोग निराशा, एकाकीपन और आत्मीयता के अभाव से त्रस्त पीड़ित हैं । उनकी समस्या पर वहाँ विचार-विमर्श तथा उपायों की खोज के क्रम चल रहे हैं । भारतीय परिवार-व्यवस्था में वृद्धावस्था शान और शान्ति से व्यतीत हो सकती है । उनके अनुभव, ज्ञान तथा समय का उपयोग भी होता रहता है । परिवार-व्यवस्था एवं शिशुपालन में उनके आवश्यक परामर्श अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं । साथ ही बच्चों को खेल-खिलाने तथा कहानियाँ सुनाने के महत्वपूर्ण कार्य वे मौज में तथा कुशलता से करते रहते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

यह सब कार्य मात्र किसी समझौते की भावना या आजीविका की व्यवस्था सम्बन्धी तालमेल से नहीं होते, अपितु सघन आत्मीयता के कारण ही सम्भव होते हैं । यह सघन आत्मीयता, भावभरी सहानुभूति ही पारिवारिकता है । रोटी, कपड़ा और मकान के लिए संयुक्त प्रयास मात्र पारिवारिकता नहीं है । न ही यौन-जीवन की सुनिश्चित व्यवस्था भर का नाम परिवार है । देह-सुख भर ही प्रधान रहे तो पारिवारिकता नहीं पनप पाती, कलह-कटुता ही उभरती है । एकात्मता की भावना ही पारिवारिकता है ।

जब परिवार के प्रत्येक सदस्य में यह अनुभूति सुदृढ़ हो कि यह हमारा पूरा कुटुम्ब एक शरीर जैसा है । इसमें प्रत्येक की वही स्थिति है, जो हमारे शरीर में भिन्न-भिन्न अंगों की । तभी पारिवारिक भावना माननी चाहिए । इस भावना में दृष्टि किसी आवश्यकता विशेष पर नहीं, अंकुश व्यवस्था पर रहती है । इसीलिए 'स्वार्थ' पर वहाँ अंकुश रहता है । आत्मानुशासन वहाँ स्वत: विकसित होता चलता है । त्याग में कष्ट नहीं, उत्साह की अनुभूति होती है, क्योंकि वह त्याग अपने ही किसी अंग की आवश्यकता की पूर्ति के लिए किया जा रहा होता है जहाँ यह भावना नहीं होती, वहाँ अपनी छोटी से छोटी इच्छा-आवश्यकता की उपेक्षा या उस पर आघात असह्य हो उठता है । इससे बात-बात में कलह की वृद्धि ही होती जाती है । जो बात आपसी समझदारी से सामान्य क्रम में निपटाई जा सकती है, उसे ही तूल देकर बाहर तक ले जाया जाता है और जो उत्सर्ग-उदारता स्व-प्रेरणा से बड़ी मात्रा में सहज सम्भव थी, उसके छोटे से छोटे अंश का ढिंढ़ोरा पीटा जाता है । यही प्रवृत्ति घरेलू सभ्यता को समाज और सरकार तक ले जाने की प्रेरणा देती है । इस प्रक्रिया का समाज पर भी प्रभाव पड़ता है । पारिवारिकता की भावना के लोप का अर्थ है-सामाजिकता की भावना का लोप ।

अमरीका के एक समाजशास्त्री एवं मनोविश्लेषक डा० विलर्ड गोयलिन ने वहाँ हाल ही में इस बात पर दु:ख व्यक्त किया है कि उनके समाज में ऐसे मामलों को भी अदालत और विधायिका तक ले जाने की प्रवृत्ति जोर पकड़ चुकी है, जिन्हें परिवार में ही सुलझाया जा सकता है । डा० गोयलिन का मत है कि बहुत सी बातें ऐसी हैं जो कानून द्वारा तो कदापि नहीं सुलझ सकतीं, अपितु उलझती ही चली जाती हैं, जबकि आपसी सौहार्द्र में वे आनन-फानन में सुलझ सकती हैं ।

इसी आपसी सौहार्द्र-सहयोग, स्नेह-सौजन्य का नाम पारिवारिकता है । इसके बिना खींचतान, दाँव-पेंच में उलझा बोझिल सिलसिला बन जाता है । आनन्द कोसों दूर भाग जाता है । इस स्थिति को समाप्त करने के लिए वे प्रक्रियाएँ-प्रेरणाएँ तथा दिशाएँ अपनानी होंगी जो पारिवारिकता की भावना को ही प्रधानता दें । न कि उसकी उपेक्षाकर, बौद्धिक जोड़-तोड़, स्वार्थ-केन्द्रित समझौते तथा भावनाशून्य सहजीवन का विचार करें और इसे ही आधुनिकता मान बैठें । यह आधुनिकता बहुत महँगी पड़ेगी । इससे बचना चाहिए ।

घनिष्टता-आत्मीयता को निरन्तर विकसित करने वाली पारिवारिक भावना ही उन उपलब्धियों का सुख एवं आनन्द दे सकती है, जो परिवार-व्यवस्था से मिलते रहे हैं, परन्तु इन दिनों खत्म हो चले हैं । उस भावना के बिना सामूहिक निवास से परिवार की सुवास नहीं आ सकती । द्वेष-दुर्भाव की सुगन्ध ही फैलेगी । स्वर्ग सुख की पुन: अनुभूति के लिए स्नेह, सहकार, उदारता, कृतज्ञता, आत्मीयता-सद्भाव पर आधारित परिवार-भावना ही अपनानी होगी ।

पारिवारिक विघटन से बाल-विकास में अवरोध

समाज और राष्ट्र की आधारभूत संस्था परिवार है । जब तक परिवार के सदस्यों में आत्मीयता, पारस्परिक विश्वास, स्नेह-सद्भाव एवं अपने-अपने कर्त्तव्यों-उत्तरदायित्वों का भान बना रहता है, सुख-शांति भरा स्वर्गीय वातावरण घर के आँगन में निवास करता है । एक साथ रहने से छोटे-बड़े सभी सदस्यों की समस्याओं का समाधान सहज ही निकल आता है । इस तरह के संयुक्त परिवार अपने देश में कभी बहुतायत से देखे जाते थे, पर आज यह प्रणाली विघटन के कगार पर दिखाई देती है । नव विवाहित दम्पत्तियों में किन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर अपने परिवार से अलग होने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है । अनुभव की कमी और स्वछन्द जीवनयापन की भावना के कारण उठाया गया यह कदम इन दम्पत्तियों को बहुत महँगा पड़ता है । जब परिवार बनता है, बच्चों का जन्म होता है, उनके पालन-पोषण और व्यक्तित्व के विकास का समय आता है, तब एक नहीं, अनेक प्रश्न उठ खड़े होते हैं और जिस स्वर्गीय-सुख की कामना से संयुक्त परिवार टूटा था, वह निरा स्वप्न सिद्ध होता है । भावावेश में उठाया गया यह कदम भी गलत सिद्ध होता है ।

पारिवारिक विघटन का सबसे ज्यादा प्रभाव बालकों के विकास पर होता है । संयुक्त परिवार में बच्चे को दादी-दादा का, चाचा-ताऊ का आदि अनेकों परिजनों का स्नेह ममत्व मिलता है । बालक प्रेम और आत्मीयता भरे इस वातावरण में पुलकित हो उठते हैं । सब ओर से मिलने वाला प्रेम इस बालक के व्यक्तित्व का समुचित विकास करने में सहायक होता है । जबकि विघटित परिवार में माता और पिता ही होते हैं । इनके अतिरिक्त और किन्हीं आत्मीयजनों का स्नेह नहीं मिल पाता । बालक कोई गलती करता है तो माता-पिता खीझ उठते हैं । बच्चे को अनावश्यक रूप से डाँट-डपट देते हैं, जिसका प्रभाव उसके सुकोमल मन पर पड़ता है और माता-पिता के प्रति

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसमें एक भय मिश्रित भाव घर कर जाता है । फलतः बालक का विकास कुण्ठित होने लगता है ।

घर में और बाह्य जगत में दीख पड़ने वाली वस्तुओं के प्रति बच्चों के मन में जिज्ञासा जागती रहती है । संयुक्त परिवारों में माँ-बाप से सहमा हुआ बालक दादा-दादी या चाचा-चाची की छाती से जा चिपकता है । विघटित परिवार में माँ-बाप से डरे हुए बच्चे अपनी प्रतिक्षण उठती रहने वाली ज्ञान की पिपासा सहज रूप से व्यक्त नहीं कर पाते । वे मन ही मन कोई अटकल लगा लेते हैं या उसे ज्यों की त्यों छोड़ देते हैं । समाधान न करने से बच्चों के मस्तिष्क में जिज्ञासु वृत्ति ही लुप्त होने लगती है और धीरे-धीरे समाप्त-सी हो जाती है । परिणामस्वरूप ऐसे बच्चे या तो कूप-मण्डूक रह जाते हैं अथवा उलटी धारणा जमा लेते हैं । संयुक्त परिवार में ज्ञानार्जन के लिये अधिक उपयुक्त साधन रहते हैं । घर में कई सदस्यों के होने से वहाँ उनकी समस्याओं का समाधान करने वाला कोई न कोई मिल ही जायगा ।

बाल मनोविज्ञानियों का कहना है कि बच्चों की जिज्ञासा का उपयुक्त हल उसके मन में दूसरी वस्तुओं के सम्बन्ध में एक आकर्षण भाव पैदा करता है । उसके मन में तरह-तरह की नई जानकारियाँ प्राप्त करने की लालसा जागती है और वह ज्ञानार्जन के क्षेत्र में अधिक आगे बढ़ जाता है ।

ज्ञान के बाद आचार शिक्षा का क्रम आता है । वेद शास्त्रों तथा विद्वानों ने आचार को पहला धर्म माना है । बच्चों को आचार-व्यवहार की शिक्षा संयुक्त परिवार में जितनी सुगमता से मिल सकती है, विघटित परिवार में उसकी सम्भावना कम ही रहती है । घर में पिता को ही पूज्य मान लिया जाता है । समूची श्रद्धा और आदर भाव का केन्द्र वह ही बन जाता है । माता के प्रति अधिक आत्मभाव होने से सामान्य शिष्टाचार का प्रायः बहुत कम निर्वाह होता है । संयुक्त परिवार में सभी बड़े लोगों के रहने से आदर और शिष्टता की आदत स्वाभाविक रूप से विकसित होती जाती है ।

परिवार की आन्तरिक व्यवस्था प्रधानतया स्त्रियाँ ही सम्भालती हैं । संयुक्त परिवार में मिल-जुलकर आसानी से सब काम निबट जाता है । काम में तो कोई कमी नहीं आती । सम्मिलित परिवार में जहाँ मिल-जुलकर सब काम पूरा होता था, विघटित परिवार में उतनी ही मात्रा का काम अकेली एक स्त्री को करना पड़ता है । परिणाम यह होता है कि बच्चों की देखरेख समुचित रूप से नहीं हो पाती । माँ बच्चों की ओर ध्यान दे तो बालक की उपेक्षा से बड़ी समस्या उत्पन्न हो जाती है । सामान्य तौर पर प्रकटतः तो कोई अव्यवस्था नहीं आती, परन्तु हारी-बीमारी के समय परेशानी का सामना करना पड़ता है । संयुक्त परिवार में माता के प्रसवकाल में बच्चों की साज-सम्हाल कुटुम्ब की अन्य महिलायें कर लेती हैं और घर की व्यवस्था में भी कोई अन्तर नहीं आता । विघटित परिवार में प्रायः पति को बाहर रहना पड़ता है । ऐसी स्थिति में यदि माँ प्रसूतावस्था में पड़ी हो तो बच्चों की स्थिति अनाथ जैसी हो जाती है । घर की आन्तरिक व्यवस्था भी शोचनीय बन जाती है ।

नवदम्पत्ति प्रायः अधिक सुविधाओं की कल्पना लेकर अलग होते हैं, पर मोटेतौर पर वह कल्पना मूर्त रूप नहीं ले पाती । उनको मकान किराया, चूल्हा-चौका, बर्तन, सफाई आदि सभी आवश्यकताओं की अलग से व्यवस्था संयुक्त परिवार की उपेक्षा महँगी पड़ती है । आर्थिक तंगियाँ मनुष्य को कुण्ठित कर देती हैं । अपने स्वप्नों के पूरा न होने पर पति-पत्नी और भी अधिक तनावग्रस्त रहने लगते हैं । फलस्वरूप उनके बीच मनमुटाव रहने लगता है । सम्मिलित परिवारों में से किसी कारण से तनाव उत्पन्न होता भी है तो वृद्ध और समझदार परिजनों के हस्तक्षेप तथा समझाने से शीघ्र ही समाप्त हो जाता है । विघटित परिवार में ऐसी कोई सम्भावना न रहने से दिन-रात परस्पर आक्रोश बना रहता है । बच्चे यह सब देखते हैं तो समझते हैं कि यह कोई अच्छी बात नहीं है । अगर इससे वे डर जाते हैं तो पारिवारिक जीवन के प्रति अलगाव की भावना उनमें बचपन से ही जम जाती है । प्रकारान्तर से असामाजिक बनने की सूक्ष्म प्रेरणा उन्हें यहीं से मिलती है ।

संयुक्त परिवारों का गठन और संचालन सहकारिता के आधार पर होता है । समय और श्रम की बचत से बच्चों पर ध्यान देने और देख-रेख करने के लिये पर्याप्त समय बचता है । ज्ञानार्जन, आचार शिक्षा तथा समुचित देख-रेख की जितनी सुविधा संयुक्त परिवार में मिल सकती है, उतनी एकाकी विघटित परिवारों में नहीं मिलती ।

बाल अपराधों की रोकथाम करने वाली समिति के सर्वेक्षणकर्त्ताओं का कहना है कि परिवार के असंगठन अथवा असंस्कृत वातावरण में ही बालकों में अपराधवृत्ति जन्म लेती है । बच्चों के परिष्कृत व्यक्तित्व का विकास विघटित परिवारों की उपेक्षा सम्मिलित परिवार में ज्यादा सहज रहता है । एकाकी परिवार बच्चों की देखभाल करने से लेकर उनके अन्य क्रियाकलापों पर उतना ध्यान समयाभाव के कारण नहीं दे पाते । फलस्वरूप बच्चे दूसरे आवारा और गन्दी आदतों वाले बच्चों के संसर्ग में आकर पथभ्रष्ट होने लगते हैं । इस कारण समाज के, राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लिये संयुक्त परिवारों का विघटन रोका जाना आवश्यक है ।

गृह-कलह— कारण और निवारण

गृह-कलह के कारण क्या होते हैं ? इस पर विचार किया जाये तो यही निष्कर्ष सामने आता है कि बहुत छोटी-छोटी बातों को तूल देने वाला छिछोरा अहं, तालमेल न बैठा सकने की हेकड़ी, भावनात्मक असंतुलन एवं पारस्परिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अविश्वास ही इसके मूल में होते हैं और इसका परिणाम घर को नरक बना डालने के रूप से सामने आता है ।

शिक्षा के वर्तमान रूप का जब अधिक विस्तार नहीं हुआ था, तब यह माना जाता था कि अशिक्षा ही गृह-कलह का कारण है । यद्यपि हमारे देश में शिक्षा का औसत अभी भी बहुत कम है, तो भी पहले की तुलना में शिक्षितों की संख्या पर्याप्त हो गई है और इन शिक्षितों में तो उसका प्रभाव-परिणाम, पारस्परिक सामंजस्य, सन्तुलन, माधुर्य और शान्तिपूर्ण घरेलू वातावरण के रूप में सामने आता था, परन्तु देखा विपरीत ही जा रहा है । शिक्षित पति-पत्नियों में आपसी मनमुटाव कुछ कम नहीं है और परिवार के अन्य सदस्यों से तो उनका तालमेल न बैठना सामान्य बात होकर रह गई है ।

गृह-कलह धनियों में भी पाया जाता है, गरीबों में भी । सुशिक्षितों के बीच भी, अशिक्षितों के बीच भी । शरीर से तगड़े लोगों में भी आपसी घरेलू विवाद देखा जाता है और दुबले-पतले में भी । इससे यह स्पष्ट होता है कि घर की शान्ति, सामंजस्य और सद्भाव, स्वास्थ शिक्षा था सम्पन्नता पर ही पूरी तरह निर्भर नहीं करते । सफल सद्गृहस्थ भी सभी वर्गों धनी-गरीब, मोटे-पतले, शिक्षित-अशिक्षित आदि सभी में पाये जाते हैं । देखा यह जाता है कि एक परिवार में तो शिक्षा आपसी समझदारी और संतुलन तथा उदारता का आधार बनती है, दूसरे में वही बाल की खाल उधेड़ने वाली, बौद्धिक खींचातानी तथा छोटी बात को 'फील' करने, यानी गहराई तक उसकी प्रतिक्रिया होने का आधार प्रस्तुत कर देती है । समुचित धन एक परिवार को नमक, तेल, लकड़ी की दैनन्दिन चिन्ताओं से मुक्त कर, उन्हें स्वाध्याय, पर्यटन, अनुभव-विस्तार तथा समाजसेवा में सक्रिय रहने की प्रेरणा देता है, तो उतना ही धन किसी अन्य परिवार में मजा-मौज, दुर्व्यसन, अलगाव और दुराव का कारण बन जाता है । अच्छा स्वास्थ्य स्वाभाविक उत्फुल्लता और गतिशीलता से किसी परिवार में हर्ष-विनोद का वातावरण बनाये रखने का आधार बनता है तो अन्यत्र वही असंयमित देहावेग और उससे उत्पन्न निष्ठाहीनता, तनाव तथा संघर्ष का रूप ले लेता है ।

पारिवारिक आनन्द के लिए अपेक्षित गुण मुख्यतः जीवन-दृष्टि सम्बन्धी है । सबसे पहला विचारणीय तथ्य यही है कि जीवन के बारे में किसी परिवार के वयस्क सदस्यों की अवधारणा क्या है ? क्या वे उसे परमसत्ता की एक प्रकाश किरण मानते हैं या पानी का बुलबुला मात्र । जो जीवन के प्रति नास्तिक भाव रखते हैं, उनमें भी पारस्परिक सन्तुलन सम्भव तो है, परन्तु यह सन्तुलन किसी बड़े स्वार्थ के सामने कभी भी टूट सकता है । जबकि जीवन को दिव्यचेतना का अंश मानने वाले लोग किसी भौतिक उपलब्धि के लिए अपनी निष्ठाएँ नहीं बदल सकते ।

जीवन-दृष्टि से ही जुड़ी एक अन्य बात यह है कि जीवन की सार्थकता किसी क्रिया या क्षेत्र-विशेष में मानी जा रही है अथवा जीवन की विविधताओं को स्वीकार कर चला जा रहा है । ऐसे व्यक्ति जिन्हें अपने किसी गुण-विशेष में ही जीवन का निचोड़ नजर आता है, फिर वह लेखन हो, संगीत हो, सौन्दर्य हो, नृत्य हो, कला हो या कुछ और हो तथा साथ ही अपने इस गुण के सामने जो और किसी को कुछ नहीं गुनते, वे इस गुण विशेष में चाहे बहुत आगे बढ़ जायें, परन्तु समाज एवं परिवार में वे अपने छोटे-छोटे आग्रहों की पूर्ति के लिए विक्षोभ-विछेप, कलह-कटुता पैदा करने में हिचकते नहीं । जहाँ दूसरों की अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं आधारभूत आवश्यकताएँ भी अपने मामूली स्वार्थ, शौक या भावतरंग के सामने हेय मानने की प्रवृत्ति हो, वहाँ पारस्परिक सद्भाव कैसे टिक सकता है ।

जहाँ संकीर्ण स्वार्थपरता रहती है, वहाँ अविश्वास अवश्य होता है । अविश्वास भी एक प्रकार की नास्तिकता ही है । क्योंकि यह मानना कि वे स्वयं तो किसी भी स्थिति में गलती नहीं कर सकता और दूसरा गलतियों से बच नहीं सकता या कि एक बार भूल करने के बाद फिर उसे सुधार नहीं सकता, इससे उनके बीच की दूरी बढ़ती जाती है ।

पारिवारिक जीवन में ऐसे अवसर आते ही रहते हैं, जब एक-दूसरे के बारे में सन्देह पनप जाने की स्थिति आ खड़ी होती है । यदि आपस में विश्वास रहे तो यह सन्देह निःसंकोच भाव से पूछकर जाँचा-परखा जा सकता है । ऐसा न करने पर भीतर ही भीतर पनपता-फैलता सन्देह घृणा-विद्वेष का विषवृक्ष बनकर प्रकट होता तथा विग्रह, विरोध एवं विलगाव के फल देता है ।

खाई बढ़ने का एक अन्य कारण यह है कि अपनी ही धुन में मस्त रहकर दूसरे की जरूरतों और भावनाओं की उपेक्षा की जाती है । यह उपेक्षा स्पष्टतः क्षुद्रता का परिणाम होती है । देखा यहाँ तक जाता है कि बाहर के अपने मित्रों-परिचितों की हारी-बीमारी, प्रसन्नता-हताशा सत्ता की एक-एक घटना में रुचि दिखाने वाले लोग अपने परिवार के दूसरे सदस्य की बीमारी, परेशानी या समस्या पर सिर्फ नाक-भौं सिकोड़ते हैं, सहानुभूति-सहयोग की कभी जरूरत ही नहीं समझते ।

उपेक्षा, अविश्वास, स्वार्थपरता, अहमन्यता और सन्देह ये सभी दोष जीवन-दृष्टि से सम्बन्धित हैं । जहाँ उदारता, सदाशयता, समानता और सहानुभूति की भावना तथा विचार होगा, वहाँ ये परिस्थितियाँ टिक नहीं सकतीं । इसीलिए सुखी परिवार के लिए बाहरी व्यवहार के सूत्र ढूँढ़ने और उन पर यान्त्रिक ढंग से अमल करने से काम चलने का नहीं ।

'मैनर्स' और 'टेक्नीक' का अपना महत्व है । शिष्टता-भद्रता और तौर-तरीके आकर्षक एवं प्रसन्नतादायक होते हैं । लेकिन मात्र उतने से परिवार में आपसी सौमनस्य स्थापित नहीं हो जाता । जहाँ स्वार्थों की आपसी टकराहट नहीं है, अधिक अवधि तक साथ रहना

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं है, वहाँ सभा-सोसाइटी, भीड़-भाड़ में अथवा प्रारम्भिक परिचय में तो शिष्टता के तौर-तरीके भाते हैं, एवं प्रभावित करते हैं, लेकिन इनका असर तात्कालिक ही होता है, स्थायी नहीं रह पाता । यदि सामने वाले के प्रति मन में अनादर-अविश्वास आ जाये, तो वही शिष्टता आडम्बर प्रतीत होने लगती है । परिवार के सदस्यों को एक दूसरे के व्यवहार देखने-परखने का तो भरपूर अवसर मिलता ही है, अपने प्रति अमुक सदस्य के मनोभाव क्या हैं, यह भी हर एक को ज्ञात होता रहता है । इसलिए वहाँ शिष्टता एवं व्यवस्था सम्बन्धी नियमों-उपनियमों के निर्वाह भर से बात नहीं बन सकती । इन सबसे ऊपर सर्वाधिक महत्वपूर्ण है भावनात्मक श्रेष्ठता और सच्ची आत्मीयता ।

यह आत्मीयता जीवन-दृष्टि का परिणाम है जहाँ मात्र भौतिक सुख-सुविधायें ही जीवन की वास्तविक उपलब्धियाँ मानी जाएँगी, वहाँ सीमित साधनों के कारण परिवार में परस्पर एक दूसरे को प्रतिस्पर्धी मानकर चला जायेगा । प्रतिस्पर्धा का भाव साधनों की प्रचुरता से मिटने वाला नहीं क्योंकि तब प्रत्येक की सुखोपभोग की इच्छा भी उसी अनुपात में फैलती-बढ़ती जायेगी । प्रतिस्पर्धा का भाव न रहा, तो उदासीनता का भाव आ सकता है । क्योंकि मन की आसक्ति तो अपने लिए सुख-सुविधा जुटाने की ही दिशा में रहेगी । दूसरों की अपने जैसी ही चिन्ता करने का अवकाश कहाँ रहेगा । हाँ, अपनी किसी ने तनिक भी उपेक्षा की तो जरूर माथा गरम होने लगेगा ।

प्रतिस्पर्धा के स्थान पर आत्मीयता का, भावनात्मक एकरूपता का भाव सही जीवनदृष्टि द्वारा ही आता है और बना रहता है । यह आत्मीयता रही तो तौर-तरीकों में कभी चूक भी हो गई, तब भी तनाव बढ़ेगा नहीं ।

शिष्टाचार एवं व्यवस्था के नियमोपनियमों की तकनीक बाह्य कलेवर है । आवश्यक वह भी है । पारिवारिक स्वरूप उसी आधार पर सुन्दर बनता है । किन्तु आत्मीयता, एकरूपता की जीवन-दृष्टि तो परिवार का प्राण है । उसके बिना पारिवारिक भावना जीवित ही नहीं रह सकती । अत: सर्वोपरि आवश्यकता परिवार के आधारभूत दर्शन को, सघन आत्मीयता को, प्रखर अनुभूति के स्वरूप को समझने की है । जहाँ ऐसा होता है, वहाँ गृह-कलह कभी भी पनपता नहीं । जहाँ इसका अभाव होता है, वहाँ पारिवारिक शान्ति कभी टिक नहीं पाती ।

परिवार-संस्था का संचालन कैसे हो ?

शरीर दीखते तो एक इकाई भर हैं, पर वस्तुत: उसमें कितने ही घटक जुड़े हुए होते हैं । इनमें से कुछ तो प्रत्यक्ष दृश्यमान होते हैं और कुछ चमड़ी के भीतर ढके हुए होते हैं । इन सभी के सम्मिलित प्रयत्न से जीवनचर्या चल पाती है । इनमें से एक-दो की भी कमी रहने पर ढाँचा लड़खड़ाने लगता है । किसी कौने में कमी-खामी हो तो फिर अपंगता जैसी स्थिति आ घेरती है । पक्षाघात में अक्सर कुछ ही अंग अशक्त होते हैं, पर इतने भर से ही कुरूपता से लेकर अदक्षता तक के अनेक विचार सिर पर सवार हो लेते हैं । स्वच्छता, सुन्दरता और सशक्तता तभी बन पड़ती है जब समूचा शरीर सही और सुव्यवस्थित रूप से काम कर रहा हो ।

परिवार के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है । वे सभी एक ही नाव में सवार रहते हैं, बैठने वालों में से एक भी धमाचौकड़ी मचाने लगे तो चलती नाव के लिये संकट खड़ा कर देते हैं । एक पागल व्यक्ति ही सारे घर की नींद हराम कर देता है । छूत की बीमारी किसी एक को लगे तो डर इस बात का बना रहता है कि उसके साथ रहने वाले अन्य लोग भी प्रभावित न होवें ।

परिवार के कुछ सदस्य ऐसे होते हैं जो अपने समर्थ होने से पहले उस परिवार में रह रहे होते हैं । समझना चाहिए कि पहला अधिकार उनका है । रेल में जो पहले सीट पर बैठ जाता है उसका कब्जा माना जाता है । पीछे आने वाले जहाँ-तहाँ अपने लिये जगह बनाते हैं । इसलिये नये सदस्य बुलाने बढ़ाने के पूर्व यह देखा जाना चाहिए कि जो हैं उनका प्रबन्ध ठीक से बन पड़ा है या नहीं । जिस बस में पचास की जगह है उसमें यात्री सत्तर घुस पड़े तो पुराने और नये सभी को असुविधा उठानी पड़ती है । बुलाने का अर्थ है नयी शादी करके नयी बहू बुलाना । बढ़ाने का अर्थ है उन बच्चों को उत्पन्न करना जिनके लिए अतिरिक्त रूप से नये साधन तो जुटाये नहीं गये हैं, पर उन्हें अवांछित अतिथि की तरह बुलाने पर मेजबान और आगन्तुक दोनों को ही असुविधा और असमंजस होता है । इसलिये परिवार के हर जिम्मेदार व्यक्ति को प्राथमिकता इसी बात को देनी चाहिए कि घर में जो सदस्य मौजूद हैं उन्हें शिक्षित, स्वस्थ, स्वावलम्बी और सद्गुणी बनाने के लिये जो कुछ किया जा सकता है, उसमें किसी प्रकार की कमी न रहने दी जाय ।

यों परिवार में आयु की दृष्टि से बड़े, अधिक सुयोग और अधिक कमाऊ व्यक्ति महत्व और मान पाते हैं । समझदारी का परामर्श दे सकने वालों को भी वरिष्ठ माना जाता है, चाहे वह नर हो या नारी, छोटे हो या बड़े । परिवार के हर समझदार का कर्त्तव्य होना चाहिए कि अपने छोटे से परिवार को ऐसा सुनियोजित बनाये जिसे देखकर परिचय क्षेत्र का हर कोई यह कहे कि संरचना एवं व्यवस्था किसी कुलाकार की है । सम्पर्क में आने वाला हर कोई यह सीख कर जाये कि उसे भी अपना परिवार ऐसा ही बनाना चाहिए या ऐसे ही परिवार का सदस्य बनकर रहना चाहिए । यह ललक यदि कोई परिवार में उठा सके तो समझना चाहिए कि यह उसका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रयास सफल हो गया और सौभाग्यशाली बनने का सुयोग हस्तगत हो गया ।

व्यक्ति और समाज की मध्यवर्ती कड़ी परिवार है । परिवार का समुच्चय ही राष्ट्र है । कड़ियों से मिलकर जंजीर बनती है । जिस स्तर की कड़ियाँ होंगी उसी स्तर की जंजीर मानी जायगी । राष्ट्र निर्माण का प्रयास वस्तुतः परिवारों की सुव्यवस्था एवं संरचना से ही सम्भव हो सकता है । दूसरा पक्ष है व्यक्ति का । श्रेष्ठ और शानदार व्यक्ति ही किसी देश की बहुमूल्य सम्पदा है । राष्ट्र की ही क्यों, उन्हें विश्व विभूति भी कह सकते हैं । कारखाने, बैंक, उद्योग, विद्यालय, अस्पताल आदि को वास्तविक वैभव नहीं कहा जा सकता । गरिमाशाली महामानव ही अपने क्षेत्र, वर्ग, समाज और समय को कृतकृत्य करते हैं । उन्हीं का निर्माण सच्चे अर्थों में समग्र निर्माण कहा जा सकता है । यह कार्य कहाँ हो ? कहना न होगा कि प्राचीनकाल में यह दायित्व गुरुकुल और आरण्यक उठाते थे पर अब तो वह पूरी तरह पारिवारिक वातावरण के जिम्मे ही आया है । स्कूल-कॉलेजों में छात्र मात्र पाठ्यक्रम पूरा कर सकते हैं, पर जहाँ तक व्यक्तियों को प्रतिभाशाली, प्रामाणिक बनने का प्रश्न है वह पूरी तरह इस बात पर निर्भर रहता है कि उसे किन लोगों के प्रभाव संपर्क में रहना पड़ेगा । व्यक्ति पुस्तकों से प्रवचनों से कम सीखता है, असली पढ़ाई तो उन लोगों से होती है, जो निरन्तर साथ रहते हैं । यह शिक्षा गर्भकाल से ही आरम्भ हो जाती है और वयस्क होने तक छोटी आयु वालों पर प्रभाव डालती रहती है । यही प्रभाव परिपक्व होकर संस्कार बन जाता है । गुण, कर्म, स्वभाव उसी ढाँचे में ढलने लगते हैं । परिवार का वातावरण ही वह साँचा है जिसमें नर-रत्नों का उत्पादन सम्भव हो सका, उस परिवार को, खानदान को हर दृष्टि से यशस्वी और सौभाग्शाली कहा जा सकता है ।

देखा जाता है कि गृह संचालक अपने आश्रितों के लिये भोजन, वस्त्र, शिक्षा, चिकित्सा, सुख-सुविधा आदि का तो प्रबन्ध करते हैं, पर यह भूल जाते हैं कि व्यावहारिक जीवन में सभ्यता और अन्तरंग क्षेत्र में सुसंस्कारिता का बाहुल्य ही वह विभूति माना है जो किसी को सफल जीवन जी सकने की स्थिति तक पहुँचाती है । यही वह गरिमा है जो समाज, देश, विश्व और समग्र मानवी गरिमा को कृतकृत्य बना सकने में सफल होती है । इसके अभाव में व्यक्ति शिक्षित और सम्पन्न होते हुए भी अपनी और अन्यान्य लोगों की दृष्टि में गया-गुजरा रह जाता है ।

परिवार को एक छोटा राष्ट्र माना जा सकता है । जिस प्रकार किसी शासनाध्यक्ष को अपने क्षेत्र को हर दृष्टि से समुन्नत और सुव्यवस्थित बनाना पड़ता है, यह कौशल जिन्हें न आता हो समझना चाहिए कि उन्होंने गाड़ी बिना चलाना सीखे मोटर दौड़ाने लगने जैसी भूल की है ।

चिन्तन, चरित्र और व्यवहार यही तीन दिशाधारायें ऐसी हैं, जिनके सही रहने पर गंगा, यमुना, सरस्वती के मिलने पर बनने वाली त्रिवेणी संगम की प्रतिकृति बन जाती है । जिस प्रकार परिजनों के भोजन-वस्त्र का ध्यान रखा जाता है, उससे भी अधिक ध्यान इस बात पर दिया जाना चाहिए कि कुटुम्बियों को ठीक तरह सोचना, ठीक तरह रहना और ठीक तरह दूसरों के साथ शिष्टाचार बरतना आया कि नहीं । जिस प्रकार फूटे बर्तनों की मरम्मत कराते और उसके पैंदे से रिसने वाला पानी रोकते हैं उसी प्रकार घर के हर सदस्य को संयम और अनुशासन सिखाना चाहिए । इन्द्रिय संयम, विचार संयम, अर्थ संयम, समय संयम यह चार तपश्चर्याएँ ऐसी हैं जिन्हें व्यावहारिक जीवन में अपनाये रहने पर मनुष्य सभ्य, सुसंस्कृत ही नहीं, प्रामाणिक, प्रतिभावान बनता एवं सफलतायें अर्जित भी करता चलता है । यह बीजांकुर परिवार के वातावरण में पल्लवित होने ही चाहिए ।

अनिवार्य उत्तरदायित्व का दोहरा प्रतिफल

सामान्यतः परिवार के सम्बन्ध में पर्याप्त उपार्जन और प्रचुर साधन सुविधाएँ जुटाकर रख देना ही परिवार के प्रति अपने दायित्वों की समग्रता समझा जाता है । परिवार के लोगों की सुख-सुविधा के लिए समुचित प्रयास किये जाने चाहिए । इसके बिना कोई समझदार व्यक्ति परिवार के प्रति अपने कर्त्तव्य पालन का सन्तोष भी नहीं कर सकता । यह उचित भी है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वजनों से, अपने साथ एक ही घर में रहने वाले अपने ही एक वंश के लोगों से स्नेह रखता है । कठिनाई वहाँ उत्पन्न होती है, जब सुख-सुविधाओं के साधन जुटाना भर पर्याप्त समझा जाता है और इसी के लिए दिन-रात मरा खपा जाता है । प्रेम की सीमा इतनी ही नहीं है, बल्कि जिससे प्रेम होता है उसे अधिकाधिक समर्थ, सुयोग्य और सुखी देखकर ही प्रेम सन्तुष्ट होता है । अतः परिवार के प्रति किसी का प्रेम तभी सच्चे अर्थों में सही व परिपक्व कहा जायेगा, जब वह परिवार के लोगों को सुसंस्कारी और सच्चरित्र बनाने की ओर पर्याप्त ध्यान देने लगेगा ।

परिवार के सदस्यों को सुसंस्कारी और सच्चरित्र क्यों बनाना चाहिए ? यह अलग विवेच्य विषय है । यहाँ इतना भर कहा जा रहा है कि विवाह कर लेना, पति या पत्नी को चुनकर साथ रहने लगना तथा सन्तान को जन्म देने एवं उनका पालन-पोषण करने, सुख-सुविधाओं के साधन जुटाने भर से परिवार का निर्माण नहीं हो जाता । परिवार निर्माण इससे बहुत आगे पूरा होता है और उसका अर्थ भी व्यापक है । संक्षेप में कहना चाहें तो यों कहा जा सकता है कि परिवार के लोगों को सुसंस्कृत, सच्चरित्र, सद्गुण

सम्पन्न और सत्कर्मपरायण बनाने से ही परिवार निर्माण की बात बनती है । यह कोई छोड़ा-बड़ा उत्तरदायित्व नहीं है, जिसे चलते-फिरते आनन-फानन में पूरा किया जा सके । वरन् यह एक महान् उत्तरदायित्व है जिसे पूरा करने के लिए पूरी अभिरुचि, तत्परता एवं संलग्नता अपनाई जानी चाहिए ।

इस तथ्य को जितनी ही गम्भीरतापूर्वक समझा जाए और यह सोचा जाए कि यह महान् उत्तरदायित्व पूरा करना जितना अधिक महत्वपूर्ण है, उतना ही ज्यादा शुभ है । परिवार निर्माण का यह उत्तरदायित्व न बाहरी लोगों से पूरा हो सकता है, न स्थूल साधन उपकरणों द्वारा बाहरी लोग बता सिखा सकते हैं, परिवार के लोगों में घुल-मिल नहीं सकते, जबकि यह काम घनिष्ट आत्मीयता भरे अपनेपन के वातावरण में ही सम्भव हो सकता है । इसी प्रकार स्थूल साधन उपकरण सुविधाएँ प्रदान कर सकते हैं, मन:स्थिति पर प्रभाव डालने की आवश्यकता तो अन्त:क्षेत्र को स्पर्श कर सकने वाली प्रक्रिया से ही पूरी हो सकती है और यह स्पर्श परिवार के समझदार व्यक्ति ही कर सकते हैं । इस स्पर्श द्वारा परिजनों को प्रभावित कर उन्हें उत्कृष्ट दिशा देने, दृष्टिकोण में परिवर्तन करने के लिए तो ऐसे ही शिक्षकों की आवश्यकता पड़ती है जो परिवार में रहते हों । ऐसा शिक्षक बाहर से ढूँढ़ना बेकार है, यह कार्य घर के लोगों को ही पूरा करना चाहिए । भोजन, स्नान, निद्रा, विनोद आदि की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए जिस प्रकार स्वयं श्रम करना पड़ता है, उसी प्रकार परिवार निर्माण का प्रयोजन भी स्वयं ही पूरा करना होता है । परिवार निर्माण का कार्य अपने अतिरिक्त बाहर के लोगों से नहीं कराया जा सकता ।

स्मरण रखा जाना चाहिए कि परिजनों में सुसंस्कारों की जड़ें जमाने के लिए जिस अध्यवसाय की दीर्घकालीन और अनवरत आवश्यकता पड़ती है, उसकी पूर्ति बाहरी व्यक्तियों और स्थूल साधन उपकरणों द्वारा पूरी हो पाना असम्भव ही है । इसके लिए स्वयं ही प्रयास करना पड़ेगा और स्वयं ही समय निकालना पड़ेगा । इस गम्भीर उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए यह तो आवश्यक ही है कि घर का वातावरण अच्छा बनाया जाए, तथा उसमें ऐसी प्रभावपूर्णता उत्पन्न की जाए जिससे घर के लोग सुसंस्कृत स्तर तक पहुँचने लगें । किन्तु प्रयत्न इससे आगे और दूसरे ढंग के भी करने होते हैं । कहा जा सकता है कि परिवार निर्माण का एक दूसरा पक्ष भी है और वह यह है कि अपनी निज की आदतों, आस्थाओं और गतिविधियों का निर्माण नियन्त्रण । यह अभ्यास परिवार की पाठशाला में रहकर सरलतापूर्वक सम्पन्न किया जा सकता है, यदि इसकी महत्ता और गम्भीरता को समझा जा सके तो, जलाशय में घुसे बिना तैरना कहाँ आता है ? पाठशाला में भर्ती हुए बिना सुशिक्षित बनना कहाँ सम्भव है ? व्यायामशाला में प्रवेश किये बिना पहलवान कौन बनता है ? इसी प्रकार परिवार में रहकर अपने ही समान व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर अपने गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता का अभ्यास सरलतापूर्वक किया जा सकता है ।

एकाकी चिन्तन मनन से, अध्ययन प्रवचन से केवल बौद्धिक समाधान मिलते हैं । सत्प्रवृत्तियाँ तो अभ्यास से ही परिपक्व होती हैं और अभ्यास के लिए उपकरण चाहिए । इस प्रयोजन के लिए परिवार से बढ़िया माध्यम क्या हो सकता है ? जब परिवार निर्माण की आवश्यकता समझ ली गई, कुटुम्ब बसाने के उत्तरदायित्व की गम्भीरता समझ ली गई तो यह समझने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि जिन लोगों के बीच हमें रहना पड़ रहा है उन्हें परिष्कृत बनाने के लिए प्रयास करना अपनी प्रकृति को सुधारे बिना सम्भव नहीं होता । यों ही टालमटूल करनी हो, वाग्विलास करना हो तो बात दूसरी है अन्यथा सचमुच किन्हीं पर बदलने वाला प्रभाव डालना हो तो उसका प्रभाव एकमात्र उपाय अपनी स्थिति को प्रभाव डालने योग्य बनाना ही हो सकता है ।

जिन्हें इस उत्तरदायित्व को वास्तव में पूरा करना हो उन्हें अपनी प्रभावोत्पादक क्षमता बढ़ानी ही पड़ेगी और अपना अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करना पड़ेगा अपने व्यक्तित्व को इतना प्रामाणिक बनाना पड़ेगा कि जिसके भी सम्पर्क में आया जाए, उस पर छाप पड़े बिना न रहे । इस उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए आवश्यक कदम उठाना दोहरा लाभप्रद है । एक तो अपने निज का व्यक्तित्व परिष्कृत होता और ऊँचा उठता है । इसके लिए परिवार एक प्रयोगशाला की आवश्यकता पूरी करता है । परिजनों के माध्यम से अपनी शालीनता एवं क्रियाकुशलता विकासोन्मुख बनती है । इस प्रकार परिवार निर्माण की दिशा में किये गये प्रयास केवल कुटुम्बियों की ही सार्थक सेवा नहीं करते, वरन् अपने व्यक्तित्व को भी निखारते हैं । अपनी आदतों में भी उत्कृष्टता का समुचित समावेश करते हैं । इस प्रकार यह प्रक्रिया दोहरा लाभ, दुहरी सफलता प्रस्तुत करती है और यह तो है ही कि सुसंस्कृत परिजन न केवल अपने लिए वरन् निर्माणकर्त्ता के लिए भी आनन्द भरे अनुदान प्रस्तुत करते हैं ।

अस्तु, परिवार निर्माण के महत्व को समझा जाना चाहिए और इसके लिए भी नियमित रूप से समय देना चाहिए, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार के परिजनों का भरण-पोषण करने के लिए नियमित रूप से जीविका उपार्जन के प्रयास किये जाते हैं । इसे यों भी समझा जा सकता है कि परिवार के प्रति किसी भी व्यक्ति के दोहरे कर्त्तव्य हैं और दोनों का समान महत्व है । एक कर्त्तव्य तो परिजनों का भरण पोषण, बच्चों का पालन पोषण, शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध जिसके लिए अनिवार्य रूप से धनोपार्जन करना पड़ता है । दूसरा है परिवार के सदस्यों को सुसंस्कारी और सुविकसित बनाना । इसके लिए अपना स्वयं का व्यक्तित्व परिष्कृत बनाने के साथ परिजनों के स्वभाव को भी उसी स्तर का बनाना होता है । इस प्रकार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिवार के प्रति प्रत्येक परिजन का गम्भीर उत्तरदायित्व है । विशेषतया उनका तो अनिवार्य कर्त्तव्य ही है जो किसी कुटुम्ब के मुखिया, आधार और धुरी हैं । पहली आवश्यकता तो हर कोई पूरी करता है । दूसरी की ही प्राय: उपेक्षा की जाती है । इसलिए दूसरी आवश्यकता को भी समान महत्व दिया जाना चाहिए ।

पारिवारिक दंड-व्यवस्था असहयोग का दर्शन

परिवार से व्यक्ति की बाहरी आवश्यकताओं की पूर्ति में तो मदद मिलती ही है परन्तु इससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण अनुदान भी परिवार-व्यवस्था से प्राप्त होता है वह है स्नेह-सद्भाव, सम्मान एवं विश्वास के रूप में प्राप्त होने वाला भावनात्मक सहयोग, जो प्रत्येक मनुष्य की आंतरिक आवश्यकता है । परिवार के प्रति व्यक्ति के कर्त्तव्यों का स्वरूप होटल, धर्मशाला, दुकान-संस्थान आदि के प्रति कर्त्तव्यों से भिन्न है । वहाँ पैसों का नहीं, भावनाओं का ही विनिमय चलता है । अत: जो व्यक्ति परिवार से तो स्नेह-सम्मान, सद्भाव-सहयोग प्राप्त करता रहे, किन्तु बदले में पारिवारिक शील की रक्षा न करे, परिवार के प्रति अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह न करे, वैसे व्यक्ति के प्रति परिवार को भी सहयोग देना बन्द कर देना चाहिए ।

मनुष्य की सामाजिक आवश्यकताओं का एक बड़ा अंश भावनात्मक होता है । समाज में हर व्यक्ति सहयोग, सद्भाव एवं सम्मान की अपेक्षा रखता है । पारस्परिक सद्भाव से वंचित व्यक्ति अपने आंतरिक जीवन में एक बाहरी रिक्तता की अनुभूति करता रहता है । भौतिक-साधनों के पर्याप्त रूप में सुलभ होने पर भी सम्मान की सामाजिक आकांक्षा शांत नहीं होती, वरन् वह बढ़ती ही रहती है । भावना की पूर्ति वस्तु भर से नहीं होती । वस्तुओं के साथ जुड़ी भावनायें ही भावनात्मक आकांक्षा को तृप्त करती हैं । बिना वस्तुओं के, मात्र भावनात्मक व्यवहार से भी भावना की भूख मिट सकती है, किन्तु वस्तुओं के भावनाविहीन विनिमय से वह भूख नहीं शांत होती ।

कोई व्यक्ति दुकान खोलकर बैठे और उसमें एक भी ग्राहक न आवे, तो वह बैचेन हो उठेगा । भले ही, उसे रोजी-रोटी के अन्य साधन स्रोत उपलब्ध हों । ब्याह-शादी में दूल्हा-दुलहिन भर हों और कोई परिजन-सम्बन्धी, मित्र, परिचित उस उत्सव में न सम्मिलित हों, तो एक अधूरेपन की अनुभूति होगी । ब्याह गुड्डे-गुड़ियों का खेल लगने लगेगा ।

रिक्तता की वे अनुभूतियाँ आपसी सहभागिता के अभाव का ही परिणाम हैं । आर्थिक या भौतिक आघात न लगने पर भी इन स्थितियों में एक जबरदस्त भावनात्मक धक्का लगता है । वह धक्का आर्थिक आघात से भी अधिक गहरा होता है ।

वस्तुओं का उपार्जन सुविधाएँ बढ़ाता है । उनके सहारे हमें अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने की सुविधा मिलती है । मनुष्यों का सहयोग सुविधाएँ तो प्रदान करता ही है, सम्मान और विश्वास भी उससे जुड़ा रहता है ।

मानवीय सहयोग एक महत्वपूर्ण धन है । उसे पाने पर धन प्राप्ति जैसा ही सन्तोष मिलता है । यदि धन से सिर्फ वस्तुयें ही मिलें, सम्मान नहीं तो धन का उतना आकर्षण न रहे । जिस प्रकार शरीर के भरण-पोषण के लिए अन्न-जल आवश्यक है, उसी प्रकार आंतरिक क्षेत्र में सहयोग-सम्मान की आवश्यकता है । वह न मिले तो मनुष्य बेचैन हो उठता है, छटपटाने लगता है । हमारे समाज के विचारक, मनीषी मनुष्य की इन आंतरिक आवश्यकताओं से परिचित थे । सामाजिक विधि-निषेधों का निरन्तर उल्लंघन करने वाले व्यक्ति के लिए सामाजिक बहिष्कार का दण्ड-विधान यह बताता है । सामाजिक-बहिष्कार में व्यक्ति के शरीर को कोई दण्ड नहीं दिया जाता । बस उससे रोटी-रोजी का रिश्ता नहीं रह जाता । प्रत्यक्ष तौर पर कोई आर्थिक क्षति भी इससे नहीं पहुँचती, किन्तु सामाजिक सम्मान से वंचित किये जाने की पीड़ा इतनी गहरी और मारक होती है कि लोग काफी धन खर्च कर भी पुन: सामाजिक स्वीकृति पाने का प्रयास करने को सदा तत्पर रहते हैं । क्षमा भी माँगेंगे, प्रायश्चित-स्वरूप सामाजिक भोज आदि में अपना धन भी लगायेंगे और सामाजिक स्वीकृति पाने के लिए अधीर बने रहेंगे । यह सामाजिक सम्मान सद्भाव की आवश्यकता का ही प्रमाण है ।

जो बात समाज पर लागू होती है, वही परिवार पर । परिवार वालों का सम्मान एवं विश्वास न मिले, तो समाज में भी प्रतिष्ठा घटती है । परिवारों से मिलकर ही समाज बनता है और दोनों की मान्यताएँ एक ही होती हैं । परिवार को सुन्दर, श्रेष्ठ बनाने का अर्थ है-समाज में श्रेष्ठता एवं सौन्दर्य की वृद्धि । जबकि परिवार के दोष दुर्गुण समाज के ही एक अंग के दोष दुर्गुण होने के कारण उसे भी क्षति पहुँचाते हैं, साथ ही उनके समाज-शरीर में फैलने की भी सम्भावना रहती है । इसी प्रकार सामाजिक वातावरण का परिवारों पर प्रभाव पड़ता है । एक-दो परिवारों का भीतरी वातावरण कितना भी श्रेष्ठ हो, समाज में ओछी प्रवृत्तियाँ प्रबल हों तो उससे उन परिवारों के सदस्य भी प्रभावित होते देखे जाते हैं । अत: पारिवारिक-व्यवस्था एक सामाजिक प्रश्न भी है । पारिवारिक मर्यादाएँ सदा सामाजिक-स्वीकृति से निर्धारित होती हैं ।

परिवार की व्यवस्था के लिये आवश्यक नियमों का पालन न करने वालों को दण्ड दिया जाना जरूरी है । परिवार के प्रति कर्त्तव्यों की पूर्ति न किये जाने को न तो परिवार के सदस्यों द्वारा सहा जाना चाहिए, न ही समाज

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के अन्य सदस्यों द्वारा । इसके लिये आवश्यक उपायों की व्यवस्था की जानी चाहिए । पारिवारिक असहयोग ही उस हेतु उचित पग है ।

असहयोग एक प्रभावी उपाय है और वह आत्मीयता के साथ घनिष्ट रूप से जुड़ा है । आधुनिक युग में अमरीकी विचारक थोरो ने सर्वप्रथम असहयोग तथा सविनय अवज्ञा का दर्शन सामने रखा । रूसी विचारक साहित्यकार टालस्टाय ने भी इसकी विवेचना की । श्री अरविन्द ने भारत में अँग्रेजों के विरुद्ध सर्वप्रथम असहयोग तथा सविनय अवज्ञा का आह्वान किया । महात्मा गाँधी ने तो उसे एक व्यापक राष्ट्रीय अभियान ही बना डाला ।

अपने हिन्दी साप्ताहिक 'हरिजन सेवक' के २० अप्रैल १९४० के अंक में गाँधी जी ने असहयोग की विवेचना करते हुए लिखा था कि "कभी-कभी असहयोग भी उतना ही कर्त्तव्य रूप हो जाता है, जितना कि सहयोग ।" उन्होंने इस लेख में प्रतिपादित किया कि अन्याय तथा अत्याचार के प्रतिकार का मुख्य साधन है अहिंसक असहयोग ।

श्री जहवाहरलाल नेहरू ने अपनी पुस्तक 'नेहरू आन गाँधी' में असहयोग की गाँधी-दृष्टि का विश्लेषण करते हुए बताया कि गाँधीजी का सदैव कहना था कि "सत्याग्रह, असहयोग और सविनय अवज्ञा-दु:ख सहने के नियम का ही आधुनिक नाम है । इन्हें खोजने वाले ऋषि, न्यूटन से अधिक प्रतिभाशाली थे ।"

इस प्रकार असहयोग की दार्शनिक पृष्ठभूमि में दु:ख-सहन का नियम सम्मिलित है । इसका अर्थ है कि स्वयं कष्ट सहकर भी अन्याय को सहयोग देना बन्द कर देना । इस कष्ट-सहन के दो रूप हैं पहला आर्थिक भौतिक कष्ट, दूसरा मानसिक कष्ट । आत्मीय स्वजन का असहयोग करने में मानसिक कष्ट होता है । जो अपना है, उसे ही सहयोग न दें, उसे दूर हो जाते देखें । इससे मानसिक व्यथा होनी स्वाभाविक है । तो भी न्याय-नीति, मर्यादा की रक्षा के लिये यह कदम उठाना कर्त्तव्य हो जाता है । अन्यायी समर्थ है तो उससे असहयोग करने पर उससे मिलने वाले आर्थिक लाभ आदि से भी वंचित होना ही पड़ेगा । न्याय-पक्ष के लिये यह दु:ख-सहन भी आवश्यक है ।

अत: पारिवारिक कर्त्तव्यों की अवहेलना करने वालों, परिवार में अव्यवस्था फैलाने वालों के लिये असहयोग की ही दंड-व्यवस्था उचित है । परिवार के लिये यह सबसे उपयोगी तथा प्रभावी अस्त्र है । इससे परिवार की शालीनता-मर्यादा की रक्षा तो होती ही है, आत्मीयता का मनोभाव भी बना रहता है । जिससे असहयोग किया जा रहा है, उसे कोई क्षति नहीं पहुँचाई जा रही, मात्र अन्याय-अनौचित्य के प्रति रोष एवं विरोध व्यक्त किया जा रहा है । कर्त्तव्य-विमुख व्यक्ति द्वारा अपने को सुधार लेने और कर्त्तव्य-पालन में जुट जाने पर असहयोग का कदम वापस ले लिया जायेगा ।

पारिवारिक शालीनता तथा दायित्व के निर्वाह का कर्त्तव्य न करने वाले व्यक्तियों के प्रति ऐसे ही असहयोग का अस्त्र काम में लाया जाना चाहिए, भले ही वह व्यक्ति कितना भी कमाऊ, समर्थ एवं प्रभावशाली हो । जब वह परिवार के लिये अपना कर्त्तव्य ही नहीं कर रहा, तब उसकी समर्थता, प्रभाव एवं कमाई किस काम की । माँ-बाप, भाई-बहिनों की चिन्ता न कर, अपनी कमाई को अपने और अपनी पत्नी-संतान के ही शरीर-सुखों एवं मौज-मजे के लिए खर्च करते रहने वाले व्यक्तियों, घर की प्रतिष्ठा को धक्का पहुँचाने वाले दुर्व्यसनी सदस्यों तथा घर में शांति-संतुलन को बिगाड़ने रहने वालों के प्रति यही सौम्य, किन्तु प्रभावी हथियार काम में लाना उचित है । ऐसे लोगों को परिवार का सम्मानित सदस्य आगे न बनाये रखा जाय । अपने पाप-ताप को वे अकेले ही भोगें । जब अनौचित्य ही करना है, तो परिवार से अलग स्वतंत्र रहकर करे । परिवार से उनका तब तक कोई सम्बन्ध न रहे, जब तक वे अपनी भूल एवं अपराध स्वीकार कर पूरी तरह कर्त्तव्य का निर्वाह करने में न जुट जायें । पारिवारिक असहयोग के इस कदम का प्रचलन होना चाहिए । तभी परिवार-संस्था सुदृढ़ होगी ।

कबीर ने कहा है-

"तीखी मार कबीर की, मन से दिया निकार।"

उपेक्षा की चोट व्यक्तियों को भीतर तक तिलमिला देती है । जिनसे कल तक स्नेह-विश्वास, आदर-सद्भाव का अकूत अनुदान प्राप्त होता रहता था, आज वे ही हमें अपने मन से निकाल बैठे हैं । यदि निकाला नहीं भी है तो उस उच्चासन के स्थान पर उपेक्षा और अवहेलना का स्थान दे दिया है । यह अनुभूति व्यक्ति को कचोटेगी । तब उसे ध्यान आयेगा कि हमारे प्रति परिवार के लोगों ने जो उचित अपेक्षाएँ पाल रखी थीं, उन्हें जब हम पूरा नहीं कर रहे थे, जब हमारे मन में परिवार के नाम पर बस बीबी-बच्चे ही छाये रहते थे, शेष सब नगण्य और हेय हो गये थे, तब उन लोगों को कैसा लगता रहा होगा ? यह अनुभूति उस नशे को उतार सकती है, जिसके कारण कर्त्तव्यों की अवहेलना का उन्माद उस पर छाया था । अत: औचित्य, न्याय, नीति एवं परिवार-संस्था के पक्ष में पारिवारिक असहयोग का अस्त्र ही सर्वाधिक लाभकारी एवं परिणामकारी हो सकता है ।

परिवार-संस्था का आधार कामुकता नहीं, आत्मीयता

विवाह के आधार पर परिवार बसाने की परम्परा प्रकृतिगत है । इसमें प्रवृत्त करने के लिए नियति ने कामुकता और यौनाचार को पकड़ने-फँसाने वाले जाल के रूप में विनिर्मित किया है । मनुष्य समेत सभी जीवधारी इसी गति चक्र पर परिभ्रमण करते हैं और लम्बी जिन्दगी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

काटने के लिए खट्टे-मीठे अनुभवों से भरा हुआ एक ऐसा व्यवसाय प्राप्त कर लेते हैं, जो जन्म से लेकर मरण तक अपनी धुरी पर परिभ्रमण करता ही रहता है ।

कामुकता से जुड़ा हुआ जाल-जंजाल प्राय: सभी जीवधारियों में चलता है, पर उनके प्रयोक्ता एक अति छोटे कच्चे धागे से बँधते हैं । विनोद समाप्त होते ही अपना-अपना रास्ता नापते हैं और उनकी परम्परा में जितना पारिवारिक सहयोग अभिभावकों से बन पड़ता है, उतना वे निभा भी देते हैं । घोंसले बनाने और बच्चों के लिए खुराक जुटाने में ही किन्हीं जीवों के नर सहायता करते हैं । मात्र मादायें ही बच्चों की कुछ समय रखवाली करती देखी जाती हैं । जब वे अपने पैरों खड़े होने लगते हैं तो मादा भी उनको सदा के लिए न सिर्फ भुला देती है, वरन् इतने से ही प्राणियों का परिवार समाप्त हो जाता है, पर मनुष्य परिवार तो एक समूची मानवी सत्परम्परा का केन्द्र है । उसका यदि ठीक तरह निर्वाह किया जा सके तो घर को तपोवन अथवा स्वर्गोपम बनाने की प्रक्रिया सहज सम्पन्न हो सकती है ।

वस्तुत: दो पवित्र आत्माओं के मिलन संयोग का नाम विवाह है । मात्र यौनाचार के लिए ही मनुष्य को पवित्र बन्धन में नहीं बाँधा जाता । इस छोटे प्रयोजन के लिए अपनी अधिकांश सुविधाओं और सम्भावनाओं का उत्सर्ग कर देना कदाचित् कोई भी बुद्धिमान स्वीकार न करता । इन्द्रियों की अपनी-अपनी ललक-लिप्सा उभरती रहती है और जिस-तिस प्रकार एकाकी या दूसरों के सामयिक सहयोग से उस ललक-लिप्सा को पूरी कर लेते हैं । कृमि-कीटक, पशु-पक्षी इस प्रकार के क्रीड़ा कौतुक समय-समय पर करते रहते हैं, पर कुछ अपवादों को छोड़कर कोई वैसा गृहस्थ नहीं बसाता जैसा कि मनुष्य की विवाह शृंखला में बँधने के साथ ही सँजोना और निभाना पड़ता है ।

दोनों पक्षों के पास इसके उपरान्त स्वतंत्रता नाम मात्र की रह जाती है । दोनों को एक-दूसरे के अनुशासन में चलना पड़ता है । साथ ही इतना अधिक योगदान देना पड़ता है कि उसकी तुलना में यौनाचार का मनोरंजन राई-रत्ती जितना ही गिना जा सकता है । स्त्रियों को तो सन्तानोत्पादन और शिशुओं के भरण-पोषण में प्राय: अधिकांश समय खपा देना पड़ता है । पुरुष के परिश्रम और बुद्धि कौशल के द्वारा जो उपलब्धियाँ हस्तगत होती हैं उनका वे निजी प्रयोजन में तो नगण्य जितना ही उपयोग कर पाते हैं । शेष तो उन्हें स्त्री-बच्चों के लिए, परिजनों के लिए ही उत्सर्ग करना पड़ता है । मोटी दृष्टि से हिसाब लगाने पर दोनों ही पक्ष इसी प्रयोजन के लिए उस सारी क्षमता को खपाते रहते हैं, जिसे यदि मात्र अपनी सुविधा या प्रगति के लिए लगाया गया होता तो बहुत कुछ ऐसा पाया जा सकता था, जिसकी गणना महत्वपूर्ण उपलब्धियों में होती । इतने पर भी प्रचलन ऐसा है कि नितान्त अपंग-असमर्थों को छोड़कर प्राय: सभी विवाह करते हैं ।

प्रश्न यही उठता है कि जिसमें मोटी दृष्टि से जब मात्र घाटा ही घाटा है, तो उस व्यवसाय में प्रवृत्त होने के लिए सर्वसाधारण में उत्साह क्यों पाया जाता है ? जानबूझ कर नर-नारी अपनी क्षमताओं को इस छोटे दायरे में खपाते रहने में क्यों सन्तोष मानते हैं ?

यहाँ प्रकृति की उस अदृश्य परम्परा को ध्यान में रखना होगा, जिसके अनुसार उसने अन्य सभी प्राणियों से मनुष्य को अतिरिक्त विशेषताओं से सम्पन्न बनाया है और साथ ही यह नियोजन भी किया है कि वह अधिक सुयोग्य-संरक्षण, प्रशिक्षण, सहयोग एवं संबर्द्धन के आधार प्राप्त करते हुए अपनी विशिष्टता को न केवल बनाये रहे, वरन् बढ़ाता भी चला जाय । यह सुविधा शैशव की असहाय अवस्था में उसे तभी मिल सकती है, जब परिवार परिकर के बीच उसका निर्वाह और विकास सुव्यवस्थित रूप से चल सके । यह व्यवस्था ठीक तरह बन सके, इसके लिए परिवार परिकर का आश्रय चाहिए । एक नये परिवार की सृष्टि विवाह के आधार पर ही सम्भव होती है । उस बंधन में कामुकता की उमंग का यत्किंचित समाधान तो है, पर साथ ही यह भी जुड़ा हुआ है कि पाणिग्रहण के कुछ ही समय उपरान्त सन्तानोत्पादन का सिलसिला चल पड़ता है और फिर उसे सँभालने-सँजोने और विकसित करने के लिए जन्म भर पति-पत्नी दोनों को ही खपना पड़ता है । वस्तुस्थिति को देखते हुए मानवी पारिवारिक संरचना के पीछे प्रमुख प्रयोजन यही प्रतीत होता है कि भावी पीढ़ियों को अधिक परिष्कृत बनाने के लिए पति-पत्नी प्रवृत्त हों । चूँकि वह कार्य असाधारण जिम्मेदारियों और जोखिमों से भरा है, इसलिए उसे सहज स्वीकार करने में तत्पर न होने की आनाकानी आड़े आ सकती है । इसलिए प्रकृति ने इसका आश्चर्य भरा सरंजाम जुटाया है और वह है-काम कौतुक, नर-नारी के बीच पाया जाने वाला आकर्षण-यौनाचार के क्षणों में मिलने वाला रसास्वादन । चूहे को पिंजड़े में फँसाने के लिए उसमें घी की सुगंध वाली रोटी टाँगी जाती है । ठीक उसी प्रकार कामुकता का आकर्षण इसलिए बनाया गया है कि उस आधार पर संतानपालन के भारी-भरकम दायित्व को वहन करने के लिए मनुष्य स्वेच्छापूर्वक सहमत हो सके । इसे मानवी विकास विस्तार की प्रक्रिया भी कह सकते हैं ।

चूँकि मनुष्य अन्य प्राणियों से ऊँचा है अत: उसे भगवान का विशेष अनुग्रह अतिरिक्त क्षमता वाले शरीर, मस्तिष्क और अन्त:करण के रूप में मिला हुआ है । इसके लिए उसका परिवार सामान्य प्राणि स्तर से ऊँचा भी हो सकता है । व्यक्तित्व विकास की उसमें असीम संभावनायें विद्यमान हैं । हँसने-हँसाने, उठने-उठाने, मिल-बाँट कर खाने के तत्व इसमें जुड़े हुए हैं । उच्चस्तरीय पारिवारिकता में कामुकता का रोल होना आवश्यक नहीं । नर-नारी के बीच घनिष्टता होते हुए भी भागिनी,

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुत्री और माता की पवित्र भावना अक्षुण्ण रह सकती है । यहाँ तक कि पत्नी को भी धर्मपत्नी, अर्धांगिनी के रूप में आत्मवत् समझा जा सकता है । ऋषिकल्प आत्माएँ नर और नारी की समता देते हुए विशाल परिवार की परिकल्पना कर सकते हैं और उसे व्यावहारिक रूप दे सकते हैं । गुरुकुलों में यही होता था । साधु समाज में भी ऐसे ही संगठन बनते आये हैं । लोकमंगल के लिए परिव्राजक भी अपनी शिक्षा साधना के लिए बौद्ध विहारों, वानप्रस्थ-आरण्यकों जैसा प्रबन्ध कर लेते हैं । इन्हें भी उच्चस्तरीय परिवार ही कहना चाहिए । इनमें पुरुष या मात्र स्त्रियाँ भी हो सकती हैं । जब कामुकता की उपेक्षा कर दी गई तो विशाल परिवार की उच्चस्तरीय संरचना में कहीं कोई कठिनाई शेष नहीं रह जाती । ऐसे परिवार देव संगठनों के रूप में उच्चस्तरीय प्रयोजनों में संलग्न रहते और उससे कहीं अधिक आनन्द प्राप्त करते हैं जैसा कि सामान्यतया सद्गृहस्थों के परिवार में पाया जाता है । मिलजुल-कर अधिक प्रगति करना ही विवाह संस्था का उद्देश्य है । इनमें यदि सघन आत्मीयता का समावेश हो, तो हर कोई उस पवित्र बन्धन में बँधकर उच्चस्तर का आनन्द प्राप्त कर सकता है ।

उपेक्षा नहीं, सेवा कीजिए

गृहस्थ जीवन की सफलता के लिए शिक्षा, सम्पन्नता और योग्यता ही पर्याप्त नहीं है । गृहस्थ जीवन का आधार है पति-पत्नी और उन दोनों के जीवन में सामंजस्य तथा सम्बन्धों में मधुरता । यह हो तो ही पारिवारिक जीवन सुखी बिताया जा सकता है, अन्यथा घर में छोटी-छोटी बातों को लेकर दिन-रात चिख-चिख होती रहती है और पति-पत्नी कितने ही योग्य सुशिक्षित क्यों न हो, घर का वातावरण कलह और तनाव से ही भरा रहता है ।

उन परिवारों की ओर निगाह दौड़ाई जाय जहाँ कि पति-पत्नी दोनों ही अशिक्षित और गँवार हैं, परन्तु एक दूसरे के प्रति समर्पित हैं । पत्नी स्वयं को पति की सेविका, दासिका तथा उसकी इच्छाओं की डोरियों से बँधी कठपुतली मानती और पति अपने आपको उसका स्वामी मालिक । वहाँ बहुत कुछ परिवार का वातावरण सुखी, शांत दिखाई देता है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि इन पति-पत्नी के सम्बन्ध मधुर ही रहते हैं । तनाव, क्लेश-कलह उन परिवारों में भी होता है, परन्तु पत्नी बचपन से मिले संस्कारों के कारण सब कुछ सहती जाती है । इस कारण परिवार में शान्ति भले ही दिखाई दे, लेकिन पत्नी उसकी प्रतिक्रिया अन्य और रूपों में प्रकट कर देती है । जैसे उसका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, छोटी-छोटी बातों को लेकर वह बच्चों को मारपीट देती है, परिवार के अन्य सदस्यों से वह अपेक्षित मधुरता नहीं बरत पाती आदि आदि ।

आधुनिक शिक्षित परिवारों में जहाँ पत्नी भी अपना दर्जा पुरुष के बराबर मानती है वहाँ सीधी टकराहट होती है, परिणाम होता है-पति-पत्नी से असन्तुष्ट और पत्नी-पति से असन्तुष्ट । दोनों एक दूसरे के प्रति शिकायतों से भरे हुए और दोनों ही एक दूसरे से भीतर ही भीतर ऊबे हुए इन कारणों से परिवार हर घड़ी टूटन के कगार पर खड़े रहते हैं । यदि पति-पत्नी एक दूसरे से सामंजस्य स्थापित कर सकें और वैसा ही स्नेह, सद्भाव बरतते रहें, जैसा कि दाम्पत्य-जीवन में प्रवेश करते समय नवदम्पत्ति के रूप में बरतते थे तो परिवार का वातावरण सुख और आनन्द से परिपूरित हो जाय ।

इस तथ्य को सभी स्वीकारते हैं कि पति-पत्नी एक-दूसरे के प्रति सामंजस्य बनाये रहने पर ही गृहस्थी को सुख-शान्ति का आगार बना सकते हैं । परन्तु जानते हुए भी यह क्यों नहीं हो पाता । इसके कारण हैं-पहला तो यह कि प्रत्येक व्यक्ति में कुछ न कुछ त्रुटियाँ जरूर होती हैं, पति-पत्नी विवाह से पूर्व अपने जीवन साथी की एक आदर्श छवि अपने मन में बनाये रहते हैं । विवाह होने पर नये-नये साथी के प्रति भावुकता भरा आकर्षण उन त्रुटियों को नजरअन्दाज करा देता है, परन्तु जैसे-जैसे परिचय पुराना होता जाता है पूर्व में सँजोयी गयी वह छवि धूमिल पड़ने लगती है और एक-दूसरे की कमियाँ अखरने लगती हैं ।

आवश्यक है कि मनुष्य होने के नाते अपने जीवन साथी की कमियों, त्रुटियों और कमजोरियों के प्रति सहिष्णुता का दृष्टिकोण अपनाया जाय । इसका यह अर्थ नहीं, त्रुटियों को सहन करने से आशय जीवन साथी के व्यक्तित्व और चरित्र को दूषित ही रहने देना है । विवाह ही इसलिए किया जाता है कि पति-पत्नी एक प्रगाढ़ आत्मीय साथी के रूप में एक-दूसरे का विकास करें । लेकिन जीवन साथी की त्रुटियों को पुलिस अधिकारी की तरह देखने और उसे अपराधी समझने की जो प्रवृत्ति है वह दाम्पत्य जीवन की सरसता को तो तोड़ती ही हैं ।

यहीं से एक दूसरे के प्रति शिकायत रखने और असन्तोष व्यक्त करने की शुरूआत होती है । वस्तुतः शिकायत इसलिए नहीं होती कि पति या पत्नी में कोई अवगुण है, बल्कि शिकायत इसलिए रहती है कि उस अवगुण के कारण स्वयं अपने को असुविधा हो रही है । जैसे मान लीजिये पति रिश्वत ले रहा है, मिलावट कर रहा है, चोरबाजारी या कालाबाजारी कर रहा है तो आमतौर पर पत्नियाँ इन आपराधिक प्रवृत्तियों के लिए पति को नहीं रोकतीं । सामान्य गृहणियाँ अपने पति के शराब पीने से भी परहेज नहीं करती हैं । शराब पीना बुरा इसलिए लगता है कि पति शराब पीकर उसके साथ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

मारपीट या गाली-गलौज करता है अथवा सारी आमदनी की भेंट चढ़ा देता है, जुआ खेलने वाले पति जब जुए में बहुत सी रकम जीत कर लाता है तो कई पत्नियाँ प्रसन्नता व्यक्त करती हैं, परन्तु जब वह रकम हार कर आता है और दुबारा पैसा माँगता है तो शिकायत होने लगती है ।

इसी प्रकार पत्नी पड़ौस के लोगों से, घर के अन्य सदस्यों से चाहे जितना लड़-झगड़ ले कोई गम्भीर बात नहीं है । बात गम्भीर तो तब बनती है जब पत्नी पतिदेव की सेवा टहल में कोई कमी कर देती है या उसको इच्छित सुविधाएँ नहीं दे सकती है । कहने का अर्थ यह कि पति-पत्नी को एक दूसरे के अवगुणों से उतनी घृणा नहीं होती जितनी कि उनके कारण स्वयं को होने वाली असुविधा से । इसी मनोवृत्ति के कारण पति-पत्नी एक-दूसरे के विकास में सहायक होने के स्थान पर एक-दूसरे को परेशान करने वाले शत्रु की तरह बरताव करने लगते हैं ।

अवगुणों का परिष्कार या व्यक्तित्व का परिमार्जन ही यदि उद्देश्य रहे तो उससे पति-पत्नी एक-दूसरे के प्रति इतना भयंकर रुख नहीं अपनाते जितना कि आमतौर पर अपना लेते हैं । अवगुण या व्यक्तित्व की दुर्बलताएँ तो बीमारियों की तरह हैं जिन्हें उपचार से ठीक किया जाना चाहिए । बीमार और कमजोर आदमी को कोई बैर अथवा प्रताड़ना की दृष्टि से नहीं देखता, बल्कि उसके प्रति सहानुभूति ही रखता है । उद्देश्य यदि वस्तुतः अपने जीवन साथी के व्यक्तित्व का परिमार्जन ही है तो उसके लिए सहानुभूतिपूर्वक उपचार किया जाना चाहिए, न कि एक-दूसरे को लताड़ा या फटकारा जाय । परन्तु असली शिकायत तो स्वयं को होने वाली असुविधा है और इसी लिए सुधार के स्थान पर शोषण या दमन के प्रयास होते देखे जाते हैं ।

पति-पत्नी में एक दूसरे-से असन्तोष भी इसीलिए रहता है कि उनकी अपेक्षाएँ पूरी नहीं होतीं । उदाहरण के लिए, पति की शिकायतें हो सकती हैं कि पत्नी उस पर बराबर ध्यान नहीं देती, समय पर खाना नहीं बनाती अथवा उसकी आकांक्षा के अनुरूप सज-धज कर नहीं रहती, उसके पास अधिक समय तक नहीं बैठती आदि आदि । पत्नी भी अपनी उपेक्षा होने, माँगें जिन्हें आवश्यकता भी कहा जाता है-पूरी नहीं की जाती, पति उसे अपने साथ बाजार घुमाने नहीं ले जाता, सैर-सपाटे नहीं कराता है अथवा अपने दोस्तों में ही लगा रहता है आदि-आदि ।

यह अपेक्षाएँ किया जाना स्वाभाविक है, पर कई दृष्टियों से ये गौण महत्व की भी हो जाती हैं । जैसे परिवार में पति या पत्नी के अतिरिक्त दूसरे अन्य सदस्य भी होते हैं । उनका भी मुखिया और गृहणी पर अधिकार है । यों भी कहा जा सकता है कि उनके लिए भी समय निकालना आवश्यक होता है । परन्तु पति या पत्नी चाहते हैं कि हमारा जीवन साथी हमारा सारा समय हमारे लिए ही लगाये ।

यह अनुचित है और इस अपेक्षा के मूल में जो कारण रहते हैं वही अन्य तमाम समस्याएँ पैदा करते हैं । सारे असन्तोष की जड़ यह है कि दम्पत्ति का उद्देश्य एक-दूसरे की सेवा करना, परस्पर सहयोग द्वारा एक-दूसरे का विकास करना नहीं, बल्कि जीवन साथी का उपयोग अपनी सुविधा के लिए करना होता है । एक विचारक ने कहा है-कि दाम्पत्य-जीवन में असन्तोष तथा असफलताएँ इसलिए नहीं आतीं कि किसी में कोई कमी है, बल्कि असफलता का मुख्य कारण तो यह है कि दोनों घटक एक दूसरे की सेवा करने के स्थान पर एक-दूसरे का शोषण करने में ज्यादा लगे रहते हैं ।

इस दृष्टिकोण को यदि अपनाया जा सके और पति-पत्नी एक-दूसरे के प्रति सेवा, सद्भावना, सहिष्णुता और सुधार के कर्त्तव्य पूरे करते रहें तो दाम्पत्य जीवन में सुशान्ति का स्नेह, मधुरता का निर्झर बहाया जा सकता है ।

सुसंस्कृत परिवार का निर्माण कैसे हो ?

पारिवारिक कलह तथा अव्यवस्था से ऊबकर लोग संस्था को ही तोड़ देने की पेशकश करने लगे हैं, किन्तु उन्हें इस विषय में पाश्चात्य देशों के उदाहरण से शिक्षा लेनी चाहिए । कुछ समय से योरोपीय देशों में सम्मिलित परिवार प्रथा को तोड़कर सुख-शान्ति के प्रयोग किए जा रहे हैं, किन्तु वांछित उद्देश्य की पूर्ति होती नहीं दीखती ।

विवाह होते ही तरुण, माँ-बाप और छोटे भाई-बहिनों को छोड़कर परिवार से अलग हो जाते हैं । कुछ समय तो इनके दिन सुख-चैन से बीतते, फिर पति-पत्नी में कहासुनी होने लगती है । उसका जहाँ एक कारण सद्गुणों का अभाव है, वहाँ दूसरा कारण यह भी है कि जब पति-पत्नी अलग अकेले रहते हैं तब केवल उन दोनों को ही समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिससे जल्दी ही चिड़चिड़े बन जाते हैं । कोई समस्याओं में हाथ बँटाने वाला नहीं होता । यह सुविधा तो सम्मिलित परिवार में ही सम्भव हो सकती है । सम्मिलित परिवार की समस्या सारे परिजनों की होती है । हर आदमी उसमें हाथ बँटाता है । उनका दबाव किन्हीं दो पर नहीं पड़ता । सम्मिलित परिवारों में एक दूसरे के अनेक लोग सहायक रहते हैं । थोड़ा-थोड़ा करके सारा भार तथा उत्तरदायित्व बँट जाता है, सभी हल्के रहते हैं ।

पृथक परिवारों में यह सुविधा नहीं रहती । सारी पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक तथा वैयक्तिक समस्याओं का भार दो पति-पत्नी पर ही पड़ता है, जिससे वे शीघ्र ही थक जाते हैं और एक-दूसरे से लड़ने-झगड़ने लगते हैं । तलाक और सम्बन्ध-विच्छेद की स्थिति आते देर नहीं लगती । इसका भी कारण है । वह यह कि सम्मिलित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिवारों में गुरुजनों का दबाव रहता है । पति-पत्नी का झगड़ा ज्यादा नहीं बढ़ पाता । एक तो वे अदब तथा शर्म के मारे स्वयं ही लड़ने में संकोच करते हैं, दूसरे जब कभी उनमें कहा-सुनी की नौबत आती है तो दूसरे लोग मध्यस्थ बनकर उनको समझाते हैं और बात जहाँ की तहाँ समाप्त हो जाती है । वह बढ़कर तलाक तथा सम्बन्ध विच्छेद तक नहीं पहुँच पाती ।

परिवार से टूट-फूट कर लोग अलग घर तो जरूर बना लेते हैं लेकिन पारिवारिक सुख-शान्ति से वंचित ही बने रहते हैं । पति-पत्नी तो आपस में झगड़ते ही रहते हैं, साथ ही जब बच्चे हो जाते हैं तो वह भी ज्यों-ज्यों बढ़ते जाते हैं, समस्याएँ बढ़ाते जाते हैं । अनेक प्रकार की अवांछनीय बातें करते और सयाने होने पर परिवार से अलग जा बसते हैं । बूढ़े माता-पिता बुद्धिमत्तापूर्वक जो कुछ जवानी में मितव्ययिता से बचा पाते हैं, वही उनके बुढ़ापे का सहारा और सम्बल बनता है । जो बच्चों को लाड़-प्यार देने के लिए खाली हाथ ही बने रहते हैं उनका बुढ़ापा बुरी तरह कंटकाकीर्ण हो जाता है । इस प्रकार पाश्चात्य देशों में तरुण माता-पिता को अनाथ छोड़ने का पाप भी लेते हैं, पारिवारिक सुख-शान्ति भी नहीं पाते ।

परिवार के सम्मिलनअथवाप्रथकता पर घर की सुख-शान्ति निर्भर नहीं है । उसका हेतु कुछ और ही है-वह है परिजनों का सद्गुणी होना । परिवार के लोग यदि सद्गुणी हैं तो परिवार चाहे मिलकर चले, चाहे पृथक उसमें शांति बनी रहेगी और यदि वे दुर्गुणी हैं तो किसी भी अवस्था में सुख-शान्ति रह सकना सम्भव नहीं । अच्छा यही है कि आपस में मिल-जुलकर रहा जाय और सारे परिजनों को अधिक से अधिक सद्गुणी बनाया जाये ।

सोचने की बात है कि जब पृथक परिवार प्रथा पाश्चात्य देशों में सफल नहीं हो रही है, जहाँ न विधवाओं का प्रश्न है, न वृद्धों की समस्या । वैधव्य जैसा वहाँ कोई दुर्भाग्य नहीं है और वृद्धता के विषय में भी कोई चिन्ता की बात नहीं है । एक तो वहाँ लोग प्रायः सम्पन्न होते ही हैं, दूसरे बेसहारा वृद्धों के लिए सरकार की ओर से वृत्तियाँ मिलती हैं जिससे वे अपनी जीवन नौका पार लगा लेते हैं । बीमारी की दशा में अस्पताल और नर्सें अच्छी देखभाल कर देती हैं, किन्तु भारतीय समाज में इन सुविधाओं का अभाव है । विधवाओं की समस्या का कोई समुचित हल, कुरीतियों तथा जड़ रूढ़ियों के कारण, कार्यान्वित नहीं हो पा रहा है । अनाथालयों की दशा गिर गई है । वृद्धों तथा अपाहिजों के लिए ऐसी वृत्तियों की कमी है जिनके सहारे वे अपना शेष जीवन ठीक प्रकार से यापन कर सकें । भारतीय सभ्यता तथा समाज रचना का तकाजा है कि यहाँ सम्मिलित परिवार प्रथा सुरक्षित रखी जाये । जरूरत केवल इस बात की है कि परिवारों का वातावरण तथा सदस्यों का स्वभाव सम्मिलित प्रथा के अनुकूल ढाला जा सके जिससे कि उनमें कलह, विद्वेष अथवा विवाद की परिस्थितियाँ न पनपने पावें । पारिवारिक सुख-शान्ति सम्मिलित अथवा पृथक परिवार प्रथा पर निर्भर नहीं है, वह निर्भर है सदस्यों के गुण, कर्म, स्वभाव की श्रेष्ठता पर ।

सभी अभिभावक चाहते हैं कि उनके बच्चे और उनके परिजन श्रेष्ठ बनें, आपस में प्रेमपूर्वक मिल-जुलकर रहें । उसके लिए वे सभी को समझाते और ऊँच-नीच सुझाते हैं । झगड़ने वाले सदस्यों को वे प्रेम का महत्व बतलाते, मिल-जुलकर रहने के लाभों से अवगत कराते और हर अवसर पर कुछ न कुछ उपदेश देते रहते हैं, किन्तु उसका कोई स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता । एक-आध दिन के लिए सदस्य शांतिपूर्वक रहते हैं और फिर लड़ने-झगड़ने लगते हैं । इस प्रभावहीनता के दो कारण हैं- एक तो यह कि यह उपदेश क्रम केवल उस समय चलता है जब कोई सदस्य आपस में लड़-झगड़ रहे होते हैं । उसके बाद बन्द हो जाता है । यदि यही उपदेश झगड़ा हो अथवा न हो, प्रतिदिन नियमित रूप से चलता रहे तो उनके संस्कार बनते रह सकते हैं और धीरे-धीरे सुधार हो सकता है । दूसरा कारण यह रहता है कि अभिभावक उपदेश तो देते रहते हैं, किन्तु स्वयं वैसा आचरण नहीं करते । आचरण के अभाव में उपदेश का कोई प्रभाव नहीं पड़ता । दीपक, दीपक से जलता जरूर है किन्तु जलते हुए दीपक से, बुझे हुये से नहीं । जो स्वयं गुणवान है, वही दूसरों को गुणवान बना सकता है, जो स्वच्छ है वही दूसरों को स्वच्छ बना सकता है । सच्चा उपदेश आचरण का प्रभाव है । जो उपदेश दिया जा रहा है, यदि वह उपदेशक के आचरण में चरितार्थ नहीं है तो उसका रंच प्रभाव भी किसी पर नहीं पड़ेगा । इस विषय में एक उदाहरण बहुत प्रसिद्ध है-

एक महात्मा इसके लिए प्रसिद्ध थे कि उनके उपदेश का दूसरों पर बड़ा अनुकूल प्रभाव पड़ता है । वे जिससे जो कुछ कह देते हैं वह वैसा ही करने लगता है । महात्मा जी का यह प्रभाव सुनकर एक स्त्री अपने दस साल के बालक को लेकर उनके पास गई और कहा- "महात्मा जी यह बच्चा गुड़ बहुत खाया करता है । डाक्टरों ने बतलाया है कि यदि यह गुड़ खाना बन्द नहीं करेगा तो बहुत बीमार पड़ जायेगा । आप कृपा करके इसे समझा दें जिससे गुड़ खाना बन्द कर दे । हम लोगों के कहने का तो इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता ।"

उस स्त्री की बात सुनकर महात्माजी कुछ गम्भीर हो गये, और थोड़ी देर विचार करने के बाद बोले-"इसको दस दिन बाद लेकर आना, तब मैं इसको गुड़ छोड़ने के लिये समझा दूँगा ।" स्त्री चली गई ।

दस दिन बाद लड़के को लेकर फिर आई । महात्माजी ने लड़के को गुड़ न खाने के लिए समझाया । और उसने उनकी बात मान ली । वहाँ बैठे अनेक आदमियों ने महात्मा से पूछा कि यह बात तो वे उस दिन भी कह सकते थे तब क्या कारण था कि उस दिन न कह कर आज दस दिन बाद कही ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

महात्माजी ने बतलाया कि तब मैं स्वयं ही गुड़ खाया करता था । यदि उस दिन लड़के को उसे छोड़ देने के लिए उपदेश देता तो उसका कोई प्रभाव न पड़ता । इन दस दिनों में मैंने गुड़ खाना छोड़ दिया और उसके प्रति अरुचि उत्पन्न कर ली । इस प्रकार मैं उपदेश करने का अधिकारी तो हो ही गया, साथ ही आशा है कि उपदेश का पूरा-पूरा प्रभाव बालक पर पड़ेगा । आचरणशून्य आदेश का उपदेशदाता न तो अधिकारी है और न उसका वांछित प्रभाव ही पड़ता है ।

प्राय: सभी अभिभावक चाहते हैं कि हमारे बच्चे, स्त्री, परिजन सभी अच्छे बनें, अच्छे रास्ते पर चलें, जैसा वे चाहें बनें । इसके लिए वे उन्हें समय-समय पर बहुत प्रकार से समझाते भी रहते हैं, उपदेश भी करते हैं किन्तु सब बेकार चला जाता है । न बच्चे सुधरते हैं और न परिजन इच्छानुकूल आचरण करते हैं । उसका कारण केवल यही है कि वे उन्हें उपदेश तो बहुत कुछ करते हैं, किन्तु यह आदर्श स्वयं आचरण में चरितार्थ नहीं करते ।

कहना न होगा कि दुर्गुणी परिजन उतना ही दु:ख देते हैं जितना शरीर में लगा हुआ कोई रोग । पारिवारिक सुख-शान्ति के लिए परिजनों का सुधार करना उसी प्रकार आवश्यक है जिस प्रकार शरीर को सुखी रखने के लिये रोग का उपचार । रोग, आग और दुर्गुण बड़ी जल्दी बढ़ जाने वाले होते हैं । रोग की यह समझकर उपेक्षा कर दी जाए कि जरा सी सर्दी-जुकाम है, इसकी क्या परवाह की जाए, तो यही छोटा सा रोग बढ़कर भयंकर रूप धारण कर लेता है और तब उसका उपचार दु:साध्य हो जाता है । चिनगारी समझकर आग की उपेक्षा कर दी जाए तो वह धीरे-धीरे बढ़कर दावानल का रूप धारण कर लेती है । इसी प्रकार दुर्गुण के प्रवेश करते ही यदि सुधार का प्रयत्न न किया जाएगा तो जल्दी ही वह स्वभाव का अंग बन जायेगा और तब उससे छुटकारा पा सकना सरल न रहेगा । इसलिए आवश्यक है कि अभी कोई विशेष बिगाड़ नहीं हुआ है कोई खास देर नहीं हुई है, इसलिए परिजनों के सुधार में आज से ही तुरन्त लग जाना चाहिए । ज्यों-ज्यों विलम्ब होता जायेगा बच्चों तथा परिजनों के दुर्गुण स्वभाव का अंग बनते जायेंगे और तब उनके सुधार के लिए बहुत प्रयत्न करना होगा और सफलता की आशा ज्यादा न रहेगी ।

जो पारिवारिक सुख-शान्ति के लिये सच्चाई के साथ इच्छुक हो गया उसे ही परिवार के सुधार में उसी तत्परता से लग जाना चाहिए जिस प्रकार स्वस्थ रहने का अभिलाषी व्यक्ति शरीर को नीरोग करने में लग जाता है । किन्तु यह काम केवल समझाने-बुझाने अथवा उपदेश देने से नहीं होगा । उपदेश का कोई यदि प्रभाव पड़ता भी है तो बहुत छोटी सीमा तक । गुणों की दिशा में परिवार का पूरा कायाकल्प तभी सम्भव होगा जब अभिभावक स्वयं अपना आचरण आदर्श बनायें और ऐसा कुछ भी न करें कि जिसका बुरा प्रभाव बच्चों अथवा परिजनों पर पड़े अथवा जो आप उनमें नहीं देखना चाहते ।

व्यक्तिगत आचरण के अभाव में परिवार सुधार की आकांक्षा और उसके लिए दिये जाने वाले उपदेश निराशाजनक ही रहेंगे । यदि किसी को अपनी इस आकांक्षा को मूर्तिमान देखना है कि उसके बच्चे भले, भोले, आज्ञाकारी और कुशाग्र बुद्धि बनें, समाज की सेवा और संसार में उन्नति करें । उनका शील स्वभाव समुज्जवल बनकर न केवल उन्हें, बल्कि अभिभावकों को भी प्रशंसनीय बना दें, सारे परिजन परस्पर प्रेम भाव, त्याग-भावना और उदारतापूर्वक रहें तो उसे स्वयं अपने चरित्र में इन गुणों का विकास करना होगा अन्यथा उनकी यह आकांक्षा उसी प्रकार अतृप्त रह जायेगी, जिस प्रकार अकर्मण्य निर्धन व्यक्ति किसी भी सुख-सुविधा के लिए तरसकर रह जाते हैं ।

परिवार सुधार के प्रयत्न में बच्चों का विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है । जो प्रौढ़ हो चुके हैं, उनके संस्कार दृढ़ तथा श्रमसाध्य हो चुके होते हैं किन्तु बच्चे विकासोन्मुख होते हैं । उनकी मनोभूमि कोमल तथा अनुकरणीय होती है । कोई भी डाला हुआ संस्कार वे शीघ्रता से ग्रहण कर लेते हैं । यदि पढ़ने वाला बच्चा ठीक से पढ़ता-लिखता नहीं है तो इसका उत्तरदायित्व तो शिक्षक के सिर जा सकता है किन्तु यदि उसकी आदतें खराब हैं, स्वभाव अपरिवारिक है तो उसका दोष माता-पिता पर ही आयेगा । जिस प्रकार कोई बालक शिक्षक अक्षर ज्ञान प्राप्त करता है, उसी प्रकार वह माता-पिता से स्वभाव ग्रहण करता है । ग्रहण भी नहीं करता, बल्कि वह उनके गुण दोषों में स्वयं ढलता जाता है । जिन माता-पिता में परस्पर कलह, संघर्ष और मनोमालिन्य चलता रहता है, उनके बालक भी स्वभावत: द्वेषी, ईर्ष्यालु, घृणा करने वाले और कटुवादी हो जाते हैं । उनमें अश्रद्धा तथा अनादर्श का दोष उत्पन्न हो जाता है, जो आगे चल पूरे परिवार, समाज और यहाँ तक धर्म तथा ईश्वर के प्रति अवज्ञा के रूप में प्रकट होता रहता है । ऐसे दुर्गुणी बालक स्वयं सुखपूर्वक रह सकेंगे अथवा पारिवारिक सुख-शान्ति का आदर कर सकेंगे, ऐसी आशा नहीं की जा सकती ।

बच्चे अधिक लाड़-प्यार और उपेक्षा से और परिजन स्वार्थ, अनुदारता, अधिकार भावना के प्रदर्शन से विद्रोही हो जाते हैं । इसलिए हर बुद्धिमान अभिभावक अपने में सद्गुणों का विकास कर समुचित रूप से बालकों का पालन पोषण तथा निर्माण करे तो उसकी पारिवारिक सुख-शान्ति निश्चय ही निर्धारित हो जायेगी ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्तिगत और सामूहिक प्रयत्नों की विभाजन रेखा

संगठित प्रयत्नों का महत्वपूर्ण पक्ष है-महिला जाग्रति एवं परिवार निर्माण की आवश्यकता से जन-जन को अवगत कराना और उसके लिए आवश्यक वातावरण तथा उत्साह उत्पन्न करना । एकाकी प्रयत्नों की अपनी सीमा है और सामूहिक प्रयत्नों की अपनी । दोनों एक-दूसरे के पूरक तो हैं, पर साथ ही दोनों के कार्यक्षेत्र की विभाजन रेखा भी हैं । परिवार के सदस्यों की व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान, उनके दुर्गुणों का निराकरण एवं सद्गुणों का अभिवर्द्धन करना है । यह कार्य निजी रूप से ही हो सकता है । इन प्रसंगों की सार्वजनिक चर्चा नहीं की जानी चाहिए । इससे अनावश्यक चर्चा फैलती है और प्रतिष्ठा पर आँच आती है । इसलिए वैयक्तिक समीक्षा के लिए एकान्त चर्चा ही कारगर सिद्ध हो सकती है । इस प्रकार के प्रसंग सार्वजनिक गोष्ठियों में नहीं उठाये जाने चाहिए । इसी प्रकार सामूहिक प्रयासों में मिल जुलकर काम करने की, सुदेश्यों में एक-दूसरे का अनुकरण करने की भावनायें उभारने तथा उत्साह बढ़ाने की आवश्यकता पूरी की जा सकती है । यह कार्य एक-एक व्यक्ति से अलग-अलग मिलकर नहीं किया जा सकता ।

संस्था संगठन को अपना काम अपने कंधों पर उठाना चाहिए और परिवारों की आन्तरिक विधि-व्यवस्था सँभालने के लिए उसी घर के लोगों को प्रोत्साहित करना चाहिए । क्या कार्य कैसे किया जा सकता है, इसके लिए परामर्श एवं मार्ग-दर्शन भर संगठन की ओर से दिया जाना चाहिए । रास्ता खोलना और सुधार क्रम को आगे बढ़ाना भी यदि ठीक तरह बन पड़े तो समझना चाहिए कि सामूहिक प्रयत्नों ने अपने हिस्से का काम पूरा कर लिया । निजी परामर्श को और सुधार के व्यक्तिगत पक्षों को घर के लिये स्वयं ही उठाये तो अधिक अच्छा है । किसका किस पर कितना प्रभाव है, इस तथ्य के आधार पर ही परामर्श कारगर हो सकते हैं । गिराने वाली सलाह तो कोई किसी को भी दे सकता है । ललचाने, फुसलाने और गिराने का काम अति सरल है, उसे कोई भी कर सकता है, किन्तु बुरी आदतों से छुड़ाने और परिष्कृत दृष्टिकोण अपनाने के लिए सहमत करना अत्यधिक कठिन है । इसके लिए सलाह ही पर्याप्त नहीं, दबाव और प्रभाव भी चाहिए । अस्तु, घर की सीमा में जो भी सुधार प्रयत्न चलें, उसमें न केवल शिक्षा को पर्याप्त समझी जाय, वरन् यह भी देखा जाय कि किसका, कितना प्रभाव पड़ सकता है ? उपयुक्त व्यक्तियों द्वारा उपयुक्त कार्य कराने का प्रतिफल ही आशाजनक होता है अन्यथा सलाह उपहासास्पद, उपेक्षित बन कर रह जाती है ।

यह व्यक्तिगत प्रसंगों की एकान्त चर्चा की बात हुई, अब देखना यह है कि क्या कोई ऐसा उपाय भी है जिससे परिवारों में शालीनता का शिक्षण अनवरत चलता रहे और उसका प्रभाव क्रमिक गति से-परोक्ष रूप से सदस्यों के अन्तःमन पर पड़ता रहे और परिपक्व होता रहे । यहाँ एक बड़ी कठिनाई यह है कि मनुष्य की मानसिक बनावट ऐसी है कि वह स्वेच्छाचार बरतने में प्रसन्न रहता एवं गौरव अनुभव करता है । दूसरों की सलाह मानने में उसे अपनी मौलिकता में कमी और प्रतिष्ठा में हेटी लगती है । देखा गया है कि किसी को सुधारने या आगे बढ़ने की सलाह दी जाय तो वह बुरा मानता है और उपेक्षा के रूप में अपनी असहमति व्यक्त करता है । कभी-कभी तो अवज्ञा और मनोमालिन्य तक की स्थिति उत्पन्न हो जाती है । चिढ़ में वह कार्य और भी अधिक होने लगता है, जिसकी रोकथाम की गई थी ।

सलाह कभी हलके-फुलके ढंग से ही दी जा सकती है । रोज-रोज उसी बात को दुहराने से 'पीछे पड़ना' समझा जाता है और उससे लाभ के स्थान पर उलटा विग्रह खड़ा होता है । एक ओर यह मानवी दुर्बलता सुधार प्रयत्नों को निरस्त करती है, दूसरी ओर यह एक जीवन-मरण जैसी आवश्यकता है । सुधार-परामर्श का क्रम न चलाया जाय तो दुर्गुण पनपते और पराभव ही होते चलेंगे । उनकी हानि समझ में न आवेगी और परिवर्तन की आवश्यकता का ही अनुभव न होगा । चुप रहना, कहने से अधिक बुरा, कहना चुप रहने से बुरा, इस असमंजस का निराकरण कैसे हो ? यह एक जटिल प्रश्न है ।

समाधान एक ही है-परोक्ष शिक्षा । पंचतन्त्र और पंचतन्त्र ग्रन्थ जिन्होंने पढ़े हैं वे जानते हैं कि विष्णु शर्मा ने उद्दण्ड राजकुमारों को किस प्रकार कथा-कहानियाँ सुनाकर परोक्ष शिक्षा दी थी और किस प्रकार उनको उच्छृंखलता की शिक्षा ग्रहण करने तथा सुधारने की सत्प्रवृत्ति में बदल दिया था । कथा-पुराणों का सारा कलेवर प्रायः इसी उद्देश्य से रचा गया है कि जनसाधारण को ऐतिहासिक प्रसंग सुनाकर उनके निष्कर्षों को समझने और अपने लिए नीति-निर्धारित करने का अवसर मिले । यह परोक्ष शिक्षण मनोरंजक भी रहता है, प्रतिष्ठा का प्रश्न भी नहीं बनता और सुनने वालों की मनोभूमि पर अपनी छाप भी जमाता जाता है । यही नीति परिवार निर्माण में कारगर हो सकती है अन्यथा प्रत्यक्ष उपदेश देने का क्रम चलाने पर लोग ऊबने लगेंगे और उन्हें सुनने तक में आना-कानी करने लगेंगे । ऐसी स्थिति न आने पाये, इसलिए परिजनों का चिन्तन और चरित्र परिष्कृत करने की महती आवश्यकता का आतुर निर्देशों के आधार पर नहीं, वरन् परोक्ष शिक्षा पद्धति अपनाकर धैर्यपूर्वक ही करना अधिक लाभदायक रहता है ।

उपयुक्त प्रशिक्षण के लिए कुछ कार्यक्रम निर्धारित किये गये हैं । वह सामान्य दीखते हुए भी, परोक्ष प्रशिक्षण की दृष्टि से अत्यन्त अनिवार्य हैं । (१) नमन, (२) वन्दन,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

आरती कीर्तन, (३) कथा-कहानी, (४) स्वाध्याय, (५) परामर्श गोष्ठी, (६) पर्व आयोजन, (७) संस्कार, (८) जन्म दिन आदि सभी प्रसंगों में आदर्शवादी प्रशिक्षण के परोक्ष तत्व पर्याप्त मात्रा में भरे पड़े हैं । उनके माध्यम से हर सदस्य को उपयोगी निष्कर्ष निकालने और उन्हें अपनाने का उत्साह उठता है । यह आत्मशिक्षण जितना कारगर सिद्ध होता है, उतना कोई और उपाय नहीं ।

उपरोक्त प्रशिक्षण प्रक्रिया में से कुछ कार्यक्रम ऐसे हैं जो नित्य चलने चाहिए और कुछ ऐसे हैं, जिन्हें कुछ बड़े रूप में उत्सव आयोजनों के रूप में चलना चाहिए । यह उत्सव होते तो घरेलू हैं और उनमें मात्र पड़ोसी, सम्बन्धी ही एकत्रित होने के कारण छोटे भी रहते हैं, किन्तु उतने से भी सामुदायिक चेतना उत्पन्न होती रहती है और उत्साह उभरता है । ऐसे अवसरों पर जो गीत प्रवचन होते हैं, वे किसी व्यक्ति विशेष को लक्ष्य करके नहीं कहे जाते हैं । सर्वसाधारण के लिए व्यक्त किये जाते हैं, अतएव उन्हें समझने-स्वीकार करने में उतनी कठिनाई नहीं होती जितनी कि निजी परामर्श में प्रतिष्ठा का प्रश्न खड़ा होने पर उत्पन्न होती है । प्रवचनों में सिद्धान्तों की चर्चा करते हुए वह सब कुछ कहा जा सकता है, जो उस परिवार की विशेष स्थिति को देखते हुए आवश्यक समझा गया है । परोक्ष इंगित करने वाले परामर्श शान्तिपूर्वक विचार करने की मन:स्थिति उत्पन्न करते हैं । फलत: उनका सत्परिणाम भी अधिक होता है ।

दैनिक शिक्षा में (१) पूजा विधान के साथ जुड़ी हुई प्रेरणाएँ, (२) कथा-कहानियाँ, (३) स्वाध्याय की आदत । यह तीनों ही सर्वोपरि हैं । चौथी वह है-जो आदत बदलने के लिए, सुधार क्रम चलाने के लिए गृह संचालकों को साथ लिया जाता है ।

कथा-कहानियाँ छोटे बच्चों को लक्ष्य रखकर उनके मनोरंजन के लिए कही जाती हैं, पर इधर-उधर बैठकर अन्य लोग भी कान लगाये रहते हैं और बच्चों के साथ बैठकर न सही, सुनते वे भी ध्यानपूर्वक हैं । मनोरंजन तो उनका भी होता है । यह कथा-कहानी कहने की प्रक्रिया सुनियोजित होनी चाहिए और क्रमबद्ध रूप से चलनी चाहिए । कहानियाँ प्रेरक ही हों, न अनर्गल, न अनैतिक । अनर्गल वे हैं, जो बिना उद्देश्य की होती हैं और भूतों और देवताओं का भय एवं भ्रम पैदा करती हैं । जिनका न कोई उद्देश्य होता है, न निष्कर्ष । ऐसे ही बेतुके प्रसंगों को जोड़ गाँठ कर कहानी गढ़ ली जाती है । आजकल बाहुल्य इसी बेतुकेपन का है । इसी प्रकार हत्या, दुराचार, छल जैसे कुकर्मों के आधार पर मिली हुई सफलताओं का उल्लेख करने वाली कहानियाँ सुनने वालों को उसी प्रकार सोचने एवं चलाने की प्रेरणा देती हैं । इस विषाक्तता से बचना ही श्रेयस्कर है ।

कहानियाँ रोज नई चाहिए । पुरानी सुनने से मन नहीं भरता । नई कहाँ से आयें ? उन्हें कहाँ से खोजें ? यह एक कठिन प्रश्न है । इसको हल करने के लिए छोटे बालकों को तथा बड़े बच्चों के लिए प्रेरक कहानियों की एक पुस्तक माला 'बाल निर्माण की कहानियाँ' नाम से परिवार निर्माण योजना के अन्तर्गत छापी जा चुकी है । सम्भवत:: ३६० चुनी हुई कहानियाँ छप सकें जो एक वर्ष में एक बार क्रम से कही जाती रहें । यों हर दिन दो-दो, तीन-तीन भी कहानी पढ़ी जा सकती हैं । इसके लिए सहस्र रजनी की तरह हजार कहानियों की एक मणिमाला भी छापनी पड़ सकती है । स्थानीय प्रवचनों, जन-श्रुतियों एवं बाल-साहित्य में से भी जहाँ-तहाँ ऐसी कथाएँ ढूँढ़ी जा सकती हैं, जो अनाचार के प्रति आक्रोश और सदाचरण के लिए उत्साह उत्पन्न करती हों । कहने की शैली निखरनी चाहिए उसमें आकर्षण, प्रवाह, कौतूहल, संवेदन एवं निष्कर्ष की दृष्टि से उपयोगी तत्वों का समावेश होना चाहिए । रामायण, भागवत, महाभारत आदि पुराणों में से मात्र उपयोगी अंग छाँटकर सुनाये जा सकते हैं । एक सौ जीवन चरित्रों की एक छोटी सीरिज गायत्री तपोभूमि में छपी है, वह भी प्रयोजन के लिए उपयुक्त रह सकती है । बच्चों को कहानियाँ और बड़ों को कथाएँ चाहिए । कथाएँ इतिहास की भी हो सकती हैं और पुराणों की भी । हर हालत में, वे प्रेरक ही होनी चाहिए, अनर्गल नहीं । कथा और कहानियाँ मिला-जुलाकर कही जायें तो छोटों के लिए और बड़ों के लिए समान रूप से प्रेरक सामग्री उपलब्ध होती रह सकती है ।

वाणी के माध्यम से उपलब्ध होने वाले ज्ञान-लाभ को सत्संग कहते हैं और अध्ययन, मनन, चिन्तन के आधार पर मिलने वाले आलोक को स्वाध्याय । स्वाध्याय व्यसन नहीं, अंत:करण का आहार है । वातावरण में अनैतिक तत्वों की भरमार है । उन्हीं के समर्थक अनेकानेक घटना क्रम देखने और सुनने को मिलते रहते हैं । इनका प्रभाव अनायास ही पड़ता है और जन्म-जन्मांतरों की संगृहीत पशु प्रवृत्तियों को उनसे परिपोषण मिलता है उनमें से अधिकांश अनैतिक, प्रगिगामी और पतनोन्मुख ही होता है । इस दुष्प्रभाव को काटना आवश्यक है । इसी प्रकार सुद्उद्देश्यों के सत्परिणाम बताने वाला और उस मार्ग पर चलने की, व्यावहारिक मार्गदर्शन करने की सुविधा भी निरन्तर मिलनी चाहिए । इन दोनों का प्रबन्ध करना उतना ही आवश्यक है, जितना शरीर के लिए भोजन, वस्त्र का यह प्रयोजन सत्संग और स्वाध्याय के दो उपायों से पूरा होता है ।

कई बार छोटे बच्चे नहाने, मुँह धोने आदि में तंग करते हैं । उन्हें किसी प्रकार बहला-फुसलाकर इस सफाई के लिए तैयार करना पड़ता है । समय और स्थान पर मल-मूत्र करने की आदत भी उन्हें धीरे-धीरे तथा धैर्यपूर्वक सिखानी पड़ती है । इच्छा होने न होने की परवाह न करके अभिभावक इन नित्यकर्म सम्बन्धी आदतों को प्रयत्नपूर्वक थोपते हैं और तभी चैन लेते हैं जब बालक अभ्यस्त हो जाता है । ठीक इसी प्रकार घर के हर सदस्य को स्वाध्याय की आदत डालना गृह-संचालकों का कर्त्तव्य है । उसे

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्कूली पढ़ाई से कम नहीं, अधिक महत्व मिलना चाहिए । यों अपने देश में बाल-वृद्ध सभी का प्राय: आधा उपयोगी समय ऐसे ही अव्यवस्थित, अनिश्चित रहता है और बर्बाद जाता है उसमें स्वाध्याय के लिए एक या आधा घण्टे का समय बड़ी अच्छी तरह जमाया जा सकता है, पर यदि व्यस्तता का बहाना बनाया जाता हो और स्कूली पढ़ाई में हर्ज होने जैसी बेतुकी बात कही जाती हो तो भी उसमें हर्ज करके उसे प्राथमिकता देनी चाहिए । अध्ययन से स्वाध्याय का सत्परिणाम असंख्यों गुना अधिक और दूरगामी है, इस तथ्य को जितनी गम्भीरतापूर्वक समझा और समझाया जा सके, उतना ही उत्तम है । स्वाध्यायक्रम में परिवार निर्माण को मेरुदण्ड मानकर चला जाना चाहिए ।

परिवार निर्माण के प्रति गम्भीर होने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अपने घर में घरेलू ज्ञान मन्दिर की-छोटे प्रेरक पुस्तकालय की स्थापना करनी चाहिए । युग साहित्य में वे सभी आधार भरे जा रहे हैं जो व्यक्ति, परिवार और समाज के नवनिर्माण का उद्देश्य पूरा करते हैं । इसका संग्रह अन्य सभी संग्रहों से अधिक महत्वपूर्ण एवं मूल्यवान माना जाना चाहिए । युग निर्माण परिवार की सदस्यता में अनिवार्य शर्त घर में ज्ञानघट की स्थापना करने की है । दस पैसा नित्य जैसी छोटी राशि परिवार निर्वाह से भी अधिक परिवार निर्माण के लिए खर्च करते रहना किसी भी दूरदर्शी को भारी नहीं पड़ सकती । दस पैसे नित्य से महीने में तीन रुपये होते हैं । इतना संकलित व्यय तो घर में रहने वाले इतने परिजनों के व्यक्तित्व का निर्माण करने के प्रमुख आधार से किया ही जाना चाहिए, वस्तुत: होना तो इससे कई गुना चाहिए । पर आदत न होने और महत्व न समझने की दशा में कम से कम इतना तो होना ही चाहिए कि दस पैसा नित्य जितनी स्वल्प राशि परिवार की स्वाध्याय सम्बन्धी आवश्यकता को पूरा करने के लिए खर्च की जाती रहे । इस राशि से परिवार निर्माण सम्बन्धी नया साहित्य नियमित रूप से खरीदा और पढ़ाया, सुनाया जा सकता है । इसके अतिरिक्त अन्य पुस्तकालयों से भी यह आवश्यकता पूरी की जा सकती है । अधिक धन भी खर्च किया जा सकता है ।

स्वाध्याय की आदत घर भर के हर वयस्क सदस्यों को लगाई जानी चाहिए । उसके लिए समय का खाँचा उनकी दिनचर्या में नियमित रूप में नित्यकर्म की तरह बिठाया जाना चाहिए । इस आदत को सर्वोच्चतर की दूरगामी परिणाम उत्पन्न करने वाली समझी एवं समझाया जा सके तो समझना चाहिए कि परिवार के प्रगति पथ पर चल पड़ने की आधी समस्या हल हो गई । देखने में तुच्छ, किन्तु परिणाम में महान इस प्रक्रिया का सत्परिणाम कहीं भी, कभी भी प्रत्यक्ष देखा जा सकता है ।

आरती प्रात: सायं या दोनों समय करने से सत्प्रयोजन के लिए सामूहिक प्रयास की भावना परिपक्व होती है । जो उसमें सम्मिलित होते हैं, वे श्रद्धालु बनते हैं । यह सत् श्रद्धा प्रत्येक सम्मिलित होने वाले के अन्तराल में ऐसे बीजाकुंर बोती है, जिसे फल-फूल कर विशाल वृक्ष के रूप में समयानुसार सुविकसित होते देखा जा सकता है । आरती के साथ भजन कीर्तन सहगान का क्रम चलता है, इन भाव गीतों में जहाँ ईश्वर भक्ति का तत्व ज्ञान रहता है, वहाँ आत्मशिक्षण की सामग्री भी कम नहीं रहती । परिवार निर्माण योजना के अन्तर्गत इस प्रयोजन के लिए जो गीत प्रस्तुत किये जा रहे हैं, वे सभी ऐसे हैं जिसमें मात्र ईश्वर की मनुहार नहीं वरन् उसके सान्निध्य से उपलब्ध होने वाली सत्प्रवृत्तियों का, विभूतियों का पूरा-पूरा संकेत है । इस प्रकार यह भजन, कीर्तन उच्चस्तरीय आत्मशिक्षण की आवश्यकता पूरी करता है । संगीत में सहगान भावोत्तेजक विशेषता रहती है यदि वाद्य यन्त्रों का उपयोग हो सके तो और भी अच्छा, अन्यथा गायन की कला का विकास होना भी किसी परिवार की विशिष्टता का एक महत्वपूर्ण प्रमाण है ।

नमन वंदन की व्याख्या करते हुए कभी भी घर के लोगों को ऋतुम्भरा प्रज्ञा का,गायत्री का तत्व ज्ञान समझाया जा सकता है । इस प्रकार पाँच आहुतियों में यज्ञीय आदर्शवादिता का स्वरूप और प्रतिफल समझाया जा सकता है, बलिवैश्व की पाँच आहुतियाँ पारिवारिक पंचशीलों की गरिमा को धर्म धारणा के प्रतीक चिन्ह के रूप में हृदयंगम कराई जा सकती हैं । गायत्री भारतीय संस्कृति की जननी और यज्ञ भारतीय धर्म का पिता है । गायत्री को अध्यात्म और यश को धर्म कहा जा सकता है । इन्हीं दो चरणों को गतिशील बनाते हुए भौतिक एवं आत्मिक प्रगति के उच्च लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है । इनकी व्याख्या, विवेचना करने तथा जीवन में उतारने के सम्बन्ध में इतनी अधिक सामग्री मौजूद है कि उसे चिरकाल तक भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से प्रस्तुत किया जा सकता है । नमन, वंदन एवं बलिवैश्व की प्रक्रिया में भी परिवार शिक्षण के सभी तत्व प्रचुर परिणाम में विद्यमान हैं ।

परिवार शान्ति और विश्रान्ति का आश्रयस्थल

परिवार के सम्बन्ध में किसी विचारक ने लिखा है- "अपना घर वह स्थान है जहाँ व्यक्ति अपना सच्चा आश्रय खोजता है । ऐसा आश्रय है जहाँ पहुँचकर वह बाहर की थकान और तनावों से राहत पा सके, कठिनाइयों और संघर्षों में उत्साह तथा बल प्राप्त कर सके और उसकी शान्ति, संतोष तथा खोई हुई शक्ति का पुनरार्जन हो सके ।" व्यक्ति और समाज के बीच की एक कड़ी तो परिवार है ही पर उसकी क्या आवश्यकता है और व्यक्ति अपने परिवार से क्या आशायें, अपेक्षायें रखता है, इस तथ्य की उपरोक्त प्रतिपादन में सटीक अभिव्यक्ति हुई है । पर जितने व्यक्ति अपने परिवार से इन अपेक्षाओं को पूरा करने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

में सफल होते हैं और जितने लोग यह जानते हैं कि हम अपने परिवार से क्या चाहते हैं, उनकी संख्या नगण्य हैं ।

समाज और व्यक्ति के सम्बन्ध तथा कार्य-व्यापार सुचारु रूप से चलते रहें । संघर्षों और कठिनाइयों से जूझते हुए व्यक्ति को अपनी व्यय की गयी शक्ति पुनः मिलती रहे-इसके लिए बीच की किसी संस्था का होना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है । व्यक्ति समाज की इकाई और समाज व्यक्तियों का समूह है । दोनों में से किसी एक को ही सच मान लेना और दूसरे को मिथ्या समझना भ्रान्तिपूर्ण ही होगा । व्यक्ति अपने अस्तित्व को समाज में घुला दे, अपने हितों को समाज के साथ जोड़ दे, यह एक आदर्श स्थिति है और इस स्थिति के लिए प्रयत्न ही तो किया जा सकता है । समाज को ही सब कुछ मानकर व्यक्ति को झुठला देना न केवल अव्यावहारिक ही होगा वरन् एकांगी और भ्रामक दिशा में ले जाने वाला भी होगा ।

बूँद का अपना अस्तित्व तब तक रहता है जब तक कि वह सागर से नहीं मिल जाती । सागर से मिलने तथा एकाकार होने तक किसी माध्यम की आवश्यकता अनिवार्य रूप से जुड़ी रहेगी । व्यक्ति का अपना सीमित अहं समाज के साथ समाहित हो, इसके लिए जिस अभ्यासक्रम की आवश्यकता है वह परिवार की प्रयोगशाला में ही किया जा सकता है । उस प्रयोगशाला में रहे और अभ्यास किये बिना सीधे छलाँग लगाना असम्भव ही है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि बूँद का एकदम सागर में मिल जाना । इसके लिए उसे झरनों या नदियों में जाना होगा अथवा भाप बनकर बादल में बैठना होगा ।

व्यक्ति का समष्टि से सम्मिलन शान्ति, संतोष और आनन्द की उपलब्धि कराता है । जब तक व्यक्ति इन अनुभूतियों का स्वाद अपनी प्रयोगशाला में नहीं चखता तब तक उसे न तो आगे बढ़ने का प्रोत्साहन मिलेगा और न ऊँचा उठने के लिए बल । इसी कारण परिवार को विराट की साधना का एक पड़ाव कहा गया है । यही नहीं, व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों की एक अनिवार्य कड़ी माना गया है । अतः यह आवश्यक है कि श्रम और पुरुषार्थ से उत्पन्न हुई थकान, संघर्षों के कारण पैदा हुआ तनाव और बाहर के कड़ुवे अनुभवों पर शान्ति का मरहम परिवार में ही मिल सकता है, मिलना चाहिए । अर्न्तमग्न आध्यात्मिक अवस्था को प्राप्त हुए योगी यतिजनों की बात और है । सामान्य व्यक्ति तो परिवार की छाया में ही वह शीतलता ढूँढ़ता है जिसमें कि उसका श्रम स्वेद सुखाया जा सके ।

लेकिन आजकल के परिवार इन अपेक्षाओं को पूरा करने में प्रायः ही असफल होते हैं । लोगों को अक्सर घर गृहस्थी की शिकायतें करते देखा जाता है । जहाँ किसी ने थोड़ी सहानुभूति दिखाई वहाँ परिवार की समीक्षा होने लगी । आजकल तो घर गृहस्थी, एक झंझट ही है-कहना शुरू हुआ । साधु संन्यासियों और सन्त महात्माओं के पास भी जिन्हें कि पारिवारिक जीवन का कोई अनुभव नहीं होता, लोग घर गृहस्थी की समस्याओं को लेकर पहुँचने से नहीं चूकते । अखबारों में छपने वाले 'आप की समस्या' जैसे स्तम्भों में भी परिवार की शिकायतें, पत्नी कभी किसी महन्त पुजारी के पास पति के कहने में न होने या सास के खों-खों करने की समस्या का हल पूछने लगती है तो पति भी अपने परिवार के सदस्यों से राय लेकर कोई निर्णय करने की अपेक्षा किसी मित्र से उस सम्बन्ध में पूछना ज्यादा अच्छा समझते हैं ।

क्या कारण है कि लोगों का अधिकांश समय परिवार के साथ ही गुजरने के उपरान्त भी परिवार से सन्तोष नहीं है । अपेक्षया वहाँ शांति और तनाव मुक्ति प्राप्त करने के वह घर पर पहुँचते ही व्यग्र और तनावग्रस्त हो उठते हैं । घर गृहस्थी को स्वेच्छा से बसाने पर भी लोग क्यों उसे झगड़े झंझटों की जड़ कहते हैं ? न जाने क्या-क्या आशायें सँजोकर परिवार के निर्माण की पहल करने पर भी अधिकांश व्यक्ति क्यों असफल और निराश हो जाते हैं तथा शिकायतपूर्ण रवैया अपना लेते हैं ?

इसके कई कारण हैं और उनमें सबसे बड़ा कारण है मानव स्वभाव का त्रुटिपूर्ण होना । जब सभी मनुष्य गलतियाँ कर सकते हों तो फिर वह कारण अपने आप ही समाप्त हो जाता है । क्योंकि ऐसी स्थिति में किसी को पूर्ण नहीं बनाया जा सकता और यदि पूर्ण नहीं बनाया जा सकता तो फिर परिवार संस्था की उपयोगिता ही क्या रही ? लेकिन इससे परिवार संस्था के महत्व पर रंचमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ता । एक-दूसरे की त्रुटियों को उदार, सहिष्णुतापूर्वक निभाते हुए उन अपेक्षाओं को भी पूरा किया जा सकता है । गलतियाँ सभी से होती हैं उनके सुधार का प्रयत्न करते हुए भी परिवार एक शान्त आश्रय स्थल बन जाता है; यदि कुछ विकृतियों को सभी सदस्य दूर करने की ठान लें । यें विकृतियाँ किसी भी सदस्य की व्यक्तिगत कमी नहीं हैं, वरन् थोड़े बहुत रूप में सभी पर लागू होती हैं ।

इन विकृतियों को दूर करने का एकमेव सूत्र है-हम अपने सन्तोष का केन्द्रबिन्दु बदलें । सभी सदस्यों के परिवार के प्रति दायित्व हैं, परिवार के प्रति अर्थात् परिवार के अन्य सभी सदस्यों के प्रति । जबकि अपने प्रयोजन में असफल रहने वाले परिवार के सदस्य यह मानते हैं कि परिवार के शेष सभी सदस्यों के मेरे प्रति दायित्व हैं । अर्थात् वह यह भावना रखने लगता है कि घर के अन्य लोगों की आवश्यकतायें पूरी हों या न हों मेरी आवश्यकता तो किसी भी दशा में पूर्ण होनी चाहिए । घर के सब लोग जब इस प्रकार सोचने लगते हैं तो किसका, किसके प्रति क्या दायित्व रहा । अहं तुष्टि की यह खींचतान घर में विग्रह उत्पन्न करने लगती है । पति बाहर से हारा थका आया है और पत्नी घूमने या कहीं और जाने के मूड में है तो वह पति से माँग रखेगी कि वह भी उसके साथ घूमने चले । दिन भर घरेलू काम-काजों में व्यस्त रहने के कारण थक चुकी गृहणी से पति चाय बनवाना या पैर दबवाना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपना जन्म सिद्ध अधिकार समझ लेता है । माता-पिता को इस प्रकार दो छोरों पर जाते देखकर घर के बच्चे भी अपनी माँग को पूर्व प्रधान सिद्ध करना सीख लेंगे, तो परिवार के वयोवृद्ध सदस्यों की भी अपनी-अपनी माँग खड़ी होने लगेगी । परिवार में विग्रह का जन्म इसी खींचतान के दौरान होता है । आधुनिक सभ्यता को पारिवारिक अशान्ति के लिए कितना ही उत्तरदायी ठहराया जाय, मूल कारण औरों की आवश्यकताओं को नजरअन्दाज कर अपने सुखों को अधिक महत्व देने की प्रवृत्ति है ।

इस कारण अन्य छोटी-छोटी उलझनें परिवार के वातावरण को अशान्त बनाने लगती हैं । खुलेतौर पर किन्हीं परिवारों में लड़ाई-झगड़े न होते हों तो भी शीत युद्ध का वातावरण तो बन ही जाता है और घर के सदस्य एक-दूसरे पर कुड़कुड़ाने लगते हैं । यह कुड़कुड़ाने की स्थिति इतनी भी बढ़ जाती है कि घर के सदस्य अपने मित्रों और पड़ोसियों को वह कुढ़न तथा उसका कारण नमक मिर्च लगाकर बताना शुरू कर देते हैं । फिर ऐसे घरों का वातावरण शांत, सौम्य और स्निग्ध रहने के स्थानों पर मनहूस, क्षुब्ध और कटुतापूर्ण बनने लगता है ।

जो बात हम अपने तक सीमित न रख सके, उसे मित्र या पड़ोसी क्यों रखेंगे ? वे भी किसी से कहेंगे और इस प्रकार घर के अन्य सदस्यों तक भी यह सूचना पहुँच जाती है कि घर के भीतर की या उनसे सम्बन्धित बातें बाहर जाने लगी हैं । तो परिवार के प्रति आस्था पर एक और चोट होती है और वह सदस्य दूने वेग से बातों को चौतरफा करने लगता है । किसी भी परिवार के लिए वैमनस्य और शिकायतों से भरा यह वातावरण हर हालत में कौटुम्बिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है । शिकायतें करना कुछ लोगों का तो स्वभाव होता है और कुछ का हो जाता है । उसी प्रकार मीन मेख निकालना, गलतियाँ बताना और आलोचना करना भी कई व्यक्तियों का स्वभाव है । ये सब बातें एक माँ से उत्पन्न होती हैं ।

ये सब बातें परिवार की कुछ ही विकृतियों के सम्बन्ध में हैं, जो परिवार का वातावरण बिगाड़ने का कारण बनती हैं । अलग-अलग घरों की स्थितियाँ अलग-अलग हो सकती हैं पर परिवार को क्लेश भरा बनाने, घर के वातावरण में कलह पैदा करने वाला एक ही कारण होता है कि उसके सदस्य अन्य सदस्यों के प्रति अपना दायित्व अनुभव करने के स्थान पर, अपने क्रिया-कलापों और व्यवहार का केन्द्र अपनी तुष्टि को बना लेते हैं । जिनकी अपेक्षायें इस केन्द्र पर पूरी नहीं होतीं उसकी दृष्टि में परिवार संस्था निरुपयोगी और झगड़े, झंझट पैदा करने वाली, तनाव पैदा करने और बोझ डालने वाली बन जाती है । ऐसी स्थिति में घर को शान्ति, प्रेम और संगीत का आश्रय स्थान बनाने के लिए अपने दृष्टिकोण में सुधार करना आवश्यक है । यह मान्यता बदलना आवश्यक है कि घर के सभी लोग मेरी सुख-सुविधाओं की चिन्ता करें और यह मान्यता रखनी चाहिए कि परिवार के अन्य सदस्यों की भी अपनी रुचियाँ हैं, उनके सुख-सन्तोष की जिम्मेदारी मेरी भी है ।

परिवार में सुख-शान्ति और आनन्द की सम्भावना को साकार करने के लिए एक महत्वपूर्ण कदम सामूहिक रूप से यह भी उठाना चाहिए कि व्यक्ति को पारिवारिक जीवन व्यतीत करने की कला का शिक्षण देने वाली भी कोई व्यवस्था बने । स्कूल, कॉलेजों और अन्य शिक्षण संस्थाओं में विज्ञान, इतिहास, राजनीति, समाजशास्त्र तथा कला आदि कई विषयों में शिक्षण देने का क्रम चलता है पर खेद है कि दक्षतापूर्वक पारिवारिक जीवन व्यतीत करने के लिए कोई पाठ्यक्रम नहीं होता । आजकल पत्र पत्रिकाओं और साहित्य की भी यही स्थिति है । कहने को कई सामाजिक और पारिवारिक पत्र-पत्रिकाएँ निकलती हैं पर उनकी विषय-वस्तु कहानियाँ, मनोरंजक लेख तक ही सीमित रहती हैं, परिवार के स्तम्भ में कुछ छपता भी है तो वह केश सज्जा, पाक-विधियाँ और घर की सजावट के बारे में ही होती हैं । पारिवारिक गुत्थियों को कैसे सुलझाया जाय, परिवार बसाने से पहले क्या-क्या तैयारियाँ की जायँ आदि पक्षों पर लोकप्रिय पत्र-पत्रिकायें कुछ मुँह खोलने की अपेक्षा चुप रहना ही पसन्द करती हैं ।

अभिभावकगण भी अपनी सन्तानों का विवाह भर कर देना पर्याप्त समझते हैं । दाम्पत्य जीवन और परिवार के आँगन में आनन्द सुख कैसे उत्पन्न किया जाय माता-पिता न अपने लड़कों को सिखाना जरूरी समझते हैं और न ही बेटियों को सिखाना । माता-पिता से इस सम्बन्ध में कुछ आशा करना इसलिए भी व्यर्थ है कि दुनिया के कई अनुभव उनके पास होने के उपरान्त भी पारिवारिक अनुभवों में कुछ बताने योग्य जैसी शिक्षाओं में शायद वे असमर्थ ही रहते हैं ।

कहा जा चुका है कि व्यक्ति परिवार से आशा, सन्तोष, शान्ति और उत्साह की भी अपेक्षा करता है । यह अपेक्षा पूर्ण हो इसके लिए परिवार का सुदृढ़ ढाँचा चाहिए । वहाँ के वातावरण में तनाव, मनमुटाव या चिड़-चिड़ापन न हो, एक दूसरे पर छींटाकशी या निन्दा, आलोचना की प्रवृत्ति न हो, घर के लोगों में दूसरे सदस्यों के प्रति उपेक्षा, अनादर या तिरस्कार के भाव न हों, उसके स्थान पर प्रेम, आत्मीयता और स्वागत के भाव हों । निन्दा आलोचना नहीं, स्नेह और सहानुभूतिपूर्ण परामर्श हो ।

ये सभी आवश्यकतायें पूरी हो सकती हैं बशर्ते कि परिवार के सभी सदस्य यदि यहाँ का वातावरण बिगड़ा हुआ हो तो स्वयं को भी उत्तरदायी मानते हों और अपने स्वभाव में आये दोषों को दूर करने के लिए त्रुटियों को हटाने के लिए तत्पर हो सकें । वातावरण को सुधारने में योग्य गृहणी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है और परिवार घर के सभी लोगों की भौतिक आवश्यकताओं के साथ-साथ मानसिक और भावनात्मक अपेक्षायें भी पूरी कर सकती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पारिवारिक विवाद-विग्रह से यों बचा जा सकता है

परिवार को विवाद-विग्रह और कलह-क्लेश से कैसे बचाया जाय ? इस संदर्भ में पहला सिद्धान्त तो यह है कि परिवार के सदस्य एक दूसरे के प्रति सहिष्णु बनना सीखें । यह तो सभी जानते हैं कि प्रत्येक मामले में सभी के विचार एक समान हों, ऐसा कदापि न तो सम्भव हुआ है और न हो सकता है । लोगों की आकृतियाँ ही 'हू-बहू' एक जैसी नहीं मिलतीं, तो प्रकृति कहाँ से मिलेगी । यहाँ तक कि एक शरीर में एक हाथ की ही पाँचों अँगुलियाँ बराबर नहीं होतीं । पर उन सबको निभाना पड़ता है और कहा तो यह भी जा सकता है कि यह विभिन्नता ही प्रकृति की कलात्मकता का नमूना है । इससे उसकी सुन्दरता बढ़ी ही है-घटी नहीं ।

अत: परिजनों को एक-दूसरे के प्रति उदार और सहनशील बनने की आदत डालनी चाहिए । यदि आपके परिवार के किसी सदस्य के विचार आपसे नहीं मिलते और वह अपनी इच्छानुसार कोई काम करना चाहता है, काम ऐसा हो जिससे परिवार को कोई नुकसान न होता हो तो उसके मार्ग में बाधा मत डालिये । उदाहरण के लिए आप राम की उपासना करते हैं और आपका लड़का राम को नहीं कृष्ण को मानता है तथा कृष्ण की उपासना करता है तो उसे करने दीजिये, उसमें आपका क्या हर्ज होता है ?

परिवार के सदस्य एक दूसरे के प्रति सहनशील और उदार बनना सीख जायँ, एक दूसरे के प्रति अपना दृष्टिकोण उदार रखें तो गृह-कलह की अधिकांश सम्भावनाएँ समाप्त हो सकती हैं । अत: पहला सिद्धान्त सहिष्णुता के रूप में ही अपनाया जाना चाहिए ।

परिवार को आतंरिक कलह से बचाने का दूसरा स्वर्णिम सूत्र है-एक दूसरे को आदर भाव से देखना । कमजोरियाँ किसमें नहीं होतीं । मनुष्य यदि पूर्णतया निर्दोष और निष्कलंक तथा सर्वगुण सम्पन्न होता तो वह ईश्वर के समतुल्य हो जाता । अच्छे से अच्छे व्यक्ति में और महान् से महान् पुरुषों में त्रुटियाँ होती हैं, उनसे गलतियाँ होती हैं । भूल हो जाना मनुष्य का स्वभाव है । अत: परस्पर एक-दूसरे के दोषों को देखकर आलोचना नहीं करनी चाहिए । न ही निन्दा, भर्त्सना की जाय । सुधार की दृष्टि से उन दोषों की ओर इंगित कर देना पर्याप्त है ताकि सम्बन्धित परिजन को अपनी भूलों का ज्ञान हो जाय और वह उन्हें सुधार ले ।

इसी प्रकार अपना अधिकार जताना और दूसरे सदस्य को भी उस अधिकार से अपवंचित व्यक्त करना उसकी अवमानना या अनादर है । प्रत्येक व्यक्ति घर का सदस्य है और इस नाते घर पर उसका भी उतना ही अधिकार है, जितना कि आपका । भले ही वह आपसे छोटा ही क्यों न हो ? यह नहीं सोचना चाहिए कि छोटे सदस्यों को सम्मान नहीं मिलना चाहिए । उन्हें अपने सम्मान या अपमान का कोई अनुभव नहीं होता । बच्चे भी अपने आदर और निरादर को खूब अच्छी तरह समझते हैं और चूँकि वे संवेदनशील होते हैं इसलिये उन पर मान-अपमान, प्रतिष्ठा-उपेक्षा का बड़ों से भी ज्यादा प्रभाव पड़ता है ।

कहा जा सकता है कि छोटे-बड़ों के प्रति तो आदर का भाव रख सकते हैं और उसे प्रकट भी कर सकते हैं, किन्तु बड़े, छोटों के प्रति आदर का भाव किस प्रकार रख सकते हैं अथवा उसका निर्वाह कर सकते हैं । यह तो एक अस्वाभाविक बात है ।

ऐसा सोचने वाले आदर की परिभाषा समझने में भूल करते हैं । वे हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर अथवा उठकर शिष्टाचार प्रदर्शित करने को ही आदर करना समझते हैं । जबकि यह आदर-भाव के प्रकटीकरण का एक प्रकार है जो कि गुरुजनों अथवा अपने से उच्चपदस्थ लोगों के लिये व्यवहार में लाया जाता है । आदर-भाव का तात्पर्य केवल इतने तक ही सीमित नहीं है । किसी के प्रति सभ्य तथा यथोचित व्यवहार करना भी आदर-भाव में आता है । जैसे नौकर को आदेश देते समय यह कहना कि 'चला जा रे यह कर ला' समाज में अनुचित न माना जाते हुए भी मानवोचित नहीं है और न किसी सभ्य के लिए शोभनीय है । यह तिरस्कारपूर्ण है । कोई एक बार आदर का पात्र नहीं भी हो सकता है, किन्तु तिरस्कार तो किसी का भी नहीं किया जा सकता । यदि इसी आदेश वाक्य को 'आप कृपा वहाँ चले जाइये और यह काम कर लाइये' ऐसा न कहकर इस प्रकार भी कहा जाये कि- वहाँ चले जाओ और अमुक काम कर लाओ-तब भी यह तिरस्कारपूर्ण न होकर उस उचित आदर वाला हो जायगा जिसका नौकर अधिकारी हो सकता है । छोटों का तिरस्कार न करना ही उनका आदर करना है ।

परिवार में बच्चे होते ही हैं । सारे बड़े लोग सामाजिक मान्यता के कारण उनको आदर के योग्य नहीं मानते । उनको अरे-तुरे करके पुकार सकना, आदेश दे सकना, डाँट-फटकार सकना अथवा चपत जमा देना अपना अधिकार मानते हैं और बहुत से भद्रता का सम्मान न करने वाले लोग ऐसा करते हैं । यह कदापि उचित नहीं । ऐसा करने वाले बालकों का तिरस्कार करते हैं जो हर प्रकार से अशोभनीय है । बच्चे ही नहीं, कीट-पतंग तथा पशु-पक्षियों तक में अपना एक स्वाभिमान होता है । तिरस्कार पाने पर वे भी बुरा मानते और अवसर आने पर बदला लेने का प्रयत्न किया करते हैं । बच्चों के मन में बड़ों से तिरस्कार पाकर अश्रद्धा उत्पन्न हो जाती है । वे विवशतावश जब तक कमजोर अथवा हर प्रकार से आश्रित रहते हैं तब तक तो चुपचाप सारा अनौचित्य सहन करते रहते हैं किन्तु ज्यों ही उनकी स्थिति अनुकूल होती है । उनका वर्षों का जमा असन्तोष फूट पड़ता है और तब घर में बड़ी अशांति फैल जाती है । कभी-कभी आगे चलकर बड़े-छोटे भाइयों के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बीच में नहीं बनती । उसका बहुत सा कारण यही होता है कि बड़ा भाई, जब तक छोटा भाई सयाना नहीं हो जाता उसके साथ ऐसा व्यवहार करने की भूल करता रहता है । जो उसे सहन नहीं होता, किन्तु विवशतावश सहन करता रहता है । ज्यों ही वह अपने पैरों पर खड़ा होता है उसका असंतोष अथवा विद्रोह भड़ककर सामने आ जाता है । कई बार छोटे भाई ऐसा जान-बूझकर प्रतिशोध भावना से नहीं वरन् उनके अर्द्धचेतन में पनपा हुआ दुर्व्यवहारजन्य आक्रोश कलह के रूप में प्रकट हो जाता है । इसलिये परिवार की सुख-शांति के लिए किसी को एक बालक के साथ भी तिरस्कारपूर्ण व्यवहार नहीं करना चाहिए ।

बालकों के प्रति अभिभावकों के तिरस्कारपूर्ण भाव का मुख्य कारण यही होता है कि वे उन्हें अंशजन्य समझते हैं और सोचा करते हैं कि छोटे से माँस के लौंदे को हमने ही जन्म दिया आर हम ही उसे पाल-पोसकर किसी योग्य बना रहे हैं । इससे हम किसी प्रकार का भी व्यवहार करने के अधिकारी हैं । इसे हमारा आदर करना चाहिए न कि हम इसका आदर करें । एक तो अभिभावकों का यह अहंकार स्वयं उनके हित में ठीक नहीं । यह एक बड़ा दोष है, दुर्गुण है । जो कभी हितकर ही नहीं हो सकता । दूसरे हर प्राणी एक स्वतन्त्र आत्मा है । भगवान की इच्छा और उसी की प्रेरणा से वह किन्हीं रज-वीर्य के माध्यम से अस्तित्व में आती है । सारे संसार का पालन कर्त्ता एक परम पिता परमात्मा ही है । न कोई किसी को जन्म देता है और न पालन करता है ।

किन्तु लोग न तो ऐसी दार्शनिक विचारधारा रख पाते हैं और न पारिवारिक अथवा सामाजिक धरातल पर कर्त्तव्यार्थ इस उच्च दृष्टिकोण की आवश्यकता है । तथापि इतना तो सोचा ही जा सकता है कि आज का बालक कल का नागरिक है । हो सकता है कि उसके मनोगह्वर में कोई महापुरुष सोया पड़ा हो जो हमारे तिरस्कारपूर्ण व्यवहार से हताश होकर निर्वासित हो जाये और हमारा कुल अथवा समाज उसके गुणों तथा सत्कर्मों की शोभा से वंचित हो जाये । ऐसा सच्चा और यथार्थ दृष्टिकोण भी अभिभावकों द्वारा बालकों का तिरस्कार करने का वर्जन करता है । ठीक है बालकों का उठकर स्वागत नहीं किया जा सकता और न उनको सिर नवाकर प्रणाम करने की आवश्यकता है । तथापि उनको 'आप' सम्बोधित करके बोला और उनकी आत्मा के स्वाभिमान की रक्षा करते हुए व्यवहार किया ही जा सकता है । ऐसा ही करना ही चाहिए और शिष्ट, सभ्य तथा संभ्रान्त परिवारों में ऐसा होता भी है । जिन परिवारों में बालकों से भी स्वाभिमान के अनुरूप व्यवहार किया जायेगा, वहाँ फिर कौन किसका अनादर करने की भूल करेगा ? सब एक दूसरे के प्रति समुचित आदर-भाव रखते हुए सुख-शांति से रहेंगे और जीवन में आगे बढ़ेंगे ।

इस शृंखला में तीसरा सूत्र है-'अपनी भूल स्वीकार करना ।' जो अपनी भूल स्वीकार करने का साहस रखता है उसका सहिष्णु तथा सावधान होना असंदिग्ध है । एक तो जो अपनी भूल स्वीकार कर लेता है, उससे ज्यादा कोई कुछ कहता नहीं है । जो नाराज हो जाते हैं वे भी प्रसन्न हो जाते हैं । जल्दी ही बात जहाँ की तहाँ खत्म हो जाती है । प्रमाण-पुष्टि की हाय-हाय तथा वाद-विवाद रुक जाता है । बात के जहाँ की तहाँ रफे-दफे हो जाने से कलह की संभावना ही समाप्त हो जाती है । दूसरे यदि उसको कोई कुछ कहता भी है तब भी वह भद्रता के नाते अपनी गलती के कारण सहन कर लेता है, उलटकर जवाब नहीं देता । जिसको कुछ कहा जाये और वह उलट कर जवाब न दे, शांति बनाये रखने की इससे उचित नीति और क्या हो सकती है ।

अपनी भूल स्वीकार करने वाला भविष्य में गलती होने से सावधान रहता है क्योंकि वह जानता है कि बार-बार भूल करने और तुरन्त ही उसे स्वीकार कर बच निकलने से लोग उसे बेशर्म अथवा कुटिल समझेंगे । परिवार में उनकी प्रतिष्ठा अथवा स्नेह का भाव समाप्त हो जायेगा । वह स्थिति किसी के लिए भी सुखकर नहीं होती साथ ही जब छोटा या बड़ा कोई भी अपनी गलती तुरन्त मान लेगा तो दूसरे भी इस गुण में पीछे क्यों रहना चाहेंगे । अपनी गलती स्वीकार कर लेने पर यदि एक बार क्षमा भी न माँगी जाये तब भी प्रक्रिया स्वयं ही क्षमा याचना के समान होती है । क्षमाशीलता, क्षमायाचना, सहिष्णुता तथा मौन जैसे शील गुण जिस परिवार में प्रतिपालित किये जायेंगे, वहाँ कलह की ऊष्मा किस प्रकार प्रवेश कर सकती है । वहाँ सदैव ही सुख-शांति का वातावरण बना रहेगा ।

कलह निवारण का चौथा हेतु है वैयक्तिक मामलों में अनावश्यक हस्तक्षेप न करना । वैयक्तिक मामलों में पति-पत्नी का पारस्परिक व्यवहार भी आता है । कोई पति अपनी पत्नी को कितना प्यार करता है या-क्या-क्या खिलाता-पिलाता है-यदि उसका सम्बन्ध पारिवारिक बजट अथवा पक्षपात से नहीं है तो न तो किसी को उसमें हस्तक्षेप करना चाहिए और न कोई टिप्पणी । ऐसा करने से दम्पत्ति बुरा मान सकते हैं और उनकी यह प्रतिक्रिया हो सकती है कि उनके पारस्परिक प्रेम के प्रति ईर्ष्या की जा रही है । यह भावना पारिवारिक प्रसन्नता के लिये अहितकर है । हो सकता है कि कोई अपनी पत्नी की किसी बात के लिए भर्त्सना कर रहा है तो यदि वह भर्त्सना पूरे परिवार पर अवांछनीय प्रभाव नहीं डाल रही है तो किसी को उनमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए ।

व्यक्तिगत मामलों में हस्तक्षेप तब उचित भी है जब कोई व्यक्ति कोई ऐसा कार्य करने लगे जो अनैतिक कहा जाय, उसके कारण परिवार की प्रतिष्ठा अथवा अर्थ संतुलन पर आँच आवे । किन्तु बहुधा ऐसा नहीं होता है । हस्तक्षेप का कारण वैचारिक अनुदारता तथा असहिष्णुता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

होती है । इसी कारण अपनी रुचि अथवा कल्पना से भिन्न कोई भी बात हमें सहन नहीं होती । ध्यान रखना चाहिए कि परमात्मा की इस सृष्टि में कोई भी वस्तु दूसरी वस्तु से यथासाम्य नहीं रखती । यहाँ तक कि जड़ पत्थर का एक टुकड़ा भी एकदम किसी दूसरे टुकड़े के समान नहीं होता, फिर मनुष्यों की तो बात ही और है । एक-एक व्यक्ति का अपना निजी व्यक्तित्व है, निजी स्वभाव है और निजी आदतें हैं । दूसरों से उनकी समानता का प्रश्न ही नहीं उठता । घर में थोड़े से व्यक्ति होते हैं उनके स्वभाव और रुचियों के लिए भी यही बात लागू होती है । लेकिन फिर भी सभी एक व्यवस्था में शांति और उत्साहपूर्वक निर्वाह कर सकते हैं । रुचियाँ, स्वभाव, प्रकृति और आदतें भिन्न-भिन्न होने के कारण थोड़ी सी भूल के कारण टकराव हो जाना स्वाभाविक है । लेकिन यह स्वाभाविक होते हुए भी परिवार की शांति को नष्ट करने वाला बन जाता है । इस अनर्थ से बचने का उपाय है अनुकूलन । अनुकूलन का अर्थ है-हम अपने संतोष का ध्यान रखते हुए परिवार के दूसरे सदस्यों की आकांक्षाओं, उनके हितों और सुख-सुविधाओं को समुचित महत्व दें । अपनी ही बात को सर्वाधिक महत्व देने, अपनी जिद पर ही अड़े रहने की प्रवृत्ति व्यक्ति को स्वार्थी और संकीर्ण बनाने के साथ-साथ उसे असामाजिक भी बनाती है ।

एक मानसवेत्ता ने लिखा है-"स्वभाव में सख्ती की प्रवृत्ति तभी आती है जब व्यक्ति अहं केन्द्रित हो जाता है । तब उसमें दूसरों की कद्र करने का माद्दा नहीं रहता । इसका मतलब यह नहीं है कि अहं केन्द्रित होने से व्यक्ति में कुछ विशेष गुणों का आविर्भाव होता है । वस्तुतः तो आत्यन्तिक अहं केन्द्रित रहने वाला व्यक्ति अपनी स्वाभाविक क्षमताओं को खोता जाता है और उसमें हारने का गुण बढ़ने लगता है ।" जीवन के अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा परिवार में इस नियम को साकार होते हुए प्रत्यक्ष देखा जा सकता है । जिद्दी और हठी स्वभाव का सदस्य जो स्वयं को न जाने किन-किन कल्पित विशेषताओं से युक्त देखने का आदी हो जाता है सर्वप्रथम अपनी प्रतिष्ठा से हाथ धो बैठता है । पारिवारिक प्रजातन्त्र में उसकी भूमिका गौण हो जाती है कि क्योंकि घर के अन्य लोग समझते हैं वह सदस्य अपनी ही बात पर अड़ जायेगा । इस कारण उससे कोई परामर्श लेना ठीक नहीं है ।

यह प्रतिष्ठा धीरे-धीरे बाहरी जीवन में भी खोने लगती है । मनुष्य का बहुत कुछ आत्म-विश्वास उसकी प्रतिष्ठा पर भी निर्भर है । कुछ लोग मेरी बातों को मानते हैं यह जानकर मैं ठीक कह सकता हूँ कि धारणा पुष्ट होती है-जो आत्मविश्वास का ही एक रूप है । प्रतिष्ठा के साथ आत्म विश्वास खो जाने के बाद व्यक्ति की स्थिति हारे हुए जुआरी की भाँति हो जाती है । जो उसी जीवन की बाजी में दूसरा दाँव लगाने का कम ही साहस करता है । अतः व्यक्ति को अपनी भावनाओं के साथ दूसरों की भावनाओं को भी समझने और उनका सम्मान करने का अभ्यास डालना चाहिए । यह गुण परिवार की जीवनशाला में आसानी से देखा जा सकता है जहाँ छोटी-मोटी भूलों का कोई गम्भीर प्रायश्चित या दण्ड नहीं उठाना पड़ता ।

अनुकूलन की प्रवृत्ति से जन्मी उदारता और सहनशीलता, परस्पर सहयोग और त्याग के गुणों का भी विकास करते हैं, जो बाहरी जीवन में भी सुखद परिणाम और सफलतायें प्रस्तुत करते हैं । परिवार के सदस्यों के प्रति किया गया आत्मत्याग अन्य सदस्यों के लिए भी अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करता है । जिस घर के सदस्य अन्य सदस्यों के हितों, सुखों और सुविधाओं का ध्यान रखते हैं, इसमें आनन्द का अनुभव करते हैं, वे परिवार में सुख और आनन्द का वातावरण बनाने के लिए ईमानदारी से प्रयत्न करते हैं । यही गुण उन्हें भविष्य में भी उन्नति के लिए सहायता प्रदान करता है ।

किसी की अपनी रुचि यदि वह दोष-मूलक नहीं है उसकी व्यक्तिगत बात है तो उसके विषय में आलोचना करना ठीक नहीं । किसी को चित्रकारी, संगीत अथवा साहित्य पढ़ने की रुचि हो सकती है । दूसरों को भले ही वे बातें पसन्द न हों तब भी किसी को प्राणप्रिय होती हैं । वह एक बार अपनी आलोचना तो सहन कर सकता है किन्तु अपनी रुचि के विषय में टिप्पणी पसन्द न करेगा । किसी की रुचि की आलोचना उसके व्यक्तित्व पर चोट करने के समान है । जो सहन नहीं होती और कलह की स्थिति उत्पन्न हो सकती है । धार्मिक विश्वास और राजनीतिक विचार भी इसी कोटि की बात है । यदि पूरा घर आर्यसमाजी है और कोई राम अथवा कृष्ण की प्रतिमा पूजता है, उनके भजन गाता है तो किसी को अधिकार न होना चाहिए कि उसकी इस आस्था में हस्तक्षेप करे । यदि ऐसा किया जायेगा तो परिवार की शांति भंग होने का डर हो सकता है । राजनीतिक विचारों में कोई साम्यवादी और कोई समन्वयवादी हो सकता है । प्रत्येक व्यक्ति को अपनी स्वतन्त्र विचारधारा रखने का पूरा अधिकार है, किसी को उसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए । इसी प्रकार कौन सदस्य किसे वोट अथवा समर्थन देना चाहता है तो उसे न तो रोका जाना चाहिए और न उसकी आलोचना ही की जानी चाहिए । कोई भी विचारधारा जब तक कि वह अराष्ट्रीय, असामाजिक अथवा अनैतिक न हो, किसी को भी रखने और प्रयोग में लाने का अधिकार है ।

जिस परिवार में एक-दूसरे की रुचियों तथा विचारधाराओं का समान रूप से आदर होता चलेगा वहाँ अधिक से अधिक मित्रता तथा गतिशीलता का ही वातावरण रहेगा, अशांति अथवा प्रसन्नता का प्रश्न ही न आयेगा ।

पाँचवाँ नियम निष्पक्षता है । पारिवारिक जीवन में भेद-भावना-एक चिनगारी की तरह है और अभेद-भाव सुख-शांति का बड़ा हेतु है । सब अपने हैं, मैं सबका हूँ, मेरा सब कुछ सबका है । मेरी कमाई, मेरी शक्ति, मेरे गुण और मेरी विशेषताएँ सब अपने परिवार की सेवा के

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिए हैं । ऐसी उदार भावना जिस परिवार के हर सदस्य की होगी वहाँ आनन्द- मंगल की किस प्रकार की कमी रह सकती है ? भाई के बच्चे मेरे अपने बच्चे हैं । उनका सुख-दु:ख मेरा अपना है । सबको शिक्षित तथा सुशील बनाना मेरा पुनीत कर्त्तव्य ही नहीं, मेरा अपना आत्मिक हर्ष है । ऐसा भाव रखने वाले सदस्य कभी आपस में झगड़ेंगे, ऐसी कल्पना भी नहीं की जाती । कलह और विग्रह तो उन्हीं परिवारों का दुर्भाग्य है, जिनमें लोग यह कपड़ा मेरा है, यह विस्तर मेरा है, यह स्थान मुझे मिलना चाहिए, यह बच्चे मेरे हैं, यह पराये हैं का भेदभाव रखते हैं । साथ ही जिन परिवारों के गुरुजन अथवा अन्यजन किसी एक के साथ पक्षपात करते हैं और किसी दूसरे की उपेक्षा करते हैं वहाँ सुख-शान्ति किसी मूल्य पर भी नहीं ठहर सकती है । गुरुजनों अथवा उपार्जन करने वाले लोगों को न तो किसी का पक्षपात करना चाहिए और न किसी की उपेक्षा करनी चाहिए । ऐसी दशा में परस्पर ईर्ष्या-द्वेष का दोष बढ़ता है जो पारिवारिक कलह का बड़ा कारण बनता है । हर सदस्य को हर सदस्य के साथ निष्पक्ष तथा संतुलित व्यवहार करना चाहिए । जो परिवार इस प्रकार के भेद-भाव से मुक्त रहते हैं उन्हें अपनी सुख-शांति के लिये कभी तरसना-कलपना नहीं पड़ता ।

पारिवारिक सुख-शांति का एक बड़ा हेतु है न्याय निष्ठा, न्याय क्षमता । मनुष्य भूलों से सर्वथा मुक्त नहीं रह सकता । साथ ही जहाँ चार बर्तन होते हैं कभी टकरा भी जाते हैं । जहाँ कुटुम्ब सदस्यों से भरा-पूरा होता है किसी से किसी का किसी कारण पर तनाव भी हो सकता है । ऐसी दशा में पहला कर्त्तव्य तो यह है कि कोई तीसरा सदस्य उनके साथ न मिले । वह तनाव इन दो के बीच रहने देना चाहिये और इससे पहले कि वह कोई बड़ा रूप धारण कर ले, मामला शाम की परिवार गोष्ठी में पहुँच जाना चाहिए । उसके दोनों पक्षों की सुनवाई निष्पक्ष रूप से होनी चाहिए । गृह प्रमुख, गृहणी अथवा परिवार का कोई वयोवृद्ध जिसके प्रति परिवार के सदस्यों में सहज आदर हो, उसे आगे रखकर बात को अधिक तूल दिए बिना ही आसानी से विवादों का हल निकाला जा सकता है ।

इस प्रकरण से निष्पक्षता तो बरतनी ही चाहिए, साथ ही व्यावहारिक संतुलन भी बनाये रखना चाहिए । दोषी व्यक्ति कितना भी प्रिय क्यों न हो, उससे दोष स्वीकार कराना तथा जिसके साथ ज्यादती हुई हो उसे संतुष्ट करना आवश्यक है । इससे हर व्यक्ति दोषों से बचने का प्रयास करता है तथा अपने उचित अधिकारों के प्रति निश्चिन्तता अनुभव करता है । यह दोनों ही भाव परिवार में कलह का निवारण तथा नीति सदाचार की स्थापना के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं ।

न्याय प्रक्रिया में किसी के सम्मान को आवश्यकता से अधिक आघात न लगने दिया जाय । यदि संयोगवश या भूलवश ऐसा हो जाय तो बाद में स्नेह व्यवहार से उसका प्रभाव शांत किया जा सकता है । उसे अनुभव कराया जाय कि अपना उद्देश्य मात्र औचित्य की रक्षा करने का था- उसे अपमानित करने का नहीं ।

इस प्रकार गृहणी गृहप्रमुख अपने प्रभाव तथा योग्यता के आधार पर परिवार को सच्चे अर्थों में कलह और तनावों से मुक्त रखते हुए सुख-शांति का आगार बना सकते हैं ।

परिवार में सुख-सृष्टि यों सम्भव है

परिवार में सभी लोग सुखी और संतुष्ट रहें, इसके लिये यह आवश्यक समझा जाता है कि आर्थिक स्थिति सुदृढ़ और आवश्यकताओं की पूर्ति विपुलता से होती रहे । आर्थिक दृष्टि से दैन्य और आवश्यकताओं की दृष्टि से अभावग्रस्त स्थिति को घर के सभी सदस्यों का सुख चैन छीन लेने वाला माना जाता है, पर वस्तुस्थिति कुछ और ही है । सम्पन्नता का सम्बन्ध परिवार को मिलने वाली सुविधाओं से तो है लेकिन सुख-संतोष से नहीं । घर में खूब पैसा होने पर धनवान परिवारों में विग्रह पैदा होते देखे जाते हैं । सम्पन्नता की दृष्टि से अमेरिका को सर्वाधिक धनवान देश समझा जाता है । वहाँ लोगों को मोटरकार, बढ़िया मकान, टेलीविजन उसी प्रकार सुलभ हैं, जिस प्रकार कि अन्य गरीब देशों में साइकिल, किराये की झोंपड़ी और ट्रांजिस्टर, घड़ियाँ मिलती हैं । सामान्य व्यक्तियों को तीन-चार सौ रुपये की ये वस्तुयें प्राप्त करने के लिये पेट काटकर बचाना पड़ता है जबकि अमेरिका जैसे देश में इनसे सौ गुनी महँगी वस्तुएँ भी आसानी से उपलब्ध कर ली जाती हैं । इतनी सम्पन्नता होने पर भी वहाँ परिवार संस्था की क्या स्थिति है, यह सर्वविदित है । आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी पति-पत्नी ही एक साधारण मित्र की भाँति एक दूसरे पर विश्वास नहीं रख पाते । घर के वृद्ध सदस्यों की बात तो और है, बच्चे भी माता-पिता की ओर से अपने भविष्य के लिये आश्वस्त नहीं रहते । न मालूम दोनों में कब मतभेद हो जायँ और दोनों एक-दूसरे से छुटकारा पा लें ।

सम्पन्नता से जोड़ी जाने वाली पारिवारिक सुख-शांति का एक परिणाम तो यह सामने है । पश्चिमी देशों की बातों को जाने भी दिया जाय तो भी भारतीय परिवारों में भी सम्पन्नता को घरेलू सुख-शांति का आधार कहना गलत होगा, क्योंकि समृद्ध और सम्पन्न परिवारों की आंतरिक स्थिति भी क्लेशपूर्ण और तनाव भरी हो जाती है तथा आर्थिक दृष्टि से दुर्बल परिवार भी सुख-पूर्वक, स्नेह और प्रेम का वातावरण बना लेते हैं । अत: परिवार में सुख-सृष्टि का कारण किसी बाहरी निदान में खोजना अत्युक्तिपूर्ण होगा । आर्थिक सुदृढ़ता परिवार के लिए आवश्यक है जरूर, पर इतनी जरूरी भी नहीं है कि उसके अभाव में परिवार की सुख-शान्ति ही चौपट हो जाय ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिवार के लिए आर्थिक स्थिति का इतना समर्थ होना पर्याप्त है कि उससे घर के सब सदस्यों की आवश्यकतायें पूरी होती रहें । उपार्जन जितना होता हो कम या ज्यादा, सादगी और संतोषपूर्वक उसमें गुजारा किया जा सकता है, किन्तु यह स्थिति तभी आ सकती है जब परिवार के हर सदस्य, हर इकाई को स्वस्थ संस्कारयुक्त रखा जाय ।

मनुष्य का एक शरीर परिवार होता है । इसे सामाजिक शरीर कहेंगे । अपने परिवार में प्रवेश करके ही मनुष्य सामाजिक प्राणी बनता है । परिवार समाज का एक शरीर है, ठीक वैसा ही जैसा एक व्यक्ति का शरीर । वह भी अनेक अंगों को जोड़कर बनता है । पत्नी, पुत्र, पुत्रियाँ, भाई, ताऊ, ताई, भाभियाँ, पिता एवं माता आदि शरीर की तरह 'परिवार शरीर' के अंग हैं । यह सभी अंग यदि ठीक-ठाक काम करते रहते हैं तो परिवार में शांति-समृद्धि और सुव्यवस्था बनी रहती है, पर यदि घर का कोई व्यक्ति उच्छृंखल, व्यसनी, दुर्बुद्धि, आलसी, अनाचारी, कर्कश हो तो परिवार की शोभा और सौन्दर्य नष्ट हो जाता है । शरीर के प्रत्येक अंग के समुचित विकास, स्वस्थ और सुडौल होने से शरीर सुख मिलता है । पारिवारिक जीवन की सुख-सुविधा के लिये भी उसके सब अंगों का स्वस्थ और सुविकसित होना आवश्यक है ।

जिस प्रकार शरीर के विभिन्न कल-पुर्जे मिलकर पूर्णता होती है और उन सबके ठीक काम करने पर नीरोगिता रहती है, उसी प्रकार परिवार का उचित गठन-मानव जीवन की सुव्यवस्था का ठोस आधार बनता है । अन्य सारे सुख-साधन एक ओर और परिवार का सुसंतुलन यदि एक ओर रखा जाय तो पारिवारिक जीवन का महत्व अधिक मानना पड़ेगा । जिन लोगों के साथ मिल-जुलकर जीवन-क्रम चलाना पड़ता है उनकी व्यवस्था-अव्यवस्था का अपने ऊपर भारी प्रभाव पड़ता है । अशांत और विक्षुब्ध पारिवारिक-जीवन लेकर कोई व्यक्ति न तो संतुष्ट रह सकता है और न प्रसन्न, भले ही बाहरी सुविधाएँ कितनी ही बढ़ी-चढ़ी क्यों न हों ?

गृहस्थी का पालन बड़ी बात नहीं है, उतना तो सामान्य पशु-पक्षी भी कर लेते हैं । धन, मकान, जायदाद, आदि का उत्तराधिकार परिजनों को दे जाना उतना महत्व नहीं रखता, जितना उनको सद्गृही, सुशील बनाना । परिवार को सुसंस्कृत और सुविकसित बनाना नितान्त आवश्यक है । चरित्र के साँचे में ढाले गये परिवार कम साधनों में भी पूर्ण प्रसन्नता का जीवन व्यतीत कर लेते हैं । दुर्गुणी व्यक्तियों के लिये तो सम्पन्नता भी अभिशाप सिद्ध होती है ।

एक गाँव में एक किसान रहता था । किसान बड़ा नेक और परिश्रमी था । उसका एक सम्पन्न परिवार था । घर में रुपये-पैसे और साधनों का कोई अभाव नहीं था, पर उसका घर सुखी न था । सब आपस में खींचातानी रखते थे । भाई-भाई में नहीं बनती थी । लड़के उद्दण्ड और दुराचारी थे । सास-बहुओं में नहीं पटती थी । घर कोलाहल से भरा रहता था । शांति का कहीं नाम-निशान तक न था । विपुल साधन सम्पत्ति होते हुए भी किसान को रत्ती-भर का सुख उपलब्ध न था ।

किसान इससे ऊबकर अन्त में सन्त बाबा वैरागीदास के पास गया और बोला-महाराज, मेरी गृह-दशा ठीक नहीं है, घर वाले आपस में लड़ते-झगड़ते और उथल-पुथल मचाये रहते हैं, कोई उपाय बताइये, ताकि इस दुःख से छुटकारा मिले ।

सन्त ने किसान को शाम तक कुटी में ठहरने के लिए कहा । किसान ठहर गया । सन्त की कुटी के आगे से प्रतिदिन कुछ स्त्रियाँ लकड़ियों का बोझ लेकर गुजरती थीं और कुछ देर वहाँ बैठकर सुस्ताया करती थीं । नियमानुसार वे उस दिन भी आईं । उनकी दशा पहले जैसी ही थी । किसी का बोझ अधखुला था, किसी की लकड़ियाँ उलझी हुई थीं । किसी की रस्सी ढीली थी, किसी की कमजोरी के कारण गाँठ ही टूट गई थी । लकड़ियाँ जमीन पर पटककर सब फिर से बोझ बाँधने और सुधारने में लग गईं । इस हैरानी के कारण स्त्रियों के चेहरे उद्वेग और उत्तेजना से भरे हुए थे । इसके लिए बेचारी एक-दूसरे को कोसती भी जाती थीं ।

उनमें एक किशोर बालक भी था । उसका बोझ तो औरों से छोटा था, पर करीने के साथ बँधा हुआ था । एक-एक लकड़ी सुन्दर ढंग से सजाई हुई थी । सब एक मजबूत रस्से में बँधी हुई, क्या मजाल जो कोई लकड़ी इधर-उधर खिसक जायँ और सब स्त्रियाँ तो आराम करने की अपेक्षा बोझ सुधारने की उलझन में थीं, पर वह बालक उन सबकी ठिठोली कर रहा था, उनकी कमजोरी की चुटकी लेकर हँस रहा था, उसकी प्रसन्नता में कोई अन्तर न था । न ही कोई ऊब और उत्तेजना ।

बाबा वैरागीदास ने किसान को बुलाया और बताया-देखो भाई, इन स्त्रियों की तरह लकड़ियाँ काट लेने में ही सफलता नहीं वरन् उन्हें बच्चे की तरह सुदृढ़ और सुव्यवस्थित ढंग से बाँधना भी तो चाहिए । आपकी असफलता का रहस्य भी ऐसा ही है । आपने परिवार बनाया तो है, पर उसका निर्माण नहीं किया । गृह-दशा तो ठीक है, पर 'गृह-दशा' व्यवस्थित नहीं, उसे सुधारने का प्रयत्न करो तो तुम्हारे सब दुःख दूर हो जायेंगे ।

किसान की दुर्दशा की कहानी ढूँढ़ी जाय तो वह आज प्रायः प्रत्येक घर में देखने को मिल सकती है । धन ऐश्वर्य वाले कुटुम्ब भी ईर्ष्या-द्वेष की अग्नि में देखे जा सकते हैं । स्वार्थ, संकीर्णता और असहिष्णुता के कारण पारिवारिक जीवन नरक जैसी स्थिति में पड़ा सुलगा करता है । परिवार-निर्माण के लिए आवश्यक प्रयत्न न करने के अभाव में धन, शिक्षा, पद प्रतिष्ठा आदि सब कुछ होते हुए भी क्षुद्रता और संकीर्णता के कारण घटित होने वाली छोटी-मोटी घटनाओं के कारण परिवार अपनी प्रतिष्ठा एवं सुदृढ़ता खोते चलते हैं और कुछ दिन में ही बुरी तरह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बिखर जाते हैं । यह स्थिति आत्मिक एवं लौकिक दोनों ही दृष्टि से हानिकारक होती है ।

शरीर में नये खून की तेजी, मस्तिष्क में अनुभव की कमी और अन्तःकरण में भावनाओं का प्रकाश न होने के कारण अक्सर घर के वयस्क लोग भी कुछ न कुछ ऊट-पटाँग करते रहते हैं । उनमें जोश होता है, पर होश कम । शिक्षा होती है, पर संस्कार नहीं । इसका असर पारिवारिक स्थिति पर भी बुरा ही पड़ता है और इन दोषों से विकसित होने वाले गृह-कलह के कारण हमारे कुटुम्ब टूटते हुए चले जाते हैं ।

आज की स्थिति ठीक ऐसी ही है । परिवार बना लेने में कोई कठिनाई नहीं है, पर उद्देश्य तो तब पूरा होता है, जब वह सुव्यवस्थित बना रहे । यह एक जिम्मेदारी है, जो हर सद्गृहस्थ को पूरी करनी चाहिए । माली अपने ऊपर जिस बगीची की जिम्मेदारी लेता है, उसे हरा-भरा बनाने, फलने-फूलने देने, झाड़-झंखाड़ से रक्षा करने का जी जान से प्रयत्न करता है । यही दृष्टिकोण एक सद्गृहस्थ का भी होना चाहिए । उसे अनुभव करना चाहिए कि परमात्मा ने इन थोड़े से पेड़ों को सींचने, खाद देने, सँभालने और रखवाली करने का भार विशेष रूप से मुझे दिया है तो उनके प्रति किसी तरह की असावधानी न की जाय । अपने परिवार के हर एक व्यक्ति को स्वस्थ रखने, शिक्षित बनाने, सद्गुणी, सदाचारी और चतुर बनाने की पूरी-पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर समझते हुए इसे ईश्वर की आज्ञा का पालन मानते हुए अपना उत्तरदायित्व पूरा करने का प्रयत्न करना चाहिए ।

परिवार-निर्माण में मुख्य कर्त्तव्य परिजनों के गुणों का विकास करना ही है । लोगों के स्वभाव की संकीर्णता दूर करना और उन्हें सद्गुणी बनाना गृहपति और परिवार के प्रत्येक बुद्धिमान् परिजन का कर्त्तव्य होना चाहिए, तभी गृहस्थ-जीवन का सदुपयोग आत्मोन्नति के लिये सम्भव है । उसी अवस्था में लौकिक और भौतिक सुख समृद्धि का भी रसास्वादन किया जा सकता है ।

पारिवारिक जीवन के सम्बन्ध में मुख्यतः दो दृष्टिकोण हैं । एक तो मोह-ममता, मालिकी-स्वार्थ और अहंकार का है । इस रूप में घर भैं किसी का कोई आध्यात्मिक लक्ष्य नहीं होता । ऐसे परिवारों में भी कभी-कभी एकता, सम्पन्नता आदि कई गुण देखने को मिल जाते हैं, पर लक्ष्य-विहीन गृहस्थियों में आमतौर पर विशृंखलिता हो जाती हैं । भौतिक समृद्धि कितनी ही कर ली जाये, पर आत्मिक गुणों के अभाव में सुख और सौभाग्य का क्रम कभी देर तक नहीं चल पाता । यह अवस्था, यह दृष्टिकोण ही बन्धन, पतन, पाप और नरक की ओर ले जाने वाला होता है ।

दूसरा दृष्टिकोण आत्म-त्याग, सेवा, प्रेम और परमार्थ का है । यह मुक्ति, उत्थान, पुण्य और स्वर्ग प्रदान करता है । सामान्य रीति से इस दृष्टि से भी पारिवारिक जीवन की हलचलें पहले जैसी ही दिखाई देंगी, पर ऐसे परिवारों के जीवनोद्देश्य विकसित होंगे । कर्त्तव्य-पालन की दृष्टि से जब एक दूसरे के साथ प्रेम, ममता, स्नेह और आत्मीयता से जुड़े होंगे तो इसी बहाने से आत्म-कल्याण के पथ पर अग्रसर हो रहे होंगे । यह जीवन-लक्ष्य प्राप्त करने का सर्वोत्तम तरीका है ।

हमें अपने परिवार के पालन और निर्माण में दूसरे नम्बर का दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और इस प्रकार के क्रिया-कलाप रखने चाहिए जिनसे सदस्यों के जीवन उत्कर्ष की ओर उन्मुख रहें और उनमें गुणों का अभाव न रहने पाये । परिवार के हर सदस्य में अनिवार्य रूप से विकसित किए जाने योग्य कुछ गुण यहाँ दिए जा रहे हैं-

(१) सुदृढ़ दिनचर्या

परिवार के छोटे-बड़े सभी सदस्यों को अपनी जीवन-चर्या बड़ी सुसंतुलित रखनी चाहिए । हाथी-नदी या तालाब में उतरता है तो हर कदम आहिस्ता से टटोल-टटोल कर आगे बढ़ाता है । पारिवारिक जीवन में बुराइयों का समावेश न हो, इसके लिए प्रत्येक सदस्य की विशेषतया गृहपति एवं गृहिणी की दिनचर्या ऐसी होनी चाहिए, जिसमें गन्दगी और फूहड़पन न दिखाई दे ।

प्रधान रूप से ध्यान देने वाली बात यह है कि किसी भी सदस्य के मस्तिष्क में दूषित प्रभाव डालने वाला कार्य हम न करें, हमारी दिनचर्या कुछ इस तरह व्यवस्थित की हुई होनी चाहिए । प्रातःकाल सोकर उठने से लेकर सायंकाल सोने तक हम प्रत्येक कार्य हाथी की तरह टटोल-टटोल कर करें और इस बात की सावधानी रखें- 'कहीं कोई ऐसा गड्ढा न आ जाय, ऐसी बुराई न बन जाय, जिससे बाद में पश्चाताप करने पड़े ।' इस प्रकार की सावधानी, आहार-विहार, वार्तालाप, चलने, उठने, बैठने के प्रत्येक तौर-तरीके में होनी चाहिए । सुदृढ़ दिनचर्या परिवार निर्माण का प्रथम सूत्र है ।

(२) सुव्यवस्था

परिवार छोटा रहे तो कुछ हर्ज नहीं, घर उसे व्यवस्थित रखना चाहिए । घर का कौन सा बच्चा कहाँ है ? क्या कर रहा है ? अमुक व्यक्ति किस काम में लगा है ? उसके लिये भोजन पहुँचा या नहीं ? किसी को मानसिक या शारीरिक कष्ट तो नहीं ? इन सब बातों की आवश्यक जानकारी और उनकी पूर्ति समय पर यथारीति होती रहे । अव्यवस्था ही परिवारों में अशांति उत्पन्न करने में डाकिन का काम करती है । उससे दूर रहना आवश्यक है । घर के बड़े बुजुर्गों, माताओं का एक-दूसरे के प्रति यह कर्त्तव्य है कि वे घर की हर व्यवस्था का पाबन्दी के साथ पालन करते कराते रहें ।

(३) सुसंस्कृत वेश-भूषा

मानवीय स्वभाव की छोटी-छोटी बातें भी सामूहिक तौर पर बड़ी प्रभावशाली होती हैं । आज जो सर्वत्र चारित्रिक पतन के दृश्य दिखाई देते हैं, उनका एक कारण विकृत वेश-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विन्यास माना जाता है । बाल-बुद्धि के लोग शारीरिक सौन्दर्य और रूप का आकर्षण बढ़ाने के लिए तरह-तरह के वेश-विन्यास और रूपसज्जा किया करते हैं । इससे आत्म-संतोष तो क्या होता है, भड़कीला वेश-विन्यास और बाहरी चमक बढ़ाने में मनुष्य के चरित्र का ही पतन हुआ है । अभारतीय वस्त्रों और सजावट से बचकर रहने में ही अपना कल्याण है, अपने धर्म अपनी संस्कृति के अनुरूप केश, वस्त्र और वेश-भूषा में चरित्र और आत्मिक-बल बढ़ाने वाली सादगी एवं शालीनता पाई जाती है, उसका परित्याग करना अशोभनीय ही कहा जा सकता है ।

वस्त्र पहनने की जो परम्परा पूर्व पुरुषों की थी, वह बड़ी सरल और उपयोगी रही है । पुरुष, धोती, कुर्ता, जाकेट, टोपी तथा स्त्रियाँ साड़ी और सलूके पहनती रही हैं । यह चयन सादगी और सरलता की दृष्टि से तो श्रेष्ठ रहा ही, इसका सम्बन्ध स्वास्थ्य एवं मनोवैज्ञानिक रीति से बुराइयों से बचाने वाला भी रहा है । हमें अपनी वेश-भूषा पर गर्व करना चाहिए और भड़कीले, बचकाने वेश-विन्यास से सदैव बचना चाहिए । घर में ऐसी फैशन-परस्ती को प्रवेश न करने देना चाहिए, जिसे उच्छृंखल या उच्च या रंगीली-शौकीनी कहा जा सके ।

(४) सात्विक आहार

मनुष्य के स्वास्थ्य और मानसिक स्थिति का निर्माण आहार पर निर्भर है । भारतीय मनीषियों ने स्वास्थ्य, सद्गुण और सदाचार की दृष्टि से सदैव सात्विक भोजन पर ही जोर दिया है । माँस, मदिरा, मछली, अण्डे, तीखे, कसैले, चटपटे भोजन का यहाँ सदैव बहिष्कार किया गया है, क्योंकि ये पदार्थ आत्मिक दुर्बलता पैदा करने वाले होते हैं, परिवार निर्माण में इसका बड़ा महत्व है । इस सम्बन्ध में हमें गीता के इस आदेश का पालन करना चाहिए-

आयुः सत्व बलारोग्य सुख प्रीति विवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्विक प्रियाः ॥

सात्विक आहार ही आयु वृद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति की वृद्धि करने वाला होता है, इसके विपरीत राजसिक आहार, चाहे वह अधिक स्वादिष्ट तथा चटपटे क्यों न हों, प्रारम्भ में अच्छे-भले लगें, पर वे अन्त में रोग, दुःख और चिन्ता उत्पन्न करने वाले ही सिद्ध होते हैं ।

सात्विक भोजन से आध्यात्मिक भावों की वृद्धि होती है । यह विशेष रूप से महिला सदस्यों का कर्त्तव्य है कि वे सरल, सुपाच्य और सादा भोजन तैयार करें । साथ ही यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि कोई चोरी से छिपकर बाजार की गन्दी चीजें न खायें । इससे स्वास्थ्य की हानि तो है ही, नैतिक दृष्टि से भी यह चोरी अथवा ओछापन माना जाता है । अच्छा, पौष्टिक भोजन लोगों को घर पर ही मिले, ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए ।

(५) सुमधुर वाणी

मधुर, शान्त एवं पवित्र शब्दों का उच्चारण करने वाले व्यक्ति अपने शब्दों द्वारा न केवल अपने विचारों, भावनाओं एवं संस्कारों को परिमार्जित करते हैं, अपितु अन्य परिजनों को प्रभावित करके उनके जीवन में भी नई स्फूर्ति, नई प्रेरणा व नया मोड़ उत्पन्न करते हैं । पारिवारिक जीवन में इसका बड़ा महत्व है, इससे परिवार में स्नेह और प्रेम बना रहता है । हमें अमृतमय वाणी बोलने के साथ ही कम बोलने का भी अभ्यास बनाना चाहिए ।

शब्दों के सदुपयोग से सम्बन्ध जुड़ते हैं, कटु वचनों से कलह और उत्पात बढ़ता है । अपने परिवारों की सुस्थिरता के लिए इस सूत्र को सदैव ध्यान में रखना चाहिए और भूलकर भी कोई अप्रिय बात मुख से नहीं निकालनी चाहिये । अधिकारवश कठोर वचन निकालना भी बुरा होता है, चाहे बच्चे से ही कुछ कहा जाय, पर शांत-संयत एवं यथाशक्य नम्र वाणी का ही प्रयोग किया जाना अच्छा होता है ।

(६) शालीनता

छठवें शील-शालीनता को शीलों का सार भी कह सकते हैं । शिष्टता, सज्जनता, विनम्रता, साधुता जैसे सद्गुणों का समुच्चय शालीनता है । इसके चिन्ह हैं-ईमानदारी, प्रामाणिकता, नागरिकता, मर्यादा का निर्वाह । शालीनता को मात्र शिष्टाचार समझने की भूल नहीं करनी चाहिए । शिष्टाचार यदि अतिरिक्त शालीनता से रहित हो तो वह रूखा कर्मकांड या 'मैनरिज्म' बनकर रह जाता । शालीनता न केवल शब्दों से, अपितु हावभाव समेत सम्पूर्ण आचरण से अभिव्यक्त होती है और सीधे हृदय पर अपनी अमिट छाप छोड़ती है ।

(७) संस्कार-स्रोत-आस्तिकता

ईश्वर की उपासना से बुद्धि की सूक्ष्म ग्रहणशीलता और संस्कारों की संवेदनशीलता जाग्रत होती है । फलस्वरूप लोगों के भौतिक मन आध्यात्मिक जीवन की ओर मुड़ जाते हैं । शांति, सुख, स्थिरता और समृद्धि, इन चारों के लिये इस प्रकार का जीवन आवश्यक है, जो केवल आस्तिकता से ही सम्भव है । परिवार तभी नष्ट होते हैं, जब उनमें स्वार्थ और भौतिकता घुस जाती है । उससे बचने के लिए परिवारों में धार्मिक वातावरण बनाये रखना आवश्यक है । भारतीय संस्कृति में पग-पग पर पर्व, संस्कारों के प्रचलन का उद्देश्य भी यही रहा है कि लोग आत्म-परायण बने रहें । मनुष्य जीवन का ध्रुव सत्य भी यही है ।

पारिवारिक-जीवन में सरलता और सत्य-निष्ठा बनाये रखने के लिये हम लोगों को सच्चे अर्थों में आस्तिक रहना चाहिए । इसमें व्यक्तिगत आत्म-कल्याण की सम्भावनायें तो सन्निहित हैं ही साथ ही पारिवारिक समुन्नति और द्वेष-दुर्गुणों से बचे रहने का आधार भी यही है ।

(८) स्वच्छता और सफाई

गन्दगी एक दुर्गुण है, उससे मनुष्य का जीवन दीन-हीन और मलिन बनता है । रोग की परिस्थितियाँ सामने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आती हैं । इससे बचने का आसान तरीका यही है कि प्रत्येक दैनिक कार्य में, घर, बाहर, आँगन, द्वार, दीवार, छत इन सबकी सफाई और स्वच्छता का ध्यान रहे । अपने बच्चों के, धर्म-पत्नी के, भाई-भाभी सबके कपड़ों की स्वच्छता पर एक दृष्टि अवश्य रखनी चाहिए । अपने आप में सभी सदस्यों की स्वच्छता और सफाई का महत्व मालूम होना चाहिए । इसकी उपेक्षा करने से स्वास्थ्य पर अहितकर प्रभाव पड़ सकता है, अतः शरीर, वस्त्र, निवास आदि से सम्बन्धित प्रत्येक वस्तु, हर क्रिया में स्वच्छता का ध्यान रहना चाहिए । सप्ताह या महीने में एक दिन सामूहिक सफाई की व्यवस्था भी रहनी चाहिए । इससे सबके स्वास्थ्य और आरोग्य लाभ की आशा बनी रहती है ।

(९) शारीरिक श्रम

अब लोगों की ऐसी धारणा हो गई है, जो जितनी अधिक आराम की जिन्दगी बिताता है, वह उतना ही बड़ा है, अब इसे बदलना चाहिए । वस्तुतः मनुष्य की महत्ता का आधार यह है कि वह कितना श्रम करता है ? अपने घर के लोग श्रम से जी चुराते हों तो यह दुर्भाग्य की बात ही होगी । यदि कोई इसी में अपना सौभाग्य समझता है तो उसका बड़प्पन एक दिन धूल में मिलता दिखाई देगा ।

बापू के शब्दों में-"किसी तरह का परिश्रम न करने वाला व्यक्ति संसार की किसी वस्तु का उपभोग करता है तो यह चोरी है ।"

यह तो व्यक्तिगत आत्म-कल्याण की दृष्टि से हुआ, सामूहिक रूप से गृहस्थ की समुन्नति बाहरी झगड़ों से, रोग-शोक से बचने के लिए भी श्रमशीलता आवश्यक है । काम से जी चुराना एक बहुत बड़ा दुर्गुण है । परिवार के ऐसे सदस्य ही घरों में कठिनाइयाँ उत्पन्न करते हैं । अतः पहले से ही घरों का वातावरण श्रमप्रेरक होना चाहिए । आलस्य और प्रमाद पारिवारिक संगठन के दो रावण और मेघनाद सरीखे शत्रु हैं, इनसे बचकर ही पारिवारिक सुख-समुन्नति की रक्षा सम्भव है । लोकमान्य तिलक कहा करते थे- "संसार में एक ही वस्तु को मैं परम पवित्र मानता हूँ , वह है मनुष्य का अपनी विकास-यात्रा के लिये अनवरत-श्रम ।" परिवार के प्रत्येक सदस्य में एक-दूसरे के प्रति सद्भावनायें रखकर ईर्ष्या-द्वेष आदि दुर्भावनाओं से दूर रहकर निष्काम भाव से श्रमरत रहना जीवन की सर्वोच्च साधना है । इससे कभी विमुख नहीं होना चाहिए ।

(१०) समय का सदुपयोग

गृहस्थ-जीवन की सुव्यवस्था के लिये धन कितना आवश्यक है ? यह सब बात सब जानते हैं । परिजनों की योग्यता बढ़ाने के लिये, उन्हें खुशहाल रखने, अच्छा खाने और अच्छा पहनाने का एकमात्र साधन है । धन के अभाव में गृहस्थी की अनेक आवश्यकतायें अधूरी रह जाती हैं । अविकसित परिवार में किसी तरह की चेतना नहीं होती, किसी तरह का आनन्द नहीं होता । पर सीमित व्यवसाय, सीमित श्रम में धन भी कम ही उपलब्ध हो सकता है । समर्थ-सम्पत्तिवान् बनने के लिये समय का सदुपयोग आवश्यक है । सब सदस्यों को श्रमशील होना चाहिए, साथ ही समय के एक-एक क्षण का लाभ अपनी आर्थिक योग्यता बढ़ाने में लगाना चाहिए । छोटे-छोटे कुटीर-उद्योग, बागवानी, शाक-उत्पादन आदि में समय लगाकर सहायक आजीविकायें उपलब्ध हो सकती हैं । आलस्य में इधर-उधर समय गँवाना पाप ही कहा जायेगा । उन्नति के लिये और पारिवारिक जीवन में प्राण और प्रसन्नता जागृत रखने के लिये धन की आवश्यकता होती है, वह समय के सदुपयोग से ही सम्भव है । समय ही धन है, उसे व्यर्थ में कभी भी नहीं गँवाना चाहिए ।

(११) शिक्षा

पारिवारिक जीवन को सुविकसित करने के लिये जिस मानसिक-विकास की आवश्यकता होती है, उसके लिये शिक्षा की भारी आवश्यकता होती है । शिक्षा प्राप्त करके उसका लोग सदुपयोग न कर पाते हों, यह दूसरी बात है पर जब भी कभी ज्ञान का प्रकाश मनुष्य की अन्तर्रात्मा में प्रवेश करता पाया गया, देखा गया है कि शिक्षा उसमें प्रमुख माध्यम होता है । आज के विज्ञान के युग में तो विचार का महत्व और भी अधिक बढ़ गया है वह भी शिक्षा के द्वारा ही सम्भव है ।

परिवार के बच्चों की शिक्षा को हम अनिवार्य समझें । एक भी बालक निरक्षर न रहे पर यह भी ध्यान रहे कि अभी जो अशिक्षित प्रौढ़ हैं उनके विकास का क्रम भी अधूरा न रहे । इसके लिये परिवार के प्रत्येक परिजन को शिक्षित करने की जरूरत है । हमारे देश में गृहस्थ की दुर्दशा के कारणों में अशिक्षा मुख्य है और वह भी विशेष रूप से स्त्रियों की । अतएव हर शिक्षित परिजन का यह कर्त्तव्य है कि वह कम से कम अपने परिवार, अपनी धर्मपत्नी को तो साक्षर बनाने का कार्यक्रम निश्चित रूप से बनायें ही ।

(१२) स्वाध्याय

मनोविकास के लिए जो महत्व शिक्षा का है, आत्म-विकास के लिए वही स्वाध्याय का । यह दोनों प्रक्रियायें साथ-साथ चलती रहें तो गृहस्थ-जीवन में ऋषियों के जीवन जैसी विशेषतायें इस युग में भी उपलब्ध की जा सकती हैं ।

हमारे परिवार समाज का अंग होते हैं, दूसरे वर्ग के लोगों के साथ मिलना-जुलना, बोलना-बैठना प्रायः बना ही रहता है, ऐसी स्थिति में दूसरों का अच्छा-या बुरा प्रभाव अपने लोगों पर न पड़े, यह नितान्त सम्भव नहीं बुराइयों के अन्धकार से बचने के लिए स्वाध्याय का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकाश अनिवार्य है । ऐसा कोई भी घर न हो, जहाँ एक छोटा सा 'ज्ञान-मन्दिर' न रहे । लोगों को उत्तम ज्ञान और चरित्र-निर्माण विषयक साहित्य घर में उपलब्ध होता रहे और उनके स्वाध्याय का क्रम भी चलता रहे, यह बहुत जरूरी है । विशेषकर आज की परिस्थितियों में जबकि बाहरी आडम्बरपूर्ण वातावरण से अपने परिजनों के प्रभावित हो जाने का खतरा बढ़ा हुआ है ।

(१३) सेवा और सहानुभूति

परिवारों की शक्ति और समुन्नति के लिये परिजनों का सहयोगी और सेवा-भावी होना आवश्यक है । विपत्ति के समय एक दूसरे की सहायता को अधिक और व्यक्तिगत सेवा के अधिकार को कम महत्व देना, दु:ख में सहानुभूति, रोगादिक कष्टों में, शादी आदि उत्सवों में हाथ बँटाना, कारुणिक अवसरों पर शांति और धैर्य देना-यह सब मानवीय सेवायें हैं, इनसे आत्मीय सम्बन्धों में स्नेह और प्रागढ़ता आती है । इसमें किसी प्रकार की लज्जा या संकोच नहीं अनुभव करना चाहिए । अपनी धर्मपत्नी के प्रति इसलिए उपेक्षा का भाव न रखिये कि लोग आपका उपहास करेंगे । कर्त्तव्य का पालन न करना, एक तरह का पाप है, अत: सेवा का अभ्यास करते हुए, सहानुभूति के नियम का पालन करते हुए परिजनों को भी साथ-साथ उसकी प्रेरणा देनी चाहिए । मिल-जुलकर काम करने से बड़े-बड़े काम सिमट जाते हैं । एक-दूसरे के प्रति सेवा और सहानुभूति रखने से कठिन परिस्थितियाँ भी सन्तोषपूर्वक कट जाती हैं । असहायों और आवश्यकताओं के समय परिजनों के काम आने के नैतिक कर्त्तव्य और उसके ढंग का ज्ञान हर सद्-गृहस्थ को होना चाहिए ।

(१४) प्रगतिशीलता

प्रगतिशीलता दृष्टिकोण से सम्बन्धित है । उत्कर्ष की आकुलता ही प्रगतिशीलता है और घिसी पिटी रूढ़ियाँ, विकृतियों तथा प्रचलित ढर्रों में लिपटे लुढ़कते रहना ही संकीर्णता है । प्रगतिशील दृष्टिकोण के अभाव में साधन सुविधाएँ पतन की ओर ले जाती हैं और अभावहीनता को जन्म देती हैं जबकि प्रगतिशीलता पुरुषार्थ, उत्साह तथा उत्कर्ष की आकांक्षा को जन्म देती है इसलिए हर सदस्य के दृष्टिकोण को प्रगतिशील बनाने की सजगता बरती ही जानी चाहिए । अतृप्त महत्वाकाँक्षाएँ खीझ और निराशा ही पैदा करती हैं । प्रगतिशीलता का अर्थ है-हवाई उड़ानें उड़ने से मन को रोकना तथा कल्पना शक्ति को योग्यता संवर्द्धन की दिशा में मोड़ना । सफलताओं की लालसा तभी सार्थक है, जब उसकी उपयुक्त परिस्थितियाँ उत्पन्न करने के लिए प्रबल प्रयास किये जाएँ । उस दिशा में योग्यता भी विकसित की जाए । अत: प्रगतिशील दृष्टिकोण का प्रमाण है निर्धारित लक्ष्य के लिए वांछित योग्यता की प्राप्ति के सजग प्रयासों में प्रवृत्त रहना । ऊँचे उठने और आगे बढ़ने के लिए कहाँ, किस प्रकार, क्या किया जा सकता है, यह पैना दृष्टिकोण, गहरी सूझबूझ परिवार के हर सदस्य में विकसित करना, उसे साधन सुलभ कराने से भी अधिक आवश्यक है ।

(१५) मितव्ययिता

परिवार के हर व्यक्ति को मितव्ययी होना चाहिए । खर्च उतना ही करना चाहिए, जो अनिवार्य रूप से आवश्यक है । जो खर्चा किया जाय बजट बनाकर खर्चा जाय । एक-एक पाई का हिसाब हर सदस्य लिखे और यह देखे कि जो पैसा उसने खर्चा वह जीवनोत्कर्ष के लिये सदुपयोग के रूप में लगा या नहीं ? व्यसन, अंलकार प्रदर्शन, शेखीखोरी या ऐसी बातों में खर्च करने पर प्रतिबन्ध होना चाहिए जिनसे भौतक या आत्मिक प्रगति में कोई योगदान नहीं मिलता । मित्तययी व्यक्ति ही सदाचारी, ईमानदार और खरा हो सकता है जिसे फिजूलखर्ची की आदत है, उसे आज नहीं तो कल अनैतिकता का पल्ला पकड़ना पड़ेगा । इसलिये फिजूलखर्ची की बुरी आदत से परिवार के हर सदस्य को बचाया जाना चाहिए ।

उपर्युक्त गुण यों तो सामान्य से लगते हैं और अधिकांश व्यक्ति इन्हें जानते भी हैं । किन्तु गुणों का लाभ मात्र जानने से नहीं, उनके जीवन में उतारने, अभ्यास एवं स्वभाव में लाने से ही मिलता है । गुणों का विकास, स्वभाव का परिवर्तन अनायास ही नहीं हो जाता । उसके लिए व्यवस्थित, क्रमबद्ध, सतत् प्रयास की आवश्यकता पड़ती है । परिवार के प्रमुख पुरुष अथवा नारी इनका समुचित महत्व समझें तथा इन्हें मूर्तरूप देना चाहें तो कोई कारण नहीं कि परिवार का हर सदस्य इनसे सम्पन्न न हो जाय । कहने की आवश्यकता नहीं कि गुणी परिवार में सुख-शांति का अभाव कभी नहीं रह सकता ।

पर दुर्भाग्य यह है कि परिवार के प्रमुख कहे जाने वाले सदस्य ही जब नियम-अनुशासनों में प्रमाद बरतते हैं तो इससे दूसरे सदस्यों को भी वैसा करने का प्रोत्साहन मिलता है, फलत: पहले से चली आ रही संतुलन-सामंजस्य की प्रवाह-प्रक्रिया में व्याघात पैदा होता । यह व्यवधान ही बैर-विद्वेष का कारण बनता है ।

उदाहरण के लिए, घर के कमाऊ सदस्य यह कहकर अपनी अपरिपक्व बुद्धि का परिचय देते हैं कि चूँकि घर की आर्थिक स्थिति को सँवारने में हम मुख्य भूमिका निभाते हैं, इसलिए अन्य सदस्यों की अपेक्षा हम विशेष सुविधायें भोग सकते हैं । सामान्य और मध्यवर्गीय परिवारों में अक्सर मातायें भी अपने कमाने योग्य बेटों के विशेष सुविधाओं वाले अधिकार का खास ध्यान रखती हैं । यह विशेष सुविधाओं वाली बात घर के अन्य अप्रौढ़ सदस्यों में ईर्ष्या या कुढ़न को जन्म देती है और वे सोचने लगते हैं कि विशेष सुविधाओं का कारण तो मनगढ़न्त होता है । मुख्यत: शान-शौकत एक अच्छी बात है और वह होनी चाहिए । घर के अवयस्क तथा अन्य सदस्यों में भी इस प्रकार शान-शौकत की ओर ध्यान बढ़ता है । उनकी माँग बढ़ती है, माँग बढ़ने और उसे पूरा करने से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अतिरिक्त व्यय तो बढ़ता ही है, जिसके परिणामस्वरूप परिवार के सामने आर्थिक समस्या उत्पन्न होती है ।

घर के वयस्क और प्रौढ़ सदस्य भी सादगी बरतें, अधिक सुविधाओं को अधिकारसम्मत न मानें तथा अन्य सदस्यों के बराबर ही अपना स्तर रखें । इससे एक साथ तीन लाभ हैं स्वयं पर कोई अतिरिक्त खर्च नहीं बढ़ता, दूसरे सदस्यों में भी शान-शौकत की भावना नहीं आती और परिवार का वातावरण भी मधुर बना रहता है । घर की लड़ाई-झगड़ों में अधिकांश का कारण 'इसको इतना और मुझे इतना ही' होता है । जिससे परिवार के वातावरण में कलह का विष तो घुलता ही है अन्य समस्यायें भी उत्पन्न होने लगती हैं । स्मरणीय है शान और शौक के सम्बन्ध में सबकी रुचियाँ एक सी नहीं होतीं और जब उन्हें किसी भी कारण से प्रोत्साहन या उभाड़ मिल जाता है तो वे परिवार के प्रेम और मधुर वातावरण को नष्ट करके ही छोड़ती हैं ।

घर के बड़े लोग सादगी बरतें तो छोटों में भी वही प्रवृत्ति आयेगी और इसका सर्वाधिक दायित्त्व घर के मुखिया या जिम्मेदार व्यक्ति पर है कि वह सबके साथ समान व्यवहार करे । परिवार के प्रत्येक सदस्य में आत्म-विश्वास, आश्वासन तथा अपने को परिवार के प्रति उत्तरदायी होने की भावना रखनी चाहिए । बड़े लोग तो आसानी से ये भावनाएँ अर्जित कर सकते हैं । उनके लिए इस प्रकार की परिस्थितियाँ भी होती हैं कि ये अपने को परिवार शरीर का महत्वपूर्ण अंग मान सकें । लेकिन बच्चों के सन्दर्भ में भी इन भावनाओं को जगाने और स्थिर रखने की आवश्यकता कम नहीं है । उनमें भी यह भावना उत्पन्न की जानी चाहिए कि परिवार में उनकी भी उपयोगिता है तथा महत्व है ।

वस्तुपरक दृष्टिकोण से तो यह आवश्यक है ही । कहा जाता है-बच्चे घर-आँगन की फुलवारी हैं, उनकी हँसती, खेलती और किलकारियाँ भरती उपस्थिति परिवार की शोभा, सुन्दरता बढ़ाती है । पर देखा जाता है कि जिन परिवारों में बच्चों की संख्या अधिक है, उनमें बच्चों के प्रति उपेक्षा का सा भाव आ जाता है । खासतौर से संयुक्त परिवारों में ऐसा ज्यादा होता है । कौन सा बच्चा कहाँ खेल रहा है, किसने खाना खा लिया है और कौन खेलकूद में ही रमा हुआ है । किसकी पढ़ाई-लिखाई कैसी चल रही है-माता-पिता के अतिरिक्त परिवार का शायद ही कोई सदस्य रुचि लेता हो । कई बार तो माता-पिता भी घर के कामों में इतने डूब जाते हैं कि उन्हें बच्चों का विशेष ध्यान नहीं रहता । सोचते हैं जब भूख लगेगी तब खा जायगा । मनोविज्ञान के अनुसार, बच्चों के व्यक्तित्व को विकसित होने के लिए यह प्रवृत्ति हानिकारक है । एक स्थान पर रहते हुए, एक चौके-चूल्हे में बना खाना खाते हुए किसी भी व्यक्ति का इतना अहं केन्द्रित रहना कि उसे किसी बच्चे की शिक्षा-प्रगति के बारे में ही मालूम न हो, पारिवारिक जीवन की अयोग्यता ही सिद्ध करता है ।

परिवार के प्रत्येक सदस्य का ध्यान रखने से, उसे घर का महत्वपूर्ण अंग मानने से जहाँ बचपन में ही पारिवारिक उत्तरदायित्व की भावना आने लगती है, वहीं घर का वातावरण भी आमोद भरा और प्रफुल्लित बनता है । कलहपूर्ण और मनमुटाव सम्बन्धों वाले परिवार जहाँ विघटन के कगार पर खड़े होते हैं तथा वहाँ का प्रत्येक सदस्य उस परिवेश में अपना दम घुटता अनुभव करता है वहीं प्रफुल्लित वातावरण में स्नेह और आत्मीयता के सूत्र सम्बन्ध दृढ़ हो जाते हैं ।

एक व्यवस्था, एक क्रम में रहने वाले लोगों में अनुशासन की भावना का रहना भी आवश्यक है । परिवार समाज की इकाई है । समाज की सुव्यवस्था और सुख-शान्ति उसके सदस्यों की अनुशासननिष्ठा पर निर्भर करती है और यह गुण परिवार में रहते हुए भी भली-भाँति सीखा जा सकता है । अनुशासन का एक अर्थ है सह-अस्तित्व के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए उसके लिए कुछ अनिवार्य नैतिक नियमों का पालन । ये नियम मनुष्य के व्यक्तित्व और जीवन को सजाते सँवारते हैं । घर के सभी सदस्यों में अनुशासन की भावना हो, बच्चों में भी वह गुण आये, इसके लिए बड़े सदस्यों को अनुशासन की ओर से विशेष सतर्क रहना चाहिए । बच्चों में जीवन की यह आधारशिला उपदेशों से नहीं रखी जा सकती वरन् यह स्वयं के आचरणों द्वारा ही उनके सम्मुख आदर्श प्रस्तुत कर बनायी जा सकती है ।

सादगी, समानता, प्रत्येक सदस्य में परिवार के प्रति उत्तरदायित्व की भावना, प्रेम-आत्मीयता, त्याग और उदारता तथा अनुशासननिष्ठा जैसे सद्गुण जिस परिवार के सदस्यों में होंगे, उस परिवार से दुःख-क्लेश कोसों दूर होंगे । आर्थिक अभाव और सामूहिक समस्याओं के होते हुए भी उन परिवार के सदस्यों में स्थापित स्नेह और आत्मीयता के सूत्र उन विपत्तियों से जूझने का बल प्रदान करेंगे ।

पारिवारिक सौमनस्य का आधार स्वार्थ-त्याग

पारिवारिक मनोमालिन्य, विघटन और कलह एकमात्र स्वार्थपूर्ण दुर्भावना के कारण होते हैं । वातावरण खराब करने में घर की स्त्रियों का हाथ प्रमुख रहता है । पर यदि माताओं में सौजन्य, उदारता और त्याग भावना हो तो वे पारिवारिक जीवन में स्वर्गीय सुख अवतरित कर सकती हैं ।

प्रस्तुत घटना इस तथ्य की सत्यता का प्रमाण है । वजीरपुरा के श्री कृष्णदासजी सेठ को सारा कस्बा जानता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है । काफी धनाड्य व्यक्ति हैं । उतने ही धर्म-परायण भी । परमात्मा जो कुछ देता रहा उसका आधा श्रद्धापूर्वक परोपकार में खर्च करते रहे । सेठजी को पता चला हो और किसी विद्यार्थी के आगे पढ़ने के मार्ग में अर्थ अभाव आया हो ऐसा कभी नहीं हुआ । इनके यहाँ से लगभग १० बच्चों को प्रतिवर्ष छात्र-वृत्ति मिलती रही ।

दुःख है कि इतना सब होते हुए भी घरेलू वातावरण सद्भावरहित और कलहपूर्ण था । सेठजी ने अपना सारा जीवन कमाने और काम करने में बिताया । उन्होंने कभी परिवार की आन्तरिक स्थिति पर ध्यान भी नहीं दिया । परिश्रम करना तो मनुष्य का मुख्य धर्म है । उद्योगशील होना बुरा भी नहीं; पर मनुष्य को धन कमाने के साथ ही अपने परिवार और बाल-बच्चों के निर्माण का भी ध्यान रखना चाहिए । सेठजी को इस भूल का पता तब चला जब कलह इतने उग्र हो उठे कि उन्हें सँभालना कठिन हो गया ।

सेठजी के तीन बेटे थे । दो विवाहित थे, एक अविवाहित । सेठ जी की विधवा बहिन भी इसी परिवार में सम्मिलित थी, पर मुख्य झगड़ा दोनों विवाहित भाइयों और उनकी स्त्रियों के बीच था । उनमें धन और जायदाद के मामले में हमेशा चख-चख मची रहती थी । धन भी ऐसी बुरी बला है कि यदि उसे आध्यात्मिक उन्नति का सहयोगी न मानकर भोग की वस्तु मान लिया जाता है तो उसके प्रति अनुचित लोभ ही बढ़ता है । यही बात कलह की जड़ है । ऐसे परिवार सुख, शान्ति, सौमनस्य, प्रेम-स्नेह, आदर-सद्भाव से ऐसे वंचित होते हैं जैसे दिन के १२ बजे ताराओं का दर्शन ।

कृष्णदास जी को बड़ा मनस्ताप रहता । बड़े बेटों पर वे अत्यधिक क्षुब्ध हुये, इसलिए एक दिन सबका बँटवारा कर दिया । घर का जितना धन नगदी और सेठानी जी का जेवर था सो सब अपने पास रख लिया और छोटे बच्चे की शादी की, तब नई बहू को वह सारा सौंप दिया ।

उसी के दूसरे वर्ष कृष्णदासजी की हृदयगति रुक जाने से मृत्यु हो गई । कठिनाई से श्राद्ध हुआ और पुरानी चख-चख फिर हरी हुई । सारा परिवार अखाड़ा बन गया, उसमें चैन पाना मुश्किल हो गया ।

नई वधू ने स्थिति की गम्भीरता को विचारपूर्वक परखा और यह अनुभव किया कि जब तक सबकी मनोवृत्तियाँ परिवर्तित न होंगी तब तक कलह दूर किया जाना सम्भव नहीं । बहू ने अपने पतिदेव से कहा-यह धन वस्तुतः हमें अधिक दिया गया है जबकि इसमें सबका समान हिस्सा होना चाहिए । घर के बँटवारे में भी भाइयों का हिस्सा बराबर है । यदि परस्पर भेदभाव न हो तो क्यों ऐसे झगड़े हों, इसलिये हमें अपनी ओर से तो ईमानदारी और न्याय का व्यवहार करना ही चाहिए, दूसरे लोग चाहे कुछ भी करते रहें ।

छोटे भाई को इस पर बड़ा सन्तोष हुआ । उसने सब भाइयों की उपस्थिति में सारा धन भाइयों में बाँट दिया । अपने लिये छोटा-सा मकान ही लिया । हवेली दोनों भाइयों को दे दी । इस त्याग से भाइयों की आँखें खुलीं और वे अपने कृत्य पर बहुत शर्मिन्दा हुए । इसके बाद से वे लोग इतने प्रेम और आत्मीयता से रह रहे हैं कि देखते ही बनता है । स्वार्थ सीमित और सबके समान हित का भाव परिवारों में रहे तो उन्हें निःसन्देह विघटन से बचाया जा सकता है ।

स्वर्ग आपके घर में है

लोगों की ऐसी मान्यता है कि इस धरती से अन्यत्र कहीं ऊपर आसमान में स्वर्ग अवस्थित है । इसके बारे में उन्हें तरह-तरह की कल्पनाएँ करते देखा जाता है । कहते हैं, वहाँ सभी प्रकार के शारीरिक सुख मिलते हैं । इस स्वर्ग की प्राप्ति के लिए लोग तरह-तरह के कर्मकाण्ड करते रहते हैं ।

ऊपर कोई स्वर्ग है या नहीं, इस पचड़े में पड़ने की अपेक्षा यह देखना अधिक अच्छा है कि क्या उस स्वर्ग जैसी परिस्थितियों को अपनी इस धरती पर उतारा जाना सम्भव है ।

साधनों की दृष्टि से इस धरती पर किसी प्रकार का अभाव नहीं है । रुपया-पैसा, धन-जायदाद, वस्त्र-आभूषण, फल-फूल, मेवा-मिष्ठान आदि सभी सुख-सामग्रियों से धरती माता की गोद भरीपूरी है । यदि यहाँ कुछ कमी हो सकती है, तो भावनात्मक न्यूनता ही होती है । सुख के साधनों के साथ स्नेह, प्रेम और आत्मीयतापूर्ण भावनाओं के सम्मिश्रण को ही स्वर्ग कहा जा सकता है ।

यह स्वर्ग आपके घर में ही मौजूद है, आप भले ही उसे न देख पाते हों-यह स्वर्ग-दाम्पत्य-जीवन का स्वर्ग, किसी ऊपर वाले स्वर्ग से कम सरस, सुखद और सुरुचिपूर्ण नहीं है । जिसने इसका रसास्वादन कर लिया, वह अन्यत्र स्वर्ग की क्यों कामना करेगा ?

पति और पत्नी का मिलन एक आध्यात्मिक मिलन होता है । दो आत्माओं का सम्मिलन इतना आनन्ददायक होता है कि वे दोनों अपने इस सुमधुर सम्बन्ध को परिपक्व बनाये रखने के लिए सम्पूर्ण जीवन कठिनाइयों और मुसीबतों का खुशी-खुशी सामना करते रहते हैं । घर-गृहस्थी जुटाने के लिए कितना श्रम, उद्योग और अव्यवसाय करना पड़ता है इसे प्रत्येक सद्गृहस्थ भली प्रकार जानता है । इसी प्रकार घर के आन्तरिक मामलों की देख-रेख, बच्चों के लालन-पालन, भोजन व्यवस्था, पतियों की समुचित सेवा में बेचारी गृहणियों को कितनी दौड़-धूप करनी पड़ती है, यह किससे छुपा है । एक दूसरे के प्रति आत्म-उत्सर्ग की भावना निश्चय ही आध्यात्मिक तथ्य है । युग-युगान्तरों के संस्कारों के परिणामस्वरूप यह सुखद संयोग मिलता है । एक प्राण दो शरीरों की यह सम्मिलित इकाई जितनी प्रगाढ़ आत्म-त्याग की भावनाओं से ओत-प्रोत होगी, उसी अनुपात से आपके आँगन में स्वर्ग बिखरा पड़ा होगा । उस वातावरण में रहने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वाला प्रत्येक व्यक्ति जीवन के सच्चे सुख का रसास्वादन कर रहा होगा ।

जहाँ इस आत्मीयता में कमी होगी, वहाँ दु:ख और दारिद्रय की परिस्थितियाँ ही दिखाई देंगी । स्वर्ग का आधार जिस प्रकार भावनात्मक परिष्कार है, उसी प्रकार कलह और कटुता के आधार पर नारकीय जीवन का सूत्रपात होता है । मनुस्मृति में कहा गया है-

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्य कल्याणं तत्रवैदम् ।।
स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम् ।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते ।।

अर्थात्- जिस कुल में पत्नी से पति और पति से पत्नी अच्छी प्रकार सन्तुष्ट रहते हैं, उसी घर में सौभाग्य और ऐश्वर्य निवास करते हैं । जहाँ उनमें कलह होता है, वहाँ दुर्भाग्य और दारिद्रय स्थिर रहता है । स्त्री की प्रसन्नता से घर की प्रसन्नता मुखरित रहती है । यदि वह अप्रसन्न रही तो सभी ओर अप्रसन्नता और दु:खद परिस्थितियाँ उठ खड़ी होंगी ।

दाम्पत्य जीवन में सुख का चाव विवाह के थोड़े दिनों तक पूर्ण स्थिर रहता है । जब तक दोनों में एक-दूसरे के प्रति आकर्षण बना रहता है तब तक दोनों ही विलक्षण सुख का अनुभव किया करते हैं । थोड़ी देर तक पति दिखाई न दे तो नव-वधू का हृदय आशंका से छटपटाने लगता है । तरह-तरह की मंगल कामनाएँ अन्त:करण से उठने लगती हैं । पति आ जाता है तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे खोये हुए प्राण वापस हुए हों । पुरुषों की भी ऐसी ही अवस्था होती है । उन्हें भी अपनी पत्नी के लिए तरह-तरह की चीजें एकत्रित करने में बड़ा आनन्द आता है । इसके लिए वे अनेक प्रयत्न भी करते हैं । जब तक यह भावनाओं का आदान-प्रदान चलता रहता है तब तक घर का वातावरण अत्यन्त रोचक और सजीव बना रहता है ।

किन्तु आकर्षण की कमी के साथ भावनाओं का स्तर भी गिरने लगता है । पारस्परिक प्रिय-दर्शन और आत्मदान के स्थान पर एक-दूसरे के दोष, ऐब और कमियाँ ढूँढ़ने लग जाते हैं । यहीं से गृहस्थ की दुर्दशा प्रारम्भ होती है, जो घर को अन्तत: नरक जैसी दु:खद परिस्थितियों में पटकती है ।

आकर्षण से गिरावट का प्रमुख कारण अनियन्त्रित कामवासना ही है । इसका प्रधान दोषी पुरुष है । भारतीय परम्पराओं के अनुसार पुरुषों के अधिकार बड़े माने हैं । अधिकांश व्यक्ति इस स्वामित्व का दुरुपयोग अपनी क्षणिक इन्द्रिय उत्तेजना की पूर्ति में किया करते हैं । इससे सौन्दर्य का आकर्षण कम होने लगता है और लोग आध्यात्मिक सन्निकटता से दूर हटने लगते हैं ।

स्त्रियों को अपनी सम्पत्ति मानकर उनसे व्यवहार करने की पुरुष की आदत नितान्त दुर्भाग्यपूर्ण है । जो कर्त्तव्य स्त्रियों के पुरुषों के प्रति होते हैं, वैसा ही निर्वाह यदि पुरुष भी अपनी पत्नियों के प्रति करें तो दाम्पत्य-जीवन को चिरकाल तक सुखद शान्तिमय बनाये रखा जा सकता है । पुरुषों के कर्त्तव्यों की विवेचना करते हुए पद्म पुराण में लिखा है-

नास्ति भार्या समतीर्थं नास्ति भार्या समं सुखम् ।
नास्ति भार्या समं पुण्यं, तारणाय हिताय च ।

पुरुष के हित व कल्याण के लिए पत्नी से बढ़कर न तो कोई तीर्थ है न पुण्य, स्त्री के समान सुख अन्यत्र मिलना असम्भव है ।

इस सुख की अनुभूति तभी हो सकती है, जब स्त्री-पुरुषों में पारस्परिक विश्वास सुदृढ़ बना रहे । इससे आत्मीयता बनी रहती है, स्नेह स्थिर रहता है । छोटी-मोटी गलतियाँ भी हो जाती हैं, तो उन्हें उदारतापूर्वक क्षमा कर देने से आपसी सम्बन्धों में बिगाड़ पैदा नहीं होता । जो इतना भी न कर सके, उसे मनुष्य कहना भी भूल है । मनुष्य की सच्ची कसौटी यह है कि वह अपने संरक्षण में निवास करने वालों का शारीरिक और मानसिक भरण-पोषण करते हुए दूसरों के हितों में ही अपना सुख माने, अपनी पत्नी, अपने बच्चों को सुखी, हँसता-खेलता देखकर कौन ऐसा सद्गृहस्थ होगा, जिसे खुशी न होती हो । छोटी-छोटी गलतियाँ प्राय: सबसे होती रहती हैं । दाल में थोड़ा नमक ज्यादा हो गया, बच्चे ने दूध बिखेर दिया, भोजन पकाने में थोड़ा विलम्ब हो गया-इतने मात्र से यह मान लेना कि आपकी पत्नी आपका ध्यान नहीं रखती, उचित प्रतीत नहीं होता । जिस प्रकार पुरुषों के बाह्य जीवन में अनेक उलझनें आती हैं, वैसी ही घर में भी सम्भव हैं । इन समस्याओं को लेकर अपने मधुर सम्बन्ध क्यों खराब करें ? उदारतापूर्वक गलतियों को क्षमा कर देने से दूसरे भी सोचते हैं कि आपको उसका कितना ध्यान है । इसी बात को लेकर तो नारियाँ अपने पिता का घर छोड़ कर पतियों का साहचर्य स्वीकार करती हैं । जिससे इसकी पूर्ति भी सम्भव न हो सकी-इतना भी नहीं बन पड़ा, तो उस अभागे पति को कंजूस ही कहा जायगा ।

आनन्द का वातावरण तो पति-पत्नी के स्नेहपूर्ण सम्बन्धों पर आधारित है । उनमें आत्मीयता हो तो कम शिक्षित और कम सुन्दर दम्पत्ति अभावपूर्ण जीवन में भी सुख का रसास्वादन कर सकते हैं । आकर्षण का कारण बाह्य सौन्दर्य नहीं कहा जा सकता । आन्तरिक पवित्रता, स्नेह और आत्मीयता के कारण अपनी कम सुन्दर पत्नी भी प्राण-प्रिय होती है । घर का सौन्दर्य भी मधुर सम्बन्धों से ही फलता-फूलता है । शास्त्रों का कथन है-

भार्यापत्युव्रतं कुर्याद् भार्यायाश्च पतिव्रतम् ।
संसारोऽपि हि सारः स्याद दम्पत्योरेक कः ।

यदि पति-पत्नी एक हृदय हों तो यह असार संसार भी सारवान् बन सकता है । यहाँ इसी धरती में भी स्वर्ग के दर्शन करने हों, तो हर सदगृहस्थ को अपने दाम्पत्य जीवन में प्रेम, स्नेह, आत्मीयता और अभिन्नता की भावना पैदा करनी होगी ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शास्त्रकार का कथन है-

स वै नैव रेरे तस्मादेकाकी न रमते, स द्वितीयमैच्छत् । स हैतावानास । यथा स्त्री पुमांसौ स परिष्वक्तौ स इममेवात्मानं द्वेधापातयत्ततः तपश्चि पत्नी चाभवताम् ।

वह ब्रह्म आनन्द नहीं कर सका, क्योंकि अकेला कोई भी आनन्द नहीं कर सकता । उसने दूसरे की इच्छा की । वह ऐसा था जैसे स्त्री-पुरुष मिले हुए होते हैं । उसने अपने इस रूप के दो भाग किये, जिससे पति और पत्नी हो गये ।

देववत् सततं साध्वी भर्तारमनुपश्यति ।
दम्पत्योरेष वै धर्मः सहधर्म कृतः शुभः ।।

-विष्णु पुराण

पत्नी पति को देवता के समान और पति-पत्नी को देवी के समान समझे । दोनों का धर्म और कर्त्तव्य समान है ।

पत्नी के पति के प्रति कैसे भाव रहें, इसकी अभिव्यक्ति इस प्रकार है-

न कामये भर्तृविनाकृता सुखं,
न कामये भर्तृविनाकृता दिवम् ।
न कामये भर्तृविनाकृता श्रियं,
न भर्तृहीना व्यवसामि जीवितुम् ।

"मैं पति के बिना सुख नहीं चाहती, बिना पति के स्वर्ग नहीं चाहती, बिना पति के धन नहीं चाहती, बिना पति के जीना भी नहीं चाहती ।" ऐसे ही भाव पति भी पत्नी के प्रति रखे ।

सर्व तीर्थ समोभर्ता सर्वधर्म मयः पतिः ।
मेखानां यजनात् पुण्यं यद् वै भवति दीक्षिते ।।
तत् पुण्यं समवाप्नोति भर्तुश्चैव हि साम्प्रतम् ।।

पद्म० भूमि० ४१।१४-१५

महाकवि कालिदास ने इस प्रकार कहा है-

गृहणी सचिवः सखी मित्रं ।
प्रिय शिष्या ललिते कला विधौ ।

"पत्नी ही धर्म-मन्त्री, मित्र, प्रिय तथा ललित कलाओं की शिष्या है ।"

एक दूसरे को स्नेह सहकार प्रदान करते हुए उदारता एवं कृतज्ञता का रसास्वादन करते हुए संयुक्त और आदर्श समाज की संरचना में अपनी जिम्मेदारी निबाही जाए, तभी परिवार संस्था राष्ट्र की एक छोटी किन्तु सुव्यवस्थित और महत्वपूर्ण इकाई सिद्ध हो सकती है । किन्तु यह सम्भावना दिनोंदिन धूमिल और क्षीण ही सिद्ध होती आ रही है, इसका क्या कारण हो सकता है ? इसका सबसे बड़ा कारण है मनुष्य स्वभाव का त्रुटिपूर्ण होना और साथ ही दूसरों की त्रुटियों के प्रति असहिष्णुता का रुख अपनाते हुए अपने प्रति अधिक उदार हो जाना ।

मनुष्य दूसरों की बाल बराबर त्रुटियों को भी पहाड़ बराबर बनाकर शिकायत करने लगता है, अपनी पहाड़ जैसी त्रुटियों को भी नगण्य मान लेता है । यही नहीं, दूसरों से वहाँ उपेक्षा भी करता है कि वे इन त्रुटियों पर ध्यान न दें, उन्हें भूल जाएँ या सहन करें । मनुष्य स्वभाव का यह पेंच ही आपसी विग्रह और कलह का कारण बनता है । लोग अपने सामाजिक जीवन में जिन व्यक्तियों के सम्पर्क में आते हैं, उनके प्रति भी यही रुख अपनाते हैं और बाह्य जीवन में भी इसी छोटे से कारण को लेकर झगड़े-टन्टे होते रहते हैं । फिर जिन लोगों के साथ चौबीसों घण्टे रहना है, जिनके साथ घनिष्ट सम्बन्ध रहते हैं, उनके बीच तो यह पेंच और भी जटिल बन जाता है । परिणामतः पैदा होने लगते हैं, विघटन, विग्रह, क्लेश, कलह और विवाद ।

प्रश्न उठता है क्या स्थिति का कोई समाधान भी है ? निश्चित ही ऐसी कोई समस्या नहीं है, जिसका समाधान न हो । आवश्यक इतना भर है कि इसके लिए यत्नशील हुआ जाए और अपने दृष्टिकोण में सुलझाव लाया जाए । विचार किया जाना चाहिए कि जब सभी मनुष्य गलतियाँ कर सकते हैं तो उसे लेकर शिकवा शिकायत करने और विग्रह खड़ा करने का प्रश्न ही कहाँ रह जाता है ? उस स्थिति में विग्रह और कलह का कारण अपने आप ही समाप्त हो जाता है ? क्योंकि ऐसी स्थिति में किसी को भी पूर्ण नहीं बनाया जा सकता और पूर्ण नहीं बनाया जा सकता तो फिर परिवार संस्था की उपयोगिता ही क्या रही ? लेकिन इससे परिवार संस्था के महत्व पर रंचमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ता । एक-दूसरे की त्रुटियों को उदार सहिष्णुपूर्वक निभाते हुए उन अपेक्षाओं को पूरा किया जा सकता है ।

सामान्यतः सभी पर लागू होने वाली इन त्रुटियों को दूर करने का एकमेव सूत्र है-अपने संतोष का केन्द्रबिन्दु बदलना । इस सूत्र को क्रियान्वित करते समय ध्यान में रखना चाहिए कि परिवार के प्रति सभी सदस्यों के दायित्व हैं । किन्तु अपने प्रयोजन में सफल रहने वाले, इच्छाएँ पूरी न होने पर असन्तुष्ट होने वाले सदस्य यह मानते हैं कि परिवार के सभी सदस्यों का मेरे प्रति दायित्व है । यह धारणा आम हो चली है और परिवार का प्रत्येक सदस्य यह सोचने लगता है कि घर के अन्य लोगों की आवश्यकताएँ पूरी हों या न हों, मेरी आवश्यकता या इच्छा तो हर स्थिति में पूरी होनी ही चाहिए । घर के सभी लोग इस प्रकार सोचने लगें तो किसका किसके प्रति क्या दयित्व रहा ? और असंतुष्टि की यह खींचतान ही घर में विग्रह उत्पन्न करती है । औरों की आवश्यकताओं को नजरअंदाज कर अपने सुखों को ही अधिक महत्व देने की प्रवृत्ति पारिवारिक विग्रह का प्रमुख कारण है । यदि इस दृष्टिकोण को बदला जा सके और अपने सुख को नजरअंदाज कर अन्य सदस्यों की आवश्यकता को महत्व

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देने का दृष्टिकोण अपनाया जा सके तो परिवार संस्था निश्चित रूप से उपयोगी और अर्थपूर्ण हो सकती है । इसके लिए एक सूत्र स्मरण रखना भर पर्याप्त है और वह यह कि अपने संतोष का केन्द्रबिन्दु बदला जाये ।

सर्वांगीण प्रगति का आधार सहकारिता

प्रगतिशील समाजों में यह तथ्य निर्विवाद स्वीकार किया जाने लगा है कि व्यक्ति एवं समाज के विकास में सहकारिता का सिद्धान्त सर्वाधिक महत्वपूर्ण, सबसे अधिक उपयोगी है । सहकारी संस्थाओं, बैंकों का विस्तार एवं उनकी लोकप्रियता सर्वत्र बढ़ती जा रही है । ऋण प्राप्त करने, उद्योग लगाने, उत्पादन के वितरण के अनावश्यक झंझट से बचने, माल की सुरक्षा प्राप्त करने में लोगों को सहकारी संगठनों से विशेष सहयोग मिल रहा है । साथ ही उस उपयोगी श्रम, समय, सम्पदा की भी बचत होती है जो हर कार्य में अपनी ढपली आप बजाने जैसे प्रयत्नों में अनावश्यक रूप से व्यर्थ नष्ट हो सकती थी ।

परम्परागत संस्थाओं में परिवार भी सहकारी संस्था का ही एक रूप है जहाँ कि सदस्यों के परस्पर के सहकार से ही परिवाररूपी गाड़ी आगे बढ़ती है । शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, बौद्धिक, सामाजिक तथा भावनात्मक विकास का परिवार वह केन्द्र है जिसमें अनेकों सदस्य परस्पर विरोधी स्वभाव, अभिरुचि तथा प्रकृति के होते हुए भी एक साथ रहते हैं । सबका ही हिल-मिलकर स्नेह भाव से रहने में हित है । संगठन की दृढ़ता, एकता, आपसी तालमेल, भावनात्मक समन्वय जैसे गुण जितने ही अधिक होंगे, वह परिवार उतना ही श्रेष्ठ होगा और सही अर्थों में अपनी उपयोगिता सार्थक करेगा ।

बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में बड़े परिवारों की परम्परा लुप्त सी होने लगी । बुद्धिवादी संकीर्णताओं ने मनुष्य को अपनेपन की सीमा को बीबी बच्चों तक अथवा अधिक से अधिक माता-पिता तक सीमित कर दिया । ऐसे परिवार समाप्त से हो गये जिसमें अधिक से अधिक व्यक्ति एक साथ रहते थे । अपवाद के रूप में मात्र उदाहरण देने जितने परिवार ही होंगे जो बुद्धिवादी युग में भी अपनी श्रद्धा एवं भावनात्मक विशेषताओं के कारण अपना अस्तित्व बनाये रहे ।

पर बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध ने पुनः करवट बदली है तथा विचारशीलों ने अनुभव किया है कि लार्जर फैमिली की व्यवस्था व्यक्ति एवं समाज के सर्वांगीण विकास के लिए हर दृष्टि में उपयोगी है । साम्यवाद के विस्तार ने संसार के बड़े समुदाय को प्रभावित किया तथा अपनी लपेट में लिया है । उसकी महत्ता एवं लोकप्रियता वस्तुतः वह अर्थ तथा सामाजिक नीति है जो समता, एकता पर आधारित है । कम्यून का-लॉर्जर फैमिली का सिद्धान्त ही वस्तुतः उसकी लोकप्रियता का प्रमुखता का आधार है । कम्यून व्यवस्था के तार्किक एवं बौद्धिक सिद्धान्तों ने नये रूप में, नयी शैली से लार्जर फैमिली की उपयोगिता-उपादेयता को ही परिपुष्ट किया है तथा यह बताया है कि भौतिक आधारों पर बड़े कुटुम्बों का सहकारी संगठन हर दृष्टि से विकास में सहायक है ।

एक कारखाने में, एक मिल में, एक फैक्टरी में एक साथ सैकड़ों हजारों व्यक्ति कार्य करते हैं । कार्यों का विभाग बँटा होता है । विभिन्न स्तर-विभिन्न योग्यता के व्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार के काम करते हैं । मजदूर, कर्मचारी, अफसर सभी अपना-अपना कार्य-विभाग सँभालते, उत्तरदायित्व निभाते हैं पर सभी संचालित एक केन्द्रीय व्यवस्था से एक लक्ष्य के लिए होते हैं । वर्कशाप में एक साथ सैकड़ों टेक्निशियन मजदूर काम करते हैं । मन्त्रि मण्डल में कितने ही मन्त्री एक साथ कार्यरत रहते हैं । कार्यों, उत्तरदायित्वों, उपार्जन एवं वितरण की यह सामूहिक व्यवस्था हर दृष्टि से उत्तम तथा लाभकारी है ।

सरकारी एवं गैर सरकारी स्तरों पर ऐसी सामूहिक संस्थाएँ संगठित होकर काम करती रह सकतीं तथा सफल हो सकती हैं तो कोई कारण नहीं है कि वह सहकारी प्रयोग व्यक्तिगत जीवन के लिए सामूहिक स्तर पर न किया जा सके । व्यक्तिगत जीवन के अन्तर्गत मनुष्य का खान-पान, पत्नी बच्चों का भरण-पोषण, शिक्षण उपचार आदि की व्यवस्था आती है । साथ ही स्नेह, प्यार के भावनात्मक आदान-प्रदान की एक महत्वपूर्ण कड़ी और जुड़ी रहती है । कल-कारखानों, फैक्टरियों, उद्योगों में आर्थिक स्वार्थों के कारण असंख्यों व्यक्ति एकजुट होकर कार्य करते रह सकते हैं तो कोई कारण नहीं है कि वह सहकारी प्रयोग लॉर्जर फैमिली के लिए न किया जा सके । असमर्थता का, असफलता का कारण मनुष्य की वह संकीर्णता बनती है जिसके रहते परस्पर भिन्न रुचि एवं प्रकृति वालों के प्रति तालमेल नहीं बन पाता । अपनी प्रवृत्तियों, अभिरुचियों पर अंकुश न रहने से वह सामंजस्य नहीं बिठा पाता जो सहकारी व्यवस्था के लिए आवश्यक है ।

वह दीखने में छोटा पर चट्टान की भाँति अड़ा मनोवैज्ञानिक असमंजस दूर हो सके, तो कम्यून का लार्जर फैमिली का वह प्रयोग अपने देश में अभिनव रूप में चल सकता है, जिसका अभ्युदय कितने ही प्रगतिशील देशों एवं समाजों में हुआ है तथा अत्यन्त सफल रहा है । चीन उन उदाहरणों में एक है जिसने कम्यून व्यवस्था के अन्तर्गत समाज को संगठित करके उनकी क्षमता एवं योग्यता का विकास में विशेष लाभ उठाया है । कृषि उद्योग में चीन की सहकारी नीति उल्लेखनीय है । कम्यून दो भागों में विभक्त है-उत्पादन विग्रेड तथा उत्पादन दल । उत्पादन विग्रेड ऐसे व्यक्तियों का समूह है जो बड़ी योजनाएँ बनाता उनकी नीतियाँ निर्धारित तथा संचालित करता है । दोनों का सम्मिलित समन्वित प्रयास शिक्षा, स्वास्थ्य, जन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

कल्याण के कार्यों को सम्पन्न करता है । उत्पादन विग्रेड उत्पादन दल का संगठन करता, उसके कार्यों की देखरेख करता है । छोटे उद्योगों के संचालन का दायित्व भी इसी कार्य के ऊपर है । उत्पादन इकाई के रूप में उत्पादन दल कार्य करता है ।

चीन के विभिन्न राज्यों में ६० हजार से लेकर ८० हजार तक कम्यूनों की स्थापना हो चुकी है । किसी-किसी में एक हजार तक सदस्य हैं तथा सौ एकड़ के एक बड़े फार्म में मिल-जुलकर कृषि कार्य करते साथ रहते हैं । अनेक ऐसे भी हैं जिनमें एक लाख तक सदस्य हैं जो २५ हजार एकड़ भूमि पर कृषि करते हैं । १९६० में ऐसे लगभग २५०० फार्म थे जिनमें २८ लाख सदस्य थे तथा एक करोड़ ३० लाख एकड़ भूमि पर खेती करते थे । अनुमानतः १९६४ में ऐसे सामूहिक कृषि फार्मों की संख्या ६४०० तक पहुँच गयी । इनमें २००० तो बड़े फार्म थे ।

चीन में कम्यून प्रणाली का आरम्भ सन् १९५८ में समस्त कृषि सहकारी तथा गैर सहकारी समितियों के एक-दूसरे में विलय से हुआ । कार्यों के साथ-साथ सामूहिक स्तर पर निवास एवं आहार गृहों की व्यवस्था की गयी । प्रयोगों की सफलता ने उसे बढ़ने-फैलने, फूलने-फलने का अवसर दिया और कम्यून की स्थापना का एक ऐसा उत्साह उमड़ा जिससे देश की आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति में विशेष मदद मिली । कम्यून प्रणाली की असाधारण सफलता में चीन की नारियों का भी विशेष योगदान है । ऐसा अनुमान है कि कम्यून के अन्तर्गत चल रहे कृषि कार्य में आधी संख्या श्रमजीवी महिलाओं की हैं ।

सहकारिता के कम्यून सिस्टम को इजराइल ने भी आश्रय दिया है तथा व्यापक स्तर पर सामुदायिक क्षेत्र में प्रयोग किया है । यहाँ की सहकारी कृषि-व्यवस्था का अपना विशेष महत्व है । सहकारी व्यवस्था के अन्तर्गत मोशेव तथा किब्बुज दो तरह के कम्यून हैं । मोशेव १५० कृषक परिवारों का गाँव है, गाँव के कृषकों की सामाजिक एवं आर्थिक सुरक्षा सहकारी तंत्र द्वारा निश्चित है । यह तंत्र ही कृषि उत्पादन से जुड़े यन्त्रों का सरंजाम जुटाता, उत्पादन की बिक्री की व्यवस्था बनाता है ।

किब्बुज में सदस्यों की संख्या ६० से २००० तक होती है । सहकारी व्यवस्था का किब्बुज एक ऐसा स्वरूप है जिसमें सभी साधनों के ऊपर स्वामित्व सदस्यों का सामूहिक रूप से होता है । ऋण एवं आय का केन्द्रीकरण तथा वितरण आवश्यकतानुसार होता है । इजराइल की कृषि अब फार्म सोसाइटी के रूप में विकसित हो रही है, इसका एक उदाहरण फार्मर्स फेडरेशन है जिसकी सदस्यता सात हजार साइट्रस उत्पादकों की हैं । अनुमानतः कुल कृषि योग्य भूमि का पाँचवाँ हिस्सा किब्बुज द्वारा संचालित है ।

न केवल उत्पादन वरन् शिक्षण, परिवारों के भरण पोषण की भी व्यवस्था सामूहिक व्यवस्था के अन्तर्गत बनायी गयी है । बच्चों को पृथक बालगृहों में रखा जाता है ताकि माताएँ अन्य सामुदायिक कार्यों में भाग लेती रह सकें । एक वर्ष की आयु तक बच्चे इन गृहों में कुशल अपब्रिगरों-आयाओं की देखरेख में पलते हैं । एक आया के जिम्मे चार या पाँच बच्चों की देखरेख का दायित्व होता है । अपने स्वयं के बच्चों को भी वे बालगृह में रखती हैं । इसके बाद बच्चों को 'टाडलर गृह' में रखा जाता है । तीन-चार साल के बच्चे आठ, दस के समुदाय में एक साथ रहते हैं । कुछ घण्टों के लिए बच्चे अपने माता-पिता से मिलने जाते हैं, शेष समय टॉडलर गृह में ही बिताते हैं । तीसरे चरण में चार से सात वर्ष के बच्चों को किंडर गार्डेन में रखकर कुशल शिक्षकों के संरक्षण एवं नियंत्रण में शिक्षित किया जाता है । किब्बुज का नारा है-समूह सबके लिये सब समूह के लिए ।

स्विटजरलैण्ड भी उन्हीं देशों में है जिसकी प्रगति का प्रमुख रहस्य सहकारी प्रयोगों की मान्यता । तीन हजार कम्यून देश में कार्यरत है । सहकारिता पर आधारित सामूहिक जीवन जीने का इनका प्रयोग अत्यन्त सफल रहा है । भौगोलिक आधार पर तो इस देश को एक पिछड़ा हुआ देश होना चाहिए । पर श्रेय उसके नागरिकों के उस मनोबल तथा सहकारी प्रयोगों को जाता है जिसके कारण ही वे निरन्तर प्रगति पथ पर आगे बढ़ते गये । पर्यटन देश का प्रमुख उद्योग तथा आय का एक बड़ा स्रोत है । सहकारी व्यवस्था में पर्यटन तन्त्र की व्यवस्था भी सम्मिलित है । तीन सौ अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का यह देश वित्तीय केन्द्र है ।

यहाँ के नागरिकों के रहने के स्थान झील तथा सरोवर के किनारे हैं । स्थानाभाव के कारण नदियों की दिशाओं में परिवर्तन करने के लिए उन्नीसवीं सदी में अनेकों प्रयास सामूहिक स्तर पर किये गये । इससे रहने योग्य थोड़ी समतल भूमि निकल आयी जिस पर निवास एवं कृषि की व्यवस्था बनायी गयी ।

सहकारिता को विकास का एक अभिनव सूत्र मानते हुए विभिन्न देशों की सरकारों ने कोआपरेटिव आन्दोलनों को मान्यता देकर उसे प्रोत्साहित किया है । कोआपरेटिव स्टोर, कन्ज्यूमर्स सोसाइटी कारपोरेशन आदि लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते सर्वत्र देखे जा रहे हैं । दूसरे देशों ने सरकारी-गैर सरकारी स्तरों पर ही नहीं, पारिवारिक स्तर भी सहकारिता का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया है । इस प्रयास में उन्हें भारी सफलता मिल रही है तथा सामूहिक विकास को अपेक्षाकृत अधिक गति मिल रही है ।

अपने देशों में लार्जर फैमिली की परम्परा प्राचीन काल में अत्यन्त सफल रही है । विकृतियों के घुसने तथा वातावरण के प्रभाव से वह परम्परा विलुप्त-सी हो गयी । पर उसे अभिनव स्वरूप पुनः दिया जा सकता है । परम्परागत रूप में वह प्रयोग सफल नहीं हो सकता । कम्यून से ही मिलता जुलता स्वरूप देना होगा । छोटे-छोटे

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिवारों में हर चीज को अलग-अलग व्यवस्था बनाने से ढेरों समय, श्रम एवं धन की बर्बादी होती है । सहकारिता के प्रयोग से उनमें भारी बचत की जा सकती है संगठन में एक साथ मिल-जुलकर रहने, मिल-बाँटकर खाने का जो आनन्द है वह इक्कड़ जैसे रहने से कहाँ प्राप्त हो सकता है । आत्मीयता-पारिवारिकता, स्नेह-सौजन्य, सद्भाव एक-दूसरे के बीच बढ़ाने में भी यह प्रयोग अत्यन्त सहयोगी सिद्ध हो सकता है ।

परिवार संस्था का नवनिर्माण नारी जागरण से ही होगा

व्यक्ति-निर्माण के लिए धर्म और अध्यात्म का विशाल तन्त्र दूरदर्शी मनीषियों ने चिरकाल पूर्व खड़ा किया था । वह प्रयास मानवीस्तर को देवस्तर तक पहुँचाने में पूरी तरह सफल रहा, इसके लिए अपना पुरातन इतिहास साक्षी है । आज उन क्षेत्रों में विकृतियाँ घुस पड़ी हैं । अवांछनीयताओं की घुसपैठ से निहित स्वार्थों का पोषण और भोले-भावुकों का शोषण हो रहा है । तो भी यह आशा है कि आज नहीं तो कल इन तन्त्रों की सफाई होगी और वह पहले की तरह अपनी उपयोगिता सिद्ध करने लगेंगे ।

समाज-निर्माण का उत्तरदायित्व सँभालने के लिए ही शासन तन्त्र की संरचना है । उसमें जो कमी रह जाती है उसे समाज सुधार संस्थाएँ पूरा करती हैं । धर्म परम्पराएँ भी इस प्रयोजन में सहायता करती हैं । इस क्षेत्र में अन्य रचनात्मक हलचलें भी चलती रहती हैं । छोटे-बड़े सम्मेलन प्रायः सामूहिकता और लोकहित का ही वातावरण उत्पन्न करते हैं । यों इन दिनों वह चेतना भी दिग्भ्रान्त ही हो रही है और अनीति को प्रश्रय दे रही है फिर भी इस क्षेत्र को संभालने के लिए कोई तन्त्र विद्यमान है और यह आशा बनी हुई है कि उसे सुधार देने पर सतयुगी परिस्थितियाँ फिर पैदा की जा सकती हैं ।

व्यक्ति-निर्माण और समाज-निर्माण के बीच की एक महत्वपूर्ण कड़ी है-परिवार निर्माण । इसका दोनों के साथ ही अति घनिष्ट और प्रभावकारी सम्पर्क है । व्यक्ति का वास्तविक निर्माण पारिवारिक वातावरण में ही होता है । बचपन के आरम्भिक संस्कार यहाँ से प्रारम्भ होते हैं । धीरे-धीरे परिपक्व होकर वे ही व्यक्तित्व का रूप धारण करते हैं । समाज की माला परिवारों में मोतियों से ही पिरोकर बनती है । परिवार छोटे हों या बड़े वस्तुतः वे अपने आप में एक पूरा समाज हैं । उसके संचालन को भी अपने क्षेत्र के राष्ट्रपति या प्रधानमन्त्री की भूमिका निभानी पड़ती है और सरकार को जिस प्रकार देश की विभिन्न समस्याओं को सँभालना पड़ता है, उसी प्रकार परिवार के अनेक सदस्यों के बीच विचित्र भिन्नता के बीच तालमेल स्थापित करना पड़ता है । सरकार की तरह विभाग भले ही न बनें, मन्त्रिमण्डल खड़े भले ही न किये जायँ, पर समस्याएँ परिवारों के सामने भी छोटे-बड़े रूप में बनी रहती हैं जो सरकारों को बड़े रूप में हल करनी पड़ती हैं ।

दिन और रात का मिलन संध्याकाल कहलाता है । व्यक्ति और समाज मनुष्य जाति के यही दो बड़े घटक हैं, इन दोनों को आपस में जोड़ने वाली कड़ी का नाम परिवार है । दिन का अपना महत्व है और रात्रि का अपना । पर संध्या में दोनों का समन्वय रहने से उसका महत्व और भी अधिक है । प्रभातकाल की संध्या प्राणि मात्र में अभिनव, उल्लास उत्पन्न करती है और उस सुहाने वातावरण में पुलकित होकर अन्तरात्मा परमात्मा से मिलने की आकुलता व्यक्त करती है । उपासना क्षेत्र में उदीयमान संध्याकाल का बहुत महत्व है प्रायः सभी सम्प्रदायों ने उस पुण्य-बेला को धर्मकृत्यों में लगाने का निर्देश किया है । सायंकालीन संध्याकाल भी ऐसे ही सत्कर्मों में लगाने की परम्परा है । परिवार संस्था को, व्यक्ति और समाज को मध्यवर्ती संध्या कहा जा सकता है ।

परिवार का कलेवर छोटा होता है-चर्म-चक्षुओं की आदत यह है कि वस्तु के आकार के अनुरूप उसका महत्व माना जाय । परिवार छोटी संस्था है, इसलिए उसे उपेक्षणीय समझा जाता है । पर यदि गम्भीरतापूर्वक सोचा जाय तो प्रतीत होगा कि व्यक्ति और समाज की व्यवस्था एवं प्रगति का आधार भूमिका निभाने की पूरी जिम्मेदारी परिवार के स्तर पर ही निर्भर रहती है । अस्त-व्यस्त परिवार में पले हुए लोगों का व्यक्तित्व कभी उच्चस्तर का नहीं हो सकता और न पिछड़े स्तर के लोग कभी प्रगतिशील, सुविकसित समाज की रचना कर सकते हैं । गरीबी एक बात है और संस्कृति दूसरी । गरीबी परिस्थितियों पर निर्भर है, पर संस्कृति को हर परिस्थिति में सुस्थिर रखा जा सकता है । पारिवारिक परम्पराएँ यदि सद्भाव सम्पन्न हों, उनमें उच्चस्तरीय प्रचलन विद्यमान हो तो समूची मानवी जाति का-समस्त संसार का वातावरण सुख-शान्ति से भरा-पूरा रह सकता है और स्वल्प साधन रहते हुए भी स्वर्गीय परिस्थितियों का आनन्द उपलब्ध हो सकता है ।

दुर्भाग्य यह रहा है कि व्यक्ति-निर्माण के लिए धर्म और समाज निर्माण के लिए शासन जैसे समर्थ तन्त्र परिवार संस्था को सुविकसित बनाये रहने के लिए खड़ा नहीं किया गया है । उनकी समस्याओं को सुलझाने के लिए, उसका परिष्कृत ढाँचा खड़ा करने के लिए सर्वांगपूर्ण आचार-संहिता और विधि-व्यवस्था की आवश्यकता थी, पर वह व्यवस्था लोगों के ध्यान में नहीं आई । होम साइन्स 'गृह-विज्ञान' के नाम से लड़कियों को स्कूलों में पुस्तकें तो कितनी ही पढ़ाई जाती हैं, पर उनमें काम-काजी, साज-सम्हाल की ऊपर जानकारियाँ भर होती हैं । परिवार के सदस्यों का भावनास्तर, चिन्तन, दृष्टिकोण किस प्रकार परिष्कृत किया जाय, उनमें गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता का विकास कैसे किया जाय, ऐसे तथ्य नहीं ही दिखाई पड़ते हैं । सुसज्जित घर में रहने का आनन्द तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अच्छे होटलों में रहकर भी उठाया जा सकता है । अमीर लोग वैसी सुविधा, उपयुक्त सामग्री खरीद कर, प्रशिक्षित नौकर रखकर भी उपलब्ध कर सकते हैं । परिवार का बाह्य अंग ही उस सुव्यवस्था और सुसज्जा को माना जा सकता है, जो गृह-विज्ञान की पुस्तकें लिखी मिलती हैं और स्कूलों में पढ़ाई जाती हैं । यहाँ अभाव उस तन्त्र का बताया जा रहा है जो परिवार के वातावरण को सुसंस्कृत बनाता और जिसमें पले हुए लोग संस्कारवान बनकर निकलते । परस्पर सद्भाव बरतने और समाज में सत्प्रवृत्तियों का अभिवर्द्धन करने वाले कुशल माली सिद्ध होते ।

आवश्यकता इस बात की है कि उपेक्षित परिवार संस्था को नये सिरे से गठित किया जाय और उसे अपनी द्विपक्षीय भूमिका का निर्वाह कर सकने की क्षमता से सम्पन्न बनाया जाय । इसके लिए कितने ही नये आधार खड़े करने होंगे और अवांछनीय प्रचलनों से पीछा छुड़ाना पड़ेगा । मजबूत आधार वे ही हो सकते हैं जिनमें न्याय, नीति, औचित्य और विवेक को समुचित प्रश्रय दिया गया हो । परम्पराओं का महत्व इसलिए है कि वे स्वभाव का अंग बन जाती हैं । रुचि उसी ढाँचे में ढल जाती है और ढर्रा उसी पटरी पर लुढ़कने लगता है । मनःक्षेत्र में इन परम्पराओं की जड़ें इतनी गहरी जमी रहती हैं कि निष्पक्ष दृष्टि से अवांछनीय सिद्ध होने पर भी पूर्वाग्रहों के पक्ष में प्रायः हठवादिता बनी रहती है और उनके पक्ष में विचित्र प्रकार के तर्क प्रस्तुत किये जाते रहते हैं । परिवर्तन के लिए रजामन्द करना तो और भी कठिन पड़ता है ।

जो हो, अवांछनीयताओं को निरस्त करके औचित्य का प्रतिष्ठापन नितान्त आवश्यक है । यदि आत्म-हत्या के लिए कटिबद्ध मानव जाति को उज्ज्वल भविष्य के राजमार्ग पर घसीटना है तो कई महत्वपूर्ण कदम उठाने पड़ेंगे । व्यक्ति का नैतिक, बौद्धिक, चारित्रिक स्तर ऊँचा उठाना पड़ेगा और मानवी आदर्श एवं कर्त्तव्यों को अपनाने के लिए उसे राजी, वेराजी से रजामन्द करना पड़ेगा । सामाजिक प्रचलनों में ऐसी मर्यादाएँ, प्रथाएँ तथा धाराएँ जोड़नी पड़ेंगी जो समूहगत अवांछनीयताओं को निरस्त करके निष्पक्ष न्याय को व्यवहार में ला सकने की परिस्थितियाँ बना सकें ।

व्यक्ति और समाज की स्थिति उच्चस्तरीय बनाने का व्यावहारिक उपाय एक ही है कि परिवारों का पुनर्गठन किया जाय । इस गठन में भारी उथल-पुथल करने की जरूरत नहीं है और न प्रचलित परम्पराओं को नष्ट करना ही अभीष्ट है । प्राचीन और नवीन को, प्रचलन को, औचित्य को परस्पर मिला देने की सुधार प्रक्रिया अपनाकर भी अभीष्ट प्रयोजन पूरा किया जा सकता है । हमारे प्रयास इसी दिशा में हैं । परिवार संस्था की ओर लोकचेतना को आकर्षित करके जन-जन को यह समझाया जाना है कि परिवार छोटे होने पर भी वे उपेक्षणीय नहीं हैं । वे बहुत ही शक्तिशाली होते हैं और दूरगामी परिणाम उत्पन्न करते हैं । इसलिए उन्हें सुविकसित बनाने की दिशा में समुचित ध्यान दिया जाना चाहिए अन्यथा व्यक्ति और समाज की दुर्दशा दूर न हो सकेगी और आज जो समस्याएँ सर्वभक्षी विभीषिका बनकर रह रही हैं, उनका समाधान नहीं हो सकेगा ।

युद्धों में रक्तपात का, क्रूर-कर्म कठोर प्रकृति के बने पुरुष से ही सफलतापूर्वक सम्भव हो सकता है । नारी की करुणा इस दिशा में उसे बहुत आगे तक नहीं बढ़ने देती । यों प्रकारान्तर अथवा आपत्ति धर्म के अनुरूप वे भी युद्ध में प्रवृत्त होती देखी गई हैं । परिवार का भावनात्मक क्षेत्र पूरी तरह नारी के अधिकार क्षेत्र में आता है । यों उसकी आर्थिक तथा नियामक प्रखरता का भार प्रायः पुरुष को ही सँभालना पड़ता है, पर जहाँ तक भावनात्मक बीजारोपण तथा उस फसल को उगाने, बढ़ाने और फली-फूली बनाने में नारी जो कर सकती है वह नर के लिए किसी भी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता । घर-परिवार नारी का प्रधान कार्यक्षेत्र है । नौकरी, व्यवसाय आदि करना पड़े तो भी घर सँभालना उसी के जिम्मे रहता है । परिवार के छोटे-बड़े सदस्य बाहर कम और घर में अधिक समय तक रहते हैं । इस अवसर पर उन्हें तरह-तरह की सुविधा एवं व्यवस्था का लाभ महिलाएँ ही प्रदान करती हैं और प्रत्यक्ष, परोक्ष प्रभाव डालती हैं । धर्मोपदेशक की तरह तो नहीं, पर प्रकारान्तर से वे समूचे परिवार को प्रभावित करती हैं । यदि उनका स्तर ऊँचा हो तो वे निर्धनता जैसी कठिनाइयों के रहते हुए भी घर को देव मन्दिर जैसा सुरुचिपूर्ण बना सकती हैं और अपने आन्तरिक सौन्दर्य से घर के हर सदस्य को मुग्ध करके कठपुतली की तरह नचा सकती हैं । आदतें सुधारना, बदलना और आरम्भ करना वस्तुतः घर की ढलाई भट्टी की सहायता से ही सम्भव हो सकता है । परिवार वह प्रयोगशाला है जिसमें किये गये अनुसंधानों का लाभ समूचे समाज को मिलता है । यह वह नर्सरी है जिसमें उगाये हुए पौधे जहाँ-तहाँ सुरम्य उद्यान बनकर विकसित होते हैं और अपनी सुरम्य हरियाली तथा सुषमा से मनोरम वातावरण उत्पन्न करते हैं ।

परिवार संस्था का आरम्भ नारी के गृह प्रवेश के साथ होता है । एकाकी पुरुष दफ्तर में काम करके और सराय में सोकर भी गुजर कर सकता है, पर घोंसला बनाने और अण्डे-बच्चों को सँभालने की बात नव-वधू के साथ ही जुड़ी आती है । सूक्तिकार की वह उक्ति अक्षरशः सही है जिसमें कहा गया है कि-"न गृहं गृह मित्याहु गृहणी गृह मुच्यते" अर्थात् इमारत घर नहीं कहलाती वस्तुतः गृहणी, घरवाली ही घर है । गृहलक्ष्मी के प्रवेश से ही टूटे पुराने घर झोंपड़े हास-उल्लास से भर जाते हैं और सृजन के बहुमुखी प्रयत्न एक निश्चित दिशा में चल पड़ते हैं । घर का आरम्भ ही नारी नहीं करती वरन् उसका विस्तार, पोषण, विकास भी वही करती है, अब उसमें इतना और

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जोड़ना है कि परिवार को सुसंस्कृत, परिष्कृत और समुन्नत बनाने का ईश्वरप्रदत्त उत्तरदायित्व भी वही सँभाले । उसका भावनात्मक ढाँचा इस प्रयोजन को भली प्रकार पूरा कर सकने के लिए सर्वथा उपयुक्त बनाया गया है ।

इस दिशा में पहला कदम यह होना चाहिए कि गृहलक्ष्मी को, गृह संचालिका को इस योग्य बनाया जाय कि वह अपनी प्रतिभा को उपयुक्त उत्तरदायित्व निबाहने में सक्षम सिद्ध हो सके । महिला जागरण का उद्देश्य ऐसे इंजीनियर तैयार करना है जो नये समाज का-नया भवन बनाने में अपनी कुशलता सिद्ध कर सकें । नारी जागरण के अन्य प्रयोजन भी हैं, प्रतिफल भी; पर सबसे बड़ी उपलब्धि यही मिलनी है कि उस परिवार संस्था में नव-जीवन भर जा सकेगा और उस क्षेत्र में उगे हुए नर-रत्न, व्यक्ति और समाज-निर्माण की समस्त समस्याओं का सहज समाधान कर सकेंगे ।

शुभारम्भ इस प्रकार हो

गृहलक्ष्मी का अर्थ होता है उदारचेतन और सुव्यवस्था की अभ्यस्त सुसंस्कारी महिलायें । वे रंग-रूप की दृष्टि से कैसी ही क्यों न हों । वस्तुतः उनके सहारे झोंपड़ी के आँगन में स्वर्ग उतरता और वे ही साधारण परिस्थितियों को आनन्द उल्लास से भर देती हैं ।

ऐसी गृहलक्ष्मियाँ कहाँ से आयें ? उन्हें कहाँ पायें ? इसे खोजने की आवश्यकता नहीं है । हर नारी में इसके बीजांकुर जन्म-जात रूप से विद्यमान रहते हैं । आवश्यकता मात्र उन्हें खाद-पानी देने की होती है । नारी को भावुकता, कोमलता, सुन्दरता और कलाकारिता के समन्वय से सृष्टा ने सृजा है । मात्र इन हीरकों को खराद पर उतारने का काम ही परिवार के लोगों को मिल-जुलकर करना होता है । इस कर्त्तव्य की उपेक्षा-अवहेलना होने पर वे छुई-मुई के पौधे की तरह कुम्हला भी जाती हैं और घुटन भरे वातावरण में व्यक्तित्व को अनुपयुक्त भी बना लेती हैं । जिन घरों में नारी समुदाय की स्थिति गयी-गुजरी रहेगी वहाँ कितना ही वैभव अथवा वर्चस्व क्यों न हो, आन्तरिक वातावरण ऐसा ही रहेगा जिसमें खिन्नता, विपन्नता किसी के हटाये हट नहीं सकेगी । जिस घर में गृहलक्ष्मी मुरझाई, कुम्हलाई, बाधित, पीड़ित और बँधी जकड़ी रहेगी, वहाँ उसकी प्रसुप्त प्रतिभा को जाग्रत होने का अवसर ही नहीं मिलेगा, उसके लिए मानवोचित जीवनयापन कर सकना तक न बन पड़ेगा ।

हर किसी को विश्वास करना चाहिए कि इक्कीसवीं सदी नारी वर्चस्व वाली कालावधि है । उस नवयुग को प्रकट, प्रत्यक्ष करने में नारी की बढ़ी-चढ़ी भूमिका होगी । नर ने अहमन्यता और कठोरता अपनाकर जो उद्दण्डता विकसित की है उसका परिमार्जन नारी की भावसंवेदना और सेवा-साधना वाली जन्म-जात सत्प्रवृत्ति से ही सम्भव बन पड़ेगा । परिवारों को नर-रत्नों की खदान उन्हीं की सहायता द्वारा किया जा सकेगा । देव-मानवों का अवतरण नई पीढ़ी में उन्हीं के द्वारा सम्भव होगा ।

नर के कृत्यों वाले इतिहास में सृजन की तुलना में ध्वंस अधिक हुआ है । स्नेह-सहयोग कम और उद्धत अनाचार का माहौल अधिक बनता रहा है । अब इस उलटे प्रवाह को नारी में सन्निहित दिव्यता ही सीधा करेगी । इस सद्भावना के अनुरूप विचारशीलों का कर्त्तव्य हो जाता है कि नारी का अगले दिनों दुहरा उत्तरदायित्व सँभालने की क्षमता विकसित करने में समुचित सहयोग प्रदान करें ।

नर को शिक्षित, समर्थ, स्वावलम्बी बनाने के लिए अब तक जो प्रयत्न होते रहे हैं, उन्हीं को इस समतावादी युग में नारी के लिए भी उपलब्ध कराना होगा । अलग-पिंजड़ों में कैद रहने के कारण उनकी संयुक्त शक्ति का संरक्षण एवं विकास न हो सका । अब उसे सम्भव बनाने के लिए न केवल घनघोर प्रयत्न करना पड़ेगा वरन् उस सामन्तवादी दृष्टिकोण को भी उलटना पड़ेगा, जिसमें नारी का स्थान दासी के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं । इस समूचे परिवर्तन की तुलना में अधिक जीवट को सँजोये जाने की आवश्यकता पड़ेगी । साथ ही यह भी निश्चित है कि परिवर्तनकारी आन्दोलनों ने अब तक जितनी उपलब्धियाँ अर्जित की हैं, उसकी तुलना में नारी जागरण अभियान के माध्यम से कम नहीं वरन् अधिक ऊँचे स्तर की अधिक प्रभावोत्पादक उपलब्धियाँ सम्भव होंगी । नारी जागरण अभियान को प्रभातकालीन अरुणोदय की तरह उभरता हुआ और मध्यान्ह की प्रखरता अपनाने के लिए दौड़ता इन्हीं आँखों से देखा जा सकता है । सुनिश्चित भवितव्यता का साथ देने में ही समझदारी भी है और बहादुरी भी । इतने प्रचण्ड प्रवाह में जो रोड़े बनेंगे, जो उपेक्षा बरतेंगे, वे समय को न पहचान सकने का पश्चाताप ही करते रहेंगे ।

विज्ञजनों में से प्रत्येक को इस महाअभियान का शुभारम्भ अपने-अपने घरों से करना चाहिए । अशिक्षितों को शिक्षित, शिक्षितों को सुविज्ञ बनाने वाली शिक्षा पद्धति का कार्यान्वयन अपने घरों के छोटे दायरे से तो कोई भी कर सकता है । उनका बौद्धिक प्रशिक्षण ऐसा होना चाहिए जिससे मूढ़ मान्यताओं और कुरीतियों का उन्मूलन हो सके । नारी अपने कर्त्तव्य और अधिकार का परिवहन करने के लिए समर्थ एवं समुद्यत हो सके ।

उन्हें स्वावलम्बी बनने का अवसर दिया जाय । गृह उद्योगों के माध्यम से वे अपनी उपार्जन क्षमता और दक्षता की अभिवृद्धि कर सकें, साथ ही घर से बाहर निकलने की सुविधा पाकर पड़ौस-परिकर में एक छोटा संगठन खड़ा कर सकें । बड़े परिवर्तन संगठित प्रयासों से ही सम्भव हुए हैं । महिला मण्डल इसी प्रयोजन के लिए गठित किया जा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जा रहा है । पुरुषों को चाहिए कि वे अपने ढंग से अपने प्रभाव क्षेत्र की नारियों को प्रगति प्रयोजन के लिए संगठित करने का प्रयास करें । अपने घरों की प्रतिभाओं को इस कार्य के लिए घर से बाहर जाने और अपने वर्ग से सम्पर्क बढ़ाने के लिए सहयोगी की भूमिका निबाहने दें । संगठन को प्रारम्भिक काम एक सौंपा गया है-साप्ताहिक सत्संग । इसमें धार्मिकता का पुट रहने से एकत्रीकरण में अड़चन नहीं आती । जितना कोई अन्य आन्दोलन खड़ा करने पर अपने ही परिवार का विरोध खड़ा होने के रूप में सामने आता है ।

यह प्रारम्भिक ढाल है । इससे कम में नारी प्रगति की योजनाएँ एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकतीं । घर-परिवार तक सीमाबद्ध रहने पर वे प्रवृत्तियाँ व्यापक नहीं बन सकतीं, जिन्हें अगले ही दिनों आन्दोलन का रूप धारण करना है । सुधार एवं सृजन से सम्बन्धित अनेकानेक कार्यक्रमों को नये ढाँचे के रूप में खड़ा करना है ।

जो शिक्षित महिलायें घरेलू काम-काज से थोड़ा अवकाश प्राप्त करती हैं, उनका कर्त्तव्य विशेष रूप से यह बनता है कि विचारशील नारियों से सम्पर्क साधने निकलें और उनका समीपवर्ती क्षेत्र वाला संगठन तैयार करें । साप्ताहिक सत्संगों का क्रम आरम्भ करायें । साथ ही प्रौढ़ शिक्षा, कुटीर उद्योग, स्वास्थ्य रक्षा, सुधरी हुई पाक विद्या, शिशु पालन, परिवारों में प्रगतिशीलता का संस्थापन, कुरीतियों का उन्मूलन आदि काम हाथ में लें । कदम-

कदम बढ़ाते हुए पहुँचना वहाँ तक है जहाँ नारी को समग्र समता का लाभ मिल सके और वह अपनी प्रतिभा को प्रदर्शित करते हुए नवसृजन के क्षेत्र में महती भूमिका सम्पन्न कर सके ।

प्रतियोगिताएँ-प्रतिस्पर्द्धाएँ प्रायः सभी क्षेत्रों में चलती रहती हैं । जो विजेताओं को लाभ, यश एवं गौरव प्रदान करती हैं । इन दिनों हर विचारशील को इस प्रयास के लिए कमर कसनी चाहिए कि वह अपने संपर्क के कार्यक्षेत्र में कितनी प्रतिभाएँ उतारने में समर्थ हो सका, इस कर्त्तव्य को बढ़े-चढ़े सेनापतियों और लोकनायकों के महान कर्त्तव्यों के समतुल्य ही माना जायगा, भले ही वह बीजांकुर की तरह छोटा ही दृष्टिगोचर क्यों न हो ।

नारी जागृति आन्दोलन में एक संघर्षपरक मोर्चा भी है-दहेज विरोधी आन्दोलन का । इसे गाँधी जी के नमक सत्याग्रह स्तर का श्रीगणेश माना जा सकता है, जिसके पीछे नर-नारी के बीच विद्यमान भयावह विषमता की जड़ पर कुठाराघात के समतुल्य समझा जा सकता है । धूमधाम वाली, दहेज-जेवर के भार से लदी हुई शादियाँ हमें दरिद्र और बेईमान बनाती हैं । इस कुप्रचलन के कारण नर और नारी के बीच छोटे-बड़े की, श्रेष्ठ और निकृष्ट की परम्पराएँ चली हैं । यदि इस कुप्रचलन का पूरी तरह अन्त किया जा सके और विवाह मात्र एक घरेलू उत्सव की तरह बिना खर्च के सम्पन्न होने लगे तो समझना चाहिए कि नवयुग का शुभारम्भ हुआ, उस अन्यान्य अनेक कुरीतियों की, अवधारणाओं की इतिश्री सम्भव हुई मानी जानी चाहिए ।



मितव्ययी बनिये, सुखी रहिये

अधिक व्यय करने की हानियाँ

मुंशी प्रेमचन्द की एक कहानी है "सज्जनता का दण्ड" । इसमें एक स्थान पर लेखक ने उन व्यक्तियों पर व्यंग्य किया है जो खूब रिश्वत लेते हैं और अपनी कृत्रिम जरूरतें पूरी करते हैं । सरदार शिवसिंह कटाक्ष करते हुए कह उठते हैं-

"जीवन की हत्या, दुःख, क्लेश, परेशानियाँ उन लोगों पर पड़ेंगी, जो अपनी हैसियत और आमदनी से अधिक खर्च करते हैं । अर्दली बनकर क्यों वकील के लड़के से लड़की ब्याने की ठानते हैं ? दफ्तरी को यदि टहलुवे की जरूरत हो तो पाप से कम नहीं । मेरे साईस की स्त्री अगर चाँदी की सिल गले में डालना चाहे तो यह उसकी मूर्खता है ।"

हमारे समाज में आय के अनुपात में एक हैसियत है, एक स्थिति है । यदि हम इस हैसियत के अनुसार व्यय नहीं करते हैं, आवेश या टीपटाप, मिथ्या प्रदर्शन या फिजूलखर्ची में अधिक व्यय कर डालते हैं, तो यह निश्चय है कि हमारा जीवन सदा मिथ्या भार से दबा रहेगा और विकास रुक जायगा । हम बाहर से तो लिपे-पुते, बने-ठने दिखाई देंगे, पर अन्दर हमारी आत्मा पर कर्ज का बोझ बढ़ता जायगा । यह हमारे जीवन को घुन की तरह खा लेगा ।

कुछ लोग ऐसे अविवेकी और अदूरदर्शी होते हैं कि बुजुर्ग हो जाने पर भी समाज में अपनी हैसियत को नहीं पहचान पाते । जीवन भर अपने को एक धोखे में डाले रहते हैं । वे मन ही मन यह समझते हैं कि हम दुनिया को धोखा दे रहे हैं, पर दुनिया तो बड़ी चालाक है । वह क्यों धोखे में आने लगी ? ऐसे व्यक्ति स्वयं ही मूर्खों के स्वर्ग में निवास करते हैं । बाद में पछताते हैं ।

गोल्डस्मिथ अँग्रेजी के उच्चकोटि के कवि और नाटककार हुए हैं । यद्यपि लेखन-कार्य से उन्हें आय होती थी किन्तु वे रुपये को अनाप-शनाप व्यय करते थे । ऋण में तैरते रहते थे । ज्यों ही वे किसी प्रकार पुराने ऋण को साफ करते थे, जल्दी ही और नया ऋण ले बैठते थे । जो पहले से भी अधिक होता था । वे कुछ दिन अध्यापक रहे थे । जो कुछ कमाया था वही उनके पास सब कुछ था । एक दिन भावावेश में यह राशि उन्होंने एक घोड़ा खरीदने में व्यय कर डाली । उनके सम्बन्धियों ने ५० पौंड की रकम एकत्रित कर उन्हें कानून की शिक्षा के लिए पढ़ने भेजा, पर वे डब्लिन तक ही पहुँचे होंगे कि रुपया उन्होंने शराब पीने या जुआ खेलने में व्यय कर दिया । फिर वे चिकित्साशास्त्र पढ़ने एडिनबर्ग चले गए पर उन्होंने अपने एक मित्र की जमानत दे रखी थी । वह दिवालिया हुआ, तो इन्हें पढ़ते-पढ़ते फिर भागना पड़ा । बिना पैसे उन्होंने यूरोप की एक यात्रा प्रारम्भ कर दी । उनके पास एक बाँसुरी के अतिरिक्त और कुछ न था । वे भिक्षा माँगते और बाँसुरी बजाते घूमते-फिरते रहे और लौट कर इतने ही गरीब आए जितने गए थे । वे लिखते हैं कि यूरोप का शायद ही ऐसा कोई राज्य होगा जहाँ के वे कर्जदार न रहे हों जब गोल्डस्मिथ खूब कमाने लगे, तब भी वे कर्जदार ही बने रहे । जो उन्होंने एक हाथ से कमाया, उसे दूसरे हाथ से व्यय कर दिया । वे दूध के पैसे न दे पाये, मकान का किराया न दे पाने से पकड़े गए, वकीलों द्वारा धमकाए गए लेकिन उन्होंने कभी अपनी हैसियत के अन्दर रहना न सीखा । मरने से पूर्व जो कोट और पेन्ट पहने हुए थे, वह एक दर्जी से उधार ली हुई पोशाक थी, जिसका मूल्य वे कभी न दे सके । मरने पर भी उसका कर्ज उन पर चढ़ा ही रहा । एक महान् व्यक्तित्व का हैसियत में न रहने के कारण यह पतन हुआ ।

जैसे-जैसे उनके पास रुपया आया, वैसे-वैसे उनकी आर्थिक परेशानियाँ हल होने के स्थान पर बढ़ती ही गईं । जितना अधिक रुपया उनके पास आया, उससे बढ़ा-चढ़ा कर ही हैसियत उन्होंने दिखाई, बेरहमी से फिजूलखर्ची की । किसी भी प्रलोभन के सामने वे 'नहीं' न कह सके । जब भावुकता में आते, तो एक गिन्नी उधार लेकर वे किसी भिखारी को दान तक दे डालते । अपने वस्त्र या कम्बल तक खैरात कर देते । वे किसी को भी इन्कार नहीं कर पाते थे । यही उनकी कमजोरी थी । इन बढ़ते हुए खर्चों को पूर्ण करने के लिए उन्होंने पुस्तकें लिखने के वायदे पर कर्ज लिया, पर वे इन पुस्तकों को कभी भी न लिख पाये । उधारवालों को वे सदा कल की अदायगी का वायदा करते रहे । इस प्रकार वे उसी गरीबी में मरे जिसमें से ऊँचा उठने का प्रयत्न करते रहे । मरने पर भी उन पर दो हजार पौण्ड का ऋण था ।

ऊँची हैसियत दिखाना एक प्रकार की मानसिक बीमारी है । मनुष्य को अपने विषय में एक गलतफहमी हो जाती है कि मैं समाज में बहुत प्रतिष्ठित हूँ । इस हैसियत से कम व्यय करूँगा, तो लोग क्या कहेंगे ? लोग हैसियत की रक्षा के लिए विवाह-शादियों, मृत्यु-भोजों, दान-दहेजों में खूब व्यय करते हैं । दुकानदार अपनी बाहरी शान कायम रखने के लिए सजावट बनाये रहते हैं, कितने ही नौकर रखते हैं, बढ़िया वस्त्र पहनते हैं, जबकि अन्दर ही अन्दर ऋण बढ़ता जाता है ।

कुछ व्यक्ति चढ़े हुए ऋण का बोझ अन्तःकरण पर अनुभव ही नहीं करते, कुछ ऐसे होते हैं जो तनिक से कर्ज से अस्थिर हो जाते हैं । पहले वर्ग के व्यक्तियों पर मुकदमे चलते रहते हैं, कर्ज की अदायगी के तकाजे होते रहते हैं, पर वे इसमें कोई बुराई नहीं मानते । वे उधार का अनाज

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खाते हैं, उधार का दूध पीते हैं और कर्ज लेकर अपने मित्रों का मनोरंजन करते हैं । एक लेखक के शब्दों में–

''आज की जिन्दगी एक बहुत बड़ा ढोंग है । हम अपने आपको वह 'पोज' करते हैं जो कि हम असलियत में नहीं होते और अपनी असली शक्लों को बनावटी चेहरों या नकाबों द्वारा अच्छी तरह ढके रहते हैं । यह वंचना धीरे-धीरे अधिक बढ़ जाती है कि हम पवित्र पापी बन जाते हैं और दुनिया को ही नहीं अपने को भी धोखा देने लगते हैं । काश कि हम अपने नकाब को उघाड़कर देख सकते कि हममें से प्रत्येक व्यक्ति अपराधी, नीचे गिरा हुआ और दया का पात्र है ।''

हमें चाहिए कि हम अपनी स्थिति, सच्ची हैसियत भूलें नहीं, उसे छिपायें नहीं, प्रत्युत ठोस मजबूती प्राप्त करें ।

फैशन का पागलपन

''सारा बनाव-चुनाव गरीबी को अमीरी दिखाने के लिए निरर्थक और उपहासास्पद कोशिश है ।''

-लेक्टेर

आज हममें ढोंग नाम की सामाजिक बीमारी बुरी तरह घर कर गई है । हम उसका ढोंग करते हैं, जो वस्तुतः हममें नहीं है । गुणों का ढोंग, अमीरी का ढोंग, विद्वता और योग्यता का ढोंग । जरा-सी कमी होते ही हम समझते हैं कि हमारी इज्जत में बट्टा लग जायेगा, लोग हमें समुचित मान न देंगे, सभा सोसाइटियों में हमारी पूरी प्रतिष्ठा न होगी । ऐसी दशा में सदैव ऊपरी लिफाफा बनाये रखने का उपहासास्पद ढोंग किया करते हैं ।

हमारा सबसे अधिक ढोंग पोशाक के विषय में होता है । एक समय भोजन खाने वाला व्यक्ति भी जब बाहर निकलता है, तो बन-ठन कर, सफेद चमचमाते हुए इस्त्री और कलफ लगे हुए शानदार वस्त्र पहनकर । मैंने ऐसे व्यक्तियों को देखा है जो घण्टों घर में पोशाक की सफाई, धुलाई में ही बहुमूल्य समय नष्ट कर देते हैं । बाहर वालों की क्षणिक वाहवाही के लिए वे अपना समय, शक्ति और रुपये को बरबाद करते हैं ।

विलियम पेन लिखते हैं कि, ''पोशाक में ज्यादती-कीमती हिमाकत है, फैशन और प्रदर्शन-प्रिय लोगों की साज-सज्जा से तमाम नंगों को कपड़े पहनाये जा सकते हैं ।''

कोई आदमी अपनी सजीली-छबीली पोशाक के कारण सिवाय मूर्खों और स्त्रियों की और किसी के द्वारा सम्मानित नहीं होता ।

अपना साज शृंगार, सजीला-छबीला स्वरूप प्रस्तुत करने के लिए न जाने कितने व्यक्ति अपने परिवार और आश्रितों के ऊपर अनुचित बोझ डाल देते हैं । एक बार कालेज में नौकरी के लिए मेरे पास एक विद्यार्थी आए । जेन्टलमैनों जैसी ड्रेस, बढ़िया इस्त्री लगे कपड़े, एक्टरों जैसे तेल डाले बाल, बूट-जूता । बड़ी नजाकत नफासत से बोले । मैं उसकी भड़कीली पोशाक देखकर यह अनुमान लगा बैठा कि वे शायद कोई बड़े आदमी हैं । जब बात खुली तो मालूम हुआ कि वे मैट्रिक पास हैं । एक साल से नौकरी के लिए बेकार फिर रहे हैं । घर में एकमात्र वृद्धा माता है । पिता की मृत्यु बचपन में ही हो गई थी । वृद्धा की छोटी-सी आमदनी से ही घर का व्यय चलता है । बड़ी आर्थिक कठिनाइयों में दिन बीत रहे हैं ।

हमने उन्हें आश्वासन दिया और चुपचाप उनके विषय में खोज-बीन की तो मालूम हुआ कि वे एक बिगड़े हुए लड़के हैं । गन्दी सोहबत में रहते हैं । पान और सिगरेट का बेहद शौक है । सारे दिन बाजार में डोलते रहते हैं । पैसे मिलने पर सिनेमा में फूँक देते हैं । वृद्धा माता परेशान है । बड़े होते जा रहे हैं । माता ने एक जगह विवाह पक्का किया था, पर उनकी इस फैशनपरस्ती और गन्दी आदतों के कारण सगाई छूट गई । यह एक ऐसे व्यक्ति का नमूना है, जो अन्दर कुछ बाहर कुछ है । इस प्रकार सैकड़ों युवक आपके भी सम्पर्क में आये होंगे । ये लोग एक मिथ्या भावना में फँसे रहते हैं कि लोग हमें ऊँचा कहें, इज्जतदार शरीफ आदमी समझें । ये अपने बाह्य स्वरूप को बनाने में ही जीवन की चरम सार्थकता समझते हैं ।

कोई नहीं देखता कि आप पहले कैसे रहे हैं, कितने बड़े खानदान के हैं, कितनी अमीरी के सुख आपने लूटे हैं, आपके घर पर मिट्टी के बरतनों में खाना बनता रहा है या हाथी बँधे रहे हैं । जो हालत आपकी आज है, वही वस्तुतः आपकी असली हालत है ।

मनुष्य की एक कमजोरी यह है कि वह यदि एक बार अपने आपको एक वर्ग में शामिल समझ लेता है, तो आय के कम हो जाने पर भी सदा उसी को कायम रखने का प्रयत्न करते हैं । उसी शान को कायम रखने में सब कुछ स्वाहा कर देते हैं । जनता की वाहवाही लूटने के लिए खाली पेट सोते हैं । वे अनैतिक और पापपूर्ण कमाई पर उतर सकते हैं, रिश्वत, भ्रष्टाचार, कालाबाजार कर सकते हैं, पर अपनी झूठी शान को नहीं त्याग सकते । जनता के व्यक्ति तो चार दिन अच्छा-बुरा कह कर चुप हो जाते हैं, पर असली हानि उस आदमी को होती है जो भड़कीली पोशाक या फैशनपरस्ती द्वारा उन्हें प्रसन्न और संतुष्ट रखने में लगा रहता है ।

या तो जैसा अपने को बाहर से दिखाते हो वैसा ही भीतर से बनो, या जैसे भीतर हो वैसे ही बाहर से दिखाओ ।

फैशन और कीमती पोशाक किसी की यश और प्रतिष्ठा को नहीं बढ़ातीं । एक क्षणिक रौब मात्र उत्पन्न करती हैं। सम्भव है कुछ देर के लिए लोग उसके रौब में अभिभूत हो जायें, किन्तु स्मरण रखिए, कलई खुलने पर ऐसा बहुरूपिया बड़ी निन्दा और उपहास का पात्र बनता है ।

फैशन बनाना, अपने बाहरी बनाव शृंगार पर खूब व्यय करना एक पागलपन है, फालतू खर्चों का गलत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रास्ता है जिससे समय रहते प्रत्येक को सावधान हो जाना चाहिए ।

बहुत से फैशनपरस्तों ने अपने पूर्वजों की गाढ़ी कमाई केवल इसलिए व्यय कर दी कि लोग उनकी गिरती हुई आर्थिक कमजोरी को न जान लें । सामाजिक प्रतिष्ठा कायम करने के लिए वे तबाह हो गये हैं । अन्त में असमर्थता और बेवसी में कंगाल होकर मृत्यु को प्राप्त हुए हैं । आखरी वक्त में वे सब मिथ्या प्रशंसक उन्हें छोड़ बैठे जो कभी उनकी पोशाक की तारीफ के पुल बाँधा करते थे । आज तीन चौथाई लोग भ्रष्टाचार, झूठ या धोखादेही के मामलों में गिरफ्तार होते हैं, महज इसलिए ही अपमानित और लज्जित होते हैं क्योंकि वे बाहरी लिफाफा खूबसूरत बनाने में ही लगे रहे । उन्होंने आन्तरिक मजबूती की ओर ध्यान नहीं दिया ।

समाज की क्षणिक प्रशंसा की भूख में क्या आप अपने को तबाह कर देंगे ? क्या अपने परिवार को आयु भर के लिए ऋण के राक्षस को सौंप देंगे ? क्या अपने बच्चों को अशिक्षित और मूर्ख बनाये रखेंगे ? क्या दुनिया में बदनामी का धब्बा अपने ऊपर लगा हुआ छोड़ जायेंगे ? समाज की प्रशंसा की भूख एक मृगतृष्णा है । वह कभी सदा के लिए प्रसन्न नहीं हो सकेगी । उसे तो दूसरों की गिरावट में आनन्द आता है । वह तो उस दिन की प्रतीक्षा में है जब आपके पैसे समाप्त हो जायेंगे और आप दाने-दाने के मुहताज हो मारे-मारे फिरेंगे या दिवालिया होकर आत्म-हत्या करेंगे ।

फैशनपरस्ती के रोग में औरतें बुरी तरह फँसी हुई हैं । वे हैसियत की कभी परवाह नहीं करतीं । उन्हें नए-नए किस्म की साड़ियाँ, आभूषण, पाउडर, क्रीम, बनाव-शृंगार चाहिए, सुन्दरता बढ़ाने की सैकड़ों वस्तुएँ चाहिए । सिनेमा का मनोरंजन चाहिए । दान देने के लिए ढेर-सा रुपया चाहिए, विवाहों और दूसरे अवसरों पर दूसरों को दिखाने के लिए बहुत-सी चीजें देने को चाहिये । वे सदा अपने से अमीरों का अनुकरण करती हैं । उन्हें यह परवाह नहीं कि बेचारा पति किस मुसीबत से कमा कर लाता है । कितनी झिड़कियाँ सहता है । कितनों की खुशामद करता है । उनकी शिक्षा ऐसी है जिसमें वे बाह्य तड़क-भड़क, मिथ्या प्रदर्शन, फैशन की बाहरी शृंगार सज्जा में ही लगी रहती हैं । घंटों वेशभूषा बनाने में व्यय कर देती हैं । शिक्षा का वास्तविक तात्पर्य आन्तरिक योग्यता और सद्गुणों की अभिवृद्धि है, मनुष्यत्व का विकास है । अपनी सीमाएँ और हैसियत की जान पहचान है । पर स्त्रियाँ आजकल की दिखाऊ शिक्षा प्राप्त कर यह सब ग्रहण नहीं करतीं और पति के लिए एक सिरदर्द बन जाती हैं ।

हम बनावट से बचें, ढोंग से दूर रहें, बन-ठन को अपना लक्ष्य न समझें, इसी में भला है । हर आदमी में उतनी ही अधिक बन-ठन होती है, जितनी समझ की कमी उसमें होती है ।

मिथ्या-प्रदर्शन और झूठी नामवरी

भारत में केवल धनिक वर्ग को ही नहीं, साधारण स्थिति वालों तथा निम्न वर्ग को भी अपव्यय तथा मिथ्या प्रदर्शन की भावनाएँ हैं जो दूसरों के सम्मुख अपना अतिरंजित एवं झूठा स्वरूप रखना चाहते हैं । आज के युग में अभिशाप वे आदतें हैं जिन्होंने हमें व्यर्थ-व्यय में फँसा दिया है ।

हम देखते हैं कि मध्यमवर्ग तथा निम्न वर्ग में एक ओर घर में पत्नी और बच्चे फटेहाल रहते हैं, संतान टुकड़ों को तरसती है, मेरे-तुम्हारे आगे हाथ पसारती है, तो दूसरी ओर दिखावा पसन्द पति अपने कपड़े-लत्ते, फैशन तथा जिह्वा की तृप्ति के निमित्त आवश्यकता से अधिक व्यय करता है । पुरुष सभा सोसाइटी में बैठता है, दूसरों को बढ़िया-बढ़िया सूटों, नेकटाई और बूट में देखता है, तो स्वयं भी उनका अनुकरण करता है । वह अपनी स्थिति, आय और जिम्मेदारियों को नहीं समझता, यदि समझता है, तो समझकर भी भूलना चाहता है ।

मिथ्या-प्रदर्शन के अनेक रूप हैं- (१) चटकीली-भड़कीली पोशाक; (२) मित्रों में प्रतिष्ठा रखने के हेतु अपव्यय; (३) विवाह, उत्सव, मेले, प्रतिष्ठाओं, जन्म-मरण संस्कारों में अनावश्यक व्यर्थ खर्च (४) दान, दहेज, रिश्वत, चन्दा इत्यादि में अपनी आय की उपेक्षा कर अमितव्यय; (५) जाति-बिरादरी, भाई-बन्धुओं के मध्य अपनी झूठी शान रखने के लिए अपव्य; (६) अपनी गन्दी आदतों-सिगरेट, चाय, शराब, सिनेमा, बालडासिंग, व्यभिचार इत्यादि के वश में आकर नाना प्रकार के भोग विलासों में फिजूलखर्ची (७) प्रतियोगिता-अमुक व्यक्ति ने अपने लड़के की शादी में २०००) व्यय किये हैं तो हम ४०००) रु. व्यय करेंगे । अमुक ने अमुक काम में इतना खर्च किया है, अतः हमें भी इतना करना चाहिए । इस प्रकार पारस्परिक कम्पिटीशन में अनेक व्यक्ति बर्बाद होते हैं ।

मिथ्या-प्रदर्शन की भावना मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से थोथेपन, संकुचितता, उथलेपन और छिछोरापन की प्रतिक्रिया है । जो व्यक्ति जितना कम जानता है, बिना पढ़ा-लिखा, अविवेकी और नासमझ है, वह उतना ही बाह्य प्रदर्शन करता है । जो स्त्रियाँ बिना पढ़ी-लिखी मूर्खा हैं, बनाव-शृंगार में अत्यधिक दिलचस्पी लेती हैं, वे लज्जा तक का ध्यान नहीं रखती । इसी फिजूलखर्ची का यह दुष्परिणाम है कि आज महिला-जगत में, विशेषत पंजाबी नारी-समाज में फैशन-परस्ती बुरी तरह अभिवृद्धि पर है । शाम को बड़े शहरों में ढेर-की-ढेर दिखावा पसंद नारियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के वस्त्रों, आभूषणों तथा सौन्दर्य के अन्य प्रसाधनों से विभूषित होकर निकलती हैं । इन्हें देखकर कौन कह सकता है कि भारत निर्धन देश है या

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यहाँ अन्न संकट है । प्रतिदिन बड़े-बड़े शहरों में दो से अढ़ाई मन तक पाउडर और इसी अनुपात में क्रीम, सुर्खी, सेन्ट इत्यादि व्यय होते हैं । धोबियों, नाइयों और दर्जियों के बिल निरन्तर वृद्धि पर हैं । भिन्न-भिन्न प्रकार के फैशनेबिल वस्त्र तैयार हो रहे हैं । सुनार आभूषणों के चक्र में डालकर असंख्य धन लूट रहे हैं ।

डा० सेमुएल स्माइल्स ने एक बड़े पते की बात लिखी है-"दैनिकचर्या में हमारा सदा यही विचार रहा करता है कि किसी प्रकार हम दूसरों से कम न समझें जावें । समाज में हमारा उतना ही आदर हो, जितना दूसरे पाते हैं तथा हमारे पास उतनी ही दिखावे की सामग्री हो, जितनी दूसरों के पास है । इन्हीं वस्तुओं-सुन्दर टॉयलेट, फोटो, बढ़िया फर्नीचर, रेडियो, किस्से कहानियों की पुस्तकें, हैट, बिजली का सामान, बढ़िया ड्रेस, बाजे, मनोरंजन के सामान, फाउन्टेनपेन के संग्रह में हम सारी आमदनी खर्च कर डालते हैं । कभी-कभी जरा-सी वस्तु के निमित्त कर्ज लेते नहीं डरते । न जाने हमारे दिमाग में यह खोटा विचार कैसे घुस गया है कि जैसा दूसरे करें, वैसा हम भी करें । यदि हमारा दूसरा भाई घोड़ागाड़ी रखता है, बहुत से नौकर रखता है, बहुत बढ़िया मकान में रहता है, प्रतिदिन नये-नये कपड़े बदलता है, अच्छे-अच्छे खाने खाता है और दूसरों को खिलाता है, तो हमें भी ऐसा ही करना चाहिए, तब ही हमारी बात बनी रहेगी । परन्तु यह कभी नहीं विचारते कि इतना व्यय करने की हमारी आमदनी भी है, या नहीं ? दूसरें के समान हम प्रतिष्ठा पाना तो आवश्यक समझते हैं पर उसके कारणों और साधनों पर कभी विचार नहीं करते ।"

रुपये को मितव्ययिता और सावधानी से व्यय करने से प्रतिष्ठा में वृद्धि है, न कि ऋण लेकर या उधार व्यय करने से । ऋण के कारण बड़ी-बड़ी जायदादें नष्ट हुई हैं । बड़े से बड़े रईस और तालुकेदार इसी फिजूलखर्ची के कारण सर्वस्व स्वाहा कर चुके हैं । लाखों का धन बड़ी-बड़ी स्टेटें विलासिता, व्यभिचार, भोग-विलास, झूठे दिखावे की भट्टी में नष्ट हुई हैं ।

जिनमें आत्मबल और स्वाभिमान है, वे सच्ची तथा झूठी प्रतिष्ठा में अन्तर समझते हैं । आत्मबल वाले महापुरुष बाह्य प्रदर्शन में नहीं प्रत्युत आन्तरिक विकास में अपनी वृद्धि, तर्कशक्ति, अध्ययन, मनन, योग्यता की वृद्धि में गर्व का अनुभव करते हैं । वे सरल, सादे वस्त्रों का प्रयोग करते हैं । साधारण किन्तु पौष्टिक भोजन कामों में लाते हैं, आमदनी से आधा व्यय करते हैं । अपनी मौलिकता के प्रकाश में उन्हें दूसरों के अनुकरण से अधिक स्वाद आता है । वे स्वावलम्बी होने के साथ आत्मनिग्रही भी होते हैं । उनका जीवन अन्धानुकरण में नहीं, प्रत्युत अपनी विशेषतायें प्रकाशित करने में लगता है ।

महात्मा गान्धी को लें । वस्त्रों की दृष्टि से उनके पास एक खद्दर की धोती रही है, उसके साथ खद्दर की कमीज तथा चादर, इत्यादि । उनके भोजन में बकरी का दूध, गेहूँ की चपाती, फल, तरकारियाँ, खजूर इत्यादि रहे हैं । मकान अति साधारण किन्तु स्वच्छ । रहन-सहन में सादगी, दिखावे से सर्वदा दूर । उनकी विशेषता थी आन्तरिक विकास, आत्मनिष्ठा, सत्याग्रह, अध्ययन और मनन । भारत के लिए रहन-सहन की दृष्टि से उन्होंने भारतीय आदर्श उपस्थित किया था ।

अनेक व्यक्ति रस्म-रिवाजों के दास बन रहे हैं । जो कुछ हमारे पूर्व पुरुषों ने किया, वही हम भी करेंगे । जो कुछ हमारे कुटुम्ब में होता चला आया है, वह हमें जारी रखना चाहिए । ऐसा सोचते समय हम यह भूल जाते हैं कि उनकी तथा हमारी परिस्थितियों में बहुत अन्तर आ गया है । फिजूल के रस्म-रिवाजों को रोकने का भरसक प्रयत्न हमें करना चाहिए । हम स्वयं उनसे बचें तथा दूसरों को उनसे बचावें ।

यदि हमारे पास रुपया है तो उसे शृंगार तथा दिखावे में खर्च करने के स्थान पर हमें ऐसे आवश्यक पदार्थों में व्यय करना चाहिए, जिनसे स्थायी लाभ हो । जेवर कदापि आवश्यक चीज नहीं है । आवश्यक पदार्थ ये हैं:-

(१) पौष्टिक पदार्थ, अच्छे-अच्छे फल, तरकारियाँ, सूखे मेवे, दूध-दही ।

(२) साफ-सुथरे वस्त्र-जो चलाऊ हों, धुल सकें और मजबूत रहें ।

(३) स्वच्छ मकान-जिसमें वायु का प्रवेश खूब हो, आस-पास स्वच्छ हो ।

(४) संतान के लिए उत्तमोत्तम शिक्षा, पत्र-पत्रिकायें, अच्छी पुस्तकें ।

(५) बचत-रोग, वृद्धावस्था, विवाह, मृत्यु, मकान आदि के लिए ।

(६) दान-सत् शिक्षा और दीन-दु:खियों के लिए सहायता ।

यदि हमारी आमदनी थोड़ी है तो हमें स्मरण रखना चाहिए कि हमारी सब आवश्यकतायें और दिल बहलाव की चीजें तो पूर्ण नहीं हो सकतीं । अत: हमें खास आवश्यकताओं को सबसे पूर्व रखना होगा । जो पूरी नहीं हो सकतीं उनके प्रति आत्म-संयम से काम लेना होगा, मन का दमन करना होगा । जो चीजें हम क्रय नहीं कर सकते उनके प्रति मन में इच्छायें करना ही अपने जीवन को दु:खमय बनाना है । अभाव की इच्छा जीवन को अस्त-व्यस्त कर देती है । जब मनुष्य की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती तो वह असत्य, अविचार, बेईमानी का पथ ग्रहण करता है, घर-घर भीख माँगता है, चोर-डाकू बनकर जाति और देश को कलंकित करता है ।

जो आमदनी हो उससे कम व्यय कीजिये और थोड़ा-थोड़ा भावी आवश्यकताओं के लिए अवश्य बचाते चलिये । अपनी चादर देखकर पाँव फैलाइये । ऋण बुरी बला है-यह झूठ, नीचता, कुटिलता, चिंता और मायाचार की जननी है । प्रतिष्ठित से प्रतिष्ठित व्यक्ति को भी क्षण भर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में अपमानित कर देना इसके लिए साधारण-सी बात है । दूसरों का अनुकरण कर केवल दिखावे मात्र के लिए व्यय करना सबसे बड़ी मूर्खता है । बजट बनाकर खर्च न करना निरर्थक और दु:खमय है ।

हमारी अतृप्ति और असंतोष का कारण

मनुष्य आवश्यकताओं का एक पुलन्दा है । उसके जन्म के साथ आवश्यकताओं का सम्बन्ध है और मृत्यु-पर्यन्त आवश्यकता तथा उनकी पूर्ति का कुटिल चक्र अविराम गति से चलता रहता है । मनुष्य संसार की विविध वस्तुओं का उपभोग इसीलिए करता है कि उसकी कुछ आवश्यकतायें होती हैं । हम कार्य तथा उद्योग इसीलिए करना चाहते हैं कि हमें अर्थलाभ हो और हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें । प्रतिदिन प्रात: काल उठकर हम सायंकाल तक अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के विविध साधन एकत्रित किया करते हैं ।

इच्छा और आवश्यकता में यथेष्ठ अन्तर है, यद्यपि अनेक व्यक्ति एक ही अर्थ में इनका प्रयोग करते हैं । इच्छा का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है । हम नाना प्रकार की वस्तुयें देखते हैं और लुभाकर उनकी इच्छा करने लगते हैं । ऐसी ही एक इच्छा हमारी आवश्यकता भी है । आवश्यकता केवल ऐसी इच्छा है जिसके बिना हम रह नहीं सकते, जिसके लिए हमारे पास पर्याप्त साधन हैं और जिसे प्राप्त करने से हमारी तृप्ति हो सकती है । कुछ आवश्यकतायें रुपये पैसे से और कुछ उसके बिना भी पूर्ण हो सकती हैं । अनेक बार रुपये पैसे की कमी श्रम द्वारा पूर्ण हो जाती है ।

आवश्यकता और उद्योग का घनिष्ठ सम्बन्ध है । आप जितना ही अपनी आवश्यकतायें बढ़ायेंगे, उतना ही उद्योग, परिश्रम और कष्ट आपको रहेगा । प्रत्येक आवश्यकता अपने साथ उद्योग की कुछ मात्रा चाहती है । यदि आपकी आवश्यकतायें थोड़ी हैं, तो आप आसानी से थोड़े ही रुपये और श्रम से संतुष्ट और तृप्त हो सकते हैं । आधुनिककाल में फैशनपरस्त तथा असंयमी व्यक्तियों ने अपनी आवश्यकता में वृद्धि की है । फलत: उनका जीवन में संकट है ।

महँगाई पर विजय

मँहगाई से बचने का एक उपाय है । आप अपनी आवश्यकताओं का अध्ययन करें । जो आराम, विलास या फैशन की वस्तुयें हैं, उन्हें तुरन्त त्याग दें । अनावश्यक टीपटाप, दिखावा, सौन्दर्य, प्रतियोगिता, मिथ्या-आडम्बर, टॉयलेट का सामान, मादक द्रव्यों का सेवन छोड़ दें । नौकर छुड़ा दें स्वयं उनका कार्य करें । अपने छोटे-मोटे कार्य-कमरे की सफाई और जूता पालिश, साधारण कपड़े धोना, बाजार से सब्जी लाना, बच्चों या पत्नी को पढ़ाना, अपनी गाय और भैंस की देख-रेख स्वयं कर लिया करें । सोने चाँदी के गहने कुछ वर्ष के लिए न बनवायें । पुस्तकें न खरीदें प्रत्युत किसी अच्छे स्थानीय पुस्तकालय के मेम्बर बन जायें । समाचार पत्र पड़ोसी के यहाँ से माँग कर पढ़ लिया करें । फाउन्टेन पेन के स्थान पर एक आने के साधारण होल्डर और दो पैसे की दवात से काम निकाल लें । बिजली के पंखे की जगह एक आने का हाथ का पंखा खरीद लें । मिट्टी के तेल की लालटेन का उपयोग पुन: करने लगें । यदि आप दफ्तर में इक्का या मोटर में बैठकर जाते हैं, तो उसे त्याग दीजिये । पैदल ही टहलते-टहलते चले जाया कीजिये । इससे पैसे भी बचेंगे और कसरत होने से पेट की अनेक बीमारियों से आप बचे रहेंगे

आप बढ़िया सिल्क या रेशम के वस्त्र न पहनें, साधारण खादी के सस्ते कपड़े से काम चला लें, कपड़ों को कम मैला कर अधिक चलावें, कम वस्त्रों से ही काम निकाल लें । उन्हें बड़ी सावधानी से रखें । भारतवर्ष की जलवायु ऐसी अच्छी है कि एक कुरते धोती या नेकर से सम्पूर्ण दिन मजे से कट सकता है । आमोद-प्रमोद, विशेषत: सिनेमा जाना बिल्कुल छोड़ दें । आपको महँगाई न सतायेगी । महँगाई इसीलिए प्रतीत होती है कि आपकी कृत्रिम आवश्यकताएँ अनियन्त्रित रूप से बढ़ी हुई हैं तथा आप अपनी वास्तविक आवश्यकताओं को नहीं जानते । मनुष्य की असली जरूरतें तो इतनी कम हैं कि बड़ी से बड़ी महँगाई में ही बखूबी से पूर्ण हो सकती हैं ।

मनोनिग्रह--सफलता की कुंजी

जैसे-जैसे महँगाई में वृद्धि हो, आप मोटी-मोटी आवश्यकताओं की पूर्ति कीजिये और कृत्रिम आवश्यकताओं को त्यागते जाइये । खुद परिश्रम कीजिये, आलस्य को त्याग कर पुरुषार्थ को खोज निकालिये । आपकी गुप्त सामर्थ्य बहुत कुछ करने में समर्थ है । स्मरण रखिये, मनुष्य की जरूरतें अपरिमित हैं उनको गिनना कठिन है । सब की पूर्ति असम्भव है । कुछ को त्यागना होगा ही । अत: अपनी सामर्थ्य के अनुसार अपनी आवश्यकताओं में कटौती करते चलिये । कई इच्छाएँ ऐसी हैं जिनकी पूर्ति नहीं हो सकती, जैसे धन की इच्छा, अधिकार की इच्छा या अधिक भूमि प्राप्ति की इच्छा । सौंदर्य की इच्छा की भी तृप्ति असम्भव है । कई आवश्यकताएँ ऐसी होती हैं, जो परस्पर एक दूसरे की पूरक होती हैं । आप फाउन्टेन पेन लेते हैं, तो उसी की रौशनाई लेनी होगी, टेनिस खेलते हैं, तो गेंद भी लेनी होगी, स्टोव के साथ तेल लेना होगा इत्यादि । इनके फेर में खूब सोच समझ कर पड़ना चाहिए।

आवश्यकताओं को मर्यादा से बढ़ा देने का नाम अतृप्ति और दु:ख है । उन्हें कम कर पूर्ति करने से सुख और सन्तोष प्राप्त होता है । मनुष्य एक ही प्रकार के सुख से तृप्त नहीं रहता । अत: असन्तोष सदैव बना रहता है । वह असन्तोष निंदनीय है जिसमें किसी वस्तु की प्राप्ति के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिये मनुष्य दिन-रात हाय-हाय करता रहे और न पाने पर असन्तुष्ट, अतृप्त और दु:खी रहे ।

तृष्णाएँ एक के पश्चात् दूसरी बढ़ेंगी । एक आवश्यकता की पूर्ति होगी, तो दो नई आवश्यकताएँ आकर उपस्थित हो जावेंगी । अत: विवेकशील पुरुष को अपनी आवश्यकताओं पर कड़ा नियंत्रण रखना चाहिए । इस प्रकार आवश्यकताओं को मर्यादा के भीतर बाँधने के लिए एक विशेष शक्ति–मनोनिग्रह–की जरूरत है ।

एक विचारक का कथन है:- "जो मनुष्य अधिकतम संतोष और सुख पाना चाहता है, उसको अपने मन और इन्द्रियों को वश में करना अत्यन्त आवश्यक है । यदि हम अपने आपको तृष्णा और वासना में बहायें, तो हमारे असंतोष की सीमा न रहेगी ।"

अनेक प्रलोभन तेजी से हमें वश में कर लेते हैं, हम अपनी आमदनी को भूलकर उनके वशीभूत हो जाते हैं । बाद में रोते-चिल्लाते हैं । जिह्वा के आनन्द, मनोरंजन आमोद-प्रमोद के मजे हमें अपने वश में रखते हैं । हम सिनेमा का भड़कीला विज्ञापन देखते ही मन को हाथ से खो बैठते हैं और चाहे दिन भर भूखे रहें, अनाप-शनाप व्यय कर डालते हैं । इन सभी में हमें मनोनिग्रह की नितान्त आवश्यकता है । मन पर संयम रखिये । वासनाओं को नियंत्रण में बाँध लीजिये, पाकेट में पैसा न रखिये । आप देखेंगे कि इन्द्रियों को वश में रख सकेंगे ।

आर्थिक दृष्टि से मनोनिग्रह और संयम का मूल्य लाख रुपये से भी अधिक है । जो मनुष्य अपना स्वामी है और इन्द्रियों को इच्छानुसार चलाता है, वासना से नहीं हारता, वह सदैव सुखी रहता है ।

प्रलोभन एक तेज आँधी के समान है जो मजबूत चरित्र को भी यदि वह सतर्क न रहे, गिराने की शक्ति रखता है । जो व्यक्ति सदैव जागरूक रहता है, वह ही संसार के नाना प्रलोभनों, आकर्षणों, मिथ्यादंभ, दिखावा, टीपटाप से मुक्त रह सकता है । यदि एक बार आप प्रलोभन और वासना के शिकार हुए तो वर्षों उसके प्रायश्चित करने में लग जावेंगे ।

आमदनी की न्यूनाधिकता पर मनुष्य के घर-गृहस्थी के सुख की न्यूनाधिकता अवलम्बित नहीं है, प्रत्युत अपनी आमदनी को ठीक प्रबन्ध और शास्त्रीय नियमानुसार संयम और मनोनिग्रह द्वारा खर्च करने पर सम्पूर्ण सुख अवलम्बित रहता है ।

अपने रुपये को बुद्धिमानी से व्यय करना एक कला है, जिसको न जानने के कारण हमारे परिवार दु:खी हैं । अनेक व्यक्ति आवश्यक खर्च छोड़ देते हैं किन्तु आराम और विलासिता पर व्यय करते हैं । जीवनरक्षक पदार्थ खरीदते हुए महँगाई की शिकायत करते हैं, पर विलासिता की वस्तुओं, उदाहरणार्थ–चाय, तम्बाकू, सिगरेट, पान, सिनेमा, शराब, फैशन, भड़कीले वस्त्र, नेकटाई, टोप को खरीदते समय महँगाई का अनुभव नहीं करते ।

अनिश्चित व्यय वाले व्यक्ति

आमदनी का सम्बन्ध हमारी प्रकृति, आदतों, फैशन, रहन-सहन का स्टैण्डर्ड, जलवायु, देशकाल, आवश्यकताओं, घर के सदस्यों की संख्या, रीति रस्म, आचार-व्यवहार पर निर्भर है । इनमें से प्रत्येक का ध्यान हमें रखना पड़ता है । उपभोक्ताओं की परिस्थितियों के अनुसार आमदनी की कमी या अधिकता बदलती रहती है । प्राय: देखा जाता है कि आदत पड़ जाने पर मनुष्य विलासिता पर व्यय करना, आवश्यकताओं पर व्यय करने से अधिक उत्तम समझता है । जिस व्यक्ति को शराब, चाय, सिनेमा, वेश्यागमन, तम्बाकू, गाँजा, चरस का व्यसन लग जाता है, वह दूध, दही, मक्खन, हवादार मकान इत्यादि जीवनरक्षक और निपुणतादायक पदार्थों में व्यय करना पसन्द नहीं करता । फैशनपरस्त लोग घर की गरीबी न देखते हुए भी बाहरी टीपटाप, मिथ्या प्रदर्शन में फँसे रहते हैं । निर्धन लोग थोड़ी-सी वाहवाही के लिए कर्ज लेकर विवाह, जनेऊ या दान इत्यादि में व्यय कर देते हैं । गरीब मजदूर भी पान, बीड़ी, सिनेमा, चाय, जुआ, सट्टा, शराब इत्यादि व्यसनों में व्यय करते हुए नहीं डरते । भिक्षुक तक चाय या बीड़ी पीना दूध रोटी से अधिक पसन्द करते हैं ।

एक अमीर व्यक्ति के लिये आलीशान महल, बिजली के पंखे, लैम्प, मोटर, फाउन्टेन पेन भड़कीले वस्त्र, सजावट की वस्तुएँ आराम की समझी जायेंगी, किन्तु एक गरीब किसान या क्लर्क, मामूली दुकानदार, नौकरी पेशा के लिए ये ही वस्तुएँ विलासिता की चीजें मानी जायेंगी ।

सदा अपनी आमदनी पर दृष्टि रखिये । आमदनी से अधिक व्यय नितान्त मूर्खता और दिवालियापन की निशानी है । जैसे-जैसे आमदनी कम होती जाय, वैसे-वैसे व्यय भी उसी अनुपात में कम करते जाइये । व्यय में से विलासिता और आराम की वस्तुओं को क्रमश: हटाते चलिये, व्यसन छोड़ दीजिये, सस्ता खाइये, एक समय खाइये सस्ता पहनिये । मामूली मकान में रह जाइये, नौकरों को छुड़ाकर स्वयं काम किया कीजिये, धोबी का काम खुद कर लीजिये, चाहे बर्तन तक खुद साफ कर लीजिये किन्तु आमदनी के बाहर पाँव न रखिये ।

कभी उधार न लीजिये

उधार एक ऐसी बला है, जो मनुष्य की सब शक्तियों को क्षीण कर डालती है । उसे सब के सामने नीचा देखना पड़ता है, हाथ तंग रहता है । उधार लेने की आदत कैसी है, इस पर दो रायें नहीं हो सकती । इसका तो एक ही उत्तर है-यह आदत बहुत बुरी है । उधार लेते समय तो चाहे वह रुपया हो या और कोई चीज कुछ पता नहीं चलता, परन्तु देते समय दशा बिगड़ जाती है । ऐसा लगता है, जैसे पैसे फेंक रहे हैं । धीरे-धीरे यह आदत इतनी जोर पकड़ती है कि उधार की चीज या पैसा लौटाने को मन नहीं होता और फल यह होता है–मित्रों से कन्नी काटना,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समाज में निरादर, बदनामी आदि । फिर वह 'भेड़िया आया' वाली बात होती है । यदि कभी वास्तविक आवश्यकता पड़ी भी तो पैसा नहीं मिलता । इसलिए निश्चय करना चाहिए कि कभी कोई चीज या रुपया उधार नहीं लेंगे ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ऋण के चार प्रमुख कारण बतलाये हैं-कपड़े-लत्ते, जूता, तड़क-भड़क और आमोद-प्रमोद । ऋण पर ऋण बढ़ता है और उसका तार जीवन भर नहीं छूटता । शुक्लजी लिखते हैं-''ऋण एक नाले के समान है, जो ज्यों-ज्यों आगे चलता है, त्यों-त्यों बढ़ता है । सबसे बुरी बात ऋण में यह है कि जिसे ऋण का अभ्यास पड़ जाता है, उसकी धड़क खुल जाती है, उसे आगम का भय नहीं रहता और जब तक उसका नाश नहीं होता, तब तक वह विष का घूँट बराबर पिये जाता है । यदि उसका चित्त ऐसा हुआ कि जिसमें बातें जल्दी लगती हों, तो वह निर्द्वन्द्व न रह सकेगा, ऋण के बराबर बढ़ते हुए बोझ से दबकर वह छटपटाया करेगा ।

आमदनी और खर्च के ऊपर तीखी दृष्टि रखिये । व्यय से पूर्व आमदनी खर्च का एक चिट्ठा-बजट तैयार कर लीजिये । जो बुद्धिमान व्यक्ति अपने रुपये से अधिकतम लाभ और उपयोगिता प्राप्त करना चाहता है, कर्ज से बचकर सज्जन-नागरिक का प्रतिष्ठित जीवन व्यतीत करना चाहता है, उसे बजट बनाना आवश्यक है । बजट हमें फिजूलखर्ची से सावधान करता है । सब व्यय तथा आमदनी नक्शे की तरह हमारे सामने रहती है । टिकाऊ वस्तुओं पर खर्च होता है, विलासिता से मुक्ति होती है ।

क्या आप कर्जदार हैं?

क्या आप कर्जदार हैं ? यदि ऐसा है तो आपकी आत्मा को शान्ति नहीं मिल सकती । उन धनी मानी व्यक्तियों के उदाहरण अपने सम्मुख रखिये जो आजन्म ऋण के बोझ से दबे रहे । हमारे ग्रामीण तो ८० प्रतिशत कर्ज के बोझ से दबे हुए हैं । गोल्डस्मिथ, बालजाक, मार्क ट्बैन, वैब्सटर, लार्ड बायरन, सर वाल्टर स्काट सब कर्जदार रहे । वाल्टरस्काट आजन्म कर्ज चुकाते रहे । रूसी लेखक डास्टावेस्की कर्ज में डूबा रहा । उसकी इच्छा थी कि कर्ज से मुक्त हो जावे किन्तु न हो सका । गोल्डस्मिथ इतने फिजूलखर्ची रहे कि जान्सन साहब की सहायता करने पर भी ऋणमुक्त न हो सका । कथाकार बालजाक अपने महाजनों से डरा-डरा फिरा करता था । मार्क ट्बैन का ३००,००० रु० व्यापार में नष्ट हो गया था । लार्ड बायरन जैसे कवि का घर कई बार नीलाम होते-होते बचा । सुविख्यात चित्रकार व्हिरलय तथा हेडेन का जीवन सदैव दुःख में रहा ।

ऋणग्रस्त व्यक्तियों के सम्बन्ध में ब्योब्रमेल का उदाहरण दृष्टव्य है । सौ वर्ष पहले ब्योब्रमेल इंग्लैण्ड का फैशन सम्राट कहा जाता था । उसके कपड़े पहनने का ढंग ही फैशन हो जाता था, पर ऋण के कारण उसका सब कुछ बिक गया । जब नीलाम करने वाले उसके घर आते थे, तो वह कपड़ों की अलमारियों के पीछे छिप जाता था । अन्त में वह पकड़ा गया । दरिद्रता के कारण उसे फटी कमीज पहननी पड़ती थी और जनता उस भूतपूर्व फैशन सम्राट पर हँसती थी । विलियम पिट का विवाह कुमारी एडेन से होने जा रहा था पर पिट के ऋणग्रस्त होने से विवाह न हो सका ।

अब्राहम लिंकन ने किसी से शराब की दुकान में साझा किया था पर घाटा हुआ और साझीदार के मरने पर लिंकन ग्यारह वर्ष तक ऋण चुकाता रहा ।

खर्च के विषय में बेखबर रहने से मनुष्य की पूरी आयु नष्ट हो जाती है । इसी के सदुपयोग से जीवन सरस बनता है, समाज में आदर और प्रतिष्ठा प्राप्त होती है । कौटिल्य ने कहा-''केवल धन के द्वारा मनुष्य गुण, आनन्द एवं मोक्ष की प्राप्ति करता है ।'' वास्तव में आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न रहने से मनुष्य नैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति भी सरलता से कर सकता है । रुपया पास होने से सूर्योदय और गुलाब भी हमें सुन्दर लगते हैं । एक कवि ने लिखा है-

जब जेब में पैसा होता है, जब पेट में रोटी होती है ।
तब हर एक जर्रा हीरा है, तब हर एक शबनम मोती है ।।

इस उक्ति में एक शाश्वत सत्य अन्तःनिहित है ।

आमदनी खर्च करने का उद्देश्य हो

आप यह उद्देश्य सामने रखिये कि परिवार के प्रत्येक सदस्य को जीवनरक्षक पदार्थ और निपुणतादायक वस्तुएँ पर्याप्त परिणाम में प्राप्त होती रहें । जब तक ये चीजें न आ जावें, तब तक किसी प्रकार के आराम या विलासिता की वस्तुओं से बचे रहिये । यदि किसी का स्वास्थ्य खराब है, तो पहले उसकी चिकित्सा होनी चाहिए । यदि किसी विद्यार्थी का अध्ययन चल रहा है, तो उसके लिए सभी को थोड़ा बहुत त्याग करना चाहिए । कृत्रिम आवश्यकताओं को दूर करने का सब को प्रयत्न करना चाहिए । शिक्षा, त्याग और पारस्परिक सद्भाव से सभी सामूहिक परिवार के लिए प्रयत्नशील हों ।

प्रत्येक व्यक्ति को अपने खर्च पर गम्भीरता से विचार कर कृत्रिम आवश्यकताओं, व्यसनों, फैशन, मिथ्या प्रदर्शन, फिजूलखर्ची कम करनी चाहिए । आदतों को सुधारना ही श्रेष्ठ और स्थायी मार्ग है । ऐश आराम और विलासिता के खर्चों को कम करके बचे हुए रुपये को जीवनरक्षक अथवा निपुणतादायक या किसी टिकाऊ खर्च पर व्यय करना चाहिए । बचत का रुपया बैंक में भविष्य के आकस्मिक खर्चों, विवाह-शादियों, मकान या बीमारियों के लिए रखना चाहिए । प्रत्येक पैसा समझदारी से जागरूक रहकर भविष्य पर विश्वास न करते हुए खर्च करने से प्रत्येक व्यक्ति की अधिकतम संतोष और सुख होगा ।

कमाई और आमदनी से नहीं, आपकी आर्थिक स्थिति आपके खर्च से नापी जाती है । यदि खर्च आमदनी से अधिक हुआ तो बड़ी आय से क्या लाभ ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूरदर्शी व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं और खर्चों का पहले से ही बजट तैयार करता है । उसकी आय वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति में ही व्यय नहीं होती प्रत्युत वह भविष्य के लिए, बच्चों की शिक्षा, विवाह, बुढ़ापे के लिए धन एकत्रित रखता है, अपनी परिस्थिति के अनुसार कुछ न कुछ अवश्य बचाता है ।

किसी कवि ने कहा है-

कौड़ी-कौड़ी जोड़ि के, निर्धन होत धनवान ।।
अक्षर-अक्षर के पढ़े, मूरख होत सुजान ।।

आप बचत कर सकते हैं

बचत का प्रश्न प्रत्येक का व्यक्तिगत प्रश्न है । यह मनुष्य की आवश्यकताओं की कमी, दूरदर्शिता, मितव्ययिता पर निर्भर है । मनुष्य को बजट में १० प्रतिशत बचत सदा रखनी चाहिए । यह न्यूनतम है । जो जितनी मितव्ययिता से काम लेगा उसे उतनी ही अधिक बचत होगी । बचत के लिए दो काम कीजिए- (१) अपनी आय बढ़ाइये, (२) खर्चों के ऊपर नियंत्रण रखिये । खर्च जितना कम होगा, बचत उतनी ही अधिक होगी । सोच समझ कर आत्मनिग्रहपूर्वक व्यय करने से कुछ बचत अवश्य होगी ।

प्राय: देखा जाता है कि लोगों की नीयत बचाने की होती ही नहीं । जितना आया, व्यय कर डाला । शिक्षा के अभाव और व्यसन के पंजे में फँसे रहने से बहुत से व्यक्ति मृत्यु, बीमारी, शादी, शिक्षा आदि के लिए भी कुछ नहीं बचाते, बुढ़ापे की तो बात ही दूर है । यदि कोई दैवी घटना संयोगवश आ जाती है, तो वे दूसरों के सम्मुख हाथ फैलाते हैं । ऐश आराम या विलासिता की वस्तुओं के पंजे में फँसे रहने से खर्च बढ़ता है और बचत कम होती है । दुराचार, व्यसन, व्यभिचार, बीमारियाँ, ठाठ-बाट, झूठा दिखावा, विवाह, दान में अधिक अपव्यय, मकान बनाना, व्यापार के लिए कर्ज लेकर न चुका सकना, बेकारी उद्योगहीनता बहुत ही निन्दनीय हैं । इनमें फँसकर आमदनी क्षीण होती और पूरी आयु नष्ट होती है ।

बजट में बचत का विधान रखिये

रुपये का यह नियम है कि हाथ में आते ही व्यय होने लगता है । छिपी हुई कृत्रिम आवश्यकताएँ, प्रलोभन और विलासिता की वस्तुएँ खरीदने को मन करता है । यदि आप रुपया अपनी जेब में रखेंगे, तो वह अवश्य खर्च होगा । रुपया जेब में रखकर मितव्ययिता का अभ्यास कठिन ही नहीं, नितान्त असम्भव है ।

जब आप बाजार जायें तो केवल इतना ही रुपया ले जायें जितने की आपको जरूरत हो जो वस्तुएँ खरीदनी हों, उनकी एक सूची साथ रखें । अधिक रखा हुआ पैसा बाजार से वापस कदापि नहीं लौटेगा । आप प्रलोभन के सामने झुक जायेंगे और पैसे जेब से निकल जायेंगे ।

घर में इतना ही रुपया रखिये जितना महीने भर के लिए आवश्यक हो । शेष को डाकखाना, सेविंग्स बैंक या बीमा कम्पनी में डाल दिया कीजिये । भविष्य में अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए दत्तचित्त रहिये, तब तक दैनिक आवश्यकताओं पर नियंत्रण रखकर खर्च कम करने का पूरा प्रयत्न करते रहिये ।

बचत में से भी हम निकालने के आदी होते हैं । क्षणिक आवेश में आकर अपनी संचित आमदनी व्यय कर डालते हैं । इसलिये बचत के वे उपाय श्रेष्ठ हैं जिनमें से रुपया आसानी से नहीं निकल सकता । ऐसे उपायों में बीमा कम्पनी में जमा करना, जायदाद खरीदना या बैंक के स्थायी डिपाजिट में रुपया रखना बड़ा अच्छा है । गहनों के रूप में भी रुपया रक्षित रहता है । गहने बेचते हुए प्राय: हम हिचकते हैं । परिमित व्यय करने वाला थोड़ा बहुत अवश्य बचा सकता है । केवल मन पर नियंत्रण, कृत्रिम आवश्यकताओं का दमन और संयम की आवश्यकता है ।

परिवार बजट

हम नीचे एक बजट की रूपरेखा देते हैं जिससे बचत के ऊपर प्रकाश पड़ता है -

१-भोजन पर व्यय	२५ प्रतिशत
२-वस्त्र इत्यादि पर व्यय	१० प्रतिशत
३- मकान किराया पर व्यय	२० प्रतिशत
४-बचत	१५ प्रतिशत
५-आत्मसुधार पर व्यय	१० प्रतिशत
६-आकस्मिक व्यय के लिये	१५ प्रतिशत
७-विलासिता और मनोरंजन पर	५ प्रतिशत

बजट का नियम स्मरण रखिये कि जो कम आमदनी वाला गरीब और अधिक व्यक्तियों वाला परिवार होगा, उसकी आय का अधिक भाग जीवनरक्षण में खर्च होना चाहिए । निपुणता तथा आराम की वस्तुओं के लिये उसके पास उसी अनुपात में पैसा कम बचेगा । किन्तु आमदनी में वृद्धि के साथ-साथ जीवन रक्षक पदार्थों में कम अनुपात में खर्च होगा और आराम और विलासिता की चीजों पर अपेक्षाकृत अधिक व्यय होगा ।

उपर्युक्त बजट से हम इन निष्कर्षों पर पहुँचते हैं- (१) जिन परिवारों की आमदनी कम है वे जीवन निर्वाह की वस्तुओं पर अधिक खर्च करते हैं । (२) वस्त्रों पर मजदूर तथा निम्नश्रेणी के अलावा मध्यम और सम्पन्न परिवार लगभग एक-सा ही खर्च करते हैं । (३) मकान किराया में गरीबों को कुछ लाभ रहता है । (४) अधिक आमदनी वाले प्राय: शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन, परिचर्या इत्यादि में ज्यादा खर्च करते हैं ।

निम्न श्रेणी के व्यक्ति प्राय: मादक वस्तुओं में बहुत व्यय कर डालते हैं । शहर के बाबू लोग फुटकर खर्चों सजावट, डॉक्टर की फीस, बीड़ी, चाय, कर्ज का सूद, सामाजिक व्यय, टैक्स, मनोरंजन, सिनेमा, पान, मिठाई, धोबी, पोस्टेज, साबुन, शेविंग में व्यय करते हैं । यह अनुचित है । यदि वे फुटकर चीजों पर नियंत्रण करें, तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मजे में जीवन काट सकते हैं । सुधार की बहुत गुंजाइश रहती है, केवल नियंत्रण और संयम की आवश्यकता है ।

रहन-सहन ऊँचा करने के लिये संयम और इन्द्रिय-निग्रह चाहिए । दूसरा तत्व शिक्षा है । सद्बुद्धि और अर्थशास्त्र की शिक्षा से वे कृत्रिम आवश्यकताओं से बच सकेंगे, यदि वे अपनी शक्तियों का विकास करें । अच्छे आदमियों के रहन-सहन का अनुकरण करें, आय में वृद्धि करें, दूसरे शहरों में काम तलाश करें, तो बहुत अच्छी तरह रह सकते हैं । किन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि पहले जीवनरक्षक पदार्थ खरीदें, फिर निपुणतादायक पदार्थों का अधिक उपयोग करें और अन्त में आराम के लिये पदार्थों का उपयोग कर सकते हैं ।

इन बातों को स्मरण रखिये

पारिवारिक व्यय करते समय सब कुछ खर्चों का खूब अनुमान लगा लीजिये । जो स्थायी व्यय हैं, उन्हें महीने के प्रारम्भ ही में कर डालिये । भोजन और स्थायी खर्च प्रारम्भ में कर लेने से महीने के अन्त तक आनन्द रहता है । यदि आप प्रतिदिन दूध खरीदते हैं तो दूध वाले को रुपया अग्रिम ही दे देना उचित है अन्यथा इस महीने का भार दूसरे महीने पर पड़ेगा । अर्थात् यह रुपया एक प्रकार का कर्ज-सा बना रहेगा । चीजें नकद लेने की आदत डालिये क्योंकि उधार आप भूल जायेंगे और फिर माँगने वाले किसी ऐसे समय आकर आपको तंग करेंगे, जब आप का हाथ तंग होगा । उधार या कर्ज ऐसी नंगी तलवार है जो आप पर सदैव लटकती रहती है । प्रायः दुकानदार उधार वाले को चीजें भी महँगी देते हैं ।

त्यौहार, उत्सव और धर्मादा में फिजूलखर्ची से बचना चाहिए । प्रायः मुसलमान तथा हिन्दू निर्धन व्यक्ति कर्ज लेकर त्यौहार मनाते हैं । कर्ज का एक पैसा खाना भी पाप है । उधार की एक कौड़ी भी भार स्वरूप है । जो स्थिति परमेश्वर ने आपको दी है, उसी के अनुकूल त्यौहार और उत्सव मनाइये । आत्मनिग्रह और संयम आपकी सहायता करेंगे । विवाह तक में जमाने की परवाह न कर अपनी हैसियत के अनुकूल व्यय करना चाहिए ।

तीर्थयात्रा, ब्राह्मण भोजन, रूढ़ियों, बिरादरी को प्रसन्न करने में व्यय करना छोड़ दीजिये । इसी प्रकार अतिथि सेवा आपका धर्म है, पर कर्ज लेकर मेहमानदारी करना एक मूर्खता है । बाहरी टीपटाप से बचिये । नाना प्रकार के गन्दे व्यक्ति साधु-संन्यासियों के भेष बनाकर अनुचित लाभ उठाते हैं ।

साधारण गृहस्थी के खर्च विभाग

तीन लम्बे लिफाफे लीजिये और उन पर यह लिखिये (१) चालू खर्च का रुपया (२) अचानक खर्च (३) प्रासंगिक खर्च । आपकी आमदनी के हिसाब से इन तीनों मदों में पृथक्-पृथक् रुपया डलिये । चालू खर्च में सबसे अधिक व्यय होगा पर प्रति मास आपको ५-५ प्रतिशत अन्य दोनों मदों में भी व्यय करना होगा । यहाँ हम तीनों खर्चों की पूरी सूची देते हैं-

चालू व्यय

यह व्यय प्रतिमास व्यय करना होगा । इसमें कमी नहीं हो सकती । इसमें भोजन का बजट, मकान का किराया, बच्चों की फीस, नौकरों का खर्चा, वस्त्रों का व्यय, चिरागबत्ती, धोबी, साइकिल का व्यय, बीमा पॉलसी, गाय भैंस का खर्च, सूद इत्यादि । टैक्स, टायलेट (तेल साबुन, बाल कटाना), पोस्टेज, चाय, लकड़ी । कोयला इत्यादि, मसाले, पुस्तकालय का चन्दा, पानी बिजली का खर्च, साबुन कपड़ा धोने के लिये, बच्चों का पाकेट-खर्च, कर्ज की अदायगी, ताँगा खर्च आता है ।

अचानक व्यय

दैनिक स्थायी व्यय के अतिरिक्त कुछ ऐसी बातें भी हैं जिनमें मनुष्य को व्यय करना होता है । ये खर्चे अचानक मनुष्य पर टूट पड़ते हैं । यदि हमारे पास इस मद में रुपया न हो तो कर्ज की नौबत आ सकती है । इस मद में निम्नलिखित व्यय हैं-बीमारी, मेहमानदारी, अचानक कहीं जाना पड़े तब उस यात्रा का खर्च, कोई अन्य आपत्ति आ पड़े-जैसे मुकदमेबाजी, किसी को कर्ज देना पड़े, या किसी की मृत्यु हो जाय उसका व्यय, मकान गिर पड़े उसकी मरम्मत इत्यादि के लिये, घर में चोरी हो जाय उसके लिए व्यय । इसके अतिरिक्त जीवन की अनेक दुर्घटनाएँ हैं जिनके लिये आपको रुपये की जरूरत पड़ सकती है ।

प्रासंगिक खर्च तथा बचत

तिथि, त्यौहार, भोज, मानता, श्राद्ध, शादी-विवाह, दान, यात्राएँ, उत्सव, धर्मादाएँ, आभूषण इत्यादि बनवाना ।

आमदनी को इन तीनों विभागों में बाँट कर बचत करनी चाहिए । जिसके पास बचा हुआ रुपया जमा नहीं है, वह कभी सुख की नींद नहीं सो सकेगा । चाहे थोड़ी ही सही, बचत के मद में कुछ न कुछ अवश्य रखना बुद्धिमानी है । बचत को सदैव नकद रुपयों के रूप में ही रखना चाहिए । चाहे एक समय भूखे रहें किन्तु कुछ न कुछ अवश्य बचाकर अपने पास रखें ।

संकट के समय में

संकट के समय में ज्यों-ज्यों आमदनी कम हो त्यों-त्यों अपने खर्चे कम करने के लिये प्रस्तुत रहिए । अपनी आदत बनाना आपके हाथ की बात है । अपनी कृत्रिम आवश्यकताओं, मनोरंजनों, आमोद-प्रमोद, वासनाओं की तृप्ति, जिह्वा के स्वाद, फैशनपरस्ती, दान, यात्राएँ आदि, कम आमदनी होने पर काट देने के लिये आपको तैयार रहना चाहिए ।

सबसे पहले अपने मनोरंजन के व्यय को कम कीजिए । किसी क्लब के मेम्बर हों, तो छोड़ दीजिए, सिनेमा जाना बन्द कर दीजिए, स्वाद के लिए चाट,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पकौड़ी, फल, सिगरेट, मद्यपान, सुपाड़ी छोड़ दीजिए, फैशन में कमी कीजिए । यदि फिर भी बजट ठीक न बैठे तो फुटकर खर्चों को कम कीजिए, नौकर छुड़ाकर स्वयं घर का काम कीजिए । यदि घर के आस-पास कुछ जमीन है, तो शारीरिक परिश्रम से उसमें शाक-भाजी, इत्यादि उगाइए । बच्चों को स्वयं पढ़ाइए । वस्त्र स्वयं धो लिया कीजिए । रोशनी में कमी कर सकते हैं । दिन में काम कर लीजिए । जल्दी सोना जल्दी जगना स्वास्थ्यप्रद है ।

यदि फिर भी खर्च कम न हों, तो मकान बदल करके सस्ता मकान लेना होगा । लेकिन मकान हवादार और स्वच्छ स्थान पर होना चाहिए । बीमार न पड़ना होगा । बीमारी बड़ी महँगी बैठ जायेगी । वस्त्रों तथा जूते को सावधानी से रखकर अधिक से अधिक चलाना होगा । जितना ही आर्थिक संकट होगा, उतना ही मर्यादित और मितव्ययी आपको बनना होगा । मितव्यय, आत्मसंयम और इन्द्रियनिग्रह के समान सुख देने वाला कोई गुण संसार में नहीं है ।

बीमारियों में हमें अनाप-शनाप व्यय करना होता है । पास पैसा नहीं होता तो ऋण लेकर व्यय करना होता है । बीमार पड़ना अत्यन्त महँगा है अन्य चीजें इतनी महँगी नहीं हैं, जितनी बीमारियाँ । अतः आपको अधिक से अधिक अपने स्वास्थ्य की देख-रेख करनी होगी । संकट में सबसे पूर्व अपने स्वास्थ्य की चिंता कीजिए । यदि बीमार पड़ियेगा, तो आपकी सारी मितव्ययिता का बजट रखा रह जायगा । बजट तभी कम रहेगा, जब आपके सब घर वाले स्वस्थ और प्रसन्न हों, आत्मनिग्रह और संयम कर सकें । बीमारियों में सावधान रहिये ।

हमारी आर्थिक कठिनाइयाँ कैसे दूर हों ?

वर्तमान आर्थिक संकट से मुक्ति का एकमात्र उपाय है-मितव्ययिता । इसका जन्म सभ्यता के साथ-साथ हुआ है, मनुष्यों को तब इस महान् गुण का ज्ञान हुआ जब आज के संतोष के साथ 'कल की चिन्ता' हुई । मितव्ययिता का जन्म मुद्रा के जन्म से पूर्व हुआ है ।

'मितव्ययिता' का अर्थ है व्यक्तिगत रूप से किफायतशारी । इसमें घरेलू आय-व्यय, बचत और भविष्य के लिये कुछ रखना शामिल है । इसका मूल अभिप्राय मनुष्य को अधिक से अधिक सुखी बनाना, उन्नति और विकास के अवसर प्रदान करना और व्यक्ति के साथ-साथ राष्ट्र की धन-सम्पत्ति की अभिवृद्धि करना है ।

धन की वृद्धि परिश्रम से होती है । यदि किसी के पास धन कम है तो इसका दूसरा अर्थ है कि उसने परिश्रम कम किया है या कर रहा है । अधिक श्रम का अर्थ-अधिक धन । धन को मितव्यय से खर्च करने से बचत होती है । यही बचत धीरे-धीरे पूँजी बनती है, जिससे बड़े-बड़े व्यापार चलते हैं ।

धन-संग्रह करके रखने की वृत्ति स्वाभाविक वृत्ति नहीं है । यह तो अनुभव, उदाहरण तथा भविष्य की कठिनाइयों से बचने की इच्छा से उत्पन्न होती है । चतुर और बुद्धिमान अपने धन को बड़ी सतर्कता से एकत्र कर सकते हैं । ज्यों-ज्यों मनुष्य चतुर और अनुभवी होता जाता है, त्यों-त्यों वह मितव्ययी बनता चलता है, मनोनिग्रह से अपनी कृत्रिम आवश्यकताओं को दूर करता है और वास्तविक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, प्रलोभनों से बचता है और शेष धन को उठाकर कल के लिए रख छोड़ता है ।

मितव्यय और कंजूसी में बड़ा अन्तर है । मितव्ययी समझदारी से उचित स्थानों पर जितना व्यय करना चाहिए, खर्च करने से नहीं चूकता, कंजूस उचित खर्चों-खाना, पहिनना, साफ मकान-में भी धन व्यय नहीं करता हम कंजूसी से घृणा करते हैं । कंजूस में धन-संग्रह की अतृप्त इच्छा रहती है, मितव्यय धन को एक साधन-मात्र समझता है और उससे अधिक आनन्द प्राप्त करता है ।

जो आदमी केवल आज के लिये जीता है, कल की चिन्ता नहीं करता, इन्द्रिय सुखों और शारीरिक वासनाओं की पूर्ति के लिए आमदनी से अधिक व्यय करता है, वह इन्द्रियों का गुलाम है । वह पशु के समान नीच वृत्तियों में फँसा हुआ है । इन्द्रियाँ उसके वश में नहीं, वह स्वयं इन्द्रियों और वासनाओं का दास है ।

बिना पढ़े-लिखे लोग आगा-पीछा न सोचकर खर्च करते हैं । महीने में कठिनता से निर्वाह हो पाता है । कुछ व्यक्ति थोड़ा-थोड़ा मितव्यय से जोड़कर धनी हो जाते हैं । मितव्ययी आवश्यक खर्चे अवश्य करता है । अतिथियों की सेवा, बीमारी, अकाल, परिवार का भरण-पोषण, बच्चों की शिक्षा, विवाह इत्यादि, मुकदमा, सभी कुछ का विधान रखता है किन्तु उसके सब खर्चे मर्यादा के भीतर ही रहते हैं । वह अपने द्रव्य का पूरा-पूरा लाभ उठाता है ।

आर्थिक कठिनाइयों से बचने के दो उपाय हैं:-
(१) अपनी आय-वृद्धि कीजिये । जितना प्रयत्न और परिश्रम आप इस समय कर रहे हैं, उससे अधिक कीजिए । नये कारबार, छोटे-मोटे काम, मजदूरी, दूसरों की सहायता, दूसरों के पत्र-व्यवहार, टाइप का काम, अखबारों के दफ्तरों में कार्य कीजिये, बच्चों को पढ़ाइये, छोटी दुकान कीजिए, रात्रि-पाठशालाओं या सिनेमा में कोई नौकरी कीजिए । धन के लिये अधिक से अधिक प्रयत्न कीजिए, योजनाएँ बनाइये ।

(२)दूसरा उपाय यह है कि जीवन की जिन आवश्यकताओं के लिए पैसे की जरूरत है, उन्हें कम कीजिए । जितनी कम आवश्यकताएँ रहेंगी, आप उतनी ही शक्ति बचा सकेंगे । इस बची हुई शक्ति से बहुत से उपयोग हो सकते हैं । जितनी कम आमदनी है, उससे भी कम आपकी आवश्यकताएँ होती जानी चाहिए । शान-शौकत, विलास और ऐशोआराम तो बिल्कुल त्याग देना चाहिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मजदूर लोग प्रायः कमाते बहुत अधिक हैं, किन्तु वे आमदनी के अनुपात में आवश्यकताएँ नहीं घटा पाते, वे गरीब ही दीखते हैं । प्रायः उनकी आदतें–मद्यपान और बिना बजट के रुपया खर्च करने की आदत उनका सत्यानाश कर देती हैं । वे बीमार अधिक रहते हैं, उन्हें आलस्य अधिक दबाता है, उनका घर-बार गन्दा और उनका दैनिक क्रम अस्त-व्यस्त रहता है । उनकी शारीरिक और मानसिक दशा शोचनीय होती है । यदि ये जरा संयम और मनोनिग्रह का अभ्यास करें और सादा जीवन व्यतीत करें, तो काफी सम्पन्न हो सकते हैं । मितव्ययिता का अभ्यास उन्हें ऊँची तरह का जीवन प्रदान कर सकता है ।

जो लोग ''हम रुपया नहीं बचा सकते,'' महँगाई मारे डालती है '' कहते फिरते हैं, वे वास्तव में अपनी कृत्रिम आवश्यकताएँ कम करना नहीं चाहते, न अधिक प्रयत्न और परिश्रम से वस्तुओं के चढ़ते हुए मूल्य के अनुपात में आमदनी ही बढ़ाना चाहते हैं । कैसा शोक का विषय है कि हम लोगों ने अपना व्यक्तिगत व्यय, आवश्यकता तथा आमदनी से अधिक बढ़ा लिया है ।

जब आप रुपये के लिये दूसरे के सन्मुख हाथ फैलाते हैं तो स्मरण रखिये, आप दूसरे की मजदूरी हड़पना चाहते हैं । साथ ही अपनी आत्म-प्रतिष्ठा, पौरुष, मान, प्रसन्नता भी दूसरे के हाथ बेचते हैं । माँगने से आपके चरित्र की कमजोरी और दीनता प्रकट होती है । माँगना प्रत्येक दृष्टिकोण से हेय है । सज्जन व्यक्ति भूखा रहकर दिन काट लेगा, पर किसी के सम्मुख हाथ नहीं फैलायेगा । जो लोग उधार लेकर उत्सव और मेला में व्यय करते हैं, वे अपने साथ बड़ा अत्याचार करते हैं ।

मजदूर और साधारण श्रेणी के लोगों की आय प्रायः काफी होती है । यदि उनमें इच्छाशक्ति हो, तो वे मध्यम श्रेणी के प्रतिष्ठित नागरिकों की भाँति आदर का जीवन-व्यतीत कर सकते हैं । उन्हें ऊँचा उठने से कौन वंचित रखता है ? कारण यही है कि वे फालतू बचे हुए समय का उपयोग अपने मस्तिष्क के विकास में, नई-नई बातें सीखने में नहीं करते । उनके पास रुपया काफी है । उन्हें तो मानसिक विकास द्वारा संयम, इन्द्रियनिग्रह, कृत्रिम और वास्तविक आवश्यकता का अन्तर सीखना है । उन्हें संस्कृति और सभ्यता सीखनी है । उन्हें यह सीखना है कि समाज में मनुष्य की स्थिति केवल रुपये पर ही नहीं वरन् हृदय की पवित्रता, निष्कपट सेवाभाव, साहस, सद्विवेक, सत्यनिष्ठा, त्याग, उदारता, सद्भावना आदि पर निर्भर है ।

रुपये को सुख का एक साधन मानिये । उससे जीवन में सुख मिलता है पर रुपये से ही सब कुछ मिलता हो, सो बात नहीं है । जीवन अनेकमुखी है, इसके अनेक पहलू हैं । आपको इन सभी दिशाओं में अपनी शक्तियाँ लगानी चाहिए । जो व्यक्ति दिन-रात धन उपार्जन की चिन्ताओं में ही लगे रहते हैं और रुपया जोड़-जोड़ कर रखते हैं वे कभी आन्तरिक शान्ति प्राप्त नहीं कर पाते । उन्हें यह विदित नहीं होता कि इस कमाई की धुन में वे कैसी महत्वपूर्ण चीजें नष्ट कर देते हैं । स्वास्थ्य, सुख, बच्चे, मित्रों की मैत्री, दम्पत्ति का हार्दिक एकीकरण, घर के बाल-बच्चे धन से अधिक महत्व रखते हैं ।

अर्थोपार्जन में मर्यादित शक्ति का व्यय होना चाहिए । पैसे की लोलुपता, तृष्णा और चिन्ता कम कीजिए । सुख रुपये पैसे में नहीं । हाँ, रुपया-पैसा कभी-कभी सुख के मार्ग को सरल बनाता है । रुपये की हाय-हाय से समय बचाकर आत्मा के सद्गुणों के विकास में व्यय करना चाहिए । अपने चरित्र का निर्माण इस प्रकार कीजिए कि उचित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कभी धन की कमी न पड़े और व्यर्थ की विलासमयी आवश्यकताओं के लिए धन खर्च करने की आवश्यकता ही प्रतीत न हो । रुपये का काम थोड़ी देर का आनन्द मजेदारी नहीं, प्रत्युत मनुष्य की शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक स्थिति को ऊँचा उठाना है ।

फिजूलखर्ची एक रोग है । बड़े-बड़े रईस और ताल्लुकेदार इसी के कारण गरीब बने हैं । इसे छोड़ देना ही उचित है । घरेलू बजट, आय-व्यय का हिसाब ही हमारा मार्ग-प्रदर्शन कर सकता है । खेद का विषय है कि लोगों को अपनी आमदनी, मासिक वेतन का तो ज्ञान रहता है किन्तु आज क्या व्यय हुआ ? कैसे हुआ ? कृत्रिम आवश्यकताओं या विलास-मनोरंजन में हुआ ? उससे स्थायी लाभ हुआ या नहीं ? कल खर्च करने के लिए कहाँ से आयगा ? यदि हाथ में कुछ न हुआ तो किससे कर्ज लेंगे ? किसके सामने हाथ फैलायेंगे ? इन प्रश्नों पर हम तनिक भी विचार नहीं करते ।

कम आय से मत डरिये वरन् उसी को सावधानी से व्यवस्थापूर्वक व्यय कीजिए । सावधानी से बजट बनाकर अपनी आवश्यकताओं को मर्यादित कर संयमित एवं व्यवस्थित जीवन व्यतीत करना जीवन में दक्षता का रहस्य है ।

कमी कैसे पड़ जाती है ?

आप २०००) रु० मासिक कमाते हैं, पास-पड़ौस वाले आपको आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न समझते हैं । आपके हाथ में रुपये आते-जाते हैं, किन्तु आपको यह देखकर अत्यन्त दुःख होता है कि आपका वेतन महीने की २० तारीख को ही समाप्त हो जाता है । अन्तिम दस दिन खींच-तान, कर्ज, तंगी और कठिनाई से कटते हैं । आप बाजार से उधार लाते हैं, जीवन-रक्षा के पदार्थ भी आप नहीं खरीद पाते । आपके नौकर, बच्चे, पत्नी आपसे पैसे माँगते हैं, बाजार वाले तगादे भेजते हैं, आप किसी प्रकार अपना मुँह छिपाये टालमटोल करते हैं और उत्सुकता से महीने की पहली तारीख की प्रतीक्षा करते हैं । वर्ष के बारह महीने यह क्रम चलता है । कुछ बचत नहीं होती वृद्धावस्था में दूसरों के आश्रित रहते हैं, बच्चों के विवाह तक नहीं कर पाते , पुत्रों को उच्च शिक्षा या अपनी महत्वाकांक्षाएँ पूर्ण नहीं कर पाते । लेकिन क्यों ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपव्यय और आदत के गुलाम

कभी आपने सोचा है कि आपका वेतन क्यों २० तारीख को समाप्त हो जाता है ? आप असंतुष्ट और झुँझलाये से क्यों रहते हैं ?

अच्छा अपने घर के समीपवर्ती जो पान सिगरेट की दुकान है, उसका बिल लीजिये । महीने में कितने रुपये आप पान सिगरेट में व्यय करते हैं ? प्रतिदिन कम से कम ५-६ सिगरेट और दो-चार पान आप प्रयोग कर लेते हैं । बढ़िया सिगरेट या बीड़ी माचिस आपकी जेब में पड़ी रहती हैं । यदि चार-पाँच आने रोज भी आपने इसमें व्यय किये तो महीने के आठ दस रुपये सिगरेट में फुँक गये । सिगरेट वाले का यह न्यूनतम व्यय है । प्राय: होता १५ से २० रुपये प्रतिमास तक है ।

चाट-पकौड़ी, चाय वाला, काफी हाउस, रेस्तराँ, चुसकी, शरबत-सोडा, आइसक्रीम, लाइट रिफ्रेशमेन्ट वालों से पूछिये कि वे आपकी कमाई का कितना हिस्सा ले लेते हैं ? यदि अकेले गये तो कम से कम ४ रुपये अन्यथा ८-१० रुपये का बिल मित्रों के साथ जाने पर बन जाता है । एक प्याली चाय खरीद कर अपनी पसीने की कमाई व्यर्थ गँवाते हैं । चुसकी, शरबत, सोडा क्षण भर की चटोरी आदतों की तृप्ति करती हैं । इच्छा फिर भी अतृप्त रहती है । मिठाई से न ताकत आती है, न कोई स्थायी लाभ होता है, उलटे पेट में भारी विकार उत्पन्न होते हैं ।

घृणित आदतें

सिनेमा हाउस का टिकट बेचनेवाला और गेटकीपर आपको पहिचानता है । आपको देखकर वह मुस्करा उठता है । हँस कर दो बातें करता है । फिल्म अभिनेत्रियों की तारीफ के पुल बाँध देता है । आप यह फिल्म देखते हैं, साथ ही दूसरे का नमूना देखकर दूसरी को देखने के बीज मन में ले आते हैं । एक के पश्चात् दूसरी फिर तीसरी फिल्म को देखने की धुन सवार रहती है और रुपया व्यय कर आप सिनेमा से लाते हैं, वासनाओं का तांडव, कुत्सित कल्पना के वासनामय चित्र, गन्दे गीत, रोमान्टिक भावनाएँ, शरारत से भरी आदतें । साथ ही अपनी नेत्र-ज्योति भी बरबाद करते हैं । गुप्त रूप से वासनापूर्ति के नाना उपाय सोचते, दिमागी ऐय्याशी करते और रोगग्रस्त होकर मृत्यु को प्राप्त होते हैं । काम रूपी शेर हमारा शोषण कर लेता है । भगवान बुद्ध ने कहा है- ''नरक के तीन प्रचण्ड महाद्वार रात दिन खुले हुए हैं । सबसे पहला द्वार काम का है, जिसमें कि विषय-वासनाओं के गुलाम बलात् खींचे और ठूँसे जाते हैं ।'' सिनेमा ही वह प्रथम द्वार है । महीने में १५-२० रुपये हम खुशी-खुशी सिनेमा की भेंट करते हैं और सिनेमा सम्बन्धी सस्ती, बेकार अश्लील पत्रिकाएँ खरीदते हैं ।

बीमारियों में आप मास में ५० रुपये व्यय करते हैं । किसी को बुखार है, तो किसी को खाँसी, जुकाम, सिरदर्द या टॉन्सिल । पत्नी प्रदर या मासिकधर्म के रोगों से दु:खी है । आप स्वयं कब्ज या किसी गुप्त रोग के शिकार हैं, तब तो कहने की बात ही क्या है । कभी इन्जेक्शन, तो कभी किसी को ताकत की दवाई चलती ही रहती है । कुछ बीमारियाँ ऐसी भी हैं जिन्हें आपने स्वयं पाल-पोस कर बड़ा किया है । आप दाँत साफ नहीं करते, फिर आये दिन नये दाँत लगवाते या उन्हीं का इलाज कराया करते हैं । दन्त डॉक्टर आपकी लापरवाही और आलस्य पर पलते हैं । क्या आपने कभी सोचा है कि आपके शहर में दवाइयों की इतनी दुकानें क्यों बढ़ती चली जा रही हैं ? मुहल्ले-मुहल्ले में डॉक्टर, वैद्यराज, हकीम और गुप्त रोगों को ठीक करने वाले संख्या में निरन्तर बढ़ रहे हैं । हमी अपना पैसा रोगी होकर इन्हें देते हैं और पालते हैं ।

विवाह, झूठा दिखावा, धनी पड़ौसी की प्रतियोगिता, सैर-सपाटा, यात्राएँ, उत्सवों, दान इत्यादि में आप प्राय: इतना व्यय कर डालते हैं कि कई महीने तक सँभल नहीं पाते । पत्नी ने गहने, साड़ी या किसी अन्य कीमती चीज की जिद की, तो आप अपनी जेब देखने के स्थान पर केवल उसे प्रसन्न करने मात्र के लिये तुरन्त कुछ भी शौक की चीज खरीद लेते हैं । हमने स्वयं अपने एक मित्र को अपनी पत्नी के लिये एक कीमती घड़ी खरीदते हुए देखा जबकि पत्नी घड़ी देखना भी ठीक तरह न जानती थी । फाउन्टेन पेन प्राय: इतने कीमती खरीदे जाते हैं, जो आभूषण की भाँति सँभाल कर रखने पड़ते हैं । फिर भी भय बना रहता है कि कोई उचाट न ले या गिर न जाय । प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास 'गबन' में एक ऐसे पति का वृतान्त लिखा है जिसने पत्नी से अपनी असली हालत छुपाये रखी और अन्त में कष्ट झेले । उसके आभूषण बनवाने के लिये सरकारी रुपया गबन किया । अपनी इच्छाओं पर नियन्त्रण न रखने और प्रलोभनों द्वारा परास्त हो जाने से प्राय: हम अपना दिवाला निकाल लेते हैं ।

आप दिन में चार रुपया कमाते हैं, पर भोजन, वस्त्र या मकान अच्छे-से-अच्छे रखना चाहते हैं । फैशन में भी अन्तर नहीं करते, आराम और विलासिता की वस्तुएँ- क्रीम, पाउडर, शेविंग, सिनेमा, रेशमी कपड़ा, सूट-बूट, सुगन्धित तेल, सिगरेट भी कम करना नहीं चाहते फिर बताइये कर्जदार क्यों कर न बनें ?

आप का धोबी महीने में ७० रुपये आपसे कमा लेता है । आप दो दिन तक धुली हुई कमीज नहीं पहनते । पेन्ट की क्रीज, रंग एक दिन में खराब कर डालते हैं, हर सप्ताह हेयर कटिंग के लिए जाते हैं, प्रतिदिन जूते पर पालिश करते हैं, बिजली के पंखे और रेडियो के बिना आपका काम नहीं चलता । पैसे पास नहीं, फिर भी आप अखबार खरीदते हैं, मित्रों को घर पर बुलाकर कुछ न कुछ चटाया करते हैं । रिक्शा, इक्के, ट्राम, साइकिल की सवारी में आपके काफी रुपये नष्ट होते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तीन बातें ऐसी हैं, जिन्होंने सबसे अधिक आदमियों को गरीब और कर्जदार बनाया है । इन तीनों के द्वारा ग्रसित व्यक्ति कभी नहीं पनपता । ये हैं-नशेबाजी, व्यभिचार और मुकदमेबाजी ।

उपभोग की वस्तुओं का वर्गीकरण

आप पूछेंगे कि आवश्यकताओं, आराम की वस्तुओं और विलासिता की चीजों में क्या अन्तर है ? मनुष्य को सबसे मूल्ववान उसका शरीर लगता है । शरीर में उसका सम्पूर्ण कुटुम्ब भी सम्मिलित है । वह अपना और अपने परिवार का शरीर (स्वास्थ्य और अधिकतम सुख) बनाए रखने की फिक्र में है । उपभोग के आवश्यक पदार्थ वे हैं, जो शरीर और स्वास्थ्य के लिए जरूरी हैं; ये ही मनुष्य के लिए महत्व के हैं ।

जीवनरक्षक पदार्थों के अन्तर्गत तीन चीजें प्रमुख हैं: (१) भोजन, (२) वस्त्र, (३) मकान । भोजन मिले, शरीर ढकने के लिए वस्त्र हों और सदी-गर्मी बरसात से रक्षा के निमित्त मकान हो । यदि ये वस्तुएँ ठीक हैं, तो जीवन रक्षा और निर्वाह चलता रहता है । जीवन की रक्षा के लिए ये वस्तुएँ अनिवार्य हैं ।

यदि इन्हीं पदार्थों की किस्म अच्छी है तो शरीर रक्षा साथ-साथ निपुणता भी प्राप्त होगी । कार्य शक्ति, स्फूर्ति बल और उत्साह में वृद्धि होगी, शरीर नीरोग रहेगा और मनुष्य दीर्घजीवी रहेगा । ये निपुणतादायक पदार्थ क्या हैं ? अच्छा पौष्टिक भोजन जिसमें फल, अन्न, दूध, तरकारियाँ, घृत इत्यादि प्रचुर मात्रा में हों, टिकाऊ वस्त्र जो सर्दी से रक्षा कर सकें, हवादार स्वस्थ वातावरण में खड़ा हुआ मकान जो शरीर को धूप, हवा, जल इत्यदि प्रदान कर सके । प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत साधारण भोजन करने, फटा-पुराना वस्त्र पहनने तथा टूटी-फूटी झोंपड़ी में रहने से भी मनुष्य जीवित तो रह सकेगा, पर उसमें कुशलता, स्फूर्ति, ताजगी तन्दुरुस्ती न आ सकेगी । सम्भव है सब तत्व न मिलने के कारण शरीर रोगी और निर्बल हो जावे, कार्य-शक्ति क्षीण हो जावे, शरीर का पूर्ण विकास न हो । इसीलिए यह निपुणतादायक वस्तुएँ आवश्यक हैं ।

आराम की वस्तुएँ

यदि आपकी आमदनी इतनी है कि निपुणतादायक चीज (अच्छा अन्न, घी-दूध, फल, हवादार मकान, स्वच्छ वस्त्र, कुछ मनोरंजन) खरीद सकते हैं, तो आराम की चीजों को अवश्य लीजिए । इनसे आपकी कार्यकुशलता तो बढ़ेगी, पर उस अनुपात में नहीं जिस अनुपात में आप खर्च करते हैं ।

आराम की वस्तुएँ ये हैं:- कोट, बूट, साइकिल, घड़ी, फाउन्टेन पेन, पक्का मकान, कुर्सियाँ, मेज, बढ़िया बिछौने, पुस्तकालय, अधिक घी और दूध, कभी-कभी मिठाई, तेल मालिश, अखबार, धोबी की सेवाएँ, छोटे नौकर जैसे बर्तन साफ करने वाली महरी, पानी भरने वाला कहार, मेहतर इत्यादि । घर में गाय, भैंस, बकरी पालना, बगीचा लगाना, मनोरंजन के साधारण सामान । यदि कोई घर रेडियो खरीद सकता है, तो इसमें वह भी सम्मिलित किया जा सकता है । कुछ आवश्यक पुस्तकें, बच्चों के लिए मास्टरों की ट्यूशनें, छोटी-छोटी पिकनिक या बाहर की वार्षिक यात्रा, घर को सजाने का मामूली सामान और जन्मोत्सव तथा विवाह में साधारण व्यय ।

उपर्युक्त वस्तुओं से शरीर को सुख और आराम तो मिलता ही है किन्तु निपुणता भी बढ़ जाती है । लेकिन जितना खर्च इन पर होता है, उस अनुपात में कार्य-कुशलता नहीं बढ़ती है ।

विलासिता की वस्तुएँ

इनसे खर्च की अपेक्षा निपुणता और कार्य-कुशलता कम प्राप्त होती है । कभी-कभी कार्य-कुशलता का ह्रास तक हो जाता है । मनुष्य आलसी और विलासी बन जाता है । काम नहीं करना चाहता । रुपया बहुत खर्च होता है, लाभ न्यून मिलता है ।

इस श्रेणी में ये वस्तुएँ हैं:-आलीशान कोठियाँ, रेशम या जरी के बढ़िया कीमती भड़कीले वस्त्र, मिष्ठान्न, मेवे, चाट-पकौड़ी, शराब, चाय, तरह-तरह के अचार, मुरब्बे माँस भक्षण, फैशनेबिल चीजें, मोटर, तम्बाकू-पान, गहने, जन्मोत्सव और विवाह में अनाप-शनाप व्यय, रोज दिन में दो बार बदले जाने वाले कपड़े, साड़ियाँ, अत्यधिक सजावट, नौकर-चाकर, मनोरंजन के कीमती सामान घोड़ागाड़ी, बढ़िया फाउन्टेन पेन, सोने की घड़ियाँ, होटल रेस्तराँ में खाना, सिनेमा, सिगरेट, पान, वेश्यागमन, नाच-रंग, व्यभिचार, शृंगारिक पुस्तकें, कीमती सिनेमा की पत्र-पत्रिकाएँ, तस्वीरें, अपनी हैसियत से अधिक दान, हवाखोरी, सफर, यात्राएँ, बढ़िया रेडियो, भड़कीली पोशाक, क्रीम, पाउडर, इत्र आदि ।

उपर्युक्त वस्तुएँ जीवनरक्षा या कार्य-कुशलता के लिये आवश्यक नहीं हैं । किन्तु रुपये की अधिकता से आदत पड़ जाने से आदमी अनाप-शनाप व्यय करता है और इनकी भी जरूरत अनुभव करने लगता है । इन्हीं वस्तुओं पर सब से अधिक टैक्स लगते हैं ये कृत्रिम आवश्यकताओं से पनपते हैं । इनसे सावधान रहिये ।

हम देखते हैं कि लोग विवाह, शादी, त्यौहार, उत्सव, प्रीतिभोज आदि के अवसर पर दूसरे लोगों के सामने अपनी हैसियत प्रकट करने के लिए अन्धाधुन्ध व्यय करते हैं । भूखों मरने वाले लोग भी कर्ज लेकर अपना प्रदर्शन इस धूमधाम से करते हैं मानो कोई बड़े भारी अमीर हों । इस धूमधाम में उन्हें अपनी नाक उठती हुई और न करने में कटती हुई दिखाई पड़ती है ।

भारत में गरीबी है, पर गरीबी से कहीं अधिक मूढ़ता, अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता, मिथ्या प्रदर्शन, घमण्ड, धर्म का तोड़-मरोड़ दिखावा और अशिक्षा है । हमारे देशवासियों की औसत आय सात-आठ आने प्रतिदिन से अधिक नहीं । इसी में हमें भोजन, वस्त्र, मकान तथा विवाह शादियों के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिये बचत करनी होती है। पैसे की कमी के कारण हमारे देशवासी मुश्किल से दूध, घी, फल इत्यादि खा सकते हैं । अधिक संख्या में तो वे स्वच्छ मकानों में भी नहीं रह पाते, अच्छे वस्त्र प्राप्त नहीं कर पाते, बच्चों को अच्छी शिक्षा नहीं दिला पाते, बीमारी में उच्च प्रकार की चिकित्सा नहीं करा सकते, यात्रा, अध्ययन मनोरंजनों के साधनों से वंचित रह जाते हैं । फिर भी शोक का विषय है कि विवाह के अवसर पर वे सब कुछ भूल जाते हैं, मृत-भोज कर्ज लेकर करते हैं, मुकदमेबाजी में हजारों रुपया फूँक देते हैं । इस उपक्रम के लिए उन्हें वर्षों पेट काटकर एक-एक कौड़ी जोड़नी पड़ती है । कर्ज लेना पड़ता हैया और कोई अनीतिमूलक पेशा करना पड़ता है ।

आम-तौर पर मध्यम वर्ग के खोखले व्यक्ति झूठ-मूठ अमीरी का नाटक किया करते हैं । अहंकार का यह स्वरूप नितान्त अनुचित है ।

परिवार की आर्थिक सुव्यवस्था

वह व्यक्ति धन्य है जिसकी आवश्यकताएँ परिमित हैं और उपभोग के लिए उसे अपना अधिक समय नष्ट नहीं करना पड़ता । उसका अधिक समय अध्ययन, चिंतन, उच्च विषयों के ध्यान तथा दूसरों की सहायता में व्यतीत होता है ।

वह गृहस्थ धन्य है जिसके यहाँ फैशन नहीं, झूठा दिखावा, थोथी टीप-टाप या फिजूलखर्ची नहीं । जहाँ प्रत्येक पैसे का उचित उपयोग होता है और पति-पत्नी, बन्धु-बान्धव सभी उसमें सहयोग प्रदान करते हैं । पति कमा कर लाता है, पत्नी घर की दैनिक वस्तुओं का संग्रह, सदुपयोग और वर्गीकरण करती है, सामान को नष्ट होने से बचाती है और पुत्र घर का हिसाब-किताब रखता है । यह हिसाब प्रत्येक मास खातों में लिखा जाता है और फिर यह मालूम किया जाता है कि किस मद में कितना रुपया व्यय हुआ ? कितना अधिक हुआ ? उसका क्या कारण है ? भविष्य में किस प्रकार व्यय रोका जा सकता है ? मास के अन्त में जो आर्थिक कठिनाई हुई, उससे कैसे मुक्त हो सकते हैं ?

जिसे आर्थिक सामर्थ्य का ज्ञान है, जो अपनी चादर देखकर पाँव फैलाता है, वह अधिक काल तक जीवित रहता है और आन्तरिक शान्ति का उपभोग करता है ।

नियंत्रण करना सीखिये । कुछ लोग कहा करते हैं कि हमें अपने आप पर नियंत्रण नहीं होता । इसका कारण यह है कि वे कृत्रिमता या विलासिता की आवश्यकताओं की पूर्ति में लगे हैं । उन्होंने अपनी शौकीनी इतनी अधिक बढ़ा ली हैं कि उस आमदनी में उनका गुजारा नहीं होता । यदि आदमी अपने विवेक को जाग्रत करे और गम्भीरता से सोचे कि मैं किन-किन खर्चों से बच सकता हूँ ? कौन-कौन-सी विलासिताओं में डूबा हुआ हूँ ? तो वह नियंत्रण में सफल हो सकता है । नियंत्रण के प्रारम्भ में कुछ कठिनाई अवश्य होती है, किन्तु ज्यों-ज्यों विवेक-बुद्धि और दुनियादारी जाग्रत होती है, त्यों-त्यों वह शक्ति, धन और जीवन, परहित साधन में लगाता है । बाह्य प्रदर्शन, मिथ्या अहंकार को त्यागता है । अपव्यय से मुक्ति पाने का अमोघ उपाय एकमात्र विवेकजनित नियंत्रण है।

क्षणिक भोग-विलास की पूर्ति के लिए, जिह्वा की तृप्ति के लिए, मिथ्या गौरव के प्रदर्शन के लिए कभी कर्ज न लीजिए । आप भारतीय हैं, भारतीय जनता सादगी-पसन्द तथा निर्धन है । शादी, गमी-न्यौता इत्यादि में अपव्यय हमारी मूर्खता का परिचायक है । चाहे आप जितना भी बढ़-चढ़ कर विवाह कीजिए, समय के प्रवाह के साथ जनता सब कुछ विस्मृत कर देती है । विवाह में जो कर्ज लेते हैं, वह पर्वत के समान हमारे ऊपर बोझ डालता रहता है, विवाहित जोड़ा सब कुछ विस्मृत कर देता है । घर या मकान तक बिक जाता है ।

आभूषणों से सावधान ! गृहणी का सच्चा आभूषण है उसका स्वास्थ्य, पारिस्परिक प्रेम, सद्भावनाएँ, शिक्षा और योग्यता । वह युग गया जिसमें आभूषणों द्वारा ही बड़प्पन प्रतीत होता था ।

क्या आपके घर में जूठन छोड़ी जाती है ? क्या प्रत्येक थाली में दाल-सब्जी छोड़ी जाती है ? खाद्य पदार्थ चूहों के लिए खुले पड़े रहते हैं ? भोग्य पदार्थ घर पर आने वाले अनेक फकीरनुमा आलसी व्यक्तियों को दिया जाता है ? क्या आपके घर बासी रोटी रखने और उसे कुत्ते बिल्लियों को देने की प्रथा है ? यदि ऐसा है तो तुरन्त आपको गरीबी और तंगी के लिए तैयार हो जाना चाहिए । जो व्यक्ति रोटी का एक टुकड़ा भी फेंकता है, वह गरीब जनता के रक्त से अर्जित अनाज-राशि को नष्ट करता है, वह महापापी है ।

धन को गाढ़कर रखना भी एक प्रकार से अपव्यय है । यदि धन है, तो उसका उचित उपयोग कीजिए । यदि आप बैंक में रखते हैं, तो एक तो वह सार्वजनिक काम में आता है, दूसरे आपको उस पर ब्याज मिलता है । आपके हाथ में रुपया दूर रहने के कारण आप पर नियंत्रण रहता है ।

वस्तुओं के उपभोग के सम्बन्ध में साधारणतः सरकार द्वारा नियंत्रण होना चाहिए । दाल, आटा, शक्कर, दियासलाई, मिट्टी का तेल इन सभी को प्रत्येक नागरिक को नाप-तौल कर मिलना चाहिए । इससे मनुष्य को नियंत्रिण की आदत सिखाई जा सकती है । मादक वस्तुओं पर तो इतना कड़ा नियंत्रण होना चाहिए कि कोई उसे बिना लाइसेंस के खरीद ही न सके ।

मादक द्रव्य

बीड़ी, सिगरेट, चाय, तम्बाकू, शराब, गाँजा, भाँग, चरस, अफीम में आप जो रुपया व्यय करते हैं, उससे व्यक्तिगत हानि तो होती ही हैं, घर वालों पर भी दूषित प्रभाव पड़ता है । जिस रुपये का उपयोग-रोटी, दाल, सब्जी, दूध या अन्न पौष्टिक पदार्थों के खरीदने में होता,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वह एक व्यक्ति की नशीली आदत में स्वाहा हो जाता है । मादक द्रव्यों की कीमत तथा उसका टैक्स इतना अधिक होना चाहिए कि साधारण व्यक्ति उधर जानें की कल्पना ही न करे ।

आपके घर का रुपया व्यर्थ मादक द्रव्यों में तो बरबाद नहीं होता ? कौन-कौन सिगरेट, पान इत्यादि का प्रयोग करता है ? कहीं आपके पुत्र चुपचाप आप से छुपकर तो सिगरेट का प्रयोग नहीं करते ? इन सभी प्रश्नों को खूब सोचिये-अपने आपको शैतान की इस माया से दूर रखिये ।

फिजूलखर्च व्यक्ति सारे समाज को दूषित करता है । उसकी देखा-देखी साधारण आय वाले भी उसका अनुकरण करते हैं । कर्ज में फँसकर सब कुछ नष्ट कर देते हैं ।

हिन्दू धर्म कहता है:- ''तुम अपनी जीवन-यात्रा के लिए आवश्यक वस्तुओं का उपयोग करो । व्यक्तिगत सुखवाद अनर्थ की जड़ है अनुचित, अप्राकृतिक, कृत्रिम, विलासप्रियता से बचो । मर्यादा का ध्यान रखो । विलासप्रिय न बनो, उपयोग में त्याग-भाव रखो, दूसरों के हित की अवहेलना न करो, किसी दूसरे के हिस्से की वस्तु का प्रयोग न कर डालो, समाज में सबको सुखी बनाने के लिये अपने ऊपर नियंत्रण रखो । दूसरे के हिस्से की वस्तु के उपभोग की लालसा न करते हुए, केवल अपनी मर्यादा के भीतर रहकर ही संतुष्ट रहना सुखी रहने का उपाय है ।'' हमारे पुराने धर्म में संयम नियंत्रण और आत्म-त्याग का बड़ा महत्व है । हम 'खाओ पिओ, मौज उड़ाओ' वाले आदर्शों से सर्वथा दूर रहते आये हैं ।

अपने ऊपर ही सबको आश्रित न रखिये वरन् घर के प्रत्येक व्यक्ति को कमाने योग्य तथा अपने पाँवों पर खड़ा होने योग्य बनाने में सतत प्रयत्नशील रहिए । स्त्रियों की शिक्षा भी आवश्यक है । उन्हें औद्योगिक शिक्षा दीजिए । कताई, बुनाई, स्वेटर-मोजे बुनना, काढ़ना, कपड़े सीना, चित्रकला, संगीत, अध्यापिका, नर्स, डॉक्टरी के कार्य सिखा कर अपने योग्य कमा सकने लायक बना दीजिए । निम्न वर्ग की बहनें खाली समय में कागज या मिट्टी के खिलौने बनाना, उन पर रंग करना, चीनी की रेवड़ियाँ बनाना, रस्सी बटना आदि काम कर सकती हैं । कुछ काम ऐसे हैं जो खाली समय में सभी वर्गों की बहनें सरलता से कर सकती हैं जैसे बरतनों पर कलई करना, तस्वीरों पर फ्रेम लगाना, किताबों की जिल्दसाजी करना, रुचि के अनुसार पापड़ और अचार और बड़ियाँ बनाना । रुचि और समय के अनुसार यदि हमारी बहनें इनमें से कोई भी काम अपने फालतू समय में करने लगें, तो मुझे विश्वास है कि वे अपने परिवार के न केवल खर्च कम करने में सहायक होंगी, बल्कि पारिवारिक सुख में भी चार-चाँद लगा सकेंगी । शरणार्थी भाइयों के लिए जो महिला-उद्योगशालाएँ खोली जा रही हैं, उनमें भी अनेक शिक्षित और परिश्रमी महिलाएँ कार्य पा सकती हैं ।

प्रतिदिन एक ही प्रकार का कार्य करते रहने से जीवन में नीरसता आ जाती है । इससे कार्य-कुशलता का ह्रास होता है । अत: चतुर गृहस्थ को भिन्न-भिन्न प्रकार से धन प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए ।

जहाँ तक हो सके संतान निग्रह कीजिए । घर के कुटुम्बियों की संख्या न बढ़ने दीजिए । संयम, ब्रह्मचर्य इत्यादि इसके अमोघ उपाय हैं । अधिक कुटुम्बी होने से कुछ थोड़ी ऊँची योग्यता वाले व्यक्तियों की शिक्षा, स्वास्थ्य, उन्नति में बाधा पड़ती है ।

कर्ज का चक्कर

कर्ज का स्वभाव

कर्ज वह मेहमान है, जो एक बार आकर जाने का नाम नहीं लेता । गरीबी कष्टकर है, किन्तु ऋण भयावह है । एक लेखक तो यहाँ तक कहते हैं कि कर्ज, मनुष्य के लिए ऐसा है जैसे चिड़िया के लिए साँप ।

टॉल्सटाय कहा करते थे, कर्ज देना मानो किसी भारी चीज को पहाड़ की चोटी से नीचे ढकेलना है, मगर उसका वसूल करना उस चीज को नीचे से चोटी तक चढ़ाना है । कर्ज सब से बुरी गरीबी है ।

लोग प्राय: यह अनुमान नहीं करते कि वे कितनी कठिनाइयाँ अपने ऊपर ले रहे हैं, जबकि दूसरों से ऋण लेते हैं । यह कोई महत्व की बात नहीं कि आप किस काम के लिए ऋण ले रहे हैं । चक्की के भारी पत्थर की तरह यह मनुष्य के गले में चारों ओर से फँसा रहता है । यह एक दु:स्वप्न की तरह मनुष्य को सताता रहता है । मनुष्य के पारिवारिक जीवन को क्लेशमय बना देता है और सदस्यों में कटुता उत्पन्न कर देता है । जब तक परिवार ऋण लेते हैं तब तक सदस्य साथ-साथ रहते हैं, जब अदायगी का समय आता है तो सब पृथक-पृथक हो जाते हैं । बड़े-बड़े परिवार टूट-टूट कर खंड-खंड हो जाते हैं ।

जितनी सुनिश्चित आमदनी है, वे भी एक बार ऋण के जाल में फँसकरे अपने आप को लंगड़ा-लूला-सा अनुभव करते हैं । वर्षों तक अदा नहीं कर पाते ।

प्राय: मध्यवर्ग के व्यक्तियों को मकान बनवाने का शौक लगता है । यह भी एक प्रकार का मोह है । मनुष्य सोचता है कि सबके पास मकान है । फिर मेरे पास मकान क्यों न हो ? वह यह नहीं सोचता कि मकान बनवाने के लिए मेरे पास समुचित पूँजी भी है या नहीं ? आधे-चौथाई पैसों से मकान बनना प्रारम्भ होता है । दो-तीन कमरे बन चुकने पर वह सोचता है, ''लोओ कुछ ले कर इस मकान को तो पूर बनवा लूँ । इसका कुछ हिस्सा किराये पर उठा दूँगा और उसी से कर्ज उतारता जाऊँगा,'' वह कुछ ऋण लेता है । वह भी समाप्त हो जाता है, फिर और ऋण लेता है । मकान बनते-बनते जब पूर्ण होता है तो वह कर्ज देने वालों का हो चुकता है । वह समझा करता है कि वह मेरा है, जबकि वास्तव में वह उन व्यक्तियों का होता है जिन्होंने उसे कर्ज दिया है । जब सूद अधिक हो जायगा, तो मकान असली मालिकों के पास

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चला जायगा या जब तक कर्ज उतरेगा, तब तक मकान वाले बूढ़े हो चुकेंगे और मकान आधा खण्डहर !

बड़े-बड़े व्यक्ति ऋणग्रस्त रहे हैं । कुछ लोग तो यह समझ बैठते हैं कि कर्ज और बड़प्पन का साथ है । वह बड़ा ही कैसा जिसके ऊपर ऋण न हो ? बड़े आदमियों के ऋण भी बड़े होते हैं क्योंकि लोग उनके बड़प्पन पर विश्वास करके आसानी से उन्हें कर्ज दे देते हैं । यही बड़े राष्ट्रों का हाल है । वे बड़े होते हैं । अत: उनकी साख होती है । उस साख के बल पर ही उन्हें कर्ज मिलता है, जो बाद में अदा नहीं होता । हाँ, ऋण-ग्रस्त राष्ट्रों का नाम दूर-दूर तक फैलता है । उनके नाम पुस्तकों में लिखे जाते हैं । लोग उन्हें ध्यान से देखते हैं । उनकी बारीकियाँ नोट करते हैं । उसे 'बड़ा आदमी' समझकर उसके स्वास्थ्य आदि के बारे में पूछते हैं । यदि वह कहीं विदेश जाता है तो उसकी वापसी भी दिलचस्पी के साथ देखी जाती है ।

कर्ज देने वाले को प्राय: कटु, कर्कश और कठोर स्वभाव व्यक्ति चित्रित किया जाता है । उसका चेहरा गम्भीर, क्रोध भरा दिखाया जाता है । इसके विपरीत ऋण लेने वाला उदार, खुले हाथ वाला, प्रसन्नचित्त दिखाया जाता है । उसके प्रति सब सहानुभूति प्रदर्शित करते हैं । लेकिन वह दया की बजाय घृणा का ही पात्र है । दंड का अधिकारी है । क्योंकि वह दूसरों की अर्जित पूँजी पर मजा करता है । वह समाज का एक शत्रु भी है, क्योंकि वह फिजूलखर्च है । उसे क्या अधिकार है कि दूसरे के धन पर ऐश करे ।

जब कर्ज माँगने वाला आकर दरवाजा खटखटाता है, तो ऋणी का मुख म्लान पड़ जाता है । उसके मित्रों का प्रेम ठण्डा पड़ जाता है और उसके सम्बन्धी धीरे-धीरे उससे पीछा छुड़ाने की तरकीबें सोचते हैं । वह बाहर जाने में शर्माता है और घर पर भी शान्ति नहीं पाता । वह कर्कश, कठोर, क्रोधी और आवेशमय बन जाता है । अपनी पत्नी और बच्चों से जरा-जरा-सी बात पर लड़ता है और इस प्रकार उसका गृह सौख्य नष्ट हो जाता है । समाज में सम्मानित जीवन व्यतीत करने के लिए उसे धन चाहिए, लेकिन उसके सिर पर तो कर्ज की भारी गठरी रखी रहती है जो उसे हिलने-डुलने नहीं देती । वह निराशा और चिन्ता की केंचुली में निवास करता है । बाहर से चाहे न कहे, मगर लोग मन ही मन उसे घृणा की दृष्टि से देखते हैं । वह सभी की नजरों से गिर जाता है । स्वयं अपनी भी नजरों से तिरस्कृत और अपमानित, लांछित और आत्मसम्मान च्युत हो जाता है । कर्ज वालों की डाँट-डपट के सम्मुख उसे अनेक झूठे बहाने बनाने पड़ते हैं । उनकी गन्दी घुड़कियाँ सहनी पड़ती हैं । वह स्वयं अपना स्वामी नहीं रह जाता, कर्जेवाले उसके मालिक बन जाते हैं । कर्ज की नकेल वह जिधर खींचते हैं, उधर को ही मुड़ जाना पड़ता है । उसका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रह जाता । ऋण नैतिक पतन और असंयम का द्योतक है । अनेक व्यक्ति इसी कारण आत्महत्याएँ करते देखे गए हैं ।

आपको उस शान-शौकत, ऊँचे स्टाइल से रहने का क्या अधिकार है, जिसे आप अपनी ईमानदरी की कमाई से सहन नहीं कर सकते ? आप को अगले महीने के रुपये अभी से उधार के रूप में खाकर समाप्त कर लेने का क्या अधिकार है ? या भविष्य में आने वाली सम्भावित आय को अभी से खर्च कर देने का क्या अधिकार है ? वह विलास व कीमती वस्त्र या महँगे भोजन किस अर्थ के, जो आपको कल के लिए ऋण की जंजीर में बाँध दें ।

जो लोग भविष्य में अदा कर देने के वादे पर कर्ज ले लेते हैं, वे भारी मूर्खता कर बैठते हैं ।

अनिश्चित है । रुपया जैसी वस्तु आते-आते क्षण भर में भाप की तरह उड़ जाने वाली है । जब तक आप भविष्य के धन को पाने की अवस्था में होंगे, तब तक और सैकड़ों नए उत्तरदायित्व, नए खर्चे आपके सिर पर आ खड़े होंगे । कर्ज की अदायगी की योजनाएँ सेंभर के फल की तरह झूठी होती हैं । तोता सेंभर के फल में कुछ पाने की इच्छा से चोंच मारता है, पर उसके हाथ रुई मात्र आती है । वह अतृप्त ही रह जाता है । उसी प्रकार कर्ज की अदायगी की मधुर कल्पनाओं में रस लेने वाला दु:खी और अतृप्त ही रहता है । उसे सूद देकर मूल रकम से कहीं अधिक लौटाना पड़ता है और जब यह अदायगी हो चुकती है तो उसकी अवस्था ऋण लेने की अवस्था से गिरी होती है । उसमें फिर उठने की कोई सम्भावना नहीं रह जाती ।

ऋण में रहने की तो एक आदत होती है, कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जो कीच की तरह ऋण में रहते हुए भी बुरा नहीं समझते । वे कर्ज को बुरा नहीं समझते, न उसकी अदायगी की ही कोई चिन्ता करते हैं । लेकिन यह मामूली कर्ज बढ़ता जाता है, और अन्त में कमर तोड़ डालता है, उनके दिवाले निकले हैं उनके कर्जों का सूत्रपात छोटी-छोटी रकमों से ही हुआ था ।

कर्ज की आदत, चाहे किसी में क्यों न हो, एक घातक आदत है । अत: जब कभी उधार लेने को जी चाहे, तो बड़े सावधान रहें । ऋण से बड़ा दासत्व नहीं ।

फिजूलखर्ची की मूर्खता

ऋण लेकर जीना अथवा प्रतिमास पूरी की पूरी आय व्यय कर देना एक भारी मूर्खता है । अर्थ एक प्रकार की संचित शक्ति है उस एकत्रित शक्ति को साधारण या अल्प- संतोष देने वाली क्षणिक, आवेशपूर्ण, जिह्वा या कामेन्द्रियों के स्वाद के लिए अविवेक से खर्च देना, अपने आपको कमजोर बना लेना है । वेद में अपनी सीमित आय में ही निर्वाह करने का बार-बार आदेश दिया गया है, देखिए-

"अवृणो भवामि"

-अथर्व० ६।१।१७।१

अर्थात् हे दुनिया के लोगो । किसी के ऋणी मत रहो । अपनी स्थिति से बाहर खर्च न करो ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"अनृणाः स्याम"

-यजुर्वेद ।३२

अर्थात्- खर्चीले व कर्जदार मत बनो । ऐसे काम मत करो, ऐसे व्यर्थ कार्य मत करो कि कर्ज लेना पड़े ।

"सर्वान् यथो अनृणा आक्षिपेम"

-यजुर्वेद ।३२

अर्थात्-जो ऋण से मुक्त है, उसी की उन्नति होती है । ऋण-कार्य ग्रस्त व्यक्ति मन ही मन एक गुप्त अव्यक्त भार से दिन-दिन घुलता जाता है । समय से पूर्व ही मृत्यु को प्राप्त होता है । अतः प्रत्येक पैसा व्यय करने से पहले बजट बनाइये, खूब सोचिए कि क्या आप किसी प्रकार बिना उस खर्च के भी काम चला सकते हैं । क्या वह आपकी हैसियत और आर्थिक स्थिति के अनुकूल भी है ? कहीं वह आपको भविष्य में ऋणग्रस्त तो नहीं बना देगा ? आप कहीं आवेश, उत्तेजना या भावुकता में आकर अपनी मर्यादा से बाहर का व्यय तो हाथ में नहीं उठा रहे हैं ? जितने व्यक्ति आपके परिवार में हैं, उनकी उन्नति, स्वास्थ्य, शिक्षा, विवाह, मृत्यु इत्यादि के लिए क्या आपके पास एकत्रित धन है ? समाज में आज जो दिखावे और थोथी शान की प्रतिद्वन्द्विता चल रही है, कहीं उसके वशीभूत होकर तो आप अनाप-शनाप व्यय नहीं कर रहे हैं ? जिन-जिन वस्तुओं, पदार्थों आदि की आपको तत्काल आवश्यकता नहीं है, उन्हें व्यर्थ ही इकट्ठा करने के लिए तो आप व्यय नहीं कर रहे हैं ।

मनुष्य ऋणग्रस्त कब बनता है ?

गरीबों को दिन भर मजदूरी करने के बाद ५०) रुपये मिलते हैं जिसमें भी खाने वाले कई होते हैं । वे उसी में रहना-सहना, मकान का भाड़ा और भोजन कपड़े का व्यय निकालते हैं । ग्रामीण कम आय में पूरी की पूरी जिन्दगी निकाल देते हैं । उनकी भी विवाह-शादियाँ, लेन-देन होते हैं, पर उनमें दिखावे की थोथी शान नहीं होती, वे अन्दर से खोखले रहकर ऊँची नाक नहीं रखना चाहते । भूखे पेट रह कर उजले वस्त्र नहीं पहनना चाहते । नतीजा यह है कि वे पेट भर रूखी-सूखी खाते हैं और मीठी नींद सोते हैं । उनके मन में अक्षय शान्ति बनी रहती है और दीर्घजीवन के सुख और आनन्द लूटते हैं । आराम से रहते हैं ।

फिजूलखर्ची का जिम्मेदार कौन है ?

कुछ व्यक्ति कहते हैं कि फिजूलखर्ची समाज कराता है । हम क्या करें ? समाज आर्थिक मूल्यों को ही मान देता है । यदि हम बन-ठनकर समाज में दिखावा नहीं करेंगे, तो समाज में हमारी कौन पूछ होगी, दस भले आदमियों में हम कैसे बैठेंगे ? खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है । हम समाज का जैसा रुख देखते हैं, वैसा ही करते हैं । ठाठ-बाट सफेदपोशी, फैशनपरस्ती हम समाज में यश और नामवरी प्राप्त करने के लिए करते हैं । हमारी फिजूलखर्ची का उत्तरदायित्व हमारे समाज का है । हमारा कोई कसूर नहीं ।

ये तर्क थोथे और सारहीन हैं । फिजूलखर्ची तो एक व्यक्तिगत चीज है । इस गलती का जिम्मेदार व्यक्ति है, समाज नहीं । प्रतिष्ठा या यश रूप से या बाहरी टीपटाप से खरीदी जाने वाली कोई चीज नहीं है । नामवरी केवल सफेदपोशी या फैशन मात्र से नहीं होती । प्रसिद्ध मनुष्य की योग्यता और व्यक्तिगत श्रेष्ठता, सद्गुणों के विकास और सच्चरित्रता पर निर्भर है । वैभव और सम्पन्नता मात्र से कोई यश का अधिकारी नहीं बना । बड़े-बड़े रुपये पैसे वाले पूँजीपति धन कुबेर पड़े हुए हैं, जिनका कोई आदर से नाम तक नहीं लेता, दूसरी ओर बिना पैसे वाले दार्शनिक, राजनीतिज्ञ, नेता, लेखक जनता के हृदयों पर सदा राज्य करते हैं । व्यक्ति यदि अपने संकल्पों पर दृढ़ है और चरित्र का मजबूत है, तो समाज को बदल सकता है । अपने रहन-सहन, वस्त्र, वेशभूषा शिक्षा और जीवन क्रम खुद निर्धारित कर सकता है । व्यक्ति ही फैशन और दिखावे की प्रतियोगिता में फँसकर ऋण में फँसता है । दूसरों के ऊपर अहं का मायाचक्र चलाता है । झूठी शान गाँठता है । कसूर व्यक्ति का है । आखिर, क्यों व्यक्ति मिथ्या प्रदर्शन का यह थोथा नाटक करता है । खुद फिजूलखर्ची की आदत डालकर व्यक्ति ही समाज के अन्य सदस्यों को टीप-टाप, फैशन और मिथ्या प्रदर्शन में डालता है । व्यक्ति से समाज बनता है । यदि समाज का प्रत्येक व्यक्ति फिजूलखर्ची की गन्दी आदतों से बचाता रहे, तो एक दिन सारा समाज फैशन से मुक्त हो सकता है । व्यक्ति को सुधारने से ही समाज सुधर सकता है । अतः यदि हममें से प्रत्येक व्यक्ति अपनी फिजूलखर्ची की आदतों से मुक्त रहने का प्रयत्न करे तो पूरा समाज इस फैशनपरस्ती से मुक्त हो सकता है ।

इस सम्बन्ध में पुरुष की अपेक्षा हमारी पढ़ी-लिखी बहिनें अधिक अपराधिनी हैं, कारण आज की सभ्य और शिक्षित नारियों में फैशनपरस्ती अपनी चरम सीमा पर पहुँची हुई है । वे पाश्चात्य सभ्यता के अन्धानुकरण में बेतरह डूबी हुई हैं । उनके वस्त्र, उनकी वेशभूषा, बनाव शृंगार, फैशनपरस्ती उन्हें रंग-बिरंगी तितलियाँ बना रहे हैं । वे सभा-सोसाइटी, कालेज और स्कूलों में अधिक से अधिक चटकीले-मटकीले, उत्तेजक, अश्लील रूप में प्रकट होती हैं और पुरुष की वासना को उद्दीप्त करने की कुचेष्टाएँ करती हैं । खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है । एक फैशन की पुतली को देखकर दूसरी उसी का अन्धानुकरण करती है । पत्र-पत्रिकाओं में नए फैशनों के विविध आकर्षक चित्र रोजाना निकलते रहते हैं । सिनेमा की अभिनेत्रियाँ फैशन का ही पाठ पढ़ा रही हैं । उन्हीं के अनुकरण पर आज नारियों में बुरी तरह फैशनपरस्ती बढ़ रही है । यदि माताएँ अपने-अपने घर की पढ़ी-लिखी कन्याओं को फैशन, बनाव-शृंगार और फिजूल खर्चों के प्रति सावधान कर दें और स्वयं फैशनपरस्ती से दूर रहें तो निश्चय ही समाज इस दोष से मुक्त हो सकता है । एक माता को सुधारने का अर्थ एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पूरे परिवार को सुधारना है । कुछ घरों में खर्च की व्यवस्था का उत्तरदायित्व भी नारियों पर ही रहता है । यदि वे केवल नितान्त आवश्यक जरूरतों पर ही व्यय करना सीखें, तो परिवार के सभी सदस्यों पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ेगा और वे फिजूलखर्ची से बचेंगे

सही बजट बनाइये

प्रत्येक परिवार के लिए यह उचित है कि वह अपनी आय और परिवार के सदस्यों के हिसाब से कुछ बचत अवश्य करे । बचत से मनुष्य में अज्ञात आपत्तियों को सहने की सामर्थ्य प्राप्त होती है । मनुष्य बुढ़ापे, बीमारी या अंग-भंग हो जाने पर कमाने के लिए अयोग्य हो जाता है, बेरोजगारी, व्यापार में घाटा या मुख्य कमाने वाले के मर जाने पर आर्थिक संकट से घिर जाता है । बचत इन सब में हमारी सहायता करती है । बच्चों की शिक्षा, विवाह, यात्रा तथा सामाजिक रीति-रिवाजों के लिए संचित धन की आवश्यकता होती है । फिजूलखर्च लोग वृद्धावस्था में दाने-दाने को मुहताज हो जाते हैं और दूसरों के सामने हाथ फैलाते रहते हैं । मृत्यु के बाद फिजूलखर्चों के बच्चे दाने-दाने को मुहताज हो जाते हैं । फिजूलखर्चों को सामाजिक सम्मान नहीं मिलता, उसकी आय में वृद्धि नहीं होती, कभी कोई पूँजी इकट्ठी नहीं कर पाता । बचत से देश व समाज को भी लाभ पहुँचता है । बचत से देश में पूँजी की वृद्धि होती है और देश का आर्थिक विकास होता है । बचत से आय बढ़ती है और रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठता है । धीरे-धीरे बचत करने वाले की कार्यक्षमता में भी वृद्धि हो जाती है । अतः फिजूलखर्चों को छोड़कर बजट बनाकर ही खर्च करना चाहिए ।

सबसे पहले भोजन पर व्यय कीजिये । वे सभी आवश्यक वस्तुएँ जैसे अनाज, सब्जी, घी, तेल, गुड़, चीनी, मसाले आदि खरीद लीजिए । प्रकाश और लकड़ी, ईंधन आदि का प्रबन्ध कीजिए । फिर वस्त्रों और मकान के लिए व्यय कीजिये । शिक्षा, स्वास्थ्य और मनोरंजन की मद में खर्च कीजिए । शेष बचाइये । आपकी आर्थिक उन्नति के लिए यह आवश्यक है । व्यय और बचत दोनों में विवेकपूर्ण संतुलन हो । यदि मनुष्य विवेकपूर्ण नीति से पौष्टिक पदार्थों, कार्यक्षमतावर्द्धक वस्त्रों, अच्छे मकानों, बच्चों की शिक्षा, अच्छी पुस्तकों पर व्यय करता है तो स्वयं उसकी तथा उसके परिवर वालों की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है । इससे व्यक्ति, परिवार और समाज सुखी व सम्पन्न बनता है ।

यदि मनुष्य विलासिता की वस्तुओं पर अधिक व्यय कर देता है जैसे सिनेमा, ताश, मोटरकार, रेडियो, फैशन, दिखावा आदि, तब उसे दूध, दही, घी तथा अच्छी भोज्य सामग्री का सुख प्राप्त नहीं हो पाता । यदि किसी व्यक्ति के गलत उपयोग से स्वयं उसको या समाज को हानि की सम्भावना है, तब इस स्थिति में समाज अथवा सरकार को अवश्य हस्तक्षेप करना चाहिए । यदि एक उपभोक्ता दूसरे उपभोक्ताओं के सामने व्यय का एक अच्छा उदाहरण उपस्थित कर सकता है, तो वह अनुकरणीय है । विलासिता के उपभोग से क्रियाशीलता और कार्यक्षमता में कोई वृद्धि नहीं होती । आज देश की जो पूँजी विलासिताओं की वस्तुओं में व्यय की जा रही है, वह मनुष्य की अनिवार्यताओं और आरामदायक वस्तुओं के उत्पादन में व्यय होनी चाहिए । विलासिताएँ, सामाजिक दृष्टिकोण से हानिकारक और अवांछनीय हैं । यह वर्ग-विषमता फैलाती हैं । अमीर और गरीब के बीच द्वेष, जलन तथा घृणा फैलती है और पूरे समाज में द्वेष फैल जाता है । धनी व्यक्तियों को विलासिता की वस्तुओं का उपयोग करते देखकर गरीब भी उनकी अंधी नकल करने लगते हैं, इस अनुकरण का भयंकर परिणाम होता है । विलासिताओं के उपयोग से आदमी आलसी, विलासी और चरित्रहीन बन जाते हैं । उसका स्वास्थ्य, सौन्दर्य और यौवन नष्ट हो जाता है । उपभोक्ता व्यभिचारी और चरित्रहीन हो जाता है ।

स्मरण रखिए , समाज में जो सम्मान हमें प्राप्त होता है, वह केवल ऊपरी ठाठ-बाट से नहीं, प्रत्युत ईमानदारी, सज्जनता और व्यवस्थित जीवन से होता है । इन्द्रियों को विलासिता की ओर आकृष्ट करने से कौन बड़ा बना है ? उलटे विलासी जीवन से स्वार्थपरता, बेईमानी, शोषण, निष्ठुरता, लोभ, अनुदारता, आलस्य और अज्ञान फैलता है । फिजूलखर्ची का घुन बड़े-बड़े परिवारों और अमीरों को धीरे-धीरे नष्ट कर देता है । एक को टीपटाप तथा फैशनपरस्त देखकर अन्य भी इसी दिशा में उसका अनुकरण करते हैं और समाज में बुराई का विष फैलता है । हमें व्यवस्थित जीवन का ही अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए । आदर्श जीवन जीने में नेतृत्व करना चाहिए ।

जीवन में जरूरतें भी बहुत हैं और शायद हर एक ही आवश्यक भी हैं, लेकिन हमें अपने तथा परिवार के लिए अधिक उपयोगिता और कम उपयोगिता को ध्यान में रखकर पहले बेहद जरूरी वस्तुओं पर ही व्यय करना चाहिए ।

पैसा पास रखने से फिजूल की चीजों में व्यय करने को जी चाहता है । पास न रखने से इच्छाएँ दबी रहती हैं, । मन संयत रहता है और विवेकशीलता अधिक काम करती है । इसलिए या तो पैसे को ठोस और जीवनोपयोगी वस्तुओं में बदल दीजिए । अनाज इत्यादि वर्षभर के लिए रख लीजिए अथवा बीमा, बैंक या नेशनल सेविंग सार्टीफिकेट में लगा दीजिए । आँखों से दूर रहने पर आपकी फिजूलखर्ची की आदत बहुत कुछ कम हो जायेगी । मन से विलासिता और झूठी शौकीनी के उथले विचार निकाल देने पर मनुष्य का विवेक जाग्रत होता है और वह फैशनपरस्ती की व्याधि से बचता है ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नकद सौदा लीजिये

ऋणग्रस्त होने से बचने का एक अनुभवपूर्ण उपाय है- नकद सौदा खरीदना । यदि आप जीवन में यह नियम बना लें कि हम जो कुछ लेंगे नकद लेंगे, उधार नहीं लायेंगे, हाथ में पैसा होगा, तभी खरीदेंगे अन्यथा बिना उस वस्तु के काम चलायेंगे, तो आप ऋण से मुक्त रहेंगे । अनेक लोग इसीलिए बरबाद हुए हैं कि वे अनाप-शनाप उधार लेते रहे ।

चूँकि उधार एकदम मिल जाता है, हम प्रायः ऐसी वस्तुएँ भी ले लेते हैं जिनकी हमें आवश्यकता नहीं होती, या जो हमें अनायास ही लुभा लेती हैं । दुकानदार तो दुकान में से माल निकालने को उत्सुक रहते हैं । आपकी तनिक-सी दिलचस्पी देखते ही तुरन्त दे देंगे । पैसे आपसे वसूल कर ही लेंगे । यदि नहीं देंगे तो मुकदमा चलेगा, बदनामी होगी, पर उनका रुपया मारा नहीं जा सकता । आपको देना ही होगा । उनकी चीज बिक जायगी ।

प्रो० स्टुअर्ट केञ्जी अपनी पुस्तक 'आपका जीवन' में लिखते हैं-''रुपया बचाने का एक निर्दोष और सरल उपाय यह था कि हमने उधार लेना बिल्कुल बन्द कर दिया । हमारे पास दो स्टोर ऐसी वस्तुओं से भर गये थे, जिन्हें दुकानदारों ने हमारी दिलचस्पी से अनुचित लाभ उठाकर बेच दिया था । हमें उस समय तो यह प्रतीत न हुआ कि रुपया व्यय हो रहा है, अतः हम खुले हाथ से खर्च करते रहे । जब पत्नी ने विसाती की दुकान पर नकद सौदा लेना आरम्भ किया, तो उसने उपयोगी चीजों को खरीदा, शौक और मजेदारी की चीजों को छोड़ दिया । केवल दुकानदार को टेलीफोन पर चीजें उधार मँगाने की आदत छोड़कर हम रुपया बचाने लगे ।''

कुछ लोग व्यापारियों द्वारा दिये गये कमीशन या 'गिरे हुए भाव' के चक्कर में फँसकर वस्तुएँ खरीद लाते हैं । कभी-कभी दुकानदार कैलेन्डर, चित्र विज्ञापन या छोटी-छोटी वस्तुएँ उपहार में देकर ग्राहकों को पटाते हैं । रुपया एक माह पश्चात् देने का प्रलोभन देते हैं । चीजों का मूल्य अधिक रखकर आधा दाम का विज्ञापन करते हैं, माल बेचने वालों को बड़े कमीशन दिये जाते हैं । अतः आगे देने के प्रलोभन में बड़े अनावश्यक खर्चों में पड़ना उचित नहीं ।

किश्तों में वस्तु खरीदना

जो चीज किश्तों में ली जाती हैं, उसका मूल्य नकद से अधिक देना होता है । रेडियो, सिलाई की मशीनें, शिक्षा की कोर्स-पुस्तकें इत्यादि जब किश्तों से लिये जाते हैं, तो उनमें ३० प्रतिशत अधिक रुपया व्यय होता है । आप ऐसी दुकानों का एहसान मानते हैं, पर इस एहसान का मूल्य प्रायः बहुत होता है । एक खास बात भी है, कि जब तक आप वस्तु का पूरा मूल्य नहीं चुका देते, तब तक वही फर्म या दुकान उस वस्तु की मालिक भी होती है । यदि किश्त न दी जाय, तो वह वस्तु पुनः आपसे ले ली जाती है और आपका सब रुपया मार लिया जाता है ।

यदि आप कोई महँगी वस्तु खरीदना चाहते हैं तो प्रतिमास बजट में कुछ रुपया उसके लिए बचाते जाइए । नकद चीज सस्ती मिलेगी और आपको अधिक मजा आयगा । किश्त देने वाले अपने रुपये का करारा सूद और चार्ज करते हैं । उन्हें ऐसा करना पड़ता है क्योंकि उन्हें उसी में से बचाकर अपना खर्चा निकालना है । अमेरिका में यह पद्धति बहुत साधारण है । थोड़ा-सा रुपया देकर लोग चीज काम में लाने लगते हैं, प्रतिमास कुछ देते हैं, प्रायः चीज नष्ट हो जाती है पर उसका कर्ज चला करता है । यह अपनी आवश्यकताएँ न जानने, प्रलोभनों में फँसने और अपनी चादर के अनुसार पाँव न पसारने के कारण होता है ।

पर्चा लिखकर उधार वस्तु लेना

आप होटल या दुकानदार के नाम एक चिट पर चीजें लिख देते हैं और तुरन्त वे आपके पास आ जाती हैं । आपके मित्र आपके साथ हँसी-खुशी खा लेते हैं । उस समय आपको यह ज्ञात नहीं होता कि कितने का बिल बना । पान, सिगरेट, चाय, मिठाई इत्यादि में व्यय होते-होते होटलों का यह खर्चा २५-३०) रुपये तक पहुँचता है । अनेक कालेज के विद्यार्थी, अध्यापक, क्लर्क लोग कैन्टीन से समान मँगाते रहते हैं, अधिक कर्ज होने पर अपना मुँह दिखाते शरमाते हैं ।

उधार का पर्चा फिजूलखर्ची का एक सांस्कृतिक उपाय है । आप उधार लेंगे, थोड़ी देर मजा लेंगे, बाद में पछतायेंगे । क्लबों के कर्ज आदमी को बड़ा परेशान करते हैं । बिजलीघर में बिजली के कर्ज, पानी के व्यय, दुकानों के कर्ज निरन्तर वृद्धि पर रहते हैं । न पर्चा लिखकर उधार चीजें मँगाइए, न किसी दूसरे को खुश करने के लिए अपने को कर्ज में डालिए । यदि आप चीज लेते हैं, तो तुरन्त दाम देने की आदत बना लीजिये ।

अपनी साख बना लीजिये

आपके लिए बाजार की साख बड़ी महत्वपूर्ण है । जिस प्रकार व्यापारियों के लिये उसी प्रकार आपके लिये साख ही सब कुछ है । जब साख नहीं रहती, तो कुछ नहीं रहता, न कुछ भी कभी उधार मिलता है । जब जरूरत ही आ पड़े तो संकट के समय भी कोई कुछ नहीं देता । किसी भी व्यापारिक संस्था, दुकान या फर्म या व्यक्ति को अपनी साख का सबसे पहले ध्यान रखना चाहिए ।

यदि आप चीजें नकद लेने के आदी हैं तो प्रत्येक जगह हर दुकानदार आपको चीज देने को प्रस्तुत रहेगा । आपकी अच्छी साख बनी रहेगी । तभी उधार लीजिए, जब कुछ भी न हो सके । साथ ही यह भी सोच लीजिये कि आगे जाकर यह कर्ज आप कैसे चुकायेंगे ?

एक स्पेनिश कहावत है:-

''यदि आप अपने सब कर्जों को अदा कर सकते हैं तो आपको वास्तविक आर्थिक अवस्था का ज्ञान हो जायगा ।''

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तीन स्थानों पर दाम मालूम कीजिये

यदि कोई व्यापारिक संस्था कोई माल लेना चाहती है तो वह कई व्यक्तियों से भाव मालूम करती है, सोचती विचारती है, तब माल खरीदती है । इसी प्रकार आप जब वस्तु खरीदने निकलें तो अवश्य तीन-चार दुकानों पर मूल्य पूछ लीजिए । इस गुर से आप वस्तुओं के अधिक दाम देने से बच जायेंगे । वस्तु खरीदते समय मूल्य, किस्म, गारण्टी, मजबूती से और बेचने वाले की ईमानदारी का विशेष ध्यान रखिये । वास्तविक दामों से यदि आप अधिक पैसा देते हैं, तो उसकी विशेषता अवश्य मालूम कर लीजिये ।

यह कीजिये ताकि आपको तंगी न रहे

हिन्दी के साहित्यकार महावीर प्रसार द्विवेदी अपनी साहित्य सेवाओं के कारण एक अमर रत्न हो गये हैं, पर वे जीवन-विद्या के भी महापंडित और महान् आचार्य थे । द्विवेदी जी का जीवन हिन्दी सेवा के लिए आदर्श था । उसके लिये उन्होंने बड़े से बड़े त्याग किये, आर्थिक परेशानियों का डटकर मुकाबला किया, मितव्ययिता का उच्चतम आदर्श प्रस्तुत किया और अन्त तक संघर्ष करते रहे । उनकी आपबीती प्रेरक और स्फूर्तिदायक है । श्री बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा लिखित उनके जीवन चरित्र से ये पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं-

''मैं एक देहाती का एकमात्र आत्मज हूँ, जिसका मासिक वेतन सिर्फ १० रुपया था । अपने गाँव के देहाती मदरसे में थोड़ी सी उर्दू और घर पर थोड़ी-सी संस्कृत पढ़ कर १६ वर्ष की उम्र में ३६ मील दूर रायबरेली के जिले में अँग्रेजी पढ़ने गया । आटा, दाल घर से पीठ पर लाद कर ले जाता था । दो आने महीना फीस देता था दाल ही में आटे के पेड़े या टिकियाएँ पकाकर पेट पूजा करता था । रोटी बनाना तब मुझे आता नहीं था । संस्कृत भाषा उस समय उस स्कूल में वैसी ही अछूती समझी गयी थी, जैसे मद्रास में नम्बूदरी ब्राह्मणों में वहाँ के शूद्र जाति समझी जाती है । विवश होकर अँग्रेजी के साथ फारसी पढ़ता था । एक वर्ष वहाँ किसी तरह कटा । फिर पुरवा, फतेहपुर और उन्नाव के स्कूलों में चार वर्ष काटे । कौटुम्बिक दुरावस्था के कारण मैं उसे आगे न बढ़ा सका । मेरी स्कूली शिक्षा वहीं समाप्त हो गयी ।

एक साल अजमेर में १५ रुपये महीना पर नौकरी करके पिता के पास बम्बई पहुँचा और तार का काम सीख कर जी०आई० पी० रेलवे में २० रुपये महीना पर तार बाबू बना ।''

लेकिन वहाँ अपने मातहतों पर अत्याचार करने के स्थान पर उन्होंने त्यागपत्र दे दिया और २० रुपये माह पर 'सरस्वती' की सेवा तथा तीन रुपया डाक खर्च कुल २३ पर संतुष्ट रहने का निश्चय किया । ''मैंने सोचा, किसी समय तो मुझे महीने में १५ रु० ही मिलते थे, २३ रु० तो उसके ड्योढ़े से भी अधिक हैं, इतनी आमदनी मुझ देहाती के लिये कम नहीं ।''

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के शब्दों में ''द्विवेदी जी मितव्ययिता के आदर्श थे । एकबार उन्हें मेरी फिजूलखर्ची का पता चल गया, तो उन्होंने डाँट-फटकार बताई थी और कहा था-

''मैं तो अपने तेईस रुपये मासिक वेतन में से भी चार रुपये प्रतिमास बचा लेता था और आप १७५ रुपये में से एक पैसा भी नहीं बचा पाते । आखिर हमें बताइये तो कि आप किस चीज में पैसे उड़ा देते हैं, लज्जापूर्वक हमें अपनी अव्यवस्था स्वीकार करनी पड़ी । हमारे इस प्रमाद से द्विवेदी जी बहुत असंतुष्ट हुए । इस विषय में द्विवेदी जी का मूल-मंत्र यह श्लोक था, जो सबके लिये आदर्श और प्रेरक हैं:-

''इद मेव हि पाण्डित्यमियमेव विदग्धता
अयमेव परो धर्मो यदायान्नाधिको व्यय: ।''

अर्थात्-''आमदनी से ज्यादा खर्च न करने में ही सब से बड़ी पंडिताई, चतुराई और धर्मात्मापन है ।''

आर्थिक सफलता के गुरु

द्विवेदी जी के हिसाब-किताब रखने में इतने नियमबद्ध थे कि कोई भी व्यक्ति उनसे पूछ सकता था कि पिछले बीस वर्षों में उन्होंने कितना पैसा पोस्टेज, भोजन, सफर, साग, आटा, दाल पर व्यय किया था ।

दैनिक व्यय का वे पैसे-पैसे का हिसाब रखते थे, पर इससे कोई यह अनुमान लगाये कि द्विवेदी जी कंजूस थे, तो यह उसकी बड़ी भारी भूल होगी ।

द्विवेदी जी अत्यन्त उदार थे । उन्होंने अपने कठिन परिश्रम की अधिकांश कमाई हिन्दू विश्वविद्यालय की छात्रवृत्तियों के लिये अर्पित कर दी थी । उन्होंने ६४०० रु० हिन्दू विश्वविद्यालय की छात्रवृत्तियों को दिए थे ।

एक प्राइवेट पत्र में उन्होंने अपनी आमदनी और खर्च के विषय में इस प्रकार लिखा था-

''१७ वर्ष की उम्र में मैंने रेलवे में नौकरी शुरू की, सिर्फ १५ रुपये मासिक पर । २१ वर्ष बाद जब छोड़ी तब सिर्फ १५० रुपये और पर्सनल अलाउन्स ५० रु० कुल दो सौ रुपये मिलते थे ।

१८ वर्षों तक 'सरस्वती' का काम किया । छोड़ने पर १५० रु० मिलते थे । तब से सिर्फ ५० रु० मासिक वेतन मिला । कभी एक पैसा कभी किसी से हराम का नहीं लिया । मेरा रहन-सहन सादा और मितव्ययी रहा है । कभी व्यसन नहीं किया ।''

मितव्यय, संयम, व्यवस्था, नियमबद्धता कठोर हिसाब-किताब के द्वारा जो धन कमाया, उसे द्विवेदी जी ने किस प्रकार व्यय किया उन्हीं के शब्दों में सुनिये-

''संयम और मितव्यय से मैंने जो कुछ बचाया, वह सब प्राय: दान कर दिया, जैसे कई लड़कों को अपने खर्चे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से पढ़ा दिया । उनमें से कुछ एक तो एम० ए० पास भी हैं । रिश्ते में अपनी तीन भान्जियों की शादियाँ और गौने किये । गैरों की भी दो लड़कियाँ ब्याहीं । गाँव के कई गरीब घरों की लड़कियों की शादियों में सहायता की । कई विधवाओं का पालन किया । पिता की इच्छा पूर्ण की । दान-पुण्य, मकान और कुँआ इत्यादि का निर्माण कराया । कानपुर का पुस्तक संग्रह नागरी प्रचारिणी सभा को पहले ही दे चुका था । तीन गाड़ी पुस्तकें वहाँ और भेजीं ।

सार्वजनिक सेवा, त्याग और बलिदान का इससे ऊँचा और कौन-सा उदाहरण हो सकता है यदि मनुष्य अपने मन पर संयम और आदतों पर आवश्यकताओं को क़ाबू में रखे, तो थोड़े रुपये में ही स्वस्थ, तृप्त और आनन्दित रह सकता है । अत: द्विवेदी जी की सफलता के रहस्यों को याद रखिए मितव्यय, संयम, व्यवस्था और कठोर हिसाब-किताब, इसमें भूल कर न करें ।

याद रखिए बड़ों का रहस्य

आपने अमेरिका के सोलहवें प्रेसीडेन्ट अब्राहम लिंकन का नाम सुना होगा । वे शासन कुशलता नीति तथा बुद्धि के लिए प्रसिद्ध आज भी हैं । लेकिन लिंकन स्वयं अपना कार्य करने और फिजूलखर्ची से बचने के नियम का पालन करते थे । घर की सफाई, वस्त्रों की धुलाई से लेकर अपने जूतों पर पालिश करने तक का कार्य वे स्वयं ही अपने हाथों किया करते थे ।

एक दिन की बात है । लिंकन अपना दैनिक सेवा-कार्य कर रहे थे । स्नान करने से पूर्व वे सफाई और अन्य कार्य को पूर्ण कर चुके थे । जूतों पर पालिश कर रहे थे कि एक सिनेटर वहाँ आ पहुँचा । लिंकन जैसे विख्यात व्यक्ति को जूते पर पालिश करते देख वह चकित, विस्मित हो गया ।

''मिस्टर प्रेसीडेन्ट, आपके लिये यह उचित नहीं कि अपने जूतों पर आप ही पालिश करें ।''

लिंकन बिना शरमाये अपना कार्य करते रहे ।

फिर बड़ी शान्ति से वे बोले ''तब क्या मेरे लिये यह उचित होगा कि दूसरों के जूतों पर पालिश करूँ ?''

उत्तर अजीब और सिनेटर चुप ।

याद रखिए, बड़ों का रहस्य । लिंकन इतने बड़े देश के प्रतिष्ठित अध्यक्ष होते हुए भी अपना काम कर लेने में पीछे नहीं हटते थे । छोटे से छोटे काम करने में लजाते नहीं थे ।

वे प्राय: कह दिया करते थे, ''शर्म आनी चाहिए झूठ बोलने, ठगी करने, काला बाजार या व्यभिचार में, किसी बुरा काम करने में । लेकिन अपने निजी कार्यों को खुद करने में क्या हुआ, कैसी शर्म ? बड़प्पन की निशानी छोटे कामों से बचना नहीं, बल्कि उन्हें भी पूरे उत्साह और रुचि से करने में है । ऐसा सच्चा बड़प्पन छोटे और बड़े सभी में स्पष्ट होना चाहिए ।''

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर कुली के रूप में

आजकल के फैशनेबिल और ढोंगी विद्यार्थी रेल में सफर करते हैं, तो बाबूगीरी दिखाने में बड़ी शान समझते हैं । सफेद कोट, पेन्ट, चमाचम जूता पहिना कि उनकी ऐंठ का ठिकाना नहीं रहता । सफर तो रेल के तीसरे दर्जे में करते हैं, पर उनकी शान देखें तो ऐसा मालूम होता है मानो कोई बड़े अफसर हों ।

ऐसे ही रेल के प्लेटफार्म की घटना है ।

एक विद्यार्थी रेल के प्लेटफार्म पर 'कुली! कुली!!' चिल्ला रहा था । वहाँ कुली कोई नहीं था । चेहरे पर क्रोध था । क्रोध से कह रहे थे ''कैसा स्टेशन है ? सामान उठाने के लिये कोई कुली भी नहीं है ? ''

एक साधारण-सा वस्त्रों में सरल सीधा व्यक्ति वहाँ आ खड़ा हुआ । विद्यार्थी का सूटकेस सिर पर रखा और उसके पीछे चलने लगा । स्टेशन से बाहर सामान रखने पर विद्यार्थी ने तीन आना मजदूरी दी, जो उस व्यक्ति ने सधन्यवाद लौटा दी ।

आप जानते हैं, यह अजीब कुली कौन था ?

यह थे महान् व्यक्ति ईश्वरचन्द्र विद्यासागर-स्वावलम्बन के पुजारी !

जैन साधुओं में यह रिवाज है कि वे अपने निर्वाह का सारा सामान, बर्तन पुस्तकें इत्यादि अपने ऊपर ही लादे रहते हैं और अधिक होते ही उसका त्याग कर देते हैं । बोझ को कम करते रहते हैं । कम बोझ से उनका जीवन सरल हो जाता है । उन्हें सहायता के लिए दूसरों पर निर्भर नहीं रहना पड़ता ।

डेविडसन राकफेलर ने यह किया

आपने शायद राकफेलर का नाम सुना है । वह संसार का सबसे धनी व्यक्ति था । उसके रुपये तथा माल दौलत का कोई ठिकाना नहीं था । उसकी कम्पनियों में अरबों डालरों की पूँजी लगी हुई थी । अमेरिका में समृद्धि की दृष्टि से वह सर्वोच्च था । उसने अपनी विद्या, बुद्धि, श्रम और अच्छी आदतों से पूँजी एकत्रित की थी और अमरीका में सबसे ऊँचा रेकार्ड कायम किया था ।

उसने अपनी अमीरी का गुप्त रहस्य बताते हुए लिखा है-''मैं अपने बाहुबल और दूरदृष्टि पर विश्वास रखता हूँ । व्यापार में मैंने सदा अधिक से अधिक बचत का ख्याल रखा है । प्रतिवर्ष यहाँ तक कि प्रतिदिन कितनी बचत हुई, इस बात को मैंने सदा बड़ा महत्व दिया है । जिसको आप बचत कहते हैं, उसी को मैं आर्थिक रूप से उन्नति कहता हूँ । हमेशा बचत पर ही दृष्टि रखने से मैंने अरबों डालर कमाये हैं ।''

''मैं शराब, तम्बाकू, जुआ इत्यादि को महँगी और बेकार की चीजें मानता हूँ । मुझे मिथ्या आडम्बर से घृणा है । प्रदर्शन की आदत को मैं मनुष्य की बड़ी कमजोरी मानता हूँ । सच पूछिये तो मैंने भूलकर भी कभी शराब और तम्बाकू को हाथ नहीं लगाया । अरबों डालरों का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वामी होते हुए भी किफायतशारी नहीं त्यागी । मामूली से मामूली वस्तु की खरीद में भी ठगा जाने को मैं राजी नहीं हुआ हूँ ।''

''मुझे अपने जिस अनुभव पर सबसे अधिक गर्व है, वह यह है–आजकल लोगों का मोटा ख्याल यह होता है कि जो वस्तु जितनी महँगी होती है, उतनी ही अच्छी होती है, यह गलत है । इसी झूठी आशा को देकर दुकानदार झुकाते हैं और झुकते हैं, बेवकूफ बनाते हैं और बनते हैं । मामूली चीजों को भी पूरी सम्हाल से रखा जाय, तो उतना ही कम खर्च में लाभ उठाया जा सकता है । लोगों में आलस्य दिनोंदिन वृद्धि पर है । फैशन के नाम पर लोगों में (विशेषत: छोटे परिवारों और कम आमदनी वालों में) दिखावा और छैलापन भी जोर पकड़ रहा है । बिना कष्ट उठाये, बैठे-बैठे अमीर बनने के स्वप्न देखा करते हैं । ऐसे लोग न रुपया पैदा कर पाते हैं और न अपने संचित धन का सदुपयोग ही करते हैं । अन्त में जरूरत के नाम पर ये दूसरों के एहसान और कर्ज के शिकार बनते हैं । दुनिया में गुलाम की जिन्दगी बिताते हैं । ''

और ये शब्द जितने सही उस युग में थे, उससे अधिक सच्चे आज भी हैं ।

टामस लिप्टन की नसीहत सूर्य की तरह दीप्तिमान है

''लिप्टन की चाय पीजिये । बेहतरीन चाय ।''

आपने यह विज्ञापन बाजार में चिपका हुआ देखा है और शायद लिप्टन की चाय का बढ़िया स्वाद भी लिया है ।

यह लिप्टन कौन था ?

पूरा नाम था टामस लिप्टन । चाय का महान् विशेषज्ञ !

लिप्टन ने चाय चखने और उनका मिश्रण करने में विशेष योग्यता प्राप्त की और इस व्यापार में लाखों डालर कमाये । उसका व्यापार बढ़ा और आज ६००० से ऊपर उसकी कम्पनी के ऐजेन्ट संसार में फैले हुए हैं । उसके व्यापार की ख्याति दूर-दूर तक फैली है । उसके कर्मचारी सदा उससे संतुष्ट रहे, क्योंकि उसने सबको भरपूर वेतन दिया । लिप्टन की उन्नति का क्रम कैसे चला ? इस सम्बन्ध में वे कहते हैं -

''मैं प्रारम्भ में एक स्टेशनरी की दुकान पर दस शिलिंग प्रति सप्ताह पर नौकर था । जिन्दगी में मैं केवल किफायतशारी के नियमों पर ही चलकर अपने व्यापार को बढ़ा सका हूँ । फिजूलखर्ची से मुझे सख्त नफरत है । जो काम मैं खुद कर सकता हूँ, उसे दूसरे पर नहीं छोड़ता, जो काम दो डालर में हो सकता है, उस पर सवा दो डालर भी खर्च नहीं करता । मैंने किसी भी व्यर्थ की जरूरत को अपने पीछे नहीं लगाया है । हाथ रोक करके खर्च करना ही मेरी सफलता का रहस्य है ।''

लोग लिप्टन को कंजूस कहकर चिढ़ाते रहे, इसकी उसने कभी कुछ परवाह नहीं की । आज उसे चिढ़ाने वाले मर चुके हैं, पर लिप्टन आज अमर हो गये । उसका कारण उनकी मितव्ययिता ही थी । उनका नाम आज भी लोगों की जिह्वा पर है ।

अमीर बनने का अजीब सिद्धान्त

महादेव गोविन्द रानाडे आर्थिक दृष्टि से भी सदा सफल रहे । उनसे जब उनकी इस सफलता का कारण पूछा गया, तो वे बोले–

''मेरा अनुभव है कि जो लोग बड़ी-बड़ी तादाद में घरेलू वस्तुएँ खरीदते हैं, वे बड़े ही फिजूलखर्च होते हैं । कारण यह है कि वे इतना अधिक खरीद बैठते हैं, जो किसी के काम नहीं आता । घर में पड़ा-पड़ा नष्ट होता रहता है ।

मेरा सिद्धान्त है कि रोज के खर्च की वस्तुएँ जहाँ तक सम्भव हो प्रतिदिन ही खरीदनी चाहिए, या हद से हद एक सप्ताह की । इससे अधिक खरीदने से बहुत-सी वस्तुएँ व्यर्थ हो जाती हैं ।

मैं तो स्वयं अपने जीवन में रोज की वस्तुएँ रोज ही लाता रहा हूँ । अपने इस क्रम में मैंने कभी अन्तर नहीं आने दिया है । मुझे इस मितव्ययिता के लिये बदनाम किया गया है, किन्तु मैं इस किफायतशारी के बल पर ही आनन्द और प्रतिष्ठा का जीवन व्यतीत कर रहा हूँ ।''

रहन-सहन का स्तर कैसे ऊँचा करें ?

रहन-सहन का दर्जा ऊँचा करने के लिए हमें अपनी आदतों को देखना होगा । जिसकी जैसी आदतें हैं, उन्हीं के अनुसार आवश्यकता बढ़ती-घटती रहती हैं । प्राय: देखा गया है कि निम्नश्रेणी के व्यक्ति पान-बीड़ी, मद्यपान, माँसाहार और मिठाइयों में रुपया व्यय कर डालते हैं, सिनेमा देखते हैं पर उनके बदन पर फटे कपड़े के अतिरिक्त कुछ नहीं होता । घर कच्चा और अँधेरा होता है । आदत मनुष्य का दूसरा स्वभाव कही गई है । जिसे पान की आदत है वह बिना पान के संतुष्ट नहीं होगा, जो सिनेमा या मद्य का आदी है, वह उसी से सन्तुष्ट रहेगा । दो मनुष्य जिन्हें एकसमान ही वेतन प्राप्त होता है, अपनी आदतों के कारण ऊँचे या नीचे, गरीब या समृद्ध दीखते हैं ।

'' आदतें हमारे विवेक से बनती हैं । जो व्यक्ति समझदारी से अपनी आदतों का निर्माण करता है, वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आदतों का गुलाम नहीं, आदतें उसकी गुलाम होती हैं, वह उन पर राज्य करता है । रहन-सहन निर्धारण करने वाले दो प्रमुख तत्व हैं– (१) रुपया खर्च करने में विवेक बुद्धि का प्रयोग, (२) व्यय की जाने वाली आमदनी । जो व्यक्ति अधिक रुपया पाता है, वह तो रहन-सहन शिक्षा इत्यादि का दर्जा ऊँचा रख ही सकता है, किन्तु वह व्यक्ति जो विवेक बुद्धि से, समझदारी से रुपया व्यय करता है, वह भी अपने रहन-सहन का दर्जा ऊँचा कर सकता है । खर्चीला रहन-सहन यह नहीं बताता कि दर्जा वास्तव में ऊँचा है या नहीं । कुछ अमीर लोग आमदनी न होने पर भी अमीरों की भाँति व्यय करते हैं ।

भारतवर्ष एक निर्धन देश है । यहाँ नब्बे प्रतिशत गरीब बसते हैं । प्रति व्यक्ति की औसत आय भी न्यून है । आजकल महँगाई तेजी से बढ़ रही है । ऐसे समय में खर्चीले स्वभाव वाले गरीब आदमी बरबाद होने से नहीं बच सकते ।

ऊँची रहन-सहन का सच्चा अभिप्राय यही है कि मनुष्य की सभी विवेकयुक्त आवश्यकताएँ आसानी से पूर्ण हो जायें, पौष्टिक भोजन, स्वस्थ हवादार घर और उचित शिक्षा, मनोरंजन एवं बचत हो । वह भविष्य में उन्नति और आत्मविकास के साथ संतोष और तृप्ति पा सके ।

इन साधनों से काम लीजिए

रहन-सहन ऊँचा करने का प्रथम साधन है-विवेक । अर्थात् हमें चाहिए कि स्वयं अधिक बचत करने में प्रयत्नशील रहें । इससे भी अधिक यह आवश्यक है कि जो कुछ हमें प्राप्त हो उसका विवेकपूर्ण व्यय किया जाय । प्रत्येक पैसे से अधिकतम लाभ उठाया जाय । विवेकहीनता के कारण भारतवासियों को सबसे अधिक कष्ट उठाना पड़ रहा है ।

शिक्षा की वृद्धि की जाय । अर्थशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है । उद्योग-धन्धों की शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए । प्रत्येक स्त्री-पुरुष को उद्योगी बनाया जाय, आलस्य या पर्दे में न बैठने दिया जाय । स्त्रियाँ घरेलू धन्धे जैसे-कताई, बुनाई, रँगाई, पढ़ना, लिखना, सीना-पिरोना, कटाई इत्यादि का कार्य करें । कुछ बाहर नौकरियाँ भी कर सकती हैं ।

सादा जीवन और उच्च विचार

इस नियम के अनुसार समाज का जीवन ढाला जाय । जैसे-जैसे मितव्ययिता और सादगी ग्रहण की जायगी, पर्याप्त भोजन, वस्त्र तथा शिक्षा प्राप्त होगी, हमारा स्तर ऊँचा होता जायगा । मितव्ययिता को तो स्वभाव का एक अंग बना लेना चाहिए । जो आवश्यक खर्चे हैं, उन पर व्यय किया जाय, फिजूलखर्ची और विलासिता की संतुष्टि न की जाय ।

जितना ही कम रुपया प्राप्त हो, उतनी ही विवेकशीलता से बजट बनाकर जीवन-रक्षक पदार्थों, तत्पश्चात् प्रतिष्ठा-रक्षक और निपुणता-रक्षक पदार्थों में व्यय करना चाहिए । पारिवारिक बजट बहुत सोच-समझ कर विवेकपूर्ण रूप से बनाना चाहिए । बचत की रकम पहले ही पृथक कर लेनी चाहिए ।

हमारे तीन बड़े खर्चे

हमारे भोजन पर व्यय होने वाला ७७ प्रतिशत रुपया विवेकपूर्ण व्यय होता है । भोजन कहीं अत्यन्त महँगा है, कहीं असंतुलित है । प्रायः भोजन के नाम पर ऐसी वस्तुएँ ले ली जाती हैं जो आवश्यक नहीं हैं और ऐसी पौष्टिक चीजें छोड़ दी जाती हैं, जिनके बिना मनुष्य का शरीर अविकसित रहता है । कुछ वर्ष पूर्व डॉ० कैरेमेकोर्ड ने मजदूरों के भोजन व्यय का विशेष अध्ययन किया था । उनके अनुसार मजदूर लोग अनावश्यक पदार्थ खरीदते हैं, उनका स्वास्थ्य खराब रहता है और वे अल्पायु होते हैं ।

संतुलित आहार

भोजन की सफलता उसकी महँगाई पर नहीं, संतुलन और सही चीजों के प्रयोग पर निर्भर है । यदि आप अपने भोजन का ठीक प्रयोग करें तो आपके पेट की शक्तियाँ यथेष्ट मात्रा में बढ़ सकती हैं । वाल्टर बी० पिटकिन ने अपनी पुस्तक 'जीवन ४० वर्ष की आयु के पश्चात् प्रारम्भ होता है' में लिखा है कि मनुष्य अपनी जीवन-शक्ति तथा अपनी शारीरिक-शक्ति को भोजन के ठीक चुनाव द्वारा दुगुनी बना सकता है । अच्छा भोजन-सस्ता, पौष्टिक और सुपाच्य होता है ।

भोजन के बजट में एक चौथाई आमदनी व्यय करनी चाहिए । अतएव यदि आप केवल रक्षात्मक भोजन (बिना चटोरी आदतों को संतुष्ट किए) चाहते हैं, तो यह बखूबी हो सकता है । यदि आमदनी बहुत कम है, तो अधिकांश भोजन में ही व्यय हो जाएगी ।

भोजन तथा बचत

क्या हमें भोजन के बजट में बचत करनी चाहिए ? कदापि नहीं । आप वस्त्र या मकान में से भले ही बचत कर लें, किन्तु संतुलित भोजन में से कमी न कीजिए । यदि इसमें कंजूसी करेंगे, तो बीमार पड़ेंगे और दुगुना रुपया दवाई या डॉक्टर की फीस में व्यय हो जायेगा । हम आपको कीमती चीजें-मिठाई, अचार, शराब, चाय-बिस्कुट चाय-पकौड़ी, शौकीनों के शरबत, चुसकी कार्नप्लावर, पकवान, मुरब्बे-खाने की सलाह नहीं देते, किन्तु स्वास्थ्यवर्द्धक, सरल, प्राकृतिक, रक्षात्मक भोजन की सलाह देते हैं । यह भोजन सस्ता रहेगा ।

भोजन के आवश्यक पदार्थों को खरीदने में सम्भव है कुछ अधिक व्यय हो जाय, अतः यह बढ़ती अन्य मदों में कमी करके निकाल लेनी उचित है । सुविधानुसार व्यय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करें पर विलासप्रियता और चटोरी आदतों में न फँसें । मन पर कठोर नियंत्रण रखें और मिठाई वालों की दुकानों के आस-पास न टहलें अन्यथा प्रलोभन में फँसेंगे ।

इकट्ठी वस्तु खरीदना

फसल पर वर्षभर के लिए वस्तु खरीदकर रखना किफायतशारी है । हम यह नहीं कहते कि आप कर्ज लेकर ये वस्तुएँ खरीदें । थोड़ा-थोड़ा बचाकर आप घर की ऐसी वस्तुएँ दाल, गेहूँ, मिर्च, चावल, तेल, चीनी, लकड़ी, आलू, अरबी, सूखे मेवे खरीद करते हैं । अपनी गृहस्थी का वार्षिक बजट बनाइए और अनुमान लगाइए कि कितनी किस वस्तु की आवश्यकता आपको पड़ेगी । प्रत्येक वस्तु को बड़ी सफाई से रखिये अन्यथा सूखी हुई तरकारियाँ खराब हो जायेंगी, चावल में कीड़ा पड़ जायगा गेहूँ घुन जायगा ।

यदि आप स्वयं अकेले अधिक मात्रा में वस्तुएँ नहीं खरीद सकते, तो अपने मित्रों और सम्बन्धियों को मिलाकर एक सहकारी सभा बना लीजिए और परस्पर मिलकर वस्तुओं को खरीदिए । वर्ष के प्रारम्भ में पढ़ने वाले बच्चे कापियाँ, स्टेशनरी, पुस्तकें खरीदते हैं । यदि सब लोग साथ-साथ खरीदें तो कुछ कमीशन भी मिल सकता है । यदि आपके कुछ मित्र या रिश्तेदार कुछ नियत काम में आने वाली वस्तुएँ खरीदने का प्रबन्ध कर लें, तो आपको कुछ आमदनी भी हो सकती है । थोड़े में ही एक दुकान खोली जा सकती है ।

सावधानी से मालूम कीजिए कि वे कौन-सी वस्तुएँ हैं जिन्हें आप एक साथ खरीद सकते हैं । अपने घर की वस्तुएँ खरीद कर प्रारम्भ कीजिए । घी, शक्कर, तेल, गिरी, छुहारा, मखाना, बादाम, इलायची, मिर्च, गुड़, अरहर, मसूर, मक्का, ईंधन, फसल पर ही खरीदना उचित है । फुटकर सामान लेने से कीमत अधिक चुकानी होती है ।

हमारे वस्त्रों का व्यय

भोजन के पश्चात् वस्त्र महत्वपूर्ण हैं । पेट भर जाने के पश्चात् मानव को तन ढकने की सूझती है । हर्बर्ट कैसन ने अपनी पुस्तक 'हंगरी सोसायटी' में लिखा है- "एक भूखा रोटी के टुकड़े के लिए अपना पाजामा प्रसन्नता से दे डालेगा, लेकिन जब उसका पेट भर जायगा, तो वह दूसरा पाजामा खरीदने का प्रयत्न करेगा ।" इस मद में १० प्रतिशत आमदनी कुछ अधिक प्रतीत होती है किन्तु अपनी आवश्यकता के अनुसार इसे कम या अधिक किया जा सकता है । इसमें वस्त्रों की सफाई, मरम्मत और नये कपड़े सिलाना भी सम्मिलित है ।

अच्छे वस्त्रों का आदर होता है, अपनी अवस्था और हैसियत के अनुसार साफ, सुन्दर कपड़े पहनना उचित और न्याय-संगत है । इनसे आपका व्यक्तित्व निखर उठता है, गुप्त शक्तियाँ जाग्रत हो उठती हैं । मनुष्य अपने आपको दूसरों से श्रेष्ठ समझने लगता है । पहला प्रभाव अच्छे कपड़ों का ही पड़ता है । अज्ञात स्थान में जहाँ कोई नहीं जानता कि आप क्या हैं, आपके वस्त्र ही आपके सहायक होते हैं । सफर में अच्छे कपड़े पहनने की सलाह इसीलिए दी जाती है कि वेशभूषा और वस्त्र आपके चरित्र की विषय-सूची की भाँति हैं । पश्चिमी सभ्यता के संसर्ग से नाना प्रकार के फैशन और काट-छाँट के वस्त्र हमारे देश में प्रचलित हैं । आप ऐसे वस्त्र पहनें जो आपकी हैसियत के अनुसार ठीक रहें । न अधिक ऊँचे न नीचे । अच्छा पहनिए, सादगी और सरलता से, सफाई से कपड़ों को रखिए । इसी में आपकी इज्जत है ।

इस सम्बन्ध में कुछ बातें महत्वपूर्ण हैं । आप कीमती वस्त्र ले लें, किन्तु उन्हें इतने यत्न और ध्यानपूर्वक रखिए कि उन्हें आप अधिक दिन, अच्छी से अच्छी हालत में चला सकें । वस्त्र की भी आयु होती है । प्रत्येक कपड़े को पूरी आयु भर जीने का अवसर दीजिये । इतनी अच्छी तरह इस्तेमाल कीजिए कि वह कम मैला हो और कम धुले । रोज-रोज धुलवाना अमितव्ययिता है, स्वयं धो लीजिए । धोबी कपड़े स्वयं पहनता है, किराए पर दूसरों को देता है, उबालता है और ठोक-पीट कर आधी जान समाप्त कर देता है । कपड़े जितना कम धुलें उतना ही अच्छा है । पर इसका यह अर्थ नहीं कि बदबूदार, पसीनायुक्त वस्त्र ही महीनों तक पहनते रहें । वह स्वच्छ दीख रहे हों, फिर भी उनकी धुलाई अनिवार्य है ।

धुलाई

अनुभव से आपको प्रतीत होगा कि कुछ कपड़ों को घर पर ही धो लेना कितना सुविधाजनक है । कमीजें, बनियान, लंगोट, रूमाल यदि घर पर ही धो लिये जायें, तो काफी दिन काम में लाये जा सकते हैं । धोबी के घर का धुला प्रत्येक वस्त्र कम से कम आठ दिन तक मैला न होने दीजिये । आपकी चतुराई और सतर्कता इसी में है । विशेषज्ञों के अनुसार ३० प्रतिशत धुलाई केवल सफाई तथा सतर्कता से रहकर मिटाई जा सकती है, २० प्रतिशत कपड़े की गन्दगी ठीक प्रकार से भोजन न करने और पेय पदार्थों के गिर जाने से प्रारम्भ होती है, १० प्रतिशत रात्रि और दिन के कपड़े न बदलने या उतारे हुए कपड़ों को तहकर लोहा न करने की असावधानी से प्रारम्भ होती है । वस्त्र कहते हैं, "आप हमारी इज्जत कीजिये, हम आपकी इज्जत करायेंगे ।" इसका अभिप्राय यही है कि उनकी उचित देखभाल से ही आपकी इज्जत बनेगी, पैसा कम खर्च होगा और मितव्यय की आदत पड़ेगी

मकान और किराये की समस्या

आजकल मकान किराये की समस्या भोजन जैसी ही उग्र हो उठी है । अतः इसमें २० प्रतिशत तक व्यय करना अनुचित नहीं है । डॉक्टर एंज्जिल ने योरोपीय देशों के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिये १२ प्रतिशत की राय दी है । डॉक्टर एञ्जिल की राय है कि किराये , रोशनी और ईंधन में प्रत्येक परिवार में प्रतिशत खर्च बराबर हो सकता है । महँगाई से पूर्व १० प्रतिशत में काम चल जाता था, अब १० से २० प्रतिशत इस मद में व्यय करना होता है । यदि घर अपना है तो मरम्मत, पुताई, सफाई और उसे ठीक हालत में खड़ा करने में काफी व्यय होता है । कच्चे घरों में प्रतिवर्ष छप्पर और कबेलू चढ़ाने में व्यय अधिक हो जाता है । यथासम्भव सस्ता मकान लीजिए किन्तु स्वास्थ्य और अच्छा पड़ौस महत्वपूर्ण बातें हैं । घर की सजावट अपनी आमदनी के अनुसार कीजिए ।

गृहस्थी में स्वर्ग की सृष्टि

मितव्ययिता का क्रियात्मक उपयोग कठिन नहीं है । जो आमदनी हो, उससे कम व्यय कीजिए । जितना बचाना हो, उसे पहले ही डाकखाना सेविंग्स बैंक में जमा कर देना उचित है । चाहे एक रुपया ही क्यों न बचे महीने की पहली तारीख को ही अपने से दूर कर दीजिए । पास उतना ही रखिये जितना आवश्यकताओं में व्यय हो ।

गृहस्थी में रहने वाले तब तक सभी व्यक्ति रुपया बचाने की योजना में दिलचस्पी न लें, तब तक एक का प्रयत्न सफल नहीं होता ।

आपका घर सुव्यवस्थित होना चाहिए । व्यवस्था-क्रम खर्च में विवेक उत्पन्न करता है वह घर धन्य है जिसमें एक बच्चे की शिक्षा और विकास को, सभी आदमी अपने व्यक्तिगत व्यय न्यूनतम कर थोड़ा-थोड़ा बचाकर, आगे बढ़ाते हैं । व्यवस्था से यह सम्भव है । अपने अधिकार और कर्त्तव्यों का ज्ञान व्यवस्था उत्पन्न करता है । संसार की सृष्टि व्यवस्था से हुई है । जहाँ अव्यवस्था और अविवेक है, वहाँ गरीबी भी है । जीवन के प्रत्येक क्षण में नियम, व्यवस्था और क्रम प्रगति और उन्नति का मार्ग है । क्रम और व्यवस्था में स्त्रियों का पुरुष की अपेक्षा अधिक हाथ है । वे ही सम्पूर्ण दिन घर रहकर कार्य सँभालती और खाद्य पदार्थों की व्यवस्था करती हैं । गृहस्थी की आर्थिक समृद्धि भी उन्हीं के ऊपर अश्रित है । चतुर पति को बड़े यत्न से प्रारम्भ से ही पत्नी में मितव्ययिता और क्रम-व्यवस्था इत्यादि की आदत डालनी चाहिए ।

डॉक्टर आइटन लिखते हैं कि उनके पिता ने दस बारह बच्चों के कुटुम्ब को ९०० पौंड वार्षिक में पढ़ा-लिखा कर योग्य बनाया था । उन्होंने अपनी पुस्तक अपने पिता को समर्पित करते हुए लिखा है-"यह पुस्तक सादर एक ऐसे पिता को समर्पित है, जो अब ८३वें वर्ष में हैं और जिन्होंने ९०० पौंड वार्षिक आय में १२ बच्चों में से चार को उच्चतम शिक्षा दिलाई और अपने अन्तिम शिलिंग तक को उनके खर्च के लिए कालेज भेजते रहे हैं ।"

डॉ० सैमुअल स्माइल्स लिखते हैं कि मितव्ययिता के उदाहरण के लिए स्वयं उनका जीवन लिया जा सकता है । उनकी माता जब अन्तिम ११वाँ बच्चा केवल तीन मास का था, विधवा हो गई । उन पर किसी की जमानत देने के कारण कुछ कर्ज भी था । पर इस कठिनाई और १२ बच्चों के बोझ के बावजूद वे धैर्यपूर्वक अपनी सामाजिक स्थिति और मान के लिए प्रयत्नशील रहीं और अन्त में विजय प्राप्त की । यद्यपि उनकी आय साधारण-सी थी, तथापि उन्होंने बच्चों की शिक्षा में कमी नहीं की, उन्हें शील-गुण सम्पन्न बनाया । यदि उनमें से कोई योग्य न बन सका, तो इसमें उस महिलारत्न का कोई अपराध नहीं था ।

प्रसिद्ध इतिहासकार ह्यूम के पिता उन्हें छोटा-सा छोड़ कर स्वर्गवासी हुए थे, उनकी माता ने ही उनकी शिक्षा का प्रबन्ध किया था । २३ वर्ष की अवस्था में ह्यूम फ्रांस में विद्या अध्ययन के लिए गये । वहाँ के विषय में वे लिखते हैं- "मैंने यह प्रण कर लिया किमें मितव्ययिता से काम लूँगा, प्रत्येक पैसे का उचित उपयोग करूँगा और अपनी समृद्धि के लिए सतत उद्योगशील रहूँगा । मैं उन सभी विलास की वस्तुओं से घृणा करूँगा जो मेरी योग्यताओं की अभिवृद्धि नहीं करेंगी ।" उनकी पहली कृति सफल न रही, किन्तु वे कार्य में जुटे रहे । वे वियना में राजदूत के मिलिटरी सेक्रेटरी हो गये । वे २६ वर्ष की आयु में अपने आपको अमीर समझने लगे । उनके शब्द देखिये- "मेरी मितव्ययिता, सतत उद्योग, परिश्रम और संयम ने मुझे सम्पदा का मालिक बन दिया था और अब मैं अपने पाँवों पर खड़ा हो सकता था । मेरे पास अब लगभग डेढ़ हजार पाउन्ड जमा हो चुके थे । पाँच प्रतिशत के हिसाब से मुझे ६० पाउन्ड प्रतिवर्ष सूद के प्राप्त हो सकते थे ।" ह्यूम की मितव्ययिता से कभी दान या दूसरे की सहायता में कमी नहीं हुई, न कभी व्यर्थ उन्होंने एक पेनी बरबाद की ।

संसार के असंख्य व्यक्ति अपने आपको आगे बढ़ाने के लिए और समाज में अपना स्तर ऊँचा करने के लिये परिश्रमशील रहे हैं और शौक से घृणा करते रहे हैं । वे विनयशील और मितव्ययी रहे । कितने ही पुरुषार्थियों ने अपने शारीरिक बल से अपना निर्वाह किया, यहाँ तक कि वे योग्य और विद्वान बन गये । उनके पास केवल एक शक्तिशाली वस्तु थी-वह थी दृढ़-इच्छा और आत्मविश्वास ।

सफलता की कुंजी हमारी संयम और संयमित आदतें हैं । जो आदत के अनुसार अनुचित विलासिता से मुक्त रहता और सरल सदा जीवन व्यतीत करता है, वही गृहस्थ दीर्घकाल तक अपने आत्म सम्मान को स्थिर रख सकता है ।

रद्दी चीजों की रक्षा कीजिये

घर में रखी हुई छोटी वस्तु की उपयोगिता है । कभी न कभी वह अवश्य काम दे जायगी । अपने घर की चीजों का निरीक्षण कीजिए और उन्हें किस प्रकार काम में लाया जा सकता है, यह मालूम कीजिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

रद्दी कागजों को व्यर्थ मत फेंकिये । सँभालकर रखिये, संग्रह करते जाइये । औरतें इनकी सहायता से नीचे बिछाने की चटाई तैयार कर सकती हैं । कागज बनाने के लिये बिक सकते हैं, फकीरों को दिये जा सकते हैं । टूटी-फूटी अनेक वस्तुएँ पुनः मरम्मत कर काम में लाई जा सकती हैं । कितनी ही बार कबाड़ियों के यहाँ से ऐसी मूल्यवान चीजें कौड़ियों के मोल मिल जाती हैं जो मरम्मत के बाद अच्छे दामों में निकल जाती हैं । रेडियो, बाइसिकल के हिस्से, टाइपराइटर, बिजली का सामान, ताले अनेक बार कौड़ियों के मोल कबाड़ी के यहाँ से मिल जाते हैं जो मरम्मत से वर्षों तक काम देते हैं ।

चाय छानने के बाद बची हुई पत्तियाँ न फेंकिये । संग्रह करके सुखा लीजिए । उनका काढ़ा निकाल लीजिए । यह काढ़ा दर्पण साफ करने के लिए और फर्नीचर पर पालिश करने से पूर्व सफाई के काम आता है । चाय की सूखी पत्तियों से अग्नि तैयार की जा सकती है ।

इमली के बीजों को भूनकर उनके ऊपर की छाल निकाल डालिए और सरौंते से काटकर सुपारी और मुलैठी के साथ प्रयोग में लाइए ।

संतरे के छिलके को व्यर्थ न फेंकिए । उन्हें धूप में सुखा लीजिए । उनका महीन चूर्ण तैयार कर मिष्ठान्न में डालने से संतरे जैसी सुगन्ध आती है ।

बबूल की छाल सुखाकर या बादाम के छिलके जलाकर पीस डालिए । यह दंत-मंजन उत्तम होता है ।

कड़वे नीम की हरी पत्तियों को उबालकर उनका काढ़ा शीशियों में भरकर रख दीजिए । इस काढ़े से नालियाँ और फर्श धोकर स्वच्छ किये जा सकते हैं । इनका उपयोग फोड़े आदि धोने के काम में किया जा सकता है । गंधक के धुँए से मच्छर मारे जा सकते हैं ।

दियासलाई की सीकों को तीक्ष्ण रेजर ब्लेड के द्वारा मध्य से चीर लीजिए । दियासलाई दुगुनी हो जायेंगी ।

आपकी अनेक बीमारियाँ घरेलू दवाइयों से दूर हो सकती हैं । अतः घरेलू दवाइयों पर एक शास्त्रीय पुस्तक पढ़ लीजिए । दवाइयाँ बनाकर पैसा बचाइये ।

साबुन को काम में लाने के लिये निम्न बातें याद रखिये–

(१) कपड़ा धोने के साबुन के टुकड़े काटकर सुखा लीजये । सूखा साबुन अपेक्षाकृत कम घिसता है । (२) अपने साबुन को पानी में न पड़ा रहने दीजिए । स्नान के पश्चात् अपने कमरे में लाकर सूखे स्थान पर सम्भाल कर रखिये । (३) स्नान के साबुन का अंतिम शेष बचा हुआ भाग नये साबुन पर चिपका लीजिए (४) कपड़ा धोने के साबुन के छोटे टुकड़ों को एक टीन के डिब्बे में रखिये और उसी में पानी डालकर उन्हें घोल लीजिए । इससे कपड़े धोये जा सकते हैं । (५) साबुन का पानी मत फेंकिए । इससे फर्श धो डालिए ।

एक शेविंग ब्लेड से आप एक मास मजे से हजामत बना सकते हैं । जब ब्लेड भोंथरा हो जाय, तो तेज करने में आलस्य मत कीजिए । हजामत करने के बाद धोकर पोंछना कदापि न भूलिए, हो सके तो थोड़ा वैसलीन भी धार पर लगा दीजिए । रद्दी ब्लेड का चाकू बनाया जा सकता है । इस प्रकार का एक चाकू बाजार में मिलता है । उसमें यह फिट किया जा सकता है ।

आपके पास जो लिफाफे आते हैं, उन्हें अन्दर से खोल डालिए । अन्दर से वे साफ हैं इसलिए मामूली तौर पर लिखने के काम में लाये जा सकते हैं ।

साग-सब्जी की पत्तियों को न फेंकिये । मूली, शलजम, फूलगोभी इत्यादि सब्जियों की पत्तियाँ पका लीजिये । पत्तियों में विटामिन अपेक्षाकृत अधिक होता है । यदि सँभाल कर पकाई जायें तो वे बड़ी स्वादिष्ट बनती हैं । सस्ती सब्जियों जैसे गाजर, मेथी, पालक इत्यादि का अधिक प्रयोग कीजिए । कीमती सब्जियों की ओर न जाइये । 'तेते पाँव पसारिये, जेती लम्बी सौर' ।

वर्षों के पश्चात् मकानों की मरम्मत, कुछ नया हेर-फेर, रंग-सफेदी, शोभा-सजावट आदि करना उचित है । यदि स्वयं आप इन कार्यों को करने में हाथ बटायें, कुछ काम स्वयं सीख लें, तो बहुत कम खर्च पर टिकाऊ और आधुनिक ढंग पर सजावट कर सकते हैं । जो मजदूर आपके यहाँ ३० रु० रोज पर काम करते हैं, वे आपसे बहुत कम समझदार होते हैं । जब वे कार्य कर सकते हैं, तो आप कैसे नहीं कर सकेंगे ? आप अवश्य यह कार्य कर सकते हैं । थोड़ा अभ्यास, सँभाल, बुद्धिमानी और परिश्रम–बस आपका काम हो गया ।

लीपने के लिए गोबर का प्रयोग अच्छा है । उसमें कुछ संरक्षक गुण हैं, दरारों को जोड़ता है पर स्मरण रहे ये गुण ताजे गोबर में ही होते हैं । जहाँ गोबर बासी हुआ कि सड़ने लगता है । गोबर में गरमाहट को कायम रखने का गुण भी पाया जाता है । चूने की सफेदी जन्तु-नाशक होती है । चूने की सफेदी धीरे-धीरे हवा में से कार्बन डाइऑक्साइड खींच लेती है, जिसमें दीवारें मजबूत बनती हैं ।

घर में तस्वीरों, शीशों, छायाचित्र, सीन-सीनरी पुतलों की भीड़-भाड़ कलात्मक नहीं । ये चीजें बिल्कुल इनी-गिनी होनी चाहिए, इनके ऊँचे-नीचे अथवा छोटे-बड़े आकारों के होने से सजावट में असंगति पड़ती है, प्रकाश में रुकावट आती है । गृहशोभा की असली नींव है सफाई । वह आप स्वयं कर सकते हैं ।

गेहूँ, मक्का या ज्वार का आटा छानिये मत, दाल भी छिलकेदार खाने की आदत डालिए । चोकर और अनाज के छिलके में सबसे अधिक पौष्टिक पदार्थ हैं । इन्हें यों ही फेंक देना मूर्खता है । इसमें आपकी आर्थिक और स्वास्थ्य की दृष्टि से हानि है । अनाज रखने के स्थान ऐसे स्वच्छ रखिये कि किसी प्रकार के छोटे जन्तु उनमें न पडे और वह चूहों द्वारा नष्ट न किया जाय ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

छाछ या दूध को एकदम गटक कर न निगल लीजिए । मुँह में डालकर धीरे-धीरे चूँस-चूँस कर पीजिए, जिह्वा से आनन्द लीजिए । इससे आप उनका पूरा लाभ उठा सकते हैं ।

अपने यहाँ मेहमानों को पानी और खाने के लिए गुड़ देने की प्रथा अत्यन्त उत्कृष्ट और शास्त्रोक्त है । धूप में घूमने के पश्चात् घर आने पर गुड़ खाकर पानी पीना, गुड़ में रहने वालों क्षारों के कारण अधिक लाभदायक होता है ।

'टूटे को बनाना और रूठे को मनाना' बुद्धिमानी है

''समय का एक टाँका नौ टाँकों की मेहनत बचा लेता है'' यह एक अँग्रेजी कहावत है । इसमें जो गूढ़ तथ्य छिपा है उसे भली-भाँति जान लेना चाहिए ।

यदि वस्तुओं की मरम्मत करानी है तो यथासमय तुरन्त ही करा लेना उचित है । तत्कालीन मरम्मत, चीजों को तुरन्त ठीक करा लेना मानव मस्तिष्क की सुन्दरतम उपज है । वस्तुएँ तथा बीमार मनुष्य खराब होते ही सहानुभूति की अपेक्षा करते हैं । यदि आप अल्पकाल के लिए भी रुकेंगे, तो यह हानि, खराबी या व्याधि शनैः-शनैः परिपुष्ट होकर अधिक व्यय और चिन्तन की अपेक्षा करेगी । एक स्पेनिश कहावत है कि-''वह व्यक्ति जो एक नाली की मरम्मत नहीं कराता, उसे पूरे मकान की मरम्मत करानी होती है ।''

यदि आपके दाँत में एक छोटा-सा छेद है, तो तुरन्त दंत डॉक्टर को दिखा कर उसकी चिकित्सा करा लीजिए और दाँतों को स्थायी रूप से नीरोग कीजिए । जितना अधिक आप टालेंगे उतनी ही अधिक भविष्य में परेशानी हो सकती है ।

यही हाल मरम्मत का है । आपकी कुर्सी, किवाड़, शीशा, घड़ी, सन्दूक, टाइप की मशीन, सीने की मशीन, साइकिल यदि जरा भी खराब होती है, तो तुरन्त उसकी मरम्मत या तो स्वयं कीजिए या किसी अन्य व्यक्ति से कराइये । अपनी मशीनों में हर तीसरे दिन तेल दीजिए, जूते पर पालिश कीजिए, टोपी को ब्रुश कीजिए, घर की वस्तुओं को, अपने स्वास्थ्य को सँभालिये ।

मरम्मत करने वाले आपको सब से अधिक धोखा देते और रुपया लेते हैं । जरा-सी खराबी के लिये, बहुत दाम लिये जाते हैं । रेडियो, मोटर या सिलाई की मशीनों में तनिक-सी खराबी से कोई कार्य बन्द हो जाता है, थोड़ी ही देख-रेख से, मामूली मरम्मत से वे ठीक भी हो जाती हैं । मरम्मत करने वाले मशीनों को रख लेते हैं और आपके पीछे मामूली-सा काम कर आपसे बहुत पैसा लेते हैं । अतः आप अपनी मशीन कई कारीगरों को दिखाइये, तत्पश्चात ठीक कराइये मामूली मशीनों के पुर्जों को समझ लीजिए यह मालूम कीजिए कि क्या चीज टूटी या बेकार हुई है ? उसका क्या मूल्य है ? आपको मरम्मत के नाम पर लूटा तो नहीं जा रहा है ?

नित्यप्रति काम में आने वाली अपनी चीजों को सावधानी के साथ बरतिए । उन पर निगाह रखिए कि वे कहीं से बिगड़ तो नहीं रही हैं । जहाँ बिगाड़ आरम्भ हुआ हो वहाँ आरम्भ में ही मरम्मत कर दीजिए । कहते हैं जो ''टूटे को बनाना और रूठे को मनाना'' जानता है वह बुद्धिमान है । अपने हाथ से अपनी चीजों की मरम्मत करना सीखिये । यदि दूसरे से ही ठीक कराना पड़े तो ध्यान रखिये कि वह अनुचित रूप से आपको ठग न ले । एक सुधार करके अन्य बिगाड़ खड़े न कर दे ।

''या तो सबसे अच्छा या कुछ नहीं'' की नीति अपनाने से काम नहीं चलता । जो लोग बढ़िया, आकर्षक और अनुकूल को पसंद करते हैं और उससे कम की वस्तुओं को ग्रहण नहीं करते वे जीवन-क्षेत्र में प्रायः असफल ही रहते हैं । टूटे को बनाना एक ऐसा काम है जिसमें नाममात्र की लागत से पर्याप्त मात्रा में लाभ हो जाता है । इसी प्रकार 'रूठे को मनाना' एक ऐसी कला है जो शत्रु को मित्र बना देती है और हानि पहुँचाने वाले को लाभदायक सहायक के रूप में परिणत कर देती है ।

रुपया बचाकर कहाँ रखें ?

रुपये का यह नियम है कि पास रहने से व्यय करने को तबियत चाहती है, वासनाएँ भड़कती हैं, तबियत मचलती है अतः उसे उतना ही पास रखिये जिसकी नितांत आवश्यकता हो । अपरिग्रह से रहिए । बचे हुए रुपये को पोस्ट ऑफिस के सेविंग्स बैंक में रखिये ।

उत्तम तो यह है कि मासिक वेतन का सभी रुपया प्रारम्भ में बैंक में डाल दिया जाये और प्रति सप्ताह हफ्ते के लिये एक निश्चित रकम निकाल ली जाया करे । बीमारी, विपत्ति, वृद्धावस्था और विश्रान्ति के समय वह रुपया बड़ा काम देता है । घर खर्च मात्र के लिये रुपया हाथ में रखकर शेष को अवश्य बचाइए । बचा हुआ रुपया ही आपकी कमाई है । जो आया और गया, वह आपके लिये कुछ नहीं । जो रह गया, बच गया और आपके पास सुरक्षित है, वही आपका है ।

यदि प्रतिमास १० प्रतिशत जोड़ते रहें, प्रारम्भ ही में किसी ऐसी जगह डाल दें कि वहाँ से न निकलें, तो आपको उतना रुपया बचाने की आदत पड़ जायगी । लोग लालच में आकर कुछ न कुछ आवश्यक चीजें खरीद लेते हैं, मास के अन्त में कुछ भी नहीं रहता तो रोते पछताते हैं । यह स्थिति अत्यन्त दयनीय है । बचत का विधान तो प्रारम्भ ही में हो जाना उचित है । बचत भी एक प्रकार खर्च ही है । यदि आप मासिक खर्च के खाते में ही उसे डाल लें, तो रुपया अवश्य बचेगा । जो आदमी कुछ नहीं बचाता, सब खर्च कर देता है, वह बड़ा पाप

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करता है । वह अनिश्चित भविष्य के लिए कुछ भी कर रहा है । यदि आमदनी कम है, तो कोई हर्ज नहीं । अपनी आवश्यकताओं को कम कर दीजिए पर कुछ न कुछ बचाना अवश्य चाहिए ।

पोस्ट ऑफिस सेविंग्स बैंक

प्रत्येक व्यक्ति को अपनी स्थिति के विचार से बचे हुए रुपये को रखने को प्रबन्ध करना चाहिए । किसी महाजन, संस्था या व्यापारी के पास रुपया रखना खतरनाक हो सकता है । वे समय पर आपको कुछ न दे सकेंगे । अत: बैंक सबसे उत्तम है । छोटी-छोटी बचत को डाकखाने के सेविंग्स बैंक में रखना उचित है । सरकार इस रुपये की जिम्मेदारी लेती है, जमा करने और निकालने की सुविधा रहती है, मरने पर मनुष्य के कुटुम्ब वालों को तुरन्त रुपया प्राप्त हो सकता है, सेविंग्स बैंक में जो रुपया रहेगा, उसे गुप्त रखा जाता है, कोई जानने नहीं पाता ।

बीमा पॉलिसी

जो व्यक्ति प्रति मास ४०-५० रुपये बचा सकते हैं, उनके लिये जीवन का बीमा कराना श्रेष्ठ उपाय है । इसमें हमें निश्चित रूप से कुछ न कुछ देना होता है अन्यथा सब रुपये के डूबने का भय होता है । मरने पर या निश्चित अवधि पूर्ण होने पर पूरा रुपया मिल जाता है । बाल-बच्चों और पत्नी के लिये यह बड़े काम की चीज है ।

आभूषण बनवाना

आभूषणों में कुछ रुपया बच जाता है, किन्तु उनकी रक्षा के लिये मनुष्य को बड़ी फिक्र पड़ती है । जो लोग पैसे को किसी प्रकार नहीं बचा सकते, उन्हें थोड़ी-थोड़ी बचत कर आभूषणों के रूप में कुछ द्रव्य अपने पास रखना चाहिए , पर आभूषणों से निम्न हानियाँ भी हैं- (१) सुनार खोटा कर देता है और सोना बिगाड़ डालता है, (२) व्यवहार में लाने से बोझ कम होता जाता है, (३) बाजार में बेचने से पैसा कम मिलता है, (४) जो पैसा आभूषणों में लगता है वह कम होता है -इसके विपरीत व्यापार में या बैंक में कुछ सूद मिलता है, (५) हिन्दू स्त्रियों को आभूषणों के कारण पराये व्यक्तियों द्वारा बेइज्जत होना पड़ता है,बच्चे चुरा लिये जाते हैं, चोर, डाकुओं और गुण्डों का भय बना रहता है, (६) गहने प्राय: स्त्रियों की असावधानी से खो जाते हैं ।

अन्य साधन

शेयर, जमीन मोल ले लेना, मकान खरीदना, सरकारी कागज, बैंक का फिक्स्ड-डिपोजिट इत्यादि रुपये को अटकाये रखने के अनेक उपाय हैं । जिनके पास आवश्यकता से बहुत अधिक धन है, उन्हें समझदारी से इनमें व्यय करना चाहिए । इनमें लगा हुआ रुपया अटका रहता है । एकाएक आवश्यकता पड़ने पर नहीं मिल पाता । चतुर व्यक्ति को डाकखाना या सेविंग्स बैंक में ४००-५०० रुपये सदैव तैयार रखने चाहिए । बीमारी, मृत्यु, यात्रा, विवाह, भोज इत्यादि के समय डाकखाने की संचित सामग्री ही काम आती है, वृद्धावस्था में बीमा पॉलिसी की रकम एक बड़ी सहायता होती है । सर्वसाधारण को इन उपायों से लाभ उठाना चाहिए ।

जो व्यक्ति इन सावधानियों को ध्यान में रखते हुए खर्च करेगा, वह निश्चित रूप से अपने खर्च में कटौती करते हुए इतना कुछ बचा लेगा, जो समय पर आकस्मिक निधि के रूप में काम आये । इससे दोनों ही प्रयोजन पूरे होते हैं -परिवार में मितव्ययिता की आदत पड़ती है और खुले हाथ खर्च करने की तुलना में इतनी बचत होती है कि थोड़े ही समय में बड़ी रकम जमा हो जाय, जिसे किसी भी आवश्यक और उपयोगी कार्य में खर्च किया जा सकता है ।

परिवार को एक इकाई मानकर चला जाय

परिवार के हर सदस्य की अपनी-अपनी निजी इच्छाएँ तथा आवश्यकताएँ होती हैं । इसके साथ-साथ पूरे परिवार की घरेलू आवश्यकताएँ ऐसी भी होती हैं कि जिनका उपयोग परिवार के सभी सदस्य करते हैं । इन आवश्यकताओं की पूर्ति कमाई करने वाले सदस्यों द्वारा होती है । परिवार में अपनी-अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति का उत्तरदायित्व गृह-संचालकों पर तो है ही, पर साथ ही हर सदस्य का उत्तरदायित्व भी यह है कि पारिवारिक-सुव्यवस्था एवं प्रगति में भरपूर सहयोग प्रदान करे । यदि हर सदस्य अपनी-अपनी आवश्यकताओं के लिए खींचतान करने लग जावें तो उनकी पूर्ति करने में व्यवधान उपस्थित हो जाता है, क्योंकि खींचतान-पूर्ण आपाधापी में परिवार का हर सदस्य अपनी आवश्यकता को महत्वपूर्ण समझता है । उसे सबसे पहले पूरी करवाने के लिए व्यग्र रहता है । ऐसी परिस्थिति में सबकी आवश्यकताएँ एक साथ पूर्ति कर देने में कठिनाई आने से परिवार के परिजन मन ही मन अशान्त और ईर्ष्यालु होने लगते हैं ।

किसी एक की आवश्यकता की पूर्ति पहले कर देने पर उस सदस्य के प्रति ईर्ष्या का विकार जग जाना स्वाभाविक है । यही ईर्ष्या अशान्ति का कारण बनती है । आय के स्रोत सीमित होते हैं । यह कैसे सम्भव है कि सभी की बढ़ी-चढ़ी आवश्यकताओं को सीमित आय के द्वारा पूरा किया जा सके ? फिर आवश्यकताओं का महत्व भिन्न-भिन्न क्रम से होता है । बीमार व्यक्ति की आवश्यकता और किसी की मौज-शौक युक्त आवश्यकता में अन्तर है । इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता है । यदि इन दोनों आवश्यकताओं के बीच खींचतान होने लगे तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बीमार व्यक्ति को कितनी हानि उठानी पड़ सकती है, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है ।

परिवार की सभी आवश्यकताओं के बीच सामंजस्य एवं सन्तुलन बना रहे इसका उत्तरदायित्व गृह-संचालकों पर होता है । कौन-सी आवश्यकता पहले पूरी की जानी है, किसे पूरी नहीं भी की गई तो धकाया जा सकता है ? किस क्रम से पूर्ति करनी है ? इत्यादि बातों के सम्बन्ध में निर्णायक गृह-संचालक पति-पत्नी ही हैं । क्योंकि इन दोनों में पति का उत्तरदायित्व बाहर से वस्तुएँ जुटाना एवं धनोपार्जन करना है किन्तु वस्तुओं और धन का परिवार में औचित्यपूर्ण उपयोग पत्नी ही करती है । परिवार की आवश्यकताओं को उचित ढंग से वितरण करना पत्नी के अधिकार में है । पत्नी ही अपने विवेक के द्वारा उपलब्ध आय एवं वस्तुओं का उचित एवं निष्पक्षतापूर्वक वितरण करके घर में सामंजस्यपूर्ण परिस्थिति का निर्माण करती है ।

परन्तु परिवार में पत्नी जब स्वार्थ के वशीभूत होकर केवल अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में ही ध्यान देने लगती है अथवा अहंकार के वशीभूत होकर यह सोचने लगती है कि उसका पति कमाता है, इसलिए अधिक आवश्यकताओं का उपभोग करने का अधिकार भी उसी को है । इन दो कारणों को सामने रखते हुए पत्नी घर में अपनी आवश्यकताओं को अधिक महत्व देने लगती है । फिर चाहे परिवार में कोई बीमार हो या शिक्षा सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण आवश्यकता आ पड़ी हो, लेकिन पत्नी को तो अपने विलासी सामान की ललक है । ऐसी परिस्थिति में परिवार की आवश्यकताओं के बीच असन्तुलन उपस्थित हो जाता है । यही असन्तुलन धीरे-धीरे परिवार में दरारें उत्पन्न करता है । इधर यदि पति निष्पक्षतापूर्वक परिवार की आवश्यकताओं के प्रति निरीक्षण नहीं कर पाता है तो और अधिक असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है । जिस परिवार में पति-पत्नी दोनों परिवार की आवश्यकताओं के प्रति विमुख हो जाते हैं, तो फिर घर में क्लेश शुरू होने लगते हैं ।

इसका सीधा हल तो यही है कि पति और पत्नी को यह विचार करना चाहिए कि पूरा परिवार उन पर आश्रित है । उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति उन्हीं के द्वारा हो सकेगी । यदि इसके प्रति वे अनुत्तरदायी रहे तो घर के लोगों की प्रगति में बाधा हो सकती है । पत्नी का तो प्रमुख कर्त्तव्य है कि उसमें विलासी आवश्यकता और स्वास्थ्य व शैक्षणिक आवश्यकता के बीच स्पष्ट और महत्वपूर्ण अन्तर समझने का प्रयत्न करे । उसे सारे परिवार को एक इकाई के रूप में मानना चाहिए । जब उसका दृष्टिकोण सम्पूर्ण परिवार एक इकाई है, ऐसा हो जाता है तो फिर वह सारे परिवार की आवश्यकताओं के प्रति एक इकाई के रूप में विचार करेगी और ऐसा ही कदम बढ़ावेगी । पारिवारिक इकाई के मध्य पत्नी अपनी आवश्यकताओं को व परिवार के परिजनों की आवश्यकताओं को औचित्य की तुला पर तौल कर ही पूरा करने का उपाय निकालेगी । इस समझदारी के साथ यदि पत्नी ने निर्णय लिया तो परिवार का सामञ्जस्य एवं संतुलन बना रहेगा ।

इसके लिए पत्नी को गम्भीरतापूर्वक घर की आय पर विचार करके निर्णय लेना चाहिए । उसे घर का संतुलित बजट तैयार करना चाहिए । उस बजट में अनिवार्य आवश्यकताओं और बचत को प्राथमिकता देनी चाहिए । इसके पश्चात् यदि आय में गुंजाइश हो तो पत्नी निष्पक्षतापूर्वक एवं विवेक के साथ यह देखे कि परिवार में किस सदस्य की महत्वपूर्ण अन्य आवश्यकता है । उसे पूरी करना चाहिए । यदि प्रतिमाह इस प्रकार ध्यान पत्नी या पति रखते रहें तो परिवार के परिजनों में धैर्य रहेगा और खींचतान नहीं हो पावेगी क्योंकि वे समझ लेंगे कि महत्वता के आधार पर बिना कहे आवश्यकताओं की पूर्ति होती है फिर आपा-धापी करने में कोई तुक नहीं है ।

गृह-संचालक की पत्नी को दूसरों की नकल करके अपनी आवश्यकताएँ नहीं बढ़ानी हैं । अपनी क्या आवश्यकताएँ हैं और उन्हें अपने पति की आय की सीमा में रखा जाना कहाँ तक सम्भव है आदि बातों का ध्यान रखते हुए, निर्णय लिया जाना चाहिए । इससे घर में प्रसन्नता भी बनी रहेगी ।

पत्नी ने घर की आवश्यकताओं को समझकर या समय बिताने की दृष्टि से नौकरी कर ली है । इसके द्वारा आप अपनी अनेक आवश्यकताओं को पूरी कर लिया करती हैं । ऐसे अवसर पर पत्नी के मन में अहंकार पनप सकता है कि उसे पति की आय पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं है । यह स्वयं अपनी निजी आमदनी से व्यय पूरा कर लेती है । ऐसी दशा में वह पति के प्रति और परिवार के परिजनों के प्रति उपेक्षा के भाव रख सकती है । इससे मनोमालिन्य बढ़ता है और घर में कलह की वृद्धि होती है ।

पति की अपनी निजी आवश्यकताएँ भी होती हैं । हो सकती हैं, उनमें से बहुत-सी पत्नी को नहीं रुचती हों अथवा वे आवश्यकताएँ खर्चीली होने पर जिनके कारण परिवार के बजट पर भार पड़ता हो । यदि पत्नी इसमें शीघ्र हस्तक्षेप करने का प्रयत्न करेगी तो दाम्पत्य में व्यर्थ का मैल बढ़ेगा । इसके लिए पति को खास अच्छे मूड में समझा दिया जाना उत्तम है, यदि आप समझती हैं कि पति को बाहर के पेशे के कारण कुछ आवश्यकताएँ लगती हैं, जो आपके लिए व्यर्थ हैं, पर पेशे की दृष्टि से आवश्यक हैं तो उनमें पत्नी को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए ।

गृह-संचालक अथवा परिवार के कमाऊ सदस्यों की पत्नियों का विशेष उत्तरदायित्व है कि वे पूरे परिवार की सुख-सुविधा एवं प्रगति का उदारतापूर्वक ध्यान रखें । जब वह यह अच्छी तरह जानती हैं कि परिवार में वही कर्त्ता-धर्त्ता हैं और अगुआ हैं तो फिर अगुआ को तो अपने पीछे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वालों का ध्यान रखना चाहिए । इन्हीं आधारों पर पत्नी को एक बार अपनी आवश्यकताओं को त्यागना पड़े तो उससे पीछे नहीं हटे ।

अपनी आवश्यकताओं में कमी करके सादगी का जीवन जीते हुए घर की जिम्मेदार महिलाएँ परिवार के अन्य सदस्यों के लिए अनुकरणीय आदर्श उपस्थित कर सकती हैं । त्याग का प्रभाव आपके पति और परिवार के परिजनों पर भी पड़ेगा । त्याग के बदले की भावना का जागरण परिवार के परिजनों के हृदय में होगा । परस्पर का त्याग भरा वातावरण सम्पूर्ण परिवार में संतुलन एवं सामञ्जस्य स्थापित कर देगा ।

पारिवारिक सुव्यवस्था

सुखी परिवार संगठित समाज का मेरुदण्ड है । परिवार से ही समाज को सच्चे नागरिक और समाज सेवक प्राप्त होते हैं । बालक की उत्पत्ति परिवार में होती है और उसके चरित्र का निर्माण यहीं से प्रारम्भ होता है । उसकी प्रारम्भिक शिक्षा भी परिवार में ही सम्पन्न होती है । बड़े होने पर मनुष्य का व्यक्तिगत जीवन परिवार में ही व्यतीत होता है और मनुष्य के भावों की दुनिया परिवार ही है । संसार के कर्मयुद्ध से विरत होकर मनुष्य परिवार में ही विश्राम पाता है और अन्त में परिवार के बीच में अपनी इहलीला समाप्त करता है । इस प्रकार मनुष्य का सारा जीवन परिवार की छाया में पलता है । 'मनोवैज्ञानिक,' अध्ययन से पता चलता है कि 'वैज्ञानिक' 'कवि', 'सैनिक', 'समाज सुधारक' या 'चोर' और 'डाकू' प्रत्येक के व्यक्तित्व का निर्माण परिवार में ही होता है । इस दृष्टि से परिवार के संगठन और सुधार की ओर ध्यान देने की नितांत आवश्यकता है । नीचे कुछ ऐसे सुझाव दिये जाते हैं, जिनसे उपर्युक्त आवश्यकता की पूर्ति में बहुत कुछ सहायता मिल सकती है ।

सर्वप्रथम, परिवार का पुनःसंगठन एक नये प्रजातांत्रिक आधार पर होना चाहिए । प्राचीनकाल में एक बड़े-बूढ़े के हाथ में परिवार की बागडोर होती थी । उसकी इच्छानुसार ही सारे कार्य किये जाते थे । इस व्यवस्था के मूल में प्राचीन आर्थिक व्यवस्था थी । सारे परिवार का एक ही व्यवसाय होता था, जिसमें सब लोग जुटे रहते थे । अब वह व्यवस्था बदल चुकी है । एक ही परिवार में सारे नहीं लग पाते । कभी-कभी तो एक परिवार का हर एक सदस्य भिन्न-भिन्न व्यवसाय में लगा देखा जाता है । स्पष्ट है कि आज के परिवार के सदस्य अन्योन्याश्रित नहीं हैं, इसीलिए परिवार छिन्न-भिन्न हो जाता है । 'नौकरी' और 'मजदूरी' का अधिकाधिक प्रचलन होने से वह स्थिति उत्पन्न हो गयी है । अतः एक व्यवसाय के आधार पर परिवार का संगठन असम्भव है । उसके लिए दूसरा आधार चाहिए । वह आधार है परिवार के सदस्यों की सर्वनिष्ठ आवश्यकताएँ, जैसे-भोजन, वस्त्र, गृह, विवाह, शिक्षा और मनोरंजन । इन प्रमुख आवश्यकताओं की पूर्ति के बिना कोई नहीं रह सकता । अतः परिवार का उद्देश्य इन आवश्यकताओं को सरलता और मितव्ययतापूर्वक कराने में सहायता देना रखा जाय । यदि इनकी पूर्ति परिवार के केन्द्रीय शासन के संरक्षण में हो, तो समय और धन दोनों की बचत होगी । यह ऐसी आवश्यकताएँ हैं, जिन्हें प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी प्रकार पूरा ही करता है और अलग-अलग पूरा करने में खर्च अधिक बैठता है ।

उपर्युक्त आवश्यकताओं की पूर्ति को पारिवारिक संगठन का आधार बनाने के लिये पूर्व योजना की आवश्यकता है और वह योजना भी व्यावहारिक होनी चाहिए । साथ ही उस योजना का संचालन परिवार के योग्यतम सदस्य के हाथ में होना चाहिए, जिसमें स्नेह, उदारता, परिश्रम, त्याग और नेतृत्व के गुण अवश्य हों । ऐसे व्यक्ति के चुनाव के लिए तटस्थ भाव से सोचना होगा । शोभा तो इसी में है कि संचालन का भार किसी न किसी वयोवृद्ध व्यक्ति के हाथ में हो परन्तु वयोवृद्ध होने से ही नेतृत्व के गुण किसी व्यक्ति में नहीं आ जाते । वे गुण सहज और प्राकृतिक हैं । बहुत से अयोग्य व्यक्तियों को वृद्धावस्था में यह शासन भार मिल जाता है और परिवार नष्ट हो जाता है । अतः शासन भार को सम्हालने वाले योग्यतम व्यक्ति का चुनाव प्रजातांत्रिक शैली में होना चाहिए । इस सम्बन्ध में वयोवृद्धजनों का हठ बड़ा हानिकारक होता है । कोरी भावुकता और परम्परा-प्रेम का त्याग आवश्यक है ।

परिवार के सदस्यों को आवश्यकताओं की समान रूप से भली-भाँति पूर्ति न होने के कारण ही वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष, फूट और शारीरिक तथा मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं और प्रत्येक सदस्य निराशा, हतोत्साहता और चिन्ता से पीड़ित रहता है । सबकी आवश्यकताओं के समान रूप से पूरे न होने का कारण है पूर्व-योजना का अभाव । प्रायः ऐसा देखा जाता है कि सदस्यों की क्या व्यक्तिगत आवश्यकताएँ हैं, इसे कोई जानता भी नहीं । यदि यह ज्ञात भी हो जाय, तो उन्हें पूरा करने का साधन-धन पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलता । भारतीय परिवारों का धनाभाव प्रसिद्ध है । शायद ही एक आध परिवार ऐसा मिलेगा, जिसमें धनाभाव की समस्या न उत्पन्न हो । कारण यह है कि दुर्भाग्य से परिवार में 'दुलार' और 'लाड़-प्यार' के नाम पर निठल्ले और निकम्मे व्यक्तियों को वही सुविधाएँ माँगने का अवसर मिलता है, जिन्हें कर्त्तव्यपरायण और परिश्रमी सदस्य भोगते हैं । निर्बल और कम प्रतिभाशाली सदस्यों की सहायता करना धर्म है परन्तु उन्हें अकर्मण्य और आत्म निर्भरता शून्य बने रहने देना अनुचित है । कुछ न कमाने वाले, परिश्रम से जी चुराने वाले और फैशनपरस्त सदस्यों का तुरन्त बहिष्कार कर देना चाहिए क्योंकि वे छूत की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बीमारी के समान हैं । यदि कर्त्तव्य न पालन करने पर भी, उन्हें सब सुविधायें मिलती हैं, तो दूसरे सदस्य भी अकर्मण्य बन जायेंगे और कर्त्तव्यपरायण व्यक्ति परिवार की समस्याओं में रुचि न लेकर उदासीन हो जायेंगे । हाँ यदि कोई सदस्य दुर्भाग्य से रोगग्रसित और पंगु है, तो उसका भार वहन करना परिवार का कर्त्तव्य है ।

वही परिवार सुखी और संगठित रह सकता है, जिसके सदस्य आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी हों और कर्त्तव्य-परायण हों । ऐसे सदस्यों से ही पूर्व योजना का निर्माण हो सकता है । वर्ष में कम से कम एक या दो बार पूर्व योजना तैयार कर लेना आवश्यक है । सब सदस्यों को एक साथ मिलकर प्रमुख आवश्यकताओं के सम्बन्ध में विचार विमर्श कर लेना चाहिए और उन्हें पूरा करने के लिए जितने धन की आवश्यकता हो उसका अनुमान कर लेना चाहिए । प्रत्येक सदस्य को यह स्पष्ट बता देना आवश्यक है कि व्यक्तिगत रूप से उन आवश्यकताओं की पूर्ति में अधिक धन, समय और श्रम की जरूरत होगी । इसलिए मिलकर काम करने में लाभ है । यह बात उनकी समझ में आ जाने पर, वे प्रसन्नचित्त से अपने हिस्से का धन देने को तैयार हो जायेंगे । वर्षभर में जितने धन की आवश्यकता हो, उसे जमा करने का भार प्रत्येक सदस्य को बाँट देना चाहिए । योजना के अनुसार धन जमा हो जाने पर सब आवश्यक, सामग्री प्रतिमास खरीद ली जानी चाहिये और उसका उपयोग कर लेना चाहिए । एक बात यह अवश्य याद रखनी चाहिये कि व्यय का पूरा विवरण सभी सदस्यों के सामने प्रस्तुत कर दिया जाय अन्यथा कुछ सदस्यों के मन में सन्देह बना रहेगा । सन्देह करना मनुष्य का स्वभाव है और उसे दूर करना आवश्यक है । परिवार में आय और व्यय का लेखा जानने की उत्सुकता प्रत्येक सदस्य को होती है परन्तु परिवार के संचालक से पूछने में संकोच भी होता है । अत: यह उचित होगा कि किसी एकान्त स्थान पर उसका विवरण लिखकर टाँग दिया जाय, जो सदस्य चाहे अपनी सुविधा के अनुसार उसे देख ले ।

परिवार की आर्थिक समस्याओं और प्रश्नों के निपटाने में यदि सभी सदस्य समान रूप से भाग लेने लगें, तो पारस्परिक प्रेम और सहानुभूति में वृद्धि होगी । सच्चे प्रेम का उदय, एक साथ मिलकर कठिनाइयों का हल करने में ही होता है । इसके द्वारा सब को आपस में मिलकर बैठने, विचारों के आदान-प्रदान और आत्मीयता प्रकट करने का अवसर मिलता है । यह ठीक है कि भाई-भाई और पिता पुत्र के सम्बन्धों में सहज स्नेह होता है । परन्तु उस स्नेह को अधिकाधिक उपयोगी बनाने की आवश्यकता है । स्नेह की उपयोगिता इसी में है कि एक दूसरे की आवश्यकताओं को पूरा करने में प्रत्येक सदस्य सहायता दे । आज के युग में आर्थिक कठिनाइयाँ ही सर्वोपरि हैं । अत: पारिवारिक व्यवस्था में इन्हें ही प्रमुख स्थान मिलना चाहिए । प्राय: कहा जाता है कि रुपये पैसे का प्रश्न उठाना स्वार्थपरता है । स्वार्थपरता मनुष्य की निर्बलता भले ही हो परन्तु मानव-प्रकृति की वह एक कठोर वास्तविकता है । उसकी ओर से आँख बन्द करके बैठे रहने में हानि ही होती है ।

घर-परिवार में आर्थिक अनुशासन लागू करें

आज के घोर, आर्थिक युग में प्राय: यह देखने में आता है कि जिस प्रकार हर बात का मापदण्ड पैसा बन गया है, उसी प्रकार बच्चों के लाड़-प्यार का मापदण्ड भी पैसा बन गया है । जो व्यक्ति अपने बच्चों पर जितना अधिक खर्च करता है और जितना अधिक खर्च करने को देता है, मानो वह उन्हें उतना ही अधिक प्यार करता है ।

जहाँ माता-पिता बच्चों के प्रति अपने प्यार को इस प्रकार आँकते और अंकवाते हैं, वहाँ बच्चों ने भी अपने माता-पिता के प्यार का मापदण्ड पैसा ही बना लिया है । बहुधा देखा जाता है कि जो माता-पिता अपने बच्चों पर जिस अनुपात से खर्च करते हैं और उनको खर्च करने को देते हैं, बच्चे उसी अनुपात से उनकी ओर आकर्षित रहते हैं और दोनों पक्ष का स्वार्थजन्य आकर्षण को प्यार समझने के भ्रम में भूले रहते हैं ।

स्कूलों और कॉलेजों के लड़के अपने माता-पिता की अच्छाई-बुराई की विवेचना अधिकतर आर्थिक आधार पर करते पाये जाते हैं । जो लड़के अच्छे कपड़े पहने और ज्यादा से ज्यादा पैसा खर्च करने को पाते हैं, वे तो बढ़-चढ़कर अपने माता-पिता की तारीफ करते हैं और जो बेचारे इससे वंचित रहते हैं वे वास्तविक रूप से अच्छे होने पर भी अपने माता-पिता की प्रशंसा करने में शर्म महसूस करते हैं ।

आज अर्थजन्य प्यार का इतना बोलबाला हो गया है कि वे माता-पिता अपने बच्चों की सहज श्रद्धा से भी वंचित रहने लगे हैं, जिनके पास एक अच्छा आर्थिक आधार नहीं होता, अपितु कभी-कभी उन्हें अपनी सन्तानों की अश्रद्धा और तिरस्कार का भी पात्र बनना पड़ता है ।

धनाढय माता-पिता आत्म-अध्ययन के अनुभव पर अपने आर्थिक आधार को जीवन-भर बड़ी दृढ़ता से पकड़े हुए, आर्थिक लोभ से उत्पन्न बच्चों की प्रतिस्पर्द्धी श्रद्धा को बनाये रखने का प्रयत्न करते हैं । यहाँ तक कि वसीयत करते समय 'जब तक जिऊँ, मेरे मरने के बाद' आदि वाक्यों की व्यवस्था बड़ी सावधानी से करा लेते हैं । उन्हें सन्तानों से अधिक अपने पैसे पर अधिक भरोसा रहता है । यह सब अर्थ के प्रति बच्चों का गलत दृष्टिकोण विकसित करा देने का ही परिणाम है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

बच्चों के जरा रोने, रूठने अथवा नाराज होने पर तुरन्त पैसा देकर मनाने का अभ्यास उनके भविष्य के लिए एक भयानक भूमिका है । इसी प्रकार वे पैसे के लोभी बन जाते हैं और बेवात पर रूठकर माँ-बाप का आर्थिक शोषण करने के आदी हो जाते हैं, जो आगे चलकर परिस्थितिवश उनके बीच नापसंदगी का कारण बन सकता है ।

जो माँ-बाप अपने बच्चों को बिना समझे-बूझे मनमाना पैसा खर्च करने को देते हैं, वे न केवल उनके जीवन के साथ खिलवाड़ करते हैं, वरन् परोक्ष रूप से समाज में फैली बुराइयों को भी बढ़ावा देते हैं ।

बच्चों की भोजन, वस्त्र, दूध, नाश्ता, पुस्तकें, फीस आदि की प्रायः सारी आवश्यकताएँ जब पूरी हो जाती हैं, तब उन्हें अलग से और पैसा देने की आवश्यकता समझ में नहीं आती । यह निश्चित है कि अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाने के बाद जो धन उन्हें अलग से दिया जायेगा, उसकी वे अनावश्यक चीजों पर ही खर्च करके अपनी आदत बिगाड़ते हैं । वे उस पैसे से चाट खायेंगे, पतंग उड़ायेंगे, सिनेमा देखेंगे, पान-सिगरेट का प्रयोग करेंगे और होटल व रेस्टोरेण्टों में यार-दोस्तों के साथ बैठकर खाने न खाने वाली चीजें खायेंगे, चाय पियेंगे और गप्प मारते हुए समय गँवायेंगे और न जाने इस प्रकार की कितनी बुरी बातों के आदी बन जायेंगे । नशीली आदतें यहीं से विकसित होती हैं ।

हाथ में अनावश्यक पैसा होने से उनकी वृत्तियाँ चंचल हो उठेंगी और उनका मन पढ़ने-लिखने के बजाय घूमने-फिरने और सैर-सपाटे की ओर दौड़ेगा । अपने स्वार्थी मित्रों से घिरे रहने के कारण दुर्व्यसनी बन जावेंगे । जो आगे चलकर उनकी दुःखपूर्ण आर्थिक अस्त-व्यस्तता का कारण बनेगा ।

किन्तु इसका यह मतलब कदापि नहीं है कि मनुष्य के बच्चों की आवश्यकताएँ भी उतनी ही सीमित आवश्यकतायें हैं, जितनी कि एक गाय के बच्चे की-आवश्यकता भर दाना-पानी और रात को एक झूल बस ।

आज के समय में जिस प्रकार विविध वस्तुओं की बढ़ती हो गयी, उसी प्रकार सबकी आवश्यकताएँ भी बढ़ गयी हैं । बच्चा खेलने के लिए गैंद-बल्ला चाह सकता है, स्कूल की प्रदर्शनी में लगे बाजार से क्रय-विक्रय करने की इच्छा रख सकता है । किसी आयोजित पिकनिक में जाते समय जेब में पैसा होना जरूरी है, मेले में कोई वस्तु खरीदने के लिए लालायित हो सकता है । कभी-कभी सिनेमा देखने को जी कर सकता है । विद्यार्थी संघों अथवा समितियों में चन्दे की जरूरत पड़ सकती है । ऐसी बहुत-सी चीजें खाने की इच्छा कर सकता है, जो घर पर अच्छी प्रकार सुविधापूर्वक नहीं बनाई जा सकतीं । कोई अच्छी पुस्तक अथवा पत्रिका पढ़ने को मन हो सकता है अथवा जेब में पैसा रहने के सुखद संतोष की कामना कर सकता है, आदि बच्चे की ऐसी बहुत-सी आन्तरिक एवं सामयिक आवश्यकतायें हो सकती हैं ।

बच्चे को पैसे के दर्शन न करना अथवा उसकी सामयिक एवं अतिरिक्त आवश्यकताओं के लिए पैसे न देना भी उनके साथ अन्याय करना होगा । बच्चे को पैसे की बुराई से बचाने के लिए आर्थिक पाश को इतना न कसिये कि वह कसमसा कर दरिद्र भावना का शिकार हो जाये, पैसे-पैसे को तरस जाये और इस प्रकार तो वह अनुचित ढंग से पैसा पाने का प्रयत्न करने लगेगा ।

आप अपने बच्चे को पैसा दीजिए, किन्तु एक निश्चित सीमा तक जिम्मेदारी के साथ । उसे 'हर बात पर पैसा, हर बात पर पैसा' का आदी न बनाइये और ना हीं उसको बार-बार पैसा देकर पीछा छुड़ाने की कोशिश कीजिए और यह बात तो मस्तिष्क से बिल्कुल निकाल दीजिए कि बच्चे को बहुत अधिक शान-शौकत से रखना अथवा खर्च के लिए अधिक से अधिक धन देना कोई आर्थिक गौरव अथवा सामाजिक प्रतिष्ठा की बात है ।

बच्चे के अतिरिक्त आवश्यकता के औचित्य, अनौचित्य का पता इस ढंग से लगाइये कि वह यह न समझने पाये कि उसकी माँग पर सन्देह किया जा रहा है अथवा उसकी जासूसी की जा रही है । बच्चा जब पैसा माँगे तब प्यार से उसकी जरूरत की बावत पूछिए, तब उसे न तो झिड़किये और न शर्मिन्दा ही कीजिए, वरन् प्यार से कहिए कि देखो तुम जिस काम के लिए पैसा चाहते हो उसको स्वयं बुरा समझते हो । बच्चे पर इसकी स्वस्थ प्रतिक्रिया होगी और शरमाकर फिर कभी दुरुपयोग के लिए पैसे की माँग नहीं करेगा और यदि देखें कि उसकी माँग उचित है तो अवश्य उसे पूरा करने का भरसक प्रयत्न कीजिए ।

बच्चे को अपने साथ बाजार ले जाइये । कोई वस्तु खरीदने में उसकी राय लीजिए । यदि उसकी राय आपकी राय से साम्य खा जाये और यदि कोई विशेष अड़चन न हो तो अपनी देख-रेख में पैसे उससे गिनाकर दिलाइये इससे बच्चे में आर्थिक लेन-देन की चेतना का विकास होगा और वह अपने अन्दर एक जिम्मेदारी महसूस करेगा । कोई भी वस्तु जिसे आप अधिक मूल्य के कारण खरीदना न चाहें उसमें बच्चे की अस्वीकृति शामिल कीजिये । इससे उसमें मितव्ययता का भाव बढ़ेगा और पैसे का महत्व समझेगा ।

बच्चे को पैसा दीजिए और माँ के पास जमा कराने की आदत डालिए । कभी-कभी अपने पास पैसे की कमी बतलाकर उससे उधार माँगिए और उसकी बचत की सराहना करते हुए कहिए "वाह भाई, इस समय तुम्हारी बचत ने हमारा अटकाव दूर कर दिया ।" इस प्रकार उसमें आकस्मिक आवश्यकता के लिए बचत करने का उत्साह बढ़ेगा ।

उसकी बचत से उसे स्थाई शोभा, स्थाई उपयोगिता अथवा स्थाई अभिरुचि की चीजें खरीदवाइये, जिससे उसमें उपयोगिता तथा सौन्दर्य के प्रति अभिरुचि उत्पन्न होगी ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधिकतर बच्चे के अतिरिक्त व्यय की मात्रा निश्चित धनराशि में रखिये और उसको घर का आय व्यय बनाते समय पास बिठाइये । इस प्रकार उसमें अपने व्यय का बजट बनाने की अभिरुचि उत्पन्न होगी, जिससे वह पैसे के उपयोग की कला सीखेगा । पैसा जमा करने की अपेक्षा उसका सुनियोजन उसे सिखाइये । जहाँ तक हो सके उसे अतिरिक्त व्यय किसी ऐसे काम के लिए दीजिए, जिसे वह कर सके और जो उसके विकास के लिए उपयोगी हो । इस प्रकार उसमें श्रम करने की आदत तो पड़ेगी ही, साथ ही धनोपार्जन की कठिनता को भी समझने लगेगा ।

इस प्रकार यदि बच्चे में आर्थिक अनुशासन की प्रवृत्तियाँ बाल्यकाल से ही विकसित कर दी जाती हैं तो वे आगे चलकर उसके जीवन के लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध होती हैं । यदि बच्चे में आपने अर्थ-नियन्त्रण की क्षमता का विकास कर दिया तो समझिये आपने उसके जीवन की बहुत-सी कठिनाइयाँ प्रारम्भ में ही दूर कर दीं ।

किन्तु इसके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि माता-पिता इस विषय में स्वयं भी पूर्णतया अनुशासित रहें । किसी क्षेत्र में पैसे का अपव्यय तो नहीं ही करें, अपितु कोई ऐसी वस्तु भी न खरीदें जो एकमात्र उनकी एकाकी अभिरुचि की ही और यदि उसे खरीदते ही बने तो उसमें घुमा-फिराकर बच्चे की अभिरुचि भी शामिल कर लीजिए ।

समझ लीजिए कि जीवन-निर्माण एक शिल्प है, जिसका अच्छा-बुरा होना बहुत कुछ आर्थिक नियंत्रण पर निर्भर करता है । बिना समझे-बूझे बच्चे के बार-बार जिद करने पर पैसा देकर पीछा छुड़ाने की कोशिश न कीजिए । उसके बुरे स्वभाव के सामने आत्मसमर्पण की शीघ्रता उसके स्वभाव को और भी बिगाड़ देगी ।

किसी हद तक ठीक होने पर भी इस भावना से कदापि प्रेरित न होइये-"कि जो कुछ है या जो कुछ कमाते हैं, है तो सब बच्चों के लिए ही, उन्हें खाने-उड़ाने दो ।" आपकी यह असंस्कृत उदारता बच्चों के लिए हानिकारक सिद्ध होगी । वैसे तो समाज में जिसके पास जो कुछ है उसके कुछ न कुछ अंश पर धर्म, देश, समाज एवं परोपकार का नैतिक अधिकार है, फिर भी यदि आप अपने प्रत्येक पैसे पर केवल अपने बच्चों का ही अधिकार मानते हैं, तो भी उसे खाने-उड़ाने की स्वतन्त्रता देकर उनको आप अपराधी बनाते व नैतिक दृष्टि से कमजोर कर देते हैं । अन्य दुर्व्यसनों की भाँति अपव्यय भी एक ऐसा व्यसन है जो बचपन से लग जाने पर आजीवन पीछा नहीं छोड़ता । अतएव, अपने बच्चों को अर्थ-अनुशासन की स्वस्थ शिक्षा देकर उनका हित कीजिए । उन्हें न तो पैसे का दुश्मन ही बनाइये और न दास ही । अपितु एक सच्चा मित्र बनाकर अभिभावक का ठीक-ठीक कर्त्तव्य पालन कीजिए ।

बचत की प्रवृत्ति घर-घर में बढ़े

हमें बचत का लाभ गृहस्थी के संचालन हेतु आवश्यक मदों के लिये प्राप्त करना चाहिए । जिस प्रकार सद्गृहस्थ के लिए स्वाध्याय-योजना आवश्यक है उसी प्रकार आकस्मिक खर्चों के लिये धनराशि बचा रखना भी जरूरी है ।

यह बचत पति-पत्नी दोनों ही मिलकर करें । थोड़ी रकम के लिये तो अपने घर में ही एक पात्र रखा जा सकता है, जिसमें नियमित रूप से कुछ धनराशि डाली जा जाती रहे और जिससे विशेष आवश्यकता पड़ने पर ही पैसे निकाले जायें तथा निकालने के बाद प्रबन्ध होते ही उतने रुपये उसमें डाल दिये जायें । कस्बों और गाँवों में तो घरेलू बैंकों की यही विधि है । कई शहरों में अब बड़े बैंकों ने भी घरेलू बैंकों की यह योजना शुरू की है, जिसमें बैंक की ही ओर से एक पात्र खातेदार के घर में लाकर रख दिया जाता है, जिसका पूरा-पूरा हिसाब बैंक रखता है । इस पात्र की चाबियाँ बैंक में रहती हैं । एक सीमा के बाद इसमें से अधिक धन बैंक आपकी जानकारी में अपने पास रख लेता है, जो आवश्यकता के समय हमें आसानी से मिल सकता है ।

प्रत्येक स्थिति में, अब बचत के वे पुराने तरीके हममें से किसी को नहीं अपनाना चाहिए, जिनसे कि अन्त में प्रायः हानि ही होती है । ऐसी घटनाएँ प्रायः सुनने में आती हैं कि अमुक वृद्धा ने सौ-सौ के पचास या सौ नोट जमाकर मिट्टी की हाँड़ी में गाढ़ रखे थे, जो बरसों तक सीलन भरी भूमि में रखे रहने से सड़-गल गये, रंग-बदरंग हो गये और रोना कलपना ही हाथ लगा । पेटी-संदूक में भी बहुत समय तक अधिक नोट नहीं रखने चाहिए, क्योंकि कागज के नोटों में दीमक आदि का या कभी कोई तेज द्रव पड़ जाने का डर बना रहता है । अथवा कोई भी ऐसा पदार्थ-गोली आदि रखे-रखे उसमें अपना असर, धब्बा, रासायनिक प्रतिक्रिया आदि छोड़ सकती है । ऐसे खतरों से मुक्त रहने और अपने पैसों को सुरक्षित रखने के लिए बैंकों का सहारा लेना ठीक रहता है । डाकघरों की बचत योजनाओं द्वारा भी यह लाभ आसानी से प्राप्त हो सकता है ।

अधिक अच्छी स्थिति तो यही है कि पति-पत्नी दोनों का संयुक्त बचत खाता हो । या फिर दोनों को यह पता रहे कि हमारे साथी का बैंक में खाता है और उसे विश्वास हो कि इस राशि का घर के ही लिये सदुपयोग होना है । परन्तु यदि किन्हीं कारणोंवश पति से छिपाकर ही रुपये रखने की बाध्यता हो, तो भी बैंकों का सहारा ही लेना चाहिए । वहाँ धनराशि भी सुरक्षित रहेगी, उचित ब्याज भी मिलेगा ।

बैंकों की कई बचत योजनाएँ होती हैं । जैसे बचत खाता या सेंविंग्स अकाउन्ट-आवर्ती जमा या रेकरिंग डिपाजिट और फिक्स्ड डिपाजिट या सावधि जमा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

योजना । बैंक में खाता खोलना कोई कठिन नहीं । बस, एक ऐसा परिचित होना चाहिए, जिसका पहले से बैंक में खाता हो या जिसे बैंक वाले भली-भाँति जानते हों ।

मुख्य-मुख्य बचत खातों की संक्षिप्त जानकारी यों है- (१) सेविंग्स स्कीम या बचत-योजना अथवा बचत खाता (सेविंग्स-अकाउन्ट) यह खाता न्यूनतम ५ रुपये से खोला जा सकता है । पर चैकबुक तभी मिलेगी, जब सौ रुपये से अधिक हो जायें । कम से कम सौ रुपये का बैलेन्स खाते में बना रहे, तभी चेक-बुक मिली रहती है । इस खाते में कभी भी रुपया जमा किया जा सकता और निकाला जा सकता है । ब्याज-दर इसमें साधारण होती है ५ से ६ प्रतिशत तक । (२) रेकरिंग डिपाजिट या आवर्ती जमा योजना-इसमें ५, १०, १५, २०, २५ आदि किसी निश्चित रकम से खाता खोला जा सकता है, जो ५ की ही पूरक संख्या हो यानी जिसमें ५ का भाग जा सके । फिर इसमें प्रतिमाह उतने ही रुपये जमा करने होते हैं । उतनी ही रकम बार-बार जमा करने के कारण ही इसे आवर्ती जमा योजना कहते हैं । इसे मनचाही अवधि के लिये खोला जा सकता है ।-१ साल, २ साल, ३ साल या अधिक । इसकी अवधि पूरी होने पर ब्याज सहित मूलधन वापस मिल जाता है ।

(३) सावधि जमा या फिक्स्ड डिपाजिट इस योजना में चाहे जितनी धनराशि जितने समय तक के लिये सुरक्षित रखी जा सकती है । पर कम से कम १००) रु० हों । अधिक भी उसकी पूरक रकम हो । यानी दोसौ, तीनसौ, चारसौ, पाँचसौ आदि । पाँच साल से अधिक अवधि के लिये जमा करने पर १० प्रतिशत वार्षिक ब्याज दिया जाता है ।

यदि महिलाएँ किसी रोजगार के लिये ऋण चाहें, तो वह भी जमानत पर बैंकों द्वारा दिया जाता है । जिसे किश्तों में अदा किया जा सकता है ।

बैंक के खाते नन्हें-मुन्नों के नाम पर भी खोले जा सकते हैं । उस हेतु माता-पिता या संरक्षक की सहमति आवश्यक होती है ।

सभी बैंक-खाते उस बैंक की एक शाखा से दूसरी शाखा के लिये स्थानान्तरित किये जा सकते हैं ।

ग्रामीण क्षेत्रों में अब ग्रामीण-बैंक भी खुलने लगे हैं । साथ ही प्रत्येक क्षेत्र के प्रमुख बैंक (लीडिंग बैंक) की शाखाएँ प्रत्येक कस्बे व बड़े गाँवों में खुल गई हैं । अनपढ़ लोग भी उसका उपयोग उतनी ही सहजता से कर सकते हैं । इसलिये अब रुपया-पैसा भूमितल में छिपा-गढ़ाकर रखने की आवश्यकता रही नहीं है ।

बैंकों द्वारा स्वयं भी बचत-खातों के लिये नागरिकों से सम्पर्क कर उन्हें प्रोत्साहित किया जाता है । बड़े शहरों में पाठशालाओं में भी ऐसे बचत-खाते खोले जाने लगे हैं । बैंक-प्रतिनिधि स्वयं ही विद्यालय जाकर बच्चों के खाते खोलते, उन्हें खाते की पुस्तिका (पास बुक) देने और प्रति माह खुद ही जाकर उनसे पैसे ले आते हैं । इससे उन बच्चों में बचत का चाव पैदा हो जाता है और वे अपने खाते का बैलेन्स बढ़ाने की ओर ध्यान देने लगते हैं ।

लम्बी अवधि तक के लिये जमा की जाने वाली रकम के एवज में बैंक ऋण भी देते हैं । साथ ही महिलाएँ चाहें तो सिलाई-मशीन या अन्य घरेलू उद्योग सम्बन्धी मशीनें बैंक दिला देते हैं, जिसकी रकम आसान किश्तों में अदा करनी होती है । इस तरह के ऋणों के लिए जिन नियमों की पूर्ति करनी होती है वे बहुत जटिल नहीं होते ।

बैंकों की इन सुविधाओं का लाभ उठाया जाना चाहिए तथा इसमें अनावश्यक संकोच में नहीं पड़ना चाहिए । साथ ही बचत की प्रवृत्ति प्रत्येक परिवार में बढ़नी चाहिए । क्योंकि घर-गृहस्थी में ऐसे आकस्मिक अवसर आते रहते हैं, जब अपनी यह बचत-पूँजी ही काम आती है अन्यथा स्थिति बड़ी कष्टप्रद हो जाती है, दूसरों से ऋण लेना पड़ जाता है, जो कि देने वाले की शर्तों पर हमें लेना पड़ सकता है । साथ में चार बातें इधर-उधर फैलने का डर अलग से । ऐसी स्थिति से बचे रहने का प्रबन्ध करना ही उत्तम है ।

पारिवारिक आय-व्यय

पारिवारिक खर्च की समस्या सम्मिलित कुटुम्बों में कदाचित् सबसे महत्त्वपूर्ण और उत्तरदायित्वपूर्ण है । हमने अनेक बड़े परिवारों का विशेष अध्ययन किया है तथा हमें ज्ञात हुआ है कि परिवारों के मुखिया आय-व्यय की कला से सर्वथा अनभिज्ञ हैं । ८० प्रतिशत कर्ज से ग्रसित हैं । अथवा अनीति की राह पर जा रहे हैं । प्रत्येक व्यक्ति अधिक से अधिक व्यय करना चाहता है । चुपचाप कुछ एकत्रित रखकर परिवार की सम्मिलित पूँजी का क्षय करता है । कुछ स्थानों पर स्त्रियाँ बड़ी मूर्खतापूर्ण काम करती हैं । गहनों, विवाहों, दिखावों में अनाप-शनाप व्यय होता है । कुछ रूढ़िवादी अशिक्षित मूर्ख स्त्रियाँ जो धर्म के विषय में कुछ नहीं समझतीं पात्र कुपात्र का विवेक न कर खूब दान करती हैं । एक परिवार में एक मुखिया ने अपनी पत्नी की जिद से तंग आकर अपनी सामर्थ्य से बाहर निकलकर एक कन्या पाठशाला प्रारम्भ की और दो वर्ष में दिवाला निकाल बैठे । दूसरे सज्जन ने कई छोटे-मोटे कारखाने प्रारम्भ किए । एक महानुभाव ने एक डेयरी फिर चक्की, तिल पेलने की मशीन लगाई पर सभी में हानि उठा कर ३०-३५ हजार रुपया का ऋण परिवार पर डाल गये । एक बड़े रईस अफीम के व्यसन से सब कुछ गँवा बैठे । कई स्थानों पर पुत्र-पुत्रियों की शिक्षा उचित नहीं हुई और पिता के मरते ही पूरा परिवार नष्ट-भ्रष्ट हो गया । एक जमींदार साहब ने घर की खेती की । नौकर रख कर जमीन की जुताई कराई किन्तु व्यय-आय के अनुपात में इतना हो गया कि गाँठ की पूँजी भी नष्ट हो गई । एक सज्जन के इतने पुत्र-पुत्री हो गये कि बेचारे उनकी शिक्षा, देख-रेख तथा विवाह करते-करते नष्ट हो गये । हम एक ऐसे प्रतिष्ठित पूँजीपति को जानते हैं जो व्यसन-व्यभिचार में बहुत कुछ गँवा कर दर-दर के भिखारी बन गये और कर्ज के लिए सबके आगे हाथ फैलाये फिरते हैं ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र ५.३५

सम्मिलित कुटुम्ब में ऋण क्यों होता है ?

१. आय-व्यय की कला से अनभिज्ञता प्रथम कारण है । जिससे परिवार नष्ट होते हैं । यह कला हमें अपने खर्च को सही रूप से व्यय करना, भविष्य के लिए कुछ संग्रह करना, बीमारी, विवाह, मृत्यु, मकान, मवेशी, जायदाद इत्यादि खरीदने की सुविधाएँ प्रदान करती है । २. स्वार्थपरता वह दुर्गुण है जिससे परिवार नष्ट होते हैं । हर व्यक्ति अपना सुख देखता है । बढ़ा-चढ़ा कर व्यय करता है । झूठी शान में रहता है या रुपया चुराकर रखता है । खुदगर्जी साक्षात राक्षस है । इससे कर्ज बढ़ता है । ३. अधिक बच्चे उत्पन्न करना नैतिक और आर्थिक दोनों ही दृष्टिकोण से बुरा है । सारी आयु बच्चों में ही नष्ट हो जाती है । मरने के बाद बच्चे रोते-फिरते हैं । ४. पुराना ऋण जिन परिवारों पर पुराना ऋण चला आता है, वह कभी भी नहीं दिया जा पाता । सूद बढ़ता है । ऋणग्रस्त समझता है कि चूँकि तकाजा नहीं होता, उससे कर्ज न माँगा जायेगा । जब वह मूल से आगे बढ़ जाता है, तो घर नीलाम हो जाता है । ५. लम्बी बीमारियाँ यक्ष्मा, पुरानी बवासीर, दुर्बलता, पेट के रोग, दाँतों के रोग, हृदय के रोग, पागलपन इत्यादि लम्बी बीमारियाँ हैं । इनमें चाहे जितना खर्च करो, परिवार पनप ही नहीं पाता । वृद्धों की बीमारियाँ निरन्तर चलती रहती हैं । यदि कहीं कोई ऑपरेशन कराने का अवसर आ गया, तो वह बड़ा कष्ट-साध्य हो जाता है । पुनः-पुनः बच्चों का होना बड़ा खतरनाक है । इसमें व्यय भी होता है और बड़ी बीमारियाँ, जैसे-प्रसूत, ज्वर, यक्ष्मा इत्यादि हो जाने का भय रहता है । ६. बच्चों की शिक्षा आधुनिक शिक्षा पद्धति बड़ी खर्चीली है । यदि कोई अपने बच्चे को उच्चतम शिक्षा दिलाना चाहता है, तो उसे पुस्तकों, फीस, बोर्डिंग तथा आने-जाने के बहुत से व्यय करने पड़ते हैं । विद्यार्थीगण लापरवाह, व्यसनी, फिजूलखर्च, दिखावा पसन्द, सिनेमा और फैशनपरस्त होते हैं । माँ-बाप से खूब रुपया माँगते हैं और कमाऊ बनकर पृथक गृहस्थी ले बैठते हैं, पिता को कर्जदार छोड़ जाते हैं ।

आप की समृद्धि व्यय पर निर्भर है

जितना आप व्यय करते हैं, उस पर आपकी समृद्धि निर्भर है । आप कितना कमाते हैं, यह प्रश्न इतना महत्वपूर्ण नहीं, जितना खर्च है । आप सौ रुपया कमाते और डेढ़ सौ खर्च करते हैं, तो आपके सौ रुपये किस काम के ? बढ़े हुए पचास रुपये के लिए आप या तो चोरी करेंगे, गाँठ काटेंगे, धोखा देंगे या अनीति की राह पर चलेंगे । आपका खर्च करना आपकी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करेगा । चाहे आपकी आमदनी कुछ भी क्यों न हो ?

आपके खर्च अधिक होने का अभिप्राय है कि आपकी आवश्यकताएँ बढ़ी हुई हैं । उनमें कुछ जरूरी और कुछ व्यर्थ की विलासितापूर्ण गन्दी आदतें हैं । आय के अनुसार खर्च की योजना बनानी चाहिए ।

यदि यह कहें कि कर्ज सबसे बुरी गुलामी है तो अतिशयोक्ति न होगी । जो कर्ज लेता है, अपने गले में दस मन का पत्थर बाँध लेता है । उसी भार से वह निरन्तर क्षय को प्राप्त होता है ।

होरेस ग्रीनले बड़े अनुभवी व्यक्ति थे । वे कहा करते थे-"भूख, ठण्ड, चिथड़े, कठिन कार्य, घृणा, मजबूरी और झिड़कियाँ बड़ी अप्रिय चीजें हैं, लेकिन कर्ज इन सभी से बुरा और दुःख देने वाला राक्षस है । कभी ऋणग्रस्त न होइये । यदि आपके पास चार आने हैं और आप एक समय का भोजन भी नहीं खरीद सकते, तो भी ऋण न लीजिए । चने भूनकर पेट की क्षुधा शांत कीजिए । एक पैसे का भी कर्ज दूसरे दिन के लिए न रखिए अन्यथा आपको मीठी नींद का सुख प्राप्त न होगा ।"

कौबडन ने कहा है कि संसार के मनुष्य दो भागों में विभाजित हो सकते हैं । (१) वे जिन्होंने मितव्ययता का अभ्यास डालकर अपनी आय में से बचाया है (२) वे जो अपनी आदतों में अनियन्त्रित रहे हैं और जिन्होंने खुले हाथ से खर्च किया है- मितव्ययी और फिजूलखर्च । बड़े-बड़े आलीशान भवन, पुल, कारखाने, जहाज और दुनिया में बड़े-बड़े कार्य जिनसे हमारी संस्कृति का विकास हुआ है और सुख की वृद्धि हुई है, प्रथम श्रेणी के व्यक्तियों द्वारा हुई है । जिन लोगों ने अपने हाथ में आये हुए रुपये का अपव्यय किया है, हमेशा मितव्ययी श्रेणी के गुलाम रहे हैं । प्रकृति का ऐसा ही नियम रहा है ।

यदि आप व्यापार कर रहे हैं, तो दूसरी बात है अन्यथा ऋण न लीजिए । न कर्ज लीजिए, न दीजिये । यदि कर्ज लेंगे, तो कर्ज देने वाला आपको घृणा और हीनत्व की दृष्टि से देखेगा । यदि आप कर्ज देंगे, तो कर्ज का रुपया वापस आना कठिन है । जब आप रुपया लेने जायेंगे, तो कर्जदार आपको राक्षस समझेगा । यदि आप किसी को रुपया देते ही हैं, तो वापस लेने की इच्छा त्याग दीजिए ।

यदि रुपया धीरे-धीरे आता है, तो उसी अनुपात से खर्च करते रहिये । यदि कमाई अच्छी हो रही है, तो उसे अविवेक से खर्च न कर बैठिये प्रत्युत बीमारी, बुढ़ापे, विवाहों और संकटकाल के लिए संग्रह करके रखिये । जैसे-जैसे आप बड़े होंगे, आपका कुटुम्ब रिश्तेदारी बढ़ेगी, स्वास्थ्य गिरेगा, वैसे-वैसे आपको अधिकाधिक रुपयों की आवश्यकता प्रतीत होगी । बहुत से व्यक्ति प्रारम्भ में बड़े सतर्क रहे, पर बड़े होकर सठिया गये और नष्ट हो गये ।

अमीर बनने के लिए उतावले न बनिये । यद्यपि यह सत्य है कि हममें से प्रत्येक अमीर नहीं बन सकता किन्तु नियन्त्रण, ईमानदारी और मितव्यय वे ता से हम गरीबी से बच सकते हैं और प्रतिष्ठित जीवन व्यतीत कर सकते हैं । गरीब वे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लोग नहीं हैं जिनके पास कम है, प्रत्युत वे हैं, जो अपनी आवश्यकताएँ बढ़ाकर बहुत अधिक वस्तुएँ चाहते हैं ।

आपकी आवश्यकताएँ आसानी से पूरी हो सकती हैं । उनके लिए आपको डरने की जरूरत नहीं है । मनुष्य की आवश्यकताएँ भोजन, साधारण वस्तु और मकान आपको प्राप्त हो जायेंगे । आपको सावधान वहाँ रहना है, जहाँ आवश्यकताएँ छोड़कर आराम और विलासिता के क्षेत्रों में प्रवेश करते हैं । विलासिता सबसे महँगी कुत्सित वस्तु है । जितने रुपये आप विलासिता–चटकीले वस्त्र, चटपटे खाने, आलीशान मकान, दिखावा, फैशन, सिगरेट, सिनेमा, पाउडर और खुशबूदार तेल में व्यय करते हैं उतने से दो बच्चों की शिक्षा का अच्छा प्रबन्ध हो सकता है ।

भविष्य के लिए बहुत बड़ी-बड़ी आशाएँ न रखिए । जिन आशाओं में आप विहार करते हैं । वे टूट-फूट सकती हैं । रुपया नष्ट हो सकता है । संचित पूँजी, व्यापार, खराब हो सकते हैं । बड़े-बड़े अनुभवी व्यापारी गलती कर बैठते हैं । जीवन में बड़ी समझदारी और सम्हलकर चलना है । जो कुछ आपके हाथों में है उस पर ही आपको निर्भर रहना चाहिए ।

बनियों को देखिये । वे अपनी पूँजी को कैसे ध्यान, सतर्कता, मितव्ययता से सम्हालता है । एक-एक पैसा जोड़ता है । खर्च को कम से कम रखता है । आधा पेट भूखा रहता है । फटे कपड़े पहनता है । मामूली खाना खाता है । व्यसनों से बचता है । पर रुपया बचाकर रखता है और समय पर दूसरों की सहायता करता है । कंजूस मत बनिये पर मितव्ययी अवश्य बनिये । बनिये की तरह हम और आप सभी व्यापार कर रहे हैं । हमें अनेक कर्त्तव्य पूर्ण करने होते हैं । हमारे पास एक घर की व्यवस्था का भार है । बाल-बच्चे, सम्बन्धी और परिवार है । हमारी आमदनी आती है । उसे व्यय करना है । घर के नौकर हैं जिन्हें वेतन देना है । बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध करना है । हजारों छोटे-छोटे व्यय, बीमारियाँ, उत्तरदायित्व, छोटे-बड़े उत्सव आते हैं । इन सब में आप अपने व्यय की कुशलता प्रदर्शित कर सकते हैं ।

व्यापार की सफलता हमारी बुद्धि, ध्यान और एकाग्रता पर निर्भर है । हमारी योजनाएँ जितनी सफल और अनुभवपूर्ण होंगी, उतनी ही सफलता हमें प्राप्त होगी । हम अपने बजट को यदि ठीक तरह बना लिया करें और पूर्ण मनोयोग से उस पर दृढ़ रहें, तो संतुलित व्यय कर सकते हैं ।

आप कहेंगे कि हमारी आमदनी ही इतनी कम है कि यों ही व्यय हो जाता है । बजट बनाकर क्या करें ? यह थोथी दलील है । यदि आपको दस रुपये प्रतिमास मिलते हैं, तब भी बजट बनाना चाहिए और उसे अपने कमरे में टाँग लेना चाहिए । बजट का मतलब यह है कि आप आवेश में आकर व्यय नहीं करते हैं, बल्कि सोच-समझ कर बुद्धिमत्ता और पूर्ण विवेक से व्यय करते हैं । कम आमदनी भी आपको सुख और आनन्द देगी यदि नियन्त्रण पूर्वक व्यय की जायेगी । अँग्रेजी कवि वडर्सवर्थ को केवल ३० शिलिंग प्रति सप्ताह मात्र प्राप्त होता था, किन्तु इसी से वह प्रसन्न जीवन व्यतीत कर सके । यदि तुम्हारे भाग्य में अमीर होना नहीं लिखा, तो कम से कम गरीबी भी नहीं लिखी है, यह विश्वास रखिये । उत्तम स्वास्थ्य, गुलाब के फूल-सा खिला हुआ चेहरा, प्रसन्नता और भलमनसाहत का व्यवहार क्या किसी सम्पदा से कम है ?

रुपया क्या-क्या काम कर सकता है ? इसको लोग बहुत बढ़ा-चढ़ाकर देखते हैं । क्या हम उससे बहुत उत्तम भोजन खा सकते हैं ? स्मरण रखिये, अमीर से अमीर भी भोजन साधारण ही करता है, सोना नहीं निगल सकता ।

पारिवारिक व्यय के लिए कुछ सुझाव

सब कमाने वाले सदस्यों को सम्पूर्ण आय मुख्य व्यक्ति के पास जमा करनी चाहिए । वह पूरी आय का योग कर परिवार की आवश्यकताएँ नोट करता जाय और बजट तैयार करे । उसमें प्रत्येक छोटे कुटुम्ब को कुछ हाथ खर्च दें । यदि सम्भव हो तो यह जेबखर्च सबके लिए रखा जाय ।

सर्वप्रथम स्थायी व्ययों–अनाज, पानी, रोशनी, लकड़ी, मिर्च-मसालों, दूध का विधान रखा जाय । तत्पश्चात् वस्त्रों की योजना रहे, दृष्टिकोण यह रहे कि कम से कम सबको तन ढकने के लिए पर्याप्त वस्त्र मिल जायें । दफ्तर में काम करने वाले बाबू तथा विद्यार्थियों को कुछ विशेष वस्त्र बाहर के लिए अतिरिक्त प्रदान किए जा सकते हैं । वर्ष के प्रारम्भ में ही बिछौनों, दरियों, रजाइयों का प्रबन्ध कर लेना चाहिए । मकान का प्रश्न आजकल बहुत जटिल हो गया है किन्तु अपनी आय, मर्यादा, स्वास्थ्य की दृष्टि से मकान का चुनाव हो । यदि मकान घर का हो तो उसकी टूट-फूट का प्रतिवर्ष अच्छा इन्तजाम रहे ।

फुटकर खर्च, जैसे बच्चों का अध्ययन, डॉक्टर की फीस, दवाइयाँ, देनदारी, टॉयलेट, मनोरंजन, नौकर, सफर इत्यादि का खर्च बहुत सम्हलकर रखा जाय । विलासिता के व्यय से बड़ा सतर्क रहा जाय ।

बीमा, विवाह-शादियों, मृत्यु, बीमारी, मकान, मुकदमेबाजी तथा परिवार पर आने वाले आकस्मिक खर्चों के लिए सावधानी से एक अलग खाता रखा जाय ।

यदि परिवार का प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को संयमित करे और पूरे परिवार के लाभ को देखे । जिन परिवारों में एक विद्यार्थी को पढ़ाने के लिए सब अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को तिलांजलि देते हैं, सामूहिक उन्नति में विश्वास करते हैं । वह उत्तरोतर विकसित होता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देखने में छोटी पर महान्

विद्वानों ने अपने अनुभव के बल पर अनेक उक्तियाँ लिखी हैं । इनमें बड़े पते की बातें बतलाई गई हैं । प्रत्येक व्यक्ति को इन उक्तियों को स्मरण रखना चाहिए । कुछ अच्छी उक्तियाँ देखिये–

ऋण लेने वाले का मनोविज्ञान

झूठा, मीठे वचन, कहि, ऋण उधार ले जाय ।
लेत परम सुख ऊपजै, लैके दियो न जाय ।।
लैके दियो न जाय, ऊँच अरु नीच बनावै ।
ऋण उधार की नीत, माँगते मारन धावै ।।
कह गिरिधर कविराय, जानि रह मन में रूठा ।
बहुत दिना ह्वै जात, कहै तेरा कागज झूठा ।।

माया की अस्थिरता

दौलत पाय न कीजिये, सपने में अभिमान ।
चंचल जल दिन चारि को, ठाउँ न रहत निदान ।।
ठाउँ न रहत निदान, जियत जग में यश लीजै ।
मीठे वचन सुनाय, विनय सब ही की कीजै ।।
कह गिरिधर कविराय, अरे यह सब घट तौलत ।
पाहुन निसि दिन चार, रहत सब ही के दौलत ।।

बिना विचारे फिजूलखर्ची से हानि

बिना बिचारे जो करे, सो पाछे पछिताय ।
काम बिगारे आपनो, जग में होत हँसाय ।।
जग में होत हँसाय, चित्त में चैन न पावै ।
खान-पान सम्मान, राग रंग मनहि न भावै ।।
कह गिरिधर कविराय, दु:ख कछु टरत न टारे ।
खटकत है जिय मांहि, कियो जो बिना विचारे ।।

रुपये के बिना जीवन धारण कठिन है

नीतिकार का वचन है–

विभुक्षितै: व्याकरणं न भुज्यते ।
पिपासितै: काव्य रसो न पीयते ।।

अर्थात्–''भूखे व्यक्ति का व्याकरण के भोजन से काम नहीं चलता और न प्यासे की तृप्ति काव्य रस पीने से होती है ।'' इस युग में अर्थ के बिना जीवन धारण किये रहना कठिन है ।

खाली बोरी खड़ी नहीं होती

बोरी अन्न, शक्कर आदि से भरी हुई होगी तो सीधी खड़ी रहेगी, पर जिस बोरी में कुछ नहीं है, वह धरती पर गिर पड़ेगी । उसी मनुष्य की नैतिकता स्थिर रह सकती है, जिसके पास जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक धन मौजूद है । जो भूखा है, अभावग्रस्त है, दीन-दरिद्र है, वह कब तक धर्म पर स्थिर रहेगा ? उचित कार्य के लिए पास में पैसा नहीं होता तो परमार्थ की वृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं । और मनुष्य चोरी, बेईमानी, धोखेबाजी, रिश्वत की ओर झुकता चला जाता है । समाज में रहकर सम्मान सहित जीवन बिताने लायक धन न हो तो चित्त में आत्मग्लानि, अपमान, हीनता, दीनता, दुर्भाग्य, चिंता, ईर्ष्या, घृणा के विकार जागते रहते हैं ।

भूखा आदमी क्या पाप नहीं करता

संस्कृत में एक कहावत बड़े काम की है–

विभुक्षित: किं न करोति पापम्'' भूखा आदमी क्या पाप नहीं करता ? अर्थात् '' जब आदमी दरिद्री हो जाता है, उसको खाने पहनने को नहीं मिलता, तब वह चोरी, डाका, घूस, बेईमानी जिस तरह भी होता है, धन प्राप्त कर अपना काम चलाता है ।

छोटी वस्तुओं का महत्व

जो व्यक्ति दुराग्रह से छोटी वस्तुओं को बरबाद करता है, उनका उचित उपयोग नहीं करता उसे कभी उनकी आवश्यकता के लिए दु:खी होना पड़ता है ।

आर्थिक सफलता के मानसिक संकेत

आप आर्थिक रूप से सफल होना चाहते हैं, तो समृद्धि के विचारों को बहुतायत से मन-मंदिर में प्रविष्ट होने दीजिये । यह मत समझिये कि आपका सरोकार दरिद्रता, क्षुद्रता, नीचता से है । संसार में यदि कोई चीज निष्कृष्ट है तो वे विचार-दारिद्रय ही है । जिस मनुष्य के विचारों में दरिद्रता प्रविष्ट हो जाती है, वह रुपया पैसा होते हुए भी सदैव भाग्य का रोना रोया करता है । दरिद्रता के अनिष्टकारी विचार हमें समृद्धिशील होने से रोकते हैं, दरिद्री ही बनाये रखते हैं ।

आप दरिद्री, गरीबी या भुखमरी जैसी अवस्था में रहने के हेतु पृथ्वी पर नहीं जन्मे हैं । आप केवल मुट्ठी भर अनाज या वस्त्र के लिए दासवृत्ति करते रहने को उत्पन्न नहीं हुए हैं ।

गरीब क्यों सदैव दीनावस्था में रहता है ? इसका प्रधान कारण यह है कि वह उच्च आकांक्षा, उत्तम पवित्र कल्पनाओं, स्वास्थ्यदायक स्फूर्तिमय विचारों को नष्ट कर देता है, आलस्य और अविवेक में डूब जाता है, हृदय को संकुचित, क्षुद्र, प्रेमविहीन और निराश बना लेता है । सीमाक्रान्त दरिद्रता आने पर जीवन ठहर-सा जाता है, प्रगति अवरुद्ध हो जाती है, मनुष्य ऋण से दबकर निष्प्रभ हो जाता है, उसे अपने गौरव, स्वाभिमान को भी सुरक्षित रखना दुष्कर प्रतीत होता है । दरिद्री विचार वाले असमय में ही वृद्ध होते देखे गये हैं । जो बच्चे दरिद्री घरों में जन्म लेते हैं, उनके गुप्त मन में दरिद्रता की गुप्त मानसिक ग्रन्थियाँ इतनी जटिल हो जाती हैं कि वे जीवन में कुछ भी उच्चता या श्रेष्ठता प्राप्त नहीं कर सकते । दरिद्रता कमल के समान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तरोताजा चेहरों को मुरझा देती है, सर्वोत्कृष्ट इच्छाओं का नाश हो जाता है । यह दुस्सह मानसिक दरिद्रता मनुष्य को पीस देने वाली है । सैकड़ों मनुष्य इसी क्षुद्रता के गर्त में डूबे हुए हैं ।

आर्थिक सफलता के लिए भी एक मानसिक परिस्थिति, योग्यता एवं प्रयत्नशीलता की आवश्यकता है । लक्ष्मी का आवाहन करने के हेतु भी मानसिक दृष्टि से आपको कुछ पूजा का सामान एकत्रित करना होता है ।

दीपावली के लक्ष्मीपूजन के अवसर पर आप घर झाड़ते, लीपते, पोतते, सजाते हैं । नई-नई तस्वीरें, कलात्मक वस्तुओं से घर को चित्रित करते हैं, अपने शरीर पर सुन्दर-सुन्दर वस्त्र और आभूषण धारण करते हैं । इसी भाँति मानसिक पूजा भी किया कीजिये । अर्थात् मन के कोने-कोने से दरिद्रता, गरीबी, परवशता, क्षुद्रता, संकुचितता, ऋण के जाले, विवेक की झाड़ू से साफकर दीजिये, मानसिक पटल को आशावादिता की सफेदी से पोत लीजिये । मानसिक घर में आनन्द, आशा, उत्साह, प्रसन्नता, हास्य, उत्फुल्लता, खुशमिजाजी के मनोरम चित्र लगा लीजिये । फिर श्रम और मितव्ययता के नियमों के अनुसार लक्ष्मीदेवी की साधना कीजिए । आर्थिक सफलता आपकी होगी । सब विद्याओं में शिरोमणि वह विद्या है जो हमें कुत्सित और निकृष्ट विचारों से मन को साफ करना सिखाती है ।

परमपिता परमात्मा की कभी यह इच्छा नहीं कि हम आर्थिक दृष्टि से भी दूसरों के गुलाम बने रहें । हमें उन्होंने विवेक दिया है, जिसे धारण कर हम उचित-अनुचित खर्चों का अन्तर समझ सकते हैं । विषय वासना और नशीली वस्तुओं से मुक्त हो सकते हैं, अपने अनुचित खर्चे, विलासिता और फैशन में कमी कर सकते हैं, घर में होने वाले नाना प्रकार के अपव्यय रोक सकते हैं । अपनी आय वृद्धि करना हमारे हाथ की बात है । जितना हम परिश्रम करेंगे, योग्यताओं को बढ़ायेंगे, अपनी विद्या में सर्वोत्कृष्टता, मान्यता, निपुणता प्राप्त करेंगे, उसी अनुपात में हमारी आय भी बढ़ती चली जावेगी । संसार में अन्याय नहीं है । सबको अपनी-अपनी योग्यता और निपुणता के अनुसार धन प्राप्त होता है । फिर क्यों न हम अपनी योग्यता बढ़ायें और संघर्ष में अपने आपको हर प्रकार से योग्य प्रमाणित करें ।

श्री ओरिसन मार्डन ने अपनी पुस्तक 'शान्ति शक्ति और समृद्धि' में कई आवश्यक तत्त्वों की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए लिखा है-

"विश्व के अनेक दरिद्री लोगों के कारण को खोजो तो पता लगेगा कि उन्हें आत्म-विश्वास नहीं है, उन्हें यह श्रद्धा नहीं है कि वे दरिद्रता से छुटकारा पा सकते हैं । हम गरीबों को बताना चाहते हैं कि वे ऐसी कठोर स्थिति से भी अपने आप को उन्नत बना सकते हैं । सैकड़ों नहीं प्रत्युत हजारों ऐसी स्थिति में उन्नत-धनवान बने हैं और इसलिए हम कहते हैं कि इन गरीबों के लिए भी आशा है । वे दुर्धर्ष परिस्थिति को बदल सकते हैं । संसार में आत्मविश्वास ही ऐसी कुंजी है कि सफलता का द्वार खोल देती है ।

प्रकृति ने मनुष्य को ऊपर देखने की आशा प्रदान की है, नीचे की ओर नहीं । मानव जन्म ऊपर चढ़ने के लिए हुआ है, नीचे गिरने के लिए नहीं ।

दरिद्रता वास्तव में एक मानसिक रोग है । इस रोग से प्रयत्न करने पर प्रत्येक व्यक्ति छुटकारा पा सकता है । एक गरीब युवक ने अमीर बनने के लिए अपनी आत्मा और योग्यता पर भरोसा करना प्रारम्भ किया । उसने निश्चय किया कि उसके अन्दर यह योग्यता शक्ति विद्यमान है जिसके द्वारा मनुष्य संसार में नामांकित होते हैं । यह निरन्तर अपनी शुभ कल्पनाओं को साकार रूप देता गया । और सफलता के उच्चतम शिखर पर पहुँच गया । हिम्मत और सतत् उद्योग के उत्पादक और उत्साही वातावरण में रहने से प्रत्येक मनुष्य समृद्धिशाली बन सकता है ।

परिवार की अर्थव्यवस्था का सन्तुलन

आज की जो सामाजिक व्यवस्था है, उसमें जीवन के लिए, आवश्यक सभी उपकरणों के विनिमय का माध्यम अर्थ ही है । अतः अर्थव्यवस्था की अपेक्षा करने से जीवनक्रम लड़खड़ाने लगता है ।

हमारी पारिवारिक व्यवस्था के विघटन का एक कारण आर्थिक असन्तुलन एवं अव्यवस्था भी है । इसलिए परिवार-व्यवस्था का विचार करते समय उसकी अर्थव्यवस्था का भी अनिवार्यतः विचार करना ही होगा ।

अभी हमारे परिवारों की यह स्थिति है कि घर का समर्थ मुखिया ही अर्थ-व्यवस्था का संचालक, नियामक, आयोजक, प्रबन्धक सभी कुछ होता है । वह जो करे, वही व्यवस्था । इसे व्यवस्था नहीं, अव्यवस्था ही कहा जा सकता है ।

व्यवस्था वह है, जिसके पीछे कोई सिद्धान्त हो, नीति हो एवं जिसकी मर्यादाएँ स्पष्ट हों । इसलिये परिवार की अर्थव्यवस्था के निर्धारण के समय इन सभी बातों पर विचार करना चाहिए । पारिवारिक अर्थव्यवस्था का सिद्धान्त यह है कि सम्पूर्ण परिवार को एक आर्थिक इकाई मानकर चला जाय तथा उसकी दिशा प्रगतिशील रखी जाय, पतनशील नहीं । आय के स्रोत और व्यय के मुद्दे, दोनों ऐसे हों कि वे आत्मिक विकास में सहायक बनें, अवरोधक नहीं ।

परिवार के सदस्यों की कुछ आर्थिक आवश्यकताएँ तो सामान्य होती हैं, कुछ निजी । परिवार के संचालक का यह दायित्व है कि हर एक की आवश्यकताओं की पूर्ति का ध्यान रखे और उनकी क्रमबद्धता भी निर्धारित करे । इस काम को अकेले ही गृह-संचालक करता रहे. तो उसमें अनजाने भी भूलें हो सकती हैं, जो अशान्ति, ईर्ष्या आदि का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कारण बन सकती हैं । अत: परिवार की सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था गृहपति की ही जेब में रहे और अकेले उन्हीं की इच्छा पर अवलम्बित हो, यह प्रवृत्ति समाप्त होनी चाहिए ।

परिवार के सभी समर्थ सदस्यों द्वारा पारिवारिक गोष्ठी में आय-व्यय का स्वरूप निर्धारित किया जाना अर्थव्यवस्था की सर्वोत्तम विधि है । संयुक्त परिवारों को अक्सर ऋण-भार से दबे देखा जाता है । इसका मुख्य कारण आय-व्यय की व्यवस्था एवं कला से अनभिज्ञता है । जब तक आर्थिक-व्यवस्था को नियमित नहीं किया जायेगा, यह स्थिति बनी ही रहेगी । इसीलिए पारिवारिक-गोष्ठी में उसके स्वरूप-निर्धारण की परम्परा चलायी जानी आवश्यक है ।

परिवार के सभी उपार्जनशील लोग अपनी आय पूरी की पूरी परिवार के मुख्य व्यक्ति के पास जमा कर दें । गोष्ठी में परिवार का बजट बनाया जाय । हर व्यक्ति की आवश्यकताएँ नोट की जायें और उनका क्रम निर्धारित किया जाये । अनाज तथा भोजन तैयार करने से सम्बन्धित आवश्यक वस्तुएँ प्रकाश, पानी, दूध, फल आदि की निश्चित मात्रा के अनुसार स्थायी व्यय के मद में उसकी रकम नोट कर ली जाय । जहाँ किराये के मकान हों, वहाँ मकान-किराया आदि का अथवा निज का मकान हो, तो जब उसकी मरम्मत आवश्यक हो, इस महीने में मरम्मत का व्यय भी स्थायी व्यय के मुद्दे में शामिल किया जाय । साबुन-तेल, बच्चों की फीस, आवश्यक दवा-दारू, यात्रा आदि के खर्च नोट किये जायें । बीमा की किश्त या ऐसे ही अन्य स्थायी खर्चों को भी शामिल किया जाय । इसके बाद घर के सदस्यों की अनिवार्य आवश्यकताओं की सूची बनाई जाय । बच्चों की स्कूल ड्रेस, कापियाँ आदि जो आवश्यक हों, उन्हें प्राथमिकता दी जाय । कपड़े किसके लिए अधिक आवश्यक हैं, यह देख लिया जाय ।

सामूहिक गोष्ठी में हर सदस्य सामान्यत: न्यायपूर्ण माँग ही रखेगा । गोष्ठी कुछ दिन, कुछ महीने चली, फिर मनमानी होने लगी, समर्थ लोग अपनी इच्छानुसार खर्च करने लगे, तब तो पारिवारिक अनुशासन नहीं रहेगा किन्तु यदि पारिवारिक गोष्ठी का नियमित क्रम बना लिया गया और उसमें विचार-विमर्श कर निर्णय लिये जाने लगे तो यह स्थिति नहीं होने की । पारिवारिक अशान्ति, आपसी अविश्वास, आशंका और तज्जन्य कलह के आधार कई बार गलतफहमी पर आधारित रहते हैं । इसका मुख्य कारण यही होता है कि अकेले ही अकेले निर्णय ले लिए जाते हैं । उन निर्णयों का औचित्य, निर्णय लिये जाने की पृष्ठभूमि के सब पहलू पर घर के अन्य लोगों को ज्ञात नहीं हो पाते । अत: आर्थिक आय-व्यय सम्बन्धी निर्णय पारिवारिक गोष्ठियों में ही लिये जाने चाहिए । उसी के अनुसार लोगों को खर्च की जिम्मेदारियाँ सौंपकर उन्हें उतना धन देना चाहिए तथा अगली पारिवारिक गोष्ठी में पूरा हिसाब प्रस्तुत किया जाना चाहिए । नियमित गोष्ठियाँ चलते रहने पर कुछ ही दिनों में ऐसा वातावरण बन जाता है कि प्रत्येक सदस्य की आवश्यकताओं का स्वाभाविक क्रम सभी की समझ में आ जाता है ।

इस गोष्ठी में आय की वृद्धि के सम्भावित उपायों पर भी विचार किया जाना चाहिए । स्मरण रखा जाय कि आय से भी अधिक महत्वपूर्ण है-व्यय को मर्यादित, सन्तुलित रखना । अभी तो परिवारों की यह स्थिति है कि प्रत्येक सदस्य अधिक से अधिक व्यय करना चाहता है । साथ ही अकेले-अकेले कुछ धन संचित करते रहकर परिवार की सम्मिलित पूँजी का क्षय करते रहने में झिझकता नहीं ।

परिवार के मुख्य लोग झूठी शान में भी अनावश्यक खर्च करते हैं । स्वार्थपरता और आडम्बर ये दो पारिवारिक अपव्यय के मुख्य कारण हैं । स्वयं इच्छानुसार पर्यटन, तीर्थयात्रा, दान-दक्षिणा कर प्रसन्नता व पुण्य प्राप्त करने की इच्छा पारिवारिक अर्थ-सन्तुलन को डगमगा देती है इसी प्रकार हाथ खुला रखकर अनावश्यक रूप से पैसा उड़ाने की झूठी शान भी परिवार का कोष खाली कराती रहती है । मन की मौज के मुताबिक व्यय करने वाले लोग अच्छी-खासी आमदनी वाले परिवार को भी तंगहाल तथा परेशान ही बनाये रखते हैं । अत: पारिवारिक व्यय की मर्यादाएँ बाँधी जानी आवश्यक हैं । परिवार की वर्तमान और भावी आवश्यकताओं का ध्यान रखना घर के मुख्य लोगों की जिम्मेदारी है । जहाँ वे अपने को व्यय करने के मामले में पूर्ण स्वतन्त्र मान बैठते हैं, वहाँ गड़बड़ी शुरू हो जाती है । वे स्वतन्त्र तो हो सकते हैं, पैसों को आवश्यकतानुसार खर्च करने की उन्हें छूट तो दी जा सकती है, लेकिन यह स्वतन्त्रता एवं छूट नीतियों के अन्तर्गत चलने के लिए है । इसका मूल प्रयोजन परिवार के सभी सदस्यों की उचित आवश्यकताओं की व्यवस्था करना है, यह भुलाया नहीं जाना चाहिए । यही उसकी मर्यादा है ।

बजट बनाने के बाद गृहपति प्रमुख लोगों द्वारा होने वाले व्यय के बारे में लचीलापन रखा जाना आवश्यक होता है । कई बार आकस्मिक आवश्यकताएँ आ उपस्थित होती हैं-कोई दुर्घटना, कोई नौकरी सम्बन्धी या सामाजिक झंझट, जिसमें पुलिस तथा कानून की मदद लेनी पड़े, दौड़-धूप करनी पड़े या बच्चों के स्कूल-कॉलेज में किसी विशेष आयोजन के उपलक्ष्य में कोई आकस्मिक खर्च, किसी विशिष्ट मेहमान का आगमन आदि । ऐसे समय परिवार-प्रमुख अन्य लोगों से खर्च के लिए सलाह करने के लिए प्रतीक्षा नहीं कर सकता । उसे स्वयं ही निर्णय लेना होता है, व्यवस्था करनी पड़ती है । अत: बजट-प्रावधानों में और प्रमुख लोगों के द्वारा होने वाले व्यय के मुद्दों के निर्धारण में इतना लचीलापन रखना होगा ।

आय-व्यय के स्वरूप-निर्धारण का मुख्य प्रयोजन कोई पारिवारिक-प्रशासन का तत्व खड़ा करना नहीं, मनमानी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और अपव्यय को ध्यान में रखते हुए लचीली व्यवस्था की जानी चाहिए ताकि खर्च की सीमाएँ बाँधी जा सकें और आवश्यक खर्च रुकें भी नहीं ।

कई परिवार-प्रमुख या उनकी पत्नी स्वार्थ के वशीभूत होकर मात्र अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति की ही चिन्ता में जुटे देखे जाते हैं । कमाऊ व्यक्ति की पत्नी अहंकार-वश भी ऐसा करने लगती है । अपने लिए विलासिता के उपकरण जुटाना उसे आवश्यक प्रतीत होने लगते हैं और दूसरों की बीमारी, फीस, किताबों सम्बन्धी जरूरतें गौण लगने लगती हैं या अपने बच्चे के लिए नये-नये वस्त्र, खिलौने जुटाने जरूरी लगते हैं । दूसरों के बच्चे फटे-पुराने पहनें, खिलौनों के लिए ललकें, इससे पीड़ा नहीं होती । मैं या मेरे पति तो कमाऊ हैं, इसका अहंकार, पीड़ा के स्थान पर प्रसन्नता ही पैदा करता है । यह पारिवारिक इकाई की विरोधी भावना है । इससे पारिवारिक आत्मीयता को धक्का लगता है । अतः ऐसे लोगों को पारिवारिकता के लाभ समझते हुए, संकीर्ण स्वार्थपरता पर नियन्त्रण रखना चाहिए ।

दुर्व्यसन, ठाठ-बाट और फैशन को अपनी आवश्यकता मान बैठने वाले परिवारी-जन अपनी शौक-मौज के दुराग्रह में पूरे परिवार की आवश्यकताओं को अनदेखा करते हैं । यह पारिवारिक लोकतन्त्र के प्रतिकूल प्रवृत्ति है । यारों-दोस्तों के साथ पैसे फूँकने का चस्का भी बहुत प्रबल और हानिकारक होता है । परिवार में ऐसी प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण लगाना आवश्यक है । बेटा-बेटी के लाड़-प्यार में ऐसी गलत प्रवृत्ति को सहना या बढ़ाना पारिवारिक शान्ति और अर्थव्यवस्था को चौपट करने का कारण तो बनेगा ही, स्वयं उनके भी व्यक्तित्व को नष्ट करेगा, जिनमें ये प्रवृत्तियाँ हैं । उस पर अंकुश आवश्यक है । बजट बनाये जाते समय यदि कोई सदस्य अपनी ऐसी अनुचित आदतों के लिए धन का प्रावधान चाहता है, तो उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता । ऐसे दुराग्रहों का क्रम चले तो, न तो पारिवारिक अर्थ-सन्तुलन सम्भव है न ही पारिवारिक सद्भाव ।

परिवार को एक इकाई माना जाना चाहिए । प्रत्येक सदस्य की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति को प्राथमिकता दी जानी चाहिए । साथ ही लोगों के मन में अपनी आवश्यकता की अपेक्षा का भाव न आए, इसके लिए अर्थ व्यवस्था का स्वरूप सभी वयस्कों के सहयोग-सुझाव के उपरान्त निर्धारित करना चाहिए । किसी एक के हाथ में सारी प्रक्रिया एवं अधिकार केन्द्रित रहने से गलतफहमी और अन्याय दोनों की गुंजाइश बनी रहती है । अतः अर्थ व्यवस्था के क्षेत्र में भी एकतन्त्र की स्थिति समाप्त करनी चाहिए ।

घर के समर्थ और प्रमुख लोगों को स्वयं के जीवन में सादगी का समावेश कर, घरभर के सदस्यों की खर्च-सम्बन्धी आदतों को दृढ़तापूर्वक एवं सद्भावपूर्वक नियन्त्रित करना चाहिए । जहाँ दुर्व्यसन, विलासिता, स्वार्थपरता की प्रवृत्ति हो, वहाँ समझाने के साथ ही दृढ़ता अपनाने की आवश्यकता होती है । साथ ही जिम्मेदार लोगों को अपना ही अनुकरणीय आदर्श उपस्थित कर मितव्ययिता तथा सादगी को प्रोत्साहित करना चाहिए । क्योंकि खर्च की प्रक्रिया ठीक न होने पर अर्थ व्यवस्था कभी भी ठीक नहीं हो सकती ।

पारिवारिक बजट बनाकर खर्च कीजिए

जीवन में सुख की सृष्टि तब होती है, जब वह सुव्यवस्थित एवं संतुलित हो । सामान्यतः मानव-जीवन की व्यवस्था आर्थिक व्यवस्था की अनुगता रहती है । जिसकी आय-व्यय में समुचित संतुलन रहेगा, वह स्वभावतः सुखी और संतुष्ट रहेगा । आय-व्यय का संतुलन बना रहना व्यय पर ही अधिक निर्भर रहा करता है । आय तो प्रायः लोगों की सीमित एवं सुनिश्चित रहा करती है । सामान्यतः उसमें कोई अस्त-व्यस्तता अथवा न्यूनाधिक्य नहीं होता । इस प्रकार की अस्त-व्यस्तता की सम्भावना अधिकतर व्यय में ही रहा करती है, क्योंकि यह आय की तरह सुनिश्चित नहीं रहने पाती । इसलिए अर्थ व्यवस्था लाने और आय-व्यय को संतुलित रखने के लिये व्यय को निश्चित करने की अधिक आवश्यकता है ।

जिस मनुष्य की आवश्यकताएँ जितनी कम होंगी और जितना अधिक वह मितव्ययी होगा, उसकी आर्थिक व्यवस्था उतनी ही सुविधाजनक रहेगी । जिसे पैसे की तंगी रहेगी, जिसे अपना काम चलाने के लिए दूसरों के आगे हाथ फैलाने और दाँत निकालने की आवश्यकता होगी, वह सुख-चैन के दर्शन नहीं कर सकता । जो कर्जदार होता है, वह एक प्रकार से पराधीन ही रहता है । देनदार का दैनिक जीवन एक प्रकार से लेनदार के पास रहन हो जाता है । वह जो कुछ कमाता है, अपने ऋणदाता के लिए ही कमाता है । अपनी आय का अधिकांश भाग उसे कर्ज का सूद-दर-सूद भरते रहने में ही निकालते रहना पड़ता है । इसी आय के रहते हुए जब उसे किन्हीं खर्चों के लिए कर्ज लेना पड़ा है, तब उसी आय-व्यय के रहते वह कर्ज का पैसा कैसे चुका सकता है ? फिर कर्ज में केवल मूलधन ही नहीं, ब्याज भी देना होता है । इस प्रकार स्पष्ट है, उन्हीं खर्चों के रहते और आय के बिना बढ़े जो पैसा वह कर्ज अदा करने में निकलेगा, वह तो उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति में और भी कम हो जायेगा । इससे कोई ऋणी उऋण होने की बात तो सोचे ही नहीं, बल्कि नये कर्ज के दुर्भाग्य के लिए आशंका करे ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यही कारण है कि एक बार कर्ज के चक्र में फँसा मनुष्य कदाचित ही उससे छुटकारा ले पाता है । वैसे प्राय: होता यह है कि वह जीवनभर चिन्ता की ज्वाला के बीच तन, पेट काटकर कर्ज भरता रहता है, तब भी उससे छुटकारा पाये बिना ही परलोक सिधार जाया करता है । इस प्रकार क्या कोई कर्जदार अपने जीवन में कभी सुख-शांति पा सकता है ? नहीं कदापि नहीं ।

इसके विपरीत जो किसी का कर्जदार नहीं है, जिसको किसी का कुछ देना नहीं है, यहाँ तक कि किसी दैनिक आवश्यकता का भी ऋणी नहीं है, वह निश्चिन्त होकर सोयेगा, निर्द्वन्द्व होकर विचरेगा । न कभी उसके कान में तकाजे के गर्म शब्द पड़ेंगे, न उसे अपनी मजबूरी के लिए सफाई देनी पड़ेगी और न किसी बहाने के लिये झूठ बोलना पड़ेगा । जो घोड़े की तरह तेज दौड़ाने वाले ब्याज की नि:शब्द किन्तु निश्चित टापों से रौंदा नहीं जाता, उसकी श्वासों में ही सुख चैन की शीतलता सम्भव हो सकती है । सुखी रहना हो तो कभी किसी के देनदार न बनिये ।

अपने सुख-चैन के रक्षार्थ, आर्थिक असुविधा एवं कर्जदारी से सदा-सर्वदा बचे रहने के लिये अपने पारिवारिक आय-व्यय (बजट) को उचित रूप से मितव्ययिता के साथ बनाकर एक जिम्मेदार व्यक्ति की तरह जीवनयापन करना चाहिए । बजट बना लेने पर भी उसके अनुसार चलने में तब तक भी कठिनाई ही बनी रहेगी, जब तक मनुष्य उसके प्रति पूरी तरह ईमानदार नहीं रहेगा ।

मानिये, किसी ने अपनी सौ रुपये की आमदनी में से दस रुपये बचत की मद में निकाल कर बाकी नब्बे रुपये महीने के शुरू में ही खर्चों की विविध मदों में बाँटकर बजट बना लिया , किन्तु उसके अनुसार निष्ठापूर्वक चलता नहीं है, कभी इस मद का खर्च काटकर उस मद में बढ़ा दिया तो कभी उस मद का इस मद में, तो उसका बजट फेल हो जायेगा और पारिवारिक व्यवस्था सुविधासम्पन्न न रह सकेगी । जिस सरलता एवं स्निग्धता के लिये उसने बजट बनाया था, वह उद्देश्य पूरा न हो सकेगा । इसलिये बनाये हुये बजट के प्रति ईमानदार रहना बहुत आवश्यक है । जब तब बजट बन रहा है, तब तक ही उसमें हस्तक्षेप का अपना अधिकार समझिए । पर ज्योंही वह एक बार बनकर अंतिम रूप पा जाये, उसका उसी प्रकार पालन करिये, जिस प्रकार शासन-विधान का पालन किया जाता है । निर्माण-काल में बजट आपके अधीन रहता है, बन जाने के बाद आप स्वयं अपने आप को उसके मातहत समझिये ।

बजट एक प्रकार से पारिवारिक विधान ही है । इसका निर्माण यथासम्भव परिवार के हर बालिग सदस्य को सम्मिलित करके ही करना चाहिए और सर्वसम्मत से पास होना चाहिए । ऐसा सम्भव हो सकने पर न तो किसी को असन्तोष का कारण ही रहेगा और न ही तब कोई उसका उल्लंघन करने को उद्यत होगा ।

किसी भी पारिवारिक बजट में सर्वसम्मतता तो एक बार दबाव अथवा प्रभाव से प्राप्त की जा सकती है, किन्तु उसमें सफलता तभी मिलेगी, जब खर्च की मदों को आवश्यकताओं की अनिवार्यता के अनुसार क्रमिकता दी जायेगी । यदि भोजन, वस्त्र तथा निवास की नितांत अनिवार्य आवश्यकताओं के स्थान पर अल्पावश्यक स्वाद-सुविधा, आमोद-प्रमोद की मदों को प्राथमिकता देकर आय का अधिक भाग दे दिया गया तो कुछ समय के आमोद-प्रमोद अथवा स्वाद-सुविधा के बाद सारा परिवार अधिक समय भूखा-नंगा ही रहेगा और इस प्रकार की असहनीय असुविधा की स्थिति में न तो स्वाद के चटकारे याद आयेंगे और न आमोद-प्रमोद के साधन । तन पेट के नंगा-भूखा रहने पर न तो स्वादों की याद आती है और न किसी प्रकार का हास-विलास ही भाता है । भोजन, वस्त्र की सुविधा के साथ हास-विलास का अभाव तो सहन किया जा सकता है-किन्तु हास-विलास की सुविधा होने पर भी अन्न-वस्त्र का अभाव सहन नहीं किया जा सकता । आमोद-प्रमोद और सुविधा-साधनों का नम्बर अन्न-वस्त्र तथा निवास के बाद है ।

केवल इन्हीं के बाद नहीं, विलास वस्तुओं का नम्बर और भी दो आवश्यकताओं के बाद आता है । पौष्टिक पदार्थ और जीवन विकास की शिक्षा आदि साधनों के बाद । इस का ठीक-ठीक अर्थ यही है कि पहले पूरे परिवार के लिए अन्न, वस्त्र एवं निवास की व्यवस्था । उसके बाद जो बचे उससे घी, दूध, शाक-सब्जी, फल, मेवे आदि । वे भी पहले जीवन-विकास, शिक्षा आदि की मद पूरी करने के बाद । इसके बाद यदि न रहा जा सके तो आमोद-प्रमोद, शौक-स्वाद की वस्तु का नम्बर है और यदि इनकी उपेक्षा करके अपने स्वास्थ्य एवं शिक्षा आदि जीवन-विकास की व्यवस्था को ही आमोद-प्रमोद मानकर आनन्दित रहा जाये तब तो कहना ही क्या ? आत्माश्रित-अहेतुक सुख-शांति अक्षय ही होती है, वह आमोद-प्रमोद अथवा सुख-साधन के साथ पुरानी नहीं होती, सदा नवीन रहती है । इस अनावश्यक मद का पैसा आपकी बचत मद में जाकर आय के अनुपात से आपकी मुट्ठियाँ भर सकता है ।

इस प्रकार यदि वास्तव में आप अपने परिवार के साथ आजीवन अपनी सीमित आय में सानन्द रहना चाहते हैं तो मितव्ययिता के साथ सर्वसम्मति से बचत-व्यय के साथ यथोचित् बजट बनाइये और एक सुनिश्चित विधान के साथ उसका पालन करते हुए जीवनयापन कीजिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपव्यय रोकें–प्रगतिशील बनें

अपव्यय उसे कहते हैं जिसके अनुसार पैसा उन कामों में खर्च किया जाय जिसमें किये बिना काम चल सकता है । पैसा पास में है इसलिए उसे किसी न किसी काम में खर्च करके समाप्त करना ही चाहिए, ऐसे उतावले लोग वह निर्णय नहीं कर पाते कि उसे कहाँ खर्च किया जाय ? घटिया किस्म के लोग दुर्व्यसनों में, उथले मनोरंजन में अथवा शेखी बघारने के लिए किये जाने वाले कामों में धन लुटाते रहते हैं इसलिए उनकी देखा-देखी अदूरदर्शी लोग भी अपना रवैया वैसा ही बना लेते हैं और फिजूल-खर्ची के लिये किये जाने वाले कामों की एक लम्बी सूची सामने प्रस्तुत हो जाती है ।

फिजूलखर्ची की आदत इतनी बड़ी खाई है जिसे पाटने के लिए दुनिया की सारी दौलत मिलकर भी कम पड़ती है । आमदनी की सीमा है पर खर्च की नहीं । कोई व्यक्ति असीम नहीं कमा सकता । उपार्जन के पीछे कोई न कोई सीमा, मर्यादा एवं व्यवस्था रहती है पर खर्च को, फिजूल खर्च को सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता है । कितनी ही बड़ी दौलत हाथ में क्यों न हो उसे कोई भी मनचला व्यक्ति कुछ ही समय में स्वाहा कर सकता है । और आज का सम्पत्तिवान कल घोर अभावग्रस्त बन सकता है । ऐसे लोग आमतौर से कर्जदार और बेईमान पाये जाते हैं । इच्छित खर्च पूरा कर सकने में सीमित आजीविका कम पड़ती है, ऐसी दशा में उन्हें ऋण लेने, बेईमानी करने जैसे अनेक अनैतिक उपाय काम में लाने पड़ते हैं । कई बार तो अत्यन्त आवश्यक और उपयोगी कार्यों के लिए प्रयुक्त होने वाला धन भी अपव्यय की आतुरता में नष्ट होते देखा गया है ।

घर से परीक्षा फीस के लिए मिले पैसे सिनेमा देखने में खर्च कर डालने वाले ऐसे लड़के भी देखे जाते हैं जो समय पर फीस जमा न करने के कारण परीक्षा देने से वंचित रह गये और फिर मन उचट जाने के कारण आगे पढ़ ही न सके । जिन्दगी भर घटिया जीवन जीने के लिए विवश रहे । दवा खरीदने के लिए घर से लेकर चले पैसे को पान, सिगरेट और होटल में खर्च कर डालने वाले और कोई बहाना बनाकर खाली हाथों घर लौटने वाले भी कई होते हैं वे नहीं जानते हैं कि इस अपव्यय से परिवार के किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति को जिन्दगी से हाथ धोना पड़ेगा । नशेबाजी की आदत से ग्रसित लोग अपनी पत्नी और बच्चों को किस दयनीय दुर्दशा में डाले रहते हैं इसके करुणा चित्र देखकर वह विभीषिका आँखों के सामने नाचने लगती है । जो फिजूलखर्ची की बुरी आदत के साथ सदा से जुड़ी रही है ।

अपव्यय का अर्थ है–उच्च जीवन की सुरक्षा, सुव्यवस्था एवं प्रगति के लिए आवश्यक साधन जुटाने से वंचित रहना । अपनी और अपने परिवार की भौतिक एवं आत्मिक उन्नति के लिए ऐसे अनेक साधन जुटाने पड़ते हैं जो व्यय साध्य है, शिक्षा-स्वास्थ्य-अनुभव एवं कौशल का संवर्द्धन धन की अपेक्षा करता है । हमें अपने लिए और अपने परिवार के लिए ऐसे साधन जुटाने चाहिए । इन उपयोगी कामों में धन लगाना उन्हीं के लिए सम्भव होगा जो अपव्यय की बुरी आदत से अपना हाथ पूरी तरह रोक कर रखें । जिनकी कमाई शौकीनी, अय्याशी या बेवकूफी में खर्च होती रहती वे अपने और परिवार के भविष्य को उज्ज्वल बना सकने वाले साधनों से वंचित ही रहेंगे ।और अपव्यय के पाप का दण्ड न केवल अपने को वरन् समस्त परिवार को अभावग्रस्तता एवं पिछड़ेपन के रूप में भुगतना पड़ेगा ।

शारीरिक और पारिवारिक उत्तरदायित्वों के अतिरिक्त मनुष्य के कंधों पर समाज की, जनश्रेष्ठता के अभिवर्द्धन की, पीड़ित पिछड़े हुओं को सहारा देने की भी जिम्मेदारी है । इसे पुण्य-परमार्थ के नाम से पुकारा जाता है । यह एक सामाजिक ऋण है जिसे चुकाया ही जाना चाहिए । आत्मिक प्रगति के लिए सेवा-साधना से निरत होना भी एक अत्यन्त आवश्यक मानवीय कर्त्तव्य है । जो इसे पूरा नहीं करते उन्हें आत्मप्रताड़ना सहनी पड़ती है और ऋण-ग्रस्त चोर की तरह जिन्दगी पूरी करनी पड़ती है । लोक-मंगल के परमार्थ प्रयोजन भी शारीरिक और पारिवारिक उत्तरदायित्वों की तरह जीवन की एक अनिवार्य आवश्यकता हैं । इनकी पूर्ति के लिए भी धन की अपेक्षा रहती है । इसे जुटा सकना केवल उन्हीं के लिए सम्भव है जो अपनी आजीविका के, अपव्यय के अवाँछनीय छिद्रों में होकर टपक जाने से रोके रह सकें ।

धन की तरह ही मनुष्य के पास दूसरी भी बहुमूल्य सम्पदायें हैं जिन्हें समय, श्रम, चिन्तन एवं कौशल कहते हैं । व्यक्तित्व को प्रतिभासम्पन्न बनाने की अनेकों चेतनात्मक विशेषताएँ हमारे पास होती हैं । जिन्हें विभूतियाँ कहते हैं । वस्तुतः यह भी अदृश्य धन वैभव ही है । गुणात्मक विशेषताओं के फलस्वरूप ही बाह्य जीवन में अभीष्ट सफलताएँ मिलती हैं और सम्पत्तियाँ संग्रहीत होती हैं । इनकी गरिमा कोई विरले ही समझते हैं अन्यथा आमतौर से बेखबर लोग इन अदृश्य सम्पदाओं की बेतरह बर्बादी करते रहते हैं फलस्वरूप भौतिक जीवन में उन्हें पिछड़ी और अभावग्रस्त, परिस्थिति का दुर्भाग्य वहन करना पड़ता है ।

समय की बर्बादी धन की फिजूलखर्ची की भाँति ही दुष्परिणाम उत्पन्न करती है । आलस्य और प्रमाद में मटर-गश्ती और यारबाजी में जितना समय खर्च किया जाता है यदि उसे बचाया जा सके और स्वास्थ्य संवर्द्धन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में लगाया जा सके तो उस दिशा परिवर्तन का आश्चर्य- चकित करने वाला सत्परिणाम सामने खड़ा दिखाई देगा ।

कड़ी समीक्षा करके देखा जाय तो पता चलेगा कि- हमारा आधा समय ऐसे ही मन्दगामी क्रिया-कलापों में अथवा अनावश्यक खिच-खिच में नष्ट होता रहता है । समय का सुव्यवस्थित विभाजन करना और मुश्तैदी, चुस्ती एवं दिलचस्पी के साथ कामों को निपटाना यदि अपने स्वभाव का अंग बन जाय तो प्रतीत होगा कि जितना काम पिछले दिनों पूरा समय खर्च करने पर भी पूरा नहीं ही हो पाता उसके कहीं अधिक काम आधे समय में निपट गया और आधा समय अन्य उपयोगी कामों में लगाने को बच गया ।

इस तरह की मुश्तैदी जिन्दगी की अवधि को दूनी कर लेने के बराबर है । प्राय: आधी जिन्दगी जितना समय आलस्य और प्रमाद की अस्त-व्यस्तता में नष्ट होता रहता है, उसे जो बचा सका उसने स्पष्ट रूप से महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त करने के लिए अपनी जिन्दगी दूनी कर ली । संसार के सभी सफल जीवन-महामानव इसी रीति-नीति को अपनाते रहे हैं । उनकी प्रगति एवं सफलता का सर्वप्रथम और सर्वप्रधान रहस्य यही रहा है कि उन्होंने समय की बर्बादी रोकी और अपने बहुमूल्य समय को पूरी तत्परता के साथ अभीष्ट प्रयोजन में लगाना आरम्भ कर दिया । ऐसे लोग घरेलू काम-काजों को भी थोड़े समय में उतनी अच्छी तरह निपटा लेते हैं जितना कि अव्यवस्थित लोग पूरा दिन खर्च करने पर भी नहीं कर पाते । साथ ही उन्हें उपयोगी कार्य करने के लिए पर्याप्त अवकाश मिल जाता है । प्रगतिशील जीवन में जिन्हें तनिक भी दिलचस्पी हो उन्हें प्रथम कार्य अपने समय और पल का एक कण भी बेकार नष्ट न होने देना चाहिए । फिजूलखर्ची को अपना सबसे बड़ा शत्रु मानना चाहिए । न धन को बर्बाद होने देना चाहिए, न समय को । यह दोनों ही सम्पदाएँ एक दूसरे के साथ जुड़ी हुई हैं ।

चिन्तन इन दोनों ही सम्पत्तियों का मूल है । मस्तिष्क जो सोचता है वही शरीर को करना पड़ता है और आकांक्षा के अनुरूप ही सम्पत्ति का व्यय होता है । चिन्तन यदि ओछे कामों में उलझा रहेगा तो फिर यह उमंग उठेगी ही नहीं कि प्रगतिशील जीवनक्रम अपनाने के लिए समय की अथवा धन की बर्बादी रोकी जाय । चिन्तन की उत्कृष्टता ही हमारे व्यक्तित्व को झकझोरती, बदलती और सुधारती है इसलिए उसका महत्व और भी पहले समझना चाहिए । विचारणा को बहुमूल्य सम्पदाओं और सफलताओं की जननी मानकर उसे भी उत्कृष्ट चिन्तन में नियोजित करना चाहिए । अपव्यय केवल धन का ही नहीं समय और चिन्तन का भी होता है । इन तीनों ही सम्पदाओं का सदुपयोग करते हुए ही कोई व्यक्ति ऊँचा उठा और आगे बढ़ा है । हमारे लिए एकमात्र सुख-शान्ति का मार्ग है ।

अपव्यय को रोकें, उपार्जन को सम्मान दें

छोटे-बड़े हर घर में आर्थिक तंगी की शिकायत किसी न किसी रूप में बनी रहती है । इस मुसीबत के कारण जीवनक्रम सामान्य नहीं हो पाता । इस तरह की अस्त व्यस्तता जीवन के किसी क्षेत्र में प्रगतिक्रम को चलने नहीं देती । बस जैसे-जैसे रोते-कलपते जिन्दगी गुजर जाती है ।

इसके कारणों को खोजने के लिये भारतीय परिवारों की मानसिकता को समझना जरूरी है । इस क्षेत्र में कुछ ऐसी मान्यताओं ने जड़ जमा ली हैं, जिनके व्यामोह के कारण हम इस परेशानी से उबर नहीं पाते अन्यथा मनुष्य जैसे बुद्धिमान प्राणी के लिये निर्वाह साधनों को जुटाने के लिये व्यथित रहने की आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिए ।

संसार में उतने साधन अवश्य रहते हैं जितनों की उस समय के प्राणियों को अनिवार्य जरूरत है । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुये देखा यह जाना चाहिए कि कहीं हमने जरूरतों को इतना तो नहीं बढ़ा लिया है जिनकी पूर्ति न हो सके अथवा उपार्जन क्षमता को कुण्ठित तो नहीं कर लिया । यह भी हो सकता है कि दोनों स्थिति यथास्थान रही हों, पर उनके बीच संगति बिठाने की कला से वंचित रहना पड़ रहा हो । जैसा भी हो समाधान सोचना जरूरी है, ताकि निर्वाह ठीक तरह से चल सके और उपार्जन से भी अधिक महत्वपूर्ण कार्यों में धन और समय लग सके ।

यदि सदुपयोग के लिये कमाया गया है तो अधिक कमाने में कोई हर्ज नहीं । इसमें कर्त्ता को श्रेय और विश्व-व्यवस्था में सहयोग मिलता है, पर इसके लिये आसमान से हुण्डी बरसने और जमीन से सोने के घड़े निकलने जैसे दिवास्वप्न में नहीं उलझे रहना चाहिए । इसके लिये बैचेन लोगों को उतावली में ऐसा कुछ करना पड़ता है जो नहीं करना चाहिए अथवा खीझ में अनेकानेक व्यथायें पाल लेने से धीमी आत्महत्या की स्थिति बन सकती है । ठीक यही है कि धन के सम्बन्ध में अपने दृष्टिकोण को सन्तुलित और परिमार्जित करें ।

धन को न अस्पर्श्य माना जाय और न उसमें निमग्न रहा जाय । अति सभी जगह वर्जित है । सन्तुलन को और सामंजस्य को सभी जगह सराहा जाता है । उपार्जन उचित है इससे अपना और दूसरों का काम चलता और अभाव दूर होते हैं । अपने पास पेट भरने को है तो दूसरों की तो वैसी स्थिति नहीं है । साधन बढ़ेंगे तो किसी न किसी के काम आयेंगे । इसीलिए उत्पादनरत रहने की बात कही जाती है । सन्तोष उपार्जन में नहीं उपभोग में किया जाना चाहिए ।

अपने यहाँ के परिवारों की एक और कमजोरी है कि यहाँ एक कमाने वाला और बाकी सब खाने वाले हैं । घर का मालिक कमाया करे और बाकी सब बैठे-बैठे खाया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करें, यह बहुत बुरा प्रचलन है । इससे शारीरिक और मानसिक अपंगता सारे परिवार पर चढ़ती है । खाली लोग जिन दुर्गुणों से ग्रसित रहते हैं वे सारे इकट्ठे होकर अपने परिवार पर आ धमकते हैं । अच्छा यही है कि अपने छोटे बालकों को और असमर्थ वृद्धजनों को छोड़कर बाकी सब लोग कुछ न कुछ करने की बात सोचें । हर क्षेत्र में कोई न कोई गृह-उद्योग हो सकता है । 'बैठे से बेगार भली' की उक्ति के अनुसार खाली समय में कम आजीविका देने वाले रोजगार करने में कोई हर्ज नहीं । इनसे गौरव घटने की बात सोचना निराधार है ।

उत्पादक श्रम तो गौरव का आधार है । विनोबा तो काम को व्यापार मानकर करने की सलाह देते थे । इस तरह के कामों में घरेलू शाक-वाटिका, मोमबत्ती, अगरबत्ती बनाना, रद्दी कागजों के लिफाफे, स्लेट, प्लास्टिक पेन आदि न जाने कितने काम ऐसे हैं जो घर बैठे खाली समय में और कम खर्चे में किये जा सकते हैं । इन दिनों निरुद्योगी बनने की जो दुष्प्रवृत्ति चल पड़ी है, वही सारी समस्या की जड़ है । उसका निराकरण भी इस तरह हो जायगा । गाँधीजी ने खादी का जो इतना आग्रह किया था उसमें आर्थिक लाभ कम और मनोवैज्ञानिक लाभ अधिक था । उपार्जन के प्रति सम्मान और आलस्य में एक क्षण न गँवाने की सत्प्रवृत्ति को पुनः जीवित करने में देश का समग्र विकास एवं उत्कर्ष सोचा गया था ।

सार्वजनीन सुविधा की दृष्टि से अधिकाधिक उत्पादन के लिये किये गये प्रयास की सराहना तभी की जायगी । जब इसमें अनौचित्य का समावेश न हो । ऐसी चीजों के उत्पादन में श्रम नहीं खपाना चाहिए जो आदमी को दुर्बल बनाती, नीचे गिराती हैं । मादक द्रव्यों का उत्पादन ऐसा ही है । इससे उत्पादकों को लाभ भले मिलता हो, पर उपभोक्ता घाटे में रहते हैं । उपार्जन की कसौटी यही है कि वह उपार्जक और उपभोक्ता दोनों को लाभान्वित करे । इस दृष्टि से चोरी, चालाकी, बेईमानी, मिलावट के सहारे पैसा कमाने की नियति को परे झटकना होगा ।

घर के समर्थ लोगों में से हर एक को कुछ न कुछ श्रम करने की आदत डालनी चाहिए । मेहनत करने, कमाकर खाने में हर एक को गर्व का अनुभव होना चाहिए । इसे दुर्भाग्य ही कहेंगे कि परिवारों में 'एक कमाऊ, सब खाऊ' की नीति बदली नहीं गयी । पसीना बहाकर रोटी कमाने वाले को छोटा समझा जाता है और आरामतलबी में बैठे-ठाले दिन काटने वाले बड़े आदमी गिने जाते हैं, पर वास्तविकता यही है कि स्त्री-पुरुष कोई भी क्यों न हो, मेहनत, उत्पादन से जो बचता रहेगा उसकी वैसी ही दुर्गति होगी, जैसी धूप-हवा से दूर रहकर बन्द कोठरियों में रहने वाले की होती है ।

आर्थिक तंगी का एक और पक्ष है-अधिक खर्च करना । आजकल एक फैशन पनप गया है कि तरह-तरह की शान-शौकत से अपने स्टैंडर्ड को मापा जाता है । जबकि असलियत में यह बड़प्पन न होकर मूर्खता है । कपड़ा बुनने वाले कबीर, कपड़ा सीने वाले नामदेव, आधी धोती पहनने वाले गाँधी, साधारण जीवन व्यतीत करने वाले आइन्सटीन ये सब अपने समय के बड़े आदमी थे । अभी भी इनके बड़प्पन में कोई कमी नहीं आयी है । सही मायने में बड़प्पन कम खर्च करने में है ।

धन कमाना, उसे सिर्फ सदुपयोग भर में प्रयुक्त करना और महत्वपूर्ण कामों के लिये बचाकर रखना एक अर्थ कौशल है । छोटा छेद कर देने पर भरी तेल की टंकी भी खाली हो जाती है । कोई कमाता कितना ही क्यों न हो पर यदि अपव्यय की आदत है तो सदा तंगी सहनी पड़ेगी और कर्ज लेने से लेकर चोरी करने तक की अनीति अपनानी पड़ेगी । पैसे जेब में भरे फिरने वाले, बेतुकी चीजें खरीदने में परहेज न करने वाले लोग कमाऊ होने पर भी हाथ में बरक्कत न होने की शिकायत करते और तंगी पड़ने के तरह-तरह के कारण बताते रहते हैं । कितने ही समझदार लोग कम आजीविका में भी अपने परिवार का सज्जनोचित निर्वाह कर लेते हैं । न किसी के आगे हाथ पसारते हैं और न तंगी की फरियाद करते हैं । ''ते ते पाँव पसारिये, जेती लम्बी सौर'' का मन्त्र उन्हें संतुलन बिठाकर जीने की कला सिखाता है और उसके सहारे वह कम आमदनी में भले मनुष्यों जैसा जीवन भी जी लेते हैं ।

कमाने के बाद भी बात वहाँ अड़ती है जहाँ खर्च का सवाल आता है । ज्यादातर लोग तरह-तरह के चटोरेपन और भली-भाँति की सज-धज वाली कुटेब अपनाकर बेकार के प्रयोजनों में पैसा बहाते रहते हैं । यदि निहायत जरूरी खर्च की तालिका बनाई जाय तो वे इतनी कम होंगी जिन्हें बिना किसी परेशानी के पूरा किया जा सके । व्यर्थ में खर्च करने के कारणों में एक महत्त्वपूर्ण कारण धनवानों या अपव्यय करने वालों की चमक-दमक से तुलना करने की दौड़ में शामिल होना भी है ।

आर्थिक तंगी से निपटने के लिये जरूरी है कि दोनों कदम साथ उठें । पहला कदम अधिक उपार्जन, दूसरा कदम कम खर्च । दूसरों से तुलना करने की अपेक्षा यह ठीक है कि अपनी आमदनी का बजट बनाया जाय जिसमें एक हिस्सा परिवार की अत्यन्त जरूरी आवश्यकताओं के लिये, एक भाग भविष्य निधि के रूप में जिसे कभी विशेष जरूरतों में खर्च किया जा सके । एक भाग उस समाज के लिये हो जिसके हम पर बहुत ऋण हैं । इस तरह तीन हिस्सों में बाँटकर व्यवस्थित की गई अर्थव्यवस्था हमें सारे झंझटों से छुटकारा दिला सकती है । अधिक उपार्जन और कम खर्च का मंत्र समझ में आ जाने पर किसी भी तरह की आर्थिक तंगी का बोझ न ढोना पड़ेगा ।

परिवार ५, कम्प्यूटर डी, अन्जू १५.२.९६

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मिथ्या आडम्बरों से कोसों दूर

रूढ़िवादिता, फैशनपरस्ती, दुर्व्यसन और अनाचार आदि न मालूम कितने अवगुण आज के सभ्य समाज में फैले हुए हैं । ये हानिकारक हैं, इन से आये दिन अनेकों कष्ट, मुसीबत और आपदायें मनुष्य को घेरे रहती हैं । पर इनसे भी अधिक शक्तिशाली और अनेकों अवगुणों का जनक यह मिथ्या आडम्बर है । तब तक मनुष्य अपनी सही स्थिति को छुपाता नहीं तब तक यही सम्भव है कि उसे अधिक सम्मान न मिले, लोग उसे छोटा समझें । पर इतने से किसी प्रकार की हानि दिखाई नहीं देती । अपनी अल्पविकसित अवस्था में भी मनुष्य सुखी रह सकता है, संतोष प्राप्त कर सकता है । किन्तु जैसे ही मिथ्या आडम्बर और अपने को बढ़ा-चढ़ा कर प्रदर्शित करने की हीनता भावना मनुष्य में प्रविष्ट हुई कि उसके जीवन में दुर्दशा प्रारम्भ हुई । सामाजिक जीवन में आज जो विशृंखलता दिखाई दे रही है, उसका अधिकांश कारण यही है कि मनुष्य अपना असली चेहरा छिपाकर नकली नकाब चढ़ाये बैठा है ।

लोग समझते हैं कि जितना अधिक अपने आप को प्रदर्शित करेंगे उतनी ही हमारी औकात बढ़ेगी, सम्मान बढ़ेगा, मान और प्रतिष्ठा बढ़ेगी । पर यह भूल जाते हैं कि हम जिस समाज में पलकर इतने बड़े हुए उससे हमारी वस्तुस्थिति छिपी नहीं है । कदाचित् ऐसा भी हो जाय तो 'काठ की हाँड़ी' कितने दिन आँच सहेगी । आखिर जिस दिन टूट गई उस दिन अभी तक जितना सम्मान नहीं मिला उससे कहीं अधिक लज्जा, आत्मग्लानि, अविश्वास और उपहास का सामना करना पड़ेगा । पोल खुलती है तो मनुष्य अपना मुँह छिपाने लायक नहीं रहता फिर क्या आवश्यकता है कि हम मिथ्या आडम्बर प्रदर्शित करें ।

यह एक बहुत बड़ा अवगुण है कि लोग अपनी शक्ति के बाहर और स्थिति के बिल्कुल प्रतिकूल खर्च करते हैं । इससे लाभ तो कुछ होता नहीं । केवल एक महत्वाकांक्षा के लिए कि लोग आपको अमीर समझें, आप धन की होली जलाकर बैठ जाते हैं । परिणाम यह होता है कि आप कर्ज के बोझ से लद जाते हैं और विकास की सारी सम्भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं । आज की गलती का परिणाम सारे जीवन भर भुगतना पड़ता है । ब्याह-शादियों में नेग-चाल और जेवर आदि पर जो धन लगाया जाता है वह कितना हानिकारक है यह ध्यान देने की बात है । जिस धन से, बच्चों की पढ़ाई की व्यवस्था, परिजनों के संस्कार सुधार तथा घरेलू सुविधायें जुटाने में मदद मिलती, वह पंगु बनकर रह जाती है या बिल्कुल व्यर्थ बरबाद हो जाती है ।

इससे कोई स्थायी सम्मान ही मिलता तो भी एक बात थी पर आप विश्वास कीजिये कि आप समाज की आँखों में कभी धूल नहीं झोंक सकते हैं । मान लीजिये, आप परिवार का भरण-पोषण नहीं कर पाते हैं, फिर यदि आप केवल दिखावे के लिये बेकार खर्च करते हैं तो सिवाय बच्चों के पेट काटने के आप को और कौन सा रास्ता मिल गया ? यदि लोग ऐसा न भी सोचें तो यह मानने में वे भूल न करेंगे कि कुछ धन आप अवैधानिक ढंग से कमाते होंगे । ऐसी अवस्था में आप निन्दा, उपहास और छींटाकशी से बच जायेंगे यह हो नहीं सकता । अतः इससे आप जिस सम्मान या बड़प्पन की कामना किये बैठे थे वह भी नहीं मिला, उलटे औरों की दृष्टि से नीचे गिरे और अपना भविष्य बरबाद कर लिया सो अलग ।

यह बात स्त्रियों में अधिक होती है । अपने लिये जेवर और कीमती कपड़ों के लिये वह यह ध्यान नहीं देतीं कि उनके पति की हैसियत क्या है ? स्त्री की इच्छा पूरी करने के लिये बेचारा पति ऐसा तभी कर सकता है, जब किसी से कर्ज ले या आवश्यक कार्यों को छोड़ दे । इसके कारण आज लोगों में कितनी चिन्ता, उदासी और बेचैनी रहती है यह किसी से छुपी नहीं ।

इस प्रकार के मिथ्या आडम्बर का परिणाम यह हुआ कि आज हजारों घर बरबाद हो गए हैं, सैकड़ों अशान्ति, कलह और दुर्दशा की आग में झुलस रहे हैं । लोगों के स्वास्थ्य खराब हो रहे हैं । अनेकों को तो आत्महत्या जैसे दुःखद अपराध भुगतने पड़े हैं । जो ऐसा नहीं करते वे घुल-घुल कर अपना जीवन तत्व बरबाद करते रहे हैं और असमय ही इस संसार से विदा होते जाते हैं और अपने पीछे पत्नी और बच्चों को बिलखता हुआ छोड़ जाते हैं । देखवे में बिल्कुल मामूली-सी बात का इतना भयंकर परिणाम उठाना पड़ता है, इसलिये अपनी स्थिति से बढ़कर झूठे दिखावे की बात बुद्धि-संगत नहीं कही जा सकती है । बढ़ा-चढ़ाकर अपने आपको प्रदर्शित करने का एक ही अर्थ है कि आप अपना जीवन बरबाद करने जा रहे हैं ।

इससे व्यक्तिगत हानि तो होती ही है संक्रामक रोग की तरह सम्पूर्ण समाज भी इससे प्रभावित होता है । प्रतिद्वन्द्विता की प्रतिस्पर्द्धा मनुष्य की एक विलक्षण विशेषता है । एक आदमी विवाह में एक हजार का दाँव लगाता है तो उसका पड़ोसी डेढ़ हजार, दो हजार खर्च करने में अपनी शान समझता है । इससे कम-खर्च को वह अपना अपमान समझता है । यह कभी विचार नहीं करता कि हमारे पास साधन, परिस्थितियाँ और भविष्य के लिये भी कुछ शेष रहता है या नहीं । अज्ञानतापूर्वक केवल अपने मिथ्याभिमान के लिये यह अपव्यय दुःख और मुसीबतों का ही कारण बन सकता है ।

जिस समाज में वह अन्धानुकरण और अविवेक का बोलवाला होगा वह समाज कभी सुखी नहीं रह सकेगा । भारतीय जीवन की दुर्दशा का अधिकांश कारण आज यही है कि लोग अपनी हैसियत से अधिक अपने आप को प्रदर्शित करना चाहते हैं इसके लिये चाहे कितने अनैतिक अपराध करने पड़ें । भीतर-भीतर बढ़ते हुए इस प्रकार के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपराधों के कारण ही भ्रष्टाचार, दुराचार और मिथ्याचार बुरी तरह बढ़ रहा है ।

बाहरी सजधज को जो मान प्रतिष्ठा का आधार बनाते हैं वे भ्रम में हैं । बुद्धिमान पुरुष बाहरी टीमटाम भड़कीले वेश-विन्यास और चमकीले वस्त्राभूषणों के कारण लोगों को आदर की दृष्टि से नहीं देखते । मनुष्य की शालीनता उसकी सादगी में होती है । सद्विचार और सादगी का परस्पर का अत्यन्त निकट का सम्बन्ध होता है । जहाँ सादगी होगी वहीं सत्कर्म होंगे, जहाँ सत्कर्म होंगे वहीं सुख और सुव्यवस्था होगी । प्रेम, एकता और विकास के अनेकों साधन अपने आप मिलते चले जायेंगे । उत्तम सन्तान और श्रेष्ठ संस्कार जाग्रत करने के लिये पुरुषों की अपेक्षा नारियों में सादगी की भावना का अधिक विकास होना आवश्यक है । सादेपन की सभी लोग इज्जत करते हैं ।

अपनी वास्तविक स्थिति में अन्त तक बिना दिखलावे के साथ बने रहना मनुष्य का नैतिक बल प्रदर्शित करता है । सम्भव है कि आज की परिस्थितियों में कुछ झिझक, संकोच या आत्मग्लानि-सी उठे किन्तु एक-सी स्थिति में सुखी व सन्तुष्ट जीवन बिताने के लिये यह सर्वश्रेष्ठ मार्ग है कि आप अपनी स्थिति का अतिक्रमण न करें । बच्चे की शादी, उधार एक हजार लेकर करने की अपेक्षा बिना धन खर्च किये किसी निर्धन कन्या के साथ कर देना अधिक श्रेष्ठ है । गरीब घरानों की कन्याओं में संस्कार कम अच्छे होंगे ऐसी मान्यता गलत है । इसलिये थोड़ी देर की चटक मटक और झूठी प्रशंसा के लिये सदैव के लिये अपने पैरों पर कुल्हाड़ी न मारिये । इससे आपका गृहस्थ तथा सामाजिक जीवन विपदाओं में ग्रस्त हो जायगा । कभी मानसिक शान्ति न पा सकेंगे । गरीब होना पाप नहीं है किन्तु जब आप गरीबी छिपाने का प्रयत्न करने लगते हैं तो गरीबी तो ज्यों की त्यों बनी ही रहती है । अनेक दूसरी प्रकार की विघ्न-बाधाएँ उठ खड़ी होती हैं । निर्धनता का उपहास कुछ दिन हो सकता है किन्तु झूठे-प्रदर्शन से जो दुष्परिणाम उपस्थिति होते हैं उनसे सम्पूर्ण जीवन ही बर्बाद हो जाता है ।

झूठ जब तक व्यक्तिगत रूप से बोलने चालने तक ही सीमित रहता है तब तक उससे विशेष हानि की सम्भावना नहीं होती किन्तु योजनाबद्ध झुठाई के परिणाम बड़े भयंकर होते हैं । मिथ्या आडम्बर एक प्रकार के झूठ का व्यवस्थित और शक्तिशाली रूप है । योजना-बद्ध झुठाई की लाग और लपेट भी बढ़ जाती है इसलिये व्यक्ति और समाज दोनों पर उसका प्रभाव पड़ता है । इसलिये हम जिस स्थिति में हैं अपने जीवन को उतने ही क्षेत्र में नियंत्रित रखें इसी में अपनी और समाज दोनों की भलाई है ।

आडम्बर–अपव्यय की एक मूर्खतापूर्ण आदत

कई लोगों को दिखावे की मूर्खतापूर्ण आदत होती है । वे अपनी आय की तुलना में बहुत अधिक मूल्य के फर्नीचर, सोफा सैट, अल्मारियाँ, रेफ्रीजरेटर, रेडियो, टेलीविजन आदि ऋण से या किश्तों पर लेकर रखते हैं, और रईसों की तरह घर को सजाते हैं । बहुमूल्य सिंथेटिक वस्त्र पहनते हैं । मूल्यवान विदेशी घड़ियाँ पहन कर वे ऐसा अनुमान लगाकर चलते हैं कि देखने वालों पर रईस और पैसे वाले होने का कैसा प्रभाव पड़ेगा ?

अपनी औकात से अधिक खर्च करना आडम्बर होता है । व्यक्ति अपनी आय के अनुकूल कपड़े पहने, मकान में रहे और उसे सजाकर रखे और वैसा ही व्यवहार करे तो स्वाभाविक मालूम पड़ता है, किन्तु जब बहुमूल्य फर्नीचर, साधन-सामग्री येनकेन प्रकारेण जुटाकर मूल्यवान वस्त्र व उपकरण उधार या कर्ज पर लेकर इकट्ठे किये जाते हैं और देखने वालों पर बड़ा आदमी होने का प्रभाव डालने का प्रयास किया जाता है । यही बात व्यक्ति की उथली मनोवृत्ति की परिचायक हो जाती है । हानियाँ भोगनी पड़ती हैं सो अलग ।

आडम्बर एक प्रकार से मानसिक विलासिता है । अपनी स्थिति नहीं है, स्वयं ऊँचे मूल्य के सामान-साधनों का व्यय भारी वहन नहीं कर सकते तो भी किसी प्रकार जुटाकर दिखावा करना, मानसिक विलासिता नहीं तो और क्या है ? इस झूठी महत्वाकांक्षा का जीवन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है ।

जब व्यक्ति अपनी आय से अधिक व्यय करता है, ऋण लेकर अथवा किश्तों पर महँगी वस्तुयें खरीदता है, कपड़े पहनता है तो आय-व्यय का सन्तुलन बिगड़ जाता है । आर्थिक स्थिति पर दबाव पड़ता है । वस्तुओं की किश्तें चुकाने, ऋण का ब्याज देने से आय कम हो जाती है, परिणामस्वरूप गृहस्थी के अनेक आवश्यक कार्य छूट जाते हैं । जब मूल आवश्यकताओं की पूर्ति भी नहीं होने पाती है तो बड़ी कठिनाइयाँ बढ़ जाती हैं और इनकी पूर्ति के लिए व्यक्ति को और लोगों से कर्ज लेना पड़ता है । कर्ज लेने से उसके ब्याज का भार भी बढ़ जाता है और कर्ज लौटाने की समस्या भी ज्यों की त्यों बनी रहती है ।

इस प्रकार पारिवारिक जीवन में बनावटीपन और खींचतान बढ़ना प्रारम्भ हो जाता है । पारिवारिक जीवन में होने वाली आर्थिक कमियों का प्रभाव बहुधा गृहणी पर पड़ता है । उसे ही किसी प्रकार घर चलाना पड़ता है, आए-गए का स्वागत सम्मान करना पड़ता है, उसे ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चों की पढ़ाई-लिखाई की आवश्यकताओं की पूर्ति करनी पड़ती है । किसी प्रकार सब समस्याओं को सुलझाती रहती है । उसके साहस का बाँध उस समय टूटने लगता है जब बाहर के लेने वालों के पैसा लेने तकाजिया लोग आते हैं । पति घर से बाहर होते हैं और उसे ही अनेक प्रकार के बहाने बनाकर टालना पड़ता है । पौष्टिक आहार की कमी के कारण बच्चों का स्वास्थ्य नष्ट हो रहा होता है, तब इसे दिखावे के सामान काँटे की तरह खलने लगते हैं और पति की नासमझी पर तरस आने लगता है । समझाने पर भी जब वह कहना नहीं मानता तो दाम्पत्य जीवन भी कटु हो जाता है । परस्पर मनमुटाव होने लगता है । दाम्पत्य जीवन नीरस लगने लगता है ।

आडम्बर से व्यक्ति न तो स्वयं ही सुख-शान्ति से रहता है और न परिवार ही चैन से रह पाता है । जिस व्यक्ति के सिर पर ढेर-सा ऋण देने का भार हो, जिसकी मासिक आवश्यकताएँ सुगमता से न जुट पाती हों उसे कहाँ सुख और कैसी शान्ति वह तो सदैव चिन्ताओं में ग्रस्त रहता है । चिन्ताओं के कारण मानसिक तनाव बढ़ता है और उस अवस्था में व्यक्ति कोई भी काम ढंग से नहीं कर पाता । स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है । सहन शक्ति समाप्त हो जाती है ।

समय पर सामान की किश्त का पैसा न पटने, ऋण लेने और पारिवारिक खर्चों की पूर्ति हेतु लिए गये सामानों का बिल बकाया रहने से व्यक्ति का सामाजिक सम्मान नष्ट होता है और कभी-कभी तो अपमानित भी होना पड़ता है । इस प्रकार आडम्बर और दिखावा व्यक्ति को हर क्षेत्र में दुःखी बनाता है ।

दिखावे और आडम्बर में पुरुष ही संलग्न हों और उन्हीं के द्वारा परिवार की स्थिति बिगड़ती हो ऐसी बात नहीं है । बहुत-सी महिलाएँ भी इसमें अग्रणी पाई जाती हैं । घर की आर्थिक स्थिति कैसी भी हो किन्तु उन्हें तो मूल्यवान आभूषण और ऊँचे दाम की साड़ियाँ पहन कर दूसरों को दिखाये बिना चैन नहीं होता । चाहे आभूषणों का ऋण चुकाते पति परेशान हो, कीमती साड़ियों की उधारी के कारण घर की आवश्यक वस्तुएँ भी नहीं खरीदी जा पाती हों । यह आदत किसी की भी हो, पति की या पत्नी की, अच्छी नहीं मानी जा सकती । इसे सुधारा जाना चाहिए । फिर एक बात और विचारणीय है कि जिन लोगों को आडम्बर और दिखावे के द्वारा प्रभावित करने की व्यक्ति सोचता है, यह आवश्यक तो नहीं कि वह प्रभावित हो ही जाय । उल्टे जब लोगों को इस बात की जानकारी होती है कि यह सारा सरंजाम ऋण लेकर, कर्ज के द्वारा बनाया गया है तो रोब के स्थान पर उलटी उपेक्षा ही प्राप्त होती है ।

इस ठाट-बाट की पोल उस समय बुरी तरह खुल जाती है जब किसी बीमारी के कारण या दुर्घटना के अवसर पर आवश्यकता होने पर थोड़े-थोड़े पैसे के लिए दूसरों के प्रति दौड़ता देख लिया जाता है । इस प्रकार वह अप्रतिष्ठा और आलोचना का पात्र बनता है ।

आजकल अधिकांश घरों में यही स्थिति चल रही है । कहीं पति अपनी सनक में घर फूँक तमाशा देख रहा है, तो कहीं पत्नी आभूषण, बहुमूल्य वस्त्रों के दिखावे और सिनेमा आदि में अनावश्यक खर्च घर की आर्थिक स्थिति बिगाड़े हुए है न कोई स्थायी सम्पत्ति है और न समर्थ आजीविका । बस घर में दिखावे का ही वातावरण है, अनावश्यक दिखावे के सामान भरे दिखाई देते हैं ।

समझदारी तो इस बात में समझी जाती है कि परिवार का संचालन व्यवस्थित ढंग से करने के लिए अपनी आय का आय-व्यय ब्यौरा (बजट) बनाकर विषयवार सन्तुलित खर्च किया जाय । प्रत्येक मदद में बजट के अनुसार ही मर्यादित रहने से व्यवस्था बन सकती है । अमर्यादित अपव्यय करने से बजट अस्त-व्यस्त हो जाता है और उसकी कोई उपलब्धि नहीं हो पाती । बजट के अनुसार मर्यादा-पूर्वक खर्च करने से अर्थव्यवस्था संतुलित रहती है जिससे भोजन, वस्त्र, आवास, सन्तान की शिक्षा तथा स्वास्थ्य की विधि-व्यवस्था ठीक रहती है । आकस्मिक निधि व्यवस्थित रहने से कभी दुःख, तकलीफ या अन्य कारण से धन की आवश्यकता होने से वह निधि ऐन मौके पर आड़े समय पर काम आती है । इस प्रकार व्यवस्थित अर्थव्यवस्था से गृहस्थ के प्रति लोगों का विश्वास जागता है और उसके प्रति सम्मान की भावना निर्मित होती है ।

व्यवस्थित अर्थव्यवस्था के अनुसार चलने वाले व्यक्तियों को बच्चों की शिक्षा और शादी-ब्याह के अवसर पर भी अधिक कठिनाई नहीं उठानी पड़ती क्योंकि उन्होंने बजट में उसका भी प्रावधान किया होता है । जब बच्चे छोटे होते हैं उस समय बचत आसानी से हो जाती है । भविष्य के लिए उन दिनों कुछ इकट्ठा किया जा सकता है । जब बच्चे बड़े हो जाते हैं, परिवार का खर्च सामान्यतः बढ़ जाता है, पढ़ाई, पुस्तक और वस्त्रादि का खर्च भी उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है और बचत के मद में कमी हो जाती है । अतः भविष्य का ध्यान रखकर बचत की आदत डालनी चाहिए ।

यही आवश्यक नहीं है कि आवश्यक वस्तुओं के मद में कमी करके ही बचत की जाय । बहुत से अनावश्यक व्यय रोककर भी बचत की जा सकती है । आडम्बर और दिखावे की प्रवृत्ति यदि छोड़ दी जाय, अपनी आय की परिधि में रहकर व्यवस्था बनाई जाय तो व्यक्ति उन सारी कठिनाइयों से मुक्त हो सकता है जो उसे आडम्बर और दिखावे के कारण उठानी पड़ती हैं ।

महापुरुषों के जीवन से आदर्श के रूप में हमें 'सादा जीवन, उच्च विचार' की प्रेरणा मिलती है । हमारा जीवन तो सादा हो किन्तु विचार-भावनाएँ उच्च हों । हम उच्च आदर्शों को अपनायें । सादा जीवन अपने आप में एक जीवन पद्धति है, जिसके अनुसार व्यक्ति का जीवन सुव्यवस्थित और सुविकसित बन सकता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपव्यय से बचें, मितव्ययिता का आश्रय लें

मितव्ययिता को पारिवारिक पंचशीलों में प्रमुख स्थान दिया गया है । सीमित खर्च करने का अर्थ है अपव्यय में नष्ट होने वाली राशि को बचा लेना । अर्थात् उतनी नई कमाई कर लेना । बचत ही वस्तुतः भविष्य को अधिक समुज्जवल बना सकने में समर्थ सम्पदा है ।

यह अधिक महत्वपूर्ण नहीं कि कौन कितना कमाता है ? उसकी आमदनी कितनी है ? यदि खर्च अनावश्यक रूप से बढ़ा लिया गया है तो फिर पूरा किसी भी प्रकार नहीं पड़ेगा उलटा कर्ज लेना पड़ेगा । अनीति उपार्जन पर उतारू होना पड़ेगा ! यह स्थिति ऐसी है जिसे अभावग्रस्तता से भी अधिक कष्टकर कहा जा सकता है ।

दुर्गुणों में अपव्यय को प्रमुखता दी गई है । उसकी अनेकानेक हानियाँ हैं । अपव्यय प्राय दुर्व्यसनों में ठाट-बाट में, बड़प्पन जताने के लिए किये गये कामों में ही होता है । नशेबाजी, जुआ, नाच-तमाशा, मौज-मजा जैसे कार्यों में होता है । शृंगार सज्जा भी इसी में आती है, लोग कीमती कपड़ों की अनेकों जोड़ियाँ बनवाते हैं और उनसे बक्से भरे रहते हैं । स्त्रियों में जेवर का शौक उसी प्रकार का है उससे पहने जाने वाले अवयवों में अस्वास्थ्यकर दबाव पड़ता है । नाक, कान आदि कोमल और प्राकृतिक सौन्दर्य से भरे-पूरे अंगों को छेदकर उनमें चित्र-विचित्र प्रकार के जेवर ठूँस देना एक प्रकार से उन अंगों के साथ अत्याचार करना है । हाथों की अँगुलियों, कलाइयों पर, गले में, पैरों में अनेक प्रकार के जेवर लदे देखे जाते हैं, इनसे हर प्रकार की हानियाँ हैं । लाभ रत्ती भर भी नहीं । उनके दबाव से अंग विकृत होते हैं लम्बी रकम उनमें फँसती है । बार-बार टूट-फूट होती रहने से मरम्मत में पैसा जाता है । चोर, उचक्कों का डर हमेशा बना रहता है । देखने वालों को प्रसन्नता कम और कुढ़न अधिक होती है । कोई उसे बेईमानी की कमाई ठहराता है तो किसी को इसमें अहंकार प्रदर्शन की गंध आती है । परिवार में न्यूनाधिकता के कारण ईर्ष्या उभरती है । इतने सब कारण जेवर बनवाने और पहनने के साथ जुड़े हुए हैं ।

कीमती कपड़ों की अनेक जोड़ियाँ रखने के बारे में भी यही बात है । वे दिन बहुत पीछे छूट गए जब किसी की अमीरी देखकर लोग प्रभावित हुआ करते थे और उसे भाग्यवान् बड़ा आदमी माना करते थे । अब साम्यवाद व समतावाद की लहर ने हर किसी का मन और चिन्तन इसी दिशा में मोड़ दिया है । अमीरी जताने वाले प्रदर्शनों को सीधा चोरी का, बदमाशी का माल ठहरा दिया जाता है, ईर्ष्यालु और किसी प्रकार हड़पने का कुचक्र रचने की घात में रहने वालों की भी कमी नहीं रहती । इस प्रकार जिस प्रतिष्ठा की प्राप्ति के लिए ठाठ-बाट बनाया था वह मिलना तो दूर उलटे अनेकानेक प्रकार की हैरानियाँ खड़ी करने वाला बन जाता है ।

घर के अन्य सदस्य भी वैसी ही शौक-मौज के लिए ललचाते हैं और अपना स्तर भी कम रौबीला नहीं रहने देते । उन्हें भी अपने-अपने ढंग से उसी से मिलती-जुलती फरमाइश पूरी करने की जुनून चढ़ती है । इस प्रकार घर-खर्च, हाथ-खर्च आसमान छूने लगता है । इसकी पूर्ति उचित मार्ग से की गई कमाई से पूरी नहीं हो पाती तब ऋण लेते रहने से, अनीति मार्ग अपनाने से लेकर जो कुछ कर्म-कुकर्म बन पड़ता है, उसे पूरा करने से कम में उनका काम नहीं चलता । इस प्रकार ऊपरी तड़क-भड़क के लिए अपनी वास्तविक गरिमा को खोखली कर लिया जाता है ।

जिनकी आजीविका सीमित है पर ठाठ का खर्च बढ़ा लेते हैं उनके लिये यह कठिन पड़ता है कि लोगों की आँखों में अपनी ईमानदारी की छवि बनाए रहें । हर कोई अनुमान लगाता है कि जब आमदनी सीमित बताई जाती है तो फिर यह धनाध्यक्षों जैसा आडम्बर किस प्रकार बन पड़ता है ? इस प्रश्न का उत्तर कितनी ही सफाई देने पर भी दूसरों के गले नहीं उतरता । सज-धज में एक ऐब और है कि हर किसी की आँख में लगने के लिए-अपना विज्ञापन आप करते हुए ऐसे लोगों के पास जाना या उन्हें बुलाना इसलिए आवश्यक हो जाता है कि सस्ती वाहवाही लूटी जा सके । इस मेल-जोल बढ़ाने के चक्कर में प्रायः अवांछनीय व्यक्तियों के साथ ही संगति जुड़ती है और उनमें हजार तरह के खतरे छिपे रहते हैं । रूप-सौन्दर्य को शृंगार के सहारे निखारने के बाद महिलाओं की उत्सुकता इस बात में बढ़ती है कि लोग उन्हें देखें और मन ही मन या प्रकट रूप में अपनी प्रसन्नतापरक अभिव्यक्ति जतायें । यह ही वह चारा है जिसमें बहेलिए मछलियों और चिड़ियों को फँसाकर उनकी दुर्गति करते हैं ।

चतुर मालिक अपने नौकरों पर बारीकी से नजर रखते हैं कि वे अधिक खर्चीले और ठाठ-बाट बनाने वाले तो नहीं हैं । यदि हैं तो वे सोचते हैं कि इस अनावश्यक खर्च की पूर्ति अपने ही कारोबार से कहीं चोरी-चकारी करके की जा रही होगी । उन्हें सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है और समय आते ही उन्हें निकाल बाहर किया जाता है । अन्यत्र भी कहीं नौकरी ढूँढ़ने पर उनका ठाट-बाट ही कहीं सफलता नहीं मिलने देता । इस कुचक्र में भारी कीमत चुकानी पड़ती है । लड़कियों को गुण्डों की दृष्टि का शिकार होने में बहुधा यही कारण प्रधान रहता है ।

साथ ही यह आदत एक और दुर्गुण न्यौत बुलाती है कि ऐसा कोई शारीरिक श्रम न किया जाय जिससे कपड़े, हाथ मैले होते हों, तनिक-तनिक-सी बात के लिए नौकरों की दरकार होती हो । बड़े आदमी मेहनत नहीं करते, यह आम मान्यता है । इस बात को ध्यान में रखते हुए सज-धज वालों को बड़ा श्रम करने में अपनी बेइज्जती मालूम होती है और प्रायः उससे बचते ही रहते हैं । स्पष्ट है कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बिना कड़ा परिश्रम किए न तो कोई स्वस्थ रह सकता है न प्रगति पर अग्रसर हो सकता है । इन दोनों महत्वपूर्ण उपलब्धियों से उसको वंचित किए रहना कोई समझदारी की बात नहीं है ।

सादगी सज्जनता की निशानी है । उसमें नम्रता और शालीनता झलकती है । जिससे किसी के सौजन्य का सहज पता चलता है । नैतिक और सामाजिक क्षेत्रों में जिन्होंने बढ़-चढ़कर सफलता पाई और प्रतिष्ठा अर्जित की, उनमें से अधिकांश की वेशभूषा सादगी से भरी रही है । जन-साधारण के साथ एकता बनाने के लिए आवश्यक है कि उनके साथ एकरूपता का भी यथासम्भव प्रयत्न किया जाए । अपने देश में अधिकांश जन-साधारण को गरीबी की रेखा से नीचे का जीवनयापन करना पड़ता है । उनके साथ तादाम्य स्थापित करने वालों को उन्हीं जैसा रहन-सहन रखना चाहिए । तड़क-भड़क से वे आश्चर्यचकित भर होते हैं । उन्हें कुछ अजीब होने जैसे दृष्टि से देखते हैं पर यह अनुभव नहीं करते कि वह हमारी स्थिति का समाधान होगा । हमारे दु:ख-दर्द में सम्मिलित होने का मन रहता होता । इस स्थिति के रहते उनका मन जानना और सहयोग अर्जित करना कदाचित् ही कहीं दीख पड़ता होगा ।

मितव्ययिता अलग बात है और कंजूसी-कृपणता दूसरी, आवश्यक कामों में भी कृपणता के वशीभूत होकर कटौती की जाती रही और संचय को बढ़ाया जाता रहा है तो ऐसी बात तो फिजूलखर्ची से भी बुरी है । धन का सदुपयोग इसी में है कि उसे उपयोगी कार्यों में लगाते रहने के. उपरान्त ही जो बन पड़े उसकी बचत की जाय । उपयोगी कामों को रोककर की गई बचत तो अपनी प्रगति रोकती है और दूसरों की दृष्टि में उपहासास्पद बनाती है ।

परिवार की अर्थव्यवस्था सन्तुलित रखें

मितव्ययिता का आदर्श कहने में जितना सरल है लोगों को उसे व्यवहार में उतारने के लिए उतनी ही कठिनाई आती है, क्योंकि आमतौर पर लोग इस बात का निर्णय नहीं कर पाते कि हमें कहाँ खर्च करना चाहिए और कहाँ बचाना चाहिए ? पास में पैसा हो तो कई वस्तुएँ जो दिखाई देती हैं अनावश्यक होते हुए भी आवश्यक लगने लगती हैं और गाँठ की पूँजी जब समाप्त हो जाती है तो कई अनिवार्य आवश्यकताओं में कटौती करनी पड़ जाती है । लोग चाहते भी हैं कि हम आवश्यक वस्तुएँ ही खरीदें तथा जो कुछ कमाते हैं उसमें से थोड़ा बहुत बचायें भी । पर चाहने मात्र से कुछ नहीं होता

बचत तभी हो सकती है जब मितव्ययिता से काम लिया जाय और मितव्ययी बनने के लिए आवश्यक है कि खरीद करने से पूर्व क्या खरीदना है ? इसका निर्णय लेने का नियम बनाया जाय । इसलिए बजट बनाकर खर्च करना मितव्ययी बनने का एक स्वर्णिम सूत्र है । साथ ही हर वस्तु को नकद खरीदने की आदत डाली जाय । इससे हमें यह मालूम होता रहता है कि कितना रुपया व्यय हुआ है और कितना बाकी बचा है । जो लोग नौकरी करते हैं, वे महीने भर का बजट बना सकते हैं जिन्हें साप्ताहिक वेतन मिलता है उन्हें सप्ताह भर की व्यय योजना बना लेनी चाहिए और जो लोग खुला धन्धा करते हैं, जिसमें कोई नियमित आमदनी नहीं होती वे भी अपनी आमदनी का औसत निकालकर योजनाबद्ध ढंग से खर्च कर सकते हैं । तथा महीने-पन्द्रह दिन का सामान घर में इकट्ठा लाकर रख सकते हैं ताकि कहाँ कितना खर्च करना है यह सामने स्पष्ट रहे ।

आवश्यक कार्यों में ही खर्च करने का नियम बनाने के लिए आवश्यक है कि परिवार का हिसाब-किताब रखा जाय । अर्थात् यह नोट किया जाता रहे कि कब क्या खर्च हुआ है ? जो भी व्यय किया जाय वह भले ही एक पैसा भी क्यों न हो उसे नोट कर लिया जाय और क्या आमदनी हुई है यह भी नोट करके रखा जाय । आय-व्यय की एक-एक पाई का हिसाब रखना फिजूलखर्ची से बचने का एक अचूक उपाय है । इस प्रकार अपनी सीमित आमदनी में भी सुख-सन्तोष का जीवन व्यतीत किया जा सकता है । जॉनवेस्ले नामक एक अँग्रेजी लेखक ने अपने प्रारम्भिक जीवन से ही यह क्रम बना लिया था । इस नियम को उन्होंने इतना उपयोगी पाया कि पीछे जब उन्हें काफी आमदनी होने लगी तब भी उन्होंने आय-व्यय का हिसाब रखने का नियम नहीं तोड़ा ।

जॉनवेस्ले जब वृद्ध हुए तो एक व्यक्ति ने पूछा (जो उनकी सफलताओं का आरम्भ से साक्षी था) कि आप किस प्रकार अपने परिवार का आर्थिक सन्तुलन बनाये रह पाते हैं; क्योंकि मैं देख रहा हूँ आपको काफी आमदनी होती है फिर भी आपके घर में एक पैसे की फालतू चीज नहीं आती देखी । जॉनवेस्ले ने कहा-"मैं पिछले ८६ वर्षों से अपनी आय-व्यय को सन्तुलित रखे हुए हूँ और मैंने एक-एक पाई का हिसाब रखा है । इसी से मितव्ययिता मेरी आदत और स्वभाव का एक अंग बन गयी ।

परिवार का अर्थव्यवस्था-नियोजन कार्य पर गृहिणी का ही अधिकार रहता है । पुरुष फिर भी फिजूलखर्च कर सकता है पर स्त्री इतनी अपव्ययी नहीं होतीं, वे आवश्यक कार्यों में ही खर्च करना जानती हैं यदि वे थोड़ा सोच-समझकर खर्च करने लगें और कुछेक उन प्रवृत्तियों पर काबू पा लें जो फिजूल खर्ची अन्तर्गत आ जाती हैं तो परिवार का आर्थिक सन्तुलन सुस्थिर हो जाता है । इस तरह की प्रवृत्तियों में शृंगार प्रसाधनों के प्रति आत्यन्तिक रुचि, शौक और विलास सामग्रियों को एकत्र करने का लगाव आ जाते हैं । इसके अतिरिक्त भी लापरवाही या असावधानी से अपव्यय होता है । इस तरह का अपव्यय रुपये पैसों का अपव्यय तो नहीं कहा जा सकता,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर परिवार की आर्थिक स्थिति पर तो उसका असर पड़ता ही है ।

जैसे घर में छोटी-छोटी वस्तुओं की बर्बादी होती है । उन्हें यदि बचाया जाय तो वे अधिक दिन तक उपयोगी रह सकती हैं । अधिक भोजन बना लेना और न खाये जाने पर उसे नष्ट करना आम परिवारों में प्रचलित प्रवृत्ति है । वस्त्र बेनाप के आवश्यकता से अधिक बड़े सिलवा लिए जाते हैं या काफी समय तक कपड़े पहने रहकर उन पर मैल चढ़ाया जाता रहता है । फिर उन्हें बुरी तरह धो पछाड़कर अल्पायु बनाया जाता है । फकीरों और भिखारियों को ढेर दान दिया जाता है । इन सब आदतों को रोकना चाहिए और इस बर्बादी से बचा जाना चाहिए ।

अच्छे वस्त्र और आभूषण खरीदने में प्राय: स्त्रियाँ अधिक पैसा खर्च करती हैं । दूसरी स्त्री के आभूषण वस्त्र स्त्री को लुभा लेते हैं और यदि उनमें व्यावहारिक बुद्धि का अभाव हुआ तो वे अपने पति से वैसे ही वस्त्र खरीदने और आभूषण बनवाने की माँग रखती हैं । अच्छा तो यही है कि परिवार की व्यय व्यवस्था समझदार गृहणी के हाथों ही सौंप दी जाय । पर ऐसा सम्भव न हो तो घर का बजट स्त्रियों की जानकारी में भी लाना चाहिए । न केवल गृहणियों को वरन् पुत्रियों और पुत्रों को भी फैशन के रोग से बचाना चाहिए । सादगी अपने आप में सबसे बढ़िया और सुन्दर फैशन है । यदि सस्ते कपड़े हों और उन्हें भी साफ-सुथरा रखा जाय, करीने से पहना जाय तो वे किसी भी अच्छे फैशन से नयनाभिराम लग सकते हैं ।

परिवार का आर्थिक सन्तुलन केवल एक व्यक्ति द्वारा ही मितव्ययता बरतने से स्थिर नहीं रहता । उसके लिए तो परिवार के हर सदस्य को रुपया बचाने में दिलचस्पी रखनी चाहिए तभी आर्थिक सन्तुलन बनाने के लिए किये गये प्रयास सफल होते हैं । इसके लिए परिवार के प्रत्येक सदस्य को गृह व्यवस्था में दिलचस्पी लेने की आदत डालनी चाहिए । गृहव्यवस्था यदि विवेकपूर्वक की जाय तो परिवार के दूरगामी लक्ष्य भी आसानी से प्राप्त किये जा सकते हैं । आरम्भ से थोड़ा-थोड़ा कर बचाया गया पैसा साधारण परिस्थिति के परिवार वालों के बच्चों को भी उच्च शिक्षा दिला सकता है । कहने का अर्थ यह है कि नियम व्यवस्था और क्रमप्रगति के सिद्धान्त के अनुसार जीवन के हर क्षेत्र में जिस प्रकार उन्नति की जा सकती है उसी प्रकार परिवार का स्तर भी ऊँचा उठाया जा सकता है । इस क्षेत्र में भी महिलाएँ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं । वे ही सारे दिन घर-गृहस्थी का काम सम्हालती हैं और आवश्यक कार्यों की व्यवस्थाएँ करती हैं ।

सामान्य आय वाले परिवार अपनी आय के अनुसार अधिक आसानी से गुजारा कर सकते हैं । क्योंकि वे प्राथमिक स्तर से ऊँची आवश्यकताओं पर बिना किसी प्रकार का संकोच किये नियन्त्रण रख सकते हैं । लोग अपनी प्रतिष्ठा गिर जाने के डर से ही आमदनी घट जाने पर भी अपनी फिजूल आवश्यकताओं में कटौती नहीं कर पाते पर यह डर नाहक है । अपनी आय के अनुरूप ही साधारण भोजन लेना चाहिए, सस्ते वस्त्र पहनना चाहिएं और मामूली मकान में रहना चाहिए । इस प्रकार साधारण स्तर पर जीते हुए अपनी आय को बढ़ाने के प्रयास किये जा सकते हैं ।

आय कम या ज्यादा होने से रहन-सहन अथवा समृद्धि और निर्धनता नहीं आती वरन् यह इस बात पर निर्भर करती है कि रुपये का सदुपयोग किया गया अथवा दुरुपयोग । सामान्य स्थिति के परिवारों में विभिन्न प्रवृत्तियों के व्ययशील लोग मिल जाते हैं । एक हैं जो रुपये रोज की सिगरेट या चाय पी जाते हैं तथा दूसरे इस प्रकार के भी मिल जाते हैं जो उसी एक रुपये से अपने परिवार के लिए दिनभर चलने लायक साग-सब्जी खरीद लेते हैं । निश्चय ही दूसरा व्यक्ति अपने पैसों का सदुपयोग करता है, जबकि पहले वाला रुपये का दुरुपयोग कर रहा है । इस तरह के शौक-मौज से हमेशा दूर ही रहना चाहिए जिससे परिवार पर अतिरिक्त आर्थिक बोझ बढ़ता है । संसार में असंख्य लोगों ने साधारण स्तर से आगे बढ़ समृद्धि की मंजिल छुई है । वे इसलिए सफल नहीं हुए कि उन्होंने परिश्रम किया बल्कि उनकी सफलता का एक कारण यह भी रहा है कि वे अपने परिवार की अर्थव्यवस्था सन्तुलित रखे रहे, सफलता और समृद्धि की कुंजी हमारा सन्तुलित जीवन मितव्ययी आदतें और अनुचित विलासिताओं का त्याग है । इन आदतों को, स्वभाव को अपनाकर कोई भी परिवार सरल और सादा जीवन व्यतीत करते हुए सुखी और सन्तुष्ट रह सकता है ।

अर्थव्यवस्था सदा सन्तुलित रखें

परिवार की अर्थ-व्यवस्था के प्रति सजगता कम ही पायी जाती है । यह बहुत बड़ा दोष है । परिवार की अर्थव्यवस्था का असंतुलन अनेक विग्रहों को जन्म देता है । अत: इस पहलू की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए ।

निश्चय ही धन जीवन में सब नहीं है । पर तो भी वह बहुत कुछ है । परिवार की व्यवस्था में धन के उचित उपयोग का उतना ही महत्व है, जितना पारिवारिक सद्भाव, आत्मीयता, सहयोग, शिष्टाचार और सद्व्यवहार का । जहाँ अर्थ संतुलन नहीं है वहाँ देखते-देखते ही भावात्मक संतुलन भी लड़खड़ाने लगता है सद्भाव दुर्भाव में बदलता दिखाई देता है । परिवार व्यवस्था एक अच्छे खासे व्यापार की व्यवस्था से तनिक भी कम नहीं । भोजन, वस्त्र, बच्चों की शिक्षा, दीक्षा, मनोरंजन, छोटे-मोटे घरेलू व्यय, बड़े खर्चे, उत्सव त्यौहार, दवा-दारू जैसे सैकड़ों मद खर्च के होते हैं और एकाध स्रोत आय का । बिना आँकलन एवं पूर्व नियोजन के यह संतुलन कैसे सध सकता है ? परिवार में द्वेष-दुर्भाव, कलह-क्लेश का एक बड़ा कारण आर्थिक असंतुलन भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होता है । इसीलिए सजग गृहपति इस पक्ष के प्रति उदासीन नहीं रह सकते ।

अर्थ संतुलन के लिए सर्वोपरि आवश्यक है नियमित रूप से पारिवारिक बजट बनाना । कई लोग कहेंगे कि हमारी आमदनी ही कितनी है, जो बजट बनाएँ । पैसे आते ही खर्च हो जाते हैं । पर यह विपरीत तर्क है । सही बात यह है कि कम आमदनी होने पर बजट अधिक जरूरी है, क्योंकि बिना बजट यदि व्यय का आय से होना जारी रहा, तो शीघ्र ही ऋणग्रस्तता, अपमान और अभाव के चंगुल में फँसना पड़ेगा । इसलिए आर्थिक स्थिति कमजोर होने पर तो बजट बनाना और भी जरूरी है । ताकि चादर के ही अनुसार पैर फैलाया जा सके । जिनके पास पर्याप्त धन है वे यदि बजट नहीं भी बनाते तो उतनी हानि नहीं । क्योंकि उन पर कर्ज चढ़ने का तो खतरा न रहेगा । हालांकि धन से सदुपयोग के लिए बजट बनाना उन्हें भी जरूरी है ।

बिना बजट बनाए, आय-व्यय में संतुलन सम्भव नहीं और सन्तुलन स्थापित न होने पर कष्ट सुनिश्चित है । बजट बनाने पर ही घर के सभी लोगों को विविध साधनों से प्राप्त होने वाली सम्पूर्ण आय का स्पष्ट ज्ञान रहता है और आवश्यक व्यय के मुद्दों का भी । उस स्थिति में, अपने लिए, घर में कब, कितनी तथा किस प्रकार की माँग रखनी जायज है, कौन-सी माँग नाजायज, इसका एहसास हर सदस्य को रहता है । जबकि जिन परिवारों में बजट नहीं बनता, वहाँ हर एक सदस्य की माँग असन्तुलित हो जाने का खतरा बना रहता है और इस प्रकार पारिवारिक शान्ति सौमनस्य भंग होने की स्थिति आती रहती है । फिर, पूर्व निश्चित योजना के अनुसार कार्य करने पर आपका सर्वोत्तम विवेकपूर्ण उपयोग हो सकता है और अपव्यय नहीं होता । प्रत्येक मद पर भली-भाँति सोचकर ही खर्च किया जाता है तथा उपयोगिता क्रम से आवश्यकताओं में प्राथमिकता तय की जाती है ।

बजट बनाने पर ही यह तथ्य ध्यान में आयेगा कि ऐसे कई खर्चे हैं, जिन्हें सामान्य मानकर चला जा रहा था, पर जिनमें अब भी भरपूर कटौती की गुंजाइश और आवश्यकता है । आज अभ्यास या आवेशवश अधिक कपड़ों या मनोरंजन पर, जो व्यय किया जा रहा है, कल वही कर्ज या उपहास का कारण बन सकता है, यह स्थिति बजट बनाने पर ही स्पष्ट हो सकती है । इससे संयम और सन्तुलन की प्रत्यक्ष प्रेरणा मिलती है ।

यहाँ यह भी याद रखा जाना चाहिए कि मध्यवर्गीय परिवारों की आर्थिक समस्याओं के पीछे, कमाने में उतनी कमी नहीं होती, जितनी खर्च करने की त्रुटि के कारण दिखा करती है । कमाना सरल है, सही ढंग से ख़र्च करना कठिन । प्रायः लोग खर्च करने में गलतियाँ करते हैं । इसीलिए कुशल अर्थशास्त्री समाज में आमदनी के साधनों पर अंकुश उतना आवश्यक नहीं समझते, जितना खर्च पर रोक जरूरी मानते हैं । सभी जानते हैं कि अपने देश में न तो धन की विशेष कमी है न ही प्राकृतिक सम्पदा की । किन्तु मुट्ठी भर लोग धन को अनियंत्रित विलासिता में खर्च करते हैं और बहुत ही साधारण कार्यों के लिए अमूल्य प्राकृतिक सम्पदा का दुरुपयोग करते हैं । परिणाम-स्वरूप अधिसंख्य लोग भूखों मरते और प्राकृतिक साधनों का भी उचित न्यूनतम अंश नहीं प्राप्त कर पाते । जो बात देश, समाज के सन्दर्भ में सही है, वही परिवार के स्तर पर भी सत्य है । प्रायः लोग घर की आवश्यक जरूरतों को टालते हैं, उनमें कंजूसी बरतते हैं और अनावश्यक मदों पर पैसा पानी की तरह बहाते हैं । खर्च सम्बन्धी यह विषम व्यवस्था, जिसे अव्यवस्था कहा जाना ही ठीक होगा, पारिवारिक संतुलन को नष्ट करती है ।

खर्च करने के सम्बन्ध में अपव्यय और कंजूसी, दोनों ही अतियाँ बुरी हैं । आमदनी से अधिक और अनाप-शनाप खर्च करना जहाँ कई कठिनाइयों का कारण है, वहीं अपनी नियमित आवश्यकताओं को पूरा न करके, उनमें कंजूसी करना भी जीवन को दुर्वह बना देता है । शरीर की, स्वास्थ्य की, मानसिक भूख की उपेक्षा कर बचत करने की कोशिश बचत नहीं, धन की गुलामी है । संतुलित संयमित खर्च का मध्यम मार्ग ही सर्वोत्तम है । यानी धन के एक-एक अंश का सदुपयोग ही सच्चे अर्थों में आर्थिक सुव्यवस्था है । धन को रोककर नहीं रखना चाहिए । इससे उसकी उर्वरता नष्ट होती है । उसे प्रवाहित होने देना चाहिए । पर उनके स्रोत का ध्यान रखते हुए ।

आज की सामाजिक वास्तविकता तो यह है कि इन दिनों उचित और अनुचित खर्च के अन्तर का विचार कम ही लोग करते हैं । दिखावट, फैशन, सिनेमा, सिगरेट, शराब जैसी फिजूलखर्चियों में लोग जाने कितना धन फूँकते हैं । धन को झूठी शान-शौकत पूरी करने का साधन मान लिया गया है, न कि वास्तविक आवश्यकताएँ पूरी करने का ऐसा आडम्बरपूर्ण खर्च व्यक्तित्व के थोथेपन, उथलेपन और मूढ़ता का परिचायक है । दूसरों से हम अधिक सम्पन्न दिखें, इस हविश में, अधिकाधिक अपव्यय कर विपन्न होते चले जाने की मूढ़ता ही तो कहा जा सकता है । अपनी सामर्थ्य से बाहर खर्च करने वालों की आज कमी नहीं । मिथ्या फैशन की होड़ मची है । इस निकम्मी शान के लिए लोग कर्जदार तक बनना पसन्द करते हैं । यह दिमागी दिवालियेपन की निशानी है । यही कारण है कि इस मनःस्थिति में पहुँचे हुए लोगों का नैतिक मनोबल क्षीण होने लगता है और वे अश्लील अंग प्रदर्शन को भी अनुचित नहीं मानते ।

अर्थव्यवस्था को संतुलित रखने के लिये फैशन और दुर्व्यसन दोनों से बचना आवश्यक है । इन दोनों से विरत रहने वाले लोग कम आमदनी में भी संतोषपूर्वक निर्वाह कर लेते हैं । जबकि इन कुप्रवृत्तियों में फँसे लोगों की दुर्दशा होकर रहती है । शराब, गाँजा, भाँग, सिगरेट आदि से लेकर ताश, जुआ, वेश्यागामिता जैसे दुर्व्यसनों में पड़कर आये दिन लोगों को आर्थिक दुर्गति में फँसते देखा जाता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है । अब फैशन और दिखावे की लालसा एक नया ही नशा बनकर उभरी है । इसका प्रसार दिन-दूना रात-चौगुना हो रहा है और हालत यहाँ तक जा पहुँची है कि जो लोग माँ-बाप अपने बच्चों के फैशन की पूर्ति नहीं कर सकते, उनकी बुरी आदतें पूरी करने के लिए पैसे नहीं दे पाते, वे अपने बच्चों की निगाहों में गिरे हुए रहते हैं । स्त्रियों को जेवरों-गहनों का नशा भी इसी क्रम में जुड़ी एक और कड़ी है । देखा जाता है कि इस नशे की मारी महिलाएँ अन्यथा अच्छी खासी चल रही, अपनी गृहस्थी की गाड़ी को कीचड़ दल-दल में फँसाकर नष्ट कर डालती हैं । कई बार गृह-कलह, प्रतिस्पर्धा और पारिवारिक अशान्ति के मुख्य कारणों में से एक स्त्रियों का अतिवादी आभूषण प्रेम भी होता है ।

इसीलिए आर्थिक सुव्यवस्था स्वयं में पारिवारिक शील के एक अंग के ही रूप में स्थापित हो पाती है । जिस परिवार के सदस्यों का दृष्टिकोण परिष्कृत नहीं है, जहाँ संयम को, सादगी को, सात्विकता को एक श्रेष्ठ मूल्य नहीं माना जाता, अपितु फैशन, दुर्व्यसन की जहाँ होड़ मची है, वहाँ आर्थिक सुव्यवस्था असम्भव है । जहाँ परिवारों के सदस्यों में पारस्परिक सद्भाव संवेदना न हो, दूसरों का उचित ख्याल रखने की प्रवृत्ति न हो, मात्र अपनी ही चिन्ता रखने की उच्छृंखलता अभ्यास में हो, वहाँ भी आर्थिक सन्तुलन आये दिन डिगता ही रहेगा । इसीलिए अर्थव्यवस्था में सुधार और संतुलन चाहने वालों को अपने परिवार का दृष्टिकोण परिष्कृत बनाने की ओर भी बराबर ध्यान देना चाहिए । जहाँ चारित्रिक, नैतिक, अनुशासन नहीं है, वहाँ आर्थिक अनुशासन नहीं आ सकेगा । यह तथ्य कभी भी भुलाया नहीं जाना चाहिए । इसीलिए आर्थिक सन्तुलन का एकांगी विचार सफल न हो सकेगा, परिवार निर्माण के समग्र प्रयासों के सन्दर्भ में ही उसकी सफलता सम्भव है और इन पंक्तियों में उसी सन्दर्भ में चर्चा चल रही है ।

परिवार के हर सदस्य को उत्कृष्ट चिन्तन और श्रेष्ठ आचरण का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए तथा उसी के एक अंग के रूप में अर्थ संतुलन की महत्ता भी समझायी जानी चाहिए । इस दृष्टि से पारिवारिक बजट पर प्रतिमास के प्रारम्भ में होने वाली पारिवारिक गोष्ठी में चर्चा होनी चाहिए । उस संदर्भ में समाज की वर्तमान प्रवृत्तियों की भी चर्चा होती रहनी चाहिए और परिजनों में समीक्षात्मक विवेक जाग्रत करने की सजगता बरतनी चाहिए । ताकि अपने लिए, अनुचित खर्च की कोई सदस्य आकांक्षा ही न करे ।

बजट बनाते समय सर्वप्रथम स्थायी व्यय मुद्दे शामिल करना चाहिए यथा अनाज, भोजन, लकड़ी, ईंधन, पानी, प्रकाश, दूध, फल आदि । शिक्षण शुल्क जैसे निश्चित एवं अनिवार्य व्यय भी पहले ही गिन लिए जाएँ । साबुन, तेल तथा दूसरे फुटकर खर्चों का निर्धारण इसके बाद अपनी स्थिति देखकर करना चाहिए । आकस्मिक खर्चों के लिए एक अलग खाता अवश्य रहे, ताकि हारी-बीमारी जैसे मौकों पर हाथ-पैर फूलने की स्थिति न आ खड़ी हो । इसके साथ ही न्यूनतम बचत का खाता भी अवश्य रखा जाय । तदुपरान्त परिजनों के लिए आवश्यक वस्त्रों का विचार किया जाए तथा आवश्यकता के क्रम से, स्थिति के अनुसार उनकी व्यवस्था का प्रावधान रखा जाए । इसके बाद ही मनोरंजन, यात्रा, पिकनिक आदि पर हैसियत के मुताबिक विचार कर राशि निर्धारित की जाये । बजट बनाते समय सभी सदस्यों का परामर्श ले लेना चाहिए और उनकी आवश्यकताएँ भी पूछ-जान लेनी चाहिए ।

अत्यावाश्यक मदों में से ही एक है चिकित्सा का । इस मद के प्रति यदि सतर्कता न बरती गयी तो भी, बहुत पैसे व्यर्थ खर्च होते हैं । यह सदा ध्यान रखना चाहिए कि बाजारू प्रचार के पीछे दौड़कर स्वास्थ्य और चिकित्सा के नाम पर पैसे फूँकने पर निराशा ही हाथ लगेगी । उस दृष्टि से पूर्ण सतर्कता बरतना गृह-व्यवस्था एवं अर्थव्यवस्था दोनों के लिए लाभकारी है । घर के सदस्यों की भोजन सम्बन्धी आदतें स्वस्थ रहें और दिनचर्या नियमित रहे, यह देखना गृहपति की जिम्मेदारी है । यदि यह व्यवस्था यथाक्रम चलती रहे, तो चिकित्सा मद में अधिक व्यय की स्थिति सामान्यतः नहीं उपस्थित होती । जीभ को मिर्च-मसाला, तेल-खटाई की अभ्यस्त न बनने दिया जाय । अपितु उतने ही खर्च में हरी सब्जियों, सस्ते मौसमी फलों, दूध, खाद्य आदि की व्यवस्था की जाये । तो दुहरे प्रयोजन बच जाते हैं ।

इस प्रकार जीवन दृष्टि, चिंतनक्रम, सम्पूर्ण आचरण और पारिवारिक पंचशील के संदर्भ में ही स्वास्थ्य तथा अर्थव्यवस्था का संतुलन बैठाना चाहिए । यह सन्तुलन परिवार निर्माण का आवश्यक अंग है ।

हमारे प्रमुख घरेलू उद्योग-धन्धे

भारत के आर्थिक पुनर्निर्माण के हेतु घरेलू उद्योग का बड़ा महत्व है । इनसे बेकारी की समस्या सुगमता से हल हो सकती है, उत्पादन शक्ति का स्थानीय तथा प्रादेशिक वितरण सुगमता से हो सकता है और जनसाधारण को आर्थिक स्वावलम्बन प्राप्त हो सकता है ।

डा० राधाकमल मुखर्जी ने भारत के घरेलू उद्योग धन्धों के विषय में एक बड़ी महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी है । उसी के आधार पर कुछ उपयोगी सामग्री यहाँ प्रस्तुत की जा रही है । इस पुस्तक में भारत के घरेलू उद्योग-धन्धों की एक विस्तृत तालिका दी गई है । जैसे कुछ उपयोगी कार्य इस प्रकार हैं ।

''कानपुर, प्रयाग तथा बनारस के जिलों में टोकरी बनाना, मलावार तथा दक्षिणी-पूर्वी बंगाल में नारियल की जटा काटना, लालटेन की बत्तियाँ बनाना और चटाइयाँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तैयार करना, आसाम में रेशम के कीड़ों को पालना, यू० पी० में खिलौने बनाने का काम, अमृतसर, बनारस व मिर्जापुर में दरियाँ बुनने का काम, रेशम बुनना, ढाका में शंख की चूड़ियाँ, सीमी के बटन, यू० पी० मिर्जापुर तथा बंगाल में सुन्दर कलापूर्ण मिट्टी की वस्तुएँ बनाना, मद्रास के तिनेवली में लुंगी तथा साड़ियाँ बनाना, फिरोजाबाद में काँच की चूड़ियों का काम ।''

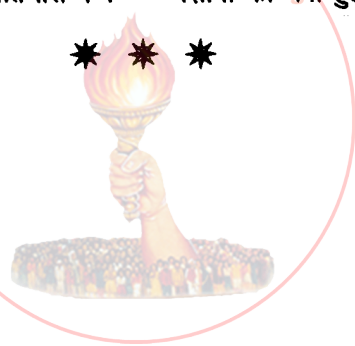
पंजाब में बहुत-सी वस्तुएँ घर पर तैयार की जाती हैं । मुल्तान और अमृतसर में मोजे, दरियाँ, नाले, हौजरी, चर्खा कातना, आसन बनाना, सींकों की सुन्दर टोकरियाँ, शीतल पत्तियाँ, खद्दर बुनना इत्यादि तैयार होती हैं । प्रत्येक परिवार की अपनी दिलचस्पी के अनुकूल कुछ न कुछ ढूँढ़कर प्रारम्भ करना चाहिए ।

समस्त घरेलू धन्धों में कपड़े वाला वर्ग महत्वपूर्ण है । रुई कातकर दरियाँ, हजारबन्द खद्दर बनाना चाहिए । स्त्रियाँ चाहें, तो घर पर दर्जी का कार्य भी सफलतापूर्वक सम्पन्न कर सकती हैं । हाथ का कागज बनाना भी अच्छा धन्धा है । जापान में स्त्रियाँ घर पर अनेक काम किया करती हैं । शिल्पकारी, ऊन के मोजे, बनियान बुनना, बेलबूटे-कढ़ाई, रंगाई का कार्य प्रत्येक प्रतिभासम्पन्न परिश्रमी स्त्री कर सकती है । अलीगढ़ में तालों, बनारस में वेलबूटों का काम, मुरादाबाद में कलई के बरतनों का काम तेजी से उन्नति कर रहा है । इस सब में सरकार को भी हाथ बटाना उचित है ।

दियासलाई और साबुन के छोटे-छोटे कारखाने घरों पर खोले जा सकते हैं । अन्य छोटी-छोटी वस्तुएँ, मोम की वस्तुएँ, कागज के खिलौने, कन्दील, बेले, फूलों के गुच्छे, बिजली के शेड कागज की तश्तरियाँ, किशमिश के थैले बनाना, पुस्तकों की जिल्दबन्दी का काम, छापेखाने, पुस्तक प्रकाशन, कागज के लिफाफे बनाना, रद्दी कागज के बड़े लिफाफे, मेवासब्जी और मिठाई के लिए बड़ियाँ, पापड़, अचार, मुरब्बे आदि घरेलू धन्धों के लिए सरकार को प्रोत्साहन प्रदान करना चाहिए । हममें से प्रत्येक को अपने परिवार के लिए किसी एक धन्धे को चुन लेना चाहिए ।

भारत संसार के सबसे बड़े औद्योगिक देशों में से एक है पर केवल ८ प्रतिशत जनसंख्या उसमें लगी हुई है । वाणिज्य के परिमाण का जहाँ तक प्रश्न है, उसमें भारत का स्थान ५वाँ है । निर्यात में कच्चे माल का परिमाण सबसे अधिक है, जिसमें पाट, रूई आयात का ७५ प्रतिशत मशीनों की बनी हुई चीजों के रूप में आता है ।

* * *



Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँच स्थापनाएँ

युगदृष्टा के स्तर की अवतारी सत्ता के रूप में परमपूज्य गुरुदेव ने अपने अस्सी वर्ष के जीवनकाल में जितना भी कुछ किया, उसकी मिसाल कहीं देखने को नहीं मिलती। करोड़ों व्यक्तियों के मनों का निर्माण, उनके सोचने के तरीके में बदलाव एवं युग निर्माण की पृष्ठभूमि बनाकर रख देने का कार्य इन्हीं के स्तर की सत्ता कर सकती थी, जो लाखों वर्षों में कभी-कभी धरती पर आती है। उनके द्वारा की गयी स्थापनाओं का जब प्रसंग आता है तब ईंट-गारे-चूने-सीमेंट से बने भवनों से पहले उनकी स्नेह-संवेदना से सिक्त हुए, ममत्व में स्नानकर उनके अपने हो गये लाखों व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं, जिनने उनके एक इशारे पर अपना सब कुछ उनको अर्पित कर दिया। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में कभी ऐसा ही वातावरण भारत के कोने-कोने में दिखाई देता था, जब हर घर से सत्याग्रही निकलकर आ रहे थे। भावनाओं का आवेग चिरस्थायी नहीं रहता। वे ही लोग जो कभी राष्ट्र निर्माण के लिए अपना सब कुछ छोड़, पढ़ना-लिखना छोड़ देश को आजाद बनाने के लिए कूद पड़े थे, कभी गड़बड़ाने न पाएँ, उसी के लिए बापू ने आजादी के बाद काँग्रेस भंग कर देने व सभी को एक आदर्श स्वयं-सेवक की तरह दरिद्र नारायण का उत्थान कर राष्ट्र निर्माण में लग जाने की सलाह दी थी।

सभी इस तथ्य को जानते हैं कि ऐसा नहीं हुआ, राष्ट्र का कीर्ति-स्तम्भ रूपी वह महापुरुष भी एक वर्ष के अंदर ही शहादत को प्राप्त हो चला गया। गिने-चुने उनके आदर्शों पर चलने वाले रह गये, अवसरवादियों को राजनेतृत्व भाने लगा एवं राष्ट्र आजाद होकर भी उनके हाथ में आ गया जो ब्रिटिश तो नहीं थे किन्तु, उसी रंग में रँगे सत्ता के उन्माद में काम करने वाले शासक थे- सृजेता नहीं। जिंदा रहा तो मात्र बापू का दर्शन बुनियादी आधार पर टिका- मानव को बनाने का तंत्र-आश्रम तंत्र जो सेवाग्राम-साबरमती आश्रम के रूप में कार्य करता रहा और वह भी शीर्ष-पुरुष के न रहने, बिनोवाजी के चले जाने के बाद अस्तित्व व महत्व की दृष्टि से गौण हो गया। परमपूज्य गुरुदेव ने अपनी दिव्य-दृष्टि से यह सब पूर्व में ही देख लिया था कि कोई भी भव्य निर्माण, आश्रम या तंत्र बनाने से पूर्व राष्ट्र को सांस्कृतिक, भौतिक, आध्यात्मिक आजादी दिलाने वाले अगणित व्यक्ति तैयार करने पड़ेंगे। १९११ में आज से ८४ वर्ष पूर्व वि.संवत् २०८६ में जन्मे, राष्ट्र की आजादी में उन्मत्त बने श्रीराममत्त कहलाने वाले, आचार्यश्री ने पहले स्वयं को तपाया, वैचारिक क्रान्ति के निर्माण का, आधारभूत तंत्र स्वयं व परमवंदनीया माताजी के रूप में खड़ा किया, 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका अपनी लेखनी से लिखी, ममत्व भरी चिट्ठियों व छोटी-छोटी एक आने की किताबों से जन-जन के मन को छुआ, तब जाकर अपने एक लक्ष के २४ गायत्री महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर उन्होंने गायत्री तपोभूमि, मथुरा की स्थापना की बात १९५२-५३ में सोची। सबसे पहली मंत्र दीक्षा वहीं पर १९५३ में दी व यह मानते हुए कि बिना आध्यात्मिक आधार बनाये, मनोभूमि में, भावनाओं के स्तर पर बदलाव लाये कोई क्रान्ति सफल नहीं हो सकती, धीमी खुराक देते हुए हर व्यक्ति को गायत्री व यज्ञ के तत्त्वदर्शन से जोड़ते हुए चले गये। गायत्री परिवार रूपी विराट वृक्ष का मूल आधार वह स्थापना है जो जन-जन के मनों में पहले हुई- उनकी भाव संवेदनाओं के उदात्तीकरण के रूप में सम्पन्न हुई व उनके अंदर अपनी गुरुसत्ता को त्याग करने की, यज्ञीय जीवन अपनाने की प्रेरणा बलवती होने लगी। उन्होंने सर्वमेध के रूप में अपना सर्वस्व बलिदान एवं नरमेध के रूप में अपने आप को समाज के हित न्यौछावर करने की भावना से दो यज्ञ किये। अपनी जमींदारी के बाण्ड बेचकर एवं परमवंदनीया माताजी के कीमती सोने के जेवर (ढाई सौ तोले) बेचकर जो स्वेच्छा से सम्पन्न हुआ, एक स्थापना भवन के रूप में जो हुई- वह थी **गायत्री तपोभूमि, मथुरा** जो वृन्दावन रोड पर ऋषि दुर्वासा की जन्मस्थली पर बनी आज से ४२ वर्ष पूर्व १९५३ में। प्रारंभिक स्थापना यों अखण्ड ज्योति संस्थान को माना जा सकता है जहाँ अखण्ड दीपक अपनी जन्मभूमि आँवलखेड़ा से जो वहाँ से मात्र ४० मील दूर थी, स्थापित किया गया था एवं प्रारंभिक तप-तितिक्षा वहीं पर १९४१ से, तपोभूमि की स्थापना से भी १२ वर्ष पूर्व आरम्भ हो गयी थी। इस प्रकार जन-जन के मनों का निर्माण उनके अंतःस्थल में प्रवेश कर उनके अंदर देवत्व के जागरण की ललक पैदा करने वाली पृष्ठभूमि पर स्थापनाओं का क्रम बना। किराये की ऐसी हवेली जिसे भुतहा हवेली कहा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जाता था, में अखण्ड दीपक की स्थापना, उसके समक्ष तप, **अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा** के रूप में विकसित हुआ एवं एक और दूसरा निर्माण मथुरा में ही गायत्री तपोभूमि के रूप में हुआ जो कि ३ मील दूर वृन्दावन रोड पर १९५३ में बनाई गई। १९५३ में क्रमशः सुसंगठित गायत्री परिवार के बनने की प्रक्रिया चल पड़ी।

इस प्रारंभिक भूमिका को समझने के बाद ही परमपूज्य गुरुदेव की पाँच मूल स्थापनाओं एवं बाद में देश के कोने-कोने में बनी भव्य इमारतों के रूप में शक्तिपीठों, प्रज्ञा संस्थानों, भारत व विश्वभर में घर-घर में स्थापित स्वाध्याय मण्डलों व गायत्री परिवार की शाखाओं, प्रज्ञापीठों, चरणपीठों का महत्त्व समझा जा सकता है। नहीं तो जैसे अन्यान्य आश्रम-संस्थान बनते हैं, ऐसे इनका भी वर्णन किया जा सकता था व यह कहा जा सकता था कि यह वैभवपूर्ण स्थापनाएँ पूज्यवर ने कीं। उनमें यदि प्राण फूँके गये हों, प्राणवान व्यक्ति वहाँ रहते हों व उस शक्ति के महा-अवसान के बाद भी वे सतत् उसी दिशा में चल रहे हों तो माना जाना चाहिए कि प्रारंभिक पुरुषार्थ जो किया गया, वह औचित्यपूर्ण था।

परमपूज्य गुरुदेव की महत्त्वपूर्ण पाँच स्थापनाएँ इस प्रकार हैं–

(१) युगतीर्थ आँवलखेड़ा (२) अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा (३) गायत्री तपोभूमि, मथुरा (४) शान्तिकुंज, गायत्री तीर्थ, सप्तसरोवर, हरिद्वार तथा (५) ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान, सप्तसरोवर, हरिद्वार ।

युगतीर्थ आँवलखेड़ा का नाम सबसे पहले इसलिए लिखा कि यहीं पर वह युगपुरुष संवत् १९६८ की आश्विन कृष्ण त्रयोदशी तिथि के दिन, ब्राह्ममुहूर्त में, जो अँग्रेजी तारीख से २० सितम्बर, १९११ के दिन आती थी, में जन्मा। एक श्रीमंत ब्राह्मण परिवार में, जहाँ धन की कोई कमी नहीं थी, पूरा परिवार संस्कारों से अनुप्राणित, पिता भागवत के प्रकाण्ड पंडित, बहुत बड़ी जागीर के मालिक। आज जहाँ पूज्यवर की स्मृति में एक विराट स्तंभ की, एक चबूतरे की तथा उनके कर्तृत्व रूपी शिलालेखों की स्थापना हुई है- वहीं पूज्यवर ने शरीर से जन्म लिया था। समीप बनी दो कोठरियाँ जो काल प्रवाह के क्रम में गिर सी गयी थीं, जीर्णोद्धार कर वैसी ही निर्मित कर दी गयी हैं- जैसी उनके समय में थीं। जन्मभूमि का कण-कण उस दैवीसत्ता की चेतना से अनुप्राणित है। उनके हाथ से खोदा कुँआ जिसे पूरे गाँव का एकमात्र मीठे जल वाला कुँआ माना गया- वह अभी भी है, उनके हाथ से रोपा नीम का पेड़ एवं वह बैठक जहाँ स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में सब बैठकर चर्चा करते थे, आज भी उन दिनों की याद दिलाते हैं। पास में ही दो कोठरियाँ हैं जिनमें से एक कक्ष में वह स्थान है जहाँ दीपक के प्रकाश में से सूक्ष्म शरीरधारी गुरुसत्ता प्रकट हुई थी तथा जिसने उनके जीवन की दिशाधारा का १९२६ के बाद के क्रम का निर्धारण कर दिया था। यह सब देखकर मस्तिष्क-पटल पर वह दृश्य उभर आता था, जिसे गुरुसत्ता ने कभी देखा था व जो गायत्री परिवार की स्थापना का मूल आधार बना। आँवलखेड़ा में ही उनकी माताजी की स्मृति में स्थापित माता दानकुँवरि इण्टर कालेज है जो उनके द्वारा दान दी गयी जमीन में प्रदत्त धनराशि द्वारा विनिर्मित है। १९६३ से चल रहे इस इंटर कालेज से कई मेधावी छात्र निकल कर आत्म-निर्भर बने हैं व उच्च पदों पर पहुँचे हैं।

१९७९-८० में गायत्री शक्तिपीठ एवं कन्या इंटर कॉलेज की स्थापना का ताना-बाना बुना जाने लगा जो एक विशाल शक्तिपीठ तथा आसपास के दो सौ ग्रामों की बालिकाओं के पठन-पाठन की व्यवस्था करने वाले, उन्हें सुशिक्षित, संस्कारवान, आत्मावलम्बी बनाने वाले कन्या महाविद्यालय का अब रूप ले चुका है। प्रथम पूर्णाहुति हेतु इसी भूमि को जो शक्तिपीठ-जन्मभूमि-ग्रामीण क्षेत्र के चारों ओर है, इसीलिए चुना गया कि यहाँ से उद्भूत प्राण ऊर्जा से यहाँ आने वाला हर संकल्पित साधक अनुप्राणित होकर जाए व राष्ट्र के नव-निर्माण की सांस्कृतिक व भावनात्मक क्रान्ति की पृष्ठभूमि रख सके। यहाँ पूज्यवर १९३६-३७ तक ही रहे, कुछ दिन आगरा रहकर १९४०-४१ में मथुरा चले गये, जहाँ दो-तीन मकान बदलने के बाद वर्तमान मकान किराये पर लिया जिसे आज अखण्ड-ज्योति संस्थान कहते हैं।

अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा में स्थित है। परमपूज्य गुरुदेव सीमित साधनों में अपने अखण्ड दीपक के साथ यहीं रहने लगे एवं यहीं से क्रमशः आत्मीयता विस्तार की जन-जन तक अपने क्रान्तिकारी चिंतन के विस्तार की प्रक्रिया 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका, जो आगरा से ही आरम्भ कर दी गयी थी, की 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ व अन्यान्य लेखों की पंक्तियों के माध्यम से सम्पन्न होने लगी। व्यक्तिगत पत्रों द्वारा उनके अंतःस्थल को स्पर्श कर एक महान स्थापना का बीजारोपण होने लगा। यहीं पर अगणित दुःखी, तनावग्रसित

व्यक्तियों ने आकर उनके स्पर्श से नये प्राण पाये तथा उनके व परमवंदनीया माताजी के हाथों से भोजन-प्रसाद पाकर उनके अपने होते चले गये। हाथ से बने कागज पर छोटी ट्रेडिल मशीनों द्वारा यहीं पर अखण्ड ज्योति पत्रिका छापी जाती थी व छोटी-छोटी किताबों द्वारा लागत मूल्य पर उसे निकालने योग्य खर्च निकलता था। बगल की एक छोटी-सी कोठरी में जहाँ अखण्ड दीपक जलता था, आज पूजाघर विनिर्मित है। पूरी बिल्डिंग को खरीद कर उनके सुपुत्र ने एक नया आकार व मजबूत आधार दे दिया है किन्तु यह कोठरी अंदर से वैसी ही रखी गयी है जैसी पूज्यवर के समय में १९४२-४३ में रही होगी। तब से लेकर आगामी ३० वर्ष का साधनाकाल-लेखनकाल पूज्यवर का इसी घीयामण्डी के भवन में छोटी-छोटी दो कोठरियों में गहन तपश्चर्या के साथ बीता। तपोभूमि निर्माण की पृष्ठभूमि यहीं बनी, १९५८ में सहस्र कुण्डी यज्ञ की आधारशिला यहीं रखी गयी, यहीं सारी योजना बनी एवं विधिवत-गायत्री परिवार बनता चला गया। रोज आने वाले पत्रों को स्वयं परमवंदनीया माताजी पढ़ती जातीं एवं पूज्यवर इतनी ही देर में जवाब लिखते जाते, यही सूत्र संबंधों के सुदृढ़ बनने का आधार बना। हर परिजन को तीन दिन में जवाब मिल जाता, शंका-समाधान होता चला जाता एवं देखते-देखते एक विराट गायत्री परिवार बनता चला गया। गायत्री महाविज्ञान के तीनों खण्ड, युग निर्माण परक साहित्य, आर्ष-ग्रन्थों के भाष्य को अंतिम आकार देने का कार्य यहीं सम्पन्न हुआ। जनसम्मेलनों, छोटे-बड़े यज्ञों एवं १००८ कुण्डी पाँच विराट् यज्ञों में पूज्यवर यहीं से गये एवं विदाई सम्मेलन की रूपरेखा बनाकर स्थायी रूप से इस घर से १९७१ की २० जून को विदा लेकर चले गये। इस संस्थान के कण-कण में जहाँ आज १० लाख से अधिक संख्या में हिन्दी सहित सभी भाषाओं में अखण्ड ज्योति पत्रिका के प्रकाशन, विस्तार, डिस्पैच आदि का एक विराट तंत्र स्थापित है, परमपूज्य गुरुदेव की चेतना संव्याप्त अनुभव की जा सकती है। भले ही बहिरंग का कलेवर बदल गया हो, अंदर प्रवेश करते ही परमपूज्य गुरुदेव व परमवंदनीया माताजी की सतत विद्यमान प्राणचेतना के स्पन्दन वहाँ विद्यमान हैं, यह प्रत्यक्षत: देखा जा सकता है।

गायत्री तपोभूमि, मथुरा को परमपूज्य गुरुदेव की चौबीस महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर की गयी स्थापना माना जा सकता है, जिसे विनिर्मित ही गायत्री परिवार रूपी संगठन के विस्तार के लिए किया गया था। इसकी स्थापना से पूर्व चौबीस सौ तीर्थों के जल व रज को संग्रहीत करके यहाँ उनका पूजन किया गया, एक छोटी किन्तु भव्य यज्ञशाला में अखण्ड अग्नि स्थापित की गयी तथा एक गायत्री महाशक्ति का मन्दिर विनिर्मित किया गया। चौबीस सौ करोड़ गायत्री मंत्रों का लेखन जो श्रद्धापूर्वक नैष्ठिक साधकों द्वारा किया गया था, यहाँ पर संरक्षित कर रखा गया है। पू. गुरुदेव की साधनास्थली व प्रात:काल की लेखनी की साधना की कोठरी यदि अखण्ड ज्योति संस्थान में थी तो उनकी जन-जन से मिलने, साधनाओं द्वारा मार्गदर्शन देने की कर्म-भूमि गायत्री तपोभूमि थी। यहीं पर १०८ कुण्डी गायत्री महायज्ञ में १९५३ में पहली बार पूज्यवर ने साधकों को मंत्र दीक्षा दी। यहीं पर १९५६ में नरमेध यज्ञ तथा १९५८ में विराट सहस्रकुण्डी यज्ञायोजन सम्पन्न हुए। श्रेष्ठ नररत्नों का चयन कर गायत्री परिवार को विनिर्मित करने का कार्य यहीं व्यक्तिगत मार्गदर्शन द्वारा सम्पन्न हुआ। हिमालय प्रवास से लौटकर पूज्य आचार्यश्री ने युग निर्माण योजना के शत-सूत्री कार्यक्रम एवं सत्संकल्प की तथा युग निर्माण विद्यालय के एक स्वावलम्बन प्रधान शिक्षा देने वाले तंत्र के आरम्भ होने की घोषणा की। यह विधिवत् १९६४ से आरम्भ किया गया एवं अभी भी सफलतापूर्वक चल रहा है। जिस कक्ष में परमपूज्य गुरुदेव सभी से मिला करते थे, अभी भी यहाँ देखा जा सकता है। भव्य निर्माण परमपूज्य गुरुदेव की १९७१ की विदाई के बाद यहाँ हो गया है किन्तु, कण-कण में उनकी प्राणचेतना का दर्शन किया जा सकता है। विराट प्रज्ञानगर, युग निर्माण विद्यालय, साहित्य की छपाई हेतु बड़ी-बड़ी ऑफसेट मशीनें तथा युग निर्माण साहित्य जो पूज्यवर ने जीवन भर लिखा, उसका वितरण-विस्तार तंत्र यहाँ पर देखा जा सकता है।

शान्तिकुंज, हरिद्वार ऋषि परम्परा के बीजारोपण केन्द्र के रूप में १९७१ में स्थापित किया गया था, जब परमपूज्य गुरुदेव मथुरा स्थायी रूप से छोड़कर परमवंदनीया माताजी को अखण्ड ज्योति दीपक की रखवाली हेतु यहाँ छोड़कर हिमालय में चले गये। गुरुसत्ता के निर्देश पर वे पुन: एक वर्ष बाद लौटे व तब शांतिकुंज को उनने एक बड़ा विराट रूप देने, सभी ऋषिगणों की मूलभूत स्थापनाओं को यहाँ साकार बनाने का निश्चय किया। इससे पूर्व परमवंदनीया माताजी ने २४ कुमारी कन्याओं के साथ अखण्ड दीपक के समक्ष २४० करोड़

गायत्री मंत्र का अखण्ड अनुष्ठान आरंभ कर दिया था। पूज्यवर ने प्राण प्रत्यावर्तन सत्र, जीवन साधना सत्र, वानप्रस्थ सत्र आदि के माध्यम से विभिन्न क्षेत्र में सक्रिय कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता यहीं गढ़े। यह सत्र शृंखला कल्प साधना, संजीवनी साधना सत्रों के रूप में तब से ही ९ दिवसीय सत्रों व एक माह के युग शिल्पी प्रशिक्षण सत्रों के रूप में चल रही है, अभी भी अनवरत उसमें आने वालों का ताँता लगा रहता है। पहले से ही सब अपनी बुकिंग इसमें करा लेते हैं।

शांतिकुंज को गायत्री तीर्थ का रूप देकर सप्तऋषियों की मूर्तियों की स्थापना १९७८-७९ में की गयी, एक देवात्मा हिमालय विनिर्मित किया गया एवं यहाँ सभी संस्कारों को सम्पन्न करते रहने का क्रम बन गया जो सतत् चल रहा है। नित्य यहाँ दीक्षा, पुंसवन, नामकरण, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत, विवाह, श्राद्ध-तर्पण आदि संस्कार सम्पन्न होते हैं। इस बीच परमवंदनीया माताजी ने जागरण सत्र शृंखलाएँ सम्पन्न करना आरम्भ रखा। देव कन्याओं को प्रशिक्षित कर पूरे भारत में जीप टोलियों में भेजा गया। इनके माध्यम से तीन वर्ष तक भारत के कोने-कोने में तुमुलनाद होता रहा।

शांतिकुंज का गायत्री नगर जो आज एक विराट स्थापना के रूप में, एक एकेडमी के रूप में नजर आता है व जिसमें एक बार में एक साथ दस हजार व्यक्ति एक साथ ठहर सकते हैं, १९८१-८२ में बनना आरम्भ हुआ । विलक्षण, दुर्लभ जड़ी-बूटियों के पौधे यहाँ लगाये गये तथा प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा रूपी तीर्थस्थली का पूज्यवर ने अपने सामने निर्माण कराया। यहीं उनके निर्देशानुसार उनके शरीर छोड़ने पर दोनों सत्ताओं को अग्नि समर्पित की जानी थी। स्वावलम्बन विद्यालय से लेकर एक विशाल चौके का निर्माण एवं गायत्री विद्यापीठ से लेकर भारत के सभी सरकारी विभागों के प्रशिक्षण के तंत्र की स्थापना यहाँ पर की गयी है एवं यह एक जीता-जागता तीर्थ अब बन गया है, जहाँ पर उज्ज्वल भविष्य की पूर्व झलक देखी जा सकती है। कम्प्यूटरों से सज्जित विशाल कार्यालय से लेकर पत्राचार विद्यालय जहाँ नित्य हजारों पत्रों के द्वारा पूरे तंत्र का मार्गदर्शन किया जाता है, यहाँ की विशेषता है।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँचवीं स्थापना है, जहाँ पर विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय का अभिनव शोध कार्य चल रहा है। इसे १९७१ की गायत्री जयंती पर आरम्भ किया गया था। वर्तमान शांतिकुंज- गायत्री तीर्थ से आधा किलोमीटर दूरी पर गंगातट पर स्थित यह संस्थान अपनी आकर्षक बनावट के कारण सहज ही सबके मनों को मोहकर आमंत्रित करता रहता है। इसमें तीन मंजिलों में प्रथम तल पर एक विज्ञान के उपकरणों से सुसज्जित यज्ञशाला विनिर्मित है तथा चौबीस कक्षों में गायत्री महाशक्ति की चौबीस मूर्तियाँ बीजमंत्रों व उनकी फलश्रुतियों सहित स्थापित हैं। द्वितीय तल पर एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला है, जहाँ ऐसे उपकरण स्थापित हैं जो यह जाँच-पड़ताल करते हैं कि साधना से पूर्व व पश्चात्, यज्ञादि मंत्रोच्चारण के पूर्व व पश्चात् क्या-क्या परिवर्तन शरीर-मन की गतिविधियों व रक्त आदि संघटकों में देखने में आये। इनके आधार पर साधकों को साधना संबंधी परामर्श दिया जाता है। यहाँ पर वनौषधियों का विश्लेषण भी किया जाता है तथा यज्ञ ऊर्जा-मंत्र शक्ति का क्या प्रभाव साधक की मस्तिष्कीय तरंगों, जैव विद्युत आदि पर पड़ा, यह देखा जाता है। विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी यहाँ किये जाते हैं। तृतीय तल पर एक विशाल ग्रंथागार स्थापित है, जहाँ विश्वभर के शोध प्रबंध वैज्ञानिक अध्यात्मवाद पर एकत्रित किये गये हैं। यहाँ प्रायः ४५००० से अधिक ग्रंथ हैं, जिनमें कई पुरातन पाण्डुलिपियाँ हैं। यह अपने आप में एक अनूठा संकलन है जो और कहीं एक साथ देखने में नहीं मिलता।

परमपूज्य गुरुदेव की उपरोक्त पाँच स्थापनाएँ किसी को भी यह परिचय दे सकती हैं कि किस विलक्षण दृष्टास्तर की वह महासत्ता थी जो हम सबके बीच अपना लीली संदोह रचकर चली गयी। प्रत्यक्ष तो यह केन्द्रीय पाँच स्थापनाएँ नजर आती हैं किन्तु ४८०० से अधिक अपने भवनों वाले प्रज्ञा संस्थान ४००००० से अधिक प्रज्ञामण्डल व स्वाध्याय मण्डल तथा अगणित गायत्री परिवार की शाखाएँ यदि इनमें मिलाई जाएँ तो इनका मूल्य राशि में आँका नहीं जा सकता। यही वह सब है जो उस महापुरुष को एक अवतारी स्तर की सत्ता के रूप में प्रतिष्ठापित करता है व जिसके कर्तृत्व पर श्रद्धावनत होने का मन करता है। ❑❑❑

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवनदर्शन : समग्र वाङ्मय

परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने जीवन भर जो अपनी लेखनी से लिखा, औरों को प्रेरित कर उनसे सृजनात्मक लेखन करवाया, पुस्तकों-पत्रिकाओं में जो प्रकाशित हुआ, समय-समय पर उनने अमृतवाणी के माध्यम से जो विचारों की अभिव्यक्ति की, विचारसार व सूक्तियाँ जो वे लिख गये या अनायास कभी कह गये तथा पत्रों के माध्यम से जो अंतरंग स्पर्श जन-जन को दिया, वह समग्र इस वाङ्मय के खण्डों में है । जिनके नाम इस प्रकार हैं :-

१. परिचयात्मक खण्ड
समग्र वाङ्मय का परिचय
२. जीवन देवता की साधना-आराधना
३. उपासना-समर्पण योग
४. साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान
५. साधना से सिद्धि-१
६. साधना से सिद्धि-२
७. प्रसुप्ति से जागृति की ओर
८. ईश्वर कौन है ? कहाँ है ? कैसा है ?
९. गायत्री महाविद्या का तत्त्वदर्शन
१०. गायत्री साधना का गुह्य विवेचन
११. गायत्री साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार
१२. गायत्री की दैनिक एवं विशिष्ट अनुष्ठान-परक साधनाएँ
१३. गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ
१४. गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि
१५. सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र
१६. मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवं सत्य
१७. प्राणशक्ति : एक दिव्य विभूति
१८. चमत्कारी विशेषताओं से भरा मानवी मस्तिष्क
१९. शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म
२०. व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ
२१. अपरिमित संभावनाओं का आगार मानवी व्यक्तित्व
२२. चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन
२३. विज्ञान और अध्यात्म परस्पर पूरक
२४. भविष्य का धर्म : वैज्ञानिक धर्म
२५. यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान
२६. यज्ञ : एक समग्र उपचार प्रक्रिया
२७. युग-परिवर्तन कैसे और कब ?
२८. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-१
२९. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-२
(सतयुग की वापसी)
३०. मर्यादा पुरुषोत्तम राम
३१. संस्कृति-संजीवनी श्रीमद्भागवत एवं गीता
३२. रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ
३३. षोडश संस्कार विवेचन
३४. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व
३५. समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान
३६. धर्मचक्र प्रवर्त्तन एवं लोकमानस का शिक्षण
३७. तीर्थ सेवन : क्यों और कैसे ?
३८. प्रज्ञोपनिषद्
३९. नीरोग जीवन के महत्त्वपूर्ण सूत्र
४०. चिकित्सा उपचार के विविध आयाम
४१. जीवेम शरदः शतम्
४२. चिरयौवन एवं शाश्वत सौन्दर्य
४३. हमारी संस्कृति : इतिहास के कीर्ति स्तम्भ
४४. मरकर भी अमर हो गये जो
४५. सांस्कृतिक चेतना के उन्नायक : सेवाधर्म के उपासक
४६. भव्य समाज का अभिनव निर्माण
४७. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता
४८. समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र
४९. शिक्षा एवं दीक्षा
५०. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-१
५१. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-२
५२. विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी
५३. धर्मतत्त्व का दर्शन व मर्म
५४. मनुष्य में देवत्व का उदय
५५. दृश्य जगत की अदृश्य पहेलियाँ
५६. ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ
५७. मनस्विता, प्रखरता और तेजस्विता
५८. आत्मोत्कर्ष का आधार-ज्ञान
५९. प्रतिगामिता का कुचक्र ऐसे टूटेगा
६०. विवाहोन्माद : समस्या और समाधान
६१. गृहस्थ : एक तपोवन
६२. इक्कीसवीं सदी : नारी सदी
६३. हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण
६४. राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने ?
६५. सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे ?
६६. युग निर्माण योजना -दर्शन, स्वरूप व कार्यक्रम
६७. पूज्यवर की अमृतवाणी-१
६८. विचार सार एवं सूक्तियाँ -१
६९. विचार सार एवं सूक्तियाँ-२
७०. विचार सार एवं सूक्तियाँ -३

वाङ्मय के आगे प्रकाशित होने वाले ३८ खण्ड निम्न विषयों पर होंगे—

७१. मनोविकारों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि
७२. तनाव के कारण एवं उनके निवारण के उपाय
७३. चिन्तन का विधेयात्मक-निषेधात्मक स्वरूप
७४. पुरुषार्थ और मानवी जिजीविषा
७५. संकल्प बल का अनूठा प्रभाव
७६. बाल-विकास के विविध सोपान
७७. बाल मनोविज्ञान का सही उपयोग
७८. पारिवारिकता में सुसंस्कारों का योगदान
७९. पारिवारिक पंचशील और परिवार-निर्माण
८०. व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया
८१. विचार-विज्ञान का महत्त्व
८२. सामाजिक समस्याएँ और उनका समाधान
८३. समाज-निर्माण के विभिन्न चरण
८४. सामाजिक जीवन में सद्गुणों की भूमिका
८५. नर-नारी की सामान्य समस्याएँ और उनका समाधान
८६. नारी जागृति की बाधाएँ एवं उनके निराकरण के उपाय
८७. पारिवारिक जीवन: एक तप-साधना
८८. दाम्पत्य जीवन के संयुक्त दायित्व
८९. नीति-विज्ञान और नैतिकता
९०. कृषि, व्यवसाय और उद्योग की उन्नति के आधार
९१. पूज्य गुरुदेव के स्फुट विचार
९२. पूज्यवर की अमृतवाणी-२
९३. पूज्य गुरुदेव की दिव्य अनुभूतियाँ
९४. पूज्य गुरुदेव के लिखे स्मरणीय पत्र
९५. तंत्र महाविज्ञान विवेचन
९६. मंत्र महाविज्ञान विवेचन
९७. महापुरुषों के प्रेरक जीवन-प्रसंग
९८. प्रेरणाप्रद कथा एवं गाथाएँ
९९. मर्मस्पर्शी विविध कथाएँ
१००. शान्तिकुंज का प्रज्ञा अभियान
१०१. युग निर्माण मिशन का क्रमिक इतिहास
१०२. वेद-सार-चिन्तन
१०३. पुराण-शोध-सार
१०४. उपनिषद् और आरण्यकों की दार्शनिक विषयवस्तु
१०५. काव्य-गीत-मंजूषा
१०६. मिशन के रचनात्मक कार्यक्रमों का क्रमिक इतिहास
१०७. मिशन की लोक-व्यवहार संहिता
१०८. गुरुदेव की अपने आत्मीय जनों से अपनी बातें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org